दोहा—दीधनन शृंगाररस, सागर छवि गुणऐन ॥ भजहुँ नित्य जगदम्बिका, गुणागार सुखदैन ॥ १ ॥

नैमिषारण्यमें वास करनेवाले ऋषिगण सूतजीसे कहने लगे हे महाभाग ! तुम्हारे मुखचन्द्रसे निकला हुआ महर्षि द्वैपायन कथित कल्याणकर वचनामृत हमको अत्यन्त मीठा बोध होता है इसलिये हम उसे पान करके भी भलीभांति तृप्तिलाभ नहीं कर सकते ॥१॥ हे सूतजी ! जो प्रसिद्ध पापनाशन और मनोहर तथा वेदमें भी जो कथित है हम उसी शुभकर पुराणकी कथा पुनर्वार तुमसे पूछनेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ वृत्रासुर नामक विख्यात अत्यन्त वीर्यवान् विश्वकर्माका एक पुत्र था इन्द्रने महात्मा होकर भी युद्धमें उसको किस प्रकार मारा ॥ ३ ॥ विश्वकर्म्मा देवताओंका

ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम् ॥ न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम् ॥ १ ॥ पुनस्त्वां प्रष्टु मिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥२॥ वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टु रात्मजः ॥ स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना ॥ ३ ॥ त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः ॥ शक्रेण घातितः कस्माद्ब्र ह्मयोनिर्महाबलः ॥ ४ ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः ॥ तिर्यञ्चस्तमसाः प्रोक्ता पुराणागमवादिभिः ॥ ५ ॥ विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह ॥ छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः ॥६॥ विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः ॥ प्रविष्टः पविमध्ये स च्छद्मना भगवान् प्रभुः ॥ ७ ॥

पक्षपाती था उसका पुत्र वीर्य्यवान् और महाबली तथा ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न था अतएव इन्द्रने देवताओंका राजा होकर भी उसका किस कारण विनाश किया ॥४॥ पुराणके जाननेवाले और आगमवादी पंडितगण कहते हैं कि देवता सत्वगुणसे, मनुष्य रजोगुणसे और सब तिर्य्यग्जाति तमोगुणसे उत्पन्न हुई हैं॥५॥किन्तु वृत्रासुरके विनाशसे उसका महाविरोध दिखाई देता है क्योंकि, इन्द्रने शतयज्ञकारी सत्वगुण संपन्न होकर भी छलसे बलवान् वृत्रासुरका विनाश किया था ॥ ६ ॥ और सत्वगुणधारी विष्णुने उसको इस कार्य्यमें प्रवर्तित किया, और उन भगवान् प्रभु

संपन्न सुरपति इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे वृत्रासुरको किस प्रकार मारा ? अथवा श्रीदेवीजीने किस निमित्त इस दैत्यश्रेष्ठको मारा था ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ हे मुनीन्द्र ! दो व्यक्ति एक जनको मारें यह किस प्रकार संभव है ? इसको सुननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ १७ ॥ कौन मनुष्य महत् पुरुषोंके चरित्रकी कथा सुननेसे विरत होगा, आप शक्तिरूपिणी जगज्जननीके वृत्रासुरवध संघटित वैभवकी कथा वर्णन कर मेरे श्रवण और मनको चरितार्थ कीजिये ॥१८॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! सुरश्रेष्ठ अमृतपान कर तिसके पीनेसे भी तृष्णारहित होते हैं किन्तु आप अबतक पुराणोंकी कथासे तृष्णारहित नहीं हुए बरन् पुराणोंके सुननेमें आपका आदर दिन दिन बढता है आपकी बुद्धि

सहायं विष्णुमासाद्य च्छद्मना सात्त्विकेन ह ॥ कथं च देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना ॥ १६ ॥ कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुंगव ॥ तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥१७॥ महतां चरितं शृण्वन्को विरज्येत मानवः ॥ कथयांबावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम् ॥१८॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽति सादरा ॥ पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाः प्रभवंति वै पुनः ॥ १९ ॥ दिनेदिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः ॥ श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति ॥ २० ॥ युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे ॥ दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव ॥ २१ ॥

पुराण पीयूष रसमें निमग्न हुई है अतएव हे राजेन्द्र ! आप धन्य हैं ॥ १९ ॥ हे नृपवर ! पृथ्वीमें आपकी कीर्त्ति प्रशंसनीय है पुराणकी कथामें आपका भक्तिभाव दिन दिन बढता है अतएव मैं भी आपके निकट पुराणकी कथा कीर्त्तन कर परमप्रीति लाभ करता हूं क्योंकि श्रोता यदि एक मनसे तद्गत चित्त कथा सुने तो वक्ता भी आनंदित हो यत्नपूर्वक कथा कहता है इसमें सन्देह नहीं ॥२०॥ हे पृथ्वीन्द्र ! पूर्वकालमें वृत्रासुर और इन्द्रका जो युद्ध हुआ था और इन्द्रने विश्वकर्माके पुत्रको मारकर जो दुःख पाया था वह वेद और पुराणमें भलीभांति वर्णित है ॥ २१ ॥

पाकशासन इन्द्र उस अमिततेजा तपस्वीका तपोवीर्य और स्थिर अनुराग देखकर अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ कि त्रिशिरा तपोबलसे दिन दिन बलवान् होता है अतएव यह मुझको मार सकेगा क्योंकि जिस शत्रुका बल दिन दिन बढ़ता है पंडितगण कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते ॥३८॥ अतएव इस समय इसकी तपस्याके विनाशका उपाय करना मुझको अवश्य कर्तव्य है, इसप्रकार चिन्ता कर निश्चित किया कि काम ही तपस्याका शत्रु है कामसे ही तपस्याका नाश होता है ॥ ३९ ॥ अतएव वे जिसमें भोगासक्त हो मुझको वही करना उचित है, बुद्धिमान् इन्द्रने इस प्रकार चिन्ता कर ॥४०॥ विश्वकर्माके पुत्र त्रिशिराको लुभानेके लिये उर्वशी, मेनका, रंभा, घृताची और तिलोत्तमा इत्यादि रूपगर्वित अप्सरागणोंको

दृष्ट्वा तस्य तपो वीर्यं सत्यं चामिततेजसः ॥ चिंतां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः ॥३७॥ विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति ॥ नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः ॥ ३८ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय सांप्रतम् ॥ कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः ॥ ३९ ॥ तथैवाऽद्य प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा ॥ इति संचिन्त्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः ॥ ४० ॥ आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने ॥ उर्वशीं मेनकां रंभां घृताचीं च तिलोत्तमाम् ॥ ४१ ॥ समाहूयाऽब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः ॥ प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४२ ॥ यतो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः ॥ कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम् ॥ ४३ ॥ शृङ्गारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ॥ प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥ ४४ ॥ अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम् ॥ बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलंबितः ॥ ४५ ॥

बुलाकर कहा ॥४१॥ हे अप्सरागणो ! इस समय मेरा एक भारी कार्य्य उपस्थित हुआ है तुम इस विषयमें मेरा प्रिय कार्य साधन करो ॥४२॥ इस समय मेरा एक दुर्जय महान् शत्रु प्रगट हो तपस्या करता है तुम विलंब न करके शीघ्र जाय कार्य्य साधनका यत्न करो ॥ ४३ ॥ तुम शृङ्गार वेश धारण कर देहसे हावभावादि अनेक चेष्टासे उसको लुभाओ तुम्हारा मंगल हो तुम उसका लुभाकर मेरे हृदयका ज्वर दूर करो ॥ ४४ ॥ हे अप्सरागणो ! अधिक और क्या कहूं मैं उसका तपोबल जानकर किसी प्रकारसे ही स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता. हे अबलागणो ! वह

बलवान् तपस्वी शीघ्र ही मेरा आसन ग्रहण करेगा ॥ ४५ ॥ मुझको यही भय उपस्थित हुआ है अतएव तुम शीघ्र ही वह भय दूर करो इस समय यह कार्य उपस्थित है तुम सब मिलकर हमारा उपकार करो ॥४६॥ अप्सरागण उनका यह वचन सुन प्रणाम पूर्वक कहने लगी. हे देवेश्वर ! आप भय न कीजिये हम उस तपस्वीके लुभानेको भलीभांति यत्न करेंगी ॥ ४७ ॥ हे महाद्युते ! उस मुनिको लुभानेके निमित्त नृत्य गीत और विहारादि कर जिससे आपका भय दूर हो हम वही करेंगी ॥ ४८ ॥ हे देवराज ! उस मुनिको कटाक्ष अंगभंग द्वारा मोहित चलायमान चित्त तथा नियन्त्रित कर अपने वशीभूत करेंगी ॥४९॥ व्यासजीने कहा, हे राजन् ! अप्सरागण देवराज इन्द्रसे यह कह त्रिशिराके

भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताऽबलाः ॥ उपकुर्वंतु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः ॥ मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने ॥ ४७ ॥ यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते ॥ नृत्य गीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने ॥ ४८ ॥ कटाक्षैरंगभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो ॥ लोलुपं वशमस्माकं करिष्यामो नियंत्रितम् ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽतिकम् ॥ कुर्वंत्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रो चितानपि ॥ ५० ॥ गायंत्यस्तालभेदैस्ता नृत्यंत्यः पुरतो मुनेः ॥ तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥ ५१ ॥ नाऽपश्यत्सतपोराशिरंगनानां विडंबनम् ॥ इंद्रियाणि वशे कृत्वा मूकांधबधिरः स्थितः ॥ ५२ ॥ दिनानि कतिचित्तस्थु र्नार्यस्तस्याश्रमे वरे ॥ कुर्वंत्यो गाननृत्यादिप्रपंचानतिमोहदान् ॥ ५३ ॥

पास गई और कामशास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥५०॥ वे मुनिके सामने कभी गान तथा कभी भिन्न भिन्न तालसहित नृत्य करने लगीं बहुत क्या वे देवताओंकी स्त्रियें उन मुनिको लुभानेके निमित्त अनेक प्रकारके हावभाव प्रकाश करने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु तपःप्रभावयुक्त उन महर्षि त्रिशिराने अङ्गनागणोंकी अङ्गभङ्गरूप विडम्बनाको देखा भी नहीं वरन् वह इंद्रियगणोंको वशीभूत कर गूंगे अन्धे और बहरेके समान स्थिति करने लगे ॥ ५२ ॥ अङ्गनागणोंने मुनिके उस मनोहर आश्रममें अत्यन्त मनको मोहित करनेवाले

संगीत और नृत्यादि अनेक प्रकारकी कामकला फैलाकर कुछ दिनतक वहां वास किया ॥ ५३ ॥ किन्तु जब वह त्रिशिरामुनि कुछभी ध्यानसे विचलित न हुए तब अप्सरागण ॥५४॥ विश्रान्त (थककर) दीनभावयुक्त हो लौटकर इन्द्रके सामने उपस्थित हुई और सब ही भयसे त्रसित हो हाथ जोडकर कहने लगीं ॥ ५५ ॥ महाराज ! हमने अत्यन्त यत्न किया किंतु किसीसे भी उन दुर्धर्ष मुनिवरको ध्यानसे न छुटासकीं ॥ ५६ ॥ हे पाकशासन ! इस समय आप दूसरा उपाय कीजिये उस जितेन्द्रिय तपस्वीके ध्यानच्युत करनेमें हम समर्थ न हुई ॥ ५७ ॥

न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः ॥ परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ५४ ॥ कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाऽब्रुवन् ॥ श्रांता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥ ५५ ॥ देवदेवमहाराज यत्नश्च परमः कृतः ॥ न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो ॥ ५६ ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन ॥ नाऽस्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेंद्रिये ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना ॥ मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि ॥ ५८ ॥ विसृज्याऽप्सरसः शक्रश्चिंतयामास मंदधीः ॥ तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसांप्रतम् ॥ ५९ ॥ विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् ॥ चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः समधिगम्य गजासनसंस्थितः ॥ त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥ १ ॥

हमारे भाग्यसे ही अग्निके समान तपःप्रभावयुक्त उन मुनिवरने हमको शाप न दिया॥५८॥अनन्तर अप्सरागणोंको विदा कर मंदबुद्धि पापमति इंद्र अत्यन्त अन्याय होनेपर भी उस मुनिके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥५९॥ हे महाराज ! उन अमरराज इन्द्रने लोकलज्जा और पापभय विसर्जनकर उनको मारनेके निमित्त अतिनिन्दित पापबुद्धि स्थिर की ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर सुरपति इन्द्रने त्रिशिराके मारनेका संकल्प कर ऐरावतके ऊपर चढ उन अमितपराक्रम मुनि

वरके सामने जाय देखा कि ॥ १ ॥ वह मुनिवर वाक्यसंयत कर दृढ आसनपर विराजमान रहकर एकाग्रचित्तसे समाधि कर रहे हैं तिसकाल उनके शरीरसे इस प्रकार तेज निकल रहा था कि वह सूर्य्य और अग्निके समान बोध होते थे इन्द्र त्रिशिराको इस प्रकार देखकर अत्यन्त खेद और विषादको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ तब उन्होंने विचारा कि यह निर्म्मलचित्त मुनिवर प्रदीप्त तपोबलयुक्त हैं मैंने इनको मारनेकी इच्छा की यह अत्यन्त धर्म्मविरुद्ध है, किन्तु यह मेरा सिंहासन ग्रहण करनेके अभिलाषी हुए हैं अतएव किस प्रकार ऐसे शत्रुकी उपेक्षा करूं ॥३॥ देवराज इन्द्रने इस प्रकार विचार कर स्वयं उस तपस्यामें बैठे चन्द्र और सूर्यके समान दीप्यमान मुनिवर त्रिशिराके प्रति शीघ्रगामी अपना अमोघ अस्त्र वज्र निक्षेप

तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम् ॥ रविविभावसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥
कथमसौ विनिहंतुमहो मया मुनिरपापमतिः किल संमतः ॥ रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः कथमुपेक्ष्य इहाऽऽसनकामुकः ॥३॥ इति
विचिंत्य पविं परमायुधं प्रतिमुमोच मुनिं तपसि स्थितम् ॥ शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं त्रिशिरसं सुरसंघपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥
तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः ॥ शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि वाऽद्भुतदर्शनम् ॥५॥
तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः ॥ हाहतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥ ६ ॥
विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा ॥ फलं किलाऽस्य तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य ॥ ७ ॥
तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमंदिरमाशु ॥ स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥ ८ ॥

किया ॥ ४ ॥ तब पर्वतका विशालशिखर वज्रसे आहत होकर जिस प्रकार पृथ्वीमें गिरता है इसी प्रकार तपस्वीप्रवर त्रिशिरा भी वज्रसे आहत हो पृथ्वीमें गिरपडे और तत्काल प्राणत्याग किया ॥ ५ ॥ इन्द्र उनको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए किन्तु वहां बैठे मुनिगण "हा हतोऽस्मि" हाय क्या हुआ ? यह कह आर्तस्वरसे शब्द कर उठे और ऊंचे स्वरसे कहने लगे हाय पापमति ! इन्द्रने आज क्या दुष्कर्म किया ॥ ६ ॥ हाय ! दुरात्मा पापमति शचीपतिने विना अपराध इन तपोनिधि मुनिवरको मारा ? अतएव यह पापात्मा मुनिके हत्याजनित पाप फलको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ७ ॥ अनन्तर देवराज इन्द्र उनको मारकर शीघ्र अपने स्थानको चले गये इधर वह महात्मा तपोनिधि हत होकर भी अपने शरीरकी

प्रभासे जीवितके समान स्थिति करने लगे ॥ ८ ॥ तब वृत्रासुरके नाश करनेवाले इन्द्र उनको जीवितके समान पडा हुआ देखकर "यह मुनिवर जीवित हो सकते हैं" इस प्रकार चिन्ताकर अत्यन्त दुःखसे सन्तापित होने लगे ॥ ९ ॥ फिर मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता कर सामने खडे काष्ठच्छेदक तक्षासे स्वार्थसाधनके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे शिल्पवर ! तुम इनका मस्तक काटकर मेरा वचन प्रतिपालन करो यह महातेजा महर्षि जीवितके समान बोध होते हैं अतएव जब तुम उनका मस्तक काट डालोगे तब यह जीवित नहीं हो सकेंगे ॥ ११ ॥ तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुन उस कार्यकी निन्दा कर उनसे कहा तक्षा बोले हे देवराज ! इन मुनिवरका कण्ठ अत्यन्त स्थूल है अतएव अच्छेद्य है

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवन्तमिव वृत्रहा ॥ चिंतामापाऽतिखिन्नांगः किंवा जीवेदयं पुनः ॥ ९ ॥ विमृश्य मनसाऽतीव तत्क्षणं पुरतः स्थितम् ॥ मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः ॥ १० ॥ तक्षंश्छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ मा जीवतु महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम् ॥११॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् ॥ तक्षोवाच ॥ महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति ॥ १२ ॥ ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम् ॥ त्वया वै निंदितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम् ॥१३॥ अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे ॥ मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृन्तनेन किम् ॥ १४ ॥ भयं किं तेऽत्र संजातं पाकशासन कथ्यताम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥ १५ ॥

मेरा यह कुठार उनका मस्तक छेदन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ १२ ॥ विशेष कर यह नीचकार्य नहीं करूंगा आपने गणोंके पक्षमें जो अत्यन्त नीच है वह अधर्म कार्य किया है ॥ १३ ॥ किन्तु मैं पापका भय करता हूं अतएव इन मरे हुए मुनिवरके अंगमें फिर आघात नहीं करूंगा यह मुनि मरे हुए पडे हैं इनके मस्तक काटनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १४ ॥ हे पाकशासन ! इस विषयमें आपके भयका क्या कारण है

अतएव यह फिर जीवित हो जायँगे मैं इसी कारण डरता हूं तक्षाने कहा आप सब विषयको जानकर भी इस नृशंस कर्म्म करनेमें क्या लज्जा बोध नहीं करते ? ॥ १६ ॥ इन ऋषिपुत्रको मारकर ब्रह्महत्याका भय नहीं करते इन्द्रने कहा मैं पाप दूर करनेके निमित्त फिर प्रायश्चित्त करूंगा ॥ १७ ॥ किन्तु इस समय इस शत्रुका मारना मुझको अवश्य है. हे महामते ! नीतिके जाननेवाले पंडितगण कहते हैं कि छलकरके भी सर्वप्रकार शत्रुको मारना, तब तक्षाने इन्द्रका यह वचन सुनकर कहा हे मघवन् ! आपने लोभके वशीभूत होकर यह पापकार्य किया है ॥ १८ ॥ किन्तु हे विभो ! मुझको लोभका कारण कुछ नहीं है अतएव उसके विना मैं किस प्रकार इस पापकार्य्यके करनेमें प्रवृत्त हूं. इन्द्रने कहा हे तक्षन् ! मैं

तस्माद्बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम ॥ तक्षोवाच ॥ नाऽत्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणानेन कर्मणा ॥ १६ ॥ ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम्॥इन्द्र उवाच॥प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥१७॥ शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते ॥ तक्षोवाच ॥ त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥१८॥ तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो ॥ इन्द्र उवाच ॥ मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥ १९ ॥ शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यंति मानवाः ॥ शुक्रेनानेन च्छिधि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम्॥२०॥ व्यास उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महेंद्रस्य वचस्तक्षा मुदाऽन्वितः॥कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि ॥ २१ ॥ छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि ॥ तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ २२ ॥ कलविंकास्तित्तिरय स्तथैव च कपिंजलाः ॥ पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा ॥ २३ ॥ येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा ॥ तस्मा द्वक्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिंजलाः ॥ २४ ॥

यज्ञस्थलमें तुम्हारा भाग दूंगा ॥ १९ ॥ मनुष्योंके यज्ञमें दिया हुआ पशुका मस्तक सदा तुमको दूंगा अब तुम इस नियमानुसार इनका मस्तक [illegible]टकर मेरा प्रियकार्य करो ॥२०॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह तक्षा इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और दृढ कुठारसे इन मुनिके सब मस्तक काटडाले ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उनके तीनों मस्तक काटकर पृथ्वीमें गिरपड़े उनसे हजारों पक्षी वेगसहित निकलने लगे ॥ २२ ॥ कलविंक, तित्तिर और कपिञ्जल यह तीन प्रकारके पक्षी पृथक् पृथक् मुखसे पृथक् पृथक् रूपमें शीघ्रही निकलने लगे ॥ २३ ॥ हे नृपवर ! वह

पृथ्वीको उखाडकर सब जीवगणोंको समुद्रके जलमें डुबा दूंगा ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! विश्वकर्माने उस पुत्रके इसप्रकार मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न हो उस पर्वतोपम पुत्रसे कहा ॥४३॥ हे पुत्र ! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे रक्षा करनेमें समर्थ हो उसीकारण तुम वृत्रनामसे विख्यात होगे ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे भ्राता त्रिशिरानामक तपस्वी थे उनके तीनों मस्तक वीर्यवान् अर्थात् उत्तम कर्म करनेमें समर्थ थे ॥४५॥ वह वेद और वेदांगशास्त्रका तत्व जाननेवाले और सर्वविद्याविशारद हो सदाही त्रिलोककी आश्चर्ययुक्त तपस्यामें निरत रहते थे ॥ ४६ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम् ॥ प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम् ॥ ४३ ॥ वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छ क्तोऽसि पुत्रक ॥ तस्माद् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ४४ ॥ भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः ॥ त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन्वीर्यवंति च ॥ ४५ ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः ॥ संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥ ४६ ॥ शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्रघातेन सांप्रतम् ॥ विनाऽपराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम् ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः ॥ आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥४९॥ ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च ॥ खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै ॥५०॥ शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा ॥ चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥ ५१ ॥

इन्द्रने हमारे उसी गुणवान् पुत्रको वज्रसे मारा है उस पापात्मा इन्द्रने विना अपराधही उसके तीनों मस्तक काट डाले ॥ ४७ ॥ अतएव हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम उस अपराध करनेवाले ब्रह्महत्याके पापसे युक्त पापस्वरूप निर्लज्ज शठ और दुष्टमति इंद्रका संहार करो ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! पुत्र शोकसे व्याकुल विश्वकर्माने इसप्रकार कह अनेकप्रकारके सब दिव्य आयुध उत्पन्न किये ॥ ४९ ॥ उन्होंने इन्द्रके मारनेको विशेष कार्यमें समर्थ उत्तम उत्तम खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमरादि ॥ ५० ॥ और शार्ङ्गधनुष, बाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शनके समान प्रभायुक्त सहस्र

आरेवाला दिव्यचक्र ॥ ५१ ॥ दिव्य अक्षय दो तरकस, सुन्दर कवच, मेघके समान प्रभायुक्त दृढवायुके समान वेगवान् रथ यह संपूर्ण निर्माण करके पुत्रको दिये ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! क्रोधयुक्त शिल्पवर विश्वकर्माने इस प्रकार युद्धकी सब सामग्री बनाय वह सब अपने पुत्र वृत्रासुरको प्रदानपूर्वक इन्द्रके मारनेको भेजा ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाबलवान् वृत्रासुर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणगणोंसे स्वस्त्ययन कराय रथपर चढकर देवराज इन्द्रको मारनेके निमित्त निकला ॥ १ ॥ पहले देवतागणोंने जिन सब दानवगणोंको पराजित किया था इस समय वह वृत्रासुरको बलवान् जानकर उनकी सेवा और

तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुन्दरम् ॥ रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम् ॥ ५२ ॥ युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव ॥ दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ व्यास उवाच ॥ कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्जगाम रथारूढो हंतुं शक्रं महाबलः ॥१॥ तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः ॥ समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम् ॥२॥ इन्द्रदूतास्तु त दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम् ॥ वेगादागत्य वृत्तांतं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥ ३ ॥ दूता ऊचुः ॥ स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव ॥ बलवान्स्यंदने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥ ४ ॥ अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै ॥ पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥ ५ ॥ यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति सांप्रतम् ॥ मेरुमंदरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः ॥ ६ ॥

सहायताको उसके निकट आय उपस्थित हुए ॥ २ ॥ इन्द्रके दूतने उन सबको युद्धके निमित्त उपस्थित देख शीघ्रतासहित आप देवराज इंद्रसे उनका कार्य और सब वृत्तांत निवेदन कर कहा ॥ ३ ॥ दूत बोला हे प्रभो ! विश्वकर्माने पुत्रके मारे जानेसे सन्तप्त और क्रोधयुक्त हो आपको मारनेके निमित्त अभिचारकर्मसे जो पुत्र उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥ वह दुःसह वृत्रासुर नामक असुर आपका दारुण शत्रु है वह इस समय रथपर चढकर असुरगणोंसे परिवृत हो युद्धके कारण इस स्थानमें आ रहा है ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यह शत्रु सुमेरु और मंदराचलके

समान अत्यन्त दारुण है वह इस समय घोरतर शब्द करता हुआ शीघ्र आ रहा है आप भलीभांति यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ हे महाराज ! देवराज इन्द्र दूतका वचन सुनही रहे थे इसी समयमें देवतागण भयभीत और त्रस्त हो आनकर कहने लगे ॥ ७ ॥ देवतागण बोले हे सुरपते ! इस समय देवतागणोंके भवनमें अनेक अमंगल शब्द दिखाई देते हैं.पक्षीगण जिस प्रकार ध्वनि करते हैं उससे जाना जाता है कि,शीघ्रही अनिष्टपात होगा ॥ ८ ॥ काक, गृध्र, श्वेत और कंक इत्यादि सब दारुण पक्षीगण भवनके ऊपर विकृत और ऊंचे शब्दसे रोते हैं ॥९॥ अन्यान्य पक्षीगण सदाही चींचीं कूचीं इत्यादि शब्द करते हैं वाहनोंकी आंखोंसे आंसू गिरते हैं ॥ १० ॥ हे महाभाग ! अधिक और क्या कहैं ? रात्रिके समय

एतस्मिन्नंतरे तत्र भीता देवगणा भृशम् ॥ आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वंतं दूतभाषितम् ॥ ७ ॥ गणा ऊचुः ॥ मघवन्दुर्निमित्तानि भवंति त्रिदशालये ॥ बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च ॥ ८ ॥ काका गृध्रास्तथा श्येनाः कंकाद्या दारुणाः खगाः ॥ रुदंति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥ ९ ॥ चीचीकूचीति निनदान्कुर्वंति विहगा भृशम् ॥ वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतंत्यधः ॥ १० ॥ श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च ॥ राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः ॥ ११ ॥ प्रपतंति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद ॥ प्रभवंति महोत्पाता दिवि भूम्यंतरिक्षजाः ॥ १२ ॥ कृष्णांबरधरा नार्यो भ्रमंति च गृहेगृहे ॥ यांतु यांतु गृहात्तूर्णं कुर्वंत्यो विकृताननाः ॥ १३ ॥ रात्रौ स्वप्नेषु कांतानां सुतानां निजमंदिरे ॥ केशाँल्लुनंति राक्षस्यो भीषयत्यो भृशातुराः ॥ १४ ॥

भवनके ऊपर रोते हुए राक्षसीगणोंका भयंकर तथा दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ११ ॥ हे मानद ! विना पवनकेही रथस्थित समस्त ध्वजा टूटकर गिरती हैं इस प्रकार स्वर्गमें भूमिजात और अन्तरिक्षजात सम्पूर्ण उत्पात प्रादुर्भूत होते हैं॥१२॥हे देवराज ! इस समय देवतागणोंके स्थानमें विकृतमुखवाली स्त्रियें काले वस्त्र पहनकर घरघरमें भ्रमणपूर्वक " घरसे शीघ्र जाओ शीघ्र जाओ "यह वचन सदाही कहती हैं ॥ १३ ॥ देवतागणोंकी स्त्रियें अपने अपने घरमें निद्रित रहकरभी स्वप्नमें देखती हैं कि भयंकर राक्षसी आनकर उनके केशकलाप छिन्नकर उनको भय दिखाती हैं ॥ १४ ॥

हे देवेन्द्र ! इस समय सब अशुभ लक्षण और भूमिकम्प तथा उल्कापातादि उत्पात संघटित होते हैं अधिक क्या रात्रिकालके समय गीदड घरके आङ्गनमें आनकर घोर हृदयको क्षोभित करनेवाले दारुण शब्दसे रोते हैं ॥ १५ ॥ अनेक कृकलास (गिरगिट) घरघरमें भ्रमण करते फिरतेहैं और अनेकानेक अङ्ग फड़कना इत्यादि सब अमंगल लक्षण सदाही प्रकाशित होते हैं ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर देवराज इंद्र अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और सुरगुरु बृहस्पतिजीको बुलाकर पूंछने लगे ॥ १७ ॥ इंद्र बोले हे ब्रह्मन् ! घोरतर सब अनिष्ट प्रकाशित होते हैं दारुण पवन चलता है और आकाशसे उल्कासमूह गिरते हैं यह सब क्या है ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! आप

एवं विधानि देवेश भूकंपोल्कादयस्तथा॥गोमायवो रुदंति स्म निशायां भवनांगणे॥१५॥सरटानां च जालानि प्रभवंति गृहेगृहे॥ अंगप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः ॥१६॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा चिंतामाप सुरेश्वरः ॥ बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम् ॥१७॥ इंद्र उवाच ॥ ब्रह्मन्किमुत घोराणि निमित्तानि भवंति वै ॥ वाताश्च दारुणा वांति प्रपतंत्यलकाः खतः ॥ १८ ॥ सर्वज्ञोसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने ॥ बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा ॥१९॥ कुरु शांतिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम् ॥ यथा मे भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम् ॥ २० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् ॥ अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम् ॥ २१ ॥ अत्युग्रपुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् ॥ विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता ॥२२॥ परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन ॥ न सुखं विंदते प्राणी परपीडापरायणः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् शास्त्रके जाननेवाले देवतागणोंके गुरु विशेषकर सर्वज्ञ और विघ्ननाश करनेके सब उपाय जानते हैं ॥ १९ ॥ अतएव आप शत्रुके विनाश करनेवाली शान्तिका अनुष्ठान कीजिये जिससे मुझे दुःख न हो सो करो ॥२०॥ बृहस्पतिजीने कहा हे सहस्रलोचन ! मैं क्या करूं तुमने पहले अत्यन्त पापकर्म किया है उन निरपराध मुनिको मारकर तुमने अतिकुत्सित फल उपार्ज्जन किया है ॥ २१ ॥ अत्यन्त उग्र पाप और पुण्यका फल शीघ्रही फलता है अतएव कल्याणकी कामना करनेवालोंको विचारकरही कर्म करना चाहिये ॥ २२ ॥ जिससे दूसरेको

अति सन्ताप हो इस प्रकारका कर्म कभी करना उचित नहीं है. जो प्राणी दूसरेको दुःख देनेमें रत हैं वे कभी सुखलाभ नहीं कर सकते ॥२३॥ हे शक्र ! तुमने उस समय लोभ और मोहके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या की है उसी पापका यह फल सहसा आनकर उपस्थित हुआ है ॥२४॥ हे सुरराज! इस वृत्रासुरनामक असुरने सब देवतागणोंसे अवध्य हो जन्म ग्रहण किया है वह दुर्द्धर्ष असुरवर अनेक दानवगणोंसे परिवृत हो और विश्वकर्माके दिये हुए वज्रके समान जब दिव्य अस्त्र ग्रहणकर ॥ २५ ॥ २६ ॥ रथपर चढ तुम्हारे मारनेको मानो प्रलयकाल उपस्थित करता हुआ आरहा है, इन तीनों लोकोंमें उसको मारसके ऐसा कोई नहीं है अतएव इसकी मृत्यु भी नहीं होगी ॥ २७ ॥ बृहस्पतिजी इसप्रकार कहही रहे थे कि

मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाऽधुना ॥ तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम् ॥ २४ ॥ अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः ॥हंतुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः॥२५॥आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव ॥ त्वाष्ट्रादत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥ २६ ॥ समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् ॥ देवेंद्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥ २७ ॥ कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ ॥ गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥ २८ ॥ सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चितापरायणः ॥ २९ ॥ आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान् ॥ आनयध्वं वसून्रुद्रान् अश्विनौ च दिवाकरान् ॥ ३० ॥ पूषणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् ॥ विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥

इसी समयमें एक महाकोलाहल शब्द उठा इस समय गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, तपोधन, मुनिगण ॥२८॥ और अन्यान्य सब अमरगण अपने २ घरको छोड़ भागने लगे देवराज इन्द्र सुरगणोंको भागता हुआ देखकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए ॥ २९ ॥ और तत्काल सब सेनाका उद्योग करनेके निमित्त सब सेवकगणोंको आज्ञा देकर कहा कि तुम वसुगण, रुद्रगण दोनों अश्विनीकुमार आदित्यगण ॥३०॥ पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यम इत्यादि सुरगणोंको बुला लाओ, शत्रु प्रायःउपस्थित हुआ है अतएव वे देवतागण अपने अपने आयुध ले विमानोंपर चढ़कर

शीघ्र इस स्थानमें आवें ॥ ३१ ॥ शीघ्र आवें शत्रु आचुका है अमरराज इन्द्र इसप्रकार आज्ञा दे गजराजपर चढ़ ॥ ३२ ॥ सुरगुरुको आगे कर अपने घरसे निकले इसी प्रकार सम्पूर्ण देवतागण भी अपने अपने वाहनोंपर चढ ॥ ३३ ॥ युद्धके निमित्त कृतसंकल्प हो अपने अपने अस्त्रशस्त्र लेकर चले, इधर वृत्रासुरभी दानवोंसे परिवृत हो मानससरोवरके उत्तर स्थित ॥ ३४ ॥ वृक्षोंकी कतारसे शोभायमान मनोहर पर्व्वतमें आनकर उपस्थित हुआ. हे राजन् ! यह मनोहर स्थानही देवतागणोंका निवासस्थान था इन्द्र भी बृहस्पतिजीको आगे कर देवतागणोंके सहित मानससरोवरके उत्तर स्थित उसी पर्व्वतमें उपस्थित हुए वहां इन्द्र और वृत्र संग्राम करने लगे ॥ ३५॥३६ ॥ उस स्थानमें वृत्रासुर और इन्द्रका

समागच्छंतु तरसा शत्रुरायाति सांप्रतम् ॥ इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमंदिरात् ॥ तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ३३ ॥ युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः ॥ वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम् ॥३४॥ पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् ॥ इंन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे ॥३५॥ पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः ॥ तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥ ३६ ॥ गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः ॥ मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम् ॥ ३७ ॥ बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायु गणः किल ॥३८ ॥ यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात् ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिंद्रपुरोगमान् ॥ ३९ ॥ वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदाऽन्वितम् ॥ प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितुः कार्यं मया कृतम् ॥ ४० ॥

गदा,असि, परिघ,पाश, बाण, शक्ति और परशु इत्यादिसे दारुण युद्ध होने लगा, नियतात्मा ऋषिगणों और मनुष्योंको भय देनेवाला घोरतर वह संग्राम मनुष्योंके परिमाणसे सौवर्षतक हुआ था तदनन्तर प्रथम वरुण फिर वायुगण ॥३७॥ ॥ ३८ ॥ इसके उपरान्त यम, विभावसु और इन्द्र इस प्रकार क्रमानुसार सबही रणमें पीठ दे भाग गये. तब वृत्रासुर इन्द्र इत्यादि देवतागणोंको भागता हुआ देख ॥३९॥ आश्रमस्थित प्रसन्नचित्त पिताके निकट जाय प्रणामपूर्वक कहने लगा हे पितः ! मैंने आपकी आज्ञानुसार कार्य्यसाधन किया ॥ ४० ॥

इन्द्र इत्यादि सब देवतागणोंको संग्राममें पराजित किया है सिंहके निकटसे मृग और हाथीगण जिसप्रकार भागते हैं इसीप्रकार वह सब अपने अपने स्थानोंको भाग गये ॥४१॥ मैंने देवराज इन्द्रका हाथी छीन लिया है वह पैरोंही भाग गये. हे भगवन्! मैं इस गजवर ऐरावतको ले आया हूं आप लीजिये ॥ ४२ ॥ हे पितः! डरे हुएको मारना अनुचित है, इस कारण मैंने उनको नहीं मारा इस समय आप आज्ञा कीजिये कि पुनर्व्वार आपका क्या अभीष्ट साधन करूं? ॥ ४३ ॥ सब देवतागण भयसे भीत और श्रमातुर हो संग्रामस्थलसे भाग गये अधिक क्या

देवा विनिर्जिताः सर्वे सेंद्राः समरसंस्थिताः ॥ विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥ ४१ ॥ इन्द्रः पदातिरगमन्म याऽऽनीतो गजोत्तमः ॥ ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाण द्विरदोत्तमम् ॥ ४२ ॥ न हतास्ते मया तस्मादयुक्तं भीतमारणम् ॥ आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम् ॥ ४३ ॥ निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः ॥ इंद्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पला यितः ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदाऽन्वितः ॥ पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवि तम् ॥ ४५ ॥ त्वयाऽहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः ॥ निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम् ॥ ४६ ॥ शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय ॥ तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः ॥ ४७ ॥ विश्वासो नैव कर्तव्यः केषांचित्पाक शासनः ॥ शत्रुस्ते छलकर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥

इन्द्रभी भीत और संत्रस्तहो ऐरावतको छोड भाग गये ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! विश्वकर्म्मा उस पुत्रका यह वचन सुन प्रसन्न चित्त हुए और कहने लगे कि, आज मैं यथार्थ पुत्रवान् हुआ और मेरा जीवन भी सफल हुआ ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! तुमने आज मुझको पवित्र किया. इस समय अब मेरा चित्तरूपी ज्वर दूर हुआ. तुम्हारा अद्भुतवीर्य्य देखकर मेरा मन भी स्थिर हुआ ॥ ४६ ॥ हे वत्स! मैं इससमय जो कहता हूं वह मन लगाकर सुनो. हे महाभाग! तुम सावधान हो स्थिर आसनपर बैठकर तपस्या करो ॥ ४७ ॥ तुम कभी किसीका विश्वास

नहीं करना क्योंकि छलका ढूँढनेवाला वेदविशारद इन्द्र तुम्हारा प्रधान शत्रु विद्यमान है ॥ ४८ ॥ हे पुत्र । तपस्या साधारणवस्तु नहीं है तपस्यासे लक्ष्मी, उत्तमराज्य, बलकी वृद्धि और संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ अतएव तुम हिरण्यगर्भकी आराधना कर उत्तम वरलाभ करने पर ब्रह्महत्यापापयुक्त दुराचारी इन्द्रका संहार करो ॥ ५० ॥ सावधान और, स्थिरही कल्याणके देनेवाले विधाताका भजन करो तो चतुरानन संतुष्ट हो तुमको इच्छानुसार वर देंगे ॥ ५१ ॥ तुम पहले अप्रमित प्रभावयुक्त विश्वयोनि विधाताको संतुष्ट कर। अमरत्वलाभ करनेपर उस अपराध करनेवाले शत्रुका संहार करो ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! पुत्रहत्याजनित वैरभाव मेरे मनमें सदाही विद्यमान रहता है इस कारण मैं सुखसे नहीं

तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् ॥ तपसा बलबुद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा ॥ ४९ ॥ आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ॥ जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमायुतम् ॥ ५० ॥ सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शंकरम् ॥ वांछितं स वरं दद्यात्संतुष्टश्चतुराननः ॥ ५१ ॥ तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ॥ अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ५२ ॥ वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् ॥ न शांतिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह ॥ ५३ ॥ तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः ॥ न विंदामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा ॥ आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा ॥ ५५ ॥ गंधमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् ॥ स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः ॥ ५६ ॥

सो सकता, और किसी प्रकार मुझको शान्तिलाभ नहीं हो सकती ॥ ५३ ॥ पापिष्ठ इन्द्रने मेरे तपस्वी पुत्रको निरपराध मारा है.हे वृत्र ! मैं तुमको और क्या विदित करूं.मैं दुःख सागरमें निमग्न हुआ हूं इस समय तुम मुझको उद्धार करो ॥ ५४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुर पिताके वह वचन सुनकर क्रोधयुक्त हुआ और उनकी आज्ञा ग्रहण कर तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त प्रसन्न चित्तसे चला गया ॥ ५५ ॥ अनन्तर उस गन्धमादन पर्वतपर जाय कल्याणदायिनी पुण्यप्रद मंदाकिनीमें स्नानकर तपस्या करनेके निमित्त स्थिर आसन बनाय कुशासनपर

बैठा ॥५६॥ क्रमानुसार अन्न भोजन और जलपान छोड़कर योगाभ्यासमें निरतहो स्थिर आसनपर बैठ निरन्तर विश्वस्रष्टा प्रजापतिका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ इधर देवराज इन्द्र वृत्रासुरको तपस्यामें निरत जानकर अत्यन्त चिन्तायुक्त हुए और उसकी तपस्यामें विघ्नकरनेके निमित्त अमित प्रभावयुक्त गन्धर्व्व ॥ ५८ ॥ यक्ष, पन्नग, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा और अन्यान्य देवतागणोंके दूतोंको भेज दिया ॥ ५९ ॥ वह मायावी गन्धर्व इत्यादि देवयोनि तपस्यामें विघ्न करनेके निमित्त अनेक उपायसे अनेक प्रकारकी चेष्टा और यत्न करने लगे किन्तु परम तपस्वी त्वष्टाका पुत्र अपने ध्यान योगसे किसी प्रकार विचलित न हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे

त्यक्त्वान्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः ॥ ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टःस्थिरासने ॥ ५७ ॥ मघवा तं तपस्यंतं ज्ञात्वा चिंतातुरो ह्यभूत्॥गंधर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः ॥५८॥ यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः ॥ विद्याधरानप्सरसो देव दूताननेकशः ॥५९॥ उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः ॥ न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः ॥ निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम् ॥ १ ॥ जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ तत्राऽऽजगाम तरसा हंसारूढश्च तुर्मुखः ॥ २ ॥ आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव ॥ त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ ३ ॥ तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चाऽतिकर्शितम् ॥ वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव ॥ ४ ॥

षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वृत्रासुरको दृढचित्त देखकर तपस्यामें विघ्न करनेवाले देवतागण कार्य्य सिद्धिके विषयमें निराश होगये और वहांसे निकलकर पुनर्वार अपने अपने स्थानको चले आये ॥ १ ॥ अनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुरानन ब्रह्माजीने हंसपर चढ़ उस स्थानमें ॥ २ ॥ आनकर कहा हे वृत्रासुर ! तुम सुखी होओ इस समय ध्यान त्यागकर वरकी प्रार्थना करो मैं तुमको इच्छानुसार वर दूंगा ॥ ३ ॥ हे वत्स ! तपस्यासे तुम्हारा देह अत्यन्त क्षीण हो गया है तुम्हारी

इस उत्कट तपस्याको देखकर मैं इस समय अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं तुम्हारा कल्याण हो इस समय अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुर जगत्कर्त्ता ब्रह्माके अत्यन्त स्पष्टाक्षरयुक्त अमृतके समान भरे हुए वचन सुनकर योगपरित्याग आनन्दके आँसू गिराता हुआ सहसा खड़ा हो गया ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माजीके सामने जाय विनय सहित मस्तक झुकाय उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया, और विनय नम्र हो तथा हाथ जोड उन तपस्यासे प्रसन्न वरप्रद ब्रह्माजीसे गद्गद वचन कहने लगा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करते ही अब मुझको सब देव ताओंका पद प्राप्त हुआ हे कमलासन ! मेरे मनमें एक दुष्पूरणीय वासना उपस्थित रहती है आप सर्व्वज्ञ

व्यास उवाच ॥ वृत्रस्तदाऽतिविशदां पुरतो निशम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः ॥ संत्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठत्संजातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः ॥५॥ पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातुर्बद्धांजलिः पुरत एव समाससाद ॥ प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रपन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः ॥६॥ प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् ॥ वाञ्छाऽस्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम् ॥७॥ मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ॥ वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥८॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं संप्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव ॥ उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वांछितं सफलं सदा ॥९॥ न शुष्केण नचाऽऽर्द्रेण न पाषाणेन दारुणा ॥ भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥१०॥

हैं सब ही जान सकते हैं तथापि मैं उसको कहता हूं सुनिये ॥७॥ हे नाथ ! लोहा, काष्ठ, सूखी वा गीली वस्तु और बांस तथा अन्यान्य शस्त्रसमूह द्वारा मेरी मृत्यु नहीं हो और युद्धमें मेरी वीरता अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो और मैं सैन्यसहित सब देवतागणोंसे अजय हूं ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जब वृत्रासुरने ब्रह्माके निकट इस प्रकार प्रार्थना करी तब कमलासन कुछेक हँसते हुए कहने लगे हे वत्स ! उठकर इच्छानुसार स्थानमें जाओ तुम्हारा मंगल हो तुमने जो प्रार्थना की वह तुम्हारा मनोरथ सर्वदा ही सफल होगा सूखी व गीली वस्तुसे अथवा पत्थर तथा अन्यान्य काष्ठादिद्वारा तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी यह मैंने तुम्हारे निकट सत्य ही कहा है ॥ ९ ॥ १० ॥

प्रजापति वृत्रासुरको इस प्रकार वर देकर ब्रह्मलोकको चले गये वृत्रासुर भी वर प्राप्तकर प्रसन्न हो घरको चलागया ॥ ११ ॥ अनन्तर वृत्रासुरने पिताके निकट इस वर प्राप्त करनेकी वार्त्ता निवेदन की, विश्वकर्म्मा पुत्रके वरप्राप्त करनेकी वार्त्ता सुन प्रसन्न सन्तुष्ट होकर कहने लगे॥ १२ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारा मंगल हो तुममेरे परम शत्रु शतक्रतुको मारो उस त्रिशिराके मारनेवाले पापात्मा इन्द्रको मारकर फिर इस स्थानमें आओ ॥१३॥ तुम संग्रामजीत देवताओंके अधीश्वर होकर मेरी पुत्रजनित अत्यन्त मनोव्यथा दूर करो ॥ १४ ॥ पिता जब जीवित हो तब उनकी आज्ञा पालन, मृत्यु दिवस श्राद्ध दिनमें भोजनदान और गयामें पिण्डदान इन तीन कार्य्योंसेही पुत्रका पुत्रत्व होता है ॥ १५ ॥

इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् ॥ वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृह ययौ॥११॥शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः ॥ त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥१२॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम ॥ हत्वा गच्छ त्रिशिरसो हंतारं पाप संयुतम् ॥१३॥ भव त्वं त्रिदशाधीशः संप्राप्य विजयं रणे ॥ ममाधिं छिंधि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवम् ॥१४॥ जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरि भोजनात् ॥ गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥ १५ ॥ तस्मात्पुत्र ममाऽत्यर्थं दुखं नाशितुमर्हसि ॥ त्रिशिरा मम चित्तात्तु नाऽपसर्पति कर्हिचित् ॥१६॥ सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः ॥ अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पुत्रः परमदुर्जयः ॥ रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥ १८ ॥ रणदुंदुभिनिर्घोषं शंखनादं महाबलम् ॥ कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९ ॥

अतएव हे पुत्र ! तुम मेरे वचनकी रक्षा करके मेरा दुःख दूर करनेमें यत्नवान् होओ तुम निश्चय ही जानो कि त्रिशिरा मेरे मनसे कभी दूर नहीं होता ॥ १६ ॥ वह त्रिशिरा सुशील सत्यवादी तपस्वी और वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य था हाय ! मेरे उसी गुणवान् प्रिय पुत्रको पापबुद्धि इन्द्रने विना अपराध ही मारा है ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह अत्यन्त दुर्ज्जय वृत्रासुर उनका यह वचन सुन रथपर चढ़कर शीघ्र पिताके घरसे निकला ॥ १८ ॥ उस मदसे गर्वित असुरने जब अपनी महती सेनाके सहित रणके उद्देशसे गमन किया तब रणदुन्दुभिका

शब्द और शंखनाद होनेलगा ॥१९॥ वह नीतिसम्पन्न वृत्रासुर चलनेके समय अपनी सेनासे कहने लगा आज देवताओंके राजा इन्द्रको मारक अकण्टक देवताओंका राज्य ग्रहण करूंगा ॥२०॥ हे राजन् ! असुरराज यह कह सैन्य समूहसे परिवृत हो महान् सेनाके शब्दसे अमरावतीको भय उत्पन्न कराता हुआ शीघ्र निकला ॥२१॥ हे भारत ! देवराज इन्द्र उसको आता हुआ जान भयसे संत्रस्त हो शीघ्र सेनागणोंका उद्योग करके कहने लगे ॥२२॥ और शीघ्र ही सब लोकपालगणोंको बुलाय युद्धके निमित्त प्रेरण कर स्थिति करने लगे ॥२३॥ वह महाद्युति शत्रु-तापन पाकशासन (इन्द्र) गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीके समान सेना विशेष) बनाय अवस्थिति करने लगे इधर शत्रुओंका मारनेवाला वृत्रासुर वेग-

निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन् ॥ हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकंटकम् ॥२०॥ इत्युक्त्वा निर्जगामाऽऽशु स्वसैन्य परिवारितः ॥ महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम् ॥२१॥ तमागच्छंतमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः ॥ सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥२२॥ सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिंदमः ॥ युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः॥२३॥गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः॥तत्राऽजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः॥२४॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत्॥ वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः॥२५॥ एवं परस्परं युद्धे संदीप्ते भयदे भृशम्॥आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम्॥२६॥ तोमरैर्भिंदिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्वमरायुधैः ॥२७॥ एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे ॥ शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ २८ ॥ अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो पुत्रः शतक्रतुम् ॥ मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २९ ॥

सहित आये उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥२४॥ इसके उपरान्त देवता और दानवगणोंका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ विजयकी इच्छा करनेवाले वृत्रासुर और इन्द्र घोरयुद्ध करने लगे ॥ २५ ॥ इस प्रकार उस भयंकर युद्धकी अग्निको प्रदीप्त हुआ देख देवतागण विमर्ष और दैत्यगण हर्षको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ देवता और दैत्यगण तोमर, भिन्दिपाल, खड्ग, परशु, पट्टिश इत्यादि अपने अपने शस्त्रोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥२७॥ इसी प्रकार दारुण लोमहर्षण युद्ध उपस्थित हुआ. क्रोधयुक्त वृत्रासुरने इन्द्रको सहसा ग्रहण कर लिया ॥ २८ ॥ और कवच तथा

वस्त्रादि आवरणरहित कर मुखमें डाल ग्रासपूर्वक पहलेकी शत्रुता स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे स्थिति करने लगा ॥ २९ ॥ वृत्रासुरके इन्द्रका ग्रास करनेपर देवतागण अत्यन्त संत्रस्त और कातर हो हा इन्द्र!हा इन्द्र!कह बारबार चीत्कार करने लगे ॥ ३० ॥ देवतागण इन्द्रको कवचादिरहित और वृत्रासुरके मुखमें स्थित जानकर दीन और व्यथितमन हो बृहस्पतिजीको प्रणामकर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! आप हमारे परमगुरु हैं इस समय क्या कर्त्तव्य है ? देवतागणोंकी रक्षा करनेपरभी वृत्रासुरने इन्द्रको ग्रास किया है ॥ ३२ ॥ हम सभी हीन पराक्रम हैं अतएव हम इन्द्रके विना क्या करेंगे ? हे विभो ! आप इन्द्रको छुडानेका शीघ्र विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवता-

शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण संभ्रांता निर्जरास्तदा ॥ चुक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥ अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः ॥ बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः ॥ ३१ ॥ किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः ॥ शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतांतरैः ॥३२॥ विना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः ॥ अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं कर्तव्यं सुरा क्षितो मुखमध्येऽस्ति वासवः ॥ वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठांतरे रिपोः ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ देवाश्चितातुराः सर्वे तुरासाहं तथा कृतम् ॥ दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये ॥ ३५ ॥ असृजंत महासत्त्वां जृंभिकां रिपुनाशिनीम् ॥ ततो विजृंभमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥ ३६ ॥ विजृंभमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवाप तत् ॥ स्वान्यंगान्यपि संक्षिप्य निष्क्रांतो बलसूदनः ॥ ३७ ॥

गणो ! देवराज इन्द्र वृत्रासुरके मुखमें पड़े हैं वृत्रासुरने उनको अवसन्न किया है किन्तु वह जीवित रहकरभी शत्रुके कोष्ठमें स्थित हैं अतएव जीवितावस्थामें निकालनेकी चेष्टा करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवराज इन्द्रको उस अवस्थामें देखकर देवतागण अत्यन्त चिन्तातुर हुए और शीघ्र इन्द्रको छुडानेके निमित्त भलीभांति विचारपूर्वक यत्न करने लगे॥ ३५ ॥ अनन्तर उन्होंने महासत्व सम्पन्न वैरिविनाशिनी जँभाईको उत्पन्न किया तब वृत्रासुरको जँभाई लेनेपर उसका मुख खुल गया ॥ ३६ ॥ और बलविनाशन इन्द्र उसी अवकाशमें

अपने सम्पूर्ण अंग सकोडकर जँभाई लेते हुए वृत्रासुरके मुखसे निकल पडे ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! जबहीसे जँभाई लोकके बीच प्राणिगणोंके देहमें स्थित रहती है तदनन्तर देवतागण इन्द्रको निकला हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३८॥ इस प्रकार इन्द्रके निकलनेपर फिर वृत्रासुर और इन्द्रका १०००० वर्ष पर्यन्त दारुण लोमहर्षण भयंकर संग्राम हुआ ॥ ३९ ॥ इधर सम्पूर्ण देवतागण युद्धको उपस्थित हुए, उधर विपुलविक्रम त्वष्टनन्दन वृत्रासुर संग्राम करने लगा ॥ ४० ॥ वृत्रासुर जब वरके मदसे मत्त हो रणमें वार्द्धित हुआ तब इन्द्र उसके तेजसे धर्षित

ततःप्रभृति लोकेषु जृंभिका प्राणिसंस्थिता ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम् ॥ ३८ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभय प्रदम् ॥ वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥३९॥ एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ॥ एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत ॥४०॥ यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः ॥ पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥४१॥ विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम् ॥ विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम् ॥ ४२ ॥ जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा इंद्रपुरोगमाः ॥ गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा ॥ ४३ ॥ देवोद्यानानि सर्वाणि भुंक्तेऽसौ दानवो बलात् ॥ ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजो त्तमः ॥४४॥ विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशांपते ॥ उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा ॥४५॥ कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा ॥ गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह ॥ ४६ ॥ स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः ॥ दुःख मापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात् ॥ ४७ ॥

हो पराजित हुए ॥४१॥ अनन्तर देवराज इन्द्र युद्धमें हारकर अति व्यथित हुए, देवतालोगभी उनको हारा हुआ देखकर अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए ॥४२॥ जब इन्द्र इत्यादि सब देवतागण रणको त्यागकर भाग गये तब वृत्रासुरने शीघ्र जाकर त्रिदशालयपर अधिकार कर लिया ॥ ४३ ॥ वह दानवप्रवर बलपूर्वक सब देवोद्यान भोग करने लगा और गजराज ऐरावतको भी ले लिया ॥ ४४ ॥ उस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरने सब विमान और घोड़ोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा ॥४५॥ कामधेनु पारिजात अप्सरागण इत्यादि सब स्वर्गके रत्न ग्रहण कर लिये ॥४६॥ इधर संपूर्ण देवता स्थानभ्रष्ट

हो पर्वतके दुर्गमें वास करने लगे, वह यज्ञके भागसे वञ्चित और सुरालयसे भ्रष्ट हो अत्यन्त क्लेश भोगने लगे ॥ ४७ ॥ वृत्रासुर देवताओंके राज्यको प्राप्त हो मदके गर्वसे गर्वित हुआ, विश्वकर्माभी उस समय अत्यन्त सुखी हो पुत्रके सहित आमोद करने लगे ॥४८॥ हे भारत ! तदनन्तर देवता मुनिगणोंके सहित मिलित हो अपने हितकर विषयकी परामर्श करने लगे और क्या करना चाहिये इस विषयकी चिन्ता कर भयसे मोहित होगये ॥ ४९ ॥ अनन्तर देवता इन्द्रको संग ले कैलासाचलमें महादेवके सामने गये और अत्यन्त विनीत तथा हाथ जोडकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहने लगे॥ ५० ॥ हे देवदेव महादेव ! आप महेश्वर और करुणारसके अपाररुद्रस्वरूप हैं हम वृत्रासुरसे हारकर अत्यन्त डरे हैं

वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः ॥ त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥४८॥ अमंत्रयन्हि तं देवा मुनिभिः सह भारत ॥ किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिंत्य भयमोहिताः ॥ ४९ ॥ जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः ॥ महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्रांजलयो भृशम् ॥५०॥ देवदेव महादेव कृपासिंधो महेश्वर ॥ रक्षाऽस्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणाऽतिपराजितान् ॥५१॥ गृहीतं देवसदनं तेन देवबलीयसा ॥ किं कर्तव्यमतः शंभो ब्रूहि सत्यं शिवाऽद्य नः॥५२॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर ॥ दुःखस्य नाऽधिगच्छामो विनाशोपायमीश्वर ॥५३॥ साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे ॥ वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो ॥५४॥ शिव उवाच ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम् ॥ गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिन्तयामो वधोद्यमम् ॥५५॥

आप हमारी रक्षा कीजिये ॥५१॥ हे शम्भो ! आप सबका मंगल करते हैं अतएव उस बलवान् दानवने स्वर्गका राज्य छीन लिया है इस समय हमको क्या करना चाहिये? वह आप सत्य कहिये ॥ ५२ ॥ हे महेश ! हम स्थानमें भ्रष्ट होकर क्या करैं कहां जायँ? हमको तो दुःख दूर होनेका कोई उपाय नहीं दीखता ॥ ५३ ॥ हे भूतभावन ! हम अत्यन्त व्यथित हुए हैं, आप हमारी सहायता कीजिये हे दयामय ! वरदानके बलसे वह वृत्रासुर मदमत्त हुआ है, आप उसको मारिये ॥ ५४ ॥ शंकरने कहा हे देवतागणो ! हम ब्रह्माको आगेकर हरिके घर जाय उनके

सहित उस दुर्वृत्त वृत्रासुरके वधकी चिन्ता करेंगे ॥५५॥ जनार्दन वासुदेव सब कार्य्योंमें समर्थ हैं. बलवान् छलज्ञ अत्यन्त बुद्धिमान् दयानिधि और सब जनोंके शरण देनेवाले हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवके विना कार्य्य सिद्धिकी सम्भावना नहीं है, अतएव सर्वकार्य सिद्धिके निमित्त हम सबको उसी स्थानमें जाना चाहिये ॥५७॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रादि देवतागण शंकर और ब्रह्माके सहित इसप्रकार स्थिरकर सबही भगवान्के निवासमें जाय उन सर्वजन शरण्य भक्तवत्सल॥५८॥ जगद्गुरु हरिका वेदोक्त पुरुषसूक्तसे स्तव करने लगे॥५९॥तब वह कमलापति जग-

सशक्तश्च च्छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः ॥ शरण्यश्च दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः ॥ ५६ ॥ विना तं देवदेशं नार्थसिद्धिर्भ विष्यति ॥ तस्मात्तत्र च गंतव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशंकरः ॥ जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः ॥ संमान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरः स्थितः ॥ ६० ॥ किमा गताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः ॥ कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम् ॥ चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्रांजलयस्तथा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ प्राह प्रेमभरो दूभ्रांतान्माधवो मेदिनीपते ॥ १ ॥

त्प्रभुजनार्दन उनके प्रत्यक्ष हुए और देवतागणोंका सन्मानकर उनके संमुख स्थित हो कहने लगे॥६०॥ हे लोकेश गण ! तुम शंकर और ब्रह्माके सहित किसकारण आये हो हे सुरसत्तमगण ! तुम्हारे आनेका क्या कारण है वह मुझसे कहो ? ॥ ६१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता हरिके यह वचन सुनकर रमापतिसे कुछ न कहसके और प्रायः सबही चिन्तायुक्तहो हाथ जोडे खड़े रहे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! सर्वार्थतत्वके जाननेवाले

लक्ष्मीपति नारायण देवताओंको चिन्तातुर और अत्यन्तअनुगत देखकर उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे सुरगण ! तुम मौनभाव अवलम्बन क्यों कर रहे हो ? तुम मेरे पास किस कारण आयेहो ? अब अच्छा हो अथवा बुरा हो शीघ्र कहो क्योंकि मैं उसको सुनकर फिर तुम्हारेक्लेश दूर करनेका यत्न करूंगा ॥२॥ देवताओंने कहा हे प्रभो ! त्रिभुवनमें आपसे क्या छिपा है ? आप सब कार्य जानते हैं तो किस कारण हमसे वारंवार पूछते हैं ॥ ३ ॥ पूर्वकालके समय आपने वामनरूप धारणकर तीन चरणोंसे त्रिभुवन आक्र मण किया था और बलिराजाको बांधकर इन्द्रको देवाधिकार दिया था ॥ ४ ॥ हे विभो ! आपनेही दैत्यगणोंको मोहित कर अमृत हरण किया था और आपनेही उनको शमनभवनमें

विष्णुरुवाच ॥ किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवंतु कारणं सुराः ॥ सदसद्वाऽपि यच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते ॥ सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ३ ॥ त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ वामनं वपुरास्थाय क्रांतं त्रिभुवनं पदैः ॥४॥ अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः ॥ त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे ॥ ५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसंमतम् ॥ तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति ॥६॥ अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना ॥ बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केन च्छलेन वा ॥७॥ उपायाः खलुः चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः ॥ ८ ॥

प्ररण किया था अतएव हे देव ! आपही देवताओंके सर्वप्रकार विपद् निवारणके एकभाव प्रभु रहे हैं ॥ ५ ॥ विष्णु--देवताओंके यह वचन सुनकर कहने लगे हे सुरगण ! भय नहीं है जिससे वह दैत्यवर विनष्ट होगा मुझको वही एक सर्व सम्मत उपाय विदित है. इस समय वही तुम्हारे निकट कहता हूं सुनो, हे देवताओ ! इससेही तुमको सुख प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ॥६॥ देखो बुद्धि बल अर्थ वा छलसे अथवा अन्य जिस किसी प्रकारसे हो तुम्हारा हित करना मुझको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ७ ॥ तत्त्वके जाननेवाले पंडितगणोंने मित्रोंके विशेष कर शत्रुगणोंके

प्रति प्रयोग करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड यह चार प्रकारके उपाय निर्द्धारित किये हैं ॥ ८ ॥ तपस्यासे आराधित होकर ब्रह्माजीने उसको वर दिया है और उसी वरके प्रभावसे वह दुर्ज्जय हुआ है ॥ ९ ॥ विशेष कर विश्वकर्म्माने अग्निसे उसको उत्पन्न किया है अतएव इन सब कारणोंसेही वह परपुरञ्जय वृत्रासुर अत्यन्त बलवान् हो सब जीवगणोंको अजय हुआ हो ॥१०॥ हे सुरगण ! पहले सामप्रयोग इसके उपरान्त प्रतारणके विना इस शत्रुको जीतना कठिन है, अतएव पहले लोभ दिखाय अपने वशीभूत कर तदनन्तर उसका विनाश करना उचित है ॥ ११ ॥ इस समय जिस स्थानमें वह बलवान् वृत्रासुर वास करता है पहले उसी स्थानमें गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित जाय उसके संग

ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽऽराधितेन च ॥ दुर्जयत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥ ९ ॥ अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः ॥ ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरंजयः ॥ १० ॥ दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना साम प्रतारणम् ॥ प्रलोभ्य वशमानेयो हंतव्यस्तु ततः परम् ॥ ११ ॥ गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्राऽसौ बलवत्तरः ॥ साम तस्य प्रयुंजध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥ १२ ॥ संगम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि ॥ मित्रत्वं च समाधाय हंतव्यः प्रबलो रिपुः ॥ १३ ॥ अदृश्य संप्रवेक्ष्यामि वज्रस्य वरायुधम् ॥ साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये ॥ मरणं विबुधा स्तस्य नान्यथा सम्भविष्यति ॥१५॥ गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः॥इंद्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः॥१६॥

सन्धि स्थापन करो,तदनन्तर उसका पराजय करो ॥ १२ ॥ वहां जानेपर वह जो कहे उसी नियमानुसार शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करो पहले विश्वास उत्पन्न करो तदनन्तर बन्धुत्व स्थापन करो फिर यथासमयमें उस प्रबल शत्रुको मारो ॥ १३ ॥ हे सुरगण ! मैं भी इन्द्रके उत्कृष्ट आयुध वज्रमें अदृश्यभावसे प्रवेश कर यथासमयमें उनकी सहायता करूंगा ॥ १४ ॥ देखो ! तुम समयकी प्रतीक्षा करो सम्यक् प्रकार उसकी आयुका कालशेष होगा, नहीं तो किसी प्रकार उसकी मृत्यु नहीं होगी ॥१५॥ इस समय गन्धर्व और ऋषिगणोंके सहित उस असुरके निकट जायकर, कपटतापूर्वक

केवल वचनसे उसके संग मित्रत्व स्थापन करो ॥ १६ ॥ जब उसको विश्वास उत्पन्न होजाय तबहीं प्रतारण करनी चाहिये, मैं दृढ आच्छादित वज्रमें गुप्तभावसे प्रविष्ट हूंगा ॥ १७ ॥ इन्द्र जब उसको विश्वस्त जान सके तबहीं उस वज्रके प्रहारसे उसका विनाश करें अन्यथा किसी प्रकार उसको नहीं मार सकेंगे देवराज विश्वासघातजनित पापको इस समय पीछेकर ॥ १८ ॥ मेरी सहायतासे उस पापात्मा असुरको वज्रसे मारें. देखो शठ शत्रुके प्रति शठताचरण दोषका कारण नहीं होता ॥ १९ ॥ विशेषकर शठताके विना केवल वीरधर्म्मसे बलवान् शत्रु कभी नहीं मारा जाता पूर्वमें मैंने भी वामनरूप धारणकरके बलिको ॥ २० ॥ और मोहिनी वेशसे सब दैत्यगणोंको वंचित किया है अतएव

यथा स याति विश्वासं यथा कार्यं प्रतारणम् ॥ गुप्तोऽहं संप्रवेक्ष्यामि पविं संछादितं दृढम् ॥ १७ ॥ विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा ॥ विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः ॥ १८ ॥ मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम् ॥ न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः ॥१९॥ नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते ॥ वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वंचितो बलिः ॥ २० ॥ कृत्वा च मोहिनी वेषं दैत्याः सर्वेऽपि वंचिताः ॥ भवंतः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ २१ ॥ गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमंत्रैः सुरोत्तमाः ॥ साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति ॥२२॥ वंदामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् ॥ सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥ २३ ॥ इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे ॥ मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम् ॥ २४ ॥

बलवान् शठ शत्रुके प्रति शठताचरण कदापि दोषका विषयक नहीं जानना. हे देवगण ! इस समय तुम सब एकत्र मिलित होकर स्तोत्र मंत्रादिसे देवी भगवतीकी ॥ २१ ॥ आराधना कर उनकी शरणागत होओ तो वह योगमाया तुम्हारी सहायता करेंगी ॥ २२ ॥ हे देवगण ! जो स्वयं कामनारूपिणी होकर भक्तगणोंकी सब कामना पूर्ण करती है जिनकी आराधनासे सब कार्योंकी सिद्धि होती है पूतात्मा योगीगणोंके अतिरिक्त उनको कोई प्राप्त नहीं करसकता मैं भी उन्हीं सत्वगुणस्वरूपिणी प्रकृति रूपिणी परात्परा देवीकी वंदना करता हूं ॥ २३ ॥ अतएव इंद्र भी उनकी

आराधना करके निश्चय रणमें शत्रुका संहार करनेमें समर्थ होंगे. कारण कि, वह मोहजननी महामाया पुजित होकर उस दानवको मोहित करेंगी ॥ २४ ॥ वृत्रासुरकी मायासे मोहित होनेपर इंद्र उसको अनायास ही मारनेमें समर्थ होंगे इसमें सन्देह नहीं. अधिक क्या उन परात्परा अम्बिकाके प्रसन्न होनेपर सर्व कार्य्यकी सिद्धि होगी ॥२५॥ वह अन्तर्य्यामिस्वरूपिणी और सब कार्य्योंका कारण है उनकी आराधनाके विना किसीको भी ऋद्धिकी संभावना नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरसत्तमगण ! शत्रुविनाशके निमित्त परम आदर सहित सात्विक भावसे उन्हीं विश्वजननी प्रकृति देवीकी आराधना करो ॥ २७ ॥ देखो पूर्वमें मैंने पांच हजार वर्ष अत्यन्त दारुण युद्धकर मधु कैटभ नामक दोनों

मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति ॥ प्रसन्नायां परांबायां सर्वं साध्यं भविष्यति॥२५॥नो चेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्याऽपि भविष्यति ॥ अंतर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा ॥२६॥ तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः ॥ भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः ॥ २७ ॥ पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् ॥ पंचवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ स्तुता मया तदाऽत्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा ॥ मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥ २९ ॥ विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ ॥ तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥३०॥ सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः ॥ एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३१ ॥ जग्मुस्ते मेरुशिखरं मंदारद्रुममंडितम् ॥ एकांते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः ॥३२॥

असुरोंको संहार किया था ॥ २८ ॥ तब मैंने उन्हीं महामाया पराप्रकृतिकी स्तुति करी थी, इससे ही उन्होंने प्रसन्न होकर इन दोनों असुरोंको मोहित किया था इससे ही यह मदगर्वित महाबाहु दोनों असुर प्रतारित हुए. कारण कि, मैं छलपूर्वक उन भयंकर दोनों दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ हुआ था अतएव हे सुरगण ! तुम लोग भी भक्ति भावसे उसी प्रकार पराप्रकृतिकी आराधना करो ॥ २९ ॥ ३० ॥ तो वह भली भाँतिसे तुम्हारा कार्य्य सिद्ध करेंगी.हे महाराज ! प्रभावशाली विष्णुके देवतागणोंको इस प्रकार बुद्धिप्रदान करनेपर ॥ ३१ ॥ उन्होंने मन्दारतरुसे शोभायमान सुमेरुके शिखरमें गमन किया और एकान्तमें उपस्थित रहकर जप और तपस्यामें निरत तथा ध्यानपरायण होकर ॥ ३२ ॥

उन सृष्टिस्थिति संहार कारिणी भक्तगणोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाली संसारका क्लेश नाश करनेवाली जगज्जननी जगद्धात्रीका स्तव करने लगे ॥३३॥ देवता बोले हे परब्रह्म स्वरूपिणि देवि ! आप दीनदुःखी प्राणीगणोंकी आधिव्याधि विनाश करती हैं इस कारण हमने आपके चरण कमलोंकी शरण ग्रहण की। हे भगवति ! हम वृत्रासुरसे समरमें पराजित होकर अत्यन्त सन्तप्त और पीड़ित हुए हैं, आप इस समय हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये और हमारी रक्षा कीजिये ॥३४॥ आप ही सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं हम भी इस शत्रुसंकटमें पतित हुए हैं अतएव इस समय हमारी पुत्रके समान रक्षा कीजिये.हे मातः ! त्रिभुवनमें आपसे कुछ नहीं छिपा है हम असुरगणोंकी प्रतापरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हुए हैं अतएव

तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ भक्तकामदुघामंबां संसारक्लेशनाशिनीम् ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवि प्रसीद परि पाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च ॥ दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे प्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलं शरणं सदैव ॥ ३४ ॥ त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्पुत्रानिवातिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ॥ मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ॥ कुर्वंति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभंगचालनवशाद्विहरंति कामम् ॥ ३६ ॥ माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ॥ कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७ ॥

आप हमारी किस कारण उपेक्षा करती हैं ॥ ३५ ॥ हे जननि ! आपही इस त्रिभुवन मण्डलकी सृष्टिस्थिति और संहार करती हैं ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आपकी ही इच्छामात्रसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण कार्य्य सम्पादन करते हैं.हे जननि!वह स्वाधीन नहीं हैं आपके ही भ्रूभङ्गसे परिचालित होकर इच्छानुसार विहार करते हैं ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके अपराधसे अपराधी होनेपर भी माता दीन पुत्रगणकी क्लेशसे रक्षा करती है. हे जननि ! आपने ही इस रीतिकी रचना करी है तो हे दयामयि ! किस कारणसे निरपराध और अपने चरणकमलोंकी शरणागत जानकर भी हमारी

रक्षा नहीं करती?॥३७॥हे देवि ! यदि आप समझती हैं कि,यह जब मेरे अनुग्रहसे प्राप्त हुआ ऐश्वर्य भोग करेंगे तो उसमेंही अत्यन्त आसक्त रहकर मेरे प्रति भक्ति करना एकबार ही भूल जाँयगे.अतएव उस समय यह मेरे करुणा कटाक्षके वशीभुत नहीं हो सकेंगे यद्यपि यह सत्य है किन्तु हे मातः ! पुत्रके प्रति जननीका इस प्रकार भाव कहीं भी दिखाई नहीं देता अतएव हम सदाही आपकी करुणाकटाक्षके पात्र हैं इसमें अत्र सन्देह नहीं है ॥३८॥और एक बात है कि,आपकी आराधना त्यागकर जिस ऐश्वर्य भोगमें निमग्न होंगे इस विषयमें हमारा कोई भी दोष बोध नहीं होता क्योंकि आपने जो मोहकी रचना कर रक्खी है वह मोह अपना प्रभाव प्रकाश करके हमको मोहित कर रखता है. हे जननि ! आप स्वभावसे

नूनं मदंघ्रिभजनातपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ॥ नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा ॥३८॥ दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ॥ मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ नस्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न ॥३९॥ पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाऽऽजौ ॥ अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः ॥ ४० ॥ शुंभस्तथाऽति बलवाननुजो निशुंभस्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च॥वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथाऽसौ॥४१॥त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः संतापितानतितरां भयविह्वलांश्च ॥ नाऽन्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहंता यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या ॥४२॥

ही करुणामयी हैं अतएव जानकर भी किस कारण हमारे प्रति दया प्रकाश नहीं करतीं ॥३९॥ हे देवि ! आपने पूर्वमें हमारे निमित्त ही सब लोकोंको भयावह बलवान् दैत्यपति महिषासुरका संग्राममें विनाश किया है अतएव इस समय किस कारण इस भयावह वृत्रासुरको नहीं मारतीं ? ॥४०॥ आपने ही अत्यन्त बलशाली शुम्भ और तदनुज निशुम्भ नामक दोनों भ्राताओंका संहार किया है और अनुगामी अन्यान्य दैत्यगणोंको भी मारा है.हे करुणामयि!इस समय उसी प्रकार खल और प्रबल वृत्रासुरका विनाश कीजिये. हे मातः! जिससे वह फिर कुछ भी प्रभाव प्रकाश न करसके आप उसी प्रकार इस मदमत्त वृत्रासुरको मोहित कीजिये ॥ ४१ ॥ हम असुरगणोंके प्रभावसे अत्यन्त सन्तापित और उनके भयसे

अतिशय विह्वल हुए हैं आप हमारी रक्षा कीजिये क्योंकि आपके बिना तीनों लोकोंमें अपनी शक्तिसे देवतागणोंका क्लेश दूर करसके इस प्रकारका दूसरा मार्ग नहीं है ॥४२॥ हे मातः यद्यपि आपने वृत्रासुरके प्रति दया प्रकाशकी है तथापि जनगणोंको दुःखदायक और क्रूरस्वभाव उस असुर का शीघ्र विनाशकीजिये. हे भवानि ! अपने बाणोंसे पवित्र करके उसको पापसे उद्धार कीजिये,नहीं तो वह दुष्टबुद्धि निःसन्देहही घोरनरकमें प्रवेश करेगा. अतएव उसकेही कल्याणार्थ उसको मारना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ४३ ॥ पूर्वमें जो देवतागणोंका शत्रु था आपने उसकोही संग्रामस्थलमें अस्त्रद्वारा पवित्र कर स्वर्गस्थ नन्दनवनमें प्रेरणकिया है. हे करुणामयि ! उसके शत्रु होनेपरभी आपने क्या उसको

वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथाऽपि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च॥पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना नो चेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥४३॥ ते प्रापिता सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते ॥त्राता न किं निरयपातभयाद्द्याद्रे यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसिवृत्रम्॥४४॥ जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः॥यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किं त्वत्पादपंकजरतान्ननु पीडयेद्वा॥४५॥कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात्॥मंत्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम्॥४६॥धन्यास्त एव मनुजा हि भजंति भक्त्या पादांबुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् ॥ यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरंति मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः ॥ ४७ ॥

नरकके भयसे रक्षा नहीं करी है ? तो किस कारण इस समयभी वृत्रासुरको नहीं मारतीं ? ॥४४॥ हम निश्चयही कहते हैं कि,यह असुर आपका शत्रु है,सेवक नहीं है क्योंकि यह पापबुद्धि हमको सदाही पीडित करता है.हे जननि ! जो आपके चरणकमलोंकी सेवामें विरत हैं जो पुरुष उन देवताओंको पीडित करता है वह किसप्रकार आपका भक्त होसकता है ?॥४५॥हे मातः ! हम आपकी पूजा किसप्रकार करैं ? पुष्पादि जो कुछ पूजाके द्रव्य दिखाई देते हैं आपहीने तो वह सब बनाये हैं विशेषकर हम और मन्त्र इत्यादि पूजाके जो कुछ योग्यपदार्थ हैं वह सबही आपकी शक्तिस्वरूप हैं. अतएव हे भवानि ! हम केवलमात्र प्रणामसेही आपकी पूजा करते हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ जो संसारके नौकास्वरूप

आपके चरणारविन्दोंका भक्तिभावसे भजन करते हैं वे ही मनुष्यगण धन्य हैं. हे देवि ! जो योगीगण विषयानुराग विकार मोह त्यागकर मोक्षकी कामना करते हैं वे भी आपके उन्हीं चरणकमलोंका सदा स्मरण करके सिद्धिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ जो सब वेदोंका तत्त्व जाननेवाले और याज्ञिक हैं वह भी यज्ञके आहुतिकालके समय देवतागणोंकी तृप्तिजननी स्वाहास्वरूपिणी और पितृगणोंको परम तृप्त करनेवाली स्वधास्वरूपिणी आपकी सदाही चिन्ता करते हैं ॥ ४८ ॥ हे मातः ! आपही बुद्धि आपही कांति आपही शान्ति आपही पुरुषगणोंकी विशदार्थकारिणी प्रसिद्ध बुद्धि और आपही त्रिभुवनके सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यस्वरूप हैं. हे देवि ! जो आपका भजन करता है आप दयापूर्वक किसी प्रकार उसको

ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरंति सततं किल होमकाले ॥ स्वाहां तु तृप्तिजननीममरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥ ४८ ॥ मेधाऽसि कांतिरसि शांतिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम् ॥ सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभव त्तदा ॥ चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥ ५० ॥ पाशांकुशवरा भीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ रणत्किंकिणिकाजालरसनाबद्ध सत्कटिः ॥ ५१ ॥ कलकंठीरवा कांता क्वणत्कंकणनूपुरा ॥ चंद्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥ ५२ ॥ मन्दस्मितारविंदास्या नेत्रत्रयविभूषिता ॥ पारिजातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा ॥ ५३ ॥

यह विभवप्रदान करती हैं ॥ ४९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताओंके इस प्रकार स्तव करनेपर देवी भगवती सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित हो मनोहररूप धारण करके देवताओंके सन्मुख प्रटग हुईं ॥ ५० ॥ उनके चारों बाहु पाश अंकुश और वरदानभङ्गिमा और अभयमुद्रासे शोभायमान थे, शोभायमान कटितटमें रशना कौंधनी (बँधी हुई) किंकिणीकी कलध्वनिसे शोभित ॥ ५१ ॥ और चरणयुगल कंकण--स्थित नूपुरके शब्दसे रंजित थे उनका मधुर सुर अत्यन्त कमनीय ललाट चन्द्रखण्डसे शोभित और मस्तक उज्ज्वल रत्नोंके मुकुटसे विराजित था ॥ ५२ ॥ उनका मुखारविन्द स्मितशोभासे और कमलके समान तीनों नेत्रोंसे भूषित था, उनके अंगकी कांति पारिजात

कुसुमके समान मनोहर ॥५३॥ रक्तवर्ण अंगप्रत्यंग सब रक्तचन्दनमें रंजित और पहरनेके वस्त्रभी रक्तवर्ण थे, इस प्रकार प्रसन्नमुखी करुणाकी सागर देवी ॥ ५४ ॥ उस समय समस्तशृङ्गारवेशधारिणी बोध होती थीं हे महाराज ! अखिलब्रह्माण्डकी जननी सर्वज्ञ सर्वकर्त्री और सम्पूर्णकी अधिष्ठानस्वरूपिणी ॥ ५५ ॥ वेदान्तमतसिद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपिणी सुप्रसन्न दयामयी भगवती भुवनेश्वरी इसप्रकार देवतागणोंके सन्मुख स्थित देखकर प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ तब उन जगदम्बिकाने भी प्रणत हुए देवताओंसे कहा हे देवगण ! तुम किसकारण मेरा स्तव करतेहो वह मुझसे कहो ? देवताओंने कहा हे भगवति ! वृत्रासुर देवतागणोंको अत्यन्त दुःख देता है आप उस देवताओंके शत्रुको मोहित कीजिये ॥५७॥ हे देवि !

रक्तांबरपरीधाना रक्तचंदनचार्चिता ॥ प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा ॥ ५४ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा ॥ सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी ॥ ५५ ॥ सर्ववेदांतसंसिद्धा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम् ॥ ५६ ॥ तानाह प्रणतानंबा किं वः कार्यं ब्रुवंतु माम् ॥ देवा ऊचुः ॥ मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम् ॥ ५७ ॥ यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम् ॥ आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदाऽन्विताः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे देवीमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ " जग्मुः सर्वे च संमंत्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ॥ " ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलंतमिव तेजसा ॥ १ ॥

जिससे वह देवताओंका विश्वास करै आप उसको उसीप्रकार मोहित कीजिये और जिससे वह परमशत्रु विनष्ट हो हमारे अस्त्रमें उसी प्रकार बलप्रदान कीजिये ॥ ५८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवीभगवती तथास्तु कहकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगईं, देवतागण भी आनन्दित हो घरको चले गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तपप्रभावयुक्त सम्पूर्ण ऋषि और देवतागण देवी भगवतीके निकट इसप्रकार वर प्राप्तकर सब एकत्र मिलित हो परामर्श करने

लगे, और इसके उपरान्त वृत्रासुरके उत्तम आश्रममें जाकर देखा कि वृत्रासुर अपने तेजसे प्रज्वलित ॥१॥ त्रिभुवन भस्म करने और अमरगणोंको ग्रास करनेके निमित्त ही मानो विराजमान है तब ऋषिगण उसके निकट जाकर ॥ २ ॥ देवतागणोंके कार्य्यसिद्धिके निमित्त सामयुक्त रसात्मक प्रियवचन उससे कहनेलगे ऋषि बोले हे महाभाग वृत्र ! सम्पूर्ण लोकही तुमसे भय करते हैं ॥ ३ ॥ तुमने विश्व ब्रह्माण्ड संपूर्ण स्थलोंमेंही अपना अधिपत्य फैलाया है, किन्तु इन्द्रके साथ तुम्हारी जो शत्रुता है उससे तुम्हारे सुखमें विघ्न होता है ॥ ४ ॥ इसमें सन्देह नहीं इस समय यह वैर तुम दोनोंकोही अत्यन्त चिन्ताकी वृद्धि करता है इसकारण यह अत्यन्त दुःखदायक है तुम भी सन्तुष्ट हो सोनेमें समर्थ नहीं होते और

धक्ष्यंतमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसंतमिव चामरान् ॥ ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ॥ २ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयंकर ॥ ३ ॥ व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्मांडमखिलं किल ॥ शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम् ॥४॥ युवयोर्दुःखदं कामं चिंतावृद्धिकरं परम् ॥ न त्वं स्वपिषि संतुष्टो न चापि मघवा तथा ॥५॥ सुखं स्वपिति चिंतार्तो द्वयोर्थद्वैरिजं भयम् ॥ युवयोर्युध्यतोः कालोऽप्यतीतस्तु महानिह ॥६॥ पीड्यंते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥७॥ न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः ॥ संग्रामरसिकाःशूराःप्रशंसंति न पंडिताः ॥ ८ ॥ युद्धं शृङ्गारचतुरा इंद्रियार्थविघातकम् ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥

इन्द्रभी सुखसे नहीं सो सकते ॥५॥ क्योंकि तुम दोनोंकेही मनमें वैरका भय सदा जागरित रहता है और देखो तुम्हारे युद्धको समाप्त हुए बहुत काल व्यतीत हुआ ॥ ६ ॥ किन्तु देवता असुर और मनुष्य इत्यादि प्रजावर्ग सबही पीड़ा पाते हैं, इस संसारमें सुखही जीवगणोंको ग्रहणकरने योग्य है ॥७॥ यही सनातन मर्य्यादा जाननी चाहिये परन्तु जो शत्रुता करता है उसको कभी सुख नहीं होता यह पंडितगणोंने भलीभांति निश्चय किया है संग्रामरसिक शूरगणही युद्धकी प्रशंसा करते हैं किन्तु शांति परायण ॥८॥ शृङ्गारचतुर पंडितगण कभी इन्द्रियसुखके विनाशक युद्धकी प्रशंसा नहीं करते वरन् वह कहते हैं कि शाणित (तीक्ष्ण पैने) शरादिकी बात दूर रहे सामान्य पुष्पादिसे भी युद्ध न करैं ॥ ९ ॥

और देखो युद्धमें विजय प्राप्त करनेके विषयमें संदेह होता है किंतु बाणकी ताडना निश्चयही होती है हे दैत्यराज ! यह संपूर्ण विश्व दैवकेही आधीन है अतएव जयपराजयभी ॥१०॥ दैवके आधीन जानकर युद्ध करना कभी उचित नहींहै, उपयुक्तकालमें स्नान भोजन उत्तम शय्यापर शयन ॥ ११ ॥ और सेवानिरत पतिव्रता भार्या इन कई एकको संसार सुखका साधन जानना चाहिये और युद्धमें केवल बाण वृष्टि ॥१२॥ तथा उग्रतर खड्गपात होता है अतएव इनमें क्या सुख है बरन् इससे शत्रु सुखही होता है यदि कहो मुनिगण कहते हैं कि, संग्राममें मरण होनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१३॥ वह केवल प्रलोभका प्रवर्तक वचनमात्र है वस्तुतः उससे कुछभी फल नहीं और यदि देह छेदन कर वेदनाको

युद्धे विजयसंदेहो निश्चयं बाणताडनम्॥दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ॥१०॥दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन॥ कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥ ११ ॥ परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् ॥ किं सुखं युध्यतः संख्ये बाण वृष्टिभयंकरे ॥ १२ ॥ खड्गपातातिरौद्रे च तथाऽरातिसुखप्रदे ॥ संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥ १३ ॥ प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम् ॥ छित्वा देहं व्यथां प्रप्य शृगालकरटादिभिः ॥ १४ ॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वांछति मंदधीः ॥ सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥१५॥ अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरंतरम् ॥ वयं च तापसाः सर्वे गंधर्वाश्च निजाश्रमे ॥१६॥ सुखवासं गमिष्यामः शांते वैरेऽधुनैव वाम् ॥ संग्रामे युवयोर्धीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥ १७ ॥

प्राप्त हो और शृगाल काकादिको अपने शरीरका मांस भोजन कराय ॥१४॥अन्तमें सुख प्राप्तही हो तो बुद्धिमान्की बात दूर रहे कौन मन्दबुद्धि उसकी इच्छा करता है. अतएव हे वृत्र ! इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाकाल मित्रता हो ॥ १५ ॥ इससे तुम और इन्द्र सदा सुख प्राप्त कर सकोगे. विशेषकर यदि तुम्हारी शत्रुता शान्त हो जायगी तो हम सब तापसगण और गंधर्वगण अपने अपने आश्रममें ॥१६॥ सुखपूर्वक वास करेंगे इसमें संदह नहीं. हे वीर ! तुम्हारे संग्रामके सदाही विद्यमान रहनेसे ॥ १७ ॥

मुनिगण, गंधर्वगण, किन्नरगण और समस्त नरगण दिनरात पीडाको प्राप्त होते हैं. हम वनवासी मुनिगण संपूर्ण शांतिकाम पुरुषोंके सदाही सुख निमित्तही तुम्हारे बन्धुत्वकी इच्छा करते हैं॥१८॥तुमको और इन्द्रको तथा समस्त जीवगणोंको सुख प्राप्त हो यही हमारी एकान्त वासना है. हे वृत्र ! तुम्हारे संमिलनमें हम मध्यस्थ हैं ॥१९॥ हम इस विषयमें शपथ कराकर परस्परके प्रिय कार्यमें दोनोंको नियोजित करेंगे तुम जिस प्रकार कहोगे इस समय इन्द्र तुम्हारे सामने इसी प्रकार शपथ कर ॥ २० ॥ तुम्हारे चित्तमें प्रीति उत्पन्न करेंगे तुम निश्चयही जानना कि सत्यके ऊपर

पीड्यन्ते मुनयः सर्वे गंधर्वाः किन्नरा नराः ॥ सर्वेषां शांतिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥१८॥ मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवंतु सुखं किल ॥ मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥ १९ ॥ शपथं कारयित्वाऽत्र योजयामो मिथः प्रियम् ॥ शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः ॥ २० ॥ चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु सांप्रतम् ॥ सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः ॥ २१ ॥ तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वात्यथ ॥ उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुंचति ॥२२॥ तस्मात्सत्येन सख्यं वां भवत्वद्य यथासुखम् ॥ एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम् ॥ २३ ॥ युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च ॥ व्यास उवाच ॥ महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥ २४ ॥ अवश्यं भगवंतो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ भवंतो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम् ॥ २५ ॥

ही पृथ्वी प्रतिष्ठित है सत्यहीके कारण सूर्य उदय होते हैं ॥ २१ ॥ सत्यहीके बलसे वायु सदा चलता है और सत्यहीके कारण अपार समुद्र अपनी वेलारूप मर्य्यादाको कभी अतिक्रम नहीं करता ॥ २२ ॥ अतएव सत्यहीसे इस समय तुम्हारा बन्धुत्व यथा सुखसे तुम मित्रता पाशसे बद्धही एकत्र शयन एकत्र क्रीडा एकत्र जलकेलि और एकत्र सुखसे बैठो ॥२३॥ यह तुमको मित्रतापूर्वक करना चाहिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! महायति वृत्रासुर महर्षिगणोंका वचन सुनकर कहने लगा ॥ २४ ॥ हे ऋषिगण ! आप ज्ञानादि सम्पन्न और तपस्वी हैं अतएव हमारे

माननीय हैं आप मुनि हैं.सुतरां कही भी मिथ्या नहीं कहते ॥२५॥ आप सदाचार और शान्त हैं अतएव छलका कारण नहीं जानते. वैरी,शठ, लम्पट, बुद्धिरहित कीर्तिशून्य और निर्लज्ज इन सब ॥ २६ ॥ पुरुषोंके सहित विशेषकर शत्रुके सहित मित्रता स्थापन करना बुद्धिमान्‌गणोंका कर्त्तव्य नहीं है यह दुराचार इन्द्र निर्लज्ज शठ और लम्पट तथा ब्रह्मघातक है ॥ २७ ॥ अतएव इसके समान पुरुषोंके प्रति विश्वास करना उचित नहीं है. आप साधु और सर्व्व सद्‌गुण सम्पन्न हैं अतएव आपकी मति पराये अनिष्टकी चिंतामें नहीं दौडती ॥ २८ ॥ आपका चित्त शान्त होनेसे आप कपटाचारियोंका मन नहीं समझ सकते अतएव दुष्टजनोंका मध्यस्थ होना आपको उचित नहीं है. मुनिगणोंने कहा

सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम्॥कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्रपे ॥२६॥ निर्लज्जे नैव कर्त्तव्यं सख्यं मतिमता सदा॥निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लंपटः शठः॥ २७॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने॥ भवंतोनिपुणाःसर्वे न द्रोहमतयः सदा ॥२८॥ अनभिज्ञास्तु शांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ जंतुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥२९॥ द्रोहं कृत्वा कुतः शांतिमाप्नुयान्नष्टचेतनः ॥ विश्वासघातकर्तारो नरकं यांति निश्चयम् ॥ ३० ॥ दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः ॥ निष्कृतिर्ब्रह्महंतॄणां सुरापानां च निष्कृतिः ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि ॥ समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ तेनैव समयेनाद्य संधिः स्यादुभयोः किल ॥ वृत्र उवाच ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! जन्तुगण निश्चयही अपने किये पाप पुण्यका फल भोग करते हैं॥२९॥तब नष्ट बुद्धि द्रोहाचरण करके किस प्रकार शान्तिलाभ करनेमें समर्थ होंगे ?विश्वासघातकोंको निःसंदेह नरक प्राप्त होता है ॥३०॥ और सदाही दुःख भोगते हैं इसमें संदेह नहीं बरन् ब्रह्मघातक और सुरापान करनेवालोंकी निष्कृति है॥३१॥किन्तु विश्वासघातक और मित्रद्रोहीगणोंकी कुछभी निष्कृति नहीं है इनको अवश्य नरक भोगना होगा. अतएव हे सर्व्वज्ञ!तुम्हारे मनमें जो निश्चित है वह नियम प्रकाश करके कहो॥३२॥उसीके द्वारा तुम दोनोंकी संधि स्थापन होगी.वृत्रासुरने कहा हे

महाभाग मुनिगणो! इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके सहित सूखी वा गीली वस्तुसे अथवा दारुण काष्ठ पत्थर॥३३॥तथा वज्रद्वारा रात्रि अथवा दिनमें मुझको न मारे हे महाभागो ! यह मेरा नियम है ॥३४॥ मैं इसी नियमानुसार उनके सहित सन्धिस्थापन कर सकता हूं नहीं तो अन्य किसी प्रकार भी नहीं कर सकता.व्यासजीने कहा हे राजन् ! ऋषिगणोंने उसका वह वचन आदरपूर्वक स्वीकार किया ॥३५॥ और सुरराजको उसी स्थानमें बुलाकर सन्धिके नियम सुनाये इन्द्रने भी वहां मुनिगणोंके सामने अग्निको साक्षीकर शपथ की और चिन्तारूपी विषम ज्वरसे युक्त हुए वृत्रासुर तव इन्द्रके वचनमें विश्वास कर ॥३६॥ ३७ ॥ उनके सहित मित्रता स्थापनपूर्वक एकत्र विहार करने लगा वह दोनों मिलितहो कभीगन्ध-

न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च ॥ वध्यो भवेयं विप्रेंद्राः शक्रस्य सह दैवतैः ॥३४॥ एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नान्यथा ॥ व्यास उवाच ॥ ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥३५॥ समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम् ॥ इंद्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः ॥३६॥ साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल ॥ वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा॥३७॥ बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः ॥ कदाचिन्नंदने चोभौ कदाचिद्गंधमादने ॥ ३८ ॥ कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः ॥ एवं कृते च संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥३९॥ शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिंतयत् ॥ रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदाऽऽसीन्मघवा भृशम् ॥ ४० ॥ एवं चिंतयतस्तस्य कालः समभिवर्तत ॥ विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रोऽतिदारुणे ॥ ४१ ॥ एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते ॥ वृत्रस्य मरणोपायान्मनसींद्रोऽप्यचिंतयत् ॥ ४२ ॥

मादनमें॥३८॥ कभी समुद्रके तटपर आमोद अनुभवकर विचरण करने लगे. दोनों इस प्रकार संधिबन्धन पूर्वक मिलन होनेपर असुरराज वृत्रासुर अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥ ३९ ॥ किन्तु देवराज इन्द्र उनको मारनेकी इच्छासे उस विषयके सम्पूर्ण उपायकी चिन्ता करने लगे. इन्द्रने अत्यन्त उद्विग्न चित्तसे उनका छिद्र ढूंढते ढूंढते ॥ ४० ॥ कुछ काल व्यतीत किया इस प्रकार सन्धि स्थापन करनेपर कई एक वर्ष व्यतीत हुए तब सरल-चित्त वृत्रासुर अतिदारुण इन्द्रके प्रति अत्यन्त विश्वास करने लगा किन्तु इन्द्र उसके मारनेका उपाय विचारने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

एक दिन विश्वकर्म्माने अपनी सन्तान वृत्रासुरको पाकशासन इन्द्रके प्रति विश्वस्त चित्त जानकर कहा हे वत्स ! वृत्र ! तुम मेरा हितकर वचन सुनो ॥ ४३ ॥ देखो जिसके साथ एकवार शत्रुता होगई उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये इन्द्र तुम्हारा परम शत्रु है वह सदा तुम्हारे अनिष्टकी चिन्ता करता है अतएव उसका अब विश्वास न करना ॥ ४४ ॥ वह इन्द्र सर्वदाही लोभनिरत द्वेषरत परपीडा देनेमें उत्सा हयुक्त परदारलम्पट पापबुद्धि प्रतारक ॥ ४५ ॥ छिद्रका ढूँढनेवाला हिंसक मायावी और मदगर्वित है.हे वत्स! अधिक और क्या कहूं उस पापिष्ठने लीलाक्रमसेही पापभयत्याग पूर्व्वक माताके उदरमें प्रवेशकर गर्भछेदन किया ॥ ४६ ॥ उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकके प्रथम सातभाग इसके

त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने ॥ पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम् ॥ ४३ ॥ न विश्वासस्तु कृर्तव्यः कृतवैरे कथंचन ॥ मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥४४॥ लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः ॥ परदारलंपटः स पापबुद्धि प्रतारकः ॥ ४५ ॥ रन्ध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः ॥ यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह ॥ ४६ ॥ सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रंदमानमनातुरः ॥ तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथंचन ॥ ४७ ॥ कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥ न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल ॥ स कदाचि त्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥४९॥ संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्त्तेऽतीव दारुणे ॥ ततः संचिंत्य मघवा वरदानं महात्मनाम् ॥५०॥

उपरान्त उन सातभागोंके प्रत्येकको फिर सात भाग इस प्रकार (उनचास) भागमें छेदन किया. अतएव हे पुत्र ! उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥४७॥ जो सर्वदाही पापकार्यमें प्रवृत्त है उसको पुनर्वार पापकार्य्य करनेमें क्या लज्जा है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वृत्रासुरका मरणकाल उपस्थित हुआ था इससे वह पिताके हेतुयुक्त वचनसे प्रबोधित होनेपर भी उसको शुभकर नहीं समझसका अनन्तर एकदिन समुद्रके तटपर असुरको देखा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ संध्याके समय अति दारुण मुहूर्त उपस्थित होनेपर इन्द्रने उस महासुर वृत्रासुरको देख ब्रह्माके

वरदान विषयकी चिन्ता करी ॥५०॥ कि, इस समय यह भयंकर संध्या उपस्थित हुई है इस समय दिन भी नहीं और यह दैत्य भी अकेला निर्ज्जनस्थानमें यथासमय उपस्थित हुआ है अतएव इस समय बलपूर्व्वक ही इसको मारना चाहिये इसमें अब संशय नहीं. इन्द्रने इस प्रकार मनमें विचारकर अव्ययात्मा हारिको स्मरण किया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ भगवान् पुरुषोत्तम हारि भी उस स्थानमें अदृश्यभावसे आय वज्रमें प्रविष्ट हुए ॥ ५३ ॥ तब इंद्र शीघ्र ही वृत्रासुरको मारनेके निमित्त स्थिरचित्त हुआ किंतु चिंता करने लगा कि ॥ ५४ ॥ देव दानवगणोंको सर्व्वथा

संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च ॥ हंतव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न संशयः ॥५१॥ एकाकी विजने चात्र संप्राप्तः समयोचितः ॥ एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम् ॥ ५२ ॥ तत्राऽजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः ॥ वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥ इन्द्रो बुद्धिं चकाराऽऽशु तदा वृत्रवधं प्रति ॥ इति संचिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे ॥५४॥ अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा ॥ यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वंचयित्वा महाबलम् ॥ ५५ ॥ न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात् ॥ अपां फेनं तदाऽपश्यत्समुद्रे सर्वतोपमम् ॥ ५६ ॥ नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ॥ अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥५७॥ परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत् ॥ ५८ ॥ वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् ॥ फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥ ५९ ॥ सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः ॥ वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा ॥ ६० ॥

अजेय इस शत्रुको रणमें किस प्रकार मारूं और यदि इस महाबलवान् शत्रुको छलकर इस समय न मारूं ॥५५॥ तो इस दुरन्त शत्रुके वर्त्तमान रहनेपर हमारा कुछ भी मंगल नहीं. इंद्रने चिंता करते करते समुद्रके जलमें पर्व्वतके समान फेन देखा ॥ ५६ ॥ तिस समय उसको सूखा भी नहीं गीला भी नहीं और शस्त्र भी नहीं यह विचारकर उसको लीलापूर्वक ही ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ और तत्काल परम भक्ति सहित पराशक्ति भुवनेश्वरीको स्मरण किया। भगवतीने स्मरण मात्रसे ही अपना अंश फेनमें स्थापन किया॥५८॥इधर नारायणाधिष्ठित वज्र भी उस फेन पिण्डसे ढक गया तब इंद्रने वह फेनसे ढका हुआ वज्र वृत्रासुरको मारा ॥ ५९ ॥ तब तत्काल वृत्रासुर उस वज्रसे आहत होकर अचलके समान गिर

पड़ा वृत्रासुरके निहत होनेपर इंद्र अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए॥६०॥ऋषिगण भी अनेक स्तव द्वारा ... स्तुतिकरने लगे,देवताओंसहित इंद्र प्रसन्न हुए ॥६१॥ अनंतर जिनके अनुग्रहसे शत्रु मारा गया देवराज इंद्रने देवतागणोंके सहित उन्हीं देवीकी पूजा करी और अनेक प्रकारके स्तवसे उनको प्रसन्न किया ॥ ६२ ॥ फिर नंदनवनमें परम शक्तिकी पद्मरागमयी मूर्ति इंद्रने स्थापन करी ॥६३॥ हे महाराज ! तबसे हो सब देवता लोग तीनों संध्याओंमें देवीकी पूजा करने लगे और तबसे ही श्रीदेवी देवतागणोंकी कुलदेवता हुई ॥ ६४ ॥ उसी समय इंद्रने तीनों भुवनोंमें श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी अनंतर महावीर्य्य भयंकर वृत्रासुरके मारे जानेपर ॥ ६५ ॥ मद मंद शुभकर पवन चलने लगा, देवगण, गंधर्व,

ऋषयश्च महेंद्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः॥ हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः॥६१॥ देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः॥प्रसादयामासतदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥६२॥ देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः ॥ पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ॥ ६३ ॥ त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः ॥ तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ॥ ६४ ॥ विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः ॥ ततो हते महावीर्यें वृत्रे देवभयंकरे ॥ ६५ ॥ प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा ॥ हते तस्मिन्सगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥६६॥ ॥ इत्थं वृत्रः पराशक्ति प्रवेशयुतफेनतः ॥ तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥ ६७ ॥ ततो वृत्रनिहंत्रीति देवी लोकेषु गीयते ॥ शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ व्यास उवाच ॥ अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ ॥ मनसा शंकमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम् ॥१॥

राक्षस और किन्नरगण महानंदमें विचरण करने लगे ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुर भगवतोकी मायासे मोहित हुआ था और उसी पराशक्तिके फेनमें प्रवेशकरनेसे इन्द्र उस असुरको सहसा मारनेमें समर्थ हुए थे ॥ ६७ ॥ और इसी कारणसे देवी भुवनेश्वरी "वृत्रनिहन्त्री" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुई किन्तु इन्द्रने उसको बाह्यदृष्ट फेन द्वारा विनाश किया था इस कारण इन्द्रसे मारागया है यही लोक कहते हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अनन्तर देवदेव विष्णुने

वृत्रासुरको पडा हुआ देख मनहीमनमें उसके हत्याजनित भयकी शंका करते करते वैकुण्ठपुरमें गमन किया ॥ १ ॥ इधर इन्द्रभी परमशत्रु वृत्रासुरके मारेजानेपर पापके भयसे डरकर अमरपुरको चलेगये उससमय मुनिगणभी अत्यन्त उद्विग्न हो चिन्ता करनेलगे कि ॥ २ ॥ हमनेही वृत्रासुरको छलकर क्या पाप कर्म किया है हाय! देवराज इन्द्रके संग दोषसे आज हमारा "मुनि" यह नाम वृथा हुआ ॥ ३ ॥ वृत्रासुरने हमारे बचनसेही इन्द्रका विश्वास किया था अतएव विश्वासघातकके संग दोषसे आज हम भी विश्वासघातक हुए ॥ ४ ॥ ममताही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है अतएव उस ममताको धिक्कार है. क्योंकि ममताकी पाशमें बद्ध होकरही हमने छलपूर्वक शपथसे वृत्रासुरको छला है ॥ ५ ॥

इंद्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविंद्रपुरीं ततः ॥ मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ ॥ २ ॥ किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वंचितः किल ॥ मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च संगमात् ॥ ३ ॥ अस्माकं वचनाद् वृत्रो विश्वासमगमत्किल ॥ विश्वासघातिनः संगाद्वयं विश्वासघातकाः ॥ ४ ॥ धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् ॥ यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैव चितोऽसुरः ॥५॥ मंत्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् ॥ पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च ॥ ६ ॥ विष्णुनाऽपि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान् ॥ वज्रं प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना ॥ ७ ॥ नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्त्रासमश्नुते ॥ हरिणा हरिसंगेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥ ८ ॥

स्वयं पापकार्य्य न करकेभी जो पाप कार्य्य करनेकी दूसरेके संग परामर्श करें वा उस विषयमें बुद्धिप्रदान करें अथवा उस कार्य्यके करनेमें प्रेरणकरें वा जिस किसीभी प्रकारसे उनके पक्षका आश्रय करें वहभी निःसन्देह पापके भागी होते हैं ॥ ६ ॥ विष्णु सत्त्वप्रधान होनेपरभी उन्होंने वज्रमें प्रवेशपूर्व्वक इन्द्रकी सहायताकर वृत्रासुरका विनाशकिया है तो वहभी पापके भागी हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ जब भगवान् विष्णुने भी इन्द्रके सहित सम्मिलित होकर इस प्रकार पापाचरण किया तब निःसन्देह बोध होता है कि, मनुष्यके स्वार्थमें रत होनेपर पापसे

फिर भय प्राप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ बोध होता है कि इससमय धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारपदार्थोंमें त्रिभुवनदुर्लभ प्रथम और चतुर्थ धर्म्म तथा मोक्ष एकवारही विनष्ट हुए हैं ॥ ९ ॥ और अर्थ तथा कामही श्रेष्ठ कहकर प्रिय हुआ है तो "धर्म्मधर्म्म" यह वचन केवल वचनमात्र है तो इस समय महत् पंडित गणोंकोभी दम्भका कारण हुआ है वास्तवमें निष्ठापरायण होकर भक्तिभावसे कोईधर्म्मका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १० ॥ हे राजन् ! मुनिगण वारम्वार इस प्रकार मनस्तापकर विमन हुए और हतउद्योग हो अपने अपने आश्रममें चलेगये ॥ ११ ॥ इधर विश्वकर्म्मा इन्द्रसे अपना पुत्र मराहुआ सुनकर शोकसन्तप्त हृदयसे रोदन करने लगे और मनमें अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ अनन्तर

द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ ॥ प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ ॥९॥ अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां संमतौ प्रियौ ॥ धर्मधर्मेति वाग्वादो दंभोऽयं महतामपि ॥१०॥ मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनःपुनः ॥ जग्मु स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः ॥११॥ त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिंद्रेण भारत ॥ रुरोद दुःखसंतप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥ १२ ॥ यत्रासौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् ॥ संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥ १३ ॥ स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदेहिकम् ॥ शशापेंद्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥१४॥ यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम् ॥ तथेंद्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम् ॥१५॥ इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः ॥ मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्॥१६॥

वृत्रासुर जिस स्थानमें पडा था उन्होंने वहां जाय उसको इस अवस्थामें देख अत्यन्त दुःखित हृदयसे उसका दाहादिसंस्कार और पारलौकिक क्रिया यथाविधिसे करी ॥ १३ ॥ और स्नानके अनन्तर इसका तर्पण तथा और्ध्वदेहिक क्रिया कर अत्यन्त शोकार्त्त हृदयसे मित्रघाती पापिष्ठ इन्द्रको शाप दिया कि ॥ १४ ॥ इन्द्रने जिसप्रकार मेरे पुत्रको शपथद्वारा लुभायकर निहत किया है इस प्रकार वहभी विधाताके दिये हुए अत्यन्तभारी दुःखको प्राप्तहो ॥ १५ ॥ हे राजन् पुत्रशोकसे सन्तप्त विश्वकर्म्मा सुरेश्वरको इसप्रकार शाप दे मेरुपर्वतके शिखरका आश्रय

कर अत्यन्त कठिन तपस्याका अनुष्ठान करनेलगे ॥ १६॥ जनमेजयने कहा हे पितामह ! सुरराज इन्द्रने त्वष्ट्राके पुत्र वृत्रासुरको मारकर सुखपाया था वा दुःख ? पहले वह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! आप क्या पूँछते हैं ? आपका संदेह किस प्रकार है ? आप निःसन्देह जानिये कि, जीवगणोंको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका फल अवश्य ही भोगना होगा ॥ १८ ॥ बलवान् हो अथवा दुर्बल हो और देवता असुर अथवा मनुष्यादि जो कोई हो सबकोही अपने कियेहुए पापपुण्यका अल्प वा अधिक होनेपर भी भलीभाँति उसका फलभोगना होगा ॥ १९ ॥ इन्द्रने जब वृत्रासुरको मारनेकी चेष्टा की थी विष्णुने तभी उनको बुद्धिदानकर और वज्रमें प्रविष्ट हो उनकी

जनमेजय उवाच ॥ हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान् ॥ सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ किं पृच्छसि महाभाग संदेहः कीदृशस्तव ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१८॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् ॥ सर्वैथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः ॥१९॥ शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने॥प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत ॥२०॥ न चापदि सहायोऽभूद्वासुदेवः कथंचन ॥ समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप॥२१॥ दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान् ॥ पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ २२ ॥ सेवको वाऽपि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः ॥ प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम् ॥ २३ ॥ भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा ॥ वृत्रं हत्वा गताः सर्वं निस्तेजस्कःशचीपतिः ॥ २४ ॥

सहायता की थी ॥ २० ॥ किन्तु विपदके समयमें विष्णुने किसी प्रकार भी इन्द्रकी सहायता नहीं की अतएव हे नरेन्द्र ! इस संसारमें सम्पूर्ण समयपरही स्वजन होते हैं ॥ २१ ॥ किन्तु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोई भी फिर सहायता करनेवाला दिखाई नहीं देता अधिक क्या दैवके प्रतिकूल होनेपर पिता माता भार्य्या वा सहोदर ॥ २२ ॥ सेवक मित्र अथवा और सजातपुत्र कोई भी दैवके प्रतिकूल होनेपर सहायता लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वास्तवमें जो पाप वा पुण्य करता है वही उसका फल भोग करता है ॥ वृत्रासुरके मारेजानेपर

फिर सब अपने अपने स्थानको चलेगये किन्तु ब्रह्महत्याके पापप्रभावसे शचीपति इंद्र अत्यंत तेजहीन होगये ॥ २४ ॥ तब सब देवता ब्रह्मघातक कहकर उनकी निंदा करने लगे. वह और भी कहने लगे कि कौन पुरुष शपथ पूर्व्वक सत्य कहकर ॥ २५ ॥ विश्वस्त मित्र भावको प्राप्त हुए मुनिवरको मारनेकी इच्छा करता है ? हे महाराज ! उस समय देवतागणोंकी गोष्ठीमें सुरोद्यानमें, गन्धर्वगणोंके सम्मिलनमें ॥ २६ ॥ अधिक क्या सब स्थानोंमें ही इस बातकी चर्चा होने लगी कि, इन्द्रने विश्वास किये हुए वृत्रासुरको मुनिगणोंसे धोखा दिलाय छलपूर्वक स्वयं निहतकर क्या दुष्कर कार्य किया है ;उन्होंने वेदका सनातन प्रमाण छोड़कर लीलापूर्वक ही वृत्रासुरको :निहतकर सौगत

शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यनुवञ्छनैः ॥ को नाम शपथान् कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः ॥ २५ ॥ जिघांसति सविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम् ॥ देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गंधर्वाणां समागमे ॥ २६ ॥ सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता ॥ २७ ॥ वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् ॥ वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं गतम् ॥ २८ ॥ यदयं निहतः शत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात् ॥ को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत् ॥ २९ ॥ विना शक्रं हरिं वाऽपि यथाऽयं विनिपातितः ॥ एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥ ३० ॥ शुश्रावेंद्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तिर्हा निकारकाः ॥ यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम् ॥ ३१ ॥ यं दृष्ट्वा पथि गच्छंतं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत् ॥ इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात् ॥ ३२ ॥

अर्थात बौद्धिमतका आश्रय किया है ॥२७॥२८॥ जिस प्रकार वृत्रासुरको निहत किया है इसी प्रकार वचन देकर कौन पुरुष अन्यथा करेग ॥२९॥ विष्णु और इन्द्रके सिवाय और कौन उसका विपरीताचरण कर सकता है ? तिस काल इस प्रकार अनेक बातें अनेक समाजोंमें अधिक तासे होने लगीं॥३०॥इधर इन्द्रने भी अपनी कीर्त्तिमें हानिकर यह सब बातें सुनी.हे महाराज!लोकमें जिसकी कीर्त्ति नष्ट हो गई उसके उस निन्दित जीवनको धिक्कार है॥३१॥हाय ! विनष्टकीर्त्ति मनुष्यको मार्गमें जाता हुआ देखकर शत्रु हँसते हैं जब राजर्षि इन्द्रद्युम्न निष्पाप होनेपर भी कीर्त्तिक्षय,

होनेके कारण स्वगसे गिरे थे॥३२॥तब पापाचारी गण किस प्रकार न गिरेंगे? नरपति ययाति अत्यन्त अल्प अपराधमें भी स्वर्गसे गिरकर॥३३॥ अठारह युग पर्य्यन्त कर्कटयोनिको प्राप्त हुए थे अधिक क्या भगवान् स्वयं हरिने भी भृगुकी स्त्रीका शिरश्छेदन करनेपर ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापसे वराहमकरादि योनिमें जन्म ग्रहण किया था उन्होंने सर्वव्यापी होनेपर भी क्षुद्र वामनरूप धारणकर याचना करनेके लिये बलिके गृहमें गमन किया था ॥३५॥ अतएव पापकारी पुरुषगण इनकी अपेक्षा अब क्या अत्यंत दुःखको प्राप्त न होंगे? हे भरतभूषण ! रामचन्द्र भी भृगुके शापसे वनवासमें सीताके विरहसे ॥ ३६ ॥ अत्यन्त भारी दुःखको प्राप्त हुए थे इसी प्रकार इंद्रभी ब्रह्महत्या जनित पापसे ऐसे भीत हुए थे ॥ ३७ ॥

स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते ॥ स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल ॥ ३३ ॥ नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टादशैव तु ॥ भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान् हरिरच्युतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ संजातो मकरादिषु ॥ विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे॥३५॥गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृती नरः ॥ रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु ॥३६॥ दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत ॥ तथेन्द्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥ ३७ ॥ न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्व सिद्धिसमन्विते ॥ पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम् ॥ ३८ ॥ निश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतनम् ॥ किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः ॥ ३९ ॥ का चिंता वर्तते कांत तव शत्रुनिषूदन॥कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा॥४०॥नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिंतापरो भवान् ॥ इन्द्र उवाच॥नारातिर्बलवान्मेऽस्ति न शांतिर्न सुखं तथा ॥४१॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होकर भी घरमें उनको संतोष न हुआ तब इंद्राणी उनको हीनतेज युक्त देखकर बोली ॥ ३८ ॥ जो कि वारंवार श्वास लेते भयसे व्याकुल नष्टसंज्ञा और चेतनाहीन थे उनसे कहा हे स्वामी ! अब क्यों भयभीत हो ? तुम्हारा दारुण शत्रु मरगया है ॥ ३९ ॥ हे शत्रु-नाशी स्वामिन् ! कहिये अब आपको क्या चिंता है ? हे लोकेश ! आप साधारण पुरुषोंके समान वारंवार श्वास लेते क्या शोच रहे हैं ? ॥४०॥ अब तो कोई आपका ऐसा बलवान् शत्रु नहीं है जिस की आपको चिंता हो, तब इंद्रने कहा हे प्रिये ! न तो मेरा कोई बलवान्

शत्रु है पर तो भी मुझे शान्ति और सुख नहीं है ॥ ४१ ॥ हे महारानी ! मैं घरमें स्थित हुआ भी ब्रह्महत्याके भयसे निरंतर भयभीत हूं. हे देवि ! नंदनवन अलकाभवन अमृतवन ॥ ४२ ॥ गंधर्वगणोंका मनोरम सङ्गीत, और अप्सरागणोंका मनोहर नृत्य यह सम्पूर्ण ही मुझको सुख दायक बोध नहीं होते अधिक क्या तुम्हारे समान त्रिभुवन सुन्दरी नारी और अन्यान्य सुरसुन्दरीगण ॥ ४३ ॥ तथा कामधेनु,मंदार,पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन इत्यादि देवतागणोंके वृक्षभी मुझको सुखदायक बोध नहीं होते, इस समय मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कहां जानेसे सुख हो ? ॥ ४४ ॥ हे प्रिये ! इस प्रकार चिंतातुर होकरही मैं अपने चित्तमें सुखलाभ नहीं कर सकता व्यासजीने कहा हे राजन् !

ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे ॥ नन्दनं न सुखाकारं नामृतं न गृहं वनम् ॥ ४२ ॥ गंधर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः ॥ न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः ॥ ४३ ॥ न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते ॥ ४४ ॥ इति चिंतापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥ ४५ ॥ निर्जगाम गृहान्मंदो मानसं सर उत्तमम् ॥ पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्शितः ॥ ४६ ॥ प्राज्ञायत देवेंद्रस्त्वभिभूतश्च कल्मषैः ॥ प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥ ४७ ॥ असहायस्तुराषाडैश्चिन्तार्तो विकलेन्द्रियः ॥ ततः प्रनष्टे देवेंद्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ४८ ॥ सुराश्चितातुराश्चासन्नुत्पाताश्चा भवन्नथ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४९ ॥

मूढ़ इंद्र परमकातर हुई प्रिया शचीसे इस प्रकार वचन कह कर ॥ ४५ ॥ गृहसे निकले और परम मनोहर मान सरोवरमें गये देवराज इंद्र वहां भय और शोकसे क्षीणदेह हो पद्मनालमें प्रविष्ट होकर रहे ॥४६॥ किंतु वह घोरतर पापमें अभिभूत हुए थे इसी कारण उस समय उनको कोई नहीं पहँचान सका वह निश्चल सर्पके समान ॥४७॥ आहार विहारशील चिंतार्त असहाय और विकलेन्द्रिय होकर उसी जलमें गुप्त रूपसे वास करने लगे, अनंतर देवराज इंद्रके ब्रह्महत्या भयसे पीड़ित हो प्रस्थान करनेपर ॥ ४८ ॥ देवतागण अत्यन्त चिन्तायुक्त

हुए क्योंकि उस समय सर्वत्र ही अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे ऋषिगण सिद्ध और गन्धर्वगण अत्यन्त भयार्त हुए ॥४९॥ क्योंकि तिसकाल सम्पूर्ण जगत् अराजक होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे अभिभूत होने लगा तब अनावृष्टिके कारण पृथ्वीमें अल्पधान्य॥॥५०॥नदियोंमें अत्यन्त अल्पजल और सम्पूर्ण सरोवर जलहीन हुए इसप्रकार अराजकता उपस्थित होनेपर स्वर्गवासी समस्त देवतागण और ऋषिगणोंने॥५१॥विचार करके नहुषराजाको इंद्रके पदमें अभिषिक्त किया हे महाराज ! नहुष धार्मिक होनेपरभी रजोगुणके प्रभावसे॥५२॥कामबाणसे हत होकर अत्यन्त विषयासक्त हुए तिस समय वह नरपति अप्सरागणोंके सहित हो देवोद्यानमें क्रीड़ा करने लगे॥५३॥एक दिन उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीकी गुणमाधुरी श्रवणकरके

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ॥ अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा ॥ ५० ॥ विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै ॥ एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा ॥ ५१ ॥ विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः ॥ संप्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥ ५२ ॥ बभूव विषयासक्तः पंचबाण शराहतः ॥ अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत ॥ ५३ ॥ शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः ॥ ऋषीनाह किमिंद्राणी नोपगच्छति मां किल ॥ ५४ ॥ भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह ॥ प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम् ॥ ५५ ॥ प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः ॥ अहमिंद्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ ५६ ॥ आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा ॥ ५७ ॥

उसको प्राप्त करनेकी अभिलाषा की अनन्तर उन्होंने ऋषिगणोंसे कहा कि इन्द्राणी क्यों नहीं आती ?॥५४॥आपने और संपूर्णदेवताओंने मिलित होकर मुझको इन्द्रत्वपदमें वरण किया है, किन्तु अबतकभी इंद्राणी मेरे निकट क्यों नहीं आई ? हे देवताओ ! बहुत शीघ्र शचीको सेवाके निमित्त मेरे समीप लाओ ॥ ५५ ॥ यदि आपको मेरा प्रिय करना है तो यह कार्य करो. मैं इस समय इंद्र हूं इससे देवतागण और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर हुआ हूँ ॥ ५६ ॥ अतएव अब शीघ्रहीइंद्राणी मेरे भवनमें आवें देवतागण और देवर्षिगण नहुषका यह वचन सुनकर ॥५७॥

कीजिये ॥ १० ॥ पापद्वारा समृद्धिका विनाश होता है तथा पुण्यद्वारा समृद्धिकी अत्यन्त वृद्धि होती है अतएव हे पार्थिव! आप कलुषित भावको त्यागकर चित्तको सन्मार्गमें लाइये ॥ ११ ॥ नहुषने कहा हे देवगण! इंद्रने जब गौतमकी स्त्री हरण की, चन्द्रमाने जब बृहस्पतिकी स्त्री हरण की तब तुम कहां थे ? ॥ १२ ॥ देखो अन्यको उपदेश देनेमें अनेक कुशल और समर्थ हैं किंतु स्वयं कार्य्यानुष्ठानकर पराये प्रति इसप्रकार उपदेश प्रदान करसके ऐसे पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ १३ ॥ हे देवगण ! उस गुणवती देवीको मेरे निकट लाओ, इससे तुम्हारा

ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम् ॥ तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव ॥ ११ ॥ नहुष उवाच ॥ गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः ॥ वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा ॥ १२ ॥ परोपदेशे कुशलाः प्रभवंति नराः किल ॥ कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥ मामागच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः ॥ एतस्याः परमं देवाः सुखमेवं भविष्यति ॥ १४ ॥ अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशु प्रापयंत्विह ॥ १५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा ॥ तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम् ॥ १६ ॥ इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवांतिकम् ॥ इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम् ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ते गत्वाऽगिरसः पुत्रं प्रोचुः प्रांजलयः सुराः ॥ जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि ॥ १८ ॥

परमहित होगा और उस देवीकोभी परमसुख प्राप्तहोगा इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ मैं तुमसे सत्यही कहता हूं अन्य किसी प्रकार मैं संतुष्ट नहीं हूंगा विनयसे हो अथवा बलसे ही तुम शीघ्र इंद्राणीको इस स्थानमें लाओ ॥ १५ ॥ तब देवतागण और मुनिगण मदनबाणसे पीड़ित नहुषराजका इसप्रकार वचन सुन अत्यंत भीत हुए और उनसे कहने लगे ॥ १६ ॥ हम कोमलभावसे सम्मत करके इंद्राणीको आपके निकट लावेंगे वह नहुषसे यह कहकर बृहस्पतिजीके घर चले गये ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवताजन बृहस्पतिजीके घरजाय हाथ

जोड़कर कहनेलगे हे गुरु ! इंद्राणीने आपके गृहका आश्रय ग्रहण किया है यह हम जानते हैं ॥१८॥ किंतु अब उसे नहुषराजाको देनाहोगा क्योंकि हम सबने मिलकरही उनको इंद्रके पदमें वरण किया है. हे गुरु ! यह सर्वांगसुन्दरी वरवर्णिनी इससमय उनको वरण करे ॥ १९ ॥ बृहस्पतिजीने देवताओंका यह दारुण वचन सुनकर उनसे कहा हे देवताओ ! यह पतिव्रता शची इस समय मेरी शरणागत हुई है अतएव मैं कभी इसको त्याग नहीं कर सकता ॥ २० ॥ देवताओंने कहा हे गुरु ! आप यदि शचीको त्यागन करैं तो इस समय जिससे नहुषराज प्रसन्न हो इस प्रकार कोई उपाय कीजिये नहीं तो उनके कुपित होनेसे किसीसे भी उनको प्रसन्न नहीं किया जायगा॥२१॥बृहस्पतिजीने कहा हे देवताओ !

सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतोयतः ॥ वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी ॥१९॥ बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः ॥ नाहं त्यक्षे तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम् ॥२०॥ देवा ऊचुः ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति॥अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति ॥२१॥ गुरुरुवाच ॥ तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् ॥ करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥ २२ ॥ इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्यं करोम्यहम्॥अन्वेषणार्थं गंतव्यं मया तस्य महात्मनः ॥ २३ ॥ इति सा समयं कृत्वा वंचयित्वा च भूपतिम् ॥ भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः ॥ २४ ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ नहुषं सहिता जग्मुरिंद्रपत्न्या दिवौकसः ॥ २५ ॥ तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः ॥ जहर्ष च मुदा युक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥

शची इस समय वहां जाय राजानहुषको वचनसे प्रलोभित करके इस प्रकार नियम करे कि " पतिके विनाशका निश्चय होनेपर फिर आपकी भजना करूंगी" ॥२२॥ अपने पति इन्द्रके जीवित रहनेपर किस प्रकार दूसरे पतिको ग्रहण करूं ? अतएव इस समय मैं उन महात्माको ढूंढनेको जाती हूं ॥ २३ ॥ शची मेरे वाक्यानुसार इस प्रकार नियम बन्धन पूर्वक उस भूपतिको छलकर पतिको लानेके लिये यत्न करे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! अनन्तर बृहस्पति इत्यादि सम्पूर्ण देवतागण ही इस प्रकार परामर्श कर इन्द्राणीको लेकर नहुषके निकट गये ॥२५॥ तब कृत्रिम इन्द्र

नहुषने उनको आता हुआ देख हृष्ट और सन्तुष्ट हो आनन्दसे इन्द्राणीको अवलोकन कर कहा ॥२६॥ हे कान्ते! अब मैं यथार्थ ही इन्द्र हुआ हे चारुलोचने! तुम मेरी पतिके समान भजना करो देखो इस समय देवताओंने मुझको सर्वलोकोंका आराध्य किया है ॥२७॥ नहुषके इसप्रकार कहनेपर शची देवीने अत्यन्त लज्जित हो कांपते कांपते राजासे कहा हे सुरेश्वर! मैं आपसे एकवर प्राप्त करनेकी इच्छा करती हूँ ॥ २८ ॥ इंद्र जीवित है या नहीं, मैं जबतक यह निर्णय न कर सकूं आप उसी थोडे कालतक प्रतीक्षा कीजिये वह हैं या नहीं। इस प्रकार संदेह मेरे हृदयमें रहता है ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र! जबतक इस विषयमें मैं कुछ स्थिर न कर सकूं आप तबतक मुझको क्षमा कीजिये मैं अपने मनमें यह निश्चयकर

अद्यास्मि वासवः कांते भज मां चारुलोचने ॥ पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः ॥ २७ ॥ इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता ॥ वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर ॥२८॥ किंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ॥ इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति संदेहो मे हृदि स्थितः ॥२९॥ ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ॥ तावत्क्षमस्व राजेंद्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥ न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः ॥ एवमुक्तः स चेन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ३१ ॥ व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदाऽन्वितः ॥ सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती ॥ ३२ ॥ इंद्रस्याऽऽगमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देवा इंद्राण्या रसवच्छुचि ॥ ३३ ॥ मंत्रयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं नृपसत्तम ॥ ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥

तदनंतर आपकी भजना करूंगी यह सत्य ही जानना चाहिये ॥ ३० ॥ इंद्र इस समय नष्ट हुआ है या स्थानांतरमें चला गया है यह कुछ नहीं जाना जाता शची देवीके इस प्रकार कहनेपर नहुष अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ और यही हो इस प्रकार कहकर आनंदित चित्तसे उसको बिदा किया पतिव्रता शची उनसे बिदा हो शीघ्र जाय देवताओंसे कहने लगी कि ॥३२॥ आप इंद्रको लानेका उद्योग और भलीभांति यत्न कीजिये. हे राजेन्द्र! देवतागण इंद्राणीका वह श्रवण मनोहर पवित्र वचन सुनकर ॥३३॥ एकाग्र चित्तसे इंद्रके लानेका परामर्श करने लगे अनंतर उन्होंने

वैकुण्ठमें जाय॥ ३४॥शरणागत वत्सल आदि देव जगन्नाथ परमेश्वर विष्णुका स्तव किया. वाक्य विशारद देवताओंने समुद्विग्न चित्त हो विष्णुसे कहा ॥ ३५॥हे प्रभो !देवदेव सुरपति इंद्र ब्रह्महत्याके पापसे पीडित हैं इस समय वह सम्पूर्ण भूतोंसे अदृश्य हो किस स्थानमें वास करते हैं ॥ ३६॥ हे प्रभो ! वह आपकी बुद्धिसे ही विप्रवर वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके पापमें अभिभूत हुए हैं. हे विभो ! आपही उनकी और हमारी एकमात्र गति हैं॥ ३७॥ हम इस समय परम आपदामें पतित हुए हैं आप इस विपदसे छुडाने और इंद्रकी मुक्तिका उपाय निर्देश कीजिये. देवताओंके यह कातर वाक्य सुनकर विष्णुने कहा ॥ ३८ ॥ इंद्र पापसे रक्षापाने निमित्त अश्वमेध यज्ञ करैं तो इंद्र इस पाप विनाशक यज्ञसे पवित्र हो ॥ ३९ ॥

आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम् ॥ ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥३५॥ देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः ॥ ३६ ॥ त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्या कुतः प्रभो ॥ त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि ॥३७॥ त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत् ॥३८॥ यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये ॥ पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥ ३९ ॥ पुनरेष्यति देवानामिंद्रत्वमकुतोभयः ॥ हयमेधेन संतुष्टा देवी श्रीजगदंबिका ॥४०॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥४१॥ किंपुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च ॥ इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम् ॥ ४२ ॥ आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति ॥ नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥ ४३ ॥

सब प्रकार भयसे रहित हो फिर इन्द्रत्वको प्राप्त होंगे इसमें सन्देह नहीं. विशेषकर अश्वमेध यज्ञ करनेसे अम्बिका देवी सन्तुष्ट हो ॥ ४० ॥ वह सम्पूर्ण ब्रह्महत्याका पाप नष्ट करेंगी यह निश्चय जानना चाहिये. देखो जिनके स्मरण मात्रसे ही पाप समूह नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ अश्वमेध यज्ञसे यदि उनको प्रसन्न किया जाय तो उनके द्वारा घोरतर पापभी नष्ट होगा इसमें फिर क्या आश्चर्य्य है और इन्द्राणी नित्य भगवतीकी पूजा करे ॥ ४२ ॥ तो उन मंगलमयीकी आराधनासे अवश्य सुख प्राप्त होगा. विशेषकर नहुष भी उस जगन्माताकी माया द्वारा मोहित होकर ॥ ४३ ॥

अपने किये हुए पापसे अत्यन्त शीघ्र विनष्ट होगा और शतक्रतु इन्द्र भी अश्वमेध यज्ञसे पवित्र होकर शीघ्रही ॥ ४४ ॥ अपने आसन स्वरूप परम वैभवको प्राप्त होंगे, हे राजन् ! देवता अमिततेजा विष्णुकी कल्याणदायिनी मनोहारिणी यह वाणी सुनकर ॥ ४५ ॥ जिस स्थानमें पाकशासन वास करते थे उसी स्थानमें गये बृहस्पति इत्यादि सुरगणने दुर्दशा युक्त देवताओंके इन्द्रको आश्वासित कर ॥ ४६ ॥ भली भांति महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान कराया तब देवताओंके प्रभु इन्द्रने ब्रह्महत्याके पापको त्यागकर वृक्ष नदी ॥ ४७ ॥ और पर्वत समूहमें स्त्रियोंमें तथा पृथ्वीमें निक्षेप किया इस कारण भूत समूहमें ब्रह्महत्याका पाप विसर्ज्जनकर पाकशासन इन्द्र फिर पापहीन

विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः ॥ पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम् ॥ ४४ ॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम् ॥ ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४५ ॥ जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः ॥ तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥४६॥ कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम् ॥ विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ॥४७॥ पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषुचैवाक्षिपद्विभुः ॥ तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः ॥ ४८ ॥ विज्वरः समभूद्भूयः कालाकांक्षी स्थितो जले ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥ ४९ ॥ देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम् ॥ पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला ॥ ५० ॥ कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरंदरः ॥ कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे ॥ ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ त्वमाराधय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम् ॥ ५२ ॥

॥ ४८ ॥ और ज्वरहीन हो कालके आनेकी प्रतीक्षामें उसी जलमें सर्वभूतोंसे अदृश्य हो पद्मनालमें वास करने लगे ॥ ४९ ॥ देवता उस अद्भुत कार्य्यको कर उस स्थानसे निकल अपने २ स्थानको चले गये तब विरहसे आकुल हुई पुलोमनन्दिनी अत्यन्त दुःखित हो देवगुरु बृहस्पतिजीसे कहने लगी ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! हमारे स्वामी इन्द्र अश्वमेध यज्ञ करके भी किस कारण अदृश्य रहते हैं मैं उनको किस प्रकार देखूंगी आप मुझसे इसका उपाय कहिये ॥ ५१ ॥ बृहस्पतिजीने कहा हे देवि ! तुम कल्याणमयी

भगवतीकी आराधना करो तो वही तुम्हारे पतिको निष्पापकर तुमको दिखावेंगी ॥ ५२ ॥ उन्हीं जगद्धात्री अम्बिकाकी आराधना करनेपर वह नहुष राजाको अन्यान्य कार्यसे हरावेंगी और वही उसको मायासे मोहितकर स्वर्गके पदसे निपतित करेंगी ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर पुलोमतनयाने उनके निकटसे देवीका सिद्धि साधन--युक्त मंत्र ग्रहण किया॥५४॥शचीदेवी गुरुके निकटसे मंत्र प्राप्त कर बलि और पुष्प इत्यादि उपहारकी सामग्री द्वारा श्रीदेवीभुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकार आराधना करने लगी॥५५॥इंद्राणी पतिके दर्शनकी इच्छासे सम्भोग्यवस्तु त्याग और तपसीका वेष धारणकर देवीकी पूजा करने लगी ॥५६॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर वह देवी परितुष्ट हो शांतमूर्तिसे हंसकी पीठपर

आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति ॥ मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चांबिका ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप ॥ जग्राह मंत्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः ससाधनम् ॥ ५४ ॥ विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः ॥ ५५ ॥ त्यक्तान्यभोगसंभारा तापसी वेषधारिणी ॥ चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥ ५६ ॥ कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥ ५७ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा चंद्रकोटिसुशीतला ॥ विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता ॥ ५८ ॥ पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः ॥ आपादलंबिनीं स्वच्छां मुक्तमालां च बिभ्रती ॥ ५९ ॥ प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता ॥ आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥६०॥

चढकर वर देनेके निमित्त उसके सामने प्रगट हुई ॥ ५७ ॥ उस समय उनके अङ्गकी कांति करोड करोड़ सूर्यके समान प्रदीप्त होनेपरभी करोड़ करोड़ चन्द्रमाके समान शीतल थी उनकी लावण्य छटा करोड़ २ स्थिर बिजलीके समान प्रकाशित होने लगी और मूर्तिमान् चारोंवेद चारों ओर उनका स्तव करने लगे ॥ ५८ ॥ उनके चारों हाथ पाश अंकुशवर और अभयदान सौंदर्यसे शोभायमान थे. तथा कण्ठसे चरणोंपर्य्यंत लम्बायमान निर्मलमोतियोंकी माला धारण कर रही थीं ॥ ५९ ॥ उनका मुखमण्डल कुछेक हास्य और प्रसन्नतासे

शोभायमान था. वही करुणामयी त्रिनयनी कीटसे ब्रह्मपर्य्यंत जीवगणोंकी जननी हैं ॥ ६० ॥ उनके दोनों स्थूल स्तन शांति इत्यादि अनंत पीयूषरससे परिपूर्ण थे वही अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी तथा परमेश्वरी सर्वज्ञान संपन्न कूटस्थित अक्षरकी साक्षी चैतन्यरूपिणी है वही भुवनेश्वरी देवी आराधनामें तत्पर हुई अमरेश्वरी शचीसे ॥ ६२ ॥ मेघके समान गम्भीर स्वरसे उसके आनंद देनेवाले वचन कहने लगीं. हे शक्रवल्लभे ! तुम वांछित वर ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ मैं तुम्हारी पूजासे अत्यंत प्रसन्न हुई हूं हे सुश्रोणि ! मैं वर देनेकोही तुम्हारे निकट आई हूं मेरा दर्शन सहजमेंही प्राप्त नहीं होता॥६४॥करोड करोड जन्मार्ज्जित पुण्यसे मेरा दर्शन प्राप्त होता है तब देवीके इस प्रकार

अनंतगोटिब्रह्मांडनायिका परमेश्वरी ॥ सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी ॥ तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम् ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरशब्देन मुदमाददती भृशम् ॥ देव्युवाच ॥ वरं वरय सुश्रोणि वांछितं शक्रवल्लभे ॥ ६३ ॥ ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मि पूजिता सुभृशं त्वया ॥ वरदाहं समायाता दर्शनं सहजं न मे ॥ ६४ ॥ अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुंजं हि लभ्यते ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणता पुरः ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम् ॥ वांछामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम् ॥६६॥ नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥ ६७ ॥ यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता ॥ तत्र पश्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम् ॥६८॥ मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम् ॥ ६९ ॥

वचन सुनकर ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी शचीदेवी साष्टांग प्रणाम करनेके अनंतर उन प्रसन्न हुई परमेश्वरी भगवतीसे कहने लगीं हे मातः ! मैं आपके निकटसे परमदुर्लभ पतिका दर्शन ॥ ६६ ॥ और नहुष राजासे भय विनाश तथा इंद्रको फिर पद प्राप्त होनेकी इच्छा करती हूं. देवीने कहा हे सुरेश्वरि ! तुम मेरी इस दूतीके संग मानससरोवरमें जाओ ॥ ६७ ॥ उस स्थानमें मेरी विश्वकामा नामक अचलामूर्ति प्रतिष्ठित है शतक्रतु इंद्र उसी स्थानमें महादुःखित और भयसे विह्वल हो वास करते हैं तुम उनको देखोगी ॥ ६८ ॥ और कुछ कालमें ही मैं नहुष राजाको मायासे मोहित

करूंगी हे विशालाक्षि ! तुम सावधान हो मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूंगी ॥ ६९ ॥ मैं शीघ्रही उस भूपतिको मोहितकर देवताओंके सिंहासनसे भ्रष्ट करूंगी व्यासजीने कहा भगवतीकी दूती सुरेश्वरीने शक्रपत्नी को संग ले जाकर शीघ्र ॥ ७० ॥ उसके पति इन्द्रके सामने उपस्थित किया उसकाल बाला पुलोमजा गुप्तभावसे स्थित ॥ ७१ ॥ चिर वांछित अपने पति इन्द्रको देखकर अत्यन्त आनंदित हुई ॥ ७२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे, राजन् ! देवराज इन्द्रने प्रियभार्या विशालनयना शोकान्वित शचीको निर्ज्जनमें देखकर आश्चर्य युक्त चित्तसे कहा ॥ १ ॥ हे कांते ! मैं संपूर्ण जीवगणोंसे अदृश्य होकर इस निर्ज्जन स्थानमें अकेला वास

भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् ॥ व्यास उवाच ॥ देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता ॥ ७० ॥ प्रापयामास सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम् ॥ सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम् ॥ ७१ ॥ मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवांछितम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे शक्रदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ तां वीक्ष्य विपुलापांगीं रहः शोकसमन्विताम् ॥ आखंडलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा ॥१॥ कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम् ॥ दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने ॥२॥ शच्युवाच ॥ देवदेव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह ॥ पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्ताऽस्मि त्वां दिवस्पते ॥ ३ ॥ नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने ॥ त्रिदशर्मुनिमिश्रैव स मां बाधति नित्यशः ॥ ४ ॥ पतिं मां कुरु चार्वंगि तुरासाहं सुराधिपम् ॥ एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन ॥ ५ ॥

करता हूं हे शुभानने ! तुमने इस स्थानको किस प्रकार जाना और, किस प्रकार इस स्थानमें आई ॥ २ ॥ शचीने कहा हे सुरेश्वर ! मैंने देवी भगवतीके चरण प्रसादसे आपका निवासस्थान जाना, और उन्हींके प्रसादसे मैं आपको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनिगणोंने मिलकर नहुष नामक नृपतिको आपके सिंहासनमें स्थापित किया है वह कहते हैं हे सुशोभने ! मैं इन्द्रके सिंहासनमें अधिष्ठित हुआ हूं अतएव तुम मेरी पतिके रूपमें भजन करो इस प्रकार वह निरंतर मुझको पीडित करता है॥४॥हे बलविनाशन ! वह पापात्मा मुझसे इस प्रकार कहता है अतएव मैं

अबला हूं उसका क्या कर सकती हूं ॥५॥ इन्द्रने कहा हे वरवार्णिनि ! मैं कालकी प्रतीक्षा करके इस स्थानमें वास करता हूं हे कल्याणि ! तुमभी अपने मनको स्थिरकर कालकी प्रतीक्षासे वहां वास करती रहो॥६॥व्यासजीने कहा हे राजन बुद्धिमान् इन्द्रके यह वचन कहनेपर फिर शचीदेवी अत्यन्त दुःखित होकर दीर्घश्वास त्यागपूर्वक कांपते कांपते कहने लगी॥७॥ हे महाभाग!मैं किस प्रकार उस स्थानमें वास करसकूंगी वह पापात्मा मदोन्मत्त और वरदानसे गर्वित होकर मुझको वशीभूत करेगा॥८॥देवता और मुनिगण उसके भयसे व्याकुल होकर मुझसे कहते हैं हे शोभने ! सुरपति इन्द्र इस समय तुम्हारे निमित्त कामबाणसे अत्यन्तकातर हुए हैं अतएव तुम उनका भजन करो॥९॥हे परन्तप!विप्रवर बृहस्पति बलहीन और देवता

इंद्र उवाच ॥ कालाकांक्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया॥ तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥६॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनाऽतिप्रशंसिना ॥ निःश्वसंत्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता ॥ ७ ॥ कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम् ॥ करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः ॥ तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम् ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः ॥ कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा ॥ १० ॥ तस्माच्चिंताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी ॥ अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो ॥ ११ ॥ नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चित्ताऽतिपतिव्रता ॥ नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥ १२ ॥ इंद्र उवाच ॥ उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने ॥ शीलं ते दुःखिते काले परित्रातं भविष्यति ॥ १३ ॥

गणोंके वशीभूत होकर मेरी किसप्रकार रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥१०॥ हे प्रभो ! इससे अत्यन्त चिन्ता रहती है देखो मैं अनाथ अबला नारी हूं अतएव सर्वदाही पुरुषके वशीभूत हूं विधाता इस समय प्रतिकूल हुआ है इससे मैं किस प्रकार धर्म्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हूंगी?॥११॥मैं पतिव्रता हूं कुलटा नहीं हूं मेरा चित्त तुममेंही अत्यन्त आसक्त है वहां मेरीरक्षा करनेवाला कोई नहीं है मुझको वहां दुःख होनेसे कौनमेरी रक्षा करेगा ? ॥ १२ ॥ इंद्रने कहा हे वरानने ! मैं तुमको इस समय एक उपाय बताये देता हूं उसका अवलम्बन करनेसे दुःखके समयमें तुम्हारा सुचरित्रही

रक्षित होगा इसमें संदेह नहीं ॥ १३ ॥ नारीजाति करोड करोड़ उपायसे रक्षित होनेपरभी वह पतिव्रता नहीं होसकती क्योंकि काम उसका चंचल मन भेदकरके असत् मार्गमें चलाता है ॥ १४ ॥ स्त्रीगणोंकी सच्चरित्रताही उनकी पापसे रक्षा करती है अतएव हे शुचिस्मिते ! तुम सत्शीलता अवलम्बन पूर्वक स्थिर होकर वास करो ॥ १५ ॥ यदि वह दुर्म्मति खल नृपति नहुष तुमको बलपूर्वक पकडे तो तुम समयकी अवधिकर गुप्त भावसे उसको छलना ॥ १६ ॥ हे मदालसे ! तुम अकेलेमें उसके पास जाकर कहना "हे जगत्पते ! आप ऋषियोंसे वाहित दिव्य विमानपर चढकर मेरे पास आओ ॥१७॥ तो मैं संतुष्ट हो प्रसन्न मनसे तुम्हारे वशीभूत हूंगी यह मेरा निश्चित व्रत जानिये" हे सुश्रोणि !

परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता ॥ उपायैः कोटिभिः कामभिन्नचित्ताऽतिचञ्चला ॥ १४ ॥ शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ॥ तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते ॥ १५ ॥ यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः ॥ तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वंचय भूपतिम् ॥ १६ ॥ एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे ॥ ऋषियानेन दिव्येन मामुपेहि जगत्पते ॥ १७ ॥ एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम् ॥ इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः ॥१८॥ कामांध स मुनीन्याने योजयिष्यति पार्थिवः ॥ अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥१९॥ साहाय्यं जगदंबा ते करिष्यति न संशयः ॥ जगदंबापदस्मर्तुः संकटं न कदाचन ॥२०॥ यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥ भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति ॥२२॥

तुम्हारे इसप्रकार कहनेपर फिर वह नृपति कामसे अन्धे और मोहित हो ॥ १८ ॥ मुनिगणोंको यानवहनमें नियोजित करेगा तब तपस्वीलोग क्रोधित हो शापाग्निद्वारा अवश्यही उसको भस्म करेंगे ॥ १९ ॥ और भगवती जगदम्बिका तुम्हारी सहायता करेगी इसमें संदेह नहीं जो कोई जगदम्बिकाके चरणकमलोंको स्मरण करताहै उसको कभी संकट उपस्थित नहीं होता ॥ २० ॥ यदि उपस्थित हो तो उसको उसके मंगलार्थही जानना चाहिये अतएव तुम गुरुके वाक्यकी अनुवर्तिनी रहकर सम्यक् प्रकार यत्नसे उन मणिद्वीपनिवासिनी ॥ २१ ॥ जगज्जननी भुवनेश्वरीका

भजन करो व्यासजीने कहा हे महाराज ! शचीदेवी इंद्रका यह वचन सुन यही हो इसप्रकार कहकर विश्वस्तचित्तसे भावी कार्यमें उद्योगिनी हो नहुषके निकट गईं नहुष शची देवीको देखकर अत्यन्त आनंदित हो कहनेलगे॥२२॥२३॥हे सत्यभाषिणी ! तुम्हारी कुशल तो है ? हे कामिनि ! मैं तुम्हारे आधीन हू तुमने मेरा वाक्य पालन किया है ॥ २४ ॥ अतएव सत्यही कहता हूं मैं तुम्हारा दास हुआ हे मितभाषिणि ! जब तुम मेरे सामने आई हो तो मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं, हे शुचिस्मिते ! तुम लज्जा मत करो मैं तुम्हारा भक्त हूं तुम मेरा भजन करो ॥२५॥ हे विशालाक्षि ! तुम्हारा क्या प्रिय कार्य्य करना होगा कहो मैं इस समय वह पूर्ण करूंगा शचीने कहा हे प्रभो वासव ! आपसम्पूर्ण कार्य्यही

तथेत्युक्त्वाऽतिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा ॥ नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ स्वागतं सत्यवचनैस्त्वद धीनोऽस्मि कामिनि ॥ दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया ॥ २४ ॥ यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि ॥ न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते ॥ २५ ॥ कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ शच्युवाच ॥ सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव ॥ २६ ॥ मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो ॥ वांछितं कुरु कल्याण त्वद्वशाऽहमतः परम् ॥ २७ ॥ ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहाऽर्हसि ॥ कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वांछितम् ॥ २८ ॥ अल भ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम् ॥ शच्युवाच ॥ कथं ब्रवीमि राजेन्द्र प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥ २९ ॥ शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव ॥ राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले ॥ ३० ॥

सम्पादन करते हैं॥२६॥इस समय मेरे हृदयमें एक मनोरथ विद्यमान है आप मेरा वह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कीजिये इसके उपरान्त मैं आपकी वशवर्तिनी हूंगी ॥२७॥ हे कल्याणमय ! इस समय मैं अपने मनकी अभिलाषा प्रकाशित करती हूं आप उसका सम्पादन कीजिये नहुषने कहा हे चंद्रानने ! तुम्हारा क्या कार्य्य है कहो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ॥ २८ ॥ हे सुभ्रु ! तुम कहो वह यदि दुर्लभ भी हो तथापि मैं वह तुमको दूंगा शचीने कहा हे राजेन्द्र ! कैसे करूं आपकी मुझको प्रतीति नहीं होती ॥ २९ ॥ आप मेरा प्रिय कार्य्य करैं तो शपथ कीजिये

हे राजन् ! पृथिवीतलमें सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं ॥ ३० ॥ मैं सत्यपाशमें आपको बंधाहुआ जानकर फिर अपना मनोरथ कहूंगी हे भूपते ! यदि आप मेरा वांछित सम्पादन करेंगे तो मैं सदा आपकी वशवर्तिनी हूंगी ॥३१॥ यह मैं सत्यही आपके निकट कहती हूं नहुषने कहा हे सुंदरी ! मैं सब करूंगा ॥३२॥ अपने यज्ञ और दानादिसे अर्जित संपूर्ण पुण्यकी शपथ करके कहता हूं कि, तुम्हारा वाक्य अवश्य ही पूर्ण करूंगा; शचीने कहा इंद्रका उच्चैःश्रवा घोड़ा,ऐरावत हाथी ॥ ३३ ॥ और वासुदेवका गरुड़, यमका भैंसा, शंकरका बैल, ब्रह्माका राजहंस ॥३४॥ षडाननका मोर और

पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्येन यंत्रितम् ॥ कृते चेद्वांछिते भूपं सदा ते वशवर्तिनी ॥ ३१ ॥ भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम ॥ नहुष उवाच ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुंदरि ॥३२॥ शपामि सुकृतेनाऽहं यज्ञदानकृतेन वै ॥ शच्युवाच॥ इंद्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥ ३३ ॥ गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा ॥ ऋषभः शंकरस्याऽपि ब्रह्मणो वरटापतिः ॥ ३४ ॥ मयूरः कार्त्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः ॥ इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप ॥ ३५ ॥ यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नाऽसुराणां न रक्षसाम् ॥ वहंतु त्वां महाराज मुनयः संशितव्रताः ॥ ३६ ॥ सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वांछितम् ॥ सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ तेन ते तेजसो वृद्धिं वांछाम्यहमतंद्रिता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्यज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥

गणेशजीका मूँसा वाहन देखा जाता है किन्तु हे सुराधिप ! मैं तुम्हारा अपूर्व वाहन देखना चाहती हूं ॥३५॥ जो विष्णुकाभी नहीं देवताओंका भी नहीं राक्षसोंकाभी नहीं है.हे महाराज ! वह व्रतके धारण करनेवाले मुनिगण तुम्हारे वाहन हों ॥३६॥ हे महाराज ! मुनिगण आपको पालकी द्वारा कंधेपर चढ़ावें यही मेरा मनोवांछित जानिये हे वसुधाधिप ! मैं आपको सब देवताओंसे श्रेष्ठ जानती हूं ॥ ३७ ॥ उसके द्वारा आपके तेजकी वृद्धि हो इसकी मेरे मनमें अत्यन्त कामना है व्यासजीने कहा हे महाराज ! ज्ञानदुर्बल नहुष शचीका यह वचन सुनकर हँसने लगा॥३८॥

और तत्काल देवीकृत मोहसे मोहित होकर वासव—प्रियाकी प्रशंसाकर कहने लगा॥ ३९ ॥ नहुषने कहा हे तन्वङ्गि ! तुमने सत्यही मेरे उत्तम वाहनका विषय कहा हे सुकेशि ! शीघ्र ही मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य सम्पादन करूंगा ॥ ४० ॥ हे चारुहासिनि ! जो पुरुष अल्पवीर्य है वह मुनिगणोंको कभी वाहन करनेमें समर्थ नहीं होता मैं मुनिगणोंको वाहन कर विमानपर चढ़ तुम्हारे निकट आऊंगा इससे मेरा अतुलवीर्य प्रकाशित होगा इससें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ सप्तर्षिगण और संपूर्ण देवर्षिगण मुझको त्रिलोकमें सबकी अपेक्षा समर्थ और तपस्याद्वारा श्रेष्ठ जानकर वहन करेंगे इसमें संशय क्या है ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! तब नरपति नहुषने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर यह कह इन्द्राणीको बिदा किया

मोहितस्तु महादेव्या कृतमोहेन तत्क्षणम्॥ उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम्॥३९॥ नहुष उवाच॥ सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम ॥ करिष्यामि सुकेशांते वचनं तव सर्वथा ॥४०॥ नह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ॥ अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते ॥४१॥ सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे देवर्षयस्तथा ॥ समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाऽधिकम् ॥४२॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां सुसंतुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् ॥ मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥४३॥ नहुष उवाच ॥ अहमिंद्रोऽद्य भो विप्राःसर्वशक्तिसमन्वितः ॥ कार्यमत्र प्रकुर्वंतु भवंतो विगतस्मयाः ॥४४॥ इंद्रासनं मया प्राप्तं नेंद्राणी मामुपैति च ॥ आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः ॥ ४५ ॥ मुनियानेन देवेंद्र मामुपेहि सुराधिप ॥ देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद ॥ ४६ ॥ एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममाऽत्यंतं दुरासदम् ॥ भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः ॥ ४७ ॥

और कामाकुलित चित्तसे संपूर्ण मुनिगणोंको बुलाकर कहा ॥ ४३ ॥ नहुष बोले भो विप्रवर ! मैं इस समय सर्वशक्तियुक्त देवराज इन्द्र हुआ हूं आप आश्चर्य न करके मेरा कार्यसाधन कीजिये ॥ ४४ ॥ मैं इन्द्रासनको प्राप्त हुआ हूं किंतु इन्द्राणी मेरे समीप नहीं आती जब मैंने उसको बुलाया तब उसने मेरा अभिलाष जानकर प्रणामपूर्वक ॥ ४५ ॥ यह वचन कहा कि, हे देवेंद्र ! हे मानद ! आप मुनिवाह्य विमानपर चढ़ मेरे निकट आय मेरा प्रियकार्य करो ॥ ४६ ॥ हे महर्षिगण । यह कार्य सम्पादन करना मेरे पक्षमें अत्यन्त दुष्कर है,

तथापि आप दया करके मेरा यह कार्य कीजिये ॥ ४७ ॥ मेरा मन इन्द्रपत्नीमें अत्यन्त आसक्त होकर कामबाणसे निरंतर भस्म होता है. आप मेरे आश्रय स्थान होकर यह अद्भुत कार्य सम्पादन कीजिये ॥ ४८ ॥ अगस्त्य इत्यादि महर्षिगणोंने उसका यह असत् और अपमान करनेवाला वचन सुनकर और अवश्यम्भावि दैववशसे करुणार्द्रचित्तसे उसमें सम्मति दी ॥ ४९ ॥ नहुषका मन इन्द्राणीमें अत्यन्त आसक्त हुआ था, तत्त्वदर्शी ऋषिगणोंके यह वचन स्वीकार करनेपर वह अत्यन्त आनन्दित हुआ ॥५०॥ और शीघ्र मनोहर पालकीपर चढ मुनि गणोंको वाहन कर चलते चलते कहने लगा सर्प सर्प (चलो चलो) ॥५१॥ तब उस नहुष राजाने अत्यन्त कामार्त्त होकर चरणोंसे मुनिका

मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् ॥ भवंतः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम् ॥ अंगीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः ॥ ४९ ॥ अंगीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमीकृतमानसः ॥ ५० ॥ आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः ॥ वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्पसर्पेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम् ॥ अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा ॥ ५२ ॥ वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम् ॥ कशया ताडयामास पंचबाणसराहतः ॥५३॥ इंद्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् ॥ तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥ सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान् ॥ बहुवर्षसहस्राणि यत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥ ५५ ॥ विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम तव मोक्षो भविष्यसि ॥ ५६ ॥

मस्तक स्पर्श किया और जो मुनि अगस्त्य तपस्वियोंमें श्रेष्ठ लोपामुद्राके पति ॥५२॥ वातापी राक्षसके भक्षणकर्ता सागरके शोषनेवाले थे कामसे मोहित हो राजाने उनको कोड़ा मारा ॥५३॥ और इन्द्राणीमें चित्त लगा होनेसे सर्प सर्प (चलोचलो) ऐसा मुनिसे कहा तब मुनिने कशाघातसे क्रोधित हो उसे शाप दिया ॥५४॥ हे दुराचारी! तू सर्प २ कहकर हमको ताडन करता है इस कारण तू घोर बनमें बडा शरीरवाला सर्प होकर वहीं निवास करता रह अपने वीर्यवशसे विचरणकर अनेक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर जब अत्यन्त क्लेश भोगेगा ॥ ५५ ॥ तब फिर स्वर्गको

प्राप्त होगा तू जब युधिष्ठिर नामक नरपतिका दर्शन करेगा ॥ ५६ ॥ उसी समय उस धर्मपुत्रके मुखसे सम्पूर्ण प्रश्नोंका उत्तर सुनकर बंधनसे छूट जायगा. व्यासजीने कहा हे महाराज ! इस प्रकार शापको प्राप्त हो राजर्षि नहुष उन मुनिसत्तमका स्तव करते करते ॥५७॥ सहसा स्वर्गसे पतित हुआ और तत्काल सर्पका आकार धारण किया अनन्तर देवगुरु बृहस्पतिजीने शीघ्र मानससरोवरमें जाय ॥५८॥ देवराज इन्द्रसे यह सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कहा सुरपति नहुषनृपतिकी स्वर्गच्युत इत्यादि समस्त वृत्तान्त श्रवण कर॥५९॥अत्यन्त आनंदित हुए और प्रसन्न चित्तसे उसी स्थानमें वास करने लगे देवता और मुनिगण नहुषको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर ॥ ६० ॥ जिस स्थानमें इंद्र वास करते थे उसी

प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥५७॥ स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् ॥ बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ॥ ५८ ॥ इंद्राय सर्ववृतांतं कथयामास विस्तरम् ॥ तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ॥५९॥ मुदितोऽभून्महाराजः स्थितस्तत्रैव वासवः ॥ देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि ॥ ६० ॥ जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेंद्रः सरसि स्थितः ॥ तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तथा ॥ ६१ ॥ स्वर्गे समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् ॥ समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः ॥ ६२ ॥ स्थापयित्वाऽऽसने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम् ॥ इंद्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये ॥ ६३ ॥ चिक्रीड नंदने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया ॥ व्यास उवाच ॥ एवमिंद्रेण संप्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ॥ ६४ ॥ हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं मुदा मुनिम् ॥ पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप ॥ ६५ ॥

मानससरोवरमें गये तब मुनिगण और देवता सब मिलित होकर इन्द्रको समझाय ॥ ६१ ॥ और सन्मानित कर फिर स्वर्गमें ले आये फिर सम्पूर्ण देवता और ऋषिगणने आये हुए इन्द्रको ॥ ६२ ॥ स्वर्गके सिंहासनपर स्थापित कर तिसके उपरान्त अभिषेक क्रिया सम्पादन की इन्द्र भी अपने सिंहासनको प्राप्त हो प्रणयिनी शचीके सहित सुरालयके ॥६३॥ मनोहर वनमें क्रीडा करने लगे. व्यासजीने कहा हे राजन् ! कामरूप महर्षि असुरेश्वर विश्वरूपको मारकर इन्द्र इस प्रकार अत्यंतदारुण दुःख भोगकर तदनंतर देवीके प्रसादसे अपने आसनको प्राप्त हुए थे॥६४॥६५॥

हे राजेंद्र ! तुमने जो पूँछा था मैंने वही वृत्रासुरका वध वृत्तांत रूप अत्युत्तम उपाख्यान आपके निकट कीर्त्तन किया ॥ ६६ ॥ हे कुरुकुल भूषण ! आप निश्चय जानिये कि जीवगण जिस प्रकार कर्म करते हैं उसी प्रकार फलको प्राप्त होते हैं, किया हुआ कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो अवश्य ही उसका फल भोगना होगा, इसमें संदेह नहीं इसी प्रकार इन्द्रने भी ब्रह्महत्यारूप अपने किये हुए कर्मका फल भोगा था ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा इन्द्रका अद्भुत चरित्र और उनका स्थानभ्रंश तथा दुःखकी प्राप्ति भलीभांति वर्णन की ॥ १ ॥ और उनके प्रसङ्गमें देवाधिदेवी

एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे षष्ठस्कंधे वृत्रवधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ जनमेजय उवाच ॥ कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याऽद्भुतकर्मणः ॥ स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः ॥ १ ॥ यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमाऽतीव वर्णितः ॥ संदेहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः ॥२॥ देवाधिपत्यमासाद्य दुःखहं दुःखमन्वभूत् ॥ मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तुं स्थानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ देवेशत्वं च संप्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे ॥४॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः ॥ नावाच्यं महतां किंचिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥५॥

भुवनेश्वरीकी महिमा भी विशेषरूपसे वर्णन की किन्तु इस बातका मेरे मनमें एक सन्देह उपस्थित हुआ है कि इन्द्र महातपस्वी थे ॥ २ ॥ उन्होंने दुःख नाशक देवाधिपत्यको प्राप्त होकर भी दुःख अनुभव क्यों किया था वह सौ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करके देवाधिपत्य और उत्तम स्थानको प्राप्त होकर भी ॥ ३ ॥ किस कारण उस स्थानसे भ्रष्ट हुए? हे करुणानिधे! आप दया करके यह सम्पूर्ण कारण मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ आप सर्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ और पुराणसमूहके प्रवर्तक हैं मैं आपका श्रद्धान्वित शिष्य हूं ऐसे प्रिय

शिष्यके निकट महत् पुरुषोंका न कहनेयोग्य कुछ भी नहीं है॥ ५॥ अतएव हे महाभाग ! आप कृपाकरके मेरा यह सब संशय दूर कीजिये सूतजीने कहा जनमेजयके सत्यवतीपुत्र व्यासदेवजीसे इसप्रकार पूँछनेपर ॥ ६ ॥ उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न मनसे यथाक्रमसहित उसका उत्तर दिया। व्यासजीने कहा हे नृपवर ! आप उसका सम्पूर्ण अद्भुत कारण सुनिये ॥ ७ ॥ तत्वके जाननेवाले पुरुष कहते हैं कि कर्मकी गति संचित, वर्तमान और प्रारब्धभेदसे तीनप्रकारकी है ॥ ८ ॥ इसके प्रत्येककी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन तीन प्रकारजाननीचाहिये अनेक जन्ममें उत्पन्न किये हुए प्राक्तनकर्मको संचित कहते हैं ॥ ९ ॥ हे भूपते ! संचित कर्म शुभहो वा अशुभहो अथवा बहुतकालका हो प्राणिगणोंको

तस्मात्कुरु महाभाग मत्संदेहापनोदनम् ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥ ६ ॥ तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम् ॥ ७ ॥ कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः ॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः ॥ ८ ॥ अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् ॥ सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः ॥ ९ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं भूप संचितं बहुकालिकम् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥ १० ॥ जन्मजन्मनि देवानां संचितानां च कर्मणाम् ॥ निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥ क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते ॥ देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वा समाचरेत् ॥१२॥ संचितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल ॥ देहारंभे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ॥१३॥ प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः॥ प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः॥१४॥

अवश्यही उस अच्छे बुरेकर्मका फल भोगना पडेगा ॥१०॥ जीवगण जन्म जन्ममें किये संचित कर्मोंका फल भोगे बिना वह सौकरोड़ कल्पमेंभी नष्ट नहीं होता ॥ ११ ॥ जो कर्म करना आरम्भ किया है इस समय भी वह नष्ट नहीं होता इसको ही वर्त्तमान कर्म कहते हैं जीव देहधारण करके शुभ हो अथवा अशुभ हो यह वर्त्तमानकर्म सम्पादन करते हैं ॥ १२ ॥ देहारम्भके समय कल्पपूर्वमें किये हुए संचितकर्मोंमें कुछेक अंश हरण करके भोगके निमित्त प्रेरण करता है ॥ १३ ॥ इसकोही प्रारब्ध कर्म कहते हैं फलके भोगसे वह नष्ट होता है प्राणियोंको अवश्यही यह

प्रारब्ध कर्म्म भोगना पडेगा ॥१४॥ हे महाराज ! देवता हो या मनुष्य हो असुर हो वा यक्ष हो गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो पूर्वसे किये हुए धर्म्म अधर्म्मका फल अवश्यही भोगना पड़ेगा, यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ १५॥ पूर्वमें किया हुआ कर्मही देव मनुष्य यक्ष गन्धर्व किन्नर कोई हो सबके देहारम्भका कारण होता है ॥ १६ ॥ कर्मका क्षय होनेसे प्राणियोंका जन्म नष्ट होता है इसमें संशय नहीं है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और सुरगण ॥ १७॥ तथा दानव यक्ष गन्धर्वादि सबही कर्मके वशीभूत हैं हे नृप ! कर्मके विना देहिगणोंके सुख दुःख भोगनेका कारणस्वरूप देहसम्बन्ध किसप्र कार उपस्थित हो सकता है अतएव हे राजेन्द्र ! कालके परिपाकसे अनेक जन्मजनित संचित कर्मोंमें ॥ १८ ॥

पुरा कृतानि राजेंद्र ह्यशुभानि शुभानि च ॥ अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः ॥ १५ ॥ देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगंधर्व किन्नरैः ॥ कर्मैव हि महाराज देहारंभस्य कारणम् ॥ १६ ॥ कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा ॥ १७ ॥ दानवा यक्षगंधर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल ॥ अन्यथा देहसंबंधः कथं भवति भूपते ॥ १८ ॥ कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः ॥ तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानां च कर्मणाम् ॥ १९ ॥ मध्ये वेगः समायाति कस्य चित्कालपाकतः ॥ तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥२०॥ पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च ॥ तथा नाराय णो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ ॥२१॥ जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ ॥ पुराणपीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता॥२२॥

॥ १९ ॥ किसी कर्मका वेग उपस्थित होता है जिसका वेग उपस्थित हो वही प्रारब्ध है, इसी प्रारब्धवशसे मनुष्य तथा देवादि सबही जिस प्रकार पुण्य करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार पापकार्य्य भी करते हैं, इससे आप जानिये कि इन्द्रने पुण्यसे जिसप्रकार देवाधिपत्य प्राप्त किया था उसी प्रकार पाप प्रारब्धसे ब्रह्महत्या कर अपने पदसे भ्रष्ट हुए थे इसमें फिर संदेहका क्या विषय है ? हे राजेन्द्र ! केवल इन्द्रही कर्मके वशीभूत नहीं हैं धर्मपुत्र नर और नारायणनेभी कर्मके वशीभूत हो ॥ २१ ॥ जन्मग्रहण किया था इसमें नर और नारायणके अंशसे अर्ज्जुन और कृष्ण दोनोंही कर्मवशसे नारायणके अंशसे अवतीर्ण हुए थे मुनिगण इनको ही पुराणोंकी पीठिका अर्थात् क्रमरूपसे

वर्णन किया है यही प्रमाण है सो वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥ जो अतुल ऐश्वर्यवान् हैं उनको देवांश जानना चाहिये, जो मुनि नहीं हैं वे ज्ञान प्रतिपादक शास्त्र प्रणयन नहीं करते जो रुद्र नहीं हैं वे रुद्रकी अर्चना नहीं करते ॥ २३ ॥ जो देवताओंके अंशसे नहीं हैं वे अन्नदान नहीं करते जो विष्णुका अंश नहीं हैं वे पृथिवीपति नहीं होते, हे पृथिवींद्र ! इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और धनदसे ॥ २४ ॥ प्रभुत्व प्रभाव कोप और पराक्रम ग्रहण कर जीवोंका शरीर बनता है यही स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ २५ ॥ लोकमें जो कोई पुरुष बलवान् भाग्यवान् भोगवान् विद्यावान् अथवा दानशील है वही पुरुष देवांश कहा जाता है ॥ २६ ॥ हे वसुधाधिप ! इसीप्रकार पाण्डवोंको देवांश और नारायणके

देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः ॥ नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते ॥ २३ ॥ नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ इंद्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥ २४ ॥ प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम् ॥ आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥२५॥ यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् ॥ विद्यावान्दानवान्वाऽपि स देवांशः प्रपठ्यते ॥ २६ ॥ तथैवैते समाख्याताः पांडवाः पृथिवीपते ॥ देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥ २७ ॥ शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदुःखयोः ॥ शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखदुःखमनंतरम् ॥२८॥ देहि नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि ॥ जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः ॥ २९ ॥ पांडवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः ॥ स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयक्रतूत्तमम् ॥ ३० ॥

समान प्रभावशाली वासुदेवको तो देवरूपही जानना चाहिये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! आप निश्चय जानिये कि प्राणिगणोंका शरीर सुखदुःख भोगनेकास्थान है यह शरीरधारी जीवगण सदाही सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख भोग करते आते हैं ॥२८॥ कोईभी देही (जीवात्मा) स्वाधीन नहीं है सदाही दैवके आधीन हैं वे अपने वशमें न रहकर दैवके वशीभूत हो जन्म, मृत्यु सुख और दुःख पाते हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! दैव जो सबकी अपेक्षा बलवान् है इस विषयका निदर्शन देखिये, पाण्डवोंने प्रथम वनमें जन्म ग्रहण कर तिसके उपरान्त अपने घर

गये थे अनन्तर अपने बाहुबलसे राजसूयमहायज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ३० ॥ फिर कठोर दुःखदायक वनवासको प्राप्त हुए तदनन्तर अर्ज्जुनने कठिन तपस्या की जो अजितेन्द्रियोंको दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ देवताओंने संतुष्ट हो उसको कल्याणदायक वर प्रदान किया तथापि उसने दुःखके कठोर हाथसे रक्षा नहीं पाई. नरदेहमें किया हुआ वनवास जनित पुण्य कहां चला गया ॥ ३२ ॥ उसने पूर्व जन्ममें नर नामक धर्म पुत्र हो वदरिकाश्रममें जो भारी तपस्या की थी इस समय अर्ज्जुन देहमें वह फलदायक नहीं हुई ? ॥ ३३ ॥ प्राणिगणोंके देहसम्बंधमें कर्मकी गति अत्यंत दुर्जय है देवता भी जब उसको नहीं जान सकते तब मनुष्योंके सम्बंधमें फिर क्या बात है ॥ ३४ ॥ भगवान् वासुदेवने भी अत्यंत

वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम् ॥ अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेंद्रियैः ॥ ३१ ॥ संतुष्टस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् ॥ नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम् ॥ ३२ ॥ नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे ॥ नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं संबभूव ह ॥ ३३ ॥ प्राणिनां देहसंबंधे गहना कर्मणो गतिः ॥ दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा ॥ ३४ ॥ वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसंकटे ॥ नीतोऽसौ वासुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम् ॥३५॥ एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत ॥ पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात् ॥ ३६ ॥ मोचयामास पितरौ बंधनाद् भृशदुःखितौ ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरापुरे ॥ ३७ ॥ जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः ॥ सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत् ॥ ३८ ॥

संकटके स्थल कारागारमें जन्म ग्रहण कर अंतमें वसुदेवसे नंदगोपके गोकुलमें आये ॥ ३५ ॥ वहां ग्यारह वर्ष वास कर तथा फिर मथुरामें आये बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसको मारा था ॥ ३६ ॥ अनन्तर उन्होंने अत्यंत दुःखित पिता माताको बंधनसे छुडाकर और उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा किया था॥३७॥तदनंतर उन्होंने म्लेच्छराज कालयवनके भयसे द्वारकापुरीको गमन किया इस प्रकार जनार्दन कृष्णने देहके वशीभूत हो द्वारावती नगरीमें अनेक कार्य साधन करके महत् पुरुषार्थ साधनके अनंतर कुटुम्बगणोंके सहित प्रभासतीर्थमें देहपरित्याग कर वैकुण्ठको

गमन किया था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ प्रभास तीर्थमें विप्रके शापसे सम्पूर्ण यादवगण, पुत्र, पौत्र, सुहृद्, भाई, बहन तथा कुलकामिनी गणोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपके निकट कर्म्मकी गहन गतिविषय वर्णन किया अधिक और क्या कहूं इस कर्मके वशीभूत हो स्वयं वासुदेव भी व्याधके बाणसे मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ जनमेजयने कहा हे द्विजेंद्र ! आपने कहा है कि, पृथिवीका भार हरण करनेके निमित्त राम और कृष्णने जन्म

कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः ॥ देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुंबो दिवं गतः ॥३९॥ पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ४० ॥ एवं ते कथिता राजन्कर्मणो गहना गतिः ॥ वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥४१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ जनमेजय उवाच ॥ भारावतरणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः ॥ संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति ॥ १ ॥ पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता ॥ द्वापरांतेऽतिदीनाऽऽर्ता गुरुभारप्रपीडिता ॥ २ ॥ वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः ॥ भूभारोत्तरणार्थाय साधूनां रक्षणाय च ॥३॥ भगवन्भारते खंडे देवैः सह जनार्दन ॥ अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो ॥ ४ ॥ एवं संप्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः ॥ बभूव सह रामेण भूभारोत्तराणाय वै ॥ ५ ॥

ग्रहण किया था इस विषयका मेरे हृदयमें बड़ा संशय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ वह आप सुनिये, द्वापरयुगके अवसानमें पृथिवी भारी पापसे आक्रान्त और कातर हो गोरूपधारण कर ब्रह्माजीकी शरणागत हुई थी ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजी पृथिवीके सहित भूभारहरण और साधुओंकी रक्षाके निमित्त ॥ ३ ॥ कमलापति प्रभु विष्णुके निकट जाय प्रार्थना कर कहने लगे हे विभो ! आप पृथिवीमें वसुदेवके घर अवताररूपसे शीघ्र जन्म ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीकी इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान्ने पृथिवीका भारहरण करनेके

निमित्त बलरामके सहित देवकीके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था ॥ ५ ॥ उन्होंने इस पृथिवीमें अनेक दुष्टस्वभाव पुरुषोंको और अनेकानेक राजाओंको पापबुद्धि और दुराचारी जानकर उनको मार कुछेक पृथिवीका भार दूर किया था ॥ ६ ॥ इसमें भीष्म, द्रोण, विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यका पुत्र कर्ण भी मारे गये थे ॥ ७ ॥ किंतु जिन्होंने धन लूटा तथा हरिकी रमणीगणोंको हरण किया था वह सम्पूर्ण करोड़ करोड़ आभीर शक म्लेछ और निषादगण पृथ्वीमें शेष रहे बुद्धिमान् कृष्णने यदि उनको न मारा तो उनका पृथिवीका भार दूर करना किस प्रकार हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! कलिकालमें संपूर्ण प्रजाको पापनिरत देखकर यह महा संशय मेरे चित्तसे किसी प्रकार

कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः ॥ ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥ ६ ॥ हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा ॥ बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥ ७ ॥ यैर्लुंठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः ॥ कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले ॥ ८ ॥ आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा ॥ भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता ॥९॥ संदेहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः ॥ कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥१०॥ व्यास उवाच ॥ राजन्यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥ ११ ॥ ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन् ॥ धर्मार्थरसिका ये तु ते नै त्रेतायुगेऽभवन् ॥ १२ ॥

दूर नहीं होता ॥१०॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! कालके वशीभूत हो जिस युगमें जिस प्रकार स्वभावादि युक्त प्रजा उत्पन्न होती है अन्यथा भाव कभी नहीं होता युगधर्मको ही इस विषयका उसका विशेष कारण जानना चाहिये ॥११॥ तत्र युगधर्मके अनुसार जो दुष्ट अथवा दुराचारी हैं उन सबको मारनेपर संपूर्ण प्रजा एकवार उच्छेद (नाश) हो जाती है इससे सृष्टि स्थिति प्रलयरूप सनातन जगत् प्रवाह विनष्ट होता है इसी कारण भगवान् कृष्णने पृथिवीके भार स्वरूप दानव और दुराचारी क्षत्रियवर्गोंका विनाश किया था, अन्योंका नहीं हे राजन् ! जो धर्मपरायण

हैं वह सत्ययुगमें और जो धर्म तथा अर्थपरायण हैं वह त्रेतायुगमें ॥१२॥ जो धर्म और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह द्वापर युगमें और अर्थ तथा कामपरायण हैं वह इस कलिकालमें जन्मग्रहण करते हैं॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप निश्चय जानिये कि युगधर्मका व्यत्यय (विपरीत) कभी नहीं होता और काल धर्म तथा अधर्म करनेवाले सदाही विद्यमान हैं ॥ १४ ॥ राजाने कहा हे महाभाग ! सत्ययुगमें जिन सब धर्मपरायण महात्माओंने जन्म ग्रहण किया था वह पुण्यशाली मनुष्य इस समय कहां हैं ? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! जो त्रेता अथवा द्वापर युगमें दानव्रत परायण थे वह मुनिगणभी इस समय कहां हैं ॥ १६ ॥ और इस वर्त्तमान कलियुगमें जो संपूर्ण दयारहित तथा निर्लज्ज मनुष्य विद्यमान हैं वह

धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे ॥ अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवंति हि ॥ १३ ॥ युगधर्मस्तु राजेंद्र न याति व्यत्ययं पुनः ॥ कालः कर्त्ताऽस्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः ॥१४॥ राजोवाच ॥ ये तु सत्ययुगे जीवा भवंति धर्मतत्पराः ॥ कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठंति पुण्यभागिनः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः ॥ वर्तंते मुनयः श्रेष्ठ कुत्र ब्रूहि पितामह ॥१६॥ कलावत्र दुराचारा येऽत्र संति गतत्रपाः ॥ आद्ये युगे क्व यास्यंति पापिष्ठा देवनिंदकाः ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ ये वै कृतयुगे राजन्संभवंतीह मानवाः ॥ कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजंति वै ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ स्वधर्मनिरता यांति लोकान्कर्मजितान्किल ॥ २० ॥ सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजंतुषु ॥ २१ ॥

पापिष्ठदेव और गुरुनिन्दक गण सत्ययुगके समय कहां जायँगे ॥ १७ ॥ हे महामते ! मैं यह संपूर्ण धर्मनिर्णयको सुननेके निमित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ हूं आप कृपा करके इन सबका गूढतत्व विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जो मनुष्य सत्ययुगमें इस पृथ्वीके ऊपर जन्मग्रहण करता है वह पुण्यजनित कर्मोंके अनुष्ठानसे देवलोकको जाता है ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम ! विप्रवर्ग क्षत्रिय वैश्य और शूद्रगण अपने अपनेधर्म कार्यमें निरत रहकर अपने अपने कर्मार्जित लोकमें जाते हैं ॥ २० ॥ सत्य, दया, दान, स्वदारगमन, अहिंसा

और सब जीवोंके प्रति समान भावसे दया ॥ २१ ॥ यह सब साधारण धर्मका आचरण करके वह धर्मके बलसे संपूर्ण रजकादि नीचवर्ण भी स्वर्गको जाते हैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार त्रेता और द्वापर युगमेंभी अपने अपने धर्मार्जित पुण्यके बलसे मनुष्यगण स्वर्गमें जाते हैं किंतु इस कलियुगमें पापासक्तमनुष्यगण नरकमें जाकर युगके विपर्यय (समाप्ति) पर्यंत उस घोर नरकमें वासकर तदनन्तर फिर इस पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! जब सत्ययुगका आदि और कलियुगका अन्त होता है उसी समय पुण्यवान् महात्मा स्वर्गसे पृथ्वीमें जन्मग्रहण करते हैं ॥ २५ ॥ और जब कलियुगका आदि और द्वापारयुगका अन्त उपस्थित होता है उसी समय पापीगण नरकसे पृथ्वीमें

एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः ॥ स्वर्गं यांतीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः ॥ २२ ॥ तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा ॥ कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यांति मानवाः ॥२३॥ तावत्तिष्ठंति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः ॥ पुनश्च मानुषे लोके भवंति भुवि मानवाः ॥२४॥ यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरंतश्च पार्थिव ॥ तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायंते किल मानवाः ॥ २५ ॥ यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा ॥ नरकात्पापिनः सर्वे भवंति भुवि मानवाः ॥ २६ ॥ एवं कालसमाचारो नान्यथाऽभूत्कदाचन ॥ तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा ॥ २७ ॥ कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत् ॥ कलौ ये साधवः केचिद्द्वापरे संभवंतिते ॥२८॥ अथ त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा ॥ दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवंति कलावपि ॥२९॥

फिर मनुष्यजन्म ग्रहण करते हैं ॥२६॥ हे महाराज ! कालका आचार इसी प्रकार जानना चाहिये, कभी उसके अन्यथा नहीं होता देखो कलियुग असत्कार्य करनेवाला है इसीकारणसे कलियुगकी सब प्रजाभी उसीके अनुरूप पापाचारी होती है ॥ २७ ॥ कभी कभी दैवयोगसे इन प्राणियोंके जन्म ग्रहणकी विपरीतता होती है इसीकारण कलिकालमें जो सदाचरण करता है वह द्वापरयुगका मनुष्य होता है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार सत्कार्य करके द्वापरके युगका मनुष्य त्रेतायुगमें और त्रेताका मनुष्य सत्ययुगमें जन्म ग्रहण करता है और जो सत्ययुगमें दुष्ट है वह क्रमानुसार

कलियुगकाही मनुष्य होता है ॥ २९ ॥ जीवगण अपने किये कर्मफलके प्रभावसे असुख भोगकर भी युग धर्मके कारण फिर इसी प्रकार कर्म करके उस फलका अत्यन्त कष्ट भोगते हैं ॥ ३० ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आप भलीभाँति युगधर्मका विषय कहिये कि, सत्ययुगमें किसप्रकार धर्म था उसके सुननेकी मैं अत्यंत अभिलाषा करता हूं ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मैं आपके निकट युगधर्मका विषय विस्तारपूर्वक कहता हूं आप मनलगाकर सुनिये. हे नृपवर ! युगधर्मके अनुसार साधुगणोंका मन विचलित होता है ॥ ३२ ॥ देखो ! आपके पिता महात्मा और धर्मात्मा थे तथापि दुष्टमति कलिने उनके चित्तकी वृत्तिको कलुषित करके उनको ब्राह्मणोंके अपमानार्थ प्रवर्तित किया

कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवंत्यसुखानि च ॥ पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वंति युगभावतः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥ यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपशार्दूल दृष्टांतं ते ब्रवीम्यहम् ॥ साधूनामपि चेतांसि युगभावाद्भ्रमंति हि ॥ ३२ ॥ पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने ॥ कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसंभवः ॥ तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत् ॥ ३४ ॥ सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता ॥ प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः ॥ ३५ ॥ नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥ ३६ ॥ गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः ॥ गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः॥३७॥

था ॥ ३३ ॥ उन्होंने क्षत्रियप्रवर और ययाति कुलमें उत्पन्न राजा होकर भी तपस्वीके गलेमें मराहुआ सर्प क्यों डाला था ? ॥३४॥ अतएव हे महाराज ! सम्पूर्ण कार्य युगधर्मके बलसेही होते हैं,यह पंडितगणभीस्वीकार करते हैं। आपविशेष यत्नसे धर्मकार्यका अनुष्ठान करें इससे युगकी प्रबलता होनेपरभी चेष्टासे कुछेक धर्म कर्म अनुष्ठित होसकता है ॥३५॥ हे राजेन्द्र ! पुण्यमय सत्ययुगके समय वेदपारग ब्राह्मण देवीके दर्शनकी इच्छासे सदाही परमशक्तिकी अर्चनमें निरत ॥ ३६ ॥ गायत्री और प्रणव मन्त्रमें तथा गायत्री ध्यानमें आसक्त रहकर एक मात्र मायाबीज

मंत्रका जप करते ॥ ३७ ॥ समस्त ही विप्रगण अपने अपने ग्राममें महामाया अंबिकाका मंदिर बनानेमें उत्सुक हो सत्य शौच और दयायुक्त मनसे अपने अपने कर्मोंमें निरत रहते ॥ ३८ ॥ तत्त्व ज्ञानमें निपुण क्षत्रियगण सदाही त्रयीविहित (तीनों वेदोंमें कहे) कर्मका अनुष्ठान करके प्रजाके प्रति पालन करनेमें तत्पर रहते ॥ ३९ ॥ वैश्यगण कृषि वाणिज्य और गोसेवामें अनुरक्त तथा शूद्रगणभी सदाही ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी सेवामें निरत रहते ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्ययुगमें संपूर्ण वर्णही परमशक्ति अंबिका देवीकी पूजामें अनुरक्त रहते किंतु त्रेतायुगमें उक्तधर्म की मर्यादा कुछेक कम हुई थी ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार द्वापरयुगमें सत्ययुगकी धर्ममर्यादा भलीभांति न्यूनताको प्राप्त होगई जो पूर्वके युगमें

ग्रामेग्रामे परांबायाः प्रासादकरणोत्सुकाः ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥ त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञान विशारदाः ॥ अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥ ३९ ॥ वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा ॥ शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप॥४०॥परांबा पूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे ॥ तथा त्रेतायुगे किंचिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः॥४१॥द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्युगस्थितिः ॥ पूर्वं ये राक्षसा राजंस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ४२ ॥ पाखंडनिरताः प्रायो भवंति जनवंच काः ॥ असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः ॥ ४३ ॥ दांभिकालोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः ॥ शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्म प्रवर्तकाः ॥ ४४ ॥ वेदनिंदाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः ॥ यथायथा कलिर्वृद्धिं याति राजंस्तथातथा ॥ ४५ ॥ धर्मस्य सत्य मूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत् ॥ तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥

राक्षस थे वही कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण हुए॥४२॥ जो पाखण्डमें निरत बहुधा जनोंके छलनेवाले असत्यवादी गूढ वेदके धर्मसे रहित ॥ ४३ ॥ दांभिक लोकवार्त्तामें बडे चतुर मानी वेदवादवर्जित शूद्रोंकी सेवामें तत्पर नानाप्रकारके धर्मके चलानेवाले ॥ ४४ ॥ वेदकी निंदा करनेवाले क्रूर धर्मभ्रष्ट मुँहदेखी कहनेवाले हुए हे राजन् ! जैसे जैसे कलियुग वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ तैसे तैसे सत्यही है मूल जिस धर्मका उसका क्षय होजाता है तिसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्रभी धर्म वर्जित होगये ॥ ४६ ॥

और शेप अंत्यज महाझूंठे पापी हुए कलियुगमें ब्राह्मण शूद्रोंके धर्ममें परायण, दान लेनेमें निपुण होंगे ॥ ४७ ॥ हे नृपसत्तम ! कलियुगकी वृद्धिमें यह सब होगा स्त्री काम लोभ और मोहयुक्त होकर अत्यंत प्रबल अपनी इच्छानुसार चलनेवाली ॥ ४८ ॥ पापका आचरण करनेवाली और मिथ्या बोलनेवाली होकर लोक समाजको महा क्लेश करनेवाली होती है और अपनेको धर्म भाषणमें परम पंडित जानकर उपदेश देनेमें तत्पर और पतिके छलनेमें प्रवृत्त ॥ ४९ ॥ और अत्यंत पापिष्ठ होती हैं हे नृपसत्तम ! आहारकी और चित्तकी शुद्धि होती है ॥ ५० ॥ इससे धर्म भलीभांति प्रकाशित होता है. वर्णाश्रमधर्मके आचारके संकर दोषसेही ॥५१॥ धर्म संकर दोषकी उत्पत्ति होती है. धर्मसंकरके

असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ ॥ शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः ॥ ४७ ॥ भविष्यंति कलौ राजन्युगे वृद्धिं गताः किल ॥ कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥४८॥ पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप ॥ स्वभर्तृवंचका नित्यं धर्मभाषणपंडिताः ॥४९॥ भवंत्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे ॥ आहारशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते ॥५०॥ शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम ॥ वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥ ५१ ॥ धर्मस्य संकरे जाते नूनं स्याद्वर्णसंकरः ॥ एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥ ५२ ॥ स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते ॥ महांतोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप ॥ ५३ ॥ कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित् ॥ तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावापापकारिणाम् ॥ ५४ ॥ निष्कृतिर्न हि राजेंद्र सामान्योपायतो भवेत् ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ ५५ ॥

उपस्थित होनेपर वर्णसंकर दोषकी उत्पत्ति होती है. हे राजन् ! इस प्रकार कलियुगमें क्रमानुसार सब धर्मोंका लोप होनेसे ॥ ५२ ॥ अपने वर्णके धर्मकी बात फिर कहीं भी नहीं सुनी जाती. हे नृपवर ! इस युगमें धर्मके जाननेवाले महान् पुरुषभी अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ५३ ॥ कलिका स्वभाव ही इस प्रकार है उसको त्याग करनेमें कोई समर्थ नहीं होते. अतएव हे राजेन्द्र ! इस समय मनुष्य स्वभावके नियमानुसारही पाप कार्यमें नियुक्त होते हैं ॥ ५४ ॥ इसी कारण सामान्य उपायसे उनकी निष्कृति नहीं हो सकती. जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आप संपूर्ण

धर्मोंके जाननेवाले और सर्वशास्त्र विशारद हैं ॥ ५५ ॥ इस अधर्मवाले कलियुगमें नरगणोंकी गति किस प्रकार होगी ? ॥ यदि कोई उपाय हो तो आप कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥ ५६ । व्यासजीने कहा हे महाराज ! कलियुगके पापोंसे निस्तार पानेके लिये एकमात्र उपाय विद्यमान है और दूसरा कोई नहीं है जीवगण सम्पूर्ण पाप और दोषके दूर करनेके लिये महादेवीके चरण कमलोंका ध्यान करैं॥५७॥हे नरेंद्र ! महादेवजीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है इस संपूर्ण संसारमें उतना पाप नहीं है. अतएव इसमें फिर भयका कारण कहां है ? ॥ ५८ ॥ वह नाम अज्ञान द्वारा लीलापूर्वक उच्चारण होनेपर भी वह क्या क्या अनिर्वचनीय फल प्रदान करती हैं उसको विष्णु तथा रुद्र इत्यादिभी जाननेमें समर्थ

कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत् ॥ यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ एक एव महाराज तत्रोपायोस्ति नाऽपरः ॥ सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदांबुजम् ॥ ५७ ॥ न संत्यघानि तावंति यावती शक्तिरस्ति हि ॥ नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥ ५८ ॥ अवशेनाऽपि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि ॥ किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥ ५९ ॥ प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः ॥ तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥ ६० ॥ निरंतरं परांबाया नामसंस्मरणं चरेत् ॥ छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥ देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥ ६२ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ अजपां नाम गायत्रीं जपंति निखिला जनाः ॥ ६३ ॥

नहीं हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! श्रीदेवीके नामको स्मरण करनेसेही पापोंका प्रायश्चित्त होता है, अतएव कलिसे डरे हुए मनुष्यगण पुण्यक्षेत्रमें वास करके ॥ ६० ॥ सदाही परमादेवीका नाम स्मरण करैं. इस सम्पूर्ण जगत्में वास करनेवाले जीवगणोंका छेदभेद और विनाश करके भी ॥६१॥ जो देवीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य पापमें लिप्त नहीं होता. हे राजन् ! मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढ तत्व कीर्तन किया ॥ ६२ ॥ यह सब विषय भलीभांति विचारकर आप सदाही देवीके चरण कमलोंका ध्यान कीजिये सम्पूर्ण जीवगण अजपा नामक गायत्रीका सदाही जप करते

हैं ॥६३॥ किन्तु उसकी महिमा नहीं जानते. हे राजन् ! इससे मायाका महत् वैभवही प्रतिपादित होता है. ब्राह्मण हृदयके भीतर गायत्री मन्त्रका जप करते हैं ॥६४॥ किन्तु उसकी महिमाको नहीं जानते हैं हे नृपवर ! इससे भी मायाका महत्प्रभाव मात्रही प्रकाशित होता है. हे राजन् ! आपने युग धर्मकी व्यवस्थाके विषयमें जो पूँछा था वह सम्पूर्ण कहा ॥ ६५ ॥ इस समय आप और क्या सुननेकी अभिलाषा करते हैं ? ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! पृथिवीमें देवता और मनुष्य

महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपंति हृदयांतरे ॥ ६४ ॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप ॥ ६५ ॥ युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंध एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा ॥ १ ॥ फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः ॥ विधिं तु तीर्थयात्रायां नियमांश्च विशेषतः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च ॥ येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्यायनानि च ॥ ३ ॥ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा गंडकी सिंधुर्गोमती तमसा तथा ॥ ४ ॥ कावेरी चंद्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा ॥ चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ॥ ५ ॥

गणोंके गमन योग्य पवित्र क्षेत्र और नदी इत्यादि जो सम्पूर्ण पुण्यतीर्थ विद्यमान हैं आप उन सबके नाम ॥ १ ॥ उन सब तीर्थोंमें स्नानादि जो फल होता है और उन संपूर्ण तीर्थोंकी यात्राके विधि नियम किस प्रकार हैं वह सब भलीभांति कहिये ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अनेक प्रकारके तीर्थोंका विषय और जिन सब तीर्थोंमें देवीके श्रेष्ठ मंदिर विद्यमान हैं वह सब कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिंधु, गोमती, तमसा ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती, चर्म्मण्वती, सरयू, तापी

और साबरमती यह सब नदियां प्रधान और पवित्र हैं ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त शत शत नदी पृथ्वीमें विद्यमान हैं उनमें जो सम्पूर्ण नदी समुद्रमें गिरती हैं वह सबही अत्यन्त पवित्र हैं और जो नदियें समुद्रमें नहीं जाती वह उनकी अपेक्षा अल्प पवित्र हैं ॥ ६ ॥ और समुद्रगामिनी नदियोंमें जो सर्वदाही प्रबल प्रवाहसे प्रवाहित होती हैं उनको अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये, किन्तु श्रावण और भाद्र इन दो महीनोंमें वह संपूर्ण नदी रजस्वला होती हैं ॥७॥ और कितनी एक नदियें वृष्टिसे प्रवाहित होकर ग्रामोपयोगी जल मात्र वहन करती हैं. हे राजन् ! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, पवित्र, धर्मारण्य ॥ ८ ॥ प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्य यह सम्पूर्ण क्षेत्रही पुण्यदाता विख्यात हैं ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पर्वतोंमें

एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः ॥ तासां समुद्रगाः पुण्या स्वल्पपुण्याः ह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥ समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः ॥ मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः ॥ ७ ॥ भवंति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा ॥ पुष्करंच कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥ ८ ॥ प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च ॥ विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा ॥९॥ श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गंधमादनः ॥ सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम् ॥१०॥ तथा बिंदुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् ॥ आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥ विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः ॥ नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः ॥१२॥ वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा ॥ येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नाऽतिविश्रुतः ॥ १३ ॥

श्रीशैल सुमेरु और गंधमादन यह समस्तही पवित्र हैं पुण्यदायक सरोवरमें परम पवित्र सर्वत्र विख्यात मानस ॥१०॥ बिन्दु सरोवर और अच्छोद भलीभाँति कहे हैं उदारात्मा मुनिगणोंके सम्पूर्ण आश्रमही पुण्यजनक हैं ॥ ११ ॥ तिनमें सदा पुण्यदायक बदरिकाश्रम सबकी अपेक्षा विख्यात है इस स्थानमें नरनारायण नामकपुरातन दोनों मुनियोंने तपस्या की थी ॥ १२ ॥ और वामनाश्रम तथा शतयूपाश्रमभी भलीभाँति विख्यात है इस प्रकार जिसने जिस स्थानमें तपस्या करी थी उसकेही नामानुसार वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ १३ ॥

हे महाराज ! मुनिगणोंके पृथ्वीमें इसप्रकार अगण्य असंख्य परमपावन सम्पूर्ण स्थान कहे ॥ १४ ॥ इन सम्पूर्ण पुण्यस्थानोंमें सर्वत्र देवीके स्थान विद्यमान हैं उन सब स्थानोंका दर्शन करनेसे पापसमूह नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ उन्हीं स्थानोंमें देवीके भक्तगण नियम अवलम्बन करके वास करते हैं इन सब स्थानोंमें कितने एक विषय प्रसङ्ग क्रमानुसार फिर वर्णन करूंगा हे नृपवर ! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ॥१६॥तपस्या और सम्पूर्ण पुण्यकर्म परस्पर सापेक्ष हैं द्रव्यशुद्धि क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ॥ १७ ॥ तीर्थ

एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले ॥ मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते ॥ १४ ॥ एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते ॥ दर्शनात्पापहारीणि वसंति नियमेन च ॥ १५ ॥ कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसंगेन च कानिचित् ॥ तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा ॥ १६ ॥ तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीमते ॥ द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च ॥ १७ ॥ पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च ॥ कदाचिद्द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥ १८ ॥ दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप ॥ मनस्तु चञ्चलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥ १९ ॥ कथं शुद्धं भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहंकारो मदस्तथा ॥ २० ॥ सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ २१ ॥

तपस्या और व्रत सम्पूर्ण पुण्यदायक होते हैं द्रव्यशुद्धि और क्रियाशुद्धि किसीको भी कदाचित् हो सकती है ॥ १८ ॥ किन्तु सबके पक्षमें चित्तशुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है हे नृपवर ! मन सर्वदाही अनेक प्रकार भिन्नभिन्न विषयका आश्रय करता है अतएव सर्वदाही चंचल है ॥ १९ ॥ इस कारण अनेक प्रकार भावयुक्त मनकी विशुद्धता सहजमेंही किस प्रकार हो सकती है ? काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और मद ॥२०॥ यह तप तीर्थ और व्रतादिमें सब प्रकार विघ्न करते हैं. हे महाराज ! अहिंसा सत्य अस्तेय (चोरी न करना) पवित्रता इन्द्रियनिग्रह ॥ २१ ॥

और अपना धर्मपालन यह सम्पूर्ण समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं तीर्थयात्राके समय मार्गमें नित्यकर्म्म त्याग और संसर्ग दोषके कारण ॥ २२ ॥ तीर्थगमन वृथा होकर वह केवल पापमात्रही होता है और तीर्थका जल केवल देहका मलही धोसकता है ॥ २३ ॥ किन्तु कभी मानसिक मल धोनेमें समर्थ नहीं होता. यदि तीर्थके जलसे मानसिक मल धुलसकता तो क्यों गंगाके तटपर वास करनेवाले मुनिगण ॥ २४ ॥ ईश्वरपरायण होकर भी परस्पर द्रोहमें निरत होते. वसिष्ठके समान नम्रशील मुनिगण और विश्वामित्रादि ऋषिगण भी ॥ २५ ॥ सर्वदा राग द्वेषमें निरत और कामक्रोधसे अधीर होते हैं अतएव चित्तशुद्धिरूप तीर्थ गंगादितीर्थसे भी अधिक

स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥ २२ ॥ व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते ॥ क्षालयंति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम् ॥ २३ ॥ मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप ॥ शक्तानि यदि चेत्तानि गंगातीरनिवासिनः ॥ २४ ॥ मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः ॥ वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः किल ॥ २५ ॥ रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा ॥ चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥ २६ ॥ यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यांतरं मलम् ॥ विशेषेण तु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते ॥ २७ ॥ न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न ॥ न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम् ॥ २८ ॥ वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः ॥ रागद्वेषान्वितः कामं गंगातीरसमाश्रितः ॥ २९ ॥ आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ३० ॥

पवित्रतासम्पादन करता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! यह अवश्य स्वीकार्य है कि, यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठाका भलीभांति सत्संग उपस्थित हो तो निश्चयही उसके मनकी मलीनता धुलसकती है ॥२७॥ हे राजेन्द्र ! वेद व शास्त्र व्रत किंवा तपस्या यज्ञ अथवा दान इनमें कोई भी चित्तशुद्धिका कारण नहीं होसकता ॥ २८ ॥ देखो ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ वेदविशारद और गंगावासी होकर भी रागद्वेषके वशीभूत हुए थे ॥२९॥ विश्वामित्र और वसिष्ठके निरर्थक विद्वेषसे देवतागणोंको आश्चर्य देनेवाला आडीबक नामक घोर महायुद्ध उपस्थित

हुआ था ॥३०॥ इससे परमतपस्वी विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठसे शापित होकर बगलेके रूपमें जन्म ग्रहण किया था ॥३१॥ वसिष्ठऋषिने भी विश्वामित्रसे शापित होकर शरारींनामक विहंग देह धारण करी थी इस प्रकार प्रभावशाली दोनों ऋषिगण आडीबकरूपसे जन्म ग्रहणकर ॥३२॥मानससरोवरके तटपर वास करते थे और अत्यन्त क्रोधयुक्त मदोन्मत्त सिंहके समान नख चोंच और चरणोंके प्रहारसे ॥३३॥ अयुतवर्ष १००००पर्यन्त घोर युद्ध किया था जैसे परस्पर दो सिंह युद्ध करते हों ॥३४॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! किसकारण वह दोनों महर्षि धर्मतत्पर और तपस्वी होकर भी परस्पर शत्रुताके आचरणमें प्रवृत्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ वे दोनोंही बुद्धिमान् अतएव शापको मनुष्यका दुःखदायक

विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः ॥ शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चंद्रस्य कारणात् ॥ ३१ ॥ कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वा ऽऽडीदेहभाक्कृतः ॥ शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥ ३२ ॥ निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च ॥ चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचंचुप्रताडनैः ॥ ३३ ॥ वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ ॥ युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम् ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ ॥ परस्परं वैरपरौ संजातौ केन हेतुना ॥ ३५ ॥ शापं परस्परं केन कारणेन महामती ॥ दत्तवंतौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा ॥ बभूव रविवंशीयो रामचन्द्रस्य पूर्वजः ॥३७॥ अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् ॥ प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम् ॥ ३८ ॥ वरुणस्तस्य संतुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते ॥ दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुंदरी ॥ ३९ ॥

जानकर भी किस कारणसे परस्परको क्लेशकर शाप दिया था ॥ ३६ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपवर ! पूर्वकालके समय त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्रने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया वह राजाओंमें श्रेष्ठ और रामचन्द्रसे पहले हुए थे ॥३७॥ उन राजर्षिने अपुत्र होनेके कारण वरुणके निकट प्रार्थना की. हे जलाधिपते ! यदि मेरे पुत्र हो तो मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त उसी पुत्रसे नरमेधयज्ञका अनुष्ठान करूंगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार यज्ञके निमित्त प्रतिज्ञा करनेपर वरुण उनपर सन्तुष्ट हुए अनन्तर राजाकी परमसुन्दरी भार्याने शीघ्रही गर्भधारण किया ॥ ३९ ॥

राजा भार्याको गर्भवती देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उसके गर्भसंस्कारके निमित्त सम्पूर्ण कर्म सम्पादन किये ॥४०॥ हे राजन् ! फिर राजपत्नीके सर्वलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न करनेपर राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त आनन्दित होकर ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार कराया और ब्राह्मणोंको बहुतसा स्वर्ण और दूध देनेवाली गायें दान करीं ॥४२॥ इसप्रकार राजगृहमें यथासमय अधिकतर पुत्र जन्मका उत्सव हुआ फिर जलाधिपति वरुण विप्रवेष धारणपूर्वक राजभवनमें आया ॥ ४३ ॥ राजाभी उनकी विधिपूर्वक पूजा कर और आसन दे कार्य पूँछने लगा.

राजा बभूव संतुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् ॥ चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम् ॥ ४० ॥ सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षण संयुतम् ॥ मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशांपते ॥ ४१ ॥ कृतवाञ्जातकर्मादि संस्कारविधिमुत्तमम् ॥ ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥४२॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसांपतिः ॥ आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तथा ॥ ४३ ॥ पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम् ॥ कार्यं पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम् ॥ ४४ ॥ कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् ॥ सत्यवाग्भव राजेंद्र संकल्पस्तु त्वया कृतः ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः ॥ संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृतांजलिः ॥ ४६ ॥ स्वामिन्करोमि तं यज्ञं सर्वथा विधिपूर्वकम् ॥ मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्य वागहम् ॥ ४७ ॥ पूर्णे मासे विशुद्ध्येत धर्मपत्नी सुरोत्तम ॥ विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः सपशुर्मखः ॥ ४८ ॥

उन्होंने उनसे कहा राजन् ! मैं जलाधिपति वरुण हूं ॥ ४४ ॥ आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा की थी कि, मैं अपने पुत्रको पशुरूपमें बलिदान कर परम पवित्र नरमेध यज्ञका अनुष्ठान करूंगा उसीके अनुसार वह सम्पूर्ण कार्य पूरा करके सत्यवादी हूजिये ॥४५॥ राजा उनके यह वचन सुनकर विह्वल और मर्माहित हुए और कुछ कालोपरान्त मानसिक दुःख दूरकर और हाथ जोड़ वरुण देवीजीसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! मैंने आपके निकट पूर्वमें जो प्रतिज्ञा की है उसी अनुसार वह यज्ञ विधिपूर्वक करके आपके निकट सत्यवादी हूंगा ॥ ४७ ॥ किन्तु हे सुरसत्तम ! एक

१ वरुण देव तो केवल राजाकी परीक्षा देखनेको आये हैं कि, इसकी दृढता कैसी है ?

महीना पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी सूतिकाशौचसे शुद्ध होगी. तदनन्तर अपनी भार्याके शुद्ध होनेपर मैं वह नरमेध यज्ञ करूंगा॥४८॥व्यासजीने कहा हे महाराज ! वरुण राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर अपने गृहको चले गये राजा भी उनके जानेसे सन्तुष्ट हुए परन्तु पुत्रके विनाशकी शंकासे किञ्चित् चिन्तातुर हुए ॥ ४९ ॥ फिर एक महीनेपर पाशधर प्रियवादी, वरुण परमपवित्र ब्राह्मणका वेश धर राजाकी परीक्षा लेनेके निमित्त फिर राजगृहमें आये ॥ ५० ॥ तब राजाने उनकी पूजा कर आसन दिया और विनय सहित हेतुपूर्ण वचन कहने लगे ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र इस समय संस्कार रहित है उसको किस प्रकार यूपकाष्ठमें बांधू ? इस कारण उसको संस्कारसे क्षत्रिय करके फिर

व्यास उवाच॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः॥ राजा बभूव संतुष्टः किंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥४९॥ पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये ॥ आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः ॥ ५० ॥ कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् ॥ उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा ॥५१॥ असंस्कृतं सुतं स्वामिन्यूपे बध्नामि तं कथम् ॥ संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम् ॥ असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥ ५३ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि राजेंद्र कृत्वा समयमग्रतः ॥ दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहो ह्यपुत्रिणः ॥५४॥ गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात् ॥ कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम् ॥ ५५ ॥

उस उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा ॥५२॥ हे देव ! यदि आप मुझको दीन और अपना सेवक जानकर मेरे प्रति करुणा प्रकाश करें तो मैं कृतार्थ हूं. देखो असंस्कृत बालकका किसी विषयमें अधिकार नहीं है, इस कारण आप कुछ काल प्रतीक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ वरुणजीने कहा हे राजन् ! तुम मुझको धोका देकर फिर फिर समय निर्द्धारित करते हो. मैं समझ गया कि, अपुत्र होनेसे इस समय तुमसे पुत्रका स्नेह नहीं छूट सकता ॥ ५४ ॥ जो हो हे भूपाल ! तुम्हारे कातर वचनसे इस समय मैं घरको जाता हूं किन्तु कुछ काल प्रतीक्षा करके फिर तुम्हारे

घर आऊंगा ॥ ५५ ॥ हे वत्स ! तिस समय तुम्हारा वाक्य सत्य हो और यदि इसके अन्यथा होगा तो मैं निःसन्देह तुम्हारे ऊपर शापयुक्त कोपाग्नि निक्षेप करूंगा ॥ ५६ ॥ राजाने कहा हे जलाधिपते ! समावर्त्तन कर्म समापन करनेके पीछे मैं अपने पुत्रको पशुकर विधिपूर्वक महायज्ञका अनुष्ठान करूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा वरुण राजाके वचन सुनकर प्रीतिपूर्ण मनसे तथास्तु कह शीघ्र चले गये, तब राजा भी स्थिर हुए ॥ ५८ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे विख्यात हुआ और आयु बुद्धिके सहित क्रमानुसार

भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम् ॥ अन्यथा त्वयि मुंचामि कोपं शापसमन्वितम् ॥५६॥ राजोवाच ॥ समावर्तनक मंते सर्वथा यादसांपते ॥ कृत्वा वृत्रं पशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम् ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीत मानसः ॥ तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान् ॥ संजातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः ॥ ५९ ॥ यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम् ॥ भयभीतस्ततः सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः ॥ ६० ॥ कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे ॥ अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः ॥ ६१ ॥ प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम् ॥ गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते ॥ ६२ ॥ प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेंद्रियः ॥ किं करोमि गतः क्वाऽपि सुतो मे सुरसत्तम ॥ ६३ ॥

चतुर और सर्व विद्या विशारद हुआ ॥५९॥ वह बालक क्रमक्रमसे यज्ञका सब कारण विस्तार सहित जानकर अपना मरण निश्चय कर भयसे भीत हुआ ॥६०॥ और शीघ्र राजाके निकटसे भागकर अगम्य पर्वतकी गुहामें भी भयसे वास करने लगा ॥ ६१ ॥ अनन्तर यथा समय उपस्थित होनेपर वरुण यज्ञार्थी हो राजाके घर जाय भूपतिसे कहने लगे हे राजन् ! इस समय नियमित समय उपस्थित है अतएव अपने संकल्पित यज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६२ ॥ तब राजा यह वचन सुनकर अत्यन्त व्यथित हुए और अतिमलीन वदनसे कहने लगे हे सुरसत्तम ! इस

समय मैं क्या करूं मेरा पुत्र प्राणोंके भयसे कहीं भाग गया है ॥ ६३ ॥ वरुणजी राजाके वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और शाप दिया कि, हे असत्यवादिन् ॥६४॥ तू कपट पंडित है इस कारण मुझको वारंवार धोखा देता है अतएव तेरे देहमें जलोदर नामक व्याधि उत्पन्न हो ॥६५॥ पाशधारी वरुणजी इस प्रकार शाप देकर अपने घरको गये राजाभी व्याधि पीडित और चिन्तातुर होकर अपने गृहमें वास करने लगे ॥ ६६ ॥ जब राजा हरिश्चंद्र शापजनित रोगमें अत्यन्त पीडित होने लगे तब उनके पुत्र रोहितने सुना कि, मेरे पिता जलोदर रोगसे अत्यन्त पीडित हो रहे हैं ॥ ६७ ॥ किसी दिन एक पथिकने उससे कहा हे नृपनन्दन ! तुम्हारे पिता शापके कारण जलोदर रोगसे अति पीड़ित और

श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसां पतिः ॥ शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम् ॥ ६४ ॥ जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप ॥ यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपंडित ॥ ६५ ॥ इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा ॥ राजा चिंतातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः ॥ ६६ ॥ यदाऽतिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह ॥ यदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम् ॥ ६७॥ पांथिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः ॥ जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज ॥ ६८ ॥ विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते ॥ यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम् ॥ ६९ ॥ किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम् ॥ देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम ॥ ७० ॥ प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः ॥ त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रंदति व्याधिपीडितः ॥ ७१ ॥

दुःखित हुए हैं॥६८॥तुम्हारी निश्चय ही दुर्मति हुई है तुमने वृथा ही जन्म ग्रहण किया तुम्हारा जीवन वृथा ही नष्ट हुआ क्योंकि तुम अत्यन्तदुःखित पिताको त्यागकर इस समय पर्वतकी गुहामें स्थिति करते हो॥६९॥तुम निश्चय ही कुपुत्र हो तुम्हारे इस शरीरका प्रयोजन क्या है तुम्हारे जन्म प्राप्त करनेका क्या फल हुआ ? जिनसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है तुम उन्हीं पिताको त्यागकर इस निर्ज्जन पर्वतकी गुहामें स्थित रहते हो ॥ ७० ॥ तुम निश्चय जानना कि, पिताके कार्यमें प्राणत्याग करना ही सत्पुत्रका कार्य है अतएव इस समय अधिक और क्या कहूं तुम्हारे पिता राजा हरिश्चंद्र

व्याधि पीडित होकर तुम्हारे निमित्त दुःखसे अत्यन्त रोदन करते हैं ॥ ७१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! नृपनंदन रोहितने पथिकके मुखसे धर्मसंगत यह वचन सुनकर जब व्याधि पीडित और दुःखित पिताको देखनेके लिये उनके समीप जानेकी इच्छा करी ॥ ७२ ॥ तब इन्द्र ब्राह्मणका वेष धारण कर उसके निकट उपस्थित हुए और निर्ज्जनमें दयावान्‌के समान हितकर वचन कहने लगे ॥ ७३ ॥ हे राजपुत्र ! तुम मूर्ख हो तुम इस समय इस स्थानमें रहकर तुम्हारे पिता व्यथित हुए हैं कि नहीं ? उसको भलीभांति नहीं जानते तो वृथा क्यों उस स्थानमें जानेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ इन्द्रने कहा हे नृपनन्दन !

व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पांथिकाद्धर्मसंयुतम् ॥ यदा चक्रे मनो गंतुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम् ॥ ७२ ॥ तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत् ॥ रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव भारत ॥ ७३ ॥ मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ इंद्र उवाच ॥ साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितो मखः ॥ वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम् ॥१॥ गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा यूपेऽघृणः पुनः ॥ पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति वृथातुरः ॥ २ ॥ इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा ॥ स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम् ॥३॥ यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्॥गमनाय मतिं चक्रे तदेंद्रः प्रत्यषेधयत् ॥४॥

पूर्वकालके समय राजा हरिश्चन्द्रने वरुणके प्रति प्रतिज्ञा की है कि मैं आपको प्रसन्न करनेके निमित्त अपने प्रिय पुत्रको पशु बनाकर नरमेधमहायज्ञका अनुष्ठान करूंगा उनकी इस प्रकार प्रतिज्ञा करना अत्यन्त साहसका कार्य है ॥ १ ॥ हे नृपनन्दन ! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो तुम क्या नहीं समझते हो कि तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे व्याधिपीड़ित और कातर पिता उस समय दयारहित हो तुमको पशुकर यूपमें बांधकर वध करेंगे ॥ २ ॥ अमित तेजा इन्द्रके उसको इस प्रकार निषेध करनेपर वह राजपुत्र महामायाकी मायासे मोहित होकर उसी स्थानमें वास करने लगे ॥ ३ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार जबहीं वह वारंवार अपने पिताको अत्यन्त पीड़ित सुनकर उनके समीप जानेकी इच्छा करता तभी इन्द्र

करनेपर फिर आपका अवश्य ही मंगल होगा इसमें संदेह नहीं ॥२०॥ हे राजेन्द्र ! यह शुनःशेप रोता है इससे मेरे मनमें अत्यन्त करुणा उत्पन्न होकर मुझको अत्यन्त व्यथित करती है हे राजेन्द्र ! आप मेरा वचन सुन दया करके इस ब्राह्मणके बालकको छोड़ दीजिये ॥ २१ ॥ देखो पूर्वकालके समय शुद्धशील क्षत्रिय राजागण स्वर्गकी इच्छा करके पराये देहकी रक्षाके निमित्त अपना देह देते थे ॥ २२ ॥ और आप इस समय अपने देहकी रक्षाके लिये ब्राह्मणके बालकको मारते हो यह कितना पापकार्य होता है सो आप स्वयं ही विचार देखिये विशेषकर इसप्रकार पापाचरण न करके आप इस बालकपर दया कीजिये ॥ २३ ॥ हे महाराज ! सम्पूर्ण मनुष्योंको अपने २ देहमें समान प्रीति विद्यमान है यह आप

क्रंदत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि ॥ दयावान्भव राजेंद्र कुरुमे वचनं नृप ॥ २१ ॥ परदेहस्य रक्षार्थे स्वदेहं ये दया पराः ॥ ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः ॥२२॥ तं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात् ॥ पापं मा कुरु राजेंद्र दयावान्भव बालके ॥ २३ ॥ सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप ॥ मुंचैनं बालकं तस्मात्प्रमाणं यदि मे वचः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम् ॥ न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः ॥ २५ ॥ उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः ॥ मंत्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः ॥ २६ ॥ शुनःशेपोऽपि तं मंत्रमसकृद्व्यकर्शितः ॥ प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम् ॥ २७ ॥

स्वयंही अनुभव करते हैं, अतएव इस समय यदि मेरा वचन प्रमाण जानो तो इस ब्राह्मणके पुत्रका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्रने व्याधिद्वारा अत्यंत पीडित होनेसे उसकाल उनके वचनमें अनादर पूर्वक उस ब्राह्मणके बालकका त्याग न किया इससे परमतपस्वी विश्वामित्र भी राजासे अत्यंत क्रोधित हुए॥२५॥ तब वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य कुशिकनंदन विश्वामित्रने शुनःशेपपर दया प्रकाश कर उसको वरुणमंत्रका उपदेश दिया ॥ २६ ॥ शुनःशेप भी प्राणोंके भयसे अत्यंत कातर हो वरुणका स्मरणकर ऊंचे स्वरसे उस मंत्रको वारंवार

उच्चारण करने लगा ॥२७॥ करुणा समुद्र वरुणने ब्राह्मणके पुत्रको स्तव करता हुआ जानकर उसी स्थानमें आय शुनःशेपको बंधनसे छुडा दिया ॥२८॥ और राजाको रोग रहित कर अपने स्थानको चले गये, इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र उस मुनिकुमारको मृत्युके मुखसे रक्षा करके परम आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ जब राजाने हरिश्चन्द्र महात्मा विश्वामित्रका वचन पालन नहीं किया तबसे ही गाधिपुत्र मनमें उस राजासे रुष्ट रहे ॥ ३० ॥ एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने घोडेपर चढ वनमें जाय मध्याह्नकालके समय कौशिकी नदीके तटपर एक शूकरको मारनेकी इच्छा की ॥ ३१ ॥ तब ही विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणके वेषसे राजाको छलकर प्रार्थनापूर्वक उनका सर्वस्व और सम्पूर्ण राज्य लेलिया

स्तुवंतं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः ॥ तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः ॥ २८ ॥ रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ ॥ विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः ॥ २९ ॥ न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः ॥ रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः ॥ ३० ॥ एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः ॥ सूकरं हंतुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे ॥ ३१ ॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण विश्वामित्रेण वंचितः ॥ सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् ॥ वशिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥ ३३ ॥ क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत् बक धर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दांभिक ॥ ३४ ॥ कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ ॥ अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव ॥ इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः ॥ ३६ ॥

॥ ३२ ॥ अपने यजमान राजा हरिश्चन्द्रको अत्यंत कष्ट पाते हुए देखकर महर्षि वसिष्ठ मनमें दुःखित और व्यथित हुए और एक दिन वनमें विश्वामित्रसे भेंट होनेपर उनसे कहा ॥ ३३ ॥ रे दुर्बुद्धि ! क्षत्रिय कुलाधम ! तैंने वृथाही ब्राह्मणका वेष धारण किया है तेरा धर्म बगुलेके समान है तू दाम्भिक है तथा वृथा ही गर्व करता है ॥ ३४ ॥ हमारे यजमान राजा श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र हैं उनका कोई अपराध नहीं, रे मूढ ! तथापि तैंने उनको क्यों इतना कष्ट दिया ॥ ३५ ॥ तू बगुलेके समान ध्यान परायण है, अतएव बगुला होकर जन्म

ग्रहणकर विश्वामित्रने वशिष्ठसे इस प्रकार शापित हो उनसे भी कहा॥३६॥हे वशिष्ठ ! मैं जबतक बगुला होकर रहूं तू भी तबतक आडि अर्थात् शरारिनामक पक्षी होकर अवस्थिति करता रहे. व्यासजीने कहा हे महाराज ! वह क्रोधित दोनों मुनि परस्पर इस प्रकार शाप दे ॥ ३७ ॥ दोनोंनेही सरोवरमें आडि और बकपक्षी हो जन्म ग्रहण किया बकरूप धारी विश्वामित्र मानसरोवरमें एक वृक्षके ऊपर नीड़ (घोसला) निर्माण पूर्वक वास करने लगे. वसिष्ठ भी आडिरूप धारण कर दूसरे वृक्षमें कुलाय (घोसला) रचनाकर वास करने लगे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वे

त्वमप्याडिर्भवायुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ ॥ ३७ ॥ अण्डजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी ॥ एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ बकरूपभाक् ॥३८॥ विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे ॥ अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ ॥ दिनेदिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ ॥ ४० ॥ दुःखदं सर्वलोकानां क्रंदमानावुभौ भृशम् ॥ चंचुपक्षप्रहारैस्तु नखाघतैः परस्परम् ॥ ४१ ॥ जघ्नतू रुधिरक्लिनौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी ॥ ४२ ॥ स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यंत्रितौ ॥ राजोवाज ॥ कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥ ४३ ॥ तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे ॥ व्यास उवाच ॥ युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४ ॥

दोनों पक्षी द्वेषके कारण क्रोधित हो उच्चस्वरसे घोरतर सर्वलोकोंको पीडाप्रद कठोर चीत्कार कर प्रतिदिन संग्राम करने लगे ॥ ४० ॥ वह आपसमें चोंच और पक्षप्रहार तथा नखाघातसे ॥ ४१ ॥ क्षत विक्षत और रुधिरमें डूबकर पुष्पित किंशुक वृक्षके समान प्रकाशमान हुए पक्षिरूपधारी दोनों ऋषि शापसे दुःखित हो इस प्रकार बहुत दिन रहे ॥४२॥ परस्पर युद्ध करते करते उसी स्थानमें बहुत वर्ष बीत गये जनमेजयने कहा हे विप्रवर ! वे वसिष्ठ और कौशिक नामक दोनों ऋषि किस प्रकार शापसे मुक्त हुए ॥ ४३ ॥ वह मुझसे कहो हे ऋषिवर !

यह वृत्तांत श्रवण करनेके लिये मेरे मनमें अत्यंत कौतूहल उत्पन्न हुआ है व्यासजीने कहा लोक पितामह ब्रह्मा उन दोनोंको युद्धमें निरत देख ॥ ४४ ॥ दयार्द्रचित्त हो देवतागणोंके सहित उसी स्थानमें गये पद्मासनने दोनोंको युद्धसे निवारित और आश्वासित कर ॥ ४५ ॥ परस्परके दिये हुए शापसे दोनोंको छुड़ा दिया अनंतर देवता अपने अपने स्थान और प्रभावशाली पद्मासन ॥ ४६ ॥ हंसपर चढ सत्यलोकको चले गये इसके उपरांत महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र ॥ ४७ ॥ प्रजापतिके उपदेशानुसार परस्पर प्रणय और मित्रता कर अपने

तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः ॥ तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५ ॥ शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ॥ ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६ ॥ सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् ॥ विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥ ४७ ॥ मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः ॥ मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥ ४८ ॥ कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् ॥ को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९ ॥ अहंकारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् ॥ तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥ ५० ॥ यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ॥ तीर्थदानतपः सत्यं यत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥५१॥ "श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ॥ तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥१॥ सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा ॥ तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥ २ ॥ तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः ॥ कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥३॥" वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना ॥ तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥ ५२ ॥

अपने आश्रमको चलेगये. हे राजन् ! आप देखिये कि, इस समय मित्रावरुण तनय महर्षि वसिष्ठने भी ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रसे अकारण ही दुःखप्रद युद्ध किया था अतएव इस अखिल संसारमें कौन मनुष्य दानव वा देवता ॥ ४९ ॥ अहंकार जय करके सर्वदा सुखभागी हो सकता है ? हे पार्थिव ! चित्तकी शुद्धि महत् पुरुषोंको भी दुर्लभ है॥५०॥परम यत्नके सहित उसका साधन करना होता है चित्तशुद्धि विहीन मनुष्यगणोंका तीर्थ, दान, तपस्या, सत्य, और जो कुछ धर्मसाधन है वह संपूर्ण ही निरर्थक जानना चाहिये ॥५१॥ हे राजन् ! देहिगणोंके धर्मकर्मविषयमें

सात्त्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गई हैं । तिनमें सात्त्विकी श्रद्धा संपूर्ण फल तथा लोकमें प्रायः दुर्लभ है विहित राजसी श्रद्धा उससे अर्द्धफलदायक है और तामसी श्रद्धा निष्फल तथा अकीर्ति करनेवाली है,काम क्रोधसे युक्त पुरुषोंको ही तामसी श्रद्धा उत्पन्न होती है अतएव हे राजन् ! सत्संग अवलम्बन पूर्वक वेदान्त श्रवणादिसे चित्तकी वासना दूरकर देवीकी पूजामें अत्यंत निरत हो तीर्थादि स्थलमें वास करै ॥५२॥ कलि दोषके कारण भयातुर मनुष्यगण देवीका नाम ग्रहण और उनके गुणकी स्तुति तथा उनके चरण कमलोंका ध्यान कर काल व्यतीत करैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार करनेसे फिर जीवगणोंको कलिका भय नहीं रह सकता और पातकी मनुष्य भी संसार

देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ॥ ध्यायंस्तस्याः पदांभोजं कलिदोषभयार्दितः ॥ ५३ ॥ एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् ॥ अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् ॥ वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह ॥ १ ॥ किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा ॥ ब्रूहि मे वदतां श्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः ॥ ३ ॥ मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम् ॥ मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव ॥ ४ ॥

बन्धसे सहजमें ही मुक्तिलाभ कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र थे तो आपने किस कारणसे उनका मैत्रावरुणि नाम कीर्त्तन किया ॥ १ ॥ वे कर्मद्वारा अथवा अन्य किसी गुणसे इस नामको प्राप्त हुए हैं. हे वक्तृप्रवर ! आप मुझको उनके इस नामका कारण भलीभांति वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! यद्यपि प्रभावशाली वशिष्ठ ब्रह्माके पुत्र थे, किंतु उन्होंने नरपति निमिके शापसे तनु त्यागकर मित्रा वरुणसे जन्म लाभ किया ॥ ३ ॥ इस कारण लोकमें

सर्वत्रही मैत्रावरुणि नामसे विख्यात हुए थे ॥ ४ ॥ राजाने कहा हे भगवन् ! ब्रह्माके पुत्र धर्मात्मा वह मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ किस कारणसे निमिके शापको प्राप्त हुए ? उन क्षत्रिय नृपतिका दारुण शाप मुनिको भी भोगना पडा इस विषयमें मुझको आश्चर्य बोध होता है ॥ ५ ॥ हे धर्मज्ञ ! उस राजाने निरपराध मुनिको किस कारण शाप दिया ? उसे सुननेके निमित्त मुझको अत्यंत कौतूहल हुआ है. अतएव आप उस शापका कारण वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने आपसे इन सबका कारण भलीभांति कहा है. यह संसार सत्व, रज, तम तीन मायाके गुणसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ राजा लोग धर्माचरण ही करैं और संपूर्ण तपस्वी तपाचरणही करैं उनका वे समस्त धर्मादि मायागुणसे विद्ध

राजोवाच ॥ कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः ॥ चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञा शापोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥ अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने ॥ कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् ॥ संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल ॥ ७ ॥ धर्मं करोतु भूपालश्चरंतु तापसास्तपः ॥ सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह ॥ ८ ॥ कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा ॥ लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरंति दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ यजंति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः ॥ ब्राह्मणास्तु तथा राजन्न कोऽपि सत्त्वसंयुतः ॥ १० ॥ ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः ॥ दुःखाद् दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात् ॥ ११ ॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला ॥ दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुण के ॥ १२ ॥

होकर उज्ज्वलता लाभ नहीं कर सकता ॥ ८ ॥ राजा लोग और मुनिगण काम क्रोधमें अभिभूत और लोभ तथा अहङ्कारयुक्त होकर दुष्कर तपस्याका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! क्षत्रियगण अथवा ब्राह्मण सबही रजोगुण युक्त हो यागादि करते हैं. वास्तविक उनमें कोई सत्व गुणयुक्त होकर कार्यका अनुष्ठान नहीं करता ॥ १० ॥ निमि राजऋषिद्वारा और ऋषिराज निमिसे शापित हो दोनोंही प्रारब्ध प्रेरित तमोगुणसे दुःखको प्राप्त हुए थे ॥ ११ ॥ हे महाराज ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें प्राणीगणोंके पक्षमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और निर्मल प्रकारसे चित्त

शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इसकोही परमाशक्ति जगदम्बिका का प्रभाव जानना चाहिये. कोई पुरुष इसके उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं होता परन्तु वह जिसके प्रति अनुग्रह करनेकी अभिलाषा करती हैं उसको क्षणमें उन गुणोंके बन्धनसे छुडा देती हैं ॥ १३ ॥ अधिक क्या विष्णु रुद्र और ब्रह्मा इत्यादि महान् देवतागण भी उनके अनुग्रहके बिना नहीं छूट सकते, किंतु उनका अनुग्रह होनेसे सत्यव्रत इत्यादिके समान पामरगणभी मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १४ ॥ उनके हृदयमें जो है उसको त्रिभुवनमें कोई नहीं जान सकता, परन्तु वह जो भक्तके वशीभूत होती हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ अतएव दोषके नष्ट करनेके निमित्त सात्विकी भक्ति अवलम्बन करनी

पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्कचित् ॥ यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात् ॥१३॥ महांतोऽपि न मुच्यंते हरिब्रह्महरादयः ॥ पामरा अपि मुच्यंते यथा सत्यव्रतादयः ॥१४॥ तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये ॥ तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम् ॥१५॥ तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च॥रागदंभादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ॥१६॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतो निमिर्नाम नराधिपः ॥ रूपवान्गुणसंपन्नो धर्मज्ञो लोकरंजकः ॥ १७ ॥ सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः ॥ द्वादश स्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः ॥ १८ ॥ पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ जयं तु पुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः ॥ १९ ॥ बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना यजेयमिति राजसी ॥ यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च ॥ २० ॥

उचित है किंतु रागदम्भादि युक्त भक्ति मनुष्यगणोंको अनिष्ट करनेवाली होती है इस कारण उसका त्याग करना अत्यंत श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र निमिनामक नृपति रूपवान्, गुणसंपन्न, धर्मज्ञ, लोकरञ्जन ॥ १७ ॥ सत्यवादी, दानशील, याजक, शुद्धाचार, प्रजाके पालनमें तत्पर बुद्धिमान् और ज्ञानयुक्त थे ॥ १८ ॥ उन महात्माने ब्राह्मणोंके हितार्थ गौतमके आश्रमके निकट जयन्तपुर नामक एक नगर वसाया ॥ १९ ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर उनको इस प्रकार राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई

कि मैं "विपुल दक्षिणायुक्त बहुत कालपर्यन्त एक यज्ञका अनुष्ठान करूं" ॥ २० ॥ अनंतर अपने पिता इक्ष्वाकुकी आज्ञा ग्रहणकर यज्ञकार्यके निमित्त महात्मा पुरुषोंसे संपूर्ण कही हुई सामग्री मगाई ॥ २१ ॥ भृगु, अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह, क्रतु ॥ २२ ॥ इत्यादि वेदके जाननेवाले यज्ञविद्या विशारद सर्वज्ञ तपस्वी मुनिगणोंको निमंत्रण देकर बुलाया ॥ २३ ॥ उस धार्मिक नरपति निमिने यज्ञकी संपूर्ण सामग्री संग्रह कर अपने गुरु वशिष्ठ देवकी पूजापूर्वक उनसे विनयसे नम्र हो वचन कहा ॥ २४ ॥ हे मुनिवर ! मैं यज्ञ करूंगा आप कृपा करके मेरी यज्ञक्रिया संपादन कीजिये, आप गुरु हैं अतएव

इक्ष्वाकुं पितरं दृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिव ॥ कारयामास संभारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः ॥ २१ ॥ भृगुमंगिरसं चैव वामदेवं च गौतमम् ॥ वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम् ॥२२॥ मुनीनां मंत्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान् ॥ यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान्वेदवित्तमान् ॥२३॥ राजा संभृतसंभारः संपूज्य गुरुमात्मनः ॥ वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः ॥ २४ ॥ यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे ॥ गुरुस्त्वं सर्ववेत्ताऽसि कार्यं मे कुरु सांप्रतम् ॥२५॥ यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम् ॥ पंचवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे ॥ २६ ॥ यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदंबिका ॥ तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम् ॥२७॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम् ॥ इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ २८ ॥ पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः ॥ स दीक्षां गमितो देवः पंच वर्षशतात्मिकाम् ॥ २९ ॥

सब जानते हैं इस कारण इस समय मेरा यज्ञ कार्य निर्वाह कीजिये ॥ २५ ॥ यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर सजाई गई है. हे गुरो ! मैं पांच हजार वर्ष पर्यन्त यज्ञमें दीक्षित हूंगा यही मेरा संकल्प जानिये ॥ २६ ॥ इस यज्ञमें जगदम्बिका देवीकी आराधना करूंगा, उनको प्रसन्न करनेको मैं विधिपूर्वक इस यज्ञका अनुष्ठान करता हूं ॥ २७ ॥ वशिष्ठजीने राजा निमिका यह वचन सुनकर कहा हे नृपोत्तम ! देवराजइन्द्रने मुझको पहलेही यज्ञके निमित्त वरण किया है ॥२८॥ इस समय पाकशासन इन्द्र पराशक्तिकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेमें उद्यत

हुए हैं मैंने भी पंद्रह वर्षके लिये उनको दीक्षित किया है ॥२९॥ अतएव हे पार्थिव ! जबतक इन्द्रका यज्ञ संपूर्ण न हो आपको तबतक प्रतीक्षा करनी होगी. इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर इनका समस्त कार्य कर ॥ ३० ॥ तिसके उपरान्त इस स्थानमें आऊंगा. अतएव हे महाराज ! आप तबतक प्रतीक्षा कीजिये राजाने कहा हे मुनिवर मैंने यज्ञके निमित्त अन्यान्य मुनिगणोंको निमंत्रण दिया है ॥ ३१ ॥ और सम्पूर्ण सामग्री मँगाली है. तब किस प्रकार इस समय प्रतीक्षा करसकता हूं ? हे ब्रह्मन् ! आप वेदके जाननेवालोंमें अग्रगण्य और इक्ष्वाकुवंशियोंके कुलगुरु होकर ॥ ३२ ॥ इस समय किसप्रकार मेरा कार्य त्यागकर अन्यत्र जानेमें उद्यत हुए हैं ? हे द्विजोत्तम ! आप धनके कठिन लोभसे ज्ञानरहित

तस्मात्त्वमंतरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव ॥ इंद्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः ॥ ३० ॥ आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय ॥ राजोवाच ॥ मया निमंत्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥ संभाराः संभृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो ॥ इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः ॥ ३२ ॥ कथं त्वक्त्वाऽद्य मे कार्यमुद्यतो गंतुमाशु वै ॥ न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम ॥ ३३ ॥ गंतासि धनलोभेन लोभाकुलितचेतनः ॥ निवारितोऽपि राज्ञा स जगामेंद्रमखं गुरुः ॥३४॥ राजाऽपि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत् ॥ इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः ॥ ३५ ॥ दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि ॥ निमिना पंचसाहस्री दीक्षा तत्र कृता नृप ॥३६॥ ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युताः ॥ शक्र यज्ञे समाप्ते तु पंचवर्षशतात्मके ॥ ३७ ॥

होकर मेरा यज्ञ त्यागकर जाते हैं॥३३॥यह आपको उचित नहीं. हे राजन् ! निमिराजके इस प्रकार निवारण करनेपर भी वशिष्ठ ऋषि इन्द्रकेयज्ञमें गये ॥३४॥ तब राजानेभी विमन होकर गौतमऋषिको यज्ञकार्यमें वरण किया तब उन्होंने हिमाचलके पार्श्वमें सागरके समीप यज्ञ आरंभ करके॥३५॥ ब्राह्मणगणोंको बहुत दक्षिणा दी. इस यज्ञमें निमिराज पांच सहस्र वर्षपर्यन्त दीक्षित हुए थे ॥ ३६ ॥ और इसमें ऋत्विग्गण पूर्ण धन और गोदानसे परिपूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए थे अनंतर देवराजका पांच हजार वर्षव्यापी यज्ञ समाप्त होनेपर ॥ ३७ ॥

वशिष्ठऋषि निमिराजका यज्ञ देखनेको राजासे भेंट करनेके निमित्त उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ३८ ॥ राजा तिस समय निद्रामें अत्यन्त व्याप्त थे इस कारण सेवकगण उनको न जगासके अतएव राजा भी ऋषिके निकट न आये ॥ ३९ ॥ इस कारण अपमान बोध होनेसे महर्षि वशिष्ठके अन्तःकरणमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई, वह राजाको न देखकर क्रोधित हुए ॥ ४० ॥ और अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो निमिराजको यह कह शाप दिया कि, तू अत्यन्त मन्दमति राजा है, मेरे चिरगुरु रहते और विशेष कर मेरे तुमको निवारण करनेपर भी तुमने जब मुझको त्याग दूसरेको वरण कर ॥ ४१ ॥ बलपूर्वक दीक्षित हो मेरा कहा न माना इससे तो तुम विदेह देहरहित होओ

आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया ॥ आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च ॥ ३८ ॥ तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयाऽपहृतो भृशम् ॥ नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः ॥३९॥ वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भूतोऽवमानतः ॥ अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ शापं च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः ॥ यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वाऽन्यं गुरुमात्मनः ॥ ४१ ॥ दीक्षितोऽसि बलान्मंद मामवज्ञाय पार्थिव ॥ वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ॥४२॥ पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते॥व्यास उवाच ॥ इति उद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः॥४३॥सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुःप्रकोपितम् ॥ कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः ॥४४॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत् ॥ मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाऽऽकुलः ॥ ४५ ॥ हित्वा मां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम् ॥ न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा यह शरीर अभी निपतित हो अर्थात् तुम विदेह होओ, व्यासजीने कहा हे राजन् ! सेवकगणोंने वशिष्ठजीके यह शापयुक्त वाक्य सुनकर ॥ ४३ ॥ राजाको तत्काल जगाया कि वशिष्ठ ऋषि आपकी भेंट न होनेसे अत्यन्त प्रकुपित हुए हैं, यह विषय निवेदन किया, पापरहित निमिराजने प्रकुपित वशिष्ठके सामने जाय ॥ ४४ ॥ विनय नम्रभावसे हेतुपूर्ण और युक्तिसंगत वचन कहा हे धर्मज्ञ ! मैं आपका यजमान हूं मेरे वारंवार प्रार्थना करनेपरभी आपने लोभकी तृष्णामें व्याकुल होकर ॥ ४५ ॥ मुझको त्याग

अन्यत्र गमन किया अतएव इसमें मेरा कुछ दोष नहीं आप ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य होकर और सन्तोषी ब्राह्मणोंका सारधर्म जानकर भी इसप्रकार नीचकार्य करनेमें लज्जित नहीं होते ? ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणका सन्तोषही धर्म है आप ब्रह्माके पुत्र और वेदवेदाङ्गपारग होकरभी ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठतर ब्राह्मणधर्मकी सूक्ष्मगति नहीं जानते आप अपना निजदोष मेरे ऊपर आरोपित करके मुझको शाप देनेकी वृथा अभिलाषा करते हैं ॥ ४८ ॥ क्रोध चण्डालसे भी अधिकतर दूषणीय अतएव स्वजनगणोंको इसका परित्याग करनाही उचित है आप जब अकारण ही क्रोधानलमें प्रज्वलित हो मुझको शाप देते हैं ॥ ४९ ॥ तब मैं भी आपको इस समय शाप देता हूं कि, आपकी यह क्रोधयुक्त देह निपतित हो.

संतोषे ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम् ॥ पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षाद्वेदवेदांगवित्तमः ॥ ४७ ॥ न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि ॥ ४८ ॥ त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चंडालादधिको यतः ॥ वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः प्रपातितः ॥ ४९ ॥ तवापि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः ॥ एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा ॥ ५० ॥ परस्परं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ बभूवतुः ॥ वसिष्ठस्त्वति चिंतार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः ॥ ५१ ॥ निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै ॥ ५२ ॥ किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम् ॥ अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम् ॥ यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः ॥ ५४ ॥

हे महाराज ! इसप्रकार राजा मुनिवर ॥ ५० ॥ और मुनिवर राजाको शाप दे दोनोंही अत्यन्त दुःखित हुए तब वशिष्ठ अत्यन्त चिन्ताकुल हो ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ ५१ ॥ और निमिके दिये हुए महत् शापके विषय निवेदन कर कहा हे पितः ! " अभी तुम्हारा यह देह पतित हो" यह कहकर निमिराजाने मुझको शाप दिया है ॥ ५२ ॥ इस समय देहपातजनित महत्कष्ट उपस्थित हुआ है अतएव मैं क्या करूं ? हे पितः ! कौन पुरुष मुझे जन्म देगा यह आप मुझसे कहिये ॥५३॥ और जिससे मुझको पूर्वके समान देह प्राप्त हो उसका भी उपाय कीजिये

और मेरे इस देहमें जिसप्रकार ज्ञान रहता है उस देहमें भी जिससे इसीप्रकार ज्ञान रहे ॥ ५४ ॥ आप प्रसन्न होकर अपनी असीम प्रभावसे उसी प्रकार कीजिये क्यों कि आप उसके करनेमें भलीभाँति समर्थ हैं. हे राजन् ! वशिष्ठके वाक्य श्रवण कर ब्रह्माने अपने उस प्रिय पुत्रसे कहा ॥ ५५ ॥ तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश कर स्थिर चित्तसे वास करो इससे तुम यथाकालमें अयोनिज देह प्राप्त कर फिर ॥ ५६ ॥ धर्मयुक्त, सत्यनिष्ठ, वेदज्ञ, सर्वज्ञ और सबके पूजित होंगे इसमें कोई भी संशय नहीं ॥ ५७ ॥ ब्रह्माके इसप्रकार कहनेपर फिर महर्षि वशिष्ठ पितामहको प्रणाम और प्रदक्षिणा कर वरुणालयमें गये ॥ ५८ ॥ अनन्तर उन्होंने अपना अत्युत्तम देह परित्याग कर सूक्ष्मदेहरूप

समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच तं सुतम् ॥ ५५ ॥ मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव ॥ तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः ॥ ५६ ॥ पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि ॥ भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥ ५७ ॥ एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम् ॥ ५८ ॥ विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोः किल ॥ जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कदाचित्तूर्वशी राजन्ना गता वरुणालयम् ॥ यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम् ॥ जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप ॥ ६१ ॥ विवशौ चारुसर्वांगीं देवकन्यां मनोरमाम् ॥ आवां त्वमनवद्यांगि वरयस्व समाकुलौ ॥ ६२ ॥ विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि ॥ तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थितावशा ॥ ६३ ॥

अपने जीवांशद्वारा मित्रावरुणके देहमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर किसी समयमें परमरूपलावण्यवती उर्वशी अपनी सखियोंके संग इच्छानुसार वरुणालयमें आनकर उपस्थित हुई ॥ ६० ॥ मित्रावरुण दोनों देवतारूप यौवनसम्पन्न उस अप्सराको देखकर अत्यन्त कामातुर हुए ॥ ६१ ॥ और कामबाणसे मोहित और विवश हो उस सर्वाङ्गसुन्दरी मनोरमा देवकन्या उर्वशीसे कहने लगे हे वरवर्णिनि! हम तुमको देखकर कामबाणसे अत्यन्त व्याकुल हुए हैं ॥ ६२ ॥ हे सुन्दरि! तुम हमको वरण कर इस स्थानमें इच्छानुसार विहार करती रहो

उनके इस प्रकार कहनेपर फिर उर्वशी देवी तिसकाल उनके प्रति अनुरागिनी और उनकी वशवर्तिनी होकर ॥ ६३ ॥ उन मित्रावरुणके गृहमें वास करने लगी उर्वशीके उनके प्रति परमअनुरागके सहित वहां स्थिति करनेपर ॥ ६४ ॥ उनका वीर्य एक उघडे कुम्भमें पतित हुआ उससे अत्यन्त मनोहर दो ऋषिकुमारोंने जन्म ग्रहण किया ॥६५॥ तिनमें अगस्त्य प्रथम और वशिष्ठ दूसरे हुए इसप्रकार मित्रावरुणके वीर्यसे तपस्वी दो ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६६ ॥ प्रथम अगस्त्य बाल्यकालमें ही तपस्वी होकर वनको चले गये और राजश्रेष्ठ इक्ष्वाकुने बालक वशिष्ठको पुरोहितमें वरण किया ॥ ६७ ॥ हे राजन्! इक्ष्वाकुने उनके वंशके कल्याणार्थ उनको पालन किया विशेषकर वह उनको वशिष्ठ

कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे ॥ सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना ॥ ६४ ॥ तयोस्तु पतितं वीर्यं कुंभे दैवादनावृते ॥ तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ ॥ ६५ ॥ अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठाश्चापरस्तथा ॥ मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः ॥ इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम् ॥ ६७ ॥ वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव ॥ विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह ॥ ६८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम् ॥ शापादेहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल ॥ निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च संप्राप्तः पुनर्देहो नराधिप ॥ निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनंतरम् ॥ २ ॥

मुनि जानकर उनके प्रति प्रसन्न हुए थे ॥ ६८ ॥ हे जनमेजय! यह मैंने तुमसे निमिके शापसे वशिष्ठकी देहान्तर प्राप्तिका और मित्रावरुणके कुलमें उनकी उत्पत्तिका विवरण सम्पूर्णही वर्णन किया ॥६९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर! आपने महर्षि वशिष्ठदेवकी देहान्तरप्राप्तिका विषय वर्णन किया किंतु निमिराज किसप्रकार फिर देहको प्राप्त हुए थे? यह वर्णन नहीं किया उस समय यह विषय कीर्तन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्!

वशिष्ठ ऋषि फिर देहको प्राप्त हुए थे किंतु निमिराजको वशिष्ठके शाप देनेपर फिर देह प्राप्त नहीं हुई ॥ २ ॥ जब वशिष्ठ ऋषिने उनको शाप दिया, उस समय यज्ञकार्यमें नियुक्त ऋत्विक् ब्राह्मणगण चिन्ता करने लगे कि ॥ ३ ॥ क्या आश्चर्य है इस यज्ञके सम्पूर्ण न होते होतेही दीक्षित धार्मिक महीपति निमि शापसे ग्रस्त हुए ॥ ४ ॥ यह कार्य विपरीत हो गया हम क्या कर जो होनहार है वह अवश्य ही होगा अतएव हम क्या करके इसको निवारण करें ॥ ५ ॥ तब उन्होंने उस महात्माकी किंचित् श्वासयुक्त देहकी अनेक मंत्रोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥ और माल्य गन्धादिसे वारंवार पूजाकर अनेक यत्नसे मंत्रशक्तिद्वारा स्तम्भित और विकार रहितकर राजाको उक्त देहधारण कराई ॥ ७ ॥ अनन्तर उस यज्ञके समाप्त

यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाःक्रतौ ॥ ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिंतयन् ॥ ३ ॥ किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः ॥ अस्मिन्यज्ञे त्वसंपूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥४॥ किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल ॥ अवश्यंभावि भावत्वादशक्ताः स्म निवारणे ॥५॥ मंत्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः ॥ रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥ ६ ॥ गंधैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः ॥ मंत्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपूजितम् ॥ ७ ॥ समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः ॥ ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप ॥ ८ ॥ विज्ञता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवम् ॥ प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत ॥ ९ ॥ यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते ॥ देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वांछितम् ॥ १० ॥ इतः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् ॥ एवमुक्तो निमेरात्मा संतुष्टस्तानुवाच ह ॥ ११ ॥

होनेपर ऋषिगण देवताओंका स्तव करने लगे इससे देवता प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर उस स्थानमें आये ॥ ८ ॥ तिस समय मुनिगण राजाकी समस्त अवस्था जानकर दुःखित राजासे कहने लगे हे सुव्रत! हम आपके यज्ञानुष्ठानसे प्रसन्न हुए हैं इस समय आप हमसे वांच्छित वर माँगिये ॥ ९ ॥ हे नृपवर ! इस यज्ञके अनुष्ठान फलसे आपका श्रेष्ठ जन्म होना उचित है, अतएव आप देवदेह अथवा नरदेह जिसकी अभिलाषा करें वही कहिये ॥ १० ॥ अतएव आपका पुरोहित जिस प्रकार पूर्व देह परित्यागकर इसीके समान दूसरा देहधारण पूर्वक गर्वित हो मृत्युलोकमें

अवस्थिति करता है आप इच्छा होनेसे भी इस प्रकार प्रार्थना कर सकते हैं हे महाराज ! देवताओंके इस प्रकार कहनेपर फिर निमिराजकी आत्मा अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे सुरसत्तमगण ! जो देह सर्वदाही विनष्ट होता है इसमें मेरी अभिलाषा नहीं है अतएव जीवगणोंके दोनों नेत्रोंके उपरि भागमें मेरा वास हो ॥ १२ ॥ मैं समस्त प्राणियोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे विचरण करूं यही मेरी प्रार्थना है निमिराजके इस प्रकार कहनेपर फिर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा ॥ १३ ॥ हे महाराज ! आप विश्वरूपिणी सर्वेश्वरी देवीके निकट प्रार्थना कीजिये वह यज्ञसे सन्तुष्ट हुई हैं अतएव अवश्य ही आपका अभीष्ट सिद्ध करेंगी ॥ १४ ॥ निमिराज देवताओंके यह वचन सुनकर

न देहे मम वांछाऽस्ति सर्वदेव विनश्वरे ॥ वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टा वस्तु सुरोत्तमाः ॥ १२ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्च राम्यहम् ॥ एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥ १३ ॥ प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् ॥ मखेनानेन संतुष्टा साऽतेभीष्टं विधास्यति ॥ १४ ॥ स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि ॥ प्रसन्नायां देवताया राजा वव्रे वरं नृप ॥ १७ ॥ ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति ॥ १८ ॥

भक्तिभावयुक्त गद्गद वाक्यसे अनेकप्रकारके स्तोत्रद्वारा देवीके निकट प्रार्थना करने लगे ॥ १५ ॥ तब देवी प्रसन्न हो उनके सन्मुख आये उपस्थित हुई उनकी करोड़ सूर्यके समान ज्योति और रूपलावण्य देखकर ॥ १६ ॥ सम्पूर्णही आनन्दित और प्रफुल्लित होकर मनही मनमें अपनेको कृतकृत्य बोध करने लगे तब राजाने भगवती देवीको प्रसन्न जानकर उनके निकट इस वरकी प्रार्थना की ॥ १७ ॥ हे देवि ! जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है मुझको वही विमल तत्वज्ञान प्रदान कीजिये और जिससे सम्पूर्ण जीवोंके नेत्रोपरि मेरा वास हो आप वह कीजिये ॥ १८ ॥

अनन्तर प्रसन्न हुई सुरेश्वरी जगदंबिका देवीनें कहा हे नृपवर ! प्रारब्धकार्यके शेष होनेपर तुमको विमल ज्ञान प्राप्त ॥ १९ ॥ और समस्त जीवगणोंके नेत्रोपरि वायुरूपसे तुम्हारा वास होगा तुम्हारे अधिष्ठानसेही देहीगणोंके दोनों नेत्र निमेषयुक्त होंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे वासके कारणही मनुष्यगण पशुगण और पतंगगणोंके नेत्रोपरि निमेषहोगा किन्तु अमरगण अनिमेष रहेंगे ॥ २१ ॥ परमेश्वरी भगवती उनको इसप्रकार वरप्रदानपूर्वक संपूर्ण मुनिगणोंसे संभाषण कर उसीस्थानमें अंतर्धान हुई ॥ २२ ॥ देवीके अंतर्धानहोनेपर तत्रस्थित मुनिगणोंने अनेकप्रकारसे

ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदंबिका ॥ ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः ॥ १९ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति ॥ निमिषं यांति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम् ॥ २० ॥ तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा ॥ पतंगाश्च भविष्यंति पुनश्चानिमिषाः सुराः ॥ २१ ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता ॥ आमंत्र्य च मुनीन्सर्वास्तत्रैवांतर्हिताऽभवत्॥२२॥ अंतर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः ॥ विचिंत्य विधिवत्सर्वे निमेर्देहं समाहरन् ॥ २३ ॥ अरणिं तत्र संस्थाप्य ममंथुमंत्रवत्तदा ॥ मंत्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥ २४ ॥ अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः साक्षान्निमिरिवापरः ॥ २५ ॥ अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः ॥ येनायं जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत् ॥ २६ ॥ विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ॥ समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥ २७ ॥

चिंताकरके विधिपूर्वक मथन करनेके लिये निमिकी देहको ग्रहण किया॥२३॥महात्मा मुनिगण निमिपुत्रके निमित्त होम करके तदुपरांत उनकी देहमें अरणि (मन्थन काष्ठ) स्थापन पूर्वक मंत्र उच्चारण कर मंथन करने लगे ॥२४॥ इस प्रकार अरणिद्वारा मथित होनेपर सर्व सुलक्षणयुक्त साक्षात् दूसरे निमिके समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इस पुत्रने अरणिके मथनेसे जन्म ग्रहण किया इस कारण मिथिनामसे और जनकके अंगसे जन्म लेनेपर जनक नामसे विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! निमिराज वशिष्ठके शापसे विदेह अर्थात् देहरहित हुए थे इसी

कारण उनके वंशमें उत्पन्न सबही विदेह कहकर कीर्तित होते हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार निमिके पुत्र जनकनामसे विख्यात हुए थे उन्होंने गंगाके तटपर मनोरमा एक नगरी निर्माण की ॥ २८ ॥ उन्हींके नामानुसार यह नगरी मिथिलानामसे विख्यात हुई. जनकराजने इस नगरीको दुर्ग तोरण हट्टशाला बडे स्थान और अनेक अटारियोंसे शोभायमान कर धनधान्यादिसे परिपूर्ण किया था ॥२९॥ हे राजन् ! इस वंशके संपूर्ण राजागणही जनक कहकर विख्यात और समस्तही ज्ञानयुक्त तथा विदेह कहकर कीर्त्तित होते हैं ॥३०॥ हे राजन् ! शापके वशीभूतहो जिनको विदेहत्व प्राप्त हुआ था मैंने इस निमिराजका अति उत्तम उपाख्यान आपके निकट विस्तारपूर्वक कीर्त्तन किया ॥ ३१ ॥ राजाने कहा हे

एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् ॥ नगरी निर्मिता तेन गंगातीरे मनोहरा ॥ २८ ॥ मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता ॥ धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता ॥ २९ ॥ वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा ॥ विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥३० ॥ एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् ॥ शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया ॥३१॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् ॥ श्रुत्वा संदेहमापन्नं मनो मेऽतीव चंचलम्॥३२॥वसिष्ठो ब्राह्मणः श्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः ॥ पुत्रः पंकजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः ॥ ३३ ॥ गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा ॥ यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः ॥३४॥ ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसंभवः॥ क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ क्षमाऽतिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ॥ क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥३६॥

भगवन् ! आपने निमिशापका कारण कीर्त्तन किया, उसको सुनकर मेरा मन अत्यन्त संशययुक्त और अतिचंचल होगया ॥३२॥ वशिष्ठ ऋषि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर राजाके पुरोहित थे अतएव वह किसलिये राजासे शापित हुए ॥३३॥ निमिराजने उनको गुरु और ब्राह्मण जानकर भी क्षमा क्यों नहीं की ? वह इस प्रकार मंगलजनक यज्ञकार्य करके भी क्यों क्रोधके वशीभूत हुए ? ॥३४॥ उन्होंने इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न और धर्मका तत्व जानकर भी किस कारणसे क्रोधके वशीभूत होकर आपने गुरु ब्राह्मणको शाप दिया ? ॥ ३५ ॥ व्यासजीने

कहा, हे राजेन्द्र! अजितेन्द्रिय प्राणीगणोंके पक्षमें क्षमा अत्यंत दुर्लभ है, विशेषकर सामर्थ्यवान् होनेपर भी क्षमावान् हो इस प्रकारके मनुष्य त्रिलोकीमें अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ३६ ॥ जो समस्त संग परित्याग क्षमा और निद्राको जीतकर सर्वदा योगाभ्यासमें निरत हैं ॥ ३७ ॥ वे तपोधन मुनि काम, क्रोध, लोभ और अहंकार इत्यादि देहमध्यस्थित शत्रुगणोंको भलीभांति नहीं जीतसकते ॥ ३८ ॥ जो इन शत्रुओंको जीत सकता है इस संपूर्ण संसारमें ऐसा पुरुष पूर्वमें कोई नहीं था इस समय भी विद्यमान नहीं और फिर भी उत्पन्न न होगा ॥ ३९ ॥ इन शत्रुओंको पराजित करसकता है ऐसा कोई पुरुष पृथ्वी स्वर्ग वा ब्रह्मलोक अथवा वैकुण्ठमें अधिक क्या कैलासमें भी विद्यमान

सर्वसंगपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः ॥ निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः ॥ ३७ ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहंकारश्चतुर्थकः ॥ दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा ॥३८॥ न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना ॥ भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान् ॥३९॥ न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे ॥ कैलासे नेदृशः कश्चिद्योजयेत रिपूनिमान् ॥ ४० ॥ मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्ये तापसोत्तमाः ॥ तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि ॥४१॥ कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः ॥ तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धाः सगरात्मजाः ॥४२॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातं भुवनत्रयम् ॥ कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत् ॥४३॥ ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चैवाथ शंकरः ॥ प्रभवंति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृक् ॥ ४४ ॥

नहीं ॥ ४० ॥ जब ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण और अन्यान्य तापसोत्तम ऋषिगण समस्तही सत्व रज और तमोगुणसे बँधे हैं तब पृथ्वीमें वास करनेवाले सामान्य मनुष्यकी फिर क्या बात है ॥ ४१ ॥ देखो कपिल सांख्यवेत्ता योगाभ्यासनिरत और पवित्र आत्मा थे. उन्होंने भी दैववशतः क्रोधित होकर राजा सगरके पुत्रोंको दग्ध किया था ॥४२॥ हे राजन्! अहंकारसे वह त्रिभुवन उत्पन्न हुआ है अतएव संपूर्ण संसार और अहंकार परस्पर कार्य कारण भावसे बँधे हैं तो इस संसारमें उत्पन्न हुए जीवगण किस प्रकार उस अहंकारसे छूट सकते हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर यह भी तीनों गुणद्वारा युक्त हैं उनके शरीरमें भी पृथक् पृथक् भावका आविर्भाव होता है ॥ ४४ ॥

तब मनुष्यगणोंको देहमें जो सत्वगुणका वास नहीं होता इस विषयमें कहनाही क्या है क्योंकि मिलेहुए तीनों गुणोंका सर्वत्रही वास होता है
॥ ४५ ॥ अतएव कभी सत्वगुणकी कभी रजोगुणकी और कभी तमोगुणकी वृद्धि होती है और कभी इनकी समभावसे अवस्थिति होती है
॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! केवल वही सनातन परम पुरुष अव्यय और निर्लेप एवं समस्त भूतोंके अप्रमेय और अलक्ष्य है ॥ ४७ ॥ वही परात्पर
परमात्मा निर्गुण हैं और जो सब जीवोंमें वास करते हैं जो अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुर्लभ हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी परमाशक्तिको भी निर्गुण जानना

मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकान्तव्यवस्थितौ ॥ गुणानां संकरो राजन्सर्वत्र समवस्थितः ॥ ४५ ॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्क
कदाचिद्रजसः किल ॥ कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥ ४६ ॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः ॥ अल
क्ष्यः सर्वतत्त्वानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४७ ॥ तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता ॥ दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यव
स्थितिः ॥ ४८ ॥ परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥ ४९ ॥ तज्ज्ञानादेव
मोक्षः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥ ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं
स्मृतम् ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद् बुद्धियोगतः ॥ ५१ ॥ विकल्पास्तत्र बहवो भवंति मतिकल्पिताः ॥ " कुतर्ककल्पिताः
केचित्सुतर्ककल्पिताः परे ॥ वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद् बुद्धिभ्रंशता ॥ बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः ॥ " अनु
भवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद् दुर्लभं नृप ॥ ५२ ॥

चाहिये ॥ ४८ ॥ परमात्मा और परमात्माशक्तिकी कथा सर्वदाही विद्यमान है उनकी मूर्ति अभिन्न है जब इस प्रकार ज्ञानका उदय होता है
तब ही जीवगण संपूर्ण प्रकारके दोषसे छूट जाते हैं ॥ ४९ ॥ "इसी ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होता है" वेदांत शास्त्रमें यह (नगाड़ेके शब्द) के समान
घोषणा है जो उसको जानता है वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥५०॥ हे महाराज ! ज्ञान दो प्रकारका है तिनमें
शाब्दिक ज्ञान प्रथम है वेदशास्त्रार्थ विज्ञानसे बुद्धि योग द्वारा उस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है॥५१॥इसमें मनुष्यगणोंके बुद्धि कल्पित अनेक वितर्क

दिखाई देते हैं तिनमें कितनेही एक कुतर्क द्वारा कल्पित और कितनेही सुतर्क कल्पित हैं इस वितर्कसे प्राणीगणोंके भ्रमकी उत्पत्ति होती है भ्रमसे बुद्धि नष्ट और बुद्धि नष्टसे ज्ञान नष्ट होता है. हे राजन् ! दूसरे ज्ञानका नाम अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान है यह ज्ञानप्राणीगणोंके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ जानना चाहिये ॥५२॥ जब अनुभवकर्त्ता सद्गुरुके सहित संग होता है तबही वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है क्योंकि शब्द ज्ञानसे कार्यसिद्धि नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अतएव इससे अलौकिक अनुभव ज्ञान (अपरोक्ष) की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है. इसी कारण इस ज्ञानके निमित्त महत् परिश्रमका प्रयोजन है. हे राजन् ! जिस प्रकार दीपक न जलाकर उसकी बातसे ही अन्धकार नष्ट नहीं होता इसी प्रकार शब्दका बोधमात्र

तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः संगो यदा भवेत् ॥ शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत ॥ ५३ ॥ तस्मान्नानुभवज्ञानं संभवत्यतिमानुषम् ॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः ॥ ५४ ॥ तथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥ तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये ॥ ५५ ॥ आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शील्पनैपुणम् ॥ शीलं परहितत्वं च कोपाभावः क्षमा धृतिः ॥५६॥ संतोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ॥ विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासे न भूपते ॥५७॥ विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन ॥ "मनस्तु चंचलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् ॥ तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये ॥" कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजा परिकीर्तिताः ॥ ५८ ॥

अन्तरका अन्धकार नाश करनेमें समर्थ नहीं होता. जो बन्धनका कारण है उसको ही यथार्थ कर्म और जिससे युक्ति प्राप्त होती उसकोही यथार्थ विद्या कहा जा सकता है॥५४॥५५॥अपर सम्पूर्ण कर्म परिश्रम निमित्त और अपर विद्याके बल शिल्पनैपुण्य मात्र होती हैं. शीलता, परोपकार अक्रोध, क्षमा, धैर्य ॥ ५६ ॥ और संतोष यह सब विद्यावल्लीके उज्वल और सुन्दर फल हैं हे राजन् ! विद्या, तपस्या और योगाभ्यासकेविना॥ ५७ ॥ कभी कामादि सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश नहीं होता जीवगणोंका मन स्वभावसे ही चंचल और दुर्गन्ध है. प्राणीगण सब प्रकारसे मनके वशीभूत हैं.

अतएव वह उत्तम, मध्यम और अधम होकर इस संसारमें विचरण करते हैं.काम क्रोधादि समस्त भाव मनसे ही उत्पन्न होते हैं॥५८॥जब मनको जीत लिया जाता है तब सम्पूर्ण भाव उत्पन्न नहीं होते इस कारण राजासे क्षमा न हुई ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! पूर्वमें शुक्राचार्यके अपराध करने-पर ययातिने जिस प्रकार उनको क्षमा किया था निमिराज वशिष्ठ ऋषिके प्रति उस प्रकार क्षमा करनेमें समर्थ नहीं हुए, नृपसत्तम ययातिने भृगुनन्दन शुक्राचार्यसे शापित होकर क्रोधके शीभूत उन मुनिको शाप न देकर ॥ ६० ॥ आपही जरा(बुढापा) ग्रहण किया था. हे नराधिप ! स्वभावके वशीभूत कोई राजा शान्तभाव युक्त और कोई राजा क्रूर स्वभाव युक्त होता है ॥ ६१ ॥ अतएव इस विषयमें किसका दोष कहा

ते तदा न भवंत्येव यदा वै निर्जितं मनः ॥ तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ ॥५९॥ यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि ॥ भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः ॥६०॥ न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान् ॥ कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः ॥ ६१ ॥ स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते ॥ हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ॥६२॥ ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः क्रोधमूर्च्छिताः॥ पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महा राणे षष्ठस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ये ॥ ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये ॥१॥ वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह ॥ निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वंति सत्तमाः ॥ २ ॥

जा सकता है ? देखो पूर्वकालके समय हैहयगणोंने धनलोभके वशीभूत और क्रोधसे मूर्छित होकर भृगुवंशीय पुरोहित ब्राह्मणगणोंको जड़सहित नष्ट किया था॥६२॥ अधिक क्या उन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर अत्यन्त क्रोधके वशीभूत हो उन ब्राह्मणोंके गर्भमें स्थित बालकोंको भी छेदन किया था ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! हैहय नाम जिन क्षत्रियगणोंने ब्रह्महत्याके पापको न देखकर भार्गवगणोंको निहत किया था उन्होंने किसके वंशमें जन्मग्रहण किया था ॥१ ॥ हे पितामह ! सज्जनगण भारी कारणके विना क्रोध नहीं करते, अतएव आप उनके क्रोधका कारण क्या है यह कहिये ? ॥२॥

पुरोहित गणोंके सहित उनकी शत्रुता क्यों हुई ? मुझको बोध होता है कि, सामान्य कारणसे क्षत्रियगणोंकी यह शत्रुता नहीं होती ॥३॥ तो वह निरपराध पूजनीय ब्राह्मणोंको किस कारण निहत करते हैं ? क्षत्रियगण बलवान् होनेपर भी उनके पापसे क्यों नहीं डरते ? ॥४॥ हे मुनिवर ! कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ सामान्य अपराधके कारण परम पूज्य विप्रवर्गका विनाश करते हैं ? अतएव हे मुनीन्द्र ! मुझको इस विषयमें संशय उपस्थित हुआ है आप इस कारण वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके सत्यवती पुत्र व्यास देवजीसे इस प्रकार पूँछनेपर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनमें हैहयका वृत्तान्त स्मरण कर वह उपाख्यान वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ उन्होंने कहा हे परीक्षिततनय ! जो मैंने पूर्वमें भली

वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत ॥ नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति ॥३॥ अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः ॥ बाहुजा बलवंतोऽपि पापभीताः कथं न ते ॥४॥ स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्बाडवान्क्षत्त्रियर्षभः ॥ संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि ॥५॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः ॥ उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा ॥६॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पारिक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम् ॥ आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया ॥ ७॥ कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः पृथिवीपतिः ॥ सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः ॥ ८ ॥ दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव ॥ सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः ॥९॥ यज्वा परमधर्मिष्ठः सदा दानपरायणः ॥ ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः॥१०॥ धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः ॥ हयरत्नसमृद्ध्याऽऽढ्या संजाताः प्रथिता भुवि ॥ ११ ॥

भांति जाना है क्षत्रियोंका वह अत्यन्त आश्चर्य युक्त पुरातन उपाख्यान वर्णन करता हूं सुनो॥७॥पूर्वकालके समय हैहयवंशमें उत्पन्न सहस्र बाहु, बलवान्, धर्मतत्पर कार्तवीर्यार्जुन नामक एक राजा थे॥८॥वह हरिके अवतार महर्षिदत्तात्रेयके शिष्य और परमाशक्तिके उपासक थे योगसिद्ध कहकर सर्वत्र विख्यात और अत्यन्त दान करनेवाले थे किन्तु यह नृपश्रेष्ठ भृगुवंशीय ब्राह्मणगणोंके यजमान थे॥९॥वह यज्ञ करनेवाले परम धर्मनिष्ठ और सर्वदा ही दानपरायण थे उसीके अनुसार अनेकबार यज्ञ करके भार्गवगणोंको बहुत धन दिया था॥१०॥कार्तवीर्यके दान प्रभावसे वह विप्रगण बहुत अश्व और

रत्नादि अनेक ऐश्वर्यसे पृथ्वीमें धनशाली कहकर विख्यात हुए थे॥११॥हे क्षितीन्द्र ! नृपतिश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनके स्वर्ग जानेपर फिर कालके दुरतिक्रमणीय प्रभावसे हैहयगण एक बारही निर्धन हो गये ॥१२॥ अनंतर किसी समय हैहयगणोंको बहुत धनवाला कोई कार्य उपस्थित हुआ उन्होंने भार्गवगणोंके निकट आय विनयसहित बहुत धन की प्रार्थनाकी ॥ १३ ॥ किंतु विप्रगणोंने अत्यन्त लोभार्त हो "नहीं नहीं" यह कहकर कुछ भी उनको धन दान नहीं किया॥१४॥परंतु क्षत्रिय बलपूर्वक धन लेंगे इस शंकासे किसी किसीने उत्तम उत्तम बहुमूल्य धन पृथ्वीमें दबा दिया और किसी किसीने ब्राह्मणोंको देदिया ॥१५॥ धनलोभी भार्गवगण भयसे विह्वल होकर अपने अपने सम्पूर्ण द्रव्य इस प्रकार स्थानानन्तर कलितकर

स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः ॥ हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप ॥१२॥ धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन॥ याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्ते हैहया नृप ॥ १३ ॥ विनयं क्षत्त्रियाः कृत्वाऽप्ययाचंत धनं बहु ॥ न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीति वादिनः ॥ १४ ॥ भूमौ च निदधुः केचिद् भृगवो धनमुत्तमम् ॥ ददुः केचिद् द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्त्रियतो भयम् ॥ १५ ॥ कृत्वा स्थानांतरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः ॥ त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥ १६ ॥ याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः ॥ पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥१७॥ ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात् ॥ भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्त्रियर्षभाः ॥ १८ ॥ भृगूंस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वागृहानथ ॥ चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैयया भृशम् ॥१९॥ खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद् भृगुवेश्मनि ॥ ददृशुः क्षत्त्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकाशिताः ॥२०॥

अपना अपना घर छोड़ पर्वतादिमें चले गये ॥ १६ ॥ लोभसे मोहित ब्राह्मणोंने यजमानोंको दुःखित देखकर भी धन न दिया किंतु भयसे सभी गिरिदुर्गका आश्रयकर वास करने लगे॥ १७ ॥इसके उपरांत क्षत्रिय श्रेष्ठ हैहयगणोंने दुःखित हो महत् कार्यके अनुरोधसे धन लेनेके निमित्त भार्गवगणोंके गृहमें जाकर ॥ १८ ॥ देखा कि, भार्गवगण घर छोड़ भाग गये हैं और उनके सम्पूर्ण घर शून्य हुए पड़े हैं तब वह धनप्राप्त होनेके लिये उनके संपूर्ण घर खोदने लगे ॥ १९ ॥ और किसी किसीको भार्गवगणोंके घरसे धन प्राप्त हुआ अनंतर समस्त क्षत्रियोंको धन प्राप्तिकी

आशासे इस प्रकार परिश्रम करनेपर ॥२०॥ जब पृथ्वीसे अनेकानेक धन प्राप्त होने लगा तब पड़ोसी अन्य अन्य ब्राह्मणोंके घरोंको भी॥२१॥ खोद और विदारण कर धन ढूँढ़ने लगे, तब सम्पूर्ण ब्राह्मणगण निरुपाय हो रोते रोते उनकी शरणागत हुए ॥२२॥ क्षत्रियगणोंके भली भांति ढूँढनेपर ब्राह्मणोंके घरसे बहुत धन प्राप्त हुआ तब उन्होंने मिथ्या कहनेके अपराधसे क्रोधित होकर उन शरणागत ब्राह्मणोंको शरोंसे निहत किया ॥२३॥ हे महाराज ! तिसकाल हैहयगण इस प्रकार क्रोधित हुए थे और जिस स्थानमें सम्पूर्ण भार्गव वास करते थे क्षत्रियगण भी उसी

यत्र तत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महीतलात् ॥ तदा ते पार्श्वभोगस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि ॥ २१ ॥ निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धन लिप्सया ॥ ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः ॥ २२ ॥ अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु ॥ निजघ्नु स्तांञ्छरैः कोपाद्द्राडवञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥ ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः ॥ आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैव मही मिमाम् ॥ २४ ॥प्राप्तान्प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम् ॥ २५ ॥एवमुत्पा ट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः ॥ हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम् ॥२६॥ रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्यइव दुःखिताः ॥ गर्भाश्च कृंतिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः ॥ २७ ॥ अन्येऽप्याहुश्च तान्दृष्टान्मुनयस्तीर्थवासिनः ॥ मुंचन्तु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम् ॥ २८ ॥

स्थानमें गये और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके गर्भमें स्थित बालकोंको विदारण कर पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ २४ ॥ हैहयगण ब्राह्मणोंमें क्या बालक,क्या युवा,क्या वृद्ध जिस किसीको देखते ब्रह्महत्याके पापको परित्यागकर तत्काल तीक्ष्ण बाणोंसे उसको मार डालते ॥ २५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके मूल सहित नष्ट होनेपर हैहयगण उनकी गर्भिणी स्त्रियोंको पकड़ उनका गर्भ विनाश करने लगे ॥ २६ ॥ पापबुद्धि क्षत्रियोंके गर्भपात करनेपर स्त्रियें दुःखसे कुररीके समान रोने लगीं॥२७॥ तब तीर्थवासी अन्यान्य मुनिगण उन हैहयगणोंको क्रोधसे उद्दीप्त देखकर कहने लगे, हे

क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंके प्रति जो भयानक क्रोध करते हो वह त्याग करो ॥ २८ ॥ तुम क्षत्रियश्रेष्ठ होकर भी भार्गवगणोंकी स्त्रियोंका गर्भपात करते हो इससे तुम अत्यन्त अयुक्त और अतिनीच कार्यमें प्रवृत्त हुए हो इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ तुम जानते हो कि, जीवगणोंको अत्यन्त भारी पाप और पुण्यकर्मका फल इस लोकमेंही प्राप्त होता है. अतएव कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त घृणित कर्म त्याग करना ही उचित है ॥ ३० ॥ अनन्तर परम क्रोधित हैहयगण करुणायुक्त तपोधनोंसे कहने लगे आप सभी साधु हैं अतएव पापकर्मका यथार्थ अर्थ नहीं जानते ॥३१॥ इन छलके जाननेवाले भार्गवगणोंने हमारे उदारात्मा पूर्वपुरुषगणोंसे छल करें मार्गमें चोरके समान संपूर्ण धनहरण

अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् ॥ यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥२९॥ अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात् ॥ तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ३० ॥ तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान् ॥ भवंतः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम् ॥ ३१ ॥ एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् ॥ वंचयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव ॥३२॥ एते प्रतारका दंभास्तादृशा बकवृत्तयः ॥ उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥३३॥ न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्याऽपि याचिताः ॥ नास्तीति वादिनः स्तब्धाः दुःखितान्वीक्ष्य याज्यकान् ॥ ३४ ॥ धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना ॥ न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः ॥ ३५ ॥ न संचितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन ॥ यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम् ॥ ३६ ॥

किया है ॥ ३२ ॥ यह प्रतारक छली और दाम्भिक तथा बगुलेके समान धर्मशील हैं देखो हमारा महत् कार्य उपस्थित होनेसे ॥ ३३ ॥ हमने पाद परिमाण वृद्धिदान सवाया देना अंगीकार करके भी विनयपूर्वक धनकी प्रार्थना की थी तथापि इन्होंने वह न दिया वरन् यजमानको अत्यंत दुःखित देखकर भी "नहीं नहीं" यह कहकर चुप हो गये ॥ ३४ ॥ यद्यपि इन्होंने कार्तवीर्यसे धन प्राप्त किया है किंतु किस कारण उस धनकी रक्षा की है ? उससे यज्ञ क्यों नहीं किया ? किस निमित्त याचकगणोंको बहुतसा दान न किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंको किसी समय कहीं भी धन इकट्ठा करना उचित नहीं है विधिपूर्वक दान और सुखसे भोगना ही उचित है ॥ ३६ ॥

हे द्विजगण! धनसे चोरभय राजभय और अत्यंत अग्निभय विशेषकर भयानक धूर्तभय विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥ धनका ऐसा ही धर्म जानना चाहिये. धन जिस किसी उपायसे ही अपने रक्षकको परित्याग करता है और भीदेखो धनकी रक्षा करनेवाला व्यक्ति जब मर जाता है तब उनको अवश्यही वह त्याग करना पड़ता है॥३८॥यदि धनवान् प्राणत्याग करनेके पहले उपार्जित धनसे सद्गतिसाधक योगादिका अनुष्ठान करे तो अवश्यही सद्गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है किन्तु ऐसा न करनेसे वह विफल धन त्यागपूर्वक असद्गति लाभ करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ३८ ॥ हमने पादपरिमाण कुसीद सवाया व्याज दान करना स्वीकार करके विनय सहित महत् कार्यके निमित्त प्रार्थना की, तथापि लोभसे वशीभूत हो हमारे

द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः ॥ वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत् ॥ ३७ ॥ येन केनाप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम् ॥ अथवाऽसौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥ ३८ ॥ पादवृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः ॥ तथाऽपि लोभसंदिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः ॥ ३९ ॥ दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी ॥ दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल ॥४०॥ न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः ॥ राज्ञाऽसौ सर्वथा दंड्यो वंचको दुःखभाङ् नरः ॥ ४१ ॥ तस्माद्वयं गुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् ॥ हंतुं समुद्यताः सर्वे न क्रोद्धव्यं महात्मभिः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ ॥ विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदाराननेकशः ॥ ४३ ॥

पुरोहितोंने हमको वह न दिया ॥ ३९ ॥ हे महर्षिगण! दान भोग और विनाश धनकी यह तीन गति हैं तिनमें पुण्यवान् मनुष्य दान और भोगसे धनकी सफलता प्राप्त करते हैं और पापात्माओंका धन वृथा ही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ जो दाता भी नहीं और भोगता भी नहीं केवल धनकी रक्षा करनेमें तत्पर और कृपण है राजा लोग उन दुःखभोगनेवाले आत्मवंचक मनुष्योंको भलीभाँति दण्ड दें ॥ ४१ ॥ हम इसी कारण गुरु होनेपर इन वंचक ब्राह्मणाधमगणोंको विनाश करनेमें प्रवृत्त हुए हैं. हे महर्षिगण! आप महात्मा हैं अतएव यह सम्पूर्ण जानकर उससे क्रोध न कीजिये ॥ ४२ ॥ व्यासजीने कहा, हैहयगण मुनियोंको इस प्रकार हेतु युक्त वाक्यसे समझाकर भार्गवोंकी स्त्रियोंको ढूँढते विचरण

करने लगे ॥४३॥ भार्गवोंकी स्त्रियें भयसे कातर और अत्यंत कृशाङ्गी हो काँपते काँपते और रोतेरोते हिमाचलमें जाय वास करने लगीं ॥४४॥ इसी प्रकार वह विप्रगण अर्थलोलुप क्रोधसे उद्दीप्त पापबुद्धि हैहयगणोंसे अत्यंत पीडित होकर मरने लगे ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! पूर्वमुनि कहते हैं कि, लोभ ही मनुष्योंका देहमें स्थित महान् शत्रु है. लोभ ही समस्त दुःखोंकी खान है. लोभ ही सम्पूर्ण पापोंकी जड है. लोभ ही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण और लोभसे ही प्राण नष्ट होनेकी सम्भावना है ॥ ४६ ॥ लोभके ही कारण ब्राह्मणादि वर्णोंमें सदा विरोध उपस्थित होता है और लोभके ही द्वारा मनुष्यगण विषयकी तृष्णासे, व्याकुल होते हैं ॥ ४७ ॥ मनुष्यगण लोभहीके

भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवंतं धराधरम् ॥ प्रपेदिरे रुदंत्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम् ॥ ४४ ॥ एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धन कामुकैः ॥ निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः ॥ ४५ ॥ लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः ॥ सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयाऽन्वितः ॥ विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा ॥ ४७ ॥ लोभात्त्यजंति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि ॥ मातरं भ्रातरं हंति पितरं बांधवं तथा ॥ ४८ ॥ गुरुं मित्रं तथा भामं पुत्रं च भगिनीं तथा ॥ लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः ॥ ४९ ॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभ एव महारिपुः ॥ प्राणांस्त्यजंति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम् ॥५०॥ पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः सत्पथे स्थिताः ॥ पांडवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः ॥ ५१ ॥

कारण धर्म कर्म और कुल क्रमागत आचार व्यवहार परित्याग करते हैं और लोभहीके कारण पिता, माता, भ्राता, बन्धु, गुरु ॥ ४८ ॥ मित्र, पुत्र, भगिनी और भगिनीपति इत्यादिको विनाश करते हैं बहुत क्या लोभयुक्तको पापसे मोहित होनेपर उनको अकार्य नहीं रहता ॥ ४९ ॥ क्रोध काम और अहंकार इनसे भी लोभ प्रबल महान् शत्रु है. हे राजन् ! लोभी जीवगण प्राणपर्यन्त त्याग करते हैं. इस लोभकी अनिष्टकारित्व विषयमें कहनेका फिर क्या शेष रहा ? ॥ ५० ॥ "हे महाराज ! आपके पूर्वपुरुष पांडव और

कौरवगण धार्मिक और सत्पथावलम्बी थे किन्तु लोभके वशीभूत होकर वह मृत्युको प्राप्त हुए॥५१॥देखो जिस स्थानमें भीष्म,द्रोण,कृपाचार्य, कर्ण, वाह्लिक,भीमसेन,युधिष्ठिर,अर्जुन और केशव यह सब महात्मा थे॥५२॥उस स्थानमें भी लोभके कारण परस्पर अत्यन्त घोर युद्ध और कुटुम्बका नाश हुआ था॥५३॥इससे भीष्म द्रोण और पाण्डवगणोंके पुत्रगण भ्रातृगण और पितृगण सब ही युद्धमें निहत हुए थे॥५४॥"अतएव लोभके वशीभूत हो मनुष्यगण क्या कार्य नहीं करते हैं ! हे राजन् ! इसी लोभके कारण पापबुद्धि हैहयगणोंने भृगुवंशीयगणोंको मारा था ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! उन ब्राह्मणकी स्त्रियोंने किस

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च वाह्लिकः ॥ भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ ॥ ५२ ॥ तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम् ॥ कुटुंबकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह ॥ ५३ ॥ हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पांडवात्मजाः ॥ भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥५४॥ तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल ॥ हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात् ॥ मुक्ता वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत् ॥ १ ॥ हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि ॥ क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत् ॥ २ ॥ न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते तथामृतम् ॥ पावनं सुखदं नृणां परलोकफलप्रदम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥ ४ ॥

प्रकार इस अपारदुःख सागरसे निस्तार पाया और किस प्रकार उन ब्राह्मणोंका वंश पुनर्वार पृथ्वीमें प्रतिष्ठित हुआ ॥ १ ॥ उन पापाचारी क्षत्रियाधम लोभके वशीभूत हुए हैहयगणोंने ब्राह्मणोंका विनाश करके फिर क्या किया आप यह सम्पूर्ण विषय वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ २ ॥ हे तपोनिधे ! मनुष्यगणोंको इस लोकमें सुखप्रद और परलोकमें पुण्यफलका देनेवाला अतिपवित्र आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलि पुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥३॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! भृगुपत्नी गणोंने जिस प्रकार उस कठोर दुस्तर दुःख सागरसे छुट-

कारा पाया था मैं आपके निकट उसी पापनाशक पवित्र उपाख्यानको वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ हैहयगणोंके ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको अत्यन्त पीड़ित करनेपर फिर वह भयसे विह्वल और हताशहोकर हिमाचलमें चली गईं ॥ ५ ॥ तब उन सबोंने उस पर्वतमें गंगाके तटपर मृन्मयी गौरीकी मूर्ति बनाये उनकी पूजा की और मनमें मरना निश्चयकर उपवास करने लगीं ॥ ६ ॥ अनन्तर जगदम्बिका देवीने उन धर्मपरायण स्त्रियोंके सामने स्वप्नमें प्रगट होकर कहा कि, तुममें किसीके ऊरुसे मेरे अंश सम्भूत एक सन्तान उत्पन्न होगी ॥ ७ ॥ वह पुरुष तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य करेगा देवी भगवती यह कहकर अन्तर्धान होगई ॥८॥ अनन्तर वह स्त्रियें जागरित हो अतिहर्षको प्राप्त हुईं उनमेंसे एक अतिचतुर

भृगुपत्न्यो यदा जग्मुर्हिमवंतं गिरिं गताः ॥ भयत्रस्ता निभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम् ॥ ५ ॥ गौरीं तत्र तु संस्थाप्य मृन्मयीं सरितस्तटे ॥ उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति ॥ ६ ॥ स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ता प्रमदोत्तमाः ॥ युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥ ७ ॥ मदंशशक्तिसंभिन्नः स वः कार्यं विधास्यति ॥ इत्यादिश्य परांबा सा पश्चादंतर्हिताऽभवत् ॥ ८ ॥ जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वरांगनाः ॥ काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम् ॥ ९ ॥ दधार चोरुणैके गर्भं सा कुलवृद्धये ॥ पलायनपरा दृष्ट्वा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥ १० ॥ विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम् ॥ गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा ॥११॥ इति ब्रुवंतः संप्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः ॥ सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान् ॥ १२ ॥ गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा ॥ रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां त्राणविवर्जिताम् ॥ १३ ॥

कामिनीने क्षत्रियोंके भयसे उद्विग्न हो कुलकी वृद्धिके निमित्त एक ऊरुभेदसे गर्भ धारण किया ॥९॥ अनन्तर उसकी देह तेजसे प्रदीप्त होगई तब उसने भयसे विह्वल हो भागनेकी इच्छा की ॥ १० ॥ क्षत्रियगण उस ब्राह्मणीको देखकर अतिवेगसे उसके पीछे दौडे और कहने लगे कि, देखो यह गर्भवती ब्राह्मणकी स्त्री शीघ्र भागी जाती है इसको पकड़ और इसका प्राण नष्ट करो ॥११॥ वह सभी यह कह खड्ग धारण पूर्वक उसके निकट उपस्थित हुए तब वह कामिनी उनको आता हुआ देख भयसे रोने लगी॥१२॥वह भयातुर हो गर्भकी रक्षाके निमित्त जब चीत्कार करने

लगी तब गर्भस्थित बालक निराश्रय दीन कातर ॥ १३ ॥ अश्रुनयना और भयसे कम्पायमान जननीको रक्षकविहीन और अत्यंत क्षत्रियोंसे पीडित देखकर और सिंहसे आक्रांत गर्भवती हरिणीके समान ॥१४॥ रोते हुए सुनकर क्रोधपूर्ण जननीका ऊरुदेश विदीर्ण कर दूसरे सूर्यके समान सहसा निकला ॥ १५ ॥ उस शोभायमान बालकने अपने तेजसे क्षत्रियोंकी दर्शन शक्ति लोप कर दी, तब हैहयगण उस बालकको देखकर तत्काल सभी अन्धे होगये ॥ १६ ॥ अनन्तर वह जन्मान्धके समान पर्वतकी खोहमें विचरण करने लगे और मनमें चिन्ता करके कहने लगे कि तुमको एक दैवदुर्विपाक प्रारब्धका फल उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ बालकको देखते ही हम सब अन्धे हो गये

निराधारां क्रंदमानां क्षत्त्रियैर्भृशतापिताम् ॥ गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं तथा ॥ १४ ॥ साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्तदा ॥ भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः ॥ १५ ॥ मुष्णन्दृष्टीः क्षत्त्रियाणां तेजसा बालकः शुभः ॥ दर्शनाद्बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः ॥ १६ ॥ बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मांधा इव क्षत्त्रियाः ॥ चिंतितं मनसा सर्वैः किमेत दिति सांप्रतम् ॥ १७ ॥ सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात् ॥ ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत् ॥ १८ ॥ क्षणाद्वाऽमोघसंकल्पाः किं करिष्यंति दुःखिता ॥ इति संचिंत्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः ॥ प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृतांजलिपुटाश्च ते ॥ २० ॥ ऊचुश्चैनां भयोद्विग्नां दृष्ट्यर्थं क्षत्त्रियर्षभाः ॥ प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल ॥ २१ ॥

अहो ! इन स्त्रियोंका प्रभाव और इनके पातिव्रत धर्मका महत् फल है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ हमने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको पीडित किया है इससे वे अत्यन्त दुःखित हुई हैं अब नहीं जानते कि यह सत्य संकल्प स्त्रियें हमारा और क्या अनिष्ट करेंगी ? वह भ्रांतचित्त नेत्र हीन और निराश्रय क्षत्रियगण मनमें इस प्रकार चिंताकर ॥ १९ ॥ उन्हीं स्त्रियोंकी शरणागत हुए वह स्त्रियें फिर उनको आता हुआ देख अत्यंत भीत हुई किंतु वह उन पतिव्रता स्त्रियोंको हाथ जोड प्रणाम कर ॥ २० ॥ अपनी दृष्टिकी प्राप्तिके निमित्त कहने लगे हे मातः ! हम

आपके सेवक हैं आप प्रसन्न हूजिये ॥ २१ ॥ हे कल्याणि ! हम पापिष्ठ क्षत्रिय हैं हमने आपके बहुत अपराध किये हैं. हे सुन्दरि ! हम आपके केवल दर्शन मात्रसेही अन्धे हुए हैं. ॥ ॥२२॥ हे कोपने ! हम जन्मांधके समान आपका मुखकमल नहीं देख सकते हे जननि ! आपका तपो वीर्य अद्भुत है हम पापकारी हैं अतएव किसी प्रकार इस विषयका प्रतीकार करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ २३ ॥ इस कारण अब केवल आप कीही शरणागत हुए हैं आप हमको नेत्र प्रदान कर हमारे मानकी रक्षा कीजिये हे मातः ! अन्धत्व मरनेकी अपेक्षा भी भारी है अतएव आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये ॥ २४ ॥ आप फिर देखनेकी शक्ति दानकर क्षत्रियोंको अनुग्रहपूर्वक दास कीजिये हम दृष्टिशक्तिके प्राप्त होनेपर

कृतापराधा रंभोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः ॥ दर्शनात्तव तन्वंगि जाता सर्वे विलोचनाः ॥ २२ ॥ मुखं ते नैव पश्यामो जन्मांधा इव भामिनि ॥ अद्भुतं ते तपो वीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥ २३ ॥ शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे ॥ अंधत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥२४॥ पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु ॥ उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥ २५ ॥ अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् ॥ भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल ॥ २६ ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षंतव्यं तत्त्वयाऽधुना ॥ वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्त्रियैः सच ॥२७॥ कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः ॥ सुपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताः स्मो वयं च ते ॥ २८ ॥ प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥ २९ ॥

सभी इस पापकर्मसे विरत हो घरको चले जायंगे ॥ २५ ॥ अभीसे फिर हम ऐसा नीचकर्म कभी न करेंगे अबसे हम सभी ब्राह्मणोंके सेवक होकर रहेंगे ॥२६॥ हमने अज्ञानवश जो सम्पूर्ण पाप किये हैं आप वह समस्त क्षमा कीजिये हम प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि, ब्राह्मणोंके संग फिर क्षत्रियोंकी कुछ भी शत्रुता नहीं रहेगी ॥२७॥ हे नितम्बिनि ! आप पुत्रके सहित सुखपूर्वक काल व्यतीत कीजिये हम आपके निकट सदा ही प्रणत हैं ॥२८॥ हे कल्याणि ! आप प्रसन्न हूजिये हम अब कभी विद्रेषभाव नहीं करेंगे व्यास जीने कहा हे महाराज ! ब्राह्मणोंकी स्त्रियें

उनके यह वचन सुन आश्चर्ययुक्त चित्तसे ॥ २९ ॥ उन दुर्दशायुक्त प्रणत अन्धे क्षत्रियगणोंको समझाकर कहने लगीं क्षत्रियगण ! हमने तुम्हारी दृष्टि हरण नहीं की ॥ ३० ॥ अथवा हम तुम्हारे प्रति संतुष्ट भी नहीं हुई तुम इस समय इसका यथार्थ कारण सुनो यह ऊरुजात भृगु कुलोत्पन्न संतान तुम्हारे प्रति अत्यंत प्रकुपित हुई है ॥ ३१ ॥ इसी कारण इस क्रोधपूर्वक बालकने तुम्हारे सपूर्णनेत्र स्तम्भित किये हैं तुमने धनकी इच्छासे इस बालकके परम आत्मीय निरपराध धर्म तत्पर तापसगणोंको और गर्भमें स्थित भार्गवगणोंको भी निहत किया है वह यह बालक जान गया है ॥३२॥ हे वत्सगण ! जब तुमने भृगुवंशीय गर्भस्थित बालकगणोंको भी विनाश करना आरम्भ किया था ॥ ३३ ॥ तब मैंने ऊरुदेशमें

तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान् ॥ गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल ॥ ३० ॥ नाहं रुषाऽन्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत् ॥ अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ ३१ ॥ चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तंभितानि रुषावता ॥ स्वबन्धून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः ॥ ३२ ॥ अनागसो धर्मपरांस्तापसान्धनकाम्यया ॥ गर्भानपि यदा यूयं भृगून्घ्नंस्तु पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ तदाऽयमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ षडंगश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चांजसा ॥ ३४ ॥ गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये ॥ सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हंतुमिच्छति ॥ ३५ ॥ भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः ॥ तेजसः यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि च ॥ ३६ ॥ तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः ॥ प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥

इस बालकको सौ वर्षपर्यन्त धारण किया था इस बालकने गर्भमें स्थित होकर भृगुवंशकी वृद्धिके निमित्त थोडेही समयमें षडंग समस्त वेदाध्ययन किये हैं॥३४॥ यह वंशवृद्धिको गर्भमें रहा है इस समय यह भृगुसंतान पितृवधके क्रोधसे प्रदीप्त हो तुम्हारे विनाशके लिये उद्यत हुई है ॥३५॥ जिसके दिव्य तेजसे तुम्हारी दृष्टिशक्ति नष्ट हुई है वही यह हमारा पुत्र भगवती भुवनेश्वरीके प्रसादसे उत्पन्न हुआ है, अतएव इस बालकको सामान्य नहीं जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ इस समय तुम विनय युक्त होकर मेरे इस और्व (ऊरुजात) पुत्रके निकट याचना करो यह संतान

प्रणिपात द्वारा सन्तुष्ट होकर तुमको दृष्टि प्रदान करेगी ॥ ३७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हैहयगण ब्राह्मणीका यह वचन सुननेके पश्चात् भार्गव संतानका-स्तव करने लगे उन्होंने विनयान्वित हो ऊरुजात उस मुनि सत्तमको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ तब और्वऋषिने सन्तुष्ट हो उन नेत्रहीन हैहयगणोंसे कहा तुम अपने अपने घर जाओ हे भूपालगण ! तुम मेरे इस उपाख्यानसे प्राप्त वक्ष्यमाण वचनका पाठ करना ॥ ३९ ॥ जो दैवनिर्मित और अवश्यम्भावी है वह अवश्य ही होगा यह जानकर किसीको भी इस विषयमें शोक करना उचित नहीं है ॥ ४० ॥

व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् ॥ प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम् ॥३८॥ स संतुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः ॥ गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविभावास्ते भवंति दैवनिर्मिताः ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता ॥ ४० पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवंतु यथासुखम् ॥ व्रजंतु विगतक्रोधा भवनानि यथा सुखम् ॥ ४१ ॥ इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः ॥ और्वमामंत्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता ॥ पालयामास भूपालं तेजस्विनमतंद्रिता ॥ ४३ ॥ एवं ते कथितं राजन्भृगूणां तु विनाशनम् ॥ लोभाविष्टैः क्षत्त्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल ॥ ४४ ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्त्रियाणां च दारुणम् ॥ कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः ॥ ४५ ॥

अबसे ऋषिगण भी पूर्वके समान सुखको प्राप्त होंगे और तुम पूर्वके समान दृष्टि प्राप्त कर क्रोध त्यागपूर्वक यथासुखसे अपने २ घर जाओ ॥ ४१ ॥ महर्षि और्वके इस प्रकार आज्ञा करनेपर हैहयगण नेत्र प्राप्त कर इच्छानुसार अपने अपने घरको चले गये ॥ ४२ ॥ इधर ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी दिव्य पुत्रको लेकर अपने आश्रममें जाय सावधानतासे उसको पालने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपके निकट भार्गव गणोंके विनाशका वृत्तान्त और लोभयुक्त क्षत्रियगणोंने जिस प्रकार पापकर्म किया था वह सम्पूर्ण वर्णन किया ॥ ४४ ॥ जनमेजयने कहा हे

तपोधन ! मैंने क्षत्रियोंका अत्यन्त दारुण कर्मका विषय श्रवणकर जाना कि, इस विषयमें एक मात्र लोभही कारण है और लोभसेही दोनोंको इसीप्रकार दुःख हुआ है ॥ ४५॥ हे मुनीन्द्र ! मैं आपसे इस विषयमें कुछ पूँछनेकी इच्छा करता हूं यह राजपुत्र पृथ्वीमें हैहय नामसे क्यों विख्यात हुए?॥४६॥ क्षत्रियगणोंमें कितने ही एक यदुकुलोत्पन्न कहकर यादव और कितनेही एक भरतोत्पन्न कहकर भारतनामसे विख्यात हुए हैं किन्तु इनके वंशमें हैहयनामक किस राजाने जन्म लिया था॥४७॥अथवा यह क्षत्रियगण अन्य किसी कर्मद्वारा हैहय नामसे विख्यात हुए?मैं उसका कारण सुननेकी अत्यन्त इच्छा करता हूं आप कृपा करके वह वर्णन कीजिये ॥४८॥ व्यासजीने कहा हे भूपते! मैं आपके निकट हैहयगणोंकी उत्प-

किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत ॥ हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः ॥ ४६ ॥ यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा ॥ हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे ॥ हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम् ॥ पुरातनां सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ४९ ॥ कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः ॥ रेवंतेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः ॥ ५० ॥ उच्चैः श्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम् ॥ जगाम विष्णुसदनं वैकुंठं भास्करात्मजः ॥ ५१ ॥ भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदा गतः ॥ हयस्थस्तु तदा दृष्टो लक्ष्म्याऽसौ रविनंदनः ॥५२॥ रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम् ॥ रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तंभितलोचना ॥ ५३ ॥

त्तिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करत हूं श्रवण करो इस पुरातन कथाके सुननेसे पापसमूह नष्ट होकर पुण्यका उदय होता है ॥४९॥ हे राजन् ! किसीसमय अपरिमितप्रभावयुक्त रूपवान् और सुशोभनरेवन्त, नामक ॥ ५० ॥ सूर्यके पुत्र मनोहर घोडोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवापर चढ़कर विष्णुके घर वैकुण्ठधाममें गये थे ॥ ५१ ॥ वह जब भगवान्के दर्शनाभिलाषी होकर गये तब लक्ष्मीदेवीने इस सूर्यके पुत्रको देखा ॥ ५२ ॥ क्षीराब्धि-तनया रमादेवी सागरोत्पन्न सहोदर अश्वश्रेष्ठके मनोहररूपको अवलोकनपूर्वक आश्चर्ययुक्त हो इकटक देखती रहीं ॥ ५३ ॥

निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवान् विष्णु मनोहररूपयुक्त रेवन्तको घोड़ेपर चढे हुए आता देखकर विनय सहित लक्ष्मीसे पूँछने लगे॥५४॥हे सुन्दरि ! दूसरे कामदेवके समान कौन पुरुषश्रेष्ठ त्रिभुवनको मोहित करता घोड़ेपर चढ़ा हुआ आरहा है ॥५५॥ तिस समय लक्ष्मीदेवी दैवयोगसे एकाग्र मनसे देखरहीं थीं इसप्रकार भगवान्के बारम्बार पूँछनेपर भी उन्होंने कोई उत्तर न दिया ॥ ५६ ॥ चंचलादेवी लक्ष्मी अश्वको अति आसक्त चित्त और अत्यन्त मोहित हो परमप्रेमके वशीभूत स्थिरनेत्रसे देख रहीं हैं ॥ ५७ ॥ भगवान् यह देखकर कुपित हुए और उनसे कहा कि हे

भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम् ॥ आगच्छंतं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः ॥ ५४ ॥ कोऽयमायाति चार्वंगि हयारूढ इवापरः ॥ स्मरतेजस्तनुःकान्ते मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ ५५ ॥ प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः ॥ नोवाच वचनं किंचित्पृष्टाऽपि च पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ॥ पश्यंतीं परमप्रेम्णा चंचलाक्षीं च चंचलाम् ॥ ५७ ॥ तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने ॥ मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे ॥ ५८ ॥ सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि ॥ चंचलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ॥ ५९ ॥ प्राकृतो च यथा नारी नूनं भवति चंचला ॥ तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन ॥ ६० ॥ त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता ॥ वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे ॥६१॥ इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः ॥ रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता ॥ ६२ ॥

सुलोचने!क्या देखती हो? तुम अश्वको देखकर इस प्रकार मोहित हुई हो कि मेरे पूँछनेपरभी बात नहीं कहती ॥ ५८ ॥ तुम सर्वत्र रमण करती हो इसकारण रमानामसे और तुम्हारा मन अत्यन्त चंचल है इसकारण चंचला नामसे विख्यात होगी ॥ ५९ ॥ हे कल्याणि ! प्राकृत स्त्रियें जिस प्रकार चंचल हैं तुमभी उसी प्रकार चंचल होगी, कहीं कभी स्थिर न रहसकोगी ॥ ६० ॥ तुम मेरे समीप अवस्थित होकरभी जिसप्रकार घोडेको देखकर मोहित हुई हो तब तुम दारुण क्लेशयुक्त मर्त्यलोकमें घोडी हो जन्म ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ रमादेवी दैवयोगसे हरिसे इस प्रकार

शाप पाय भय और दुःखसे कम्पायमान हो रोनेलगी॥६२॥ तबचारुहासिनी रमादेवी शंकित और विनययुक्त हो प्रणामपूर्वक अपने पति नारायणसे कहने लगी ॥ ६३ ॥ हे देव देव ! हे गोविन्द ! आप जगत्के नाथ और दयाके समुद्र हैं अल्प अपराधकेही कारण मुझको क्यों यह शाप दिया ? ॥ ६४ ॥ हे प्रभो ! मैंने आपको ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा हाय ! मेरे प्रति आपका जो नाशरहित सहज स्नेह था वह इस समय कहां गया ? ॥ ६५ ॥ हे नाथ ! वज्रपात स्वजनोंके प्रति न करके शत्रुओंके प्रति करनाही उचित है मैं सदा आपके वरदेनेके योग्यपात्र हूं इस समय आपने मुझको शापके योग्य क्यों किया ? ॥ ६६ ॥ हे गोविन्द ! मैं आपके सामनेही प्राणत्याग करूंगी, मैं आपके विरहानलसे सन्तापित

तमुवाच रमानाथं शंकिता चारुहासिनी ॥ प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता ॥६३॥ देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव ॥ स्वल्पेऽपराधे गोविन्द कस्माच्छापं ददासि मे ॥६४॥ न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो ॥ क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः ॥ ६५ ॥ वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने ॥ सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता ॥ ६६ ॥ प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविंद पश्यतोऽद्य तवाग्रतः ॥ कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता ॥ ६७ ॥ प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात् ॥ कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो ॥ ६८ ॥ हरिरुवाच ॥ यदा ते भविता पुत्र पृथिव्यां मत्समः प्रिये ॥ तदा मां प्राप्य तन्वंगि सुखिता त्वं भविष्यसि ॥६९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥ जनमेजय उवाच ॥ इति शप्ता भगवता सिंधुजा कोपयोगतः ॥ कथं सा वडवा जाता रेवंतेन च किं कृतम् ॥ १ ॥

होकर कभी जीवन धारण नहीं करसकती ॥६७॥ हे विभो ! प्रसन्न होकर कहिये मैं इसदारुण शापसे मुक्त होकर फिर कब अत्यन्त सुखकर आपके सम्मिलनको प्राप्त हूंगी ॥६८॥ भगवान्‌ने कहा हे प्रिये ! जब मर्त्यलोकमें मेरे समान तुम्हारे पुत्र होगा तब तुम फिर मुझको प्राप्त होकर सुखी होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! भगवान् विष्णुके कोपके वशीभूत हो इस प्रकार शापदेनेपर फिर उन्होंने किसप्रकार घोडी हो जन्म ग्रहण किया था और रेवन्तने

तिससमय क्या किया था ॥ १ ॥ क्षीरोदनन्दिनी लक्ष्मी देवीने किस देशमें घोड़ीका रूपधारण कर परदेशमें स्थित पतिवाली बालाके समान अकेले किस प्रकार वास किया था ? ॥ २ ॥ हे मुनिवर ! उस कमलादेवीने पतिरहित होकर किस निर्जन स्थानमें वास किया और तिसकाल उन्होंने क्या किया था ॥ ३ ॥ और किस समय फिर वासुदेवसे मिली थीं जब उन्होंने नारायणसे वियोगको प्राप्तहो वास किया था तब किसप्रकार पुत्र प्राप्त हुआ था ॥ ४ ॥ हे आर्यप्रवर ! आप यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इस अत्युत्तम उपाख्यानके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा हुई है ॥५॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! जनमेजयके वेदव्यासजीसे इसप्रकार पूँछनेपर फिर द्वैपायनमुनि इस उपाख्या

कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी ॥ संस्थितैकाकिनी बाला परोषितपतिका यथा ॥ २ ॥ कालं कियंतमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा ॥ संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः ॥ ३ ॥ समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिंधुजा ॥ पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया ॥ ४ ॥ एतद् वृत्तांतमार्येश कथयस्व सविस्तरम् ॥ श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्र कथाख्यानमनुत्तमम् ॥५॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै ॥ कथयामास भो विप्राः कथामेतां सुविस्तराम् ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम् ॥ ७ ॥ रेवतस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् ॥ भयार्तः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम्॥८॥पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः ॥ निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम् ॥९॥ दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना ॥१०॥

नको विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! जिसके द्वारा मनुष्यगण पवित्र हो कल्याण लाभ करते हैं मैं आपके निकट वह शिवदाक्षरयुक्त श्रुति मधुर पौराणिक पुरातन कथा वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥७॥ देवदेव वासुदेवने कमलादेवीको शाप-प्रदान-किया भास्करतनय रेवन्त यह देखकर भयार्त्त हुए और जगत्पति जनार्दनको प्रणामकर दूर चलेगगे ॥ ८ ॥ उन्होंने जगत्पति विष्णुका कोप देख कर शीघ्र पिताके निकट जाय उनसे कमलाके प्रति नारायणके शापदेनेका वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ९ ॥ इधर कमललोचना कमलादेवी

शापके अनन्तर नारायणसे आज्ञा लेकर दुःखित चित्त हो उनके चरणोंमें प्रणामपूर्वक मनुष्यलोकमें चली गईं ॥ १० ॥ पहले सूर्यपत्नीने जिस स्थानमें तपस्या की थी कमलादेवी घोडीका रूप धारणकर उसी स्थानमें चली गईं ॥ ११ ॥ यह स्थान मनोहर वनसे विभूषित और सर्वकामप्रद सुवर्णाक्ष पर्वतके उत्तरदेशमें कालिन्दी और तमसाके संगम स्थानमें वासकर शोभाको प्राप्त हुआ था ॥ १२ ॥ रमादेवी उसी स्थानमें वासकर एकाग्र चित्तसे वाञ्छितप्रद और कल्याणके देनेवाले महादेवका इसप्रकार ध्यान करने लगीं कि महादेव हाथमें त्रिशूल धारणकर रहे हैं उनके ललाटदेशमें मनोरम शीतल चन्द्रमाकी कला शोभायमान हो रही है ॥ १३ ॥ उनके पांच मुखोंमें तीन तीन नेत्र विद्यमान हो

सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् ॥ तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी ॥ ११ ॥ कालिंदीतमसासंगे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे ॥ सर्वकामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमंडिते ॥ १२ ॥ तत्र स्थित महादेवं शंकरं वांछितप्रदम् ॥ दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चंद्रशेखरम् ॥ १३ ॥ पंचाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम् ॥ १४ ॥ व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् ॥ कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ १५ ॥ सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे रमा देवी चकार दुश्चरं तपः ॥ १६ ॥ ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते ॥१७॥ ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः ॥ १८ ॥

रहे हैं कण्ठदेश नीलवर्ण रञ्जित, उनकी दशभुजा कलेवर कर्पूरके समान गौर ॥ १४ ॥ परिधान व्याघ्रचर्म उत्तरीय और नागगण उनसे उपवीत (जनेऊ) है उन्होंने गौरीके देहका अर्ध भाग धारण किया है उनके गलदेशमें कपालमाला शोभा पारही है ॥ १५ ॥ सिन्धुसुता लक्ष्मीदेवी मनोहर ! घोडीका रूप धारणकर उस तीर्थमें कठोर तपस्या करने लगीं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उन्होंने वैराग्यका आश्रयकर परमदेव महादेवका ध्यान करते करते उसी स्थानमें दिव्य हजार वर्ष बिताये ॥ १७ ॥ तदनन्तर परमप्रभु देवदेव त्रिलोचन महेश्वरने

बैलपर चढ पार्वतीके सहित उसीरस्थानमें आय कमलादेवीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १८ ॥ महादेवने उसीरस्थानमें गणोंके सहित आनकर अश्व रूपिणी तपस्विनी उस हरिवल्लभाकमलासे कहा ॥ १९ ॥ हे कल्याणि ! तुम सम्पूर्ण जगत्की जननी और तुम्हारे पति समस्त लोकके विधाता तथा सर्वार्थप्रदान करनेमें समर्थ हैं उनके विद्यमान रहते तुम तपस्या करती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २० ॥ हे देवि ! तुम जगत् पालक जगन्नाथ भोग मोक्षके देनेवाले वासुदेव श्रीहरिको त्यागकर किस कारण मेरी स्तुति करती हो ? ॥ २१ ॥ हे देवि ! वेदमें कहे हुए वचनके अनुसारही कार्य करना उचित है वेदमें कहा है कि,पतिही स्त्रियोंका देवता है अतएव कभी किसी प्रकार अन्यके प्रति भलीभांति मनका भाव बन्धन

तत्रैत्य सगणः शंभुस्तामाह हरिवल्लभाम् ॥ तपस्यंतीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम् ॥ १९ ॥ किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे ॥ सर्वार्थदः पतिस्तेस्ति सर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥ हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २१ ॥ वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः ॥ नान्यस्मिन्त्सर्वथाभावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥२२॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः ॥ यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया ॥ २३ ॥ नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि ॥ तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिंधुजे ॥ २४ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ आशुतोष महेशान शप्ताऽहं पतिना शिव ॥ मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे ॥ २५ ॥

करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ पतिकी सेवा करनाही स्त्रियोंका सनातन धर्म है पति साधु हो अथवा असाधु हो मंगलकी इच्छा करनेवाली स्त्रियें भलीभांति उनकी सेवा करें ॥ २३ ॥ हे सिन्धुतनये ! तुम्हारे पति नारायण सबके सेवनीय और सम्पूर्ण अर्थ दान करनेमें समर्थ हैं तुम उन्हीं देवदेव गोलोकपतिको त्यागकर किसप्रकार मेरी आराधना करती हो ? ॥२४॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! हे कल्याणालय ! आप सेवकके प्रति शीघ्रही सन्तुष्ट होते हैं यह मैं जानती हूं मेरे पतिने मुझको शाप दिया है हे दयानिधे ! आप मुझको दया करके इस शापसे उद्धारकीजिये॥२५॥

हे शम्भो ! मैंने जब उनसे विनय सहित वचनसे मनका दुःख कहा तब उन्होंने अनुग्रह करके करुणान्वित चित्तसे शापके छूटनेका उपाय कहा ॥२६॥ हे कमले ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तबही शाप छूटकर फिर तुम्हारा वैकुण्ठमें वास होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २७ ॥ उनके मुझको इसप्रकार कहनेपर फिर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आनकर भगवान् भवानीपति आपको सर्वेश्वर और सर्वार्थ देनेवाले जानकर आपकी आराधनामें प्रवृत्त हुई हूं ॥ २८ ॥ हे देवेंद्र ! पतिके संगविना किसप्रकार पुत्र प्राप्त करूंगी मेरे निरपराधिनी होने पर भी वह मुझको त्यागकर वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ २९ ॥ हे महेश्वर ! आप संपूर्ण लोकोंका मंगल करते हैं यदि आप मुझसे

तदोक्तं हरिणा शंभो शापानुग्रहकारणम् ॥ विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना ॥२६॥ यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् ॥ भविष्यति च वैकुंठवासस्ते कमलालये ॥ २७ ॥ इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागताऽस्मि तपोवने ॥ आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः ॥२८॥ पतिसंगं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम् ॥ स तु तिष्ठति वैकुंठे त्यक्त्वा वामामनागसम् ॥२९॥ वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ तव तस्य द्विधा भावो नास्ति नूनं कदाचन ॥३०॥ मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥३१॥ एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम् ॥ अन्यथा मम दोष स्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव ॥३२॥ शिव उवाच ॥ कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुंदरि ॥ ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे ॥ ३३ ॥ एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल ॥ ३४ ॥

संतुष्ट हुए हैं तो मुझको वर दीजिये हे प्रभो ! मैं निश्चय जानती हूं कि आपमें और उनमें कुछ भिन्नभाव नहीं है ॥ ३० ॥ हे गिरिजाकांत ! मैंने अपने पतिसे जाना है.हे हर ! जो आप हैं सोई वह हैं और वह जो हैं सोई आप हैं इसमें कुछ संशय नहीं॥३१॥हे मंगलमय ! मैं आप दोनोंका अभेदभाव जानकरही आपका ध्यान करती हूं, ऐसा न होनेसे आपका आश्रय करना मुझको दोष होता इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ शंकरने कहा हे देवि सिन्धुतनये ! मेरा और उन हरिका तुमने एक भाव किसप्रकार जाना वह मुझसे सत्य कहो ॥ ३३ ॥ देवगण मुनिगण और

वेदके जाननेवाले महर्षिगण कुतर्कसे हतबुद्धि हो हम दोनोंमें अभेद नहीं जानसकते ॥ ३४ ॥ तुम प्रायः देखतीहो कि हमारे भक्तोंमें बहुतसे मनुष्य वासुदेवके भक्तोंमेंसे अनेक मेरी निंदा करते हैं ॥३५॥ विशेषकर कलिकालमें कलिमाहात्म्यके वशीभूत हो अतिद्वेषी होंगे सो जो हो हे कल्याणि ! उदारात्मा पुरुषोंको भी जो कठिन है ॥ ३६ ॥ वह विषय तुमने किसप्रकार जाना मेरी और हरिकी एकताका जानना अत्यंत दुर्लभ है. व्यासजीने कहा हे महाराज ! आशुतोषके संतुष्ट हो इस प्रकार पूछनेपर फिर हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ कमला प्रसन्नवदनसे पूँछे हुए विषयका सार

मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा ॥ विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः ॥ ३५ ॥ भवंति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः ॥ कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥ ३६ ॥ सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सा शंभुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ वृत्तांतं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः ॥ दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥ ३९ ॥ तदाऽहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल ॥ प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम् ॥ ४० ॥ देवदेव जगन्नाथ यदाऽहं निर्गताऽर्णवात् ॥ मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो ॥ ४१ ॥ वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा ॥ वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात् ॥ ४२ ॥

महादेवके सामने कहने लगी ॥३८॥ लक्ष्मीने कहा हे देवदेव ! एकदिन भगवान् विष्णुको निर्जनमें पद्मासन ग्रहणकर तपस्या करते करते ध्यान परायण देखकर मैं ॥ ३९ ॥ अत्यंत आश्चर्य युक्त हुई अनंतर ध्यान त्यागकर प्रसन्न चित्तसे बैठे हुए देख मैंने उनसे पूछा ॥ ४० ॥ हे देव-देव ! आपही तो जगत्के अधिनाथ और संपूर्ण ब्रह्मांडके प्रभु हैं इस समय म आपसे पूँछती हू कि, ब्रह्मादि देवगण और असुरादिगणोंके मिलित हो समुद्र मथनेपर जब मैं उससे निकली ॥ ४१ ॥ तब मैंने पतिकी इच्छासे सबहीको देखा था किंतु हे नाथ ! आप संपूर्ण

देवताओंसे श्रेष्ठ हैं यह निश्चय करके आपको वरण किया था ॥ ४२ ॥ हे सर्वेश ! इस समय आप फिर किसका ध्यान करते हैं इससे मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है. हे भगवन् ! आप मेरे अत्यंत प्रिय हैं इस समय आप मुझसे अपने मनका भाव प्रकाश करके कहिये ॥ ४३ ॥ विष्णुने कहा हे कांते ! मैं जिसका ध्यान करता हूं वह तुमसे कहता हूँ श्रवण करो मैं उन्हीं आशुतोष महेश्वर सुरसत्तम गिरिजावल्लभका हृदयकमलमें ध्यान करता हूँ ॥४४॥ वह अमितप्रभावदेवदेव महादेव कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं भी उन सुरेश्वर त्रिपुरांतक शंकरका ध्यान करता हूं

त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम ॥ प्रियोसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम् ॥ ४३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु कांते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् ॥ आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि ॥ ४४ ॥ कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः ॥ ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरांतकम् ॥ ४५ ॥ शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम ॥ उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥ ४६ ॥ नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् ॥ भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ एकांते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय ॥ ४८ ॥ तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम् ॥ तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसंगमः ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः ॥ ५० ॥

॥४५॥ मैं शंकरको प्राणोंके समान प्रिय हूं और शंकर मुझको भी इसी प्रकार प्रिय हैं; हम दोनोंका चित्त गूढभावसे परस्पर आसक्त है अतएव उनमें हममें कुछ भी भेद नहीं है ॥४६॥ हे विशालाक्षि ! जो मनुष्य मेरा भक्त होकर शिवसे विद्वेष करते हैं, वह निश्चयही नरकभागी होते हैं, यह मैंने तुमसे सत्यही कहा ॥ ४७ ॥ हे महेश्वर ! मेरे एकांतमें पूछनेपर उन देवदेव परमप्रभु विष्णुने मुझसे इसप्रकार कहा था ॥ ४८ ॥ इसी कारण आपको उनका प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया. हे महेश ! जिससे मेरे प्रियका मिलन हो आप वही उपाय कीजिये ॥४९॥ व्यासजीने

कहा हे महाराज ! वाक्यविशारद महादेव लक्ष्मीका यह वचन सुनकर प्रियवचनसे उनको समझाकर कहने लगे ॥ ५० ॥ हे नितम्बिनि ! तुम सावधान होओ मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं पतिसे तुम्हारा शीघ्रही मिलन होगा इसमें संशय नहीं ॥ ५१ ॥ मेरे भगवान् जगत्पतिको प्रेरण करनेपर फिर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके निमित्त अश्वरूप धारणकर इसस्थानमें आवेंगे ॥ ५२ ॥ मैं उन देवदेव मधुसूदनको इसप्रकार भेजूंगा कि वह अश्वरूप धारणकर मदातुर होकर तुम्हारे पास आवेंगे ॥ ५३ ॥ हे सुभ्रु ! उनसे तुम्हारे नारायणके समान एकपुत्र उत्पन्न होगा

स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा तव ॥ समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः ॥ ५१ ॥ अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥ ५२ ॥ तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् ॥ यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः ॥ ५३ ॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ ॥ भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५४ ॥ सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह ॥ गंतासि दिवि वैकुंठं प्रिया तस्य भविष्यसि ॥ ५५ ॥ एकवीरेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः ॥ तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥ परंतु विस्मृताऽसि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम् ॥ मदांधा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम् ॥ ५७ ॥ अतस्तद्दोषशांत्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम् ॥ शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते ॥ ५८ ॥

और वह पृथ्वीमें राजा होकर सर्वलोकोंका पूजनीय होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ५४ ॥ हे महाभागे ! तुम पुत्रके प्राप्त होनेपर फिर नारायणसहित वैकुण्ठमें जाय और उनकी प्रिया होकर उसीस्थानमें वास करोगी ॥ ५५ ॥ तुम्हारा वह पुत्र एकवीर नामसे विख्यात और उससे पृथ्वीतलमें हैहयवंश विस्तारित होगा ॥५६॥ हे कमले ! तुम ऐश्वर्य मदसे अन्ध और मत्तचित्त होकर हृदयस्थित परमेश्वरीको भूलगई हो इसीकारण तुम इस प्रकारके फलको प्राप्त हुई ॥५७॥ अतएव उसी दोषको दूर करनेके निमित्त हृदयस्थित पर देवताकी शरण ग्रहण करो ॥५८॥

हे देवि ! यदि तुम्हारा चित्त आनन्दरूपिणी भगवतीके प्रति आसक्त रहता तो कभी तुम्हारा चित्त उच्चैःश्रवाके प्रति न दौड़ता व्यासजीने कहा हे महाराज ! पार्वतीपति भगवान् महादेव कमलादेवीको इसप्रकार वर दे ॥५९॥ उमाके सहित लक्ष्मीके सामने ही अन्तर्धान होगये. शोभायमान अङ्गवाली कमलादेवी भी उसी स्थानमें रहकर ॥ ६० ॥ जिनका नखमण्डल सुरासुरगणोंके शिरोरत्नसे सर्वदाही संघर्षित होता है अम्बिकाके उन्हीं चरण कमलोंको स्मरण करने लगी ॥ ६१ ॥ और हयरूपधारी अपने प्रिय हरिकी प्रतीक्षामें प्रेमगद्गदवचनसे बारंबार महादेवीका स्तव करनेलगी ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! देवदेव शंकरने कमलाको

अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे ॥ व्यास उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥ ५९ ॥ अंतर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः ॥ साऽपि तत्रैव चार्वंगी संस्थिता कमलासना ॥ ६० ॥ ध्यायंती चरणांभोजं देव्याः परमशोभनम् ॥ देवासुरशिरोरत्ननिघष्टनखमंडलम् ॥ ६१ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः ॥ प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥६२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यै दत्त्वा वरं शंभुःकैलासं त्वरितो ययौ॥रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मंडितम् ॥१॥ तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम् ॥ प्रेषयामास वैकुंठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥२॥ शिव उवाच ॥ चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम ॥ यथाऽसौ दुःखितां पत्नीं विशोकां च करिष्यति ॥३॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः ॥ वैकुंठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम् ॥ ४ ॥

वरदान दे अप्सरागणोंसे विभूषित और देवताओं द्वारा परिषेवित मनोहर कैलासाचलमें जाय ॥ १ ॥ चित्ररूप नामक कार्य विशारद एक गण श्रेष्ठको लक्ष्मीके कार्य सिद्धिके निमित्त वैकुण्ठ धाममें भेजा ॥ २ ॥ जानेके समय शिवजीने उससे कह दिया कि, हे चित्ररूप ! तुम हरिके निकट जाय जिससे वह दुःखित अपनी कांता समुद्र दुहिताको विरहरूपी शोकबाणसे उद्धार करें तुम मेरे वचनानुसार उनसे इसी प्रकार कहना ॥३॥ महादेवकी इस प्रकार आज्ञा पाय चित्ररूप शीघ्रके लाभसे निकल वैष्णवोंसे व्याप्त परमधाम वैकुण्ठ लोकमें गया ॥ ४ ॥

वह स्थान अनेक दिव्य वृक्षोंसे घिरा हुआ शतशत मनोहारिणी दीर्घिकाओंसे सुशोभित हंस, कारण्डव, मोर, शुक और कोकिल इत्यादिसे युक्त ॥५॥ अनेक प्रकार विहंगमगणोंके श्रवण सुखकर कण्ठरवसे शब्दायमान और पताकावलिसे अलंकृत, तथा अटारियोंसे विमण्डित नृत्य गीतादि अनेक प्रकार मनोहर कला समूहसे परिपूर्ण उसमें नयनाञ्जन, बकुल, अशोक, तिलक, चम्पक इत्यादि वृक्षोंसे विराजित और मनोहर मन्दारतरुने दिगन्तव्यापी अपनी पुष्पगन्ध विस्तारितकर परम शोभा धारण की है ॥ ६ ॥ ७ ॥ चित्ररूपने विष्णुका नयन मनोहर, सुन्दर भवन देखकर द्वारे स्थित जय विजय नामक वेत्रपाणि दोनों पुरुषोंको प्रणाम कर कहा ॥ ८ ॥ चित्ररूप बोला

नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम् ॥ संजुष्टं हंसकारंडमयूरशुककोकिलैः ॥ ५ ॥ उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम् ॥ नृत्यगीतकलापूर्णं मंदारद्रुमसंयुतम् ॥ ६ ॥ बकुलाशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् ॥ कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम् ॥ ७ ॥ संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वास्थौ प्राह प्रणम्य च ॥ जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ ॥ ८ ॥ चित्ररूप उवाच ॥ भो निवेदयत शीघ्रं हरये परमात्मने ॥ दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥९॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान् ॥ गत्वा हरिं प्रणम्याह कृतांजलिपुटः पुरः ॥ १० ॥ देवदेव रमाकांत करुणाकर केशव ॥ द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शंकरस्य समागतः ॥ ११ ॥ आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज ॥ चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः ॥ प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम् ॥ १३ ॥

अहो ! तुम शीघ्र जाय परमात्मा हरिसे निवेदन करो कि, भगवान् शूलपाणिका भेजा हुआ एक जन दूत इस स्थानमें आय द्वारमें प्रतीक्षा कर रहा है ॥ ९ ॥ उसका वचन सुनकर परम बुद्धिमान् जय हरिके सन्मुख आय प्रणामपूर्वक हाथ जोड कहने लगा ॥ १० ॥ हे करुणाकर ! हे केशव ! हे देवदेव ! रमाकांत ! भवानीपतिका चित्ररूप नाम दूत श्रेष्ठ इस स्थानमें आनकर द्वार स्थित है कार्यगौरव नहीं जानता उसको आपके निकट लाऊं कि नहीं आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ जयकी बात सुनतेही अन्तर्यामी हरिने अन्तर

का कारण जानकर कहा हे जय ! तुम आये हुए रुद्रके दूतको भवनमें लाओ ॥ १३ ॥ यह सुनकर जयने उस रमणीयमूर्त्ति शिवके सेवकको बुलाय ॥ १४ ॥ जनार्द्दनके सामने उपस्थित किया विचित्राकार चित्ररूप नारायणको दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड खडा रहा ॥ १५ ॥ भगवान् विहगेन्द्र वाहन नारायण उस चित्ररूपधारी विनयान्वित शिव सेवकको देखकर आश्चर्य युक्त हुए ॥१६॥ अनंतर कमलापतिने कुछेक हँस कर चित्ररूपसे पूंछा हे विमलपते ! परिजनोंके सहित देवदेव महादेवके सर्वाङ्गीन कुशलता है ? ॥१७॥ तुमको किस कारण यहां भेजा है ? महेश्वरका क्या कार्य है सो कहो अथवा यदि देवतागणोंका कोई कार्य उपस्थित हुआ है वह भी मुझसे ॥ १८ ॥ कहो दूतने कहा हे अन्तर्यामिन् ! जब

इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम् ॥ एहीत्याकारयामास जयः शंकरसेवकम् ॥१४॥ प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः ॥ प्रणम्य दंडवद्विष्णुं कृतांजलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान्गरुडध्वजः ॥ चित्ररूपधरं शंभोः सेवकं विनयान्वितम् ॥ १६ ॥ पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः ॥ कुशलं देवदेवस्य सकुटुंबस्य चानघ ॥ १७ ॥ कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम् ॥ अथवा देवतानां च किंचित्कार्यं समुत्थितम् ॥ १८ ॥ दूत उवाच किम ज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज ॥ वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै ॥१९॥ प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तुं त्वां जनार्दन ॥ हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो ॥ २० ॥ तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया ॥ तपस्तपति कालिंदीतमसा संगमे विभो ॥ २१ ॥ हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी ॥ ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥ २२ ॥

कि इस संसारमें आपसे कोई विषय नहीं छिपा है तो उपस्थित विषय जो मैं कहूंगा वह क्या आपसे छिपा है ? ॥ १९ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! तथापि भगवान् भवानीपतिने आपसे तो विषय कहनेके लिये मुझको आपके पास भेजा है उनके वचनानुसार मैं वह आपसे निवेदन करता हूं ॥ २० ॥ उन्होंने कहा है हे विभो ! देवी कमलालया आपकी प्रेयसी भार्या है वह सर्वसिद्धि प्रदायिनी सिंधुनंदिनी यक्ष, किन्नर, नर और देवताओंके ध्यान योग्य होकर भी वडवारूप धारणकर कलिन्दकन्या यमुना और तमसाके संगम स्थलमें कठोर तपस्या करती हैं ॥२१॥२२॥

उन सर्वार्थदायिनी लोकजननीके विना इस त्रिलोकमें कौन पुरुष सुखभागी हो सकता है ? हे पुण्डरीकाक्ष ! उनको त्याग करके आपको क्या सुख प्राप्त होता है । ॥२३॥ हे विभो ! निर्धन अथवा दुर्बल भी अपनी भार्याका प्रतिपालन करता है आप जगत्पति होकरभी विना अपराध उन जगत्की आराधना करने योग्य भार्याका क्यों त्याग करते हैं ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो ! आपको मैं क्या उपदेश दूं ? इस संसारमें जिसकी भार्याको दुःख है उसकी शत्रुओंमें अत्यन्त निंदा होती है हे विभो ! उसके ऐसे जीवनको धिक्कार है ॥२५॥ हे लोकनाथ ! उनको अत्यंत दुःखित देखकर इस समय आपके शत्रुओंकी कामना पूर्ण हुई हे देवि ! केशवने तुमको परित्याग किया है अतएव इस समय हमारे संग तुम सुखसे

विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेद्भुवि ॥ तां त्यक्त्वा पुंडरीकाक्ष प्राप्नोषि किं सुखं हरे ॥२३॥ दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते ॥ विनाऽपराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी ॥२४॥ दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके निंदितं त्वरिमंडले ॥२५॥सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःस्थितां भृशम्॥त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यंति दिवानिशम्॥२६॥ रमां रमय देवेश त्वदुत्संगगतां कुरु ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम् ॥२७॥ सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम् ॥ कांताविरहजं दुःखंस्मराम्यहमनातुरः ॥ २८ ॥ मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा ॥ तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानं बुजेक्षण ॥ २९ ॥ संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि मा भून्मत्सदृशोऽपरः ॥ मनसाऽकरवं शोकं तस्या विरहपीडितः ॥ ३० ॥

काल व्यतीत करो यह कहकर शत्रु दिन रात आपकी हँसी करते हैं ॥ २६ ॥ अतएव हे सुरेश्वर ! आप रमा देवीका चित्त प्रसन्न कीजिये इस सर्व लक्षणयुक्त उपमारहित रूपवती सुशील कमलाको फिर अपनी गोदीमें बैठाइये ॥ २७ ॥ हे देव ! आप उस चारुहासिनी प्राणवल्लभाको ग्रहणकर सुखी हूजिये भगवान् शंकरने और भी कहा है कि, मैं इस समय यदि विरहातुर नहीं हूं तथापि जगदम्बिकाके उस विरहदुःखका स्मरण कर अत्यंत कष्ट अनुभव करता हूं ॥ २८ ॥ हे कमललोचन ! मेरी प्रियतमा भार्या सती देवीने अब दक्षके गृहमें जीवन विसर्जन किया तब मैंने दुःसहदुःख अनुभव किया है॥२९॥ हे केशव ! इस संसारमें अन्यकिसीको ऐसा दुःख न हो ? उसके विरहमें मुझको जो शोक और

मनसे पीड़ा हुई थी वह मैं इस समय केवल मनही मनमें स्मरण करता हूं किसीके निकट प्रकाश नहींकरता॥३०॥जिसने दक्षके यज्ञमें मेरीं निंदा-जनित दीप्त रोषानलमें दग्ध होकर जीवन विसर्जन किया था मैंने अत्यन्त कठिन तपस्या कर बहुत कालोपरांत फिर उस देवीको गिरिजारूपसे प्राप्त किया॥३१॥हे मुरारे ! प्रणयिनी भार्याको परित्याग कर सहस्र संवत्सर अकेले रहकर आपको क्या सुख प्राप्त हुआ है॥३२॥आप उस सौभाग्यवती सुदती युवतीको समझाकर अपने घर लाइये हे भगवन् ! उन भवभावन भवानीपतिने अन्तमें आपसे यह बात कहदी है कि हे कंसारे ! संसारमें कोई भी उस परमा देवी रमाके विना मुहूर्त्तमात्र भी नहीं ठहर सकता ॥ ३३ ॥ हे आयुष्मन् ! आप घोड़ेका रूप धारण कर उस कमलाका भजन

कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः ॥ तपस्तप्त्वाऽतिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाऽध्वरे ॥ ३१ ॥ हरे किं सुखमापन्नं त्वया संत्यज्य कामिनीम् ॥ एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम् ॥ ३२ ॥ गत्वाऽऽश्वास्य महाभागां समानय निजालयम् ॥ मा भूत्कोऽपीह संसारे वियुक्तो रमया तया ॥ ३३ ॥ कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतात्कमलालयाम् ॥ उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत ॥ तथेत्युक्त्वा तु दूतं तं प्रेषयामास शंकरम् ॥ ३५ ॥ गते दूतेऽथ भगवान्वैकुंठात्कामसंयुतः ॥ जगाम धृत्वा तत्राऽऽशु वाजिरूपं मनोहरम् ॥ ३६ ॥ यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिंधुजा ॥ विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम् ॥ ३७ ॥ साऽपि तं वीक्ष्य गोविंदं हयरूपधरं पतिम् ॥ ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥ ३८ ॥

करो अनंतर उस शुचिस्मिता जायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर उसको अपने घर लाओ ॥ ३४ ॥ व्यासजीने कहा हे भरतकुलभूषण ! भगवान् हरि उस चित्ररूपका यह वचन सुन"भगवान् भूतपतिने जो कहा है मैं वही करूंगा" यह कहकर उस दूतको शंकरके पास भेज दिया ॥३५॥ ॥ ३६ ॥ दूतके चले जानेपर फिर भगवान् मनोहर घोडेका रूप बनाय सकाम होकर तत्काल वैकुण्ठसे जिस स्थानमें कमला देवी घोडीका रूप धारणकर तपश्चरण करती थी उसी स्थानमें गये वहां आनकर देखा कि विमला देवी घोड़ीका रूप धारण कर बैठी है ॥ ३७ ॥ वह साध्वी

भी अश्वरूप धारी अपने पति गोविन्दको देखतेही जान गई और फिर अन्यत्र न गई बरन् उनको देखकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त चित्तमें उसी स्थानमें बैठी रही किंतु मनोदुःखसे उनके दोनों विशालनेत्रों द्वारा बराबर अश्रुधारा गिरने लगी ॥३८॥ अनंतर इस कालिन्दी और तमसाके लोक विख्यात संगम स्थानमें उन दोनोंका परस्पर संगम हुआ ॥ ३९ ॥ तब वड़वारूप धारिणी हरिवल्लभाने गर्भवती हो यथासमय उस स्थानमें रूप सम्पन्न गुणवान् एक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ ४० ॥ तब भगवान्‌ने हँसकर उससे समयोचित वचन कहा हे प्रिये ! इस समय घोडीका देह त्याग कर पहला देह ग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ हे सुलोचने ! हम दोनों अपनाअपना देह धारण कर अपने घर वैकुण्ठ धामको चलें और तुम्हारी

तयोस्तु संगमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः ॥ कालिंदीतमसासंगे पावने लोकविश्रुते ॥ ३९ ॥ सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरिवल्लभा ॥ सुषुवे सुंदरं बालं तत्रैव सुगुणोत्तरम् ॥ ४० ॥ तमाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् ॥ त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना ॥ ४१ ॥ गमिष्यावः स्ववैकुंठमावां कृत्वा निजं वपुः ॥ तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वदेहसंभवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम् ॥ स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ ॥ ४३ ॥ का गतिः स्यादमेयात्मन्बालस्यास्य नदीतटे ॥ अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह ॥ ४४ ॥ अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गंतुं मनो मम ॥ समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदंबुजलोचन ॥ ४५ ॥

उत्पन्न हुई यह संतान वह उसी स्थानमें वास करै ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीने कहा हे नाथ ! अपनी जठरजात संतानको त्यागकर कैसे चलूं ? हे सुरेश्वर ! आत्मजात संतानका स्नेह अत्यन्त कठिनतासे छोडने योग्य है ॥ ४३ ॥ हे महात्मन् ! यह बालक अतिशिशु और अत्यन्त क्षुद्रतनु है अभी अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें सदा असमर्थ है इसको नदीके तटपर त्याग करनेपर जब यह अनाथ होगा तब इसकी क्या गति होगी ? ॥४४॥हे कमललोचने ! हे स्वामिन् ! स्नेहरससे मेरा मन व्याप्त है निराश्रय शिशुसन्तानको त्याग कर चलनेमें किस प्रकार समर्थ होगा?॥४५॥

अनंतर लक्ष्मी और नारायणके पूर्वके समान दिव्य देह धारणपूर्वक उत्तम विमानमें चढ़ने पर फिर देवता उनका स्तव करने लगे ॥ ४६ ॥ नारायणके जानेकी इच्छा करनेपर कमलाने कहा हे नाथ! आप इस पुत्रको ग्रहण कीजिये मैं इसको त्यागकर जानेमें समर्थ नहीं होती ॥४७॥ हे प्रभो ! हे मधुसूदन ! यह पुत्र मुझको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रिय है देखो यह देहकांतिसे सब प्रकार आपके समान है अतएव मैं इस पुत्रको लेकर वैकुण्ठमें जाऊंगी ॥ ४८ ॥ हरिने कहा हे प्रिये ! तुम विषाद मत करो यह बालक इस स्थानमें सुखपूर्वक वास करे मैंने इसकी रक्षाके निमित्त उपाय किया है ॥ ४९ ॥ हे वामोरु ! इस पृथ्वीमें कोई एक महत् अद्भुत कार्य है वह तुम्हारे इस पुत्रसे ही होगा इस कारण मैं इसको

दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनाराणावुभौ ॥ विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि ॥ ४६ ॥ गंतुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम् ॥ गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्ताऽस्मि हापितुम् ॥ ४७ ॥ प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कांत्या त्वत्सदृशः प्रभो ॥ गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुंठं मधुसूदन ॥ ४८ ॥ हरिरुवाच ॥ मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥ तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह ॥ ४९ ॥ कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम् ॥ निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने ॥ ५० ॥ तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि ॥ हरिवर्मेति पित्राऽस्य कृतं नाम सुविश्रुतम् ॥५१॥ स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने ॥ तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः ॥ ५२ ॥ तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये ॥ तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि सांप्रतम् ॥ ॥ ५३ ॥ तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामाय कामिनि ॥ गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम् ॥ ५४ ॥

इसी स्थानमें छोड़ता हूं इस समय तुम्हारे निकट यह विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५० ॥ तुर्वसु नामक विख्यात ययाति राजाके एक पुत्र है उसके पिताने फिर उसका नाम हरिवर्मा रक्खा वह उसी नामसे विख्यात हुआ है ॥ ५१ ॥ वह राजा इस समय पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे पवित्र तीर्थमें शतवर्ष हुए तपस्या करता हैं ॥ ५२ ॥ हे कमले ! उनके निमित्त ही मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है हे सुभ्रु ! मैं उस समय वहां जाकर उस राजाको भेजूंगा ॥५३॥ हे वरानने ! उस पुत्रकी इच्छा करनेवाले राजाको मैं यह पुत्र दूंगा वह इस बालकको लेकर फिर घर जायगा ॥५४॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! भगवान् इस प्रकार पद्मालया प्रियाको समझायकर और बालकको उसी स्थानमें रख उत्तम विमानपर चढ कमलाके सहित स्वर्गको चले गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, लक्ष्मी और नारायणके उस सद्योजात असहाय बालक सन्तानको निर्ज्जनवनमें त्याग करनेपर फिर उसको किसने ग्रहण किया ॥ १ ॥ अहो ! उस तत्कालके उत्पन्न हुए बालककी क्या गति हुई ? सिंह

व्यास उवाच ॥ इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके ॥ विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा ॥ मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने ॥ १ ॥ का गतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवतीसुत ॥ व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतो नातिबालकः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ लक्ष्मीनाराणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा ॥ तदैव तत्र चंपाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल ॥ ३ ॥ विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप ॥ मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया ॥ ४ ॥ विलोक्य तं शिशुम्भूमावेकाकिनमनुत्तमम् ॥ देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम् ॥ ५ ॥ विमानात्तरसोत्तीर्य चंपकस्तं शिशुं जवात् ॥ जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाऽधनः ॥ ६ ॥

व्याघ्रादि हिंसक जन्तुगणोंने क्यों उसको भक्षण न किया ? ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! लक्ष्मी और नारायणके उस स्थानसे चले जानेपर चम्पक नामक विद्याधर ॥३॥ मनोहर विमानपर चढ मदनालसा नामक स्त्रीके संग क्रीडा करते करते इच्छानुसार वहां आनकर उपस्थित हुआ ॥४॥ देव पुत्रके समान मनोहर कान्ति परम सुन्दर उस बालकको पृथ्वीमें अकेला सुखपूर्वक क्रीडा करते देखकर ॥ ५ ॥ चम्पकने शीघ्र विमानसे उतर उसको ग्रहणकिया निर्धन पुरुष जिस प्रकार निधि पानेसे प्रसन्न होता है मनोहर पुत्रको प्राप्त कर विद्याधर भी उसीप्रकार

आनन्दित हुआ ॥ ६ ॥ चम्पकने उस सद्योजात मनोहर कामदेवके समान बालकको ग्रहण कर ॥ ७ ॥ मदनालसा देवीको दिया मदनालसा बालकको ग्रहण कर आश्चर्य युक्त और पुलकित हुई और हृदयसे लगाय मुखचुम्बन करने लगी ॥ ८ ॥ हे भारत ! मदनालसा बालकको पुत्र भावसे गोदीमें ले आलिङ्गन और चुम्बन कर परम प्रसन्न हुई ॥९॥इसके उपरान्त दोनों बालकको ले परमानन्दसे विमानपर चढ़े अनन्तर तन्वंगी मदनालसा हँसकर पतिसे पूँछने लगी ॥ १० ॥ हे नाथ ! यह बालक किसकाहै इसको वनमें कौन छोड़ गया है? बोध होता है

गृहीत्वा चंपकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् ॥ मदनालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम् ॥ ७ ॥ सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमांचा सविस्मया ॥ मुखं चुचुंब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम् ॥ ८ ॥ आलिंगितश्चुंबितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् ॥ उत्संगे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत ॥ ९ ॥ कृत्वांऽके तौ समारूढौ विमानं दंपती मुदा ॥ पतिं पप्रच्छ चार्वंगी प्रहस्य मदनालसा ॥१०॥ कस्यायं बालकः कांत त्यक्तः केन च कानने ॥ पुत्रोऽयं मम दैवेन दत्तस्त्र्यंबकपाणिना ॥११॥ चंपक उवाच ॥ प्रिये गत्वाऽद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै ॥ देवो वा दानवो वाऽपि गंधर्वो वा शिशुः किलः ॥१२॥ तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् ॥ अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किंचिन्मया ध्रुवम् ॥१३॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चंपकः ॥ ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥१४॥ प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चंपकस्तु शचीपतिम् ॥ निवेद्य बालकं प्राह कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१५॥

कि देवदेव पिनाकपाणिने मुझको यह पुत्र दान किया है ॥ ११ ॥ चम्पकने कहा यह बालक देव, दानव, अथवा गंधर्वकी संतान है, यह मैं उन सर्वज्ञ शचीपति इंद्रसे अभी जाकर पूछूँगा ॥ १२ ॥ उनकी आज्ञा करनेपर फिर इस वनमें प्राप्त हुए को वेदमंत्रद्वारा संस्कृत कराय पुत्रत्वमें ग्रहण करूंगा विशेष कर विना जाने हठात् कोई कार्य करना मुझको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ चम्पक अपनी स्त्री मदनालसासे यह कह बालकको ग्रहणपूर्वक हर्षोत्फुल्ल लोचनसे शीघ्र इंद्रपुरमें गया ॥ १४ ॥ चम्पकने प्रीतिपूर्वक शचीपति इंद्रके चरणोंमें प्रणामकर बालक

विवरण सुनाय हाथ जोड़कर कहा ॥ १५ ॥ हे देवेन्द्र ! मैंने कालिन्दी और तमसाके संगमरूप परम पवित्र तीर्थस्थलमें इस कामदेवके समान बालकको प्राप्त किया है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हे शचीकान्त ! वह पुत्र किसका है ? और इनको कौन छोड़ गया ? यदि आपका विचार हो तो मैं इस बालकको पुत्ररूपमें ग्रहण करूं ॥ १७ ॥ यह बालक अत्यन्त सुन्दर और मेरी स्त्रीको अति प्रिय है, धर्म्मशास्त्रमें भी कृत्रिमपुत्रकी विधि कही गई है अतएव मेरी अत्यन्त इच्छा है कि इस बालकको वेदमंत्रद्वारा संस्कार कराय पुत्ररूपसे ग्रहण करूं ॥ १८ ॥ इंद्रने कहा हे महाभाग ! भगवान् वासुदेवने अश्वरूपधारणपूर्वक कमलाके गर्भसे उत्पन्न किया है यह हैहय नामक है ॥ १९ ॥

देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने ॥ कालिंदीतमसासंगे बालकोऽयं स्मरप्रभः ॥ १६ ॥ कस्यायं बालकः कांतः कथं त्यक्तः शचीपते ॥ आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम् ॥ १७ ॥ अतीव सुंदरो बालः प्रियया वल्लभः सुतः ॥ कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ॥१८॥ इंद्र उवाच ॥ पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह ॥ हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्यां जातः परंतपः ॥१९॥ उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः ॥ दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥ २० ॥ हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः ॥ आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥२१॥ तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम् ॥ यावन्न याति नृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः ॥२२॥ गत्वा तत्र विमुंचैनं विलंबं मा कृथा वर ॥ अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति ॥ २३ ॥ तस्माच्चंपक मुंचैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् ॥ एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥ २४ ॥

वह ययातितनय तुर्वसुको यह शत्रुसंहारक्षम बालक प्रदान कर भलीभांति कार्यसाधन करेंगे ॥ २० ॥ वह धार्मिक राजा हरिसे प्रेरित अभी पुत्रके निमित्त उस मनोहर पवित्र तीर्थमें आवेंगे ॥२१॥ जबतक वह देवदेव विष्णुसे प्रेरित हो उस स्थानमें न आवे उससे पहले ही तुम शीघ्र वहां जाय इस रमणीय मूर्ति बालकको उसी स्थानमें रख दो॥२२॥ हे विद्याधर प्रवर ! तुम अब मुहूर्त्तमात्र भी बिलंब मत करो राजा बालकको न देखकर अत्यन्त दुःखित होंगे ॥ २३ ॥ अतएव हे चम्पक तुम इस बालककी ममता त्याग करो राजा इस पुत्रको ग्रहण करे यह बालक पृथ्वीमें

एकवीरनामसे विख्यात होगा ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इन्द्रके यह वचन सुनकर चम्पक पुत्रको ले तत्काल वहां जाय ॥ २५ ॥ उसको उसी स्थानमें रख विमानपर चढ अपने घरको चलागया ॥ २६ ॥ उसी समय त्रैलोक्यनाथ कमलाकान्त प्रभासे कान्तिमान् विमानपर चढ राजाके निकट गये॥२७॥ भगवान् विमानसे उतरते ही थे उसी समय राजा तुर्वसु उनको देखते ही प्रसन्न हुए और पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥२८॥ हे वत्स ! उठो मनकी मलीनता दूर करो यह कहकर नारायणने उस पृथ्वीमें पड़े हुए अपने भक्त राजाको समझाया राजा भी उत्सुक और भक्ति युक्त चित्तसे सामने स्थित वासुदेवकी स्तुति करनेके लिये वचन कहन लगा ॥ २९ ॥ हे रमेश ! आप देवताओंके अधिदेवता, सम्पूर्ण

व्यास उवाच॥इति तस्य वचः श्रुत्वा चंपकस्त्वरयाऽन्वितः ॥ जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते॥२५॥मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत् ॥ आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममंडलम् ॥२६॥ तदैव कमलाकांतो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः ॥ विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति ॥२७॥ दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात्॥जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दंडवच्च ॥२८॥ उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतंतमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् ॥ सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥२९॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ कृपानिधे लोकगुरो रमेश॥मंदस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम्॥३०॥ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् ॥ आशापरोऽहं भगवन्ननंत योग्यो न ते दर्शने देवदेव ॥३१॥ इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णुस्तमाह वाक्येन सुधामयेन ॥ वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति॥३२॥

लोकमण्डलके नाथ करुणाके समुद्र और सब मनुष्योंको उपदेश देनेवाले हैं हे प्रभो ! आपका दर्शन योगिगणोंको भी अत्यन्त दुर्लभ है मैंने अत्यन्त मंदमति होकर भी आपका वह दर्शन प्राप्त किया हे प्रभो ! इसके द्वारा आपकी अपार करुणा प्रकाश होती है ॥३०॥ हे भगवन् ! हे अनंत ! जो मोहरहित और विषयसे विरत हैं वही आपका दर्शन प्राप्त करनेके अधिकारी हैं हे देवादिदेव ! मैं आशारूपी जालमें बंधा हूं मैं आपका दर्शन प्राप्त करनेमें सब प्रकार अयोग्य हूं इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ नृपतिश्रेष्ठ तुर्वसुके इस प्रकार स्तव करने पर फिर

भगवान् विष्णु अमृतमय वचनसे कहने लगे हे राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं तुम मनके अभिलाषित वरकी प्रार्थना करो मैं इस समय वही दूंगा ॥ ३२ ॥ तदनंतर राजाने सामने खडे परात्पर विष्णुके चरणोंमें फिर प्रणाम कर कहा हे मुरारे ! मैंने पुत्र प्राप्त होनेके निमित्त तपस्या की है मुझको आत्मतुल्य पुत्र दीजिये ॥ ३३ ॥ आदि देव राजाकी प्रार्थना सुन उनसे अमोघ वचन कहने लगे हे ययातिनन्दन ! तुम यमुना और तमसाके संगम तीर्थमें जाओ ॥३४॥ अभी मैं उस स्थानमें तुम्हारे निमित्त जैसी तुम इच्छा करते थे वैसा ही अमित प्रभाव एक पुत्र रख आया हूं तुम शीघ्र ग्रहण करो हे राजन् ! उस पुत्रने मेरे उरसे और कमलाके जठरसे जन्म ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ राजा हरिके मधुर विमल

ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रावोच विष्णुं पुरतः स्थितं च ॥ तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थं पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे ॥३३॥
श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तामाह राजानममोघवाक्यम्॥ययातिसूनो व्रज तत्र तीर्थं कलिंदकन्यातमसाप्रसंगे ॥ ३४ ॥ मयाऽद्य
पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन् ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा
हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं संतुष्टचित्तः प्रबभूव राजा ॥ हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुंठलोकं रमया युतश्च ॥ ३६ ॥ गते
हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्ययावनुद्घातरथेन राजा ॥ प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्येति जनार्दनस्य ॥ ३७ ॥
स तत्र गत्वाऽतिमनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् ॥ मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णं पदांगुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥ ३८ ॥
तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं नारायणांशं कमलाप्रसूतम् ॥ हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपंकजोऽभूत् ॥ ३९ ॥

वचन सुन कर अत्यन्त संतुष्ट हुए तब भगवान् विष्णु भी उनको वर दे रमाके सहित वैकुण्ठको चले गये ॥३६॥ ययातिपुत्र राजा तुर्वसु जनार्दनके यह वचन सुननेके पीछे प्रेमपूरित चित्तसे एक अप्रतिहतगति रथपर चढ जिस स्थानमें वह पुत्र था उसी स्थानमें गया ॥३७॥ वहां जातेही असा धारण प्रभायुक्त देखा कि वह परम सुंदर मनोहर बालक एक कोमल हाथसे चरणका अंगूठा पकडे मुखमें दिये प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीमें खेल रहा है ॥३८॥यह पुत्र नारायणके अंश और कमलाके उदरसे उत्पन्न है सुतरां नारायणके समान प्रभाव युक्त है उस कामदेवके समान मनोहर बालकको देख

कर लोक विख्यात नरेश्वर हरिवर्माका मुखकमल हर्षसे प्रफुल्लित होगया ॥३९॥राजा दोनों हस्तकमलोंमें पुत्रको ग्रहणकर प्रेमसागरमें निमग्न हुए और हर्षसे भर मस्तक सूंघ अत्यन्त आनंदित मनसे आलिङ्गन करने लगा ॥ ४० ॥ बालकका मनोहर मुखकमल देखकर आनंदके आंसुवोंसे भर राजाका कण्ठ रुक गया तब उन्होंने बालकसे गद्गद वाणीसे कहा हे पुत्र ! नारायणने संतुष्ट होकर मुझको तुम सरीखा पुत्ररत्न दान किया है तुम मेरी पुन्नाम नरक पातके भयसे रक्षा करो ॥४१॥ हे वत्स ! मैंने तुम्हारे निमित्त पूर्ण सौ वर्ष कठिन तपस्या की है उससे कमला पतिने परितुष्ट होकर मुझे संसार सुखके निमित्त तुमको दान किया॥४२॥ तुम्हारी जननी रमा देवी मेरे निमित्त अपनी अङ्गजात संतानको त्यागकर

गृह्णन्सुवेगात्करपंकजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः॥मूर्धन्युपाघ्राय मुदाऽन्वितोऽसौ ननंद राजा सुतमालिलिंग ॥४०॥ मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं तमुवाच नेत्रांबुनिरुद्धकंठः ॥ दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥ ४१ ॥ तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम् ॥ तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥ ४२ ॥ माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता ॥ धन्या तु सा या प्रहसंतमंके कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात् ॥ ४३ ॥ त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीधरेण ॥ इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥ ४४ ॥ पुरीसमीपे नृपमागतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः ॥ ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च ॥ ४५ ॥ बंदीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः संमुखमाशु राज्ञः ॥ नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्वा ॥ ४६ ॥

हरिके संग चली गई हे वत्स ! तुमको गोदीमें लेकर तुम्हारा हास्यविकसित मुखकमल देखनेसे जिसका मुख प्रफुल्लित होता है वही जननी धन्य है ॥४३॥ हे हृदय नन्दन ! देवादिदेव रमापतिने तुम्हें मेरी संसार सागरकी नौकास्वरूप किया है यह कह राजा उस बालकको ग्रहण कर प्रसन्न मनसे घरकी ओर चले ॥ ४४ ॥ नगरीमें राजा फिर आते हैं यह सुनकर राजाके मंत्री पुरवासी और समस्त प्रजा पुरोहितादि उपहारकी सामग्री संग ले उनके निकट आए ॥४५॥ तब बन्दीगण गायक और सूतगण राजाके संमुख उपस्थित हुए राजाने पुरीमें प्राप्त हो आये हुए

सम्पूर्ण मनुष्योंको स्नेह दृष्टिसे देख और मधुरसम्भाषणद्वारा समझाया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर पौरगणोंसे पूजित हो पुत्रके सहित नगरीमें प्रवेश किया राजा जब राजमार्गमें जाने लगे तब पौरगणोंने उनके ऊपर पुष्प और लाज (खीलैं) बरसाये ॥ ४७ ॥ अनन्तर राजाने दोनों हाथोंसे पुत्रको ग्रहणकर मंत्रीगणोंके सहित अपनी समृद्धि सम्पन्न गृहमें प्रवेश किया तदनंतर तुर्वसुने उस सद्यःप्रसूत कामदेवके समान मनोहर पुत्रको अपनी महिषीके हाथोंमें समर्पण किया ॥ ४८ ॥ मनोरमा राजपत्नी अभिनव संतानको ग्रहण कर राजासे पूंछने लगी हे राजन् ! यह मन्मथ मूर्ति सुजात पुत्र कहां पाया ॥४९॥ किसने आपको यह प्रदान किया? हे नाथ! आप शीघ्र कहिये । यह बालक मेरा मन हरण करता

संपूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् ॥ मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समंताद्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम ॥ ४७ ॥ गृह समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् ॥ राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं सद्यःप्रसूतं च मनोभवाभम् ॥ ४८ ॥ राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिंदिता सा ॥ राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥ ४९ ॥ केनैष दत्तः कथयाशु कांत चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन ॥ नृपस्तदोवाच मुदाऽन्वितोऽसौ प्रिये रमेशेन सुतोऽति मह्यम् ॥ ५० ॥ लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ॥ सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥ ५१ ॥ ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः ॥ कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम्॥५२॥

है तब राजाने आनन्दित होकरकहा हे प्रिये ! कृपानिधि कमलापतिने मुझको यह पुत्र प्रदान किया है ॥ ५० ॥ हे चपलनयने ! यह सन्तान नारायणके अंश और कमलाके गर्भसे उत्पन्न है हे देवि ! इस सन्तानमें बल वीर्य धैर्य गम्भीरता इत्यादि समस्त गुण विद्यमान हैं इसमें संदेह नहीं तब महिषीने उस बालक संतानको ग्रहण कर अपरिमेय आनन्द प्राप्त किया अनंतर राजा तुर्वसुने राजभवनमें अद्भुत उत्सव आरम्भ किया ॥५१॥ और याचकगणोंको दान किया राजभवनमें अनेक प्रकारके गीत और बाजोंकी ध्वनि होने लगी भूपति तुर्वसुने पुत्र होनेमें उत्सव कर

उसका नाम एकवीर रख दिया ॥ ५२ ॥ इंद्रके समान वीर्यवान् वह नरपति भगवान् हरिके समानरूप और गुणयुक्त पुत्रको प्राप्त हो सुखी हुए और वंशके ऋणदायसे छूटकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! इन्द्रके समान पराक्रमशाली वह राजा इसप्रकार समस्त देवताओंके अधिपति नारायणके दिये सर्वगुणालंकृत उस पुत्रको पाय प्रियतमासे सुखसेवित और उसके सहित अनेक विनोद और राजभोगमें निरंतर निरत रह अपने घर विहार करने लगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
व्यासजीने कहा हे राजन् ! उसी अवसरमें नरपति तुर्वसुने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार कराया क्रमानुसार बालक लालित पालित हो दिन दिन

सुखं च संप्राप्य मुदाऽन्वितोऽसौ ननंद देवाधिपतुल्यवीर्यः ॥ पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं संप्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥ ५३ ॥ इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा ॥ विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमानो व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा ॥ दिनेदिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥१॥ नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम् ॥ ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना ॥ २ ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि ॥ तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम् ॥ ३ ॥ चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः संपूज्य विविधैर्धनैः ॥ गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥ ४ ॥ वर्षे चैकादशे तस्य मौंजीबंधनकर्म वै ॥ कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥ ५ ॥

बढनेलगा ॥१॥ राजा उस पुत्रजनित संसारके सुखको प्राप्त हो "इस उदारात्मा पुत्रद्वारा मैं पितृ ऋण, ऋषिऋण और देवऋणसे छूटा" मनमें इस प्रकार विचारने लगा ॥ २ ॥ अनन्तर छठे मासमें विधिपूर्वक उसका अन्नप्राशन और तीसरे वर्षमें सम्यक्प्रकार चूडाकरणादि क्रिया सम्पादन की ॥ ३ ॥ उन समस्त क्रियाओंमें राजाने ब्राह्मण गणोंको अनेक द्रव्य, धन और गोदान तथा अन्य याचकगणोंको भी अनेक प्रकारके द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया ॥ ४ ॥ ग्यारहवें वर्षमें उसका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) इत्यादि उपनयनकर्म साधनकर धनुर्वेद अध्ययनमें उसको नियुक्त

किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर पुत्रको वेदाध्ययनमें पारदर्शी और राजधर्ममें विशारद हुआ देख राजाने उसका अभिषेक करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ नृपतिसत्तम तुर्वसुने आदरपूर्वक पुष्य और अर्कयोगयुक्त दिनमें अभिषेक निमित्त सम्पूर्ण सामग्री मंगाई ॥ ७ ॥ वह सर्वशास्त्रोंमें निपुण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय यथाविधि पुत्रको अभिषेकक्रियामें प्रवृत्त हुए ॥ ८ ॥ तीर्थ और सागरसे जल मँगाय शुभ दिनमें राजाने स्वयंही पुत्रकी अभिषेकक्रिया सम्पादन की ॥९॥ अभिषेकके समाप्त होनेपर शीघ्रही वह राजा ब्राह्मणगणोंको भूरि भूरि धनदानपूर्वक पुत्रको राज्यभार दे

अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् ॥ दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः ॥ ६ ॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्तदिवसे नृपसत्तमः ॥ कारयामास संभारानभिषेकार्थमादरात् ॥ ७ ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् ॥ अभिषेकं चकारासौ विधिवत्स्वात्मजस्य ह ॥ ८ ॥ जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः ॥ स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने ॥ ९ ॥ धनं दत्त्वाऽथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः ॥ जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः ॥ १० ॥ एकवीरं नृपं कृत्वा संमान्य सचिवानथ ॥ भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी ॥ ११ ॥ मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम् ॥ नित्यं पत्रफलाहारश्चिंतयामास पार्वतीम् ॥१२॥ एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टांते सह भार्यया ॥ मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा ॥१३॥ इंद्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः ॥ चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदेहिकम् ॥ १४ ॥

स्वर्गप्राप्ति की इच्छासे वनको चलेगये॥१०॥ नृपति तुर्वसुने एक वीरको राजासनपर बैठाय मंत्रीगणों का सन्मान कर संयतेन्द्रिय हो भार्याके सहित वनमें प्रवेश किया॥११॥ अनन्तर वह मनाक पर्वतके शिखरमें तृतीयाश्रम (वानप्रस्थधर्म) अवलम्बनपूर्वक प्रतिदिन पत्ते और फलादि आहार कर पार्वतीका ध्यान करने लगे॥१२॥ इसप्रकार उनके प्रारब्धकर्मका अवसान होनेपर वह भार्याके सहित मृत्युको प्राप्त हो पुण्यकर्मद्वारा इन्द्रलोकको गये ॥१३॥ राजाको स्वर्ग गया सुनकर एकवीर हैयहने उनकी वेदनिर्दिष्ट और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादन की ॥ १४ ॥

राजपुत्र बुद्धिमान् हैहय पिताकी सम्पूर्ण उत्तर क्रियाओंका अनुष्ठान कर पिताका दिया निष्कण्टक राज्य पालन करने लगा ॥ १५ ॥ धर्मात्मा राजा एकवीर राज्य प्राप्त होनेके अनन्तर मंत्रीगणोंके विचारसें अनेक उत्तम, २ भोग्य द्रव्योंके सम्भोग करने लगा ॥ १६ ॥ वह प्रतापवान् नरपति एकदिन घोडेपर चढ मन्त्रीके पुत्रोंके सहित गंगाके तटपर गया ॥ १७ ॥ वहां विचरण करते करते उसने देखा कि कोकिलाओंकी मधुरध्वनिसे युक्त भौरोंकी मनोहर गुंजारसे झांकारित फलपुष्पोंसे शोभित वृक्षमाला मनोहर शोभा धारण कर रही है ॥ १८ ॥ समीपही मुनियोंके दिव्य

कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनंदनः ॥ राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसंमतम् ॥ १५ ॥ एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ॥ बुभुजे विविधान्भोगान्सचिवैश्च सुमानितः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्दिवसे राजा मंत्रिपुत्रैः समन्वितः ॥ जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान् ॥ १७ ॥ संपश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंयुतान् ॥ पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजितान् ॥१८॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिनादितान् ॥ होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥१९॥ केदारान्छालिसंपक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् ॥ प्रफुल्लपंकजारामान्निकुंजांश्च मनोरमान् ॥ २० ॥ प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चंपकान्पनसद्रुमान् ॥ बकुलांस्तिलकान्नीपान्मंदारांश्च प्रफुल्लितान् ॥ २१ ॥ शालांस्तालांस्तमालांश्च जंबूचूतकदंबकान् ॥ स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥२२॥ पंकजं चातिगंधाढ्यमपश्यदवनीपतिः ॥ दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमललोचनाम् ॥ २३ ॥

आश्रमोंमें वेदकी ध्वनि होरही है आकाशमें होमका धुआं छा रहा है मृगोंके बच्चे फिर रहे हैं ॥ १९ ॥ क्षेत्र क्यारियोंमें पंके धान खडे हैं गोपी उनकी रक्षा करती हैं खिले कमलवाले सरोवरोंयुक्त वगीचे मनोहर निकुंजोंमें ॥ २० ॥ देखनेवालोंका मन हर जाता है प्रियाल, चम्पक, पनस, बकुल, तिलक, नीप, फूलेमंदार ॥ २१ ॥ शाल, ताल, तमाल जामन, आम, कदम्ब देखता हुआ गंगाजलमें सौ पखुरीवाले फूले कमलको ॥ २२ ॥ जिसमें बडी गंध आती थी राजाने देखा और इस कमलके दक्षिणपार्श्वमें एक परम मनोहर कमल-

लोचना ॥ २३ ॥ कन्याको देखा उसके अङ्गकी प्रभा सुवर्णके समान सुशोभित केशकलाप आकुंचित और दीर्घ ग्रीवा कम्बुके समान, उदर कृश ओष्ठ बिम्बके फलके समान मनोहर, सम्पूर्ण अङ्ग सौंदर्य सम्पन्न और सुगठित स्तन कुछेक उठे हुए ॥ २४ ॥ नासिका मनोहर और सर्वाङ्ग अत्यन्त सुन्दर उस मुकुलितयौवना कामिनीको अपनी सखियोंके विरहजनित दुःखसे कातर ॥ २५ ॥ और विह्वल हुई निर्जनमें कुररीके समान रोदन करते देखकर राजाने उससे शोकका कारण पूंछकर कहा ॥ २६ ॥ हे सुनासिके ! तुम कौन हो, हे सुमुखी ! तुम किसकी पुत्री हो गंधर्वी वा देवकन्या कौन हो जो अकेली रोती ॥ २७ ॥ हे कोकिलकण्ठि ! तुम बाला हो तुमको अकेला

कनकाभां सुकेशीं च कंबुग्रीवां कृशोदरीम् ॥ विंबोष्ठीं सुंदरीं किंचित्समुद्यसुपयोधराम् ॥ २४ ॥ सुनासां चारुसर्वांगीम पश्यत्कन्यकां नृपः ॥ रुदतीं तां सखीं त्यक्ता विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥ २५ ॥ साश्रुनेत्रां क्रंदमानां विजने कुररीमिव ॥ संवीक्ष्य राजा प्रपच्छ कन्यकां शोककारणम् ॥ २६ ॥ सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वं कस्य पुत्री शुभानने ॥ गंधर्वा देवकन्याथ कथं रोदिषि सुंदरि ॥२७॥ कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे ॥ पतिस्ते क्व गतः कांते पिता वा ब्रूहि सांप्रतम् ॥२८॥ किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममांतिके ॥ करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि ॥२९॥ न राज्ये मम तन्वंगि पीडां कोऽपिकरोत्यलम् ॥ न भयं चौरजं कांते न राक्षसभयं तथा ॥ ३० ॥ मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणाभुवि ॥ भयंन व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत्॥३१॥वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे ॥ करोषि त्राणहीनाऽत्र किं ते दुःखं वदस्व मे ॥ ३२ ॥

किसने छोड़ दिया है, हे प्रियदर्शने ! इस समय तुम्हारे पति अथवा पिता कहां चलेगये तुम मुझसे कहो ॥ २८ ॥ हे कुटिलनयने ! तुमको क्या दुःख है इस समय वह मुझसे कहो हे कृशोदरि ! मैं भलीप्रकार तुम्हारा दुःखनष्ट करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ हेचारुसर्वाङ्गि ! मेरे राज्यमें कोई किसीको पीड़ा नहीं देता हे सुदर्शने ! मेरे राज्यमें चोरभय वा राक्षसभय कुछभी नहीं है॥३०॥मेरे शासनसमयमें पृथ्वीपर उत्पात और सिंहभय अथवा व्याघ्रभय इत्यादि किसी प्रकारके भयकी सम्भावना नहीं॥३१॥हे वामोरु ! तुम गंगाके निर्जन तटपर रक्षक विहीन अकेली

विलाप करती हो तुमको क्या दुःख है वह मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ हे विमले ! मैं पृथ्वीमें प्राणीगणोंके देव अथवा मनुष्यजात दोनों प्रकारके दुःख अत्यन्त उग्रतर होनेपर भी दूरकर सकता हूं यही मेरा प्रधान व्रत है॥३३॥ हे आयतनेत्रे ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है कहो मैं इस समय वही करूंगा राजाके इस प्रकार कहने पर फिर वह मनोरमा कामिनी मृदुस्वरसे कहने लगी॥३४॥ हे राजन् ! मैं शोकका कारण कहती हू सुनो हे भूपते ! प्राणी गणोंको विपत्ति उपस्थित न होनेसे वह व्यर्थ क्यों रोवेंगे ॥३५॥ हे महाबाहो ! मैं जिस कारण रोदन करती हू वहइस समय कहती हूं हे महाराज ! आपके देशसे अन्यतर देशमें ॥३६॥ रैभ्यनामक परमधार्मिक एक राजा प्रथम निःसंतान थे रुक्मरेख नामक उनकी परम सुन्दरी भार्या थी॥३७॥

हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले ॥ दैवं च मानुषं कांते व्रतमेतन्ममाद्भुतम् ॥ ३३ ॥ विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिंतितम् ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना ॥ ३४ ॥ शृणु राजेंद्र वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् ॥ विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते ॥ ३५ ॥ प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् ॥ तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः ॥ ३६ ॥ रैभ्यो नाम महाराजः संतानरहितो भृशम् ॥ तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः ॥३७॥ सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षण संयुता ॥ अपुत्रा दुःखिता कांतमित्युवाच पुनः पुनः ॥३८॥ किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम ॥ वंध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले ॥ ३९ ॥ इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् ॥ चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा ॥ ४० ॥ पुत्र कामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम् ॥ हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ॥ ४१ ॥

वह चतुर साध्वी और सर्वसुलक्षण युक्त थी किंतु वह पुत्रहीन होनेसे दुःखसे दुःखित हो अपने पति रैभ्यराजाके प्रति कातरस्वरसे कहने लगी ॥३८॥ हे नाथ ! मैं पुत्रहीन हूं इस कारण मेरे मनमें कुछ भी सुख नहीं है पृथ्वीमें मेरा जीवन वृथा है फिर इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥३९॥ राजमहिषीके दुःखित चित्तसे इस प्रकार कहने पर राजाने वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाय विधिपूर्वक उत्तमयज्ञ आरम्भ किया ॥ ४० ॥ उन्होंने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे शास्त्रमें कहे हुए अनेकानेक द्रव्य दिये जब अनेकानेक घृतराशिकी आहुति दी जाने लगी तब उस

प्रदीप्त अग्निसे सर्वाङ्गसुन्दरी सर्वसुलक्षण युक्त एक कन्या प्रगट हुई॥४१॥ उस कन्याके दाँतोंकी पंक्ति अत्यंतमनोहर दोनों भौंयें अति शोभायमान मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान बिम्बसे होठ ॥४२॥ अंग प्रभा कनकके समान मनोहर, केश सूक्ष्म और घुंघराले, कर और चरण लालवर्ण, दोनों नेत्र लालकमलके समान और सम्पूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग अत्यंत कोमल थे॥४३॥ अग्निसे उत्पन्न होनेपर होताने उस सुमध्यमा क्षीणाङ्गी कन्याको दोनोंहाथोंमें लेकर राजासे कहा ॥४४॥ हे राजन् ! इस सर्वसुलक्षण कन्याको ग्रहण करो होमके समय अग्निसे एकावली मालाके समान उत्पन्न हुई है ॥४५॥

आविर्बभूव चार्वंगी कन्यका शुभलक्षणा ॥ बिंबोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचंद्रनिभानना ॥ ४२ ॥ कनकाभा सुकेशांता रक्तपाणितला मृदुः ॥ सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम् ॥४३॥ हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा ॥ होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ॥ ४४ ॥ राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ एकावलीव संभूता हूयमानाद्धुताशनात् ॥ ४५ ॥ नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति ॥ सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया ॥ ४६ ॥ संतोषं कुरु राजेंद्र दत्ता देवेन विष्णुना ॥ होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम् ॥ ४७ ॥ जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसंमताम् ॥ गृहीत्वा नृपतिस्तां तु ददौ पत्न्यै वराननाम् ॥ ४८ ॥ आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुतम् ॥ सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम् ॥ ४९ ॥

अतएव यह कन्या पृथ्वीमें एकावली नामसे विख्यात होगी । हे पृथ्वीपालक ! इसेपुत्रके समान सुलक्षण कन्याको ग्रहणकर आप सुखी हूजिये॥४६॥ हे राजेंद्र ! देवदेव विष्णुने आपको यह कन्यारत्न दिया है इससे आप संतोष प्राप्त कीजिये राजाने होताका वचन सुन इस शोभायमान कन्याको देखकर ॥४७॥ प्रसन्नचित्त हो उनके हाथसे उस मनोहर कन्याको लेलिया अनंतर उस वरानना कन्याको लेकर अपनी स्त्री देवीरुक्मरेखाके निकट जाकर कहा ॥४८॥ हे सुभगे ! इस कन्याको ग्रहणकर राज्ञी रुक्मरेखा उस कमलके समान नेत्रोंवाली मनोरमा कन्याको ले ॥४९॥

पुत्रप्राप्तिके समान सुख अनुभव करनेलगी अनंतर राजाने कन्याके जातकर्मादि मंगलकारी सम्पूर्ण कर्म्म ॥५०॥ औरस पुत्रजन्मके समान किये राजा अपना यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणगणोंको अनेक दक्षिणा ॥ ५१ ॥ प्रदानपूर्वक विदाकर अत्यंत आनंदित हुए वह असितापाङ्गी कन्या पुत्रवत् वृद्धिको प्राप्त हो लालित और पालित हुई दिनदिन बढनेलगी॥५२॥ राजाकी स्त्री रुक्मरेखा उस कन्याको प्राप्तकर अत्यंत प्रसन्न हुई, उस दिनही पुत्रजन्मोत्सवके समान उत्सव आरम्भ हुआ ॥ ५३ ॥ वह कन्या पुत्रके समान अत्यंत प्रियहो बढ़ने लगी और सबकी प्रिय हुई हे मन्मथमूर्ते ! आप राजा और अत्यंत बुद्धिमान् हैं मैं आपके समीप सम्पूर्ण वृत्तांत निवेदन करूंगी श्रवण कीजिये मैं उसी राजाके मंत्रीकी

जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् ॥ चकार मङ्गलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम् ॥ ५० ॥ पुत्रजन्म समुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः ॥ समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम् ॥५१॥ दत्त्वा विसृज्य विप्रेंद्रान्मुदं प्राप महीपतिः ॥ दिनेदिनेऽसितापांगी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ ॥५२॥ मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता ॥ उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः॥५३॥ पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल ॥ राज्ञो मंत्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते ॥ ५४ ॥ यशोवती च ये नाम समानं वय आवयोः ॥ वयस्याऽहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह ॥ ५५ ॥ सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम् ॥ एकावली गंधवंति यत्र पद्मानि पश्यति ॥५६॥ तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात् ॥ सुदूरे जाह्नवीतीरे भवंति कमलान्यपि ॥५७॥ रममाणा तत्र याता मत्समेता सखी युता ॥ मया निवेदितं राजन्पुत्री ते कमलाकरान् ॥ ५८ ॥

कन्या हूं ॥ ५४ ॥ और मेरा नाम यशोवती है वह एकावली और मैं समानरूप और समान वयसवाली थी. अतएव राजाने क्रीडाके निमित्त मुझको उसकी वयस्या सखी बना दिया था ॥ ५५ ॥ मैं दिनरात उसकी प्रियसखी हो समय व्यतीत करती थी एकावली जिस स्थानमें गंधयुक्त, कमलको देखती ॥५६॥ उसी स्थानमें रहना और क्रीडा करना अच्छा समझती अन्य कहीं उसको सुख प्राप्त नहीं होता दूरस्थित गंगाके तटपर अनेक कमल उत्पन्न होते हैं ॥५७॥ एकावली मेरे और अन्यान्य सखियोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक वहां जाती मैंने एक दिन राजासे कहा

हे राजन् ! आपकी एकावली प्रतिदिन ॥ ५८ ॥ दूर निर्ज्जनवनमें कमल सरोवर देखनेको जाती है अनंतर राजाने उसको निषेध किया और अपने घरमें जलाशय बनाय उसमें अनेक कमलिनी लाय आरोपित की ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार जब उसमें सम्पूर्ण कमल खिले तब सब भ्रमरगण आय उसमें मधुपान करने लगे तथापि वह कमलप्राप्त होनेकी इच्छासे बाहर जाने लगी ॥ ६० ॥ तब राजा उसके संग सम्पूर्ण शस्त्रधारी रक्षकगण भेजनेलगे वह कृशांगी नृपनंदिनी रक्षकगणसे रक्षित हो और अन्यान्य सखियोंके सहित ॥ ६१ ॥ क्रीड़ाके निमित्त गंगाके जलमें प्रतिदिन आती फिर क्रीडा समाप्त होनेपर घरको जाती ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः

प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने ॥ निषेधिताऽथ पित्राऽसौ गृहे कृत्वा जलाशयान् ॥ ५९ ॥ कमलान्वापयित्वाऽथ पुष्पितान्भ्रमरावृतान् ॥ तथाऽपि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना ॥ ६० ॥ तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः ॥ एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता ॥ ६१ ॥ क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ यशोवत्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय तन्वंगी चलिता च सखीयुता ॥ चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः ॥१॥ सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी ॥ क्रीडार्थमत्र राजेंद्र संप्राप्ता नलिनीं शुभाम् ॥ २ ॥ अहमप्यनया सार्धं गंगातीरे समागता ॥ अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया ॥ ३ ॥ एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा ॥ सहसैव तदाऽऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥ ४ ॥

॥२१॥ यशोवतीने कहा हे राजेन्द्र ! एकदिन एकावली प्रातःकालके समय उठकर सखियोंके सहित गंगातटको चली सखियें उसका चँवर व्यजन करनेलगीं ॥ १ ॥ रक्षकगण वस्त्रपहन भांतिभांति अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके संग संग गये क्रमानुसार वह क्रीडा करनेके लिये इसस्थानमें शोभायमान कमलोंकेनिकट उपस्थित हुई ॥ २ ॥ मैं भी उसके संग कमल लेकर खेलतेखेलते गंगातटपर आई और दोनों जनी अप्सराओंके सहित कमल लेकर क्रीड़ा करनेलगीं ॥ ३ ॥ जब हम दोनों क्रीड़ामें अत्यंत आसक्त हुईं तब कालकेतु नामक विख्यात एक बलवान् दानव

परिघ असि गदा चाप बाण और तोमर इत्यादि अस्त्रधारी अनेकराक्षसोंके सहित सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ ॥ ४॥ ५ ॥ एकावली उत्तम उत्तम कमल लेकर क्रीड़ा कर रही थी इसी समयमें कालकेतुने उसको इसप्रकार रूपयौवनसम्पन्न कामदेवकी रतिके समान देखा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मैंने तब एकावलीसे कहा देखो यह एक कौन दैत्य आनकर उपस्थित हुआ हे अम्बुजेक्षणे ? इस समय चलो हम रक्षकगणोंके मध्यस्थलमें प्रवेश करें ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन ! तब सखी और मैं दोनों इस प्रकार परामर्श कर भयसे तत्काल अस्त्रधारी रक्षकगणोंके मध्यभागमें गईं ॥ ८ ॥ कालकेतु उस मनोमोहिनी तरुणी कामिनीको देखतेही कामबाणसे पीडित हो गुर्वी गदा ग्रहण पूर्वक

कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः ॥ परिघासि गदाचापबाणतोमरपाणिभिः ॥ ५ ॥ दृष्टा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी ॥ द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपंकजैः ॥ ६ ॥ मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः ॥ गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पंकजलोचने ॥७॥ विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात् ॥ मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज ॥ ८ ॥ कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः ॥ गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः ॥ ९ ॥ रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहांबुजलोचनाम् ॥ त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रंदमानां कृशोदरीम् ॥ १० ॥ त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः ॥ न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥ ११ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो रक्षकास्तं महाबलम् ॥ प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥ १२ ॥ तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वतः शस्त्रपाणयः ॥ युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्यें कृतोद्यमाः ॥ १३ ॥

शीघ्रतासहित हमारे सामने आनकर उपस्थित हुआ॥९॥ और रक्षकगणोंको अलग करके उस कमलके समान नेत्रोंवाली कृशोदरी सखीको पकड़ लिया तब वह बाला भयसे कांपतेकांपते रोनेलगी॥१०॥उसको देखकर मैंने उस दानवसे कहा इसे छोड़ मुझको पकड़ वह कामार्त्त दानव मुझको छोड़ सखीको लेजाने लगा ॥ ११ ॥ रक्षकगण "ठहर ठहर कन्याको लेकर मत भाग तुझको विलक्षण शिक्षा देते हैं" यह कह उस महाबली दानवको लौटाकर उसके संग घोरतर आश्चर्ययुक्त संग्राममें प्रवृत्त हुए ॥ १२ ॥ उसके समान बलयुक्त क्रूरतर संपूर्ण राक्षससेना स्वामीका

कार्य साधनकरनेको उत्साहित हो रक्षकगणोंके सहित युद्ध करनेलगी ॥ १३ ॥ महाबल कालकेतु फिर स्वयंभी उस भीषण संग्राममें प्रवृत्त हो रक्षकगणोंको रणस्थलमें मार सखीको ले राक्षस सैन्यगणोंके सहित अपने नगरको जाने लगा ॥१४॥ उस बालाको दानवसे पकड़ा हुआ भयसे रोतेहुए देख मैं भी सखीके पीछेपीछे जाने लगी ॥१५॥ जिससे वह मुझको देखसके ऐसे मार्गसे चीत्कार करती हुई कांपते कांपते चलने लगी ॥१६॥ सखीभी मुझको देखकर कुछेक स्वस्थ हुई मैं फिर उसके समीप पुकारते पुकारते गई॥१७॥ सखी अत्यंत दुःखसे कातर हुई थी मुझको

संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे ॥ निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः ॥ १४ ॥ युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति ॥ वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु ॥ १५ ॥ पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम ॥ विक्रोशंती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा ॥ १६ ॥ साऽपि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ॥ गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥ सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तंभस्वेदसमाकुला ॥ कंठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता ॥ १८ ॥ स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चंचललोचनाम् ॥ १९ ॥ प्राप्तं मामाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये ॥ दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रंदसि कातरा ॥ २० ॥ कथयैतां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने ॥ इत्युक्त्वा मां सखीपार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे ॥ २१ ॥

निकट देख स्तम्भित और स्वेदजलमें प्लुवित हो मेरा कण्ठ पकड अधिकतर दुःखित हो रोनेलगी ॥ १८ ॥ तब कालकेतु मेरे प्रति प्रीति प्रकाशितकर कहने लगा कि तुम्हारी यह चञ्चलनेत्रोंवाली सखी अत्यंत डरी है तुम इसको समझाओ ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! मेरी नगरी देवलोकके समान है उसमें तुम अभी चलोगी और मैं भी अभीसे तुम्हारो प्रणयमें बँधकर तुम्हारा दास हुआ तुम कातर होकर रोओ मत सावधान हो ॥२०॥ हे सुलोचने ! मेरे इस वचनसे समझाकर तुम प्रियसखीसे कहो यह कहकर उस दुष्टने मुझको उस मनोहर रथमें चढ़ाय ॥ २१ ॥

अपने पार्श्वमें बैठाय महासेनाके सहित प्रफुल्लमुखसे अपने मनोहर पुरमें शीघ्र गमन किया ॥२२॥ अनंतर दोनों सखियोंको सुधाधवलित मनोहर घरमें रखकर हमारी रक्षाके निमित्त करोड़ २ राक्षस नियुक्त करदिये॥२३॥ दूसरेदिन उस दैत्यने मुझसे निर्ज्जनमें पुकारकर कहा तुम्हारी सखी पिता माताके विरहसे अत्यंत कातर होकर शोक करती है तुम इसको समझाकर सावधान करो ॥ २४ ॥ हे सुश्रोणि ! तुम पत्नी होकर यथाभिलाष सुख भोग करो, हे चन्द्रानने ! यह राज्य तुम्हाराही है और मैं तुम्हारा निरन्तर दास हूं मेरे इन सब वचनोंसे अपनी सखीको समझादो ॥ २५ ॥ मैंने

जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे ॥ सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनांबुजः ॥ २२ ॥ एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे ॥ राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः ॥ २३ ॥ द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृपः ॥ प्रबोधय सखीं बालां शोचंतीं विरहातुराम् ॥ २४ ॥ पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुंक्ष्व यथेप्सितम् ॥ राज्यं त्वदीयं चंद्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव ॥ २५ ॥ पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम् ॥ नाऽहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो ॥ २६ ॥ इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः ॥ उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम् ॥ २७ ॥ कृशोदरि त्वया मंत्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि ॥ तेन मे हृदयं कांते हृतं ते वशतां गतम् ॥ २८ ॥ तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः ॥ भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम् ॥ २९ ॥

उसके यह सुननेके अयोग्य कर्कश वचन सुनकर कहा हे प्रभो! मैं इससे अप्रिय वचन नहीं कहसकती, तुम स्वयंही उससे समझाकर कहो॥२६॥मेरे इस प्रकार कहने पर फिर दुष्ट दानवने कामबाणसे व्याकुलचित्त हो उस कृशोदरी प्रियसखीसे विनयवचनद्वारा कहा ॥२७॥ हे प्रिये ! तुमने इस समय मुझपर वशीकरण मंत्रका प्रयोग किया है, हे कान्ते ! इसी कारण मेरा हृदय तुम्हारे एकांतवशीभुत हुआ है ॥ २८ ॥ इससेही मुझको तुम्हारे दासत्वमें बद्ध किया है । मैं भी तुम्हारा दास हुआ यह मेरा स्थिर निश्चय जानो हे प्रेयसि ! अब मैं मन्मथशरसे अत्यन्त पीड़ित और विवश हो

गया हूं अतएव हे कृशोदरि ! तुम इस समय मुझको भजो ॥२९॥ हे रम्भोरु ! यौवन अत्यन्त दुर्लभ और चञ्चल वस्तु है हे कल्याणि ! तुम अब मुझको पतिभावसे आलिङ्गन करके उसको सफल करो ॥ ३० ॥ एकावलीने कहा हे महाभाग ! पहले राजाने मुझे एक राजाके पुत्रको देनेकी कल्पना की थी मैंने भी उस हैहय राजाको पतिरूपमें वरण किया है ॥३१॥ आप भी तो शास्त्रके निश्चयको जानते हैं इस समय मैं सनातन धर्म और कन्या धर्म त्यागकर किस प्रकार दूसरे पतिको आलिङ्गन करूं ॥ ३२ ॥ पिता जिसको दान करते हैं कन्या उसीको पतिरूपमें ग्रहण करती है कन्या सर्वदा ही पराधीन है वह कभी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकती ॥ ३३ ॥ एकावलीके इस प्रकार कहनेपर भी वह पापिष्ठ दैत्य

यौवनं याति रंभोरु चंचलं दुर्लभं तथा ॥ सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च ॥३०॥एकावल्युवाच ॥ पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै ॥ हैहयस्तु महाभाग स मया मनसा वृतः ॥ ३१ ॥ कथमन्यं भजे कांतं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥ ३२ ॥ यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात् ॥ परतंत्रा सदा कन्या न स्वातंत्र्यं कदाचन ॥ ३३ ॥ इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः ॥ न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥ ३४ ॥ पातालविवरे तस्य पुरं परमसंकटे ॥ राक्षसै रक्षितं दुर्गं मंडितं परिखावृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा ॥ तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि सुदुःखिता ॥३६॥ एकवीर उवाच ॥ कथं त्वमत्र संप्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः ॥ विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने ॥ ३७ ॥

कामबाणसे मोहित हो शान्त नहीं हुआ और उस विशालाक्षी सखीको तथा उसके पास बैठनेवाली मुझको भी न छोडा ॥ ३४ ॥ उसका पुर पाताल विवरके मध्यमें अत्यन्त संकटस्थानमें अधिष्ठित है, सदा राक्षसगण उसकी रक्षा करते हैं परिखा (खाई) से युक्त मनोहर मार्ग बना है ॥ ३५ ॥ मेरी प्राणवल्लभा प्रियसखी उसी स्थानमें दुःखित चित्तसे वास करती है मैं इस स्थानमें उसके विरहदुःखसे अत्यंत कातर और स्थिर होकर फिरती हूं ॥ ३६ ॥ एकवीरने कहा हे वरानने ! तुम उस दुरात्माके पुरसे इस स्थानमें किस प्रकार आई इस विषयमें मुझको महान्

आश्चर्य उत्पन्न होता है, तुम मुझसे शीघ्र इसका कारण कहो ॥ ३७ ॥ हे भामिनि ! तुम जो कुछ कहती हो उससे मुझको संशय उत्पन्न होता है तुम्हारी प्रियसखीको उसके पिताने हैहयके हाथमें समर्पण करनेके निमित्त स्थिर कर रखा है ॥३८॥ मेरा ही नाम हैहय और मैं ही हैहय नामक राजा हूं इस समय पृथ्वीमें हैहय नामक दूसरा कोई राजा विद्यमान नहीं है तुम्हारी वह सुलोचना प्रियसखी क्या मेरे निमित्त ही कल्पित हुई है ॥ ३९ ॥ हे भामिनी ! तुम मेरा यह संशयजाल छुडाओ मैं उस राक्षसाधमको मारकर इसी स्थानमें तुम्हारी प्रियसखीको लाऊंगा इसमें संदेह नहीं ॥४०॥ हे सुव्रते ! यदि तुम जानती हो तो शीघ्र मुझको वह स्थान दिखाओ वह जो इतना दुःख पाती है । वह क्या उसके पितासे किसीने

त्वया च कथितं वाक्यं संदिग्धं भाति भामिनि ॥ हैहयार्थं कल्पिता सा पित्रेति मम सांप्रतम् ॥ ३८ ॥ हैहयो नाम राजाऽहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः ॥ मदर्थं कथिता सा किं सखी तव सुलोचना ॥३९॥ एतन्मे संशयं सुभ्रु च्छेत्तुमर्हसि भामिनि ॥ अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम् ॥ ४० ॥ स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते ॥ राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता ॥ ४१ ॥ यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् ॥ नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥ ४२ ॥ बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः ॥ असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम् ॥ ४३ ॥ त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान् ॥ सख्याः पंकजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम् ॥ ४४ ॥

न कहा ॥ ४१ ॥ यह जिसकी प्रिय कन्या है उनकी वह प्रिय कन्या हरण हुई है सो क्या वह नहीं जानते ? और इस राक्षसाधमके हाथसे उसको छुडानेके निमित्त क्या किसी प्रकारका उद्योग किया है ? ॥ ४२ ॥ अपनी कन्याको बंदी हुआ जानकर भी वह राजा किस प्रकार स्थिर हो रहे हैं ? अथवा वह राजा क्या उसके छुडानेमें असमर्थ हैं ? तुम शीघ्र इन सब विषयोंका कारण कहो ॥ ४३ ॥ हे सरोजाक्षि ! तुमने अपनी प्रियसखीके अलौकिक गुणकीर्त्तन करके मेरा मन हरण किया है और मुझको कामदेवके अत्यंत वशीभूत किया है॥ ४४ ॥

हाय ! मैं कब उस मनोरमा कान्ताको अत्यंत संकटसे छुडाकर प्रीतिप्रफुल्लित नेत्रोंसे देखूंगा ! हे प्रियसखि ! मेरा हृदय इस प्रकार उच्च मनोरथमें आरोपित किया ॥४५॥ हे सुभाषिणि ! मैं किस उपायसे उस अत्यंत दुर्गमपुरीमें जासकूंगा ! अथवा तुम किस प्रकार उस संकट स्थानसे इस स्थानमें आई वह मुझसे कहो॥४६॥यशोवतीने कहा हे राजन् ! मैंने बाल्यावस्थाके समय एक सिद्ध ब्राह्मणके बीज और ध्यानके सहित भगवतीका मंत्र प्राप्त किया है॥४७॥उस स्थानमें अवस्थित होकर मनमें विचार किया कि;इस समय मैं सर्व्वदा उन्हीं चण्डविक्रमा शीघ्र मनोरथकी देनेवाली चण्डि

कदा पश्यामि तां कांतां मोचयित्वाऽतिसंकटात् ॥ इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥ ४५ ॥ ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे ॥ कथं त्वमागता तस्मात्संकटादत्र तद्वद ॥ ४६ ॥ यशोवत्युवाच ॥ बालभावान्मया मंत्रो भगवत्या विशांपते ॥ प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥ ४७ ॥ तत्रावस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् ॥ आराधयामि सततं चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ ४८ ॥ सा देवी सेविता कामं बंधमोक्षं करिष्यति ॥ भक्तानुकंपिनी शक्तिः समर्था सर्वसाधने ॥ ४९ ॥ या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः ॥ कल्पांते संहरत्येव निराकारा निराश्रया ॥ ५० ॥ इति संचिंत्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ध्यात्वा रक्तांबरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि ॥ ५१ ॥ संस्मृत्य मनसा रूपं मंत्रजाप्यपराऽभवम् ॥ उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना ॥ ५२ ॥

काकी आराधना करूं॥४८॥ भक्तपर कृपा करनेवाली उन्हीं सर्व्वार्थ साधिनी शक्तिकी आराधना करनेसे अवश्य ही वह मेरी प्रियसखीको बंधनसे छुडावेंगी ॥ ४९ ॥ वही देवी भगवती स्वरूपसे निराकार होकर भी और किसीका आश्रय ग्रहण न करके केवल अपनी शक्तिसे ही इस विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पालन तथा कल्पांतकालमें संहार करती है ॥ ५० ॥ मनमें इस प्रकार चिंताकर उन्हीं कल्याण स्वरूपिणी रक्तवसना और लोहितलोचना विश्वेश्वरी देवीका ध्यान और मनही मनमें उनके रूपको स्मरणकर मंत्र जपने लगी ॥ ५१ ॥ मेरे केवल एकमास समाधि

अवलम्बन पूर्वक देवीकी उपासना करनेपर चण्डिका देवी मेरे भक्ति भावसे ॥ ५२ ॥ स्वप्नमें प्रगट हो अमृत वचनद्वारा मुझसे कहने लगी तू सो रही है ॥ ५३ ॥ उठ शीघ्र उस मनोहर गंगाके तटपर जा वह शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबाहु एकवीर राजा श्रेष्ठ हैहय उस स्थानमें आवेंगे महामुनीश्वर दत्तात्रेयने उनको महाविद्या नामक मेरा मंत्र दिया है ॥५४॥५५॥ राजा भी उस मंत्रद्वारा सदा भक्ति भावसे मेरी पूजा करते हैं उनका मन मुझमें ही अत्यंत आसक्त और सदा मेरी ही पूजामें निरत रहता है अधिक ॥ ५६ ॥ क्या वह राजा मत्परायण होकर सर्वजीवोंके

स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता ॥ मामाहामृतया वाचा किंसुप्ताऽसीति चंडिका ॥५३॥ उत्तिष्ठ याहि तरसा गंगातीरं मनोहरम् ॥ आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुंगवः ॥५४॥ एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ दत्तात्रेयेण मन्मंत्रो महाविद्याभिधः परः ॥५५॥ दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः ॥५६॥ मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः ॥ स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः ॥५७॥ मासुतो विरहंस्तत्र तव त्राता भविष्यति॥हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिर्नाम्॥५८॥एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः॥पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः ॥५९॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी प्रबुद्धाऽहं तदैव हि ॥ कथितं स्वप्नवृत्तांतं देव्याश्चाराधनं तथा ॥ ६० ॥ प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा ॥ विशेषेण च संतुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता ॥ ६१ ॥

अंतर्यामिरूपसे मेराही ध्यान करते हैं वही महाबुद्धिरमापुत्र गंगाके तटपर विहारार्थ आनकर तुम्हारा दुःख दूर करेंगे ॥ ५७ ॥ सर्वशास्त्रके जाननेवाले राजा एकवीर घोरसमरमें राक्षसोंको मार एकावलीको छुडावेंगे वह तुम्हारी रक्षा करेंगे॥५८॥ अन्तमें उन्होंने मुझसे कह दिया है कि तदनंतर उस सर्व सुलक्षण युक्त विद्वान् सुशोभन राजपुत्रको तुम्हें पतित्वमें वरण करना उचित है ॥ ५९ ॥ यह कह उनके अंतर्धान होनेपर मैं तत्काल जागरित हुई तदनंतर कमलनयना प्रियसखीसे उस स्वप्नका वृत्तान्त और देवीकी आराधनाका विषय कहा ॥ ६० ॥ यह सुनकर उसका

वदन प्रफुल्लित हुआ वह शुचिस्मिता एकावली अत्यंत सतुष्ट हो मुझसे भलीभांति कहने लगी ॥६१॥ हे प्रियसखि ! कार्यसिद्धिके निमित्त तुम शीघ्र जाओ वह सत्य भाषिणी भगवती अम्बिका देवी मुझको बंधनसे छुडावेंगी ॥ ६२ ॥ मेरी उस प्रणयिनी सखीने जब मुझको इस प्रकार आज्ञा दी तब मैं उसी स्वप्नके कारण उस स्थानसे निकलना उचित समझ शीघ्र निकली ॥ ६३ ॥ हे नृपनंदन ! महादेवीके प्रसादसे मुझको मार्ग ज्ञान और द्रुतगति प्राप्त हुई ॥६४॥ यह मैंने आपसे अपने दुःखका कारण वर्णन किया हे वीर ! आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं ?

गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये ॥ सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां मोक्षं विधास्यति ॥ ६२ ॥ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥ ६३ ॥ चालिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः ॥ मार्गं ज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ॥ कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनांभोजस्तामुवाच विशांपते ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ रंभोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तांतो विशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिंधुसुतासुतः ॥ २ ॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतंत्रं कृतं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥ ३ ॥

वह आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह प्रतापयुक्त कमलापुत्र हैहय यशोवतीका यह वचन सुन प्रसन्न हो उससे कहने लगे ॥१॥ हे रम्भोरु ! तुमने जो ललित वृत्तान्त पूंछा वह मैं कहता हूं सुनो मैं सिन्धुसुता लक्ष्मीका पुत्र हैहय हूं मैं पृथ्वीमें एकवीर-नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥ इससमय तुमने मेरा मन पराधीन कर दिया मैं तुम्हारी प्रियसखीके विरहमें अत्यन्त पीडित हो इस समय क्या करूं ? कहां जाऊं ॥३॥

तुमने पहले उसका अलौकिक रूप वर्णन किया उससे मन कामबाण द्वारा आहत हो विह्वल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त फिर तुमने उसका गुण वर्णन किया इससे मेरा मन एकवारही मोहित हुआ है अनन्तर जब तुमने फिर राक्षसका कहा हुआ वचन मुझसे कहा तब मेरे मनमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तुम्हारी प्रियसखी एकावलीने उस दुष्ट दानवके सम्मुख कहा था कि "मैंने पहले हैहयनामक राजाको वरण किया है उनके अतिरिक्त अन्य किसीको भी वरण नहीं करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय है" ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि ! तुमने मुझसे यह वचन कहकर इस समय मुझको उसका भृत्य कर दिया हे सुकेशि ! इस समयमें तुम्हारा क्या कार्य साधन करूं सो मुझसे कहो ॥ ७ ॥ मैं

प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया ॥ तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥ ४ ॥ ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः ॥ यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः ॥ हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुना कृतः ॥ त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणि वाम् ॥ ७ ॥ स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥ ८ ॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा ॥ प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी ॥ ९ ॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि सांप्रतम् ॥ विवशां शोकसंतप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥ १० ॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् ॥ पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम् ॥ ११ ॥

उस दुरात्मा राक्षसका वासस्थान नहीं जानता मैं कभी उसकी पुरीमें नहीं गया हे सुलोचने ! तुम मुझको उस स्थानमें जानेका उपाय बतादो ॥८॥ क्योंकि तुम्हीं मुझको उस स्थानमें ले चलनेको समर्थ होगी, अतएव जिस स्थानमें तुम्हारी वह सर्वाङ्गसुन्दरी सखी वास करती है तुम शीघ्र उसी स्थानमें मुझको ले चलो ॥ ९ ॥ तुम्हारी प्रियसखी राजनन्दिनी अत्यन्त शोकसे अक्षम हुई है मैं उस दुराचारी राक्षसको मार शीघ्रही उसको छुड़ाऊंगा इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ हे कल्याणि ! मैं तुम्हारी प्रियसखीको छुड़ाकर तुम्हारी नगरीमें लेजाऊंगा और उसको

वदन प्रफुल्लित हुआ वह शुचिस्मिता एकावली अत्यंत सतुष्ट हो मुझसे भलीभांति कहने लगी ॥६१॥ हे प्रियसखि ! कार्यसिद्धिके निमित्त तुम शीघ्र जाओ वह सत्य भाषिणी भगवती अम्बिका देवी मुझको बंधनसे छुडावेंगी ॥ ६२ ॥ मेरी उस प्रणयिनी सखीने जब मुझको इस प्रकार आज्ञा दी तब मैं उसी स्वप्नके कारण उस स्थानसे निकलना उचित समझ शीघ्र निकली ॥ ६३ ॥ हे नृपनंदन ! महादेवीके प्रसादसे मुझको मार्ग ज्ञान और द्रुतगति प्राप्त हुई ॥६४॥ यह मैंने आपसे अपने दुःखका कारण वर्णन किया हे वीर ! आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं ?

गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये ॥ सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां मोक्षं विधास्यति ॥ ६२ ॥ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥ ६३ ॥ चालिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः ॥ मार्गे ज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ॥ कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनांभोजस्तामुवाच विशांपते ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ रंभोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तांतो विशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिंधुसुतासुतः ॥ २ ॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतंत्रं कृतं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥ ३ ॥

वह आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह प्रतापयुक्त कमलापुत्र हैहय यशोवतीका यह वचन सुन प्रसन्न हो उससे कहने लगे ॥१॥ हे रम्भोरु ! तुमने जो ललित वृत्तान्त पूंछा वह मैं कहता हूं सुनो मैं सिन्धुसुता लक्ष्मीका पुत्र हैहय हूं मैं पृथ्वीमें एकवीर-नामसे विख्यात हुआ हूं ॥ २ ॥ इससमय तुमने मेरा मन पराधीन कर दिया मैं तुम्हारी प्रियसखीके विरहमें अत्यन्त पीड़ित हो इस समय क्या करूं ? कहां जाऊं ॥३॥

तुमने पहले उसका अलौकिक रूप वर्णन किया उससे मन कामबाण द्वारा आहत हो विह्वल हुआ है ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त फिर तुमने उसका गुण वर्णन किया इससे मेरा मन एकबारही मोहित हुआ है अनन्तर जब तुमने फिर राक्षसका कहा हुआ वचन मुझसे कहा तब मेरे मनमें अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तुम्हारी प्रियसखी एकावलीने उस दुष्ट दानवके सम्मुख कहा था कि "मैंने पहले हैहयनामक राजाको वरण किया है उनके अतिरिक्त अन्य किसीको भी वरण नहीं करूंगी यही मेरा स्थिर निश्चय है" ॥ ६ ॥ हे सुन्दरि ! तुमने मुझसे यह वचन कहकर इस समय मुझको उसका भृत्य कर दिया हे सुकेशि ! इस समयमें तुम्हारा क्या कार्य साधन करूं सो मुझसे कहो ॥ ७ ॥ मैं

प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया ॥ तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥ ४ ॥ ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः ॥ यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः ॥ हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुना कृतः ॥ त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणि वाम् ॥ ७ ॥ स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥ ८ ॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा ॥ प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी ॥ ९ ॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि सांप्रतम् ॥ विवशां शोकसंततां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥ १० ॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् ॥ पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम् ॥ ११ ॥

उस दुरात्मा राक्षसका वासस्थान नहीं जानता मैं कभी उसकी पुरीमें नहीं गया हे सुलोचने ! तुम मुझको उस स्थानमें जानेका उपाय बतादो ॥८॥ क्योंकि तुम्हीं मुझको उस स्थानमें ले चलनेको समर्थ होगी, अतएव जिस स्थानमें तुम्हारी वह सर्वाङ्गसुन्दरी सखी वास करती है तुम शीघ्र उसी स्थानमें मुझको ले चलो ॥ ९ ॥ तुम्हारी प्रियसखी राजनन्दिनी अत्यन्त शोकसे विवश हुई है मैं उस दुराचारी राक्षसको मार शीघ्रही उसको छुड़ाऊंगा इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥ हे कल्याणि ! मैं तुम्हारी प्रियसखीको छुड़ाकर तुम्हारी नगरीमें लेजाऊंगा और उसको

उसके पिताके हाथमें समर्पण करूंगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर यह शत्रुनाशन राजा अपनी कन्याका विवाह कार्य सम्पादन करेंगे बोध होता है कि यही तुम्हारी इच्छा है हे प्रियंवदे ! मेरी भी इसी प्रकार वासना जानो ? ॥ १२ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस समय तुम्हारे उद्यमसे यह मनोरथ पूर्ण होगा तुम शीघ्र मुझको उसकी पुरी दिखाय मेरा पराक्रम देखो ॥ १३ ॥ हे चन्द्रानने ! तुम्हीं मेरा प्रिय कार्य साधनकरनेमें समर्थ होगी कारण कि बोध होता है जिससे मैं उस दुराचारी पराई स्त्रीके हरनेवाले राक्षसको मारनेमें समर्थ हूं तुम इसीप्रकारके कार्यका विधान करो ॥१४॥ इस समय तुम उस राक्षसकी दुर्गम पुरीका मार्ग दिखादो व्यासजीने कहा हे महाराज! यशोवती राजपुत्रका वह प्रियवचन

पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजा पुत्र्याः परंतप ॥ एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे ॥ १२ ॥ भविष्यति स संपूर्णः साधनेन तवाधुना ॥ दर्शयाऽशु पुरं यस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ १३ ॥ यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम् ॥ तथा कुरु प्रियं कर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि ॥१४॥ मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥१५॥ तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् ॥ मंत्रं गृहाण राजेंद्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम् ॥१६॥ दर्शयिष्यामि तस्याद्य पुरं राक्षसपालितम् ॥ सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह ॥१७॥ सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति ॥ कलाकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः ॥ १८ ॥ तस्मान्मंत्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह ॥ दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥

सुनकर आनंदित हुई ॥ १५ ॥ और आदर पूर्वक उस कमलापुत्र हैहय राजासे राक्षसकी पुरीमें जानेका उपाय कहने लगी हे राजेन्द्र ! आप भगवतीका सिद्धिप्रद मंत्र ग्रहण कीजिये ॥ १६ ॥ तो मैं अभी आपको उसकी वह राक्षसरक्षित पुरी दिखा दूं हे राजन् ! मेरे संग चलनेके निमित्त आप अपनी महती सेनाके सहित सुसज्जित हूजिये ॥ १७ ॥ कारण कि उस स्थानमें जाते ही आपको उसके सहित युद्ध करना होगा कालकेतु स्वयं महावीर और बलविक्रमशाली राक्षसगणोंसे परिवृत है ॥ १८ ॥ अतएव आप भगवतीका मंत्र ग्रहणकर मेरे

संग चलिये मैं आपको उस दुरात्माके पुरका मार्ग दिखाये देती हूं ॥ १९ ॥ आप उस पापाचारी राक्षसाधमको मारकर मेरी प्रिय सखीको छुडाइये हैहय एकवीरने यशोवतीका वह वचन सुन प्राणिगणोंके हितकर ज्ञानिप्रवर दैवयोगसे आये हुए महर्षि दत्तात्रेयके निकटसे त्रिलोकी तिलक नामक योगेश्वरीका महामंत्र ग्रहण किया ॥ २० ॥ २१ ॥ तब नृपवरको उस मंत्रके प्रभावसे संपूर्ण विषय जाननेकी और अप्रतिहत प्रभावसे सर्वत्र जानेकी शक्ति प्राप्तहुई तब उसकेसहित उस दुर्गम पुरको चले॥२२॥ अनन्तर हैहय राजा यशोवतीके सहित बडी सेनासे युक्तहो पन्नगगणोंसे युक्त

हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाऽऽशु सखीं मम ॥ श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मंत्रं जग्राह सत्वरः ॥ २० ॥ दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ॥ योगेश्वरीमहामंत्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥ २१ ॥ तेन सर्वज्ञता जाता सर्वांतश्चारिता तथा ॥ तया सह जगामाऽऽशु पुरं तस्य सुदुर्गमम् ॥ २२ ॥ रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः ॥ यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः ॥ २३ ॥ तमायांतं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः ॥ क्रोशंतोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥ २४ ॥ तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम् ॥ एकावलीसमीपस्थं कुर्वंतं विनयान्बहून् ॥ २५ ॥ दूता ऊचुः ॥ राजन्यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी ॥ आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता ॥ २६ ॥ जयंतो वा महाराज कार्त्तिकेयोऽथ वा नु किम् ॥ आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥ २७ ॥

पातालपुरीके समान घोरतर राक्षस सैन्यसे रक्षित उस राक्षसकी दुर्गम पुरीमें शीघ्रतासे गये ॥२३॥ तब राक्षस राजके दूतगण राजाको आते हुए देख भयातुर हुए और चीत्कार करते करते शीघ्रतासे कालकेतुके निकट गये ॥ २४ ॥ कालकेतु काम बाणसे मोहित हो एकावलीके समीप बैठा हुआ अनेक प्रकारके विनययुक्त वचन कर रहा था ॥ २५ ॥ दूतगणोंने इसी समय सहसा आनकर उससे कहा हे राजन् ! इस कामिनीकी सखी यशोवती एक ससैन्य राजकुमारके सहित इस स्थानमें आती है ॥ २६ ॥ हे महाराज ! वह राजकुमार जयन्त है अथवा कार्त्तिकेय है यह

मैं निश्चय नहीं कह सकता जो हो वह अपने वाहनके सहित बलोन्मत्त हो आते हैं ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! संग्राम उपस्थित हुआ है, इस समय आप भलीभांति बलवान् हो देव पुत्रके सहित युद्ध कीजिये अथवा इस कमलेक्षणा कामिनीका त्याग कीजिये ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस स्थानसे तीन योजन पर्य्यन्त वह सैन्य स्थित है इस समय आप सज्जित हूजिये शीघ्र दुन्दुभिके घोषसे युद्धकी घोषणा कीजिये ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! दूतोंका यह वचन सुन कालकेतुने क्रोधसे मूर्छित हो अनेक बलवान् शस्त्रधारी राक्षसोंको भेजा ॥ ३० ॥ और उसने कहा कि हे राक्षसगण ! तुम शस्त्रपाणि हो शीघ्र उनके सन्मुख होओ, कालकेतुने उनको इस प्रकार आज्ञा देकर विनयपूर्वक ॥ ३१ ॥ पास बैठी हुई

संयतो भव राजेंद्र संग्रामः समुपस्थितः ॥ देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज्य वा कमलेक्षणाम् । इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः॥ सज्जो भव महीपाल दुंदुभिं घोषयाऽऽशु वै ॥२९॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्च्छितः ॥ राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून् ॥ ३० ॥ गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः ॥ तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः ॥ ३१ ॥ एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम् ॥ कोऽयमायाति तन्वंगि पिता ते वा परः पुमान् ॥३२॥ त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि ॥ पिता ते यदि संप्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः ॥ ३३ ॥ ज्ञात्वा ते पितरं सम्यक्संग्रामं न करोम्यहम् ॥ आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः ॥ ३४ ॥ करोमि तस्य चाऽऽतिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा ॥ अन्यश्चेद्यदि संप्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

अत्यन्त दुःखित एकावलीसे पूंछा हे कृशोदरि ! यह कौन आता है ? तुम्हारा पिता अथवा अन्य कोई पुरुष तुमको छुड़ानेके निमित्त सैन्यगणोंके सहित आता है ॥ ३२ ॥ यह तुम मुझसे सत्य कहो यदि तुम्हारे विरहसे कातर हो तुमको लेनेको तुम्हारे पिता आते हैं ॥ ३३ ॥ यह यदि मैं भलीभांति जानलूं तो मैं उनके संग संग्राममें प्रवृत्त न हूंगा बरन् उनको घरमें लाय उत्तम उत्तम अश्वरत्न और वस्त्रादिसे उनकी पूजा करूंगा ॥ ३४ ॥ और गृहमें आनेपर यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार करूंगा और यदि अन्य कोई पुरुष आता है तो शाणित शरसे उसका प्राण

संहार करूंगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम निश्चय जानो कि अन्य कोई जो तुमको छुडानेको आता है तो मरनेके निमित्त सर्व्वसंहारक कालने उसको मेरे निकट लाकर उपस्थित किया है अतएव हे विशालाक्षि ! मुझको महाबलवान् और दुर्द्धर्ष कालरूप न जानकर कौन मंदबुद्धि पुरुष आता है सो तुम मुझसे कहो ॥३६॥ एलावलीने कहा हे महाभाग ! यह कौन पुरुष शीघ्र वेगसे इस स्थानमें आता है वह मैं नहीं जानती हे महाराज ! मैं आपके बंधनमें रहकर उसको किस प्रकार जान सकती हूं ? ॥ ३७ ॥ किंतु तो भी यह पुरुष मेरा पिता अथवा भ्राता नहीं है अन्य कोई महाबल पुरुष होगा ॥३८॥ वह किस कारण इस स्थानमें आता है वह मैं निश्चय नहीं जानती दैत्यने कहा हमारे

आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना ॥ तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मंदधीः ॥३६॥ अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ॥ एकावल्युवाच ॥ जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः ॥ ३७ ॥ न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बंधने ॥ नाऽयं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥ ३८ ॥ किमर्थमिह चायाति नाऽहं वेद विनिश्चयम् ॥ दैत्य उवाच ॥ एवं वदंत्यमी दूता वयस्या ते यशोवती ॥ ३९ ॥ समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा ॥ क्व गता सा सखी कांते विदग्धा कार्यनिश्चये ॥ ४० ॥ नाऽन्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे दूतास्तत्राऽन्ये वै समागताः ॥४१॥ ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ॥ किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्य मागतम् ॥४२॥

दूतगण इस प्रकार कहते हैं कि तुम्हारी वयस्या सखी यशोवती ॥ ३९ ॥ उस वीरको संग लिये अत्यंत उद्यमके सहित इस स्थानमें आती है चतुर कार्य्यमें निपुण तुम्हारी वह प्रियसखी इस समय कहां गई है॥४०॥हे कमलनयने! मेरे विरुद्धतासे युद्ध करनेमें समर्थ हो इस त्रिभुवनमें मेरा इस प्रकार कोई शत्रु नहीं है व्यासजीने कहा हे राजन् ! इसी समयमें अन्य अन्य दूत भीत और त्वरान्वित हो उसी स्थानमें उपस्थित हुए॥४१॥ और घरमें बैठे कालकेतुसे कहने लगे हे महाराज ! नगरके समीप सेना आगई है आप इस समय भी किस कारण निश्चिंत और स्थिर घरमें बैठे

हैं ॥ ४२ ॥ शीघ्र महती सेनाको संग लेकर नगरीसे निकलिये तब महाबल कालकेतु उनका यह वचन सुन ॥ ४३ ॥ रथपर चढ़ शीघ्र अपनी नगरीसे निकला इधर मनोरमा कामिनीके विरहसे व्याकुल हैहयराजा भी घोडेपर चढ़ सहसा उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुए तब उस स्थानमें दोनोंका घोर वृत्र इंद्रके समान संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ दोनोंही परस्परके ऊपर तीक्ष्ण संपूर्ण अस्त्र शस्त्र निक्षेप करने लगे उससे दिङ्मण्डल प्रदीप्त हो उठा तब भीरुगणोंको भयंकर घोर युद्ध होनेमें ॥ ४६ ॥ सिंधुजाके पुत्र हैहयने भयंकर गदाद्वारा दैत्य राजपर आघात किया अनंतर उस दैत्यपतिने वज्रसे आहत पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरकर प्राण त्याग किया ॥ ४७ ॥ तब संपूर्ण राक्षस

निर्गच्छ नगरात्तूर्ण सैन्येन महतावृतः ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः॥४३॥ रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद्बहिः ॥ एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान् ॥४४॥ आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः॥युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव॥४५॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥ वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥४६॥ गदया ताडयामास दैत्यं सिंधुसुतासुतः ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाऽचलः ॥ ४७ ॥ पलायित्वा गतः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः ॥ यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा ॥४८॥ उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम् ॥ एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः ॥४९॥ एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ स्कंधावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः ॥ ५० ॥ दर्शनं कांक्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव ॥ पश्य तं कुटिलापांगि मनोभवसमं नृपम् ॥ ५१ ॥

भीत हो चारों ओरको भागनेलगे तदनंतर यशोवती अत्यंत प्रसन्न चित्त हो अतिवेगसे एकावलीके निकट जाय ॥ ४८ ॥ आश्चर्ययुक्त प्रियसखीसे मधुर वचन कहने लगी हे सखि ! हे सखि ! आओ आओ वह दानव मर गया ॥ ४९ ॥ नृपतिपुत्र वीरवर एकवीरने दारुण युद्धकर दैत्यपतिको मारा है वह राजा श्रमातुर हो इस समय सैन्यमें स्थिति करते हैं ॥ ५० ॥ उन्होंने पहले मुझसे तुम्हारा समस्त रूप और गुण श्रवण किया है इससे अब वह तुम्हारा दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं हे कुटिलनयने ! इस समय तुम उस कामदेवके समान महीपालको देख-

कर नेत्र और मन चारितार्थ करो ॥ ५१ ॥ मैंने पहिले गंगाकेतटपर उनसे तुम्हारा रूपगुणादि वर्णन किया है, इसकारण तुम्हारे प्रति उनको अनुराग उत्पन्न हुआ है इस कारण अब वह विरहातुर हो ॥ ५२ ॥ तुम्हारा मनोहर रूप देखनेकी इच्छा करते हैं एकावलीने प्रियसखीका यह वचन सुन उनके निकट जानेके निमित्त मनमें निश्चय किया ॥ ५३ ॥ किन्तु कुमारी सुलभ भयसे भीत और लज्जित होनेलगी उसने जाना कि मैं कुमारी हूं किस प्रकार उस नृपनन्दनका मुख देखूं ॥ ५४ ॥ वह कामार्त्त हो मुझको पकडेंगे इस प्रकार चिन्तामें आकुल हो वह मलिनमूर्ति और मलिनाम्बर धारिणी नृपनन्दिनी एकावली यशोवतीके सहित नरयान पर चढकर स्कन्धावार (छावनी) में गई उस विशालाक्षी

कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याऽग्रे जाह्नवीतटे ॥ पूर्णानुरागः संजातस्तेनाऽसौ विरहातुरः ॥५२॥ वांछति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनंदनः ॥ सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे ॥ ५३ ॥ लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारप्राप्तया तया ॥ कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥५४॥ स मां गृह्णाति कामार्त इति चिंताकुला सती ॥ यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ ॥५५॥ स्कंधावारेऽतिमलिना मलिनांबरधारिणी॥तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत्॥५६॥दर्शनं देहि तन्वंगि तृषिते नयने मम॥ कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम् ॥५७॥ नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती ॥ राजपुत्रपिताऽप्यस्यास्त्वामेनां दातुमिच्छति ॥ ५८ ॥ एषाऽपि त्वद्वशा नूनं भविता संगमस्तव ॥ कालं प्रतीक्ष्य राजेंद्र नयैनां पितुरंतिकम् ॥ ५९ ॥

राजकन्याको आती हुई देख राजपुत्रने कहा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे दोनों नेत्र तुमको देखनेके लिये तृषित हो रहे हैं तुम दर्शन देकर मेरे नेत्र और मनको चारितार्थ करो नृपतिपुत्रको कामातुर और राजकुमारीको अत्यन्त लज्जित देखकर ॥५७॥ शिष्टाचारवेदिनी नीति ज्ञान सम्पन्न यशोवतीने राजपुत्रसे कहा हे नृपनन्दन ! प्रियसखीके पिताने इसको आपके हाथमें प्रदान करनेकी इच्छा की है ॥ ५८ ॥ और यह भी आपके वशीभुत है अतएव इसके सहित आपका मिलन अवश्यही होगा, हे राजेन्द्र ! आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये इसको पिताके निकट

ले चलिये ॥५९॥ वह इसकी विवाहविधि सम्पन्न कर इसे आपको प्रदान करेंगे यह स्थिर निश्चय जानिये राजा उसका वचन यथार्थ और निश्चय जानकर सैन्यके सहित ॥६०॥ उन दोनों कामिनियोंको एकावलीके पिताके घर लेगये एकावलीके पिता अपनी पुत्रीको आती हुई सुन प्रथम पुलकित हुए ॥६१॥ और मंत्रीगणोंके सहित परिवेष्टित हो शीघ्र उसके सम्मुख गये, राजा बहुत दिनोंके उपरान्त मलिनवसना कन्याको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए॥६२॥अनन्तर यशोवतीने राजासे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णनकिया तब राजा मंत्रीगणोंके सहित मिलित हो राजपुत्रको आदरपूर्वक घर ले आये॥६३॥और शुभदिनमें विधिपूर्वक उनके सहित एकावलीका विवाहकार्य सम्पादन किया तदनन्तर वसनभूषण

स विवाह विधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः॥स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥६०॥ समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम्॥राजपुत्रीं तथायातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः॥६१॥प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः ॥ बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनांबरा ॥ ६२ ॥ यशोवत्या तु वृत्तांतः कथितो विस्तरात्पुनः ॥ एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चादरात् ॥ ६३ ॥ पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम्॥ पारिबर्हं ततो दत्त्वा संपूज्य विधिवत्तदा ॥ ६४ ॥ पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम् ॥ एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥ ६५ ॥ गृहं प्राप्य बहून्भोगान्बुभुजे प्रियया समम् ॥ बभूव तस्या पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल ॥ ६६ ॥ तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ राजोवाच॥भगंस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम्॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम्॥१॥

रत्न अलंकार और गृहोपकरण इत्यादि अनेकसामग्री सम्भारदान और विधिपूर्वक पूजाकर ॥६४॥ पुत्रीको हैहयके संग भेज दिया राजाके मंत्रीनेभी नृपनन्दनके सहित अपनी नन्दिनीकी प्रणयक्रिया सम्पादनकर उनके संग भेजदिया इसप्रकार विवाहकार्य सम्पन्न होनेपर फिर सिंधुजापुत्र अत्यन्त आनंदित हो ॥ ६५ ॥ घर जाय प्रियाके सहित अनेकप्रकार सुखसम्भोगमें निरत हुए अनंतर एकावलीके गर्भसे हैहयराजाके कृतवीर्यनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६६ ॥ इस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य नामसे विख्यात है.हे महाराज ! यह मैंने आपसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका विवरण वर्णन किया ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् !

आपके मुखकमलसे निकला हुआ अमृतके समान दिव्यकथारूप मधुररस पान करके मेरी तृप्ति नहीं हुई १॥ आपने मुझसे हैहयवंशकी उत्पत्तिका विचित्र और विस्मयप्रद उपाख्यान विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ २ ॥ किंतु हे मुनिवर ! इस विषयमें मेरे हृदयमें एक परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है देखो कमलापति भगवान विष्णुने देवतागणोंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्के अधिनाथ तथा सृष्टिस्थिति प्रळयके कर्त्ता थे ॥ ३ ॥ वो भी उन पुरुषोत्तम भगवान् हरिनेभी अश्वरूप धारणकिया वह अच्युत और स्वतंत्र होकर भी किसकारण परतन्त्र हुए ॥ ४ ॥ आप इस समय

विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम ॥ हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥ २ ॥ परं कौतूहलं मेऽत्रय द्विष्णुः कमलापतिः ॥ देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यंतकारकः ॥ ३ ॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः ॥ परतंत्रः कथं जातः स्वतंत्रः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तांतमद्भुतम् ॥५॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि संदेहस्याऽस्य निर्णयम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात् ॥ ६ ॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः शांतः सर्वलोकप्रियः कविः ॥ ७ ॥ स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥ ८ ॥ बृहद्रथंतरादीनां साम्नां भेदाननेकशः ॥ गायन्गायत्रममृतं संप्राप्तोऽथ ममाऽऽश्रमम् ॥ ९ ॥

मेरे हृदयका यह संशय छेदन कीजिये हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव यह अद्भुत वृत्तान्त कहकर मेरा कौतूहल चारितार्थ कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! पहले मैंने मुनिसत्तम नारदसे इस संदेहके निराकरणविषयमें जिसप्रकार सुना था इस समय मैं आपसे उसीप्रकार कहता हूं सुनो ॥ ६ ॥ ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि नारद तपोबलसे सर्वत्रगामी सर्वज्ञ शान्तप्रकृति सर्वलोकोंके प्रिय और कवि हैं ॥ ७ ॥ एक समय वह श्रेष्ठ ऋषि स्वर तानयुक्त वीणा बजाते बजाते इस पृथ्वीपर भ्रमण करनेलगा ॥ ८ ॥ एकदिन बृहद्रथंतरादि [सामगानके मंत्र]

सामवेदके अनेकानेक विशेष विषय और मोक्षप्रद अमृतस्यन्दिनी गायत्री गान करतेकरते मेरे आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ हे राजन्! सरस्वती नदीके तटपर शम्यापास नामक ज्ञानप्रद सुखद अतिपवित्र एक महातीर्थ है वहां अनेक महर्षि वास करते हैं उसी स्थानमें मेरा आश्रम था ॥ १० ॥ तब मैं उन तेजःपुञ्ज कलेवर पितामहके पुत्र ऋषिवर नारदको आता हुआ देखकर उठा और विधिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्यादिसे पूजा की ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्य विधिके अनंतर उन अमिततेजा मुनिवरके आसनमें बैठनेपर फिर मैं भी उनके निकट बैठ गया ॥ १२ ॥ तदनंतर उन ज्ञानप्रद नारदको विश्रांत और शांत देखकर तुमने इस समय मुझसे जो पूछा मैंने भी उनसे इसी प्रकार पूंछा ॥१३॥ हे मुनिवर!

शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् ॥ निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा ॥ १० ॥ तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् ॥ अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्याऽऽसनस्थितस्य च ॥ उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा विश्रमिणं शांतं नारदं ज्ञानपारदम् ॥ तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने ॥ न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित् क्वचित् ॥ १४ ॥ द्वीपे जातो जनन्याहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि ॥ अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः ॥ १५ ॥ तपस्ततं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् ॥ पुत्रकामेन देवर्षे शंकरः समुपासितः ॥ १६ ॥ ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः ॥ पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥ १७ ॥

इस असारसंसारमें प्राणीगणोंको जन्मग्रहण करके क्या सुख है? मैं निश्चयकर कभी किसी स्थल तथा किसी विषयमें वह सुख नहीं देखता तथापि बडे बडे पुरुष भी किस कारण संसारमें मोहित हो कर्म करते हैं? ॥१४॥ देखो द्वीपमें मेरा जन्म हुआ और जन्मते ही जननीने मुझको परित्यागकिया मे वनमें निराश्रय होकर कर्मानुसार बढने लगा ॥१५॥ अनंतर पुत्रप्राप्तिकी कामनासे पर्वतमें स्थित हो बहुत वर्ष पर्य्यंत देवदेव महादेवकी उग्रतर तपस्या की ॥ १६ ॥ इससे ज्ञानीगणोंके अग्रगण्य शुकको पुत्ररूपसे प्राप्त हो उसके आदिसे सम्पूर्ण वेदोंका सार भाग

भलीभांति पाठ कराया॥ १७॥हे देवर्षे ! मेरा वह पुत्र आपकेही वचनसे ज्ञानको प्राप्त हुआ मेरे उसके विरहमें अत्यंत कातर हो रोनेपर भी मुझको छोड़ इस लोकसे लोकांतरको चला गया ॥ १८ ॥ तदनंतर पुत्रशोकसे अत्यंत संतप्त हो महागिरि सुमेरुको परित्याग किया तब मैं पुत्रशोकसे अत्यंत कातर और पुत्रके स्नेहसे अति कृशाङ्ग हो इस संसारको मिथ्या जानकर भी मायापाशमें बँध माताको स्मरण करते हुए कुरुजंगलमें उपस्थित हुआ ॥१९॥२०॥ तदनंतर राजा शांतनुने कल्याणिनी जननीका विवाह किया है यह सुनकर इस सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाय वास करने लगा ॥२१॥शान्तनु राजाके परलोक जानेपर साध्वी जननी दो पुत्रोंके सहित वास करने लगी तब भीष्म उनका प्रतिपालन करने लगे॥२२॥

स त्यक्त्वा मां गतः क्वाऽपि रुदंतं विहारतुरम् ॥ लोकाल्लोकांतरं साधो वचनात्तव बोधितः ॥ १८ ॥ ततोऽहं पुत्रसंतप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम् ॥ मातरं मनसा कृत्वा संप्राप्तः कुरु जांगलम् ॥१९॥ पुत्रस्नेहादतितरां कृशांगः शोकसंयुतः ॥ जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियंत्रितः ॥ २० ॥ ततो राज्ञावृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् ॥ स्थितोऽत्रैवाऽऽश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ २१ ॥ शंतनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता ॥ पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता ॥ २२ ॥ चित्रांगदः कृतो राजा गंगापुत्रेण धीमता ॥ काले सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः॥ २३ ॥ ततः सत्यवतीमाता निमग्ना शोकसागरे ॥ चित्रांगदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥२४॥ संप्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् ॥ आश्वासिता मयात्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥ २५ ॥ विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः ॥ कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्री राज्यविमुखेन ह ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् गंगापुत्रने चित्राङ्गदको राज्यपदमें स्थापित किया कुछ कालोपरांत वह कामदेवके समान मनोहर कांति भ्राता कालके ग्रासमें पतित हुए ॥२३॥ माता सत्यवती इस प्रकार पुत्रके शोकसागरमें निमग्न हो पुत्र चित्राङ्गदके निमित्त अत्यंत कातर हो रोदन करने लगी॥ २४॥हे महाराज ! तिस कालमें जननीको दुःखित जानकर उसके निकटउपस्थित हुआ अनंतर मैंने और भीष्मने उसको सान्त्वना प्रदान कर समझाया ॥ २५ ॥ भीष्मदेवने दारपरिग्रह और राजपालनसे विमुख हो कनिष्ठ भ्राता वीर्यवान् विचित्रवीर्यको राज्य प्रदान किया ॥ २६ ॥

हे राजन्! भीष्मने अपने वीर्यसे राजाओंको पराजित कर काशिराजकी दो कन्या लाय विचित्रवीर्यको प्रदान करनेके निमित्त सत्यवतीकोसमर्पण कीं ॥२७॥ अनंतर शुभ दिन और शुभलग्नमें भ्राता विचित्रवीर्यका विवाह होनेपर तब मैं सुखी हुआ ॥ २८ ॥ तदनंतर यक्ष्मारोगसे पीडित हो उस अपुत्रक युवा धनुर्द्धर भ्राता विचित्रवीर्यने भी प्राण परित्याग किया इससे माता अत्यंत दुःखित हो गई ॥ २९ ॥ पतिको मरा हुआ देख काशिराजकी कन्या उन दोनों बहिनोंने पतिव्रत धर्मकी रक्षामें तत्पर होकर अत्यंत दुःखित ॥ ३० ॥ और रोदन शील प्राप्त सती

काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन् ॥ भीष्मेणाऽऽनीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥ २७ ॥ सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः ॥ भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाऽहं सुखितोऽभवम् ॥२८॥ पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम् ॥ अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत् ॥ २९ ॥ काशिराज सुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा ॥ पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ संबभूवतुः ॥ ३० ॥ ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम् ॥ पतिना सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने ॥ ३१ ॥ पुत्रेण सह ते श्वश्रु स्वर्गे गत्वाऽथ नंदने ॥ सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते ॥ ३२ ॥ निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् ॥ स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥ ३३ ॥ गांगेयेन च मात्रा मे संमंत्र्य च परस्परम् ॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकं सर्वं संस्मृतोहं गजाह्वये ॥ ३४ ॥ स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् ॥ तरसैवाऽऽगतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३५ ॥ प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृतांजलिः ॥ तामब्रुवं सुतप्तांगीं पुत्रशोकेन कर्शिताम् ॥ ३६ ॥

देवीसे कहा हम दोनोंजनी अग्निमें पतिकी सहगामिनी होंगी॥३१॥हे देवि ! हम तुम्हारे पुत्रके संग स्वर्गमें जाय दोनों बहिनें मिल उनके सहित नन्दनवनमें विहार करेंगी ॥ ३२ ॥ जननीने स्नेह भावका आश्रय कर भीष्मकी अनुमति ग्रहणपूर्वक दोनों बहुओंको इस महाउद्यमसे निवारित किया ॥३३॥ विचित्रवीर्यकी सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक क्रिया सम्पादित होनेपर फिर भीष्मसे परामर्शकर जननीने हस्तिनानगरमें मुझको स्मरण किया ॥ ३४ ॥ स्मरण करते ही जननीके मनका भाव जान मैं शीघ्र हस्तिनानगरमें आया ॥ ३५ ॥ और मस्तक झुकाय उसके

चरणोंमें प्रणाम कर हाथ जोड उस पुत्ररूपी शोकानलसे सन्तप्त हुई मातासे कहा ॥३६॥ हे जननि ! मुझको मनही मनमें स्मरण करके क्यों बुलाया है ? तुमको इस समय अत्यन्त दुःखित हुआ देखता हूं मैं आपका दास हूं आज्ञा कीजिये तुम्हारा क्या कर्म सम्पादन करूं ॥ ३७ ॥ हे मातः ! आप ही मेरा परम तीर्थ और आपही मेरी परम देवता हैं मैं इस स्थानमें उपस्थित होकर अत्यंत उत्कण्ठित हो रहा हूं क्या आपका प्रिय कार्य है वह मुझसे कहो॥३८॥ व्यासजीने कहा हे मुनीश्वर ! मैं यह कहकर जब माताके सामने खड़ारहा तब उन्होंने समीप बैठे भीष्मकी ओर

मातस्त्वया किमाहूतो मनसाहं तपस्विनि ॥ आज्ञापय महत्कार्यं दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥३७॥ त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः पर ॥ आगतश्चिंतितश्चाऽत्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम् ॥३८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने ॥ तदा सा मामुवाचेदं पश्यंती भीष्ममंतिके ॥३९॥ पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा ॥ तेनाऽहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह ॥४०॥ तस्मात्त्वमद्य मेधाविन्मयाऽऽहूतः समाधिना ॥ गांगेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये ॥ ४१ ॥ कुलं स्थापय नष्टं त्वं शंतनोर्नामकारणात् ॥ रक्ष मां दुःखतः कृष्णवंशच्छेदोद्भवाद्द्रुतम् ॥ ४२ ॥ काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः ॥ साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषितम् ॥ ४३ ॥ ताभ्यां संगम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु ॥ रक्षस्व भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित् ॥ ४४ ॥

देखकर मुझसे कहा॥ ३९॥हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राता विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे पीड़ित हो कराल कालके ग्रासमेंपति हुए हैं इसी कारण वंश नष्ट होनेके भयसे मैं अत्यन्त दुःखितहो रही हूं॥४०॥ हे मेधाविन् ! इसी प्रयोजनकी सिद्धिकेनिमित्त गंगापुत्रकी अनुमति लेकर अब मैंने तुमको बुलाया है ॥ ४१ ॥ हे पराशरनन्दन ! शान्तनुके नामार्थ तुम प्रायः नष्ट हुआ वंश पुनर्वार स्थापन करो. हे व्यासदेव ! तुम शीघ्र मेरी वंशोच्छेदजनित दुःखसे रक्षा करो ॥ ४२ ॥ रूपयौवन सम्पन्न साधुशील काशिराजकी दोनों कन्या तुम्हारे कनिष्ठभ्राता वीचित्रवीर्यकी भार्या हैं ॥४३॥ हे महामते ! तुम

उनके सहित संगमकरके पुत्रोत्पादन पूर्वक भारत वंशकी रक्षा करो इससे तुमको कोई दोष स्पर्श नहीं करेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! माताके यह वचन सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हुआ और लज्जाकुलित चित्तसे विनयपूर्वक उनसे कहा ॥ ४५ ॥ हे मातः ! पराई स्त्री को स्पर्श करना अत्यन्त पापकर कर्म है, मैं धर्मका मार्ग भलीभाँति जानकर किस प्रकार यह कार्य आदरपूर्वक करूं? ॥४६॥ और भी देखो मह र्षिगण कहते हैं कि कनिष्ठ भ्राताकी भार्या कन्याके समान है, मैं सम्पूर्ण वेदशास्त्र अध्ययन करके किसप्रकार ऐसा व्यभिचार कर्म करनेमें समर्थ हूं ? ॥ ४७ ॥ अन्याय कर्मसे कुलकी रक्षा करना किसीके मतसे कर्त्तव्य नहीं हैं क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसारसागरसे पार होनेमें

व्यास उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिंतातुरो ह्यहम् ॥ लज्जयाऽकुलचित्तस्तामब्रुवं विनयानतः ॥ ४५ ॥ मातः पापा धिकं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥ ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात् ॥ ४६ ॥ तथा यवीयसोभ्रातुर्वधूः कन्या प्रकी र्तिता ॥ व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥ ४७ ॥ अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम् ॥ न तरंति हि संसारा त्पितरः पापकारिणः ॥४८॥ लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः ॥ स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम् ॥ ४९ ॥ पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमंतिके ॥ पुत्रशोकातितप्ता या वंशरक्षणकाम्यया ॥ ५० ॥ पाराशर्य न ते दोषो वचना न्मम पुत्रक ॥ गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥ ५१ ॥ कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः ॥ वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद ॥ ५२ ॥

समर्थ नहीं होते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष संपूर्णलोकोंका उपदेष्टा और पुराणोंका प्रवर्त्तक है वह समस्त जान सुनकर इस अत्यन्त अद्भुत कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त हो सकता है ? ॥ ४९ ॥ माता पुत्रशोकसे अत्यन्त सन्तप्त हुई थी इस कारण उन्होंने कुलके रक्षा करनेकी इच्छासे रोदन करते करते मेरे निकट आनकर पुनर्वार कहा ॥५०॥ हे पराशर पुत्र ! यदि तुम मेरे वचनके अनुवर्ती होकर कार्य करोगे तो तुमको कुछभी दोष नहीं होगा. हे पुत्र! गुरुजनोंके युक्तियुक्त वचन सदोष होनेपर भी न विचार कर ॥ ५१ ॥ शिष्टाचार प्रमाणसे कार्य सम्पादन करना

मनुष्यगणोंको अत्यन्त उचित है. अतएव हे पुत्र ! तुम मेरा वचन प्रतिपालन करके मेरे मानकी रक्षा करो इससे तुमको कुछ दोष नहीं होगा ॥ ५२ ॥ हे पुत्र ! तुम भलीभाँति विचार करके देखो कि तुम्हारी जननी अत्यन्त सन्तप्त और शोकसागरमें निमग्न हुई है अतएव कुलपुत्र उत्पादन करके उसको सुखी करना तुमको अवश्य उचित है ॥ ५३ ॥ मैं जननीका इस प्रकार कहना सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय विषयमें विशेषज्ञ गंगानन्दन भीष्म मुझसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे द्वैपायन ! तुम सर्वप्रकार निष्पाप हो अतएव इस विषयमें तुमको विचार करना उचित नहीं है तुम माताका वचन प्रतिपालन कर सुखपूर्वक विहार करो ॥ ५५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन और माताकी

पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् ॥ विशेषेण तु संतप्ता मग्नां शोकार्णवे सुत ॥ ५३ ॥ इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः ॥ मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये ॥ ५४ ॥ द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ ॥ मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम् ॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा ॥ निःशंकोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिञ्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥ अंबिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि ॥ मयि विमनसायां तु तापसे कुत्सिते भृशम् ॥५७॥ शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा ॥ अंधस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते ॥५८॥ द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः ॥ भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे ॥ ५९ ॥ मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह ॥ विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि ॥ ६० ॥

प्रार्थना सुन मैं निःशंकचित्तसे उस अत्यन्त घृणित कार्यमेंप्रवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥ अम्बिकाके ऋतुस्नान करनेपर मैं रात्रिकालके समय उसके सहवासमें प्रवृत्त हुआ, किन्तु उस युवतीने मेरा कुत्सित तापसरूप देखकर मुझसे अनुराग न किया ॥ ५७ ॥ तब मैंने उस नितम्बिनीको शाप दिया जब कि तुमने मेरे सहित प्रथम सहवासमें ही नेत्र बंदकरलिये अतएव तुम्हारा पुत्र अन्धा होकर जन्मग्रहण करेगा ॥५८॥ हे मुनिवर ! दूसरे दिन माता मुझसे निर्ज्जनमें पूछने लगी हे द्वैपायन ! काशिराजकी कन्याके उदरसे पुत्र उत्पन्न होगा ? ॥ ५९ ॥ तब मैंने लज्जासे

झुके हुए मुखद्वारा कहा हे मातः ! मेरेही शापसे वह पुत्र जन्मांध होगा ॥ ६० ॥ तब जननीने मुझसे कठोर वचनद्वारा भर्त्सनाकर कहा हे पुत्र ! अम्बिकाके पुत्र अन्ध होगा यह कहकर तुमने उसको किस कारण शाप दिया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! मेरे यह वचन सुन माता चकित होगई और पुत्रके अत्यन्त आतुर हो मुझसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भ्राताकी भार्या विधवा शोकसंयुक्त काशिराजकी कन्या अम्बालिका ॥ २ ॥ सर्व सुलक्षण सम्पन्न रूपयौवनशालिनी और सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित है तुम उसके सहित सहवास करके श्रेष्ठपुरुषोंके सम्मत उत्तम पुत्र

तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने॥कथं पुत्र त्वया शप्ता पुत्रस्तेंऽधो भविष्यति॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥ व्यास उवाच॥वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम्॥दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा ॥१॥ अंबालिका वधूर्धन्या काशिराजसुता सुत ॥ भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना रूपयौवनशालिनी ॥ तस्यां जनय संगं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसंमतम् ॥ ३ ॥ नांधो राजाऽधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् ॥ उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद ॥४॥ इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये ॥ यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने ॥५॥ एकांते शयनागारे प्राप्ता स मम सन्निधौ ॥ लज्जमाना सुकेशांता स्वश्वश्रूवचनात्तदा ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा मां जटिलं दांतं तापसं रसवर्जितम् ॥ सा स्वेदवदना जाता पांडुरा विमना भृशम् ॥ ७ ॥

उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ जन्मान्ध पुरुष राज्यका अधिकारी नहीं होता अतएव तुम मेरे वचनसे राजकन्यामें एकमनोहर पुत्र उत्पन्न करके मेरे मानकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे मुनिवर ! तिसकालमें माताके यह वचन सुन जबतक काशिराजकी कन्या अम्बालिका ऋतुमती न हो तब तक मैं हस्तिनापुरमें वासकरने लगा ॥ ५ ॥ अनन्तर यथासमय उपस्थित होनेपर कुटिलकेश राजकन्या सासकी आज्ञासे निर्ज्जन शयनागारमें मेरे समीप आय अत्यन्त लज्जान्वित हुई ॥ ६ ॥ मुझको जटिलतापस और रसवर्जित देखकर उसके मुखपर पसीना आगया देह उसकी पाण्डुवर्ण

और मन विरस होगया ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके समय पार्श्वमें बैठी हुई उस कामिनीको काँपता और पाण्डुवर्ण देखकर क्रोधयुक्त हो कहा ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम जब मुझको देखकर अपने सौन्दर्यके गर्वसे पाण्डुवर्ण हुई तब तुम्हारा पुत्र पाण्डुवर्ण होगा ॥ ९ ॥ यह कह उसी स्थानमें अम्बालिकाके संग रात्रि बिताई. इस प्रकार मैं उस कामिनीके संग रतिसम्भोगकर मातासे आज्ञा ले अपने स्थानको गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों राजकन्याओंने यथासमयमें अन्ध, और पाण्डुवर्ण दो पुत्र उत्पन्न किये अम्बिकाका पुत्र धृतराष्ट्र नामसे और अम्बालिकाका पुत्र

कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि संगताम् ॥ वेपमानां स्थितः पार्श्वे ह्यब्रुवं तामहं रुषा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पांडुवर्णा समावृता ॥ अतस्ते तनयः पांडुर्भविष्यति सुमध्यमे ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितोऽबालिकया युतः ॥ भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम् ॥ १० ॥ ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावंधपांडुरौ ॥ धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च प्रथितौ संबभूवतुः ॥११॥ माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ ॥ ततः संवत्सरस्यांते मामाहूय तदाब्रवीत् ॥ १२ ॥ द्वैपायनसुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ ॥ अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम् ॥ १३ ॥ तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा ॥ अंबिकां प्रार्थयामास सुतार्थं काल आगते ॥ १४ ॥ पुत्रि व्यासं समालिंग्य पुत्रमुत्पादयाऽद्भुतम् ॥ कुरु वंशस्य कर्तारं राज्यं योग्यं वरानने ॥ १५ ॥ वधूर्लज्जान्विता किंचिन्नोवाच वचनं तदा ॥ गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि ॥ १६ ॥

पाण्डुवर्ण होनेपर पाण्डु नामसे विख्यात हुआ ॥ ११ ॥ माता उन दोनों पुत्रोंको ऐसा देखकर विमन हुई तदनंतर संवत्सरके उपरान्त मुझको बुलाकर कहा ॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! यह दोनों पुत्र ऐसे राज्यके योग्य नहीं हैं अतएव मेरा प्रिय और मनोहर अन्य अब एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १३ ॥ मेरे उनकी बातमें सम्मत होनेपर फिर उन्होंने आनंदित हो यथा समय अम्बिकाकी प्रार्थना करके कहा ॥ १४ ॥ हे पुत्रि ! व्यासको आलिङ्गन करके अद्भुत गुणयुक्त कुरुराज वंशके योग्य कुलरक्षक एक पुत्र उत्पन्न करो ॥ १५ ॥ वधूने लज्जासे उस समय कुछ न

कहा मैंने माताकी आज्ञानुसार रात्रिकालके समय जब शयनागारमें गमन किया ॥ १६ ॥ तिस समय अम्बिकाने रूप यौवन सम्पन्न विचित्रवीर्यकी एक दासीको अनेक प्रकारके वसन भूषणोंसे भूषित करके मेरे समीप भेज दिया ॥ १७ ॥ वह हंसगामिनी सुकेशी दासी रक्तचन्दन और पुष्पमालासे विभूषित हो हावभाव सहित आनकर ॥ १८ ॥ मुझको पलँगपर बैठाय स्वयं प्रेम रसमें डूबकर बैठ गई. हे मुनिवर ! मैंने उसके भाव और विलाससे प्रसन्न होकर ॥ १९ ॥ रात्रिकालके समय प्रेमान्वित चित्तसे उसके संग अनेक क्रीडा की इसके उपरान्त प्रसन्न मनसे उसको वर देकर कहा ॥ २० ॥ हे सुभगे ! मेरे औरससे तुम्हारे सर्व सुलक्षण युक्त सुरूप सम्पूर्ण धर्मोंका जाननेवाला शान्त और सत्यवादी एक पुत्र

दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता ॥ प्रेषिताऽबिकया त्वत्र विचित्राभरणांबरा॥१७॥ चंदनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता ॥ आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी ॥१८॥ पर्यंके मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता ॥ प्रसन्नोऽहं तदा तस्याविलासेनाभवं मुने॥१९॥ रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मया भृशम् ॥ वरो दत्तः पुनस्तस्य प्रसन्नेन तु नारद॥२०॥सुभगे भविता पुत्रः सर्वल क्षणसंयुतः ॥ सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥ २१ ॥ स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाऽभवन् ॥ माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम ॥ २२ ॥ विस्मृतः शुकसंबंधी विरहः शोककारणम् ॥ दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं वीर्यवान् वीर्यसंमतान् ॥ २३ ॥ माया बलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः ॥ अरूपा च निरालंबा ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ २४ ॥

उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ अनंतर यथा समयमें उसके विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ परक्षेत्रमें इस प्रकार मुझसे तीन पुत्रकी उत्पत्ति होनेपर यह मेरे पुत्र हैं इस प्रकार जानकर मेरे मनमें मायाकी वृद्धि होने लगी ॥ २२ ॥ तब मैं उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान् और वीर संमत देखकर अपने शोकका एक मात्र कारण शुकविरह भूलगया ॥ २३ ॥ हे द्विजेन्द्र ! माया अत्यंत बलवती और अजितेंद्रिय पुरुषोंको अत्यंत कठिनतासे छोडने योग्य है यह माया आकार और अवलम्बनशून्य होनेपर भी ज्ञानीगणोंको मोहित करती है ॥ २४ ॥

माताके स्नेहमें बंध और पुत्रके प्रति आसक्त होकर मेरा मन वनमें भी शांतिलाभ न करसका ॥ २५ ॥ हे मुनिवर ! तब मेरा चित्त तराजूपर आरूढ़के समान अंदोलित होने लगा इससे मैं कभी हस्तिनामें और कभी सरस्वतीके तटमें वास करने लगा एक स्थानमें स्थिर होकर न रह सका ॥ २६ ॥ कभी कभी विचार द्वारा इस प्रकार ज्ञान मेरे मनमें प्रतिभात होने लगा कि,यह पुत्र किसके हैं ? यह स्नेह केवल मोहमात्र है अन्य कुछ नहीं है मेरे मरनेपर यह मेरे श्राद्धाधिकारी नहीं होंगे ॥ २७ ॥ यह पुत्र व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुए हैं यह मुझको क्या सुख देंगे ? हे मुनिवर ! इस प्रकार बलवती माया ही मेरे मनमें मोह विस्तार करती है ॥२८॥ इस संसारको मिथ्या जानकर भी मैं मोहान्धकूपमें पतित

मातरि स्नेहसंबद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम् ॥ न मे चित्तंवने शांतिमगान्मुनिवरोत्तम ॥२५॥ दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे ॥ पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः ॥ २६ ॥ कदाचिच्चिंतयञ्ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै ॥ केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे ॥ २७ ॥ व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल ॥ माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥ २८ ॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने ॥ इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः ॥ २९ ॥ राज्यं प्राप ततः पांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः ॥ तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥३०॥ कुंती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः ॥ शूरसेनसुता कुंती मद्रराजसुताऽपरा ॥ ३१ ॥ स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः ॥ पांडुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः ॥३२॥

हुआ हूं मैंने कभी कभी निर्जनमें समाहित चित्तसे इस विषयकी चिन्ता करके परिताप किया था ॥ २९ ॥ तदनन्तर भीष्मकी परामर्शसे बलवीर्ययुक्त पाण्डु राज्यको प्राप्त हुआ तब भी पुत्रकी समृद्धि देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ. हे मुनिवर ! यह भी उसी मायाका कार्य है ॥ ३० ॥ शूरसेन राजाकी कन्या कुन्ती और मद्रराजाकी कन्या माद्री यह दोनों स्वरूपा कामिनी पाण्डुकी भार्या हुई ॥ ३१ ॥ स्त्रीसंग करनेसे तुम्हारी मृत्यु होगी इस प्रकार विप्र शापसे दुःखको प्राप्त हो पाण्डु राज्य परित्यागकर दोनों भार्याओंके

संग वनको चलेगये ॥ ३२ ॥ उस पुत्र पाण्डुको वनमें वास करता हुआ सुन मेरे हृदयमें शोक उदय हुआ तब मैं दोनों भार्याओंके सहित अवस्थित उस पाण्डुके निकट जाय ॥३३॥ और उसको समझाकर फिर हस्तिनापुरमें आया और धृतराष्ट्रके संग कथोपकथन कर सरस्वतीके तटपर आय उपस्थित हुआ ॥ ३४ ॥ पाण्डुने बानप्रस्थाश्रममें उपस्थित होकर वहां धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनी कुमारोंसे पांच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये ॥ ३५ ॥ कुन्तीसे युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र क्रमानुसार धर्म वायु और इन्द्रके औरससे ॥३६॥ और माद्रीसे नकुल और सहदेव दोनों अश्विनीकुमारके औरससे उत्पन्न हुए अनन्तर किसी समय पाण्डु निर्जनमें स्थितरूप लावण्यवती

तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम् ॥ गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥ ३२ ॥ तमाश्वास्य वने पांडुम्पुनः प्राप्तो गजाह्वये ॥ धृतराष्ट्रं समाभाष्य हागमं ब्रह्मजातटे ॥३४॥ क्षेत्रजान्पंच पुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे ॥ धर्मतो वायुतः शक्रादश्विभ्यां पंच पांडवान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि ॥ कुंतीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः ॥३६॥ नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ ॥ कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिंग्य महीपतिः ॥ ३७ ॥ मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे ॥ माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥३८॥ स्थिता पुत्रयुता कुंती ज्वलिते जातवेदसि॥मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा ॥ ३९ ॥ दुःखितां प्रतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये ॥ समर्पिताऽथ भीष्माय विदुराय महात्मने ॥ ४० ॥ श्रुत्वाऽहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः ॥ भीष्मेण पालिताः पुत्राः पांडोरिति विचिंत्यते ॥ ४१ ॥

माद्रीको आलिङ्गनकर ॥ ३७ ॥ शापके कारण मृत्युको प्राप्त हुए तब वहांके वास करनेवाले मुनिगणोंने अग्निमें उनके देहका संस्कार किया चिताकी अग्नि प्रज्वलित होनेपर पतिव्रता माद्री पतिके संग उसमें प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ कुंतीने पुत्रोंका प्रतिपालन करनेके लिये निवारित हो चिताकी अग्निमें प्रवेश न किया तब मुनिगणने शूरसेनकी कन्यासे ॥३९॥ पुत्रोपत्ति हीन दुःखित कुंतीको संग ले हस्तिनामें जाय महात्मा भीष्म और विदुरको समर्पण किया ॥ ४० ॥ यह सुनकर मेरा मन पराये देहके निमित्त सुख दुःख सहित पीडित

होनें लगा बुद्धिमान् भीष्म और विदुर धृतराष्ट्र युधिष्ठिरादिकों परम प्रियतम पाण्डुके पुत्र जानकर परम प्रीतिसहित उनका प्रतिपालन करने लगे दुर्योधनादि धृतराष्ट्रके क्रूरमन निष्ठुरपुत्रगण ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ एकत्र हो पांचों पाण्डवोंके संग अद्भुतरूप विरोध करनें लगे द्रोणाचार्यके दैवात् वहां आनेपर भीष्मने उनका सन्मान करके ॥ ४३ ॥ कुरुपुत्रगणोंको पढानेके निमित्त हस्तिनापुरमें उनको वास कराया जिस समय कुन्तीने उत्पन्न होतेही बालक कर्णको त्याग दिया था ॥ ४४ ॥ उस नदीमें बहे जातेको लेकर सूतने पाल लिया था

विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता ॥ दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः॥४२॥ एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम्॥ द्रोणाचार्यस्तु संप्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः ॥४३॥ अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः ॥ कर्णः कुंत्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा ॥ ४४ ॥ सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह ॥ दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतमस्तथा ॥ ४५ ॥ परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु ॥ धृतराष्ट्रस्तु संचिंत्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च ॥ ४६ ॥ निवासं कल्पयामास पांडवानां महात्मनाम् ॥ विरोधशमनायैव नगरे वारणावते ॥ ४७ ॥ दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै ॥ कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरोचनम् ॥ ४८ ॥ श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पांडवान्पृथया युतान् ॥ पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहंव्यसनार्णवे ॥ ४९ ॥ शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम् ॥ दृष्ट्वा मयैकचक्रायां पांडवा दुःखकर्शिताः ॥ ५० ॥

कर्ण शूरगणोंमें अग्रगण्य होनेसे दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था ॥ ४५ ॥ क्रमानुसार भीम और दुर्योधनादिमें परस्पर विरोध हो गया धृतराष्ट्रने उन सम्पूर्ण पुत्रोंके क्लेशकी चिन्ता करके ॥ ४६ ॥ विरोधकी शांतिके निमित्त वारणावत् नगरमें पांडवोंका विनाशस्थान बना दिया ॥ ४७ ॥ दुर्योधननेविद्वेष बुद्धिके वशीभूत हो अपने सुहृद पुरोचनको भेजकर मनोहर जतुगृह बनवाया ॥ ४८ ॥ हे मुनिवर ! पृथाके सहित पांचों पांडवोंको जतुगृहमें दग्धहुआ सुन पुत्रभावसे मैं दुःखसागरमें निमग्न हुआ ॥४९॥ अत्यंत शोकातुर हो निर्ज्जन बनमें

दिनरात ढूंढकर एकचक्रानगरीमें दुःखसे दुःखित अत्यंत कृश और परिपीड़ित पाण्डवगणोंको देखा ॥ ५० ॥ मैंने उनके दर्शन लाभसे परितुष्ट हो उनको द्रुपदराजाकी नगरीमें शीघ्र भेजा ॥५१॥ उनके दुःखसे कातर होकर मृगचर्म पहनकर विप्रवेषसे जाय राजसभासे विनीतभावसे वास करनेलगा ॥ ५२ ॥ अर्जुनने पराक्रमप्रकाशपूर्वक लक्ष्यभेदकर द्रुपदराजाकी कन्या द्रौपदीको प्राप्त करनेपर माताकी आज्ञासे पांचों पांडवोंने उस मानिनी राजकन्यासे पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे मुनिवर ! मैं तिस समय उनका विवाह हुआ देख अत्यन्त आनंदित हुआ अनंतर पांडवगण पाञ्चालीके सहित फिर हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए ॥ ५४ ॥ तब धृतराष्ट्रने खांडवप्रस्थमें पांडवोंका वासस्थान नियत किया तदनंतर वसुदेवके

ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च ॥ प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं प्रति ॥५१॥ ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः ॥ मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा ॥५२॥ कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम् ॥ चक्रुर्विवाहं मानिन्या पंचैव मातृवाक्यतः ॥५३॥ दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा ॥ ततो नागाह्वये प्राप्ताः पांचालीसहिता मुने ॥५४॥ निवासं खांडवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम् ॥ पांडवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदे वसुतेन वै ॥५५॥ तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना ॥ राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम् ॥ दुर्योधनोऽतिसंतप्तो दुरोदरमथाकरोत् ॥५७॥ दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः ॥ हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता ॥ ५८ ॥ वने द्वादश वर्षाणि पांडवास्ते विवासिताः ॥ पांचालीसहितास्तेन दुखं मे जनितं भृशम् ॥ ५९ ॥

पुत्र ॥ ५५ ॥ विष्णु जिष्णुके संगमिलित हो अग्निको तृप्त किया उसके उपरांत पाण्डवगणोंको राजसूययज्ञका अनुष्ठान करता हुआ देखकर मैं अत्यंत आनंदित हुआ ॥ ५६ ॥ पांडवोंका विभव और शिल्पराज मयकी बनाई सभा देखकर दुर्योधनादि अत्यंत संतप्त हुए और अनर्थकर द्यूतक्रीडाका आरम्भ किया ॥ ५७ ॥ शकुनि छलद्यूतमें अत्यंत चतुर था, धर्मपुत्र अक्षक्रीडामें निपुण नहीं थे अतएव दुर्योधनने शकुनि द्वारा द्यूतक्रीडा कराय धर्मराजका सर्वस्व हर लिया और राजा द्रुपदकी कन्या याज्ञसेनीको राजसभामें अत्यंत अपमानित कर अति क्लेश

दिया था अनंतर पांचालीके सहित पांडवगण बारहवर्ष वनमें वास करनेके निमित्त चलेगये इससे मैं अत्यंतदुःखित हुआ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ हे मुनिवर ! मैं सनातनधर्म जानकर भी भ्रमवश इसप्रकार सुखदुःखात्मक संसारसागरमें निमग्न हुआ हूं ॥ ६० ॥ मैं कौन हूं ? यह सब पुत्र किसके हैं और कौन माता है अथवा सुख किस प्रकार है ? यह सब विचार कर मेरा मन दिनरात भ्रमण करता है ॥ ६१ ॥ हे मुनिवर ! मैं क्या करूं ? कहां जाऊं किसीसे मुझको संतोष प्राप्त नहीं होता मेरा मन मानो दोला [तराजू] में आरुढ होकर आंदोलित होता है कभी स्थिर नहीं होता ॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप मेरा सन्देह निवारण कीजिये जिससे मेरे मनका ज्वर दूर हो और जिससे

एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् ॥ निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ६० ॥ कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः ॥ येन मे हृदयं मोहाद्भ्रमतीति दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि संतोषो नाधिगच्छति ॥ दोलारूढं मनो मेऽत्र चंचलं न स्थिरं भवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे निवर्तय ॥ तथा कुरु यथाऽहं स्यां सुखितो विगतज्वरः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित् ॥ मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छंतं मोहकारणम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चयम् ॥ संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीवान् ॥ २ ॥

मैं सुखी होसकूं आप वही कीजिये ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरे इसप्रकार मोहका कारण पूँछनेपर मेरे इस प्रकार वचन सुन परमार्थतत्त्वके जाननेवाले महर्षि नारद कुछेक हास्यकर कहने लगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले हे पराशरतनय ! तुम सब पुराणोंको जानतेहो तब तुम मुझसे मोहका निश्चित कारण क्यों पूछते हो ? इस संसारमें मोहके अतिरिक्त कोई भी शरीरधारी जीव नहीं ॥ २ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवगण जनक तथा कपिलादिऋषिगण यह सभी मायासे परिवेष्टित हो संसारमार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ ३ ॥ मनुष्य मुझको ज्ञानी कहते हैं किंतु मैं भी साधारण प्राकृतमनुष्यके समान भ्रांत हूं अपने माया मोहका पहला वृत्तान्त निश्चित प्रकारसे कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ हे वासवीनन्दन! मैंने पहले भार्याके निमित्त अपने किये हुए मोहसे महादुःख अनुभव किया है ॥ ५ ॥ एक दिन मैं और पर्वतनामक देवर्षि दोनों मिलकर भारत नामक विख्यात अत्युत्तम भूमिखण्ड देखनेके निमित्त देवलोकसे मृत्युलोकमें आये ॥६॥ हम दोनों मिलकर पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते करते तीर्थ और परम पवित्र स्थान तथा मुनिगणोंके संपूर्ण मनोहर आश्रम देखते हुए

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा ॥ मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमंति भववर्त्मनि ॥ ३ ॥ ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रांतोऽहं सर्वलोकवत् ॥ शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥ दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम् ॥ स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत ॥ ५ ॥ एकदा पर्वतश्चाऽहं देवलोकान्महीतलम् ॥ प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं खंडमुत्तमम् ॥६॥ भ्रमंतौ सहितावुर्व्यां पश्यंतौ तीर्थमंडलम् ॥ पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥७॥ शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् ॥ चलितौ समये चेमं संमंत्र्य निश्चयेन वै ॥ ८ ॥ चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते ॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि न गोप्तव्या कदाचन ॥९॥ भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि ॥ यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥१०॥ इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ ॥ एकचित्तौ मुनी भूतौ विचरंतौ यथेच्छया ॥ ११ ॥

विचरण करने लगे ॥ ७ ॥ भ्रमण करनेको चलनेके पहलेही देवलोकमें हमने परामर्श करके निश्चयपूर्वक परस्पर नियम बंधन किया था कि ॥ ८ ॥ पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करनेके समय जिसकी जिसप्रकार चित्तकी वृत्तिका उदय हो अच्छा हो अथवा बुरा हो वह उसको कभी न छिपावे ॥ ९ ॥ भोजनकी इच्छा धन प्राप्त करनेकी इच्छा अथवा रमणकी इच्छा हो जिसके मनमें जिस प्रकारके भावका उदय हो वह उसको प्रकाश करके कहैं ॥ १० ॥ हमदोनों इस प्रकार नियम कर एकांत चित्तसे मुनिवरोंके आचरणमें स्थित हो इच्छानुसार भूलोकभ्रम-

णमें प्रवृत्त हुए ॥ ११ ॥ इस प्रकार पृथ्वीमें भ्रमण करते करते ग्रीष्मका अन्त होनेपर वर्षाकाल आगया हम सञ्जय नामक राजाके मनोहरपुरमें उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ राजाने भक्तिसहित हमारा अत्यन्त सन्मान करके हमारी पूजा की तब हमने चार मास पर्यंत उन महात्माके गृहमें वास किया ॥ १३ ॥ वर्षाके चार महीनोंमें समस्त मार्ग सदाही अत्यंत दुर्गम रहते हैं अतएव इस समयमें एक स्थानपरही वास करना बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है ॥ १४ ॥ ब्राह्मणगण आठ महीने कार्यवश सदाही प्रवास करें सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुष

एवं भ्रमंतौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मांते समुपागते ॥ संजयस्य पुरं रम्यं संप्राप्तौ नृपतेः पुनः ॥ १२ ॥ तेन संपूजितौ भक्त्या राज्ञा संमानितौ भृशम् ॥ स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥ १३ ॥ वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा ॥ तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः ॥ १४ ॥ अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद् द्विजः ॥ वर्षाकाले न गंतव्यं प्रवासे सुखमिच्छता ॥ १५ ॥इति संचिंत्य मनसा संजयस्य गृहे तदा ॥ संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना ॥ १६ ॥ दमयंतीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः ॥ आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुंदरी भृशम् ॥ १७॥ विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्रीकृतोद्यमा॥ सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि ॥ १८॥ स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम् ॥ मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा ॥ १९ ॥ मनोऽभिलषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ॥ व्यजनासनशय्यादीन्वांछितानप्यकल्पयत् ॥ २० ॥

वर्षाकालके समय परदेशको न जायँ ॥ १५ ॥ यह सब विचारकर हम दोनों जनोंने वहां सञ्जय राजाके गृहमें वास किया ॥ १६ ॥ उन महीपतिके दमयन्ती नामक सुदती और परमरूपवती एक कन्या थी राजाने उसको हमारी सेवा करनेके निमित्त नियुक्त कर दिया ॥ १७ ॥ वह विशालनयना विवेकवती राजपुत्री भलीभांति उद्यमशील थी वह दिनरात हम दोनोंकी सेवा करने लगी ॥ १८ ॥ यथा समयमें स्नानके लिये जल स्वच्छ अत्युत्तम भोजन ताम्बूलादि जो कुछ इष्ट वस्तु हैं वह उन सबको देने लगी ॥ १९ ॥ वह राजकन्या

व्यजन आसन और शय्या इत्यादि जो कुछ वांछित द्रव्य है वह सब हाजिर प्रस्तुत कर रखती ॥ २० ॥ इस प्रकार राजकन्या हमारी सेवा करने लगी मैं भी वेद अध्ययन और वेदोक्त व्रत कार्यमें निरत रहता ॥ २१ ॥ हे द्वैपायन ! मैं तिसि समय करमें वीणा धारण कर उत्तम उत्तम स्वर निकालकर कर्णरसायन मनोहर सामगायन करने लगा ॥ २२ ॥ गीतिरसज्ञा राजकन्या यह मनका मोहित करनेवाला सामगान सुनकर मुझमें अनुरागिणी और प्रीतिमती होने लगी ॥ २३ ॥ मेरे प्रति राजकन्याका अनुराग दिन दिन बढने लगा उसको अपने प्रति प्रीतियुक्त हुआ देखकर उस राजकन्यामें मुझको भी मोह उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ इस प्रकार राजकन्या मुझमें रतिरसयुक्त

एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल ॥ वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ ॥२१॥ अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम् ॥ गायत्रं साम सुस्वादमगां कर्णरसायनम् ॥२२॥ राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम् ॥ बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा ॥ २३ ॥ दिनेदिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः ॥ ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम् ॥ २४ ॥ मम तस्य च सा कन्याभोजनादिषु कर्हिचित् ॥ अकरोदंतरं किंचित्सेवाभेदं रसान्विता ॥ २५ ॥ स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम् ॥ दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत् ॥ २६ ॥ शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थं पर्यकल्पयत् ॥ प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥ २७ ॥ विलोकयति मां प्रेम्णा सुंदरी न च पर्वतम् ॥ ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥ २८ ॥

होकर मेरे और पर्वतके भोजनादि विषयमें कुछ कुछ प्रभेद करके सेवाका वैलक्षण्य करने लगी ॥ २५ ॥ मुझको स्नान करनेके लिये उष्णजल और पर्वतको शीतल जल भोजनके लिये मुझको उत्तम दधि और पर्वतको तक्र अर्थात् मठा ॥ २६ ॥ शयन करनेके लिये मुझको सुविमल शुभ्र शय्या, पर्वतको मलिन बिछौना प्रदान करने लगी, इस प्रकार राजकन्या परम प्रीतिसहित मेरी सेवा करने लगी किंतु पर्वतकी इस प्रकार सेवा नहीं की ॥ २७ ॥ वह सुन्दरी मुझको प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगी किंतु पर्वतको इस प्रकार नहीं

देखती पर्वत राजकन्याका इस प्रकार प्रेमकारण देखकर ॥ २८ ॥ आश्चर्य युक्त हो यह कथा हुआ इस प्रकार मनमें चिंता करने लगा, अनंतर निर्जनमें मुझसे पूँछा हे नारद ! तुम भलीभांति संपूर्ण विवरण मुझसे कहो ॥ २९ ॥ राजकन्या प्रीतिमती होकर तुममें अत्यंत प्रेमप्रकाश करती है और स्नेह युक्त भक्ष्य भोज्य देती है ॥ ३० ॥ किंतु मुझसे इस प्रकार नहीं करती इस प्रकार सेवाका प्रभेद देखकर मेरे मनमें संदेह होता है. बोध होता है कि, सञ्जय राजाकी कन्या तुमको पति करनेके निमित्त भलीभांति इच्छा करती है ॥ ३१ ॥ तुम्हारे भी मनका भाव

मनसा चिंतयामास किमेतदिति विस्मितः ॥ पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा ॥ २९ ॥ राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् ॥ ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समंततः ॥ ३० ॥ न तथा मयि भेदोऽत्र संदेहं जनयत्यसौ ॥ मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथा संजयात्मजा ॥ ३१ ॥ तवाऽपि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम् ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम् ॥ ३२ ॥ सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने ॥ स्वर्गतः समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना ॥ ३३ ॥ नारद उवाच ॥ पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा ॥ तदाऽहं ह्रीसमाक्रांतः संजातश्चाब्रुवं पुनः ॥ ३४ ॥ पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता ॥ ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः ॥ ३५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः ॥ मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार है मैंने लक्षण द्वारा जान लिया. नेत्र और मुखके विकारसे प्रीतिका लक्षण जाना जाता है ॥३२॥ जो हो हे मुनिवर ! तुम मुझसे सत्य कहो कभी झूंठ नहीं कहना हमने स्वर्गसे निकलनेके पहलेही जो नियम किया है उसको स्मरण कर सत्य कहो ॥ ३३ ॥ नारदजीने कहा पर्वत जब मुझसे हठात् इस प्रकार कारण पूंछने लगा तब मैंने अत्यंत लज्जित होकर कहा ॥ ३४ ॥ हे पर्वत ! यह विशालाक्षी राजकन्या मुझको पति करनेके निमित्त उद्यत हुई है मेरे भी मनका भाव राजकन्यामें भलीभाँति बद्ध हुआ है ॥ ३५ ॥ पर्वत मेरा यह वचन सुनकर

अत्यन्त कुपित हुआ और धिक् नारद धिक् नारद यह वचन वारंवार कहने लगा ॥ ३६ ॥ तुमने पहले अनेक शपथ करके मुझको छला है अतएव हे मित्रद्रोहिन् ! मेरे शापसे तुम्हारा वानरके समान मुख हो॥ ३७ ॥ महात्मा पर्वतने कुपित होकर इस प्रकार शाप दिया तो मेरा मुख तत्काल वानरके समान कुटिल और विकृताकार हो गया ॥ ३८ ॥ मैंने भगिनीका पुत्र जानकर भी उसको क्षमा न किया कोपान्वित होकर शाप दिया कि तेरी भी स्वर्गलोकमें गति नहीं होगी॥ ३९ ॥ हे पर्वत ! अल्प अपराधसे ही तने मुझको शाप दिया है इससे तेरी बुद्धि

प्रथमं शपथान्कृत्वा वंचितोऽहं त्वया यतः ॥ भव वानरवक्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रध्रुक्॥२७॥इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना ॥ सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा ॥२८॥ मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते ॥ सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल ॥ २९ ॥ स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत ॥ तस्मात्तवापि मंदात्मन्मृत्युलोके स्थितिः किल ॥ ४० ॥ पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम् ॥ अहं वानरवक्रस्तु संजातस्तत्क्षणादपि ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा ॥ विमनाऽतीव संजाता वीणाश्रवणलालसा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापान्निवर्तितः ॥ मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि ॥ ४३ ॥ पर्वतः क्व गतो भूयः संगमो युवयोरभूत ॥ कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ॥ ४४ ॥

अत्यन्तहीन दिखाई देती है जो हो उस समय मर्त्यलोकमें तेरा वास होगा ॥ ४० ॥ अनन्तर पर्वत अत्यन्त विमन होकर उस नगरसे निकला मेरा भी तत्काल मर्कटके समान मुख हो गया ॥ ४१ ॥ मेरा वानरके समान कुटिल मुख देखकर राजकन्या विमन होगई उसको फिर पहलेके समान प्रफुल्लित नहीं देखा किन्तु वीणा सुननेकी इच्छा पहलेके समान नहीं दीखने लगी ॥ ४२ ॥ व्यासजी कहा हे मुनिवर ! इसके उपरान्त फिर क्या हुआ आपने किस प्रकार शापसे छूटकर फिर मनुष्यके समान मुख प्राप्त किया ॥ ४३ ॥ पर्वतऋषि कहां गये ? और किस प्रकार

कब किस स्थानमें आपका पुनर्वार मिलन हुआ यह सम्पूर्ण विवरण मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४४ ॥ नारदजीने कहा हे महाभाग ! मैं मायाका महत् चरित्र अब क्या कहूं ? पर्वतके कुपित होकर चले जानेपर फिर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ ४५ ॥ राजकन्या फिर मेरी अधिक सेवा करने लगी, पर्वतके चले जानेपर भी म उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ४६ ॥ वानरके समान मुख होनेसे मैं अत्यन्त दीन और दुःखित हुआ और इसके उपरान्त मेरा क्या होगा यह जानकर मैं भलीभाँति चिन्तासे अत्यन्त कातर होगया ॥ ४७ ॥ अनंतर

नारद उवाच ॥ किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत् ॥ दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते ॥४५॥ पुनः सेवापराऽत्यथ राजपुत्री ममाभवत् ॥ गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि ॥४६॥ अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः ॥ विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिंतयन् ॥४७॥ संजयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किंचित्प्रकटयौवनाम् ॥ विवाहार्थं राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा ॥ ४८ ॥ विवाहकालः संप्राप्तः सुताया मम सांप्रतम् ॥ योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसंमतम् ॥ ४९ ॥ रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसंभवम् ॥ विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल सांप्रतम् ॥ ५० ॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः ॥ वर्तंते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विताः ॥ ५१ ॥ यस्मिन्रुचिस्ते राजेंद्र तमाहूय नृपात्मजम् ॥ देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥ ५२ ॥

राजा सञ्जयने अपनी कन्या दमयन्तीको यौवनकुसुम कुछेक विकसित हुई देखकर उसके विवाहके निमित्त प्रधान मन्त्रीसे पूँछा ॥ ४८ ॥ कन्याका विवाह करनेका समय उपस्थित हुआ है इस समय विधिपूर्वक उसका विवाह करो मनोमत वरके योग्यरूप, गुण और औदार्ययुक्त धीर तथा वीर एवं सत्कुलोत्पन्न राजपुत्र कौन है वह तुम मुझसे भलीभांति कहो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ मन्त्रीने कहा हे राजन् ! सर्व्व विधि गुणयुक्त आपकी कन्याके योग्य वर अनेक राजपुत्र पृथ्वीमण्डलमें विद्यमान हैं ॥ ५१ ॥ जिस राजपुत्रको आपकी इच्छा हो उसकोही बुला

कर हाथी, घोडा, रथ और धन रत्नादिके सहित कन्याप्रदान कीजिये ॥ ५२ ॥ नारदजी बोले तदनन्तर दमयंतीने पिताका अभिप्राय जानकर अपनी अभिलाषा धात्रीके मुखद्वारा राजासे निवेदन की ॥ ५३ ॥ धात्रीने जाकर कहा हे महाराज ! आपकी कन्या दमयंतीने मुझसे कहा है कि, हे धात्रि ! जब मेरे पिता सुस्थचित्तसे स्थित हों तब तुम उनसे एकांतमें मेरा वचन निवेदन करके कहना कि ॥५४॥ मैंने वीणाके नादरूप मोहनसे मोहित होकर महती नाम्नी वीणाके बजानेमें विशारद बुद्धिमान् नारदमहर्षिको वरण किया है अन्य कोई मुझको प्रिय नहीं होगा ॥५५॥ हे तात ! नारदके संग मेरा विवाह कर मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण कीजिये, हे धर्म्मज्ञ ! मैं नारदके अतिरिक्त अन्य किसीको भी पतित्वमें भर्त्ता

नारद उवाच ॥ पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयंती तदा नृपम् ॥ धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहः स्थितम् ॥ ५३ ॥ धात्र्युवाच ॥ दमयंती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत् ॥ पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम् ॥ ५४ ॥ मया वृतोऽयं मेधावी नारदो महतीयुतः ॥ नादमोहितया कामं नाऽन्यः कोऽपि प्रियो मम ॥ ५५ ॥ कुरु मे वांछितं तात विवाहं मुनिना सह ॥ नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना ॥५६॥ मग्नाऽहं नादसिंधौ वै नक्रहीने रसात्मके ॥ अक्षारे सुखसंपूर्णे तिमिंगिलविवर्जिते ॥५७॥ इतिदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः ॥ भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ यदुक्तं वचनं कांते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम् ॥ वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक् ॥ २ ॥

वरण नहीं करूंगी ॥ ५६ ॥ हे पितः ! मैं नक्र तिमिङ्गिलादि (नाके घडियालादिक) मुक्त सुखविघातक पदार्थ विवर्ज्जितलवण विहीन सुमधुर आनंदरसात्मक सुखपरिपूर्ण नादसिंधुमें निमग्न हुई हूं अन्य किसीसे भी मेरा मन संतुष्ट नहीं होगा ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा राजाने धात्रीके मुखसे कन्याका इस प्रकार वचन सुनकर समीप बैठी हुई सुलोचना कैकेयी नामक, महिषीसे कहा ॥ १ ॥ हे कांते ! धात्रीने जो कहा वह तुमने सुना ? दमयंतीने उस वानरवदन नारदमुनिको

मनमें पति किया है ॥ २ ॥ दमयंतीने क्या विचार कर यह निश्चय किया है जो हो यह अत्यन्त बुद्धिहीनका कार्य हुआ है इसमें सन्देह नहीं उसका वदन बन्दरके समान है मैं उसको किस प्रकार वह भुवनधन्यकन्यारत्न प्रदान करूं ?॥३॥ कुरूप और भिक्षुक नारद मुनिकहां और नेत्रोंको आनंद देनेवाली मेरी कन्या दमयंती कहां यह कार्य समस्तही विपरीत है यह कभी कर्त्तव्य नहीं ॥ ४ ॥ हे सुकेशि ! तुम निर्ज्जनमें बुलाकर शास्त्रीय और वृद्धजनसम्मत युक्तिद्वारा उसको इस हठकारिताके कार्यसे निवारित करो ॥ ५ ॥ पतिके यह वचन सुनकर दमयंतीकी माताने उसको निर्ज्जनमें बुलाकर कहा हे वत्से ! तुम्हारा यह भुवनमोहनरूप कहां ? और धनहीन बंदरमुख नारदमुनि कहां ? ॥ ६ ॥ तुम चतुर हो तो उस

किमिदं चिंतितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम् ॥ कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा ॥ ३ ॥ क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयंती ममात्मजा ॥ विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन ॥४॥ तामेकान्ते सुकेशांते निवारय हठात्सुताम् ॥ युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया ॥ ५ ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत् ॥ क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः ॥ ६ ॥ कथं मोहमवाप्ताऽसि भिक्षुके चतुरा पुनः ॥ लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम् ॥ ७ ॥ वार्ता वानरवक्रेण कथं युक्ता तवानघे ॥ का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ८ ॥ वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा शठम् ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः ॥ ९ ॥

भिक्षुकके प्रति तुम्हारा इस प्रकार मोहभाव किसकारण हुआ हे वत्से ! देखो तुम राजकन्या हो तुम्हारा देह अत्यन्त कोमल लताके समान है और वह सदा भस्म मलते रहते हैं इससे उन मुनिका देह अत्यन्त रूक्ष होगया है ॥ ७ ॥ हे विमले ! तुम उस बन्दरमुख मुनिसे किस प्रकार बातचीत करोगी ? तुम किसकारण कुत्सित पुरुषके प्रति अनुरागिणी होती है ? इससे तुमको क्या प्रीति प्राप्त होगी ॥ ८ ॥ उत्तम पुरुष राजपुत्रके संग तुम्हारा विवाह होगा तुम इसप्रकार हठकारिताका कार्य कभी मत करो तुम्हारे पिता धात्रीके मुखसे यह बात सुनकर अत्यंत

दुःखित हुए हैं ॥९॥ हे कोमलाङ्गि ! तुम मनमें विचार कर देखो कि, कण्टकी वृक्षमें कोमल मालती लता लगी हुई देखकर कौन बुद्धिमान् पुरुषके अंतःकारणमें दुःख उदय न होगा ? ॥१०॥ इस पृथ्वीमें मूर्ख पुरुषभी कंटकलम्पट ऊंटको कोमल ताम्बूलीदल भक्षण करनेके लिये नहीं देगा ॥११॥ जब तुम्हारा विवाहकाल उपस्थित होगा तब तुम नारदके निकट जाओगी तब तुमको उनके कर लगे देख कर किसका मन दुःखानलसे दग्ध न होगा ? ॥ १२ ॥ कुमुख पुरुषके संग बातचीत करनेमें किसीकी भी रुचि नहीं होती, तुम उनके संग मरणकाल पर्य्यन्त किस प्रकार

लग्नां बुबूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम् ॥ दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति ॥ १० ॥ दासेरकाय तांबूलीदलानि कोमलानि कः ॥ ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले ॥ ११ ॥ वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः ॥ विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति ॥ १२ ॥ कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः ॥ आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्त्वयाऽमुना ॥१३॥ नारद उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा दमयंती भृशातुरा ॥ मातरं प्राह तन्वंगी मयि सा कृतनिश्चया ॥१४॥ किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम् ॥ किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च ॥ १५ ॥ हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः ॥ मातः प्राणान्प्रयच्छंति धिङ्‌ मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥ १६ ॥ नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम् ॥ तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥ १७ ॥

समय व्यतीत करोगी ॥ १३ ॥ नारदजीने कहा माताके इस प्रकार वचन सुनकर मुझमें अत्यन्त कृतनिश्चय वह सुकुमारी दमयंती अत्यंत कातर हो मातासे कहने लगी ॥ १४ ॥ हे जननि ! जो पुरुष रस मार्गका पथिक और जो रसका जाननेवाला नहीं है उसके मुख और रूपसे क्या हो सकता है ! उस नैपुण्य विहीन मूर्ख पुरुषके धन और राज्यसे क्या होगा ॥ १५ ॥ वनमें विचरण करनेवाली हारिणियें नादरससे मोहित होकर गायकगणोंको प्राणतकभी दे देती हैं अतएव वहभी धन्य हैं किन्तु अरसज्ञ मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है ॥ १६ ॥ हे मातः ! नारदऋषि जो

सप्तस्वरात्मिक संगीत विद्या जानते हैं स्वयं आशुतोष शिवके अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा पुरुष उसको नहीं जानता ॥ १७ ॥ मूर्ख पुरुषके सहित सहवास करनेसे क्षणक्षणमें मरण आनकर उपस्थित होता है गुणहीन पुरुषके धनवान् अथवा परम रूपवान् होनेपर भी उसको सर्वदा त्याग करना श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ वृथा मदगर्वसे भरे मूर्ख राजाओंकी मित्रतामें धिक्कार है गुणज्ञ पुरुषके भिक्षुक होनेपर उसके संग मित्रता करना सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, क्यों कि उसमें अन्य बात दूर रहे इसके संग बातचीत करनेमें ही परम सुख प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इन सातों स्वरोंका जाननेवाला ग्रामोंका जाननेवाला अर्थात् स्वरोंका आरोह (चढाव) अवरोह

मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे ॥ रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा ॥ १८ ॥ धिङ् मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्व समन्विते ॥ गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी ॥ १९ ॥ स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् ॥ दुर्लभः पुरुषश्चा ष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥ २० ॥ यथा नयति कैलासं गंगा चैव सरस्वती ॥ तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः ॥ २१ ॥ स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् ॥ सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि ॥ २२ ॥ मूर्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः ॥ स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि ॥ २३ ॥

(उतार)रूप क्रमज्ञ और जिससे स्वर समूह मूर्छित होकर रागत्वको प्राप्त होते हैं वह ग्रामसम्भव मूर्छनावित् और अष्टविध रसज्ञ पुरुष दुर्बल होनेपर भी इस पृथ्वीतलमें वह अत्यन्त दुर्लभ है इसमें और सन्देह क्या है ? ॥ २० ॥ जिस प्रकार गंगा और सरस्वती अपने माहात्म्यसे कैलास धाम देती हैं इसी प्रकार स्वरज्ञान विशारद पुरुष भी कैलासलोकमें ले जाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं॥२१॥ जो पुरुष स्वरमान् जानता है वह मनुष्य होकरभी देवतारूप है जो पुरुष स्वरके षड्जादि सप्त भेद नहीं जानता वह सुरराज होकरभी पशुके समान है ॥२२॥ जो पुरुष मूर्च्छना और सप्तविधस्वरसे समुत्थित और मूर्च्छनादि मिश्रित तान सुनकर प्रमोदित नहीं होता उसको पशु जानना चाहिये हरिणगणोंको पशु नहीं जानना

चाहिये क्योंकि वह संगीत सुनकर मुग्ध होते हैं॥२३॥ विषधर सर्पगण कर्णरहित होकरभी चक्षुद्वारा मनोहर स्वरनाद सुनकर प्रसन्न होते हैं उनकी भी प्रशंसा की जाती है किंतु जो नादस्वर सुनकर प्रसन्न नहीं होते उन कर्णवान् मनुष्योंको धिक्कार है ॥ २४ ॥ सुस्वर संगीत सुनकर बालकगण भी प्रफुल्लित होते हैं किंतु जो वृद्धगण उस संगीतको नहीं जानते उनको शतवार धिक्कार है॥२५॥पिता क्या नारद महर्षिके अनेक गुणोंको नहीं जानते इस त्रिलोकमें उनके समान सामगायक और कौन है ? ॥ २६ ॥ इसीलिये मैंने उनको पहलेही पतित्वमें वरण किया है इसके उपरान्त शापके कारण उन गुणाकर मुनिवरका वानरके समान मुख हुआ है॥२७॥ संगीतविद्या विशारद किन्नरगणोंका मुख घोडेके समान होनेपर भी

वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् ॥ अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान् ॥ २४ ॥ बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः ॥ जायते किंतु ये वृद्धा न जानंति धिगस्तु तान् ॥ २५ ॥ पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान्बहून् ॥ द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः ॥ २६ ॥ तस्मादसौ मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात् ॥ पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः ॥ २७ ॥ किन्नरा न प्रियाः कस्य भवंति तुरगाननाः ॥ गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह ॥ २८ ॥ पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् ॥ आग्रहं सुंदरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुने ॥ ३० ॥ विवाहं कुरु राजेंद्र दमयंत्याः शुभे दिने ॥ मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसाऽनया ॥ ३१ ॥

वह किसको प्रिय नहीं हुए थे उनके उत्तम मुखका प्रयोजन क्या ? वह मनमोहन मधुर संगीत स्वरसे देवतागणोंको भी मोहित करते हैं॥२८॥ हे जननि!तुम अनुग्रह करके पितासे कहना कि मैंने पहलेही उन मुनि सत्तम नारद महर्षिको पतित्वमें वरण किया है अतएव अन्य आग्रह न करके संतुष्ट चित्तसे मुझको उनके हाथमें समर्पण कीजिये॥२९॥नारदजीने कहा अपनी कन्या दमयन्तीके यह वचन सुनकर वह अनिन्दिता सञ्जयराज महिषी मेरेप्रति अपनी कन्याका अत्यन्त अनुराग जानकर राजासे कहने लगी॥३०॥हे नृपसत्तम!शुभदिन और शुभलग्नमें मुनिवरके संग दमयन्तीका

शुभविवाह कार्य सम्पादन कीजिये कन्याने कहाहै कि मैंने उन सर्वज्ञानसम्पन्न मुनिवरको पहले पतित्वमें वरणकिया है इसके अब अन्यथा नहीं होगा ॥ ३१ ॥ महिषीसे इस प्रकार सुनकर पृथ्वीपति सञ्जयने कन्याका विवाह कार्य भलीभांति विधिपूर्वक सम्पादन किया ॥ ३२ ॥ हे ऋषिवर ! मैं इसे विवाहकर वानरवदन धारणपूर्वक मनमें दग्ध होकर उसी स्थानमें वास करने लगा ॥ ३३ ॥ राजनन्दिनी जब मेरी सेवाके निमित्त जब निकट आती तब वानरमुख स्मरण करके मैं अत्यन्त दुःखित और संतप्त होता ॥३४॥ किंतु मुझको देखकर दमयन्तीका वदनकमल

नारद उवाच ॥ इति संचोदितो राज्ञ्या संजयः पृथिवीपतिः ॥ चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः ॥ ३२ ॥ एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परंतप ॥ स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम् ॥ ३३ ॥ यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ ॥ अभवं दुःखसंतप्तस्तदाऽहं वानराननः ॥ ३४ ॥ दमयंती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनांबुजा ॥ शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन ॥ ३५ ॥ एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः ॥ कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥ ३६ ॥ मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि ॥ आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत् ॥ ३७ ॥ कृतदारं वानरास्यं दीनं चिंतातुरं भृशम् ॥ ३८ ॥ दयावान्मामुवाचेदं पर्वतो मातुलं कृशम् ॥ मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम ॥ निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥ ३९ ॥

प्रफुल्लित हो जाता मेरा मुख वानरके समान होनेसे वह कभी शोक संतप्त और दुःखित नहीं होती ॥३५॥ इस प्रकार काल व्यतीत होने लगा एक दिन पर्वत मुनि अनेकानेक तीर्थोंमें पर्यटन कर मेरे निकट आनकर उपस्थित हुए ॥३६॥ मैंने प्रेमसे उनका बडा सत्कार किया वह मुझको उत्तम आसनपर बैठा हुआ देखकर अ त्यन्त दुःखित हुए॥ ३७॥ मैं उसका मामा हूं मेरा स्त्री ग्रहण करना देख तथा मेरा बंदरके समान मुख होनेसे मुझे दीन अत्यन्त चिंतातुर और कृश देखकर उनके हृदयमें करुणाका संचार हुआ तब उसने मुझसे कहा ॥ ३८ ॥ हे मुनिवर ! मैंने

कुपित होकर जो तुमको शाप दिया है उस शापका प्रतिमोचन करता हूं सुनो ॥ ३९ ॥ हे महर्षे ! मेरे पुण्यसे आपका मुख पूर्वके समान उत्तम हो, राजकन्याको देखकर इस समय मेरे अन्तःकरणमें करुणाका सञ्चार हुआ है ॥ ४० ॥ उसके यह वचन सुनकर मेरा चित्तभी कोमल होगया मैंनेभी तत्काल उसका शापमोचन करनेके निमित्त इच्छुक होकर कहा ॥ ४१ ॥ नारद बोले हे भागिनेय ! तुम भी सुरपुरमें जाओ हे पर्वत ! मैंने इस समय तेरे प्रति शापके विषयमें भलीभांति अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! उसके वाक्यानुसार देखते देखते मेरा वदन सुचारु और पहलेके समान शोभायमान होगया तब राजपुत्री दमयंतीने अत्यंत संतुष्ट हो अपनी माताके निकट जाकर

भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद ॥ दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाऽधुना ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् ॥ अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥ भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि ॥ शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः ॥ राजपुत्री तु संतुष्टा मातरं प्राह सत्वरम् ॥ ४३ ॥ मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः ॥ वचनात्पर्वतस्यात्र मुक्तशापो मुनेरभूत् ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्र राजनि ॥ ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र संजयः प्रीतिमांस्तदा ॥४५॥ धनं समर्पितं राज्ञा संतुष्टेन तदा महत् ॥ मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना ॥ ४६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् ॥ मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया ॥ ४७ ॥

कहा ॥ ४३ ॥ हे जननी ! महामुनि पर्वतके वचनानुसार तुम्हारे जामाताका शापमोचन होकर उनका मुख पहलेकेसमान सुंदर और शोभायमान होगया इससेही उनके देहकी कांति वर्धित हुई है ॥ ४४ ॥ राजमहिषी दमयंतीके वचन सुनकर परम आह्लादसे पुलकित हुई और तत्काल जाकर राजासे निवेदन किया. नरपति सञ्जय तब अत्यंत प्रीतिसहित मुनिवरको देखनेके निमित्त वहां गये ॥ ४५ ॥ तब महामति महीपतिने परमसंतुष्ट हो मुझको और भागिनेय पर्वतको विवाहके कौतुकमें अनेक धन और रत्नादि प्रदान किये ॥ ४६ ॥ हे द्वैपायन !

मैंने पहले मायाका बल माहात्म्य जिस प्रकार अनुभव किया था इस समय तुमसे वह पुरातन समस्त वृत्तान्त वर्णन किया ॥४७॥ हे महाभाग ! इन्द्रजालके समान मायाके मिथ्या गुणोंके कारण देहधारी मात्रही इस संसारमें पहले कोई कभी सुखी नहीं हुआ वर्त्तमानमें भी कोई सुखी नहीं और भविष्यत्‌मेंभी कोई कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मात्सर्य, ममता, अहंकार और मद, यह सभी प्रत्येकको महाबलवान् हैं इनको जीतनेमें कोई समर्थ नहीं होता॥४९॥ हे मुनिवर ! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण ही प्राणीगणों के देहकी उत्पत्तिके विषयमें भलीभांति कारण होते हैं ॥५०॥ हे द्वैपायन ! मैं किसी समय भगवान् विष्णुके हास्य परिहासादि विनोद सेवनमेंजा रहा था, दैवात्

संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते ॥ तनुभृच्चु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥४८॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा ॥ अहंकारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः ॥ ४९ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल ॥ कारणं प्राणिनां देहसंभवे सर्वथा मुने ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह ॥ गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं गमितः क्षणात् ॥ ५१ ॥ राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः ॥ पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ संशयोऽयं महान्सा धो श्रुत्वा ते वचनं किल ॥ कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम् ॥ ५३ ॥ कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा ॥ ५४ ॥ एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् ॥ मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ५५ ॥

क्षणमें ही मैं स्त्री हो गया ॥ ५१ ॥ तदनंतर मायाके बलसे मोहित होकर राजपत्नी हुआ और उन नृपतिके गृहमें अवस्थित होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये थे ॥ ५२ ॥ व्यासजीने कहा हे देवर्षे ! आपके वचन सुनकर मुझको महान् संशय उत्पन्न हुआ है हे मुनिवर ! आप अत्यंत ज्ञानवान् होकर भी किस प्रकारनारी भावको प्राप्त हुए थे ?॥५३॥और किस प्रकार फिर पुरुषत्वलाभ किया था ? किस राजाके गृहमें स्थिति कर किस प्रकार पुत्र उत्पन्न किये थे यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करके मेरा कौतूहल चरितार्थ कीजिये ॥ ५४ ॥ जिसके द्वारा

यह स्थावर जङ्गमात्मक संपूर्ण जगत् मोहित हो रहा है आप उसी मायाका अति अद्भुत चरित्र कीर्त्तन कीजिये ॥ ५५ ॥ हे मुनिवर ! समस्त
ग्रंथार्थ तत्त्व संयुक्त सब प्रकारके संशयका नाश करनेवाला आपका वचनामृत श्रवणाञ्जलिपुटसे पान करके मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ५६ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नारदजीने कहा हे तपोधन ! मैं वह सम्पूर्ण सत्कथा
कहता हूं सावधान होकर सुनो हे मुनिवर ! योगके जाननेवालोंमें जो श्रेष्ठतम हैं यह मायाबल उनको भी दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ १ ॥
स्थावर जङ्गमात्मक ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंत यह संपूर्ण जगत् उसी अजय और अचिंतनीय मायासे मोहित होता है अतएव उस मायाके हाथसे

न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम् ॥ सर्वग्रंथार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते
महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम् ॥ मायाबलं
सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥१॥ मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजया दुर्विभाव्यया ॥ २ ॥ क
दाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे ॥ गतोऽहंदर्शनाकांक्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥ ३ ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम् ॥
गायत्रं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम् ॥४॥ दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः
॥ ५ ॥ पीतांबरपरीधानो मुकुटांगदराजितः ॥ लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः ॥ ६ ॥

कोई छूटने नहीं पाता ॥ २ ॥ मैं एक दिन अद्भुतकर्मा हरिके दर्शनकी इच्छा करके स्वरतान मनोरम वीणा बजाता हुआ और सप्तस्वरयुक्त
सामगायन गान करते करते सत्यलोकसे मनोरम श्वेतद्वीपमें गया था ॥ ३ ॥ ४ ॥ मैंने वहां जाकर देवदेव चतुर्भुज चक्रपाणि गदाधरका दर्शन
किया उनकी नवीन मेघके समान श्याम मूर्ति हृदयमें स्थित कौस्तुभ प्रभासे प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ वह पीताम्बर पहर रहे हैं मस्तकमें
परमप्रभासे उज्ज्वल मुकुटशोभा पा रहा है, वह भगवान् नारायण विलास शालिनी पयोदनंदिनी अर्थात् लक्ष्मीके सहित परम

प्रसन्नता पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ६ ॥ संपूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठतम प्रियदर्शन कनकप्रभा सर्व सुलक्षणयुक्त सर्व भूषणोंसे विभूषित रूप यौवन गर्वित वासुदेव प्रिया कमलादेवी मुझको देखते ही जनार्दनके समीपसे अन्तर्धान हो गईं ॥७॥८॥ सिंधुजादेवीके स्तनादि वस्त्रोंमें सभी दीखते थे अतएव उन्होंने शीघ्रही अन्तर्गृहमें गमन किया, यह देखकर मैंने वनमालाधारी जगत् प्रभु देवदेव जनार्दनसे पूँछा॥९॥ हे मुरघातिन ! हे भगवन् ! हे पद्मनाथ · लोकमाता कमलादेवी मुझको आता हुआ देखकर आपके समीपसे किसलिये उठ गईं ?॥ १० ॥ हे जगद्गुरो ! मैं विट (जार) और धूर्त्त नहीं हूं मैं इंद्रिय और क्रोध जीतकर तपस्वी हुआ हूं मैंने मायाको भी जीत लिया है. अतएव हे देव ! कमलादेवीके चले जानेका क्या कारण है

वीक्ष्य मां कमला देवी गताऽतर्धानमंतिकात् ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वभूषणभूषिता ॥ ७ ॥ नारीणां प्रवरा कांता रूपयौवन गर्विता ॥ सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ॥ ८ ॥ अंतर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिंधुजां व्यंजनान्विताम् ॥ मया पृष्टो देवदेवो वन माली जगत्प्रभुः ॥ ९ ॥ भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन् ॥ कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छंतमंतिकात् ॥ १० ॥ नाहं विटो न वा धूर्तस्तापसोहं जद्गुरो ॥ जितेंद्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ निशम्य वचनं किंचिद्गर्वयुक्तं जनार्दनः ॥ उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन ॥ पतिं विनाऽन्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित् ॥ १३ ॥ माया सुदुर्जया विद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः ॥ सांख्यविद्भि निराहारैस्तापसैश्च जितेंद्रियैः ॥१४॥ देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना॥ जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन ॥१५॥

आप कृपा करके वह मुझसे कहिये ॥११॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! जनार्दन मेरे यह गर्वयुक्त वचन सुनकर कुछेक हास्यसहित वीणाध्वनिके समान मधुरस्वरसे कहनेलगे. भगवान् बोले हे नारद ! इस विषयकी विधि इसी प्रकार है कि, किसी पुरुषकी स्त्री क्यों न हो पतिके अतिरिक्त अन्य [illegible] भी सामने बैठना उचित नहीं है ॥१२॥१३॥ हे नारद ! मायाको जीतना अत्यन्त कठिन कार्य है, जिन्होंने प्राणायामसे प्राण, पवन, [illegible] जय की हैं वह सांख्ययोगि लोग ॥१४॥ और देवता भी मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम कहते हो कि मैंने मायाको

जीत लिया है यह तुम्हारे योग्य वचन नहीं है. क्योंकि गीतज्ञानसे अनुमान होता है कि, तुम अवश्यही सङ्गीत शब्दसे मोहित होते हो ॥१५॥ मैं, शिव, ब्रह्मा और मुनिलोग कोई भी उस अजय मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते. तुम अथवा अन्य कोई भी पुरुष उसको पराजय करे यह कभी सम्भव भी नहीं हो सकता॥१६॥ देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह ही हो जो जीव शरीर धारण करता है उनमेंसे कोई इस अजयमायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होता ॥१७॥ वेदके जाननेवाले, योगके जाननेवाले, सर्वज्ञ अथवा जितेन्द्रिय हों तीनों गुणयुक्त कोईभी पुरुष मायाको जीतनेमें समर्थ नहीं होते ॥१८॥ कोई कोई कहते हैं कि, यह सम्पूर्ण जगत् स्वयं निराकार होनेपर भी साकारकारी कालके आधीन है. किंतु हे नारद !

नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम् ॥ मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥ १६ ॥ देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा ॥ बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥ १७ ॥ त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत् ॥ वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञो विजितेंद्रियः ॥ १८ ॥ कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत् ॥ तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥ १९ ॥ कालः करोति धर्मज्ञ कदाचिद्विकलं पुनः ॥ स्वभावात्कर्मतो वाऽपि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः ॥ तमब्रुवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ २१ ॥ रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः ॥ कियद्बला कसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे ॥ २२ ॥

वह कालभी मायाका एकरूप है. क्या उत्तम विद्वान् क्या मध्यम और अधम मूर्ख सम्पूर्ण जीवही उस कालके वशीभूत हुए हैं ॥ १९ ॥ स्वभावसे अथवा कर्मसेही हो काल धर्मज्ञ पुरुषको भी कभी विकल कर डालता है. अतएव उसका कार्य अत्यंत दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ २० ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! यह कह विष्णुके मौन होनेपर मैं अत्यंत आश्चर्ययुक्त हो उन सनातन वासुदेव देवदेव जगन्नाथसे पूंछने लगा ॥ २१ ॥ हे रमापते ! मायाका रूप किसप्रकार है माया कैसी है ? उसके बलका परिमाण कितना है ? उसका स्थान कहां है ? वह किसका आधार है ?

द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर ॥ ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते ॥२३॥ विष्णुरुवाच॥त्रिगुणा साऽखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसंमता ॥ अजेयाऽनेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत् ॥२४॥ दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु ॥ गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र सांप्रतम् ॥ २५ ॥ दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः ॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं विपादे मा मनः कृथाः ॥२६॥ इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम् ॥स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागाद्धरिसंनिधौ ॥२७॥ आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः ॥ समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः ॥ २८ ॥ चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् ॥ प्रेरितो यत्र कृष्णेन गंतुकामेन काननम् ॥२९॥ महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा ॥ पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान् ॥३०॥ मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्च सुमनोहराः ॥ पल्वलानि विशालानि ह्रदान्पंकजभूषितान् ॥ ३१ ॥

सो आप मुझसे कहिये ॥ २२ ॥ हे जगतीपालक ! मैं मायाको देखनेके अत्यंत अभिलाषी हूं आप शीघ्र वह मुझको दिखाइये. हे रमापते ! मेरी मायाको जाननेकी अत्यंत इच्छा हुई है आप प्रसन्न होकर मायाके वैभवका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ विष्णुने कहा त्रिगुणात्मिक सम्पूर्णके आधार स्वरूप, सर्वज्ञा सर्वसम्मता अजेया अनेकरूपा माया सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद ! यदि तुम देखनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्र मेरे संग गरुडपर चढो हम दोनों यहांसे दूसरे स्थानको गमन करेंगे ॥ २५ ॥ और अजितात्मा मनुष्यगणोंको कठिनतासे जानने योग्य उस मायाको दिखाऊंगा. हे ब्रह्मपुत्र ! तुम मायाको देखकर व्याकुल मत होना ॥२६॥ जनार्दनने मुझसे यह कह विनतानंदन गरुडको स्मरण किया स्मरण करतेही वह हरिके समीप उपस्थित हुआ॥२७॥जनार्दन गरुडको आया देखकर उसके ऊपर चढ मुझको ले जानेके निमित्त आदरपूर्वक उसीकी पीठपर चढाया॥२८॥भगवानने जिस वनमें जानेकी इच्छाकी थी गरुड उनसे प्रेरित होकर वैकुण्ठसे वायुवेगके समान वहांको चला ॥ २९ ॥ हम गरुडपर चढ़कर मनोहर वन,दिव्य सरोवर,सरित,पुर,ग्राम, खेट (किसानोंके गांव) खर्वट (पर्वतसमीपस्थ गांव) गोव्रज गोठ ॥ ३० ॥ मुनियोंके मनोहर आश्रम शोभायमान दीर्घिका (बावली) पल्वल छोटे सरोवर और विशालपंकज भूषित ह्रद ॥ ३१ ॥

मृगयूथ,वराहवृन्द यह सम्पूर्ण देखते देखते कान्यकुब्जदेशके समीप जायकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उस स्थानमें एक मनोहर दिव्य सरोवर देखा उसमें परम मनोहर सम्पूर्ण कमल खिले हुए, हंस और कारंडवोंसे युक्त, चकवोंसे शोभित ॥ ३३ ॥ जहाँ खिलेकमल शोभा और सुगंध विस्तार करते हैं और सम्पूर्ण भौंरे कलगुंजनसे श्रवण और अंतःकरण हरण करते हैं,अनेक प्रकारके फलपुष्प शोभा पाते हैं; उसका जल दूधके समान मीठा ॥३४॥ और वह सरोवर मानो समुद्रकी भी स्पर्द्धा करता है, अत्यन्त अद्भुत उस तडागको देखकर भववानने मुझसे कहा ॥३५॥ भगवान् बोले हेनारद!देखो देखो विमल जलपूरित सर्वत्र कमलोंसे ढका हुआ गम्भीर सरोवर किस प्रकार शोभा पाता है इसमें कलकण्ठ सारसगण

मृगाणां च वराहाणां वृंदान्यप्यवलोक्य च॥गतावावां कान्यकुब्जसमीपं गरुडासनौ ॥३२॥ यत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पंकजमंडितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्॥३३॥नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पंकजैरुपरंजितम् ॥शुचिमिष्टजलं भृंगयूथनादविराजितम् ॥३४॥ मामाह भगवान्वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम् ॥ स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः ॥३५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य नारद गंभीरं सरः सारसनादितम् ॥ सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥ ३६ ॥ अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत् ॥ ३७ ॥ विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् ॥ स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे ॥ मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले ॥ ३९ ॥ पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने ॥ साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥ ४० ॥

मधुर शब्द क   फिरते हैं॥३६॥इसमें स्नान करके हम कान्यकुब्ज नामक पुरमें जायँगे यह कहकर शीघ्र मुझको गरुड़से उतार स्वयं उतरे॥३७॥ अनन्तर भगवानने हँसकर मेरी तर्ज्जनी अंगुली पकडी और उस सरोवरकी वारंवार प्रशंसा करके मुझको उसके तटपर लेगये ॥ ३८ ॥ शीतल छायायुक्त मनोहर तटपर बैठकर कुछ काल विश्राम करनेके उपरान्त भगवान्ने मुझसे कहा हे मुनिवर ! इसके विमलजलमें तुम पहले स्नान करो ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मैं इस परमपवित्र तडागमें स्नान करूंगा. हे नारद ! देखो देखो ! यह जल साधुओंके चित्तके समान किस

प्रकार निर्म्मल है ? ॥ ४० ॥ इसने कमलोंके परागसे सुवासित होकर किस प्रकार सुगन्ध धारण की है ? जब भगवान् वासुदेवने मुझसे यह वचन कहा तब मैं वीणा और मृगाजिन त्यागकर ॥ ४१ ॥ प्रसन्न हो स्नानकी इच्छासे सरोवरके किनारे गया. हाथ, पाँव धोकर शिखाबंधन और कुश ग्रहण कर ॥ ४२ ॥ आचमन पूर्वक शुचि हो उस जलमें अवगाहन किया. मैं स्नान कर रहा था, हरि मुझको देख रहे थे ॥ ४३ ॥ इसी समय जलमें निमग्न हो निकलकर देखा कि मैं पुरुषरूप त्यागकर मनोहर स्त्रीरूप होगया हूं तब हरि मेरा मृगचर्म और वीणा ग्रहणकर

सुरभीणि परागैस्तु पंकजानां विशेषतः ॥ इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम् ॥४१॥ स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः ॥ पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम् ॥४२॥ कृत्वाऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले ॥ यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः ॥४३॥ विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् ॥ हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम् ॥४४॥ आरुह्य गगनं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् ॥ ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥ ४५ ॥ तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः ॥ विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः॥४६॥ संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः ॥ अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम् ॥४७॥ किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः॥ एवं चिंतयमानस्य नारीरूपधरस्य मे॥४८॥ सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः ॥ गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः ॥ ४९ ॥

॥ ४४ ॥ गरुड पर चढ आकाशमार्गसे तत्काल अपने गृहको चले गये. मैं शोभायमान भूषणोंसे भूषित नारी देहको प्राप्त हो ॥ ४५ ॥ तत्काल पहले देहको भूल गया वीणा और भगवानको भी भूलगया ॥ ४६ ॥ अनन्तर वह मनमोहन रमणीरूप धारण करके तडागसे निकल कमलोंसे युक्त निर्मल जलपूरित दिव्य सरोवरको देखने लगा ॥ ४७ ॥ उसको देखकर यह क्या है ? मन ही मनमें इस प्रकार आश्चर्य उत्पन्न होने लगा. मैं स्त्रीरूप धारण कर मन ही मनमें इसी प्रकार चिन्ता कररहा था ॥४८॥ इसी समयमें अनेक हाथी और घोडोंसे युक्त तालध्वज

नामक एक राजा रथपर चढ सहसा आनकर उसी स्थानमें उपस्थित हुआ ॥ ४९ ॥ वह राजा मूर्तिमान् कामदेवके समान थे. उनके सम्पूर्ण अङ्ग अनेक प्रकारके आभरणोंसे विभूषित थे. युवा राजाने उसी स्थानमें आनकर मुझको देखा. दिव्य आभरणोंसे भूषित मेरा देह ॥ ५० ॥ और पूर्णचन्द्रमाके समान मुख देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्य युक्त हो पूँछने लगे, हे कल्याणि ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ॥ ५१ ॥ तुम मनुष्य कन्या ? नागकन्या ? गन्धर्व नंदिनी अथवा किसी देवताकी कन्या हो ? तुमको रूप यौवन सम्पन्न बाला देखता हूं तुम इस स्थानमें अकेली क्यों बैठी हो ? ॥ ५२ ॥ हे सुलोचने ! किसी सौभाग्यवान् पुरुषने क्या तुम्हारा पाणि ग्रहण किया है अथवा इस समय भी तुम्हारा

युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः ॥ वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम् ॥ ५० ॥ राकाचंद्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः ॥ पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा ॥ ५१ ॥ मानुषस्य च वा कांते गंधर्वस्योरगस्य च ॥ एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता ॥ ५२ ॥ विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने ॥ किं पश्यसि सुकेशांते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे ॥ ॥५३॥ चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि ॥ भुंक्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि ॥ वांछितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च ॥ विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाच विशांपते ॥ १ ॥

विवाह नहीं हुआ है यह तुम मुझसे सत्य कहो हे सुकेशि ! इस सरोवरमें तुम क्या देखती हो ॥ ५३ ॥ हे मन्मथमोहिनि ! तुम्हारे मनमें क्या इच्छा है सो कहो ? हे कुटिलनयने ! तुम्हारे कोकिलके समान कण्ठस्वरसे मेरा मन मोहित हुआ है हे कृशोदरि ! तुम मुझको पतिरूपमें वरण करके मेरे संग अनेक प्रकारके अभिलषित मनोरम भोग्य वस्तु भोग करो ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! राजा तालध्वजने जब मुझसे इस प्रकार कहा तब फिर मैंने मनमें अनेक

विचारकर कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं किसकी कन्या हूं यह मैं नहीं जानती और मेरे पिता माता कहां हैं यह भी मैं निश्चय नहीं कहसकती. एक पुरुष मुझको यह सरोवर दिखाकर कहीं चला गया है ॥ २ ॥ हे राजेंद्र ! मैं अनाथ और निराश्रय हुई हूं इस समय क्या करूं कहां जाऊं कौन कार्य करनेसे मेरा कल्याण होगा इस विषयमें निरंतर चिंता करती हूं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दैव ही बलवान् है इस विषयमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं आप धर्मज्ञ और राजा हैं इस समय आपका जो अभिप्राय हो आप वही कीजिये ॥ ४ ॥ हे नृपवर ! मेरा पालन करनेके

राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् ॥ पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥२॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् ॥ निराधाराऽस्मि राजेंद्र चिंतयामि चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम ॥ धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४ ॥ तवाधीनाऽस्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः ॥ न पिता न च माता च न स्थानं न च बांधवाः ॥ ५ ॥ इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः ॥ मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह ॥ ६ ॥ नरयानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम् ॥ आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयांबरवेष्टितम् ॥ ७ ॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम् ॥ चतुरस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम् ॥ ८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः ॥ आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥

निमित्त बंधु माता पिता बांधव कोई नहीं है और दूसरा कोई आश्रयस्थान भी नहीं है, अतएव मैं इस समय आपके अधीन हूँ ॥ ५ ॥ मेरे इस प्रकार वचन कहने पर फिर मेरा मुखकमल बडे नेत्र देखकर राजाका मन कामबाणसे व्याकुल होगया तब उन्होंने अनुचरोंसे कहा ॥ ६ ॥ तुम इसके चढनेको रेशमके वस्त्रोंके बिछौनेसे युक्त चतुर पुरुषोंसे वाहित नरयान पालकी लाओ ॥ ७ ॥ जो मोतियोंके जालसे सुशोभित सुवर्णसे जड़ित चौकोन और विस्तृत हो ॥ ८ ॥ राजाके वचन सुनते ही सेवक लोग शीघ्र जाय मेरे निमित्त वस्त्रयुक्त अत्यंत मनोहर नरयान ले आये ॥ ९ ॥

मैं राजाके प्रिय साधनकी इच्छासे उसपर चढ़ा, राजाने भी प्रसन्न हो मुझको गृहमें लेजाकर ॥ १० ॥ विवाहकी विधि अनुसार शुभदिन और शुभलग्नमें अग्निके समीप मेरा पाणि ग्रहण किया ॥ ११ ॥ मैं उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हुआ राजाने आदरपूर्वक मेरा सौभाग्यसुंदरी नाम रख दिया ॥ १२ ॥ वह राजा कामशास्त्रोक्त अनेक प्रकारके भोग विलास सहित मेरे संग अनेक प्रकार विहार और क्रीड़ाकर प्रमोद और अनेक प्रकार सुख अनुभव करने लगे ॥१३॥ तब वह राजकार्य त्यागकर दिनरात मेरे संग काम क्रीड़ामें आसक्त रहे वह महीपाल कामकलामें

आरूढाऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया ॥ मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥ १० ॥ विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने ॥ उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः ॥ ११ ॥ तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम ॥ १२ ॥ रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः ॥ नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा ॥ १३ ॥ राजकार्याणि संत्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् ॥ नासौ विवेद गच्छंतं कालं कामकलारतः ॥ १४ ॥ उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च ॥ हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वनेषु च ॥ १५ ॥ वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे ॥ विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह ॥ १६ ॥ व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशीकृता ॥ स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च ॥१७॥ ममैवायं पतिर्योषाऽहं पत्नीषु प्रिया सती ॥ पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम ॥ १८ ॥

इस प्रकार निरत हुए थे कि,बहुत काल व्यतीत होनेपर भी वह उसको नहीं जान सके ॥ १४ ॥ वह वारुणी मदिरा पान करके राजकार्य त्याग मनोहर उद्यान सुरम्य दीर्घिका मनोहर हर्म्य (महल) शोभायमान गृह रमणीय शैल श्रेष्ठ वन उन सब स्थलोंमें विहार करते करते भली भांति मेरे अधीन हो गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे द्वैपायन ! उस राजाके संग क्रीडारसमें निरंतर आसक्त और उसके ही वशीभुत रहकर मुझको पूर्व देह पुरुषभाव अथवा मुनिजन्म कुछ भी स्मरण न हुआ ॥ १७ ॥ यह राजा मेरे ही प्रति अनुरक्त थे सम्पूर्ण स्त्रियोंमें मैं ही उनकी प्रिय

स्त्री था वह सदा ही मुझमें निरत रहते थे मैं ही उनकी विलासिनी पटरानी हूं मेरा जीवन सफल है ॥ १८ ॥ इस प्रकार चिंताकर दिनरात उनके प्रेममें आबद्ध और सुखप्राप्त करनेके निमित्त उनके ही वशीभूत होकर निरंतर क्रीडामें आसक्त रहता ॥ १९ ॥ उन्हींमें मेरा मन अत्यंत आसक्त हुआ था शाश्वत ब्रह्मज्ञान और धर्मशास्त्रका ज्ञान सम्पूर्णही भूल गया था ॥ २० ॥ हे मुनिवर ! इस प्रकार कामक्रीडामें आसक्त रह कर अनेक प्रकार विहार करते करते बारह वर्ष क्षणकालके समान बीत गये ॥ २१ ॥ किंतु मैं उनको कुछभी नहीं जान सका, तदनंतर मैं गर्भवती हुआ, यह देखकर राजाने अत्यंत प्रसन्न हो मेरी संपूर्ण गर्भसंस्कारक्रिया संपादन की ॥ २२ ॥ राजा मेरा मन संतुष्ट करके सर्वदा ही

इति चिंतयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम् ॥ क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥ १९ ॥ विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्म ज्ञानं च शाश्वतम् ॥ धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता ॥ २० ॥ एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु ॥ गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने ॥ २१ ॥ जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा ॥ कारयामास त्रिधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥ २२ ॥ अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः ॥ नाब्रुवं लज्जमानाहं नृपं प्रीतमना भृशम् ॥ २३ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम ॥ शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥ २४ ॥ बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्म महोत्सवः ॥ राजा परम सन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥ २५ ॥ सूतकांते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह ॥ अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परंतप ॥ २६ ॥ ततो वर्षद्वयांते वै पुनर्गर्भो मया धृतः ॥ द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २७ ॥

गर्भदोहद " मेरे मनोरथकी बात " वारंवार पूँछते, मैं उससे अत्यंत लज्जित होता इससे राजा और भी प्रीतिमान् होजाते ॥ २३ ॥ इस प्रकार दश मास पूर्ण होनेपर शुभ ग्रह शुभ नक्षत्र शुभ लग्न और शुभ तारावलयुक्त शुभ दिनमें मैंने एक पुत्र उत्पन्न किया॥२४॥ राजा पुत्रजन्म होनेसे अत्यंत आनंदित हुए और पुत्रजन्मका महामहोत्सव आरंभ किया ॥ २५ ॥ हे द्वैपायन ! जातशौच होनेपर राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए तदनंतर मैं उन्हीं महीपालकी प्रियतम भार्या होकर रहा ॥ २६ ॥ तदनंतर दो वर्ष पीछे फिर मेरे गर्भ रहा

उससेभी सर्वप्रकारके लक्षणोंसे युक्त दूसरा पुत्र उत्पन्न किया ॥ २७ ॥ राजाने दूसरे पुत्रका नाम सुधन्वा रक्खा और ब्राह्मणोंके आदेशसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम वीरवर्मा रखदिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार क्रमानुसार राजाके सम्मत द्वादश पुत्र उत्पन्न करके तब उनके लालन पालनमें ही मोहित होकर रहा ॥ २९ ॥ इसके उपरांत फिर क्रमानुसार आठ पुत्र मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए इसप्रकार मेरी सुखसंपन्न गृहस्थली समृद्धिसे पूर्ण होगई ॥ ३० ॥ राजाने उन संपूर्ण पुत्रोंका यथोचित रूपसे विवाहकार्य संपादन किया उससे

सुधन्वेति सुतास्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा ॥ वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम् ॥ २८ ॥ एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूप संमताः ॥ मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने ॥ २९ ॥ पुनरष्ट सुता काले काले जाताः स्वरूपिणः ॥ गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं संपन्नं सुखसाधनम् ॥ ३० ॥ तेषां दारक्रियाः काले कृता राज्ञा यथोचिताः ॥ स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत् ॥ ३१ ॥ ततः पौत्रादिसंभूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः ॥ आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥ ३२ ॥ कदाचित्सुखमैश्वय कदाचिद्दुःखमद्भुतम् ॥ पुत्रेषु रोगजनितं देहसंतापकारकम् ॥ ३३ ॥ परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः ॥ पुत्राणां वा वधूनां च तेन संतापसंभवः ॥ ३४ ॥ सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् ॥ संकल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम ॥ ३५ ॥

पुत्रवधू और पुत्रोंसे मेरा परिवार अत्यंत बृहत् होगया ॥ ३१ ॥ तदनंतर मेरे कितनेही पौत्र हुए उनके अनेक प्रकारके क्रीड़ारसमें मेरा मनमोह और भी वर्धित होने लगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कभी सुख और ऐश्वर्य एवं कभी पुत्रोंके रोगजनित आश्चर्यजनक दुःख अनुभव करने लगा. इससे मेरा देह अत्यन्त संतप्त होने लगा ॥ ३३ ॥ कभी पुत्रोंका परस्पर घोरतर विरोध, कभी पुत्रोंका परस्पर दारुण कलह, इस दुर्घटनासे मेरे मनमें दारुण संताप उत्पन्न होने लगा ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैं सुख दुःखात्ममिथ्याचारमय संकल्पजनित ऐसे मायाके संकट

सागरमें निमग्न था ॥ ३५ ॥ अतएव पूर्वविज्ञान और वह शास्त्रज्ञान भूलकर स्त्रीभावसे गृहकार्यमें निरत होकर रहा ॥ ३६ ॥ मेरे इतनी पुत्र वधू हुई हैं यह संपूर्ण बलवान् पुत्र एकत्र मिलित होकर मेरे गृहमें क्रीड़ा करते हैं अहो! इस संसारमें मैं संपूर्ण स्त्रियोंमें धन्य और पुण्यवती हुई हूं तब मुझको इस प्रकार मोहवर्द्धक अहंकार भी उत्पन्न हुआ ॥३७॥॥३८॥ मैं नारद हूं भगवानने मुझको मायासे छला है ऐसा भाव मेरे मनमें कभी उदय नहीं हुआ ॥३९॥ हे कृष्णद्वैपायन ! मैं सदाचारनिरतराजपत्नी और पतिव्रता हूं मेरे इतने पुत्र उत्पन्न हुए हैं मैं इस संसारमें धन्य हूं. इस प्रकार

विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् ॥ योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा ॥ ३६ ॥ अहंकारस्तु संजातो भृशं मोह विवर्धकः ॥ एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः स्वकुलसंभवाः ॥ ३७ ॥ एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडंति मम वेश्मसु ॥ धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥ ३८ ॥ नारदोऽहं भगवता वंचितो मायया किल ॥ न कदाचिन्मयाऽप्येवं चिंतितं मनसा किल ॥ ३९ ॥ राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता॥ धन्याऽहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम् ॥४०॥ अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान् ॥ अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥ ४१ ॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् ॥ आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिंतयत् ॥ ४२ ॥ वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च ॥ मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नग रात्तदा ॥ ४३ ॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः ॥ हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः ॥ ४४ ॥ राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः ॥ श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे ॥ ४५ ॥

ऐश्वर्य आदिकी चिन्ता करके मैं मायासे मोहित होकर काल व्यतीत करने लगा ॥ ४० ॥ अनंतर दूरदेशके अधिपति कोई एक महान् राजा मेरे पतिके संग वृद्ध वैर हो ॥ ४१ ॥ युद्धके निमित्त रथ और बाणादि चतुरंगिणी सेनाके सहित कान्यकुब्ज नगरमें आया ॥ ४२ ॥ जब उस राजाने सेनासे नगर घेरलिया तब मेरे पुत्र और पौत्र नगरसे बाहर हो ॥ ४३ ॥ रणस्थलमें जाय उसके संग तुमुल संग्राम करनेलगे किंतु कालके प्रभावसे वैरीने मेरे संपूर्ण पुत्रोंको मारडाला ॥ ४४ ॥ राजा रणसे भाग अपने गृहमें आगये फिर मैंने सुना कि मेरे संपूर्ण पुत्र उस भयंकर

संग्राममें मारे गये ॥४५॥ वह बलवान् राजा मेरे पुत्र पौत्रोंको मारकर अपनी सेनाके सहित अपने नगरको चला गया [illegible] विलाप करती हुई उस संग्राम स्थलमें शीघ्र जाकर उपस्थित हुई ॥ ४६ ॥ हे आयुष्मन् मैं उन दारुण दुःखपीडित पुत्र और पौत्रोंको भूमिमें पडा हुआ देखकर शोकसागरमें निमग्नहुआ और उच्चस्वरसे विलाप करने लगा ॥ ४७ ॥ हे पुत्रगण ! तुम मुझको त्यागकर कहां चलेगये, हाय ! अत्यन्त बलवान् अतिसंतापदायक और दुर्निवार दुरात्मा दैवने आज मुझको निहत किया ॥ ४८ ॥ इसी समयमें भगवान् मधुसूदन शोभायमान वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण कर उसी स्थानमें मेरे निकट आये ॥ ४९ ॥ उनके वसन पवित्र और मनोहर थे वह वेदज्ञ बोध होते थे

स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः ॥ क्रंदमाना ह्यहं तत्र गता समरमंडले ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता ॥ विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लुवे ॥४७॥ हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हताऽस्मि दुरात्मना ॥ दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारेणातिपापिना॥४८॥एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान्मधुसूदनः॥कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद्वृद्धः परमशोभनः॥४९॥ सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः ॥ मामुवाचातिदीनां स क्रंदमानां रणाजिरे ॥५०॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं विषीदसि तन्वंगि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः ॥ मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके ॥ ५१ ॥ का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिंतयाऽऽत्मगतिं पराम् ॥ उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने॥५२॥स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि॥परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै॥५३॥

मुझको रणस्थलमें दीनभावसे रोता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ५० ॥ ब्राह्मण बोले हे देवि ! तुम्हारा शब्द कोकिलके समान है तुम पति पुत्रवती और समृद्धशालिनी गृहस्वामिनी बोध होती हो ॥ ५१ ॥ किंतु तुम विचारो कि यह संपूर्ण केवल मोहजनित भ्रममात्र है तुम किसलिये रोती हो ? किस कारण दुःखित होती है ? हे सुलोचने ! विचारकर देखो तुम कौन हो ? अथवा यह पुत्र किसके हैं ? आपकी उत्तम गति कैसे होगी इसकीही तुम चिंता करो इस समय रोदन त्याग उठकर सावधान होओ ॥ ५२ ॥ हे देवि ! परलोकमें गये

हुए पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षार्थ उनको जल और तिल दान करो ॥ ५३ ॥ मरे हुए पुरुषोंके बन्धुगणोंको तीर्थमें स्नान करना चाहिये घरमें स्नान करना कभी उचित नहीं यह धर्मका स्थिर निश्चय जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ नारदजीने कहा हे द्वैपायन ! उन वृद्धविप्रवरके इस प्रकार समझानेपर फिर मैं और राजा बन्धुगणोंसे परिवृत हो उठे ॥५५॥ ब्राह्मणरूपधारी भूतभावन भगवान् मधुसूदन आगे आगे चलने लगे मैं शीघ्र उनके पीछे पीछे उस परम पवित्र तीर्थमें चलने लगा ॥५६॥ द्विजरूपधारी जनार्दन भगवान् हरि मुझको उस पुंतीर्थ नामक सरोवरमें ले जाकर कृपा प्रकाशपूर्वक कहने लगे ॥५७॥ हे गजेन्द्रगामिनि ! तुम इस परमपवित्र तड़ागके जलमें स्नान करो व्यर्थ शोकत्याग करो, इस समय तुम्हारे पुत्रोंकी

कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित् ॥ मृतानां किल बंधूनां धर्मशास्त्रस्य निर्णयः ॥५४॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता ॥ उत्थिताऽहं नृपेणाथ युक्ता बंधुभिरावृता ॥ ५५ ॥ अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः ॥ चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम् ॥५६॥ हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः ॥ नीत्वाऽहं भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः ॥ ५७ ॥ स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने गजगामिनि ॥ त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम् ॥ ५८ ॥ कोटिशस्ते मृताः पुत्रा जन्मजन्मसमुद्भवाः ॥ पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा ॥५९॥ केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे ॥ वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह ॥६०॥ नारद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके ॥ प्रविष्टा स्नातुकामाऽहं प्रेरिता तत्र विष्णुना ॥ ६१ ॥

क्रियाका समय उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ तुम विचार कर देखो कि जन्म जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड, करोड, पुत्र कन्या हुई हैं और करोड करोड पुत्र कन्याओंने प्राण त्याग किया है और करोड करोड पिता पति भ्राता जामाता प्राप्त हुए हैं ॥५९॥ फिर उनको छोडा है हे देवि ! मैं कहता हूं देखो इनमें किसके निमित्त तुम इस समय दुःख करोगी ? यह केवल मनका भ्रम मात्र है यह संसार मोहमय इंद्रजालके समान मिथ्या और स्वप्नके समान है इससे देही पुरुषोंको संताप मात्र ही उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥ नारदजीने कहा मैं उन विष्णुका वचन सुनकर उनसे

प्रेरित हो स्नान करनेकी इच्छासे उस पुंतीर्थके जलमें प्रविष्ट हुआ ॥६१॥ तब निमग्न हो निकलकर देखा कि क्षणमात्रमें ही मैं पुरुष हुआ निजदेहधारी भगवान् हरि करमें वीणा धारण कर तटपर खड़े हैं ॥ ६२॥ हे द्विजोत्तम ! मैंने उछलकर जब तीरमें स्थित कमललोचन कृष्णको देखा तब मेरे चित्त पूर्ण ज्ञानका उदय हुआ ॥६३॥ तब विचार किया मैं नारद हूं इस स्थानमें आया हूं और हरिकी मायासे मोहित होकर स्त्री भावको प्राप्त हुआ था ॥६४॥ मैं इस प्रकार चिंता करता था तब भगवान् हरिने मुझसे कहा हे नारद ! उठकर आओ जलमें खडे क्या करते हो ॥ ६५ ॥ मैं आश्चर्य युक्त हो अपने दारुण स्त्री भावका स्मरण कर पुनर्वार किस कारण पुरुषभावको प्राप्त हुआ यही विचारने लगा ॥६६॥

मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि ॥ हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान् ॥६२॥ उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम ॥६३॥ संचिंतितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः ॥ हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो माया विमोहितः ॥६४॥ इति चिंतापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः ॥ ममाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः ॥६५॥ विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् ॥ पुनः पुरुषभावश्च संपन्नः केन हेतुना ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः ॥ क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः ॥ क्व गता मां परित्यज्य विलपंतं वियोगिनम् ॥ २ ॥ विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम् ॥ राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा हे मुनिवर ! उस जलमें स्त्री रूपसे निमग्न हो विप्रवर नारदरूपसे निकला हुआ देखकर वह महीपति अत्यन्त आश्चर्य युक्त हो मनमें इसप्रकार चिंता करने लगे कि, मेरी वह प्रियतमा भार्या कहां गई और मुनि सत्तम नारदही सहसा कहांसे उपस्थित हुए ॥१॥ राजा प्रियतमा भार्याको न देखकर हा प्रिये ! मुझको छोडकर तुम कहाँ चली गई ? मैं तुम्हारे विरहमें अत्यन्त व्याकुल होता हूं शीघ्र आनकर मुझको दर्शन दो, यह कहकर वारंवार विलाप करने लगे ॥ २ ॥ वह कान्ताके

विरहमें अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे हे कमलनयने ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन और राज्यादिविफल है. हे शुचिस्मिते ! तुम्हारे अभावसे मेरा समस्त गृह शून्यमय है ॥ ३ ॥ हे पृथुश्रोणि ! तुम्हारे विरहमें इस समय भी मेरे प्राण क्यों नहीं निकलते ? हे जीवितेश्वरि ! तुम्हारे निमित्त यावज्जीवन मेरा प्रीतिरूप धर्म भ्रष्ट हुआ है ! मेरी प्रीति इस समय कहां गई जो मैं जीता हूं ॥ ४ ॥ हे मृगशावाक्षि ! मैं तुम्हारे वियोगसे कातर होकर विलाप करता हूं तुम उसका उत्तर देकर मेरे मन और प्राणको शीतल करो. हे प्रिये ! प्रथम मिलनेके समय तुमने मेरे प्रति जिस प्रकार प्रीति प्रकाश की थी इस समय वह कहां चली गई ॥ ५ ॥ हे सुभ्रु ! मेरे दुर्भाग्य वशसे ही क्या तुमने जलमें निमग्न होकर

न प्राणा ते बहिर्यांति विरहेण तवाधुना ॥ गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात् ॥ ४ ॥ विलपामि त्रिशालाक्षि देहि प्रत्युत्तरं प्रियम् ॥ क्व गता सा मयि प्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसंगमे ॥५॥ विमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः ॥ गृहीता वरुणेनाशु मम दौर्भाग्ययोगतः ॥ ६ ॥ धन्या सुचारुसर्वांगि या त्वं पुत्रैः समागता ॥ अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ॥ ७ ॥ न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता ॥ विलपंतं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यंत्रिता ॥ ८ ॥ उभयं मे गतं कांते पुत्रास्त्वं प्राणवल्लभा ॥ तथाऽपि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये ॥ ९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले ॥ रामाविरहजं दुःखं जानाति रघुनंदनः ॥ १० ॥

प्राणत्याग किया क्या तुमको मत्स्यकच्छपादि जलचर जन्तुओंने भक्षण कर लिया अथवा जलाधिपति वरुण देवने तुमको आग्रह सहित ग्रहण कर लिया ॥६॥ हे अमृत भाषिणि ! तुमने पुत्रोंके संग गमन किया अतएव तुम धन्य हो. आहा ! पुत्रोंके प्रति जो तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह था वह भी तुमने इस समय प्रकाश किया ॥७॥ हे चारु सर्वाङ्गि ! मैं तुम्हारे विरहमें विलाप करता हूं तुम पुत्र स्नेहमें आकृष्ट हो मुझको परित्याग कर स्वर्गमें चली गई यही क्या तुम्हारा कर्त्तव्य है ? ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! देखो मैंने पुत्र और प्राणवल्लभा प्रिया इन दोनोंको छोड़ दिया तो भी मेरे प्राण नहीं निकले अतएव मेरे प्राण निःसन्देह कुटिल हैं ॥ ९ ॥ जो मनोरमा पतिव्रता प्रियाकी विरहवेदना जानते हैं वह रघुकुल तिलक

रामचन्द्रजी इस समय पृथ्वीमें स्थिति नहीं करते तो इस समय मैं यह वेदना प्रकाश करनेको कहां जाऊं क्या करूं वह मैं स्थिर नहीं कर सकता ॥ १० ॥ सुख और दुःखमें जिसके मनका भाव समान है इस प्रकार दम्पतिका मरण भिन्न भिन्न रूपसे निर्दिष्ट करके निष्ठुर विधाताने अत्यन्त विपरीत कार्य किया ॥ ११ ॥ मुनियोंने धर्मशास्त्रमें पतिके संग पतिव्रता स्त्रियोंकी सह मरण विधि निर्द्धारित कर उनका विशेष उपकार साधन किया है किन्तु उन्होंने पुरुषोंका स्त्रियोंके संग अग्नि प्रवेशका विधान क्यों नहीं किया ? वह भी उत्तम होता इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥ राजाको इस प्रकार विलाप करता हुआ देखकर भगवान् हरिने उसको युक्ति युक्त वचनोंसे निवारित करके कहा ॥ १३ ॥

विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतं भुवि ॥ दंपत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः ॥११॥ उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल ॥ यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह ॥१२॥ एवं विलपमानं तं राजानं भगवान्हरिः॥ निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किं विषीदसि राजेंद्र क्व गता ते प्रियांगना ॥ न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ॥ १४ ॥ का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगः कीदृशस्तव ॥ प्रवाहरूपसंसारे नृणां नौतरतामिव ॥ १५ ॥ गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम् ॥ संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ॥ १६ ॥ अनया सह ते राजन्संयोगस्त्विह संवृतः ॥ भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा ॥ १७ ॥

भगवान् बोले हे राजन् ! तुम इतना विषाद क्यों करते हो ? तुम्हारी प्रियस्त्री कहां गई है ? तुमने क्या कभी शास्त्र श्रवण अथवा बुद्धिमानोंका आश्रय ग्रहण नहीं किया ॥ १४ ॥ तुम्हारी वह प्रिया कौन है ? और तुम कौन हो ? तुम्हारा संयोग किस प्रकार है ? और वह कहां हुआ था. हे राजन् ! नौकामें नदीपार जानेको जिस प्रकार मनुष्योंका क्षणकाल मिलन होता है इस प्रवाहरूप संसारमें स्त्रीपुत्रोंका मिलन भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १५ ॥ अतएव हे नृपवर ! इस समय तुम घरको जाओ वृथा रोनेसे क्या फल है मनुष्योंका संयोग और वियोग सर्वदाही दैवके अधीन है अतएव उसके लिये विलाप करना बुद्धिमान् मनुष्योंका कर्तव्य नहीं है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस स्त्रीके संग तुम्हारा मिलन

इसी स्थानमें हुआ था और तुमने उस विशालाक्षी कृशोदरी सुन्दरीको इसी स्थानमें छोडा है ॥ १७ ॥ तुमने उसके पितामाताको नहीं देखा काकताली के समान इस सरोवरमें ही प्राप्त हुई है. वह जिस प्रकार तुम्हारी हुई थी इसी प्रकार फिर तुमको छोड़ गई उसके लिये विलाप करना तुमको उचित नहीं है ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम अब वृथा शोक मत करो कालको अतिक्रम करनेमें कोई समर्थ नहीं होता तुम घर जाकर कालयोगमें पहलेके समान सम्पूर्ण भोग्यवस्तु भोग करो ॥ १९ ॥ वह वरवर्णिनी रमणी जिस प्रकार आई थी उसी प्रकार चली गई, तुम भी इसी प्रकार सबके प्रभु रहकर अपने राज्यमें पहले जिस प्रकार राजकार्य करते थे इस समय भी उसी प्रकार कार्य करो. क्योंकि यही

न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे ॥ काकतालीप्रसंगेन यद्भूतं तत्तथा गतम् ॥ १८ ॥ मा शोकं कुरु राजेंद्र कालो हि दुरतिक्रमः ॥ कालयोगं समासाद्य भुंक्ष्व भोगान्गृहे यथा ॥१९॥ यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी ॥ यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो ॥ २० ॥ रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी ॥ वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना ॥ २१ ॥ भोगः कालवशादेति तत्रैव प्रतियाति च ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि ॥ २२ ॥ नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः ॥ घटिकायंत्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ॥ २३ ॥

तुम्हारा एकान्त कर्तव्य है ॥२०॥ हे राजन् ! तुम विचार कर देखो कि, तुम्हारे दिनरात रोदन करनेपर भी वह रमणी फिर नहीं आवेगी, हे पृथ्वीन्द्र ! तब तुम क्यों वृथा शोक करते हो जाओ मेरे वचनसे योगमार्गमें मन समर्पणकर काल व्यतीत करते रहो ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण भोग्य वस्तु कालवशसे ही उपस्थित होती हैं और कालवशसेही चली जाती हैं. अतएव इस निष्फल संसार मार्गमें शोक करना कभी ज्ञानियोंको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ एकत्र सुखसंयोग और एकत्र दुःखसंयोग सर्वदा नहीं होता अतएव इस संसारमें सुख और दुःख स्थिर न रहकर

---

(१) काकतालीयन्याय यह है कि कोई कौवा दैवात् तालवृक्षपर आकर बैठा और वह तालका फल उसके बैठनेसे नीचे गिरा और वहां बैठे पुरुषको फल अकस्मात् प्राप्त होगया.

घटिकायन्त्रके समान सदाही भ्रमण करता है ॥२३॥ अतएव हे नृपवर ! मन स्थिरकरके तुम यथा सुखसे राज्य करते रहो अथवा अपनी सन्तानको राज्यका भार समर्पण कर वनको चले जाओ ॥ २४ ॥ यह प्राणियोंको क्षणभंगुर मनुष्य देह दुर्लभ है इसके प्राप्त होनेमें सदा आत्मसाधन करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! लिङ्ग और रसनादि इंद्रियोंसे पशुभी विषयरस आस्वादन करते हैं किन्तु एक मात्र ज्ञान मनुष्यदेहमें अधिक दिखाई देता है अन्य कुत्सित योनिमें वह दिखाई नहीं देता ॥ २६ ॥ इसी ज्ञानके अनुसार कांताका शोक त्यागन कर घरको

मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय साम्प्रतम् ॥ २४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभंगुरः ॥ तस्मिन् प्राप्ते तु कर्त्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम् ॥ २५ ॥ जिह्वोपस्थरसो राजन्पशुयोनिषु वर्तते ॥ ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ॥२६॥ तस्माद्गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम् ॥ मायेयं भगवत्यास्तु यया संमोहितं जगत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् ॥ कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमंदिरम् ॥ २८ ॥ दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम् ॥ वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च ॥ २९ ॥ गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवंत मधोक्षजम् ॥ तमच्युतं जगन्नाथं हसंतं मां पुनः पुनः ॥ ३० ॥ वंचितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत् ॥ स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया ॥ ३१ ॥

जाओ यह भगवतीकी माया है जिसने सब जगत् मोहित कर रक्खा है ॥२७॥ नारदजी बोले भगवान् हरिके यह वचन सुनकर राजा देवदेव कमलापतिको प्रणाम कर स्नानादि विधिपूर्ण कर अपने मंदिरको गये ॥ २८ ॥ अपने पौत्रको राज्य देकर वैराग्यको प्राप्त हो राजाने वनको जाकर तत्वज्ञानकी प्राप्ति की ॥ २९ ॥ राजाके गमन करनेपर भगवान् अच्युत मेरी ओर वारंवार देखकर हँसते थे यह देखकर मैंने उन देव देव जगन्नाथसे कहा ॥ ३० ॥ हे देव ! आपने मुझको छला है मायाका बल अत्यन्त महत् हैं वह मैंने इस समय जान लिया. हे

जनार्दन ! मैंने स्त्रीरूप होकर जो सब कार्य किये इस समय वह सब स्मरण करता हूं ॥ ३१ ॥ हे हरे ! मेरे सरोवरके जलमें प्रविष्ट हो स्नान करते ही मेरा पूर्वज्ञान क्यों दूर हुआ ? ॥३२॥ और जब मैंने नारीदेहको प्राप्त हो शचीदेवीको इन्द्र प्राप्तिके समान राजाको पतिरूपसे प्राप्त किया तब मैं मोहित क्यों हुआ ॥ ३३ ॥ मेरी वही पूर्वकामना वही पुरातन जीवात्मा और वही पुरातन सूक्ष्म देह यह सभी विद्यमान थे तब क्यों मेरी स्मृतिका नाश हुआ ? ॥३४॥ हे प्रभो ! इस ज्ञाननाशके विषयमें मुझको महान् संशय उत्पन्न होता है हे रमानाथ ! आप आज इसका यथार्थ कारण वर्णन करके मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ३५ ॥ मैंने स्त्री भावको प्राप्त हो अनेक भोग्य वस्तु भोग की हैं और सुरापान तथा अहित द्रव्य भी

ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे ॥ विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरे ॥ ३२ ॥ योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो॥ पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठ पुलोमी वासवं यथा ॥ ३३ ॥ मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः ॥ लिंगं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरेः ॥ ३४ ॥ विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो ॥ कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत् ॥ ३५ ॥ नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम् ॥ ३६ ॥ मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम् ॥ जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा ॥ ३७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पश्य नारद मायावी त्रिलासोऽयं महामते ॥ देहेषु सर्वजन्तूनां दशा भेद ह्यनेकशः ॥ ३८ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा ॥ तथा देहांतरे प्राप्ते संदेहः कीदृशः पुनः ॥ ३९ ॥

भोजन किया है हे मधुसूदन ! इन सबका क्या कारण है ? ३६ ॥ तब मैंने अपनेको नारद नहीं जानसका मैं इस समय जिस प्रकार भली भाँति समस्त जानसका हूं उस समय वह कुछ भी क्यों नहीं जान सका ? ॥ ३७ ॥ केशवने कहा हे बुद्धिमान् नारद ! यह सब मायावी ईश्वरकी मायाका विलास मात्र है तुमको जानना चाहिये कि, सम्पूर्ण जन्तुओंके देहकी अनेक प्रकार अवस्था होती है ॥ ३८ ॥ यदि देहीगणोंके केवल देहकीही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चार प्रकारकी दशा होती है तो देहान्तर प्राप्त होनेसे जो दशा विपर्यय होता है इसमें तुम

सन्देह क्यों करते हो? ॥ ३९ ॥ मनुष्य जब सोता है तब कोई विषय नहीं जान सकता सुन भी नहीं सकता और कह भी नहीं सकता किन्तु फिर जानकर सब विषय भलीभाँति जान सकता है ॥ ४० ॥ निद्रासे चित्त चलायमान होता है तब स्वप्नसे मनकी अनेक प्रकार अवस्थाका भेद और मनोभावका अनेक भाँति प्रकार भेद होता है ॥ ४१ ॥ मत्त हाथी मुझको मारता हुआ आता है मैं भागनेमें समर्थ नहीं होता क्या करूं कहां जाऊं मुझको शीघ्र भागनेका स्थान नहीं है स्वप्नावस्थामें ऐसा अनेक प्रकार मनका भाव होता है ॥ ४२ ॥ और कभी स्वप्नमें दिखाई देता है कि, हमारे मृत पितामह हमारे घर आये हैं उनको मैं देखता हूं और उनके संग अनेक बातचीत करता हूं बरन् उनके संग एकत्र भोजन

सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वहत्यपि ॥ पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञानमशेषतः ॥ ४० ॥ निद्रया चाल्यते चित्तं भवंति स्वप्नसम्भवाः ॥ नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः ॥ ४१ ॥ गजो मां हंतुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने ॥ किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥ ४२ ॥ मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् ॥ संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सह मन्यते ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने दृष्टं सुखासुखम् ॥ स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि ॥ ४४ ॥ स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः ॥ तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल ॥ ४५ ॥ नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम् ॥ गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः ॥ ४६ ॥ कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानतो मंदधीः पुनः ॥ माया गुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥ ४७ ॥

भी करता हूं ॥ ४३ ॥ स्वप्नमें सुखदुःख जो कुछ अनुभव होता है मनुष्य जागकर वह सब जान सकता है और स्वप्नका वृत्तान्त स्मरण कर विस्तारपूर्वक कह सकता है ॥४४॥ हे नारद ! स्वप्न देखनेके समय स्वप्नमें दीखे सब विषय भ्रमयुक्त होनेसे कोई इस प्रकार निश्चितरूपसे नहीं जान सकता मायाका प्रभाव भी इसी प्रकार दुर्ज्ञेय जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे मुनिवर ! मायाके तीनों गुण परम दुर्गम प्रभावका परिमाण है जब मैं शम्भु और ब्रह्मा कोई नहीं जान सकते ॥४६॥ तब दूसरा कौन मन्दबुद्धि मनुष्य उनकी सीमा जान सकता है अतएव हे नारद !

इस संसारके बीच मायाका गुण जाननेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४७ ॥ यह स्थावर जंगमात्मक जगत् मायाके गुणसे निर्मित है अर्थात् बना है माया गुणके विना यह संसार किंचिन्मात्र भी वर्त्तमान नहीं रहसकता॥४८॥ मैं सत्वगुण प्रधानहूं और तमोगुण मुझमें विद्यमान रहता है मैं भुवनेश्वर होकर भी इन तीनों गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता प्रजापति रजःप्रधान हैं किन्तु सत्व और तमोगुण कभी त्याग करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५० ॥ और महादेव तम प्रधान हैं किन्तु उनमें भी सत्व और रजोगुण सदाही विद्यमान रहता है. अतएव

गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ विना गुणैर्न संसारो वर्तते किंचिदप्यदः ॥ ४८ ॥ अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः ॥ न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः ॥ ४९ ॥ तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः ॥ तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल ॥ ५० ॥ शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः ॥ गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः ॥ ५१ ॥ तस्यान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ॥ माया विनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे ॥ ५२ ॥ दृष्टा माया त्वयाऽद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठ स्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम् ॥ माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम् ॥ १ ॥

कोई पुरुष भी इन तीनों गुणोंसे अलग होकर नहीं रह सकते यह मैंने श्रुतिमें निर्दिष्ट कर रक्खा है ॥ ५१ ॥ अतएव हे मुनिवर ! मायानिर्मित परम दुर्घट इस अपार संसारमें मोह त्यागकर ब्रह्मरूपिणी भगवतीकी उपासना करनीही उचित है ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! तुमने इस समय तो मायाका प्रभाव देखा है, मायाजनित अनेक प्रकारके भोग्य द्रव्य भी भोग किये हैं और मायाका चरित्र जो कि अद्भुत है वह भी जान गये हो तो फिर इस विषयमें मुझसे क्यों पूँछते हो ॥५३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ व्यासजीने कहा हे

महाभाग ! मैंने पहले महर्षि नारदसे मायाका माहात्म्य जिसप्रकार सुना है वह सम्पूर्ण आपसे भलीभाति प्रकाश करके कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ मैंने नारदका नारीदेह प्राप्तिविषयक उपाख्यान सुनकर उन सर्वविद्गुणोंके अग्रगण्य महर्षिसे पूँछा था ॥ २ ॥ हे मुनिवर ! तदनन्तर हरिने आपसे क्या कहा और आपके संग वह देवदेव लक्ष्मीपति कहां चले गये ॥ ३ ॥ नारदजीने कहा उस मनोहर सरोवरमें भगवान्‌ने मुझसे यह सब कह गरुड़पर चढ़ वैकुण्ठधाममें जाने की इच्छा की ॥ ४ ॥ तब उन कमलापतिने मुझसे कहा कि तुम भी अपने अभिलषित

मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः ॥ श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम् ॥ २ ॥ ब्रूहि पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा ॥ क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः ॥३॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे ॥ आरुह्य गरुडं गंतुं वैकुंठे च मनो दधे ॥ ४ ॥ मामुवाच रमाकांतो यथेष्टं गच्छ नारद ॥ एहि वा मम लोकं स्वं यथारुचि तथा कुरु ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकं गतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम् ॥ भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः ॥ ६ ॥ वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् ॥ ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने ॥७॥ चिंतयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम् ॥ गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः ॥ ८॥ तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिंतातुरं तु माम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिंतातुरः सुतः ॥ ९ ॥ स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम ॥ केनापि वंचितोऽसि त्वं दृष्टं वा किंचिदद्भुतम् ॥ १० ॥

स्थानमें जाओ अथवा यदि तुम्हारी इच्छा होतो मेरे संग गोलोकधाममें भी चल सकते हो ॥५॥ तब मैं प्रणाम और सम्भाषण कर ब्रह्मलोकको चला गया और भगवान् भी तत्काल गरुड़पर चढ ॥६॥ सुखपूर्वक वैकुण्ठमें चले गये जनार्दनके चले जानेपर फिर मैं भी मनमें सब प्रकार ॥७॥ अद्भुत सुख और दुःखकी चिन्ता करते करते ब्रह्मलोकमें पिताके समीप गया अनन्तर प्रणाम कर जैसे ही उनके सामने खडा हुआ ॥८॥ वैसेही पिताने मुझको चिन्तातुर देखकर पूँछा ब्रह्मा बोले हे महाभाग ! तुम कहाँ गये थे ? और तुमको चिन्तातुर क्यों देखता हूं ॥९॥ हे मुनिसत्तम

आज मैं तुम्हारा मन सावधान नहीं देखता मुझको बोध होता है कि, किसीने तुमको छला है अथवा तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है॥ १०॥ हे पुत्र ! आज मैं तुमको व्याकुल और ज्ञानहीनके समान क्यों देखता हूं नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार पूँछनेपर फिर मैंने कुशासनपर बैठ ॥ ११ ॥ माया माहात्म्य जनित अपना समस्त वृत्तान्त उनसे कहा हे पितः ! मैं महाप्रभावशाली विष्णुसे छला गया हूं ॥ १२ ॥ उन्होंने मुझको स्त्रीभाव देकर अनेक वर्ष उसी भावमें रक्खा था उसमें भी मैंने पुत्रशोकका महा दुःख अनुभव किया है ॥ १३ ॥ अनन्तर उन्होंनेही मुझको माधुर्यमय वचनामृतसे फिर ज्ञान प्रदान किया है फिर सरोवरमें स्नान करके यह पुरुषरूपी नारद हुआ हूं ॥ १४ ॥ हे

विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत ॥ नारद उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥ ११ ॥ तमब्रुवं स्ववृत्तांतं मायाबलसमुद्भवम् ॥ वंचितोऽहं पितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १२ ॥ स्त्रीभावं गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥ १३ ॥ प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च ॥ पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान् ॥ १४ ॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मन्यन्मोहमगमं तदा ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥ १५ ॥ एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् ॥ ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम् ॥१६॥ अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम् ॥ कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् ॥ मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत ॥ १८ ॥

पितः ! मैं जो ऐसे मोहको प्राप्त हुआ था उसका क्या कारण है और मैं पूर्वज्ञान भूल एवं बलप्रेरित हो तत्काल मोहमयभावको प्राप्त क्यों हुआ ॥ १५ ॥ हे तात ! मायाका बल जो इस प्रकार कठिनतासे छूटने योग्य है वह मैं पहले नहीं जानता था मायाके बलसेही ज्ञानकी हानि होती है मायाबलही मोहका मूल है यह मैंने भलीभाँति अनुभव किया है ॥१६॥ और उससे मङ्गल अथवा अमङ्गल जो कुछ है वह भी जान गया हूं. हे पितः ! आपने उस दुर्घट अचिन्त्य मायाको किस प्रकार जीता है वह आप मुझसे भी कहिये॥ १७॥ नारदजी बोले हे तपोधन ! मेरे इस प्रकार

कहनेपर फिर पिताने मेरी चिन्ताका कारण जानकर तदनन्तर मुझसे प्रीतिपूर्ण वचनोंद्वारा कुछ हँसकर कहा ॥१८॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! देवता लोग, महात्मा, मुनि, ज्ञानी, तापस और वायुभोजी योगी भी इस मायाके जय करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ १९ ॥ हे नारद ! मायाका बल ऐसा महत् है कि मैं विष्णु और उमापति शंभु इत्यादि ॥ २० ॥ कोई उस मायाके जाननेमें समर्थ नहीं होते कालकर्म और स्वभावादिके कारण वह महामाया ही इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है ॥ २१ ॥ हे वत्स ! तुम उसको अत्यन्त दुर्ज्ञेय जानो. हे मेधाविन् ! तुम शोक मत करो और उस मायाके महत् बलविषयमें भी आश्चर्य करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि उसमें हम सम्पूर्ण ही मोहित

ब्रह्मोवाच ॥ दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः ॥ तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः ॥ १९ ॥ नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम् ॥ विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शंभुरुमापतिः ॥ २० ॥ दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥ २१ ॥ शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले ॥ न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः ॥२२॥ नारद उवाच ॥ पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः ॥ आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वमपि संत्यज्य मोहं कौरवनाशजम् ॥ कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरुसत्तम ॥ २४ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥२५॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदो राजन्गतो मां प्रतिबोध्य च ॥ अहं तच्चिंतयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा ॥ २६ ॥

हो रहे हैं ॥ २२ ॥ नारदजी बोले हे द्वैपायन ! पिताके मुझसे इस प्रकार कहनेपर फिर मेरा आश्चर्य दूर होगया. तदनंतर मैं पिता पद्मयोनिकी आज्ञा लेकर तीर्थोंमें विचरण करनेको निकला क्रमानुसार सम्पूर्ण प्रधान २ तीर्थ देखते देखते अब इस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ हूं ॥ २३ ॥ अतएव हे मुनिसत्तम ! तुम भी कुरुकुलनाशजनित शोक त्याग कर इस स्थानमें परम आनन्द सहित वास कर समय बिताते रहो ॥ २४ ॥ अपने किये शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगने होते हैं हृदयमें यह स्थिर निश्चय करके सुखपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजीने

कहा है राजन् ! महर्षि नारद यह कहकर मुझे तत्त्वबोध उदय कराय यथेच्छ स्थानमें चले गये मैं तब नारदजीके कहे उन सब वचनोंकी मनमें चिन्ता करने लगा ॥२६॥ मैंने सरस्वतीके तटपर वास कर अत्युत्तम सारस्वतकल्पमें काल व्यतीत करनेके निमित्त यह देवीभागवत बनाई थी ॥ २७ ॥ यह महापुराण अत्युत्तम है इससे सम्पूर्ण संशय नष्ट होते हैं, क्योंकि यह वेदके प्रमाणसे रचित है इसमें अनेक प्रकार के उपाख्यान वर्णित हैं ॥ २८ ॥ अतएव हे नृपवर ! इसमें कभी संदेह करना उचित नहीं है जिसप्रकार इन्द्रजालिक मनुष्य काठकी पुतलीको हाथमें लेकर ॥ २९ ॥ अपने इच्छानुसार नचाता है यह जगमोहिनी मायाभी ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्त देव और मनुष्यके सहित इस स्थावरजंगमात्मक जगत्को

स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे ॥ कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मयाः ॥ २७ ॥ पुराणमुत्तमं भूप सर्वसंशयनाशनम् ॥ नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥ २८ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पांचालीं दारवीं करे ॥ २९ ॥ कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम् ॥ तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजंगमम् ॥३०॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सदेवासुरमानुषम् ॥ पंचेंद्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम् ॥ ३१ ॥ गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः ॥ कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः ॥३२॥ भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः ॥ शांतो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु विविधा यतः ॥ ३३ ॥ तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत् ॥ न भवत्येव संसारे रहितस्तंतुभिः पटः ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार नचाती है. हे राजन् ! पञ्चेन्द्रिययुक्त जो मन चित्तके अनुसार वर्तता है॥ ३० ॥ ३१ ॥ इसमें मायाके तीनों गुण हैं उनको सर्वथा कारण जानना चाहिये. क्योंकि इनसेही कार्यकी उत्पत्ति है यह भलीभाँति निश्चय हुआ है ॥३२॥तब अनेक प्रकार मायाके गुणोंसे जो भिन्नः भिन्न स्वभावयुक्त जीवोंकी उत्पत्ति होगी इसमें फिर क्या सन्देह है ? उस मायाके गुणसे अनेक प्रकार इसी कारण संसारमें कोई शान्तकोई घोरतर मूर्ख होता है ॥ ३३ ॥ वह जब कि मायाके गुणसे उत्पन्न है तब किस प्रकार उनको छोड़ सकता है ? जिस प्रकार तन्तुके विना वस्त्रकी

उत्पत्ति असंभव है ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार इस संसारमें मायाके तीनों गुण विना मनुष्योंकी उत्पत्ति भी असंभव है यह स्थिर निश्चय जानना चाहिये इसी प्रकार देवदेह नरदेह अथवा तिर्यग्देह हो ॥ ३५ ॥ गुणरहित होकर कोई भी उत्पन्न नहीं हो सकता जैसे मृत्तिकाके विना घट नहीं होता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनोंभी तीनों गुणोंका आश्रय करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी कारण वह कभी प्रसन्न कभी अप्रसन्न और कभी विषादयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा जब सत्वगुणमें स्थित होते हैं तब वह ज्ञानयुक्त और प्रीतियुक्त एव शान्त तथा समाधिमान् होते हैं

तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः ॥ देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप ॥ ३५ ॥ गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथा प्रीतियुताः पुनः ॥ तथा विषादयुक्तास्ते भवंति गुणयोगतः ॥ ३७ ॥ ब्रह्म ।कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शांतः समाधिमान् ॥ प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥३८॥ पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः ॥ तदा भवेद्घोररूपः सर्वत्राऽप्रीतिसंयुतः ॥ ३९ ॥ यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः ॥ तदा विषादसंपन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥४०॥ माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितःसर्वथा भवेत् ॥ यदा शांतःप्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानसमन्वितः ॥ ४१ ॥ स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् ॥ घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥ ४२ ॥ रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् ॥ रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥

॥ ३८ ॥ और जब सत्वगुण रहित तथा रजोगुण युक्त होते हैं तब सर्वत्र अप्रीति युक्त घोररूप धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ और जब वह भलीभाँति तमोगुण युक्त होते हैं, तब विषादयुक्त हो मूढताको प्राप्त होते हैं. इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ माधव भी जब सत्वगुणका आश्रय करते हैं, तब वह शान्त प्रसन्न और ज्ञान युक्त होते हैं ॥ ४१ ॥ और रजोगुणकी अधिकता होनेसे वह प्रीतिरहित होकर सब भूतोंके प्रति घोररूप धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ रुद्रदेव भी जब सत्वगुण युक्त होते हैं. तब प्रसन्न और शान्त होते हैं और

रजोगुण होनेसे वह भी फिर प्रीति छोड कर घोररूप धारण करते हैं ॥ ४३ ॥ और जब वह तमोगुणका आश्रय ग्रहण करते हैं, तब मूढ और विषादसंपन्न होते हैं. हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव यह भी जब गुणोंके अधीन हैं ॥ ४४ ॥ तथा सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय राजा लोग युगयुगमें मनुआदि चौदह मन्वन्तरोंके अधिपति हैं ॥ ४५ ॥ जब यह भी सब मायाके आधीन हुए तो अन्यान्य साधारण मनुष्यादि जीवोंके पक्षमें उस विषयका क्या कहना है ? हे नृपवर ! सुरनरादि समन्वित यह सब जगत् मायाके अधीन है ॥ ४६ ॥ इस विषयमें कभी सन्देह नहीं करना चाहिये संपूर्ण देहधारी मायाके अधीन हैं और मायाके वशमें होकरही सब कार्य करते हैं कभी स्वाधीन होकर कार्य करनेमें समर्थ

तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् ॥ एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ४४ ॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि ॥ मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगेयुगे ॥ ४५ ॥ अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुपम् ॥ ४६ ॥ तस्माद्राजन्न कर्तव्यः संदेहोऽत्र कदाचन ॥ देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥ ४७ ॥ सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽस्ति सर्वदा ॥ तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥ ४८ ॥ ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम् ॥ मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ४९ ॥ ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि ॥ तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥ ५० ॥ स्वमायां संतरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः ॥ भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥ ५१ ॥

नहीं होते ॥ ४७ ॥ वही माया फिर संवित् रूपसे परतत्वमें सदाही स्थित है. माया उन संवित् रूपिणी परमेश्वरीके आधीन और उनसे प्रेरित होकरही जीवोंके अन्तरमें निरन्तर समवाय सम्बन्धसे अनुसम्बद्ध होकर रहती है॥४८॥अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषगण उस मायाविशिष्ट मायाकी ईश्वरी सच्चिदानन्द स्वरूपिणी परब्रह्मरूपिणी संवित् रूप भगवतीका॥४९॥ध्यान आराधना और सदा उनका मन्त्र जप करनेसे वह उसके प्रति दयायुक्त हो अपनी माया संहार ॥ ५० ॥ और अपनी अनुभूपित प्रदान पूर्वक उस देही पुरुषको संसारके बन्धनसे छुड़ा देती हैं

यह संपूर्ण भुवन मायामय हैं इसी कारण वह ब्रह्मरूपिणी संवित् इनकी ईश्वरी हैं ॥ ५१ ॥ इस कारण वह त्रैलोक्यसुन्दरी भगवती भुवनेश्वरी नामसे विख्यात हुई हैं । हे भूमिपते ! यदि जीवोंका चित्त इस संवित् रूपमें आसक्त हो ॥५२॥ तो सद् असत् रूप माया कुछभी करनेमें समर्थ नहीं होती. अतएव सच्चिदानन्दरूपिणी भुवनेश्वरीके सिवाय दूसरे कोई देवता मायाके दूर करनेमें समर्थ नहीं होते. हेराजन् ! तुम कभी तमोराशि नाश करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ सूर्यप्रभा, चन्द्रप्रभा, विद्युत्प्रभा, इत्यादिही उसके नाशमें समर्थ होती हैं अतएव मायाका गुण

भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुंदरी ॥ तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा ॥ ५२ ॥ मायया किं भवेत्तत्र सदसद्रू तया नृप ॥ तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतांतरम् ॥ ५३ ॥ समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तमोराशिं नाश यितुं शक्तं नैव तमो भवेत् ॥ ५४ ॥ किंतु भानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्निप्रभादयः ॥ तस्मान्मायेश्वरीमंबां स्वप्रकाशां तु संविदम् ॥ ५५ ॥ आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये ॥ इति सम्यङ् मयाऽऽख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥ ५६ ॥ यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत ॥ ५७ ॥ यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तारेणोपपा दितः ॥ एतद्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ५८ ॥ देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च ॥ शिष्याय ज्येष्ठ पुत्राय गुरुभक्तियुताय च ॥ ५९ ॥

निवृत्त होनेके निमित्त प्रीतिपूर्वक उन मायाकी ईश्वरी स्वयंप्रभा सम्मित रूपिणी अम्बिकाकी ॥ ५५ ॥ आराधना करनी चाहिये. हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूंछा था वह वृत्रासुर वधादिके वृत्तान्तकी सब कथा वर्णन की ॥ ५६ ॥ अब और किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो ? यह पुराणका पूर्वभाग तुम्हारे निकट वर्णन किया ॥ ५७ ॥ जिसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है. यह भवानी माताका रहस्य जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ५८ ॥ परन्तु भक्त शान्त देवीकी भक्तिमें तत्पर शिष्य ज्येष्ठपुत्र गुरु भक्तिमें तत्परको देना चाहिये ॥ ५९ ॥

यह पुराण सब कथाओंका सारभूत है यह सब शास्त्रोंके समान सत्प्रमाणसे युक्त है जो इसको परम भावसे पढते हैं सुनते हैं वे पुरुष धनवान् और ज्ञानवान् होते हैं ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये पं. ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥ १८८४ श्लोकोंमें यह. षष्ठस्कन्ध पूर्ण हुआ ॥

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम् ॥ पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे भगवतीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य षष्ठस्कंधः समाप्तवान् ॥ १ ॥

दोहा—श्रीमाताके पदकमल, युगल भलीविधिध्याय । भाषा षष्ठ स्कन्धकी, सुन्दर लिखी बनाय ॥ १ ॥

वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत हरिको सदा, जनज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन श्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर"-(स्टीम्)-मुद्रण यन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत २०११, शकाब्दाः १८७६.

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते षष्ठस्कन्धः समाप्तः ॥

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कंधः प्रारभ्यते।

दोहा--श्रीजगदम्बापदकमल, प्रेमसहित मनलाय । भाषा सप्तमस्कंधकी, बहुविधि लिखित बनाय ॥ १ ॥

भुवनेशी गौरी शिवा, सकल सुमंगल मूल । श्रोता वक्ता पर रहही, जगन्मात अनुकूल ॥ २ ॥

सूतजीने कहा हे तापसगण ! परीक्षित्के पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने चन्द्र और सूर्यवंशका दिव्य उपाख्यान सुन आनंदित हो व्यासदेवजीसे फिर पूँछा ॥१॥ जनमेजय बोले हे प्रभु ! चंद्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके वंशका विस्तार सुननेकी मुझको अत्यंत इच्छा हुई है ॥ २ ॥ हे अनघ ! आप सब विषय जानते हैं अतएव चंद्र और सूर्यवंशका पापनाशन पवित्र आख्यान और राजाओंका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीभगवत्यै नमः ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैतां तापसा दिव्यां कथां राजा मुदाऽन्वितः ॥ व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः ॥ १ ॥ जनमेजय उवाच ॥ स्वामिन्सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम् ॥ तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ २ ॥ कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥ ३ ॥ ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम् ॥ देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक् ॥ ४ ॥ इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज विस्तराद्वदतो मम ॥ सोम सूर्यान्वयानां च तथाऽन्येषां समुद्भवम् ॥ ६ ॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माऽभूच्चतुराननः ॥ तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम् ॥ ७ ॥

कीजिये ॥ ३ ॥ वह चन्द्र और सूर्यवंशीय राजा पराशक्ति भगवतीके अत्यंतभक्त थे यह मैंने सुना है. हे मुनिवर ! देवीके भक्तोंकी चरित्रकथा सुनकर कौन मनुष्य विरक्त होता है ?॥४॥राजर्षिके यह कथा पूँछनेपर फिर सत्यवतीके पुत्र मुनिवर कृष्णद्वैपायनने प्रीतिसे प्रफुल्लितमन हो उनसे कहा ॥ ५ ॥ हे महाराज ! मैं चंद्र और सूर्यवंशीय राजा और इनके प्रसंगसे अन्यान्य राजाओंकी उत्पत्तिका विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं आप सावधान होकर सुनिये ॥६॥ विष्णुकी नाभिकमलसे चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए वह तपस्यामें निरत हो एकांत कथा दुर्ज्ञेया जो

जाननेमें न आवे महादेवी उन दुर्गाकी आराधना करने लगी ॥ ७ ॥ महादेवीने आराधनासे संतुष्ट होकर ब्रह्माजीको वरदिया यद्यपि वह सर्व लोक पितामह ब्रह्मा वर पाय जगत्को उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए किंतु वह सहसा मनुष्योंको उत्पन्न करनेमें समर्थ न हुए॥८॥तात्पर्य यह है कि यह सृष्टि परमात्मारूपिणी भगवती कर्तृक नित्यरूपसे रचित होनेपर चतुरानन ब्रह्मा मनमें अनेक प्रकारकी चिंता करके भी शीघ्र उसका विस्तार न करसके॥९॥अतएव प्रजापति ब्रह्माने प्रथम सात मानस पुत्र उत्पन्न किये. उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ यह सात मानस पुत्र कहकर विख्यात हैं ॥ १० ॥ इसके उपरांत उन प्रजापतिके रोषसे रुद्र, उत्संगसे नारद और दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष

तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः ॥ नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः ॥८॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः ॥ न विस्तारं जगामाशु रचिताऽपि महात्मना ॥९॥ "ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः" ॥ मरीचिरंगिराऽत्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः ॥ १० ॥ रुद्रो रोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् ॥ दक्षोंऽगुष्ठात्तथाऽन्येऽपि मानसाः सनकादयः ॥ ११ ॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नी जातासर्वांगसुंदरी ॥ वीरिणीनामविख्याता पुराणेषु महीपते ॥१२॥ असिक्नीति च नाम्ना स यस्यां जातोऽथ नारदः ॥ देवर्षिप्रवरः कामं ब्राह्मणो मानसः सुतः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन्यदुक्तं भवता वचः ॥ वीरण्यां नारदो जातो दक्षादिति महातपाः ॥ १४ ॥ कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तपसोत्तमः ॥ १५ ॥

उत्पन्न हुए. इस प्रकार सनकादि ऋषिलोग भी उनके मानस पुत्र थे ॥ ११ ॥ हे महीपते ! प्रजापतिके वाम अंगुष्ठसे दक्षकी स्त्री उत्पन्न हुई. वह सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या वीरिणी और असिक्नीनामसे संपूर्ण पुराणोंमें विख्यात है ॥ १२ ॥ देवर्षिप्रवर नारदने समयांतरमें उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया वह असिक्नी नामसे विख्यात थी ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने कहा है कि तपस्वी नारदने दक्षके औरससे और वीरिणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था इसमें मुझको संशय उत्पन्न हुआ है॥१४॥नारदमुनि एक तो ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर धर्म

ज्ञानयुक्त और तपस्वी लोगोंमें अग्रगण्य हैं. अतएव उन्होंने दक्षकी पत्नी वीरिणीके गर्भसे किस प्रकार जन्म ग्रहण किया ? ॥ १५ ॥ अच्छा, यदि यही होतो दक्षसे उनकी भार्याके गर्भमें नारदजीने जो जन्म ग्रहण किया था आप वही विचित्र कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! महात्मा नारदजीने अनेक प्रकार ज्ञानयुक्त होकर भी किसके शापसे पूर्वदेह त्यागकर फिर कैसे जन्मग्रहण किया ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा " जगत्को बढ़ानेके लिये असंख्य प्रजा उत्पन्न करो " स्वयंभू ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे यह कहकर प्रथम दक्षको आज्ञा दी ॥ १८ ॥ दक्ष प्रजापतिने पिताकी आज्ञा ले वीरिणीके गर्भसे बड़े बली वीर्यवान् पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन संपूर्ण दक्षके पुत्रोंको

विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च ॥ दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम् ॥ १६ ॥ पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मना ॥ नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणाऽसौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतो स्वयंभुवा ॥ १८ ॥ ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान् ॥ दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः ॥ उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः ॥ २० ॥ भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्रष्टुकामाः प्रजाः कथम् ॥ लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः ॥ २१ ॥ पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः ॥ कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः ॥ २२ ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम् ॥ समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति ॥ २३ ॥

प्रजाके बढ़ानेमें अभिलाषी देखकर देवर्षिनारदने कालसे प्रेरित होकर हँसते हँसते कहा ॥ २० ॥ तुमने पृथ्वीका परिमाण न जानकर किस प्रकार प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा की है ? अतएव तुम साधारणलोकोंमें हास्यके पात्र होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २१ ॥ परंतु पृथ्वीका परिमाण जानकर सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होनेसे वह सिद्ध होगा. किंतु इसके अन्यथा करनेसे कभी कार्य सिद्धि नहीं होगी, यही स्थित निश्चय जानना चाहिये ॥ २२ ॥ तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! पृथ्वीका वृत्तान्त न जानकर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो अतएव तुम्हारा कार्य किस प्रकार

सिद्ध होगा ? ॥ २३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! दैवयोगसे सहसा नारदजीका यह वचन सुनकर वह हर्यश्व इत्यादि पुत्र परस्पर कहने लगे कि यह मुनिवर जो बात कहते हैं सो सत्य है ॥ २४ ॥ पृथ्वीका परिमाण जानकर हम सुखपूर्वक प्रजाको उत्पन्न करेंगे वह सब इस प्रकार विचारकर पृथ्वीको देखनेके लिये चले गये ॥ २५ ॥ वह नारदजीके वचनसे उत्साहित हो सब पृथ्वी देखते देखते कोई पूर्वकी ओर और कोई दक्षिणकी ओर ॥ २६ ॥ कोई उत्तरकी ओर कोई पश्चिमकी ओर इच्छानुसार चले गये. पुत्रोंके चले जानेपर दक्ष उनको न देखकर

व्यास उवाच ॥ नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः ॥ अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा प्रमाण मूर्व्यास्तु सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ इति संचिंत्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितं भुवः ॥२५॥ तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च ॥ प्राच्यां केचिद्गताः कामं दक्षिणस्यां तथाऽपरे ॥ २६ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समंततः ॥ दक्षः पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम् ॥ २७ ॥ अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः ॥ तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः ॥ २८ ॥ नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल ॥ २९ ॥ प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः ॥ ३० ॥ जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा ॥ तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः ॥ ३१ ॥ शशाप नारदं रोषात्पुत्रशोकसमुद्भवात् ॥ दक्ष उवाच ॥ नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥

अत्यन्त शोकातुर हुए ॥ २७ ॥ परन्तु उन्होंने प्रजाकी इच्छासे कृतसंकल्प हो फिर अन्यान्य पुत्र उत्पन्न किये उनके वह सब पुत्र भी फिर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए ॥ २८ ॥ नारद मुनिने उनको देखकर भी पहलेके समान कहा कि तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! पृथ्वीका परिमाण न जानकर ॥ २९ ॥ किस कारणसे प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो ? नारदजीका वचन सत्यविचार मोहित हो ॥३०॥ पहले भ्राता जिस प्रकार चले गये थे वह भी इसी प्रकार चले गये दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको न देखकर कुपित हो ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे प्रगटहुए

क्रोधद्वारा नारदजीको शाप दिया. दक्षने कहा हे दुर्बुद्धे ! तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है अतएव नाशको प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ फलतः मेरे पुत्र नष्ट होनेके पापसे तुमको गर्भमें वास करना होगा और अधिक क्या कहूं तुमने मेरे पुत्रोंको स्थानभ्रष्ट किया है अतएव तुम अवश्य मेरे पुत्र होगे ॥ ३३ ॥ नारदजीने इस प्रकार शापित हो वीरिणीके गर्भसे जन्मग्रहण किया. इस प्रकार सुना है कि, इसके उपरान्त प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्या उत्पन्न की ॥ ३४ ॥ हे भूपते ! तब परमधर्मको जाननेवाले दक्षने पुत्रशोक त्यागकर उनमेंसे तेरह महात्मा

पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च ॥ पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः ॥ ३३ ॥ इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ३४ ॥ शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित् ॥ तासां त्रयोदशमदात्कश्यपाय महात्मने ॥३५॥ दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते ॥ द्वे चैव भृगवे प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥३६॥ द्वे चैवांगिरसे कन्ये तथैवांगिरसे पुनः ॥ तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा ॥ ३७ ॥ जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः ॥ रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नातिमायिनः ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ जनमेजय उवाच ॥ ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सुविस्तरम् ॥ सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः ॥ १ ॥

कश्यपको ॥ ३५ ॥ दश धर्मको, चन्द्रमाको सत्ताईस, भृगुको दो, अरिष्टनेमिको चार, कृशाश्वको दो और शेष दो कन्या अङ्गिराको दीं. उनके पुत्र और पौत्र देवता तथा दानव ॥ ३६ ॥ बलयुक्त हो परस्पर विरोधी हुए. वह सभी शूर और अत्यन्त मायावी थे. अतएव राग और द्वेषसे मोहित होकर परस्पर विरोध करने लगे ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा हे महाभाग ! भलीभांति ज्ञानयुक्त जिन सब राजाओंने सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया था आप उनका वंश विस्तारपूर्वक वर्णन

कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! पहले ऋषिसत्तम नारदके मुखसे सूर्यवंशका विस्तार सहित वृत्तान्त जिस प्रकार सुना है, अब मैं वही अविकल वर्णन करता हूं सुनो ॥ २ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि इच्छानुसार भ्रमण करते करते शोभायमान सरस्वतीके तटपर मेरे पवित्र आश्रममें आये ॥ ३ ॥ उनको देख मैं उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाय प्रणामकर सन्मुख खडा हुआ। फिर उनको आसनपर बैठाय आदर सहित उनकी पूजा की ॥४॥ इस प्रकार यथाविधानसे पूजाकर उनसे कहा हे मुनिवर ! आप विश्वके पूजनीय हैं अतएव आपके आनेसे मेरा आश्रम पवित्र हुआ ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ ! आप राजाओंके चरित्रयुक्त उपाख्यान कहिये सातवें मनुके वंशमें जो सब राजा विख्यात हैं ॥ ६ ॥

व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात् ॥२॥ एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ आजगामाऽऽश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः ॥३॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा ॥ ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वाऽर्हणमथादरात् ॥ ४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम् ॥ पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै ॥ ५ ॥ कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम् ॥ राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले ॥ ६ ॥ तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम् ॥ श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन्सूर्यवंशस्य विस्तरम् ॥७॥ समाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम् ॥ इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित् ॥८॥ उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदाऽन्वयम् ॥ नारद उवाच ॥ शृणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम् ॥ ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपंकजसंभवः ॥ १० ॥

उनकी उत्पत्तिके विषयमें तुलना नहीं है और उनके चरित्रभी अत्यन्त अद्भुत हैं ॥ ७ ॥ हे मुनिवर ! आप स्थलविशेषसे कभी संक्षेप और कभी विस्तारसहित उनका वर्णन कीजिये हे राजन् ! मेरे इस प्रकार पूँछनेपर परमार्थवित् नारदजी॥८॥प्रीतिसहित हँसते हँसते मुझसे प्रसन्नमन हो सूर्यवंशका वृत्तान्त वर्णन करने लगे नारदजी बोले हे सत्यवतीतनय ! राजाओंके वंश वृत्तान्त अत्यन्त पवित्र ॥ ९ ॥ और कानोंको सुखदायक हैं विशेषकर इस अत्युत्तम वृत्तान्त कर्णमें प्रविष्ट होनेसे धर्म और ज्ञान प्राप्त होता है अतएव आप उसको सुनिये. पूर्व कालमें ब्रह्माने विष्णुकी नाभि-

कमलसे उत्पन्न होकर ॥ १० ॥ जगत्को उत्पन्न किया. यह कथा पुराणमात्रमें प्रसिद्ध वर्णित है उन विश्वसंसारके आत्मस्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ सृष्टिकर्ता स्वयंभूने सृष्टिके आरम्भ समयमें दशहजार वर्ष तपस्या की उस तपस्याके प्रभावसे वह सृष्टि करनेकी विशेषशक्ति प्राप्त कर सम्पूर्ण जगतको उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हुए. उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे देवीकी आराधना करके जिस प्रकार अत्युत्तम शक्ति प्राप्त की ॥१२॥ वैसेही प्रथम शुभ लक्षणयुक्त मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया उनमें मरीचि सृष्टिकार्यमें प्रसिद्ध हुए थे ॥१३॥ उनके पुत्र कश्यप भी सबके सन्मानित

विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽसौ स्वयंभूः सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा ॥ सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥ १२ ॥ पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्छुभलक्षणान् ॥ मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः कश्यपः सर्वसंमतः ॥ त्रयोदशैव तस्यान्भार्या दक्षसुताः किल ॥ १४ ॥ देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी ॥ १५ ॥ देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु ॥ तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृपः ॥ १६ ॥ तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशनिवर्धनः ॥ नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥१७॥ तेषां नामानि राजेंद्र शृणुष्वैकमनाः पुनः ॥ इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ १८ ॥ नरिष्यंतस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ १९ ॥

और विख्यात थे. उनकी तेरह भार्या और वह सभी दक्ष प्रजापतिकी कन्या थीं ॥ १४ ॥ देवता, दैत्य, यक्ष, पन्नग, पशु और पक्षी सभी उनसे उत्पन्न हुए इसी लिये उसको काश्यपी सृष्टि कहते हैं ॥ १५ ॥ देवताओंमें सूर्य विशेष विख्यात हैं. उनका दूसरा एक नाम विवस्वान् है विवस्वतके पुत्र वैवस्वतमनु हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने राजा होकर अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की इनके सिवाय मनुके नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उनके नाम एकाग्र होकर सुनिये. नाभाग, धृष्ट, शर्याति ॥१८॥ नारिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करूष, पृषध्र, यह नौ मनुके पुत्र हैं ॥१९॥

मनुके दूसरे पुत्र इक्ष्वाकुने प्रथम जन्म ग्रहण किया उनके सौ पुत्र हुए उनमें आत्मवान् विकुक्षिही बडे पुत्र थे ॥ २० ॥ मनुके अनन्तर उत्पन्न हुए नौ पुत्रोंमेंसे कितनोंही का वंश विस्तार संक्षेपसे वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ २१ ॥ नाभागके पुत्र अम्बरीष वह अत्यन्त सत्यसन्ध पराक्रमी और धर्मज्ञानी हुए थे अतएव वह सर्वदा न्यायके अनुसार प्रजाका पालन करते ॥ २२ ॥ धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए उन्होंने क्षत्रिय होकर भी ब्रह्म स्वरूपता प्राप्त की. वह स्वभावसे ही संग्राममें कातर थे और सदा ब्रह्म कार्यका नुष्ठान करते रहते ॥२३॥ शर्यातिसे आनर्त्तनामसे विख्यात पुत्र और रूप लावण्यवती सुकन्या नामसे एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ राजा शर्यातिने

इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत ॥ तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान् ॥ २० ॥ नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय ॥ शूराणां मनुपुत्राणां मनोरंतरजन्मनाम् ॥ २१ ॥ नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदंबरीषः प्रतापवान् ॥ धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजापालनतत्परः ॥ २२ ॥ धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत ॥ संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा ॥ २३ ॥ शर्यातिस्तनयश्चा भूदानर्तो नामविश्रुतः ॥ सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता ॥ २४ ॥ च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाऽप्यंधाय सुंदरी ॥ मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह ॥ २५ ॥ विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महान्ब्रह्मन्कथायां कथितस्त्वया ॥ २६ ॥ यद्राज्ञा मुनयेऽधाय दत्ता पुत्री सुलोचना ॥ कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता ॥ २७ ॥ पुत्री यदा भवेद्राजा तदांऽधाय प्रयच्छति ॥ ज्ञात्वांऽधं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः ॥ २८ ॥

वह सुन्दरी कन्या अन्धे च्यवन ऋषिको दी किंतु मुनिने अन्धे होकर भी कन्याके चरित्रगुणसे सुन्दरनेत्र प्राप्त किये थे ॥ २५ ॥ मैंने सुना है कि सूर्यके दोनों पुत्र अश्विनी कुमारोंने फिर दृष्टिशक्ति दी थी जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! इस कथामें मुझको बड़ा सन्देह है ॥ २६ ॥ राजा शर्यातिने सुलोचना कन्या सुकन्या दृष्टिशक्ति विहीन च्यवन ऋषिको दी थी कन्या यदि कुरूप गुणहीन अथवा स्त्रियोंकेलक्षणसेरहित हो॥२७॥ तो राजाको वह कन्या अंधेको देनी संगत हो सकती है ? किंतु राजा शर्यातिने ऐसी सुमुखी कन्या उस ऋषिको अन्धा जानकर भी क्यों

दी ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपका सदा कृपापात्र हूं अतएव आप इसका कारण कहिये सूतजीने कहा परीक्षित्के पुत्र राजश्रेष्ठ जनमेजयका इस प्रकार वचन सुन ॥ २९ ॥ प्रसन्न हो द्वैपायन मुनिने हँसते हँसते कहा. व्यासजीने कहा वैवस्वतके पुत्र शर्यातिके ॥ ३० ॥ चार हजार विवाहिता स्त्रियें वह सब सुलक्षणोंसे भूषित सुन्दरी और सभी राजकन्या थीं॥३१॥विशेषकर वह सब राजपत्नियें पतिके प्रति प्रीति दिखाकर उनके मनोमत और प्रियपात्र हुई थीं परन्तु उन सब राजसीमन्तिनियोंमें सुकन्या नामक एक सुन्दरी कन्या थी॥३२॥उस चारुहासिनी पुत्रीको पिता

कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै ॥ २९ ॥ द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव ॥ व्यास उवाच ॥ वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः ॥३०॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः ॥ राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः ॥३१॥ पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुसंमताः ॥ एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुंदरी ॥ ३२ ॥ पितुः प्रिया च मातॄणां सर्वासां चारुहासिनी ॥ नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम् ॥ ३३ ॥ बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३४ ॥ दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपतिगणावृतम् ॥ पंचधा कमलोपेतं चंचरीकसुसेवितम् ॥३५॥ पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः ॥ सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमंडितम् ॥ ३६ ॥ वटाश्वत्थकदंबैश्च कदलीखंडराजितम् ॥ जंबीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥ ३७ ॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः कांचनद्रुमैः ॥ यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः ॥ ३८ ॥

और माता सभी प्यार करते थे. नगरके कुछेक दूर निर्मल जलसे पूर्ण मानसके समान एक मनोहर सरोवर था ॥ ३३ ॥ उसके उतरनेका मार्ग सोपान श्रेणियोंसे आबद्ध था. हंस, कारण्डव, चक्रवाक ॥३४॥ दात्यूह, सारस, और अन्यान्य पक्षी उसके जलमें क्रीडा करते, पांच प्रकारके कमल उसमें खिले हुए थे और भौंरे उसमें विराजमान थे ॥ ३५ ॥ पार्श्वमें जाल, तमाल, सरल, पुन्नाग, अशोक ॥ ३६ ॥ वट, अश्वत्थ, कदम्ब, कदली, श्रेणी, जम्बीरी, खर्जूर, पनस ॥ ३७ ॥ गुवाक, पुगवृक्ष नारियल, केतक, कांचन इत्यादि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त और उनके बीचबीचमें

शुभ्र वर्ण यूथिका और शल्लिका इत्यादि लता तथा सम्पूर्ण गुल्म शोभायमान थे ॥ ३८ ॥ विशेषकर उस बीचमें जम्बु, आम्र, तिन्तिडी, इमली, करञ्ज, कुटक, पलास, निम्ब, खदिर, बिल्व और आमलेके वृक्ष शोभायमान थे ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें मोर केकारव और कोकिलायें मनोहर कण्ठ ध्वनि करती थीं उसके समीप वृक्षोंसे युक्त पवित्र स्थानमें ॥ ४० ॥ शान्तचित्त तपस्वी प्रधान भृगुके पुत्र च्यवन मुनि वास करते थे. वह स्थान निर्जन था । इस स्थानमें तपस्या करनेसे कोई विघ्न नहीं होता था ॥ ४१ ॥ मुनिवर इस प्रकार मनमें विचार दृढ आसनपर बैठे और समाहित हो मौनावलम्बन तथा वायु निरोधपूर्वक तपानुष्ठानमें निरत थे ॥ ४२ ॥ फलतः तपोनिधि भार्गव इन्द्रियमें संयत और आहार

जंब्वाम्रतिंतिणीभिश्च करंजकुटकावृतम् ॥ पलाशनिंबखदिरबिल्वामलमंडितम् ॥ ३९ ॥ बभूव कोकिलारावकेकास्वनविराजितम् ॥ तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते ॥४०॥ भार्गवश्च्यवनः शांतस्तापसः संस्थितो मुनिः ॥ ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः ॥ ४१ ॥ कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः ॥ इंद्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥ ४२ ॥ जलपानादिरहितो ॥ ध्यायन्नास्ते परांबिकाम् ॥ स वल्मीकोऽभवद्राजल्लँताभिः परिवेष्टितः ॥४३॥ कालेन महता राजन्साकीर्णः पिपीलिकैः ॥ तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिंड इव सर्वतः ॥ ४४ ॥ कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः ॥ आजगाम सरो राजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ शर्यातिः सुंदरीवृंदसंयुतः सलिलेऽमले ॥ क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे ॥ ४६ ॥

तथा जलपानादि त्यागकर निरन्तर उन सच्चिदानन्दरूपिणी भगवतीके ध्यानमें निमग्न थे । हे राजन् इस प्रकार ध्यान करते करते उनके शरीरपर वल्मीक हो गई यह वल्मीक सर्वत्र लतासे ढक गई॥ ४३ ॥ हे राजन्! बहुत काल व्यतीत होनेपर पिपीलिकाओंसे ढक गई और अधिक क्या कहूं तिसकाल वह बुद्धिमान् मुनिवर भलीभांति आवृत हो मट्टीके पिण्डके समान स्थित रहे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! एक समय महीपाल शर्याति उपवनमें विहार करनेकी इच्छासे कामिनियोंके सहित इस अत्युत्तम सरोवरमें आये अवनीपति शर्याति सुन्दर स्त्रियोंसे युक्त हो कमलों करके अति विमल जलके मध्य क्रीडा करनेमें एकान्त आसक्त हुए ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

चपलाके समान रूप यौवन सम्पन्न चञ्चला राजकन्या सुकन्या वनमें आय अपनी सखियोंके सहित इधर पुष्प बीनते बीनते विहार करने लगी ॥ ४७ ॥ सुकन्या सम्पूर्ण अलंकारोंसे सज्जितहोकर चरण स्थित नूपुरके मनोहर रुनझुन शब्द सहित भ्रमण करती हुई क्रमानुसार च्यवन ऋषिकी वल्मीकके समीप उपस्थित हुई ॥ ४८ ॥ वह क्रीड़ामें आसक्त उस वल्मीकके समीप बैठगई. बैठतेही वल्मीकमेंसे खद्योतके समान ज्योतिःपदार्थ देखा ॥ ४९ ॥ यह क्या है ? इस प्रकार मनमें विचार कर उस कृशोदरीने इसको उखाड़नेकी इच्छासे काँटा ग्रहण किया और तत्काल उसको

सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता ॥ सुमनांसि विचिन्वंती चञ्चला चञ्चलोपमा ॥ ४७ ॥ सर्वाभरणसंयुक्ता रणच्चरणनूपुरा ॥ चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समाददत् ॥ ४८ ॥ क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः ॥ ददर्श चास्य रंध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी ॥ ४९ ॥ किमेतदिति संचिंत्य समुद्धर्तुं मनो दधे ॥ गृहीत्वा कंटकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी॥५०॥ सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा ॥ विचरंती सुकेशांता मन्मथस्येव कामिनी ॥ ५१ ॥ तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकंठस्तपोनिधिः ॥ तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः ॥ ५२ ॥ दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने ॥ मा भिंदस्वाद्य वल्मीकं कंटकेन कृशोदरि ॥ ५३ ॥ तेनेदं प्रोच्यमानाऽपि सा चास्य न शृणोति वै ॥ किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने ॥ ५४ ॥

उखाड़नेके लिये अत्यन्त व्यग्र हुई ॥ ५० ॥ क्रमानुसार उसके निकट जाय जैसेही काँटा छेदनेमें उद्यत हुई वैसेही मुनिवरने कामदेवकी स्त्रीके समान उस रूपवती सुकेशी बालाको देखा ॥५१॥ तपोनिधि भार्गवने उस कल्याणी सुदतीको देखकर क्षीणकण्ठसे कहा तुम क्या करती हो ॥ ५२ ॥ हे वरानने ! मैं तपस्वी हूं अतएव तुम इस स्थानसे दूर चली जाओ हे कृशोदरि ! तुम्हारे ऐसे विशाललोचन हैं तो भी मुझको नहीं देखसकती ? अतएव मैं निषेध करता हूं कि काँटेसे वल्मीकको भेदन मत करो ॥ ५३ ॥ उस मुनिवरके इस प्रकार कहनेपर भी उस

कन्याने उसका वचन न सुनकर " यह क्या है ? " इस प्रकार कहकर उनके दोनों नेत्र बींध डाले ॥५४॥ दैवके वशीभूत होकर राजकन्याने क्रीड़ा करते करते उनके चक्षु छेदन किये किन्तु मैंने क्या किया इस प्रकार शंकायुक्त होकर वहांसे लौटी ॥ ५५ ॥ किन्तु नेत्रोंके छिद जानेसे मुनिवर अत्यन्त यंत्रणाके कारणकुपित हुए विशेषकर वेदनासे नितान्त कातर हो निरंतर परिताप करने लगे ॥५६॥ तब राजा, मंत्री, सैनिक लोग, हाथी, घोड़े, ऊंट और यही क्या वहांके समस्त प्राणियोंका क्षणमात्रमें मलमूत्र रुकगया दैवात् इस प्रकार मलमूत्र रुका हुआ देखकर नरपति शर्याति अत्यन्त दुःखित और चिंतातुर हुए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ विशेषकर इस समय सैनिकोंके मलमूत्र रुकनेका विषय राजासे निवेदन

दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका ॥ क्रीडंती शंकमाना सा किं कृतं तु मयेति च ॥ ५५ ॥ चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान् ॥ वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह ॥ ५६ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात् ॥ विशेषेण तु भूपस्य सामात्यस्य समंततः ॥ ५७ ॥ गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा ॥ ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम् ॥ चिंतयामास भूपालः कारणं दुःखसंभवे ॥ ५९ ॥ विचिंत्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा ॥ गृहमागत्य चिंतार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ६० ॥ सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः ॥ च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम् ॥६१॥ केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे ॥ तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ६२ ॥ तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः ॥ केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः ॥ ६३ ॥

करनेपर भूपाल दुःख होनेके कारणकी चिन्ता करनेलगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते राजा गृहमें आये अन्तमें चिन्तासे कातर हो सैनिकों और स्वजनोंसे पूंछा कि, तुममेंसे किसी मनुष्यने कोई दुष्कार्य्य किया है ? ॥ ६० ॥ सरोवरके पश्चिम भागस्थित वनमें महर्षि महात्मा च्यवन कठिन तपस्या करते हैं ॥ ६१ ॥ मुझको अनुमान होता है किसी मनुष्यने उन अनलप्रभ तापसराजका अवश्य अपकार किया होगा इससेही हमको यह पीड़ा उपस्थित हुई है यही मेरा स्थिर निश्चय है ॥ ६२ ॥ महात्मा भृगुनन्दन वृद्ध हैं और

विशेषकर तपस्यामें प्रवीण हो सबसे श्रेष्ठ हुए हैं अतएव मैं विचार करता हूं कि, अवश्यही उन महात्माका कोई अपकार किया होगा ॥ ६३ ॥ किसी दुष्ट मनुष्यने उनकी अवज्ञा की है यदि जानूं अथवा न जानूं किन्तु उसकाही यह समुचित फल इसमें है सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ यह वचन सुन सैनिकलोग वेदनासे कातर हो कहने लगे हममेंमे किसीने मन, वचन अथवा शरीरसे उनका कोई अपकार नहीं किया है यह हम भलीभाँतिसे जानते हैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा शर्यातिने चिन्ताकुल हृदयसे क्रोधित हो सैनिक लोगोंसे इसप्रकार पूँछकर फिर सुहृद्वर्गोंसे मधुरवचन द्वारा पूँछा ॥ १ ॥

ज्ञातं वा यदि वाऽज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह ॥ ६४ ॥ इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः ॥ मनोवाक्कायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम् ॥६५॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पप्रच्छ तान्सर्वान्राजा चिंताकुलस्तथा ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयाऽपि च ॥ १ ॥ पीडयमानं जनं वीक्ष्य पितरं दुःखितं तथा ॥ विचिंत्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः ॥ क्रीडंत्या सुदृढो दृष्टश्छिद्रद्वयसमन्वितः ॥ ३ ॥ तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया ॥ सूच्या विद्धे महाराज पुनः खद्योतशंकया ॥ ४ ॥ जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल ॥ हा हेति च श्रुतः शब्दो मंदो वल्मीकमध्यतः ॥ ५ ॥

तब राजकन्याने पिताको दुःखित और सैनिक लोगोंको कातर देखकर स्वयं जिस काँटेसे महर्षिके दोनों नेत्र बींधे थे यह बात मनमें विचार अपने पितासे कहा ॥२॥ हे पिता ! मैंने इस वनमें क्रीड़ा करते करते लतागुल्मसे ढकी हुई एक बँबई देखी वह बँबई दृढ थी और उसमें दो छिद्र दिखाई दिये ॥ ३ ॥ हे महाराज ! उनदोनों छिद्रोंमेंसे खद्योत (पटवीजना) के समान एक दीप्तिमान् ज्योतिःपदार्थ देख खद्योत विचार मैंने उसको काँटेसे छेदा ॥४॥ हे पितः ! इसी समय " हाय ! मैं मरगया " बँबईमेंसे इसप्रकार मृदु मन्द शब्द सुनाई आनेलगा. तिस काल मैंने उस काँटेको

निकाल कर देखा कि वह जलसे भीगा हुआ है ॥५॥ यह क्या है "तब मैं इस संशयसे आश्चर्यमें हुई परन्तु मैंने उस बँबईको क्यों वींधा " यह मैं नहीं जानसकती ॥ ६ ॥ राजा शर्यातिने अपनी कन्याका इस प्रकार कोमलवचन सुनकर विचार किया कि इससे मुनिवरका अपमान हुआ है इसमें संदेह नहीं यह विचार तत्काल बँबईके समीप गये ॥ ७ ॥ वहीं जाकर मुनिवरकी देहरोधक, बंबईको तोडकर वेदनासे अत्यन्त कातर तपोवृद्धच्यवन मुनिको देखा ॥ ८ ॥ तब राजा शर्यातिने पृथ्वीमें दण्डवत प्रणामकर हाथ जोड भृगुनंदन च्यवनकी विनीतभावसे स्तुति करके

तदाऽहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शंकया ॥ न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमंडले ॥ ६ ॥ राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु ॥ मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥ ७ ॥ तत्रापश्यत्तपो वृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम् ॥ स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं भृशम् ॥ ८ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति ॥ तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृतांजलिः ॥ ९ ॥ पुत्र्या मम महाभाग क्रीडंत्या दुष्कृतं कृतम् ॥ अज्ञानाद्बालया ब्रह्मन्कृतं तत्क्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंतीति मया श्रुतम् ॥ तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ॥ विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम् ॥ १२ ॥ च्यवन उवाच ॥ राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि ॥ न मयाऽद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते ॥ १३ ॥

कहा ॥ ९ ॥ हे महाराज! मेरी कन्याने क्रीडा करते करते यह दुष्कार्य किया है अतएव हे महात्मन् ! उस बालिकाने अज्ञानसे यह कार्य्य किया है आप उसको अपने उदारगुणसे क्षमा कीजिये ॥१०॥ मैंने सुना है कि तपस्वीलोग सदाही कोपरहित हैं इस कारण आपको भी उस अबोध बालिकाका अपराध क्षमा करना होगा॥११॥ व्यासजीने कहा महर्षिच्यवनने राजाके इस प्रकार वचन सुन विशेषकर उनको विनीत और कातरभाव युक्त देखकर कहा ॥१२॥ हे राजन् ! मैंने कभी भी अणुमात्र क्रोध नहीं किया है तुम्हारी कन्याने मुझको पीडित किया है

तोभी कुपित होकर इस समय तुमको शाप नहीं दिया ॥१३॥ किंतु देखो मैं निरपराधी हूं और नेत्रोंकी पीड़ासे अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है हे महीपते ! बोध होता है कि तुम उसी पापसे दुःखित और सन्तप्त हुए हो ॥ १४ ॥ यदि शिव भी स्वयं रक्षक हों तथापि देवीके भक्तका थोड़ा अपराध करके भी कोई पुरुष सुखप्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ! ॥ १५ ॥ हे महीपाल ! एक तो मैं बुढापेसे जीर्ण हूं इसपर भी मैं नेत्र विहीन हुआ, अब क्या उपाय करूं हे पार्थिव ! कौन पुरुष इस अन्धेकी अब सेवा करेगा ? सो आप मुझको कहिये ॥ १६ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! तपस्वी लोगोंका क्रोध क्षणस्थाई है आप भी तपस्यामें निरत हैं इसलिये आपका क्रोध असम्भव है अतएव आप दया करके उस

नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चात्र निरागसः ॥ तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते ॥ १४ ॥ अपराधं परं कृत्वा देवी भक्तस्य को जनः ॥ सुखं लभेत यदपि भवे त्राता शिवः स्वयम् ॥१५॥ किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः ॥ अंधस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ सेवका बहवः सेवां करिष्यंति तवानिशम् ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः ॥ १७ ॥ च्यवन उवाच ॥ अंधोऽहं निर्जनो राजंस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः ॥ त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यंति मम प्रियम् ॥ १८ ॥ क्षमापयसि चेन्मां त्वं कुरु मे वचनं नृप ॥ देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम् ॥ १९ ॥ तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते ॥ करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति ॥ २० ॥

बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये. मेरे अनेक सेवक हैं वे आपकी निरन्तर सेवा करेंगे ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हे राजन् ! एक तो मेरा आत्मीय कोई निकट नहीं है इसपर भी अन्धा हुआ हूं इस समय मैं किस प्रकार तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ? आपके सेवक मेरा प्रिय अनुष्ठान करेंगे यह मुझको बोध नहीं होता ॥ १८ ॥ हे नरपते ! यदि मुझको प्रसन्न करना आप अपना इष्ट समझते हैं तो आप वचन प्रतिपालन कीजिये मेरी सेवा करनेके लिये अपनी उसी कमलनयना कन्या रत्नको दो॥१९॥हे महाराज ! आपकी उस कन्याको पानेसे परम सन्तुष्ट हूंगा

मेरे तपस्यामें प्रवृत्त होनेपर वह मेरी सदा सेवा करेगी॥२०॥हे राजेन्द्र ! इस प्रकार करनेसे मुझको सुख होगा. कारण कि उससे मैं सन्तुष्ट हूंगा और तभी आपका सैनिक लोगोंके सहित क्लेश दूर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं॥२१॥हे भूपते ! आप मनमें यह विचारकर मुझको वह कन्या दीजिये मैं यतव्रत तपस्वी हूं इस कारण मुझको कन्या देनेसे आपको किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं होगा॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! राजा शर्यातिने मुनिवर च्यवनके वचन सुनकर चिन्तासे आकुल हुए, किन्तु कन्या देंगे अथवा नहीं यह कुछ न कहा॥२३॥राजाने विचारा कि यह मेरी कन्या देवताओंकी कन्याके समान परमरूपवती है और यह मुनि वृद्ध कुरूप और विशेषकर अन्धे हैं अतएव यह कन्यारत्न इनको देकर किस प्रकार सुखी

एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति ॥ संतुष्टे मयि राजेंद्र सैनिकानां न संशयः ॥ २१ ॥ विचिंत्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर ॥ न चात्र दूषणं किंचित्तापसोऽहं यतव्रतः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिंतातुरोऽभवत् ॥ न दास्येऽप्यथ वा दास्ये किंचिन्नोवाच भारत ॥ २३ ॥ कथमंधाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम् ॥ देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसंभवाम् ॥ २४ ॥ को वाऽऽत्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम् ॥ हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम् ॥ ॥ २५ ॥ प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता ॥ अंधं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति ॥ २६ ॥ यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया ॥ आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम् ॥२७॥ गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता ॥ अहल्या वासवेनाशु वंचिता वरवर्णिनी ॥ २८ ॥

हूंगा॥२४॥कौन अल्पबुद्धि पापपरायण मनुष्य प्रकृत मंगल जानकर अपने सुखकी इच्छासे कन्याका संसारजनित सुख हरण कर सकता है ॥ २५ ॥ वह सुभ्रु कन्या वृद्धच्यवनके समीप जाकर जब कामबाणसे पीडित होगी तब किस प्रकार इस अन्धे पतिको ले काल व्यतीत करके सुखी होगी ? ॥ २६ ॥ विशेषकर जब सुन्दरी स्त्रियें अपने अनुरूप पतिको प्राप्त कर कभी यौवनकालके समय कामशत्रुको जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं ॥ २७ ॥ परमरूपवती अहल्याने तपस्वी गौतमसे विवाह किया किन्तु यौवनकालके समय उस वरवर्णिनीका रूपलावण्य देख इन्द्रने

छलकर उसका धर्म नष्ट किया था ॥२८॥ अन्तमें उसके पति गौतमने धर्मका विपरीत कार्य देखकर उनको शाप दिया. इस कारण उन ऋषिके शापसे मुझको दुःख उपस्थित हो तो भी मैं अपनी कन्याको नहीं दे सकता ॥२९॥ राजा शर्याति इस प्रकार चिन्तासे विमन हो अपने डेरेको गये और घर जाकर अत्यन्त कातर हृदयसे मंत्रियोंको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ ३० ॥ हे मंत्रिगण ! इस समय मुझको क्या करना उचित है ? सो तुम कहो अब विप्रवरको कन्या देना उचित है अथवा दुःख भोगना उचित है ॥३१॥ क्या कार्य करनेसे मेरा हित होगा, तुम सब लोग मिलकर उसका विचार करो. मंत्रियोंने कहा हे महाराज ! इस दुस्तर संकटमें हम क्या कहें ॥ ३२ ॥ आप किस प्रकार उस दुर्भाग्य

शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम् ॥ तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम् ॥२९॥ इति संचिंत्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ॥सचिवांश्च समादाय मंत्रं चक्रेऽतिदुःखितः॥३०॥भो मंत्रिणो ब्रुवंत्वद्य किं कर्तव्यं मयाऽधुना॥पुत्री देयाऽथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा ॥ ॥३१॥ विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम् ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज संकटे ऽतिदुरासदे ॥३२॥ दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयाऽतिसुंदरी ॥ व्यास उवाच ॥ तदा चिंताकुलं वीक्ष्य पितरं मंत्रिणस्तदा ॥ ॥ ३३ ॥ सुकन्या त्विंगितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह ॥ पितः कस्माद्भवानद्य चिंताव्याकुलितेंद्रियः ॥ ३४ ॥ मत्कृते दुःखसंविग्नो विपण्णवदनोऽसि वै ॥ अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम् ॥ ३५ ॥ करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः ॥ इति राजा वचः श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया ॥ ३६ ॥

तपस्वीको यह परम सुन्दरी कन्या देंगे ? द्वैपायनने कहा तब सुकन्या पिता और मंत्रियोंको चिन्तामें नितान्त व्याकुल देखकर॥३३॥बुद्धिसे सब जान गई अनन्तर हँसते २ उसने अपने पितासे कहा हे पितः ! आज आपका अन्तःकरण चिन्तासे आकुल क्यों देखती हूं ॥३४॥ बोध होता है कि आप मेरे निमित्त ही दुःखसे अत्यन्त उद्विग्न होते हैं. हे पितः ! उन मुनिवरको मैंने ही पीडित किया है अतएव मैं ही वहां जाकर उनको समझाऊंगी ॥ ॥ ३५ ॥ अधिक क्या मैं उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करके उनको प्रसन्न करूंगी. राजा सुकन्याके इस प्रकार वचन सुन ॥ ३६ ॥

अत्यन्त संतुष्ट चित्तसे मंत्रियोंके सामने उससे कहने लगे हे पुत्रि ! तुम अबला होकर वनमें मुनिवर च्यवन अन्धे ॥ ३७ ॥ जराजीर्ण देह और विशेषकर कोपनस्वभाव मुनिवरकी किस प्रकार सेवा करोगी ? रूपलावण्यसे तुम रतिके समान हो ॥ ३८ ॥ मैं अपने सुखकी इच्छासे उन जराजीर्ण देह अंधे मुनिको किस प्रकार कन्यादान करूं ? जिसके ज्ञाति, वयस्, बल, अतुल धान्य और धन रत्नादि विद्यमान हैं पिता उसको ही कन्या देते हैं ॥३९॥ धनहीन मनुष्यको कभी कोई कन्या नहीं देते हे विशाललोचने ! तुम अतिरूप लावण्यवती हो और तपस्वी अत्यन्त बूढ़े हैं ॥ ४० ॥ इससे तुम दोनोंमें परस्पर बहुत भेद है और उन मुनिवरके विवाहकी अवस्था व्यतीत होगई है अतएव किस प्रकार मैं उनको कन्या दूं ? हे कमल

तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम् ॥ कथं पुत्रि त्वमंधस्य परिचर्यां वनेऽबला ॥ ३७ ॥ करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः ॥ कथमंधाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम् ॥ ३८ ॥ ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवांछया ॥ पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च ॥३९॥ धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन ॥ क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः ॥ ॥ ४० ॥ कथं देया मया पुत्री तस्मै चातिवराय च ॥ उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे ॥ ४१ ॥ कथमंबुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव ॥ मरणं मे वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च ॥ ४२ ॥ न ते प्रदानमंधाय रोचते पिकभाषिणि ॥ भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम् ॥ ४३ ॥ सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येंऽधाय कर्हिचित् ॥ राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे ॥ ४४ ॥ न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके ॥ सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः ॥ ४५ ॥

नयने ! तुम सदा मनोहर अटारीमें वास करती हो ॥४१॥ इस समय मैं तुमको किस प्रकार सदाके लिये पर्णशालामें वास दूं ॥ ४२ ॥ हे कोकिल भाषिणि ! और सैनिक लोग मृत्युके मुखमें पतित हों यहभी उचित है किन्तु तोभी तुम्हें उस अन्धे वरको कभी समर्पण नहीं करूंगा. जो होनहार है वह हो किंतु मैं कभी धैर्य्य न छोडूंगा ॥ ४३ ॥ अतएव हे सुश्रोणि ! तुम सावधान हो मो मैं अन्धेको कभी कन्या नहीं दूंगा. हे बालिके ! मेरा राज्य और देह रहे अथवा जाय इससे कुछ हानि नहीं है ॥४४॥ तथापि मैं किसी प्रकार तुम्हें उस नयनविहीन तपस्वीको नहीं

दूंगा. पिताके इस प्रकार वचन सुन ॥४५॥ सुकन्या प्रसन्नमन हो उनसे अत्यंत स्नेहमय वचन कहने लगी. हे पितः ! आप मेरे लिये निरर्थक चिंता न कीजिये. इस समय उन मुनिवरको मुझे दीजिये ॥ ४६ ॥ तो सब मनुष्य सुखी होंगे इसमें सन्देह नहीं. मैं सन्तुष्ट होकर अत्यन्त भक्ति सहित ॥ ४७ ॥ परमपवित्र वृद्धपतिको निर्जनवनमें सेवा करके. परम प्रीतिलाभ करूंगी. मैं सती धर्मपरायण हो व्रत करूंगी ॥४८॥ अनर्थक भोगवासनामें मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है. चित्त प्रकृतिस्थ हुआ है व्यासजीने कहा हे महाराज ! मंत्रिवर्ग उसके यह वचन सुनकर अत्यंत

प्रसन्नवदनाऽतीव स्नेहयुक्तमिदं वचः ॥ सुकन्योवाच ॥ न मे चिंता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना ॥ ४६ ॥ सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि ॥ सेवयिष्यामि संतुष्टा पतिं परमपावनम् ॥ ४७ ॥ भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने ॥ सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसंमतम् ॥ ४८ ॥ न भोगेच्छाऽस्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मंत्रिणो विस्मयं गताः ॥ ४९ ॥ राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसंन्निधौ ॥ गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम् ॥ ५० ॥ स्वामिन्गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो ॥ इत्युक्त्वाऽस्मै ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृपः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत् ॥ पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह ॥ ५२ ॥ कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः ॥ प्रसन्नेऽथ मन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा ॥ ५३ ॥

आश्चर्यमें हुए॥४९॥और राजाभी परम प्रसन्न होकर कन्याके सहित मुनिवरके समीप गये, उनके निकट उपस्थित हो मस्तक झुकाय प्रणाम करके उन तपोधनसे कहा ॥५०॥ हे प्रभो ! अपनी सेवा करनेके लिये मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये. यह कहकर राजाने विवाहकी विधिके अनुसार उनको कन्या दी ॥ ५१ ॥ च्यवनमुनि भी उसको प्रतिग्रहणकर परमप्रसन्न हुए किंतु राजाने व्यवहारोपयोगी जो सब यौतुकमें सामग्री दी थी वह कुछ भी न ली ॥ ५२ ॥ केवल अपनी सेवाके निमित्त कन्याको ग्रहण किया इस प्रकार उन मुनिवरके प्रसन्न होनेपर

सैनिक लोग तत्काल मलमूत्र त्यागकर सुखी हुए ॥ ५३ ॥ यह देखकर राजाका हृदय भी आनन्दरसमें भरगया राजाने कन्या देकर जब घर जानेकी इच्छा की ॥ ५४ ॥ तब उस कृशाङ्गी राजनन्दिनी कन्याने भूपतिसे कहा हे पितः! आप मेरे अलंकार और वस्त्रादि लेकर ॥ ५५ ॥ पहरनेके निमित्त एक उत्तम उचित (मृगचर्म) और वल्कल दीजिये. हे पितः! मैं मुनियोंकी स्त्रियोंके समान वेष धारण करके इस प्रकार पतिकी सेवा करूंगी ॥ ५६ ॥ जिससे आपकी अतुल कीर्ति स्वर्ग पृथ्वी और पातालमें सर्वत्र ही अक्षय होकर रहे ॥ ५७ ॥ और इसी प्रकार मैं भी जिससे परलोकमें परमसुख प्राप्तकर सकूं ऐसेही पतिके चरणों की सेवा करूंगी मैं युवती और सुन्दरी हूं आप मेरे वृद्ध तपस्वीको देनेसे

राज्ञश्च परमाह्लादः संजातस्तत्क्षणादपि ॥ दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा गमनाय गृहं प्रति ॥ ५४ ॥ मतिं चकार तन्वंगी तदोवाच नृपं सुता ॥ सुकन्योवाच ॥ गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः ॥५५॥ वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम् ॥ वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम् ॥ ५६ ॥ करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता ॥ भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले ॥ ५७ ॥ परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम् ॥ दत्त्वाऽधाय च वृद्धाय सुंदरीं युवतीं तु माम् ॥ ५८ ॥ चिंता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा ॥ अरुंधती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथाभुवि ॥५९॥ तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ अनसूया यथा साध्वी भार्याऽत्रेः प्रथिता भुवि ॥ ६० ॥ तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव ॥ सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परम धर्मवित् ॥ ६१ ॥ दत्त्वाऽजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहासिनीम् ॥ त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम् ॥ ६२ ॥

॥५८॥ दूषित चरित्र होनेकी संभावना कर अणुमात्रभी चिंता न कीजिये. वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती जिस प्रकार पृथ्वीमें विख्यात हुई है ॥ ५९ ॥ मैं भी उसीके अनुसार सिद्धि प्राप्त करूंगी इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं. महर्षि अत्रिकी भार्या पतिव्रता अनुसूयाने जिस प्रकार पृथ्वीमें ख्याति प्राप्त की है ॥ ६० ॥ उसीके अनुसार मैं भी आपकी पुत्री होकर कीर्ति स्थापन करूंगी. उस परमधर्मवित् राजाने सुकन्याके यह वचन सुनकर ॥ ६१ ॥ उसको अजिनादि दिये, उस चारुहासिनी कन्याके जब वसन भूषण त्यागकर मुनिकन्याओंका वेष धारण

किया ॥६२॥ तब राजा रोदनको न रोकसके और दुःखितमनसे उसी स्थानमें खड़े रहे कन्याको वल्कल और अजिन पहरे हुए देखकर वह राज महिषियें॥६३॥अत्यंत शोकसंतप्त हृदयसे कम्पायमान होकर रोनेलगीं. हे राजन्! तब महीपति शर्याति मुनिवर च्यवनको कन्या देकर उनसेबिदा ले मंत्रियोंके सग शोकसंतप्त हृदयसे अपन घरको चले आये ॥६४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा शर्य्यातिके घर चले जानेपर फिर वह बाला सुकन्या अपने धर्ममें निरत रहकर अग्नि और अपने पतिकी सेवा

विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः ॥ राज्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा वल्कलाजिनधारिणीम् ॥६३॥ रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन् ॥ तामापृच्छ्य महीपालो मंत्रिभिः परिवारितः ॥ ययौ स्वनगरं राजा मुक्त्वा पुत्रीं शुचाऽर्पिताम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा ॥ बभूव च तथाऽग्नीनां सेवने धर्मतत्परा ॥१॥ फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि विविधानि च ॥ ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा॥२॥ पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा ॥ परिवेष्ट्य शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि ॥ ३ ॥ तिलान्यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमंडलुम् ॥ तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम ॥४॥ तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि॥ बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत् ॥५॥ पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा ॥ भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम् ॥ ६ ॥

करनेलगी ॥१॥ वह षोडशवर्षीय सुकन्या पतिकी सेवामें तत्पर होकर अनेक प्रकारके स्वादिष्ठ फलमूलके संग्रहकर मुनिवरके लिये भक्षणको देती ॥ २ ॥ वह स्नानके समय उष्णजलसे पतिको स्नान और मृगचर्म पहराकर पवित्र कुशासनपर बैठाती ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कुश तिल और कमण्डलु सन्मुख स्थापित करके कहती. हे मुनिवर ! आप नित्य कार्य कीजिये ॥ ४ ॥ नित्यकर्म समाप्त होनेपर वह बाला उनका हाथ ग्रहणपूर्वक उठाय कुशासन अथवा अन्य बिछौनेपर बैठाती ॥ ५ ॥ इसके उपरांत वह राजकन्या पके हुए फल और सुसंस्कृत नीवार अन्न

कर च्यवनमुनिको भोजन कराती ॥ ६ ॥ पतिके भोजन करके तृप्त होनेपर फिर परम भक्ति सहित आचमनीय जलसे उनके मुख पांव धुलाकर आदरपूर्वक ताम्बूल और पूगादि देती ॥ ७ ॥ उनके मुखशुद्धि ग्रहण करनेपर फिर उनको उत्तम आसनपर बैठाल उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक अपने शरीरका संस्कार करती ॥ ८ ॥ अनंतर मुनिवरके भक्षणसे बचे हुए मूलादि स्वयं आहार कर फिर पतिके समीप जाय विनय सहित कहती हे प्रभो ! अब क्या करूं ? आज्ञा कीजिये ॥९॥ आप यदि अनुमति दें तो आपके चरण दबाऊं इस प्रकार पतिके प्रति अनुरागिणी होकर राजबाला सदा पतिकी सेवामें काल व्यतीत करने लगी ॥ १० ॥ सायंकालके समय होमकार्य समाप्त होनेपर सुन्दरी स्वादिष्ट और

भुक्तवन्तं पतिं तृप्तं दत्त्वाऽऽचमनमादरात् ॥ पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता ॥ ७ ॥ गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने ॥ गृहीत्वाऽऽज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः ॥ ८ ॥ फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ ॥ प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयसे प्रभो ॥ ९ ॥ पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे ॥ एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा ॥ १० ॥ सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी॥ अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च ॥ ११ ॥ ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया ॥ सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा ॥१२॥ सुप्ते सुखं प्रिये कांता पादसंवाहनं तदा ॥ चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी ॥१३॥ पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा ॥ निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणांतिके ॥ १४ ॥ शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृंतेन भामिनी ॥ कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषवे स्वपतिं तदा ॥ १५ ॥

कोमल फल लाकरउनको भक्षणार्थ देती ॥११॥ तदनन्तर उनकी आज्ञा लेकर भोजनसे बचे हुए फल स्वयं भक्षण करती इसके उपरांत सुख स्पर्श आस्तरण बनाकर प्रीति सहित उनको शयन कराती ॥ १२ ॥ प्रियतम पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर फिर वह कृशोदरी राजकुमारी उनके पाँव दबाते दबाते संपूण कुलस्त्रियोंके धर्मविषयक प्रश्न पूँछती ॥ १३ ॥ रात्रि कालके समय पदसेवा करते करते जब मुनिवर सो जाते तब वह भक्तिपरायण होकर उनके पदतलमें शयन करती ॥ १४ ॥ ग्रीष्म कालके समय पति जब पसीनेमें भीगते तब वह भामिनी तालके

पंखेसे व्यजन करके शीतल वायुद्वारा अपने पतिकी सेवामें नियुक्त रहती ॥ १५ ॥ हेमन्तकालके समय काष्ठ इकट्ठाकर पतिके सन्मुख अग्नि जिलाय वारंवार पूछती हे मुनिवर ! इससे आपको सुख तो अनुभव होता है ? ॥ १६ ॥ वह पतिपरायण राजकन्या सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठती फिर पतिको उठा कर शौचके लिये आश्रमसे कुछेक दूर बैठाती ॥ १७ ॥ और हाथ पाँव आदि प्रक्षालनके लिये मृत्तिका और जल उनके निकट रख आप दूर बैठकर प्रतीक्षा करती उनका शौचकार्य समाप्त हुआ जान समीप जाय पतिका हाथ पकड़ ॥ १८ ॥ धीरे धीरे आश्रममें लाती, इसके उपरांत मुनिवरको पवित्र आसनपर बैठाल फिर मृत्तिका और जलसे उनके दोनों चरण यथाविधि धोती ॥ १९ ॥

हेमंते काष्ठसंभारं कृत्वाऽग्निज्वलनं पुरः ॥ स्थापयित्वा तथाऽपृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत् ॥ १६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम् ॥ समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया ॥ १७ ॥ स्थानाद् दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराऽभवत् ॥ कृतशौचं पतिं कृत्वा ज्ञात्वा जग्राह तं पुनः ॥१८॥ आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे ॥ मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि॥१९॥ दत्त्वाऽऽचमनमात्रं तु दंतधावनमाहरत् ॥ समर्प्य दंतकाष्ठं च यथोक्तं नृपनंदिनी ॥२०॥ चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम् ॥ स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता ॥ २१ ॥ किमाज्ञापयसे ब्रह्मन्कृतं वै दंतधावनम् ॥ उष्णोदकं सुसंपन्नं कुरु स्नानं समंत्रकम् ॥२२॥ वर्तते होमकालोऽयं संध्या पूर्वा प्रवर्तते ॥ विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु ॥ २३ ॥ एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिंदिता ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥ २४ ॥

राजनंदिनी पतिको आचमनपात्र देकर शास्त्रविहित दन्तधावनकाष्ठ लाकर समर्पण करती ॥ २० ॥ पवित्र निर्मल जल लाकर उसको उष्ण करती वह जल स्नानके लिये लाकर प्रीति सहित पूँछती ॥ २१ ॥ हे स्वामिन् ! आपका दन्तधावन कार्य तो हो गया, जल उष्ण किया है आपकी आज्ञा पानेपर लाऊंगी आप उस तप्तजलसे समन्त्रक स्नान कीजिये ॥ २२ ॥ प्रातःसंध्या उपस्थित है, अतएव अब आपके होमका समय होगया है यथाविधि होम कर देवताओंकी पूजा कीजिये ॥ २३ ॥ निर्मलस्वभाव राजदुहिता तपस्वी च्यवनको पति

प्राप्तकरके इस प्रकार तपस्या नियम और प्रीति सहित सदा उनकी सेवामें प्रवृत्त रहती ॥ २४ ॥ वह सुमुखी राजबाला अग्नि और अतिथियोंकी सदा सेवा और शुश्रूषा करके आनन्दमनसे महर्षि च्यवनकी आराधना करनेलगी ॥ २५ ॥ किसी एक समयमें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार महर्षिच्यवनके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ तब सर्वाङ्ग सुन्दरी राजकन्या पवित्रजलसे स्नानकर आश्रममें आती थी, उसी समय उन दोनों अश्विनीकुमारोंने उसको देखा ॥ २७ ॥ वह देवकन्याके समान उसका रूप लावण्य देखकर मोहित हो शीघ्र समीप आय आदर सहित उससे पूँछने लगे ॥ २८ ॥ हे गजगामिनि ! देखो हम देवताओंके

अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा ॥ आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना ॥ २५ ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ ॥ च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ ॥ २६ ॥ जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वाश्रमं प्रति ॥ गच्छंतीं चारुसर्वांगीं रविपुत्रावपश्यताम् ॥ २७ ॥ तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चांतिकमादरात् ॥ ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ ॥२८॥ क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि ॥ आवां देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते ॥२९॥ पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता ॥ एकाकिनी तडागेऽस्मिन्स्नानार्थं चारुलोचने ॥ ३० ॥ द्वितीया श्रीरिवाभासि कांत्या कमललोचने ॥ इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥३१॥ कोमलौ चरणौ कांते स्थितौ भूमावनावृतौ हृदये कुरुतः पीडां चलंतौ चललोचने ॥ ३२ ॥

पुत्र हैं आपसे कोई विषय पूँछनेके लिये आये हैं अतएव हे वरारोहे ! हमारे अनुरोधसे आप क्षणकाल प्रतीक्षा कीजिये. हे शुचिस्मिते ! हे चारुलोचने ! आप किसकी कन्या हैं ? और किस महात्माने आपका पाणिग्रहण किया है ? आप उद्यान मध्यस्थित इस तडागमें अकेली स्नान करनेके लिये क्यों आई हैं ? ॥२९॥३०॥हे कमलाक्षि! तुम्हारा जिसप्रकार सौंदर्य है इससे हमको दूसरी हरिवल्लभा बोध होती हो. हे शोभने ! हम आपसे कुछ जाननेकी इच्छा करते हैं आप यथार्थरूपसे वह विषय कहिये ॥ ३१ ॥ हे कान्ते ! तुम्हारे दोनों चरण अत्यंत कोमल

हैं. अतएव पादत्राण न पहरकर अनावृत्त भावसे उनको पृथ्वीमें रखती है. हे चंचलनयने! तुम्हारे चरण जब पृथ्वीमें पडते हैं तब हमारे हृदयमें क्लेश उपस्थित होता है ॥३२॥ हे कृशोदरि! तुम्हारा देह जिसप्रकार कोमल है, इससे तुमको विमानपर चढकर गमनागमन करना उचित है किंतु ऐसा न करके क्यों पैरों इस कठिन पृथ्वीमें गमन करती हो ॥ ३३ ॥ तुम्हारे संग शतशत दासी क्यों नहीं निकलतीं. हे वरानने! तुम राज कन्या अथवा अप्सरा हो यह हमसे सत्य कहो ॥ ३४ ॥ हे अनघे! जिन पिता मातासे तुम्हारा जन्म हुआ है वह भी धन्य हैं विशेषकर जिस मनुष्यके संग तुम्हारा विवाह हुआ है उसका सौंदर्य वर्णन करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥३५॥ हे सुलोचने! तुम्हारे दोनों चरण इधर उधर

विपानार्हाऽसि तन्वंगि कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः ॥ अनावृताऽत्र विपिने किमर्थं गमनं तव ॥ ३३ ॥ दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता ॥ च राजपुत्र्यप्सरा वाऽसि वद सत्यं वरानने ॥ ३४ ॥ धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव ॥ वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे ॥ ३५ ॥ देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने ॥ प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य संपावयति भूतलम् ॥ ३६ ॥ सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यंति वै वने ॥ ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना ॥ ३७ ॥ स्तुत्याऽलं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने ॥ पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छाऽस्ति सादरम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा राज कन्याऽतिसुंदरी ॥ तावुवाच त्रपाक्रान्ता देवपुत्रौ नृपात्मजा ॥ ३९ ॥

चलकर इस पृथ्वीको पवित्र करते हैं अतएव यह उद्यान आज देवलोककी अपेक्षा भी पवित्र बोध होता है ॥ ३६ ॥ जो संपूर्ण मृग और पक्षिकुल इच्छानुसार तुमको देखते हैं उनके सौभाग्यकी सीमा नहीं है अधिक क्या तुम्हारे चरण स्पर्शसे यह वनभूमि अत्यंत पवित्र बोध होती है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने! तुम्हारे रूपकी अधिक प्रशंसा करना निष्प्रयोजन है तुम्हारे पिता अथवा माता कौन हैं? यह हमसे सत्य कहो हम आदर सहित उनको देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! वह सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी उनके यह वचन सुन

लज्जित भावसे उन दोनों देवकुमारोंसे कहने लगी ॥ ३९ ॥ मैं शर्याति राजाकी कन्या हूं पिताने मुझे दैवकी इच्छासे महर्षि च्यवनको दिया है, मैं उनकी प्रियतमा साध्वी भार्या हूं वह महर्षि इसी स्थानमें वास करते हैं ॥ ४० ॥ हे दोनों देवताओ ! मेरे पति नयन विहीन तापस और अत्यन्त वृद्ध हुए हैं, अतएव मैं सती धर्मानुसार प्रसन्नमनसे रात दिन उनकी सेवा करती हूं ॥ ४१ ॥ आप कौन हैं ? और किस लिये इस स्थानमें आये हैं ? हमारे पति आश्रममें स्थिति करते हैं अतएव कृपा करके उस स्थानमें चलकर अब आश्रमको पवित्र कीजिये ॥ ४२ ॥ हे नरनाथ ! दोनों अश्विनीकुमारोंने इस प्रकार वचन सुनकर उससे कहा हे कल्याणि ! किस कारणसे तुम्हारे

शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह ॥ च्यवनस्य सतीं कांतां पित्रा दत्तां यदृच्छया ॥४०॥ पतिरंधोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः ॥ तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतमानसा ॥ ४१ ॥ कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे ॥ तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ॥ ४२ ॥ तदाकर्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप ॥ कथं त्वमपि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ॥ ४३ ॥ भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनि ॥४४॥ त्वं दिव्यांबरयोग्याऽसि शोभसे नाजिनैर्वृता ॥ सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी ॥ ४५ ॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रंभोरु वने विषीदसि ॥ विशालनेत्रेऽधमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥ ४६ ॥

पिताने वृद्ध तपस्वीको ऐसा कन्यारत्न दिया ॥ ४३ ॥ तुम इस विजन वनमें स्थिर सौदामिनीके समान शोभा पाती हो और अधिक क्या कहें तुम्हारी समान रूपवती भामिनी हमारे देवलोकमेंभी दिखाई नहीं देती ॥ ४४ ॥ अहो ! दिव्यवसन सर्वविधि आभरण और नीलवर्ण अलकावलीही तुम्हारे पक्षमें शोभा पाती है इस प्रकार मृगचर्म और वल्कलादि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे रम्भोरु ! तुम विशाल नेत्रोंवाली हो तथापि विधाताने तुमको अन्धे विशेषकर अत्यन्त जरातुर पति दिया है तुम उन्हीं अन्धे पतिको प्राप्त करके निरन्तर इस वनमें दुःखी

होती हो इसकी अपेक्षा विधाताका अन्याय कार्य और क्या हो सकता है? ॥ ४६ ॥ हे मृगाक्षि ! उस मुनिवरको तुमने निरर्थक पतित्वमें वरण किया है तुम्हारा यह नवयौवन समयमें उन अन्धे पतिके संग कभी शोभा नहीं पावेगा तुम नृत्यविद्यामें चतुर हो किंतु पति अन्धे और जरातुर हैं तुम्हारे नृत्य करनेपर जब कामदेव शर सन्धान करेगा तब वह शर किसके ऊपर पतित होंगे ? ॥ ४७ ॥ हे आयतलोचने ! वह विधाता अत्यन्त अल्पबुद्धि है ? नहीं तो तुमको इस प्रकार नवयौवनसे भूषितकर अन्धेकी भार्या क्यों करता ? हे चारुलोचने ! तुम कभी उसके उपयुक्त नहीं हो इस कारण दूसरा पति करो ! ॥४८॥ हे कमलनयने ! तुम्हारा पति एक तो नयनविहीन और तिसपर भी तपस्वी है अतएव

वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाशु शराः सुसंहिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥ ४७ ॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मंदबुद्धिना ॥ न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैव ते जीवितमंबुजेक्षणे पतिं च संप्राप्य मुनिं गतेक्षणम् ॥ वने निवासं च तथाऽजिनांबरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे ॥ ४९ ॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकेकं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने ॥ किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुंदरि सेवमाना ॥ ५० ॥ किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं समुज्झितं पोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१ ॥

तुम्हारा जीवनधारण करना वृथा है ? विशेषकर वनमें वास और अजिनअम्बर परिधान तुम्हारे योग्य नहीं है॥४९॥हे असितनयने ! तुम्हारे संपूर्ण अंग प्रत्यंग मनोहर हैं अतएव भलीभांति विचार कर हम दोनोंमेंसे एकको पति करो. हे भामिनि ! इस प्रकार रूपवती होकर मुनिकी सेवा करके वृथा यौवन क्यों क्षय करती हो ? ॥५०॥ उन मुनिवरका कोई सौभाग्य नहीं दिखाई देता. विशेषकर तुम्हारे भरणपोषण अथवा रक्षण दर्शन करनेकी भी उनमें सामर्थ्य नहीं है.तब वृथा क्यों उनकी सेवा करती हो ? हे अनिन्दिते ! सर्व सुखरहित मुनिवरको त्यागकर हम दोनोंमेंसे

एकके संग विवाह करो ॥ ५१ ॥ " हे कान्ते " ! तो नन्दनकानन अथवा चैत्ररथ वनमें विहार कर सकोगी. हे मानिनि ! अन्धे अथवा वृद्ध पतिके सहित गौरवविहीन होकर तुम किस प्रकार काल व्यतीत करोगी ? ॥ ५२ ॥ एक तो तुम शुभलक्षणोंसे विभूषित तिसपर भी फिर राज कन्या हो अतएव संसारके यावतीय विहारभाव तुमको अविदित नहीं है. इस कारण भाग्यविहीन होकर इस गहनकाननमें वृथा क्यों काल व्यतीत करती हो ॥५३॥ हे राजपुत्रि ! तुम्हारा वदन अत्यन्त मनोहर नेत्र विशाल कटि क्षीण और तुम्हारे वचन कोकिलके समान मीठे हैं अतएव तुम्हारी अपेक्षा सुन्दरी कौन है ? तुम वृद्धतपस्वीको इस समय त्यागकर सुखके लिये तुम हममेंसे एककी भजना करो तो त्रिदशालयमें

त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् ॥ अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥ ६२ ॥ भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च जानासि संसारविहारभावम् ॥ भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥ ६३ ॥ तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेंद्रपुत्रि ॥६४॥ किं ते सुखं यत्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि ॥ सेवा तथांऽधस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम्॥६५॥शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥६६॥ इति श्रीदेवी० भा० महा० सप्तमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ व्यास उवाच ॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा ॥ धैर्यमालंब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥१॥

अनुपम भोग्यवस्तु भोग सकोगी ॥ ५४ ॥ हे सुकेशि ! अन्धेके सहित इस वनमें वास करके तुमको क्या सुख होगा ? हे मृगाक्षि ! तुम्हारा इस नवयौवन और इस अवस्थाके समय वनमें रहकर वृद्धकी सेवा करना अत्यन्त क्लेशकर है हे राजपुत्रि ! क्या तुमको दुःखही वाञ्छित है॥५५॥ हे शशिमुखि ! तुम अत्यन्त कोमलाङ्गी दिखाई देती हो अतएव जल और फल लाना तुम्हारा उचित कार्य नहीं है ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! यह वचन सुन राजकन्या सुकन्या पहले भयसे

१ यह वचन परीक्षार्थ कहे हैं।

काँपने लगी फिर वह मितभाषिणी बाला धैर्य्य अवलम्बनकर दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहने लगी ॥ १ ॥ आप सूर्यके पुत्र और सुरगणोंके सुसम्मत देवता हैं विशेषकर आप सम्पूर्ण विषय जानते हैं मैं धर्म्मपरायण सती हूं मुझसे ऐसा वचन कहना आपको उचित नहीं है ॥ २ ॥ सुरद्वय! पिताने मुझे योग्य धर्म्मावलम्बी मुनिको दिया है इसपर भी मैं सती होकर किसप्रकार वेश्याओंके अवलम्बित मार्गमें जाऊं ? ॥३॥ वह सूर्य्य सबके कार्य अकार्यके साक्षिस्वरूप हैं अतएव वह मेरे सम्पूर्ण कार्य देखते हैं और आप दोनोंने महात्मा कश्यपके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, इस प्रकार पवित्र देवताके उरसे पवित्रवंशमें उत्पन्न हो ऐसा अधर्म्मकर और अकीर्त्तिकर वचन कहना आपको अत्यन्त अनुचित

देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ ॥ सतीं मां धर्मशीलां च नैवं वदितुमर्हथः ॥२॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे ॥ कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥ ३ ॥ द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः ॥ कश्यपाच्चैव संभूतो नैवं भाषितु मर्हथः ॥४॥ कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् ॥ असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥५॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ ॥ सुकन्याऽहं च शर्यातेः पतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नासत्यौ विस्मितौ भृशम् ॥ तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शंकमानौ भयं मुनेः ॥७॥ राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि ॥ वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव ॥ ८ ॥ जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ ॥ युवानं रूपसंपन्नं प्रकुर्याव पतिं तव ॥ ९ ॥

है ॥ ४ ॥ इस असार संसारमें धर्म क्या अथवा अधर्म क्या है यह आप भलीभांति जानते हैं हे रविपुत्रो ! कुलकन्या हो पतित्याग कर किस प्रकार अन्यपुरुषकी भजना करूं॥५॥ आप विमलस्वभाव देवता हैं मैं महाराज शर्यातिकी कुलकन्या विशेषकर पतिके प्रतिअत्यन्त अनुरक्त और धर्मपरायण हूं अतएव आप इच्छानुसार अपने स्थानमें जाइये॥६॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! दोनों अश्विनीकुमार उसके यह वचनसुनकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए और मुनिवरके भयसे शंकित होकर फिर उससे कहनेलगे ॥७॥ हे राजकुमारी ! तुम्हारा पतिव्रत धर्म्म देखकर हम प्रसन्न हुए हैं अतएव हे वरवार्णिनि ! तुम अभिलषित वर माँगो. हे सुश्रोणि ! तुम्हारे मंगलके लिये हम तुमको वर देंगे ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! हम देवताओंके

वैद्य हैं तुम निश्चय जानो कि हम तुम्हारे पतिको परमरूपवान् सुन्दर युवा करदेंगे ॥ ९ ॥ हे सुचतुरे ! जब हम तीनोंका समानरूप समान अवस्था और समान देहकी कान्ति होगी तब तुम तीनों मेंसे जिसकी रुचि हो एकको पतित्वमें वरण करो ॥ १० ॥ सुकन्या उनके यह वचन सुनकर आश्चर्ययुक्त हो अपने पतिके समीप गई अनन्तर दोनों देवताओंके वैद्योंने जो बात कही थी वह सम्पूर्ण मुनिवरसे निवेदन की ॥११॥ सुकन्याने कहा हे स्वामिन्! सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार मेरे आश्रमके समीप तपोवनमें उपस्थित हुए हैं उन दोनों दिव्यदेह देवताओंका मैंने दर्शन किया है ॥ १२ ॥ वह मेरा सर्वाङ्ग सुन्दर देह देखकर कामातुर हो मुझसे कहनेलगे कि तुम्हारे उन अन्धे पति मुनिवरको दिव्य देह

ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपंडिते ॥ १० ॥ सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा ॥ गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम् ॥ ११ ॥ सुकन्योवाच ॥ स्वामिन् सूर्यसुतौ देवौ संप्राप्तौ च्यवनाश्रमे ॥ दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनंदन ॥ १२ ॥ वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ ॥ कथितं वचनं स्वामिन्पतिं ते नवयौवनम् ॥१३॥ दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मंतं मुनिं किल ॥ एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम् ॥ १४ ॥ समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव ॥ तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम् ॥ किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥ १६ ॥ देवमायाऽपि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः ॥ यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम् ॥ १७ ॥

नवयौवन ॥ १३ ॥ और दोनों नेत्र फिर उत्तम करदेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं किन्तु तुमको एक नियम करना होगा वह कहते हैं सुनो ॥१४॥ तुम्हारे उन वृद्धपतिका अंगभी अपनी समान करदेंगे किन्तु फिर हम तीनोंमेंसे एकको वरणकरना होगा॥१५॥ हे साधो ! यह सुनकर इस अद्भुत कार्यका विषय आपको विदित करती हूं अतएव इस संकटके कार्यमें क्या करना चाहिये ? आप यह भलीभांति विचारकर कहिये ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया जाननी अत्यन्त कठिन है विशेषकर वह किस अभिप्रायसे ऐसा कहते हैं यह मैं नहीं जानती हे सर्वज्ञ ! आप जो अनुमति

करें तो मैं आपका वह अभिलषित कार्य करूं ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा कान्ते ! तुम मेरी आज्ञासे अभी उन दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट जाओ हे सुभद्रे ! तुम अभी उनको मेरे समीप लाओ ॥१८॥ अधिक क्या कहूं तुम शीघ्र उनका वचन प्रतिपालन करो, इस विषयमें कुछ विचार करनेका प्रयोजन नहीं. व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याने पतिकी इस प्रकार आज्ञा पाय तत्काल उनके समीप जायकर कहा ॥१९॥ हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप देवताओंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके यह नियमित वचन स्वीकार हुए अब आप अपना कर्तव्य कार्य कीजिये तब वह दोनों देवता उसके इस प्रकार वचन सुन आश्रममें जाय ॥ २० ॥ राजकुमारीसे कहनेलगे तुम्हारे पति जलमें प्रवेश करें

च्यवन उवाच ॥ गच्छकांतेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते ॥ आनयस्व समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ ॥ १८ ॥ क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत् ॥१९॥ क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ ॥ तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ ॥ २० ॥ ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ॥ रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽभः प्रविवेश ह ॥२१॥ अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम् ॥ ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः ॥२२॥ तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल ॥ दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तथा ॥ २३ ॥ तेऽब्रुवन् सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि ॥ अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने ॥ २४ ॥

तब वृद्ध च्यवन सुन्दररूप पानेकी इच्छासे उसी समय अगाधजलमें घुसे ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरके जलमें प्रवेश किया कुछ कालोपरान्त उस सरोवरसे वह तीनों निकले ॥ २२ ॥ सबकाही दिव्यदेह समान सौन्दर्य समान नवयौवन और सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग कुण्डल इत्यादि अनेकप्रकार अलंकारोंसे सुशोभित थे अतएव अवयवोंकी कोई विलक्षणता नहीं दिखाई दी ॥ २३ ॥ तब एकवारउन सबोंने कहा हे भद्रे ! तुम्हारी समान सुन्दरी रमणी और दूसरी नहीं है विशेषकर

तुम्हारा वदनमण्डल विमल है अतएव तीनोंमेंसे जिसको तुम्हारी इच्छा हो उसको ही पतित्वमें वरण करो॥२४॥ हे वरानने! अथवा जिसके प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हो उसको ही वरणकरो व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! तब सुकन्याने देखा कि इन तीनोंका ही देवताओंके समान अनुरूप रूपलावण्य है ॥ २५ ॥ विशेषकर सौन्दर्य अवस्था स्वर और वेष समान है कुछ भी भिन्नता दिखाई नहीं देती वह उन सबका समान अवयव देखकर संशययुक्त हुई ॥ २६ ॥ वह राजकन्या अपने पतिको न पहचानकर अत्यन्त व्याकुल हो चिन्ता करने लगी इस समय मैं क्या करूं तीनोंका अवयव एकप्रकार है अतएव अब किसको वरण करूं ॥ २७ ॥ इनमें कौन पति है यह मैं नहीं जानती बोध होता है कि यह सब

यस्मिन्वाऽप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने ॥ व्यास उवाच ॥ सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥ २५ ॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान् ॥ सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन् ॥२६॥ अजानती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिंतयत् ॥ किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि न वेद्म्यहम् ॥२७॥ पतिं देवसुता ह्येते संशये पतिताऽस्म्यहम् ॥ इंद्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम् ॥२८॥ कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम् ॥ न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथंचन॥२९॥ देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा ॥ इति संचिंत्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३० ॥ दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी ॥ सुकन्योवाच ॥ शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्ताऽस्मि भृशदुःखिता ॥ ३१ ॥

देवताओंके पुत्र हैं अथवा उन दोनों देवकुमारोंने इस स्थानमें निश्चय इन्द्रजाल फैलाया है जो हो मैं इस समय विषम संशयमें पड़ी हूं ॥ २८ ॥ मैं पतिको त्यागकर अन्य किसीको कभी वरण न करूंगी अतएव मेरा मरण उपस्थित है अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ अब जो तीसरी मूर्ति देखती हूं बोध होता है कि यह भी कोई देवपुत्र है। इस प्रकार मनमें चिंताकर निश्चय किया कि अब मैं उन्हीं पराप्रकृति विश्वेश्वरी शिवाकी आराधना करूं ॥ ३० ॥ तब कृशोदरी राजकुमारी देवी भगवतीका स्तव करने लगी सुकन्याने कहा हे जगन्मातः! मैंने अत्यंत

दुःखमें गिरकर आपकी शरण ली है ॥३१॥ आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम करती हूं आप अब मेरे सतीत्व धर्मकी रक्षा कीजिये हे देवि ! आप कमलसे उत्पन्न हुई हैं आपको नमस्कार करती हूं आप शंकरकी प्रियतमा ॥ ३२ ॥ एवं विष्णुप्रिया लक्ष्मी और आप ही वेदमाता सरस्वती हैं अतएव आपको नमस्कार करती हूं स्थावर जंगमात्मक यह जगन्मंडल आपने ही उत्पन्न किया है ॥३३॥ और अव्यग्र चित्तसे उसका प्रतिपालन करती हैं और सम्पूर्ण लोकोंके शान्तिकी इच्छासे उसको ग्रास करती हैं अधिक क्या आप ही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरकी परम पूजनीय हैं ॥ ३४ ॥ आप ही ज्ञान हीन मूर्खोंको बुद्धि और ज्ञानियोंको सदा भक्ति देती हैं आप ही पुरुषोंकी प्रियदर्शन पूर्ण आद्या प्रकृति हैं ॥ ३५ ॥

रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव ॥ नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शंकरवल्लभे ॥ ३२ ॥ विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति ॥ इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ ३३ ॥ पासि त्वमिदमव्यग्रा तथाऽत्सि लोकशांतये ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसंमता ॥ ३४ ॥ बुद्धिदाऽसि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा ॥ आद्या त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शना ॥ ३५ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम् ॥ अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना ॥ ३६ ॥ सिद्धिदा योगिनामंब जयदा कीर्तिदा पुनः ॥ शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि विस्मयं परमं गता ॥ ३७ ॥ पतिं दर्शय मे मातर्मग्नाऽस्मिञ्छोकसागरे ॥ देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता ॥ ३८ ॥

जिन प्राणियोंकी आत्मा पवित्र हुई है आप ही उनको भोग और मुक्तिप्रदान करती हैं, जो अत्यंत ज्ञानहीन हैं उनको दुःख और जो सत्वगुणाश्रित जीव हैं उनको सुख देती हैं ॥ ३६ ॥ हे मातः ! आप ही योगियोंको सिद्धि कीर्ति और जयप्रदान करती हैं. इस समय मैंने विस्मय सागरमें पतित होकर आपको शरण ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ हे मातः ! इन दोनों देवताओंने कपटाचरण किया है, मैं इससे मोहित होकर किसको वरण करूं ? यह स्थिर नहीं कर सकती अतएव मैं शोक सागरमें निमग्न हुई हूं आप ही मुझे मेरे पतिको दिखाकर

उद्धार कीजिये ॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञे ! मेरे सतीव्रतको जानकर जिससे पतिका दर्शन प्राप्त करूं आप वही कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याके इस प्रकार स्तवसे परितुष्ट होकर देवी त्रिपुर सुन्दरीने ॥ ३९ ॥ तब उसके हृदयमें सुखकर सत्वज्ञान प्रदान किया तब तीनोंका अत्र यव और सौन्दर्य समान होनेपर भी ॥ ४० ॥ उस पतिव्रता बालाने उनको देखते ही मनमें निर्णयकर अपने पतिको ही वरण किया सुकन्याने जब च्यवनको ही वरण किया तब उसको देखकर वह दोनों देवता परम सन्तुष्ट हुए॥४१॥दोनों देवता भगवतीके प्रसादसे प्रसन्न हुए थे इसके पीछे फिर सतीधर्म देखनेसे परम प्रसन्न हो उसको वर दिया ॥ ४२ ॥ वह दोनों, मुनिवरकी स्तुति करके शीघ्र अपने स्थानको जानेके लिये उद्यत

पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥३९॥ हृदयेऽस्यास्तदाज्ञानं ददावाशु सुखोदयम् ॥ निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती ॥४०॥ प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम् ॥ वृतेऽथ च्यवने देवौ संतुष्टौ तौ बभूवतुः ॥ ४१ ॥ सतीधर्मं समालोक्य संप्रीतौ ददतुर्वरम् ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ ॥४२॥ मनिमामंत्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ ॥ लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम् ॥४३॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः ॥ उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ ॥ ४४ ॥ किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे ॥ प्राप्य भार्यां सुकेशांतां दुःखं मेऽभवदन्वहम् ॥ ४५ ॥ अंधस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने ॥ युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूप मद्भुतम् ॥ ४६ ॥ संपादितं ततः किंचिदुपकर्तुमहं ब्रुवे ॥ उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथंचन ॥ ४७ ॥

हुए किन्तु च्यवन उनके अनुग्रहसे रूप यौवन और भार्या प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए थे ॥ ४३ ॥ अतएव उन महातेजा मुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहा हे महानुभाव सुरयुगल ! आपने मेरा विशेष उपकार किया है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सुकेशी भार्या पाकर भी मुझको प्रतिदिन दुःख ही होता था ! किन्तु आपकी कृपासे इस असुखमय संसारमें जो कुछ सुख पाया है वह नहीं कह सकता ॥ ४५ ॥ मैं अत्यन्त वृद्ध और नेत्र विहीन होकर भोग रहित हुआ था परन्तु आपने ही वनमें आय मुझको नेत्र यौवन और अद्भुत सौन्दर्य प्रदान किया ॥ ४६ ॥ अतएव हे दोनों देवताओं !

मैं आपका किंचित् प्रत्युपकार करनेकी इच्छा करता हूं जो पुरुष उपकारी मित्रका कुछ भी उपकार नहीं करते ॥ ४७ ॥ उनको धिक्कार है विशेषकर वह पुरुष पृथ्वीमें सदा ऋणी होते हैं अतएव आप इस समय जो इच्छा करें यह यदि देनेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ हे दोनों देवताओं ! आप जिसकी इच्छाकर मेरी वही देवता अथवा असुरोंको भी दुर्लभ हो तो भी नवीन देहका ऋण छुडानेके लिये मैं वही आपको दूंगा ॥ ४९ ॥ मैं आपके सत्कार्यसे परम पारितुष्ट हुआ हूं अतएव तुम मनका अभिलाष कहो उन्होंने मुनिवर च्यवनके इस प्रकार वचन सुन परस्पर परामर्श की ॥ ५० ॥ फिर सुकन्याके सहित एकत्र बैठे हुए मुनिवर च्यवनसे कहा हे महर्षे ! पिताके अनुग्रहसे हमने अभिलाषित सम्पूर्ण वस्तु प्राप्त की है

तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि ॥ तस्माद्वां वांछितं किंचिद्दातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥४८॥ आत्मनो ऋणमोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च॥प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ॥४९॥ ब्रुवाथां वां मनोदिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम् ॥ श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमंत्र्य परस्पम् ॥ ५० ॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठ सुकन्यासहितं स्थितम् ॥ मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम् ॥५१॥ उत्कंठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह ॥ भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसंग्रहे ॥ ५२ ॥ शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले ॥ तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस ॥५३॥ कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वांछितं नौ सुसंमतम् ॥ एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ ॥ ५४ ॥ पिपासाऽस्ति सुदुष्प्रापा त्वत्तः समुपयास्यति ॥ च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु ॥५५॥

तथापि देवताओंके सहित एकत्र सोमपान अतिदुर्लभ जानकर उसमें ही बलवती हमारी इच्छा रहती है ॥ ५१ ॥ कनकाचलमें ब्रह्माके विस्तीर्ण यज्ञकालके समय सुरराज इन्द्रने भिषक् कहकर हमको सोमपान करनेसे निषेध किया है ॥ ५२ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ तापसवर ! आप यदि अनुग्रहपूर्वक यह कार्य करनेमें समर्थ हो तो हमारा अत्यन्त प्रिय और अभिलाषित कार्य साधन कीजिये ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप वांछित सब विषय जान सकते हैं इस समय हमको देवताओंके सहित सोमपायी कीजिये हमको यह पिपासा अत्यन्त बलवती रहती है आप वह देकर तृप्तकर सकते हैं इसी कारण आपसे निवेदन किया ॥ ५४ ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंका यह वचन सुनकर महर्षि च्यवन प्रीति सहित उनसे अति कोमल

वचन कहने लगे ॥ ५५ ॥ हे सुरद्वय ! मैं अन्धा जरातुर वृद्ध था किन्तु आपके अनुग्रहसे रूपवान् पुरुष हुआ हूं विशेषकर आपकी ही कृपासे फिर भार्या प्राप्त हुई है ॥ ५६ ॥ अतएव देवराज इन्द्रके सामने प्रीति सहित आपको सोमपायी करूंगा यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ५७ ॥ अमितद्युति महाराज शर्यातिके यज्ञमें तुम्हारा अभिलाष पूराहोगा. वह दोनों अश्विनी कुमार मुनिवरके यह वचन सुन परम सन्तुष्ट हो ॥ ५८ ॥ सुरलोकको चले गये और मुनिवर च्यवन भी उस कन्याको ले अपने आश्रममें आये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! महर्षि च्यवनने उन दोनों देवताओंको किस प्रकार सोमपानमें

यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः ॥ कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति ॥ ५६ ॥ तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपायिनौ ॥ मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥ राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः ॥ इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रति जग्मतुः ॥ ५८ ॥ च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममंडलम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ ॥ वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः ॥ १ ॥ मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति ॥ निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ ॥ २ ॥ धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो ॥ चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम् ॥ च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत ॥ ४ ॥

अधिकारी किया था ? अथवा उन महात्मा मुनिवरका वचन किस प्रकार सत्य हुआ था ? ॥ १ ॥ देवराज इन्द्रके बलके निकट मनुष्यका बल अति सामान्य है इस पर भी इन्द्रके निषेध करनेपर उन्होंने उन दोनों देववैद्योंको सोमपानमें अधिकार प्रदान किया था ॥ २ ॥ यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ! अतएव हे धर्मनिरत ! हे प्रभो ! इस समय आप च्यवन महर्षिका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इसको श्रवण करनेके लिये मेरी अत्यन्त इच्छा है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! पृथ्वीपर राजा शर्यातिके उस विस्तीर्ण यज्ञमें च्यवन ऋषिने अत्यन्त

अद्भुत कार्य किया था हे भारत ! मैं उसका वही परम अद्भुत चरित्र वर्णन करता हूं सावधान होकर उसको सुनिये ॥ ४ ॥ देवताके समान तेजयुक्त महर्षि च्यवन देवकन्याओंके समान उस सुन्दरी कन्याको पाकर परम प्रीति एवं प्रसन्न चित्तसे उसके संग विहार करनेलगे ॥ ५ ॥ अनंतर एक समय राजा शर्यातिकी प्रियतम भार्या कन्याकी चिंता कर अत्यंत कातर हो कम्पायमान शरीरसे रोदन करते करते अपने पतिसे कहने लगी ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आपने अन्धे मुनि च्यवनको कन्या दान की किंतु वह वनवासिनी कन्या जीवित है अथवा मर गई विशेषकर उसे एकवार खोजना आपको उचित है ॥ ७ ॥ हे नाथ ! वह सुंदरी कन्या ऐसे अन्धे पतिको पायकर क्या करती है ? उसको

सुकन्यां सुंदरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः ॥ विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवामरः ॥ ५ ॥ कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिंतातुरा भृशम् ॥ पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया ॥ ६ ॥ राजन्पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽधाय कानने ॥ मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया ॥ ७ ॥ गच्छ नाथ मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात् ॥ किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम् ॥ ८ ॥ पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धाऽस्मि सर्वथा हृदि ॥ तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदंतिके ॥ ९ ॥ पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशांगीं वल्कलावृताम् ॥ अंधं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरीम् ॥ १० ॥ शर्यातिरुवाच ॥ गच्छामोऽद्य विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात् ॥ प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम् ॥ ११ ॥

देखनके लिये आप उन मुनिवरके आश्रममें अभी जाइये ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! कन्याका दुःख विचार कर मेरा हृदय सर्वदा दुःखानलमें दग्ध होता है वह विशाल लोचना तपस्याके क्लेशसे अवश्य ही क्षीणाङ्गी हो गई होगी अतएव सुकन्याको शीघ्र मेरे निकट लाओ ॥ ९ ॥ जरातुर अन्धे पतिको पाय वह सदा ही दुःख भोगती है अतएव क्लेशसे कृश और क्षीण होनेकी सम्भावना है सुतरां वल्कल पहरनेवाली कृशोदरीकुमारी को एकवार मेरीदेखनेकी इच्छा है ॥ १० ॥ शर्यातिने कहा हे विशालाक्षि ! प्रियतनया सुकन्या और शंसितव्रत उन मुनिवरको देखनेके लिये

अभी आदर पूर्वक मैं वहां जाता हूं ॥११॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! महाराज शर्याति शोकाकुल भार्यासे यह कह रथपर चढ़ शीघ्र मुनिवर च्यवनके आश्रमकी ओर चले ॥ १२ ॥ महीपति शर्यातिने आश्रमके समीप पहुंचकर नवयौवन सम्पन्न देव पुत्रके समान च्यवनको देखा ॥ १३ ॥ तब नरपति देवताओंके समान उनका अंग देखकर अत्यंत आश्चर्ययुक्त हो मनमें चिंता करने लगे मेरी इस कन्याने क्या जन समाज निंदनीय कुत्सित कार्य किया है ॥ १४ ॥ वह मुनिवर अत्यंत शांतस्वभाव निर्धन और वृद्ध थे अतएव कन्याने कामशरसे कातर हो उनको मार इच्छानुसार दूसरा पति किया है इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ पुष्पधन्वा कामदेव स्वभावसे ही दुःसह है विशेषकर फिर यौवन का

व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम् ॥ जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाऽऽश्रमं मुनेः ॥ १२ ॥ गत्वाऽऽश्रम समीपे तु तमपश्यन्महीपतिः ॥ नवयौवनसंपन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम् ॥ १३ ॥ तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः ॥ किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम् ॥ १४ ॥ निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयाऽन्यः पतिः कृतः ॥ कामपीडितया कामं प्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥ १५ ॥ दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने ॥ कुले कलंकः सुमहाननया मानवे कृतः ॥ १६ ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता ॥ सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम् ॥ १८ ॥ मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये ॥ वृद्धायांधाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल ॥ १७ ॥ कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल ॥ तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया ॥ १९ ॥

लके समय अत्यंत दुःसह हो जाता है अतएव इस कन्याने कामबाणके वशीभूत हो सुमहान् मनुके विमल कुलमें घोर कलंक लगाया है ॥ ॥१६॥ इस लोकमें जिसकी कन्या खोटे चरित्रोंवाली है उसके जीवनको धिक्कार है बोध होता है कि सम्पूर्ण पापोंका दुःख भोगनेके लिये देहिगणोंके कन्या उत्पन्न होती है ॥१७॥ परंतु मैंने स्वार्थ सिद्धिके लिये क्या अनुचित कार्य किया है यत्नसहित उपयुक्त पात्रको ही कन्या दान करना पिताको अवश्य कर्तव्य है किंतु मैंनेजान सुनकर भी जरातुर अन्धे तापसको कन्या दान की है ॥ १८ ॥ अतएव मैंने जिस प्रकार

कार्य किया है उसके अनुसार फल अवश्य ही होगा इसमें फिर क्या संदेह है ॥ १९ ॥ मेरी कन्याने कुचरित्र हो पाप कार्यका अनुष्ठान किया है अतएव अब यदि इस निमित्त कन्याको मारूं तो अवध्य स्त्री हत्याजनित पाप मुझको स्पर्श करेगा विशेषकर इससे मुझको कन्याकी हत्याका भी पाप होगा ॥ २० ॥ इधर जिस प्रकार लोकापवाद अत्यंत बलवान् है इसी प्रकार स्नेहशृंखला भी मायाजनित मोहसे अत्यंत दुश्छेद्य है तो इस प्रकार संकट स्थलमें कार्य निर्णय करना मेरे समान मनुष्यकी बुद्धिके अगोचर है तात्पर्य यह है कि मुझसे ही विख्यात मानव वंश कलंकित हुआ ॥ २१ ॥ राजा शर्याति जब किंकर्तव्यमूढ हो चिंता कर रहे थे तब सुकन्याने दैवयोगसे उस चिंतासागरमें डूबे हुए

हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम् ॥ स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः ॥ २० ॥ मनुवंशस्तु विख्यातः सकलंकः कृतो मया ॥ लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहशृंखला ॥२१॥ किं करोमीति चिंताब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः॥ सुकन्यया तदा दैवाद्दृष्टश्चिन्ताकुलः पिता ॥ २२ ॥ सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरंतिके ॥ गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा ॥ २३ ॥ किं विचारयसे राजंश्चिताव्याकुलिताननः उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमंबुजेक्षणम् ॥ २४ ॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम ॥ मा विषादं नृपश्रेष्ठ सांप्रतं कुरु मानव ॥२५॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः ॥ प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः ॥ २६ ॥

पिताको देखा ॥ २२ ॥ उनको देखकर सुकन्या तत्काल पिताके समीप गई और उनके समीप जाय प्रीतिपूर्ण हृदय हो भूपतिसे पूँछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह जो मुनिवर विराजमान हैं इनका रूप यौवन और कमलके समान सुन्दर नेत्र देखकर आपका मुखमण्डल चिंतासे मलिन क्यों हुआ ? हे पितः ! आप मनमें क्या चिंता करते हैं ॥२४॥ हे पितः ! तुमने विख्यात मनु[illegible] वंशमें जन्म ग्रहण किया है विशेषकर आप पुरुषोंमें प्रधान अतएव आपके समान महात्माओंको सहसा दुःखित होना उचित नहीं है. हे राजेन्द्र ! आप शीघ्रआनकर मेरे पतिको प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ व्यासजीने क[illegible] हे महाराज ! कन्याके यह वचन सुन राजशर्यातिने क्रोधसे अत्यंत

अधीर हो संमुख स्थित कन्यासे कहा ॥ २६ ॥ राजाबोले हे पुत्रि ! तापस प्रधान वह जरातुर अन्धे च्यवन मुनि कहां और यह मदोन्मत्त युवा कहां इस विषयका मेरे मनमें महान् संदेह उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ पापीयसि ! तैने कुकार्यमें निरत हो क्या मुनिवर च्यवनको मारडाला है? रे कुलकलंकिनि ! तैने कामके वशीभूत हो क्या नूतन पति ग्रहण किया है उन मुनिवरको आश्रममें न देखकर मैं इस प्रकार चिंतासे व्याकुल हुआ हूं ॥ २८॥२९ ॥ हे दुराचारे ! अब महर्षि च्यवनको नहीं देखता किंतु इस दिव्य पुरुषको देखता हूं अवश्य तेरे कुव्यवहारसेही मैं इस

राजोवाच ॥ क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोंऽधस्तापसोत्तमः ॥ कोऽयं युवा मदोन्मत्तः संदेहोऽत्र महान्मम ॥ २७ ॥ मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि ॥ नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि ॥ २८ ॥ सोऽहं चिंतातुरस्ते न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल ॥ २९ ॥ निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना ॥ दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम् ॥ ३० ॥ विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः ॥ गृहीत्वाऽनीय पितरं भर्तुरंतिकमादरात् ॥ ३१ ॥ च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः ॥ अश्विभ्यामीदृशः कांतः कृतः कमललोचनः ॥ ३२ ॥ यदृच्छयाऽत्र संप्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम ॥ ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः ॥ ३३ ॥ नाहं तव सुता तात तथा स्यां पापकारिणी ॥ यथा त्वं मन्यसे राजन्विमूढो रूपसंशये ॥ ३४ ॥

प्रकार चिंतारूपी समुद्रमें निमग्न हुअ हूं ॥ ३० ॥ तब सुकन्या पिताके वचन सुनकर हँसी और आदरपूर्वक उनको शीघ्र स्वामीके निकट लेजाकर कहा ॥ ३१ ॥ हे तात ! यह आपके जामाता च्यवन मुनिहैं इसमें संदेह नहीं दोनों अश्विनी कुमारोंने दयाके वश होकर इनको ऐसी कमनीय कांति और कमलके समान मनोहर नेत्र प्रदान किये हैं ॥ ३२ ॥ अश्विनी कुमार इच्छानुसार मेरे इस स्थानमें आये थे, उन्होंने करुणाके वश हो च्यवनको ऐसा रूपवान् कर दिया है इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! आप च्यवनका रूपदेखकर संशययुक्त और विमोहित

हो "मैंने कुकार्य किया है" इस प्रकार जानते हो. हे तात ! आप जानिये कि मैं आपकी पापकारिणी कन्या नहीं हूं ॥ ३४ ॥ हे पितः ! आप भृगुनंदन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये हे राजन् ! आपके उनसे इसका कारण पूँछनेपर वह आपसे आनुपूर्वीसे संपूर्ण वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन करेंगे ॥ ३५ ॥ राजा शर्याति कन्याके इस प्रकार वचन सुन तत्काल मुनिवरके समीप जाय उनको प्रणामकर आदरपूर्वक पूँछने लगे ॥ ३६ ॥ राजा शर्याति बोले हे भृगुनंदन ! आपको किस प्रकार ऐसे दोनों नेत्र प्राप्त हुए अथवा आपका बुढापा कहां चला गया आप शीघ्र अपना आनुपूर्विक वृत्तांत वर्णन कीजिये ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपका अत्यंत सुन्दर रूप देखकर मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है

प्रणम त्वं मुनिं राजन्भार्गवं च्यवनं पितः ॥ आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम् ॥३५॥ इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा ॥ प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम् ॥३६॥ राजोवाच ॥ कथयस्व स्ववृत्तांतं भार्गवाशु यथोचितम् ॥ नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः ॥३७॥ संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ॥ वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ च्यवन उवाच ॥ नासत्यावत्र संप्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ ॥ उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम ॥३९॥ मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे ॥ करिष्यामि मखे राज्ञो भवंतौ सोमपायिनौ ॥ ४० ॥ एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा ॥ स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे ॥ ४१ ॥

अतएव आप अपना विवरण विस्तारपूर्वक वणन कीजिये मैं उसको सुनकर अत्यंत सुखी हूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३८ ॥ च्यवन मुनि बोले हे नृपसत्तम ! देव वैद्य दोनों अश्विनीकुमार कार्यवश इस स्थानमें आये थे उन्होंने कृपाके वशीभुत होकर मेरा यही उपकार किया है ॥ ३९ ॥ उसी उपकारके कारण मैंने उनको वर दिया है कि राजा शर्यातिके अग्निष्टोम यज्ञमें आपको सोमपायी करूंगा ॥४०॥ इस प्रकार मुझको विमल नेत्र और अभिनव यौवन प्राप्त हुआ है अतएव हे महाराज ! आप सावधान होकर पवित्र यज्ञीय आसनपर विराजमान हूजिये ॥४१॥

प्रियवर च्यवन मुनिके इस प्रकार कहनेपर फिर पृथ्वीपति शर्याति और उनकी प्रियतमा महिषी परमसुखसे विराजमान हुए और उन महानुभाव मुनिवरके संग कल्याण कर कथोपकथन करने लगे ॥४२॥अनन्तर भार्गव श्रेष्ठ च्यवन राजाको भली प्रकार समझाकर कहने लगे हे राजन् ! मैं आपका यज्ञ कार्य संपादन करूंगा अतएव आप यज्ञीय सामग्री सम्भार आयोजन कीजिये ॥ ४३ ॥ मैं दोनों अश्विनी कुमारोंके निकट प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि तुमको अवश्य सोमपायी करूंगा अतएव हे नृपवर ! आपके विस्तीर्ण यज्ञमें मुझको यह कार्य सम्पन्न करना होगा ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रके कुपित होनेपर भी मैं तपोबलके प्रभावसे उनको निवारण कर आपके अग्निष्टोम यज्ञमें उनको सोमपान कराऊंगा ॥ ४५ ॥

इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः ॥ सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना ॥ ४२ ॥ अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसांत्वयन् ॥ याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानुपकल्पय ॥४३॥ मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम् ॥ तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे ॥४४॥ इंद्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं तेजोबलेन वै ॥ पाययिष्यामि राजेंद्र सोमं सोममखे तव ॥४५॥ ततः परमसंतुष्टशर्यातिः पृथिवीपतिः ॥ च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति ॥ सभार्यश्चातिसंतुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल ॥ ४७ ॥ प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ ॥ भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम् ॥ ४९ ॥ वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः ॥ आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः ॥ ५० ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! तदनन्तर पृथ्वीपतिशर्याति परम सन्तुष्ट हो च्यवन मुनिके उन वचनोंका अनुमोदन करने लगे ॥ ४६ ॥ राजा च्यवनका सन्मान देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे भार्याके सहित मुनिवरकी बात कहते कहते नगरकी ओर चले ॥४७॥ उन राजाके किसी अभिलषित धनरत्नादिकी कमी नहीं थी अतएव मुनिवरकी आज्ञानुसार उन्होंने यज्ञ करनेके श्रेष्ठ दिनमें अत्युत्तम यज्ञभूमि प्रस्तुत कराई ॥४८॥ अन्तमें भृगुनंदन च्यवनके वसिष्ठ इत्यादि पूज्यपाद मुनियोंको बुलाकर पृथ्वीपति शर्यातिकोउस यज्ञमें दीक्षित किया ॥४९॥ वह विस्तृतयज्ञ

आरम्भ होनेपर इन्द्रादि देवता लोग और दोनों अश्विनी कुमार सोमपान करनेके लिये उस स्थलमें आये॥ ५०॥ किंतु इंद्र उस यज्ञमण्डपमें दोनों अश्विनीकुमारोंको देखकर शंकित हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूंछने लगे यह किस कारणसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं ?॥ ५१॥ यह चिकित्सक हैं अतएव कभी सोमपानके योग्य पात्र नहीं हैं तब कौन पुरुष इस विस्तृत अग्निष्टोम यज्ञमें इनको लाया है ? देवताओंने तिसकाल राजाके सुविस्तृत यज्ञस्थलमें देवराज इन्द्रको उस वचनका कुछ उत्तर न दिया ॥ ५२ ॥ तब च्यवनमुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये जिससमय सोम ग्रहण किया तिसी समय इन्द्रने उनको निवारण करके कहा पहलेसे ही इनका यज्ञभागमें अधिकार निषिद्ध है अतएव

इंद्रस्तु शंकितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ ॥ पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ ॥ ५१ ॥ चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च ॥ नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे ॥ ५२ ॥ अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५३ ॥ तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ ॥ न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते ॥ ५४ ॥ न संकरौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः ॥ केन दोषेण देवेंद्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ ॥ ५५ ॥ निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यो दैवतैः सह ॥ ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया ॥ ५६ ॥ प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल ॥ एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो ॥ ५७ ॥

इनके लिये सोमग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५३ ॥ च्यवन बोले हे शचीपते ! यह सूर्यके पुत्र हैं तो यह अश्विनीकुमार किस लिये सोमग्रहण करनेके उपयुक्त नहीं हैं आप यह सत्य कहिये॥ ५४॥ यह संकरजातीय नहीं है सूर्य देवकी धर्मपत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है हे देवेन्द्र ! तो यह भिषग्वर किस दोषसे सोमपान नहीं कर सकेंगे ? यह आप कहिये॥ ५५ ॥ हे शक्र ! सम्पूर्ण देवता लोग मिलकर इस यज्ञमें इस विषयका निर्णय कीजिये. हे भगवन् ! मैंने इनको सोमपायी करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५६ ॥ अतएव अपना वचन पालन करनेके लिये राजाको यज्ञमें

दीक्षित किया है सुतरां इस यज्ञमें मैं इनको सोमग्रहण कराकर अपने सत्यको पालन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ हे शक्र ! इन्होंने मुझको नवीन अवस्था और नेत्र प्रदान करकेविशेष उपकार किया है अतएव मैं यथाशक्ति इनका प्रत्युपकार करूंगा ॥ ५८ ॥ इन्द्रने कहा देवताओंने इन दोनों अश्विनीकुमारोंको चिकित्सक कार्यमें नियुक्त किया है इसी कारणसे यह देवसमाजमें निन्दनीय हैं सुतरां यह सोमपानकरनेके उपयुक्त नहीं हैं अतएव आप इनके लिये सोमपानग्रह ग्रहण न कीजिये ॥५९॥ च्यवनमुनि बोले हे इन्द्र ! तुम अहल्याके जार होकर क्यों इतना निरर्थक कोप प्रकाशकरते हो तुमने विश्वास घातकतापूर्वक वृत्रासुरको मारा है तुम्हारे समान पापात्माके वचनसे सूर्यात्मज अश्विनीकुमार

आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः ॥ तस्मात्प्रत्युपकारस्तु कर्तव्यः सर्वथा मया ॥५८॥ इंद्र उवाच ॥ चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निंदितौ सुरैः ॥ उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥५९॥ च्यवन उवाच ॥ अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम् ॥ वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ ॥६०॥ एवं विवादे समुपस्थिते च न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप ॥ ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामास तपोबलेन ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ दत्ते ग्रहे तु राजेंद्र वासवः कुपितो भृशम् ॥ प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः ॥१॥ मा ब्रह्मबंधो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि ॥ वधिष्यामि द्विषंतं त्वां विश्वरूपमिवापरम् ॥ २ ॥

सोमपान न करें यह कभी सम्भव नहीं हो सकता॥ ६० ॥ हे भूप ! इस प्रकार विवाद उपस्थित होनेपर उनसे कोई भी कुछ नहीं कहेगा तिस समय तिग्मतेजा भार्गवने अपने तपोबलसे उनको सोमग्रहण कराई ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जब दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमपूर्णपात्र दिया गया तब इन्द्रने अत्यन्त क्रोधित हो अपना बलप्रदर्शनपूर्वक मुनिवर च्यवनसे कहा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! कभी तुम इनको ऐसा सन्मान स्थापन करनेमें समर्थ नहीं होगे

तुम जब मेरे प्रति विद्वेष प्रकाश करते हो तब निश्चय ही विश्वरूपके समान तुम्हारा वध करूंगा ॥ २ ॥ च्यवनमुनि बोले हे मघवन् ! जिन्होंने रूपलावण्य और तेजप्रदान करके मुझे साक्षात् देवमूर्तिके समान मनोहर किया है तुम उन दोनों महात्माओंका अपमान मत करो ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र ! जब अन्य समस्तदेवता तुमको छोड़कर सोमपात्र ग्रहण करते हैं तब ऐसे महाप्रभावयुक्त देव दोनों अश्विनीकुमार भी अवश्य इसको ग्रहण कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा यह भिषग् हैं इस कारण यज्ञमें सोमपात्र ग्रहण करनेके किसी प्रकार अधिकारी नहीं होंगे हे

च्यवन उवाच ॥ माऽवमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा ॥ यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृंदारकमिवापरम् ॥ ३ ॥ ऋते त्वां विबुधा श्चान्ये कथं वाऽऽददते ग्रहम् ॥ अश्विनावपि देवेंद्र देवौ विद्धि परंतपौ ॥४॥ इंद्र उवाच ॥ भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथं चन ॥ यदि दित्ससि मंदात्मन् शिरश्छेत्स्यामि सांप्रतम् ॥५॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः ॥ ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम् ॥६॥ सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया ॥ समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम् ॥ वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम् ॥ ८ ॥ वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः ॥ जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान् ॥ ९ ॥

दुर्मते ! यदि तुम इनको सोमपात्र प्रदान करनेकी इच्छा करते हो तो मैं अभी तुम्हारा शिर काट डालूंगा ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे भारतभूषण ! भार्गवने इन्द्रके इन वचनोंका निरादर करके तथा उनको अत्यन्त तिरस्कार पूर्वक दोनों अश्विनीकुमारोंको सोम ग्रहणकराया ॥६॥ सोमपानकी इच्छासे जब उन्होंने सोमपात्र ग्रहण किया तब बलभित्इंद्रने उनको देखकर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ अपने प्रयोजनसे तुम यदि इनकोस्वयं सोमग्रहण कराओगे तो विश्वरूपके समान तुम्हारे मस्तकपर आयुधवज्र प्रहार करूंगा॥८॥अत्यंत गर्वित भार्गवमुनि इंद्रके यह वचन सुन महाक्रोधित हुए और

विधिपूर्वक दोनों अश्विनी कुमारोंको सोमग्रहण कराया ॥ ९ ॥ इंद्रनेभी क्रोधसे संपूर्ण देवताओंके सामने उनके ऊपर अपना प्रधान वज्र चलाया तब उस आयुधकी करोड सूर्यके समान प्रभा प्रकाशित होने लगी ॥ १० ॥ तब महर्षि च्यवनने वज्रको चलाता हुआ देखकर तपके प्रभावसे अमिततेजा इंद्रके वज्रको स्तम्भित कर दिया ॥ ११ ॥ तब महाबाहु मुनिवर अभिचार क्रिया द्वारा इंद्रको संहार करनेकी इच्छासे पक्कइव्य मंत्रपूत करके अग्निमें आहुति प्रदान करने लगे ॥ १२ ॥ अमिततेजा मुनिवर च्यवनके तपोबलद्वारा उस अग्निकुण्डसे कृत्या उत्पन्न हुई उस कृत्यासे प्रबल पराक्रमी पुरुषाकार क्रूरस्वभाव विशाल शरीरवाला एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह महाघोर मदनामक असुर इस

इंद्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम् ॥ पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥ प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवन स्तपसा ततः ॥ स्तंभयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः ॥११॥ कृत्यया स महाबाहुरिंद्रं हंतुमिहोद्यतः ॥ जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मंत्रेण मुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात् ॥ प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः ॥ १३ ॥ मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह ॥ शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥१४॥ चतस्रश्चाऽऽयता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् ॥ इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥१५॥ बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ ॥ जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम् ॥१६॥ ग्रीवा तु गिरिशृंगाभा कठिना भीषणा भृशम् ॥ नखा व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीव भीषणाः ॥ १७ ॥ शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम् ॥ नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणे च भयानके ॥ १८ ॥

लोकमें प्राणियोंको भयदायक था उसका शरीर पर्वतके समान बड़ा सम्पूर्ण दाँत तीक्ष्ण और भयानक थे उनमें चार दाँत शत योजन चौडे और अन्य दांत दश योजन विस्तीर्ण थे ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ और उसके दोनों बाहु पर्वतके समानदीर्घ और घोरदर्शन थे जिह्वा भीषण कर्कश और इतनी बडी थी कि नभोमंडलको स्पर्श करने लगी॥१६॥ उसकी ग्रीवा पर्वतके शिखरके समानकठिन और अत्यंत भीषणाकार थी, नख सब व्याघ्रके नखके समान और केशसमूहअत्यन्त भीषण थे॥१७॥ उसका शरीर कज्जलके समान कृष्णवर्ण तथा मुख-मण्डल विकटाकार और

भयानक था दोनों नेत्र अग्निके समान उज्ज्वल और अत्यन्त भयानक थे ॥१८॥ उसकी एक हनु (ठोडी) पृथ्वीमें और दूसरीस्वर्गकोस्पर्शकर रही थी इस प्रकार बृहत्काय मदनामक असुर उत्पन्न हुआ ॥१९॥ संपूर्ण देवतालोग उसको देखकर सहसा भीत होगये इंद्रनेभी उसको देखकर भीत हो फिर युद्धकरनेकी इच्छा न की ॥२०॥ दैत्यभी इच्छानुसार इंद्रके उस वज्रको मुखमें डालकर नभोमंडलको देखता हुआ जगत्को एकवारही ग्रास करनेके लिये खडा हुआ ॥ २१ ॥ वह अत्यन्त क्रोधित होकर इंद्रको भक्षण करनेकेलिये दौडा यह देखकर वहां स्थित देवता "हम मरे" यह

हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता ॥ एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः ॥१९॥ तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरं ञ्जसा ॥ इंद्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे ॥ २० ॥ दैत्योऽपि वदने कामं वज्रमादाय संस्थितः ॥ व्यात्तं नभो घोरदृष्टिर्ग्रस न्निव जगत्त्रयम् ॥ २१ ॥ स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ चुक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः ॥ २२ ॥ इंद्रः स्तंभितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् ॥ न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः ॥ २३ ॥ वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्नि भम् ॥ सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम् ॥ २४ ॥ स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः ॥ गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिस दृशं महत् ॥ २५ ॥ विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम् ॥ दुःसाध्योऽयं महामंत्रैस्त्वयं वज्रेण वासव ॥ २६ ॥ असुरो मद संज्ञस्तु यज्ञकुंडात्समुत्थितः ॥ तपोबलमृषेः सम्यक् च्यवनस्य महाबलः ॥ २७ ॥

कहकर चीत्कार करने लगे ॥ २२ ॥ दोनों बाहुओंके स्तंभित होजानेसे पाकशासन इंद्र वज्र चलानेकीइच्छा करकेभी किसी प्रकार उसको प्रहार न करसके॥२३॥तब वज्रहस्त सुरपतिनेकालकेसमान असुरको देखकर समयकेजाननेवाले गुरुको मनमें स्मरणकिया॥२४॥ उदारबुद्धि बृहस्पतिजी महत्विपत्तिका समय जानकर तत्काल स्मरण करतेही आये ॥ २५ ॥ तब कर्तव्य कार्य्य मनमें विचारकर उन्होंने शचीपति इंद्रसे कहा हे वासव ! इसका वज्रसे निवारित होना तो दूर रहे वरन् इसको महामंत्रके बलसेभी निवारण करना कठिन है॥२६॥यह महाबलवान् मदनामक असुर च्यवन

ऋषिकेतपोबलप्रभावद्वारा यज्ञकुण्डसे निकला है इसमें महर्षि प्रभूत तपोवीर्य्य प्रकाशित हुआ है॥२७॥ हे देवेश ! इस शत्रुको तुम मैं अथवा देवता कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहीं होगा अतएव तुम महात्मा च्यवनकी शरणागत होओ ॥ २८ ॥जो पुरुष पराशक्तिका भक्त है उसके कोपको दूसरेकी तो बात क्या है ब्रह्माजीभी निवारण नहीं करसकते च्यवनमुनि पराशक्तिके भक्त हैं इस कारण दूसरा कोई उनको निवारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होगा वेही निजकृत कृत्याको निवारण करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इन्द्र गुरुका यह उपदेश सुनकर फिर मुनिके समीप गये और डरसहित मस्तक झुकायउनको प्रणामकर कहनेलगे ॥ ३० ॥ हे मुनिवर ! मुझको क्षमा

अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया ॥ शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः ॥२८॥ स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल ॥ न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित् ॥२९॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदाऽऽगच्छन्मुनिं प्रति ॥ प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः ॥३०॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम् ॥ प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम् ॥३१॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ॥ भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ॥ ३२ ॥ मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन ॥ जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि ॥ ३३ ॥ सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि ॥ भविष्यतश्च शर्यातेः कीर्तिस्तु विपुला भवेत् ॥ ३४ ॥ मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम ॥ परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम् ॥ ३५ ॥

करके देवताओंकेविनाशमें उद्यत उस असुरको निवारण कीजिये हे सर्वज्ञ ! आप प्रसन्न हूजिये मैं आपका वचन प्रतिपालन करता हूं॥ ३१ ॥ हे भार्गव ! अबसे यह अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी हुए यह आपसे सत्य कहता हूं हे विप्र ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ हे तपोधन ! आपका यह उद्यम कभी निष्फल नहीं होगा विशेष कर मैं आपको धर्मज्ञ जानता हूं अतएव आप अपने वचन कभी मिथ्या नहीं करेंगे॥ ३३ ॥ यह अश्विनीकुमार आपकी कृपासे सदाही सोमपायी होंगे और राजा शर्यातिकी कीर्तिकी भी सीमा नहीं रहेगी ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आप यह निश्चय जानिये कि मैंने जो कर्म किया है वह केवल आपके तपोवीर्यकी परीक्षाकरनेके लिये

किया है ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यज्ञकुण्डसे निकले हुए इस मदनामक असुरको संहार कर मेरे प्रति कृपा कीजिये इससे सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ परमार्थके जाननेवाले मुनिवर च्यवनने इंद्रके इस प्रकार कातरतापूर्ण वचन सुनकर उनके सहित विरोध होनेसे जो क्रोध उत्पन्न हुआ था उसको दूर किया ॥ ३७ ॥ फिर महर्षि च्यवनने मदनामक असुरके भयसे उद्विग्न देवताओंको समझाया उस मदको स्त्रीजाति सुरापान द्यूतक्रीडा और मृगया इन चारभागोंमें विभक्त किया ॥ ३८ ॥ इन सम्पूर्ण विषयोंमें मद सदावास करेगा मदके इसप्रकार विभक्त होनेपर भयचकित देवेन्द्र रक्षा पाय सावधान हुए तब च्यवनने सम्पूर्ण देवताओंको यथाविधि स्थापितकर

प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्मदं संहर चोत्थितम् ॥ कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित् ॥ संजहार ततः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम् ॥३७॥ देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः ॥ व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च ॥३८ ॥ मदं विभज्य देवेंद्रमाश्वास्य चकितं भिया ॥ संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत् ॥३९॥ ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने ॥ अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः ॥ ४० ॥ एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ ॥ विहितौ सोमपौ राजन्सर्वथा तपसो बलात् ॥४१॥ सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमंडितम् ॥ आश्रमस्तु मुनेः सम्यक्पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत् ॥४२॥ शर्यातिरपि संतुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा ॥ यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः ॥ ४३ ॥

उस यज्ञको समाप्त किया ॥३९॥ फिर धर्मात्मा भार्गवने महात्मा इंद्र और दोनों अश्विनीकुमारोंको सम्यक् प्रकारसे संस्कृत सोमपान करा ॥४०॥ हे राजन् ! च्यवन मुनिने उन आर्य सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमारोंको तपोबलके प्रभावसे इस प्रकार सोमपायी किया था ॥ ४१ ॥ तबसे वह सरोवर यूपमंडित हो विख्यात हुआ और मुनिका आश्रम भी भूमंडलमें सम्यक् प्रकार विख्यात और सन्मानित हुआ ॥ ४२ ॥ शर्याति राजा भी उस कार्यसे परम संतुष्ट हुए और यज्ञ समाप्त करके मंत्रियोंके सहित नगरको चलेगये ॥ ४३ ॥

अनन्तर वह मनुपुत्र प्रतापवान् धर्मज्ञ नरपाल शर्याति निर्विघ्न राज्य शासन करने लगे उनका पुत्र आनर्त्त और आनर्त्तके रेवत नामक एक पुत्र उत्पन्न आ ॥ ४४ ॥ वह रेवत समुद्रमें कुशस्थली नगरी स्थापनपूर्वक वहां वास कर आनर्त्तादि प्रदेशस्थ समस्त विषय भोग करने लगा ॥ ४५ ॥ रेवतके सौ पुत्र उत्पन्न हुए ककुद्मी बडे और पवित्र स्वभावके थे और उन परम सुन्दरी रेवती नामक एक शुभलक्षणयुक्त कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ जब वह कन्या विवाहके योग्य हुई तब राजेन्द्र रेवत सत्कुलोत्पन्न राजपुत्रके निमित्त चिन्ता करने लगे ॥ ४७ ॥ वह राजराजेश्वर पृथ्वीपति रेवत गिरिमें वासकर आनर्तोंमें राज्य शासन करने लगा ॥ ४८ ॥ यह कन्या किसको दें ? राजाने मनमें इसप्रकार चिंतायुक्त हो

राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान् ॥ आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ ४४ ॥ सोंऽतःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्तविषयानानर्तादीनरिंदमः ॥ ४५ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ पुत्री च रेवती नाम्ना सुंदरी शुभलक्षणा ॥ ४६ ॥ वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः ॥ चिंतयामास राजेंद्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥ ४७ ॥ रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः ॥ चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः ॥ ४८ ॥ विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता ॥ गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ॥४९॥ इति संचित्य भूपालः सुतमादाय रेवतीम् ॥ ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम् ॥ ५० ॥ यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छंदांसि पर्वतास्तथा ॥ अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः ॥ ५१ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा ॥ तस्थुः प्रांजलयः सर्वे स्तुवंतश्च पुरातनाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

स्थिर किया कि, मैं ब्रह्माके निकट जाय उन सुरपूजित सर्वज्ञ प्रजापतिसे यह विषय पूछूँगा ॥४९॥ इसप्रकार विचार वह भूपाल ब्रह्माजीसे पूँछनेकी इच्छा कर अपनी कन्या रेवतीको संग ले शीघ्रतासहित ब्रह्मलोकको गया ॥ ५० ॥ उस स्थानमें देव यज्ञ वेद पर्वत और सरित संपूर्ण दिव्यदेह धारण कर विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वहां सनातनऋषि, सिद्ध, गंधर्व, पन्नग और चराचरगण हाथ जोडे खडे हुए ब्रह्माजीका स्तव कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् नरपति रेवत क्षत्रिय होकर अपनी कन्याको संग ले स्वयं किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये ? इस विषयका मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है ॥१॥ पहले मैंने यह विषय ब्राह्मणोंके कथा प्रसंगमें भली भाति सुना है कि; जो ब्राह्मण शांत और ब्रह्मके जाननेवाले हैं वही ब्रह्मलोकको प्राप्त होसकते हैं ॥२॥ सत्यलोक मनुष्य जातिके पक्षमें अत्यंत कठिन है तो राजा स्वयं रेवतीको संग ले भूर्लोकसे किसप्रकार उस सत्यलोकमें गये ? यही मेरा संशय है ॥ ३ ॥ मनुष्य अपना देह त्यागकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं यह सब शास्त्रोंमें निणय किया है तब मनुष्य

जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्वर्तते मम मानसे ॥ ब्रह्मलोकं गतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ १ ॥ मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथांतरे ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छांतो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥२॥ राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ सत्य लोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः ॥ ३ ॥ मृतःस्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः"मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिःकथम्॥" स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः ॥४॥ एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम्॥यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम् ॥५॥ व्यास उवाच ॥ मेरोस्तु शिखरे राजन्सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ इंद्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी ॥ ६ ॥ तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः॥ वैकुंठश्च पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते ॥७॥ यथाऽर्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः ॥ ॥ पञ्च वर्षाणि कौंतेय स्थितस्तत्र सुरालये ॥ ८ ॥ मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ ॥ तथैवान्येऽपि भूपाला ककुत्स्थ प्रमुखाः किल ॥ ९ ॥ स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः ॥ जित्वेंद्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः ॥ १० ॥

देहसेही ब्रह्मलोकमें किसप्रकार गये ? और स्वर्गसे फिर मनुष्यलोकमें किसप्रकार आये ? ॥४॥ तात्पर्य यह है कि, राजा रेवत प्रजापतिसे पूँछनेकी इच्छा करके किसप्रकार ब्रह्मलोकमें गये आप मेरा यह संशय दूर कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरुके शिखरमें इंद्रकी अमरावतीपुरी यमकी संयमनी पुरी ॥ ६ ॥ सत्यलोक वह्निलोक कैलास वैष्णवधाम और वैकुण्ठ इत्यादि संपूर्णलोकही प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ देखो महाधनुर्द्धर पृथानंदन अर्ज्जुनने इंद्रलोकमें आयकर पांचवर्ष व्यतीत किये ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें ककुतस्थ इत्यादि अन्यान्य राजा भी मनुष्य

देहसेही इंद्रके समीप गये थे और महाबलवान् दैत्योंने इंद्रलोक अथवा अमरावतीको जीतकर वहाँ जाय इच्छानुसार वास किया ॥९॥१०॥ पूर्वकालके समय सार्वभौम नरपति राजा महाभिषके ब्रह्मलोक जानेपर परमसुन्दरी गंगाभी उसी समय ब्रह्मलोकमें आरही थीं इसी अवसरमें राजाने उनको देखा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इसी समय दैववशसे वायुने उनके पहरनेका वस्त्र उड़ादिया राजाके उस सुंदरीकी कुछेक नग्न अवस्था देख कामार्त्तचित्त हो ॥ १२ ॥ अप्रगटभावसे हँसनेपर फिर वह गंगाभी हंसी तिससमय ब्रह्माजीने उन दोनोंकी इस प्रकार अवस्था देखकर तत्काल शाप दिया उसीके अनुसार उन्होंने भूलोकमें आनकर जन्म ग्रहण किया ॥ १३ ॥ संपूर्ण देवता दानवोंके हाथसे दुःखित हो वैकुण्ठमें

महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट् ॥ आगच्छंतीं नृपो गंगामपश्यच्चातिसुंदरीम् ॥ ११ ॥ वायुनांबरमस्यास्तु दैवाद पहृतं नृप ॥ किंचिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्ट्वा सा सुंदरी तथा ॥ १२ ॥ स्मितं चकार कामार्तः सा च किंचिज्जहास वै ॥ ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ यातौ वसुंधराम् ॥ १३ ॥ वैकुंठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः ॥ गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमला. पतिम् ॥ १४ ॥ संदेहो नाऽत्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप ॥ १५ ॥ अवश्यं कृत पुण्यानां तापसानां नराधिप ॥ पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृप ॥१६॥ तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥ १७ ॥

जाय जगन्नाथ कमलापति हरिका स्तव करते थे ॥ १४ ॥ हे नरनाथ ! मनुष्य संपूर्ण लोकोंमें भी जासकते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ जो अनेकानेक पुण्यसञ्चय करते हैं ऐसे महात्मा यजमान और तपस्वियोंकी तो निश्चय ही स्वर्गमें गति होती है. हे राजन् ! पुण्यकी बहुतायतही स्वर्गमें जानेका एकमात्र कारण है अतएव इस विषयमें कोई संदेह करना आपको उचित नहीं है ॥ १६ ॥ इसी प्रकार जो यजन यज्ञ अथवा तपस्या करते हैं वह उत्तम लोकमें जाते हैं जनमेजयने कहा हे मुनिवर रेवतराजा शोभायमान नेत्रोंवाली

कन्या रेवतीको संग ले ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकमें गये किंतु उन्होंने वहां जाकर अंतमें क्या किया ? ब्रह्माजीने उनको क्या आज्ञा दी ? और उन्होंने उनकी आज्ञानुसार किसको कन्या दी ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप यह संपूर्ण वृत्तांत मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये व्यासजीने कहा हे महीपाल ! वह वृत्तांत सुनो. रेवतराजा ॥ १९ ॥ कन्याके वरका विषय पूंछनेको जिस समय ब्रह्मलोकमें गये तिससमय ब्रह्मलोकमें गाना बजाना होरहा था राजाने कन्याके सहित सभाके अवसरकी अपेक्षासे क्षणकाल प्रतीक्षा की ॥ २० ॥ किंतु गाना सुनकर कन्यासहित ऐसे संतुष्ट हुए कि, तृप्त न हुए वरन् सुनतेही रहे उस गानेबजानेके समाप्त होनेपर राजाने परमेष्ठी ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ २१ ॥ उनको कन्या दिखाय

ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा ॥ ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः ॥१८॥ तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्कथय त्वं ममाधुना ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल ॥१९॥ पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा ॥ आवर्तमाने गांधर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ २० ॥ शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः ॥ समाप्ते तत्र गांधर्वे प्रणम्य परमेश्वरम् ॥२१॥ दर्शयित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ राजोवाच ॥ वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका ॥२२॥ देया कस्मै मया ब्रह्मन्प्रष्टुं त्वां समुपागतः ॥ बह्वो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसंभवाः ॥२३॥ कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चंचलम् ॥ तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥२४॥ तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम् ॥ कुलीनं बलवंतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २५ ॥ दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा ॥ २६ ॥

अपना अभिप्राय कहा, राजा बोले हे देव ! यह वरारोहा मेरी कन्या है इसका वर कौन है ? यह आप बता दीजिये ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह कन्या किसको प्रदान करूं यह बात पूँछनेकोही आपके समीप आया हूं सत्कुलोत्पन्न अनेक राजपुत्र ढूंढकर देखे हैं ॥ २३ ॥ किन्तु उनमें से कोई पुरुष भी मेरे मनमें स्थिर नहीं हुआ हे देवदेवेश ! इसी कारण पूँछनेके लिये इस स्थानमें आया हूं ॥ २४ ॥ अतएव आप इसके उपयुक्त एक वर नियतकर दीजिये वह वर कुलीन बलवान् धर्मात्मा सर्व सुलक्षणयुक्त॥२५॥ और दाता धर्मशील राजाका पुत्र हो आपसे

यही मेरी प्रार्थना है ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! तब जगत्कर्ता पद्मयोनि नरपतिका यह वचन सुन ॥ २६ ॥ कालका अतिक्रम देख हँसते हँसते उनसे कहने लगे हे राजन् ! तुमने जिन सब राजपुत्रोंको वर जाना था ॥ २७ ॥ वह सभी कालके ग्रास हुए हैं यही क्या उनके पुत्र पौत्र और बान्धव पर्यन्त भी अब जीवित नहीं हैं इस समय सत्ताईसवें मन्वन्तरका द्वापरयुग वर्त्तमान है ॥ २८ ॥ अतएव तुम्हारे वंशोत्पन्न राजपुत्रोंमेंसे भी अब कोई वर्त्तमान नहीं है तुम्हारी नगरीको भी दैत्योंने लूट लिया था अब चन्द्रवंशीय राजा उसको शासन करते हैं ॥ २९ ॥ पुण्यात्मा ययातिकुल तिलक माथुर जनपदेश्वर महाराज उग्रसेन उस स्थलमें राज्यशासन करते हैं ॥३०॥ उनका पुत्र महाबलवान् कंस दानवोंके

तमुवाच हसन्वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राजपुत्रास्त्वया राजन्वरा ये हृदये कृताः ॥ २७ ॥ ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबांधवाः ॥ सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते ॥ २८ ॥ वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुंठिता ॥ सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि ॥ २९ ॥ उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल ॥ ययातिवंशसंभूतो राजा माथुरमंडले ॥३०॥ उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः ॥ दैत्यांशः पितरं सोऽपि कारागारं न्यवेशयत् ॥ ३१ ॥ स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः ॥ मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता ॥ ३२ ॥ दुष्टराजन्यसैन्यानां भारेणातिसमाकुला ॥ अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः ॥ ३३ ॥

औरससे जन्म ग्रहणकर सर्वदा ही देवताओंका अनिष्टसाधन करने लगा और उसने अपने पिताको कारागारमें बन्द करके रक्खा ॥ ३१ ॥ वह मदसे गर्वित हो सम्पूर्ण राजाओंका राज्य स्वयं शासनकर प्रजाका महत् अनिष्ट साधन करने लगा. हे महाराज ! इसी समयमें उस दुष्ट दैत्य राजाकी सेनाके भारसे पृथ्वी इतनी व्याकुल होगई कि फिर किसी प्रकार भी भार न सहसकी अतएव ब्रह्माजीके निकट जाय उनकी शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ वह दुष्ट राजाओंका भारभूत सेनाके भारसे व्याकुल होगई तदनन्तर ब्रह्मादि देवताओंने कहा

हे वसुन्धरे ! तुम्हारा भार हलका करनेके लिये देवताओंने अंशावतारको लिया है ॥ ३३ ॥ कमललोचन नारायणने अपने अंशसे अवतीर्ण होकर जन्म ग्रहण किया है वह स्वयं सनातन नारायण कमललोचन कृष्ण हैं वही यदुकुलमें देहरूपिणी देवकीके गर्भ और वसुदेवके औरससे अवतीर्ण हो वासुदेव नामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥ पहले नरसखा धर्मपुत्र नारायणने गंगा किनारे परम पवित्र बद्रिकाश्रममें भ्राताके सहित घोर तप किया था ॥ ३५ ॥ वह यदुकुलमें अवतीर्ण होकर वासुदेव नामसे विख्यात हुए हे नृपसत्तम ! उस पापाचार दुष्टमति खलप्र

वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः ॥ ३४ ॥ तपश्चचार दुःसाध्यं धर्म पुत्रः सनातनः ॥ गंगातीरे नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥ सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः ॥ तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तमः ॥ ३६ ॥ उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम् ॥ कंसस्य श्वशुरः पापो जरासंधो महाबलः ॥३७॥ आगत्य मथुरां क्रोधाच्चकार संगरं मुदा ॥ कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासंधो महाबलः ॥ ३८ ॥ प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः ॥ श्रुत्वाऽऽयांतं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम् ॥ ३९ ॥ " कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारवतीमगात् ॥ प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह संगतैः ॥ कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमंडिताम् ॥ जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम् ॥ " यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः ॥ वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बांधवैः सह ॥ ४० ॥

कृति कंसको मारकर ॥ ३६ ॥ उस साम्राज्यमें उग्रसेनको प्रतिष्ठित किया और दुष्ट कंसको मारा, महाविक्रमशाली पापिष्ठ मगधपति जरासंध कंसका श्वशुर था ॥ ३७ ॥ उसने जामाताकी निधनवार्ता सुन क्रोधके वशीभूत हो मथुरामें आय घोर संग्राम किया महात्मा कृष्णने महाबली जरासंधको जीता ॥ ३८ ॥ वासुदेवके उस महातेजोगर्वित जरासंधको पराजय करनेपर भी उसने सेनासहित कालयवनको फिर युद्ध करनेके लिये भेजा अनन्तर भगवान् वासुदेव सेना सहित यवनराजके आनेका वृत्तान्त जाना ॥ ३९ ॥ परिवार सहित सम्पूर्ण यादवोंको

द्वारकामें भेज स्वयं बलदेवके सहित यवन राजाके आनेकी प्रतीक्षासे स्थिर रहे फिर अकेलेही यवनके शिविरमें जाय कालयवनको आकर्षण पूर्वक गिरिगुहामें ले जाय सुप्तोत्थित महाराज मुचुकुन्दसे उस दुरात्मा यवनको मरवाय मथुराको छोड द्वारकाको चले गये तिस समय उस द्वारकापुरीकी भग्नावस्था थी अतएव कृष्णने शिल्पकारोंको बुलाय दिव्यमहल दुर्ग और अटारि इत्यादि बनवाकर उसका सौंदर्य सम्पादन किया वह प्रतापवान् वासुदेव जीर्ण नगरीका संस्कार कराय उग्रसेनको राज्यपदमें नियुक्तकर वह यदूत्तम वहां यादवोंको स्थापितकर अन्यान्य बांधवोंके सहित अब भी वहाँ विराजमान हैं ॥ ४० ॥ उनके अग्रज हलायुध बलदेव नामसे विख्यात हैं वही मूसली अनंतदेवके अंशावतार और

तस्याग्रजः स विख्यातो बलदेवो हलायुधः ॥ शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव संमतः ॥ ४१ ॥ संकर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचननाम् ॥ रेवतीं बलभद्राय विवाहविधिना ततः ॥ ४२ ॥ दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम् ॥ तपस्तप्तुं सुरारामं पावनं कामदं नृणाम् ॥४३॥ व्यास उवाच ॥ इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ जगाम तरसा राजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥ ४४ ॥ ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम् ॥ ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये ॥ ४५ ॥ जगाम त्रिदशा वासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे ॥ राजोवाच ॥ भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम् ॥ ४६ ॥

महावीर हैं वही तुम्हारी कन्याके उपयुक्त वर हैं ॥ ४१ ॥ अतएव इस कमलके समान नेत्रोंवाली रेवतीको विवाहकी विधि अनुसार संकर्षण बलभद्रके हाथमें शीघ्र प्रदान करो ॥ ४२ ॥ और तुम कन्यादान करके तपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाओ वह पुण्याश्रम देवताओंका विहारस्थान और पवित्र तथा मनुष्योंको कामनादायक है ॥ ४३ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! कमलयोनि ब्रह्माजीके आज्ञा देनेपर राजा अपनी कन्याको संग ले द्वारकामें आये ॥ ४४ ॥ वहां पहुँचकर वह सर्वसुलक्षणयुक्त कन्या विधिके अनुसार बलदेवजीको दी अन्तमें ब्रह्माजीके उपदेशसे बदरिकाश्रममें जाय कठोर तपस्यामें निरत हुए ॥ ४५ ॥ फिर मृत्युकाल उपस्थित होनेपर नदीके तटपर देह त्यागकर सुरलोकको

चले गये जनमेजयनें कहा हे भगवन् ! आपने अत्यन्त आश्चर्यकी कथा कही॥ ४६ ॥ रेवतराजा कन्याके सहित ब्रह्मलोकमें रहकर संगीत सुननेमें आसक्त हुए अष्टोत्तरशत (१०८) युग बीतनेपर भी ॥ ४७ ॥ राजा और उनकी कन्या अतिवृद्ध क्यों न हुए ? और उनकी इतनी आयु किस प्रकार हुई थी वह आप मुझसे कहिये ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! ब्रह्मलोक पापस्पर्शरहित है वहां जरा, क्षुधा, पिपासा अथवा मृत्यु आदि कुछ भी नहीं है उस स्थानमें अन्य कोई ग्लानि भी नहीं हो सकती, अतएव तहांके वास करनेवाले पुरुष सर्वदा जरामरणरहित और दीर्घ जीवी होते हैं इसमें संदेह क्या है ॥ ४९ ॥ शर्याति राजाक स्वर्ग जानेपर उनकी सन्तानको राक्षसोंने मार डाला और जो शेष रहे वह भयसे भीत

रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः ॥ युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल ॥ ४७ ॥ कन्या वृद्धा न संजाता राजा वाऽतितरां नु किम् ॥ एतावंतं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम् ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः ॥ न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥ ४९ ॥ मेरुं गतस्य शर्यातेः संतती राक्षसैर्हता ॥ गता कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः ॥ ५० ॥ मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः ॥ इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः ॥ ५१ ॥ वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरंतरम् ॥ नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम् ॥ ५२ ॥ तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम् ॥ विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः ॥ शकुनिप्रमुखाः पुत्राः पंचाशद्बलवत्तराः ॥ ५४ ॥

होकर कुशस्थली त्यागकर इधर उधर भाग गये ॥५०॥ वैवस्वतमनुके छींकनेपर उनके घ्राणद्वारसे एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम इक्ष्वाकु था वही सूर्यवंश विस्तार करनेके लिये जगत्में विख्यात हुए ॥५१॥ महर्षि नारदके उपदेशानुसार अतिउत्तम दीक्षाको प्राप्त हो वंश बढ़ानेकी इच्छासे निरंतर देवीका ध्यान करते हुए तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकुके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें विकुक्षिही प्रथम थे वही वीर्यवान् और बलसम्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इक्ष्वाकुने राजा होकर अयोध्यामें वास किया और उन्होंने शकुनि इत्यादि

अत्यन्त बलवान् पचास पुत्रोंको ॥ ५४ ॥ उत्तरापथ प्रदेशकी रक्षा कार्यमें नियुक्त किया. उन महात्माने और भी अडतालीस पुत्रोंको दक्षिण देशकी रक्षा करनेके लिये भेजा था. हे भूपते ! शेष दो पुत्रोंको सेवाके लिये अपने पासही रक्खा था ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेसप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! किसी समय अष्टकाश्राद्ध उपस्थित होनेपर पृथ्वीपति इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि, हे वत्स ! तुम शीघ्र वनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र मांस संग्रह कर लाओ ॥ १ ॥ सावधान देखो

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल ॥ दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः ॥ ५५ ॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना ॥ अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः ॥ आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम् ॥ १ ॥ मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा सुतादरात् ॥ इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत् ॥ २ ॥ गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान् ॥ शशांश्चापि परिश्रांतो बभूवाऽथ बुभिक्षितः ॥ ३ ॥ विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाऽददसौ वने ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा ॥ अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥

इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न हो. विकुक्षि पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाय अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर तत्काल वनको चले गये ॥ २ ॥ उन्होंने वनमें जाय निशित बाणोंसे असंख्य शूकर वराह मृग खरगोश इत्यादि सभी संहार किये परन्तु वह वनमें भ्रमण करते करते थककर क्षुधासे इतने कातर हो गये कि ॥३॥ पिताके अष्टकाकी बात भूल वनमेंही एक खरगोशको भक्षण किया. शेष अत्युत्तम सम्पूर्ण मांस लाय पिताको समर्पण किया ॥ ४ ॥ जब मांस प्रोक्षणके लिये लाया गया तब कुलगुरु मुनिसत्तम वसिष्ठ उसको देखतेही भुक्तावसिष्ट (भोजनसे बचा हुआ)

जान अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ५ ॥ भुक्तावशिष्ट द्रव्य श्राद्धमें प्रोक्षणके योग्य नहीं होता यही शास्त्रीय विधि है. वसिष्ठजीने राजाको इस पाक दूषणका विषय विदित किया ॥ ६ ॥ गुरु देवके वाक्यानुसार पुत्रका यह कार्य जान राजाने विधिलोपवशतः पुत्रके प्रति अत्यन्त क्रोधित हो उसको अपने देशसे निकाल दिया ॥७॥ तबहीसे राजपुत्र (खरगोश भक्षण करनेके कारण) शशाद नामसे विख्यात हुए. परंतु यह शशाद पिताके क्रोधसे कुछ भी क्षुभित न हो वनमें जाय वास करने लगे ॥ ८ ॥ वह धर्ममें निरत हो वनके फलमूल भक्षण कर सुखसे काल व्यतीत करने लगे. कुछेक कालोपरान्त पिताके परलोक प्राप्त होनेपर वह महात्मा पिताके राज्यको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ शशादने अयोध्याका

भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः ॥ राज्ञे निवेदयामास वशिष्ठः पाकदूषणम् ॥ ६ ॥ पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम् ॥ चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निः सारयत्ततः ॥ ७ ॥ शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः ॥ गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसंभ्रमः ॥८॥ वन्येन वर्तयन्कालं नीतवान्धर्मतत्परः ॥ पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना ॥ ९ ॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम् ॥ यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे ॥१०॥ शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः ॥ तस्यैव नामभेदाद्वै इंद्रवाहः पुरंजयः ॥११॥ जनमेजय उवाच ॥ नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ ॥ कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत् ॥१२॥ व्यास उवाच ॥ शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत् ॥ "राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात् ॥ " एतस्मिन्नन्तरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः ॥ १३ ॥

राजा होकर राज्यशासन करनेके समय सरयूनदीके तटपर अनेक महत् यज्ञ किये थे ॥१०॥ शशादको एक पुत्र था वह तीनों लोकमें ककुत्स्थ नामसे विख्यात हुआ था. उसके इंद्रवाहु एवं पर पुरञ्जय यह दो अन्य नाम थे ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे पवित्रात्मन् ! राजपुत्रका ककुत्स्थ नामांतर किस कारणसे और किस प्रकार हुआ था ? किस कार्यसे उनके अन्य दो नाम हुए यह संपूर्ण विवरण मुझसे कहिये ॥१२॥ व्यासजीने कहा हे नृपसत्तम ! महाराज शशादके स्वर्ग जानेपर ककुत्स्थ राजा हुए वह धर्मात्मा पिता और पितामहका राज्य अतिदोर्दण्ड प्रतापसे

शासन करने लगे. उसी समय सम्पूर्ण देवता दानवोंसे पराजित हो॥१३॥ त्रिलोकाधिपति अच्युत विष्णुकी शरणागत हुए. तब सच्चिदानंदमय सनातन महाविष्णुने उन देवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ विष्णु बोले हे देवताओ ! तुम शशाद तनय सर्वजनरक्षक महीपाल ककुत्स्थके निकट प्रार्थना करो वह महात्मा तुम्हारे पार्ष्णिग्रह (पार्श्वरक्षक) होकर सम्पूर्ण दानवोंको समरमें निहत करैंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ वह ककुत्स्थ धार्मिक विशेषकर पराशक्तिके उपासक हैं. अतएव उनके प्रसादसे उन नरपतिके बलकी सीमा नहीं है इस कारण प्रार्थना करनेपर वह धनुर्द्धारी हो तुम्हारी सहायता करनेको अवश्यही आवेंगे. इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ हे महाराज ! इंद्रादि देववृन्द हरिके यह सुधामय वचन सुनतेही अयोध्यानगरमें

जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम् ॥ तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः ॥१४॥ विष्णुरुवाच ॥ पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयंतु शशादजम् ॥ स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तमाः ॥ १५ ॥ आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः ॥ पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चाऽतुलम् ॥ १६ ॥ हरेः सुवचनादेवा ययुः सर्वे सवासवाः ॥ अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति ॥ १७ ॥ तानागतान्सुरान्राजा पूजयामास धर्मतः ॥ पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतंद्रितः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ धन्योऽहं पावितश्चाऽस्मि जीवितं सफलं मम ॥ यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत् ॥ १९ ॥ ब्रुवंतु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः ॥ करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत् ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ साहाय्यं कुरु राजेंद्र सखा भव शचीपतेः ॥ संग्रामे जय दैत्येंद्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥

शशादतनय ककुत्स्थके निकट गये ॥ १७ ॥ देवताओंके उपस्थित होनेपर राजाने सावधान हो उनकी यथाविधि पूजाकर उनसे आनेका कारण पूँछा ॥१८॥ राजाने कहा हे देवताओ ! आपने अनुग्रहपूर्वक जब मेरे घर आय प्रत्यक्ष दर्शन दिया है तब मैं पवित्र और धन्य हुआ और मेरा जन्म भी सफल हुआ ॥१९॥ हे देवेशवृन्द ! आपका क्या कार्य साधन करना होगा वह आप कहिये वह मनुष्योंको कठिन होनेपरभी मैं आपके उस महत्कार्यको अवश्यही करूंगा ॥ २० ॥ देवता बोले हे राजपुत्र ! तुम हमारी सहायताकर देवताओंसे भी अजय दैत्यपतियोंको समरमें जीतकर

शचीपति इन्द्रके सहित मित्रता स्थापन करो ॥२१॥ हे महाराज ! पराशक्तिके प्रतापसे तुमको कहीं भी कुछ दुर्लभ नहीं है अतएवविष्णुकी आज्ञासे हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ २२ ॥ राजाने कहा हे सुर सत्तमगण ! सुराधिपति इंद्र यदि उस युद्धके समय मेरे वाहन हों तो मैं देवताओंका पार्ष्णिरक्षक (दोनों ओर रक्षक) हो सकता हूं ॥ २३ ॥ देवताओंके कारण अब मैं दानवोंके संग संग्राम करूंगा किंतु इंद्रकी पीठपर चढकर संग्राम स्थलमें जाऊंगा, यह मैंने आपसे सत्य ही कहा है ॥२४॥ व्यासजी बोले हे राजेन्द्र ! तब देवताओंने इंद्रसे कहा हे शचीपते ! यह अद्भुत कार्य सम्पादन करना आपको अत्यंत कर्तव्य है । अतएव आप लज्जा परित्याग कर इस नरेंद्रके वाहन हूजिये ॥ २५ ॥ सुरपति इंद्र इस

पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित् ॥ विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः ॥ इंद्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः ॥ २३ ॥ संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना ॥ आरुह्येंद्रं गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम् ॥ पत्रं भव नरेंद्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते ॥२५॥ लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम् ॥ बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान् ॥२६॥ तमारुरोह राजाऽसौ संग्रामगमनाय वै ॥ स्थितः ककुदि येनाऽस्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत् ॥२७॥ इंद्रो वाहः कृतो येन तेन नाम्नेंद्रवाहकः ॥ पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाऽभूच्च पुरंजयः ॥२८॥ जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान् ॥ पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह ॥ २९ ॥

कार्यके करनेसे लज्जित हुए किंतु हरिने उनको वारंवार उसमें नियुक्त किया. अतएव देवराज इंद्रने रुद्रके महावृषभके समान वृषभ मूर्ति धारण की ॥ २६ ॥ राजा संग्राममें जानेके लिये उस वृषभपर चढ़े उन्होंने वृषभकी पीठपर बैठकर युद्ध किया था इसी कारण उनका ककुत्स्थ नाम हुआ ॥ २७ ॥ राजाने इंद्रको वाहन किया इस कारण उनका नाम इंद्रवाह और उन्होंने युद्धमें दानवोंके पुर जीते इससे उनका नाम पुरञ्जय हुआ था ॥ २८ ॥ उन महाबाहु राजाने दानवोंको समरमें पराजय करके उनकी धन सम्पत्ति देवताओंको प्रदान की अनंतर वह देवताओंसे विदा ले अपने नगरको चले गये हे महाराज ! इस प्रकार उन राजर्षिके संग इंद्रका सख्यभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २९ ॥

हे राजन् ! ककुत्स्थ पृथ्वीतलमें अत्यंत विख्यात हुए थे उनके वंशोत्पन्न राजा भी काकुत्स्थ कहकर पृथ्वीमें विशेष परिचित हैं ॥३०॥ धर्म पत्नीके गर्भसे ककुत्स्थ एक महाबलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नामककुत्स्थ था. उनका पुत्र पृथु अत्यंत वीर्यवान् हुआ ॥३१॥ वह पृथु साक्षात् विष्णुके अंश थे. वह सदा ही पराशक्तिके चरणकमलोंकी अर्चना करते थे. उनके पुत्र विश्वरन्धि हुए उन्होंने राजा होकर राजत्व किया था ॥ ३२ ॥ उनके पुत्र श्रीमान् चन्द्र हुए उन्होंने राजा होकर राज्यशासन और अपने वंशको भलीभांति बढ़ाया था। युवनाश्व नामक उनके एक पुत्र हुए वह अत्यंत बलवान् और महा तेजस्वी थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके शावस्त नामक परम धार्मिक एक पुत्र उत्पन्न हुए उन्होंने अमरावतीके

ककुत्स्थश्चाऽतिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजाः ॥ काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥३०॥ ककुत्स्थस्याऽभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबल ॥ अनेनाविश्रुतस्तस्य पृथुः पुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ॥ विश्वरंधिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥ ३२ ॥ चंद्रस्तस्य सुतः श्रीमान्राजा वंशकरः स्मृतः ॥ तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥ ३३ ॥ शावंतो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः ॥ शावंती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥३४॥ बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावंतस्य महात्मनः ॥ कुवलयाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः ॥३५॥ धुन्धुर्नामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले ॥ धुंधुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम् ॥३६॥ पुत्रस्तस्यदृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् ॥ दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः ॥३७॥ निकुंभस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः ॥ बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥ ३८ ॥

समान शावस्ती नामक एक अति उत्तम पुरी बनाई ॥ ३४ ॥ महात्मा शावस्तके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र कुवलयाश्व हुए वह अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथिवीके अधिपति हुए थे ॥ ३५ ॥ उन्होंने धुन्धुनामक दानवका संहार किया इसीसे भूमण्डलमें धुन्धुमार नामसे अत्यंत विख्यात हुए ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र दृढाश्व हुए उन्होंने पृथिवीका पालन किया उनके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व ॥ ३७ ॥ और हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ हुए वह पृथिवीके अधिपति हुए निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व थे कृशाश्व नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥

उनका पुत्र महाबलवान् प्रसेनजित्था उसके विक्रमकी सीमा नहीं थी प्रसेनजित्के पुत्र महाभाग यौवनाश्व हुए ॥३९॥ हे महाभाग ! यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् मांधाता हुए उन्होंने पृथ्वी मण्डलके अधीश्वर हो भगवतीको प्रसन्न करनेको इच्छासे काशी इत्यादि महातीर्थ स्थानोंमें उनके अष्टोत्तर सहस्र (एक सौ आठ हजार) मन्दिर बनाये ॥ ४० ॥ हे मानद ! महातीर्थोमें यह कार्य भगवतीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया था मांधाता माताके गर्भसे उत्पन्न न हो पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४१ ॥ तिस समय आमात्योंने पिताकी कुक्षिभेदकर पुत्रको निकाला था जन

प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः ॥ तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधातेति महीपतिः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥ ४० ॥ भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद ॥ मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥ ४१ ॥ निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः ॥ राजोवाच ॥ न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता यदुदाहृतम् ॥ ४२ ॥ असंभाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम् ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य मांधातुर्जन्मकारणम् ॥ ४३ ॥ राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वांगसुंदरः ॥ व्यास उवाच ॥ यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥ भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप ॥ राजा चिंतापरः प्रायश्चितयामास नित्यशः ॥४५॥ अपत्यार्थं यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः ॥ ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः ॥ ४६ ॥

मेजयने कहा हे महाभाग ! आपने जो कहा वह न कभी देखा और न कभी सुना ॥४२॥ इस प्रकार जन्म ग्रहण करना अत्यंत असम्भव है आप उन महात्माके जन्मका कारण विस्तार सहित वर्णन करके मेरा संदेह दूर कीजिये ॥४३॥ वह सर्वाङ्ग सुंदर राजाके डरसे किस प्रकार प्रकटहुए? व्यासजीने कहा हे मुनिसत्तमगण ! नरपति यौवनाश्व परम धार्मिक राजाके संतान संतति कुछ न हुई ॥४४॥ और उनके सौ रानी थीं राजा प्रायः सदाही पुत्रके लिये चिंतासागरमें निमग्न रहते ॥ ४५ ॥ एक समय वह पृथ्वीपति यौवनाश्व दुःखित हो पुत्रकी इच्छासे वनमें ऋषियोंके

पवित्र आश्रममें गये ॥ ४६ ॥ वह तपोवनमें पहुँचकर तपस्वियोंके सामने अत्यंत लम्बे लम्बे श्वास छोडने लगे उनको दुःखित देखकर ब्राह्मण कृपाके वशीभूत हुए ॥४७॥ हे राजन् ! तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा हे पार्थिव ! आप किसकारण शोक प्रकाश करते हैं ? हे महाराज ! आपके मनमें क्या दुःख है ? वह सत्य कहो ॥ ४८ ॥ हम अवश्य आपके दुःखका प्रतिकार करेंगे. यौवनाश्वने कहा हे मुनि सत्तमगण ! मेरे राज्य, धन और उत्तम २ अश्व सम्पूर्ण ही विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ मेरे विमल शुद्ध स्वभाववाली सौ रानियें विद्यमान हैं त्रिलोकमें मेरा कोई शत्रु भी नहीं है मेरी अपेक्षा बलवान् भी कोई नहीं है ॥५०॥ सम्पूर्ण राजा और अमात्य मेरे आज्ञाकारी हैं किंतु हे तपस्वियो ! एक मात्र अपुत्रता दुःखनेही

मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम् ॥ दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः ॥४७॥ तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव ॥ किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम् ॥ ४८ ॥ प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा ॥ यौवनाश्व उवाच ॥ राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तते मुनयो मम ॥ ४९ ॥ भार्याणां च शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम् ॥ नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम ॥ ५० ॥ आज्ञाकरास्तु सामंता वर्तंते मंत्रिणस्तथा ॥ एकं संतानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः ॥५१॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्माच्छोचामि विप्रेंद्राः संतानार्थं भृशं ततः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः ॥ इष्टिं संतानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशंतु मे ॥ ५३ ॥ कुर्वंतु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः ॥ ५४ ॥

मेरा सम्पूर्ण सुख नष्ट किया है ॥ ५१ ॥ देखो पुत्रहीन मनुष्यको कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं होता. अतएव हे विप्रेन्द्रगण ! केवल संतानके लिये ही मैं निरंतर शोक करता हूं ॥५२॥ आप तपस्वी हैं विशेषकर बहुत परिश्रम करके वेद शास्त्रका सार मर्म जाना है अतएव; संतानकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कौन यज्ञ करना युक्तिसंगत है आप लोग इसकी मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥ हे तपस्वियो ! यदि आपकी मेरे प्रति कृपा हो तो आप इस सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिये. व्यासजी बोले हे महाराज ! राजाके यह वचन सुन उन्होंने दयासे पूर्ण हो ॥५४॥

स्थिरभावसे उनको इंद्र जिस यज्ञके अधिष्ठात्री देवता थे, ऐसा यज्ञ कराया भूपतिको पुत्र प्राप्तिके लिये प्रथम उन्होंने जलपूर्ण कलश स्थापन कराय ॥ ५५ ॥ वैदिक मंत्रद्वारा उसको अभिमंत्रित किया. राजा रात्रिके समय प्यासे हो उस यज्ञमें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ और उसी समय ब्राह्मणोंको सोता हुआ देख वह मंत्रपूत जल स्वयं पिया ब्राह्मणोंने विधिके अनुसार जल उद्धृत और अभिमंत्रितकर राजाकी भार्याके लिये संस्कार किया था ॥ ५७ ॥ किंतु राजाने प्यासे होकर अज्ञानसे स्वयं वह जल पी लिया दूसरे दिन प्रातःकालके समय ब्राह्मण जल रहित कलश देख

कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिंद्रदेवताम् ॥ कलशः स्थापितस्तत्र जलपूर्णस्तु वाडवैः ॥५५॥ मंत्रितो वेदमंत्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि ॥५६॥ विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥ भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मंत्रितं विधिनोद्धृतम् ॥५७॥ पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम ॥ व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशंकिताः ॥५८॥ पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः ॥ राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत् ॥ ५९ ॥ इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान् ॥ गर्भं दधार नृपतिस्ततो मंत्रबलादथ ॥ ६० ॥ ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं छित्त्वाऽस्य दक्षिणम् ॥ पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः ॥ ६१ ॥ देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं मंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम् ॥ ६२ ॥

अत्यन्त शंकित हुए॥५८॥ तब ब्राह्मणोंने राजासे पूछा यह जल किसने पाया है. तब उन्होंने जाना कि, राजाने यह जल पाया है यह दैवयोगसेही हुआ है॥५९॥ मुनि यह जान यज्ञ समाप्तकर अपने अपने घरको चलेगये इसके उपरान्त राजाने उस यज्ञीय मंत्रबलसे गर्भ धारण किया॥६०॥ कुछ दिन व्यतीत होनेपर संतान पुष्ट हुई तब उन राजाके मंत्रियोंने उनकी दक्षिण कुक्षि भेदकर पुत्रको निकाला ॥ ६१ ॥ केवल देवताओंकी कृपासे उस समय राजाकी मृत्यु न हुई यह कुमार किसका स्तन पान करेगा यह बात कह मंत्रिलोग अत्यंत आक्षेप करने लगे ॥ ६२ ॥

तब इंद्रने 'मांधाता' अर्थात् मुझको (मेरी यह अमृतमय तर्ज्जनी अंगुली) पियेगा यह कह उसके मुखमें तर्जनी अंगुली दी इसी कारणसे उन महाबलीका नाम मांधाता हुआ ॥ ६३ ॥ हे भूपाल ! यह मैंने आपसे उन मांधाताके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उन सत्यप्रतिज्ञ नरपति मांधाताने क्रमानुसार सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर राजाओंके अधीश्वर हो सार्वभौम उपाधि प्राप्त की ॥१॥ हे महाराज ! राजराजेश्वर मांधाताके प्रभावका वृत्तान्त और अधिक क्या कहैं तिस समय तस्कर उनके भयसे त्रस्त होकर पर्वतकी गुहामें भाग गये थे इस कारण इंद्रने इनका नाम त्रसदस्यु

तदेन्द्रो देशिनीं प्रादान्मांधातेत्यवदद्वचः ॥ सोऽभवद्बलवान्राजा मांधाता पृथिवीपतिः ॥ ६३ ॥ तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे नवमोध्यायः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसंगरः ॥ मांधाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः ॥१॥ दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरिगुहासु च ॥ इंद्रेणास्य कृतं नाम त्रसदस्युरिति स्फुटम् ॥ २ ॥ तस्य बिंदुमती भार्या शशबिंदोः सुताऽभवत् ॥ पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षणसंयुता ॥३॥ तस्यामुत्पादयामास मांधाता द्वौ सुतौ नृप ॥ पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुंदं तथाऽपरम् ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ पितृभक्तिरतश्चाभूद् बृहदश्वस्तदात्मजः ॥५॥ हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित् ॥ तस्याऽऽत्मजस्त्रिधन्वाभूदरुणस्तस्य चात्मजः ॥६॥ अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः ॥ सोऽभूदिच्छाचरः कामी मंदात्मा ह्यतिलोलुपः ॥ ७ ॥

रक्खा ॥ २ ॥ उन्होंने नंदपाल शशबिन्दुकी कन्या बिंदुमतीका पाणिग्रहण किया उस पतिव्रता ललनाके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण सुलक्षण विद्यमान होनेसे उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी ॥ ३ ॥ हे महाराज ! मांधाताने उसके गर्भसे सुविख्यात पुरुकुत्स और मुचुकुन्द दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सके पुत्र अनरण्य हुए यह राजकुमार बृहदश्व नामसे प्रसिद्ध हुए परन्तु यह अत्यन्त धार्मिक और पितृभक्तिपरायण थे ॥ ५ ॥ उनके पुत्र हर्यश्व हुए वह धार्मिक और परमार्थ सत्वके जानने वाले थे उनके पुत्र त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके पुत्र अरुण हुए॥६॥अरुणके पुत्र श्रीमान्

सत्यव्रत हुए वह अत्यंत लोभके वशीभूत कामुक मन्दस्वभाव और इच्छाकारी थे ॥७॥ एक समय उस पापात्मा राजकुमारने कामसे मोहित हो किसी ब्राह्मणकी भार्या हरणकर उसके विवाहमें विघ्न किया ॥८॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण ब्राह्मणलोग मिल अत्यंत परिताप करते करते राजा अरुणके समीप जाय बारंबार कहने लगे हा ! हम मर गये ॥ ९ ॥ राजाने उन दुःखित श्री पुरवासी ब्राह्मणोंसे कहा हे विप्रवृन्द ! मेरे पुत्रने आपका क्या अनिष्ट कार्य किया है ॥१०॥ राजाके यह विनययुक्त वचन सुन उन वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने बारंबार आशीर्वाद देकर उनसे कहा हे

स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काममोहितः ॥ विवाहे तस्य विघ्नं स चकारनृपतेः सुतः ॥ ८ ॥ मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप ॥ ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताः स्मेति चासकृत् ॥९॥ पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः ॥ किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः ॥ १० ॥ तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम् ॥ तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल ॥ विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनां वर ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः ॥ पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा ॥ १३ ॥ गच्छ दूरं सुमंदात्मन्दुराचार गृहान्मम ॥ न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा ॥ १४ ॥ कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामिति वै मुहुः ॥ अरुणास्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ १५ ॥

राजन् ! आप बलवानोंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके पुत्र भी ऐसे ही हैं अब उन्होंने विवाहस्थलमें एक विवाहित ब्राह्मणकी कन्याको बलपूर्वक हरण किया है॥११॥१२॥व्यासजी बोले हे महाराज ! तब परमधार्मिक राजाने ब्राह्मणका यह वचन सत्य जान पुत्रसे कहा हे दुर्बुद्धे ! आज तैंने यह दुष्कार्य करके अपने सत्यव्रतनामका अर्थ निष्फल किया ॥ १३ ॥ हे दुराचार ! तू मेरे घरसे निकल जा रे पापी ! मेरे अधिकारमें अब तू कभी नहीं रह सकता ॥ १४ ॥ तब सत्यव्रतने पिताको कुपित देखकर वारम्वार कहा हे पितः ! मैं कहां जाऊं ? उन्होंने कहा तू श्वपचों

(चांडालों) के सहित काल व्यतीत कर ॥ १५ ॥ तैंने ब्राह्मणकी स्त्री हरण करके श्वपचका कार्य किया है अतएव उनके संग रहकर सुख पूर्वक काल व्यतीत कर ॥ १६ ॥ रे कुलपाँसन ! मैं तेरे समान दुराचार पुत्रसे पुत्रवान् होनेकी इच्छा नहीं करता विशेषकर तैंने बंशकी कीर्तिको नाश किया है अतएव रे दुष्टात्मन् ! तेरी जहां इच्छा हो वहां जा ॥ १७ ॥ सत्यव्रत कुपित पिताके वचन सुन तत्काल उस पुरीसे बाहर निकल श्वपचोंके समीप गये ॥ १८ ॥ वह राजकुमार बख्तर पहर धनुर्बाण धारणकर तिस समय श्वपचोंके संग काल व्यतीतकरने लगे किंतु उस

श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम्॥तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम्॥१६॥नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन॥ यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन्कीर्तिनाशः कृतस्त्वया ॥ १७ ॥ स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः ॥ निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान्ययौ ॥ १८ ॥ सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः ॥ १९ ॥ यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना ॥ गुरुणाऽथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः ॥२०॥ तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः ॥ वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥ २१ ॥ केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः ॥ पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ २२ ॥ न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः ॥ समा द्वादश राजेंद्र तेनाऽधर्मेण सर्वथा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप ॥ संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः ॥ २४ ॥

स्थानमें रहकर भी उनके हृदयमें करुणाका अभाव न हुआ॥१९॥जब महात्मा पिताने कुपित हो उनको घरसे निकाला तिस समय गुरुदेव वशिष्ठजीने महीपतिको इस विषयमें नियुक्त किया था ॥ २० ॥ विशेषकर धर्मशास्त्रके जाननेवाले वशिष्ठजीने पुत्रके निकालनेमें उंयत राजाको निवारण नहीं किया यह जानकर सत्यव्रत उनके प्रति कुपित हुए थे ॥ २१ ॥ उनके पिता किसी अनिर्वचनीय कारणसे नगरको त्यागकर पुत्रके लिये तपस्या करनेको वनमें गये॥२२॥हे राजेन्द्र ! इस अधर्मसे पाकशासन महेन्द्रने उस राज्यमें बारह वर्षतक एकबार ही वर्षा न की॥२३॥हे राजन् ! उसी समय

विश्वामित्र उस राज्यमें अपने स्त्री पुत्रोंको छोडकर कौशिकी नदीके तटपर उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे ॥ २४ ॥ तब कौशिककी वह परम सुन्दरी भार्या कुटुम्बका पालन करनेके लिये दुःखसे अत्यन्त कातर हुई ॥ २५ ॥ बालक क्षुधासे व्याकुल हो नीवार अन्न (समा) माँगते हुए अत्यन्त रोते हैं. पतिव्रता कौशिककी भार्या यह देखकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥२६॥ वह पुत्रोंको क्षुधातुर देखकर दुःखित हो चिन्ता करने लगी कि, राजेश्वर राजा भी राजधानीमें नहीं हैं तो अब किससे मांगूं अथवा क्या उपाय करूं ? ॥ २७ ॥ पति भी समीप नहीं हैं. अतएव मेरे पुत्रोंकी कौन रक्षा करेगा ? बालक रात दिन रोते हैं इस कारण मेरे इस वृथा जीवन धारण करनेको धिक्कार है ॥ २८ ॥ धनहीन अवस्थामें

कातरा तत्र संजाता भार्या वै कौशिकस्य ह॥कुटुंबभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी ॥२५॥ बालकान्क्षुधयाऽऽक्रांतान्रुदतः पश्यती भृशम्॥याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता ॥२६॥ चिंतयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधाऽऽतुरान्॥नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम् ॥२७॥ न मे त्राताऽस्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ ॥ रुदंति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै ॥२८॥ धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः ॥ न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम् ॥ २९ ॥ बालानां भरणं केन करोमि पतिना विना ॥ मरिष्यंति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम् ॥ ३० ॥ एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः पालयामि सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः ॥ ३१ ॥ सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये ॥ कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथाऽऽत्मजम् ॥ ३२ ॥

मुझको छोड कर पति तपस्या करनेको गये हैं, मैं धनके अभावसे कष्ट भोगती हूं वह समर्थ होकर भी यह नहीं जान सकते ॥ २९ ॥ पतिके अतिरिक्त मैं किससे बालकोंका भरण पोषण करूं ? क्षुधासे पीडित होनेपर सम्पूर्ण अच्छे पुत्रही कालके ग्रासमें पतित होंगे ॥ ३० ॥ जो हो एक पुत्रको बेंचकर जो कुछ द्रव्य मिलेगा उससे बचे हुए पुत्रोंका पालन कर सकूंगी इस उपायका अवलम्बन करना ही मुझको उचित है॥ ३१ ॥ इसके अन्यथा करके सम्पूर्ण पुत्रोंको सहसा मृत्युके मुखमें डालना मुझको किसी प्रकार उचित नहीं है अतएव जीवन यात्रा निर्वाह करनेके लिये मैं

एक पुत्रको बेंचूंगी ॥ ३२ ॥ वह सती मनमें इस प्रकार विचार पूर्वक अपने हृदयको कठिन कर कुशकी रस्सीमें पुत्रका गला बांध बाहर निकली ॥ ३३ ॥ वह मुनिपत्नी अवशिष्ट पुत्रोंका भरण करनेके लिये गर्भजात मध्यम पुत्रका गला बांध उसको लेकर घरसे निकली ॥ ३४ ॥ राजा सत्यव्रतने शोक सन्तापसे कातर हुई उस तापसीको देखकर पूँछा हे शोभने ! तुम इस किस कार्यमें प्रवृत्त हुई हो ॥ ३५ ॥ तुम कौन हो ? यह बालक क्यों रोता है तुम किस लिये इसका कण्ठ बांधकर लिये जाती हो हे चारुवदने ! इसका क्या कारण है यह तुम मुझसे सत्य कहो ॥ ३६ ॥

मुनिपत्नी गले हृदयं कठिनं कृत्वा संचिंत्य मनसा सती ॥ सा दर्भरज्ज्वा बद्धाथ गले पुत्रं विनिर्गता ॥ ३३ ॥ दृष्टा सत्यव्रतेनाऽऽर्ता तापसी शोकसंयुता ॥ पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने ॥ ३५ ॥ रुदंतं बालकं कंठे बद्ध्वा नयसि काऽधुना ॥ किमर्थं चारुसर्वांगि सत्यं ब्रूहि ममाऽग्रतः ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्न्युवाच ॥ विश्वामित्रस्य भार्याऽहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज ॥ विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम् ॥ ३७ ॥ अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित् ॥ विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै ॥३८॥ राजोवाच ॥ पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव ॥ तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवाऽऽगमिष्यति ॥ ३९ ॥ वृक्षे तवाऽऽश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किंचिन्निरंतरम् ॥ बंधयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४० ॥

ऋषिपत्नीने कहा हे नृपनन्दन ! मैं विश्वामित्रकी भार्या हूं यह मेरा औरस पुत्र है अन्नके अभावसे गर्भजात पुत्रको इच्छानुसार बेंचने लिये जाती हूं ॥३७॥ हे नृप ! मुझको मेरे स्वामी छोडकर कहीं तपस्या करने गये हैं और घरमें भी कुछ अन्न नहीं है अतएव क्षुधासे कातर हुई अवशिष्ट सन्तानका भरण करनेके लिये मैं इसको बेंचूंगी ॥ ३८ ॥ सत्यव्रतने कहा हे पतिव्रते ! तुम पुत्रकी रक्षा करो वनसे तुम्हारे पति जबतक इस स्थानमें नहीं आते हैं तबतक मैं तुम्हारे भरण पोषणके उपयुक्त आहारकी सामग्री दूंगा ॥ ३९ ॥ तुम्हारे आश्रम समीप किसी वृक्षमें कुछेक

भक्ष्य द्रव्य नित्यबांध आया करूंगा. यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं ॥ ४० ॥ विश्वामित्रकी पत्नी राजाके यह वचन सुन पुत्रका बंधन छोड अपने आश्रममें चली गई ॥४१॥ गला बंधनके कारण वह बालक गालव नामसे प्रसिद्ध होकर अन्तमें महातपा ऋषि हुआ तब विश्वामित्रकी भार्या अपने आश्रममें जाय पुत्रोंसे परिवृत हो आनन्द अनुभव करने लगी ॥ ४२ ॥ परन्तु सत्यव्रत भक्ति और कृपासे पूर्ण हो विश्वामित्र मुनिकी भार्याका भार वहन करने लगे ॥ ४३ ॥ वह वनके वराह, मृग और महिषको मारकर उनका मांस विश्वामित्रकी पत्नी और पुत्रोंके लिये लेजाकर जिस स्थानमें वास करे उसी तपोवनके समीप वृक्षमें बांध आते ॥ ४४ ॥ ऋषिपत्नी वह मांस लेकर पुत्रोंको

इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी ॥ विबंधं तनयं कृत्वा जगामाऽऽश्रममंडलम् ॥ ४१ ॥ सोऽभवद्गालवो नाम गलबंधान्महातपाः ॥ सा तु स्वस्याऽऽश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता ॥ ४२ ॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः ॥ विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद्बभार ह ॥ ४३ ॥ वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा ॥ विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबंध ह ॥ ४४ ॥ ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः ॥ निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम् ॥ ४५ ॥ अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवांतःपुरं मुनिः ॥ गते तप्तुं नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः॥ पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः ॥ वसिष्ठे चाऽधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा ॥ ४८ ॥

भक्षण करनेके लिये देती इसी प्रकार उसने अत्युत्तम भक्ष्य प्रामकर अत्यन्त सुख अनुभव किया ॥ ४५ ॥ इधर नरपति अरुणके वनमें तपस्या करनेको चले जानेपर वसिष्ठ मुनि अयोध्यानगरीके राज्य और अन्तःपुर समस्तहीकी सावधानतासे रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतभी पिताकी आज्ञानुसार नित्य पशुमारकर जीविका निर्वाह करते और धर्ममें निरत रहकर नगरके बाहर वनमें वास करते थे ॥ ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतने किसी कारणसे वसिष्ठके ऊपर सदाही मनमें कोप धारण कर रक्खा था. क्योंकि पिताने जब धार्मिक प्रिय

पुत्रको परित्याग किया तब उन्होंने उन राजाको निवारण नहीं किया. हे महाराज ! यही उनके कोपका कारण जानना चाहिये ॥४८॥४९ सात पग न चलनेसे पाणिग्रहण कर्म समाप्त नहीं होता अतएव उसके हुए विना कन्याहरण करनेसे ब्राह्मणकी पत्नी हरण करना नहीं होता " कन्या हरण है " धर्मात्मा वसिष्ठने यह कारण जानकरभी उनको निषेध नहीं किया॥५०॥एक दिन राजपुत्र सत्यव्रत मृगयामें किसी पशुको न पाकर वनमें वसिष्ठकी दुग्धवती धेनुको देखा तब ॥ ५१ ॥ राजाने क्षुधासे कातर हो क्रोध और मोहसे दस्युके समान धेनुकी हत्या की और उसका कुछेक मांस विश्वामित्रकी स्त्रीको भक्षण करानेके लिये वृक्षमें बांधकर अवशिष्ट मांस स्वयं भक्षण किया ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! तिस

त्याज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम् ॥ न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ४९ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावं महीपतिः ॥ वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥ ५१ ॥ तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत् ॥ वृक्षे बबंध तन्मांसं नीत्वा स्वयमभक्षयत् ॥ ५२ ॥ ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा ॥ शंकमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रता ॥ ५३ ॥ वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत् ॥दुरात्मन्किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत् ॥ ५४ ॥ एवं ते शंकवः क्रूराः पतंतु त्वरितास्त्रयः गोवधाहारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम् ॥ ५५ ॥ त्रिशंकुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि ॥ पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम् ॥ ५६ ॥

समय विश्वामित्रकी पत्नीने इस मांसको गोमांस न जानकर यह मृगका मांस है इस प्रकार जान वह सम्पूर्ण मांस पुत्रोंको भक्षण कराया ॥ ५३॥ इधर वसिष्ठजीने अपनी कामधेनुके विनाशका वृत्तान्त जान क्रोधके वशीभूत हो सत्यव्रतसे कहा रे दुरात्मन् ! धेनु मारकर पिशाचके समान तूने क्या पापकार्य किया है ॥ ५४ ॥ गोवध द्विजपत्नी हरण और पिताके अत्यन्त क्रोध इन तीन अपराधोंसे तेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कुष्ठवत् तीन पाप चिह्न शीघ्र पतित हों ॥ ५५ ॥ अबसे तू सम्पूर्ण प्राणियोंको पिशाचके समान अपना रूप दिखाकर पृथ्वीमें त्रिशंकु

नामसे विख्यात होगा ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा सत्यव्रत वसिष्ठसे इस प्रकार शापको प्राप्त हो उस आश्रममें रहकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५७ ॥ परंतु वह किसी मुनि पुत्रसे अनुत्तम मंत्र प्राप्त कर परमाप्रकृति शिवा भगवती देवीके ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥ जनमेजय बोले हे महामते ! जब वसिष्ठने नृपनंदन त्रिशंकुको शाप दिया तब वह किस प्रकार उस शापसे छूटे थे ? यह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! सत्यव्रत

व्यास उवाच ॥ एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः ॥ चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाऽऽश्रमे स्थितः ॥५७॥ कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् ॥ ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ जनमेजय उवाच वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशंकुर्नृपतेः सुतः ॥ कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते ॥१॥ व्यास उवाच ॥ सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ तस्मिन्नेवाऽऽश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मंत्रं नवाक्षरम् ॥ होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्योवाच भक्तितः॥३॥ भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे ॥ ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवंतः प्रभवंतु ह ॥ ४ ॥ जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः ॥ भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः ॥ ५ ॥ सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदां वराः ॥ कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे ॥ ६ ॥

वसिष्ठके शापसे पिशाचत्वको प्राप्त होनेपर देवीके प्रति भक्तिपरायण हो उसी आश्रममें समय व्यतीत करनेलगे ॥ २ ॥ एक दिन उन्होंने नवाक्षर मंत्र जपकर उस भगवतीमंत्रका पुरश्चरण करानेके लिये ब्राह्मणोंके समीप जाय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! आप मेरा वचन सुनिये मैं विनयसहित आपके निकट प्रार्थना करता हूं कि, आप सब मेरे ऋत्विक् हों ॥ ४ ॥ आप वेदके जाननेवाले हैं इस कारण मेरे प्रति कृपाकर यथाविधि कार्य सिद्धिके लिये जपका दशांश होम कीजिये ॥ ५ ॥ हे विप्रवरगण ! मेरा नाम सत्यव्रत है विशेषकर

मैं राजपुत्र हूं. मेरा मंगल करनेके लिये यह कार्य सम्पादन करना आपको अवश्य कर्तव्य है ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने इस प्रकार राजपुत्रके वचन सुनकर उनसे कहा हे राजपुत्र! तुम गुरुसे शापित होकर पिशाचपनेको प्राप्त हुए हो ॥ ७ ॥ अब तुम्हारा वेदमें अधिकार नहीं है विशेषकर तुमको जो पिशाचता प्राप्त हुई है वह सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दनीयहै इसकारण अब तुम यागार्ह नहीं हो सकते ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! राजपुत्रने उनके यह वचन सुन दुःखित होकर विचारा कि, मेरे जीवनको धिक्कार है अब मैं वनमें रहकर क्या करूंगा॥९॥पिताने मुझको त्यागन किया है इससे राज्यभ्रष्ट हुआ इसपरभी गुरुके शापसे पिशाचपनेको प्राप्त हुआ हूं अतएव अब मैं क्या करूं ? कुछ स्थिर नहीं करसकता ॥

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम्॥ शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाऽधुना ॥७॥ न यागार्होऽसि तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम् ॥८॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह ॥ धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः ॥ ९ ॥ पित्रा चाऽहं हरित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम् ॥ राज्याद्भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम् ॥ १० ॥ तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः ॥ सस्मार चंडिकां देवीं प्रवेशमनुचिंतयन् ॥ ११ ॥ स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः ॥ कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्रांजलिरग्रतः ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम् ॥ आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः ॥१३॥ दत्त्वाऽथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम् ॥ सिंहारूढा महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१४॥ देव्युवाच ॥ किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज ॥ स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसाऽन्वितः॥१५॥

॥१०॥तब राजनन्दनने काष्ठ लाय बडी चिता बनाय चंडिकादेवीको स्मरण किया और उनका मंत्र जपते जपते चितामें प्रवेश करनेको कृतसंकल्प हुए ॥ ११ ॥ फिर राजकुमारने सन्मुख चिता प्रज्वलितकर स्नान किया और उसमें प्रवेश करनेके लिये हाथ जोडकर खडे हो देवी महामायाका स्तव करनेलगे ॥१२॥ उसी समय भगवती उन महीपतिकी मृत्युकामना जान तत्काल सिंहके पीठपर चढ उनके ऊपर स्थित आकाशमार्गसे आइ ॥ १३ ॥ और फिर प्रत्यक्ष दर्शन दे मेघके समान गम्भीर वचनोंके द्वारा उन नृपनन्दनसे कहने लगीं ॥ १४ ॥ हे साधो ! तुमने मनमें यह

क्या निश्चय किया है ? तुम अग्निमें कदापि शरीरका त्याग मत करो स्थिर होओ. हे महाभाग ! तुम्हारे पिताको इस समय बुढापा आगया है ॥ १५॥ वह तुमको राज्य देकर तप करनेके लिये वनमें जायँगे अतएव हे वीरवर ! विषाद छोड दो हे भूपते ! परसोंके दिन॥१६॥तुम्हारे पिताके मंत्री तुम्हारे लेनेको आवेंगे मेरे प्रसादसे तुम्हारे पिता तुमको राज्यमें अभिषिक्त करैंगे ॥ १७॥ और यथासमयमें कामना जीतकर ब्रह्मलोकको जायँगे इसमें सन्देह नहीं व्यासजीने कहा हे महाभाग ! देवी तिसकाल उनसे यह बात कहकर उसी स्थानमें अंतर्धान होगई॥१८॥और राजपुत्र भी अनल मृत्युसे विरत हुए इसी समय महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आनकर ॥ १९ ॥ तत्काल सब आनुपूर्विक वृत्तांत राजासे कहा तब रा[illegible]

राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गंताऽस्ति तपसे किल ॥ निषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते ॥ १६ ॥ नेतुं त्वामागमिष्यंति सचिवाश्च पितुस्तव ॥ मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने ॥ १७॥ जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ १८ ॥ राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः ॥ अयोध्यायां तदाऽऽगत्य नारदेन महात्मना ॥ १९ ॥ वृत्तांतः कथितः सर्वो राज्ञे सत्त्वरमादितः ॥ श्रुत्वा राजाऽथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम् ॥ २० ॥ खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः ॥ सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः ॥ २१ ॥ ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम् ॥ त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम ॥ २२ ॥ आज्ञयासौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित् ॥ स्थितस्तत्रैव विज्ञाने धनहीनः क्षमान्वितः ॥ २३ ॥ वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः ॥ सोऽद्य दुःखेन संतप्तः प्रवेष्टुं च हुताशनम् ॥ २४ ॥

[illegible]के मरनेका उद्यम सुनकर ॥ २० ॥ दुःखितचित्तसे अनेकप्रकार पछतावा करनेलगे. धर्मात्मा राजाने शोकसंतप्त होकर मंत्रियोंसे कहा ॥ २१ ॥ तुम सबने मेरे पुत्रके कठोर कार्यका विषय जाना मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतको वनमें त्याग किया है ॥२२॥ परंतु वह परमार्थवित् राज्यार्ह होनेपरभी मेरी आज्ञासे तत्काल वनमें चलागया है यह धनहीन अवस्थामें क्षमाशील हो भलीभाँति ज्ञानकी आलोचना करता हुआ उसी स्थानमें [illegible] करता है ॥२३॥ किंतु वसिष्ठदेवने शाप देकर उसको पिशाचके समान किया है वह इस समय दुःखाग्निसे संतप्त होकर हुताशनमें प्रवेश कर

नेको उद्यत हुआ था ॥ २४ ॥ किंतु महादेवीके निषेध करनेपर वह उस कार्यसे विरत हुआ इस कारण तुम शीघ्र उस स्थानमें जाय उस महाबल ज्येष्ठपुत्रको ॥ २५ ॥ सांत्वन वचनोंसे समझाय अभी मेरे निकट लेआओ मैं प्रजापालनमें समर्थ उस औरसपुत्रका राज्याभिषेक करूंगा ॥ २६ ॥ मेरा चित्त अब शान्तभावको प्राप्त हुआ है अतएव मैं तपस्या करनेके लिये कृतसंकल्प हुआ हूं यह कह कर राजाने सब मंत्रियोंको भेजा ॥ २७ ॥ तब पुत्रके प्रति प्रसन्न होकर बुलानेको भेजा तब मंत्रीभी प्रीतिपूर्णमनसे उस स्थानमें जाय

उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः ॥ तस्माद्गच्छतु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम् ॥ २५ ॥ आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयंत्विह ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम् ॥२६॥ वनं यास्यामि शांतोऽहं तपसे कृतनिश्चयः ॥ इत्युक्त्वा मंत्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः ॥२७॥ तस्यैवाऽऽनयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः ॥ ते गत्वा तं समाश्वास्य मंत्रिणः पार्थिवात्मजम्॥२८॥ अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन् ॥ दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनांबरम् ॥ २९ ॥ जटाजूटधरं क्रूरं चिंतातुरमचिंतयत् ॥ किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः ॥ ३० ॥ राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम् ॥ इति संचिंत्य मनसा तमालिंग्य महीपतिः ॥ ३१ ॥ आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत् ॥ उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह ॥ ३२ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्रविशारदः ॥ राजोवाच ॥ पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया सुखोद्भवाः ॥ ३३ ॥

महात्मा राजपुत्रको समझाय ॥ २८ ॥ सन्मानसहित अयोध्यामें लेआये राजा सत्यव्रतको दुर्बल मलीनवस्त्र ॥ २९ ॥ जटाजूटधारी कृशकाय दुर्बल कर्कशाकृति चिन्तातुर देख चिंता करनेलगे कि मैंने पुत्रको निकालकर क्या निष्ठुर कार्य किया है ! ॥ ३० ॥ महीपतिने मनमें इस प्रकार चिंता करके उसको आलिंगन किया ॥ ३१ ॥ और समझाबुझाकर अपने समीप स्थित आसनपर बैठाया बैठेहुए पुत्रसे वह राजा प्रेमपूर्वक बोले ॥ ३२ ॥ अर्थात् नीतिशास्त्रविशारद राजा प्रेमगद्गद वचनसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे—राजा बोले हे पुत्र !

सर्वदा धर्ममें मति रखना और ब्राह्मणोंका सन्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ३३ ॥ तुम न्यायके अनुसार धन ग्रहण करके सर्वदा प्रजाकी रक्षा करो कहींभी मिथ्या बात नहीं कहना चाहिये अथवा किसी प्रकार कुमार्गमें नहीं जाना चाहिये॥ ३४ ॥ किंतु साधुलोगोंका वचन सम्यक् प्रकार प्रतिपालन करना उचित है तपस्वियोंकी पूजा करनी चाहिये इंद्रियजय करना और क्रूरस्वभाव तस्करोंको वध करना उचित है ॥३५॥ हे पुत्र ! कार्य सिद्धिके लिये मंत्रियोंसे मंत्रण करके उसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३६ ॥ शत्रु यदि अतिसामान्यभी हो तथापि कार्यकुशल

न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः ॥ नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित् ॥३४॥ शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीया स्तपस्विनः ॥ हंतव्या दस्यवः क्रूरा इंद्रियाणां तथा जयः ॥३५॥ कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि ॥ मंत्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैःसह ॥३६॥ नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत ॥ न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम् ॥ ३७ ॥ चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा ॥ धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः ॥३८॥ शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसंगं च वर्जयेत् ॥ यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः ॥ ३९ ॥ न विश्वसेत्स्त्रियं क्वाऽपि स्त्रैणं द्यूतरतं नरम् ॥ अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन ॥ ४० ॥ द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च ॥ स्वयं तद्विमुखो भूया त्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत् ॥ ४१ ॥

राजा उसकी कभी उपेक्षा न करैं शत्रु परस्त्रीप्रति अनुरक्त होकर यदि अवनतभी हो तो भीं उसका विश्वास न करे॥ ३७॥क्या शत्रु क्या मित्र सबके निकट दूतोंको नियुक्त करना चाहिये सदा धर्ममें अनुराग दर्शन और सदा दान करना ॥ ३८ ॥ वृथा वितंडवाद करना अनुचित है दुष्टोंका संग नहीं करना चाहिये हे पुत्र ! तुम महर्षियोंकी पूजा और अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो ॥ ३९ ॥ स्त्री, स्त्रैण पुरुष और द्यूतनिरत पुरुषोंका कभी विश्वास न करना मृगयामें अत्यंत आसक्त होना कभी उचित नहीं है॥४०॥द्यूतक्रीड़ा मद्य गीत और वारवनिता इन सब विषयोंसे

विरत रहना और प्रजाओंकी भी इस कार्यसे रक्षा करना ॥ ४१ ॥ नित्य ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर फिर स्नानादि समस्त कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! गुरुके निकट देवीमंत्रमें दीक्षित होकर भक्तिपूर्वक परमाशक्ति भगवतीकी महती पूजा करनी पराशक्तिके चरणकमलोंकी पूजा करनेसे जन्म सफल होता है ॥४३॥ हे पुत्र ! जो पुरुष महादेवीकी केवल एकवार मात्रभी महती पूजा करके उनका चरणामृत जल पान करते हैं उन पुरुषोंको फिर कभी जननीके गर्भमें जन्मग्रहण नहीं करना पडता यह स्थिर निश्चय है ॥ ४४ ॥ वह महादेवी ही इस सम्पूर्ण देखनेवाली वस्तुके स्वरूप है वही द्रष्टा और साक्षि चैतन्यस्वरूप है इस प्रकार भावमें रत पूर्णात्मा होकर निर्भय चित्तसे वास करै

ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा ॥ स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवद्यथा ॥ ४२ ॥ पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः ॥ पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम् ॥ ४३ ॥ सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन् ॥ न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः ॥ ४४ ॥ सव दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि ॥ इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥ ४५ ॥ कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गंतव्यं सदसि द्विजान् ॥ समाहूय च प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ४६ ॥ संपूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांगपारगान् ॥ गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा ॥ ४७ ॥ अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन ॥ आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित् ॥ ४८ ॥ न वः लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलंघनम् ॥ अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम् ॥ ४९ ॥

॥ ४५ ॥ प्रतिदिन नैमित्तिक कार्य समापन करके ब्राह्मणोंकी सभामें जाना चाहिये और उनको बुलाकर धर्मशास्त्रका सिद्धान्त पूँछना चाहिये ॥ ४६ ॥ वेद और वेदान्त पारग ब्राह्मण अवश्यपूजनीय हैं अतएव उनकी पूजा कर पात्र विचार सदा गो भूमि और सुवण इत्यादि दान करना ॥ ४७ ॥ किसी अविद्वान् ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना मूख पुरुषको आहारसे अधिक और कुछ दान न करै ॥ ४८ ॥ हे वत्स ! लोभकेशीभूत होकर कभी धर्म उल्लंघन न करना और यह सदा मनमें विचार रक्खो कि अबसे ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करूंगा ॥ ४९ ॥

ब्राह्मण क्षत्रियोंके कारण और विशेकर उनके भूलोकके देवताहैं अतएव यत्नसहित ब्राह्मणोंके सन्मानकीरक्षा करनीचाहिये इसमें त्रुटि न करनी॥५०॥ जलसे अग्नि ब्राह्मणसे क्षत्र और पत्थरसे लोह उत्थित होता है इनका तेज सर्वत्रगामी होनेपरभी स्वस्वयोनिके संग विरोध उपस्थित होनेपर उसमेंही प्रशमित होता है यह निश्चय जानो॥५१॥ जो राजा अपनी उन्नतिकी कामना करैं वह दान और निश्चयसे ब्रह्माके मुखसे प्रगट ब्राह्मणोंका भलीभांति सन्मान करैं ॥५२॥ धर्मशास्त्रके अनुसार सदा नीतिका अनुसरण करैं और न्यायानुसार धन संग्रह करके राजकोष पूर्णकरना ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवी

ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः॥कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः ॥ ५० ॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ५१ ॥ तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः ॥ दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता ॥ ५२ ॥ दंडनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः ॥ कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशंकुः प्रणतो नृपः ॥ तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्गदया गिरा ॥ १ ॥ विप्रानाहूय मंत्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान् ॥ अभिषेकाय संभारान्कारयामास सत्वरम् ॥ २ ॥ सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः ॥ प्रकृतीश्च समाहूय सामंतान्भूपतींस्तथा ॥ ३ ॥ पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम् ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशंकुं विधिवत्पिता ॥ ४ ॥ तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया युतः ॥ वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः ॥ ५ ॥

भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥११॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब पिताने पुत्रको इस प्रकार उपदेश दिया तब नरपति त्रिशंकुने प्रणत होकर प्रेमसे रुद्धकण्ठ हो पितासे कहा आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूंगा ॥१॥ तब नरपतिने वेद शास्त्रके जाननेवाले मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर शीघ्र अभिषेककी सामग्री मँगाई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाया सब राजाओंको आदरसहित बुलाया पिताने पुत्र त्रिशंकुको पवित्र दिन देख राज्यमें अभिषिक्त कर उसको विधिके अनुसार राजासन दान किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर भूपति भार्याके

सहित पवित्र वानप्रस्थाश्रम ग्रहणकर वनमें जाय गंगाके तटपर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ फिर कालधर्मके वशीभूत हो राजा स्वर्गको गये वहां देवताओंसे सन्मानित हो इन्द्रासनके समीपमें सर्वदा सूर्यके समान दीप्ति पाने लगे ॥ ६ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपने कथा प्रसंगमें पहले कहा है कि, जब सत्यव्रतने धेनुवध किया था. तब महर्षि वसिष्ठने कुपित होकर उनको ॥ ७ ॥ पिशाच होओ यह कहकर शाप दिया था. सम्प्रति किस प्रकार वह पिशाचत्वसे छूटे ? इसका मुझको अत्यन्त सन्देह होता है ॥ ८ ॥ सत्यव्रत शापग्रस्त होनेसे

काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि ॥ इंद्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथा योगेन सांप्रतम् ॥ सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल ॥ ॥ ७ ॥ कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः ॥ कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयः प्रभो ॥ ८ ॥ न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः ॥ मुनिना मोचितः शापात्केनाऽन्येन च कर्मणा ॥ ९ ॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षणकारणम् ॥ आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः ॥ १० ॥ व्यास उवाच वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः ॥ दुर्वैषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयंकर ॥ ११ ॥ यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्य· व्रतेन ह ॥ तया प्रसन्नया राजन्दिव्यदेहः कृतः क्षणात् ॥ १२ ॥ पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम् ॥ विपाप्मा चाति तेजस्वी संभूतस्तत्कृपामृतात् ॥ १३ ॥

सिंहासनके अयोग्य हुए किंतु मुनिवरने किस कार्य द्वारा उनको शापसे छुड़ाया ॥९॥ इस शापसे पिशाचाकृति पुत्रको पिताने किस प्रकार गृहमें बुलाया. हे विप्रर्षे ! अब उनकी मुक्तिका कारण मुझसे भलीभांति वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा वसिष्ठके शापसे सत्यव्रत शीघ्र पिशाचत्वको प्राप्त हो अत्यन्त कुत्सित दुर्द्धर्ष (सहनेके अयोग्य) और स्वर्गलोकको भयदायक होगये थे ॥ ११ ॥ किन्तु जब उन्होंने भक्ति भावसे देवीकी उपासना की तब देवीने प्रसन्न होकर उनको दिव्यदेह दान की ॥१२॥ देवीके कृपामृत सींचनेसे उनका पापक्षय और पिशा

चाकृति दूर होगई. तब सत्यव्रत पापरहित होकर अत्यंत तेजस्वी हुए ॥ १३ ॥ परमशक्तिके प्रसादसे वसिष्ठ उनके प्रति प्रसन्न हुए उनके अनुग्रहसे पिताभी सत्यव्रतके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ पिताके मर जानेपर धर्मात्मा सत्यव्रत राजा हो राज्य शासन और बीच बीचमें अनेक प्रकार यज्ञोंका अनुष्ठानकर देवदेवी सनातनीकी अर्चना करने लगे ॥१५॥ हे महाराज ! इन त्रिशंकुके हरिश्चन्द्र नामक एक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ उस शोभायमान राजपुत्रक अङ्गमें सम्पूर्ण शास्त्र विहित सुलक्षण विराजमान थे॥ १६ ॥ पृथ्वीपति त्रिशंकुने पुत्रको युवराज करके मनुष्य देहसेही स्वर्ग भोग करनेकी इच्छा की॥१७॥ तब राजाने प्रसन्न चित्तसे वसिष्ठके आश्रममें जाय विधिपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़ उनसे कहा॥ १८॥

वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः ॥ पिताऽपि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥ १४ ॥ राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः ॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम् ॥ १५ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चंद्रः सुशोभनः ॥ लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुंदरः ॥१६॥ युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशंकुः पृथिवीपतिः ॥ मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे॥१७॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः ॥ उवाच वचनं प्रीतः कृतांजलिपुटस्तदा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमंत्रविशारद ॥ विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस ॥ १९ ॥ इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च ॥ अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान् ॥ २० ॥ अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नंदने वने ॥ देवगंधर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल ॥ ॥ २१ ॥ याजय त्वं मखेनाऽऽशु तादृशेन महामुने ॥ यथाऽनेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥

हे तपोधन ! आप ब्रह्माके पुत्र और सम्पूर्ण वैदिक मंत्रोंके पारदर्शी हैं इस कारण आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है. अतएव आपसे एक विषय निवेदन करता हूं आप प्रसन्न चित्तसे वह सुनिये ॥ १९ ॥ इस समय इस मनुष्य शरीरसेही स्वर्ग लोकके सुख और संपूर्ण देवताओंकी भोग्यवस्तु भोग करनेकी इच्छा उपस्थित हुई है ॥ २० ॥ नन्दनवनमें विहार अप्सराओंके संग सहवास और देवगन्धर्वोंके मधुर संगीत सुननेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥२१॥ अतएव हे महामुने ! मैं जिससे इसी शरीरके द्वारा स्वर्गमें वास कर सकूं आप मुझको ऐसेही यज्ञमें नियोजित कीजिये ॥ २२ ॥

हे मुनिवर ! आप यह कार्य सम्पादन करनेमें भलीभांति समर्थ हैं. अतएव आप मेरे कार्यमें इस समय प्रवृत्त हूजिये. आप यज्ञ करके मुझको शीघ्रही दुर्लभ देवलोक प्रदान कीजिये ॥२३॥ वसिष्ठने कहा हे राजन् ! मनुष्य देहसे स्वर्गमें वास करना अत्यन्त दुर्लभ है. मृतक पुरुष पुण्यबलसे स्वर्गमें वास करते हैं यही वीर प्रसिद्ध है ॥२४॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है इस कारण मैं इससे डरता हूं. हे महाराज ! जीवित पुरुषको अप्सराओंके सहित सहवास अत्यन्त दुर्लभ है॥२५॥ अतएव हे महाभाग ! पहले यज्ञका अनुष्ठान कीजिये फिर यह देह त्यागकर स्वर्ग प्राप्त कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज ! महर्षि वसिष्ठ धेनुवधके कारण पहलेसेही राजाके प्रति रोषयुक्त थे इस कारण उन्होंने राजासे ऐसे वचन

समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना ॥ प्रापयाऽऽशु मखं कृत्वा देवलोके दुरासदम् ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राजन्मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः ॥ मृतस्य हि ध्रुवः स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा ॥२४॥ तस्माद्बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात् ॥ अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः ॥ २५ ॥ कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः ॥ २६ ॥ उवाच वचनं भूयो बसिष्ठं पूर्वरोषितम् ॥ न त्वं याजयसे ब्रह्मन्गर्वावेशाच्च मां यदि ॥ २७ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः ॥ २८ ॥ शशाप भूपतिं चेति चांडालो भव दुर्मते ॥ अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम् ॥ २९ ॥ स्वर्गकृंतनपापिष्ठ सुरभीवधदूषित ॥ ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥ ३० ॥

कहे फिर राजा यह सुनकर अत्यंत विमन हो ॥ २६ ॥ महर्षिसे फिर कहने लगे हे ब्रह्मन् ! गर्वके अत्यंत वशीभूत हो यदि आप मुझको यज्ञ न करावेंगे ॥ २७ ॥ तो मैं इस समय दूसरे पुरोहितको कर यज्ञका अनुष्ठान करूंगा. वसिष्ठने राजाके इस प्रकार वचन सुन कुपित होकर ॥ २८ ॥ उनको शाप दिया रे दुर्मते ! तू चाण्डाल हो अधिक क्या तू शीघ्रही इस शरीरसे श्वपच पिशाच हो ॥ २९ ॥ जिससे स्वर्ग मार्ग रोकता है. तैंने उसी प्रकार पापकार्य किया है. तैंने ब्राह्मणकी पत्नी हरणकर धर्म मार्ग नष्ट किया है तू गो वध करके दूषित हुआ है और

तू धर्म विदूषक है ॥३०॥ अतएव हे पापिष्ठ ! तेरे मरनेपर भी कभी स्वर्ग प्राप्त न होगा. व्यासजीने कहा हे राजन् ! त्रिशंकु गुरुके ऐसे निष्ठुर वचन सुनते ही तत्काल॥३१॥ उसी शरीरसे वहां श्वपचाकृति हुए तिसी समय उनके सुवर्णकुण्डल लोहमय हो गये ॥३२॥ उनके शरीरमें जो सुगन्धित चन्दन था वह विष्ठाके समान गन्धयुक्त हो गया उनके जो मनोहर पीताम्बरयुगल परिधान थे वह नीलवर्ण होगये ॥ ३३ ॥ उन महात्माके शापसे उनका शरीर हाथीके समान वर्णयुक्त होगया. हे राजन् ! जो परमाशक्तिके उपासक हैं उनके कोपसे इसी प्रकार फल होता है इसमें संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ अतएव शक्तिके भक्त मनुष्यका अपमान करना कभी उचित नहीं है. हे मुनिसत्तम ! वसिष्ठ देवीके गायत्री

न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथंचन ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा राजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥३१॥ तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः ॥ कुंडलेऽश्ममये वाऽपि जाते तस्य च तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ देहे चंदनगंधश्च विगंधो ह्यभवत्तदा ॥ नीलवर्णे च संजाते दिव्ये पीतांबरे तनौ ॥ ३३ ॥ गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः ॥ शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन ॥ गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा निंद्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान् ॥ न जगाम गृहे दीनो वनमेवाऽभितो ययौ ॥ ३६ ॥ चिंतयामास दुःखार्तस्त्रिशंकुः शोकविह्वलः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निंदितः ॥ ३७ ॥ कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः ॥ गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति ॥ ३८ ॥ भार्याऽपि श्वपचं दृष्ट्वा नांगीकारं करिष्यति ॥ सचिवा नादरिष्यंति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः ॥ ३९ ॥

जपमें सदा तत्पर थे इसी कारण उनके कोपसे राजाकी दुर्दशा हुई इसमें क्या विचित्रता है ॥३५॥ तब राजा त्रिशंकु अपना निन्दनीय देह देखकर दुःखित हुए और घर नहीं गये वरन् दीनवेशसे वनको चले गये ॥३६॥ राजा त्रिशंकु दुःखसे कातर और शोकसे अभिभूत हो चिन्ता करने लगे मेरा शरीर ऐसा हुआ है अतएव इस अवस्थामें कहां जाऊं अथवा क्या उपाय करूं ॥ ३७ ॥ जिससे मेरा दुःख दूर हो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता यदि घर जाऊं तो पुत्र मेरी यह अवस्था देखकर अत्यन्त कातर होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ भार्या मुझको श्वपचा

कृति देखकर फिर ग्रहण न करेगी मंत्री भी मेरा इस प्रकार अंग देखकर पहलेके समान आदर न करेंगे ॥ ३९ ॥ विशेषकर ज्ञाति और बान्धव वर्ग मेरे निकट आय पहलेके समान सेवा नहीं करेंगे. अतएव सबसे परित्यक्त होकर जीवित रहनेकी अपेक्षा मरना ही श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ॥ ४० ॥ मैं विषपान कर अथवा जलाशयमें डूब वा गलेमें रस्सी बांध जीवनत्याग करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा बलपूर्वक यह देह प्रज्वलित अग्निमें विधिके अनुसार जलाऊंगा किंवा निराहार रहकर इस अत्यंत दूषित जीवनको विसर्जन करूंगा ॥ ४२ ॥ किंतु हा ! इससे आत्महत्याका पाप होगा इस कारण हत्यादोषके वशीभूत हो प्रतिजन्ममें फिर श्वपचत्व और शाप प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ मनमें इस प्रकार

ज्ञातयो बंधुवर्गश्च संगतो न भजिष्यति ॥ सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम् ॥ ४० ॥ विषं वा भक्षयित्वाऽद्य पतित्वा वा जलाशये ॥ कृत्वा वा कंठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद्बलात् ॥ कृत्वा वाऽनशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम् ॥४२॥ आत्महत्या भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि ॥४३॥ पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिंतयत् ॥ आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाऽधुना ॥४४॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहे नानेन कानने ॥ भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः ॥ ४५ ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत् ॥ तस्मान्मयाऽत्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥४६॥ कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा ॥ स्मरणं चांबिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा ॥४७॥ एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन् ॥ भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः ॥ ४८ ॥

विचार भूपतिने फिर चिंता करके स्थिर किया कि, अब आत्महत्या करना मुझको कभी उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ इस कर्मविपाकका भोग होनेसे वह अवश्य दूर होगा. अतएव इस देहसे वनमें अपने किये हुए कर्मोंको भोगूं ॥ ४५ ॥ विशेषकर भोगनेके अतिरिक्त प्रारब्धकार्य कभी दूर नहीं होता. अतएव जो जो शुभ अथवा अशुभ कार्य किये हैं इस स्थानमें वह सम्पूर्ण भोगूंगा ॥ ४६ ॥ मैं सदा ही पवित्र आश्रमके समीप स्थानमें वास तीर्थस्थानमें पर्यटन अम्बिकाका स्मरण और साधुओंकी सेवा करूंगा ॥ ४७ ॥ वनमें वास करके

इस प्रकार निश्चय ही कर्मक्षय करूंगा अनंतर भाग्यवश यदि कभी साधुसमागम संघटित हो तबही मेरा कार्य सिद्ध होगा ॥४८॥ नरपति मनमें इस प्रकार चिन्ता कर अपने नगरको छोड गंगाके तटपर गये और अनेक अनुताप करके उस सुरनदीके पुलिनमें स्थिति करने लगे ॥४९॥ इधर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने पिताके शापका कारण जान दुःखित हृदयसे मंत्रियोंको उनके निकट भेजा ॥ ५० ॥ जिस समय राजा चाण्डालके समान हो वारम्वार श्वास छोड रहे थे उसी समय मंत्रियोंने उनके निकट उपस्थित हो अति विनीत भावसे प्रणाम करके कहा ॥५१॥ हे राजन्! आपके पुत्रने हमको भेजा है उनकी अनुमतिके अनुसार हम आपके पास आये हैं हम राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञानुवर्त्ती मंत्री हैं यह आप सत्य

इति संचिंत्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः ॥ गंगातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः ॥ ४९ ॥ हरिश्चंद्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम् ॥ दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः ॥ ५० ॥ सचिवास्तत्र गत्वाऽऽशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः ॥ प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसंतं मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ राजन्पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान् ॥ अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चंद्राज्ञया स्थितान् ॥ ५२ ॥ युवराजः सुतः प्राह यत्तच्छृणु नराधिप ॥ आनयध्वं नृपं यूयं संमान्य पितरं मम ॥ ५३ ॥ तस्माद्राजन्समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः ॥ सेवां सर्वे करिष्यंति सचिवाश्च प्रजास्तथा ॥ ५४ ॥ गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै ॥ प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यांतं करिष्यति ॥ ५५ ॥ इति पुत्रेण ते राजन्कथितं बहुधा किल ॥ तस्माद्गमनमेवाऽऽशु रोचतां निजसद्मनि ॥ ५६ ॥

जानिये ॥ ५२ ॥ हे नरनाथ! आपके पुत्र युवराजने जो कहा हैं सो सुनिये. उन्होंने कहा है कि, हमारे पिताको तुम शीघ्र इस स्थानमें ले आओ ॥५३॥ अतएव हे राजन्! मनकी वेदना छोडकर राजधानीमें चलिये क्या मंत्री लोग, क्या प्रजालोग सम्पूर्णही आपकी सदा सेवा करेंगे ॥५४॥ गुरुदेव वसिष्ठ जिससे आपके प्रति दयायुक्त हो हम सम्पूर्ण उसी प्रकार उनको प्रसन्न करेंगे तो अवश्यही वह महातेजा प्रसन्न होकर शीघ्र आपका दुःख दूर करेंगे ॥ ५५ ॥ हे राजन्! आपके पुत्रने इस प्रकार अनेक बातें कही हैं अतएव आप इस समय अपने घरको चलिये ॥ ५६ ॥

व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! उन श्वपचाकृति नरपतिने उनके यह वचन सुनकर भी अपने घर जानेकी इच्छा न की ॥ ५७ ॥ वरन् उनसे कहा कि हे मंत्रियो ! तुम घरको लौट जाओ और तुम घर जायकर मेरे वचनानुसार पुत्रसे कहो कि ॥ ५८ ॥ अब मैं घरको नहीं आऊंगा तुम आलस्य छोड़ सावधान होकर राज्यशासन करो विशेषकर ब्राह्मणोंका सम्मान और अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा देवताओंकी अर्चना करो ॥ ५९ ॥ मैं इस निंदनीय चाण्डाल वेशसे महानुभाव गणोंके सहित अयोध्यामें जानेकी इच्छा नहीं करता अतएव तुम शीघ्र ही अयोध्याको जाओ ॥ ६० ॥ मेरी आज्ञानुसार मेरे पुत्र महाबल हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर स्थापितकर तुम राज्य कार्य सम्पादन करो ॥ ६१ ॥ अनंतर

व्यास उवाच ॥ इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः ॥ स्वगृहं गमनयासौ न मतिं कृतवानद ॥ ५७ ॥ तानुवाच तदा वाक्यं व्रजंतु सचिवाः पुरम्॥ गत्वा पुरं महाभागा ब्रुवंतु वचनाच्च मे ॥ ५८ ॥ नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतंद्रितः ॥ मानयन्ब्राह्मणान्देवान्यजन्यज्ञैरनेकशः ॥ ५९ ॥ नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः॥ आगमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छंतु मा चिरम् ॥ ६० ॥ पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चंद्रं महाबलम् ॥ कुर्वंतु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया ॥ ६१ ॥ इत्यादिष्टा स्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम् ॥ सचिवा निर्ययूस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमात् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधि पूर्वकम् ॥ अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चंद्रस्य मूर्ध्नि ते ॥ ६३ ॥ अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया ॥ राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिंतयन्भृशम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

मंत्रियोंने राजाकी इस प्रकार आज्ञा सुन कातर हृदयसे अत्यंत रोदन किया और उनको प्रणामकर शीघ्र ही वनाश्रमसे निकले ॥६२॥ तिसकाल उन्होंने अयोध्यामें आय पवित्र दिन देख हरिश्चन्द्रके मस्तकमें विधिपूर्वक मंत्रपूत अभिषेक जल प्रदान किया ॥ ६३ ॥ वह तेजस्वी धर्मनिष्ठ हरिश्चन्द्र राजाकी आज्ञानुसार राज्यमें अभिषिक्त हो निरंतर पिताको स्मरण कर मंत्रियोंके सहित धर्मानुसार राज्यशासन करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

जन्मेजयने कहा हे मुनिसत्तम ! नरपतिकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने हरिश्चन्द्रको राज्यपदमें अभिषिक्त किया किंतु त्रिशंकु उस चाण्डाल देहसे किस प्रकार छूटे ? वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ यह गंगाके तटपर पवित्र जलमें स्नानकर वनमें प्राण परित्याग पूर्वक शापसे छूटे थे अथवा गुरु वसिष्ठदेवने कृपा करके उनकी शापसे रक्षा की थी ? ॥२॥ हे ऋषिवर ! मैं उन नरपतिका चरित्र सुननेकी अत्यंत इच्छा करता हूं इस कारण आप उनके सब अद्भुत चरित्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा पुत्रको राज्यपदमें अभिषिक्त कर संतुष्ट चित्त हुए और भगवतीका भवानीका ध्यान करते हुए उस वनमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर

राजोवाच ॥ हरिश्चंद्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात् ॥ त्रिशंकुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चांडालदेहतः ॥ १ ॥ मृतो वा वनमध्ये तु गंगातीरे परिप्लुतः ॥ गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः ॥ २ ॥ एतद्वृत्तांतमखिलं कथयस्व ममाग्रतः ॥ चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा संतुष्टमानसः ॥ कालातिक्रमणं तत्र चकार चिंतयञ्छिवाम् ॥ ४ ॥ एवं गच्छति काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः ॥ द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदाऽगात्कौशिको मुनिः ॥ ५ ॥ आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान् ॥ भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया ॥ ६ ॥ दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने ॥ अन्नं विना त्विमे बालाः पालिताः केन तद्वद ॥ ७ ॥ अहं तपसि संबद्धो नागतः शृणु सुंदरि ॥ किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने ॥ ८ ॥

कुशिक पुत्र विश्वामित्र एकाग्रचित्तसे तपस्याका अनुष्ठान समाप्तकर स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिये अपने घर आये ॥ ५ ॥ वह बुद्धिमान् घर आय पुत्रोंको स्वच्छन्दतासे रहता देख अत्यंत आनंदित हुए और जब उनकी भार्या उनकी सेवा करनेके लिये संमुख आई तब उन्होंने उससे पूंछा ॥ ६ ॥ हे सुलोचने ! दुर्भिक्षके समयमें तुमने किस प्रकार काल व्यतीत किया ? घरमें कुछ भी अन्न नहीं था. तो इन बालकोंका किस उपायसे प्रतिपालन किया यह तुम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ हे सुंदरि ! मैं तपश्चर्य्यामें सम्यक् प्रकार बँधा हुआ था इस कारण तुम्हारा पालन

करनेके लिये यहाँ नहीं आसका किंतु हे कांते ! तुमने खाद्य द्रव्यके अभावसे क्या उपाय अवलम्बन किया था ॥ ८ ॥ हे शोभने ! मैंने अद्भुत दुर्भिक्षका वृत्तान्त सुनकर तिसकाल विचार किया कि, मैं धनहीन हूं इस कारण इस समय वहां जाकर क्या करूंगा ? इस प्रकार विचार कर ही मैं यहाँ नहीं आया ॥ ९ ॥ हे वामोरु! तब मैं एक दिन भूंखसे अत्यंत कातर हो कोई उपाय न देखकर एक चाण्डालके घर में चोर भावसे घुसा ॥ १० ॥ घरमें घुसकर श्वपचको सोता हुआ देखा तब मैं भूंखसे अत्यंत कातर हो उसकी पाकशालाको ढूंढता हुआ उसमें उपस्थित हुआ॥ ११ ॥ भोजनकी हांडी उघाडकर भोजनके लिये जिस समय पक्व कुत्तेका मांस ग्रहण किया तिसी समय उस श्वपचने मुझको

मया चिंता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम् ॥ नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः ॥ ९ ॥ अहमप्यतिवामोरु पीडितः क्षुधया वने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥ १० ॥ श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः ॥ ११ ॥ यदा भांडं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम् ॥ गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै ॥ १२ ॥ पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम् ॥ ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भांडकम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः श्वपचेनाऽहं क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयाऽर्दितः ॥ चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भांडके ॥ १५ ॥ चौरभावेन संप्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते ॥ क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम् ॥ १६ ॥

देखा ॥१२॥ उसने मुझसे आदर पूर्वक पूंछा कि तुम कौन हो किस कारण रात्रिके समय मेरे घरमें घुसे हो ? अथवा किस लिये पाककी हाँडी उघाडते हो ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है सो मुझसे कहो ॥१३॥ हे सुन्दरि ! जब चाण्डालने मुझसे यह बात पूंछी तब मैं भूंखसे अत्यंत कातर था इस कारण मैंने अपनी इच्छा गद्गद स्वरसे कही॥१४॥ मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं क्षुधासे अत्यंत क्लेश पाय चौरभावसे तुम्हारे घरमें आय इस हाँडीमें भक्ष्यद्रव्य ढूंढता हूं ॥१५॥ हे महामते ! मैं इस समय तुम्हारे घरमें चोरभावसे अतिथि हूं, विशेषकर मैं इस समय क्षुधासे अत्यंत पीडित

हूं इस कारण सुसंस्कृत मांस भोजन करूंगा तुम इस विषयमें मुझको अनुमति दो ॥ १६ ॥ श्वपचने मेरे यह वचन सुनकर मुझसे शास्त्र विहित वचन कहे, हे वर्णश्रेष्ठ ! इसको चाण्डालका घर जानना चाहिये, अतएव आप इसको कभी भक्षण न कीजिये ॥ १७ ॥ देखो इस लोकमें मनुष्यका जन्म अत्यंत दुर्लभ है और यद्यपि मनुष्यका जन्म प्राप्त हो तथापि ब्राह्मणका जन्म उसकी अपेक्षा अत्यंत दुर्लभ है और ब्राह्मणसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अति कठिन है यह क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ १८ ॥ जो स्वर्गादि प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनको दूषित अन्न कभी आहार करना नहीं चाहिये. महर्षि मनुने कर्मके अनुसार सप्त जातिको अन्त्यज कहकर अग्राह्य या है॥१९॥

विश्वामित्र उवाच ॥ श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच निश्चितम् ॥ भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम् ॥ १७ ॥ दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्राऽपि च द्विजन्मता ॥ द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ॥ १८ ॥ दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता ॥ अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चांत्यजाः ॥ १९ ॥ त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नाऽत्र संशयः ॥ निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनांजसा द्विज ॥ २० ॥ वर्णसंकरदोषोऽयं माऽऽयातु त्वां द्विजोत्तम ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदांत्यज ॥ २१ ॥ तथाऽप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम् ॥ देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद ॥ २२ ॥ पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चाऽऽपदि ॥ २३ ॥

इस कारण हे विप्र ! मैं भी कर्मके वशीभूत होनेसे श्वपचजातिमें उत्पन्न होकर सबके त्यागने योग्य हुआ हूं इसमें संशय नहीं हे द्विजवर ! लोभ वशसे नहीं किन्तु इस अभिप्रायसे मैं आपको भक्षण करनेसे निवारण करता हूं ॥ २० ॥ वर्णसंकरदोष आपको न लगे विश्वामित्रने कहा हे धर्मज्ञ ! तुम सत्य कहते हो तुम्हारे चाण्डाल होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल ॥२१॥ इस समय मैं तुमसे आपद् धर्मका सूक्ष्ममार्ग कहता हूं सुनो हे मानद ! सम्पूर्ण समयमें देहकी रक्षा करना सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ किन्तु यदि उसमें पाप हो तो आपदाके अन्तमें शुद्धिके लिये उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये और आपद् कालके विना पापकार्य करनेसे मनुष्योंकी दुर्गति होती है किन्तु आपद्

कालके समय नहीं होती ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भूंखा मरता है अन्तमें उसको नरक होता है इसमें संशय नहीं इस कारण शुभाकांक्षी मनुष्योंके क्षुधाका निवारण अवश्य कर्तव्य है ॥ २४ ॥ हे अन्त्यज ! मैंने इसी कारण चौर्यवृत्ति अवलम्बन कर देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है. देखो, दुर्भिक्षके समय अवर्षणमें चोरी करनेपर पंडितोंने जो पापका विधान किया है ॥ २५ ॥ यदि मेघ वर्षा न करे तो वह पाप उसकोही अवश्य स्पर्श करता है। विश्वामित्र बोले हे कान्ते ! यह बात कहतेही सबके आकांक्षित पर्जन्य देव ॥ २६ ॥ सहसा हास्तिशुण्डाकार धारासे वर्षा करने लगे मेघोंको बिजलीसहित वर्षा करनेपर मैं उनको देखकर आनन्दित हुआ ॥ २७ ॥ तब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उस

मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः ॥ तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥ २४ ॥ तेनाऽहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथां त्यज ॥ अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः ॥ २५ ॥ यो न वर्षति पर्जन्यं तत्तु तस्मै भविष्यति ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसाऽपतत् ॥ २६ ॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः ॥ मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षंतं विद्युता सह ॥ २७ ॥ तदाऽहं तद् गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा ॥ कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम् ॥ २८ ॥ कान्तारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा ॥ २९ ॥ यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः ॥ गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम् ॥ ३० ॥ अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवु श्चातिदुःखिताः ॥ क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने ॥ ३१ ॥

चाण्डालके घरको छोड बाहर निकला हे वरारोहे ! इस घने वनमें सम्पूर्ण प्राणियोंका क्षयकर अत्यन्त भयंकर वह दुर्भिक्षका समय तुमने किसप्रकार व्यतीत किया यह मुझसे कहो. व्यास जीने कहा हे महाराज ! पतिके इसप्रकार वचन सुन वह प्रियभाषिणी प्रियतमा उनसे कहनेलगी कि ॥ २८ ॥ २९ ॥ परमदारुण दुर्भिक्षके उपस्थित होनेपर मैंने जिसप्रकार काल व्यतीत किया है वह आप सुनिये. हे मुनिवर ! जब आपके तपस्या करनेको चलेजानेपर घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब पुत्र क्षुधासे अत्यन्त कातर हो अन्नके लिये अतिदुःखित हुए। जब मैं

[illegible] तब नीवारके लिये वनमें भ्रमणकरते हुए ॥ २१ ॥ मुझको कितनेही फल प्राप्त हुए इस प्रकारा बालकोंको क्षुधार्त देखकर चिंता करनेलगी तब नीवारके लिये वनमें भ्रमणकरते हुए ॥ [illegible] नीवारादिसे कितनेही महीने व्यतीत होगये ॥ २२ ॥ फिर क्रमानुसार उसकाभी अभाव होगया तब मनमें चिन्ता करने लगी इस दारुणदुर्भिक्षके समय वनमें नीवार [illegible] अत्यन्त अभाव हुआ ॥ २३ ॥ इस समय भिक्षाभी सुलभ नहीं है वृक्षोंपर भी फल नहीं है और पृथ्वीमेंभी मूल नहीं पाये जाते [illegible] क्षुधाकी ज्वालासे कातर होकर अत्यन्त रोदन करते हुए ॥ २४ ॥ इस समय क्या उपाय है ? कहां जाऊं ? अथवा

[illegible] फलं तदा ॥ [illegible] न कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः ॥ ३२ ॥ तदभावे [illegible] ॥ न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने ॥ ३३ ॥ न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि [illegible] भृशमातुरा॥३४॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान् ॥ एवं विचिंत्य [illegible] ॥ ३५ ॥ पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल ॥ गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान् ॥ ३६ ॥ [illegible] पालने ॥ इति संचिंत्य मनसा पुत्रोऽयं गृहीतो मया ॥ ३७ ॥ विक्रयार्थं [illegible] ॥ [illegible] गृहीत्वैनं निर्गताऽहं गतत्रपा ॥ ३८ ॥ तदा सत्यव्रतो मार्गे मासुदीक्ष्य भृशातुरम् ॥ [illegible] बालकः ॥ ३९ ॥

[illegible] अनेक प्रकारके विषयको चिन्ता करके स्थिर किया कि ॥ २५ ॥ एक पुत्रको किसी धनीके निकट [illegible] ॥ २६ ॥ अर्थात् बालकोंका परिपालन करूंगी इसके सिवाय पालन करनेका दूसरा उपाय नहीं [illegible] इस बालकको बेचनेकेलिये नियोजित किया ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! तब यह बालक अत्यन्तकातर [illegible] रोते हुए बालकको [illegible] ॥ २८ ॥ इसी समय सत्यव्रतनामक राजाने

मार्गमें मुझको अत्यन्त कातर देखकर पूँछा हे सुव्रते ! यह बालक किसकारण रोता है ॥ ३९ ॥ हे मुनिसत्तम ! तब मैंने उनसे कहा हे राजन् ! मैं इस बालकको बेचनेके लिये जाती हूं ॥४०॥ मेरे इसप्रकार वचन सुन राजाका हृदय करुणारससे अभिषिक्त हुआ, तब उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इस कुमारको लेकर अपने आश्रममें जाओ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर आश्रममें न आवेंगे तबतक मैं इन कुमारोंके भोजनार्थ नित्य भोजनका उपयोगी मांस संग्रहकर तुम्हारे पास लाऊंगा ॥ ४२ ॥ हे मुनिवर ! तबसेही यह भूपाल दयाके वशीभूत हो प्रतिदिन मृग और शूकरोंको मारकर उनका मांस इस वृक्षमें बांध जाते ॥ ४३ ॥ हे कान्त ! उससेही मैंने इन बालकोंकी उस दारुण संकटसागरसे रक्षा की किन्तु यह

तदाऽहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम॥विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप ॥४०॥श्रुत्वा मे वचन राजा दयार्द्रहृदयस्ततः ॥ मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम् ॥४१॥ भोजनार्थं कुमाराणामामिषं विहितं तव॥ प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः ॥४२॥ अहन्यहनि भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान् ॥ विन्यस्य याति हत्वाऽसौ प्रत्यहं दययाऽऽन्वितः ॥ ४३ ॥ तेनैव बालकाः कांत पालिता वृजिनार्णवात् ॥ वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात् ॥ ४४ ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने ॥ हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः ॥ ४५ ॥ त्रिशंकुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना ॥ कुपितेन वधाद्धेतो श्चांडालश्च कृतो नृपः ॥ ४६ ॥ तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक ॥ श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः ॥४७॥ येनकेनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल ॥ तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह ॥ ४८ ॥

भूपति मेरेही कारण वशिष्ठसे शापको प्राप्त हुए हैं ॥ ४४ ॥ किसी दिन उस राजाको वनमें मांस प्राप्त न हुआ अतएव वशिष्ठकी कामधेनुका वध किया इस कारणसे मुनि उनपर क्रोधित हुए ॥४५॥ महात्मा मुनिने गोवधसे कुपितहोकर उन भूपतिका त्रिशंकुनाम रख उनको चाण्डाल किया ॥ ४६ ॥ हे कौशिक ! राजकुमार हमारा उपकार करनेके कारण चाण्डालपनेको प्राप्त हुए इस कारण उनके उस दुःखसे मैं अत्यन्त दुःखित हुई हूं ॥ ४७ ॥ अतएव जिस किसी उपायसे हो अथवा प्रबल तपस्याके बलसेही हो नृपतिकी उस विपद्से रक्षा करना आपको

अवश्य कर्तव्य है ॥४८॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! भार्याके इसप्रकार वचन सुन मुनिसत्तम कौशिक उस दुःखिता कामिनीको समझाकर कहने लगे ॥ ४९ ॥ विश्वामित्र बोले हे कमललोचने ! जिस नरपतिने तुम्हारी उस दारुण संकटसे रक्षा करके उपकार किया है मैं उसको शापसे छुड़ा दूँगा ॥ ५० ॥ अधिक क्या विद्याबल अथवा तपोबलसे ही हो मैं उसका दुःख निवारण करूंगा तिसकाल प्रियतमाको इस प्रकार समझाकर परमार्थविद् कौशिक ॥५१॥ किस प्रकारसे नरपतिका दुःख नाश करैं यही चिन्ता करने लगे तब मुनिवर मनमें भलीभांति विचार

व्यास उवाच ॥ इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः ॥ तामाह कामिनीं दीनां सांत्वपूर्वमरिंदम ॥४९॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने ॥ उपकारः कृतो येन कांताराद्रक्षिताऽसि वै ॥५०॥ विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम् ॥ इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित् ॥ ५१ ॥ चिंतयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम् ॥ संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः ॥५२॥ त्रिशंकुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः ॥ आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा विस्मतोऽसौ नराधिपः॥५३॥ दंडवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः ॥ गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा ॥ ५४ ॥ उत्थाप्योवाच वचनं सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमः ॥ मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः ॥५५॥ वांछितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ राजोवाच ॥ मया संप्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे ॥ ५६ ॥

कर पृथ्वीपति त्रिशंकुके निकट गये ॥ ५२ ॥ तिस समय राजा त्रिशंकु श्वपचवेशसे चाण्डालके ग्राममें दीनभावसे वासकर रहे थे, नरपति मुनिवरको आता हुआ देख अत्यन्त विस्मित हो॥५३॥ शीघ्र ही उनके चरणोंमें दण्डके समान गिर पड़े तब द्विजवर कौशिकने उन गिरे हुए राजाको हाथ पकड़कर ॥५४॥ उठाय प्रबोध वचनोंसे कहा हे महीपाल ! तुम हमारे लिये ही वसिष्ठ मुनिसे शापको प्राप्त हुए हो ॥ ५५ ॥ अतएव मैं तुम्हारा अभिलषित सम्पादन करूंगा इस समय क्याकरैं ? सो कहो राजाने कहा मैंने यज्ञ करनेके लिये पहले वसिष्ठसे प्रार्थना करके कहा॥५६॥

हे मुनिवर ! मैं एक श्रेष्ठ यज्ञ करूंगा आप मेरा वह कार्य सम्पादन कीजिये जिससे मैं स्वर्ग जासकूं ॥ ५७ ॥ हे विप्रवर ! जिससे इसी शरीर द्वारा मैं सुरपुरमें सुखसे शक्रभवनमें जासकूं आप ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कीजिये तब वसिष्ठ देवने कुपित होकर मुझसे कहा ॥ ५८ ॥ हे दुर्मते ! तेरा मनुष्य देहसे किस प्रकार स्वर्गमें वास होगा ? मैं स्वर्गका लालची था इस कारण फिर भगवान् वसिष्ठसे कहा हे अनघ ! ॥ ५९ ॥ तो मैं दूसरा पुरोहित कर सर्वोत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा तब वशिष्ठ देवने यह बात सुन क्रोधित हो तत्काल "रे पामर ! तू चाण्डाल हो" यह कहकर मुझको शाप दिया ॥ ६० ॥ हे मुनिवर ! यह मैंने आपसे शापका सम्पूर्ण कारण निवेदन किया, इस समय आप मेरा दुःखनाश

मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम् ॥ यथेष्टं कुरु विप्रेंद्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम् ॥ कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते ॥ ५८ ॥ मानुषेणहि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव ॥ पुनर्मयोक्तो भगवा न्स्वर्गलुब्धेन चानघ ॥ ५९ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ तदा तेनैव शप्तोऽहं चांडालो भव पामर ॥ ६० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं शापसंभवम् ॥ मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःख रुजार्दितः ॥ कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिंतयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे त्रयोदशो ऽध्यायः ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ विचिंत्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः ॥ प्रकल्प्य यज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥१॥ मुन यस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमंत्रिताः ॥ नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः ॥ २ ॥

करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ राजा दुःखकी वेदनासे कातर हो यह कहकर मौन हो रहे, विश्वामित्र मुनि भी किस उपायसे इनका शाप निवारण करें यही विचारने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! महातप विश्वामित्रनें मनमें कर्तव्य निश्चयकर यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री संग्रहपूर्वक मुनियोंको निमन्त्रण भेजा ॥ १ ॥ यद्यपि मुनियोंने विश्वामित्रसे निमन्त्रित हो यज्ञका वृत्तान्त जान लिया, किन्तु ऋषिवर वशिष्ठके निवारण करनेसे वह कोई भी उस यज्ञमें न आये ॥ २ ॥

गाधिनन्दन यह वृत्तान्त जान अत्यन्त चिन्तित हुए और अतिदुःखित हो त्रिशंकु नरपतिके आश्रममें आनकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ तब महर्षि क्रोधित हो. उनसे कहने लगे हे नृपसत्तम ! वशिष्ठके निवारण करनेसे सम्पूर्ण ब्राह्मण इस यज्ञमें नहीं आये ॥ ४ ॥ किन्तु हे महाराज ! तुम मेरी तपस्याका बल देखो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा तुमको शीघ्र ही सुरालयमें भेजूंगा ॥ ५ ॥ उन मुनिने यह बात कहकर, हाथमें जल ले लिया और गायत्री जपकर जो पुण्यसञ्चय किया था वह सम्पूर्ण राजाको प्रदान किया ॥ ६ ॥ अनन्तर पुण्य देकर उन महीपतिसे कहा हे राजर्षे ! तुम आलस्यरहित होकर अपनी इच्छानुसार सुरलोकमें जाओ ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर बहुकाल सञ्चित

गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः ॥ आजगामाश्रमं तत्र यत्राऽसौ नृपतिः स्थितः ॥३॥ तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः ॥ नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा त्वां सुरसद्मनि ॥ प्रापयामि महाराज वांछितं ते करोम्यहम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः ॥ ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसंभवम् ॥ ६ ॥ दत्त्वाऽथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम् ॥ यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतंद्रितः ॥ ७ ॥ पुण्येन मम राजेंद्र बहुकालार्जितेन च ॥ याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति विप्रेंद्रे त्रिशंकुस्तरसा ततः ॥ उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात् ॥ ९ ॥ उत्पत्य गगने राजा गतःशक्रपुरीं यदा ॥ दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चांडालवेषभाक् ॥१०॥ कथितोऽसौ सुरेंद्राय कोऽयमायाति सत्वरः ॥ गगने देववद्वायोर्दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः ॥ ११ ॥

मेरे. पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाओ और उस सुरलोकमें तुम्हारा मंगल हो ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रके बात कहनेपर राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे वेगवान् पक्षीके समान अत्यन्त शीघ्र आकाशमार्गमें उडे ॥ ९ ॥ राजा त्रिशंकु आकाशमें उडते हुए जब इन्द्रकेपुरके समीप पहुँचे तब देवताओंने चाण्डालाकृति भीषणवेश त्रिशंकुको देखकर ॥१०॥ देवराज इन्द्रसे कहा आकाशमार्गमें देवताके समान अत्यन्त वेगसे आता है यह कौन मनुष्य है ? इसकी आकृति श्वपचसदृश और लोहेके समान घोर दर्शन है ॥ ११ ॥

यह सुन इन्द्रने सहसा उठकर उस पुरुषाधमको देखा और उसको त्रिशंकु जानकर तिरस्कार पूर्वक तत्काल उससे कहा ॥१२॥ तुम श्वपच और देवलोकके अत्यन्त अनुपयुक्त हो अतएव कहाँ जाते हो ? यहाँ ठहरना तुमको उचित नहीं है, इस कारण तुम अभी पृथ्वीपर जाओ ॥१३॥ हे अरिनाशन ! इन्द्रके यह वचन कहतेही राजा स्वर्गसे स्खलित हो पुण्यक्षीण देवताओंके समान तत्काल गिरने लगे ॥ १४ ॥ तब त्रिशंकुने विश्वामित्र विश्वामित्र कहकर चीत्कार करते करते वारंवार कहा मैं स्वर्गसे स्खलित होकर अत्यन्त वेगसे गिरता हूं अतएव आप मेरी इस दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! महर्षि कौशिकने उनके रोनेकी ध्वनि सुनकर गिरता हुआ देख " ठहर ठहर " यह वचन कहा ॥१६॥ नृपति

सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् ॥ ज्ञात्वा त्रिशंकुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ श्वपच क्व समायासि देव लोके जुगुप्सितः ॥ याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन ॥ निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथाऽमरः ॥ १४ ॥ पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत् ॥ पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गा च्चलितमाशुगम् ॥ १५ ॥ तस्य तत्क्रंदितं राजन्पततः कौशिको मुनिः ॥ श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतंतं वीक्ष्य भूपतिम् ॥ १६ ॥ वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृपः ॥ मुनेस्तपः प्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात्॥१७॥ विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम्॥विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम् ॥ १८ ॥ तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः ॥ तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम् ॥१९॥ किं ब्रह्मन्क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः॥ अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२०॥

सुरालयसे विचलित होकरभी मुनिके तपप्रभाववशतः उनके वाक्यानुसार आकाशमार्गमें उसीस्थानपर स्थित रहे ॥१७॥ वे विश्वामित्रने भी नूतन सृष्टि औरदूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये आचमनकर सुविस्तीर्ण यज्ञ आरम्भ किया ॥ १८ ॥ उनका इस प्रकार उद्यम देखकर शचीपतिने व्यग्र हो शीघ्रही गाधितनय विश्वामित्र मुनिके निकट आनकर कहा ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप क्या करते हैं हे साधो ! आप किस कारणसे इतने कोपयुक्त हुए हैं हे मुनिवर ! नूतन सृष्टि करनेका अब प्रयोजन नहीं है इस समय आपका क्या कार्य करूं आज्ञा दीजिये ॥२०॥

विश्वामित्रने कहा हे देवराज ! महीपति त्रिशंकु सुरलोकसे पतित होकर अत्यंत दुःखित हुए हैं अतएव आप प्रसन्नतापूर्वक उनको अपने सुरालयमें ले जाइये यह मेरा अभिप्राय है ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवराज इन्द्र उनका स्थिरसंकल्प और अत्युग्र तपोबल जानते थे इस कारण अत्यंत शंकित चित्तसे उनके वचन स्वीकार किये ॥ २२ ॥ तब सुरपति इंद्रने नरपतिको दिव्य देहप्रदानकर उत्तम विमानपर बैठाया और मुनिवर कौशिकसे सम्भाषणकर राजाके सहित अपने स्थानको चले गये

विश्वामित्र उवाच ॥ स्वं निवासं महीपालं च्युतं तद्भुवनाद्विभो ॥ नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशंकुं चातिदुःखितम् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशंकितः ॥ ततो बलविदित्वोग्रमोमित्योवाच वासवः ॥ २२ ॥ दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसंस्थितम् ॥ आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा ॥ २३ ॥ गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशंकुसहिते ततः ॥ विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत् ॥ २४ ॥ हरिश्चन्द्रोऽथ तच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम् ॥ पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात् ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया ॥ रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः ॥ २६ ॥ अतीतकाले युवती नसा गर्भवती ह्यभूत् ॥ तदा चिंतातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः ॥ २७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥ अनपत्यत्वजां चिंतां गुरवे समवेदयत् ॥ २८ ॥

॥ २३ ॥ इंद्रके त्रिशंकुसहित स्वर्गमें चले जानेपर विश्वामित्र सुखी हो अपने आश्रममें स्थिर होकर वास करने लगे ॥ २४ ॥ इधर महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके तपोबलसे पिताको स्वर्ग प्राप्त हुआ सुन अत्यंत आनंदित चित्तसे राज्य शासन करने लगे॥२५॥ तब अयोध्याधिपति वह नरपति प्रीतिक वशीभूत हो रूपयौवन सम्पन्न सुचतुर भार्याके संग काम क्रीडामें निरत हुए ॥२६॥ इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया तौभी वह युवती गर्भवती न हुई राजा यह देखकर अत्यंत दुःखित और अतिचिंतातुर हुए ॥ २७ ॥ तब उन्होंने वसिष्ठके पुण्याश्रममें

जाय मुनिवरको मस्तक झुकाय प्रणाम कर पुत्र न होनेके कारण उनके मनमें जो चिंता उत्पन्न हुई थी वह गुरुजीसे कही ॥ २८ ॥ हे धर्मज्ञ ! आप मंत्रविद्यामें विशारद विशेषकर सब दैवविषयको जानते हैं अतएव हे मानद ! आप मुझको संतान प्राप्त होनेका उपाय कीजिये ॥ २९ ॥ हे द्विजसत्तम ! अपुत्रकी गति नहीं होती यह आप भलीभांति जानते हैं इस कारण मेरा दुःख जानकर और उस दुःखके निवारण करनेमें समर्थ होकर भी आप क्या उपेक्षा करते हैं ?॥३०॥ यह पक्षी भी धन्य हैं जो अपने पुत्रोंको पालते हैं किंतु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूं कि पुत्रके न होनेसे दिनरात चिंता सागरमें डूबा रहता हूं ॥ ३१ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे महाराज ! विधिपुत्र वसिष्ठ राजाके खेदपूर्ण वचन सुनकर

दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मंत्रविद्याविशारदः ॥ उपायं कुरु धर्मज्ञ संततेर्मम मानद ॥ २९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विज सत्तम ॥ कस्मादुपेक्षसे जानन्दुःखं मम च शक्तिमान् ॥३०॥ कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयंति हि ॥ मंदभाग्योऽह मनिशं चिन्तयामि दिवानिशम् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः ॥ संचिन्त्य मनसा सम्य क्तमुवाच विधेः सुतः ॥ ३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते ॥ अनपत्यत्वजं दुखं यत्तथा दुःख मद्भुतम् ॥३३॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र वरुणं यादसां पतिम् ॥ समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति ॥ ३४ ॥ वरुणादधिको नास्ति देवः संतानदायकः ॥ तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥ दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः ॥ उद्य मेन विना कार्यसिद्धिः संजायते कथम् ॥ ३६ ॥

मनमें चिंता कर उनसे विशेष वृत्तांत कहने लगे ॥ ३२ ॥ वशिष्ठने कहा हे महाराज ! तुम सत्य कहते हो कि अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा दूसरा कोई भी अति अद्भुत दुःख इस संसारमें विद्यमान नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! तुम यत्नसहित जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना करो वही तुम्हारे कार्यकी सिद्धि करेंगे ॥ ३४ ॥ वरुणकी अपेक्षासंतानदायक देवता दूसरा कोई नहीं है अतएव हे धर्मिष्ठ ! तुम उनकी आराधना करो अवश्यही कार्यसिद्धि होगी ॥ ३५ ॥ दैव और पौरुष यह दोनोंही मनुष्यको माननीय हैं अतएव उद्यम न करनेसे

किस प्रकार कार्यसिद्धि होसकती है ॥३६॥ हे नृपसत्तम ! तत्वदर्शी मनुष्यको न्यायके अनुसार उद्यम करना अवश्य कर्तव्य है उद्यम करनेसे ही कार्य सिद्धि होती है इसके अतिरिक्त कभी कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती ॥३७॥ अत्यन्त तेजयुक्त गुरुके इसप्रकार वचन सुन राजा स्थिरसंकल्प हुए और उनको प्रणाम पूर्वक तपस्या करनेको चले गये ॥ ३८ ॥ नरपति गंगाके तटपर पवित्र स्थानमें पद्मासन ग्रहण कर पाशधर वरुणदेवके ध्यानमें निमग्न हो कठोर तपस्या करने लगे ॥३९॥ हे महाराज ! इस प्रकार तपस्या करते करते वरुणदेव कृपाके वशीभूत हो प्रफुल्लमनसे उनके दृष्टिगोचर हुए ॥ ४० ॥ तब वरुणने नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे धर्म्मज्ञ ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हुआ हूं अतएव

न्यायतस्तु नरैः कार्यं उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नोऽन्यथा नृपसत्तम ॥ ३७ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः ॥ प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः ॥ ३८ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः॥ ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः ॥ ३९ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः ॥ कृपयाऽभून्महाराज प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः ॥ वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम् ॥ ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः ॥ ४२ ॥ नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च ॥ स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम् ॥ ४३ ॥ वरुण उवाच ॥ पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः ॥ सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम् ॥ ४४ ॥ यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथा विशंकितः ॥ पशुबंधेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ॥ ४५ ॥

इस समय मुझसे वर मांगो ॥४१॥ राजाने कहा हे देवेश ! मैं अपुत्र हूं इसलिये मुझको सुखदायक पुत्र दीजिये मैं देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणमें बंधा हुआ हूं इन तीनों ऋणोंसे छूटनेके लिये मैंने यह उद्यम किया है ॥ ४२ ॥ तब वरुणदेवने दुःखित राजाके विनययुक्त वचन सुन कुछेक हास्यकर सन्मुख स्थितराजासे कहा॥४३॥ हे राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छानुसार गुणवान् पुत्र हो तब कार्यसिद्धिके उपरान्त मेरा क्या प्रियकार्य करोगे ?॥४४॥ हे नृपते ! यदि तुम उस पुत्रको पशुस्थानीय करके निःशंकित चित्तसे मेरा यज्ञ करो तो मैं तुमको दूं ॥४५॥

राजाने कहा हे देव ! मुझको वन्ध्यता दोषसे छुडाइये हे जलाधिप ! मैं पुत्र होनेपर उसको पशु बनाय तुम्हारा यज्ञ करूंगा यह आपसे सत्य कहता हूं ॥४६॥ हे मानद ! अपुत्रता जनित दुःखकी अपेक्षा अत्यन्त असह्य दुःख पृथ्वीमें दूसरा नहीं है अतएव जिससे मनुष्योंका दुःख दूर हो ऐसी सुसन्तान मुझको दीजिये ॥ ४७ ॥ वरुणने कहा-हे राजन् ! तुम्हारे इच्छानुसार पुत्र होगा अतएव घरको जाओ किंतु मेरे निकट जो कहा वह सत्य करना ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वरुणके इस प्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घरको चले गये

राजोवाच॥देव मे माऽस्तु वंध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिपम् ॥ पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४६ ॥ वंध्यत्वे परमं दुःख मसह्यं भुवि मानद ॥ शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम् ॥ ४७ ॥ वरुण उवाच ॥ भविष्यति सुतः कामं राजन्गच्छ गृहाय वै ॥ सत्यं तद्वचनं कार्यं यद्ब्रवीषि ममाग्रतः ॥४८॥ व्यास उवाच॥इत्युक्तो वरुणेनाऽसौ हरिश्चंद्रो गृहं ययौ॥ भार्यायै कथ यामास वृत्तांतं वरदानजम् ॥४९ ॥ तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम् ॥ पट्टराज्ञी शुभा शैब्या धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ५० ॥ काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी ॥ बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृ पतिस्तदा ॥ मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे सा शुभे दिने ॥ ५२ ॥ ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम् ॥ पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः ॥ ५३ ॥ चकार जातकर्माऽऽदौ ददौ दानानि भूरिशः ॥ राज्ञश्चाऽतिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः ॥ ५४ ॥

औरवरदानविषयका संपूर्ण वृत्तांत भार्यासे कहा॥४९॥उनके सौ परमसुन्दरीमनोहारिणी स्त्रियें थीं उनमें पतिव्रता शैब्याही धर्मपत्नी और पटराणी थी ॥ ५० ॥ कुछ कालव्यतीत होनेपर वह वरवर्णिनी गर्भवती हुई, राजा उसके दोहद (गर्भ) की बात सुन आनंदित हुए ॥ ५१ ॥ तिस समय राजाने उसका विधिपूर्वक संस्कार कराया क्रमानुसार दशमासपूर्ण होनेपरशैब्याने शुभनक्षत्र ॥ ५२ ॥ और ग्रह-बलयुक्त शुभदिनमें देवताओंके पुत्रके समान संतान उत्पन्न की पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके सहित स्नानपूर्वक ॥५३॥ प्रथम जातकर्म

संस्कार कर असंख्य धनरत्नादि दान किये उस समय पुत्रजन्मसे राजाको अत्यंत हर्ष हुआ ॥ ५४ ॥ उन चतुर राजाने धन धान्य और अनेक प्रकारके रत्न तथा भूमि इत्यादि विशेष विशेष दान और अनेक प्रकारके गीतवाद्योंका अनुष्ठान कराया ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब नरपतिके भवनमें पुत्र जन्म होनेके कारण महोत्सव हुआ तब वरुण देवने पवित्र विप्रवेश धारण पूर्वक वहाँ आनकर कहा ॥१॥ तब वरुणदेवने " तुम्हारा मंगल हो " यह वचन राजासे कहा हे नरपति ! मुझको वरुण जानो इस समय मैं तुमसे जो कहता हूं सो सुनो हे नराधिप ! इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अतएव

बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः ॥ विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे ॥ आजगाम तदा पाशी विप्रवेपधरः शुभः ॥ १ ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय ॥ पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम् ॥ २ ॥ सत्यं कुरु वचो राजन्यत्प्रोक्तं भवता पुरा ॥ वंध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल ॥ ३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिंतां चकार ह ॥ कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम् ॥ ४ ॥ लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान् ॥ न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता ॥५॥ पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा ॥ किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं संततिसंभवम् ॥६॥

तुम उससे मेरा यज्ञ करो ॥ २ ॥ हे राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हारा वन्ध्यता दोष दूर होगया है तब तुमने पहले जो कहा था अब वह वचन सत्य करो ॥ ३ ॥ राजा हरिश्चंद्र वरुणके यह वचन सुनकर चिंता करने लगे कि अहो ! मेरे केवल एक पुत्र कमलके समान मुखवाला उत्पन्न हुआ है इसको किसप्रकार मारूं ॥ ४ ॥ परंतु वीर्यवान् लोकपाल वरुणदेव विप्रवेषसे आये हैं जो कल्याणकी कामना करता है ऐसे मनुष्यको देवताओंका तिरस्कार करना कभी उचित नहीं है ॥ ५ ॥ और प्राणियोंको पुत्र स्नेह छेदन करना भी अत्यन्त कठिन है अतएव मैं

अब क्या उपाय करूं ? किसप्रकार मुझको सन्तानजनित सुख होगा ॥ ६ ॥ तब भूपालने धैर्यावलम्बनपूर्वक प्रणत हो उनकी यथोचित पूजा की और विनयसहित युक्तियुक्त मनोहर वचन उनसे कहे ॥ ७ ॥ राजा बोले हे देवदेव ! मैं आपकी आज्ञा पालन करूं, इसमें सन्देह नहीं मैं वेदोक्तविधानसे अनेक दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ किंतु नरमेधयज्ञ करना हो तो स्त्री पुरुष दोनों उसके अधिकारी हैं इसकारण पुत्र जन्म होनेसे पिता दश दिनके उपरांत और जननी एकमासके उपरांत शुद्ध होकर कार्यके योग्य होती है अतएव एकमास न बीतनेपर किसप्रकार यज्ञ करूं ॥ ९ ॥ आप सर्वज्ञ और लोकोंके परमप्रभु हैं, नित्यकर्म क्या है सो आप सभी जानते हैं अतएव

धैर्यमालंब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम् ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे ॥ वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम् ॥ ८ ॥ पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता ॥ मासेन शुद्ध्येज्जननी दंपती तत्र कारणम् ॥ ९ ॥ सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम् ॥ कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥ ११ ॥ आगमिष्यामि मासांते यष्टव्यं सर्वथा त्वया ॥ कृत्वौत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृपसत्तम ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः ॥ हरिश्चंद्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः ॥ १३ ॥

हे वारीश ! आप मुझपर कृपा करके इस एकमहीनेतक शांत रहिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्रके यह वचन सुन फिर वरुणदेवने उन नरपतिसे कहा हे राजन् ! तुम्हारा मंगल हो तुम कर्तव्य कार्यकरो मैं इस समय अपने स्थानको जाता हूं ॥ ११ ॥ हे नृपसत्तम ! मैं एक महीनेके उपरांत फिर आऊंगा, तुम पुत्रका जातकर्म और नामकरण इत्यादि नियमित संस्कार करके तदनंतर मेरे यज्ञका अनुष्ठान करना ॥१२॥ हे महाराज ! जलाधिपति वरुणदेवके राजासे इसप्रकार मधुर वचन कहकर चले जानेपर राजा हरिश्चंद्र भी आनन्द

अनुभव करनेलगे ॥ १३ ॥ फिर उन पृथ्वीपतिने करोड़ करोड़ हेमभूषित घटोघ्नी (घटाकारस्तनवाली) धेनु और तिलपर्वत संपूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दान किये ॥ १४ ॥ राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यन्त सुखी हुए और विधिपूर्वक उसका रोहिताश्व नाम रक्खा॥१५॥ फिर एक मास पूर्ण होनेपर वरुणदेव विप्र वेश धारण पूर्वक राजासे आनकर वारंवार कहनेलगे हे महाराज ! इससमय यज्ञ आरम्भ कीजिये ॥ १६ ॥ नरपति उन वरुणदेवको देखकर शोकसागरमें डूबगये फिर प्रणाम और आतिथ्यसत्कारपूर्वक हाथ जोडकर उनसे कहने लगे॥१७॥ हे देव ! सौभाग्यके अनुसारही आपने मेरे घरमें पदार्पण किया है हे प्रभो ! आपके आनेसे अब मेरा घर पवित्र हुआ हे देव ! मैं आपका

कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोघ्नीर्हेमपूरिताः ॥ विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान् ॥१४॥ राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम्॥ नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः॥ आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे ॥ प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृतांजलिः ॥ १७ ॥ दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो ॥ मखं करोमि वारीश विधिवद्वांछितं तव ॥ १८ ॥ अदंतो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः ॥ तस्माद्दंतोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ ॥ हरिश्चंद्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे ॥ २० ॥ पुनर्दंतोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान् ॥ आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन् ॥ २१ ॥

वाञ्छित यज्ञ विधिपूर्वक सम्पादन करूंगा इसमें संदेह नहीं है ॥१८॥ किन्तु देखो ! दन्तविहीन पशु यज्ञमें श्रेष्ठ नहीं है यह वेदके जाननेवाले पंडितलोग कहते हैं अतएव पुत्रके दाँत निकलनेपर आपका वांछित महायज्ञ करूंगा यही स्थिर किया है ॥१९॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! वरुणदेव राजा हरिश्चंद्रके यह वचन सुन यही हो इसप्रकार कहकर अपने स्थानको चलेगये इधर राजा हरिश्चन्द्र आनंदित हो संसाराश्रममें विहार करनेलगे ॥२०॥ फिर कुमारके दाँत उत्पन्न हुए जानकर वरुणदेव विप्रवेशसे राजाके घर आय कहने लगे हे राजन् ! आप इससमय

मेरा यज्ञ कीजिये ॥ २१ ॥ भूपतिने भी विप्ररूपी जलाधिपतिको आता हुआ देखते ही प्रणामकर आसन प्रदान किया और यथायोग्य सन्मान करके उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ उन्होंने अत्यंत विनीत भावसे मस्तक झुकाय स्तव करके उनसे कहा हे देव! मैं आपका विधिपूर्वक वांछित अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ करूंगा ॥२३॥ इस बालकका अभी चूडाकरण नहीं हुआ है अतएव गर्भ कालीन केशकलाप विद्यमान है, इस कारण इन केशोंके रहते यह बालक यज्ञीय पशु नहीं हो सकता यह मैं वृद्धोंके मुखसे सुना है ॥२४॥ हे वारीश! आप शास्त्रकी विधि जानते

भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम् ॥ प्रणम्यासनसन्मानैः पूजयामास सादरम् ॥ २२ ॥ स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकंधरः ॥ करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम् ॥ २३ ॥ बालोप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न संमतः ॥ यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥ २४ ॥ तावत्क्षमस्व वारीश विधिं जानासि शाश्वतम् ॥ कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुंडनांते शिशोः किल ॥ २५ ॥ तस्येति वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुनः पुनरिदं ब्रुवन् ॥ २६ ॥ अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना ॥ पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वंचयस्येव सांप्रतम् ॥ २७ ॥ क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्तासि मखं यदि ॥ तदाऽहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः ॥ २८ ॥ अद्य गच्छामि राजेंद्र वचनात्तव मानद ॥ न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥ २९ ॥

हैं, इस कारण चूडाकरण तक अपेक्षा कीजिये, बालकके मुण्डन कार्य होनेपर फिर मैं आपका यज्ञ करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ वरुणने उनके यह वचन सुन फिर उनसे कहा हे राजन्! तुम वारंवार इस प्रकार कहकर मुझको क्यों छलते हो॥२६॥हे नरपते! इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है केवल पुत्रके स्नेहमें बँधकर ही अब मुझको छलते हो ॥ २७ ॥ जो हो क्षौर कार्य करके भी यदि यज्ञ न करोगे तो मैं कुपित होकर तुमको दारुण शाप दूंगा ॥२८॥ हे राजेन्द्र! इस समय मैं तुम्हारे वचनानुसार जाता हूं किंतु तुम इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न होकर

अपना वचन मिथ्या न करना ॥ २९ ॥ वरुण यह वचन कहकर नरपतिके घरसे तत्काल चले गये राजा भी तब अत्यंत सन्तुष्ट हो अपने भवनमें आनन्द अनुभव करने लगे ॥ ३० ॥ फिर जब अत्यंत उत्सवके सहित चूड़ा कार्य आरम्भ हुआ तब पाशधर शीघ्रही पुनर्वार नरपतिके भवनमें आये ॥ ३१ ॥ जिस समय रानी पुत्रको गोदीमें लिये राजाके सामने बैठी थी उसी समय वरुणदेव वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उन विप्र रूपधारी प्रत्यक्ष अग्निके समान तेजःपुञ्जकलेवर वरुण देवने नरपतिसे स्पष्ट वचन द्वारा कहा हे राजन् ! यज्ञ आरम्भ करो ॥ ३३ ॥

इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात् ॥ राजा परमसंतुष्टो ननंद भवने तदा ॥ ३० ॥ चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे ॥ संप्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः ॥ ३१ ॥ यदांके सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ ॥ उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात् ॥ ३२ ॥ कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम् ॥ विप्ररूपधरः श्रीमान्प्रत्यक्ष इव पावकः ॥ ३३ ॥ नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः ॥ नमश्चकार तं भीत्या कृतांजलिपुटः पुरः ॥ ३४ ॥ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान् ॥ स्वामिन्कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वं ३५ ॥ वक्तव्यमस्ति तत्राऽपि शृणुष्वैकमना विभो ॥ युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद्ब्रवीमि तवाग्रतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः ॥ ३७ ॥

नरपतिने उनको देखकर भयसे अत्यंत विह्वल हो हाथ जोड़ शीघ्र उनको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ फिर यथाविधि उनकी पूजाकर अत्यंत विनय सहित कहा हे स्वामिन् ! अब मैं विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूंगा ॥ ३५ ॥ किंतु इस विषयमें मुझको कुछ कहना है आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये और तदनन्तर जो कर्तव्य हो वही कीजिये हे स्वामिन् ! आप यदि युक्ति संगत कहकर अनुमोदन करें तो मैं वह आपसे कहूं ॥ ३६ ॥ देखो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण यथाविधि संस्कृत होनेसे द्विजाति होते हैं किंतु संस्कार विहीन होनेसे यह अवश्य ही

शूद्र हैं यह वेदके जाननेवाले पंडित लोग ही जानते हैं॥ ३७ ॥ इस कारण मेरी यह शिशु सन्तान इस समय भी शूद्रके समान है यज्ञोपवीत होनेपर फिर यह यज्ञ क्रियाके उपयुक्त होगी यही वेदशास्त्रमें निर्णय है ॥ ३८ ॥ क्षत्रियोंकी ग्यारहवें वर्षमें ब्राह्मणोंकी आठवें वर्षमें और शूद्रोंकी बारहवें वर्षमें वयःक्रमसे उपनयन विधि निर्दिष्ट हुए हैं ॥ ३९ ॥ अतएव हे देवेश ! यदि आप दीन सेवकके ऊपर दया करें तो बालकके उपनयन पर्यन्त अपेक्षा कीजिये फिर इसका उपनयनकर पशुरूप बालकसे आपका वह उत्तमयज्ञ करूंगा ॥ ४० ॥ हे विभो ! आप लोकपाल हैं विशेषकर सम्पूर्ण शास्त्रोंका सारधर्म जानकर धर्मतत्त्व प्राप्त किया है इस कारण यदि आप मेरा वचन सत्य जाने तो आप इस समय अपने घरको

तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः ॥ उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः ॥ ३८ ॥ राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम्॥अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां द्वादशे किल ॥३९॥ दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव ॥ तदोपनीय कर्ताऽस्मि पशुना यज्ञमुत्तमम् ॥४०॥ लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद॥मन्यसे यद्वचः सत्यं तद्गच्छ भवनं विभो ॥४१॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान्यादसां पतिः॥ ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ४२ ॥ गतेऽथ वरुणे राजा बभूवाऽतिमुदाऽन्वितः ॥ सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह ॥४३॥चकार राजकार्याणि हरिश्चंद्रस्तदा नृप ॥ कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः ॥४४॥ तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः ॥ चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा ॥ ४५ ॥

जाइये ॥ ४१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उनके यह वचन सुनकर जलाधिपति वरुणदेव दयार्द्रचित्त हुए और "यही हो" ऐसा कहकर तत्काल उस स्थानसे चले गये ॥ ४२ ॥ वरुणके अन्तर्धान होनेपर फिर राजा अत्यंत आनंदित हुए और रानी भी पुत्रका मंगल जान सन्तुष्ट हुई ॥ ४३ ॥ अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्न चित्तसे राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगे इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर उनके पुत्रने दशवें वर्षमें पदार्पण किया ॥४४॥ तब राजाने शान्त ब्राह्मण मंत्रियोंकी सम्मतिसे अपने ऐश्वर्यके समान उसकी उपनयन द्रव्य सामग्री

मँगाई॥ ४५ ॥ पुत्रका ग्यारहवें वर्षमें वयःक्रम होनेसे राजाने यथाविधि उपनयन कार्य किया किंतु वरुण देवके यज्ञका वृत्तान्त स्मरणकर वारंवार चिंतातुर होने लगे ॥ ४६ ॥ इधर कुमारका उपनयन कार्य आरम्भ होनेपर वरुणदेव विप्रवेश धारणकर उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥ राजाने उनको देखते ही शीघ्रप्रणाम किया और हाथ जोड सन्मुख खडे हो प्रीति सहित सुरवरसे कहने लगे ॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत हो जानेसे इस समय मेरा यह पुत्र पशुके उपयुक्त हुआ है और आपके अनुग्रहसे मेरा भी वन्ध्यत्वशोक जाता रहा ॥४९॥ अतएव हे

एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबंधविधौ नृपः॥ विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिंतातुरः पुनः॥४६॥वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके ॥ आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा ॥४७॥ तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः ॥ कृतांजलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम् ॥४८॥ देवदत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः ॥ प्रसादात्तव मे शोको गतो वंध्यापवादजः ॥४९॥ कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवर दक्षिणम् ॥ समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥ समावर्तनकर्मांते करिष्यामि तवेप्सितम् ॥ ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षंतुमर्हसि ॥ ५१ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुत्रप्रेमाकुलो भृशम् ॥ मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महा मते ॥ ५२ ॥ गच्छाम्यद्य महाराज वचसा तव नोदितः ॥ आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते ॥ राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम् ॥ ५४ ॥

धर्मज्ञ ! मैं जो कहता हूं सो सुनिये कुछ कालके विलम्बसे आपका अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ करनेकी इच्छा की है यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ५० ॥ फलतः समावर्तन कार्यके अन्तमें आपका वाञ्छित यज्ञ करूंगा अब मुझपर दया करके तबतक क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥ वरुणने कहा हे महामते ! तुम पुत्र स्नेहसे अत्यंत व्याकुल होकर युक्तियुक्त बुद्धि कौशलसे वारंवार मुझको छलते हो॥५२॥ जो हो हे महाराज ! मैं तुम्हारे वचनानुसार आज जाता हूं किन्तु समावर्तन कार्यके समय फिर मैं आऊंगा यही निश्चय जानिये॥५३॥ हे नरपते!वरुणदेवके यह वचन कह उनसे सम्भा

षण कर चले जानेपर राजाभी आनंदित हो यथाक्रमसे विहित कार्य करनेलगे॥५४॥राजकुमार अत्यन्त बुद्धिमान् थे इस कारण वरुणदेवको आता हुआ देख यज्ञका समय जान चिंतासे कातर हुए ॥५५॥ अनंतर राजाके शोकका कारण इधर उधर पूँछकर अपने विनाशका विषय जाना और तत्काल राजाके घरसे निकल जानेकी इच्छा की॥५६॥फिर सचिवपुत्रोंके सहित परामर्शकर कर्तव्य स्थिरता पूर्वक उस नगरसे बाहर हो वनको चला गया॥५७॥पुत्रके चलेजानेपर नरपतिने अत्यंत दुःखित हो उसको ढूँढ़नेके लिये अपने सम्पूर्ण दूतोंको भेजा॥५८॥इस प्रकार कुछ काल व्यतीत

आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः ॥ यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिंतातुरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः ॥ ज्ञात्वाऽऽत्मवधमायुष्मन्गमनाय मतिं दधौ ॥५६॥ निश्चयं परमं कृत्वा संमंत्र्य सचिवात्मजैः ॥ प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ॥५७॥गते पुत्रे नृपः कामं दुःखितोऽभूद् भृशं तदा॥प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया॥५८॥ एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः ॥ राजानं शोकसंतप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम् ॥ न जाने क्वाऽपि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः ॥ ६० ॥ सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते ॥ ६१ ॥ आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते ॥ न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा ॥ ६२ ॥

होनेपर वरुणदेवने उनके घर आय उन शोकसन्तप्त राजासे कहा हे राजन्! इस समय पहले कहा हुआ यज्ञ कीजिये॥५९॥राजाने उनको प्रणाम करके कहा हे देव ! मैं क्या करूं?मेरा पुत्र भयसे व्याकुल होकर कहीं चला गया है उसको मैं नहीं जानता॥६०॥हे देव!मेरे सब दूतोंने पर्वतोंके दुर्गम प्रदेश मुनियोंके आश्रम अधिक क्या सम्पूर्ण स्थानोंमें ढूंढा है तथापि किसी स्थानमें भी उसको नहीं पाया॥६१॥मेरा पुत्र घरसे चलागयाहै इस समय मैं क्या करूं ? आप आज्ञा दीजिये हे देव ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आप तो विचार देखिये मेरा कुछ भी दोष नहीं

है केवल भाग्यके दोषसेही ऐसा हुआ है इसमें सन्देह नहीं॥६२॥व्यासजीने कहा हे राजन् ! राजाके ऐसे वचन सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए और जब उन्होंने देखा कि हरिश्चन्द्रसे वारंवार छला जाकर भी मैं अपने वाञ्छितको प्राप्त न हुआ तब क्रोधसे अधीर होकर उनको शाप दिया ॥६३॥हे राजन् ! तुमने छलयुक्त वचनोंसे मुझको छला है इसलिये दारुण जलोदर व्याधि तुमको अत्यन्त पीडित करै॥ ६४ ॥वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेपर फिर राजा इस क्लेशदायक व्याधिसे पीडित हो अत्यन्त कष्ट भोगने लगे ॥ ६५ ॥ तब पाशधारी जलाधिपति राजाको

व्यास उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम् ॥ शशाप च नृपं क्रोधाद्वंचितस्तु पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवंचितः ॥ तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा ॥ पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु ॥ ६५ ॥ एवं शप्त्वा नृपं पाशी जगाम निजमास्पदम् ॥ राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः ॥ ६६ ॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणाऽतीव पीडितः ॥ दुःखाद्दुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद् भृशं तदा ॥ १ ॥ कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयंत्रितः ॥ २ ॥

इस प्रकार शाप देकर अपने स्थानको चले गये और राजा भी इस दारुण व्याधिसे ग्रस्त हो अत्यन्त कातर हुए ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! वरुणके अपने स्थानमें चले जानेपर राजा उस जलोदर रोगसे अत्यंत पीडित हुए और दिन दिन दुःख भोग एवं घोरयन्त्रणा अनुभव कर अत्यंत क्लेश पाने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इधर राजकुमारने वनमेंही पिताके उस रोगजनित संतापका विषय सुना इस कारण स्नेहके वशीभुत होकर पिताके समीप जानेकी इच्छा की ॥२॥

संवत्सरके बीतनेपर राजकुमारने आदर सहित पिताको देखने और उनके समीप जानेके लिये इच्छा की है यह जानकर देवराज इंद्र वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ उन्होंने दयाके वशीभूत हो शीघ्र विप्ररूप धारणकर अनुकूल युक्तिसे उस जाते हुए कुमारको निवारण किया ॥४॥ इंद्रने कहा हे राजपुत्र ! तुम अत्यंत अज्ञानी हो विशेषकर अब भी कठिनतासे जानने योग्य राजनीतिको नहीं जान सके इसलिये अज्ञानके वशीभूत होकर अब पिताके समीप वृथा जानेको उद्यत हुए हो ॥५॥ हे महाभाग ! तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे पिता वेदपरायण ब्राह्मणोंसे

संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात् ॥ गंतुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह ॥ ३ ॥ वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः ॥ वारयामास युक्त्या वै कुमारं गंतुमुद्यतम् ॥ ४ ॥ इंद्र उवाच ॥ राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम् ॥ अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ ५ ॥ पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ ॥ ६ ॥ आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ तदर्थं वल्लभाः संति पुत्रदारधनादयः ॥ ७ ॥ आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम् ॥ हवनं कारयित्वाऽसौ रोगमुक्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वया न गंतव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे ॥ मृते पितरि गंतव्यं राज्यार्थं सर्वथा पुनः ॥ ९ ॥ एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः ॥ वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृप ॥ १० ॥

नरमेधयज्ञ करेंगे उसमें तुमको पशु बनाय तुम्हारे मांसकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति प्रदान करावेंगे ॥ ६ ॥ हे वत्स ! संपूर्ण प्राणियोंको आत्मा अत्यन्त प्रिय है इसी कारण आत्माके लिये स्त्री पुरुष और धन रत्नादि प्रिय होते हैं ॥ ७ ॥ अतएव तुम्हारे प्राणोंके समान पुत्र होनेपर भी वह रोगसे छूटनेके लिये अपनी रक्षार्थ तुमको मारकर होम करावेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ हे राजपुत्र ! तुमको इस समय पिताके घर जाना उचित नहीं है परंतु जब तुम्हारे पिता मरे तब तुम राज्यप्राप्तिके लिये अवश्यही फिर वहां जाओ ॥ ९ ॥ हे नृपवर ! इंद्रके इस प्रकार

निषेध करनेपर फिर राजपुत्रने एक वर्ष पर्यंत उस वनमें वास किया ॥ १० ॥ किंतु जब राजपुत्र राजा हरिश्चन्द्रके अत्यंत दुःखका विषय जानता तब अपना मरण निश्चयकर पिताके घर जानेकी इच्छा करता ॥११॥ अनन्तर सुरपति इंद्रभी तिसी समय द्विजरूप धारण कर राजपुत्र रोहितके समीप उपस्थित होते और युक्तियुक्त वचनोंसे उसको वारम्वार निषेध करते ॥ १२ ॥ इधर हरिश्चन्द्रने पीड़ासे अत्यन्त कातर हो अपने कुलपुरोहित वसिष्ठ देवसे पूंछा हे ब्रह्मन् ! इस रोगकी शांतिका निश्चय उपाय क्या है ? ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठदेवने उनसे कहा हे महाराज ! द्रव्यसे एक पुत्र क्रय कीजिये फिर उस खरीदे हुए पुत्रसे यज्ञ करनेपरही आप शापसे छूटेंगे ॥ १४ ॥ हे नृपसत्तम !

अत्यंतं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चंद्रं तदात्मजः ॥ गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः ॥११॥ तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम् ॥ निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः पुनः ॥१२॥ हरिश्चंद्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम् ॥ पप्रच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम ॥ क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम ॥ १५ ॥ वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति ॥ लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः ॥१६॥ एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना ॥ प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया ॥ १७ ॥ अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः ॥ तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः ॥ १८ ॥

वेदपरायण ब्राह्मणोंने कहा है कि पुत्र तेरह प्रकारके हैं उनमें क्रीत (खरीदाहुआ) भी पुत्र होता है अतएव मूल्यसे एक बालकको लाय उसको पुत्र कीजिये ॥ १५ ॥ तुम्हारे राज्यकाही कोई ब्राह्मण लोभके वशीभूत हो अपने पुत्रको देदेगा इससे वरुणदेव प्रसन्न हो अवश्यही सुखसम्पादन करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र महात्मा वशिष्ठके इसप्रकार वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए और उसी प्रकार पुत्र ढूँढनेके लिये अपने प्रधान मन्त्रीको आज्ञा दी ॥ १७ ॥ उन भूपतिके राज्यमें अजीगर्तनामक एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण वास करता था उसके तीन पुत्र

थे ॥ १८ ॥ मंत्रीने क्रय करनेकी इच्छा कर उस निर्धन ब्राह्मणसे कहा मैं आपको एकशत गौ देता हूं आप यज्ञके लिये एक पुत्रको दीजिये ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छ शुनःशेप और शुनोलांगूल नामक आपके जो तीन पुत्र हैं उनमेंसे एक पुत्र मुझको दीजिये मैंभी उसके बदलेमें तुमको एकशत गौ देता हूं ॥२०॥ अजीगर्त्त अन्नके अभावसे अत्यन्त कातर हुए थे इस कारण यह वचन सुनकर उनमेंसे एक पुत्रको बेचनेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ किन्तु ज्येष्ठ पुत्र और्ध्वदेहिक क्रियाका अधिकारी है यह जानकर उसको न दिया और कनिष्ठ पुत्रको माताने न दिया और कहा कि यह मेरा है ॥ २२ ॥ विशेषकर मध्यम पुत्र शुनःशेपको सौ गायोंके मूल्यमें बेचडाला नरपतिने उसको लाय नरमेध यज्ञके लिये

प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलद्विजः ॥ गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी ॥ तेषामकतमं देहि ददामि तु गवां शतम् ॥ २० ॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे ॥२१॥ कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम्॥ कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इति वादिनी ॥२२॥ मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च ॥ आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः॥२३॥रुदंतं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम् ॥ यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा ॥ २४ ॥ शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ शमिता नाददे शस्त्रं तमालंभयितुं शिशुम् ॥ २५ ॥ नाहं द्विजसुतं दीनं रुदंतं करुणं भृशम् ॥ हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ ॥ राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः ॥ २७ ॥

उसको पशु किया ॥ २३ ॥ वह बालक यूपकाष्ठमें बंधकर काँपनेलगा और दुःखसे कातर हो अत्यन्त दीनभावसे रोदन करने लगा यह देखकर मुनिलोग अत्यन्त कातर स्वरसे चीत्कारकर उठे ॥ २४ ॥ नरपतिने नरमेधयज्ञमें वध करनेके लिये उसको पशुरूपसे प्रदान किया शमिता पुरुषने उस पशुको छेदन करनेके लिये शस्त्रग्रहण न किया ॥२५॥ उसने कहा यह ब्राह्मणका पुत्र कातर होकर अत्यन्त करुणा स्वरसे रोदन करता है अतएव मैं लोभके वशीभूत होकर इसको कभी नहीं मारूंगा ॥ २६ ॥ यह कहकर उस दुष्कर कार्यसे विरत हुआ तब राजाने

सभासदोंसे कहा हे द्विजगण ! इस समय क्या करना चाहिये ॥ २७ ॥ तब शुनःशेप अत्यन्त अद्भुत करुणास्वरसे रोदन करने लगा और साधारण जन उस विषयको लेकर तुमुल आन्दोलन करने लगे इससे तत्काल उस सभामें अत्यन्त कोलाहल उठा ॥ २८ ॥ अनन्तर अजीगर्त्तने सभास्थलमें खडे होकर नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे राजन् ! आप धैर्यका अवलम्बन कीजिये मैं आपका कार्य सम्पादन करूंगा॥२९॥मैं धनका अभिलाषी हूं, इस कारण आप मुझको दुना धन दीजिये मैं अभी इस पशुका वध करता हूं आप शीघ्रही यज्ञ कार्य सम्पूर्ण कीजिये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष धनका लालची होता है उसकी सर्वदा पुत्रके प्रति भी द्वेषबुद्धि होजाती है इसमें फिर क्या सन्देह है व्यासजीने

जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा ॥ क्रंदमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम् ॥ २८ ॥ अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम् ॥ राजन्कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव ॥ २९ ॥ वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल ॥ कर्तव्यं मखकार्यं [illegible] मया तेऽद्य धनार्थिना ॥ ३० ॥ दुःखितस्य धनार्थस्य सदाऽसूया प्रसूयते ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चंद्रो [illegible]ऽन्वितः ॥ ३१ ॥ तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम् ॥ तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हंतुं समुद्यतः ॥ ३२ ॥ लोभेनाकुल [illegible] शामित्रे कृतनिश्चयः ॥ समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः ॥ ३३ ॥ चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः ॥ [illegible] महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः ॥ ३४ ॥

[illegible] अजीगर्तके इसप्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र परम आह्लादके सहित ॥ ३१ ॥ उससे कहने लगे मैं इस [illegible] देता हूं तब बालकका पिता राजाकी यह बात सुनतेही ॥ ३२ ॥ लोभके वशीभूत और [illegible] कृतनिश्चय हो पुत्रके मारनेमें उद्यत हुआ सभासद्गण उसको पुत्रके मारनेमें उद्यत देखकर ॥ ३३ ॥ [illegible] और हाय ! हाय ! कहकर विलाप करने लगे उन्होंने कहा यह कुलपांसन अपने पुत्रको मारनेमें उद्यत हुआ [illegible] और कभी भी ऐसा [illegible] महापापी नहीं देखा यह निश्चयही द्विजाकृति पिशाच होगा इसमें सन्देह नहीं रे

चाण्डाल ! तुझको धिक्कार है तैंने यह क्या पापकार्य करनेकी इच्छा की ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ सामान्य धनकी इच्छासे पुत्ररूपी रत्नकी हत्या करके तुझको क्या सुख प्राप्त होगा ? रे पापिष्ठ ! वेदमें कहा गया है कि आत्माही अङ्गसे पुत्र रूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण तैंने किसप्रकार उस आत्माके हनन करनेकी इच्छा की है ? सभास्थलमें इसप्रकार कोलाहल आरम्भ होनेपर कुशिकनन्दन ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र दयाके वशीभूत हो नरपतिके समीप आनकर उनसे कहन लगे. विश्वामित्र बोले हे राजेन्द्र ! शुनःशेष अत्यन्त कातर होकर रोदन करता है अतएव इसको छोड दो ॥ ३८ ॥ तो तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण और अवश्यही व्याधि नष्ट होगी दयाके समान पुण्य और हिंसाके समान

यत्स्वयं स्वसुतं हंतुमुद्यतः कुलपांसनः ॥ धिक्चांडाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम् ॥ ३५ ॥ हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति ॥ आत्मा व जायते पुत्र अंगाद्वै वेदभाषितम् ॥ ३६ ॥ तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हंतुमिच्छसि ॥ एवं कोलाहले तत्र जाते कौशिकनंदनः ॥ ३७ ॥ समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजन्मुंच शुनःशेपं रुदंतं भृशदुःखितम् ॥३८॥ क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा ॥ दयासमं नास्ति पुण्यं पाप हिंसासमं न हि ॥ ३९ ॥ रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय ॥ आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृंतनम् ॥४०॥ न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्टो येन केन च ॥४१॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु चिंतनीयं नृपोत्तम ॥४२॥

पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ तुम विचार करके देखो कि यज्ञादिपशुहिंसाकी जो विधि कही गई वह केवल विषयानुरागी मनुष्योंको प्रवृत्तिके लिये है किन्तु उससे निवृत्त होनाही उचित है हे महाराज ! जो मनुष्य सम्यक्प्रकार अपन मंगलकी कामना करता है उसको अपने देहकी रक्षाकरनेके लिये पराये देहको छेदन करना कभी कर्त्तव्य नहीं है जो मनुष्य सब जीवोंमें समान दया प्रकाश करता है और सामान्यवस्तु प्राप्त होने पर प्रसन्न होता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखता है जगदीश्वर उससे शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं हे नृपवर ! सम्पूर्ण जीवोंको

अपने ही समान देखे ॥ ४२ ॥ और सबका प्रिय होकर जीवनयात्रा व्यतीत करै इस ब्राह्मणके पुत्रका देह नष्ट करके तुमने अपने देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है ॥ ४३ ॥ अतएव यह ब्राह्मणका पुत्रभी अपने सुखके आस्पद देहके रक्षाकरनेकी क्यों इच्छा नहीं करेगा ? हे राजन् ! तुमने निरपराध ब्राह्मणके पुत्रको मारनेकी इच्छा की है किन्तु यह ब्राह्मणका पुत्र पूर्वजन्मकृत वैर कभी नहीं सहेगा यदि कोई मनुष्य शत्रुता न होनेपरभी अपनी इच्छानुसार किसीको मारे ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ तो वह मनुष्य दूसरे जन्ममें उस हन्ताका अवश्यही पुनर्वार संहार करता है इसमें संदेह नहीं इसके पिताकी धनके लोभसे मति भ्रष्ट हुई है इसकारण अपने पुत्रको अर्पण किया है ॥ ४६ ॥ अतएव वह ब्राह्मण

जीवितव्यं प्रियं नून सर्वेषां सर्वदा किल ॥ त्वमिच्छसि सुख कर्तुं देहे हत्वा त्वमुं द्विजम् ॥ ४३ ॥ कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम् ॥ पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सहते नृप ॥ ४४ ॥ येनामुं हंतुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम् ॥ योऽयं हंति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः ॥ ४५ ॥ हंतारं हंति तं प्राप्य जननं जननांतरे ॥ जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः ॥ ४६ ॥ स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः स दुर्मतिः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ ४७ ॥ यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत् ॥४८॥ षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुंक्ते न संशयः ॥ निषेधनीयो राज्ञा ऽसौ पापं कर्तुं समुद्यतः ॥ ४९ ॥ न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः ॥ ५० ॥

अत्यन्त क्रूरस्वभाव लोभी और पापाचारी है इसमें फिर क्या सन्देह है बहुत पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि, यदि कोई गयामें जाय ॥ ४७ ॥ अथवा यदि कोई अश्वमेध यज्ञ करै किंवा यदि कोई नीलवृषभ उत्सर्ग करै इस प्रकार विचारकर मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये और देखो देशमें जो कोई भी पापकर्म क्यों न करै ॥ ४८ ॥ राजा उस पापका छठाअंश भोगता है इसमें सन्देह नहीं अतएव मनुष्यके पापकर्म करनेमें प्रवृत्त होनेपर उसको निषेध करना राजाका अवश्य कर्तव्य है ॥ ४९ ॥ किंतु इस ब्राह्मणके पुत्र बेचनेमें उद्यत होने पर तुमने किसलिये इसको निषेध नहीं किया? हे राजन ! तुम त्रिशंकुकी सन्तान हो विशेषकर सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया है ॥ ५० ॥

इसकारण तुम आर्य होकरभी अनार्यके समान कार्य करनेकी किसप्रकार इच्छा करते हो? तुम मेरे वचन ग्रहणकर अत्यंत शीघ्र यदि इस ब्राह्मणके पुत्रको छोड दोगे ॥ ५१ ॥ तो तुम्हारे देहमें अवश्यही सुख होगा तुम्हारे पिता शापवश चाण्डालत्वको प्राप्त हुए थे ॥ ५२ ॥ किंतु उसी देहसे मैंने उनको स्वर्गमें भेज दिया यह तुम अवश्यही जानते हो अतएव हे राजन्! तुम उसी प्रीतिके अनुसार मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ ५३ ॥ यह बालक अत्यंतकातर हो दीनभावसे रोदन करता है अतएव इसको छोड दो तुम्हारे इस राजसूय यज्ञमें मैं यही प्रार्थना करता हूं ॥ ५४ ॥

आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव ॥ मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे ॥ ५१ ॥ तव देहे सुखं राजन्भविष्यत्यविचारणात् ॥ पिता ते शापयोगेन चांडालत्वमुपागतः ॥ ५२ ॥ मयाऽसौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल ॥ तेनैव प्रीतियोगेन कुरु मे वचनं नृप ॥ ५३ ॥ मुञ्चैनं बालकं दीनं रुदंतं भृशमातुरम् ॥ याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन्राजसूयके ॥ ५४ ॥ प्रार्थनाभंगजं दोषं कथं त्वं नाऽवबुध्यसे ॥ प्रार्थितं सर्वदा देयं यज्ञेऽस्मिन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः ॥ ५६ ॥ प्रत्युवाच महाराज कौशिकं मुनिसत्तमम् ॥ जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने ॥ ५७ ॥ तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक ॥ न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा ॥ ५८ ॥

किंतु इसे पूर्ण न करनेसे तुमको प्रार्थना भङ्गजनित पाप होगा अतएव तुम इसको हृदयमें क्यों नहीं धारणकरते ? हे नृपसत्तम! इस यज्ञमें जो जिसकी प्रार्थना करै वह अवश्यही उसको देनी चाहिये ॥ ५५ ॥ किंतु इसके अन्यथा करनेसे तुमको पाप होगा इसमें संदेह नहीं व्यासजीने कहा है महाराज ! कौशिकके इसप्रकार वचन सुनकर नरपति हरिश्चंद्र ॥ ५६ ॥ मुनिवर विश्वामित्रसे कहनेलगे हे गाधेय ! जलोदरकी पीडासे मैं महाक्लेश भोगता हूं ॥ ५७ ॥ अतएव इसको नहीं छोड़सकता इसकारण आप अन्य कुछ प्रार्थना कीजिये। हे कुशिकनन्दन ! मेरे इसकार्यमें

विघ्न करना आपको उचित नहीं है ॥ ५८ ॥ तब राजाकी यह बात सुनकर विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हुए और ब्राह्मणके पुत्रको अत्यंत कातर देखकर दुःखसहित संताप करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्र उस बालक शुनःशेपको अत्यंत कातरभावसे रोदन करता हुआ देख अतिदयार्द्रचित्त हो उसके समीप जायकर उससे कहने लगे ॥ १ ॥ हे वत्स मैं तुझको वरुणमंत्र प्रदान करता हूं तू इस मंत्रको मनही मनमें स्मरणकर और मेरे वचनानुसार इस मंत्रका जप करनेसे तेरा अवश्यही मंगल होगा ॥ २ ॥ शोकाकुल शुनःशेप विश्वमित्रका यह वचन सुन उनका कहा मंत्र मनही मनमें स्पष्टाक्षरसे जप

तच्छ्रुत्वा वचन राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपतः ॥ बभूव दुःखसंतप्तो वीक्ष्य दीन द्विजात्मजम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ रुदंतं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः ॥ शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम् ॥ १ ॥ मंत्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन् ॥ जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया ॥ २ ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः ॥ मंत्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृपबालके ॥४॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते ॥ ५ ॥ राजाऽतिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः ॥ बद्धांजलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम् ॥ ६ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवदेव कृपासिंधो पापात्माऽहं सुमंदधीः ॥ कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना ॥ ७ ॥

करने लगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! शुनःशेपके उस मंत्रको जपतेही कृपालुहृदय वरुणदेव उसकेप्रति प्रसन्न हो सहसा उसके सन्मुख आनकर प्रगट हुए ॥ ४ ॥ वरुणदेवको आया हुआ देखकर सम्पूर्ण सभामें बैठे हुए विस्मित हुए और उनको देख आनंदित होकर सभी उनका स्तव करने लगे ॥ ५ ॥ तब रोगातुर हरिश्चंद्र नरपतिभी अत्यंत विस्मित हो उनके दोनों चरणोंमें गिरे और हाथ जोड़ उनके पुरोवर्ती वरुणदेवका स्तव करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा हे देवदेव ! मैं अत्यंत पापात्मा हूं और मेरी बुद्धि नितान्त कलुषित है इस कारण मैं आपके निकट

अत्यंत अपराधी हुआ हूं हे दयामय ! इस समय आप कृपा करके इसदीनको पवित्र कीजिये ॥ ७ ॥ पुत्रके अभावसे मैं अत्यंत दुःखित था इस कारण पुत्रकामुक होकर आपके वचनमें अवहेला (तिरस्कार) किया है आप प्रभु हैं अतएव आपको निग्रह और अनुग्रहकी सामर्थ्य है इसकारण मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये विशेषतः आप विचार करके देखिये कि, जिसकी मति छिन्न हुई है उसका फिर अपराध क्या है ? अतएव दुर्मति पुरुषका अपराध आपको गिनना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ हे देवदेव ! जो मनुष्य याचक है वह दोष नहीं देखता मैं भी पुत्रका प्रार्थी हूं इस कारण कोई दोष नहीं विचारसका हे विभो ! नरकके भयसे डरकर ही मने आपको छला है ॥९॥ अपुत्रकी गति नहीं है विशेष

मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम् ॥ कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मते ॥८॥ अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया॥ वञ्चितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो ॥९॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च॥भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम् ॥१०॥ नाज्ञस्य दूषणं चिंत्यं नूनं ज्ञानवता विभो ॥ दुःखितोऽहं रुजाऽऽक्रांतो वंचितःस्वसुतेन ह ॥११॥ न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो॥वंचयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे॥१२॥प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः ॥ यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये ॥१३॥ दर्शनं तव संप्राप्य गतं दुःखं ममाद्भुतम्॥जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि सांप्रतम् ॥१४॥

कर उसकी कभी स्वर्ग गति नहीं होती, मैंने इस शास्त्रके वचनसे डरकर ही आपके वचनका अपमान किया है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आप ज्ञानवान् और मैं अज्ञानी हूं, विशेषकर दुर्द्धर्ष रोगकी यन्त्रणासे अत्यंत कातर और अपने पुत्र धनसे भी वञ्चित हूं इसकारण मेरा कुछ भी दोष विचारना आपको उचित नहीं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र कहां चला गया है, यह मैं नहीं जानता हे दयामय ! बोध होता है कि, वह मृत्युके भयसे डरकर और मुझे छलकर वनको चला गया है ॥ १२ ॥ जो हो मैं धनसे इस ब्राह्मणके बालकको मोल लाया हूं और आपको सन्तुष्ट करनेके लिये क्रीतपुत्र द्वारा यह यज्ञ आरम्भ किया है ॥ १३ ॥ हे देवदेव ! आपको देखतेही मेरा अत्यंत क्लेश दूर हुआ है इस समय आपके

प्रसन्न होनेसे मेरा जलोदर जनित सम्पूण दुःख दूर हो जायगा ॥१४॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उन रोगातुर, राजाके यह वचन सुनकर देवदेव वरुण कृपाके वशीभूत हो नरपतिसे कहने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! शुनःशेप अत्यंत कातर होकर मेरा स्तव करता है, इस कारण तुम इसको छोड़ दो और तुम्हारा यज्ञ भी सम्पूर्ण हुआ, अब तुम रोगसे भी मुक्त होओ ॥ १६ ॥ वरुणने यह बात कहकर सभासदोंके सामने ही राजाको रोगसे मुक्त किया, राजा भी तब सुन्दर देह और स्वस्थता प्राप्तकर उनके सन्मुख स्थिति करने लगे ॥ १७ ॥ वरुण देवकी कृपासे जब द्विजपुत्र पाशबंधनसे मुक्त हुआ तब उस यज्ञ सभास्थलमें जयशब्द उच्चारित होने लगा ॥ १८ ॥ राजा दारुण रोगसे तत्काल मुक्ति प्राप्त

व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च॥दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्॥१५॥वरुण उवाच ॥ मुंच राजञ्छुनःशेपं स्तुवंतं मां भृशातुरम् ॥ यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा ॥ चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम् ॥१७॥ विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना ॥ जयशब्दस्ततस्तत्र संजातो मखमंडपे ॥ १८ ॥ राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात् ॥ यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः ॥ १९ ॥ राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः ॥ शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृतांजलिः ॥ २० ॥ भोभोः सभ्याः सुधर्मज्ञा ब्रुवंतु धर्मनिर्णयम् ॥ वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल ॥ २१ ॥ पुत्रोऽहं कस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम् ॥ महतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम् ॥२२॥ इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम् ॥ सभ्या ऊचुः॥अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ ॥२३॥

कर संतुष्ट हुए और शुनःशेप भी यपसे मुक्तहो निरुद्वेग और स्वस्थ हुआ ॥१९॥ तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रके विनय सहित वह यज्ञ सम्पूर्ण होने पर फिर शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा ॥२०॥ हे सभ्यगण ! आप सम्पूर्ण ही सत्यवादी विशेपकर धर्मका यथार्थ मर्म जानते हैं इस कारण वेदशास्त्रानुसार धर्मका निश्चय वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञगण ! इस समय मैं किसका पुत्र हूं ? मेरे पूज्यतम अग्रगण्य पिता कौन हैं, सो आप बता दीजिये. आपके वचनानुसारही उनका आश्रम ग्रहण करूंगा ॥ २२ ॥ शुनःशेपके यह वचन कहनेपर फिर सभासद्लोग परस्पर

कहने लगे कि, यह बालक अजीगर्तका पुत्र है अब अन्य किसका पुत्र होगा ॥ २३ ॥ उस अजीगर्तके ही अङ्गप्रत्यङ्गसे यह बालक उत्पन्न
हुआ है उसी ब्राह्मणने इसको अपनी शक्तिके अनुसार उसका प्रतिपालन किया है अतएव यह बालक उसका ही पुत्र होगा.यही स्थिर सिद्धांत है॥२४॥
यह बात सुनकर वामदेवने उन सभासदोंसे कहा इसके पिताने धनके लोभसे इसको बेंचडाला है ॥ २५ ॥ राजाने द्रव्य देकर इसको मोल
लिया है अतएव यह बालक इस समय राजाका ही पुत्र होगा. अथवा यह बालक वरुण देवका पुत्र है क्योंकि उन्होंने इसको बंधनसे छुड़ाया है
॥२६॥ कारण कि, जो मनुष्य अन्न देकर प्रति पालन करता है वा जो भयसे रक्षा करता है अथवा जो धन देकर रक्षा करता है जो विद्या देता

अंगादंगात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः ॥ अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः ॥२४॥ तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच
सभासदः ॥ विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किलः ॥ २५ ॥ पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः ॥ अथवा वरुणस्यैष
पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै ॥ २६ ॥ अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः ॥ तथा वित्तप्रदश्चैव पंचैते पितरः स्मृताः ॥ २७ ॥
तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथापरे ॥ वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च ते ॥ २८ ॥ इत्थं संदेहमापन्ने
वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥ २९ ॥ शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसंमतम् ॥ निःस्नेहेन
यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः॥३०॥संबंधस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात्॥हरिश्चंद्रस्य संजातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च ॥३१॥

है और जो जन्म देता है यह पांच मनुष्य ही पितृपदवाच्य हैं ॥२७॥ हे महाराज ! तिस समय कोई अजीगर्तका कोई राजाका अथवा कोई
वरुण देवका पुत्र कहकर वादानुवाद करने लगे किंतु कोई इसका निर्णय न कर सके ॥२८॥ इस प्रकार संदेह उपस्थित होनेपर फिर सर्वजनोंके
समादृत सर्वज्ञानयुक्त वसिष्ठदेव उन विवाद करते हुए सभासदोंसे कहने लगे ॥२९॥ हे महाभागगणो ! इस विषयमें श्रुति सम्मत निर्णय कहता हूं
श्रवण करो पिताने पुत्रस्नेह त्यागकर जब बालक पुत्रको बेंच दिया ॥ ३० ॥ तब उसका संबन्ध भी दूर हो गया अनंतर यह बालक राजा हरि

श्चन्द्रका क्रीत पुत्र हुआ था इसमें संदेह नहीं॥३१॥किंतु जब राजाने इसको यूपमें बांधा तब यह राजाका पुत्र नहीं हो सकता परन्तु जब इस बालकने वरुण देवकी स्तुति की तब उन्होंने उससे संतुष्ट होकर इसको छुड़ा दिया॥३२॥इस कारण यह बालक वरुण देवका भी पुत्र नहीं हो सकता क्योंकि जो मनुष्य महामंत्रसे जिस देवताकी स्तुति करता है वह देव उसके प्रति संतुष्ट होकर ही उसको॥३३॥धन प्राण पशु राज्य और मुक्ति प्रदान करता है परन्तु अत्यंत संकटके समय वरुण देवका महावीर्य मंत्र देकर कुशिकनंदन विश्वामित्रने इस बाकलकी रक्षा की है इसलिये यह बालक

यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः ॥ वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः ॥ ३२ ॥ तस्मान्नायं महाभागा ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः ॥ योऽयं स्तौति महामंत्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च ॥ ३३ ॥ धनं प्राणान्पशून्राज्यं तथा मोक्षं किलेप्सितम् ॥ कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे यन रक्षितः ॥ ३४ ॥ मंत्रं दत्त्वा महावीर्यवरुणस्यातिसंकटे ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य बाढमूचुः सभासदः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा ॥ एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः ॥ ३६ ॥ शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः ॥ वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम् ॥ ३७ ॥ ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा ॥ राजाऽपि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदाऽन्वितः ॥ ३८ ॥ प्रजास्तु पालयामास सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ रोहिताख्यस्तु तच्छ्रुत्वा वृत्तांतं वरुणस्य ह ॥ ३९ ॥

उनका ही पुत्र होगा इसमें संदेह नहीं है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वसिष्ठके यह वचन सुनकर सभासदोंने उनके वचनमें अनुमोदन किया ॥३४॥३५॥ और विश्वामित्रने प्रेम पूर्ण, हो हे पुत्र ! मेरे घरको चलो यह कहकर उसका दक्षिण हाथ पकड़ लिया ॥३६॥ तब शुनःशेप भी शीघ्र उनके साथ चला गया इसी समय वरुण देव भी प्रीतिपरायण हो अपने घरको चले गये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विक् तथा सभासद् भी अपने अपने घरको चले गये राजा भी रोगसे मुक्ति प्राप्तकर अति आनंदित हो॥३८॥अत्यंत प्रसन्न चित्तसे राज्य पालन करने लगे. इसी समय राजाका पुत्र

रोहित भी वरुण देवका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुन ॥३९॥ प्रसन्न हो दुर्गम वन और पर्वतादि छोड घरको आया तब दूतोंने राजाके समीप जाय राजपुत्रके आनेका वृत्तान्त कहा ॥ ४० ॥ वह कोशलाधिपति पुत्रका आगमन सुन प्रेमसे परिपूर्ण और आनन्दित हो शीघ्र उसके संमुख आन कर उपस्थित हुए, रोहिताश्वभी पिताको आता हुआ देख॥४१॥प्रेमसे परिपूर्ण हो गया और चिरविरहजात शोकके आंसुओंसे मुख प्लावित कर दण्डके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राजाने इसको उठाय प्रसन्न हृदयसे आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥ और आनन्दसहित उसका मस्तक सूंघ कुशल वार्त्ता पूछी । इस प्रकार राजा जब पुत्रको गोदीमें लेकर पूँछते थे ॥ ४३ ॥ तब उसके दोनों नेत्रोंसे गरम आँसुओंकी धारा गिरने

आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्वनपर्वतात् ॥ दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम् ॥ ४० ॥ मुदितोऽसौ जगामाशु संमुखः कोसलाधिपः ॥ दृष्ट्वा पितरमायांतं प्रेमोद्रिक्तः सुसंभ्रमः ॥४१॥ दंडवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा ॥ राजाऽपि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदाऽन्वितः ॥ ४२ ॥ समाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥ उत्संगे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः ॥ ४३ ॥ उष्णनेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाऽकरोत् ॥ राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च ॥ ४४ ॥ वृत्तांतं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात् ॥ न राजसूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठं पूजयित्वाऽथ होतारमकरोद्विभुः ॥ समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः ॥ ४६ ॥ शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात् ॥ विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च संगतः ॥ ४७ ॥

लगती उससे कुमारका मस्तक भीग गया अनंतर राजा उस प्रियतम पुत्रके सहित राज्यशासन करने लगे ॥ ४४ ॥ तिस समय नृपसत्तमने नरमेधयज्ञका आनुपूर्विक वृत्तान्त विस्तारसहित पुत्रसे कहा इसके उपरान्त उन्होंने श्रेष्ठ राजसूययज्ञका अनुष्ठानकर ॥ ४५ ॥ वसिष्ठमुनिकी यथा विहित पूजा करके उनको उस यज्ञके होतृकार्यमें वरण किया. फिर उस श्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर राजाने बहुत धनसे वसिष्ठका अत्यन्त सन्मान किया ॥ ४६ ॥ अनन्तर एक समय वसिष्ठमुनि आदरसहित रमणीय इंद्रभवनमें गये, इसी समय विश्वामित्र भी उस स्थानमें जाय

वसिष्ठसे मिले ॥ ४७ ॥ तब वह दोनों महर्षि मिलित होकर सुरसदनमें विराजमान हुए परन्तु विश्वामित्र शचीपति इंद्रकी सभामें वसिष्ठको सम्मानित देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तद्वारा उनसे पूँछने लगे विश्वामित्र बोले हे ऋषिसत्तम ! आपने यह महती पूजा कहाँ पाई ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! आपकी यह पूजा किसने की है ? सो आप मुझसे सत्य कहिये.वसिष्ठने कहा हे मुनिवर ! हरिश्चन्द्र नामक एक प्रतापवान् नृपति मेरा यजमान है ॥ ५० ॥ उसी राजाने बहुत दक्षिणायुक्त राजसूययज्ञका अनुष्ठान किया इसके समान धृतव्रत सत्यवादी राजा अन्य नहीं है

मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदन मुनिसत्तम ॥ विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रति पूजितम् ॥४८॥ वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममांतिके ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चंद्रः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः ॥ नैदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः ॥ ५१ ॥ दाता च धर्मशीलश्च प्रजारंजनतत्परः ॥ तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनंदन ॥५२॥ " किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विज ॥ " हरिश्चंद्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ॥ सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः ॥५३॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः॥बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम् ॥५४॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम् ॥ वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः ॥५५॥

॥५१॥ वह धर्मशील दाता और प्रजाका पालन करनेमें तत्पर है हे कौशिकनन्दन ! उसी राजाके यज्ञमें मुझको यह पूजा प्राप्त हुई है॥५२॥ हे द्विजवर!आप मुझको सत्य कहनेका क्या अनुरोध करते हैं मैं पुनर्वार आपसे यथार्थ ही कहता हूं कि,राजा हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी वीर चतुर और परमधार्मिक राजा अन्य कोई नहीं हुआ और न कभी कोई होगा ॥५३॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अत्यन्त कोपनस्वभाव विश्वामित्र उनके इस प्रकार वचन सुन लाल लाल नेत्र कर उनसे कहने लगे ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र बोले हे वसिष्ठ ! हरिश्चन्द्रने प्रतिज्ञा करके वरुणदेवसे

वर प्राप्त किया इसके उपरांत उसने वरुणको ही कपटरूपी वचनोंसे छला था अतएव वह मिथ्यावादी और कपटप्रिय है तुम उसी राजाकी प्रशंसा करते हो ॥ ५५ ॥ हे महामते ! मैंने जन्मावधि तपस्या और अध्ययन करके जो पुण्य सञ्चय किया है और तुमने भी आजन्म अध्ययन और तपस्या करके जो पुण्य उपार्जन किया है इस समय उसका ही प्रण करो ॥५६॥ तुमने उस अदाता महाचल राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यंत स्तुति की है किंतु यदि मैं उसको शीघ्र ही मिथ्यावादी न करूं तो मेरा आजन्म सञ्चित सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो किंतु इसके अन्यथा होनेसे तुम्हारा समस्त पुण्य नष्ट होगा मैंने आज यही प्रण किया है ॥ ५७ ॥५८॥ तब वह परमक्रोधयुक्त दोनों मुनि परस्पर

मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च ॥ त्वदीयं वाऽतितपसो ग्लहं कुरु महामते ॥५६॥ अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यति संस्तुतम् ॥ असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम् ॥ ५७ ॥ आजन्मसंचितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु ॥ अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ॥ ५८ ॥ ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदंतौ मुनी तदा ॥ स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ ॥ ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ कदाचित्तु हरिश्चंद्रो मृगयार्थं वनं ययौ ॥ अपश्यद्रुदतीं बालां सुंदरीं चारुलोचनाम् ॥१॥ तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापरः ॥ पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने ॥२॥ केनाऽसि पीडिताऽत्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे ॥ का च त्वं विजने घोरे कस्ते भर्ता पिताऽथ वा ॥ ३ ॥

विवाद करते हुए इसप्रकार प्रणकर स्वर्गलोकसे अपने अपने घरको चले गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! एक समय राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाके लिये वनमें जाय इधर उधर भ्रमण करते करते देखा कि, एक चारुलोचन परमसुन्दरी रमणी रोदन करती है ॥ १ ॥ राजाने इसको देखकर करुणाके वशीभुत हो पूँछा हे वरानने ! तुम अकेली इस वनमें क्यों रोदन करती हो ? ॥ २ ॥ हे विशालाक्षी ! तुमको क्या किसीने क्लेश दिया है ? तुम्हारे दुःखका क्या कारण है सो

तुम मुझसे शीघ्र कहो तुम इस जनशून्य भयंकर वनमें क्यों आई हो तुम्हारे स्वामी और पिताका क्या नाम है ? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरि ! मेरे राज्यमें कभी कोई राक्षस पराई स्त्रीको क्लेश देनेमें समर्थ नहीं होता अतएव हे वरारोहे ! तुमको कौन कष्ट देता है मैं उसको अभी मारूंगा ॥ ४ ॥ हे कृशोदरि ! तुम सावधान हो अब रोदन मत करो, तुम्हारे दुःखका क्या विषय है सो मुझसे कहो. हे सुमध्यमे ! तुम निश्चय जानो कि, मेरे राज्यमें कोई पापिष्ठ मनुष्य नहीं रहता ॥ ५ ॥ नरपतिश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन वह सर्वाङ्ग सुन्दरी स्त्री दोनों हाथोंसे आँसू पोंछती हुई उनसे कहने लगी ॥ ६ ॥ नारी बोली हे राजेन्द्र ! मैं सिद्धिरूपिणी हूं मुझको प्राप्त करनेके लिये महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करते हैं

न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि परांगनाम् ॥ तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुंदरि बाधते ॥ ४ ॥ ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि ॥ विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे ॥ ५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम् ॥ प्रमृज्याऽश्रूणि वदनाद्धरिश्चंद्रं नृपोत्तमम् ॥६॥ नार्युवाच ॥ राजन्मां बाधतेऽत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः ॥ तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने ॥ ७ ॥ तेनाऽहं दुःखिता राजन्विषये तव सुव्रत ॥ विद्धि मां कामनां कांतां पीडितां मुनिना भृशम् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति ॥ तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम् ॥ ९ ॥ इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ ॥ नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः ॥ १० ॥ स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम् ॥ किमर्थं ते समारंभो ब्रूहि सत्यं महामते ॥ ११ ॥

[illegible] उन्हीं कौशिकसे मुझको यह क्लेश उपस्थित हुआ है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इसी कारण मैं आपके राज्यमें दुःखित रहती हूं हे सुव्रत ! [illegible] कोमलस्वभाव मनोहर स्त्री हूं तो भी वह मुनिवर मुझको अत्यन्त क्लेश देते हैं ॥ ८ ॥ राजाने कहा हे विशाललोचने ! अब तुमको दुःख [illegible]गना नहीं होगा तुम धैर्यावलम्बन करो मैं तपश्चर्यामें निरत उन मुनिवरको निवारण करता हूं ॥ ९ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस रमणीको [illegible]कार समझाकर शीघ्र मुनिवर विश्वामित्रके समीप गये और उनको प्रणामपूर्वक हाथ जोड़ उनसे कहने लगे ॥ १० ॥ हे महर्षे !

कठोर तपस्यामें निरत होकर किसलिये शरीरको पीडा देते हो ? हे महामते ! आप कौन महत्कार्य साधनके लिये इसप्रकार कठोर तपस्या करते हैं सो आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! आपकी जो इच्छा हो मैं उसको पूर्ण करूंगा, अब इसप्रकार कठोर तपस्या करनेका प्रयोजन नहीं है आप शीघ्र उठिये ॥ १२ ॥ हे महर्षे ? आप तो सभी जानते हैं अतएव आपसे और अधिक क्या कहूं देखो मेरे अधिकारमें रहकर मनुष्योंको पीडादायक दारुण घोर तपस्या करना कभी किसीको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको इस प्रकार निषेधकर अपने घरको चलेगये और मुनिवर कौशिकभी मनमें क्रोधित हो अपने आश्रमकी ओर चलेगये ॥ १४ ॥ अनन्तर विश्वामित्र

वांछितं तव गाधेय करोमि सफलं किल ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसाऽलमतः परम् ॥ १२ ॥ विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम् ॥ लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित् ॥ १३ ॥ इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ ॥ मनसा क्रोधमाधायागतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥ १४ ॥ स गत्वा चिंतयामास नृपकृत्यमसांप्रतम् ॥ वसिष्ठस्य च संवादं तपसः प्रतिषेधनम् ॥ १५ ॥ कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत् ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम् ॥ १६ ॥ प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम् ॥ सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम् ॥ १७ ॥ राज्ञश्चोपवने प्रात्रासयद्रक्षकांस्तदा ॥ मालतीनां च खंडानि कदंबानां तथैव च ॥ १८ ॥

आश्रममें जाय पहले इन्द्रभवनमें वसिष्ठकसहित राजा हरिश्चन्द्रके धार्मिकता विषयमें जो वादानुवाद हुआ था और राजा हरिश्चन्द्रने इससमय जो उनको अन्यायरूपसे तपस्या करनेमें निषेध किया उसीकी मनमें चिन्ता करने लगे.फलतः उन्होंने विचारा कि राजा हरिश्चन्द्र परमधार्मिक हैतो उसनें किसलिये मुझको तपस्या करनेमें निषेध किया और वसिष्ठने किसप्रकार इसकेलिये प्रण किया॥ १५॥जो हो विश्वामित्र मनमें क्रोधित हो उनसे बदला लेनेको उद्यतहुए तब उन्होंने मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ताकर भयंकर देहएक दानवको॥ १६॥शूकराकारकर राजा हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा उस विशाल-शरीरधारी महाबलवान् शूकरने भयंकरचीत्कार करते करते॥ १७॥ राजाके उपवनमें प्रवेश किया तब रक्षकलोग उसके घोरशब्दसे भीत

होगये वह शूकर वनमें प्रवेशकर कहीं मालतीवन कहीं कदम्बवन॥१८॥कहीं यूथिका लताके वन सम्पूर्णको वारंवार तोडने लगा कहीं दाँतसे भूमि खोदकर वृक्ष तोडता ॥१९॥ कभी चम्पक केतकी और मल्लिका चमेली इत्यादि पादपोंको जड़से उखाड़ने लगा कहीं सुन्दर कोमल उशीर (खस) करवीर॥२०॥मुचुकुंद अशोक बकुल और तिलक इत्यादि सम्पूर्ण वृक्षोंकी जडोंको खोदकर उस उपवनको छिन्नभिन्न करनेलगा ॥२१॥ तब वनकी रक्षा करनेवाले लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके ऊपर दौडे और मालीलोग अत्यंत कातर हो हाहाकार शब्दसे चीत्कार करनेलगे

यूथिकानां च वृंदानि कंपयंश्च मुहुर्मुहुः ॥ दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान् ॥ १९ ॥ चंपकान्केतकीखंडान्मल्लिकानां च पादपान् ॥ करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून् ॥ २० ॥ मुचुकुंदानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा ॥ उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने ॥ २१ ॥ वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः ॥ हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः ॥ २२ ॥ बाणैः संताड्यमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः ॥ रक्षकान्पीडयामास कोलः कालसमद्युतिः ॥२३॥ ते तदाऽतिभयाक्रांता राजानं शरणं ययुः ॥ तमूचुस्त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः ॥ २४ ॥ तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा ॥ पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवंतु समागताः ॥ २५ ॥ नाहं बिभेमि देवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः ॥ कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद् ब्रुवंतु ममाग्रतः ॥ ॥ २६ ॥ हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल ॥ यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ यह कालके समान शूकर वाणोंसे ताडित होकर भी जब नहीं डरा बरन् रक्षकलोगोंको पीडित करनेलगा ॥ २३ ॥ तब वह अत्यंत भीत और कातर हो राजाकी शरणागत हुए और कम्पायमान कलेवरसे हे महाराज ! रक्षा करो रक्षाकरो यह कहकर आर्तनाद करनेलगे ॥२४॥ तब भूपति उन भयार्त रक्षकोंको कातर देखकर पूँछने लगे तुम किसके भयसे इतने कातर होते हो सो तुम मुझसे सत्य कहो ॥२५॥ हे रक्षक वृन्द ! मैं देवता अथवा राक्षसोंकाभी भय नहीं करता, अतएव किस मनुष्यसे तुमको भय उत्पन्न हुआ है वह मुझसे कहो ॥ २६ ॥ जो पापमति

खल इस लोकमें मेराशत्रु होकर आया है मैं उस दुर्भाग्य शत्रुको एक बाणसेही यमसदनमें भेजूंगा इसमें संदेह नहीं है ॥ २७ ॥ उस शत्रुका रूप किसप्रकार है अथवा उसके बलका कितनापरिमाण है, और इस समय वह किस स्थानमें स्थिति करता है ? यह शीघ्र कहो. यह शत्रु देव हो अथवा दानव हो इससमय बाणोंसे उसका संहार करूंगा ॥ २८ ॥ मालियोंने कहा हे महाराज ! वह शूकर देव दानव यक्ष अथवा किन्नर नहीं है एक महाकायशूकरने वनमें आनकर प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ अत्यंत वेगवान् वह शूकर दाँतोंसे सम्पूर्ण शोभायमान पुष्प वृक्षोंको जडसहित उखाडता है अधिक क्या कहैं वह सब वनको छिन्नभिन्न करे डालता है ॥३०॥ हे महाराज ! हमने उसके बाण लाठी और पत्थरोंसे

देवो वा दानवो वाऽपि तन्निहन्मि शरैः शितैः ॥ क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः ॥ २८ ॥ मालाकारा ऊचुः ॥ न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः ॥ कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने ॥ २९ ॥ पुष्पवृक्षानतिमृदून्दंतेनोन्मूलयत्यसौ ॥ विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा ॥ ३० ॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा ॥ न बिभेति महाराज हंतुमस्मानुपाद्रवत् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः ॥ अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति ॥ ३२ ॥ सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः ॥ पदातिवृंदसहितः प्रययौ वनमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ तत्रा पश्यन्महाकोलं घुर्घुरंतं भयानकम् ॥ वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत् ॥ ३४ ॥ चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम् ॥ तं हंतुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत् ॥ ३५ ॥

बहुत प्रहार किया तथापि वह किसीसे न डरा बरन् वह हमको विनाश करनेके लिये दौडा ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके इसप्रकार वचन सुन राजा अत्यंत क्रोधित हुए और शीघ्र घोडेपर चढ उपवनकी ओर गये ॥ ३२ ॥ वह जिस समय उस उपवनको चले उस समय सादी सवार निषादी हाथीपर चढनेवाले रथी और पैदल संपूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली ॥ ३३ ॥ राजाने वहाँ जायकर घुंघुराते हुए भयंकर विशालकाय उस शूकरको देखा और वनकी भग्नावस्था देखकर अत्यंत क्रोधयुक्त हुए ॥ ३४ ॥ तब उन्होंने शरासन खैंच बाण

चढाय उस शूकरको मारनेके लिये आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ वह शूकर राजाको धनुषबाण धारणपूर्वक अत्यंत क्रोधसे भरे हुए आता देखकर घोर शब्द करते करते शीघ्र राजाकी ओर चला ॥ ३६ ॥ उस भीमकाय शूकरको मुँह फैलाये आता हुआ देखकर राजा उसके मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर शर वर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥ तब वह शूकर शीघ्र उन सम्पूर्ण बाणोंको निष्फलकर तत्काल अत्यन्त वेगसहित बलपूर्वक राजाको उलांघता हुआ निकला ॥ ३८ ॥ उसके चले जानेपर राजा क्रोधके वशीभूत हो अत्यन्त यत्नसहित धनुष खैंचकर बाण छोडनेलगे॥ ३९॥

समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाऽऽकुलम् ॥ संमुखोऽभ्यद्रवन्नूनं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम् ॥ ३६ ॥ तमायांतं समालोक्य वराहं विकृताननम् ॥ मुमोच विशिखं तस्मिन्हंतुकामो महीपतिः ॥ ३७ ॥ वंचयित्वाऽथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात् निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं तदा ॥ ३८ ॥ गच्छंतं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः ॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णां श्चापमाकृष्य यत्नतः ॥ ३९ ॥ क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः ॥ कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत् ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह ॥ अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम् ॥ ४१ ॥ इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनांतरम् ॥ एकाकी नृपतिः कोलं व्रजंतं समुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ मध्याह्नसमये राजा संप्राप्तो विजने वने ॥ तृषितः क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रांतवाहनः ॥ ४३ ॥ सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः ॥ ४४ ॥

तिस काल वह शूकर राजाको कभी दिखाई देता और कभी छिप जाता था और अनेक प्रकारका शब्द करता हुआ भागा ॥ ४० ॥ राजा हरिश्चन्द्रने भी अत्यन्त क्रोधित हो शरासन खैंच वायुके समान वेगशाली घोडेपर चढ़ उसके पीछे दौडे ॥ ४१ ॥ तब सम्पूर्ण सैन्यने इधर उधर वनमें प्रवेश किया राजा अकेले ही उस भागते हुए शूकरके पीछे पीछे दौडे ॥ ४२ ॥ मध्याह्न काल उपस्थित होनेपर राजा एक विजन वनमें पहुँचे तिस समय उनका वाहन थक गया था और वह भी भूंख प्याससे कातर हो गये थे ॥ ४३ ॥ शूकरके छिपजानेपर राजा घोर

निबिड वनमें मार्ग भूल दीन भावसे चिन्ता करने लगे ॥४४॥ उन्होंने मनमें विचारा कि, मैं क्या करूं और कहां जाऊं ? इस घोर वनमें मेरा कोई सहायक नहीं है विशेषकर जानेका मार्ग नहीं जानता इस समय कहां जाऊं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते राजाने उस जनशून्य वनमें सहसा एक स्वच्छ जलवाली नदी देखी ॥ ४६ ॥ उस नदीको देखकर राजा प्रसन्न हुए और फिर घोडेसे उतर स्वयं निर्मल जलपानकर घोडेको भी जल पिलाया ॥ ४७ ॥ वह नरपालक जलपान कर स्वस्थ हुए और तिसकाल दिग्भ्रमसे अत्यन्त मोहित होनेपर भी नगरके जानेकी इच्छा की ॥ ४८ ॥ इसी समय विश्वामित्र वृद्धब्राह्मणका रूप धारणपूर्वक वहां आनकर उपस्थित हुए। राजाने उन द्विजव

किं करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने ॥ अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिंतयत् ॥४५॥ एवं चिंतयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते ॥ राजा चिंतातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम् ॥ ४६ ॥ वीक्ष्य तां मुदितोराजा पाययित्वा तुरंगमम् ॥ अश्वा दुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः ॥ इयेष नगरं गंतुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः ॥४८॥ विश्वामित्रस्तु संप्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् ॥ ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम् ॥ ४९ ॥ तमुवाच गाधिराजः प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः ॥ ५० ॥ एकाकी विजने राजन्किं चिकीर्षितमत्र ते ॥ ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम ॥५१॥ राजोवाच ॥ सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम् ॥ समुपेत्य ममर्दाशु कोमला न्पुष्पपादपान् ॥ ५२ ॥ तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम् ॥ ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम ॥ ५३ ॥

रको देखकर भक्तिसहित प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ विप्रवेषधारी विश्वामित्रने उन प्रणाम करते हुए राजा हरिश्चन्द्रसे कहा हे महाराज ! आपका मंगल हो आप किस लिये इस स्थानमें आये हैं ॥ ५० ॥ हे महाराज ! इस विजनवनमें आपका क्या प्रयोजन है ? आप सावधान होकर मुझसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये ॥ ५१ ॥ राजाने कहा हे द्विजवर ! एक विशालकाय महाबलवान् शूकरने मेरे पुष्पवनमें प्रवेशकर कोमल सम्पूर्ण पुष्प पादपोंको एकवार ही तोड डाला है ॥ ५२ ॥ मैं उसी दुष्ट शूकरको निवारण करनेके लिये धनुष धारणकर सेनासहित नगरसे निकल

था ॥ ५३ ॥ वह वेगवान् पापिष्ठ मायावी शूकर मेरी दृष्टिसे छिपकर कहीं चला गया है मैं उसके पीछे पीछे दौड़ता हुआ इस स्थानमें आया हूं इस समय मेरी सेना कहाँ चली गई है यह मैं नहीं जानता ॥ ५४ ॥ हे मुनिवर ! मैं सैन्यहीन क्षुधित और तृषित होकर इस स्थानमें आया हूं मैं नगरका मार्ग नहीं जानता और सैनिक लोग किस मार्गको गये है यह भी मैं नहीं जानता ॥ ५५ ॥ हे विभो ! मेरे भाग्यसे ही आप इस विजन वनमें उपस्थित हुए हैं इस समय मैं नगरको जाऊंगा आप मार्ग बताइये ॥ ५६ ॥ मैं अयोध्याका अधिपति हरिश्चन्द्र हूं मैंने राजसूय यज्ञ किया है अतएव मुझसे जो जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं यह सब जानते हैं ॥ ५७ ॥

गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान् ॥ पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम ॥ ५४ ॥ क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्टस्त्विहागतः ॥ न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने ॥ ५५ ॥ पंथानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति ॥ ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने ॥ ५६ ॥ अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चंद्रोऽतिविश्रुतः ॥ राजसूयस्य कर्ता च वांछितार्थप्रदः सदा ॥ ५७ ॥ धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन्यज्ञार्थं द्विजसत्तम ॥ आगंतव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चंद्रं तदा नृपः ॥ १ ॥ राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम् ॥ स्नानं कुरु महाभाग पितॄणां तर्पणं तथा ॥२॥ कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते ॥ दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥ ३ ॥

हे द्विजवर ! आपकी यज्ञके लिये यदि धनकी इच्छा हो तो मेरे संग अयोध्याको चलिये फिर मैं आपको बहुत धन दूंगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! महर्षि कौशिकने नरपति हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन फिर हँसकर उनसे कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह तीर्थ अत्यन्त पवित्र है इसमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होकर पुण्य उदय होता है अतएव हे महाभाग ! आप इसमें स्नानकर पितृगणोंका तर्पण कीजिये ॥ २ ॥ हे नरनाथ ! इस समय अत्यन्त

पुण्यकाल उपस्थित है अतएव आप इस पवित्र पुण्यतीर्थमें स्नानकर अपनी शक्तिके अनुसार दान कीजिये ॥ ३ ॥ स्वायम्भुवमनुने कहा है जो पुरुष महापुण्यदायक तीर्थमें उपस्थित होकर स्नानदानादि विना किये जाता है वह मनुष्य आत्माकी वञ्चना करता है सुतरां वह आत्मघाती होता है इसमें सन्देह नहीं॥४॥अतएव हे राजन् ! आप अपनी शक्तिके अनुसार इस अत्युत्तमतीर्थमें पुण्यकार्य सम्पादन कीजिये इसके उपरान्त मैं आपको मार्ग बताऊंगा तभी आप अयोध्याको जायंगे ॥ ५ ॥ हे काकुत्स्थ ! फिर आपके दानसे परितुष्ट होकर मैं आपको मार्ग बतानेके लिये आपके संग चलूंगा यह स्थिर किया है ॥ ६ ॥ राजाने महर्षिके यह छलयुक्त वचन सुनकर अपने देहसे सम्पूर्ण वस्त्र उतारे और वृक्षमें घोडेको बांध

प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति ॥ स भवेदात्महा भूय इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्मात्तीर्थवरे राजन्कुरु पुण्यं स्वशक्तितः ॥ दर्शयिष्यामि मार्गं ते गंतासि नगरं ततः ॥ ५ ॥ आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ ॥ त्वया सहाऽद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमंडितम् ॥ वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम् ॥ ७ ॥ बंधयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः ॥ अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाऽभवत् ॥ ८ ॥ राजा स्नानविधिं कृत्वा संतर्प्य पितृदेवताः ॥ विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन्दानं ददामि ते ॥ ९ ॥ यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि सांप्रतम् ॥ गावो भूमिं हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम् ॥ १० ॥ नादेयं मे किमप्यस्ति कृतमेतद्व्रतं पुरा ॥ राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि ॥११॥ तस्मात्त्वमिह संप्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ यत्तेऽस्ति वांछितं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ १२ ॥

विधिपूर्वक स्नान करनेके लिये नदीकी ओर चले॥७॥ हे राजन् ! अवश्यम्भावि दैवयोगसे मुनिके वचनोंसे इतने मोहित हो गये थे कि तिस समय उनके एकबार ही वशीभूत होगये ॥ ८ ॥ फलतः उन्होंने यथाविधि स्नानकार्य समापनपूर्वक देव और पितरोंका तर्पणकर विश्वामित्रसे कहा हे स्वामिन् ! आपको दान करता हूं॥९॥ हे महाभाग ! गो भूमि स्वर्ण हाथी घोडे रथ अथवा वाहन इत्यादि आप जिस किसीकी इच्छा करें मैं इस समय वही आपको दूंगा ॥ १० ॥ जिसको मैं न देसकूं ऐसी कोई वस्तु नहीं है पहले जब मैंने श्रेष्ठ राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था तिससमय मुनियोंके सामने यह व्रत अवलम्बन किया है ॥ ११ ॥ अतएव हे मुनिवर ! आप भी इस प्रधान तीर्थोंमें उपस्थित हुए हैं इस

समय जो आपका अभिलषित है वह कहिये मैं आपको वांछित वस्तु प्रदान करता हूं ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन्! आपकी कीर्ति पृथ्वीतलमें अत्यंत फैली हुई है, विशेषकर आपके समान दाता पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं है मैंने पूर्वमें सुना है वसिष्ठमुनिने कहा है कि ॥ १३ ॥ त्रिशंकुके पुत्र सूर्यवंशीय महीपति हरिश्चंद्र ही इसपृथ्वीतलमें राजाओंके अग्रगण्य अद्वितीय और उदारस्वभाव हैं उनके समान दाता नरपति पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं हुआ और होगा भी नहीं. अतएव हे पार्थिव ! मेरे पुत्रका विवाह उपस्थित है इसलिये अब आपसे प्रार्थना करता हूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ आप उस पुत्रविवाहके लिये धन दीजिये राजाने कहा हे विप्रवर ! आप विवाहकार्य कीजिये मैं आपका प्रार्थित दान दूंगा

विश्वामित्र उवाच ॥ मया पूर्वं स्मृता राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि॥ वसिष्ठेन च संप्रोक्ता दाता नास्ति महीतले ॥ १३॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः ॥ तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥ १४ ॥ पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा ॥ अतस्त्वां प्रार्थयाम्यत्र विवाहो मेऽस्ति पार्थिव ॥ १५ ॥ पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् ॥ राजोवाच ॥ विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ॥ १६ ॥ यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः कौशिकस्तेन वंचनातत्परो मुनिः ॥ १७॥ उद्भाव्य मायां गांधर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत् ॥ कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी ॥ १८॥ एतयोः कार्यमप्यत्र कर्तव्यं नृपसत्तम ॥ राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः ॥ १९ ॥ भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ अधिक क्या आप जिस धनकी इच्छा करैं मैं वही आपको यथेष्ट प्रदान करूंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है। व्यासजीने कहा हे महाराज ! कौशिकमुनि उनके इसप्रकार वचन सुनतेही उनको छलनेके लिये तत्पर हुए ॥ १७ ॥ और गान्धर्वी माया प्रगटकर एक सुन्दराकृति कुमार और दशवर्षीय एक कन्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ और भूपालको उन्हें दिखाकर कहा हे नृपसत्तम ! अब इनका विवाहकार्य सम्पादन करना होगा हे महाराज ! गृहस्थका विवाह करनेपर राजसूययज्ञसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ अतएव ब्राह्मणके पुत्रका विवाह करनेसे कभी

आपको वह फल होगा. राजा उनकी मायासे मोहित हुए थे इस कारण यह वचन सुनते ही ॥ २० ॥ यही होगा एसा कहकर प्रतिज्ञा की परन्तु उसके विरुद्धमें सामान्यमात्र भी वचन न कहे अनंतर विश्वामित्रके मार्ग दिखलाने पर राजा नगरकी ओर चले ॥ २१ ॥ विश्वामित्रने भी राजाको छलकर अपने आश्रमको प्रस्थान किया इसके उपरांत नरपति अग्निशालामें उपस्थित हुए इसी समय विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो कहनेलगे हे राजन् विवाह विधि निष्पन्न हुई है ॥ २२ ॥ अतएव आप अब इस वेदीमें मेरा जो अभिलषित है वह दीजिये. राजाने कहा हे द्विजवर ! आपका वांछित क्या है सो कहिये ॥ २३ ॥ अब मैं यशका अभिलाषी हूं इसकारण संसारमें

तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा ॥ तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रतिजग्मिवान् ॥ २१ ॥ विश्वामित्रोऽपि राजानं वंचयित्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२ ॥ वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् ॥ राजोवाच ॥ किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वांछितं किल ॥ २३ ॥ अदेयमपि संसारे यशःकामोऽस्मि सांप्रतम् ॥ व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ॥ २४ ॥ नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम् ॥ २५ ॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ॥ व्यास उवाच ॥ मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ॥ २६ ॥ दत्तमित्युक्त्वान्राज्यमविचार्य यदृच्छया ॥ गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥ २७ ॥

मुझे जो अदेय है आप यदि उसकी भी प्रार्थना करें तो भी मैं वह आपको दूंगा. इसमें सन्देह नहीं. जो मनुष्य विभवका अधिकारी होकर भी ॥ २४ ॥ परलोकका सुखकर पवित्र यश उपार्जन नहीं करता उसका जीवन निष्फल है इसमें सन्देह नहीं. विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! आप इस पवित्र वेदीमें छत्र चामरादियुक्तऔर हाथी घोड़े रथ एवं पदातिसहित रत्नपरिपूर्ण राज्य इस वरको दीजिये. व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाराज हरिश्चंद्र उनकी मायासे मोहित होगये थे इसकारण मुनिके वचन सुनते ही ॥ २५ ॥ २६ ॥ विना विचारे अपनी इच्छानुसार उनसे कहा हे मुनिवर ! आपकी प्रार्थनासे मैं यह विशाल राज्य प्रदान करता हूं. तब अत्यंत निष्ठुर विश्वामित्रने

उनसे कहा हे राजेन्द्र मैंने भी ग्रहण किया ॥ २७ ॥ किंतु हे महामते ! आप इससमय दानके उपयुक्त दक्षिणा प्रदान कीजिये मनुने कहाहै कि विनादक्षिणाके दान निष्फल होता है ॥ २८ ॥ अतएव आप दानका फल प्राप्त करनेके लिये यथाविहित दक्षिणा दीजिये. राजा उनके इसप्रकार वचन सुनते ही अत्यंत विस्मित हो कहने लगे ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! अब आपको कितना धन देना होगा सो आप कहिये. हे साधो ! जितना दक्षिणाका मूल देनाहोगा सो आप कहिये ॥ ३० ॥ हे तपोधन ! आप व्याकुल न हूजिये मैं दान पूर्ण करनेके लिये वह आपको दूंगा इसमें सन्देह नहीं विश्वामित्र यह सुनकर महीपतिसे कहनेलगे ॥ ३१ ॥ सम्प्रति ढाईभार सुवर्णदक्षिणास्वरूप प्रदान कीजिये. हे महाराज !

दक्षिणां देहि राजेंद्र दानयोग्यां महामते ॥ दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥ २८ ॥ तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम् ॥ इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः॥२९॥ब्रूहि किं युद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन्मयाऽधुना ॥ दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद यावत्प्रमाणकम्॥३०॥दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन ॥ विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम्॥३१॥हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि सांप्रतम् ॥ दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाऽतिविस्मितः ॥३२॥ तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः॥ दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदाऽन्विताः॥३३॥व्यास उवाच॥श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभाशुभम्॥चिंतयन्स्वकृतं कर्म ययावंतः पुरे ततः ॥ ३४ ॥ किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् ॥ वंचितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥ ३५ ॥

तब राजा हरिश्चंद्रने अत्यंत विस्मित हो यही दूंगा ऐसा कहकर अंगीकार किया ॥ ३२ ॥ और चिंतित चित्तसे घोडेपर चढ़ शीघ्र जानेके लिये प्रस्थित हुए इसीसमय मार्ग भूले हुए सैनिक लोग उन्हें ढूँढते ढूँढते उनके समीप आनकर उपस्थित हुए तब वह महीपतिको देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उनको चिंतातुर देखकर व्यग्रभावसे उनका स्तवकरनेलगे ॥ ३३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके वचन सुनकर राजा हरिश्चंद्रने अच्छा वा बुरा कुछ भी न कहा परन्तु अपने किये हुए कार्यके विषयकी चिंता करते करते अंतःपुरमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ हाय ! मैंने किस दानके करनेको स्वीकार किया इस समय जो कि, सर्वस्वही समर्पणक्रिया वनमें चोरके समान इन द्विजवरसे मैं

इस विषयमें छला गया ! ॥३५॥ वस्त्र सहित सम्पूर्ण राज्य इनको दूंगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की है, अब उनका दक्षिणा स्वरूप ढाईभार सुवर्ण भी
देना होगा ॥ ३६ ॥ क्या करूं मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी इसलिये मैं मुनिकी कपटता नहीं जानसका इससे ही इस तपस्वी ब्राह्मणसे धोखा
खाया ॥३७॥ दैवका कार्य जानना साध्य नहीं है हा दैव ! इस समय मैं क्या करूं ? अत्यंत विह्वल हो इस प्रकार चिंता करते करते राजाने
अन्तःपुरके गृहमें प्रवेश किया ॥३८॥ तब रानी स्वामीको चिंतामें निमग्न देखकर उनसे चिंताका कारण पूँछने लगी. हे प्रभो ! आप क्यों विमन

राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः॥३६॥किं करोमि मतिभ्रंष्टो न ज्ञातं कपटं मुनेः ॥ प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥ ३७ ॥ न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति ॥ इति चिंतापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥ ३८ ॥ पतिं चिन्तापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम् ॥ किं प्रभो विमना भासि का चिंता ब्रूहि सांप्रतम् ॥३९॥ वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा ॥ कस्माच्छोचसि राजेंद्र शोकस्य कारणं वद ॥ ४० ॥ नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा ॥ वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ ४१ ॥ चिंतया क्षीयते देहो नास्ति चिंतासमा मृतिः ॥ त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ ४२ ॥

हुए हैं? सम्प्रति आपकी चिंताका क्या विषय है, सो आप कहिये ॥३९॥ हे राजेन्द्र! पुत्र वनसे गृहमें आ गया है पूर्वमें राजसूययज्ञ भी किया है
अतएव किस कारणसे शोक करते हो ? आप उस शोकका कारण कहिये॥४०॥आपका बलवान् वा दुर्बल कोई शत्रु कहीं भी विद्यमान् नहीं है केवल
वरुणही आपसे कुपित थे वहभी इस समय भलीभांति संतुष्टहुएहैं अतएवपृथ्वीतलमें आपका शेषकार्य कुछनहीं है॥४१॥हे नृपवर! चिंतामें देह दिन दिन
क्षीण होती है अतएव चिंताके समान मृत्युका कारण दूसरा कुछ नहीं है आप बुद्धिमान् हो इस कारण चिंताको त्यागकर सावधान हूजिये ॥४२॥

प्रियतमाके प्रीति सहित इस प्रकार वचन कहनेपर राजाने उसे सुन शुभाशुभ चिंताका कारण उससे यथाकथञ्चित् कठिनतासे कहा ॥ ४३ ॥ किंतु उन महाराजने चिंतामें निमग्न होकर भोजन न किया और शुभ्र शय्यापर शयन करके भी निद्रा प्राप्त न करसके ॥ ४४ ॥ फिर प्रातःकालके समय उठकर चिंतित चित्तसे जब संध्यादि कार्य संपादन कर रहे थे उसी समय उस स्थानमें विश्वामित्र आनकर उपस्थित हुए ॥ ४५ ॥ द्वारपालके मुनिकी आगमवार्त्ता निवेदन करनेपर राजाने उनको आनेकी अनुमति प्रदान की. अनन्तर वह सर्वस्वहारक विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो वारंवार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे ॥ ४६ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! आप अपना राज्य परित्याग

तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः ॥ प्रोवाच किंचिच्चिंतायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥ भोजनं न चकारासौ चिंताविष्टस्तथा नृपः ॥ सुप्त्वाऽपि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ ४४ ॥ प्रातरुत्थाय चिंतार्तो यावत्संध्यादिकाः क्रियाः ॥ करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ ४५ ॥ क्षत्त्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः ॥ आगत्योवाच राजानं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजंस्त्यजस्व राज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ सुवर्णं स्पृश राजेंद्र सत्यवाग्भव सांप्रतम् ॥ ४७ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ स्वामिन्राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना ॥ त्यक्त्वाऽन्यत्र गमिष्यामि मा चिंतां कुरु कौशिक ॥ ४८ ॥ सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन्गृहीतं विधिवद्विभो ॥ सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तो ह्यधुना द्विज ॥ ४९ ॥ दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः ॥ पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ॥ ५० ॥

कीजिये और मुझको जो सुवर्ण दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा की है वह देकर इस समय यथार्थ ही सत्यवादी हूजिये ॥ ४७ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे प्रभो ! मैंने आपको अपना विशाल राज्य प्रदान किया है अतएव मेरा राज्य आपका ही हुआ है इस कारण मैं इस राज्यको परित्यागकर अन्य किसी स्थानमें जाता हूं हे कौशिक ! आप इस विषयमें कुछ भी चिंता न कीजिये ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने विधिके अनुसार ही मेरा सर्वस्व ग्रहण किया है अतएव मैं इस समय दक्षिणा देनेमें अत्यंत असमर्थ हूं ॥ ४९ ॥ यदि कालवश फिर मुझको धन प्राप्त हो तो तत्काल आपका

दक्षिणा दूंगा ॥ ५० ॥ नरपति हरिश्चन्द्र उनसे यह बात कह शैव्यानाम्नी भार्या और पुत्र रोहितसे कहने लगे मैंने अग्निहोत्र शालामें यह विस्तीर्ण राज्य इनको दान किया है ॥ ५१ ॥ हाथी घोडे रथ स्वर्ण और रत्नराजीके सहित सम्पूर्ण राज्य प्रदान किया है अधिक क्या हमारे तीन शरीरोंके अतिरिक्त समस्तही इनको समर्पण किया है ॥५२॥ यह महर्षिवर सर्वसमृद्धि सम्पन्न इस राज्यको भलीभाँति ग्रहण करैं हम अयोध्याको छोड किसी वन अथवा पर्वतकी गुफामें जायँगे ॥ ५३ ॥ अत्यंत धर्मिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रसे यह बात कह और उन द्विजवरका संमान कर अपने घरसे निकले ॥ ५४ ॥ तब भूपतिको जाता हुआ देखकर उनकी भार्या और पुत्र चिंतासे कातर हो अत्यंत मलिन मुखसे

इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् ॥ राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरे ॥५१॥ हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् ॥ त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ॥ ५२ ॥ त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे ॥ गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चंद्रः स्वमंदिरात् ॥ विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ५४ ॥ व्रजंतं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि ॥ चिंतातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ॥५५॥ हाहाकारो महा नासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा ॥ चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ॥५६॥ हा राजन्किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः ॥ वंचितोऽसि महाराज विधिनाऽपंडितेन ह ॥ ५७ ॥ सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम् ॥ विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ॥ ५८ ॥ निनिंदुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः ॥ धूर्तोऽयमिति भाषंतो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः ॥ ५९ ॥

उनके पीछे पीछे चले ॥ ५५ ॥ अयोध्यावासी सम्पूर्ण प्राणी उनको देखकर रोने लगे तिसकाल नगरमें केवल घोर हाहाकार ध्वनि होने लगी ॥ ५६ ॥ हा राजन् ! आपने क्या कार्य किया ? कहांसे आपको यह क्लेश उपस्थित हुआ हे महाराज ! गुणदोष न जाननेवाले विधिने आपको छला है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णही उन महीपतिको भार्या और महानुभाव पुत्रके सहित जाता हुआ देखकर दुःखप्रकाश करने लगे ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इत्यादि सम्पूर्ण पुरवासी लोग दुःखार्त्त हो उस व्यक्तिको धूर्त्त इत्यादि कटुवाक्य

कह उस दुराचारी ब्राह्मणकी निन्दा करने लगे ॥ ५९ ॥ पृथ्वीपति उस नगरसे निकलकर जाते थे इसी समय विश्वामित्र उनके निकट उपस्थित हो उनसे निष्ठुर वचन कहने लगे ॥६०॥ हे नरनाथ ? दक्षिणाका स्वर्ण देकर जाओ अथवा नहीं दूंगा यह बात कहो तो मैं दक्षिणाका स्वर्ण छोड़ दूं ॥ ६१ ॥ यदि आपके अन्तःकरणमें लोभ विद्यमान हो तो सम्पूर्ण राज्यग्रहण करो हे राजन् ! आपने यदि यथार्थ ही दान किया है यह जानते हो तो आपने जो प्रतिज्ञा की है वह दीजिये ॥ ६२ ॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र इस प्रकार कह रहे थे इसी समय महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दीन भावसे प्रणामकर हाथ जोड उनसे कहने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवी

निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् ॥ गच्छंतं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः ॥ ६० ॥ दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप ॥ नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥६१॥ राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धृदि वर्तते ॥ दत्तं चेन्मन्यसे राजन्देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ६२ ॥ एवं ब्रुवंतं गाधेयं हरिश्चंद्रो महीपतिः ॥ प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृतांजलिपुटोऽब्रवीत् ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् ॥ प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥ १ ॥ सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वाञ्छितदो नृषु ॥ २ ॥ कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया ॥ अवश्यमेव दातव्यमृणं मे द्विजसत्तम ॥ ३ ॥

भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे मुनिवर ! आपको दक्षिणाका स्वर्ण विना दिये मैं भोजन नहीं करूंगा यही मेरी प्रतिज्ञा जानिये अतएव हे सुव्रत ! आप दक्षिणाके लिये विषाद त्याग कीजिये ॥ १ ॥ मैं सूर्यवंशीय क्षत्रिय महीपति हरिश्चन्द्र हूं विशेषकर जबसे मैंने राजसूय यज्ञसम्पादन किया है तबसे जो मनुष्य मेरे निकट जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं ॥ २ ॥ अतएव हे प्रभो ! मैं अपनी इच्छानुसार दान करके उसकी दक्षिणा न दूं यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? हे

द्विजसत्तम ! मैं अवश्यही ऋण चुका दूंगा ॥ ३ ॥ आपकी इच्छानुसार स्वर्ण अवश्यही दूंगा अतएव आप सावधान हूजिये किंतु आप एक महीनेतक प्रतीक्षा कीजिये तो मैं धन प्राप्त करके आपको दे सकूंगा ॥४॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! राज्य कोष और बल इनसे ही धनका आगमन होता है आपसे वह सम्पूर्ण गया इस कारण फिर आपको धन कहांसे प्राप्त होगा ? ॥ ५ ॥ हे महीपाल ! धनकी आशा करना आपको वृथा है इस समय मैं क्या करूं ? आप निर्धन हैं अतएव मैं लोभके वशीभूत हो आपको किस प्रकार पीडित करूं ? ॥ ६ ॥ हे भूपाल ! आप " धन नहीं दे सकता " यह बात कहें तो मैं इस महती आशाको छोडकर इच्छानुसार जाऊं ॥ ७ ॥ और आप भी "मेरे पास कुछ स्वर्ण

स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् ॥ कंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥ ४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतस्ते भविता राजन्धनप्राप्तिरतः परम् ॥ गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवाथ साधनम् ॥ ५ ॥ वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थं किं करोम्यहम् ॥ निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप ॥ ६ ॥ तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् ॥ त्यक्त्वा ऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ७ ॥ यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसन्वितः ॥ सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ गच्छन्वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः ॥ प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन्धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥९॥ मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः ॥ क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥ १० ॥ ग्राहकं पश्य विप्रेंद्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ॥ दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥ ११ ॥

नहीं है मैं आपको इस समय क्या दूं " यह बात कहकर भार्या और पुत्रके सहित इच्छानुसार जाइये ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज भूपतिने गमन कालके समय मुनिवर विश्वामित्रके इसप्रकार वचन सुनकर कहा ब्रह्मन् ! आप धैर्य अवलम्बन कीजिये मैं आपको दक्षिणाका स्वर्ण दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥९॥ हे द्विजवर ! भार्या पुत्र और मैं इन तीन जनोंकाही निरोग देह विद्यमान है सुतरां इनको बेंचकर अवश्यही आपका ऋण चुकाऊंगा ॥ १० ॥ हे विभो ! इस वाराणसी पुरीमें कोई ग्राहक विद्यमान है अथवा नहीं उसको ढूंढवाइये मैं इसी स्थानमें

भार्या और पुत्रके सहित दासत्व स्वीकार करूंगा ॥११॥ हे मुने ! आप हम सबको बेंच उस मूल्यसे ढाईभार सुवर्ण ग्रहणकर हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥ राजाने यह बात कह जिस स्थानमें शंकर प्रियतमा उमाके सहित स्वयं स्थिति करते हैं उसी वाराणसी पुरीको भार्या और पुत्रके सहित प्रस्थान किया ॥ १३ ॥ जिस पुरीके दर्शन करनेसे चित्तको आनन्द बढता है उस शोभायमान वाराणसी नगरीको देखकर राजाने कहा आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ १४ ॥ अनन्तर भागीरथीके तटपर जाय उसी स्थानमें स्नान किया फिर देवता और पितरोंका तर्पण एवं अभीष्ट देवताकी पूजा सम्पादन कर जानेका मार्ग देखनेकी इच्छासे चारों ओर देखने लगे ॥ १५ ॥ भूपाल शोभायमान वाराणसी

गृहाण कांचनं पूर्णं सार्धभारद्वयं मुने ॥ मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥ १२ ॥ इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्वितः ॥ उमया कांतया सार्धं यत्रास्ते शंकरः स्वयम् ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसोह्लादकारिणीम् ॥ उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥ १४ ॥ ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम् ॥ देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान्दिग्विलोकनम् ॥ १५ ॥ प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ॥ नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः ॥१६॥ जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः ॥ पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥ १७ ॥ ददृशेऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥ १८ ॥ प्राह चैवांजलिं कृत्वा हरिश्चंद्रो महामुनिम् ॥ इमे प्राणाः सुतश्चायं प्रिया पत्नी मुने मम ॥ १९ ।

पुरीमें पहुँचकर मनमें विचार करने लगे कि यह पुरी मनुष्यसे पालित नहीं है स्वयं शूलपाणि इसका पालन करते हैं अतएव इसमें वास करनेसे मेरा प्रदत्त राज्यमें वास करना नहीं होगा॥१६॥ तब नरपति दुःखसे अत्यन्त कातर और अतिव्याकुल हो भार्या और पुत्रके सहित पैदलही वाराणसी पुरीमें गये और नगरीमें प्रवेशकर उसमें विश्वास स्थापन किया॥१७॥ इसी समय उन्होंने उन दक्षिणार्थी मुनिवरको देखा और उनको आता देख विनीत भावसे प्रणामकर॥१८॥ हाथ जोड उनसे कहा हे मुनिवर ! यह मेरी प्रियतमा भार्या और यह मेरा पुत्र एवं यह मेरा

जीवन विद्यमान है॥१९॥ हे द्विजवर! इनमेंसे जिसके द्वारा आपका कार्य सम्पन्न हो उसको ही ग्रहण कीजिये अथवा अन्य जो कोईकार्य हमको करना होगा वह आप हमसे कहिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपने " मासके अन्तमें दक्षिणा दूंगा " यह कहकर प्रतिज्ञा की है किंतु वह एक मास अब पूर्ण हुआ यदि आपको अपना वचन स्मरण हो तो मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ २१ ॥ राजाने कहा हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानवान् और तपोबलयुक्त हैं अतएव आपके वचनमें मुझको द्विरुक्ति करना कभी उचित नहीं है किंतु अभी महीना पूर्ण नहीं हुआ आधा दिन अभी बाकी है आप उसीकी प्रतीक्षा कीजिये अब कछु बिलम्ब न करूंगा ॥ २२ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! यही हो मैं फिर आऊंगा

येन ते कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम ॥ यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाऽऽख्यातुमर्हसि ॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा ॥ पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्नाद्यापि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल ॥ तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम् ॥ २२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ॥ शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ २४ ॥ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थः सांप्रतं मम ॥ प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याञ्चा कथं भवेत् ॥ २५ ॥ राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ॥ यदि प्राणान्विमुंचामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः ॥ २७ ॥

यदि तब भी दक्षिणाका सुवर्ण न दिया तो मैं तुमको शाप दूंगा ॥२३॥ विश्वामित्रके यह कहकर चले जानेपर राजाभी मनमें चिंता करने लगे कि दक्षिणाके विषयमें जो प्रतिज्ञा की है वह इनको किस प्रकार दूंगा॥२४॥ इस काशीमें मेरे मित्रभी नहीं हैं जो उनसे धन लूं तो इस समय धन कहां पाऊं मैं क्षत्रिय हूं मुझको दान लेनाभी निषिद्ध है अतएव वह किस प्रकार कर सकता हूं॥२५॥ धर्मशास्त्रके अनुसार यजन अध्ययन और दान यह तीन वृत्तिही राजाओंको विहित हैं और यदि ब्राह्मणको दक्षिणा न देकर प्राणत्याग करूं ॥२६॥ तो ब्राह्मणस्वहरण निबन्धनके कारण पापी होकर

क्रमि हूंगा अथवा नीच होकर प्रेतयोनिको प्राप्त हूंगा अतएव इसकी अपेक्षा आत्म विक्रय करना ही मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं ॥२७॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! राजाको व्याकुल दीनभा वसे नीचेको मुख किये चिन्ता करता हुआ देखकर उस स्त्रीने बाष्पगद्गद स्वरसे कहा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! आप चिन्ता त्यागकर सत्यरूप अपना धर्मपालन करो क्योंकि जो मनुष्य सत्य धर्मसे च्युत होते हैं वह प्रेतके समान वर्ज्जनीय हैं ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपने सत्यका पालन करना ही पुरुषका धर्म है, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है बुद्धिमानोंने यही कीर्त्तन किया है ॥ ३० ॥ जिसका वचन असत्य होता है उसकी अग्निहोत्र अध्ययन और दानादि सम्पूर्ण क्रिया विफल हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

सूत उवाच ॥ राजानं व्याकुलं दीनं चिंतयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २८ ॥ त्यज चिंतां महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ नातः परतरं धर्मं वदंति पुरुषस्य च ॥ यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ भवंति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥ ३१ ॥ सत्यमत्यंतमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ॥ तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ शताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिवः ॥ कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः ॥ उच्यतां वक्तुकामाऽसि यद्वाक्यं गजगामिनि ॥ ३४ ॥

धर्मशास्त्रमें सत्य अत्यन्त प्रशंसनीय है और वह सत्य ही पुण्यात्मा मनुष्योंको उद्धार करता है, और असत्य पापिष्ठ मनुष्यको नरकमें डालता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ महीपति ययाति अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके ही स्वर्गको गये थे, किन्तु केवल एकवार मिथ्या बात कहनेसे स्वर्गसे च्युत हुए थे ॥३३॥ राजाने कहा हे गजगामिनि ! तुम दक्षिणा देनेके लिये मुझको समझाती हो किन्तु मेरे पास कुछ नहीं है केवल भार्या और पुत्र शेष हैं उनमें पुत्र वंशको बढ़ानेवाला है इस कारण उसका प्रदान करना शास्त्रमें निषिद्ध है और भार्याको भी नहीं बेचना

चाहिये किन्तु इस समय तुम जो कहनेकी इच्छा करती हो वह कहो ॥ ३४ ॥ महिषीने कहा हे राजन् ! पुत्रके लिये ही पुरुष स्त्रीपरिग्रह करते हैं मेरे पुत्र हो जानेसे आपका वह प्रयोजन सिद्ध हो गया अतएव धनग्रहण पूर्वक मुझको बेंचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिये तो आपका वचन मिथ्या नहीं होगा ॥३५॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! महीपति यह वचन सुनकर मोहको प्राप्त हुए फिर चैतन्य हो अत्यन्तदुःखित अन्तःकरणसे विलाप करने लगे ॥३६॥ हे भद्रे ! तुमने जो मुझे ऐसे वचन कहे इनसे मुझको अत्यन्त दुःख उपस्थित हुआ है मैं क्या ऐसा पापिष्ठ हूं कि तुम्हारे वह हास्ययुक्त सम्पूर्ण वचन एकबार ही भूलगया ? ॥ ३७ ॥ हे शुचिस्मिते ! ऐसे वचन कहना तुमको उचित नहीं है हे सुन्दरी !

पत्न्युवाच ॥ राजन्मा भूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः ॥ तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ॥ प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥ ३६ ॥ महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे ॥ किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥३७॥ हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥३८॥ इत्युक्त्वा नृपतिः श्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये ॥ निपपात महीपृष्ठे मूर्छयाऽतिपरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयाऽपि महीपतिम् ॥ उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥ ४० ॥ हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् ॥ यस्त्वं निपातितो भूमौ रंकवच्छरणोचितः ॥ ४१ ॥ येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् ॥ स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥ ४२ ॥

यह न कहने योग्य वचन तुमने मुझसे किस प्रकार कहे ॥ ३८ ॥ यह कहकर वह नृपश्रेष्ठ स्त्रीके बेचनेकी बातसे अधीर और मूर्च्छासे अत्यन्त अभिभूत हो पृथ्वीपर गिरपडे ॥३९॥ जब महीपति मूर्च्छासे पृथ्वीपर गिर पडे तब राजपत्नीने उनको देख अत्यन्तदुःखित हो अतिकरुणा वचनद्वारा उनसे कहा ॥ ४० ॥ हे महाराज ! किसका बुरा विचारनेकी इच्छासे आपको यह दुर्घटना उपस्थित हुई हाय ! आस्तरणमण्डित गृहमें शयन करना जिनको उचित है वह आज नीचके समान भूशय्यापर शयन कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ पूर्वमें जो पृथ्वीनाथ ब्राह्मणोंको करोड़

करोड़ मुद्रा दान करते थे आज मेरे पति वह भूपति पृथ्वीमें गिरपड़े हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! क्या कष्ट है ! हा दैव ! इन महीपालने तुम्हारा क्या किया है जो इन्द्र और उपेन्द्रके समान राजाको इस दुरवस्थामें डाला है ॥ ४३ ॥ वह सुश्रोणी राजपत्नी यह बात कहकर अत्यन्त असह्य स्वामीके दुःखभारसे अति सन्तप्त और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपडी॥४४॥तब शिशु राजपुत्र पिता और माताको मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित और क्षुधातुर हो हे पितः ! हे पितः ! मुझको अत्यन्त भूंख लगी है मुझको अन्न दीजिये ॥ ४५ ॥ हे मातः ! मेरी जिह्वा अत्यन्त सूखी जाती है मुझको भोजनकी सामग्री प्रदान करो यह कहकर वारंवार रोदन करने लगा

हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतःपापामिमां दशाम् ॥४३॥ इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह॥भर्तुर्दुःखमोहभारेणासह्येनातिपीडिता॥४४॥शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाऽऽविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः॥तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम् ॥ ४५ ॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति ॥ इति श्रीदे०भा०म०स०हरिश्चंद्रोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ॥अंतकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं त्वदा ॥१॥ तमालोक्य हरिश्चंद्रः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेंद्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्द्धते ॥३॥ आप्यायमानःस तदा हिमशीतेन वारिणा॥अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥४॥

॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसी अवसरमें अत्यन्त तपःप्रभावयुक्त विश्वामित्र अपना धन मांगनेके लिये अन्तकके समान कुपित हो वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ॥ १ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उनको देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़े तब विश्वामित्रने उनके अंगमें जल सेचन करते करते कहा ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य ऋणजालमें बँधा है उसको दिन दिन कष्ट बढ़ता है अतएव आप उठकर अपनी अंगीकार कीहुई दक्षिणा दीजिये॥३॥ यद्यपि राजा तुषार शीतलजलसेचनसे चैतन्यताको प्राप्त हुए किंतु विश्वामित्रको देखते ही ॥ ४ ॥

फिर मोहको प्राप्त हुए द्विजवर विश्वामित्र यह देखकर राजाको समझाय कोपके वशीभूत हो कहने लगे ॥ ५ ॥ मुनिवर बोले हे महाराज ! यदि आप धैर्यके रक्षा करनेकी इच्छा करते हैं तो मुझको दक्षिणा दीजिये देखो सत्यके बलसेही सूर्य प्रकाशप्रदान करते हैं सत्यसेही पृथ्वी स्थित है ॥६॥अधिक क्या स्वर्ग भी सत्यमें ही प्रतिष्ठित रहता है अतएव सत्यकोही परमधर्ममें विराजमान जानना चाहिये सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल और सत्य यदि तराजूमें रक्खा जाय ॥ ७ ॥ तो सहस्र अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा केवल सत्यकाही गुरुत्व अधिक होता है अथवा ऐसा कहनेका मेरा

पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः ॥ समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे ॥ सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥ ६ ॥ सत्ये प्रोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ॥ अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥८॥ मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि ॥ अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम् ॥९॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ दुःखीभूतोऽवने निःस्वो नृशंसमुनिनाऽर्दितः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥११॥ ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयांतं तापसं स्थितम् ॥ उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥ १२ ॥

कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! यदि आप दक्षिणा न देंगे तो सूर्यास्त होनेपर ही मैं तुमको शाप दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ विश्वामित्र यह बात कहकर चलेगये और राजा भी अत्यन्त भयातुर हुए यद्यपि वह धनहीन नरपति विश्वामित्रके नृशंस वचनोंसे पीडित हुए किन्तु दक्षिणा देकर किसप्रकार सत्यकी रक्षा करें उसकी चिन्तासे कातर हुए ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! इसी समय कोई वेदपारग ब्राह्मणोंके सहित अपने गृहसे उस स्थानमें आया ॥ ११ ॥ तब रानी उस समागत तपस्वीको समीप देखकर राजासे

धर्म और अर्थ संगत वचन कहने लगी ॥ १२ ॥ हे स्वामिन् ! ब्राह्मण अपर तीन वर्णोंके पिता कहे गये हैं, अतएव पिताका द्रव्य पुत्र अवश्य ग्रहणकर सकता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरा अभिप्राय यह है कि आप इस ब्राह्मणसे धन मांगिये राजाने कहा हे सुमध्यमे मैं क्षत्रिय हूं इससे प्रतिग्रह न करूंगा ॥ १४ ॥ हे कृशोदरि ! मांगना ब्राह्मणोंके पक्षमें विहित है क्षत्रियोंके पक्षमें वह निषिद्ध है ब्राह्मण संपूर्ण वर्णोंके गुरु हैं सुतरां सर्वदाही पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ अतएव गुरुसे मांगना नहीं चाहिये विशेषकर क्षत्रियोंके पक्षमें वह अत्यन्त निषिद्ध है यद्यपि यजन,अध्ययन, दान, ॥ १६ ॥ प्रजापालन और शरणागतकी रक्षा करनाही क्षत्रियोंका परम धर्म है किंतु " दो दो "

त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते ॥ पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः॥१३॥तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः॥ राजोवाच॥नाहं प्रतिग्रहं कांक्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥१४॥ याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते॥गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा॥१५॥तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः॥यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते॥१६॥शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् ॥ न चाऽप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥१७॥ ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः ॥ अर्जितं कुत्रचिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥१८॥ पत्न्युवाच ॥ कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः॥ कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च ॥ १९ ॥ विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥२०॥ राजोवाच ॥ असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता ॥ न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥ २१ ॥

यह दीनवचन क्षत्रियोंके पक्षमें कभी उचित नहीं है ॥ ॥ १७ ॥ हे देवि ! मेरे हृदयमें " देताहूं " यह वचन सदा विद्यमान रहता है अतएव मैं अन्य किसी स्थानसे धन उपार्जन करके ब्राह्मणको दूंगा ॥१८॥ रानीने कहा हे महाराज ! काल किसीको समान अवस्थामें रखता है अथवा किसीको विषम अवस्थामें पतित करता है कालही मान और अपमान देता है यह कालही फिर मनुष्योंको दाता और कभी याचक कर देता है ॥ १९ ॥ देखो अत्यंत तपोबलयुक्त विश्वामित्र मुनिने सुपंडित होकर भी कुपितहो आपको राज्यच्युत और सुखभ्रष्ट कर परपीडाकारण स्वरूप धर्मबहिर्भूत कार्य किया है, इससेही आप कालका कार्य अवलोकन कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा चाहे तीक्ष्णधारवाली असिसे जिह्वाके

दो खण्ड करडालूं तथापि क्षत्रियाभिमान त्यागकर "दो दो" यह बात कभी नहीं कहसकता ॥ २१ ॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूं सुतरां किञ्चिन्मात्रभी याचना नहीं करूंगा बरन् अपने बाहुबलसे धनउपार्जन करके दूंगा यही बात मैं सदा कहूंगा ॥ २२ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! इंद्रादि देवताओंके न्यायके अनुसार मुझको आपके हाथमें समर्पण किया है सुतरां मैं आपकी धर्मपत्नी हूं विशेषकर शिक्षणीय और रक्षणीय हूं अतएव हे महाद्युते ! यदि मांगनेमें आपकी इच्छा न हो तो मुझको बेचकर गुरुका धन दीजिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ महीपति हरिश्चन्द्र इन वचनोंके सुननेसे अत्यन्त दुःखित हो हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसा कहकर विलाप करने लगे ॥२५॥ उनकी भार्याने फिर कहा हे राजन् !

क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किंचिदप्यहम् ॥ ददामि वाऽहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥२२॥ पत्न्युवाच ॥ यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः ॥ अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥२३॥ अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते ॥ मन्मौल्यं संगृहीत्वाऽथ गुर्वर्थं संप्रदीयताम् ॥२४॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चंद्रो महीपतिः ॥ कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः ॥२५॥ भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥२६॥ न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतोर्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः ॥ ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतत्वं सफलं कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥ प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त विप्रकी शापरूपी अग्निमें दग्ध होकर नीचत्वको प्राप्त होगे अतएव इस समय मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ २६ ॥ आप द्यूत क्रीडामें मुग्ध अथवा मदसे मत्त वा भोगोंकी इच्छासे ज्ञानशून्य होकर अथवा राज्यकी विपदके कारण मुझको नहीं बेचते हो मुझको बेचकर गुरुको धन देते हो इसमें कुछ दोष वा पाप नहीं होसकता अतएव आप मुझको बेचकर अपने सत्यव्रतकी सफलता सम्पादन कीजिये ॥२७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! रानपत्नी माधवीके राजा

[illegible] बारंबार अनुरोध करनेपर उन्होंने कहा हे भद्रे ! इस अवस्थामें निर्दय होकर तुमको बेचूंगा॥१॥तुम्हीं ऐसे अति निष्ठुर वचन मुक्तकण्ठसे [illegible] कुण्ठित नहीं होती तो नृशंसभी जिसके करनेमें समर्थ नहीं हो सकते वही कर्म करूंगा ॥ २ ॥ यह बात कहतेही राजा अत्यंत [illegible] पत्नीको साथ ले नगरमें गये इसके उपरांत राजा हरिश्चन्द्र उस भार्याको राजमार्गमें खडाकर ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गद कण्ठसे कहने लगे हे नगरनिवासियो ! तुम सम्पूर्ण हमारा वचन सुनो ॥ ४ ॥ किसीको क्या दासीका प्रयोजन है ? यह रमणी मेरे प्राणोंके अपेक्षा भी प्रिय है इसका मूल्य मैं जो कहता हूं इसको देनेकी जिसकी सामर्थ्य हो तो वह उसको शीघ्र कहे ॥ ५ ॥ तब पंडितोंने कहा तुम कौन हो किस

[illegible] ॥ यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा [illegible] ॥ [illegible] ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गदकंठस्तु ततो वचनमब्रवीत् ॥ भो भो नागरिकाः [illegible] मम ॥ ४ ॥ [illegible] स्यादस्या प्राणेभ्या मम ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥ ५ ॥ [illegible] ॥ राजोवाच ॥ किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥ ६ ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ८ ॥

[illegible] इस स्थानमें आए हो ? राजाने कहा आप क्या हमारा परिचय पूंछते हो ? तो सुनिये मैं नृशंस और मनुष्य [illegible] हूं [illegible] भी कठिन हूं क्योंकि मैं ऐसे पापकार्यके करनेमें प्रवृत्त हूं, व्यासजीने [illegible] यह शब्द सुनतेही सहसा ॥ ७॥ [illegible] धारणकर हरिश्चन्द्रसे कहने लगे मैं अतुल ऐश्वर्यका अधिपति [illegible] समर्थ हूं [illegible] दासीको मोल लेनेके लिये प्रस्तुत हूं तुम मुझको दासी दो मेरी भार्या अत्यंत

सुकुमारी है वह घरका कार्य नहीं करसकती अतएव मुझको यह दासी दो ॥ ८ ॥ ९ ॥ किंतु तुमको कितना मूल्य देना होगा सो कहो विप्रके यह बात कहनेपर राजा हरिश्चंद्रका ॥ १० ॥ हृदय दुःखसे विदीर्ण होगया इससे वह उससे कुछ न कहसके विप्रने कहा तुम अपनी भार्याकी वयस रूप गुण और कर्मके ॥११॥ अनुसार धन ग्रहणकर इस अबलाको मेरे करमें समर्पण करो, स्त्री और पुरुषके मूल्यका विषय शास्त्रमें जिस प्रकार देखा है ॥ १२ ॥ वह सुनो जो स्त्री कार्यमें निपुण सत्यस्वभाव गुणयुक्त और बत्तीस शुभलक्षणोंसे भूषित है उसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा

अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया ॥ गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् ॥ एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चंद्रस्य भूपतेः ॥ १० ॥ विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥ कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥ ११ ॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ॥ धर्मशास्त्रेषु यद् दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥ १२ ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथाऽर्बुदम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चंद्रो महीपतिः ॥ दुःखेन महताऽऽविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ १४ ॥ ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि ॥ धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत् ॥ १५ ॥ राज्युवाच ॥ मुंच मुंचार्य मां सद्यो याव त्पश्याम्यहं सुतम् ॥ दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति ॥ १६ ॥ पश्येहं पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ॥ मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याऽहं त्वयाऽधुना ॥ १७ ॥

है और पुरुष ऐसा गुणयुक्त होनेसे उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्णमुद्रा है ॥१३॥ उस ब्राह्मणके ऐसे वचन सुनकर महीपति हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखित हुए और उससे कुछ न कह सके ॥ १४ ॥ इसके उपरांत वह ब्राह्मण नरपति हरिश्चन्द्रके सन्मुख वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके केशपाश ग्रहण पूर्वक खेंचने लगा ॥ १५ ॥ रानीने कहा हे आर्य ! मैं एक वार पुत्रका मुखकमल देख लूं इससे मुझको एक वार छोड दीजिये हे विप्र ! आप विचारकर देखिये कि फिर इसका दर्शन मुझको दुर्लभ होगा ॥ १६ ॥ हे पुत्र ! देखो तुम्हारी माता इस समय दासी भावको

प्राप्त हुई हूं अतएव हे राजपुत्र ! तुम अब मुझको स्पर्श मत करो अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं हूं॥१७॥तब माताको बालक सहसा आकर्षण करता हुआ देखकर मा ! मा ! ऐसा कहकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसके पीछे पीछे दौडा ॥ १८ ॥ वह काक पक्षधारी बालक पद पदपर गिरने लगा तो भी दोनों हाथोंसे माताके वस्त्र खेंचकर उसके संग संग जाने लगा तब वह ब्राह्मण बालकका इस प्रकार कार्य देखकर क्रोधसे अधीर हो उसको प्रहार करने लगा ॥ १९ ॥ तथापि बालक मा ! मा ! कहकर रोदन करने लगा किसी प्रकार माताको न छोडा रानीने कहा हे प्रभो ! आप मेरे प्रति कृपा प्रकाश करके इस बाकलको क्रय कीजिये ॥२०॥ यद्यपि आपने मुझको क्रय किया है किन्तु इस बालकके विना मैं

ततः स बालः सहसा दृष्ट्वाऽऽकृष्टां तु मातरम् ॥ समभ्यधावदंबेति वदन्साश्रुविलोचनः ॥१८॥ हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन् ॥ तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमप्याहनत्तदा ॥१९॥ वदंस्तथापि सोंऽबेति नैव मुंचति मातरम् ॥ राज्ञ्युवाच ॥ प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम् ॥ २० ॥ क्रीताऽपि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका ॥ इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ २१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥ २२ ॥ शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ २३ ॥ कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथाऽर्बुदम् ॥ सूत उवाच ॥ तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्त पटे पुनः ॥ २४ ॥

आपका कार्य करनेमें समर्थ नहीं हूंगी मेरा भाग्य अत्यन्त मन्द है इससेही यह दुर्दशा उपस्थित हुई अतएव हे प्रभो ! आप मेरे प्रति इस प्रकार अनुग्रहप्रकाश कीजिये॥२१॥ब्राह्मणने कहा यह मुद्रा लेकर मुझको बालक प्रदानकरो क्योंकि धर्मशास्त्र कुशल पंडितोंने स्त्री और पुरुषका जिस प्रकार मूल्य स्थिर किया हैं॥२२॥अन्यान्य पंडितोंने भी गुणोंके तारतम्य अनुसार शत सहस्र लक्ष और करोड इत्यादि मूल्यका भी प्रभेद किया है किन्तु जो स्त्री कार्यमें निपुण सुशील और गुणयुक्त एवं जिसके सम्पूर्ण शरीरमें बत्तीस[1] शुभ लक्षण विराजमान हों ॥ २३ ॥ उस ललनाका मूल्य करोड

---

[1] स्त्रीके ३२ लक्षण विराटपर्वमें और पुरुषके ३२ लक्षण काशी खण्डमें लिखे हैं.

स्वर्णमुद्रा हैं और जिस पुरुषके यह सम्पूर्ण शुभ लक्षण और गुण विद्यमान हैं उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्ण मुद्रा है सूतजीने कहा हे राजन् ! बालकका जो मूल्य स्थिर हुआ ब्राह्मणने वह स्वर्ण मुद्रा पहलेके समान राजाके सन्मुख स्थित वल्कलपर पुनर्वार रख दी॥२४॥और बालकको ले उसके सहित एकत्र बांध लिया तब वह ब्राह्मण आनन्दित हो उनको संग ले शीघ्र घरको गया ॥२५॥ जानेके समय रानीने प्रदक्षिणाकर जानु टेककर राजाको प्रणाम किया और उसी अवस्थामें उठकर नेत्रोंके आंसुओंमें डूब दीनभाव होकर राजासे बोली ॥ २६ ॥ यदि जो मैंनें कभी दान किया है. यदि कभी अग्निमें आहुति प्रदान की है. यदि कभी ब्राह्मणको सन्तुष्ट किया है तो उसी पुण्यके बलसे राजा हरिश्चन्द्र पुनर्वार

प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबंधयत् ॥ प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता ॥ वाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ॥ तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥ २७ ॥ पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ हा हेति च वदन्राजा विललापाकुलेंद्रियः ॥ २८ ॥ वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता ॥ वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न जहाति कदाचन ॥ २९ ॥ एवं भार्यां वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् ॥ पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि ॥ ३० ॥ कां दिशं प्रतियास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् ॥ राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥ ३१ ॥

मेरे भर्ता हों॥२७॥ अपने प्राणोंकी अपेक्षा प्यारी भार्याको पैरोंमें पडा हुआ देखकर राजा व्याकुल हो हाय ! हाय ! इस प्रकार कहकर विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ वृक्षकी छाया कभी उस वृक्षको नहीं छोड़ती परन्तु तुम यथार्थ ही सुशील और गुणयुक्त होकर भी क्यों मुझसे अलग हुई॥२९॥ भार्याके साथ इस प्रकारसे परस्पर सुसम्बन्ध बातचीत कर पुत्रसे कहा हे वत्स ! तुम मुझको छोडकर कहां जाओगे ?॥ ३० ॥ मैं इस समय कहां जाऊं अथवा कौन मेरा दुःख दूर करेगा फिर राजाने उस ब्राह्मणसे कहा कि द्विजवर ! पुत्रके वियोगसे मुझे जिस प्रकार का दुःख उपस्थित

हुआ है राज्यत्याग अथवा वनवासमें मुझे ऐसा दुःख उपस्थित नहीं हुआ इस लोकमें स्वामि साधु स्वभाव होनेसे ही भार्याका सर्वदा सुखसे भरण पोषण करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ किन्तु हे कल्याणि ! मैं तुम्हारे प्रति ऐसा कुपित हूं कि तुमको छोड़कर दुःख सागरमें डाल दिया मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न होकर समस्त राज्य सुखका आस्पद हुआ था ॥ ३३ ॥ परन्तु हाय ! तुम ऐसे पतिको प्राप्त करके भी इससमय दासी भावको प्राप्त हुई ! हे देवि ! मैं ऐसे विशाल शोकसागरमें निमग्न हुआ हूं कि ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकारसे पुराणोंके आख्यान कह कर कौन मुझको छुड़ावेगा सूतजीने

यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः ॥ सद्भर्तृभोग्या दि सदा लोके भार्या भवंति हि ॥ ३२ ॥ मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ३३ ॥ मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि ॥ ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥ ३४ ॥ को मामुद्धरते देवि पौरा णाख्यान विस्तरैः ॥ सूत उवाच ॥ पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशा घातैः सुदारुणैः ॥ ३५ ॥ घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपच क्रमे ॥ नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः ॥ ३६ ॥ विललापातिदुःखार्तो निश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः ॥ ३७ ॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥ ३८ ॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥ हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः ॥ ३९ ॥

कहा हे राजन् ! वह ब्राह्मण उन राजाके सन्मुख ही देवीको दारुण कशाघात ॥ ३५ ॥ करते २ ले जाने लगा वह भूपाल भार्या और पुत्रको ऐसी अवस्थामें ले जाता हुआ देखकर ॥३६॥ दुःखसे अत्यन्त कातर हुए और वारंवार लम्बे श्वास लेते हुए विलाप करते २ कहने लगे हाय ! पहले जिसको चन्द्र, सूर्य, वायु अथवा अन्य किसीने नहीं देखा ॥३७॥ मेरी वही प्रियतमा आज दीनभावको प्राप्त हुई हाय ! बालकके हाथकी उँगली सभी कैसी सुकुमार हैं हाय ! वह कुमार सूर्यवंशमें जन्म ग्रहणकर ॥३८॥ बेचा गया ! अहो मेरी दुर्मतिको धिक्कार है हा प्रिये ! हा

बालक रोहिताश्व ! इस अनार्यकी दुर्नीतसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई ॥ ३९ ॥ मैं दैवकी विडम्बनासे इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ परन्तु तो भी मेरी मृत्यु नहीं हुई ? मुझको धिक्कार है व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा इस प्रकार विलाप करने लगे इसी समय वह ब्राह्मण ॥ ४० ॥ उनको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और अट्टालिका (अटारी) के द्वारा राजाकी दृष्टिसे अन्तर्धान हो गया, इसी समय मुनिवर महातपा कौशिकश्रेष्ठ आये ॥ ४१ ॥ अपने शिष्योंको साथ ले अत्यन्त शीघ्र निष्ठुर क्रूर दर्शन ऋषि वहां आये विश्वामित्रने कहा हे महाबाहो ! जो आपने पहले राजसूयकी दक्षिणा कही है ॥ ४२ ॥ यदि सत्यका सन्मान करना आपका कर्त्तव्य

दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथाऽपि धिक् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोंऽतरधीयत ॥ ४० ॥ वृक्ष गेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥ अत्रांतरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥ ४१ ॥ सशिष्य कौशिकेंद्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ या त्वयोक्ता पुरा राजन्राजसूयस्य दक्षिणा ॥ ४२ ॥ तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम् ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ॥ ४३ ॥ राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थं प्रदीयते ॥ ४४ ॥ एदाचक्ष्व राजेंद्र यथा द्रव्यं त्वयाऽर्जितम् ॥ राजोवाच ॥ किमनेन महाभाग कथितेनतवानघ ॥ ४५ ॥ शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ॥ ऋषिरुवाच ॥ अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ॥ ४६ ॥

है तो हे राजन् ! आप इस समय वह मुझको दीजिये, हरिश्चन्द्रने कहा कि हे राजर्षे ! मैं आपको प्रणाम करता हूं हे अनघ ! ॥ ४३ ॥ पहले राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा देनेको स्वीकार किया था आप वही दक्षिणा लीजिये विश्वामित्रने कहा हे राजेन्द्र ! आप दक्षिणाके लिये जो स्वर्णमुद्रा देते हैं वह कहांसे संग्रह की ? ॥ ४४ ॥ यह अर्थ जिस प्रकार उपार्जन किया है वह मुझसे कहो ? राजाने कहा हे महाभाग ! हे अनघ ! इसके कहनेसे क्या है ॥ ४५ ॥ इसके कथनसे मेरा शोक बढता है विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! अन्यायपूर्वक उपार्जित धन मैं ग्रहण

नहीं करूंगा यदि यह धन न्यायके अनुसार उपार्जित हुआ है तो वह मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४६ ॥ किंतु पहले धनके आनेका विषय मुझसे भलीभांति कहिये इसके उपरांत वह मुझको दो हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्र ! अपनी भार्या देवी माधवीको करोड स्वर्ण मुद्रामें बेचा है॥४७॥ और पुत्र रोहितको दशकरोड स्वर्णमुद्रामें बेचा है अतएव यह ग्यारह करोड सुव र्णमुद्रा आप मुझसे लीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा भार्या और पुत्रको बेचकरजो धन संचित किया था वह धन अत्यन्त सामान्य था और राजाकोभी शोकसे अत्यंत अभिभूत देखकर कौशिक रोष

द्रव्यस्यागमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ॥ राजोवाच मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ॥ ४७ ॥ निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया ॥ विप्रैकादश कोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा ॥ अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥ ५० ॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् ॥ मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥ ५१ ॥ तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च ॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ अन्यद्दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ५३ ॥

युक्त हो कहने लगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञकी दक्षिणा इतनी सामान्य नहीं हो सकती अतएव जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो उसके उपयोगी अन्य धन संग्रह कीजिये ॥ ५० ॥ हे क्षत्रियाधम ! यदि इस दक्षिणाको ही मेरे समान जानते हो तो पहले मेरी भलीभांति अनुष्ठित तपस्या अमल ब्रह्मण्य उग्रप्रभाव और शुद्ध अध्ययनका विपुल बल शीघ्र अवलोकन कीजिये उसके उपरांत दक्षिणा देना ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे भगवन् ! केवल इस पत्नी और बालकको बेचा है इस कारण आप कुछ कालतक प्रतीक्षा कीजिये मैं और भी धनसंग्रह

करके आपको देता हूं ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे नराधिप ! दि ग जो चौथाभाग शेष है मैं केवल इसकीही प्रतीक्षा करूंगा इसके उपरांत फिर मुझको कुछ उत्तर न दे सकोगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरांत महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उस दीन धर्मनिष्ठ राजाका इसप्रकार निर्दय और निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार कर वह एकादश कोटि परिमित सुवर्ण लेकर चले गये ॥ १ ॥ उन ऋषियोंके चले जानेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र शोकाकुल हो वारंवार लम्बे और उष्ण श्वास छोडते २ अधोमुख होकर ऊंचे स्वरसे कहने लगे ॥ २ ॥ मैं अत्यन्त दुःख और क्लेश भोगनेसे प्रेतरूप हुआ हूं तथापि

विश्वामित्र उवाच ॥ चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ॥ एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदे० महा० स० द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ व्यास उवाच ॥ तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः ॥ तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ १ ॥ विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः ॥ श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ २ ॥ वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः ॥ ३ ॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् ॥ दुर्गंधो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दंतुरोऽघृणी ॥ ४ ॥ कृष्णो लंबोदर स्निग्धः करालः पुरुषाधमः ॥ हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥ चांडाल उवाच ॥ अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम ॥ क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते संप्रदीयते ॥ ६ ॥

धनसे मुद्राको मोल लेनेपर जो उपकार करै वह शीघ्र सूर्यास्तसेपहले मेरा उचित मूल्य स्थिर करै ॥ ३ ॥ इसके उपरांत धर्म निर्दय चांडालका रूप धारणकर हरिश्चन्द्रकी परीक्षा करनेके लिये शीघ्र उस स्थानमें आये उस अधम पुरुषका शरीर कृष्णवर्ण देखनेमें अत्यंत भयानक उदर लम्बा दांत विशाल और मुखमण्डल श्मश्रुपूर्ण हाथमें जर्जर वांसका दंड गलेमें शवास्थिमाला विराजमान और वक्षस्थल अत्यन्त विकृत भावयुक्त था ॥ ४ ॥ ५ ॥ चाण्डालने कहा मुझको भृत्यका अत्यन्त प्रयोजन है अतएव मैं तुमको दासत्वमें ग्रहण करूंगा तुम्हारा क्या मूल्य देना होगा वह

अति शीघ्र प्रकाश करके कहो ॥६॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! अत्यन्त दयाहीन क्रूरलोचन अतिदुष्ट स्वभाव उस चांडालके ऐसे वचन कहनेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र उसकी ऐसी आकृति देखकर विस्मित हो कहने लगे कि,तुम कौन हो॥७॥चांडालने कहा कि हे नृपवर! मैं प्रवीर नामक विख्यात चांडाल हूं तुमको सर्वदा मेरी आज्ञामें रहकर मृतक मनुष्यका वस्त्र ग्रहण करना होगा॥८॥तब राजाने उसके ऐसे वचन सुनकर कहा ब्राह्मण अथवा क्षत्री मुझको ग्रहण करें, यही मेरी इच्छा है॥९॥देखो पंडितोंने कहा है कि उत्तमका धर्म उत्तम, मध्यमका धर्म मध्यम और अधमका धर्म अधम है इसकारण तुम अधम हो और मैं उत्तम हूं तुम्हारे घरमें मेरा धर्म कर्म नहीं चल सकता ॥ १० ॥ चांडालने कहा हे नृपसत्तम! यदि यही आपका आन्तरिक

व्यास उवाच ॥ तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् ॥ वदंतमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥ ७ ॥ चांडाल उवाच ॥ चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम ॥ शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि गृह्णात्विति मतिर्मम ॥ ९ ॥ उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः ॥ अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥ चांडाल उवाच ॥ एवमेव त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम ॥ अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः ॥ ११ ॥ विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः ॥ सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ ॥ १२ ॥ यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः ॥ १३ ॥

अभिप्राय था तो जो कोई "ब्राह्मण मुझको ग्रहण करै" यही बात तुमको कहनी उचित थी, परन्तु प्रकारान्तरमें मिथ्या कहकर तुमने अधर्म किया तो किया तो किस लिये आपने विचार न करके केवल मेरे सामने इस बातका उल्लेख किया था ? ॥ ११ ॥ जो हो जो मनुष्य प्रथम विचारकर अपना अभिप्राय प्रकाश करता है, वही पुरुष अभीष्ट प्राप्त करता है, परन्तु हे अनघ ! आपने विचार न करके सामान्य वार्त्ता कही ॥ १२ ॥ यदि आपकी यह बात सत्य है तो आप मेरे ही गृहीत हुए इसमें संदेह नहीं, हरिश्चन्द्रने कहा जो नराधम असत्य व्यवहार

करता है वह शीघ्र भयंकर नरकमें जाता है ॥ १३ ॥ इसकारण असत्य व्यवहारकी अपेक्षा मुझे चांडालपना श्रेष्ठ है। व्यासजीने कहा कि, हे महाराज ! राजा यह बात कह ही रहे थे कि, इसी समयमें तपोधन विश्वामित्रजी उस स्थानमें आये ॥ १४ ॥ वह क्रोध और अमर्षके वश हो घूर्णित नेत्र कर राजासे बोले कि यह चांडाल तुम्हारी इच्छानुसार धन देनेको उपस्थित है ॥ १५ ॥ तब किस लिये अब मुझको यज्ञकी शेष दक्षिणा नहीं देते ? हरिश्चंद्र बोले कि, हे कौशिक ! कोई विषय आपसे छिपा नहीं है मेरा यह देह सूर्यवंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ इस कारण धनकी इच्छासे किस प्रकार चांडालका दास होना स्वीकार करूं ? विश्वामित्रने कहा कि यदि चांडालको

ततश्चांडालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ १४ ॥ क्रोधामर्षविघूर्णिताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥ चांडालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ॥ १५ ॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥ १६ ॥ कथं चांडालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि चांडालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥ १७ ॥ न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥ चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणा धनम् ॥ १८ ॥ विना चांडालमधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः ॥ धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥ १९ ॥ इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप ॥ दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चंद्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रितजीवितः ॥ प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥ २१ ॥

अपनेको बेंचकर मुझको ॥१७॥ धन न दोगे तो निश्चय जानो कि म तुमको अभीशाप देदूंगा चांडालसे हो अथवा ब्राह्मणसे हो मेरी दक्षिणाका धन अभी दो क्योंकि चांडालसे अतिरिक्त और कोई धन देनेवाला यहां नहीं है, परन्तु हे राजन् ! विना धन लिये नहीं जाऊंगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे नरपते ! यदि इस समय पहले कहा हुआ धन नहीं दोगे तो दिनकी आधी घड़ी शेष रहतेमें तुमको कोपानलमें भस्म करूंगा ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्र विश्वामित्रके ऐसे वचन सुनकर मृतकके समान हो गये, फिर भयसे व्याकुल हो प्रसन्न हूजिये, इस प्रकार

कहकर ऋषिके दोनों चरणोंको पकड लिया ॥२१॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्रर्षे! मैं दीन और अत्यन्त कातर हुआ हूं और विशेष करके आपका भक्त दास हूं इस कारण आप प्रसन्न होकर मुझको क्लेशकर चांडालके सहवाससे छुड़ाइये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर! शेष धनके बदलेमें मैं आपका कार्य करूंगा अधिक क्या मैं आपका आज्ञानुवर्ती सेवक होकर आपके चित्तका अनुगामी हूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज! तो तुम मेरे किंकर हुए नराधिप ! इस समय सर्वदाही तुमको मेरे वचन प्रतिपालन करने होंगे ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्रके यह वचन कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षसे अपना पुनर्जन्म जान कौशिकसे कहने लगे ॥ २५ ॥ मैं सदा

हरिश्चंद्र उवाच ॥ दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः॥२२॥भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः ॥ तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः॥किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥२४॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः ॥ अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥२५॥ तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः ॥ आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालागच्छ मद्दास मौल्यं किं मे प्रयच्छसि ॥ गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥ २७ ॥ नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥ २८ ॥ आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ॥ चांडाल उवाच ॥ दशयोजनविस्तीर्ण प्रयागस्य च मंडले ॥ २९ ॥

आपकी आज्ञा पालन करूंगा इस समय आपका क्या कार्य साधन करूं सो कहिये ॥ २६ ॥ तब विश्वामित्र चांडालको बुलाकर बोले कि हे चांडाल ! मेरे निकट आ और इस दासका जो मूल्य है वह मुझको दे मैं इस समय इस दासको तेरे हाथमें समर्पण करता हूं तू मुल्य देकर इसको ले ॥२७॥ मुझको केवल धनका ही प्रयोजन है सेवककी कुछ आवश्यकता नहीं। व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्रकी यह बात कहनेसे श्वपचका हृदय आनंदरससे पूर्ण हो गया ॥ २८ ॥ तब वह शीघ्र विश्वामित्रके निकट आकर कहने लगा. चांडाल बोला कि,

है द्विजसत्तम ! आपने इसको बेचा इससे आपको प्रयाग मंडलकी दशयोजन विस्तारवाली भूमि ॥ २९ ॥ रत्नमयी आपको दूंगा, इसको देकर आपने मेरा क्लेश निवारण किया है ॥ ३० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब चांडालने एक हजार मणि, एक हजार मोती और एक हजार सुवर्ण मुद्रा देदी तब विश्वामित्रने भी उनको ग्रहण किया॥३१॥ उस समय महात्मा हरिश्चन्द्रके मुख मंडलपर कुछ भी विकार दिखाई नहीं दिया वरन् उन्होंने धैर्य धारणकर स्थित किया कि इस समय विश्वामित्र ही मेरे प्रभु हैं ॥ ३२ ॥ अतएव उन्होंने मुझको जिस कार्यमें नियुक्त किया

भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम ॥ अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥ चांडालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥ हरिश्चंद्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् ॥ अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥ ३२ ॥ तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति ॥ अथांतरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया ॥ ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि ॥ ३४ ॥ साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेंद्रा महौजसः ॥ हर्षेण महताऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥३५॥ राजोवाच ॥ त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बंधुर्महामते ॥ यदथ मोहितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः ॥ ३६ ॥ किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव ॥ एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥ ३७ ॥

है मुझको वही करना चहिये, इसी समयमें सहसा अशरीरिणी वाणी आकाशसे सुनाई दी ॥ ३३ ॥ हे महाभाग ! तुम इस अंगीकार की हुई दक्षिणाको देकर ऋणसे छूट गये, फिर स्वर्गसे राजाके मस्तकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ३४ ॥इसी समय महातेजस्वी इन्द्रादि देवता "साधु साधु" कहकर राजाकी प्रशंसा करने लगे तब राजाने अत्यन्त हर्षित हो विश्वामित्रसे कहा॥ ३५ ॥राजा बोले हे महामते ! आपने जो अर्थदायसे छुड़ाकर क्षणमात्रमेंही मुझको ऋणविहीन किया है, इसकारण आप हमारे पिता माता और बंधुओंकी अपेक्षा भी हितकारी हैं ॥ ३६ ॥

मुनि बोले हे महाबाहो ! आपके वचनही श्रेष्ठ हैं, इसकारण अब क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, राजाकी यह वार्त्ता कहनेपर फिर विश्वामित्रने उनसे कहा अबसेही तुम चांडालके वचन प्रतिपालन करो; तुम्हारा मंगल हो यह बात कहकर महर्षि विश्वामित्र उस चांडालके दिये धनको ग्रहणकर अपने आश्रममें चले गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतश्रेष्ठ ! राजा हरिश्चन्द्रने चांडालके घर जाकर फिर क्या कार्य किया वह आप शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले हे विप्रवर ! विश्वामित्रके चले जानेपर चांडालका मन प्रसन्न होगया, उसने विश्वामित्रको इतने रत्न दिये थे, इस कारण वह नरपतिको

विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ ॥३८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ शौनक उवाच ॥ ततः किमकरोद्राजा चांडालस्य गृहे गतः ॥ तद् ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे ॥१॥ सूत उवाच ॥ विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥ २ ॥ असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दंडेनाताडयत्तदा ॥ दंडप्रहारसंभ्रांतमतीव व्याकुलेंद्रियम् ॥ ३ ॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे ॥ निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥४ ॥ निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्कणे ॥ अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥ ५ ॥

बांधकर ॥२॥ तैंने असत्य मार्गमें पैर रक्खा है, यह कहकर दंडसे प्रहार करने लगा, राजा एक तो इष्टजनोंके वियोगसे कातर हुए थे फिर तिसपर भी चांडालका दंडाघात इस कारण इन प्रहारोंसे वह अत्यन्त कातर हुए और इनकी इंद्रियें अत्यन्त शिथिल होगईं ॥ ३ ॥ बांधववियोगका दुःख हुआ चांडालने ऐसी अवस्थासे राजाको अपने घर लाय शृंखलामें बांधकर रक्खा. इसके उपरान्त स्वयं क्लेश दूरकर निद्राका सुख अनुभव करने लगा ॥ ४ ॥ राजा चांडालके घर बेडियोंसे बंधे वास करने लगे परन्तु उसका अन्न जल ग्रहण न किया, बारंबार

ही केवल स्त्री पुत्रादिके निमित्त अनुताप करनेलगे ॥ ५ ॥ वह कृशाङ्गी सन्मुख पुत्रका मलीन वदन देखकर दुःखसे मुझको स्मरण करती होगी, वह अत्यन्त दुःखित होकर जानती होगी कि राजा धन प्राप्त होनेपर भी मुझे दासत्वसे छुडावेंगे ॥ ६ ॥ जब वह धन उपार्जन कर ब्राह्मणको दे चुकेंगे तब रोते हुए पुत्रको देख मुझे समझावेंगे ॥ ७ ॥ मैं पिताके समीप जाता हूं इस प्रकारसे रोते हुए बालकको और तात तात करते हुएको समझावेगी ॥ ८ ॥ वह मृगशावकलोचनी यह नहीं जानती कि मैं चांडाल होगया, मेरा राज्यनाश सुहृद्वियोग भार्यापुत्रका विक्रय हुआ ॥ ९ ॥ और इससमय चांडालके दासत्व शृंखलामें बँधना पडा. हाय ! एकवारही

तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ॥ मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः ॥६॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् ॥ रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च संबोधयिष्यति ॥७॥ तातपार्श्वं व्रजामीति रुदंतं बालकं पुनः ॥ तात तातेति भाषंतं तथा संबोधयिष्यति ॥८॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ ९ ॥ ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरंपरा ॥ एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥ १० ॥ निनाय दिवसान्राजा चतुरो विधिपीडितः ॥ अथाऽह्नि पंचमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥ ११ ॥ चांडालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे ॥ क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥१२॥ काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् ॥ तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित् ॥१३॥ इमं च जर्जरं दंडं गृहीत्वा याहि मा चिरम् ॥ वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥ १४ ॥

क्लेशपर क्लेश मुझको सतारहे हैं राजाने इस प्रकारसे वारंवार भार्या और पुत्रको स्मरण कर ॥१०॥ चांडालके घरमें वास कर क्रमानुसार चार दिन व्यतीत किये, पांचवें दिन चांडालने वहां आय बंधनसे राजाको छोड ॥११॥ क्रोधित हो निष्ठुर वचनोंसे राजाको वारंवार भर्त्सना कर कहा कि तुम श्मशानमें जाकर मरेहुए मनुष्योंका वस्त्र ग्रहण करो ॥ १२ ॥ काशीके दक्षिण स्थानमें एक बडा भारी श्मशान है तुम वहां जाकर उस श्मशानकी रक्षा करो और न्यायके अनुसार जो मुझको मिलता है वह किसी रर मत छोडो ॥ १३ ॥ तुम यह जर्जर दंड लेकर शीघ्र

वहां जाओ मैं वीरबाहुका दूत हूं और उनकाही यह दंड है यह बात कहकर सम्पूर्ण स्थानोंमें घोषण करो ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! इस प्रकारसे एक समय राजा हरिश्चन्द्र चांडालके वशवर्ती हो श्मशानमें मृतक मनुष्योंके वस्त्र लेनेके कार्यमें नियुक्त हुए ॥ १५ ॥ जब उस मृतक मनुष्योंका वस्त्र लेनेवाले चांडालने राजाको इस प्रकार कार्यमें नियुक्त किया तब वह उसकी आज्ञानुसार श्मशानमें गये ॥ १६ ॥ यह श्मशान काशीपुरीके दक्षिणभागमें स्थित है उसके स्थान स्थानमें शवमाल्य बिखरी हुई हैं उसके चारों ओर दुर्गन्ध और धूम परिपूर्ण है ॥ १७ ॥ उस स्थानमें कितनीही शिवा भ्रमण करती हैं उनके घोर शब्दसे वह प्रेतभूमि प्रतिध्वनित होती है कहीं गृध्र कहीं गोमायु कहीं कुकुरगण शवदेह लेक-

सूत उवाच ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चंद्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ १५ ॥ चांडालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा ॥ राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमंदिरम् ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु दक्षिणेदेशे विद्यमानं भयानकम् ॥ शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गंधबहुधूमकम् ॥ १७ ॥ श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् ॥ गृध्रगोमायु संकीर्णं शववृंदपरिवारितम् ॥ १८ ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गंधसंकुलम् ॥ अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥१९॥ हसंतीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः ॥ नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥ २० ॥ हा पुत्र मित्र हा बंधो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥ हाप्यते भागिनेयाद्य हा मातुल पितामह ॥ २१ ॥

खैंचते हैं ॥१८॥ स्थान स्थानमें ढेरके ढेर अस्थियोंके लगे हुए हैं शवसमूहोंकी दुर्गन्धसे श्मशानभुमि परिपूर्ण है, कहीं अग्निमध्यस्थित अर्द्धदग्ध शवमुखके दांत निकालकर ॥१९॥ मानों विकट हास्य करते हैं कि सम्पूर्ण देहोंकी अग्निमें दग्ध होकर यही दुर्दशा होती है वहां अनेक मनुष्योंके मृतक देह लाये जाते हैं और उनके सुहृद्वर्ग आर्त्तनादसे भयानक कोलाहल करते हैं ॥ २० ॥ कोई हा वत्स ! हा पुत्र ! तुम हमको छोडकर कहां चले गये ? कोई हा मित्र ! तुमने हमको छोडकर कहां प्रस्थान किया ? कोई हा बन्धो! तुमने हमको छोड दिया.? कोई हाभ्रातः ! तुमने आज

हमको त्याग दिया ? कोई हा भागिनेय !तुमभी क्या आज हमको छोडगये ? कोई हा माननीय मातामह ! कोई हा मातुल ! ॥ २१ ॥ कोई हा पितामह ! कोई हा पितः ! कोई हा पौत्र ! कोई हा बांधव ! तुम आज कहां चलेगये एकवार आनकर हमको दर्शन दो इसप्रकार प्राणियोंके भयंकर शब्दसे श्मशानभूमि परिपूर्ण होती थी ॥२२॥ मांस चर्बी और वसादि अग्निमें दग्ध हो शोः शो शब्द फैलाती हुई उस स्थानमें व्याकुलता करती हैं उस स्थानमें अग्निका भयंकर चट्चट् शब्द हो रहा है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उस श्मशानका दृश्य कल्पांत कालके समान अत्यन्त भीषण था, राजा हरिश्चन्द्र वहां जाकर अत्यन्त दुःखके कारण इस प्रकारसे शोक करने लगे ॥ २४ ॥ हा मन्त्रीगण ! हा भृत्यगण ! तुम इस

मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बांधव ॥ इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥ २२ ॥ ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमितिध्वनिसंकुलम् ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥ २३ ॥ कल्पांतसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् ॥ स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोचत ॥ २४ ॥ हा भृत्या मंत्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् ॥ हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मंद भाग्यकम् ॥ २५ ॥ ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः ॥ विना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥ २६ ॥ यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि ॥ इत्येवं चिंतयंस्तत्र चांडालोक्तं पुनः पुनः ॥ २७ ॥ मलेन दिग्धसर्वांगः शवानां दर्शने व्रजन् ॥ लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥ २८ ॥

समय कहां हो ! हाय हमारा वंश परम्पराका राज्य कहां है ? हा पुत्र ! हा प्रेयसी ! तुम इस हत भाग्यको छोडकर ॥ २५ ॥ ब्राह्मणके कोपवशसे किस दूर स्थानमें चलीगई हो धर्मके विना मनुष्य कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकते ॥ २६ ॥ इस कारण पुरुष यत्न सहित केवल धर्मका ही उपार्जन करै राजा वारंवार इस प्रकारकी चिन्ता करके अन्तमें चांडालका वचन स्मरण कर ॥ २७ ॥ मलीन अंग किये शवके ढूंढनेको गये, दुश्चिन्ताके कारण उनकी अंगयष्टि यष्टिके समान क्षीण होगई

थी परन्तु तौभी राजा हरिश्चन्द्र इधर उधर घूमकर ॥ २८ ॥ इस शवका शत मुद्रा तुल्य प्रथम मेरे हस्तगत होगा इस मूल्यमें यह राजाका यह मेरा और यह चांडालका ॥ २९ ॥ सदा इस प्रकारकी चिन्ता करते अत्यन्त दुरवस्थाको प्राप्त हुए सौ ग्रंथीकी एक पुराने वस्त्रकी कंथा पहरे थे ॥ ३० ॥ मुख बाहु उदर चरण सब अंग भस्म और धूलिसे व्याप्त थे, अनेकविध वसा मेद मज्जासे पैरकी अंगुलीमें लिप्त होनेसे श्वास लेते ॥ ३१ ॥ अनेक जातिवाले मृतकोंके निमित्त जो अन्न पक होता है उसीसे क्षुधा निवृत करते

अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः ॥ इदं मम इदं राज्ञ इदं चांडालकस्य च ॥२९॥ इत्येवं चिंतयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः॥ जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः॥३०॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ॥३१॥ नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडलः ॥ ३२ ॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ॥ एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः ॥ वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥ १ ॥ क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान्ग्रहीतुमुपचक्रमे ॥ कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः ॥ २ ॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः ॥ सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥ ३ ॥

उनकी माला शिरमें धरते ॥३२॥ रात्रि अथवा दिनमें नहीं सोते केवल हाय ! हाय ! शब्द करके सदा लम्बे श्वांस छोडते इस प्रकार उन्होंने सौ वर्षके समान बारह महीने विताये ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा इधर कुमार रोहिताश्व एक दिन काशीके कुछेक दूर खेलनेके लिये बालकोंके सहित बाहर निकला ॥ १ ॥ प्रथम बालकोंके संग खेला इसके उपरान्त अग्रभागयुक्त सहमूल कोमल कुशाओं और समिधोंको अपनी शक्तिके अनुसार ग्रहण करने लगा ॥ २ ॥ बालकोंके यह कारण

पूछनेपर रोहिताश्वने समान अवस्थावाले मित्रोंसे कहा मेरे प्रभु ब्राह्मण हैं उनकी ही प्रसन्नताके लिये यह ग्रहण किये हैं, उनसे यह बात कहा यज्ञीयलक्षणवाली समिध अनलसंदीपक काष्ठ दोनों हाथोंसे मंत्रसहित संग्रह करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अग्निमें होम करनेके लिये लाया हुअ पलाशकाष्ठ और पूर्वोक्त द्रव्य सम्पूर्ण एकत्रकर उस भारको यत्नसहित मस्तकपर उठालिया परन्तु प्रत्येकपदमें पीडित होनेलगा ॥ ४ ॥ तब वह बालक प्याससे दुःखित हो जलके निकट स्थानमें जाय पृथ्वीपर भार डाल जल पान करनेके लिये जलाशयमें उतरा॥५॥वहां इच्छानुसार जलपान कर मुहूर्त्तभर विश्रामके उपरान्त ज्योंही बँबईके ऊपर उस भारको रखकर फिर मस्तकपर उठानेके लिये उसका उद्योग किया ॥ ६ ॥ कि उसी

पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् ॥ मस्तके भारकं कृत्वा खिद्यमानः पदेपदे ॥ ४ ॥ उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषाऽन्वितः ॥ भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥ ५ ॥ कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् ॥ वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे ॥६॥ विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः ॥ महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥७॥ तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह ॥ रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥ ८ ॥ त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ॥ हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः ॥ ९ ॥ अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः ॥ इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा॥१०॥पपात मूर्च्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा ॥ अथ तां ब्राह्मणो रुष्टःपानीयेनाभ्यषिंचत ॥११॥

समय विश्वामित्रकी आज्ञासे प्राणियोंको भयावह अत्यन्त घोरदर्शन महाविष महाकाय एक कृष्णवर्ण सर्प उस बँबईसे अकस्मात् बाहर निकला ॥ ७ ॥ इस सर्पने निकलते ही बालकको डसलिया उस बालकने पृथ्वीपर गिरकर तत्काल प्राण त्याग किया. उसके मित्र भी रोहिताश्वको मरा हुआ देखकर ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ फिर बालक भयसे उद्विग्न हो शीघ्र उसकी माताके निकट उपस्थित हो कहने लगे हे विप्रदासी ! तेरा पुत्र हमारे साथ खेलनेको बाहर गया था ॥ ९ ॥ परन्तु अकस्मात् उस स्थानमें कालासर्पके काटनेसे मर गया. रोहिताश्वकी माता गिरे हुए वज्रके समान ॥१०॥ कठोर वचन सुनते ही जडकटे हुए केलेके समान पृथ्वीपर गिर पडी, उसी समय ब्राह्मणने अतिरुष्ट हो उसके मुखपर

जलसेचन किया ॥ ११ ॥ फिर उसके क्षणकालमें चेतना प्राप्त करनेपर ब्राह्मणने क्रोधित होकर उससे कहा ब्राह्मण बोला हे दुष्टे! रात्रिमें रोना अत्यन्त निन्दनीय है क्योंकि इससे अलक्ष्मीका आविर्भाव होता है ॥ १२ ॥ यह जानकर भी तू क्यों रोदन करती है तेरे हृदयमें क्या कुछ भी लज्जा नहीं है ? ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर भी उसने उनको कुछ उत्तर न दिया ॥ १३ ॥ बरन् पुत्र शोकसे अत्यन्त कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी तिसकाल उसका शरीर धूलमें घुसा हुआ बाल विखर गये और मुख नेत्रोंके जलसे भीग गया वह शोकसे वारंवार कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणने क्रोधित होकर उस राजपत्नीसे कहा

मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अलक्ष्मीकारकं निंद्यं जानती त्वं निशामुखे ॥ १२ ॥ रोदनं कुरुपे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥ रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता॥ अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥१४॥ अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुंपसि ॥१५॥ अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् ॥ एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥१६॥ रुदिता कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा ॥ स्वामिन्मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः ॥१७॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम् ॥ दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत॥१८॥ इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह ॥ पुनस्तां कुपिता विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥१९॥

रे दुष्टे ! तुझको धिक्कार है मैं तुझे मूल्य देकर मोल लाया हूं तौभी तू मेरे कार्यमें हानि करती है ॥ १५ ॥ यदि तू मेरा कार्य न कर सकती तो क्यों व्यर्थ मेरा धन ग्रहण किया उस ब्राह्मणके वारंवार इस प्रकार निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार करनेपर ॥ १६ ॥ उसने करुणा स्वरसे रोदन करते गद्गद हो ब्राह्मणसे कहा हे स्वामिन् ! मेरा बालक पुत्र सर्पके काटनेसे मरगया है ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! मैं उसको फिर न देखसकूंगी अतएव मैं उस बालक पुत्रको देखनेकेलिये जाऊंगी आप कृपाकरके शीघ्र मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ यह बात कहकर

वह बाला फिर करुणास्वरसे रोदन करने लगी ब्राह्मणभी महाक्रोधितहो फिर राजपत्नीसे कहनेलगा ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले हे शठे! तेरा आचरण अत्यंत दूषणीय है किससे पातक होता है उसको नहीं जानती जो मनुष्य प्रभुका धनग्रहण कर उसका कार्य नहीं करता है ॥ २० ॥ वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है वह अल्पकाल नरकमें वासकर फिर मुर्गेकी योनिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अथवा इस धर्मशास्त्रके उपदेश देनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि जो मनुष्य मूर्ख, क्रूर, नीच, शठ और मिथ्यावादी तथा पापकार्यमें रत है ॥ २२ ॥ उससे इस प्रकारके वचन कहने ऊषरभूमिमें बीज बोनेके समान निष्फल हैं अतएव यदि तुमको परलोकका भय हो तो इससमय आनकर घरका कार्य

ब्राह्मण उवाच ॥ शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम् ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पति ॥२०॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥२१॥ किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे ॥ यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः॥२२॥तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद्बीजमिवोषरे ॥ एहि ते विद्यते किंचित्परलोकभयं यदि ॥२३॥ एवमुक्ताऽथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः ॥ कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥ २४ ॥ प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद्द्रक्षामि बालकम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५ ॥ रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः॥२६॥विप्र उवाच ॥ किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे ॥ किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम्॥२७॥

करो ॥ २३ ॥ वह यह सुनकर कंपित हो ब्राह्मणसे बोली कि हे प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये और दासीके ऊपर प्रसन्न होकर कृपाप्रकाश कीजिये ॥२४॥मैं एकवार उस मृतक बालकको देखने जाऊंगी अतएव आप मुहूर्तकालके लिये मुझको भेजदीजिये वह बाला पुत्रशोकसे ऐसी कातर हो गई थी कि यह बात कह ब्राह्मणके पैरोंमें मस्तक रख ॥ ॥ २५ ॥ करुणास्वरसे रोदन करने लगी तब वह कुपित विप्र क्रोधसे लाल २ नेत्रकर उससे कहने लगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले तेरे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? मेरे क्रोधको क्या तू नहीं जानती ? मेरा कशाघात क्या तू

भूलगई अतएव शीघ्र मेरे गृहकार्यमें तत्पर हो ॥ २७ ॥ उसके इसप्रकारके वचन सुनकर राजमहिषी धैर्य अवलम्बनकर गृहकार्य करने लगी उस ब्राह्मणके पैर दबाते २ राजपत्नीको आधी रात बीत गई ॥२८॥ उस कार्यके समाप्त होनेपर ब्राह्मणने उससे कहा अब तू पुत्रके निकट जा परंतु उसका दाहादिकार्य सम्पादनकर शीघ्र इस स्थानमें आ ॥२९॥ देखो मेरे प्रातःकालके गृहकार्यमें कुछ हानि न हो परंतु राजपत्नी उसकी आज्ञा पाय अकेली विलाप करते २ रात्रिकालके समय पुत्रके समीप गई ॥ ३० ॥ क्रमानुसार काशीके बहिर्भागमें उपस्थित होकर देखा कि उसका पुत्र दरिद्रके समान पृथ्वीमें काष्ठ और तृणके ऊपर पडा है अपने पुत्रको मृतक अवस्थामें देखकर वह दीन राजमहिषी यूथभ्रष्ट

एवमुक्ता स्थिता धैर्याद् गृहकर्म चकार ह ॥ अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥ २८ ॥ ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना ॥ तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९ ॥ न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च ॥ ततस्त्वे काकिनी रात्रौ विलपंती जगाम ह ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता ॥ यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१ ॥ वाराणस्या वहिर्गत्वा क्षणाद्दृष्ट्वा निजं सुतम् ॥ शयानं रंकवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥३२॥ विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् ॥ एहि मे संमुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥ ३३ ॥ आयास्यभिमुखो नित्यमंबेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥ गत्वास्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥ ३४ ॥ पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिंग्य बालकम् ॥ तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥

मृगी और वत्सहीन गायके समान शोकातुर हुई ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब राजपत्नी माधवी अत्यंत दुःखित हो अति कातरस्वरसे इस प्रकार रुदन करनेलगी हा पुत्र! तुम एक वार मेरे सन्मुख आओ किसकारणसे तुमको क्रोध हुआ सो मुझसे कहो ॥ ३३ ॥ हा वत्स ! तुम जो वारंवार मा मा कहकर सदा मेरे पास आते तो इस समय क्यों नहीं आते यह बात कहते २ डगमगाते परोंसे जाय मूर्च्छित हो उसके ऊपर गिरपडी ॥ ३४ ॥ फिर वह चैतन्यताको प्राप्त होकर दोनों हाथोंसे पुत्रको आलिंगनकर उसका मुख चूम कातरस्वरसे रोने

लगी ॥ ३५ ॥ हा पुत्र ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा सुंदर ! इस प्रकार कहकर रुदन और मस्तक तथा वक्षःस्थलमें कराघात करने लगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तुम कहां हो ? तुम जिस अपने पुत्रको प्राणोंकी अपेक्षा भी अधिक जानते थे तुम्हारा वही पुत्र आज मृतक अवस्थामें पृथ्वीपर पडा है एकवार आनकर देखो ॥ ३७ ॥ ज्ञात होता है कि पुत्र अभी जीवित है यह विचारकर उसका मुख देखने लगी परंतु जब उसका वदन निर्जीव जाना तब तत्काल फिर मूर्च्छित हो गई ॥ ३८ ॥ फिर शीघ्रहीसंज्ञाको प्राप्तकर दोनों हाथोंसे उसका वदन ग्रहणकर उससे कहने लगी हे वत्स ! निद्रा त्यागनकर शीघ्रही जागरित हो जाओ अब भीषण ॥ ३९ ॥ रात्रि उपस्थित है

कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च ॥ हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर ॥ ३६ ॥ हा राजन्क गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् ॥ प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७ ॥ तथाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशंकया ॥ निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह ॥ ३८ ॥ हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत ॥ शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥ ३९ ॥ निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥ मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥ ४१ ॥ हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक ॥ रे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि॥४२॥तवाऽहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् ॥ देशत्यागा द्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥ ४३ ॥

इससमय शतशत शिवाका घोर शब्द सुनाई आता है. इससमय क्या भूत क्या प्रेत पिशाच और डाकिनियोंके यूथके यूथ हूँहूँकार शब्द करते हुए भ्रमण करते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे मित्र सूर्य अस्त होतेही चलेगये तुम क्यों इससमय अकेले इस स्थानमें रहगये हो, सूतजीने कहा यह कह वह कृशांगी राजमहिषी फिर करुणास्वरसे रोदन करने लगी ॥ ४१ ॥ हा शिशो! हा बाल ! हा रोहिताश्व ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा पुत्र ! तुम क्यों मुझको उत्तर नहीं देवे ॥ ४२ ॥ हे वत्स ! मैं तुम्हारी जननी हूं यह तुम क्या नहीं जानते, एकवार मेरी ओर देखो हे पुत्र ! मैं

राज्यसे च्युत और अपने देशसे निकल आई हूँ मेरे स्वामीने भी अपना देह पर्यंत बेच डाला है ॥४३॥ मैं स्वयं दासी हो गई हूं ऐसी अवस्थामें कौन प्राणीजीवनधारण करनेमें समर्थ होगा केवल तुम्हारा मुख देखकरही जीवित रहती थी तुम्हारे जन्म कालके समय ब्राह्मणोंने जो भविष्यत् वचन कहे थे अब तो वह कुछभी दिखाई नहीं देते ॥ ४४ ॥ उन्होंने कहा था कि यह बालक शूरवीर दीर्घायु दाता और देव ब्राह्मण तथा गुरुजनोंकी पूजामें तत्पर होगा अधिक क्या भूमण्डलका एकमात्र अधीश्वर होकर पुत्र और पौत्रोंके सहित राज्यसुख अनुभव करैगा ॥ ४५ ॥ यह पुत्र जितेन्द्रिय होकर मातापिताका प्रियकार्य साधन करेगा, हा पुत्र ! अब सम्पूर्ण बातेंही मिथ्या हुई ॥ ४६ ॥ हा पुत्र !

यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ॥ ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम् ॥४४॥ दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्र समन्वितः ॥ शौर्यदानरतिः सत्त्वो गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ ४५ ॥ मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥ ४६ ॥ चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः ॥ तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा ॥ ४७ ॥ लक्षणानि तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि संति च ॥ तानि सर्वाणि मोघानि संजातान्यधुना सुत ॥ ४८ ॥ हा राजन्पृथिवी नाथ क्व ते राज्यं क्व मंत्रिणः ॥ क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥ ४९ ॥ क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ॥ सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥ ५० ॥

चक्र,मत्स्य, आतपत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वज, कलश और चमर इत्यादि सम्पूर्ण चिह्नही तुम्हारी हथेलीमें विद्यमान हैं हे सुत ! इनके सिवाय अन्यान्य सम्पूर्ण ॥ ४७ ॥ शुभ लक्षण भी तुम्हारे पैरोंके नीचे तलुओंमें विराजमान हैं, परंतु आज वह सभी क्या व्यर्थ हो गये ? ॥ ४८ ॥ हा वत्स ! तुम पृथ्वीके अधीश्वर हो परन्तु तुम्हारा वह राज्य, वह मंत्रीलोग, वह सिंहासन; वह छत्र, वह खड्ग, वह विपुलधन ॥ ४९ ॥ वह अयोध्यानगरी, वह शोभायमान अटारियें ! वह गज, अश्व, रथ और वह प्रजावर्ग आज कहां है ? हा पुत्र ! इस समय इन सब और माताको

छोड़कर तुम कहां चले गये ॥ ५० ॥ हा कांत ! हा नाथ ! आकर इस समय अपने पुत्रको देखो जो पुत्र अतिबाल्यावस्थामें विचरण करते २ कुंकुमविलेपित तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल ॥५१॥ अपने शरीरको रजःपंकसे मलीन किया करता था हा नरनाथ ! हे भुपते ! जो पुत्र तुम्हारी गोदीमें जाकर बाल्यस्वभावके अज्ञानवशसे मृगनाभिरचित तुम्हारे ॥ ५२ ॥ माथेपर तिलक मल देता आज उस पुत्रकी अवस्था देखो आहा ! पहले मैं धूलिलिप्त जिसके मुखको चूमती थी ॥५३॥ आज उसी मुखपर मक्खियें बैठती हैं कीट दंशन करते हैं हाय ! यहभी मैं अपनी आंखोंसे देखती हूं हे राजन् ! तुम्हारा वह पुत्र दरिद्रके समान मृतक अवस्थामें भूशय्यापर शयन कर रहा है तुम एक बार आनकर देखो

हा कांत हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् ॥ येन ते रिंगता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम् ॥ ५१ ॥ स्वशरीररजःपंकैर्विशालं मलिनीकृतम् ॥ येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥ भ्रंशितो भालतिलकस्तवांकस्थेन भूपते ॥ यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहार्द्रे चुंबितं मया ॥ ५३ ॥ तन्मुखं मक्षिकालिंग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम् ॥ हा राजन्पश्य तं पुत्रं भुवि स्थं रंकवन्मृतम् ॥ ५४ ॥ हा देव किं मयाऽकृत्यं कृतं पूर्वभवांतरे ॥ तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ॥ ५५ ॥ हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर ॥ एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ॥ ५६ ॥ जागृतास्त्वरितास्तस्या पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः ॥ जना ऊचुः ॥ का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥ एकैव निर्भया रात्रौ यस्मात्त्वमिह रोदिषि ॥ एवमुक्ताऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥

॥५४॥ हा देव ! मैंने जन्मान्तरमें क्या कार्य किया है कि इस लोकमें उस कर्मके फलके पार पानेका उपाय नहीं देखती ॥ ५५ ॥ हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा सुन्दर ! अब कहीं भी क्या तुमको नहीं देखूंगी ? राजमहिषी माधवी इसप्रकार अनेक प्रकारके विलाप करने लगी नगरपाल उसके इस प्रकारसे विलापकी ध्वनिको सुनकर ॥ ५६ ॥ जागगये और अत्यंत विस्मित हो शीघ्र उसके निकट जाय पूछने लगे नगरनिवासी बोले कि तू कौन है यह किसका पुत्र है तेरा पति कहां है ? ॥ ५७ ॥ तू अकेली निर्भय रात्रिकालके

समय क्यों इस स्थानमें रोदन करती है ? उनके इस प्रकार पूछनेपर भी इस कृशाङ्गी राजमहिषीने कुछ उत्तर न दिया ॥ ५८ ॥ फिर पूछनेपर भी वह कुछ न बोली, परंतु कुछ कालोपरांत ही अत्यंत दुःखसे कातर हो विलाप करने लगी, शोकसे उसके दोनों नेत्रोंसे प्रबल अश्रुधारा बहने लगी ॥५९॥ अनंतर मनुष्य उसके ऊपर सन्देहकर शंकित हुए, यही क्या बरन् त्राससे उनके सब अंग रोमांचित हो गये, तब वह सम्पूर्ण शस्त्र निकालकर परस्पर कहने लगे ॥ ६० ॥ यह स्त्री जब कि कुछ उत्तर नहीं देती तो यह कभी स्त्री नहीं है, ऐसा बोध होता है कि कोई मायावी बालघातिनी राक्षसी होगी, इस कारण यत्नसहित इसको मारना उचित है ॥ ६१ ॥ यदि राक्षसी न

भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह ॥ विललापाऽतिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥ अथ ते शंकितास्तस्यां रोमांचिततनूरुहाः ॥ संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धतायुधपाणयः ॥ ६० ॥ नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते ॥ तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ॥६१॥ शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः ॥ भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ॥ ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् ॥ भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा ॥ ६३ ॥ खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ आकृष्य पक्कणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥ ६४ ॥ हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी ॥ वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले ॥ ६५ ॥

होती तो क्यों रात्रिके समय इस नगरके बाहरी भागमें स्थिति करती ? यह राक्षसी किसी बालकको भक्षण करनेके निमित्त इस स्थानमें लाई है इसमें संदेह नहीं ॥६२॥ यह बात कह उन्होंने शीघ्रही उसके केशोंको दृढ़रूपसे पकडकर हे राक्षसि ! कहां जाती है ? इस प्रकार कह किसीने उसका हाथ किसीने उसकी गरदन पकड ली॥६३॥तब उन असंख्य अस्त्रधारी पुरुषोंने बलपूर्वक उसे चांडालके घर ले जाकर चांडालके हाथमें समर्पण किया ॥ ६४ ॥ सबने मिलकर कहा कि हे चांडाल ! आज नगरके प्रांतभागमें इस बालकघातिनी राक्षसीको पकडा

है, अतएव तुम बाहर वध भूमिमें लेजाकर इसको शीघ्र मारो ॥६५॥ चांडालने उसके शरीरको देखकर कहा कि यह राक्षसी इस लोकमें विख्यात है मैं इसको पहलेसे ही जानता हूं परंतु इसको कभी कोई नहीं देखता इस मायावीने साधारण मनुष्योंके अनेक बालक ॥६६॥ भक्षण किये हैं इसके मारनेसे तुमको बहुत पुण्य होगा और इस लोकमें तुम्हारी सुकीर्ति सर्वदा विख्यात रहेगी इस समय तुम अपने२ घरोंको जाओ ॥६७॥ जो मनुष्य स्त्री, बालक, गौ और ब्राह्मणकी हत्या करताहै जो सोना चुराताहै और आग लगाताहै जो मनुष्योंका गमनमार्ग विलुप्त करता है जो गुरुपत्नी हरण ॥ ६८ ॥ साधुजनोंके सहित विरोध और सुरापान करता है उसके मारनेसे पुण्य होता है स्त्रीलोक अथवा ब्राह्मणभी यदि इस प्रकार पापकार्यमें

चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता ॥ न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिंभान्यनेकधा ॥ ६६ ॥ भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् ॥ ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥ ६७ ॥ द्विजस्त्री बालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः ॥ अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥ ६८ ॥ महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ द्विजस्यापि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥ ६९ ॥ अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबंधनैः ॥ बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥७०॥ हरिश्चंद्रमथोवाच वाचा परुषया तदा ॥ रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥ ७१ ॥ तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ वेपमानोऽथ चांडालं प्राह स्त्रीवधशंकितः ॥ ७२ ॥

लिप्त हों तोभी उसके मारनेमें कुछ दोष नहीं होता ॥ ६९ ॥ अतएव इसको मारना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है चांडालने यह बात कहकर उसको मजबूत बांध लिया और उसके बालोंको खेंचकर रस्सीसे मारने लगा ॥ ७० ॥ इसके पीछे उसने निष्ठुर वचनोंसे हरिश्चन्द्रसे कहा रे दास ! इसका वधकर दुष्टस्वभाव यह स्त्री अत्यन्त दुष्ट है अतएव इसके वध करनेमें कुछ विचार न करना ॥ ७१ ॥ तब नरपति उसके इस प्रकार गिरे हुए वज्रके समान कठोर वचन सुनकर कम्पित हो गये फिर चित्तको स्थिरकर स्त्रीवधकी शंकासे चांडालसे बोले ॥ ७२ ॥

मैं इस कार्यके करनेमें असमर्थ हूं इस कारण आप यह भार अन्य सेवकके ऊपर डालिये. वही इसको मारेगा आप इसके अतिरिक्त जिस किसी कार्यकी आज्ञा देंगे यदि असाध्य हो तो भी मैं उसे करूंगा ॥ ७३ ॥ राजाके यह वचन सुनकर श्वपचने कहा तू भय त्यागकर असि ग्रहण कर, इसका मारना पुण्यदायक है ॥ ७४ ॥ यह मायाविनी बालकोंको सर्वदा नष्ट करती है, इसकी रक्षा करना कभी उचित नहीं राजा उसके इस प्रकारके वचन सुन महादुःखित हो कहने लगे कि ॥ ७५ ॥ स्त्रियोंकी रक्षा करना सर्वदा उचित है कभी संहार करना ठीक नहीं है विशेषकरके धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीके मारनेमें अधिक पाप निर्देश किया है ॥ ७६ ॥ जो

न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममापरम् ॥ असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा तदुक्तवचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् ॥ मा भैषीस्त्वं गृहणाऽसिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥ ७४ ॥ बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नेन न हंतव्याः कदाचन ॥ स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥ ७६ ॥ पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥ चांडाल उवाच ॥ मा वदाऽसिं गृहाणैनं तीक्ष्णाविद्युत्समप्रभम् ॥ यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत् ॥ ७८ ॥ तस्य हिंसा कृता नूनं वहुपुण्यप्रदा भवेत् ॥ भक्षितान्यनया भूरि लोके डिंभानि दुष्टया ॥ ७९ ॥ तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ॥ राजोवाच ॥ चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥ ८० ॥

पुरुष ज्ञान अथवा अज्ञानसे स्त्रीहत्या करता है वह मनुष्य महारौरव नरकमें पडता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ७७ ॥ चांडालने कहा तुम यह बात मत कहो बिजलीके समान प्रभायुक्त यह असि ग्रहण करो जिस स्थानमें एकका वध होनेसे अनेकोंको सुख हो ॥ ७८ ॥ उसकी हिंसा करनेसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं इस दुष्टाने यहां अनेक बालकोंको भक्षण किया है ॥ ७९ ॥ इस कारण शीघ्र इसको मारकर काशीवासियोंको सावधान करो. राजाने कहा हे चांडालाधिपते ! मैंने जन्मसे "कभी स्त्रीवध न करूंगा" यह कठिनव्रत अवलम्बन

किया है ॥ ८० ॥ इसी कारण आपकी आज्ञासे स्त्रीवधके विषयमें यत्न नहीं कर सकता ॥ चांडालने कहा हे दुष्ट ! प्रभुकार्यके अतिरिक्त और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥ इस कारण चैतन्य होकर आज किस कारणसे मेरा कार्य नहीं करता जो सेवक प्रभुका वेतन लेकर उसके कार्यमें हानि करता है ॥ ८२ ॥ वह अयुत कल्पमें भी नरकसे छुटकारा नहीं पासकता. राजाने कहा हे चांडालनाथ ! मुझको अत्यन्त दारुण अन्य किसी कार्यमें नियुक्त कीजिये. मैं सहजमें ही उसको कर दूंगा॥८३॥ अथवा यदि आपका कोई शत्रु हो तो उसको बता दीजिये मैं अभी उसका संहार करूंगा इसमें सन्देह नहीं मैं उस शत्रुको संहार कर आपको यह पृथ्वी प्रदानकरूंगा ॥ ८४ ॥ अधिक क्या देव, दानव, उरग,

आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ॥ चांडाल उवाच ॥ स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यते परम् ॥ ८१ ॥ गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥ ८२ ॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ॥ राजोवाच ॥ चांडालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥ ८३ ॥ स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ८४ ॥ देवदेवोरगैः सिद्धैर्गंधर्वैरपि संयुतम् ॥ देवेंद्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥८५॥ एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चंद्रस्य भूपतेः ॥ चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥८६॥ चांडाल उवाच ॥ "नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम् ॥ " चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः ॥ दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥ ८७ ॥ निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित्पापभयं हृदि ॥ किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेश्मनि ॥ ८८ ॥

किन्नर,सिद्ध और गंधर्वोंके साथ यदि इंद्रभी स्वयं सन्मुख हो तथापि शाणित बाणोंसे उनको मारकर पराजय कर सकता हूं परन्तु स्त्रीहत्या किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकता॥ ८५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुनकर चांडाल क्रोधसे कम्पितकलेवर हो महीपतिसे कहने लगा चांडाल बोला तुमने दास होकर जो किया वह दासके उपयुक्त नहीं है, तू चांडालका दासत्व स्वीकार कर देवताओंके समान वचन कहता है अतएव रे दास ! अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, अब जो कहता हूं सो सुनो ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ रे निर्लज्ज ? तेरे हृदयमें यदि कुछ पापका

भय हो तो चांडालके घर किसकारण दासत्व करनेको आता ॥ ८८ ॥ यह असि लेकर उसका मस्तक छेदन कर यह बात कहकर चांडालने राजाको खड्ग प्रदान किया ॥८९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ सूतजीने कहा इसके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्र नीचेको मुख करके रानीसे कहने लगे कि, हे बाले ! मैं अत्यन्त पापिष्ठ हूं, नहीं तो क्यों ऐसे हीन कार्यके करनेमें प्रवृत्त होता ? जो हो इस समय तू मेरे सन्मुख बैठ ॥ १ ॥ मेरे हाथ यदि तेरा संहार करनेमें समर्थ हों तो तेरा शिर छेदन करूंगा, राजा यह बात

गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोंऽबुजम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे हरिश्चंद्रोपाख्याने पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः ॥ अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥ १ ॥ शिरस्ते च्छेदयिष्यामि हंतुं शक्नोति चेत्करः ॥ एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हंतुं गतो नृपः ॥ २ ॥ न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् ॥ अब्रवीद् भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥ स्त्र्युवाच ॥ चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे ॥ मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात् ॥ ४ ॥ तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवांतिकम् ॥ तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥ ५ ॥ तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति ॥ सा जगामातिदुखार्ता विलपंती सुदारुणम् ॥ ६ ॥

कहकर असि उठाय उसको मारनेके लिये अग्रसर हुए ॥ २ ॥ राजा जिसप्रकार उस अपनी स्त्री नहीं जानसके रानी भी उसी प्रकार उसको हरिश्चन्द्र नरपति नहीं जानसकी इस कारण रानी शोकसे कातर हो अपनी मृत्युकी इच्छासे कहने लगी ॥ ३ ॥ स्त्री बोली हे चांडाल ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं कुछ कहती हूं सो सुनो मेरा पुत्र मरा हुआ यहांसे कुछेक दूर नगरप्रांतमें पडा है ॥ ४ ॥ उसको तुम्हारे निकट लाकर जबतक उसका दाहादिकार्य न करूं तबतक तुम ठहरो, पश्चात् मुझको असिद्वारा निहत करना ॥ ५ ॥ राजाने कहा अच्छा

यही हो यह बात कहकर उसको उस मृतक बालकके निकट जा आज्ञा दी, तब वह दुःखसे दारुण विलाप करती चली ॥ ६ ॥ नरेन्द्रकी भार्या सर्पके काटे बालकके समीप जा हा पुत्र ! हा वत्स ! हा शिशो ! इस प्रकार बारम्बार कहती ॥ ७ ॥ कृश विवर्ण मलीन वेष धूरि धूसरित केशवाली स्मशानभूमिमें आ बालकको स्थापितकर वहां बैठी और बोली " हे राजन् ! अपने बालकको देखो ! जो अपने मित्रोंके साथ खेलता हुआ उपवनमें सर्पके काटनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ है " ॥ ८ ॥ तब नरपति हरिश्चन्द्रने उस बालाकी इस प्रकार करुणायुक्त विलापध्वनिको सुनकर शवके समीप जा उसके मुखपरका ढका हुआ वस्त्र हटा दिया ॥ ९ ॥ दीर्घकाल प्रवासकष्टसे रानीकी

भार्या तस्य नरेंद्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥ हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥७॥ कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्त शिरो रुहा ॥ श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि ॥८॥ " राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले ॥ रममाणं स्वसखि भिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम् ॥ " तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ॥ शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा ॥९॥ तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः ॥ चिरप्रवाससंतप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ॥१०॥ साऽपि तं चारुकेशांतं पुरो दृष्ट्वा जटालकम् ॥ नाभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥११॥ भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाऽऽशीविषपीडितम् ॥ नरेंद्रलक्षणोपेतमचिंतयदसौ नृपः ॥ १२ ॥ अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् ॥ दर्पणप्रतिमोत्तुंगकपोलयुगशोभितम् ॥ १३ ॥

मूर्ति बदलगई थी, इस कारण राजा हरिश्चन्द्र उस रोती हुई अपनी भार्याको नहीं पँहचान सके ॥ १० ॥ इधर राजाभी पहिलेके समान वह कुंचिताग्रकेशकलाप नहीं थे इस समय वह जटामें परिणत हुए थे इस कारण रानी भी राजाको नहीं पहचान सकी ॥ ११ ॥ तब राजा पृथ्वीपर पडें हुए विषजर्जरित उस बालकके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण राजलक्षण देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १२ ॥ उसका वदन मण्डल पूर्ण चन्द्रमाके समान अत्यन्त सुन्दर है कहीं भी बिन्दुमात्र व्रण नहीं है नासिका ऊँची दोनों कपोल दर्पणके समान विमल

और प्रशान्त हैं ॥ १३ ॥ केशकलाप नीलवर्ण टेढ़े दीर्घ और तरंगित हैं दोनों नेत्र कमलदलके समान खिले हुए दोनों ओष्ठ बिम्बाफलके समान लोहित वर्ण ॥१४॥ चौंडी छाती कानों पर्यन्त दीर्घ नेत्र जानुतक लम्बी भुजा दोनों कन्धे ऊंचे सुन्दरविशाल दोनों चरण सूक्ष्म अंगुली भूमण्डल धारण करनेमें समर्थ ॥१५॥ मृणालके समान कोमल चरण गम्भीर नाभि उन्नत कन्धे हैं अहो कष्ट! निश्चय ही इसनेकिसी राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है॥१६॥अहो क्या कष्ट है! दुरात्मा कालने इसको इस दशामें प्राप्तकिया. सूतजीने कहा फिर माताकी गोदीमें शयन करते हुए उस

नीलान्केशान्कुंचिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घास्तरंगिणः ॥ राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ बिंबफलोपमौ ॥ १४ ॥ विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः॥विशालपादो गंभीरः सूक्ष्मांगुल्यवनीधरः ॥ १५ ॥ मृणालपादो गंभीरनाभिरुद्धतकंधरः ॥ अहो कष्टं नरेंद्रस्य कस्याऽप्येप कुले शिशुः ॥ १६ ॥ जातो नीतः कृतांतेन कालपाशाद्दुरात्मना ॥ सूत उवाच ॥ एवं दृष्ट्वाऽथ तं बालं मातुरंके प्रसारितम् ॥ १७ ॥ स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत् ॥ सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥१८॥ नीतो यदि च घोरेण कृतांतेनाऽत्मनो वशम् ॥ विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः ॥१९॥ ततो राज्ञी महादुःखवेशादिदम भापत ॥ राज्ञ्युवाच ॥ हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥२०॥ दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते ॥ हा नाथ राजन्भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥ २१ ॥

मृतक बालकको पैरोंसे मस्तकपर्यन्त देखके हरिश्चन्द्रके मनमें पूर्वस्मृतिका आविर्भाव हुआ तब वह अपना पुत्र जानकर हाय! हाय! शब्दसे रोदन करने लगे नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वह कहनेलगे कि हमारेही पुत्रकी यह अवस्था हुई है ॥ १७ ॥१८॥ यद्यपि पुत्र घोरकालके वशीभूतहुआहै तथापि राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल मनमें चिन्ताकर स्तब्ध रहे ॥१९॥ अनन्तर राणीने घोर दुःखके वेगसे कहा राणी बोली हा वत्स! किस पापकी चिन्तासे मुझको यह भयानक दुःख हुआ है ॥२०॥ उसके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं कर सकती। हा नाथ! हा राजन्! मैं अत्यंत

दुःखसे कातर हुई हूं इस अवस्थामें मुझको छोड़कर ॥२१॥ किस कारणसे किस स्थानमें गुप्त भावसे काल व्यतीत करते हो? हा विधातः! तैने राजर्षि राजा हरिश्चन्द्रका राज्य नष्टकर सुहृद त्याग और भार्या तथा पुत्र पर्यन्त भी बिकवा दिया ॥ २२ ॥ उन्होंने तेरा ऐसा क्या अपकार किया था? तब राजा उसको इस प्रकार विलाप ध्वनिको सुनकर धैर्यच्युत हो गये ॥ २३ ॥ और उस देवी तथा मृतक पुत्रको पहचानकर कहने लगे कि यही मेरी स्त्री और यही मृतक बालक मेरा पुत्र है अहो! क्या कष्ट है ॥ २४ ॥ इस प्रकार अत्यंत शोकसे आक्रांत और मूर्छित हो राजा पृथ्वीपर गिर पडे राणीने भी राजाकी ऐसी अवस्था देख ज्योंही राजा हरिश्चन्द्रको पहिचाना ॥ २५ ॥ कि

कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥२२॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥ २३ ॥ प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम् ॥ कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चाऽपि मे सुतः ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा पपात संतप्तो मूर्च्छामतिजगाम ह ॥ सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥ २५ ॥ मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥ चेतनां प्राप्य राजेंद्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥ २६ ॥ विलेपतुः सुसंतप्तौ शोकभारेण पीडितौ ॥ राजोवाच ॥ हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥२७॥ पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥ तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥ २८ ॥ उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥ कस्य जानु प्रणीतेन पिंगेन क्षितिरेणुना ॥ २९ ॥

त्योंही मूर्छित और निश्चेष्ट हो धरणीपर गिर पडी कुछ कालोपरान्त फिर राजेन्द्र और राणी दोनोंने एक साथ चेतना प्राप्तकी ॥ २६ ॥ फिर शोकसे अत्यंत संतप्त और कातर हो विलाप करने लगे राजाने कहा हा वत्स! तुम्हारा वह कुंचित अलग सुशोभित सुकोमल मुखमण्डल ॥ २७ ॥ आज मलीन देखकर भी क्यों मेरा हृदय शतखंड होकर विदीर्ण नहीं होता? हा रोहित! तुम मधुर स्वरसे तात! तात! कहकर कब मेरे समीप आओगे ॥ २८ ॥ मैं स्नेहवश हो गोदीमें लेकर हे वत्स! हे वत्स! कहकर कब पुकारूंगा, किसकी जानुलिप्त पिंगल वर्ण पृथ्वीकी

रजसे मेरा डुपट्टा उत्सङ्ग (गोदी) और अंग मलीन होगा, हे हृदयानन्द वर्धन ! मैंने कुछ भी पुत्र सुख नहीं देखा ॥२९॥३०॥ मैंने पिता होकर भी सामान्य वस्तुके समान तुमको बेंचा है हीन दैवकी विडम्बनासे मेरा असीम राज्य बांधव और प्रभूत धन यह सभी जाता रहा अन्तमें मेरा एक मात्र पुत्र था वह भी नृशंस कालके मुखमें पतित हुआ ॥३१॥ हाय ! विषम सर्पके काटनेसे मृतक पुत्रका वदनमण्डल देखकर आज मैं घोरसंपात विपसे दग्ध हुआ. राजाने गद्गदस्वरसे यह बात कह ज्योंही उस बालकको गोदीमें लिया ॥३२॥ कि त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिरपडे अनन्त राजाको पड़ा हुआ देखकर शैब्या इस प्रकारसे चिन्ता करनेलगी ॥ ३३ ॥ इनके कण्ठस्वरसे बोध होता है कि यही पुरुष प्रवर विज्ञजनोंका चित्त

ममोत्तरीयमुत्संगं तथांगं मलमेष्यति ॥ न वाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनंदन ॥ ३० ॥ " मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥" गतं राज्यमशेषं मे सबांधवधनं महत् ॥ " हीनदैवानृंशसेन दृष्टो मे तनयस्ततः ॥ " अहं महाहिदष्टस्य पुत्रस्याऽऽननपंकजम् ॥ ३१ ॥ निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाऽधिकृतोऽधुना ॥ एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ ३२ ॥ परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥ ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैब्या चैवमचिंतयत् ॥ ३३ ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥३४॥ तथाऽस्य नासिका तुंगा तिलपुष्पोपमा शुभा ॥ दंताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३५ ॥ श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः ॥ विहाय पुत्रशोकं सा पश्यंती पतितं पतिम् ॥ ३६ ॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता ॥ वीक्षती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥ ३७ ॥

प्रसन्न करनेवाले राजा हरिश्चन्द्र हैं ॥३४॥ उन विख्यातकीर्ति राजा हरिश्चन्द्रकी जैसी अनारके समान दशन पंक्ति और नासिका ऊंची तथा तिलके फूलके समान सुकुमार थी इनकी भी वैसी ही दिखाई देती है ॥३५॥ परन्तु यदि वही वह नरेश्वर राजा हरिश्चन्द्र हैं तो किस कारणसे श्मशानमें आये हैं इस प्रकार विचार पुत्रशोक त्यागकर ज्योंही पृथ्वीपर पडे हुए पतिको देखने लगी ॥३६॥ त्योंही हर्ष विषाद और विस्मयने उसके हृदयको आक्रमण किया तब वह राजाको देखते देखते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥३७॥

फिर क्रमानुसार चैतन्यता प्राप्तकर कातर स्वरसे कहने लगी हा दैव ! जो राजा एक समय अमरके समान थे आज तैंने उन नरपतिको राज्य नष्ट सुहृदत्याग भार्या और पुत्र पर्यन्त बिकवाकर चांडालरूपमें परिणत किया है अतएव तुमको दया नहीं धर्म नहीं न्याय अन्यायका विचार नहीं और लज्जा भी नहीं है इस कारण तुझको धिक्कार है ॥३८॥३९॥ हे राजन् ! आज कालने तुमको चांडाल बनाया है अब तुम्हारा वह छत्र वह सिंहासन ॥४०॥ वह चामर और वह दोनों विजय कहां गये ? आज विधाता का यह क्या विपरीत कोप है, पहले इन महात्माके गमनकालमें

प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत ॥ धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित ॥३८॥ येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥ ३९ ॥ प्रापयित्वाऽपि येनाद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः ॥ नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथाऽपि वा ॥ ४० ॥ चामरव्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥ यस्याऽस्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः ॥ ४१ ॥ स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वंति विरजस्कं महीतलम् ॥ सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरंतरे ॥ ४२ ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रांतलग्नकेशसुदारुणे ॥ वसानिष्पंदसंशुष्कमहापटलमंडिते ॥ ४३ ॥ भस्मांगारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ गृध्रगोमायुनादार्तं पुष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ ४४ ॥ चिताधूमायतपटनीलीकृतदिगंतरे ॥ कुणपास्वादनमुदा संप्रकृष्टनिशाचरे ॥ ४५ ॥ चरत्यमेध्ये राजेंद्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥ एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कंठे राज्ञो नृपात्मजा ॥ ४६ ॥

राजा लोग भृत्य स्वरूप होकर ॥ ४१ ॥ अपने दुपट्टोंसे पृथ्वीकी धूलि झाड़ते थे, आज वही राजा कपालोंसे व्याप्त शवसंस्कारको लाये हुए क्षुद्रकलशोंसे पूर्ण ॥४२॥ मृतकोंके गलेकी पुष्प मालाओंके डोरेमें बाल उलझनेसे भीषणवसाके निकलनेसे सूखे महापटलसे मंडित ॥ ४३ ॥ भस्मके अंगारोंसे आधे जले मुर्दोंकी अस्थि और मज्जाके संघट्टसे भयंकर गृध्र गोमायुओंके नादसे क्षुद्र पक्षियोंके पोषक ॥ ४४ ॥ चिताके धूमरूप पटसे आकाशको नीलवर्ण करनेवाले मांसके आस्वादमें प्रसन्न विचरण शील राक्षसोंसे व्याप्त ॥४५॥ इस अपवित्र स्थानमें विचरण करते

दुःखसे पीडित हैं इस प्रकार कह रानी राजाके कंठमें लिपट गई ॥ ४६ ॥ और कष्ट शोकसे व्याकुल हो घोर विलाप करने लगी, हे राजन्! आप जो अपनेको चांडाल कहते हो यह स्वप्न है अथवा सत्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! सो कहो मेरा मन मोहित होता है, हे धर्मज्ञ ! जो ऐसा है तो धर्मने कुछ सहायता नहीं दी ॥ ४८ ॥ तथा ब्राह्मण देवता आदिके पूजनमें, सत्यपालनमें यदि ऐसे ही सहायता प्राप्त हो तो सत्यकी रक्षा नहीं हो सकती धर्मकी रक्षा न होनेसे सत्य आर्जव और अनृशंसताकी रक्षा नहीं हो सकती ॥ ४९ ॥ आप परम धर्मात्मा होकर भी राज्यच्युत हुए । सूतजीने कहा शीर्णदेह शैब्याके ऐसे वचन सुनकर राजा दीर्घ और उष्ण श्वास छोडते हुए ॥ ५० ॥

कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा ॥ राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥ ४७ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वे मुह्यते मम ॥ यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ ४८ ॥ तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने ॥ नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता ॥ ४९ ॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५० ॥ कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् ॥ रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५१ ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५२ ॥ मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः ॥ हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैब्या गद्गदया गिरा ॥ ५३ ॥ कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम ॥ स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्यो भव भूपते ॥ ५४ ॥

जिस प्रकार श्वपचत्वको प्राप्त हुए थे, बाष्पकंठ द्वारा स्त्रीसे विस्तारसहित वह वर्णन किया उस राजपत्नीने भी यह सुनकर अत्यन्त दुःखित मनसे उष्ण श्वास त्यागकर ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पुत्रकी मृत्यु हुई थी वह आद्योपान्त राजासे निवेदन किया यह सुनते ही राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५२ ॥ फिर क्रमानुसार चेतना प्राप्तकर जिह्वासे चाट वारंवार मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे तब शैब्याने गद्गदस्वर हो राजा हरिश्चन्द्रसे कहा ॥ ५३ ॥ इस समय मेरा मस्तक छेदन कर प्रभुकी आज्ञा पालन करो, हे भूपते !

तो आप सत्यसे रक्षा पावेंगे और प्रभुकी आज्ञा भी उल्लंघन न होगी ॥ ५४ ॥ हे राजेन्द्र ! विशेषकर यह परद्रोहजनित अथवा असत्य व्यवहार जनित पाप आपको स्पर्श नहीं करेगा, यह सुन राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५५ ॥ किन्तु क्षणमात्रमें ही चेतना प्राप्त कर अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! तुम किस प्रकार ऐसे निष्ठुर वचन मुखसे निकालती हो ? ॥ ५६ ॥ जो मुखसे भी उच्चारण नहीं किया जा सकता वह कार्य किस प्रकार करूंगा ? शैब्याने कहा हे विभो ! मैंने गौरी देवीकी पूजा की है और अन्यान्य देवता तथा ब्राह्मणोंकी भी पूजा की है ॥ ५७ ॥ अतएव उनकी कृपासे आप जन्मान्तरमें भी मेरे पति होंगे, राजा यह बात सुनकर तत्काल पृथ्वीपर

माऽसत्यं तव राजेंद्र परद्रोहस्तु पातकम् ॥ एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ५५ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः ॥ राजोवाच ॥ कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५६ ॥ यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् ॥ पत्न्युवाच ॥ मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ॥ ५७ ॥ भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो ॥ श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५८ ॥ मृतस्य पुत्रस्य तदा चुंचुंब दुःखितो मुखम् ॥ राजोवाच ॥ प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ॥ ५९ ॥ नात्मायत्तोऽहं तन्वंगि पश्य मे मंदभाग्यताम् ॥ चांडालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६० ॥ चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥ नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ ६१ ॥ तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे ॥ मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ॥ ६२ ॥

गिरपडे ॥ ५८ ॥ और शीघ्र उठ तथा दुःखित हो मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! मैं अब दीर्घ कालतक क्लेश नहीं सह सकूंगा ॥ ५९ ॥ परन्तु हे कृशाङ्गी ! देखो मैं ऐसा हतभाग्य हूं कि अपने अंतःकरणके ऊपर भी मेरा कुछ आधिपत्य नहीं है, चांडालकी विना आज्ञा यदि अग्निमें प्रवेश करूं ॥ ६० ॥ जो जन्मान्तरमें भी फिर मुझको चांडालका दासत्व प्राप्त होगा, फिर नरकमें जाकर दारुण क्लेश भोगना होगा ॥ ६१ ॥ किंतु वह मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है, महा रौरवनरकमें जाकर बहुत कालतक असह्य नरकयंत्रणा सहूं वह भी मुझको श्रेष्ठ है,

दुःखसागरमें मग्न हो प्राण त्यागन करना श्रेष्ठ है ॥ ६२ ॥ परन्तु मेरा यह बालक पुत्रही वंशकी रक्षा करनेवाला है, मेरे इस बलवान् पुत्रने दैवके विपाकवशसे प्राणत्यागन किया है, अतएव क्लेश सागरमें निमग्न हो जीवन धारणकी अपेक्षा प्राण त्यागना ही श्रेष्ठ है ॥६३॥ मेरा देह इस समय चांडालके अधीन है, इस कारण इस दुर्गतिकी अवस्थामें किस प्रकार जीवन त्याग करूं, कारण कि उसकी विना आज्ञा प्राणत्याग करनेसे उसके ऋणसे नरक भोगना होगा, तोभी अत्यन्त दुःखके कारण अपना देह त्याग करूंगा ॥ ६४ ॥ पुत्रके वियोगसे जैसा दुःख उपस्थित हुआ है वैतरणी नदीके पार होनेसे अथवा असिपत्र वनमें भी ऐसा दुःख नहीं भोगना होगा अधिक क्या त्रिलोकीमें भी ऐसा

एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ मम दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ॥६३॥ कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥ तथाऽपि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम् ॥६४॥ त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥ वैतरिण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे ॥ ६५ ॥ सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥ निपतिष्यामि तन्वंगि क्षंतव्यं तन्ममाधुना ॥ ६६ ॥ न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने ॥ मम वाक्यं च तन्वंगि निबोधाऽऽहतमानसा ॥ ६७ ॥ अनुज्ञाताऽथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥ यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः॥६८॥ संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया॥ इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम् ॥६९॥ यन्मया हसता किंचिद्रहासि त्वां शुचिस्मिते ॥ अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षंतव्यं मम यास्यतः॥ ७० ॥

कोई दुःख नहीं है ॥ ६५ ॥ मैं इस समय पुत्रकी मृतकदेहके साथ प्रज्वलित अग्निमें गिरूंगा ॥ ६६ ॥ अतएव हे कृशाङ्गि ! तुम इसमें कुछ भी न कहना. हे शुचिस्मिते ! सावधान हो तुम मेरे वचन मानो ॥ ६७ ॥ इस समय आज्ञा देता हूं कि तुम ब्राह्मणके घर जाओ यदि मैंने कभी धनदान अग्निमें आहुति प्रदान और गुरुजनोंको संतुष्ट किया हो ॥ ६८ ॥ तो परलोकमें पुत्र और तुम्हारे साथ समागम होगा परन्तु इस लोकमें इस अभीष्टके प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्यके मिष गुप्तभावसे

यदि कोई अप्रमाणिक बात कही हो तो मेरे प्राणकालके समय वह सम्पूर्ण क्षमा करना ॥ ७० ॥ हे शुभे ! तुम अपनेको राजपत्नी जानकर ब्राह्मणका कभी तिरस्कार मत करना, प्रभुको देवताके समान जानकर यत्नसहित उनको संतुष्ट करना ॥ ७१ ॥ रानीने कहा हे हे राजर्षे ! मैं भी इस प्रज्वलित अग्निमें पतित हूंगी हे देव ! मैं इस दुःखका भार नहीं सह सकती अतएव आपके संग चलूंगी ॥ ७२ ॥ आपके संग गमन करना मुझको श्रेष्ठ है अतएव इसके अन्यथा नहीं होगा हे मानद ! आपके संग ही स्वर्ग अथवा नरक भोगूंगी ॥७३॥ तब यह बात सुनकर राजाने कहा हे पतिव्रते ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः

राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः ॥ सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ७१ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने ॥ दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया ॥ ७२ ॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत् ॥ सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चन्द्रोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ॥ भार्यया सहितो राजा बद्धांजलिपुटस्तदा ॥ १ ॥ चिंतयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् ॥ पंचकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २ ॥ रक्तांबरपरीधानां करुणारससागराम् ॥ नानायुधधरामंबां जगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥ तस्य चिंतयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥

॥ २६ ॥ सूतजीने कहा फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय अपने पुत्रको उसके ऊपर रक्खा, उसके उपरांत स्वयं हाथ जोड भार्याके सहित ॥ १ ॥ जगदीश्वरी परमेशानीका ध्यान करने लगे, वह शताक्षी जीवोंके अन्नमयादि पंचकोशके अन्तरमें विराजमान रहती है, वह अन्नरसमय पुरुषोंके पुच्छ स्थित (आधारचक्रस्थित) ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २ ॥ और करुणारसकी सागरस्वरूप हैं, वह लाल वस्त्र पहरकर अनेक प्रकारके आयुध धारणकर जगत्की रक्षा करनेमें तत्पर रहती हैं ॥ ३ ॥ जब राजा इस प्रकार ध्यानमें निमग्न हुए तब इंद्रादि सम्पूर्ण देवता

धर्मको आगेकर शीघ्र हरिश्चन्द्रके निकट आये ॥४॥ उन सबने आनकर कहा हे राजन् ! तुम सुनो ! मैं पितामह, स्वयं धर्म, भगवान् विष्णु॥५॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण मरुद्गण लोकपालगण,चारणगण गंधर्वगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार अन्यान्य सम्पूर्ण देवतागण और विश्वामित्र स्वयं आये हैं, जो विश्वामित्र तीनों जगत् प्रदान करके भी धर्मानुसार मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥६॥७॥ इस समय वही विश्वामित्र तुम्हें अभीष्ट देनेको अत्यन्त अभिलाषी हुए हैं. धर्मने कहा हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्यमें उद्यत न होना मैं धर्म हूं ॥८॥ मैं तुम्हारी

आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो ॥ अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥५॥ साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ॥ नागाः सिद्धाः सगंधर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ ६ ॥ एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति ॥ धर्म उवाच ॥ मा राजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥ ८ ॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः ॥ इंद्र उवाच ॥ हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेंऽतिकम् ॥ ९ ॥ त्वयाऽद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकास्सनातनाः ॥ आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥१०॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ ११ ॥ इंद्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ ॥ पुष्पवृष्टिश्च महती दुंदुभिस्वन एव च ॥ १२ ॥

तितिक्षा (सहनशीलता) दम और सत्वादिगुणोंसे संतुष्ट हो तुम्हारे निकट आयाहूं इन्द्रने कहा हे हरिश्चन्द्र ! मैं भी तुम्हारे निकट उपस्थित हुआ हूं ॥९॥ अतएव तुम्हारे सौभाग्यकी सीमा नहीं तुमने भार्या और पुत्रके साथ इस समय सनातन लोकोंको जय किया है अब भार्या और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो ॥१०॥ हे राजन् ! जो मनुष्योंको दुर्लभ है तुमने अपने कर्मफलसे उसको जीतलिया सूतजीने कहा इसके उपरांत अपमृत्यु विनाशन अमृतकी वर्षा ॥ ११ ॥ इन्द्रने चितामें स्थित बालकके ऊपर की इसी समय आकाशमण्डलसे पुष्पवृष्टि और दुन्दुभि

ध्वनि होनेलगी ॥ १२ ॥ इसी अवसरमें वह महानुभाव राजाका पुत्र चितासे उठ बैठा वह पहलेके समान सुकुमार देह स्वस्थचित्त प्रसन्न और प्रीतमनवाला था ॥ १३ ॥ हरिश्चन्द्रने तत्काल पुत्रको आलिंगन किया और इसी समय राजा तथा रानी दोनोंही पूर्वके समान सौन्दर्य प्राप्तकर मनोहर वस्त्र और मालाओंसे भूषित हुए ॥१४॥ तब स्वास्थ्य और अभीष्ट प्राप्त होनेके कारण आनंदसे उनका हृदय पूर्ण होगया तब इंद्रने नरपतिसे कहा ॥१५॥ हे महाभाग ! तुम पुत्र और कलत्रके सहित अपने कर्मके फलसे स्वर्गमें चल परम पवित्र सद्गति प्राप्त करो ॥ १६ ॥ हरि

समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञास्तस्य महात्मनः ॥ सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः ॥ १३ ॥ ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा ॥ सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्यांबरावृतः ॥१४॥ स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः ॥ बभूव तत्क्षणादिंद्रो भूपं चैवमभाषत ॥ १५ ॥ सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् ॥ समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥१६॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि ॥ अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥ १७ ॥ धर्म उवाच ॥ तवैवं भाविनं क्लेशमवगम्याऽऽत्ममायया ॥ आत्मा श्वपाचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्कणम् ॥ १८ ॥ इंद्र उवाच ॥ प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोह हरिश्चंद्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे ॥ मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥ २० ॥

श्चन्द्रने कहा देवराज ! श्वपचमेरा प्रभु है इनसे छुटकारा न पाकर और उनकी आज्ञा न लेकर मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा ॥ १७ ॥ धर्मने कहा तुम्हारा इस प्रकार भावी क्लेश जानकर मैंने अपनी मायासे स्वयं श्वपचरूप धारणकर तुमको यह चांडालपुरी दिखाई अधिक क्या मैं ही यह चांडाल मैं ही वह ब्राह्मण हूं, और मैंनेही काला सर्प होकर तुम्हारे पुत्रको डसा है ॥१८॥ इन्द्रने कहा हे हरिश्चन्द्र ! भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्य जिस स्थानका अधिकार करनेकी प्रार्थना करते हैं तुम स्वयं पुण्यके बलसे उस स्थानको चलो ॥१९॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे देवराज ! मैं आपको प्रणाम करता हूं आप मेरा वचन श्रवण करके विचार कीजिये,कोसलनगर निवासी सम्पूर्ण मनुष्य मेरे

विरहरूपी शोक सागरमें निमग्न हो रहे हैं ॥२०॥ इस समय उन शोकसंतप्त प्रजाको छोडकर किसप्रकार स्वर्गको चल सकता हूँ, भक्तोंके त्यागनेसे नरक होता है ब्रह्महत्या सुरापान और गोवधके ॥ २१ ॥ समान महापातक है हे शक्र ! जो भक्त सर्वदा सेवामें रत हैं उनको त्यागना अत्यन्त अनुचित है, अतएव त्यागनेसे किस प्रकार सुख भोग सकता हूं ॥२२॥ इस कारण उनको विनालिये मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा, आप स्वर्गको लौट जाइये, हे सुरेश्वर ! यदि वह मेरे संग जासके ॥२३॥ तो मभी उनके संग स्वर्ग अथवा नरकमें जासकता हूं इंद्रने कहा हे नृपवर ! उनमेंसे किसीका अधिक पाप अथवा किसीका अधिक पुण्य भिन्न भिन्न है ॥२४॥ अतएव हे भूप ! वह सम्पूर्ण एकही समय स्वर्गके

तिष्ठंति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥ २१ ॥ तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् ॥ भजंतं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम् ॥ २२ ॥ तैर्विना न प्रयास्यामि तस्मच्छक्र दिवं व्रज ॥ यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यांति सुरेश्वर ॥ २३ ॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपि तैः सह ॥ इंद्र उवाच ॥ बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥२४॥ कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥ यजते च महायज्ञैः कर्मपूर्तं करोति च ॥ तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥ उपदादान्न संत्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥ तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ २७ ॥ दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥ बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥ २८ ॥

भोगनेका किसप्रकार अधिकार रखते हैं हरिश्चन्द्रने कहा हे वासव ! पौरवर्गोंके प्रभावसे ही राजा लोग राज्यभोग करते हैं॥२५॥महायज्ञका अनुष्ठान और पूर्त्तकार्य (वापीकूपादि) सम्पादन करते हैं इसमें संदेह नहीं है मैंने भी इसी प्रकार प्रजाके प्रभावसे सम्पूर्ण धर्मकार्यका अनुष्ठान किया है ॥ २६ ॥ इसकारण जिन्होंने राजप्रयोजनीय सम्पूर्ण द्रव्य दान किया है मैं स्वर्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे उनको नहीं छोडूंगा हे देवेश! यदि उनका स्वर्गमें चलनेके अनुरूप पुण्य न हो तो कुछ मेरा पुण्य हैं ॥२७॥ अर्थात् मैंने दान यज्ञ याग इत्यादि जो कुछ सत्कार्यका अनुष्ठान

किया है वह उनका सब पुण्य स्वर्गभोगको प्राप्त हों यदि मैं अकेला कर्मका फल भोगूं तो बहुत समयतक भोग सकता हूँ ॥ २८ ॥ परंतु आपके प्रसादसे उनके संग उस कर्मका फल एकही दिनमें भोगलूं तो भी मुझको परम श्रेय है सूतजीने कहा "यही होगा" ऐसा कहकर त्रिभुवनेश्वर इन्द्र ॥ २९ ॥ गाधिनंदन विश्वामित्र और धर्म प्रसन्न हो योगबलसे उसी समय काशीसे अयोध्याको चले गये वह मुहूर्त्तमात्रमें ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रयुक्त अयोध्यानगरीमें पहुंचे ॥ ३० ॥ और उनमेंसे देवराज इंद्रने कहा कि नगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य शीघ्र राजा हरिश्चन्द्रके समीप आवें आज वह हरिश्चन्द्रके धर्मबलसे दुर्लभ स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ यह बात कहकर नागरिक मनुष्योंको

तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥ सूत उवाच ॥ एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥२९॥ प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥ गत्वा तु नगरं सर्वं चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥३०॥ हरिश्चंद्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥ आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥३१॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥ हरिश्चन्द्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥ ३२ ॥ प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति ॥ सूत उवाच ॥ तदिंद्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥ ३३ ॥ ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै ॥ कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥ विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः ॥ तदा संभूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ३५ ॥ राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः ॥ अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥ ३६ ॥

हरिश्चन्द्रके समीप ले आये, तब उन धार्मिकप्रवर राजा हरिश्चंद्रने भी नगरवासी मनुष्योंसे ॥३२॥ कहा तुम सम्पूर्णही मेरे साथ स्वर्गको चलो! सूतजीने कहा वह सुरपति और भूपतिके इसप्रकार वचन सुनकर अत्यंत आनंदित हुए और उनमें जो संसारकी वासनासे विरत हुए थे वह अपने २ पुत्रोंके ऊपर सांसारिक भार डाल आनंदहृदयसे स्वर्गमें चलनेको उद्यतहुए ॥३३॥३४॥ तब प्रजा ज्योतिर्मय देह धारणकर श्रेष्ठविमान पर चढ अत्यंत आनंदितहुई तब महानुभाव महीपाल हरिश्चंद्रने ॥ ३५ ॥ अपने पुत्र रोहिताश्वको राज्यपर अभिषिक्तकर हृष्टपुष्ट मनु

ष्योंसे पूर्ण रमणीय अयोध्यानगरी कर ॥३६॥ सुहृद्मंत्री और पुत्रका सत्कार और अभिनन्दन कर पुण्यसे प्राप्त हुई देवादिकोंको दुर्लभ॥३७॥ अपने पुण्यप्रभावसे प्राप्त विपुलकीर्ति लाभकर किंकिणीजालमंडित अतुल कामगामी सुशोभित देवदुर्लभ विमानपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ फिर सर्व शास्त्रके जानने वाले दैत्यगुरु महाभाग शुक्राचार्यने राजा हरिश्चंद्रको विमानमें देखकर तिस समय यह गाथा गाई ॥ ३९ ॥ शुक्र बोले अहो तितिक्षाका क्या आश्चर्य माहात्म्य है ? दानका क्या महत्त्वफल है ? आज जिसके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्रने महेन्द्रका सालोक्य प्राप्त किया

तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः ॥ आसांचक्रे कामगमे क्षुद्रघंटाविराजिते ॥ ३८ ॥ ततस्तांहि समालोक्य श्लोकमंत्रं तदा जगौ ॥ दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ३९ ॥ शुक्र उवाच ॥ अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलं महत् ॥ यदागतो हरिश्चन्द्रो महेंद्रस्य सलोकताम् ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम् ॥ यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम् ॥ ४१ ॥ स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम् ॥ शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ १ ॥

॥४०॥ सूतजीने कहा यह हरिश्चन्द्रके सम्पूर्ण चरित्र आपसे वर्णन किये, यदि दुःखी मनुष्य इसको सुने तो सर्वदा सुख प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥ अधिक क्या इसके प्रभावसे स्वर्गाभिलाषी स्वर्ग पुत्राभिलाषी पुत्र भार्याकी इच्छा करनेवाला भार्या राज्यप्रार्थी मनुष्य राज्यपर्यंत प्राप्त कर सकता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ जनमेजयने कहा हे ऋषिवर ! शताक्षी देवीके चरणकमलोंके भक्त परमधार्मिक राजर्षि हरिश्चन्द्रका जो उपाख्यान कहा यह अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥

वह शिवा रमणीय देवी भगवती किसकारणसे शताक्षी हुई हे मुने! आप उनका कारण कहकरमेरा जन्म सफल कीजिये॥२॥अकृतज्ञ मनुष्यही देवीके गुण सुनकर तृप्त हो सकते हैं परन्तु विपलबुद्धि मनुष्य उनके गुण सुनकर तृप्त नहीं हो सकते अधिक क्या देवीके गुण वर्णित एक२शब्द सुननेसे अश्वमेध यज्ञका श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शताक्षी देवीका पवित्र उत्पत्ति विषय कहता हूं तुम देवीके परम भक्त हो इस कारण तुमसे मेरा न कहने योग्य कुछ नहीं है ॥४॥ पूर्वकालके समय दुर्गमनामक अत्यंत निष्ठुर एक महादानव था उस रुरुपुत्र महाबलवान् दानवने हिरण्याक्षके वंशमें जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उसने एक समय मनमें विचार किया कि मुनिगण वेदविहित

शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा ॥ तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु ॥ २ ॥ को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शताक्षीसंभवं शुभम् ॥ तवाऽवाच्यं न मे किंचिद्देवीभक्तस्य विद्यते ॥ ४ ॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः ॥ हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः ॥ ५ ॥ देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि ॥ नंक्ष्यंत्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत् ॥ ६ ॥ विमृश्यैतत्त पश्चर्यां गतः कर्तुं हिमालये ॥ ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठतः ॥ ७ ॥ सहस्रवर्षपर्यंतं चकार परमं तपः ॥ तेजसा तस्य लोकास्तु संतप्ताः ससुरासुराः ॥ ८ ॥

मंत्रसे होम करते हैं वह होमीय हव्य भक्षण कर देवतागण संतुष्ट होते हैं इससे वह बल गर्वित होकर वेदोक्त अस्त्र शस्त्रद्वारा हमको नष्ट करते हैं अतएव वेदही देवताओंका बल है इस कारण वेदके नष्ट होनेपर भी देवता नष्ट होंगे इसमें संदेह नहीं अतएव देवताओंका विनाश करनेके लिये वेदको नष्ट करना श्रेष्ठ है इसके सिवाय अन्य उपाय कोई नहीं है ॥६॥ वेदकर्ताकी आराधनासे ही यह कार्य सिद्ध होगा अतएव उनकीही आराधना करूंगा इस प्रकार मनमें निश्चयकर तपस्या करनेको हिमालयमें चला गया वह हृदयमें ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ काल व्यतीत करने लगा ॥ ७ ॥ वह हजार वर्षपर्यंत कठोर तपस्याके अनुष्ठानमें रत रहा अतएव उसके तेजप्रभावसे सुरासुर इत्यादि सम्पूर्ण लोक संतप्त

होगये ॥ ८ ॥ इसी समय भगवान् चतुरानन ब्रह्मा इनसे प्रसन्न हुए और हंसपर चढ़ उसको वर देनेके निमित्त आये ॥९॥ उस समाधिस्थित निमीलितनेत्र (मुँदे नेत्र) दानवसे चतुराननने स्वरूपसे कहा, तुम्हारा मंगल हो, इस समय तुम अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ १० ॥ अब मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर वर देनेको आया हूं वह ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुन समाधि छोडकर उठा ॥ ॥ ११ ॥ और उनकी यथाविधि पूजा करके कहा हे सुरेश्वर ! मुझको सम्पूर्ण वेद प्रदान कीजिये; हे महेश्वर ! त्रिलोकीमें ब्राह्मण और देवताओंके पास जो संपूर्ण वेदमंत्र विद्यमान हैं ॥ १२ ॥ वह संपूर्ण वेदमंत्र मेरे पास विद्यमान रहैं, और जिससे देवतागण पराजित हों मुझको ऐसा बलप्रदान कीजिये

ततः प्रसन्नो भगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ९ ॥ समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः ॥ वरं वरय भद्रंते यस्ते मनसि वर्तते ॥१०॥ तवाऽद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः ॥ श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं व्युत्थितः स समाहितः ॥ ११ ॥ पूजयित्वा वरं वव्रेवेदान्देहि सुरेश्वर ॥ त्रिषु लोकेषु ये मंत्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ॥ १२ ॥ विद्यंते तु सान्निध्ये मम संतु महेश्वर ॥ बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः ॥१३॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचो वदन् ॥ जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः ॥१४॥ ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः ॥ स्नानसंध्यानित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः ॥१५॥ विलुप्ते धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत् ॥ किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम् ॥ १६ ॥ वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ चतुर्वेद कर्ता परमेश्वर ब्रह्मा उसके इसप्रकार वचन सुन तथास्तु कहकर सत्यलोकको चले गये ॥ १४ ॥ तबसे ही ब्राह्मणलोग संपूर्ण वेदोंको भूलगये अतएव स्नान, संध्या, नित्यहोम,श्राद्ध,यज्ञ और जप इत्यादि क्रिया सब लुप्त होगईं ॥ १५ ॥ तिसकाल भूमंडलमें महा हाहाकार शब्द होने लगा, ब्राह्मणलोग परस्पर कहनेलगे कि यह कैसे हुआ यह कैसे हुआ ॥ १६ ॥ इस समय वेदोंका अभाव होनेसे अब हमको क्या करना चाहिये इस प्रकार भूलोकमें परम दारुण घोर अनर्थ उपस्थित होने पर ॥ ॥ १७ ॥

देवतागण होमीय हविका भाग न पाकर क्रमशः दुर्बल हुए इसी समय उस दानवने अमरावती नगरीको घेर लिया ॥ १८ ॥ अतएव देवतागण वज्रके समान कठिनदेह उस असुरके साथ संग्राम करनेमें असमर्थ हो दूसरे स्थानोंमें चले गये ॥१९॥ वह सुमेरुपर्वतकी गुहा और पर्वतके दुर्गम प्रदेशका आश्रय लेकरपरमशक्ति पराम्बिकाका ध्यान करनेलगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! अग्निमें आहुति देनेसे वह सूर्यलोकमें आस्थित होकर वृष्टिमें परिणत होती है इस कारण होमकार्यके न होनेसे वृष्टिका भी अत्यन्त अभाव होगया, वृष्टिके अभावसे भूमंडल शुष्क होकर किसी स्थान में जलका लेशमात्र नहीं रहा ॥ २१ ॥ अधिक क्या कूप, वापी, तडाग और सरिता सबही शुष्क होगये यह अनावृष्टि एक शत

निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः ॥ रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम् ॥ १८ ॥ अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च ॥ पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित् ॥ १९ ॥ निलीय गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च ॥ संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायंतस्ते परांबिकाम् ॥ २० ॥ अग्नौ होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप ॥ वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम् ॥२१॥ कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः ॥ अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी ॥२२॥ मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमाहिष्यादयस्तथा ॥ गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः ॥२३॥ अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शांतचेतसः ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे रिराधयिषव शिवाम् ॥ २४ ॥ समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम् ॥ निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः ॥२५॥

वर्ष कालपर्यन्त स्थिर रही थी ॥ २२ ॥ असंख्य प्रजा और अनेक गौ तथा महिष इत्यादि सम्पूर्ण मरगये, उन सम्पूर्ण मनुष्योंके मृतक देह प्रत्येक घरमें ढेरके ढेर पडे रहे उनका दाहादि कार्य करनेके लिये कोई मनुष्य नहीं मिला ॥२३॥ इस प्रकार अनर्थ उपस्थित होनेपर शान्त चित्त ब्राह्मणलोग शिवाकी आराधना करनेकेलिये अभिलाषी होकर हिमालयके पार्श्वदेशमें चलेगये ॥ २४ ॥ वह तद्गतचित्त हो निराहार रहकर समाधि ध्यान और पूजाद्वारा प्रतिदिन देवीका स्तव करनेलगे अधिक क्या उनकीही शरणागत होकर उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥

हे महेशानि ! आप हमारे प्रति दया कीजिये. हे अम्बिके सम्पूर्ण अपराधसे अपराधी पामरजनोंके ऊपर ऐसा कोप करना आपको श्लाघनीय नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव हे देवेशि ! आप क्षमा कीजिये यदि हमारे पातकसे आपको क्रोध हुआ है तो उस विषयमें भी हमारा कुछ अपराध नहीं है कारण कि, आपही अन्तर्यामि रूपसे सबके हृदयमें वास करती हैं, अतएव आपही जिसको कार्यमें नियुक्त करती हैं वही उसको करता है ॥ ७ ॥ जप पूजा और होमादिका अनुष्ठान करनेसे अन्यान्य देवतागण सन्तुष्टहोकर फलप्रदान करते हैं, वेदमंत्रके अभावसे उनकी भी सम्भावना नहीं किन्तु आप बालकके प्रति माताके समान स्मरण करते ही दयायुक्त होती हो अतएव आपके सिवाय इस प्रजाकी अन्यगति

दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि ॥ सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवांबिके ॥२६॥ कोपं संहर देवेशि सर्वांतर्यामिरूपिणि ॥ त्वया तथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः ॥ २७ ॥ नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्य पुनः पुनः ॥ यथेच्छसि यथा कर्तुं समर्थाऽसि महेश्वरि ॥ २८ ॥ समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात् ॥ जीवनेन विनास्माकं कथं स्यात्स्थितिरंबिके ॥ २९ ॥ प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदंबिके ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिके ते नमो नमः ॥ ३० ॥ नमः कूटस्वरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः ॥ नमो वेदांतवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥

नहीं है हे महेश्वरि ! आप जो इच्छा करैं वही करसक्ती हैं इसकारण आपसे वारंवार कहते हैं ॥२८॥ हे अम्बिके ! जलके अतिरिक्त हमारा जीवन किस प्रकार रक्षित होसकता है ? अतएव हे महेशानि ! इस उपस्थित विषय संकटसे शीघ्र उद्धार कीजिये ॥ २९ ॥ हे महेश्वरि ! आप ही जगत्की जननी हैं इस कारण जगत्वासी मनुष्योंके प्रति प्रसन्न हूजिये आपही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी एकमात्र अधीश्वरी हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं, ॥ ३० ॥ आपही कूटस्थ चैतन्यस्वरूप हैं सुतरां आपको नमस्कार करते हैं, आपही चिद्घनस्वरूपणी आद्यशक्ति हैं आपको वारंवार नमस्कार करते हैं आपही वेदप्रतिपाद्य हैं आपको प्रणाम करते हैं आपही भुवनेश्वरी हैं आपको वारं

वार प्रणाम करते हैं ॥३१॥ सम्पूर्ण वेदवाक्य " यह नहीं यह नहीं " इस प्रकार नश्वर वस्तुके निषेधद्वारा जिनको प्रतिपादित करते हैं जो संपूर्ण जगत्की कारणस्वरूप हैं उन्हीं देवीको हम सर्वान्तःकरणसे प्रणाम करते हैं ॥ ३२ ॥ जब उन ब्राह्मणोंने महेश्वरी पार्वतीका इस प्रकार स्तव किया तब देवी भुवनेश्वरीने अपने शरीरमें असंख्यनेत्र प्रगट कर अपनी मूर्ति दिखाई ॥३३॥ उनका वर्ण अञ्जनके ढेरके समान नीला नेत्र नीलकमलके समान और चौडे दोनों स्तन कठिन समान भावसे ऊंचे और गोलाकार स्तन स्थल परस्पर संलग्न परस्पर मिले हुए॥३४॥और चार उनकी भुजा दक्षिण हाथके ऊपर हाथमें कमल वाम हाथके ऊपर हाथमें महाधनु नीचेके हाथमें क्षुधा तृष्णा और ज्वरनाशकसीमारहित रसयुक्त

नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः ॥ ३२ ॥ इति संप्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी ॥ अनंताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती ॥ ३३ ॥ नीलांजनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम् ॥ सुकर्कशसमोत्तुंग वृत्तपीनघनस्तनम् ॥ ३४ ॥ बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान् ॥ शाकादीन्फलसंयुक्ताननंतरससंयुतान् ॥ ३५ ॥ क्षुत्तृड्जर पहान्हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः ॥ सर्वसौंदर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम् ॥ ३६ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम् ॥ दर्शयित्वा जगद्धात्री साऽनंतनयनोद्भवा ॥ ३७ ॥ मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः ॥ नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः ॥ ३८ ॥ दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती ॥ तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि ॥ ३९ ॥ नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैः समभवन्नृप ॥ निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता वहिः ॥ ४० ॥

शाक फल पुष्प और मूल सन्निविष्ट सम्पूर्ण सौभाग्यकी सारस्वरूपलावण्यमय॥३५॥३६॥करोड सूर्यकेसमान ज्योतिर्मय और करुणारसकीसागर उन जगद्धात्रीने इस प्रकार रूप दिखाकर नेत्रोंसे असंख्य॥३७॥जलधारा छोडीं उस लोचन समुद्भूत जलसे सम्पूर्ण लोकोंमें नव रात्रिपर्यन्त महा वृष्टि हुई॥३८॥वह सम्पूर्ण लोकोंका दुःख देखकर करुणावश नेत्रोंसे बराबर अश्रुवर्षण करने लगीं सुतरां उस जलसे संपूर्ण लोक और समस्त औषधि तृप्त हुईं ॥ ३९॥ अधिक क्या उस जल समूह द्वारा सम्पूर्ण नद और नदियें बहने लगीं हे राजन् ! जो देवतालोग गुहामें छिप रहे थे

वह सभी निकले ॥४०॥ फिर ब्राह्मण लोग देवताओंके सहित मिलित होकर देवीका स्तव करने लगे । आप वेदान्त द्वारा जानी जाती हैं ब्रह्म स्वरूपिणी हो अतएव आपको वारं वार नमस्कार करते हैं ॥ ४१ ॥ आप ही अपनी माया द्वारा समस्त जगत्का विधान करती हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हे देवि ! आप कल्प द्रुमके समान भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करती हैं इसी कारण आपने भक्तोंकी मनोवाञ्छापूर्ण करनेके लिये देहधारण किया है॥४२॥हे भुवनेश्वरि ! आप सदातृप्त रहती हैं सुतरां आपकी तुलना नहीं है अतएव आपको हम प्रणाम करते हैं हे देवि ! हमारी शान्तिके लिये ही आपने अतुल असंख्य नेत्र धारण किये हैं॥४३॥ अतएव आप अबसेही शताक्षी नामसे अभिहित होंगी हे

मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः ॥ नमो वेदांतवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४१ ॥ स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः ॥ भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि ॥ ४२ ॥ नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः ॥ अस्मच्छांत्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम् ॥ ४३ ॥ त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव ॥ क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चाऽस्ति नः ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहरांबिके ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥ ४५ ॥ स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा ॥ नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च ॥ ४६ ॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्या-नवीनोद्भवं ददौ ॥ शाकंभरीति नामाऽपि तद्दिनात्समभून्नृप ॥ ४७ ॥

मातः ! हे अम्बिके ! हम क्षुधासे अत्यन्त कातर हैं सुतरां हमारी स्तव करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥४४॥ अतएव महेशानि ! आप हमारे प्रति दया प्रकाश करके सम्पूर्ण वेदोंका उद्धार कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता और ब्राह्मणोंके इस प्रकार वचन सुनकर शिवाने अपने करस्थित शाक ॥ ४५ ॥ स्वादिष्ट फल और मूलादि भक्षण करनेके लिये उनको अर्पण किये ॥४६॥ उन्होंने प्रार्थित होकर जबतक नवीन अन्न उत्पन्न न हुआ तबतक मनुष्य भोज्य असीम रसयुक्त अनेक प्रकारका अन्न मनुष्योंको और पशुभोज्य तृणादि पशुओंको प्रदान किया है

राजन् ! उसी दिनसे देवीका शाकम्भरी नाम हुआ॥४७॥जब इससे घोर कोलाहल हुआ तब दुर्गम नामक असुरने दूतके मुखसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जान शस्त्र धारण पूर्वक सैन्यके सहित युद्धयात्रा की॥४८॥उसने एक सहस्र अक्षौहिणी सेना ले शर छोड़ते छोडते शीघ्र जाय देवीके आगे स्थित उस देव सैन्य ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणोंको चारों ओरसे घेर लिया यह देखकर देवताओंके मण्डलमें कोलाहलध्वनि होने लगी॥५०॥तब देवता और ब्राह्मण सभीने मिलकर कहा हे देवी रक्षाकरो रक्षाकरो ! तब शिवाने देव और ब्राह्मणोंकीरक्षाके लिये उनके चारों

ततः कोलाहले जाते दूतवाक्येन बोधितः॥ ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ ॥ ४८॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुचं स्त्वरान्वितः ॥ रुरोध देवसैन्यं तद्यद्देव्यग्रे स्थितं पुरा॥ ४९ ॥ तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः ॥ ततः किलकिलाशब्दः समभूद्देवमंडले ॥ ५० ॥ त्राहि त्राहीति वाक्यानि प्रोचुः सर्वे द्विजामराः॥ ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा ॥ ५१ ॥ चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद्बहिः स्थिता ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ५२ ॥ शरवर्षसमाच्छन्नसूर्यमंडलम द्भुतम् ॥ परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम् ॥ ५३ ॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥ ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीव्र शक्तयः ॥ ५४ ॥ कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा ॥ बगला चैव मातंगी तथा त्रिपुरसुंदरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजा देवी जंभिनी मोहिनी तथा ॥ छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका ॥ ५६ ॥

ओर तेजोमय चक्र उत्पन्न किया॥५१॥और स्वयं उसके बाहर रहीं इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका घोर अद्भुत युद्ध आरम्भ हुआ॥५२॥ निरन्तर शरवर्षणकी छटाओंसे सूर्यमण्डल ढक गया इस लिये अन्धकारके कारण योधालोग लक्ष्य स्थिर न करसके इसी समय शरोंके परस्पर घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होनेके कारण युद्धस्थल और भी प्रभामय होगया ॥ ५३ ॥ कठोर ज्या शब्दसे दिशायें मानो बहरी होगईं इसी समयमें देवीके शरीरसे शक्तियें निकलीं॥५४॥कालिका तारिणी षोडशी त्रिपुरा भैरवी कमला बगला मातङ्गी त्रिपुर सुन्दरी॥५५॥ कामाक्षी तुलजादेवी

जम्भिनी मोहिनी छिन्नमस्ता और अयुतबाहु गुह्यकाली इत्यादि समस्त प्रधान शक्तियें देवीके शरीरसे निकलीं ॥ ५६ ॥ फिर बत्तीस शक्ति इसके उपरान्त चौसठ शक्ति इसके पीछे असंख्य शक्ति शस्त्रसहित देवीके शरीरसे निकलीं ॥ ५७ ॥ परंतु शक्तियोंके एक शत अक्षौहिणी सेना नष्ट करनेपर समरस्थलमें मृदङ्ग शंख वीणा इत्यादि वाद्यध्वनि होने लगी ॥५८॥ इसी अवसरमें वह सेनापति सुरशत्रु दुर्गम असुर सन्मुख उपस्थित होकर प्रथम शक्तियोंके सहित संग्राम करने लगा ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार वह युद्ध ऐसा घोर होगया कि दश दिनमें ही वह सम्पूर्ण अक्षौहिणी नष्ट होगई यही क्या मृतक योधाओंकी रुधिर धारासे रक्तकी नदियें बहनेलगीं ॥६०॥ फिर दारुण ग्यारहवां दिन उपस्थित होने

द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुष्षष्टिमिताः पराः ॥ असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः ॥ ५७ ॥ मृदंगशंखवीणादिनादितं संगरस्थलम् ॥ शक्तिभिदत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते ॥५८॥ अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः ॥ शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः ॥५९॥ महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी ॥ अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः ॥६०॥ तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे ॥ रक्तमाल्यांबरधरो रक्तगंधानुलेपनः ॥६१॥ कृत्वोत्सवं महांतं तु युद्धाय रथसंस्थितः ॥ संरंभेणैव महता शक्तीः सर्वा विजित्य च ॥६२॥ महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत् ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥६३॥ प्रहरद्वयपर्यंतं हृदयत्रासकारकम् ॥ ततः पंचदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह ॥ ६४ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम् ॥ द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ ६५ ॥

पर वह दानव कटिमें लालवस्त्र पहरे गलेमें रक्तमाल्य धारण और सर्वाङ्गमें लालचन्दन लेपनपूर्वक ॥ ६१ ॥ महामहोत्सव कर युद्धके लिये रथपर चढा तब उसने अतीव (परिश्रमसे) समस्त शक्तियोंको जीतकर ॥ ६२ ॥ महादेवीके सन्मुख अपना रथ स्थापन किया इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका दो पहरतक घोर युद्ध हुआ ॥६३॥ त्राससे लोकोंका हृदय कम्पित होनेलगा इसी समय देवी जगदम्बिकानें अत्यन्त उग्र पंद्रह बाण छोडे॥६४॥चार शरसे उसके चारों वाहन एक शरसे उसका सारथि दो शरसे उसके दोनों नेत्र और दो शरसे उसकी दोनों भुजा

दन करके उनके सामनेही अन्तर्धान होगई ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! यह तो मैंने तुमसे अत्यन्त विस्तीर्ण परम रहस्य समस्तही वर्णन किया किन्तु यह संपूर्णही कल्याणका आस्पद है अतएव इसको यत्न सहित गुप्त रक्खो ॥८२॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर यह अध्याय नित्य श्रवण करता है वह संपूर्ण काम्यवस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें देवीके लोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! यह तो देवीका माहात्म्य वर्णन किया इस समय सूर्यवंशीय और चन्द्र वंशीय धार्मिक राजाओंके पवित्र चरित्रका विषय यथाशक्ति वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ इन संपूर्ण राजाओंमें ऐसा पराक्रम होनेका कारण यह

एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम् ॥ ८२ ॥ य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तित त्परः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते म० सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम् ॥ सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत् ॥ १ ॥ पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ राजन्सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः ॥ २ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छ त्वं परा शक्त्यंशसंभवम् ॥ ३ ॥ एते चाऽन्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः ॥ संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्र यत्नेन संसेव्याभुवनेश्वरी ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः ॥ ५ ॥

है कि वह सभी परादेवीके परमभक्त थे अतएव शक्तिके प्रसादसेही उन्होंने ऐसा महत्व प्राप्त किया था आप निश्चय जानिये कि पराशक्तिही उनके महत्वमूल कारण है ॥ २ ॥ उनका विक्रम वीर्य और ऐश्वर्य समस्त ही पराशक्तिके अंशसे उत्पन्न हुआ है इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ हे नरपाल ! यह संपूर्ण राजा और अन्यान्य राजा लोगोंने पराशक्तिके उपासक होकर ज्ञानरूप कुठारसे; संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटी है ॥ ४ ॥ अतएव अत्यन्त यत्नसहित भलीभाँति देवी भुवनेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिसप्रकार पलाल परालभूसी त्याग

करते हैं इसी प्रकार भक्तोंके संपूर्ण वासना त्यागनी उचित है ॥५॥ हे नरनाथ! मैंने वेदरूप सागर मथकर पराशक्तिके चरण सरोजरूप रत्न प्राप्त किये हैं इससे अत्यन्त कृतकृत्य हुआ हूं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र और ईश्वर जिनके चारों कोणमें स्थित चार पादस्वरूप हैं सदाशिव ब्रह्मादिक जिनके मस्तक स्थित फलक स्वरूप हैं उन श्रीदेवीके अतिरिक्त श्रेष्ठ देवता दूसरा कोई नहीं है इन अज्ञानी मनुष्योंको प्रतिपन्न (ज्ञानप्रगट) करनेके लियेही महादेवीने ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और शिवात्मक आसनकी कल्पना की है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव यह पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश इस पञ्चभूतोंके अधिपतिहैं इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति जिनसे हुई है वेदमें उन वस्तुओंको व्यक्त

आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप ॥ पराशक्तिपदांभोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥ ६ ॥ पंचब्रह्मासनारूढा नास्त्यन्या काऽपि देवता ॥ तत एव महादेव्या पंचब्रह्मासनं कृतम् ॥ ७ ॥ पंचभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यते ॥ यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी ॥ ८ ॥ तामविज्ञाय राजेंद्र नैवमुक्तो भवेन्नरः ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥ ९ ॥ तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ अत एव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥ १० ॥ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ ११ ॥

अथवा अव्याकृत (का प्रगट) कहकर निर्देश किया है और उनमें ही सम्पूर्ण जगत् सूत्र ग्रथित मणियोंके समान ओत और प्रोत भावसे अधिष्ठित रहता है वही भुवनेश्वरी हैं ॥८॥ हे राजेन्द्र! उन भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसे मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता ॥९॥ जिस समय मनुष्य आकाश कृष्णसारचर्मके समान वेष्टन करसकें तो भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसे भी उनके संसार क्लेश नाश हो जायँगे आकाशको वेष्टन करना जिस प्रकार असम्भव है भुवनेश्वरीके ज्ञानके अतिरिक्त मुक्तिलाभ भी इसी प्रकार असम्भव है अतएव भुवनेश्वरीके स्वरूपको जाननेमें यत्न करना एकान्त उचित है॥१०॥ भुवनेश्वरीका ध्यान ही मोक्षका मूल है श्वेताश्वतर उपनिषद्में तत् शाखाध्यायी स्पष्ट कहते हैं कि "जो ध्यानयोगमें

सेना ले कैलासपर्वत और वैकुण्ठधामपर्यन्त घेर लिया ॥ २६ ॥ यह देखकर महादेव और विष्णु दोनों ही युद्धका उद्योग करने लगे क्रमानुसार दोनों दलोंमें घोर संग्राम आरम्भ हुआ यही क्या साठ हजार वर्ष पर्यन्त अविश्रान्त युद्ध हुआ ॥ २७ ॥ किंतु किसी दलकी जय पराजय नहीं हुई क्रमानुसार देव और दानवसैन्यमें घोर हाहाकार ध्वनि होनेलगी इसी समय शिव और विष्णु यत्नसहित दानवोंको निपातित करने लगे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! फिर शिव और विष्णु अपने अपने स्थानको चले गये वास्तविक दानव उनकी निजशक्तिके प्रभावसे निहत हुए थे किंतु शिव और विष्णु उन अपनी शक्ति गौरी और लक्ष्मीके निकट जाय गर्वित होकर कहने लगे कि वह दानवलोग हमारे पराक्रमसे ही निहत

कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम् ॥ २७ ॥ हाहाकारो महानासीद्देव दानवसेनयोः ॥ महताऽथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः ॥ २८ ॥ स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः ॥ स्वशक्त्योर्निकटे राजन्यद्वशादेव ते हताः ॥ २९ ॥ अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा च्छलहास्यं च चक्रतुः ॥ महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ ॥ ३० ॥ देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया ॥ दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम् ॥ ३१ ॥ ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः ॥ अंतर्हिते चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत् ॥ ३२ ॥ निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ ॥ अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा ॥ ३३ ॥

हुए हैं ॥ २९ ॥ उनको अभिमान युक्त जानकर गौरी और लक्ष्मीने विचारा कि हमारे प्रभावसे ही यह दानव विनष्ट हुए हैं किन्तु हमारे सन्मुख ही अब अभिमान प्रकाश करते हैं यह जानकर कपट हास्य किया उनका इस प्रकार हास्य देखकर वे दोनों देवता ॥ ३० ॥ अत्यन्त कुपित हुए किंतु उनकी अनादि मायासे मोहित होकर दोनों ही परस्परको अभिमान पूर्वक कुत्सित वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ उसी समय गौरी और लक्ष्मी शिव और विष्णुको त्यागकर अन्तर्धान होगई उनके अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण मनुष्य हाहाकार करने लगे ॥३२॥ दोनों शक्तियोंके अपमानसे हरि और हर दोनोंही तेजहीन शक्तिहीन और चेतनारहित होकर विक्षिप्त होगये ॥ ३३ ॥

यह देखकर ब्रह्माजीने चिन्तासे व्याकुल हो विचार किया कि, हरि और हर दोनोंही देवताओंमें प्रधान हैं किन्तु यह जगत् कार्यमें असमर्थ क्यों हुए ? इस उपस्थित व्यापारका क्या कारण है ? ॥ ३४ ॥ किसलिये आकालमें यह संकट उपस्थित हुआ है ? कार्यके अभावसे निरपराध इस जगत्में क्या प्रलय उपस्थित होगी ॥ ३५ ॥ इसका कारण कुछ नहीं जाना जाता अतएव किसप्रकार प्रतिकार करूंगा, इस प्रकार चिन्तासे अत्यंत कातर हो उसका कारण जाननेकी इच्छासे नेत्र मूंदकर ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ३६ ॥ हे नृपोत्तम ! अनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने ध्यानसे जाना कि पराशक्तिके अत्यन्त कोपके प्रभावसे यह दुर्घटना उपस्थित हुई है ॥३७॥ तब वह उनके प्रतिकारमें यत्न करने लगे

ब्रह्मा चिंतातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम् ॥ प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू ॥ ३४ ॥ अकाण्डे किंनिमित्तेन संकटं समुपस्थितम् ॥ प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः ॥ ३५ ॥ निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया ॥ इति चिन्तातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः ॥ ३६ ॥ पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह ॥ जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ ततस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाकरोत्तदा ॥ स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः ॥ ३८ ॥ ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ ॥ आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः ॥ कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः ॥ ४० ॥ पराशक्तेस्तु तोपार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम् ॥ शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः ॥ ४१ ॥

जबतक हरि और हर स्वस्थ न हुए तपोधन ब्रह्मा स्वीय शक्तिके प्रभावसे तबतक उनका पालन और संहार कार्य स्वयं निर्वाह करने लगे ॥ ३८ ॥ अनन्तर धर्मात्मा प्रजापतिने उनको सुस्थिर करनेकी इच्छासे अपनी सन्तान मनु और सनकादि ऋषियोंको बुलाया ॥३९॥ जब उन्होंने आनकर प्रणाम किया तब तपोनिधि चतुरानन ब्रह्माजीने कहा मैं इस समय अधिक कार्यमें आसक्त हूं अतएव तपस्याका अनुष्ठान नहीं करसकता ॥ ४० ॥ पराशक्तिके कोपसे हरि और हर विक्षिप्त हुए हैं सुतरां उन्हीं महाशक्तिके सन्तोपनार्थ जगत्की सृष्टि संहार और पालन इन

तीनों कार्योंका भार मैंनेही लिया है ॥ ४१ ॥ अतएव तुम अत्यंत भक्तिसहित कठोर तपस्या करके उन पराशक्तिको सन्तुष्ट करो ॥ ४२ ॥ हे पुत्रगण ! जिससे हरि और हर पहलेके समान अवस्थाको प्राप्त होकर शक्तिके सहित मिलित हो तुम उसीके अनुसार कार्य करो इससे तुम्हारे यशकी वृद्धि होगी इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ परंतु जिस कुलमें वह दोनों शक्तियें जन्म लेंगी वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करेगा अधिक क्या वह व्यक्तिभी स्वयं कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विमलांतःकरण दक्षादि मानसपुत्र पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर उन पराशक्तिकी आराधना करनेकी इच्छासे वनको चलेगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायांएकोन

तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं संतोषयंत्वथ ॥ अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः ॥ ४२ ॥ यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुताव पि॥ तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः ॥४३॥ कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम् ॥ पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत् ॥४४॥ व्यास उवाच ॥ पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे वनांतरे ॥ रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विम लांतराः ॥४५॥ इति श्रीदेवीभागवते० म० स० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते तु वनोद्देशे हिमा चलतटाश्रयाः ॥ मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः ॥१॥ ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप ॥ ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना ॥ करुणारससंपूर्णा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ ३ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालय पर्वतकी तटभूमि अत्यंत निर्जन स्थान है सुतरां उन्होंने वनमें जाकर तपस्याके लिये उसी स्थानमें मन लगाया, वह समाहित चित्तसे मायाबीज भुवनेश्वरीका मंत्र जपते जपते उसी स्थानमें तपस्या करनेलगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! परमाशक्तिका ध्यान करते करते एक लक्ष वर्ष व्यतीत होनेपर देवीने प्रसन्न होकर उनको दर्शन किया ॥ २ ॥ उनकी मूर्ति त्रिनयना और सच्चिदानन्दरूपिणी है इस कारण वह करुणारससे परिपूर्ण हो एक हाथमें पाश,एक हाथमें अंकुशधारणकर भक्तोंको एक हाथसे अभय और

एक हाथसे वर देती है ॥ ३ ॥ वह विमलस्वभाव मुनिगण जगज्जननीकी इसप्रकार मूर्तिं देखकर उनका स्तव करनेलगे हे देवि ! आप पृथक् रूपसे समस्त स्थूलदेहोंमें विराजमान रहती हो अतएव आपको नमस्कार करते हैं हे परमेश्वरि ! आपही पृथक्रूपसे सम्पूर्ण लिंगदेहोंमें वर्त्तमान रहती हैं अतएव आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आपही समष्टिरूप समस्त लिंगदेहोंमें व्याप्त करती हैं तेजसरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं जिसमें संपूर्ण लिंग देह ओतप्रोतभावसे अवस्थित रहते हैं ॥ ५ ॥ आपही पृथक् रूपसे उन संपूर्ण कारण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं आपही समस्त जीवोंके अधिष्ठान भुत कूटस्थ ब्रह्मस्वरूप होकर सम्पूर्ण देहोंमें

दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः ॥ नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये ॥ ४ ॥ नमस्ते जलरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः ॥ यस्मिन्सर्वे लिंगदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये ॥ नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये ॥ ६ ॥ नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये ॥ इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा ॥ ७ ॥ प्रणेमुश्चरणांभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ८ ॥ वरं ब्रूत महाभागा वरदाऽहं सदा मता ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरविष्णवोस्तनोः शमम् ॥ ९ ॥ तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम ॥ दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम ॥ १० ॥

विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं॥ ६ ॥ आपही समस्त भुतोंकी लक्ष्यभूत आत्मस्वरूप हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं अमल स्वभाव दक्षादि मुनियोंने भक्तिपूर्वक गद्गदस्वरसे जगद्धात्रीका इस प्रकार स्तव कर ॥७॥ उनके चरण कमलोंमें प्रणाम किया अनन्तर देवीने प्रसन्न होकर कोकिलके समान मधुर स्वरसे कहा ॥ ८ ॥ हे महाभागगण ! मैं सर्वदाही वर देनेको प्रस्तुत हूं अतएव तुम वरकी प्रार्थना करो हे नृपसत्तम ! उन्होंने देवीके इसप्रकार वचन सुनकर प्रार्थना की कि, हरि और हर दोनोंही स्वास्थ्य लाभकर ॥ ९ ॥ अपनी अपनी शक्ति लक्ष्मी और गौरीको प्राप्त करें फिर दक्षने पुनर्वार कहा कि हे देवि ! आपका जन्म मेरेही कुलमें

हो ॥ १० ॥ हे अम्बे ! इससे मैं कृतार्थ हूंगा इसमें सन्देह नहीं अतएव हे परमेशानि ! अपनी पूजा जप ध्यान और उसके उपयुक्त अनेक स्थानोंके ॥ ११ ॥ विषय आपही अपने मुखसे वर्णन कीजिये, देवीने कहा मेरीही शक्तिके अपमानसे उन हरि और हर दोनोंकी यह दशा हुई है ॥ १२ ॥ अतएव अब ऐसा अपराध कभी न करें इस समय मेरी कृपाके लेशसे उनके शरीरको स्वास्थ्य प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ और दोनों शक्तियोंमेंसे एक शक्ति तुम्हारे घर और अन्य शक्ति क्षीरोदसागरमें जन्मग्रहण करेगी परन्तु मेरे उनको प्रेरण करनेपर हरि और हर अपनी अपनी शक्तिको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ माया बीजही मेरा मुख्य मंत्र है यह सदा मुझको प्रिय है सुतरां इस मंत्रसे ही मेरा जप और पूजा

भवेत्तवांब येनाऽहं कृतकृत्यो भवे इति ॥ जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च ॥ ११ ॥ वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम् ॥ देव्युवाच ॥ मच्छक्त्योरवमानाच्च जाताऽवस्था तयोर्द्वयोः ॥१२॥ न तादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन ॥ अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः ॥ १३ ॥ भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे ॥ जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया ॥ १४ ॥ मायाबीजं हि मंत्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा ॥ ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम् ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदरूपंवा स्थानं सर्वजगन्मम ॥ युष्माभिः सर्वदा चाऽहं पूज्या ध्येया च सर्वदा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणे सर्ववृत्तांतं कथयामासुरादरात् ॥ हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप ॥ १८ ॥

करो तुम सन्मुख जिस मूर्तिको देखते हो मेरी यही भुवनेश्वरी मूर्ति है अथवा मेरे विराट्रूप ॥ १५ ॥ किंवा मेरे सच्चिदानन्द रूपका ध्यान करो और सम्पूर्ण जगतही मेरा स्थान है अतएव समस्त स्थानोंमें मेरी पूजा और ध्यान सर्वदा करो ॥१६॥ व्यासजीने कहा मणिद्वीपवासिनी भुवनेश्वरी देवी इस प्रकार उनके प्रश्नका उत्तर देकर अन्तर्धान होगई दक्ष इत्यादि सम्पूर्ण मुनियोंने फिर ब्रह्माके निकट जाकर ॥ १७ ॥ वह समस्त वृत्तान्त भ्रमयुक्त हो उनसे निवेदन किया हे नृपवर ! उस प्रकार हरि और हर दोनों गर्वरहित हो

परमा देवी अम्बिकाकी कृपासे स्वस्थ होकर अपने अपने कार्य करनेमें समर्थ हुए थे ॥ १८ ॥ यह गर्वरहित हो महाशक्तिकी कृपासे स्वस्थ हुए अनन्तर किसी समय पराशक्तिकी परमतेजःस्वरूपिणी देवी भगवती ॥१९॥दक्ष प्रजापतिके घर उत्पन्न हुई। हे महाराज ! उस समय त्रैलोक्यमें सर्वत्र महोत्सव होने लगा सम्पूर्ण देवता लोग प्रमुदित हो प्रफुल्लित चित्तसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ स्वर्गमें सुरदुन्दुभि सम्पूर्ण करांगुलियोंसे आहत होकर गम्भीर ध्वनि करने लगी तब विमलात्मा साधुओंके मन प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ और सूर्यकी प्रभा निर्मल होगई सम्पूर्ण सरित् आनन्दमें भर कर उछलते हुए अपने मार्गमें बहने लगे जीवोंकी जन्ममृत्यु निवारण कारिणी देवी जगन्मङ्गलाके जन्म ग्रहण करनेपर सर्वत्र

जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ तदा ॥ कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत् ॥ १९ ॥ दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत् ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ २० ॥ नेदुर्दुंदुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप ॥ मनांस्या सन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम् ॥ २१ ॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ मंगलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मंगलम् ॥ २२ ॥ तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः ॥ ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत् ॥ २३ ॥ सा पुनर्ज्वलने दग्धा देवयोगान्मनोर्नृप ॥ जनमेजय उवाच ॥ अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं मुने ॥ २४ ॥ एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने ॥ यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि ॥ २५ ॥

मंगलका सञ्चार हुआ ॥ २२ ॥ वह परब्रह्मस्वरूपिणी देवी सत्य स्वरूपिणी होनेके कारण तत्त्वज्ञानी मुनियोंने उनका "सती" नाम रक्खा अनन्तर प्रजापति दक्षने जो पूर्वमें महेश्वरकी शक्ति थी उन्होंने उनको फिर देवादिदेव महादेवको प्रदान की ॥२३॥ वही दाक्षायणी देवी दक्षके अपराधसे प्रज्वलित अग्निमें दग्ध हुई थी जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने मुझको विपम अनर्थकर यह वचन सुनाया ॥ २४ ॥ ऐसी परम सद्रूप महत् वस्तु किस प्रकार अग्निमें दग्ध हुई जिनका नाम स्मरण करनेसे मनुष्योंका संसाररूप घोर अग्निभय नष्ट होता है ॥ २५ ॥

प्रजापतिके कौन कर्म विपाकसे वह दग्ध हुई थी। उसको सुननेके लिये मेरी इच्छाअत्यंत बलवती हुई है आप कृपा करके मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये। व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र! सतीके दाहका कारण स्वरूप पुरातन इतिहास वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ २६ ॥ किसी समय ऋषिवर दुर्वासाने जाम्बूनदवाहिनी नदीके तटपर जायकर वहाँ स्थित देवीका दर्शन किया अनन्तर वह उस स्थानमें अवस्थित होकर शांत चित्तसे माया बीजका जप करने लगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर सुरेश्वरी भगवतीने उनके प्रति प्रसन्न होकर मकरन्द गंधसे प्रमोदित प्रमत्त भौंरोंसे युक्त कण्ठस्थित मनोहर माला ॥ २८ ॥ प्रसाद स्वरूप उनको प्रदान की महर्षिजीने भी शीघ्र उसको ग्रहणकर मस्तकमें धारण किया इसके उपरान्त

केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं सतीदाहस्य कारणम् ॥ २६ ॥ कदाचिदथ दुर्वासा गतो जम्बूनदेश्वरीम् ॥ ददर्श देवीं तत्रासौ मायाबीजं जजाप सः ॥२७॥ ततः प्रसन्ना देवेशी निजकंठगतां स्रजम् ॥ भ्रमद्भ्रमर संसक्तां मकरंदमदाकुलाम् ॥ २८ ॥ ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः ॥ ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः ॥ २९ ॥ आजगाम स यत्राऽऽस्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता ॥ संदर्शनार्थमंबाया ननाम च सतीपदे ॥ ३० ॥ पृष्टो दक्षेण स मुनि- र्माला कस्यास्त्यलौकिकी ॥ कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुप्लुतेक्षणः ॥ देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितांतरः ॥ ३२ ॥

उन तपस्वी प्रवर महर्षिने शीघ्रता सहित अकाश मार्गसे चला ॥ २९ ॥ अम्बिकाके दर्शनार्थ जहाँ सतीके पिता प्रजापति दक्ष स्थिति करते थे उस स्थानमें आनकर सतीके चरण कमलोंमें प्रणाम किया ॥३०॥ अनन्तर प्रजापतिने उनसे पूछा हे महर्षे! यह अलौकिक माला किसकी है हे प्रभो! पृथ्वीमें दुर्लभ यह मोहिनी माला आपने किस प्रकार प्राप्त की? ॥३१॥ तब वह वाग्मिप्रवर महर्षि दुर्वासा उनके इस प्रकार वचन सुनकर प्रेम विगलित चित्तसे नेत्रोंमें आंसूभर कहनेलगे हे प्रजापते! मैंने देवीका प्रसाद स्वरूप यह अनुपम मनोहारिणी माला प्राप्त की है॥३२॥

यह सुनकर प्रजापतिने महर्षि दुर्वासासे वह माला मांगी उनको भी त्रैलोक्यमें शक्तिके भक्तको अदेय कुछ भी नहीं था ॥३३॥ इसप्रकार विचारकर प्रजापति दक्षको वह माला देदी उन्होंने उस मालाको मस्तकमें धारणकर फिर जिस घरमें ॥३४॥ दम्पतिकी अति मनोहर शय्या सज्जित थी उसी शय्याके ऊपर रख रात्रिकालके समय उस मालाकी सुगन्धसे आमोदित होकर वह महीपति सुरत कार्यमें आसक्त हुए ॥३५॥ हे नृपवर ! उस पशुकर्म निबन्धनके कारण उनको सती देवी और शंकरके प्रतिविद्वेष उत्पन्न हुआ इससे वह शिवकी निन्दा करने लगे ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उसी अपराधसे सतीने सनातन पतिव्रत धर्मके मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उस दक्षजनित देहको त्याग करनेका संकल्पकर योगाग्नि द्वारा

प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता ॥ अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥ ३३ ॥ इति बुद्धया तु तां मालां मनवे स समर्पयत् ॥ गृहीता शिरसा माला मनुना निजमंदिरे ॥ ३४ ॥ स्थापिता शयनं यत्र दंपत्योरतिसुंदरम् ॥ पशुकर्मरतो रात्रौ मालागंधेन मोदितः ॥३५॥ अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शंकरे ॥ शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां तथा नृप ॥ ३६ ॥ राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च ॥ सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया ॥ ३७ ॥ पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः ॥ जनमेजय उवाच ॥ दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सती तस्य तद्वियोगेन कातरः ॥ व्यास उवाच ॥ ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप ॥ वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः ॥ ४० ॥

अपना देह दग्ध किया ॥ ३७ ॥ वह शक्ति समुद्भूत तेज फिर हिमाचलमें प्रादुर्भूत हुआ था जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! सतीका देह दग्ध हो जानेपर ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सतीके वियोगमें कातर होकर महादेवने क्या किया था ? व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरान्त जिस प्रकार घटना हुई थी मैं उसको वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ ३९ ॥ हे नृपवर ! तिससमय शिवकी क्रोधाग्नि द्वारा त्रिलोकमण्डलमें प्रलय उपस्थित हुई थी भद्रकालीगण द्वारा परिवृत हो वीरभद्र उत्पन्न होकर ॥ ४० ॥

तीनों लोकके नाशमें उद्यत हुए तब ब्रह्मादि देवताओंने शंकरकी शरण ग्रहण की॥ ४१ ॥ सतीके विनाशसे सर्वस्वनाश होनेपर भी करुणानिधान ईशानने दक्षका यज्ञ विन ष्टकर उनका मस्तक छेदन किया और उसी स्थानमें बकरेका शिर संयोजनपूर्वक ॥ ४२ ॥ उनको जीवितकर देवताओंको अभय प्रदान की तब देवादिदेव महादेव अतिखिन्न हो यज्ञस्थानके समीप जाकर अत्यंत दुःखसे रोदन करने लगे ॥ ४३ ॥ अनंतर जब उन्होंने देखा कि उस चैतन्यरूपिणी सतीका देह चिताग्निमें दग्ध होता है तब वह हा सती हा सती इस प्रकार कहकर रोदन करते करते सतीका देह स्वयं कंधेपर रख ॥४४॥ भ्रांतचित्तसे अनेक देशोंमें भ्रमण करने लगे यह देखकर ब्रह्मादि देवतागण अत्यंत चिंतित हुए ॥ ४५ ॥ और

त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत् ॥ ब्रह्मादयस्तदा देवाः शंकरं शरणं ययुः ॥ ४१ ॥ जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तवक्रेण तं मनुम् ॥४२॥ अजीवयन्महात्माऽसौ ततः खिन्नं महेश्वरः ॥ यक्षवाट सुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः ॥४३॥ अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम् ॥ स्कंधेऽप्यारोपयामास हा सतीति वद न्मुहुः ॥४४॥ बभ्राम भ्रांतचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः ॥ तदा ब्रह्मादयो देवाश्चितामापुरनुत्तमाम् ॥ ४५ ॥ विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः ॥ चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन् ॥ ४६ ॥ तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः ॥ उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम् ॥४७ ॥ भजंति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम् ॥ नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिका ॥४८॥ स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः ॥ तेषां मंत्राः प्रसिध्यंति मायाबीजं विशेषतः ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णुने धनुर्धारणपूर्वक बाणोंसे सतीके सम्पूर्ण अङ्ग छेदन किये वह सम्पूर्ण अवयव जिनजिन स्थानोंमें पतित हुए ॥ ४६ ॥ शंकरने अनेकमूर्ति धारणकर उन उन स्थानोंमें स्थिति की, तब उन्होंने देवताओंसे कहा कि इन सम्पूर्ण स्थानोंमें जो जो पुरुष परमभक्ति सहित भगवतीकी ॥ ४७ ॥ आराधना करैंगे उनको कुछ दुर्लभ नहीं रहेगा इन सम्पूर्ण स्थानोंमें परमादेवी अम्बिका सदा स्थित रहती हैं ॥ ४८ ॥ जो जो मनुष्य इन सम्पूर्ण स्थानोंमें समस्त मंत्रोंका विशेषकर मायाबीजका पुरश्चरण करैंगे उनको सम्पूर्ण मंत्रोंकी सिद्धि होगी इसमें

संदेह नहीं ॥४९॥ हे नृपवर ! यह कहकर महेश्वर सतीके विरहसे अत्यंत कातर हो जप, ध्यान और समाधि अवलम्बनपूर्वक उन उन स्थानोंमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ५० ॥ जनमेजयने कहा किस किस स्थानमें सतीके सम्पूर्ण अंग पतित हुए थे ? उन सब सिद्धपीठका क्या नाम है ? और उन सम्पूर्ण पीठोंकी कितनी संख्या है ? आप आनुपूर्विक समस्त कीर्तन कीजिये ॥५१॥ हे महामुने ! मैं आपके मुखकमलसे निकली हुई सम्पूर्ण कथा सुनकर इस संसारमें कृतार्थता प्राप्त करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥५२॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जिन सबका नाम सुनने सेही मनुष्य पापरहित होता है मैं इस समय वह समस्त पीठस्थान कीर्तन करूंगा श्रवण करो ॥ ५३ ॥ जिन जिन पीठस्थानमें ऐश्वर्यकांक्षी

:इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः ॥ कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः ॥५०॥ जनमेजय उवाच ॥ कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ ॥ कतिसंख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद ॥ ५१ ॥ तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर ॥ कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम् ॥ येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः ॥५३॥ येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकांक्षिभिः ॥ भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥५४॥ वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी ॥ क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी ॥ ५५ ॥ प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने ॥ मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ५६ ॥ विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरिणी ॥ गोमंते गोमती देवी मंदरे कामचारिणी ॥ ५७ ॥

सिद्धि काम मनुष्योंको इन देवीकी उपासना और ध्यान करना कर्तव्य है मैं वह समस्त स्थान भलीभांति कीर्तन करता हूं ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! वाराणसीमें गौरीका मुख निपतित हुआ है उसी मुखरूप पीठमें भगवतीकी जो मूर्ति विराजमान है वह विशालाक्षी नामसे विख्यात है नैमिषारण्यमें निपतित देवीकी मूर्तिका नाम लिङ्ग धारिणी है ॥ ५५ ॥ यह महामाया प्रयागमें ललिता गन्धमादनमें कामुकी दक्षिण मानसमें कुमुदा और उत्तर मानसमें ॥ ५६ ॥ विश्वकी वाञ्छापूरिणी विश्वकामा है गोमन्तमें गोमती और मन्दर पर्वतमें कामचारिणी नामसे

विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ५७ ॥ यह देवी चैत्ररथमें मदोत्कटा हस्तिनापुरमें जयन्ती कान्यकुब्जमें गौरी मलयपर्वतमें रम्भा ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठमें कीर्तिमती विश्वमें विश्वेश्वरी और पुष्करमें पुरुहूता नामसे कीर्तित हैं ॥ ५९ ॥ यह केदारपीठमें सन्मार्गदायिनी हिमाचल पृष्ठमें मन्दा गोकर्णमें भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरमें भवानी बिल्वकमें बिल्वपत्रिका श्रीशैलमें माधवी भद्रेश्वरमें भद्रा ॥ ६१ ॥ वराहशैलमें जया कमलालयमें कमला रुद्रकोटिमें रुद्राणी कालञ्जरमें काली ॥ ६२ ॥ शालग्राममें महादेवी शिवलिंगमें

मदोत्कटा चैत्ररथे जयंती हस्तिनापुरे ॥ गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रंभा तु मलयाचले ॥ ५८ ॥ एकाम्रपीठे संप्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि ॥ विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे ॥५९॥ केदारपीठे संप्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी ॥ मंदा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥६०॥ स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका ॥ श्रीशले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा ॥६१॥ वराहशैले तु जया कमला कमलालये ॥ रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा ॥ ६२ ॥ शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया ॥ महालिंगे तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललितांबिका ॥ गयायां मंगला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे ॥६४॥ उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने ॥ ६५ ॥ नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुंदरी ॥ विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले ॥ ६६ ॥ सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चंद्रे तु चंद्रिका ॥ रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ६७ ॥

जलप्रिया महालिंगमें कपिला माकोटमें मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुरीमें कुमारी संतानमें ललिताम्बिका गयाक्षेत्रमें मंगला पुरुषोत्तममें विमला ॥ ६४ ॥ सहस्राक्षमें उत्पलाक्षी हिरण्याक्षमें महोत्पला विपाशानदीमें अमोघाक्षी पुंड्रवर्धनमें पाटला ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें नारायणी त्रिकूटमें रुद्रसुंदरी विपुलमें विपुलादेवी मलयाचलमें कल्याणी ॥ ६६ ॥ सह्याद्रिमें एकवीरा हरिश्चन्द्रमें चंद्रिका रामतीर्थमें

रमणा यमुनामें मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटतीर्थमें कोटिवी माधववनमें सुगन्धा गोदावरीमें त्रिसन्ध्या गंगाद्वारमें रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुंडमें शुभानंदा देविकांतरमें नंदिनी द्वारावतीमें रुक्मिणी वृन्दावनमें राधा ॥ ६९ ॥ मथुरामें देवकी पातालमें परमेश्वरी चित्रकूटमें सीता और विन्ध्यमें विन्ध्याधिवासिनी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ७० ॥ हे महाराज ! यही महादेवी भगवती करवीरपीठमें महालक्ष्मी विनायकमें उमादेवी वैद्यनाथमें आरोग्या महाकालमें महेश्वरी ॥ ७१ ॥ उष्णतीर्थमें अभया विंध्यपर्वतमें नितम्बा माण्डव्यमें माण्डवी माहेश्वरी

कोटवी कोटतीर्थे तु सुगंधा माधवे वने ॥ गोदावर्यां त्रिसंध्यां तु गंगाद्वारे रतिप्रिया ॥६८॥ शिवकुंडे शुभा नंदा नंदिनी देविकातटे ॥ रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृंदावने वने॥६९॥देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विंध्याधिवासिनी ॥७०॥ करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके ॥ आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥७१॥अभयेत्युष्ण तीर्थेषु नितंबा विंध्यपर्वते ॥ मांडव्ये मांडवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे ॥७२॥ छगलण्डे प्रचंडा तु चंडिकाऽमरकंटके ॥ सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥७३॥ देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता ॥ महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥ ॥ ७४ ॥ सिंहिका कृतशौचे तु कार्त्तिके त्वतिशांकरी ॥ उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥७५॥ माता सिद्धवने लक्ष्मी रनंगा भरताश्रमे ॥ जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते॥७६॥देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमंडले॥भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा ॥७७॥ कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ॥ शंखोद्धारे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा ॥ ७८ ॥

पुरीमें स्वाहा ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें प्रचण्डा अमरकण्टकमें चण्डिका सोमेश्वरीमें वरारोहा प्रभासमें पुष्करावती ॥ ॥ ७३ ॥ सरस्वतीमें देवमाता समुद्रतटमें पारावारा महालयमें महाभागा पयोष्णीमें पिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ कृतशौचमें सिंहिका कार्तिकमें अतिशांकरी उत्पलावर्तकमें लोला शोणसंगममें सुभद्रा ॥ ७५ ॥ सिद्धवनमें मातालक्ष्मी भारताश्रममें अनङ्गा जालन्धरमें विश्वमुखी किष्किन्धापर्वतमें तारा ॥ ७६ ॥ देवदारुवनमें पुष्टि काश्मीरमंडलमें मेधा हिमाद्रिमें भीमा विश्वेश्वरक्षेत्रमें तुष्टि ॥ ७७ ॥ कपालमोचनमें शुद्धि कायावरोहणमें माता शंखोद्धारमें धरा पिण्डार

कमें धृति ॥७८॥ चन्द्रभागा नदीमें कला अच्छोदमें शिवधारिणी वेणामें अमृता बदरिकाश्रममें उर्वशी ॥ ॥ ७९ ॥ उत्तर कुरुमें औषधि कुशद्वीपमें कुशोदका हेमकूटमें मन्मथा कुमुदमें सत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थमें वन्दनीया वैश्रवणालयमें निधि वेदवदनमें गायत्री शिवसन्निधानमें पार्वती ॥ ८१ ॥ देवलोकमें इंद्राणी ब्रह्माके आस्यमें सरस्वती सूर्य बिम्बमें प्रभा और मातृगणोंके सन्निधानमें वैष्णवीनामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ८२ ॥ यही सतियोंमें अरुन्धती और रामागणोंमें तिलोत्तमा नामसे विख्यात हैं तथा यही संविद्रूपा महादेवी

कला तु चंद्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी ॥ वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ७९ ॥ औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ॥ मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी ॥८०॥ अश्वत्थे वंदनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ॥ गायत्री वेदवदने पार्वती शिव सन्निधौ ॥ ८१ ॥ देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ॥ सूर्यबिंबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता ॥८२॥ अरुंधती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा ॥ चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥८३॥ इमान्यष्टशतानि स्युः पीठानि जनमेजय॥ तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः ॥ ८४ ॥ सतीदेव्यंगभूतानि पीठानि कथितानि च ॥ अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले ॥ ८५ ॥ यः स्मरेच्छृणुयाद्वाऽपि नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत् ॥ ८६ ॥ एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः ॥ संतर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च ॥ ८७ ॥

हैं, संपूर्ण शरीरियोंके चित्रक्षत्रमें ब्रह्मकला नामक शक्तिरूपसे सदा अधिष्ठित रहती हैं ॥ ८३ ॥ हे जनमेजय ! यह मैंने एकशत अष्ट पीठ और तत्संख्यक ईशानीदेवीका विषय तुमसे वर्णन किया ॥ ८४ ॥ देवीके अंगभूत संपूर्ण पीठ और प्रसंगके क्रमसे पृथ्वीतलके अन्यान्य मुख्यास्थानभी कीर्तन हुए॥८५॥जो मनुष्य यह अत्युत्तम एकसौ आठ देवीके नाम और पीठोंके नाम श्रवण करता है वह सर्वविध पापसे मुक्तहोकर देवीके लोकको जाता है॥८६॥हे जनमेजय ! जो बुद्धिमान् पुरुष इन संपूर्ण पीठस्थानोंमें यथा विधानसे यात्राकर श्राद्धादि द्वारा पितरोंका

तर्पण ॥ ८७ ॥ और यथाविधि भगवतीकी महती पूजा करके उस जगद्धात्री जगदम्बिकाके निकट वारंवार क्षमा प्रार्थना करता है ॥ ८८ ॥ उस मनुष्यका अन्तरात्मा कृतकृत्य और पवित्र होता है इसमें संदेह नहीं. हे राजेन्द्र ! देवीकी पूजाके अनन्तर भक्ष्यभोज्यादि द्वारा ब्राह्मण ॥ ८९ ॥ सुवासिनी कुमारी और बटुकगणोंको भोजन करावे और उस क्षेत्रमें चाण्डालादि जो कोई जाति वास करती हो ॥ ९० ॥ उसको देवीका स्वरूप जाने अतएव उसको पूजा करना कर्तव्य है इन संपूर्ण क्षेत्रोंमें कभी दान न ले ॥ ९१ ॥ साधु

कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदंबां मुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय ॥ भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८९ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप ॥ तस्मिन्क्षेत्रे स्थिता ये तु चांडालाद्या अपि प्रभो ॥ ९० ॥ देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते ॥ प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत् ॥ ९१ ॥ यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मंत्रस्य सत्तमः ॥ मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥ ९२ ॥ पूजयेदनिशं राजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः ॥ ९३ ॥ य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः ॥ सहस्रकल्पपर्यंतं ब्रह्मलोके महत्तरे ॥ ९४ ॥ वसंति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा ॥ अंते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः ॥ ९५ ॥

गण इन संपूर्ण स्थानोंमें अपने अपने मंत्रका यथाशक्ति पुरश्चरण करते हैं और मायाबीजसे अपने स्थानकी अधिवासिनी देवीको ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! रातदिन पूजनेसे पुरश्चरण होता है देवीके प्रति भक्तिमान् मनुष्य इन संपूर्ण विषयोंमें वित्तशाठ्य वा कृपणता प्रकाश न करें ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देवीके प्रति प्रसन्न होकर इसप्रकार पीठस्थानमें यात्रा करता है उसके पितृगण सहस्रकल्प पर्यन्त महत्तर ब्रह्मलोकमें ॥ ९४ ॥ वास करते हैं वह मनुष्य परमज्ञान प्राप्त करके भवसमुद्रसे मुक्त होता है तथा देवीलोक वास

करता है ॥ ९५ ॥ देवीके इन अष्टोत्तर नामोंका पाठ करके वह मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है जिस किसी स्थानमें उक्त नामावली पुस्तकमें लिखित हो ॥ ९६ ॥ उस स्थानमें ग्रहभय और महामारीका भय इत्यादि कुछभी नहीं होता वरन् पर्वकालमें समुद्रके समान उस स्थानमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरशतनामके जपनेवाले मनुष्यको कुछ दुर्लभ नहीं रहता वह देवीका भक्त निश्चयही कृतकृत्यता प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥ वह साधुव्यक्ति देवीका स्वरूप होता है देवतागण उसको देखकर प्रणाम और उसकी पूजा करते हैं सज्जनमनुष्य जो उनकी पूजा करते हैं उसमें फिर कहना क्या है ? ॥ ९९ ॥ इस अत्युत्तम अष्टोत्तरशतनामके श्रद्धासहित पाठ करनेपर पितृगण तृप्त होकर

नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः ॥ यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वाऽपि तिष्ठति ॥ ९६ ॥ ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवंति हि ॥ सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः ॥ ९७ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिन्नामाष्टशतजापिनः ॥ कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः ॥ ॥ ९८ ॥ नमंति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः ॥ सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ॥ ९९ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ १०० ॥ इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च ॥ सिद्धपीठानि राजेंद्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ॥ १०१ ॥ पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः ॥ रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवी भागवते सप्तमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सद्गति प्राप्त करते हैं ॥ १०० ॥ यह सम्पूर्ण स्थान साक्षात् संविन्मय मुक्तिक्षेत्र हैं अतएव हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् मनुष्य इन संपूर्ण सिद्धि पीठोंका आश्रय करते हैं ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! आपने महेश्वरीका जो जो रहस्य और अतिरहस्यका विषय पूंछा था वह संपूर्ण मैंने वर्णन किया इस समय आप अब क्या सुननेकी इच्छा करते हैं ? सो कहिये ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने पहले कहा है कि, अनन्तर यह परमज्योत्ति हिमालयके पृष्ठमें आविर्भूत हुई थी इस समय उस परमज्योतिका विषय विस्तार सहित मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शक्तिका कथामृत पान करनेसे विरत होगा यद्यपि सुधापायी देवताओंको किसीप्रकार मृत्युकी सम्भावना हो तथापि देवीकथामृतपान करनेवालोंके पक्षमें उसकी कुछ सम्भावना नहीं होती ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवीके प्रति जिसप्रकार आपकी एकान्त भक्ति देखता हूं, इससे मुझको बोध होता है कि आप महात्माओंसे शिक्षित कृतकृत्य भाग्यवान् और धन्य हुए हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अब मैं परम

जनमेजय उवाच ॥ धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः ॥ यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ को विरज्येत मतिमान्पिबञ्छक्तिकथामृतम् ॥ सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः ॥ भाग्यवानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥ ३ ॥ शृणु राजन्पुरा वृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥ भ्रांतः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥ ४ ॥ प्रपंचभानरहितः समाधिगतमानसः ॥ ध्यायन्देवी स्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान् ॥ ५ ॥ सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम् ॥ ६ ॥ आनंदः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयांतरे ॥ उदासीनाः सर्वलोकाश्चिताजर्जरचेतसः ॥ ७ ॥

पुरातत्व वर्णन करता हूं श्रवण करो देवादिदेव महेश्वरने उस अग्निदग्ध सतीके देहको धारण कर भ्रांत चित्तसे भूमण्डलपर भ्रमण करते करते२जिस स्थानमें स्थिर होकर अवस्थिति की ॥४॥ उस स्थानमें वह नियतेन्द्रिय संसार ज्ञानरहित और समाधियुक्त होकर देवीके स्वरूपका ध्यान करते करते काल व्यतीत करने लगे ॥५॥ इस समय देवीके विना चराचर युक्त यह त्रैलोक्यमण्डल ऐश्वर्य रहित और पर्वत, समुद्र तथा द्वीप सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल शक्ति विहीन होगया॥६॥सम्पूर्ण जीवोंके हृदयका आनन्द शुष्क होगया सम्पूर्ण मनुष्य चिन्ताके कारण जर्जरचित्त हो दीन भावसे

अवस्थिति करने लगे॥७॥सब दुःखसागरमें निमग्न होकर रोगग्रस्त होने लगे ग्रहोंकी विपरीत गति और देवताओंकी विपरीत अवस्था होने लगी॥८॥ राजालोग सतीकेअभावसे आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख परम्पराके आधीन होकर स्थिति करने लगे॥९॥इसी समय तारक नामक महासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्तकर अत्यन्त दुर्जय हो उठा वह वीर मदसे मत्त हो त्रिभुवनको जीत त्रैलोक्यका एकमात्र अधीश्वर हो गया ॥ १० ॥ प्रजापति ब्रह्माके "शिवका औरस पुत्र तुम्हारा हन्ता होगा" इस प्रकार वरदान करनेपर और उस समय शिवके औरस पुत्रका अभाव होनेके कारण वह महासुर सदा आनन्दसे उन्मत्त होकर जयका अभिमान करने लगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण देवता उसके उपद्रवसे स्थान भ्रष्ट

सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥ ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥ ८ ॥ अधिभूताधिदेवानां सत्यभावा न्नृपाभवन् ॥ अथाऽस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥९॥ ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हंता भविष्यति ॥१०॥ इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः ॥ शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननंद च ॥११॥ तेन चोपद्रुताः सव स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः ॥ शिवौरससुताभावाच्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ नांगना शंकरस्यास्ति कथं तत्सुतसंभवः ॥ अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति ॥१३॥ इति चिंतातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुंठमंडले ॥ शशंसुर्हरिमेकांते स चोपायं जगाद ह ॥ १४ ॥ कुतश्चिंतातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा ॥ जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ १५ ॥

होकर शिवका औरस पुत्र न होनेके कारण दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए ॥ १२ ॥ सती देवीके इस समय प्राण त्यागनेपर महादेव भार्यारहित हुए हैं अतएव इस समय किस प्रकार उनके सुतोत्पत्ति सम्भव हो सकती है ? हम अत्यंत भाग्यहीन हैं कारण कि शंकरकी पुत्रोत्पत्तिके अभावसे हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यंत कठिन होगया ॥ १३ ॥ इस प्रकार चिंतासे कातर होकर सम्पूर्ण देवता वैकुण्ठमण्डलमें गये और निर्ज्जनमें भगवान् विष्णुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करनेपर हव उस विषयका उपाय कहने लगे ॥ १४ ॥ हे सुरगण ! जब

मणिद्वीप निवासिनी वाञ्छाकल्पद्रुमरूपिणी कल्याणदायिनी करुणामयी देवी भुवनेश्वरी हमारे लिये सदा जागरित रहती हैं तब तुम चिंतासे व्याकुल क्यों होते हो ॥ १५ ॥ वह जगज्जननी केवल हमारे अपराधसे हमको शिक्षा देनेके लिये उपेक्षा दिखाती हैं हे देवताओ ! तुम निश्चय जानो कि, वह शिक्षा हमारे विनाशके निमित्त नहीं है हमारे प्रति करुणा दिखानेके लिये ही वह करती हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार अपनी संतानके लालन पालन और ताडन विषयमें माताकी दया हीनता नहीं दिखाई देती इसी प्रकार तुम्हारे गुणदोष विषयमें वह जगन्नियंत्रीजगज्जननी कभी निर्दय नहीं होगी ॥ १७ ॥ संतानसे अपराध पद पदपर होता है त्रैलोक्यमें एकमात्र जननीके विना और कौन उसको सह सकता है ?

अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्ति नान्यथा ॥ शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥ १६ ॥ लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके ॥ तद्वदेव जगन्मातुर्नियंत्रा गुणदोषयोः ॥१७॥ अपराधो भवत्येव तनयस्य पदेपदे ॥ कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना ॥१८॥ तस्माद्यूयं परांबां तां शरणं यात मा चिरम् ॥ निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति ॥१९॥ इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया ॥ संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः॥२०॥आजगाम महाशैलं हिमवंतं नगाधिपम् ॥ अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः ॥२१॥ अंबायज्ञविधानज्ञा अंबायज्ञं च चक्रिरे ॥ तृतीयादि व्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप ॥ २२ ॥ केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः ॥ केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥ २३ ॥

॥ १८ ॥ अतएव तुम शीघ्र ही एकांत भक्ति सहित उन्हीं परमजननी परमेश्वरीकी शरणागत होओ अवश्य ही वह तुम्हारे कार्य साधनमें यत्न करेंगी ॥ १९ ॥ देवाधिपति महाविष्णु देवताओंसे इस प्रकार आदेशकर निजजाया लक्ष्मीके सहित देवीकी आराधनाके लिये देवताओंको संग ले शीघ्र निकले ॥ २० ॥ फिर शीघ्र शैलाधिपति हिमालयमें जाय समस्त ही पुरश्चरण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! अम्बायज्ञके जाननेवाले देवताओंने अम्बायज्ञ आरम्भ किया और सम्पूर्ण ही तृतीयादि व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २२ ॥ कोई कोई देवीकी समाधि अर्थात उनके धारावाहिक ध्यानमें परायण हुए कोई कोई निरंतर उनका नाम जपने लगे कोई कोई देवीसूक्त जप करनेमें प्रवृत्त हुए कोई

कोई नाम परायण ॥ २३ ॥ अथवा कोई कोई मन्त्रपरायण हुए और कोई कोई कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतपरायण हुए कोई कोई अन्तयोगमें कोई कोई प्राणाग्नि होत्र योगमें अथवा कोई कोई न्यासादिमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ और कोई २ अतन्द्रित होकर मायाबीज मंत्रद्वारा परमा शक्ति भुवनेश्वरीकी पूजा करने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार देवताओंको बहुत वर्ष व्यतीत होगये ॥ २५ ॥ फिर एक दिन चैत्रमासकी नवमी तिथि और भृगुवारमें वह श्रुतिबोधित शक्ति सम्बन्धीय परमज्योति अकस्मात् उनके सामने प्रगट हुई ॥ २६ ॥ यह तेज करोड करोड विद्युत्के समान अरुणवर्ण और करोड करोड चन्द्रमाके समान शीतल था उस परम ज्योतिकी प्रभा करोड करोड सूर्य्यके समान थी चारों

मंत्रपारायणपराः केचिच्छ्राद्धादिकारिणः॥ अंतर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥ २४ ॥ हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रु रतंद्रिताः ॥ इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय ॥ २५ ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने ॥ प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥ २६ ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चद्रकोटिसुशीतलम् ॥ २७ ॥ विद्युत्कोटि समानाभमरुणं तत्परं महः ॥नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥ २८ ॥ आद्यंतरहितं तत्तु न हस्ताद्यंगसंयुतम् ॥ न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथोभयम् ॥ २९ ॥ दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते ॥ पुनश्च धैर्यमालंब्य यावत्ते ददृशुः सुराः ॥ ३० ॥ तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभाद्दिव्यं मनोहरम् ॥ अतीव रमणीयांगीं कुमारीं नवयौवनाम् ॥ ३१ ॥

ओर अवस्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेद उनका स्तव करते थे वह तेजोराशि क्या ऊर्द्धमें क्या पार्श्वमें क्या मध्यमें किसी दिशामें परिच्छिन्न नहीं हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसका आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं वह हस्तपादादि अंग संयुक्त स्त्रीरूप पुरुषरूप अथवा नपुंसकरूप भी नहीं थी ॥ २९ ॥ देवताओंने प्रथम उस तेजकी प्रभासे हत होकर नेत्र मूंद लिये किन्तु क्षणकालमें ही धैर्य्य अवलम्बन कर ज्योंही नेत्र खोले ॥ ३० ॥ त्योंही वह परमज्योति अतिमनोहर दिव्य रमणीरूपसे प्रकाशित हुई उस मनोरमाङ्गी

नवयौवना कुमारीके ॥ ३१ ॥ कमलकलिकानिन्दित दोनों कुच ऊंचे परम शोभायमान हो रहे थे कमरमें किंकिणी मेखलाके शब्द और चरणोंसे मनोहर मंजीरकी ध्वनि आती थी ॥ ३२ ॥ उसके चारों हाथोंमें कनकवलय चारों बाहुओंमें केयूर ग्रीवादेशमें ग्रैवेयक गलदेशमें अमूल्य मणि हार गलबन्ध और परमोज्वल प्रभाजाल विस्तारित होकर शोभा पारहा था ॥ ३३ ॥ उनके कर्ण और कपोलके मध्यवर्ती केशावली नवकेतकीपुष्पपत्रोपरि विराजित दीप्तप्रभ नीलवर्ण भ्रमरावलीके समान समुज्ज्वल शोभा पातीहै नितम्बबिंब सुघटित और अत्यंत मनोहर रोमराजि नाभिमें विराजित होकर अपूर्व शोभा संपादन करती है ॥ ३४॥ दीप्यमान कनकताटंकमें उज्ज्वल परम सुन्दर मुखकमल

उन्नतपीनकुचद्वंद्वनिंदितांभोजकुड्मलाम् ॥ रणत्किंकिणिकाजालसिंजन्मंजीरमेखलाम् ॥३२॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयक विभूषिताम् ॥ अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥ ३३ ॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् ॥ नितंबबिंबसुभगां रोमराजिविराजिताम् ॥ ॥३४॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम् ॥ कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥ ३५ ॥ अष्टमी चंद्रबिंबाभललाटामायत भ्रुवम् ॥ रक्तारविंदनयनामुन्नसां मधुराधराम् ॥ ३६ ॥ कुंदकुड्मलदंताग्रां मुक्ताहारविराजिताम् ॥ रत्नसंभिन्नमुकुटां इंद्ररेखावतंसिनीम् ॥३७॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ काश्मीरबिंदुनिटिलांनेत्रत्रयविलासिनीम् ॥३८॥ पाशांकुशवराभीति चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ॥ रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ३९ ॥

कर्पूरखण्डमिश्रित तांबूलसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र शोभायमानदोनों भौंए चौड़ी नेत्रोंने उपांतभागमें कोकनदके समान अर्थात् लालकमलके समान शोभा धारण की है नासिका ऊची अधर बिंवाफलके समान अति मनोहर ॥ ३६ ॥ संपूर्ण दाँत कुन्द कलीके समान अत्यंत मनोहर गलेमें लम्बायमान मोतियोंका हार विराजमान है मस्तकके ऊपर हीरक और मणिरत्नमें खचित प्रदीप्त मुकुटालंकार कर्णमें चन्द्ररेखाके समान करनफूल ॥ ३७ ॥ केशपाश मल्लिका और मालतीकी माल से सुशोभित ललाट काश्मीर बिंदुद्वारा सुसज्जित और तीनोंनेत्र मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा संपादन करते हैं ॥ ३८ ॥ उनके एक हस्तमें पाश और दूसरे हाथमें अंकुश तथा अन्यान्य दोनों हाथ

वर और अभयदान भङ्गिमासे विराजित देहकी कांति दाडमीके फूलके समान परिधान अरुणवर्ण अंबर परमशोभा विस्तार करते हैं ॥ ३९ ॥ देवताओंने इस प्रकार समस्त शृंगारवेष धारिणी समस्त वाञ्छापूरिणी संपूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हास्याननी अखिलमोहिनी ॥ ४० ॥ अखिल जननी प्रसादसुमुखी कपटतारहित करुणाकी मूर्त्तिरूपिणी अंबिकादेवीको सामने देखा ॥ ४१ ॥ उस करुणामयी मूर्त्तिको देखकर देवताओंने प्रणाम किया किंतु बाष्पभारसे कंठ रुकजानेके कारण कुछ भी न कहसके ॥ ४२ ॥ फिर अति कष्टसे धैर्य अवलंबनकर भक्तिमें भर शिर झुकाय प्रेम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जगदम्बिकाका स्तव करने लगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा हे जगदंबिके ! आप देवी और महादेवी हैं तथा

सर्वशृंगारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम् ॥ ४० ॥ प्रसादसुमुखीमंबा मंदस्मितमुखांबुजाम् ॥ अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सकलाः सुराः ॥ वक्तुं नाशक्नुवन्किंचिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः ॥ ४२ ॥ कथंचित्स्थैर्यमालंब्य भक्त्या चानतकंधराः ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयास्तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ४४ ॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ॥ दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ ४५ ॥

आपही शिवरूपिणी हैं हम सदा संयतचित्तसे आपको वारंवार प्रणाम करते हैं हे देवि! आपही साम्यावस्थाविशिष्ट मायोपाधियुक्त ब्रह्मरूपिणी प्रकृति और आपही सर्वकल्याणरूपिणी हैं हम संयतमनसे आपकेचरणकमलोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे जननि ! आपही योगियोंके हृदयमें अनल शिखाके समान अरुणवर्णसे दीप्ति पाती हैं आपही ज्ञानप्रभासे दीप्यमान हैं. हे मातः ! आपही इस संपूर्ण ब्रह्माण्डमें चैतन्य रूपसे सर्वत्र प्रकाशित होती हैं ब्रह्मादि देवता और मानवादि जीवगण कर्मफलप्राप्तिके लिये आपकी सेवा करते हैं हे देवि ! आपही संसारसागरसे तारनेवाली हैं अतएव हम घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये आपकी शरणागत होकर आपको वारंवार नमस्कार

करते हैं ॥ ४५ ॥ हे मातः ! प्राणादिपञ्चवायुकी सहायतासे जो सम्पूर्ण भावप्रकाशवाक्य उच्चारित होते हैं हम उसको माया कहते हैं वह माया हमारी कामधेनु अर्थात् हम उस कामधेनुरूपिणी मायासे इच्छानुसार धन, मान और अन्नादि दुहकर अहंकारमें उन्मत्त होते हैं हे मातः ! आप हमारी वही भाषा स्वरूप हैं अतएव आप सन्तुष्ट होकर हमारी वाञ्छा पूर्ण कीजिये ॥ ४६ ॥ हे देवि ! आप सर्वसंहारक कालकाभी संहार करती हैं भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा सदा आपकी स्तुति करते हैं हे मातः ! आपही विष्णुशक्ति लक्ष्मी स्कन्दमाता शिवशक्ति पार्वती ब्रह्मशक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और आपही सती नाम्नी दक्षकी कन्या हैं हे मातः ! आप ही इसप्रकार अनेकरूप धारण करके अखिलब्रह्माण्डपूत और सम्पूर्णको शान्तिदान करती हैं अतएव हे

देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदंति ॥ सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ४६ ॥ कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम् ॥ सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ४७ ॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ ४८ ॥ नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये ॥ नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्म-मूर्तये ॥ ४९ ॥ यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥ यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम् ॥ ५० ॥

देवि ! आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ हम आपको ही महालक्ष्मी जानते हैं हम आपको सर्वशक्तिरूपिणी देवी भगवती जानकर आपका ध्यान करते हैं हे जननि ! आप ही हमको अपने श्रवण, मनन और ध्यानमें प्रेरण कीजिये ॥ ४८ ॥ हे देवि ! आप ही विराट्रूपिणी हैं आपको नमस्कार है आपही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भरूपिणी हैं आपको नमस्कार है आप ही महदादि षोडशविकृतिरूपिणी हैं आपको नमस्कार है हे मातः ! आपही ब्रह्मरूपिणी हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ जिनके सृष्टि अविद्याजनित ज्ञानसे यह जगत्‌रज्जू और स्रगादि (मालाआदि) में सर्पके समान सत्य जानकर भ्रमहोता है फिर जिनके सृष्टिविद्याजनित ज्ञानसे वह भ्रम दूर होता

है हम भक्तिनम्रमनसे उन्हीं सर्वान्तर्यामिनी भगवतीभुवनेश्वरीकाध्यान करते हैं ॥ ५० ॥ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यस्थ तत् शब्दकी प्रतिपाद्य जो संपूण देवताओंकी तात्पर्यभूमि चैतन्यरसरूपिणी और अखण्डानंदस्वरूप ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ५१ ॥ तथा जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय इस पञ्चकोशके अतिरिक्त हैं जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी और जो त्वम्पदकी भी लक्ष्यार्थ हैं हम उन्हीं ज्ञानब्रह्मस्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥ हे मातः ! आप ही प्रणवरूपिणी ह्रींकारमूर्ति नानाविधमंत्रात्मिका और करुणामयी हो हम आपके चरणकमलोंमें वारम्वार प्रणाम

नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम् ॥ अखंडानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥ ५१ ॥ पंचकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ पुनस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥ ५२ ॥ नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ नानामंत्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ॥ ५३ ॥ इति स्तुता तदा देवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना ॥ ५४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वदंतु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह संगताः ॥ वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥ ५५ ॥ तिष्ठंत्यां मयि का चिंता युष्माकं भक्तिशालिनाम् ॥ समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात् ॥ ५६ ॥ इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः ॥ इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा संतुष्टमानसाः ॥ ५७ ॥

करते हैं ॥ ५३ ॥ देवताओंके इस प्रकार उन मणिद्वीप निवासिनी जगदम्बिकाका स्तव करनेपर प्रमत्त कोकिलके कण्ठके समान कण्ठवाली भगवती मधुर वचनों द्वारा उनसे कहने लगी ॥ ५४ ॥ देवी बोली हे देवताओ ! तुम किसलिये यहां आये हो ? तुम्हारा क्या कार्य है सो कहो मैं सदाही भक्तोंकी वाञ्छाको कल्पतरु और वर देनेवाली विद्यमान रहती हूं ॥ ५५ ॥ तुम मेरे भक्त हो मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिन्ता है ? मैं तुमको दुःखसागरसे उद्धार करूगी ॥ ५६ ॥ हे देवताओ ! तुम मेरी यह प्रतिज्ञा

सत्यही जानो हे राजन्! देवतागण देवीके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ और जगन्मातासे अपना मनोदुःख निवेदन करने लगे देवता बोले हे परमेश्वरि! आप सर्वज्ञ और सब जगत्की साक्षी हैं इन तीनों जगतोंमें आपसे अज्ञात कुछ नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मातः! शिवे! तारक नामक असुर हमको दिन रात दुःख देता है ॥ ५९ ॥ विश्वस्रष्टा विधाताने शिवके औरस पुत्रसे उसका वध निर्दिष्ट किया है. हे महेश्वरि! इस समय शिव गृहिणी सतीने देह त्याग किया है सो आप जानती हैं ॥ ६० ॥ जो सर्वज्ञ हैं फिर उनके सामने पामरगण क्या कहें? हे जगदम्बिके! हमने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे वर्णन किया और हमारा अन्यान्य

निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम् ॥ देवा ऊचुः ॥ नाज्ञातं किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥ ५८ ॥ सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि ॥ तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥ ५९ ॥ शिवांगजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे ॥ शिवांगना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥६०॥ सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः ॥ एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वदा चरणांभोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला ॥ ॥ प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी ॥ मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥ ६३ ॥ शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति ॥ भक्तिर्यच्चरणांभोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४ ॥

सम्पूर्ण दारुण दुःख आप मनमें जान सकती हैं ॥ ६१ ॥ हम अधिक और क्या कहैं? आपके चरण कमलोंमें हमारी अचल भक्ति सदा विद्यमान रहै यही हमारी मुख्य प्रार्थना है और शिवकी सुतोत्पत्तिके लिये आप देह धारण कीजिये यह हमारी दूसरी प्रार्थना जानिये ॥ ६२ ॥ देवताओंके यह वचन सुन प्रसाद सुमुखी परमेश्वरी उनसे कहने लगी मेरी शक्ति जो गौरीरूपसे हिमालयमें उत्पन्न होगी ॥ ६३ ॥ वही शिव सीमन्तिनी होकर पुत्रोत्पादन पूर्वक उसके द्वारा तारका सुरका वध करके तुम्हारा कार्य साधन करेगी औमेर चरणकमलोंमें तुम्हारी

प्रेमपूर्ण निश्चल भक्ति होगी ॥ ६४ ॥ हिमालय भी अत्यन्त भक्तिसहित एकान्त मनसे मेरी उपासना करते हैं अतएव उनके गृहमें मेरा जन्म ग्रहण करना अत्यंत प्रिय जानना चाहिए ॥ ६५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! गिरिराज हिमालय भी उनके अत्यंत अनुग्रह सूचक वचन सुनकर प्रेम जनित बाष्पमें भर रुद्धकण्ठ हो अश्रुपूर्ण नत्रोंसे त्रैलोक्य साम्राज्ञी भुवनेश्वरीसे कहने लगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! आप जिसके प्रति अनुग्रह करती हैं उसको आप अत्यंत महत् कर देती हैं नहीं तो जड़ और स्थावर पाषाणपुञ्ज मैं कहाँ ? और वाक्य तथा मनके अगोचर सच्चिदानन्दरूपिणी आप कहां ? हमारे गृहमें उत्पन्न होकर आप हमारे प्रति इतना अनुग्रह कर क्या प्रकाश करती यही

हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरं वचः ॥ बाष्पैः संरुद्धकंठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥ महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ॥ नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥ ६७ ॥ असंभाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे ॥ अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजैः ॥६८॥ अद्य प्रपंचे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् ॥ अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥६९॥ यस्यास्तु जठरे संति ब्रह्मांडानां च कोटयः ॥ सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि ॥ ७० ॥ न जानेऽस्मत्पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम् ॥ एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः ॥ ७१ ॥

आपके अनिर्वचनीय महत्त्वका परिचय प्रदान करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥ हे विमले ! हमारे पक्षमें आपके जनकत्व लाभका अनंत जन्म अश्वमेधादिजनित अथवा समाधिजनित पुण्यके अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥६८॥ अहो ! हमारे प्रति आपने क्या अनुग्रह किया है " जगन्माता जगद्धात्री इन हिमालयकी कन्या हुई अतएव यह व्यक्ति ही धन्य और भाग्यवान् है" अबसे हमारी इस प्रकार अतुल कीर्ति इस सम्पूर्ण जगत्में प्रचलित होगी ॥ ६९ ॥ जिनके जठरमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड स्थित रहतेहैं वह जिनकी कन्या हुई पृथ्वी तलमें उसके समान सौभाग्यवान् और पुण्यवान् कौन हो सकता है ? ॥ ७० ॥ जिनके वंशमें मेरे समान पुण्यवान् मनुष्यने जन्म ग्रहण किया

है मेरे उन पितरोंके वासार्थ कैसे परमोत्कृष्ट समस्त स्थान निर्मित हुए हैं वह मैं नहीं कह सकता ॥ ७१ ॥ हे मातः परमेश्वरि ! आपने जिस प्रकार प्रेम परिपूर्ण होकर कृपा प्रकाश की है इसी प्रकार आप हमसे अपना सब वेदान्त सिद्ध स्वरूप ॥ ७२ ॥ और श्रुतिसम्मत भक्तियुक्त ज्ञान तथा योगका विषय कीर्तन कीजिये क्योंकि हम उसी ज्ञानके बलसे आपका स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालयके इस प्रकार स्तुति युक्त वचन सुनकर भुवनेश्वरीने प्रसन्न मुखसे श्रुत्युक्त गूढ रहस्यका विषय कहना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ देवीने कहा हे देवताओ ! जिसके श्रवण मात्रसे

इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया ॥ सर्ववेदांतसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा ॥ ७२ ॥ योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसंमतम् ॥ वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवेः ॥ ७३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा ॥ वक्तुमारभतांबा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥ ७४॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे देवीगीतायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृण्वंतु निर्जराः सर्वे व्याहरंत्या वचो मम ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥ १ ॥ अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किंचिन्नगाधिप ॥ तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥ २ ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ॥ तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता ॥ ३ ॥ न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः ॥ एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥ ४ ॥

जीवगण मेरा स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं मैं इस समय वही विषय वर्णन करती हूं तुम समाहित चित्तसे श्रवण करो ॥ १ ॥ हे गिरिवर सृष्टिके पूर्वमें एकमात्र मैं ही विद्यमान थी अन्य और कुछ नहीं था मेरेही आत्मस्वरूपको चित् संवित् और परब्रह्म इत्यादि नामसे निर्देश किया है ॥ २ ॥ मेरा आत्मा अनुमानके अतीत लक्ष्यके अतीत उपमाके अतीत और जन्म मरणादि विकारके भी अतीत पदार्थ है मेरे ही आत्माकी स्वतः सिद्ध एक शक्ति है यह शक्ति माया नामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञान द्वारा मायाका विनाश होता है यह माया सती अर्थात्

सदा नित्य नहीं है और मायाके न होनेसे व्यावहारिकसत्ताका विरोधहोनेके कारण असती भी नहीं है सत्ता और असत्ताकी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती अतएव माया सती और असती यह उभयात्मिका भी नहीं हो सकती इस प्रकार अनिर्वचनीय वस्तुरूप मायाशक्ति मोक्षकालपर्यंत विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥ मेरी यह अनादि मोक्षपर्यंत स्थायिनी मायाशक्ति अग्निकी उष्णताके समान सूर्यकी मरीचिके समान चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान स्वभावसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ सुषुप्तिकालके समय जीवोंका व्यवहार जिस प्रकार उसमें लीन होता है इसीप्रकार प्रलयकालके समय जीवोंके कर्मसमूह जीव और काल यह समस्त ही अभिन्न भावसे मायामें लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे गिरिवर! यद्यपि मैं निर्गुण हूं तथापि ऐसी मायाशक्तिके संयोगसे जगत्की कारण स्वरूप हुई हूं किंतु जो माया मेरा आश्रय करके रहती है उस मायाके मुझको आवरण करनेसे

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः ॥ चंद्रस्य चंद्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ॥ ५ ॥ तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालश्च संचरे ॥ अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥ ६ ॥ स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता ॥ स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥ ७ ॥ चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते ॥ प्रपंचपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥ ८ ॥ केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे ॥ ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥ ९ ॥

मायामें आश्रयावरकता दोष विद्यमान रहता है हे हिमवान्! तुमको जानना चाहिये कि मेरे माया और अविद्या नामसे दो रूप हैं तिनमें विद्यारूपिणी प्रथम इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष नहीं है और अविद्यारूपिणी दूसरा इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष विद्यमान है इसके द्वाराही जीवोंकी सृष्टि होती है और विद्याके द्वारा जीवगण मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ मायाके सहित चैतन्यका संयोग होनेपरही वह माया प्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् चिदाभासही जगत्का निमित्तकारण है और यह माया प्रपञ्चरूप परिमाण समवायिकारण कहा जाता है ॥ ८ ॥ कोई कोई शाखाध्यायी वेदके जाननेवाले इस मायाको तप कोई कोई तम कोई कोई जड कोई कोई ज्ञान अथवा कोई कोई माया प्रधान प्रकृति अजा और

शक्ति नामसे निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ शैवशास्त्र तत्वज्ञ पंडितलोग उसको विमर्श और अन्यान्य वेदतत्वार्थचिंतक कोविदगण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं फलतः यह माया समस्त वेदांतिगणोंकी उपजीव्य (निर्वाहक) है इसप्रकार निगमादि शास्त्रमें माया अनेक नामोंसे कही गई है ॥१०॥ जो वस्तु दृश्यमान हैं वही वही वस्तु जड हैं इस अभिचारी लक्षण हेतु मायाका जडत्व और स्वाधिष्ठान ज्ञाननाश हेतु मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है किंतु चैतन्य दृश्य पदार्थ नहीं है अतएव उसको जड़ भी नहीं कहा जाता ॥ ११ ॥ चैतन्य स्वप्रकाश है वह अन्यके द्वारा प्रकाशित नहीं होता क्योंकि चैतन्य अन्यद्वारा प्रकाशित होता है यह स्वीकार करनेसे चैतन्य प्रकाशक प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥ वह अन्यद्वारा प्रकाशित होता है इस प्रकार अनवस्था दोष उपस्थित होता है स्वयंप्रकाश पदार्थकी स्थिरता नहीं है यह भी

विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ॥ अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिंतकाः ॥ १० ॥ एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु ॥ तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती ॥११॥ चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् ॥ स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ॥ १२ ॥ अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ॥ कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥ १३ ॥ प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत ॥ अत एव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम ॥ १४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ॥ संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥ १५ ॥

नहीं कहा जाता क्योंकि उसमें कर्म्म कर्त्ताका विरोध होता है एक पदार्थमें ही एक कालमें कर्तृत्व और कर्म्मत्व नहीं रह सकता अतएव दीपक के समान चैतन्यको स्वप्रकाश पदार्थ स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥ चैतन्य स्वयं प्रकाशमान पदार्थ होनेपर भी अन्य चन्द्र सूर्य्यादि पदार्थोंको भी प्रकाशित करता है अतएव हे पर्व्वतवर ! मेरे संवित् रूप तनुका नित्यत्व सिद्ध हुआ ॥ १४ ॥ कारण कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंमें दृश्य पदार्थका व्यभिचार होता है किंतु किसी अवस्थामें ही सम्वित् वा चैतन्यका व्यभिचार अनुभव नहीं होता क्योंकि जो मैंने जाग्रत् अवस्थाका अनुभव किया है वही मैं स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अनुभव करती हूं मैं इस समय

सोती थी, इसप्रकार अनुभव किया अतएव सम्वित् पदार्थका कभी व्यभिचार नहीं होता ॥ १५ ॥ बौद्धगण कहते हैं कि जिस प्रकार सम्वित्का अनुभव होता है इसी प्रकार सम्वित्के अभावका भी अनुभव होता है जो सत् है वही क्षणिक है इस प्रकार अनुमानद्वारा ज्ञानका भी अनित्यत्व प्रतिपादित होता है इससे कहा जाता है कि यद्यपि सम्वित्के अभावका अनुभव होता है तथापि जिस साक्षीद्वारा उस सम्वित्के अभावका अनुभव होता है वही साक्षी सम्वित् वपु है अर्थात् ज्ञानशरीररूपसे प्रतिपन्न होता है क्योंकि साक्षी ज्ञानका नित्यत्व सबको ही स्वीकार करना होता है ॥ १६ ॥ अतएव अनवद्य सत् शास्त्रोंके तत्वज्ञ पंडितगण कहते हैं कि सम्वित् नित्य और परमप्रेमका आस्पद होनेसे वह आनन्दरूप है कारण कि असुख कभी परम प्रेमका आस्पदीभूत नहीं हो सकता ॥१७॥ और "मैं हूं" जीवोंका इस प्रकार अनुभव

यदि तस्याऽप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा ॥ अनुभूत स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा ॥१६॥ अत एव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः॥ आनंदरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः ॥१७॥ मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ॥ सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसंगत्वं स्फुटं मम ॥१८॥ अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम ॥ तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडताऽऽत्मनः ॥ १९ ॥

नहीं होता किंतु "मैं विद्यमान हूं" इस प्रकार प्रेम सम्पूर्ण जीवोंके आत्मामें प्रतिष्ठित रहता है यदि आत्माका आनन्दरूपत्व न हो तो इस प्रकार आत्मप्रेम कभी संभव नहीं होता अतएव प्राणिमात्रके अनुभव हेतु सम्वित्का आनन्दरूपत्व सर्वथा सिद्ध हुआ है हे गिरिराज ! यह सम्पूर्ण जगतप्रपंच मायानिर्मित है अतएव वह मिथ्याभ्रम होनेसे सर्पादि मिथ्या पदार्थका जिसप्रकार रज्जु इत्यादिके सहित सम्बन्ध नहीं होता इसी प्रकार इस जगत्के सहित मेरा (आत्माका) असङ्गत्व भलीभांति सिद्ध हुआ और यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या और परिच्छेद्य होनेसे मेरी आत्मस्वरूपिणीको अपरिच्छिन्नता प्रमाणित होती है ॥ १८ ॥ यदि कोई कहै कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है वह आत्माका धर्म है यह भ्रांतिविलास है क्योंकि यदि आत्माका धर्म होता तो अवश्य ही उसकी जड़ता संघटित होती इसमें संदेह नहीं ज्ञानका जडत्व सम्भव

नहीं होता अतएव अन्य कहीं भी ज्ञानका जडपरिणामित्व दिखाई नहीं देता ॥१९॥ यदि कहो कि तो ज्ञानका जड़त्व हो वह भी नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान भी चित्स्वरूप और आत्मा भी चित्स्वरूप है चित्पदार्थका धर्मत्व नहीं और चित्पदार्थ चित्से भी भिन्न नहीं होसकता अतएव चिद्रूप ज्ञानका धर्माधर्मभाव किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? ॥ २० ॥ अतएव आत्मा सर्वदा ही ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप सत्यस्वरूप पूर्ण संगरहित और द्वैत वर्जित है ॥२१॥ यह आत्मा कामना और कर्मादियुक्त अपनी मायाद्वारा पूर्वानुभूत संस्कार वशसे काल और कर्मके विपाकानुसार ॥ २२ ॥ चौवीस तत्त्वोंके अविवेकजनित ही इस प्रकार सृष्टिविषयमें इच्छावान् होता है हे गिरिवर ! सोता हुआ

ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च संभवि ॥ चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि भिद्यते ॥ २० ॥ तस्मादात्मा ज्ञानरूपः सुखरूपश्च सर्वदा ॥ सत्यः पूर्णोऽप्यसंगश्च द्वैतजालविवार्जितः ॥ २१ ॥ स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया ॥ पूर्वानुभूतसंस्कारात्कालकर्मविपाकतः ॥ २२ ॥ अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ॥ अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप॥२३॥ एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् ॥ अव्याकृतं तदव्यग्रं मायाशबलमित्यपि ॥ २४ ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ॥ तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानंदविग्रहम् ॥ २५ ॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥ ह्रींकारमंत्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ॥२६॥ तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः ॥ भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः॥ २७ ॥

पुरुष जिस प्रकार पूर्व संस्कारसे अबुद्धिपूर्वक नींदसे उठता है इसी प्रकार आत्माकी यह सृष्टिभी कालकर्मके संस्कार अबुद्धिपूर्वकही साधित होती है॥२३॥ हे अचलेन्द्र ! मैंने जो तत्त्वका विषय वर्णन किया यही सर्वोत्तम और मेरा अलौकिक रूपमात्र है वेदमें यही अव्याकृत अव्यक्त और मायाशबल कहकर उल्लिखित हुआ है ॥२४॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इसको सर्व कारणोंका कारण सब तत्त्वका आदिभूत तथा सच्चिदानन्द विग्रह कहकर निर्देश करते हैं ॥ २५ ॥ ज्ञान और क्रिया संयुक्त समस्त कर्म्म घनीभूत होनेसे वह ह्रींकार मंत्रका वाच्य होता है तत्वदर्शी महर्षिगण इस ह्रींकाररूप मायाबीजको ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व कहकर उल्लेख करते हैं ॥ २६ ॥ उस ह्रींकारवाच्य महत्स्वरूप माया

बीजरूप आदितत्त्वसे क्रमानुसार शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है अनन्तर उससे स्पर्शात्मक वायु अनन्तर उससे क्रमानुसार रूपात्मक तेज ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त रसात्मक जल तदनन्तर गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है पंडित लोग कहते हैं कि आकाशगुण एकमात्र शब्द है वायुका गुण शब्द और स्पर्श है ॥ २८ ॥ तेजका गुण शब्द स्पर्श और रूप जलका गुण शब्द स्पर्श रूप और रस है ॥२९॥ तथा शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध यह पांच पृथ्वीके गुण हैं इन अपञ्चीकृत भूतोंसे व्यापक सूत्र उत्पन्न होता है वही लिङ्गदेह नामसे कहा गया है ॥३०॥ यह सूत्र अर्थात् लिंगदेह सर्व प्राणात्मक और यही परमात्माका सूक्ष्म देह है पूर्वमें जो कहा गया है जिसमें जगत्का बीज प्रतिष्ठित

जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गंधात्मिका धरा ॥ शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ॥ २८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ॥ २९ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगंधैः पंचगुणा धरा ॥ तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिंगं परिचक्षते ॥ ३० ॥ सर्वात्मकं तत्संप्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः॥ अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ॥३१॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिंगोद्भवो यतः ॥ ततः स्थूलानि भूतानि पंचीकरणमार्गतः ॥ ३२ ॥ पंच संख्यानि जायंते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते ॥ पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद् द्विधा॥३३॥एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद्गिरे॥स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पंच पंच ते ॥ ३४ ॥ तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः ॥ पंचभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ॥ ३५ ॥

और जिससे लिङ्गदेहकी उत्पत्ति है वही परमात्माका कारण देह है पूर्वोक्त रूपसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत उत्पन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर उनसे पञ्चीकरण द्वारा जिस प्रकार पञ्चीकृत भूतकी उत्पत्ति होती है इस समय उसका ही नियम कहती हूं हे गिरिराज ! पूर्वोक्त पञ्चमहाभूतोंके प्रत्येकको दो भागोंमें विभक्त करके ॥ ३३ ॥ और उनके एकएक भागको पुनर्वार चार भागमें विभक्त करके फिर एक २ सबमेंसे ले प्रत्येकमें मिलावै इस प्रकार यह अष्टमांश पंचीकरण लानेसे वह पंचपंच अंशयुक्त हो एक एक स्थूल महाभूत होता है ॥ ३४ ॥ इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराट्देह है वह परमेश्वरका स्थूलदेह कहा गया है इन पंचभूतस्थित प्रत्येकके सत्वांशसे श्रोत्र (कान)

त्वगादि (त्वचाआदि) पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥ उक्त सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्येकका सत्वांश मिलित होकर एक अन्तःकरण होता है यह अन्तःकरण वृत्तिभेदसे चारप्रकारका है ॥ ३६ ॥ जब उसका संकल्प और विकल्पात्मक कार्य होता है तब उसको मन जब संशयविहीन रूपसे निश्चित ज्ञानरूप कार्य होता है तब उसको बुद्धि ॥ ३७ ॥ जब अनुसंधानरूप वृत्ति होती है तब चित्त जब अहंकृतिस्वरूप आत्मवृत्तिसमन्वित होता है तब उसको अहंकार कहते हैं ॥ ३८ ॥ उन पंचभूतके प्रत्येक रजअंशसे वाक् पाणी पाद पायु (गुदा) और उपस्थ नामक पंच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है उनमें प्रत्येकके सम्पूर्ण रजअंश मिलित होकर प्राण अपान समान उदान

ज्ञानेंद्रियाणां राजेंद्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः ॥ अंतःकरणमेकं स्याद् वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥ ३६ ॥ यदा तु संकलपविकलप कृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ॥ स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चित संशयहीनरूपम् ॥ ३७ ॥ अनुसंधानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम् ॥ अहंकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहंकारतां गतम् ॥३८॥ तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ॥ प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पंचधा ॥ ३९ ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः ॥ कंठदेशेऽप्युदानः स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ४० ॥ ज्ञानेंद्रियाणि पंचैव पंच कर्मेंद्रियाणि च ॥ प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ॥ ४१ ॥ एतत्सूक्ष्मशरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते ॥ तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ॥ ४२ ॥ सत्त्वात्मिका तु माया स्याद विद्या गुणमिश्रिता ॥ स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥ ४३ ॥

और व्यान यह पंच प्राणवायु उत्पन्न होती हैं ॥ ३९ ॥ उनमें प्राणवायु हृदयमें अपानवायु गुह्यमें समानवायु नाभिस्थलमें उदान वायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त होकर स्थिति करती है ॥ ४० ॥ पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय पंच वायु और बुद्धि तथा मन यह सत्रह पदार्थ मिलित होकर ॥ ४१ ॥ मेरे सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगदेहकी उत्पत्ति होती है, उसमें जो प्रकृति स्थिति करती है वह दो भागमें विभक्त है ॥ ४२ ॥ एक शुद्ध सत्वात्मिक माया और दूसरी गुणमिश्रित मलिन सत्वप्रधान

अविद्या कही जाती है जो स्वाश्रयको आवृत न करके रक्षा करती है वही माया शब्दसे उक्त हुई है ॥ ४३ ॥ इस स्वाश्रयकी अव्यामोहकारिणी शुद्ध सत्व प्रधान मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही ईश्वर नामसे कहा गया है शुद्धसत्वप्रधान माया तदाधार ब्रह्मको आवरण न करनेके कारण यह स्वाश्रय ज्ञानवान् अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जानती है और सर्वव्यापित्व हेतु तथा सर्वत्र इसके ज्ञानावरणके अभावहेतु इसको सर्वज्ञ कहा जाता है और अचिन्त्य मायाशक्तिविशिष्ट होनेके कारण सर्वकर्ता और सम्पूर्ण जगत्का अनुग्रह करनेवाला कहा जाता है ॥ ४४ ॥ और मलिनसत्वप्रधान अविद्यामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह जीवनामसे अभिहित हुआ है

तस्यां यत्प्रतिबिंबं स्याद्बिंबभूतस्य चेशितुः ॥ स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः ॥ अविद्यायां तु यत्किंचित्प्रतिबिंबं नगाधिप ॥ ४५ ॥ तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः ॥ द्वयोरपीह संप्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ॥४६॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः ॥ प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्म देही तु तैजसः ॥४७॥ स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ एवमीशोऽपि संप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः ॥ ४८ ॥ प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः ॥ स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥ ४९ ॥

॥ ४५ ॥ मलिनसत्वप्रधान अविद्या तदाश्रयरूप आनंद करनेके कारण यह जीव सर्वदुःखका आश्रय होता है उक्त जीव और ईश्वर दोनोंकेही अविद्या और विद्याद्वारा तीन देह होते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीनों देहके अभिमानहेतु तीन नाम हैं जीव कारण देहाभिमानी होनेसे उसको प्राज्ञ सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे तैजस ॥ ४७ ॥ और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे विश्व कहा जाता है और ईश्वरभी कारणदेहाभिमानी होनेसे 'ईश' सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे 'सूत्र' और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे 'विराट्' नामसे अभिहित होता है ॥ ४८ ॥ प्रथम जीव व्यष्टि देहत्रयाभिमानी और ईश्वर समष्टिदेहत्रयाभिमानी होता है यह सर्वेश्वर निरन्तर आनंदानुभव हेतु तृप्त होनेपर भी जीवके प्रति मोक्षलाभरूप अनुग्रह कर

नेकी इच्छासे॥४९॥ विविध भोगका आश्रयस्वरूप विश्वकी सृष्टिं करता है हे राजन् ! वह ईश्वरभी ब्रह्मरूपिणी मेरी माया शक्तिसे प्रेरित होक रही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करता है क्योंकि मैं ब्रह्मरूपिणी हू वह मुझमेंही रज्जुकल्पित सर्पके समान कल्पित हो रहा है अतएव उनकोभी मेरी शक्तिके अधीन जानना चाहिये ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्याय ॥३२॥ देवीने कहा हे गिरिराज ! चराचरयुक्त यह सम्पूर्ण जगत् मेरीही मायाशक्ति द्वारा रचित होता है वह माया मुझमें ही कल्पित होती है किंतु वास्तवमें वह माया मुझसे पृथक् नहीं है अतएव एकमात्र मैं ही चिद्वस्तु हूं मेरे अतिरिक्त चिद्वस्तु अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारदृष्टिसे वह माया विद्यादि स्वतन्त्र

करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः ॥ मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन्प्रकल्पितः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥ देव्युवाच ॥ मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ साऽपि मत्तः पृथङ्‌ माया नास्त्येव परमार्थतः ॥ १ ॥ व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥ २ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः प्रविशाम्यहम् ॥ मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥ ३ ॥ लोकांतरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ॥ यथायथा भवंत्येव मायाभेदास्तथातथा ॥ ४ ॥

नामसे विख्यात होती है किंतु तत्व अथवा ब्रह्मदृष्टिसे मायाकी विद्यमानता नहीं है केवल एकमात्र ब्रह्मही विद्यमान रहता है ॥ २ ॥ मैं ही वह चिद्ब्रह्मरूपिणी अविद्या कर्म और अनेक प्रकार संस्कारयुक्त कूटस्थ ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके उसके भीतर चिदाभासरूपसे प्राण वायु आगे करके प्रवेश करती हूं ॥ ३ ॥ हे गिरिवर ! इस प्रकार मेरे प्राणस्वीकार पूर्वक प्रवेश न करनेपर लोकान्तरगमन जन्म और मरणादि व्यवहार किस प्रकार सिद्ध होसकते हैं ? जिसप्रकार एक मात्र व्यापक महाकाश उपाधि भेदसे घटाकाश और मठाकाश इत्यादि भिन्नभिन्ननामसे विख्यात होते हैं इसीप्रकार मैं अनेक स्थलमें प्राणस्वीकार करके अविद्या और अन्तःकरणके प्रभेदसे हेतु भिन्न भिन्न होती हूं अतएव उससेही

अनेकप्रकार भिन्न भिन्न जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ जिसप्रकार सूर्य स्वीय किरणसे योगसे पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु प्रदीप्त करकेभी दूषित नहीं होता इसीप्रकार मैं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट सम्पूर्ण वस्तुके अन्तःप्रवेश हेतु दोषलिप्त नहीं होती॥५॥ मूढबुद्धि अज्ञान द्वारा बुद्ध्यादिनिष्ठ कर्तृत्व आत्मरूपिणी मुझमें आरोपित करके आत्माकोही कर्ता कहते हैं किंतु बुद्धिमान् पंडितगण उसको स्वीकार नहीं करते फलतः मैं जीवके भीतर कर्त्रीरूपसे न रहकर साक्षीरूपसे स्थिति करती हू ॥६॥ हे अचलेन्द्र ! अविद्या और विद्याके भेदहेतु जीवबहुत्व और ईश्वरबहुत्व प्रतिपादित होता है फलतः माया द्वारा ही मनुष्य पशु इत्यादि जीवभेद और ब्रह्मा विष्णु इत्यादिमें ईश्वरभेद होता है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार

उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा ॥ उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥ ५ ॥ न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदाऽपि न ॥ मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवापरे जनाः ॥६॥ वदंति चाऽऽत्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ॥ अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥ ७ ॥ जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु ॥ घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा ॥ ८ ॥ तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः ॥ यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥ ९ ॥ तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः ॥ देहेंद्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥ १० ॥ अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ॥ गुणानां वासनाभेदभेदिता या धराधर ॥११॥ माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन ॥ मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ॥ १२ ॥

महाकाश घटावच्छिन्न होनेपर महाकाश और घटाकाश ऐसा विभाग कल्पित होता है इसी प्रकार व्यापक परमात्मा जीवावच्छिन्न होकर परमात्मा और जीवात्माका इस प्रकार भेद कल्पित होता है ॥८॥ जिस प्रकार जीवका बहुत्व माया द्वारा कल्पित होता है स्वभावसे नहीं होता इसी प्रकार ईश्वरबहुत्वभी स्वभावसे नहीं होता मायाद्वारा ही कल्पित होता है ॥ ९ ॥ हे धरणीधर ! देह इंद्रिय और मन इत्यादिक भेदसे अविद्या ही जीवके भेदका हेतु है अन्य कुछ नहीं है ॥ १० ॥ और जो तीनों गुणकी वासनाभेदसे अर्थात् सात्विक राजसिक और तामसिक वासनाभेदसे मायाकी भी भिन्नता उत्पन्न होती है ॥११॥ वह विभिन्न मायाही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ईश्वरके भेदका कारण है नहीं

वो और कुछ नहीं है हे धराधरेन्द्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोतभावसे मुझमें ही स्थित रहता है ॥ १२ ॥ अतएव मैं ही कारणदेहाभिमानी ईश्वर लिंगदेहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूलदेहाभिमानी विराट् हूं मैं ही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और मैं ही ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्ति हूं ॥१३॥ मैं ही सूर्य मैंही चन्द्रमा मैं ही तारका और म ही पशु पक्षी चांडाल और तस्कर हूं ॥ १४ ॥ मैं ही क्रूरकर्मा व्याध और सत्कर्मा महाजन तथा मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ हे गिरिवर ! जिस किसी स्थानमें जो कोई वस्तु दिखाई देती अथवा सुनाई देती हैं मैं उस सम्पूर्ण वस्तुके भीतर और बाहर व्याप्त होकर सर्वदास्थिते रहती हूं ॥ १६ ॥ मेरे विना चराचरकी

ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च ॥ ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ॥ १३ ॥ सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथाऽस्म्यहम् ॥ पशुपक्षिस्वरूपाऽहं चांडालोऽहं च तस्करः ॥ १४ ॥ व्याधोऽहं क्रूरकर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ॥१५॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याऽहं सर्वदा स्थिता ॥१६॥ न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किंचिच्चराचराचरम् ॥ यद्यस्ति चेत्त च्छून्यं स्याद्वंध्यापुत्रोपमं हि तत् ॥ १७ ॥ रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ॥ तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः ॥ १८ ॥ अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ॥ तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावन्नान्यथा भवेत् ॥ १९ ॥ हिमालय उवाच ॥ यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥ तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि ॥ २० ॥

कोई वस्तु विद्यमान नहीं है यदि कुछ है तो वह वन्ध्याके पुत्रके समान निरर्थक है ॥ १७ ॥ जिसप्रकार एकमात्र रज्जु सर्प और मालादिरूपसे प्रतिभात होती है इस प्रकार एकमात्र मही ब्रह्मस्वरूपिणी मैं ही ईश्वरादि रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यह कल्पित जगत् अधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त हेतु प्रतिभात नहीं होता यह मेरी सत्ताद्वाराही सत्तावान् होता है नहीं तो अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं होसकता ॥ १९ ॥ हिमालयने कहा हे देवि ! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो आपकी समष्ट्यात्मक अर्थात् सर्वसम

ष्टीरूप सर्वाभिमानी विराड्मूर्ति देखनेकी इच्छा करता हूं आप अनुग्रह करके वह मुझको दिखाइये ॥२०॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! गिरिवरके यह वचन सुनकर विष्णु इत्यादि संपूर्ण देवताओंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त मानसहित उनके उस वचनका अनुमोदन किया ॥ २१ ॥ अनन्तर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाली भक्तोंकी कामधेनु और कल्याणरूपिणी देवी भुवनेश्वरीने अपना रूप देखनेमें देवताओंको उत्सुक जानकर अपना विराट्रूप दिखाया ॥ २२ ॥ वह महादेवीके उस विराट्रूपको देखने लगे. संपूर्ण उर्द्धस्थित सत्यलोक उस विराट्रूपिणीका मस्तक चन्द्रमा और सूर्य उसकी दोनों आंख ॥२३॥ संपूर्ण दिशा श्रोत्र (कान) संपूर्ण वेद वाक्य, वायु उसका प्राण, विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघनस्थल ॥२४॥

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः ॥ ननंदुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्च तद्वचः ॥२१॥ अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ॥ अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरिणी ॥ २२ ॥ अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम् ॥ द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चंद्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥२३॥ दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ॥ विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ॥ २४ ॥ नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम् ॥ महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम् ॥ २५ ॥ तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः ॥ इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः ॥२६॥ नासत्यदस्रौ नासे स्तो गंधो घ्राणं स्मृतो बुधैः ॥ मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥ २७ ॥ ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृंभोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिताः ॥ रसो जिह्वा समाख्याता यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥

नभस्थल अर्थात् भुवलोक नाभिसरोवर ज्योतिषकमण्डल ऊरुस्थल महर्लोक ग्रीवा जनलोक मुखमण्डल ॥ २५ ॥ सत्यलोकके अधः स्थित तपो लोक उसका ललाटफलक इंद्रादिदेवतायुक्त स्वर्गलोक उसकी बाहु, शब्द उस महेश्वरीका श्रवणेन्द्रिय ॥ २६ ॥ दोनों अश्विनीकुमार उसके नासा पुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, मुखके भीतर अग्नि दिन और रात उसके दोनों पक्षरूपसे प्रकाश पाते थे ॥२७॥ और उनकी दोनों भौंहें चतुर्मुख ब्रह्मा जीका स्थान, जल उसका तालु, रस उसकी जिह्वा, यमराज उनकी दाढें ॥२८॥

स्नेह विलास दांत माया उसका हास्य, ब्रह्माण्डसृष्टि उसका कटाक्ष, व्रीडा ऊर्ध्व ओष्ठ ॥ २९ ॥ लोभ अधर और धर्म उसका पृष्ठभाग, जो जगतीतलमें सृष्टिकर्ता प्रजापति हैं वह उसका मेढ्र ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण कुक्षि समस्त पर्वत उस महेश्वरीके अस्थिस्वरूप, समस्त नदियें नाडी और संपूण वृक्ष उसके केशरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र कौमार यौवन और जरा उसकी उत्तमगति मेघसमूह उसका केशजाल दोनों सन्ध्या उन परम प्रभुकी दोनों वस्त्रस्वरूप ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा उस जगदम्बिकाका मन हरि उसकी विज्ञानशक्ति और रुद्र उसके अन्तःकरण ॥ ३३ ॥ अश्वादि संपूण जीव उसका नितम्ब देश और

दंताः स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता ॥ सर्गस्त्वपांगमोक्षः स्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः ॥ २९ ॥ लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्या धर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः ॥ प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः स्रष्टा जगतीतले ॥ ३० ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः ॥ नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा ॥ बलाहकास्तु केशाः स्युः संध्ये ते वाससी विभोः ॥३२॥ राजञ्छ्रीजगदंबायाश्चंद्रमास्तु मनः स्मृतः ॥ विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोंऽतःकरणं स्मृतम्॥३३॥ अश्वादि जातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः ॥ अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ॥३४॥ एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ॥३५॥ दंष्ट्राकटकटारावं वमंतं वह्निमक्षिभिः ॥ नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं न यत् ॥ ३६ ॥ सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥ ३७ ॥

अतलादि संपूर्ण महर्लोक उसके कटिदेशसे चरणकमलोंतक स्थिति करते थे ॥ ३४ ॥ देवतागण आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे जगदम्बिकाकी उसप्रकार मूर्ति देखने लगे उनकी उस मूर्तिसे सहस्र २ ज्वाला माला निकलने लगीं जिह्वाद्वारा सम्पूर्ण जगत्के आस्वादन करने लगी ॥ ३५ ॥ दोनों दशनपंक्तियोंमें कटकटा शब्द होनेलगा संपूर्ण अक्षियोंसे अग्नि उद्गार आरम्भ हुआ हाथमें अनेक प्रकारके आयुध ब्राह्मण और क्षत्रिय उस घोरदर्शन वीर पुरुषके ओदनस्वरूप ॥ ३६ ॥ उनकी उस मूर्तिमें अनेक मस्तक अनेक नेत्र और

अनेक चरण थे जिनकी सीमा नहीं उस मूर्तिके देखनेसे बोध होता था कि एक बारही करोड सूर्य उदय हुए हैं मानो अनेक विद्युन्माल एकत्र प्रकाशित होरही हैं ॥ ३७ ॥ महादेवीके वह महाभयंकर नेत्र भी मनको त्रास उत्पन्न करते थे इस प्रकार महाघोर विराट्मूर्ति देख संपूर्ण देवतालोग भीत होकर हाहाकार करनेलगे ॥ ३८ ॥ और उनका हृदय काँपने लगा वह अत्यन्तमूर्च्छासे आक्रान्त हो गये "यही हमारी पालनकरनेवाली जगदम्बिका है" यह ज्ञान एकवारही दूर होगया ॥ ३९ ॥ उससमय उन भुवनेश्वरीके चारों ओर जो संपूर्ण वेद स्थिति करते थे उन्होंने मच्छीसे उठाकर देवताओंको समझाया ॥ ४० ॥ अनन्तर वह निजरगण वह अत्युत्तम श्रुति प्राप्तकर धैर्यअवल

भयंकरं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ॥ ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ॥ ३८ ॥ विकंपमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥ स्मरणं च गतं तेषां जगदंबेयमित्यपि ॥ ३९ ॥ अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः ॥ बोधयामासुरत्युग्रं मूर्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ॥ ४० ॥ अथ ते धैर्यमालंब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकंठास्तु निर्जराः ॥ ४१ ॥ बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ॥ देवा ऊचुः ॥ अपराधं क्षमस्वांब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ॥ ४२ ॥ कोपं संहर देवेशि सभयारूपदर्शनात् ॥ का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ॥ ४३ ॥ स्वस्याप्यज्ञेय एवाऽसौ यावान्यश्च स्वविक्रमः ॥ तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत् ॥४४॥ नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ ४५ ॥

म्बनपूर्वक अन्तर्जनित बाष्पसे रुद्धकण्ठ हो ॥ ४१ ॥ प्रेमविगलित अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गदवचनद्वारा जगदम्बिकाका स्तव करनेलगे देवताओंने कहा हे मातः ! हम अत्यन्त दीन और आपसेही उत्पन्न हुए हैं आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ४२ ॥ और हमारे प्रति कोप त्याग कीजिये, हम आपके इस रूपको देखनेसे अत्यन्त भीत हुए हैं हे देवि ! पामर अमरगण आपकी क्या स्तुति करैं ? ॥ ४३ ॥ आप स्वयं जब कि अपने पराक्रमकी सीमा करनेमें असमर्थ हैं तब हम आपके पीछे जन्म ग्रहण करके किसप्रकार उसको जानसकते हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रणवात्मिके

भुवनेश्वरि ! हम आपको नमस्कार करते हैं हे देवि ! संपूर्ण वेदान्तशास्त्रमें आपको प्रतिपादित किया है हम आपकी उसी ह्रींकार मूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ जिनसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा और जिनसे सम्पूर्ण औषधियें उत्पन्न हुई हैं उन्हीं सर्वात्मरूपिणीको नमस्कार है ॥ ४६ ॥ जिनसे सम्पूर्ण देवतागण साध्यगण पशुगण पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्वात्मरूपिणी देवीके विराट्रूपको नमस्कार करते हैं ॥४७॥ जिनसे प्राण अपान व्रीहि यव, तपस्या श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण हितकर्तव्यतारूप विधि उत्पन्न हुई है हम उन्हीं सर्वात्मिका महामायाकी महामूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥ जिनसे सप्त प्राण सप्त दीप्ति सप्त समाधि सप्त होम और सप्त लोक उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्व

यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चंद्रमाः ॥ यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४६ ॥ यस्माच्च देवाः संभूताः साध्याः पक्षिण एव च ॥ पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४७॥ प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा ॥ ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः ॥४८॥ सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च ॥ होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४९॥ यस्मात्समुद्रा गिरयः सिंधवः प्रचरंति च ॥ यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः ॥ ५० ॥ यस्माद्यज्ञः समद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः ॥ ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ५१ ॥ नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः ॥ ५२ ॥ उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ॥ तदेव दर्शयाऽस्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम् ॥ ५३ ॥

स्वरूपिणीको नमस्कार करते हैं ॥४९॥ जिनसे सम्पूर्ण समुद्र सम्पूर्ण पर्वत समस्त नदी सम्पूर्ण औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं भुवनेश्वरीकी विराट्मूर्तिको नमस्कार करते हैं॥५०॥जिनसे यज्ञ यूप और दक्षिणा एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्नहुए हैं हम महामायाकी उस अखिल विश्वात्मक विराट्रूपको नमस्कार करते हैं ॥५१॥ हेमातः महामाये ! आपके पुरोभागमें नमस्कार आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार आपके दोनों पार्श्वमें नमस्कार आपके ऊर्ध्वभागमें नमस्कार आपके अधोभागमें नमस्कार और आपके चारों ओर वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ५२ ॥ हे देवि !

आप अपने इस अलौकिक रूपको दूर करके अपना परम सुन्दर मनोहर रूप हमको दिखाइये ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! करुणाकी अर्णवरूपिणी जगदम्बिकाने सुरगणोंको भीत देख अपना घोर विराट्रूप दूर करके परम सुन्दर भुवन मोहनपूर्वरूप दिखाया ॥ ५४ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर कोमल हो गया उन्होंने एक हस्तमें पाश और एक हस्तमें अंकुशास्त्र धारण किया अपर दोनों हाथोंमेंसे एक हस्तमें वरदान और अन्य हस्त अभयदान भङ्गिमामें उद्यत उनके नेत्र देखनेसे बोध होता था कि मानो उनके एक बारही करुणारससे परिपूर्ण मुख कमलमें कुछेक हास्य विराज मान है ॥ ५५ ॥ देवतागण जगदम्बिकाकी इस प्रकार मूर्ति देखकर भयरहित हो शान्त चित्तसे हर्ष और गद्गद शब्दपूर्वक

व्यास उवाच ॥ इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा ॥ संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ॥ ५४ ॥ पाशांकुशवराभीति धरं सर्वांगकोमलम् ॥ करुणापूर्णनयनं मंदस्मितमुखांबुजम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ॥ शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवी॰ महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ क्व यूयं मंदभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् ॥ तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ॥ १ ॥ न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया ॥ रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना ॥२॥ प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्माऽत्र जीवताम् ॥ उपाधियोगात्संप्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत॥३॥क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः॥नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ॥४॥

प्रणाम करने लगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीदेवी बोली कहां तो तुम मंदभाग्य और कहां यह मेरा अद्भुत रूप तौभी भक्ति वत्सलतासे तुमको मैंने यह रूप दिखाया है ॥ १ ॥ वेदाध्ययन योग दान तप यज्ञसे यह मेरा रूप नहीं दीखता इसमें केवल मेरी कृपाही कारण है ॥ २ ॥ अब उसी प्रकृत विषयको श्रवण करो जो परमात्म उपाधियोगसे जीवताको प्राप्त और कर्तृआदि पदसे व्यवहार किया जाता है ॥ ३ ॥ धर्म अधर्मके कारण अनेक प्रकारकी क्रिया करता है और यह जीव

अनेक योनियोंको प्राप्त होकर सुखदुःख भोगता है ॥ ४ ॥ फिर उन्हीं संस्कारोंके वशसे अनेक प्रकारके कर्मोंमें रत होता है अनेक देहोंसे युक्त हो अनेक सुखदुःख पाता है ॥ ५ ॥ घड़ी यंत्रके समान यह सदा विचरताही रहता है इसको कभी विश्राम नहीं मिलता आजतक अनेक सृष्टि प्रलय हुई पर इसका विराम न हुआ इसका मल अज्ञान है इस अज्ञानसे इच्छा और उससे क्रिया होती है ॥ ६ ॥ इससे अज्ञान नाशके निमित्त क्रिया करनी चाहिए यही जन्मकी सफलता है ॥ ७ ॥ जो अज्ञान नाश किया जाय " यो ह्यविदित्वात्मानस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः " इति श्रुतेः । पुरुपार्थकी समाप्ति जीवन्मुक्तकी दशाकी प्राप्ति और अज्ञान नाशनमें एक विद्याही समर्थ है ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज !

पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ॥ नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ५ ॥ घटीयंत्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ॥ अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ॥ ६ ॥ तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतं नरः ॥ एतद्धि जन्मसाफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम् ॥ ७ ॥ पुरुपार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशापि च ॥ अज्ञाननाशने शक्ताविद्यैव तु पटीयसी ॥ ८ ॥ न कर्म तज्जनोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे ॥ प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥ ९ ॥ अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशंति हि॥ततो रागस्ततो दोपस्ततोऽनर्थो महान्भवेत्॥ १० ॥तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं संपादयेन्नरः॥कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम् ॥ ११ ॥ ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः ॥ सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥ १२ ॥ इति केचिद्रदंत्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत् ॥ ज्ञानाद्धृदग्रंथिभेदः स्याद्धृद्ग्रंथौ कर्मसंभवः ॥ १३ ॥

अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानसे उत्पन्न हुई कर्मके नाशमें समर्थ नहीं है कारण कि इन दोनोंका परस्पर विरोध नहीं है कर्म द्वारा अज्ञानके नाशकी आशा न करनी चाहिये ॥ ९ ॥ कारण कि यह अनर्थके देनेवाले कर्म वारंवार प्रगट होते हैं फिर राग और फिर दोप इससे महा अनर्थ होता है ॥ १० ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे मनुष्यको ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुतिसे कर्मको भी सदा करना आवश्यक कहा है ॥ ११ ॥ तथा 'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञानसेही मुक्ति होती है इनका समुच्चय इस प्रकार हैं कि ज्ञानके होनेमें कर्म सदा सहायक है ॥ १२ ॥ इस प्रकार इस विपयमें कोई कहते हैं इस भांतिसे विरोध सम्भव नहीं

होता कारण कि ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है, और हृदयकी ग्रंथिमें कर्म स्थित है जहां ज्ञानके आगे कर्मकी भावना हो वहां ज्ञान कर्मका समुच्चय कहना चाहिये ॥ १३ ॥ इस कारण उन ज्ञान और कर्मका तम और प्रकाशके समान एक साथ विरोध नहीं संभव हो सकता, इस कारण यदि ज्ञान उत्पन्न न हो तो यावज्जीव कर्मानुष्ठान करता रहै ॥ १४ ॥ हे महामते ! इस कारण जितने वैदिक कर्म हैं. वह सब चित्त शुद्धिके निमित्त हैं उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये चित्त शुद्धि होनेसे ज्ञान प्राप्त होकर ज्ञानी होगा ॥ १५ ॥ शम--अन्तर इन्द्रियका निग्रह, दम बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तितिक्षा शीत उष्ण आदिका सहना वैराग्य दोनों लोकके फलमें विराग और

यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः॥तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न संभवि॥१४॥तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते॥ चित्तशुद्ध्यंतमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१५॥ शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसंभवः ॥ तावत्पर्यंतमेव स्युः कर्माणि न ततः परम् ॥१६॥ तदंते चैव संन्यस्य संश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः ॥१७॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥ १८ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीव ब्रह्मैक्यबोधकम् ॥ ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥ १९ ॥ पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः ॥ तत्पदस्य च वाच्यार्थो गिरेऽह परिकीर्तितः ॥२०॥ त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ॥ उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ॥ २१

अन्तःकरणकी शुद्धि जबतक यह प्राप्त न हो तबतक कर्म करता रहै फिर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ॥१६॥ ज्ञान होनेपर सबकुछ त्याग आत्मवान् गुरुका आश्रय करै वेदपाठी ब्रह्ममें निष्ठावाले वेदवेदांगके ज्ञातासे छल रहित भक्तिपूर्वक ॥ १७ ॥ सावधान हो नित्य वेदांत श्रवण करै और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका नित्यही अर्थ विचारता रहै ॥ १८ ॥ "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य जीव और ईशकी एकताबोधक हैं इनकी एकता जानकर यह निर्भय होकर मेरारूप हो जाता है॥१९॥पहले पदार्थका ज्ञान फिर वाक्यार्थका ज्ञान करै हे पर्वतराज ! 'तत्'पदका अर्थ षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न मैं हूं ॥ २० ॥ और 'त्वं' पदका वाच्यार्थ निःसन्देह जीव है, 'असि' पदसे दोनों जीव ईश्वरकी एकता ज्ञात होती है

अर्थात् वही तू है ॥ २१ ॥ यदि कहो कि अत्यन्त विरुद्ध धर्मवाले जीवेश्वरकी एकता किसप्रकार होसकती है तो भागलक्षणासे कहते हैं, आशय यह कि, जब वाच्यार्थ विरुद्ध होनेसे दोनोंकी एकता न घटे तो उसमें लक्षणा करनी चाहिये जीवके असर्वज्ञत्व और परिच्छिन्नत्व आदि निकृष्ट धर्म हैं ईश्वरकी सर्वज्ञता व्यापकताआदि उत्कृष्ट धर्म हैं तब इनका अभेद कैसे हो इसपर श्रुतिसम्मत तत्, 'त्वं' पदकी लक्षणा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ किस अर्थमें लक्षणा करनी चाहिये तब कहते हैं चिन्मात्रमें लक्षणा होती है, सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य ईश्वर है असर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य जीव है इनमें दोनों धर्म छोडकर चिन्मात्र भागत्यागलक्षणासे ग्रहण करना, इस प्रकार लक्षणासे दोनोंकी एकता होगी,

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ॥ लक्षणाऽतः प्रकर्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः ॥ २२ ॥ चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य संभवः ॥ तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥ २३ ॥ देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ॥ स्थूलादि देहरहितो ब्रह्म संपद्यते नरः ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसंभूतः स्थूलदेहकः ॥ भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्व कर्मणाम् ॥ २५ ॥ मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः ॥ सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥ २६ ॥ ज्ञान कर्मेन्द्रिययुतं प्राण पंचकसंयुतम् ॥ मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ॥ २७ ॥

अपने अभेदसे इनकी एकताका ज्ञान होनेसे अद्वय होगा यह इसका महाफल है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है इस वाक्यसे तत्कालविशिष्ट देवदत्तका इसकालविशिष्ट देवदत्तसे भेद होनेपरभी वैशिष्टचरूप दोनों धर्मके त्यागसे अविरुद्ध व्यक्तिको भागत्यागलक्षणासे ग्रहणकर अभेद किया जाता है इसी कारण लक्षणा ग्रहण की है इस अनुभवसे स्थूलादिभेदरहित हो यह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है॥२४॥पंचीकृतमहाभूतसेही यह स्थूलदेह प्रगट हुआ है,यह भोगका स्थान जरा व्याधि तथा सब कर्मोंसे युक्त है ॥२५॥यह मिथ्या भी है परंतु मायासे सत्यसा दीखता है हे पर्वतराज! यह मेरे आत्माकी स्थूल उपाधि है ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेंद्रियसे युक्त प्राणपंचकसे संयुक्त तथा मनबुद्धिसे युक्त देह सूक्ष्मउपाधि है॥ २७ ॥

अपंचीकृत भूतोंसे प्रगट यह आत्माका सूक्ष्म देह है, यह अन्तःकरणकी सुखदुःखादि अवबोधक दूसरी उपाधि है ॥ २८ ॥ हे नगेश्वर! अनादि अनिर्वाच्य अज्ञानयुक्त यह कारणशरीर तीसरा है ॥ २९ ॥ इन स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधियोंके लीन होनेमें केवल आत्मा अवशेष रहता है इन तीनों देहोंमें अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय यह पांच कोश सदा अन्तरस्थित रहते हैं॥ ३० ॥इन पंचकोशके त्यागमें 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जो नेति २ इत्यादि वाक्योंसे मेरा रूप कहा जाता है ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्म रूप न कभी उत्पन्न होता न मरता, न कभी होनेवाला और न कभी हुआ है यह अज नित्य शाश्वत पुरातन छहों विकारोंसे रहित है शरीरके हन्यमान होने-

अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ॥२८॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ॥ देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वरः ॥२९॥ उपाधिविलये जाते केवलात्माऽवशिष्यते ॥ देहत्रये पंचकोशा अंतःस्थाः संति सर्वदा॥३०॥ पंचकोशपरित्यागे ब्रह्म पुच्छं हि लभ्यते ॥ नेति नेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते॥३१॥न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नाऽयं भूत्वा न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥३२॥ हतं चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ विजानीतो नाऽयं हंति न हन्यते ॥ ३३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमस्य ॥३४॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥

परभी मरता नहीं हन्यमान नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो मारनेवाला मारा ऐसा जानता है हत हुआ अपनेको हत मानता है यह दोनों ही इसको नहीं जानते कारण कि न यह मरता न माराजाता है ॥ ३३ ॥ यह अणुसे अणु और महान्से महान् आत्मा होकरभी इस प्राणीके हृदयरूपी गुहा वा बुद्धिमें स्थित है इस आत्माकी महिमाको चित्तकी निर्मलता संकल्पविकल्परहित होनेसे जानता है तब वीतशोक होता है ॥ ३४ ॥ आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन लगाम, ॥ ३५ ॥ इंद्रिय घोडे हैं यह विषयरूपी मार्गमें

निरन्तर गमन करते हैं, आत्मा चिदाभास इंद्रिय मन यह तीन कूटस्थ मिलित होकर भोक्ता कहा जाता है॥ ३६ ॥ जो पुरुष अविद्वान् अर्थात् अविवेकी होता है अस्वाधीन अशुचि होता है वह तत्पदको प्राप्त न होकर संसारमें पड़ता है ॥ ३७ ॥ और जो विज्ञानवान् स्वाधीन मन सदा पवित्र होता है वह उस पदको प्राप्त होता है जहांसे फिर आना नहीं होता ॥ ३८ ॥ जिसका विज्ञान सारथि मनकी लगाम रोकेहुए है वह इस संसारके पार हो मेरे परमपदको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार श्रुति बुद्धिद्वारा आत्मासे ही आत्माका निश्चय कर विक्षेपादिरहित हो साक्षात्कार होनेसे चित्तकी एकाग्र वृत्तिसे आत्मरूप मेरा ध्यान करे॥४०॥ इस प्रकार निदिध्यासन अभ्याससे जब चित्तमें समा

यस्त्वविद्वान्भवति चाऽमनस्कश्च सदाऽशुचिः ॥ न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ३७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥ स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ३८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ॥ सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ॥ ३९ ॥ इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना ॥ भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च ॥ ४० ॥ योगवृत्तेः पुरास्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ॥ देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मंत्रवाच्ययोः ॥४१॥ हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्म देहकः ॥ ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ॥ ४२ ॥ एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात् समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ॥४३॥ समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः ॥ ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ॥ ४४ ॥ प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ निवृत्तविषयाकांक्षो वीतदोषो विमत्सरः ॥ ४५ ॥

धिकी योग्यता होजाय तब समाधिसे पहले अपने शरीरमें प्रणवसंज्ञक मायाबीजमंत्रके तीन अक्षरोंका ध्यान करे मंत्रवाच्य मायाबीज मंत्रार्थके समष्टिव्यष्टिके ध्यानार्थ है ॥४१॥ हकार स्थूलदेह रकार सूक्ष्मदेह ईकार कारणदेहरूप है और मैं जो तुरीयरूप हूं सोई ह्रींकार है ॥ ४२ ॥ जैसे व्यष्टिदेहमें भावना की है इसी प्रकार समष्टिदेहमें क्रमसे तीनों बीजोंको जानकर बुद्धिमान् समष्टिव्यष्टि पिंड और ब्रह्माण्डकी एकता ध्यान करे ॥४३॥ इस प्रकार आदर पूर्वक समाधिसे पहले ध्यानकर नेत्र मूंद मुझ जगदीश्वरीका ध्यान करे ॥४४॥ नासिकाके आभ्यन्तर फिरनेवाले प्राण

अपानको समानकर विषयादिकी आकांक्षासे निवृत्त हुआ दोष और मत्सरतासे रहित ॥ ४५ ॥ छलरहित भक्तिसे युक्त हुआ गुहा वा शब्दरहित एकान्त स्थानमें वैश्वानरात्मक हकारको रकारमें लीन करै अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करै ॥४६॥ रकारवाच्य तैजस अर्थात् सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारण देहमें लय करै ईकारवाच्य कारण देहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लय करै ॥४७॥ जब वाच्य और वाचकतासे हीन, द्वैतभावसे वर्जित होजाय तब चैतन्य अग्नि दीपशिखान्तरमें अखंड सच्चिदानंदकी भावना करै ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नरोत्तम ध्यानमें मेरा साक्षात्कार करके मेरा ही रूप होजाता है कारण कि दोनोंकी एकता सिद्ध है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार इस

भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले ॥ हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ॥ ४६ ॥ रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् ॥ ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ॥ ४७ ॥ वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ अखंडं सच्चिदानंदं भावयेत्तच्छिखांतरे ॥ ४८ ॥ इति ध्यानेन मां राजन्साक्षात्कृत्य नरोत्तमः ॥ मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः ॥ ४९ ॥ योगयुक्त्याऽनया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम् ॥ अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत् ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ हिमालय उवाच ॥ योगं वद महेशानि सांगं संवित्प्रदायकम् ॥ कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ॥ ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥ २ ॥ तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्न करानघ ॥ कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥ ३ ॥

योगयुक्तिसे परात्पर मुझ आत्माको देखते ही अपने कार्यसहित अज्ञान उस मय नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ हिमालयने कहा हे महेश्वरि ! जिस योगद्वारा ब्रह्मलाभ होता है उस योगका विषय अंगोंसहित वर्णन करो जिसका अनुष्ठान कर मैं तत्वदर्शनका अधिकारी होऊं ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोली आकाश भूमि रसातलादिस्थानोंमें योग नहीं है जीव और आत्माकी अभेद विषयक चित्त वृत्तिको ही योग विशारद योग कहते हैं ॥ २ ॥ हे पापरहित ! काम,

क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छः योगके शत्रु हैं जो इसमें विघ्न किया करते हैं ॥ ३ ॥ इस कारण योगियोंको आगे लिखे योगके अंगोंसे योग शत्रुओंको विनाश करके योग प्राप्त करना चाहिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम ॥ ४ ॥ प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ अंग योगियोंको योगमें सहाय कहैं ॥ ५ ॥ किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, सर्व नाशमें भी धीरता मित भोजन दो भाग अन्नसे पूर्ण करै एक भाग जलसे चौथा भाग वायुके गमनागमनके रक्खे यह अल्पाहार है तथा बाह्य आभ्यन्तरकी शुद्धि करै यह दश यम हैं ॥ ६ ॥ तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, [वेद देव, द्विज और

योगांगैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ॥ यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ॥ ४ ॥ प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ॥ अष्टांगान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ॥ ५ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम् ॥ क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ ६ ॥ तपः संतोप आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ॥ सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ ७ ॥ दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक ॥ पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ॥ ८ ॥ वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपंचकम् ॥ ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे ॥ ९ ॥ अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः ॥ पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥१०॥ जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥११॥

गुरुमें विश्वास] दान, देवपूजा, सिद्धान्त अर्थात् वेदान्तवाक्यका श्रवण, अकार्य करनेमें लज्जा मति(सत्कर्म और सच्छास्त्र विषयक ज्ञान) जप और नित्यहोमादि ॥७॥ हे पर्वतनायक! यह मैंने दश नियम कहे हैं पद्मासन, स्वस्तिक, भद्र, वज्रासन ॥८॥ और वीरासन यह क्रमसे पांच आसन कहे हैं दोनों पैरोंके तलुए दोनों जंघाओंपर रखकर ॥९॥ हाथोंको पीठकी ओरसे ले आगे दाहिने हाथसे दहिने चरणका बायेंसे बायें चरणका अंगूठा पकडे यह योगियोंको प्रसन्न करनेवाला पद्मासन कहा है ॥ १० ॥ जानु और ऊरुओंके अन्तर दोनों पैरके तलुए भलीभांति स्थापित

कर सरलभावसे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥११॥ अंडकोशकी शिराके नीचे सीमनके दोनों पार्श्वमें दोनों गुल्फोंको भली प्रकार स्थापित कर दोनों हाथोंसे अंडकोशके अधोभागमें दोनों पैरोंका पाष्णिभाग हाथोंसे दृढ भावसे बांधकर॥१२॥ बैठनेका नाम योगियोंने भद्रासन कहा है योगी इसका विशेष आदर करते हैं दोनों चरण क्रमसे दोनों ऊरुओं पर रखकर दोनों जानुओंके निम्न भागमें अंगुली रखकर ॥१३॥ दोनों हाथ स्थापनकर बैठनेको वज्रासन कहते हैं योगीजन एक ऊरुके नीचे एक चरण दूसरी ऊरुके नीचे दूसरा पद स्थापनकर ॥ १४ ॥ सरल कायासे जो स्थिति करते हैं इसको वीरासन कहते हैं योगका ज्ञाता प्रथम सोलह वार प्रणव उच्चारण करके इडा अर्थात् बाईं नासिकाद्वारा

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम् ॥ वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबंधयेत् ॥ १२ ॥ भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम् ॥ ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥ १३ ॥ करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासन- मनुत्तमम् ॥ एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे ॥ १४ ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ इडयाऽऽकर्ष- येद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ॥ १५ ॥ धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥ १६ ॥ नाड्या पिंगलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः ॥ प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ॥ १७ ॥ भूयोभूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत् ॥ मात्रावृद्धिः क्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ॥ १८ ॥

गुह्य वायुको आकर्षण करै ॥ १५ ॥ फिर जितनी देरमें चौंसठ वार प्रणव उच्चारण हो उतने समयतक यह खेंची हुई वायु धारण करके पूरक करै फिर ३२ वार प्रणवोच्चारण कालमें शनैः २ सुषुम्नामध्यगत वायुको ॥ १६ ॥ दक्षिणनासापुटद्वारा रेचन करै योग शास्त्रज्ञाता पंडितोंने इसका नाम प्राणायाम कहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार वारंवार बाह्य वायु ग्रहण करके पूरक कुंभक और रेचकका अभ्यास करै और क्रमानुसार प्रणवोच्चारणकी संख्या बढावै यह प्राणायाम पहले१२ वार पीछे १६ वार और फिर क्रमसे और भी अधिक करै ॥ १८ ॥

सगर्भ और अगर्भ भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है इष्ट मंत्रके जप ध्यानादिपूर्वक जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ है और जो प्राणायाम इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि विना होता है वह विगर्भ प्राणायाम है ॥१९॥ इस प्रकार क्रमसे प्राणायामका अभ्यास करते देहमें पसीना आनेसे वह प्राणायाम अधम, कम्प उत्पन्न होनेसे मध्यम और जिस प्राणा याममें साधक भूमि त्यागकर ऊंचा उठता है वह उत्तम प्राणायाम है ॥ २० ॥ जबतक उत्तम प्राणायामका फल लाभ न हो तबतक अभ्यास करता रहै इन्द्रिय सदाही अपने२विषयोंमें अबाधित भावसे विचरण करती हैं ॥२१॥ उनको विषयोंसे बलपूर्वक रोकनेहीका नाम प्रत्याहार है अंगूठा, गुल्फ, जानु, ऊरु, मूलाधार, लिंग, नाभि॥२२॥ हृदय, ग्रीवा, कंठ, लम्बिका

जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ॥ तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः ॥१९॥ क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहस्वेदोद्गमोऽधमः ॥ मध्यमः कंपसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ॥ २० ॥ उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् ॥ २१ ॥ बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ अंगुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधारलिंगनाभिषु ॥ २२ ॥ हृद्ग्रीवाकंण्ठदेशेषु लंबिकायां ततो नसि ॥ भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशांते यथाविधि ॥ २३ ॥ धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥ समाहितेन मनसा चैतन्यांतरवर्तिना ॥२४॥ आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥ समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥२५॥ समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टांगलक्षणम् ॥ इदानीं कथये तेऽहं मंत्रयोगमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ विश्वं शरीरमित्युक्तं पंचभूतात्मकं नग ॥ चंद्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥ २७ ॥

नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) इन द्वादशान्त स्थानमें विधिपूर्वक ॥२३॥ प्राणवायुको रोक रखनेका नाम धारणा है, प्रथम ध्यानसे अन्तःकरणको चैतन्यवत् अर्थात् आत्मसंस्थ करके ॥ २४ ॥ उसमें अभीष्ट देवताके चिन्तनका नाम ध्यान है जीवात्मा और परमात्माकी एकता भावना संप्रज्ञात समाधिको ॥२५॥ मुनियोंने समाधि कहा है यह अष्टांग लक्षणवाला योग तुमसे वर्णन किया और मंत्रोंका सिद्धिदायक अति उत्कृष्ट योग तुमसे वर्णन करती हूं ॥२६॥ हे पर्वतराज! पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह शरीर विश्व वा ब्रह्माण्ड कहा

जाता है यह पंचभूतात्मक चन्द्र सूर्य और अग्निसे युक्त होकर जीव ब्रह्मके ऐक्यज्ञानदायक होता है ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढे तीन करोड नाडी हैं उनमें दश मुख्य हैं और दशमें भी तीन अतिशय प्रधान हैं ॥ २८ ॥ इनमें भी एक सुषुम्ना नाड़ी प्रधान है चन्द्र सूर्य और अग्निरूपिणी इस नाड़ीमें मेरुदण्डके मध्यभागमें स्थित होकर मूलधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गमन किया है इसके वामभागमें शुभ्रवर्ण चन्द्र रूपिणी इडा है ॥ २९ ॥ यह शक्तिरूपा अमृतमयी है और दक्षिणभागमें पुरुषरूपिणी सूर्य स्वरूपा पिंगला नाड़ी स्थित है ॥ ३० ॥ और वह्निप्रधाना सुषुम्नानाड़ी सब तेजोमयी है इसके मध्यमें स्थित चित्ररेखानामक नाडीके भीतर इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मक॥ ३१॥ कोटिसूर्यके समान प्रभावशालीस्वयंभूलिंग प्रति

तिस्रः कोटयस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ॥ तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ॥ २८ ॥ प्रधाना मेरुदंडेऽत्र चंद्रसूर्याग्निरूपिणी ॥ इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चंद्ररूपिणी ॥ २९ ॥ शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥ दक्षिणे या पिंगलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ॥ ३० ॥ सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ॥ तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥ ३१ ॥ मध्ये स्वयंभूलिंगं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्मा बिंदुनादकम् ॥ ॥ ३२ ॥ तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुंडली रक्तविग्रहा ॥ देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ॥ ३३ ॥ तद्बाह्ये हेमरूपाभं बादिसांतचतुर्दलम् ॥ द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिंतयेत् ॥३४॥ तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ॥ बादिलांतषडर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥

ष्ठित है उसके ऊपर भागमें हरात्मा बिन्दुनाद अर्थात् हकार, रेफ, ईकार बिन्दुनादात्मक मायाबीज स्थित है ॥ ३२ ॥ उसके ऊपरीभागमें दीपशिखाके समान लालवर्ण देवीरूपिणी कुंडलिनी शक्ति विराजमानहै हे नगेश्वर ! यह मुझसे अभिन्नहै ॥ ३३ ॥ इसके बहिर्भागमें पीतवर्ण सुवर्णके समान कांतिवाले कमलकी चिन्ता करै उससे रचा दलोंमें श, ष, स ह, यह चार अक्षर ध्यान करै ॥ ३४ ॥ इसके ऊपर षट्कोण कमलका ध्यान करै जो अग्निके समान छः दलोंसे युक्त हीरेकेसे कांतिवाला है इसके छहों दल, ब, भ, म, य, र, ल, इन अक्षरोंसे सम्पन्न

हैं स्वरशब्दसे परलिंग जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह षट्कोण मूलके आधारवाला है इसीसे इसको मूलाधार कहते हैं स्वशब्दसे परलिंग और स्वाधिष्ठान जानना चाहिये यही स्वाधिष्ठान पद्म है ॥३६॥ इसके ऊपर नाभिस्थानमें विद्युत् छटा और मेघके समान कांतिमान् अतितेजयुक्त महा प्रभावाला मणिपूर ॥३७॥ मणिवत्प्रभावाला होनेसे मणिपद्म कहाता है उसमें दशदल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह अक्षरयुक्त हैं ॥ ३८ ॥ यह पद्म विष्णुसे अधिष्ठित होनेसे इसके ध्यानसे विष्णुका साक्षात्कार होता है इसके ऊर्ध्व भागमें बालसूर्यके समान प्रभायुक्त अनाहत पद्म है॥३९॥ यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन बारह वर्णोंयुक्त बारहदल सम्पन्न है इसके मध्यमें अयुत १००००

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ॥ स्वशब्देन परं लिंगं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ ३६ ॥ तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् ॥ मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः ॥ ३७ ॥ मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते ॥ दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफांताक्षरान्वितम् ॥ ३८ ॥ विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ॥ तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ३९ ॥ कादिठांतदलैरेकं पत्रैश्च समधिष्ठितम् ॥ तन्मध्ये बाणलिंगं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ४० ॥ शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते ॥ अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ आनंदसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ॥ तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपंकजम् ॥ ४२ ॥ स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णमहाप्रभम् ॥ विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥ ४३ ॥

सूर्यके समान प्रभा सम्पन्न बाणलिंग विराजमान है ॥४०॥ किसी प्रकारकी ताडनाके विनाही इससे शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति होती है इसीसे मुनिजन इसको अनाहत पद्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ यह पद्म आनंदका धाम है इसमें रुद्ररूपी पुरुष विराजते हैं इसके ऊपर भुविशुद्धनामक षोडश दल कमल ॥ ४२ ॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन सोळह स्वरोंसे युक्त धूम्रवर्ण महाकांतिमान् है परमात्माके अवलोकनसे इसमें जीवशुद्ध होता है अर्थात् दोनोंका अभेद साक्षात्कार होनेसे जीव विशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

इसी कारण इसको विशुद्ध पद्म कहते हैं यह महाअद्भुत पद्म आकाशनामसे अभिहित है इसके ऊपर भ्रूमध्यमें आत्माका परम अधिष्ठान आज्ञाचक्र है॥४४॥ यह ह और क्ष दो दलसे युक्त मनोहर ह इसमें चित्त स्थित होनेसे सब पदार्थोंका साक्षात्कारहो आता है, भूत भविष्य वर्तमान वस्तुओंमें यह तुम्हारा कर्त्तव्य है इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञाका संक्रमण होता है इसीसे इसको आज्ञापद्म कहते हैं ॥ ४५ ॥ इसके ऊर्ध्वमें कलासचक्र और उसके ऊर्ध्वमें रोधिनीचक्र है हे सुव्रत ! इस प्रकार आपके निकट आधारचक्रोंका वर्णन किया ॥ ४६ ॥ योगियोंका कथन है उसके ऊर्ध्वमें सहस्रारचक्र है यह बिन्दु अर्थात् परमात्माका स्थान है यह आपसे सम्पूर्ण योगमार्ग वर्णन किया ॥ ४७ ॥ यह जानकर

विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥ आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाऽधिष्ठितं परम् ॥ ४४ ॥ आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् ॥ द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥ कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः ॥ एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥ ४६ ॥ सहस्रारयुतं बिंदुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥ आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रांतरे शक्तिस्तामाकुंच्य प्रबोधयेत् ॥ ४८ ॥ लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्रं च प्रापयेत् ॥ शंभुना तां पराशक्तिमेकीभूतां विचिंतयेत् ॥४९॥ तत्रोत्थितामृतं यच्च द्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदम् ॥५०॥ षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया ॥ आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥५१॥

जो करना चाहिये सोई कहती हूं, पहले पूरक प्राणायाम द्वारा आधारचक्रमें मन संयुक्त करे, गुदा और मेढ्रके भीतर मलाधारमें विराजमान कुंडलिनी शक्तिको मूलाधारमें प्राप्त वायुद्वारा आकुंचित करके प्रबोधित करे ॥४८॥ अनन्तर लिंगभेदक्रमसे अर्थात् पूर्वोक्त चक्रस्थित तेजोमय स्वयंभू इत्यादि लिंगका भेदकर उस उस मार्गमें उस कुंडलिनी शक्तिको सहस्रार स्थानमें लावे फिर उस परमशक्तिको सहस्रारमें स्थित शंभुके सहित एकीभूत रूपसे चिन्तन करे ॥ ४९ ॥ अनन्तर शिवशक्तिके संगमसे लाक्षारसके समान जो अमृत निर्गत होता है उसी आनंदस्वरूप अमृतसे योगसिद्धिकरी मायानामिनी कुंडलिनी शक्तिको तृप्त करे ॥ ५० ॥ और छहों चक्रोंमें स्थित देवसमूहोंको उस अमृत धाराद्वारा तृप्त करके

पूर्वोक्त मार्गसे उस शक्तिको मूलाधार पद्ममें लावै ॥ ५१ ॥ जो प्रतिदिन इस प्रकार योगका अभ्यास करते हैं उनके सम्बन्धमें छिन्नादि दोष दूषित सब मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५२ ॥ और इसीसे जरामरणादि दुःखवाले संसारबंधनसे मुक्त होता है और मुझ जगन्मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं ॥ ५३ ॥ ऐसे साधकको वह समस्त गुण प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं हे तात! यह तुमसे अति उत्तम वायुधारणयोग कथन किया ॥५४॥ अब सावधान होकर चित्तधारणाख्ययोग सुनो दिक् काल और देशादिद्वारा अपरिच्छिन्न देवीमूर्तिमें

एवमभ्यस्यमानस्याऽप्यहन्यहनि निश्चितम् ॥ पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिध्यंति नान्यथा ॥ ५२ ॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबंधनात् ॥ ये गुणाः संति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥ ५३ ॥ ते गुणाः साधकवरे भवंत्येव न चान्यथा ॥ इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्न देव्यां चेतो विधाय च ॥५५॥ तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् ॥ अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति ॥५६॥ तदाऽवयव योगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ॥ मदीयहस्तपादादावंगे तु मधुरे नग ॥ ५७ ॥ चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानस्थानजयात्पुनः ॥ विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ॥ ५८ ॥ यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ॥ ताव दिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ॥ ५९ ॥

चित्तको स्थिरकर सकनेसे ॥ ५५ ॥ तन्मय होनेसे शीघ्रही जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है उस समय साधक ब्रह्ममय हो जाता है और यदि चित्त रज तम द्वारा मलीन हो तो शीघ्र योगसिद्धि नहीं होती ॥ ५६ ॥ तब योगी अवयव योगसे योगाभ्यास करे अर्थात् मेरे हस्तपादादि किसी मनोहर अंगमें ॥ ५७ ॥ चित्तको लगाय एक एक स्थानको जय करता हुआ, चित्तकी शुद्धता होनेसे मेरे सब स्वरूपमें मनको स्थापन करे ॥५८॥ हे नगेन्द्र ! जबतक मुझ ब्रह्मरूपिणीमें चित्तका लय न हो तबतक मंत्रयोगपरायण साधक जप

और होमके द्वारा इष्टमंत्रसाधनका अभ्यास करै ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यास योगद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है योगके विना मंत्रसिद्धि नहीं होती और मंत्रके विना योग सिद्ध नहीं होता मंत्र और योग दोनोंका अभ्यास ही ब्रह्मज्ञानका कारणहै ॥ ६० ॥घरमें रक्खा हुआ अंधकारसे आच्छन्न घड़ा जिस प्रकार दीपकसे दिखाई देता है इसी प्रकार मायासे आवृत जीवात्माभी मंत्रद्वारा प्रकाशित होता है अर्थात् मंत्र माया अंधकारको दूर करके आत्माका स्वरूप प्रकाश कर देता है ॥ ६१ ॥ हे पर्वतराज! यह मैंने तुम्हारे समीप अंगके सहित सब योग विधिका वर्णन किया ॥ ६२ ॥ यह विद्या गुरुके निकट उपदेश प्राप्तकरकेही जानी जाती है अन्यथा कोटिशास्त्रद्वारा भी इसका लाभ नहीं होसकता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते

मंत्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ॥ न योगेन विना मंत्रो न मंत्रेण विना हि सः ॥ ६० ॥ द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥ तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥ ६१ ॥ एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ इति योगविधिः कृत्स्नः सांगः प्रोक्तो मयाऽधुना ॥ ६२ ॥ गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ देव्युवाच ॥ इत्यादिवियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः ॥ १ ॥ आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ॥ अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥ एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥ ३ ॥

महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ श्रीदेवी बोलीं हे गिरिराज! योगीजन इस प्रकार योगयुक्त हो आसनमें बैठ छलरहित भक्तिसे मुझ ब्रह्मरूपिणीका ध्यान करै ॥ १ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करती हूं सुनो यह ब्रह्म आवि अर्थात् प्रकाशमान वस्तु अति समीपवर्ती और गुहाचर अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी केवल बुद्धिरूप गुहामेंही इसकी प्राप्ति होती है यह योगादि साधन गम्य है इस ब्रह्मसेही आकाशादि समस्त पदार्थ कल्पित होते हैं इसमेंही पक्षी मनुष्य निमेषादिक्रियावान् सब पदार्थ स्थापित हैं ॥ २ ॥ हे देवताओ! मेरे इस ब्रह्मरूपको जानो जो माया और जगत् इन दोनोंसे श्रेष्ठ है लोकमें ज्ञानातीत और

वरिष्ठ अर्थात् संपूर्ण बुद्धियोंको भी गम्य नहीं है जो सूर्यादितेजका भी प्रकाशक है इससे वह सूर्यादितेजसे भी अत्यन्त दीप्तिमान् और अणुसे भी अणु अर्थात् अतिसूक्ष्म हैं जिसमें भूरादि लोक और उन लोकनिवासियोंकी स्थिति है॥ ३॥ वह अक्षर अविनाशी पदार्थही ब्रह्म है यही प्राण, वाणी और मन स्वरूप है वही सत्य और अमृत स्वरूप है हे सौम्य ! मनरूपी बाणसे उसको विद्धकरना चाहिये अर्थात् उसमें मन समाधान करै ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! उसके विद्ध करनेका उपाय कहती हूं उपनिषद्शास्त्र रूपी महाधनुष ग्रहणकर उसमें ध्यान और उपासनाका तीक्ष्ण बाण संधान और सब इंद्रियोंको अपने अपने विषयसे खैंचकर तद्गत चित्तसे उस ब्रह्मरूप लक्ष्यको विद्ध करै ॥५॥ जिस धनुआदिका विषय कहा है वह भलीभांति वर्णन करती हूं इस ब्रह्मरूप लक्ष्यवेधमें ॐकार वा देवी प्रणवही धनु है जिस प्रकार लक्ष्यमें बाणप्रवेशका कारण धनुषही है इसी प्रकार

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ ४ ॥ धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥५॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥६॥ यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चांतरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ॥ तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथामृतस्यैष सेतुः ॥ ७ ॥

चित्तरूपी लक्ष्यमें प्रवेशसम्बन्धका प्रणव ही कारण है प्रणवका अभ्यास करते २ उससे संस्कृत हो प्रणवको अवलम्बनपूर्वक अप्रतिबन्द्ध भावसे ब्रह्ममें स्थिति की जाती है, इसमें आत्मा अर्थात् अन्तःकरणही शर है जिसकारण शर लक्ष्यको विद्ध करताहै इसी प्रकार अन्तःकरणही आत्माको विद्धकरता है इसीप्रकार अन्तःकरणको शर कहागया है इस स्थलमें ब्रह्मही लक्ष्यवस्तु है साधक अप्रमत्त चित्तसे इस लक्ष्यको विद्ध करै तो बाण जिस प्रकार लक्ष्यभेद करके उसके संग एकात्मताको प्राप्त होता है इसी प्रकार साधकभी ब्रह्मके संग एकात्मताको प्राप्त होसकते हैं ॥ ६ ॥ वह ब्रह्मपदार्थ अतिदुर्लक्ष्य वस्तु है इससे भलीभांति लक्ष्य करनेको फिर कहा जाता है, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सब इन्द्रियें और प्राणोंके सहित मन स्थित है उसीको आत्मा जानना चाहिये हे देवताओ ! इसको जानकर अन्य अपर विद्यारूप वाक्योंका त्याग करे यह ब्रह्मज्ञान ही

मुक्तिका सेतु अर्थात् संसार सागरसे तारनेका हेतु है॥७॥जिस प्रकार रथकी नाभिमें सब आरे मिलकर सन्निविष्ट रहते हैं इसी प्रकार जिस हृदयमेंनाडियें प्रविष्ट हुई हैं उसी हृदयमें बुद्धिवृत्तिका साक्षीरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिके द्वारा अनेक रूपयुक्त होकर स्थिति करता है ॥८॥ ॐकारका अवलम्बनकर यथोक्त प्रकारसे उसी आत्माकी चिंता करनी चाहिये संसार सागरके पार जानेकी प्राप्तिमें तुम निर्विघ्न हो यह भगवतीका आशीर्वाद है तुम अविद्यारहित ब्रह्मस्वरूपको अवगत हो वह ब्रह्म जिस स्थानमें प्रतिष्ठित है सुनो जो सर्वज्ञ सर्ववित् और जिसके जगत्सृष्टि आदि रूपकी विभूति पृथ्वीमें प्रसिद्ध है वह प्रकाशशाली आत्मा दिव्य हृदय कमलमें प्रतिष्ठित होनेसे प्राप्त होता है॥९॥उस आत्माकी मनोवृत्ति द्वारा भावना होती है इसी कारण

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ॥ स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ॥ ८ ॥ ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा संप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यंति धीरा आनंदरूपममृतं यद्विभाति ॥ १० ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ११ ॥ हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥ तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ १२ ॥

उसको मनोमय कहते हैं यही प्राण और शरीरका नेता यही अन्नमय हृदयपिण्डमें बुद्धिको स्थित कर प्रतिष्ठित है विवेकी पुरुष इसको भलीभांति जान सकते हैं वह आनन्द रूप दुःखसे परे है अविनाशी रूपसे प्रकाशित होता है॥१०॥आत्मज्ञानका फल कहती हैं उस परमात्माका साक्षात् हो होनेसे हृदयग्रंथि अर्थात् चैतन्य और अहंकारका तादात्म्यभाव नष्ट हो जाता है समस्त ज्ञेयवस्तु विषयक सन्देह दूर हो जाता है प्रारब्धके अतिरिक्त सब कर्म नष्ट हो जाते हैं जब उस परात्परका साक्षात्कार होता है ॥११॥ फिर पूर्वोक्त विषयको संक्षेपसे कहती हूं यह ब्रह्म ज्योतिर्मय परकोश अर्थात् आनन्दमय कोशमें प्रतिष्ठित है यह सत्वादि तीनों गुण रहित निष्फल (माया रहित) स्वच्छवस्तु है यह सर्वप्रकाशक सूर्यादि

काभी प्रकाशक है आत्मवित् जिसको बडे परिश्रमसे जानते हैं वह हिरण्मय परकोशमें स्थित है ॥ १२ ॥ उस ब्रह्मको सूर्य प्रकाश नहीं कर सकते चन्द्र तारा बिजली वा अग्नि भी उसके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं, बहुत क्या यह सम्पूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासे ही प्रकाशित होता है उससे ही यह सब प्रकाशित है ॥ १३ ॥ यह अमृतमय ब्रह्म ही आगे पीछे दक्षिण उत्तर नीचे और ऊपर भागमें स्थित है अधिक क्या इस सब जगत्कोही ब्रह्ममय जानना चाहिये ॥ १४ ॥ हे गिरिराज ! जो पुरुष श्रेष्ठ इस प्रकार अनुभव कर सकतेहैं वही कृतार्थ हैं वह ब्रह्मस्वरूप प्रसन्नस्वभाव होकर शोक और विषयकी कांक्षारहित होते हैं ॥१५॥ हे गिरिराज ! द्वैतभावही भयका कारण है द्वैत

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१३॥ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ॥ १४ ॥ एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥ १५ ॥ द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद्बिभेति न ॥ न तद्वि-योगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ॥ १६ ॥ अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत ॥ मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ॥ १७ ॥ नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुंठे वा न कर्हिचित् ॥ वसामि किंतु मज्ज्ञानिहृदयांभोजमध्यमे ॥ १८ ॥ मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ॥ कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ॥ १९ ॥

भाव दूर होनेसे फिर संसारभय नहीं रहता मैं अद्वैतभावनिष्ठसे वियुक्त नहीं हूं और वह मुझसे पृथक् नहीं है ॥१६॥ हे पर्वतराज ! यह निश्चय जानो, वह ज्ञानी व्यक्ति मैं हूं, जो मैं हूं सो वह ज्ञानी है, जिस किसी स्थानमें ज्ञानी क्यों न रहे उसी स्थानमें उसको मेरा दर्शन प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मैं तीर्थ कैलास और वैकुण्ठमें निवास नहीं करती परन्तु जो ज्ञानी मुझमें परायण हैं उसीके हृदयकमलमें वास करती हूं ॥ १८ ॥ जो कोई मुझमें निष्ठावाले ज्ञानीकी एकवार पूजा करता है उसको मेरी पूजाका कोटिगुण फल होता है, जिसका चित्त चैतन्य

स्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ है उसका वंश पवित्र है उसकी माता कृतकृत्य ॥ १९ ॥ और उस पुरुषसे पृथ्वी पुण्यशालिनी होती है हे पर्वतराज ! आपने जो मुझसे ब्रह्मज्ञानका विषय पूँछा ॥ २० ॥ वह मैंने सब कहदिया इस विषयमें अब कुछ कहना नहीं है यह ज्येष्ठपुत्र भक्तिमान् शील सम्पन्न ॥ २१ ॥ यथोक्त शिष्यसे कहना अन्यसे नही कहना जिसकी इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और देवताके समान गुरुमें भक्ति होती है ॥ २२ ॥ उसीके निमित्त श्रेष्ठ पुरुष यह ब्रह्मविद्या प्रकाश करते हैं अर्थात् उसी महात्माको यह विद्या प्रकाशित होती है जो इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं वह साक्षात् परमेश्वरस्वरूप हैं ॥ २३ ॥ इस विद्याको प्राप्त होकर शिष्य प्रत्युपकारमें असमर्थ होता है इससे जीवनपर्यन्त

विश्वंभरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः ॥ ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ॥ २० ॥ कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि ॥ इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ॥ २१ ॥ शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित् ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥२२॥ तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः॥येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः ॥२३॥ यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी ॥ पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥ २४ ॥ पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन ॥ तस्मै न द्रुह्येदित्यादिनिगमोऽप्यवदन्नग ॥ २५ ॥ तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धांतो ब्रह्मदाता गुरुः परः ॥ शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शंकरः ॥२६॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग ॥ कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥ २७ ॥

गुरुके समीप ऋणी रहता है, जो ब्रह्मरूपमें युक्त करते हैं वह ब्रह्मजन्मदाता गुरु मातापितासे भी अधिक पूज्य हैं ॥ २४ ॥ पितासे प्रगट होकर जन्म मरण होनेसे नष्ट होते हैं परन्तु ब्रह्मरूप जन्मसे फिर कभी नष्ट नहीं होता, हे पर्वतराज ! "तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन्" इस श्रुतिने कहा है कि ब्रह्मदाता गुरुका कार्य स्मरणकर कभी उससे द्रोह न करे ॥ २५ ॥ इसकारण शास्त्रके सिद्धान्तानुसार ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है ! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षक हो सकता है पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव कभी उसकी रक्षा नहीं करते ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज

इसकारण काय मन वचनसे सर्वदा यत्नपूर्वकश्रीगुरुको सन्तुष्ट करे ॥ २७ ॥ अन्यथा वह कृतघ्नी होगा और कृतघ्न पुरुषकी निष्कृति नहीं होती, गुरुके वचन उल्लंघन करनेसे क्या दशा होती है सो कहते हैं दध्यङ्नामक आथर्वण मुनिने इन्द्रसे प्रार्थना की कि आप मुझे ब्रह्मविद्या दीजिये इन्द्रने कहा विद्या तो दूंगा पर यदि आप अन्य किसीको यह विद्या दोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक छेदन करूंगा। उनके स्वीकार करनेपर इन्द्रने ब्रह्मविद्या दी ॥२८॥ वत कुछ काल उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने मुनिके पास आय विद्याकीप्रार्थना की मुनिने कहा विद्या देनेसे इंद्र मेरा मस्तक छेदन करेगा तब अश्विनीकुमार बोले हम आपका यह मस्तक छेदनकर आपके देहमें अश्वका मस्तक लगाये देते हैं उस मस्तकसे आप

अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ इंद्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥ २८ ॥ अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा ॥ अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ॥२९॥ पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनि शिरस्तदा ॥ इति संकटसंपाद्या ब्रह्मविद्या नगाधिप ॥ लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ हिमालय उवाच ॥ स्वीयां भक्तिं वदस्वांब येन ज्ञानं सुखेन हि ॥ जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ॥ १ ॥

हमको विद्या उपदेश कीजिये, जब इन्द्र आपका यह मस्तक छेदन करेगा तब हम आपका पूर्वशिर संयुक्त करदेंगे मुनिने सम्मत हो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया तब इंद्रने आकर उनका वह मस्तक छेदन किया तब अश्विनीकुमारोंने ॥ २९ ॥ उनका मुख्य शिर जोडकर फिर उनके मुख्य शिरसे ब्रह्मविद्या सुनी यह कथा श्रुतिसिद्ध है इस प्रकार संकटसे प्राप्त होनेवाली विद्याको जिसने प्राप्त किया. हे पर्वतराज! वह धन्य और कृतकृत्य हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ हिमालय बोले हे मातः ! अविरागी मध्यम अधिकारी पुरुषको जिस प्रकार सुखपूर्वक ज्ञानलाभ होसके इस समय आप वही अपना

भक्तियोग कहो ॥ १ ॥ देवीने कहा हे नगेन्द्र ! मुक्ति प्राप्तिके निमित्त तीन मार्ग हैं कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्ति योग ॥ २ ॥ इन तीनोंमें भक्तियोग ही सहजमें सिद्ध होता है कारण कि, यह योग द्रव्यव्यय और शरीरकी पीडाके विना केवल मनकी वृत्तिसेही संपादित होता है, इससे सुलभ है ॥ ३ ॥ सत्व, रज, तम तीन प्रकारके गुणभेदसे मनुष्यकी भक्ति सात्विकी राजसी और तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है जो दम्भप्रकाशपूर्वक दूसरेको पीडा देनेके निमित्त ॥ ४ ॥ मात्सर्य और क्रोधादियुक्त होकर उपासना करता है उसकी तामसी भक्ति है और जो परपीडादिसे रहित हो अपने कल्याणके निमित्तही ॥ ५ ॥ सकाम भावसे यश और भोगमें लोलुप

देव्युवाच ॥ मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ॥ कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥ २ ॥ त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ॥ सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ॥ ३ ॥ गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता ॥ परपीडां समुद्दिश्य दंभं कृत्वा पुरःसरम् ॥४॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ॥ परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेवच ॥५॥ नित्यं सकामो हृदयं यशोर्थी भोगलोलुपः ॥ तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ६ ॥ भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः ॥ तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥ ७ ॥ परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च ॥ वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम् ॥ ८ ॥ इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः ॥ करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी ॥ ९ ॥ परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलंबनात् ॥ पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते ॥ १० ॥

हो अतिभक्तिसे उस उस फलप्राप्तिके निमित्त अत्यन्त भक्तिसे उपासना करते हैं ॥६॥ और अपनी अज्ञतासे हुई भेदबुद्धिद्वारा मुझे अपनेसे अन्य जानते हैं हे नगाधिप ! उस पामरकी भक्ति राजसी है ॥ ७ ॥ परमात्माको अर्पणकिये कर्मही पापनाश करनेमें समर्थ होते हैं वह वेदोक्त कर्म दिन रात मुझें अवश्य कर्तव्य है ॥ ८ ॥ इसप्रकार निश्चय कर जो भेदबुद्धिसे मेरी प्रसन्नताके निमित्त नित्य कर्मानुष्ठानकरता है हे पर्वतराज ! उसकी सात्विकी भक्ति है ॥ ९ ॥ यह सात्विकी भक्ति परम प्रेमरूपा और परमभक्तिकी प्रापिका है किंतु यह स्वयंही परा भक्ति नहीं है कारण कि, इसमें भेदबुद्धि वर्तमान रहती है परन्तु राजसी और तामसी भक्ति परभक्तिकी प्रापिका नहीं इससे तामसी और राजसी

भक्तिका त्यागकरकेइसकाही आश्रय करे ॥ १० ॥ हे नगेन्द्र ! अब मैं पराभक्तिको वर्णन करती हूं तुम सुनो जो कोई सदा मेरे गुणश्रवण और सदा मेरे नामको कीर्तन करता है ॥ ११ ॥ जिसका मन कल्याण और गुणरत्नका आकर मुझमेंही तेलधाराके समान अविच्छिन्नभावसे सदा स्थित रहता है ॥ १२ ॥ और उसमें किसी फलके हेतु व किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता तथा सामीप्य, सार्ष्टि सायुज्य और सालोक्य मुक्तिकी भी कामना नहीं करता ॥ १३ ॥ और जो प्राणी मेरी सेवासे अधिक और कुछ नहीं जानता, जो सेव्यसेवकभाव त्याग कर मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥ जो जितेन्द्रिय हो परानुरक्तिपूर्वक मेरीही आकांक्षा करता है और मुझको अपनेसे पृथक्

अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे ॥ मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ॥११॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् ॥ चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा ॥ १२ ॥ हेतुस्तु तत्र को वाऽपि न कदाचिद्भवेदपि ॥ सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चेषणा ॥ १३ ॥ मत्सेवातोऽधिकं किंचिन्नैव जानाति कर्हिचित् ॥ सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वांछति ॥१४॥ परानुरक्त्या मामेव चिंतयेद्यो ह्यतंद्रितः ॥ स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥१५॥ मद्रूपत्वेन जीवानां चिंतनं कुरुते तु यः ॥ यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥ १६ ॥ चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ॥ सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा ॥ १७ ॥ नमते यजते चैवाप्याचांडालांतमीश्वर ॥ न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात् ॥ १८ ॥ मत्स्थानदर्शने श्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ॥ मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मंत्रतंत्रादिषु प्रभो ॥ १९ ॥

न करके मैंही सच्चिदानंदरूप हूं ऐसा जानता है ॥ १५ ॥ और जो सब जीवोंमें मेराही रूप जानता है अपने परायेमें समान प्रीतियुक्त है ॥ १६ ॥ जो चैतन्यके समानत्वसे सर्वत्र विद्यमान सर्वस्वरूपिणी मेरे सहित सदा सब जीवोंका अभिन्नत्व जानता है ॥ १७ ॥ हे नगेश्वर ! जो भेद बुद्धि त्यागके कारण चण्डालपर्यन्त सब जीवोंको नमस्कार और सत्कार करता और भेदवर्जनमें कहीं भी जिसकी द्रोहबुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जो मेरा तथा मेरे भक्तोंका दर्शन मेरा शास्त्रश्रवण और मेरे मंत्रादिविषयमें

श्रद्धायुक्त है ॥ १९ ॥ मेरेहीमें प्रेमसे आकुलमति हो मेरी कथामात्र सुननेसे रोमांचित शरीर होता है, प्रेमके आंसुओंसे जिसके नेत्र पूर्ण और गद्गद कण्ठ होताहै ॥ २० ॥ हे नगेश्वर! जो अनन्यभावसे जगत्की योनि सर्व कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीकी पूजा करता है ॥ २१ ॥ जो भक्तिपूर्वक कृपणता त्याग मेरे नित्य नैमित्तिकके दिव्यव्रत करता है ॥ २२ ॥ जिसको स्वभावसे ही मेरे उत्सव करने और देखनेकी इच्छा रहती है हे भूधर! ॥ २३ ॥ जो मेरे नाम ऊंचे स्वरसे लेकर गाते और नृत्य करते हैं जो अहंकार

मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा ॥ प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिस्वनः ॥ २० ॥ अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ॥ मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ॥ २१ ॥ व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥ नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २२ ॥ मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा ॥ जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर ॥ २३ ॥ उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ॥ अहंकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ॥ २४ ॥ प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ॥ न मे चिंताऽस्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ॥२५॥ इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परभक्तिस्तु सा स्मृता ॥ यस्यां देव्य तिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥ २६ ॥ इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः ॥ तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥ २७ ॥ भक्तेस्तु या परा काष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ॥ वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥ २८ ॥

और देहके तादात्म्यभावसे रहित हैं ॥ २४ ॥ जो कोई यह समस्त ही प्रारब्धकर्मानुसार होता है यह जानकर मेरे ध्यानके अतिरिक्त देहरक्षादि विषयमेंभी चिन्ता नहीं करते ॥ २५ ॥ उन पुरुषोंकी यह भक्ति पराभक्ति कहाती है, जिसमें देवीविचारके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! इसप्रकार तत्त्वसे जिसको भक्ति प्राप्त हुई है वह तत्काल ही मेरे चिद्रूपमें लीन हो जाता है ॥२७॥ जिस ज्ञानसे भक्ति और ज्ञानकी पूर्णता होती है इसकारण वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठा

काही नाम ज्ञान है ज्ञानमें यह दोनों ही हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! जो भक्ति करके भी प्रारब्धवश मेरे ज्ञानके अधिकारी नहीं होते वह मणि द्वीपमें गमन करते हैं॥२९॥ हे पर्वतराज ! वहां जाकर इच्छा न करनेसे भी अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है, उसके अन्तमें मेरा चिद्रूप ज्ञानलाभ करके ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे मुक्त हो जाता है कारण कि, ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती यहां जिसको संवित् स्वरूप हृदयमें प्राप्त प्रत्यगात्माका ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ तो मेरे संवित् रूपका ज्ञान होनेसे उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते इस शरीरमें ही लय हो जाते हैं " न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इति श्रुतेः उसका ब्रह्मके साथ अभेद होता है " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार कंठमें स्थित सुवर्णका

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ॥ न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति ॥ २९ ॥ तत्र गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ॥ तदंते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ॥ ३० ॥ तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ॥ इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥ ३१ ॥ मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजंति न ॥ ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ॥ ३२ ॥ कंठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ॥ ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥ ३३ ॥ विदिताविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ॥ यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥ ३४ ॥ छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ॥ मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभानविवर्जितम् ॥ ३५ ॥ यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् ॥ ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ॥ ३६ ॥

अज्ञानवश नष्ट होना जाना जाता है और भ्रमके नष्ट होनेसे प्राप्त वस्तुकी ही प्राप्तिमानी जाती है ॥३३॥ हे नगसत्तम ! मेरे चिद्रूपतनुविहित घटादि कार्य अविदित माया रूपसे भिन्न हैं जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिविम्ब पडता है इसी प्रकार इस देहमें आत्माका अनुभव होता है और जिस प्रकार जलमें प्रतिविम्ब पूर्वकी अपेक्षा विविक्तरूपसे प्रकाशित होता है इसी प्रकारसे पितृलोकमें देहसे विविक्त भावमें आत्माका अनुभव होता है ॥३४॥ जैसे छाया और आतपका भेद प्रकाश स्वरूपसे स्वच्छरूपसे दीखता है इसी प्रकार मणिद्वीपमें द्वैतभाववर्जित ज्ञान होता है॥३५॥ जो वैराग्यवान् होकर

पूर्णज्ञान प्राप्त विना प्राणत्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्म लोकमें निवास करके ॥ ३६ ॥ फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म ग्रहण कर साधन करने उपरान्त फिर ज्ञानलाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! एक जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें ज्ञान होता है इस कारण सब प्रयत्नसे ज्ञानको आश्रय करै ॥ ३८ ॥ यदि मनुष्यजन्म प्राप्त होकर ज्ञानलाभ न किया तो विनाश होगा कारण कि मनुष्यजन्म बडा दुर्लभ है उसमें भी ब्राह्मण और उसमें भी वेदप्राप्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा यह षट्सम्पत्ति,

शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ॥ करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना ॥ ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ ३८ ॥ नोचेन्महान्विनाशः स्याज्जन्मैतद् दुर्लभं पुनः ॥ तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ॥ तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ॥ ४० ॥ तथेंद्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं मनोस्तथा ॥ अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ॥ ४१ ॥ साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः ॥ ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४३ ॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूतेभूते च वसति विज्ञानम् ॥ सततं मन्थयितव्यं मनसा मंथानभूतेन ॥ ४४ ॥

योग सिद्धि और उत्तम गुरुकी प्राप्ति यह इस लोकमें बडी दुर्लभ है ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंकी पटुता शरीरका संस्कार और अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे मोक्षमें इच्छा होती है ॥४१॥ जो मनुष्य साधनसे सफल होनेवाले इस शरीरको प्राप्त करके ज्ञानके निमित्त यत्न नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इस कारण यथाशक्ति ज्ञान प्राप्तिके निमित्त यत्न करे तो अवश्य उसको पदपदमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जैसे दूधमें घृत निमग्न है इसी प्रकार सब भूतोंमें ज्ञान निवास करता है उसको मंथानभूत मनसे सदा मथना चाहिये ॥ ४४ ॥

ज्ञानको प्राप्त होकर ही यह प्राणी कृतार्थ होता है यह वेदान्तकी घोषणा है यह संक्षेपसे आपके प्रति सब वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ हिमालय बोले हे देवि ! इस पृथ्वीमें तुम्हारे मुख्य और प्रिय कितने स्थान हैं सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे मातः ! जिन सब व्रत और उत्सवका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होते हैं अपने प्रीतिदायक उन सब व्रत और उत्सवका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! मैं सर्वाधिष्ठानस्वरूपिणी हूं

ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे देवीगीतायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ हिमालय उवाच ॥ कति स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ॥ मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥ १ ॥ व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ॥ तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ॥ उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ॥ ३ ॥ तथाऽपि भक्तवात्सल्यात्किंचित्किंचिदथोच्यते ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम ॥ ४ ॥ कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ॥ मातुः पुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ॥ ५ ॥ तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृंगं तथैव च ॥ हिंगुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥ ६ ॥

इस कारण भूमण्डलमें जितने स्थान विद्यमान हैं वह सब ही मेरी अधिष्ठान भूमि है और मैं सब कालमयी हूं इस कारण सब काल ही मेरा व्रत और उत्सवात्मक है इस कारण जिस समय जिसका अनुष्ठान करै उसको ही मेरी प्रीतिप्रद जाने ॥ ३ ॥ पर तथापि भक्तवत्सलतासे कुछ तुमसे कहती हूं हे नगराज ! वह सावधान होकर मुझसे सुनो ॥ ४ ॥ दक्षिणदेशमें कोलापुर (करवीर) स्थानमें लक्ष्मीनामसे सदा स्थित हूं महानाम पर्वतमें मातृपुरस्थानमें रेणुकारूपसे निवास करती हूं ॥ ५ ॥ तुलजापुर और सप्तशृंग स्थानमें हिंगुला और ज्वालामुखी

निवास करती हैं ॥ ६॥ यह शाकम्भरी भ्रामरी, श्रीरक्तदन्तिका और दुर्गाका स्थान है ॥ ७ ॥ विन्ध्याचलनिवासिनीका सर्वोत्तम स्थान है कांचीपुरमें अन्नपूर्णाका महास्थान ॥ ८ ॥ यही पुर भीमदेवी, विमला श्रीचन्द्रकला और कौशिकीका महास्थान है ॥ ९ ॥ नीलपर्वतके शृंगमें नीलाम्बरीका परमस्थान और सुन्दर श्रीनगरको जाम्बूनदेश्वरीका परम स्थान जानो ॥ १० ॥ नेपालमें गुह्यकालीका उत्कृष्ट स्थान है चिदम्बरदेशमें मीनाक्षीका परमस्थान है ॥ ११ ॥ वेदारण्यक महास्थानमें सुन्दरीदेवी, एकाम्बर महास्थानमें पराशक्ति स्थित रहती है ॥१२॥

शाकंभर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम्॥श्रीरक्तदंतिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ॥ ७ ॥ विंध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ अन्नपूर्णामहास्थानं कांचीपुरमनुत्तमम् ॥ ८ ॥ भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च ॥ श्रीचंद्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ॥ ९ ॥ नीलांबायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम् ॥ १० ॥ गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यत्त प्रोक्तं चिदंबरे ॥ ११ ॥ वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्याः समधिष्ठितम् ॥ एकांबरं महास्थानं परशक्त्या प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥ मदालसापरं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ॥ तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥ १३ ॥ वैद्यनाथे तु भगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ॥ श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥ ॥ १४ ॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमंडलम् ॥ भूमंडले क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम् ॥ १५ ॥ नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ॥ प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ॥ १६ ॥

महालसा, योगेश्वरी और नीलसरस्वतीका स्थान चीनदेशमें है ॥ १३ ॥ वैद्यनाथमें बगलाका सर्वोत्तमस्थान है मणिद्वीपमें मुझ भुवनेश्वरीका परमस्थान है ॥ १४ ॥ जिस कामरूदेश सतीका योनिमंडल गिराहै, वह कामाख्या योनिमंडल त्रिपुर भैरवीका महास्थान है भूमण्डलमें यह क्षेत्ररत्न है इस कारण ऐसा दूसरा स्थान नहीं है ॥ १५ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है इस स्थानमें महामाया

तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ॥ पर्वतेषु वसंत्येव महत्यो देवता अपि ॥१७॥ तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः॥ नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमंडलात् ॥१८॥ गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥ अमरेशे चंडिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ॥१९॥ नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी ॥ पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ॥२०॥ चंडमुंडी महास्थाने दंडिनी परमेश्वरी ॥ भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ॥ २१ ॥ चंद्रिका तु हरिश्चंद्रे श्रीगिरौ शांकरी स्मृता ॥ जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥ शांकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे ॥ केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मंगला स्मृता ॥ स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायंभुव्यपि नाकुले ॥ २४ ॥ कनखले भवेदुग्रा विश्वेशा विमलेश्वरे ॥ अट्टहासे महानंदा महेंद्रे तु महांतका ॥ २५ ॥ भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः ॥ भवानी शांकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥ २६ ॥

प्रत्येक मासमें रजस्वला होती है ॥१६॥ यहांके सब देवता पर्वतभावको प्राप्त हो वहां निवास करते हैं ॥१७॥ वहांकी सब पृथ्वी देवीरूप है ऐसा पंडित कहते हैं. इस कामाख्या योनिमण्डलसे श्रेष्ठ दूसरा स्थान नहीं है ॥१८॥ पुष्करक्षेत्र गायत्रीका परम स्थान है अमरेशमें चण्डिका और प्रभासमें पुष्करेक्षिणी निवास करती हैं ॥१९॥ नैमिषमहा स्थानमें लिंगधारिणीदेवी, पुष्कराक्षमें पुरहूता और आषाढी स्थानमें रति निवास करती हैं ॥२०॥ चण्डमुण्डके महास्थानमें दण्डिनी; परमेश्वरी, भारभूतिस्थानमें भूति नकुलस्थानमें नकुलेश्वरी निवास करती हैं ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्र स्थानमें चंद्रिका, श्रीपर्वतमें शांकरी जप्येश्वरमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें सूक्ष्मा निवास करती हैं ॥ २२ ॥ उज्जयनीमें शांकरी मध्यमेश्वरमें शर्वाणी केदार महाक्षेत्रमें प्रसिद्धमार्गदायिनी ॥२३॥ भैरवस्थानमें भैरवी गयामें मंगला कुरुक्षेत्रमें स्थाणुप्रिया नाकुलमें स्वायम्भुवी ॥२४॥ कनखलमें उग्रा विमलेश्वरमें विश्वेशा अट्टहासमें महानन्दा महेन्द्र पर्वतमें महान्तका ॥ २५ ॥ भीम स्थानमें भीमेश्वरी वस्त्रापथमें भवानी शांकरी अर्धकोटि

स्थानमें रुद्राणी ॥२६॥ अविमुक्त स्थानमें विशालाक्षी महालयमें महाभागा गोकर्णमें भद्रकर्णी भद्रकर्णमें भद्रा॥२७॥सुवर्णाख्य स्थानमें उत्पलाक्षी, स्थाणु स्थानमें स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला छगलंडस्थान [दक्षिण देशमें समुद्रके निकट है] मे प्रचण्डा ॥ २८ ॥ कुरण्डमें त्रिसंध्या माकोटमें मुकुटेश्वरी मण्डलेशमें शाण्डकी कालंजरमें काली ॥२९॥शंकुकर्णमें ध्वनि स्थूलकेश्वरमें स्थूला और ज्ञानियोंके हृदयकमलमें परमेश्वरी देवी हृल्लेखा प्राणशक्ति रूपसे निवास करती हैं ॥३०॥ हे नगेश्वर ! यह सब स्थान देवीके प्रिय हैं उन उन क्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर ॥३१॥

अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ॥ गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके ॥ २७ ॥ उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके ॥ कमलालये तु कमला प्रचंडा छगलंडके ॥ २८ ॥ कुरंडले त्रिसंध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी ॥ मंडलेशे शांडकी स्यात्काली कालंजरे पुनः ॥२९॥ शंकुकर्णे ध्वनिः प्रोक्तास्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे ॥ ज्ञानिनां हृदयांभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी॥३०॥ प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ॥ तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ॥३१॥ तदुक्तेन विधानेन पश्चा देवीं प्रपूजयेत् ॥ अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां संति नगोत्तम॥३२॥ तत्र नित्यं वसेन्नित्यदेवीभक्तिपरायणः॥ तानि स्थानानि संपश्यञ्जपन्देवीं निरंतरम् ॥३३॥ ध्यायंस्तच्चरणांभोजं मुक्तो भवति बंधनात् ॥ इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥३४॥ भस्मीभवंति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥ श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः ॥ ३५ ॥ मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ॥ ३६ ॥

उसमें कहीं विधिके अनुसार देवीकी पूजा कर. हे नगोत्तम ! अथवा सब पुण्यक्षेत्र काशीमें विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ देवीकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य नित्य काशीमें निवास करै उन स्थानोंको देखता हुआ निरन्तर देवीका जप करै ॥ ३३ ॥ और भगवतीके चरणकमलका ध्यान करता हुआ भवबन्धनसे छूटजाता है. यह देवीके नाम जो प्रभातकाल उठकर पढता है ॥ ३४ ॥ हे नगसत्तम ! उसी समय उसके पाप नष्ट होजाते हैं और ब्राह्मणोंके समीप श्राद्धकालमें जो निर्मल नाम पढता है ॥ ३५ ॥ उसके सब पितर मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त

होते हैं. हे सुव्रत ! अब तुमसे व्रतोंको कहती हूं ॥ ३६ ॥ नरनारियोंको यत्नपूर्वक व्रतानुष्ठान करना चाहिये अनन्तर तृतीयाव्रत: रसकल्याण नीव्रत ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरव्रत यह तृतीयाके व्रत हैं शुक्रवारका व्रत कृष्णाचतुर्दशीका व्रत ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रत प्रदोषव्रत यह चार प्रकारके व्रत हैं इन व्रत और प्रदोप समय देवदेव महादेव देवीको आसनमें बैठाय ॥ ३९ ॥ देवताओंके सहित देवीके सन्मुख नृत्य करते इनव्रतोंमें उपवास कर प्रदोपके समय मंगलमयी शिवाका पूजन करे ॥ ४० ॥ और जो प्रति पखवारेमें ऐसा करता है उसपर देवी अधिक प्रसन्न होती है हे नग ! सोमवारका व्रत मुझको अतिप्रियहै ॥ ४१ ॥ उसमेंभी देवीको पूजन कर रात्रिमें भोजन करे दोनों नवरात्रियोंमें

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ व्रतमनंततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रानंदकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत् ॥ शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ॥ यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ॥ ३९ ॥ नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे ॥ तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ॥ ४० ॥ प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम् ॥ सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रिय कृन्नग ॥ ४१ ॥ तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ॥ नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ॥ ४२ ॥ एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ॥ व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः ॥४३॥ प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ॥ ४४ ॥ शयनोत्सवं यथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम् ॥ रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च ॥ ४५ ॥

व्रत मेरा प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे और भी जो मत्सर हीन होकर मेरी प्रीतिके निमित्त नित्यनैमित्तिक व्रत करता है वह वे उपांगललितादिव्रत हैं ॥ ४३ ॥ इनके करनेसे मेरी सायुज्य मिलती है वह मेरा भक्त और मुझे प्रिय है फिर चैत्र शुक्र तीजको दोला उत्सव करे शंकर सहित देवीकी कुंकुम, अगर, कपुर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, धूप, दीपादिसे पूजा कर झुलावै इत्यादि और भी उत्सव करे ॥ ४४ ॥ आपाढ पूर्णिमाको शयनोत्सव वा इसके आगेकी तीज कार्तिक पूर्णिमाको जागरणोत्सव, आपाढ शुक्र तृतीयाको रथोत्सव करे

इसमें पृथ्वीको रथ, चन्द्रसूर्यको चक्र, वेदोंको अश्व ब्रह्माको सारथि मा नेक मणियोंसे जडित फूलमालायुक्त रथकी कल्पनाकर उसमें शिवाको बैठावे और लोकोंकी रक्षा तथा लोकोंके देखनेको अम्बा रथपर चढी हैं यह भावना करे रथके चलनेमें शत २ जय शब्द करै, हे भगवति ! हम दीन जनोंकी रक्षा करो. इस प्रकार स्तोत्र पढ बाजे बजाय सोमाके समीपरथ ले जाय पूजा करै. फिर घर लावै उमासंहिता (शिवपुराण) में यह कथा वर्णनकी है. चैत्रपूर्णिमाको दमनोत्सव ॥ ४५ ॥ श्रावणपूर्णिमाको पवित्रोत्सव मेरा प्रियकारक है इसप्रकार मेरे भक्त दूसरे उत्सवोंको भी सदा करैं ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे मेरे भक्त सुवासिनी कुमारी और बटुकोंको मेरा स्वरूप जानकर तद्गतचित्त हो

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ॥ मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान् ॥४६॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः ॥ कुमारीर्बटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतांतरः ॥४७॥ वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥४८॥ स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमंजसा ॥ सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ॥ नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥४९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे स० देवीगीतायामष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥ हिमालय उवाच ॥ देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽबिके ॥ ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नंबिकाया यथा प्रियम् ॥ अत्यंतश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ॥ २ ॥

भोजन करावे ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्य कृपणता छोडकर कुसुमादिद्वारा इनकी पूजा करे जो सावधान हो प्रतिवर्ष भक्तिसे ऐसा करता है ॥ ४८ ॥ वह धन्य कृतकृत्य और मेरी प्रीतिका पात्र है इसमें सन्देह नहीं यह अपनी प्रियकर वस्तुओंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ यह वार्ता अशिष्य और अभक्तको कभी न देनी चाहिए ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायमष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ हिमालय बोले हे महेश्वरि ! देवदेवि ! महेशानि ! करुणासागर ! जगदम्बा ! अब भली प्रकार अपने पूजा विधानको कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे राजन् ! मैं अपनी प्रियकर पूजा विधि कहती हूं, हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम अतिशय श्रद्धापूर्वक श्रवण करो ॥ २ ॥

बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे मेरी पूजा दो प्रकारकी है इसमें बाह्य भी वैदिक और तांत्रिक भेदसे दो प्रकारकी है ॥ ३ ॥ हे भूधर ! वैदिक पूजाभी मूर्ति भेदसे दो प्रकारकी है, उसमें विराट्रूपसे देवीका ध्यानरूप पहली पूजा और कर चरणादि युक्त देवीकी मूर्तिका ध्यानकर वैदिक मंत्रोंसे देवीका आवाहन और विसर्जन करना यह दूसरी पूजा है इनमें वैदिक मंत्रमें दीक्षित पुरुषको वेद विधिके अनुसार वैदिकी जा ॥ ४ ॥ और तंत्रमार्गमें दीक्षित पुरुषको तंत्रोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये. जो मूढ इस प्रकार पूजा रहस्य न जानकर वैदिक तांत्रिक रीतिसे और तांत्रिक दीक्षावाले वैदिक रीतिसे पूजा करे तो ॥ ५ ॥ इस विपरीत भावके कारण वह मूढ पतित होता है अब प्रथम वैदिकी पूजाका विषय वर्णन करती हूं ॥ ६ ॥

द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यंतराऽपि च ॥ बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तांत्रिकी तथा ॥ ३ ॥ वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर ॥ वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ॥ ४ ॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत् ॥ इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ॥५॥ करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा ॥ यत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम् ॥ ६ ॥ यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर ॥ अनंतशीर्षनयनमनंतचरणं महत् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् ॥ तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥ ८ ॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग॥ शांतः समाहितमना दंभाहंकारवर्जितः ॥ ९ ॥ तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ॥ तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥ ॥ १० ॥ अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः ॥ यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ॥ ११ ॥

हे भूधर ! जो तुमने मेरे साक्षात पररूपका दर्शन किया है जिसमें अनन्त शिर अनन्त नेत्र अनन्त चरण हैं ॥ ७ ॥ जो सब शक्तिसे युक्त प्रेरक परात्पर है उसीका निरन्तर पूजन करे, इसीका नमस्कार ध्यान और स्मरण करे ॥ ८ ॥ हे नगराज ! यही प्रथम वैदिकी पूजाका स्वरूप है यह पूजा शान्त, सावधान मन, दंभ अहंकारहीन होकर करनी चाहिये ॥ ९ ॥ उसीमें तत्पर उसीका यजन और उसीकी शरण हो उसीको चित्तसे देखकर सदा जप ध्यान करो ॥ १० ॥ अनन्य प्रेम भक्तिसे मेरे भावको आश्रित हो यज्ञोंसे मेरा यजन और तप दानसे मुझ विराट्

रूपको ही सन्तुष्ट करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार करते हुए मेरे अनुग्रहसे संसार बंधनसे मुक्त होगे मुझमें तत्पर और मुझमें आसक्त चित्त भक्तश्रेष्ठ कहे हैं ॥ १२ ॥ यह मेरी प्रतिज्ञा है ऐसे भक्तोंको मैं बहुत शीघ्र उद्धार कर देती हूं हे गिरिराज! कर्म युक्त ध्यानयोग, अथवा भक्ति मिश्रित ज्ञान योगसे ही ॥ १३ ॥ मैं प्राप्त हो सकती हूं। केवल कर्मसे ही कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, धर्मसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिमें प्रतिपादन किये कर्मको ही धर्म कहते हैं श्रुतिस्मृतिके विपरीत अन्य शास्त्रोंका कहा हुआ धर्म यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ और सब शक्ति सम्पन्न मेरे स्वरूपसे ही वेद प्रगट हुए हैं, इस कारण वेदके अप्रमाणकी शंका

इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥ मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ॥१२॥ प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु॥ ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः॥१३॥प्राप्याऽहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः ॥ धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संजायते परम् ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥ १५ ॥ सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः॥ अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ॥ १६ ॥ स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः ॥ मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥ १७ ॥ क्वचित्कदाचित्तंत्रार्थकटाक्षेण परोदितम् ॥ धर्मं वदंति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥ १८ ॥ अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानप्रभवत्वतः ॥ अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥ १९ ॥

नहीं हो सकती.कारण कि,मैं अज्ञान रहित हूँ इससे मुझसे प्रगट हुए वेद भ्रान्ति रहित सत्यवस्तु हैं दूसरे शास्त्र अज्ञपुरुषों द्वारा कल्पित हैं इससे वह वेदके सन्मुख अप्रमाण हैं इसीसे उनमेंका कहा हुआ धर्म धर्माभास है फल पक्षमें वेदोक्त धर्मही यथार्थ धर्म है ॥ १६ ॥ वेदोंका अर्थ ग्रहण कर स्मृति शास्त्र प्रणीत हुआ है इससे मनुआदि महर्षि प्रणीत स्मृतिशास्त्रका ग्रहण होता है ॥ १७ ॥ स्मृति और पुराणादिमें जिस किसी स्थलमें कटाक्षपूर्वक वेद विरुद्ध विषय कहा गया वह वैदिकोंको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १८ ॥ कारण कि, वेदके अतिरिक्त अन्य

शास्त्र कर्ताओंके वचन अज्ञान संभूत हैं तो अज्ञान दोष वर्तमान होनेसे उनकी उक्तिका प्रमाण नहीं हो सकता॥ १९॥इस कारण मुमुक्षुओंको धर्म ज्ञानके निमित्त सर्वथा वेद मार्गका आश्रम लेना चाहिये जिस प्रकार लोकमें राजाकी आज्ञा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २० ॥ इसी प्रकार सर्वेशानी राजराजेश्वरी मेरी श्रुतिरूप आज्ञाको मनुष्य कैसे त्याग सकते हैं? अपनी आज्ञा रक्षा करनेको मैंने ब्राह्मण क्षत्रियजाति॥२१॥उत्पन्न की है, इस कारण मेरा रहस्यरूप श्रुतिवाक्य अवश्य जानना चाहिये. हे भूधर! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है ॥२२॥ और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब मैं शाकंभरी आदि अनेक वेष रामकृष्णादि अवतार धारण करती हूं वेदके सद्भावसे ही वेदरक्षक देवता और वेदविनाशक दैत्य हैं यह विभाग

तस्मान्मुमुक्षुधर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत् ॥ राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥ २० ॥ सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः ॥ मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥ मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ॥ देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥ २३ ॥ ये न कुर्वंति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा ॥ संपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ॥ २४ ॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत् ॥ राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणैर्न च संभाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः ॥ अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः ॥ वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ॥ २७ ॥

कल्पित हुआ है ॥२३॥ जो वेदोक्त धर्मका अनुष्ठान नहीं करते उनकी शिक्षाके निमित्तही नरकोंकी कल्पना की है जिनकी वार्तामात्रके श्रवणसे उनको भय प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ जो वेद धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय करते हैं राजाको उन अधर्मियोंको अपने देशसे निकलवा देना चाहिये ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंको उनके साथ संभाषण न करना चाहिये और उनको ब्रह्मभोजकी पंक्तिमें ग्रहण न करना चाहिये इस लोकमें जो और भी अनेक प्रकारके शास्त्र हैं ॥ २६ ॥ उनमें जो श्रुतिस्मृति विरुद्ध हैं वे सब तामसी हैं यदि कहो कि, फिर शिवने

शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः ॥ दक्षशापाद् भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः ॥ २८ ॥ दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥ २९ ॥ शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ॥ गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शंकरेण तु ॥ ३० ॥ तत्र वेदाविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ॥ वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् ॥ वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥ धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥ सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ॥ सर्वभूतदयावंतो मानाहंकारवर्जिताः ॥ ३४ ॥

तंत्र क्यों बनाये इसपर कहते हैं याम, कापालिक, कौल, भैरवागम ॥ २७ ॥ जो पापी होकर वेद धर्माचरण करते हैं अर्थात् जब पापियोंकी वेद धर्माचरणसे सद्गति होगी तो कर्मकी विचित्रताके अभावसे प्रपंचविचित्र न होगा इस प्रकारका उनको अनेक फल दिखाकर उनकी प्रवृत्तिको मोहितकर वेदसे श्रद्धा च्यावित करनेको शिवजीने मोहनार्थ तंत्र निर्माण किये हैं कारण कि, पापी होनेसे वेदका अधिकार नहीं रहता इससे वे पापका फल पाकर शुद्ध हों पश्चात् वेदानुसार कर्म करे तथा दत्तके शाप, भृगुके शाप, दधीचिके शापसे जो ॥ २८ ॥ ब्राह्मण वेदसे बहिष्कृत हुए हैं उन ब्राह्मणोंको सोपानक्रमसे जन्मान्तरमें वेदाधिकार प्राप्तिके निमित्त कुछ परमेश्वरकी उपासना वक्तव्य है यह विचार कर ॥२९॥ शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य यह पांच प्रकारके आगम शंकरने निर्माण किये ॥ ३० ॥ इनमें किसी २ अंशमें वेदानुकूल और कहीं २ वेदके विरुद्ध भी कहा है इनमें वैदिकोंको वेदानुकूल अंशग्रहणमें दोष नहीं है. कारण कि वायुसंहितामें लिखा है श्रौत अश्रौत भेदसे शिवागमन दो प्रकारका है श्रौत वेदका सार, और अश्रौत स्वतंत्र है, वैदिकोंको श्रौतअंश ग्रहणकरना कहा है ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदविरुद्ध अंशमें ब्राह्मण अधिकारी नहीं है जिनका वेदमें अधिकार नहीं है वही उस वेदविरुद्ध अंशके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण वैदिकद्विजाति सब प्रयत्नसे वेदका आश्रय करे. कारण कि, वेदोक्त धर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुआ ज्ञानही परब्रह्मका प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ जो सब प्रकारकी वासना त्यागकर मेरी शरण हुए

हैं जो सब प्राणियोंमें दया करते मान और अहंकारसे वर्जित हैं ॥३४॥ मुझमें चित्त लगाये मुझमें प्राण अर्पण किये मेरे स्थान वर्णनमें निरत संन्यासी, वनवासी, गृहस्थी, ब्रह्मचारी ॥३५॥ जो सदा भक्तिसे इस विराट्स्वरूप उपासनानामक योगका अनुष्ठान करते हैं सदा भक्तिसे उपासना करते हैं उन नित्ययोगानुष्ठान करनेवालोंका मैं अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अंधकार ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट कर देती हूं इसमें सन्देह नहीं, हे पर्वतराज ! इसप्रकार, यह मैंने पहली वैदिकपूजाका॥३७॥ स्वरूप संक्षेपसे कहा अब करचरणादिविशिष्ट मूर्तिपूजा दूसरी

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ॥ संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ॥३५॥ उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम् ॥ तेषां नित्याभियुक्तानामहमज्ञानजं तमः ॥३६॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः ॥ इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप ॥३७॥स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद् द्वितीयाया अथो ब्रुवे ॥ मूर्तौ वा स्थंडिले वाऽपि तथा सूर्येंदुमंडले ॥३८॥ जलेऽथवा बाणलिंगे यंत्रे वाऽपि महापटे ॥ तथा श्रीहृदयांभोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम् ॥३९॥ सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ॥ सौंदर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुंदराम् ॥ ४० ॥ शृंगाररससंपूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ॥ प्रसादसुमुखीमंबां चंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥ ४१ ॥ पाशांकुशवराभीतिधराभानंदरूपिणीम् ॥ पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ॥ ४२ ॥ यावदांतरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ॥ तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ॥ ४३ ॥

कहती हूं मूर्तिमें स्वच्छ भूमिमें सूर्यमण्डल,चन्द्रमण्डल॥३८॥जल,बाणलिंग यंत्र,वस्त्र,हृदयकमलमें परात्परा जगदम्बिका देवीका ध्यान करे॥३९॥ जो सगुण अर्थात् सत्वादिगुणसम्पन्न करुणारसपरिपूर्ण युवती अरुणवर्ण सुन्दरताके सारकी सीमा सर्वांगसुन्दरी॥४०॥शृंगाररसमें परिपूर्ण भक्तोंके दुःख देखतेही कातर होनेवाली प्रसादसे सुमुखी,अम्बा अर्द्धचन्द्रसे शोभितशिरवाली॥४१॥चारों हाथोंमें पाश अंकुश,वर और अभय धारण किये, आनन्दरूपिणीका वित्तके अनुसार षोडश उपचारसे पूजन करे॥४२॥जबतक आभ्यन्तर पूजामें अधिकार न हो तब तक इसीप्रकार पूजाकरता रहे

जब आभ्यन्तरपूजाका अधिकार हो जाय तो इच्छासे बाह्यपूजा छोडदे ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित संवित् वा ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है इस संवित् स्वरूपमें चित्तके लीन करनेकोही आभ्यन्तर पूजा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस कारण मेरे संविद्रूपमें एकान्तभावसे चित्त स्थापन करै. कारण कि, संवित् वा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् मायामय मिथ्या है ॥ ४५ ॥ इसकारण संसारनाशके निमित्त आत्मस्वरूपिणी सर्व साक्षिणी मेरी निर्विकल्प भक्तियोग युक्त चित्तसे भावना कर ॥ ४६ ॥ इसके आगे बाह्यपूजाका विस्तार कहती हूं हे पर्वतसत्तम ! तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीदेवी बोलीं

आभ्यंतरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः ॥ संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम ॥ ४४ ॥ अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् ॥ संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ॥ ४५ ॥ अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ भावये न्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥४६॥ अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया ॥ सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम ॥४७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्तन्धे देवीगीतायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥ कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥ १ ॥ सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम् ॥ नमस्कृत्य ततो देवीं कुंडलीं संस्मरेद् बुधः ॥ २ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतः पदव्यामनुसंचरं तीमानंदरूपामबलां प्रपद्ये ॥ ३ ॥

हे पर्वतराज ! साधक प्रभातही उठकर मस्तकके ब्रह्मरंध्रमें स्थित कर्पूरवर्णके समान उज्ज्वल सहस्रार कमलाका स्मरण कर उसमें अपने अनुरूप गुरुके समान आकार स्मरण करै ॥ १ ॥ जो प्रसन्नता युक्त उत्तम वेशसे भूषित भूषणोंसे सम्पन्न शक्ति पत्नी सहित है इस प्रकार पत्नी सहित गुरुका ध्यान करकेदेवी कुंडलिनीका ध्यान करै ॥ २ ॥ जो मूलाधारसे ब्रह्मरंध्रमें गमन करनेके समय प्रकाशमान अर्थात् चैतन्यरूपमें भासमान है और ब्रह्मरंध्रसे मूलाधारमें गमन करनेके निमित्त आनन्दामृतमयी है, जो इस प्रकार सुषुम्ना प्रथम गमनागमनशील है उस

पराशक्ति आनन्दरूपिणी कुंडलिनीकी मैं शरण होता हूं॥ ३ ॥ इसप्रकार ध्यानकर मूलाधारमें स्थित चैतन्यरूप अग्निकी कुंडलिनीरूप शिखाके भीतर मुझसच्चिदानंदरूपिणी का ध्यान करै फिर शौच संध्यावंदनादि सब कार्य करै ॥ ४ ॥ फिर वह द्विजोत्तम मेरी प्रीतिके निमित्त अग्निहोत्र करके होमान्तमें आसनपर आकर पूजाका संकल्प करै ॥ ५ ॥ इससे पहले भूतशुद्धि और मातृकान्यास करै मातृकान्यास ह्ल्लेखा अर्थात् मायाबीजद्वारा करै ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार हृदयमें रकार भ्रूमध्यमें ईकार मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करै ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक

ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः ॥ होमांते स्वासने स्थित्वा पूजासंकल्पमाचरेत् ॥ ५ ॥ भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ॥ हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ॥६॥ मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् ॥ भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ॥ ७ ॥ तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥ कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥ ८ ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणयामैर्विजृंभिते ॥ हृदंभोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ॥ १० ॥

मंत्रमें किये न्यासोंको यथोक्त करे अपने देहमें धर्मादि पीठकल्पना कर पूजा करे ॥८॥ फिर प्राणायामद्वारा विकसित हृदय कमलरूप मेरे स्थानमें पंच प्रेतासनपर स्थिर महादेवीकी चिंतना करे ॥ ९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव यह पंचप्रेत कहे जाते हैं यह मेरे पादमूलमें सदा स्थित रहते हैं यह पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पांच महाभूतोंके और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तितुरीय, अतीत इन पांचों अवस्थाओंके

१ [illegible] पीठपर अनन्तायनमः पद्मायनमः अं सूर्यमंडलायनमः संसत्वायनमः रंरजसेनमः । तंतमसेनमः । पूर्वादिदिशाओंमें आं आत्मनेनमः । अं अंतरात्मनेनमः । पं परमात्मने नमः । ह्रीं ज्ञानात्मनेनमः । फिर पद्मके पूर्वादिदलमें जयायैनमः । विजयायैनमः । अपराजितायै नमः । नित्यायैनमः । विलासिन्यैनमः । दोग्ध्र्यै नमः । अघोरायैनमः । मङ्गलायैनमः ॥ [illegible] पीठशक्तिकी पूजा शारदामें है।

अधिपति हैं और मैं पंचभूत तुरीय और अतीत अवस्थासे भी परे ब्रह्मरूपिणी हूं ॥ १० ॥ ११ ॥ इसी कारण यह मेरे आसनको प्राप्त हुए हैं यह शक्तितंत्रमें प्रसिद्ध है इसप्रकार मेरा ध्यान कर मानस उपचारसे मेरा पूजन और जप करे ॥ १२ ॥ जपका फल श्रीदेवीको समर्पण कर फिर अर्घ्य स्थापन करे फिर अर्घ्यपात्रादिको स्थापन करके पूजाके द्रव्योंकी शुद्धि करे ॥ १३ ॥ साधक मूलमंत्र वा फट् इस मंत्रसे अभिमंत्रित किये जलसे सब पूजाद्रव्य शुद्ध करे दिग्बंधकर गुरुओंको प्रणामपूर्वक ॥ १४ ॥ उनकी आज्ञाको ले पूर्वोक्त यंत्रादि द्वारा

पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ॥ अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीताऽस्मि सर्वथा ॥११॥ ततो विष्टरतां याताः शक्तितंत्रेषु सर्वदा ॥ ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ॥ १२ ॥ जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ॥ पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥ १३ ॥ जलेन तेन मनुना चास्त्रमंत्रेण देशिकः ॥ दिग्बंधं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम् ॥१४॥ तद नुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम् ॥ हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम् ॥ १५ ॥ आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थाप नविद्यया ॥ आसनावाहने चाऽर्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा ॥ १६ ॥ स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः ॥ गंधपुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः ॥ १७ ॥ यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ॥ प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ॥ १८ ॥ मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्तव्या अंगदेवताः ॥ तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिंतयेत् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च पूजयेत् ॥ गंधादिभिः सुगंधैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ॥ २० ॥

बाह्य पीठमें पूर्वमें भावनाकी हुई हृदयमें स्थित मेरी मनोहर मूर्तिको ॥ १५ ॥ प्राणस्थापन मंत्रद्वारा आवाहन करे, फिर भक्तिपूर्वक आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥ १६ ॥ स्नान, दोवस्त्र, भूषण और गंध, पुष्प, यथायोग्य भक्तिसे देवीके निमित्त प्रदान करे ॥ १७ ॥ फिर भलीप्रकार यंत्रस्थ आवरण देवताकी पूजा करे यदि प्रतिदिन आवरण देवताकी पूजा न करसके तो शुक्रवारको करे ॥ १८ ॥ आवरण देवताको मूलदेवीका प्रभारूप जानना चाहिये और त्रिलोकीको उसकी प्रभामंडलसे व्याप्त चिन्तन करे ॥ १९ ॥ इसप्रकार आवरण देवता

ओंको यथास्थानमें ध्यान और पूजादि करके फिर सावर्ण सायुध शक्तिसम्पन्न श्रीभुवनेश्वरीकी सुगंध गंधादि सुगंधित पुष्प ॥ २० ॥ नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणादि उपचारसे पूजा करे और हे हिमालय ! तुम्हारे किये सहस्रनामसे मुझको संतुष्ट करे ॥ २१ ॥ तंत्रादिप्रोक्त कवच और "अहं रुद्रेभिः" यह सूक्त और भुवनेश्वरीउपनिषद्में " सर्वे वैदेवा देवीमुपतस्थुः" हल्लेखा उपनिषदस्थ मंत्र ॥ २२ ॥ तथा महाविद्याके महामंत्रोंसे वारवार देवीको संतुष्ट करे और प्रेमसे आर्द्र हृदय होकर देवीसे अपना अपराध क्षमा करावे ॥ २३ ॥ पुलकित अंग

नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव तांबूलैर्दक्षिणादिभिः ॥ तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च ॥ २१ ॥ कवचेन च सूक्तेनाऽहं रुद्रेभिरिति प्रभो ॥ देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हल्लेखोपनिषद्भवैः ॥ २२ ॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं स्रवांजलस्थो नरः ॥ २३ ॥ पुलकांकितसर्वांगैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ॥ नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ वेदपारायणेनैव पुराणैः सकलैरपि ॥ प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेच्च माम् ॥ २५॥ निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ॥ नित्यहोमं ततः कुर्याद्ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥२६॥ बटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत्॥नत्वा पुनःस्वहृदये व्युत्क्रमेण विवर्जयेत् ॥ २७ ॥ सर्वं हल्लेखया कुर्यात्पूजनं मम सुव्रत ॥ हल्लेखां सर्वमंत्राणां नायिका परमा स्मृता ॥ २८ ॥

होकर प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण नेत्र हो गद्गद वचनसे नृत्यगीतादिद्वारा मुझको वारंवार संतुष्ट करे ॥ २४ ॥ कारण कि समस्त वेद और पुराणकी प्रतिपाद्य वस्तु मैं हूं इसकारण वेदाध्ययन और पुराणोंके पाठद्वारा मुझे सन्तुष्ट करै ॥ २५ ॥ और समस्त ऐश्वर्य अपनी देह सहित मेरे अर्पण करे फिर नित्य हवनकर ब्राह्मण और सुन्दर वस्त्रधारी कुमारी ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके बालक तथा दूसरे पामरजनोंको भी देवीकी बुद्धिसे भोजन कराके फिर अपने हृदयमें देवीको प्रणामकर संहार मुद्राद्वारा विसर्जन करे ॥ २७ ॥ हे सुव्रत ! सब मंत्रोंमें मायाबीज प्रधान है इसकारण मेरी

१ यह स्तोत्र कूर्मपुराणके बारहवें अध्यायमें है।

सब पूजा इसीमंत्रसे करे ॥ २८ ॥ हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं सदा प्रतिबिम्बित हूं, इस कारण हृल्लेखामंत्रसे दिया हुआ मानो सब मंत्रोंसे समर्पित होता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार मेरी पूजा करनेपर भूषणादिसे गुरुकी पूजा करे और अपनेको कृतकृत्य जाने जो इस प्रकारसे श्रीभुवनेश्वरीकी पूजा करता है ॥ ३० ॥ उसको कहीं कभी कुछ भी दुर्लभ नहीं है देहान्तमें वह मेरे मणिद्वीपको सर्वथा प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ वह देवीका स्वरूप ही जानना चाहिये देवता उसको नित्य नमस्कार करते हैं हे राजन् ! इसप्रकार आपसे यह देवीका पूजन कहा ॥ ३२ ॥ इसको भली

हृल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिंबिता ॥ तस्माद्धृल्लेखया दत्तं सर्वमंत्रैः समर्पितम् ॥ २९ ॥ गुरुं संपूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥ ३० ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्कचिदस्ति हि ॥ देहांते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥ ३१ ॥ ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमंति तम् ॥ इति ते कथितं राजन्महादेव्याः प्रपूजनम् ॥ ३२ ॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ॥ कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३ ॥ इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् ॥ नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥ ३४ ॥ एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ॥ तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ॥ ३५ ॥ देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ॥ सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ॥ ३६ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणानां समीपतः ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमं पदम् ॥ ३७ ॥

प्रकार विचारकर अपने अधिकारके अनुसार मेरा पूजन करो इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ यह गीताशास्त्र कभी अशिष्यके निमित्त न देना अभक्त धूर्त और दुर्मनवालेको न देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शास्त्रका प्रकाश मानो माताके स्तनोंका उद्घाटन करना है इस कारण यत्नसे इसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३५ ॥ भक्त शिष्य और ज्येष्ठ पुत्रके निमित्त देना चाहिये तथा सुशील सुवेश देवीभक्तसे कहना उचित है ॥ ३६ ॥ श्राद्धकालमें यह ब्राह्मणोंके समीप पढ़े तो उसके सब पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

व्यासजी बोले ऐसा कहकर भगवती वहां ही अन्तर्धान होगई और देवीके दर्शनसे सब देवता भी प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले तब वही हैमवती देवी हिमालयके घर प्रगट होकर गौरीनामसे प्रसिद्ध हुई और शंकरने उनका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ तब उनसे कार्तिकेयने जन्म लाभकरके तारक असुरको मारा "गौरीकी उत्पत्ति ज्येष्ठशुक्ल चौथको अरुणोदयमें हुई यह रत्नावलीमें लिखा है" यह गौरीकी उत्पत्ति कही अब लक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो, पूर्वमें समुद्र मथनेके समय अनेक रत्न प्रगट हुए थे ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके

व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ॥ या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद्दत्ता सा शंकराय च ॥ ३९ ॥ ततः स्कंदः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः ॥ समुद्रमंथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥ ४० ॥ तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः ॥ ४१ ॥ वैकुंठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥ इति ते कथितं राजन्देवीमाहात्म्य मुत्तमम् ॥४२॥ गौरीलक्ष्म्योः समुत्पत्तिविषयं सर्वकामदम् ॥ न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ॥ ४३ ॥ गीता रह स्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽनघ ॥ ४४ ॥

निमित्त देवताओंने परम आदरसे उनकी स्तुति की तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त समुद्रसे लक्ष्मी निकलीं ॥ ४१ ॥ देवताओंने उनको भगवान् विष्णुको दिया जिससे वह बडी प्रसन्न हुई । हे राजन् ! यह आपसे उत्तम देवीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ४२ ॥ यह गौरी और लक्ष्मीका प्रादुर्भाव सब कामनाका देनेवाला है । यह रहस्य जिस किसीके प्रति नहीं कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ रहस्यमयी इस

गीताको बडे यत्नसे गुप्त रखना चाहिये हे पापरहित ! तुमने जो विषय पूछा था वह सब संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह पवित्र पावन और दिव्य चरित्र है आपको अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तम

पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कंधे देवीगीतायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीरस्तु ॥ स्कंधश्चायं समाप्तः ॥ ७ ॥

खशराब्धिशिव (२३५०) पद्यैस्तु द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य सप्तमस्कंध ईरितः ॥ १ ॥

स्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ इति सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥ ७ ॥

दोहा—शिवाशंभुके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय । श्रीसप्तमस्कन्धकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
दोसहस्र दोसै अधिक, पंचाशत यहि पद्य । सो सब वर्णे मिश्रने, निर्मलभाषागद्य ॥ २ ॥
सकलकामप्रद जानिये, यह गीताको ज्ञान । पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं पद निर्वान ॥ ३ ॥
देवी हिमवत्को भयो, जो सुन्दर सम्वाद । सो सब भाषा करि कह्यो, बुध ज्वालापरसाद ॥ ४ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन श्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर"–(स्टीम्)–मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत २०११, शकाब्दाः १८७६.

॥इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कंधः समाप्तः॥

॥अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते अष्टमस्कंधः प्रारभ्यते॥

दोहा—जगदानंदप्रदायिनी, सकल सुमंगल मूल । शिवाभवानी मिश्रपर, सदा रहो अनुकूल ॥

जनमेजय बोले आपने सूर्य चन्द्रवंशी राजोंका जो चरित्र कहा सो अमृतका स्थान चरित्र हमने सुना ॥ १ ॥ अब यह सुननेकी इच्छा है कि, वह जगदम्बिका देवी सब मन्वन्तरोंमें जिस जिस रूपसे पूजित होती है ॥ २ ॥ और जिस जिस स्थानमें जिस जिस कर्मसे पूजित होती है " तथा जिस जिस शरीरसे देवी फल देनेको पूजी जाती है जिस जिस मंत्रबीजसे जहां जहां पूजी जाती है " देवीका विराट्

श्रीगणेशाय नमः ॥ जनमेजय उवाच ॥ सूर्यचंद्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम् ॥ चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि सा देवी जगदंबिका ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते ॥ २ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा ॥ "शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा ॥ येनैव मंत्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते॥" देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम् ॥ ३ ॥ येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः ॥ तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम् ॥ यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विंदते ॥ ५ ॥ एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा ॥ तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रवर्तकः ॥६॥ एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान् ॥ ७ ॥ तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः ॥ पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवताऽनघ ॥ ८ ॥

रूप और उसका वर्णन ॥ ३ ॥ तथा जिस ध्यानसे उस सूक्ष्म शरीरमें बुद्धिकी गति होती है हे विप्रर्षे ! वह सब कहिये जिसमें हमको मंगलकी प्राप्ति हो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे भारत ! देवीका आराधन सुनो जिसके करने सुननेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥ ५ ॥ यही बात पहले नारदजीने नारायणसे पूछी थी योगमार्गके प्रवर्तक भगवानने जो उनसे कहा ॥ ६ ॥ वही कहते हैं, एक समय श्रीमान् नारदजी पृथ्वीपर्यटन करते हुए नारायणके आश्रममें आय खेदरहित स्थित हुए ॥ ७ ॥ नारदजी उन योगात्माके निमित्त नमस्कार करके

जो आपने पूछा यही बात पूछते हुए ॥ ८ ॥ नारदजी बोले, हे देवदेव ! महादेव ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे जगत्के आधार ! हे सर्वज्ञ ! हे सद्गुणोंसे श्लाघनीय ! आप जगत्के जिसप्रकार आदि हो सो मुझसे विस्तारसे कहो यह जगत् कहांसे उत्पन्न और किसमें प्रतिष्ठित है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ और अन्तमें किसमें लय होता है तथा सम्पूर्ण फलका उदय कहांसे होवा है और किसके ज्ञानसे यह माया नाशको प्राप्त होती है ॥११॥ किसके पूजन, जप, ध्यानसे हे देव ! प्रकाश होता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार दूर होता है ॥ १२ ॥ हे देव ! सब प्रकारसे

नारद उवाच ॥ देवदेव महादेव पुराण पुरुषोत्तम ॥ जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण ॥ ९ ॥ जगतस्तत्त्वमाप्तुं यत्तन्मे वद यथेप्सितम् ॥ जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम् ॥१०॥ कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः ॥ केन ज्ञातेन मायैषा मोहभूर्नाशमाप्नुयात् ॥११॥ कयाऽर्चया किंजपेन किंध्यानेनात्महृत्कजे ॥ प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा ॥ १२ ॥ एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ यथा लोकस्तरेदंधतमसं त्वंजसैव हि ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवर्षिणा पृष्टः प्राचीनो मुनिसत्तमः ॥ नारायणो महायोगी प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥१४॥ नारायण उवाच ॥ शृणु देवर्षिवर्यात्र जगतस्तत्त्वमुत्तमम् ॥ येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे ॥ १५ ॥ जगतस्तत्त्वमित्येव देवी प्रोक्ता मयाऽपि हि ॥ ऋषिभिर्देवगंधर्वैरन्यैश्चापि मनीषिभिः ॥ १६ ॥ सा जगत्सृजते देवी तया च प्रतिपाल्यते ॥ तया च नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात् ॥ १७ ॥

इस प्रश्नका उत्तर दीजिये, जिस प्रकार यह लोक अन्धकारमें निमग्न हुआ तरजाय ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले जब इस प्रकारसे देवर्षि नारदजीने प्रश्न किया तब महायोगी नारायण प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ १४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो जिसप्रकार यह जगत्का तत्त्व है जिसके जाननेसे यह जन्तु जगत्के भ्रममें नहीं पडता ॥ १५ ॥ देवीने मुझसे जगत्का तत्त्व वर्णन किया है, ऋषि, गन्धर्व, देवता और दूसरे मनीषियोंनेभी वर्णन किया है ॥ १६ ॥ वह देवी जगत्को प्रगट कर पालन करती है और त्रिगुणके द्वारा वही जगत्का नाश

करतीहै,उस सिद्ध और ऋषियोंसे पूजित देवीके स्वरूपको वर्णन करता हूं जो स्मरण करते ही सब पापको दूर करती है और काम तथा मोक्षकी देनेवाली है ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र स्वायंभुव मनु हुए और शतरूपा उनकी स्त्री थी, यह मन्वन्तराधिप हैं ॥ १९ ॥ वह मनु अपने देवरूप पापरहित पिताजीकी परमभक्तिसे उपासना करने लगे तब उन ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ २० ॥ हे पुत्र ! तुम देवीका श्रेष्ठ आराधन करो हे पुत्र ! उसीके प्रसादसे यह तुम्हारी प्रजासृष्टि सिद्ध होगी ॥ २१ ॥

तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः सिद्धर्षिपूजितम् ॥ स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं तथा ॥१८॥ मनुः स्वायंभुवस्त्वाद्यः पद्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वंतराधिपः ॥ १९ ॥ स मनुः पितरं देवं प्रजापतिमकल्मषम् ॥ भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम् ॥ २० ॥ पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम् ॥ तत्प्रसादेन ते तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्तः प्रजास्रष्टा मनुः स्वायंभुवो विराट्॥जगद्योनिं तदा देवीं तपसाऽतर्पयद्विभुः ॥ २२ ॥ तुष्टाव देवीं देवेशीं समाहितमतिः किल ॥ आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम् ॥ २३ ॥ मनुरुवाच ॥ नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे ॥ शंखचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते ॥ २४ ॥ वेदमूर्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि ॥ वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे ॥ २५ ॥ माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये ॥ महादेवप्रियावासे महादेवप्रियंकरि ॥ २६ ॥

जब स्वायंभुवमनुसे इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा तब वह तपसे जगत्की योनिरूप देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ २२ ॥ सावधान मनसे देवीको सन्तुष्ट करने लगे जो आदिमाया सर्वशक्ति और सब कारणोंका कारण है ॥ २३ ॥ मनु बोले हे जगत्की कारणस्वरूप देवी ! आपको प्रणाम है तुम शंख, चक्र, गदा हाथमें लिये नारायणके हृदयमें स्थित हो ॥ २४ ॥ वेदकी मूर्ति जगत्की माता सब कारणोंकी कारण स्थानकी रूपवाली तीन वेदके प्रमाणकी ज्ञाता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त कल्याणस्वरूप ॥ २५ ॥ हे महेश्वरि !

हे महामाये ! हे महोदये ! महादेवकी प्रिया सर्वनिवास महादेवकी प्रिय करनेवाली ॥ २६ ॥ गोपेन्द्रकी प्रिया ज्येष्ठा महानंदा और महोत्सवस्वरूप महामारीके भय हरनेवाली देवादिसे पूजित तुमको प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे संपूर्ण मंगलोंकी मंगल ! हे शिवे ! हे सर्वार्थ साधक ! हे शरणागतवत्सले ! गौरीनारायणी आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ जिसके द्वारा यह विश्व ओत प्रोत हो रहा है चैतन्यस्वरूप एक आद्यंतरहित तेजोंकी निधि ॥ २९ ॥ ब्रह्मा जिसके ईक्षणसे सब करता है जिसके अनुग्रहसे विष्णु पालते और शिव संहार

गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानंदे महोत्सवे ॥ महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते ॥२७॥ सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२८॥ यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा ॥ चैतन्यमेवमाद्यंतरहितं तेजसां निधिम् ॥२९॥ ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा ॥ पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मधुकैटभसंभूत भयार्तः पद्मसंभवः ॥ यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवांबुधेः ॥३१॥ त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कांतिः कमला गिरिजा सती ॥ दाक्षायणी वेदगर्भा बुद्धिदात्री सदाऽभया ॥ ३२ ॥ स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च ॥ ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरंदरः ॥ त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसांपतिरुत्तमः ॥३४॥ कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट् ॥ नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः ॥ ३५ ॥

करते हैं ॥ ३० ॥ जब मधुकैटभके भयसे ब्रह्माजी घबराये जिसकी स्तुतिसे घोर दैत्यभय छूट गया ॥ ३१ ॥ तुमही कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिको देनेवाली, सदा निर्भयरूप ॥ ३२ ॥ मैं तुम्हारी स्तुति करता नमस्कार करता पूजन और जप करता हूं हे देवि ! मैं, तुम्हारा ध्यान, ईक्षण और श्रवण करता हूं तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा वेदके निधि, विष्णु लक्ष्मीके आवास, इन्द्र तीन लोकका अधिपति, पाशधारी वरुण उत्तम जलोंके पति ॥ ३४ ॥ कुबेर निधिनाथ और यमराज प्रेतराट् हुए

हैं निर्ऋति राक्षसोंके अधिपति चन्द्रमा जलोंके स्वामी हुए ॥ ३५ ॥ हे देवेशि ! यह सब आपकी ही कृपासे हुए, हे त्रिलोकवंद्ये ! हे लोकेशि ! हे महामंगल स्वरूपिणि ! आपको प्रणाम है. हे जगन्माता ! फिर भी वारंवार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नारायण बोले जब दुर्गा नारायणी परादेवीकी इस प्रकार स्तुति करी. हे देवर्षे ! तब भगवती प्रसन्न हो ब्रह्मपुत्रसे यह बोली ॥ ३७ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजेन्द्र ! ब्रह्मपुत्र जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तुम्हारी स्तुति भक्तिपूर्वक आराधन और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूं ॥ ३८ ॥ मनु बोले हे करुणामयी ! यदि

त्रिलोकवंद्यो लोकेशि महामांगल्यरूपिणि ॥ नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः ॥ ३६ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा ॥ प्रसन्ना प्राह देवर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः ॥ ३७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि ॥ प्रसन्नाऽहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च ॥३८॥ मनुरुवाच॥यदि देवि प्रसन्नाऽसि भक्त्या कारुणिकोत्तमे॥तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाऽऽज्ञया ॥३९॥श्रीदेव्युवाच॥ प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः किल॥निर्विघ्नेन च राजेन्द्र वृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥४०॥ यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा ॥ तेषां विद्याप्रजासिद्धिः कीर्तिः कांत्युदयः खलु ॥४१॥ जायंते धनधान्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम् ॥ सर्वत्र विजयो राजन्सुखं शत्रुपरिक्षयः ॥ ४२ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरान्देवी मनवे ब्रह्मसूनवे ॥ अंतर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः ॥ ४३ ॥

आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, तो आपकी आज्ञासे यह सृष्टि निर्विघ्न पूरी हो जाय ॥ ३९ ॥ श्री देवी बोली मेरे अनुग्रहसे प्रजासर्ग कर सकोगे. हे राजेन्द्र ! दिन दिन वृद्धि होगी कोई विघ्न भी न होगा और जो कोई तुम्हारे किये इस स्तोत्रको मेरी भक्तिसे कहैंगे उनको विद्या और प्रजाकी सिद्धि तथा कान्तिका उदय होगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ जो शक्तिसे हत नहीं है उसको धनधान्यकी प्राप्ति होती है हे राजन् ! उसको सर्वत्र जय सुख होकर शत्रुका क्षय होता है ॥ ४२ ॥ नारायण बोले इस प्रकार ब्रह्मपुत्र मनुको वरदान देकर भगवती उसके

देखते २ अन्तर्धान होगई ॥ ४३ ॥ तब प्रतापवान् ब्रह्मपुत्र राजा वरको प्राप्त हो ब्रह्मासे कहने लगे हे तात ! मुझे स्थान दो ॥ ४४ ॥ जहां स्थित होकर मैं श्रेष्ठ प्रजाकी रचना कर सकूं तथा यज्ञानुष्ठानकर मैं देवेशीका पूजन करूंगा आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ ४५ ॥ यह पुत्रके वचन सुन प्रजापति विभु विचारने लगे कि, यह कार्य कैसे होगा ॥ ४६ ॥ सृजन करते २ मुझे बहुत समय बीत गया और जलकी धाराओंमें मग्न हो सब भूमि नीचे जाती है ॥ ४७ ॥ इस मेरे चिन्तित कार्यको आदि पुरुष भगवान् सम्पादनकर हमारी सहायता करेंगे

अथ लब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः ॥४४॥ यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्रक्ष्यामि पुष्कलाः ॥ यक्ष्यामि यज्ञैर्देवेशं तत्समादिश मा चिरम्॥४५॥इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ चिंतयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम् ॥४६॥ सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनंतसंख्यकः ॥ धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताऽखिलाश्रया ॥ ४७ ॥ इदं मच्चिंतितं कार्यं भगवानादिपूरुषः॥करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽहमाश्रितः॥४८॥इति श्री०दे०भा० महापुराणे अष्टमस्कंधे भुवनकोशो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ नारायण उवाच ॥ एवं मीमांसतस्तस्य पद्मयोनेः परंतप ॥ मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समंततः ॥१॥ ध्यायतस्तस्य नासाग्राद्विरिंचेः सहसाऽनघ ॥ वराहपोतो निरगादेकांगुलप्रमाणतः ॥ २ ॥ तस्यैव पश्यतः खस्थः क्षणेन किल नारद ॥ करिमात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत् ॥ ३ ॥ मरीचिमुख्यैर्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद ॥ तद्दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः ॥ ४ ॥

जिसके आदेशसे मैं स्थित हूं ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारायण बोले हे परंतप ! इस प्रकार उन ब्रह्माजीके विचार करनेपर मनु आदि मुनिश्रेष्ठ और मरीचि आदि ऋषियोंने सब ओरसे विचार किया ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके ध्यान करते ही उनके नासारन्ध्रसे एक अंगुल प्रमाणका एक वराह बालक प्रगट हुआ ॥ २ ॥ हे नारद ! वह उनके देखते २ आकाशमें स्थित हुआ क्षणमात्रमें ही हाथीके समान बढ गया यह अद्भुत बात हुई ॥ ३ ॥ हे नारद ! मरीचिको आदि ले ब्राह्मण श्रेष्ठ सन

कादि तथा ब्रह्माजी उस सूकरको देख विचारने लगे ॥ ४ ॥ यह सूकर देहके उपालंभमें कौन अद्भुत जीव है, यह कोई दिव्य वस्तु अति आश्चर्य दायक मेरी नासिकासे निगत हुआ है ॥ ५ ॥ देखनेमें प्रथम तो यह अंगुष्ठ शिरके समान था क्षणमें ही पर्वतराजके समान होगया अहो यह भगवान् हैं वा यज्ञ है जो मेरा मन सन्देहमें डालकर चंचल कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परमात्मा ब्रह्माके इस प्रकार तर्कना करनेसे पर्वततुल्य भगवान् गर्जना करने लगे ॥ ७ ॥ तब संहत हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्माजी प्रसन्न करने लगे वह अपनी गर्जनाओंसे दिशाओंको शब्दायमान करने लगे

किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम् ॥ अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम् ॥ ५ ॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः ॥ आहोस्विद्भगवान्कि वा यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ ६ ॥ इति तर्कयतस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ वराह रूपो भगवाञ्जगर्जाचलसन्निभः ॥ ७ ॥ विरिंचिं हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रांतमनुनादयन् ॥ ८ ॥ ते निशम्य स्वखेदस्य शयिष्णुं घुर्घुरस्वनम् ॥ जनस्तपःसत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः ॥ ९ ॥ छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः ॥ वचोभिः पुरुषं त्वाद्यं द्विजेन्द्राः पर्यवाकिरन् ॥१०॥ तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान्हरिरीश्वरः॥ कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाऽप आविशत् ॥ ११ ॥ तस्यांतर्विशतः क्रूरसटाघातप्रपीडितः ॥ समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणातिग्न् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरिरीश्वरः ॥ विदारयञ्जलचराञ्जगामांतर्जले विभुः ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ वे अपने खेदका नाशक घुर घुर शब्द सुनकर तप सत्य जनलोक निवासी श्रेष्ठ देवता ॥ ९ ॥ ऋक्साम अथर्वके छन्दोमय स्तोत्र तथा पुरुषसूक्तके वचनोंसे ब्राह्मण अभिवर्षण करने लगे ॥ १० ॥ हरि ईश्वर भगवान् उनके स्तोत्रोंको सुनकर कृपादृष्टिसे उनको देख जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके भीतर प्रवेश करनेसे केशरके आघातसे पीडित हो समुद्र कहने लगा हे शरणागतके दुःख दूर करनेवाले मेरी रक्षा करो ॥१२॥ भगवान् सागरका यह वचन सुनकर जलचरोंको विदीर्ण करते सागरमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥

पृथ्वीके खोजनेको इधर उधर धावमान होने लगे वारंवार सूंघकर ऊपर उठाने योग्य धराको शनैः प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो सब जीवोंके आश्रयवाली भूमि जलके अन्तरमें थी देवदेवेशने उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण किया ॥ १५ ॥ यज्ञेश यज्ञ पुरुष उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण कर पद्मिनीकी उखाडे दिग्गजके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥ उन देवदेवको ब्रह्मा स्वराट् मनु देखकर वसुन्धराधारी देवकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तोंके दुःख नाशक ! हे सब कामफलके दाता ! हे सुराधार ! आपने सत्यलोक तकको

इतस्ततोऽभिधावन्सन्विचिन्वन्पृथिवीं धराम् ॥ आघ्रायाघ्राय सर्वैशो धरामासादयच्छनैः ॥१४॥ अंतर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वाश्रियां तदा ॥ भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम् ॥ १५ ॥ तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः ॥ शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम् ॥१६॥ तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरंचिः समनुः स्वराट् ॥ तुष्टाव वाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरम् ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ जितं ते पुंडरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन ॥ खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद ॥ १८ ॥ इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव ॥ पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतंगजकरोद्धृता ॥ १९ ॥ इदं च ते शरीरं वै शोभते भूमिसंगमात् ॥ उद्धृतांबुजशुंडाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥ २० ॥ नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ दानवानां विनाशाय कृतनानाकृते प्रभो ॥ २१ ॥ अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः ॥ सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते ॥२२॥ त्वयाऽहं च प्रजासर्गे नियुक्तः शक्तिबृंहितः ॥ त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च ॥ २३ ॥

खर्व किया है आपकी जय हो ॥ १८ ॥ हे देव ! यह वसुधा धरणी आपसे शोभा पाती है जैसे मतंगद्वारा उखाडी हुई कमलिनी हो ॥ १९ ॥ यह आपका शरीर भूमिके संगमसे शोभा पाता है जैसे सूंडमें कमल उखाडे हाथीका शरीर शोभित हो ॥ २० ॥ हे सृष्टि संहारकारक ! देवेश ! आपको प्रणाम है हे प्रभो ! आप दानवोंके नाशके निमित्त अनेक शरीर धारण करते हो ॥ २१ ॥ आपको आगे पीछे प्रणाम है, आप सम्पूर्ण देवताओंके आधार बृहद्धाम हो आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ आपनेही शक्तियुक्त हो मुझे प्रजाके

निर्माणमें नियुक्त किया है आपकीही आज्ञासे मैं प्रजाकी सृष्टि करता और बिगाडता हूं ॥ २३ ॥ हे देवेश ! आपकीही सहायतासे पहले देवताओंने अमृत पाया जो यथासमयमें बलानुसार प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ इस त्रिलोकीके साम्राज्यको आपकीही आज्ञासे इन्द्र देवताओंसे पूजितहो ऐश्वर्यके सहित भोगता है ॥ २५ ॥ अग्नि जठरादिके भेदसे पावकताको प्राप्त होकर देवासुर मनुष्योंका पालन करता है ॥ २६ ॥ पितरोंके अधिपति धर्मराज भी सब कर्मोंके द्रष्टा हैं वह भी आपकेही नियोगसे सब कर्मोंके फलदाता हैं ॥२७॥ नैर्ऋत राक्षसोंके अधिपति यक्ष

त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे ॥ सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालं यथाबलम् ॥ २४ ॥ इंद्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवां स्त्वन्निदेशतः ॥ भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः ॥२५॥ वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः ॥ देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यायनं तथा ॥२६॥ धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक् ॥ कर्मणां फलदाताऽसौ त्वन्नियोगादधीश्वरः ॥ २७ ॥ नैर्ऋतो रक्षसामीशो यक्षो विघ्नविनाशनः ॥ सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते ॥ २८ ॥ वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः ॥ त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः ॥२९॥ वायुर्गंधवहः सर्वभूतप्राणनकारणम् ॥ जातस्तव निदेशेन लोकपालो जगद्गुरुः ॥ ३० ॥ कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः त्वदाज्ञांतर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्यभूः ॥ ३१ ॥ ईशानः सर्वरुद्राणामीश्वरांतकरः प्रभुः ॥ जातो लोकेशवंद्योऽसौ सर्वदेवाधिपालकः ॥ ३२ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते जगदीशाय कुर्महे ॥ यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवाः सहस्रशः ॥ ३३

विघ्ननाशक सब प्राणियोंके कर्मसाक्षी आपकेही द्वारा होते हैं ॥ २८ ॥ जलोंके पति वरुण लोकपाल जलाधिप आपकीही आज्ञाबलको प्राप्त हो लोकपालत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ वायु गंध वहन करनेवाला सबका प्राण धारण करनेका कारण वहभी लोकपालक जगत्का गुरु आपकीही आज्ञासे हुआ है ॥ ३० ॥ कुबेर किन्नर और यक्षोंके जीवनका आश्रय आपकीही आज्ञासे सब लोकमें मान्य हुआ है ॥ ३१ ॥ सब रुद्रोंके अधिपति ईश्वर अन्तकारी सब देवोंके पालक हे लोकेश ! आपकीही कारण सबके वन्दनीय हुए हैं ॥३२॥ हे जगदीश्वर ! भगवान्

आपको प्रणाम हैं जिसके अंशभागसे सब देवता हुए हैं ॥ ३३ ॥ । बोले जब इस प्रकार ब्रह्माजीने आदि पुरुष भगवान्‌की स्तुति की तब भगवान्‌ने अपनी लीलाके अवलोकनसे उनपर कृपा की ॥ ३४ ॥ उसी समय महाअसुर हिरण्याक्ष वहां आकर मार्ग रोकने लगा तब भगवानने उसको गदासे ताडन किया ॥ ३५ ॥ भगवान आदिपुरुषका शरीर उसके रुधिरसे आर्द्र होगया और इसप्रकार अपनी दंष्ट्रारूपी एक अंशसे पृथ्वीको उद्धार कर और उस जलके ऊपर ॥ ३६ ॥ स्थापित कर भगवान् अपने स्थानको गये यह भगवान्‌का धरणी उद्धार

नारद उवाच ॥ एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुषः ॥ लीलावलोकमात्रेणाऽप्यनुग्रहमवासृजत् ॥ ३४ ॥ तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम् ॥ रुंधानमध्वनो भीमं गदयाऽताडयद्धरिः ॥ ३५ ॥ तद्रक्तपंकदिग्धांगो भगवानादिपूरुषः ॥ उद्धृत्य धरिणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाऽप्सु ताम् ॥ ३६ ॥ निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः ॥ एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम् ॥ ३७ ॥ शृणुयाद्यः पुमान्यश्च पठेच्चरितमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ नारायण उवाच ॥ महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथास्थाने च नारद ॥ वैकुंठलोकमगमद्ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम् ॥ १ ॥ स्वायंभुव महाबाहो पुत्र तेजस्विनां वर ॥ स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम् ॥ २ ॥ देशकालविभागेन यज्ञेशं पुरुषं यज ॥ उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो ॥ ३ ॥

बड़ा आश्चर्यजनक है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस चरित्रको पढते सुनते हैं वह सब पापसे रहित हो वैष्णवगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण बोले हे नारदजी ! इसप्रकार भगवान् भूमिको यथा स्थानमें स्थापित कर वैकुण्ठमें गये और ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ १ ॥ हे तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ महाभुज ! स्वायम्भुव ! इस पृथ्वीके स्थानमें स्थित होकर प्रजाकी रचना करो ॥ २ ॥ देशकालके विभागसे यज्ञेशपुरुषका यजन करो ऊंचे नीचे पदार्थोंसे जो

कि यज्ञके साधन हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रोक्त वर्ण आश्रमके निबन्धवाले धर्मका आचरण करो, इस क्रमयोगसे प्रजाकी वृद्धि होगी ॥ ४ ॥ गुणपूर्वक कीर्ति द्वारा कांतिमें अपने समान पुत्रोंको उत्पन्न करो जो विद्या विनय सम्पन्न और सदाचारयुक्त हों ॥ ५ ॥ और गुणयशवाली कन्या देकर प्रधान पुरुषेश्वरमें मनको समाधान कर ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनके योगसे भगवान्की परिचर्या करते हुए योगियोंकी इष्टगतिको आप प्राप्त होगे ॥ ७ ॥ पद्मयोनि प्रजापति इस प्रकार अपने मनुपुत्रको समझाकर

धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबंधनम् ॥ एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति ॥ ४ ॥ पुत्रानुत्पाद्य गुणतः कीर्त्या कांत्याऽऽत्मरूपिणः ॥ विद्याविनयसंपन्नान्सदाचारवतां वरान् ॥ ५ ॥ कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः समाहितः ॥ मनः सम्यक्समाधाय प्रधानपुरुषे परे ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनयोगेन भगवत्परिचर्यया ॥ गतिमिष्टां सदा वंद्यां योगिनां गमिता भवान् ॥७॥ इत्याश्वास्य मनुं पुत्रं पद्मयोनिः प्रजापतिः॥ प्रजासर्गे नियम्यामुं स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥८॥ प्रजाः सृजत पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत् ॥ स्वायंभुवः प्रजासर्गमकरोत्पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ कन्यास्तिस्रः प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ आकूतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका ॥ तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी ॥ ११ ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम् ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः ॥ १२ ॥ रुचेः प्रजज्ञे भगवान्यज्ञो नामादिपूरुषः ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात् ॥ १३ ॥

प्रजासर्गमें नियुक्तकर अपने धामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! प्रजाको सृजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा धारण की तब स्वायंभुवमनुने प्रजासर्गकी रचना की ॥ ९ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुपुत्र बड़े प्रतापी हुए और तीन कन्या हुईं उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ आकूती १ देवहूती २ प्रसूती ३ यह तीन कन्या लोकमें विख्यात हुईं ॥ ११ ॥ रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती, दक्षको प्रसूती, दी जिससे यह सब प्रजा हुई है ॥ १२ ॥ रुचिके आदिपुरुष यज्ञनामसे आकूतीमें प्रगट हुए और देवहूतीमें

१ विदित होता है कि इस राजाने अंतरिक्षमें गमन किया और भूमिकी गोदाई जानी।

कपिलदेव कर्दमजीसे प्रगट हुए ॥ १३ ॥ कपिलदेवजी सब लो॰ ॰ख्याचार्यनामसे विख्यात हुए हैं दक्षसे प्रसूतीमें बहुतसी संतान प्रगट हुई ॥ १४ ॥ जिनके संतान देवता और तिर्यक् इत्यादि हुए वे सब लोकविख्यात सर्गके प्रवृत्त करनेवाले हुए ॥ १५ ॥ भगवान् यज्ञने यामनामक देवगणोंसे युक्त होकर एक समय राक्षसोंसे स्वायंभुवमनुकी रक्षा की थी ॥१६॥ महायोगी भगवान् कपिलजी अपने आश्रममें स्थित हुए देवहूतीको सब अविद्याका निवृत्त करनेवाला परमज्ञान ॥ १७ ॥ तथा विशेषकर ध्यान, योग, अध्यात्मज्ञानका निश्चय, सब अज्ञानका नाशक कपिलशास्त्र ॥ १८ ॥ उपदेशकर वह महायोगी पुलहाश्रममें चले गये वह महाशय सांख्यमें निपुण अबतक वहां

सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः ॥ दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे प्रजाः ॥ १४ ॥ यासां संतानसंभूता देवतिर्यङ्नरादयः ॥प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्गप्रवर्तकाः ॥१५॥ यज्ञश्च भगवान्स्वायंभुवमन्वंतरे विभुः॥मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः ॥१६॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्स्वाश्रमे स्थितः ॥ देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम् ॥१७॥ सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ॥ कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम् ॥१८॥ उपदिश्य महायोगी स ययौ पुलहाश्रमम् ॥ अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महाशयः ॥ १९ ॥ यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति ॥ तं वंदे कपिलं योगाचार्यं सर्ववरप्रदम् ॥२०॥ एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णनमुत्तमम् ॥ पठतां शृण्वतां चाऽपि सर्वपापविनाशनम् ॥ २१ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम् ॥ यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात् ॥२२॥द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता ॥ व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनकोशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वर्तमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन योगाचार्य सर्वश्रेष्ठ कपिलदेवजीको प्रणाम करता हूं जो सब वरके देनेवाले हैं॥ २० ॥ यह मनुकन्याका उत्तम वंश वर्णन किया इसके पढने सुननेसे सब पाप नाश होते हैं ॥२१॥ अब मनुपुत्रोंका सुन्दर वंश कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ द्वीप वर्ष, सागर आदिकी व्यवस्था जिसके पुत्रोंने की जिससे व्यवहारकी प्रसिद्धी और सब प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारायण बोले स्वायंभुवमनुका ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत हुआ वह नित्य पिताकी सेवामें तत्पर सत्यधर्मका परायण हुआ ॥ १ ॥ उसने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मती नाम कन्या रूपशीलवान्से विवाह किया ॥ २ ॥ उसमें अपने समान दश पुत्र और एक कन्या ऊर्जस्वतीनाम प्रगट की ॥ ३ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्रके ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि यह दश वह्निनामक हुए ॥ ५ ॥ इन दश पुत्रोंमें तीन विरक्त होगये वे कवि, सवन और महावीरथे ॥ ६ ॥ यह सब आत्मविद्यामें

नारायण उवाच ॥ मनोः स्वायंभुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः ॥ पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥ १ ॥ प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः ॥ बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः ॥ २ ॥ तस्यां पुत्रान्दश गुणरन्वितान्भावितात्मनः ॥ जनयामास कन्यां चोर्जस्वतीं च यवीयसीम् ॥ ३ ॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः ॥ महावीरश्चतुर्थस्तु पंचमो रुक्मशुक्रकः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः ॥ वीतिहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः ॥ ५ ॥ एतेषां दश पुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः ॥ कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः ॥ ६ ॥ आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥ आश्रमे परहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदाः ॥ ७ ॥ अपरस्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे ॥ उत्तमस्ताम सश्चैव रैवत श्चेति विश्रुताः ॥ ८ ॥ मन्वंतराधिपतय एते पुत्रा महौजसः ॥ प्रियव्रतः स राजेंद्रो बुभुजे जगतीमिमाम् ॥ ९ ॥ एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः ॥ यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथमेऽतपत् ॥ १० ॥ भागे द्वितीये तत्रासीदंधकारोदयः किल ॥ एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम् ॥ ११ ॥

निष्णात होनेके कारण ऊर्ध्व रेता हुए और परमहंसनामक आश्रममें आनंदसे निवास करने लगे॥ ७ ॥ दूसरी भार्यामें तीन पुत्र हुए वे उत्तम, तामस, रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ यह प्रतापी पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए, इस प्रकार राजा प्रियव्रत इस भूमिको भोगने लगा ॥९॥ ग्यारह अर्ब वर्षतक बलवान् इंद्रिय होकर राज्य करता रहा जब सूर्य इस पृथ्वीके अर्धगोलकमें तपता है ॥१०॥ तब नीचेके आधे भागमें

अंधकार रहता है राजाने यह व्यतिकर देख मनमें विचार किया ॥ ११ ॥ कि मेरे शासनकालमें पृथ्वीमें अंधकार कैसे रह सकता है मैं अपने योगबलसे इस अंधकारको दूर करूंगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार स्वायंभुवपुत्रने विचारकर सूर्यके समान एक प्रकाशित रथ बनाय सात वार प्रदक्षिणा कर निम्नभागका अंधकार दूर किया ॥ १३ ॥ ऐसी सात प्रदक्षिणा उस रथकी होनेसे जो भूमिमें गर्त हुए वही सात सागरनामसे विख्यात हुए ॥१४॥ और भूमिविभागके कारण वही स्थलभाग सात द्वीप कहाये रथनेमिसे प्रगट हुई परिखाही सात सागर कहाये ॥ १५ ॥

प्रशास्ति मयि भूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम् ॥ एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च ॥ १२ ॥ एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य सः ॥ रथेनादित्यवर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन् ॥ १३ ॥ तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः ॥ पातितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोकहेतवे ॥ १४ ॥ जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः ॥ रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्त सिंधवः ॥ १५ ॥ यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः ॥ जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥ १६ ॥ कुशद्वीपः क्रौंचद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः ॥ तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ॥ १७ ॥ समंततश्चोपक्लृप्तं बहिर्भाग क्रमेण च ॥ क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः ॥ १८ ॥ क्षीरोदो दधिमंडोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः ॥ सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिंधवस्तदा ॥१९॥ प्रथमो जंबुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः ॥ तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥ २० ॥ प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते ॥ जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः ॥ २१ ॥

उनके बीचकी भूमि सात द्वीपनामवाली हुई, जंबू, प्लक्ष, शाल्मली ॥ १६ ॥ कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप पुष्करद्वीप हुए इनका परिमाण भी एकसे दूसरेका दूना है ॥ १७ ॥ और इनके चारों ओर क्रमसे खारीजल, इक्षुरस, सुरोद, घृतरूपजल, ॥१८॥ क्षीरोद, दधि, मंदोद, शुद्धोद, यह सात सागर पृथ्वीमें विख्यात हैं यह जलोंके भेदहैं इन्हीं सातों सागरोंसे यह सातों वस्तु गो इक्षुआदिद्वारा प्रगट होती हैं ॥ १९ ॥ पहला जंबूद्वीप क्षारसमुद्रसे वेष्टित है, उसका राज्य राजाने आग्नीध्रपुत्रको दिया ॥ २० ॥ इक्षुरससे वेष्टित प्लक्षद्वीपका अधिपति इध्मजिह्वको

किया ॥ २१ ॥ सुरोदसे वेष्टित शाल्मलीद्वीपका अधिपति यज्ञबाहुको किया ॥ २२ ॥ घृतोदसे वेष्टित मनोहर कुशद्वीपका अधिपति रुक्मशुक्रको किया ॥ २३ ॥ क्षीरोदसे वेष्टित पांचवें क्रौंचद्वीपका अधिपति प्रियव्रतने महाबली घृतपृष्ठको किया ॥ २४ ॥ दधिमंडसे वेष्टित मनोहर शाकद्वीपका अधिपति राजाने सुपुत्र मेधातिथिको किया ॥ २५ ॥ शुद्ध जलसे पूर्ण पुष्करद्वीपका अधिपति राजाने वीतिहोत्रको किया ॥ २६ ॥ ऊर्जस्वतीनामक कन्या उशनाको व्याहदी उससे देवयानी कन्या प्रगट हुई ॥ २७ ॥ इस प्रकार प्रियव्रतने सात

शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते ॥ यज्ञबाहुं तदधिपं करोति स्म प्रियव्रतः ॥२२॥ कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते ॥ हिरण्यरेता राजाऽभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥ २३ ॥ क्रौंचद्वीपे पंचमे तु क्षीरोदपरिसंप्लुते ॥ प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः ॥२४॥ शाकद्वीपे चारुतरे दधिमंडोदसंकुले ॥ मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः ॥ २५ ॥ पुष्करद्वीपके शुद्धोदकसिंधुसमाकुले ॥ वीतिहोत्रो बभूवासौ राजा जनकसंमतः ॥ २६ ॥ कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः ॥ आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता ॥ २७ ॥ एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान्प्रियव्रतः ॥ विवेकवशगो भूत्वा योगमार्गाश्रितोऽभवत् ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनकोशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः ॥ भूमंडलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम् ॥ १ ॥ समासात्संप्रवक्ष्यामि नालं विस्तरतः क्वचित् ॥ जंबुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः ॥२॥ विशालो वर्तुलाकारो यथाऽब्जस्य च कर्णिका ॥ नव वर्षाणि यस्मिंश्च नवसाहस्रयोजनैः॥३॥

द्वीपोंको विभाग करके पुत्रोंको दे ज्ञानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त योगमार्गका आश्रय लिया ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्री नारायण बोले हे नारदजी द्वीपवर्षके भेदसे इस सब भूमण्डलका विस्तार सुनो ॥ १ ॥ जो संक्षेपसे कहता हूं विस्तारसे नहीं यह जम्बूद्वीप प्रमाणमें लाख योजन है ॥ २ ॥ यह विशाल गोलाकार कमलकर्णिकाके समान

है जिसमें नव सहस्र योजनमें नौ वर्ष हैं ॥ ३ ॥ इतनेही चौडे पर्वतोंसे घिरा हुआ है अर्थात् एक २ वर्षका नौ सहस्रयोजनमें विस्तार है, आठ मर्यादा पर्वतोंमें विभक्त है ॥ ४ ॥ दक्षिण उत्तरके दो वर्ष धनुषके समान स्थित हैं और चार केवल दीर्घाकार मात्र हैं इस सबके मध्य इलावृत है ॥ ५ ॥ इलावृत मध्यवर्ती नाभिरूपसे प्रतिष्ठित है इसमें मेरु सुवर्णका पर्वत लाख योजनका ऊंचा है ॥ ६ ॥ यह भूगोल कमलकी कर्णिकारूप है शिखरका बत्तीस सहस्र योजनका विस्तार है ॥ ७ ॥ मूलमें यह पर्वत सोलह सहस्र योजन तक चला गया है, इलावृतके उत्तरमें

आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः ॥ अष्टभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः ॥ ४ ॥ धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥ दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम् ॥ ५ ॥ इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः ॥ सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः ॥ ६ ॥ कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च ॥ मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम् ॥७॥ मूले षोडशसाहस्रस्तावताऽन्तर्गतः क्षितौ ॥ इलावृतस्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृंगवान् ॥ ८ ॥ त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु ॥ रम्यकाख्ये तथावर्षे द्वितीये च हिरण्मये ॥९॥ कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादां व्यंजयंति ते ॥ प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा॥१०॥ द्विसहस्रपृथुतरास्तता एकैकशः क्रमात् ॥ पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः ॥ ११ ॥ दैर्घ्य एव ह्रसंतीमे नाना नदनदीयुताः ॥ इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः ॥ १२ ॥ त्रयो हिमालयश्चेति प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः ॥ अयुतोत्सेधभाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः ॥ १३ ॥

नील और श्वेत पर्वत शृंगवाला है ॥ ८ ॥ इनमें यह तीन मर्यादापर्वत कहाते हैं रम्यकनामक वर्ष दूसरे हिरण्मयवर्षमें ॥ ९ ॥ तथा तीसरे कुरु वर्षमें यह पर्वत मर्यादा करते हैं यह पूर्वकी ओरसे दीर्घ हुए क्षारसमुद्रतक अवधिवाले हैं ॥ १० ॥ एक तटसे दूसरे तटतक पूर्वसे उत्तरतक दो सहस्र योजनमें वर्तमान हैं इसके एक २ क्रमसे पूर्वसे उत्तर दिग्भागमें दश अंशसे किंचित् मात्र अधिक परिमाणमें दीर्घतासे स्थित है ॥ ११ ॥ इस पर्वतसे कितने नदनदी निकलते हैं इलावृतसे दक्षिणकी ओर निषध हेमकूट ॥ १२ ॥ और हिमालय यह तीन पर्वत

विस्तारको प्राप्तहैं यहदश२ सहस्र योजनके ऊंचे हैं ॥१३॥ इन तीनों वर्षोंकी हरिवर्ष किंपुरुष और भारतवर्ष इन तीन वर्षोंकी मर्यादा होती है इनके विभाग करनेसे यह मर्यादापर्वत कहाते हैं ॥१४॥ इलावृतके पश्चिममें माल्यवान् नाम पर्वतहै पूर्वमें श्रीमान् गंधमादन पर्वतहै ॥१५॥ नीलनिषधपर्वत पर्यन्त यह मर्यादाकारी पर्वत दो सहस्र योजनपर्यन्त विस्तृत हो रहे हैं ॥ १६ ॥ केतुमाल और भद्राश्व वर्षोंकी मर्यादा करते हैं मंदर मेरुमंदर और सुपार्श्व ॥ १७ ॥ तथा कुमुद यह पर्वत मेरुपादरूप कहलाते हैं इनका अयुत १०००० योजनोंका विस्तार है और यह मेरुके चारों ओर

हरिवर्षं किंपुरुषं भारतं च यथातथम् ॥ विभागात्कथयंत्येते मर्यादागिरयस्त्रयः॥१४॥इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नाम पर्वतः ॥ पूर्वेण च ततः श्रीमान्गंधमादनपर्वतः ॥ १५ ॥ आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ द्विसहस्रतः ॥ योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी ॥ १६ ॥ केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ ॥ मंदरश्च तथा मेरुमंदरश्च सुपार्श्वकः ॥ १७ ॥ कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः ॥ योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ १८ ॥ अवष्टंभकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः ॥ एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजंबुनी॥१९॥कदंबन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः स्थिताः॥केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः ॥ २० ॥ तावद्विटपविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः ॥ चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षु सज्जलाः ॥ २१ ॥ यदुपस्पर्शिनो देवा योगैश्वर्याणि विंदते ॥ देवोद्यानानि चत्वारि भवंति ललनासुखाः ॥ २२ ॥

हैं ॥ १८ ॥ अर्थात् मेरुको अवरोध करनेवाले यह सब ओरसे विराजते हैं इनही पर्वतोंपर आम जामुन ॥ १९ ॥ कदम्ब न्यग्रोधनामक चार वृक्ष स्थित हैं यह ग्यारह सौ योजन ऊंचे पर्वतकी ध्वजारूपसे शोभित हैं ॥ २० ॥ इतनाही वृक्षोंका विस्तार है उतनाही इनकी शाखाओंका परिमाण है और शोभित हैं इनमें पयह्रद, मधुह्रद, इक्षुह्रद और अच्छे जलके चार ह्रद हैं ॥ २१ ॥ जिनके स्पर्शमात्रसे देवतायोगैश्वर्यको जानते हैं और यह स्त्रीजनोंको सुखदायक चार देवोद्यान हैं ॥ २२ ॥

नन्दनवन, चित्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र जहां देवता स्त्रीजनोंसे ... होकर ॥२३॥ उपदेवताओंसे अपनी महिमा गवाते प्रसन्न होते हैं और स्वतंत्र होकर यथाकाम यथासुखसे विहार करते हैं ॥ २४ ॥ मन्दरपर्वतके ऊपर स्थित देव आम्रके ऊपरसे जो कि ग्यारहसै योजन ऊंचा है अमृतमय फल टपकते हैं॥२५॥ जो कि पर्वतखण्डके समान स्वादु और मृदु होते हैं उन गिरकर टूटे हुए फलोंके रससे ॥ २६ ॥ जो कि लाल रंगसा रस है उससे अरुणोदा नदी निर्मलजलवाली दैत्यराजसे पूजित वहन करती है ॥ २७ ॥ हे महाराज ! वहां पापहारिणी अरुणाख्या

नंदनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम्॥येषु स्थित्वाऽमरगणा ललनायूथसंयुताः॥२३॥उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः ॥ विहरंति स्वतंत्रास्ते यथाकामं यथासुखम् ॥ २४ ॥ मंदरोत्संगसंस्थस्य देवचूतस्य मस्तकात् ॥ एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभांजि च ॥ २५ ॥ गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च ॥ तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च ॥ २६ ॥ अरुणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवर्तते ॥ नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता ॥ २७ ॥ अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी ॥ पूजयंति च तां देवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ २८ ॥ नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्यभयप्रदाम् ॥ तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजंति ते ॥ २९ ॥ आद्या माया तुलाऽनंता पुष्टिरीश्वरमालिनी ॥ दुष्टनाशकरी कांतिदायिनीति स्मृता भुवि ॥ ३० ॥ अस्याः पूजाप्रभावेण जांबूनदमुदावहत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनलोकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

देवी जो सब कामना देती है उसको सब कोई पूजन करते हैं ॥ २८ ॥ उन पापनाशिनी अभयदायिनीको अनेक प्रकारके उपहार भेंट बलिसे पूजते हैं और उसके कृपावलोकनसे क्षेम और आरोग्य ताको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ वह आद्यामाया अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी है, वह दुष्टोंकी नाशक, कान्तिदायिनी, पृथ्वीमें विख्यात हैं॥३०॥ इन्हींकी पूजाके प्रभावसे जाम्बूनद प्रवाहित होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीनारायण बोले हे नारद ! जो मैंने अरुणोदानामक नदी कही है वह मंदरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्वसे पतित होती है ॥ १ ॥ जिसके प्रेमपूर्वक सेवनसे भवानीकी अनुचरी—सखियें यक्ष गन्धर्वोंकी पत्नियोंके देहसे गंध ले चलनेवाली पवन ॥ २ ॥ दश योजनपर्यंत भूमिको वासित करती है इस प्रकार जम्बूफलोंके ऊंचे देशसे गिरनेके कारण ॥ ३ ॥ वे हाथीके समान बडे फल टूटकर उसके रससे मेरुमंदरसे जम्बूनामक नदी ॥ ४ ॥ भूमिभागमें प्राप्त होकर इलावृतके दक्षिण ओरसे बहती है वहां जम्बूफलके आस्वादसे तुष्ट होनेके कारण देवी

श्रीनारायण उवाच ॥ अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद ॥ मंदरान्निपतंती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत् ॥ १ ॥ यज्जोषणाद्भवान्याश्चाऽनुचरीणां स्त्रियामपि ॥ यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगंधवहोऽनिलः ॥२॥ वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया ॥ एवं जंबूफलानां च तुंगदेशनिपातनात् ॥ ३ ॥ विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जरांगप्रमाणिनाम् ॥ रसेन च नदी जंबूनाम्नी मेर्वाख्यमंदरात् ॥४॥ पतंती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता ॥ देवी जंबूफलास्वादतुष्टा जंब्वादिनी स्मृता ॥५॥ तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम् ॥ पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी ॥ ६ ॥ पावनी पापिनां रोगनाशिनी स्मरतामपि ॥ कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम् ॥७॥ कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता ॥ कठोरविग्रहा धन्या नाकिमान्या गभस्तिनी ॥८॥ एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम् ॥ जंबूनदीरोधसोर्या मृत्तिका तीरवर्तिनी ॥ ९ ॥ जंबूरसेनानुविद्धयमाना वाय्वर्कयोगतः ॥ विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत् ॥ १० ॥

जम्बादिनी कहाती हैं ॥ ५ ॥ यहांके रहनेवाले देव नाग ऋषि राक्षस उसे संपूर्ण प्राणियोंपर दया करने वालीका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ वह पापियोंको पवित्र करनेवाली और स्मरणसेही रोग नाशनेवाली कीर्त्तनसे विघ्न हरती और सदा देवताओंकी माननीया हैं ॥ ७ ॥ वह कोकिलाक्षी कामकला दया और कामसे पूजित कठोर शरीरवाली धन्या देवताओंकी माननीया गर्भस्तनयुक्त ॥ ८ ॥ इन नामोंसे यहांके निवासियोंको सदा भजन करना चाहिये जम्बूनदीके किनारेकी जो मृत्तिका है ॥९॥ वह जामुनके रससे संयुक्त हो

वायु और सूर्यके. संपर्कसे विद्याधर और देवताओंकी स्त्रियोंके अ   प्रकारके भूषणोंका हेतु ॥१०॥ देवनिर्मित जाम्बूनद सुवर्ण कहाता है जिस सोनेकी इच्छा देवताओंकी स्त्रियें करती हैं ॥११॥ मुकुट, मेखला, बाजूबंद आदि बनवाती हैं और सुपार्श्वपर्वतपर स्थित वृक्ष महा कदम्ब कहाता है ॥ १२ ॥ उसके खखोडलसे जो पांच धारा निकलती हैं वे सुपार्श्वपर्वतके शिखरसे पतित होती हैं ॥ १३ ॥ वे पांचों मधुधारा पश्चिम इलावृतमें बहती हैं जहांके भोगी देवताओंके मुखकी गंधको लेकर ॥ १४ ॥ वायु समन्तात् सौ योजन तक सुगन्ध कर देती है वहां भक्तोंकी

जाम्बूनदं सुवर्णं च प्रोक्तं देवविनिर्मितम् ॥ यत्सुवर्णं च विविधा योषिद्भिः कामुकाः सदा ॥ ११ ॥ मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वत॥महाकदंबः संप्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः॥१२॥तस्य कोटरदेशेभ्यः पंच धाराश्च याः स्मृताः ॥ सुपार्श्वगिरि मूर्ध्नीह पतंत्येता भुवं गताः॥१३॥ मधुधाराः पञ्च तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः॥याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत् ॥१४॥ वायुः समंततो गच्छञ्छतयोजनवासनः॥धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी॥१५॥देवपूज्या मनोत्साहा कालरूपा महानना॥ वसते कर्मफलदा कांतारग्रहणेश्वरी॥१६॥करालदेहा कालांगी कामकोटिप्रवातनी ॥ इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी॥१७॥ एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः ॥ तत्स्कंधेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुदमूर्धतः ॥ १८ ॥ पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरादिभिः ॥ शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते ॥ १९ ॥ उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयंति समंततः ॥ मीनाक्षी तत्तले देवी देवासुरनिषेविता ॥ २० ॥

कार्यसाधिका धारेश्वरी महादेवी है ॥ १५ ॥ वह देवताओंसे पूजित महा उत्साहवाली कालरूपा, महामनवाली वनग्रहणकी अधिष्ठात्री कर्मफल दात्री निवास करती है ॥ १६ ॥ वह करालदेहवाली, कालांगी, करोड़ों कामको प्रवृत्त करनेवाली सर्वेश्वरी देवी इन नामोंसे पूजनी चाहिये ॥१७॥ इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर जो शतबलनामक वटवृक्ष है उसकी स्कन्ध शाखासे कुमुदशिखरपर होते हुए नद ॥ १८ ॥ पय, दधि, मधु, घृत, गुड, अन्न, अम्बर, शय्या, आसन आदि आभरणदायक होते हैं बहुत क्या वे सब कामना देनेवाले हैं ॥ १९ ॥ वे सब ओरसे इला

वृतके उत्तरभागको प्लावित करते हैं उसके निकटवर्ती देवता असुरोंसे सेवित मीनाक्षी देवी है ॥ २० ॥ वह नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलअलक संयुक्त, स्वर्गवासी देवताओंको फलदात्री और वरदायिनी है ॥ २१ ॥ अतिशय मान नीया अतिपूज्या मत्तमातंगके समान गमन करनेवाली, मदनकी उन्मादक, मानप्रिया, मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ कामवेगधारिणी, कामपूजिता, कामनादिनी सुन्दर मयूरवत् शोभाकी स्वान कार्तिकेयको गर्भसे प्रगट करनेवाली ॥ २३ ॥ इन नामोंसे मीनाक्षी देवीको प्रणाम करना चाहिये वह ईश्वरसंगिनी जपने और स्मरण करनेवालोंको मान देती

नीलांबरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा ॥ नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा ॥ २१ ॥ अतिमान्याऽतिपूज्या च मत्तमातंगगामिनी ॥ मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ मारवेगधरा मारपूजिता मारमादिनी ॥ मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभूः ॥ २३ ॥ एभिर्नामपदैर्वंद्या देवी सा मीनलोचना ॥ जपतां स्मरतां मानदात्री चेश्वरसंगिनी ॥ २४ ॥ तेषां नदानां पानीयपानानुगतचेतसाम् ॥ प्रजानां न कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम् ॥ २५ ॥ क्लमस्वेदादि दौर्गंध्यं जरामयमृतिभ्रमाः ॥ शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः ॥ २६ ॥ नापदश्चैव जायंते यावज्जीवं सुखं भवेत् ॥ नैरंतर्येण तत्स्या त्सुखं निरतिशायकम् ॥ २७ ॥ तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संनिवेशं च तद्गिरेः ॥ सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक् ॥ २८ ॥ गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेहते ॥ केसरीभूय सर्वेऽपि मेरोमूलविभागके ॥२९॥ परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः कुरंगः कुरगश्चैव कुशुंभोऽथो विकंकतः ॥ ३० ॥

है ॥२४॥ उन नदोंके जलपान करनेवालोंके कभी बालोंमें श्वेतता तथा झाई नहीं पडती॥२५॥ परिश्रमके स्वेदकी दुर्गन्धि जरारोगकी प्राप्ति और भ्रम, शीत, उष्णवातसे विवर्णता मुखपर झाई पडजाना ॥ २६ ॥ यह जीवन पर्यन्त भी नहीं होते हैं, जीवनपर्यन्त सुखी रहते निरन्तर उनको अधिक सुख होता है ॥ २७ ॥ अब इसके आगे कहता हूं कि, उस पर्वतके निकटही सुवर्णमय नामवाले सुमेरुके पृथक् पर्वत हैं ॥ २८ ॥ वे बीस पर्वत कर्णिकाके समान शोभित होते हैं वे मेरुके मूलभागमें केसररूपसे स्थित हैं ॥ २९ ॥ वे चारों ओरसे शोभित हैं

उनके नाम सुनो कुरंग, कुरग, कुशुंभ, विकंकत ॥ ३० ॥ [illegible], शिशक, पतंग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शंख, ॥ ३१ ॥ वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालिंजर और नारद यह वीस पर्वत हैं ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायामष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले सुमेरुपर्वतके पूर्व दो पर्वत अठारहसहस्र योजनपर उत्तरकी ओरको लम्बे दो सहस्र ऊंचे और इतनेही चौड़े हैं ॥ १ ॥ इन पर्वतोंके नाम जठर और देवकूटहैं मेरुके पश्चिमसे दो पर्वत इतनीही दूर इतनेही लम्बे चौडेहैं इसके आगे पवमान है

त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतंगो रुचकस्तथा ॥ निषधश्च शितीवासः कपिलः शंख एव च ॥ ३१ ॥ वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च ॥ नागः कालंजरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः ॥ सहस्रैरायते चोदग्द्विसहस्रपृथूच्चकौ ॥ १ ॥ जठरो देवकूटश्चतावेतौ गिरिवर्यकौ ॥ मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथाऽपरः ॥ २ ॥ पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुंगविस्तरौ ॥ मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकरवीरकौ ॥ ३ ॥ प्रागायतौ पूर्ववृत्तौ महापर्वतराजकौ ॥ एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिशृंगमकरौ गिरी ॥ ४ ॥ एतश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः ॥ सुमेरुः कांचनगिरिः परिभ्राजन्रविर्यथा ॥ ५ ॥ मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पंकजजन्मनः ॥ मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः ॥ ६ ॥ समानचतुरस्रां च शातकौम्भमयीं पुरीम् ॥ वर्णयंति महात्मानः परावरविदो बुधाः ॥ ७ ॥

॥ २ ॥ और परियात्र है इनकाभी पूर्वके समान विस्तार है मेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर पर्वतहैं यह पर्वतराज पूर्वदिशामें दीर्घहो रहे हैं इस प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग और मकरपर्वतहैं ॥३॥४॥ इन आठ श्रेष्ठ पर्वतोंसे यह पर्वत व्याप्त है सुमेरु सुवर्णका पर्वत सूर्यके समान विराजमान होता है ॥ ५ ॥ सुमेरुके शिखरपर ही कमलभव विधाता ब्रह्माकी पुरी है, यह मध्यमें दशसहस्र योजनकी है ॥ ६ ॥ वह समान और चौकोन

सोनेकी पुरी है ऐसा परावरके ज्ञाता महात्मा वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ उस पुरीके निम्नभागमें आठों लोकपालोंकी सुवर्णमयपुरी आठों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ वे सब ढाई सहस्रयोजनके प्रमाणमें हैं ऐसी मेरुपर ब्रह्मपुरीके सहित नौपुरी हैं मनोवती, अमरावती, ॥ ९ ॥ तेजोवती संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया ॥१०॥ यशोवती यह क्रमसे ब्रह्मा, इंद्र, अग्नि आदिकोंकी हैं उसी स्थानमें त्रिविक्रमाव तारधारी भगवान् विष्णुके ॥ ११ ॥ वामपादके नखसे भिन्न होकर हे नारद ! अंडकटाहके ऊर्ध्वभागके रंध्रमध्यसे दिवलोकमें प्रविष्ट होती

तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः ॥ पुर्यः प्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम् ॥ ८ ॥ यथारूपं सार्धनेत्रसहस्रप्रमिताः कृताः ॥ मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती संयमनी यथा कृष्णांगनाऽपरा ॥ श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ॥१०॥ यशोवती च ब्रह्मेंद्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥ तत्रैव यज्ञलिंगस्य विष्णोर्भगवतो विभोः ॥ ११ ॥ वाम पादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद ॥ अंडोर्ध्वभागरंध्रस्य मध्यात्संविशती दिवः ॥१२॥ मूर्धन्यवततारेयं गंगा संविशती विभोः॥ लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला ॥१३॥ इयं च साक्षाद्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता ॥ कालेन महता सा तु युगसाहस्र केण तु ॥ १४ ॥ दिवो मूर्धानमागत्य देवी देवनदीश्वरी ॥ यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥ औत्ता नपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावनः ॥ भगवत्पादयुगलपद्मकोशरजो दधत् ॥ १६ ॥ अद्याप्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः॥ तत्र सप्तर्षयस्तस्य प्रभावज्ञा महाशयाः ॥ १७ ॥

हुई सी ॥ १२ ॥ स्वर्गसे अवतरित होकर गंगा प्रवाहित होती है, जिसका जल सम्पूर्ण लोकोंका पाप हरण करता है ॥ १३ ॥ यह साक्षात् लोकमें भगवत्पदीनामसे विख्यात है वह सहस्रयुग पर्यन्त बडे समय तक ॥ १४ ॥ दिव्य लोकके मूर्धदेशमें आकर वह देवनदियोंकी अधीश्वरी स्थित है जो विष्णुपदनामक त्रिलोकीमें विख्यात स्थान है ॥ १५ ॥ जहां परमपवित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव निवास करते हैं जो भगवान्के चरणारविंदकी रज मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अबतक यह राजर्षि अचलपदवीको प्राप्त हो स्थित हैं वहां उनके

प्रभावके जाननेवाले सप्तऋषि ॥ १७ ॥ सब लोकके हितकी इच्छासे उनकी परिक्रमा करते हैं। यह तपकी आत्यंतिकी सिद्धि देनेवाली है ॥ १८ ॥ यही विचारकर वे महर्षि अपने जटाजूटोंमें नित्य गंगाका आदर करते अर्थात् स्नान करते हैं फिर यह देवी विष्णुपदसे अनेक सहस्र कोटि ॥ १९ ॥ विमानोंसे व्याप्त देवयान मार्गमें अवतरण करती हैं और चन्द्रमंडलको प्लावितकर ब्रह्मभवनमें प्राप्त होती हैं ॥२०॥ हे नारद! ब्रह्मलोकमें वह चार प्रकारके भेदको प्राप्त होती है, और चार नामसे वह देवी चार दिशामें निर्गत

प्रदक्षिणं प्रक्रमंति सर्वलोकहितेप्सवः ॥ आत्यंतिकी सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी ॥ १८ ॥ आद्रियंते च शिरसा जटाजूटो पितेन च ॥ ततो विष्णुपदादेवी नैकसाहस्रकोविभिः ॥ १९ ॥ विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा ॥ चंद्रमंडलमाप्लाव्य पतंती ब्रह्मसद्मनि ॥२०॥ चतुर्धा भिद्यमाना सा ब्रह्मलोके च नारद ॥ चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिप्लुता ॥२१॥ सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत ॥ सीता चालकनंदा च चतुर्भद्रेति नामभिः ॥२२॥ सीता च ब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यः क्षमाभृताम् ॥ केसराभिधनाम्नां च प्रसवंती च स्वर्णदी ॥२३॥ गंधमादनमूर्ध्नीह पतिता पापहारिणी ॥ अंतरेण तु भद्राश्ववर्षं प्राच्यां समागता ॥२४॥ क्षारोदधिं गता सा तु द्युनदी देवपूजिता ॥ ततो माल्यवतः शृंगाद्द्वितीया परिनिर्गता ॥ २५ ॥ ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता ॥ चक्षुर्नाम्नी देवनदी प्रतीच्यां दिश्युपागता ॥ २६ ॥

हुई है ॥ २१ ॥ और सरित्पति सागरमें प्राप्त होती है गंगा, सीता, अलकनन्दा, चतुर्भद्रा यह चारोंके नाम हैं ॥२२॥ सीता ब्रह्मलोकसे होकर पर्वतोंके शिखरोंसे जिनका कि केशर नाम है अर्थात् सुमेरुकर्णिकाके केशरभूत पर्वतोंसे निकलती हुई ॥ २३ ॥ वह पापहारिणी गंधमादन पर्वतके शिखर में पतित होती है और भद्राश्ववर्षके मध्य होती हुई सागरसे मिलती है ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवपूजितद्युलोककी नदी क्षारसमुद्रमें मिलती है और दूसरी माल्यवान्के शृंगसे निकली है ॥ २५ ॥ फिर बडी वेगवती होकर केतुमाल पर्वतसे संगतिको प्राप्त

होती है चक्षुनामवाली देवनदी प्रतीची दिशामें प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ देववंदित वह गंगा समुद्रमें प्राप्त हुई है हे नारद ! उसकी तीसरी धारा बड़ी विख्यात ॥ २७ ॥ पवित्र अलकनंदा ब्रह्मभवनके दक्षिणस्थानसे बही है वह अनेक वनपर्वतकूटोंको उल्लंघन करती प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥ वह पर्वत श्रेष्ठ हेमकूटको प्राप्त होकर वहांसे निर्गत हुई और अतिवेगवती होकर भारतवर्षमें आई ॥ ॥ २९ ॥ यह नदी तीसरी दक्षिण सागरमें मिली है, जिसमें स्नानको जाते हुए मनुष्योंको पदपदमें ॥ ३० ॥ राजसूय और अश्वमेधका फल मिलता है चौथी धारा शृंगवान

सरितां पतिमाविष्टा सा गंगा देववंदिता ॥ ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद ॥ २७ ॥ पुण्या चालकनंदा वै दक्षिणेनाब्जभूपदात् ॥ वनानि गिरिकूटानि समतिक्रम्य चागता ॥ २८ ॥ हेमकूटं गिरिवरं प्राप्ताऽतोऽपीह निर्गता ॥ अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागताऽपरा ॥ २९ ॥ दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया सा सरिद्वरा ॥ यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदेपदे ॥३०॥ राजसूयाश्वमेधादिफलं तु न हि दुर्लभम् ॥ ततश्चतुर्थी धारा तु शृंगवत्पर्वतात्पुनः॥ ३१ ॥ भद्राभिधा संवहन्ती कुरून्संतर्प्य चोत्तरान् ॥ समुद्रं समनुप्राप्ता गंगा त्रैलोक्यपावनी ॥ ३२ ॥ अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षेवर्षेऽपि संति हि ॥ बहुशो मेरुमंदारप्रमुखाश्चैव नारद॥३३॥तत्राऽपि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशंति हि ॥ अन्यानि चाष्ट वर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च ॥ ३४ ॥ स्वर्गिणां पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद॥पुरुषाणां चायुतायुर्वज्रांगा देवसन्निभाः॥३५॥पुरुषा नागसाहस्रैर्दशभिः परिकल्पिताः॥ महासारतसंतुष्टाः कलत्राढ्याः सुखान्विताः ॥ ३६ ॥

पर्वतसे ॥ ३१ ॥ भद्रा नामवाली गिरती हुई उत्तर कुरुओंको तृप्त करती है वह त्रैलोक्यपाविनी गंगा भी समुद्रमें मिली है ॥ ३२ ॥ अन्येक वर्षोंमें और भी अनेक नदी और नद हैं हे नारद ! बहुतसे मेरुपर मन्दार वृक्ष हैं वहां देवता सुख पाते हैं ॥ ३३ ॥ तो भी भारतवर्षको ही कर्मक्षेत्र कहते हैं और आठ वर्ष पृथ्वी सम्बन्धी स्वर्गसुख देते हैं ॥ ३४ ॥ अर्थात् हे नारदजी स्वर्गमें गये हुओंके शेष रहे पुण्यके भोगनेके स्थान हैं वहांके पुरुष अयुत वर्ष जीते वज्रके समान दृढ शरीर और देवताओंके तुल्य होते हैं ॥ ३५ पुरुषोंको दश २ सहस्र हाथियोंका बल

होता है यह महा सुरतसे सन्तुष्ट होनेवाले स्त्री और सुखोंसे युक्त होते हैं ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! यहांकी स्त्रियें विरयुवती हैं एक वर्षकी अल्पआयु रहनेसे गर्भ धारण करनेमें समर्थ होती हैं और वहां निरन्तर त्रेतायुगके समान समय रहता है ॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले उन २ वर्षोंमें देवता पूर्वोक्त स्तोत्रोंसे जपध्यान समाधोसे देवीका पूजन करते हैं ॥ १ ॥ वहां सब ऋतुके फूलोंसे वनराजी शोभाको प्राप्त होती है वहां फल पल्लव निरन्तर शोभाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ उन वनवाले वर्षोंके पर्वतोंके निम्न

एकवर्षोनके चायुष्यात्तगर्भाः स्त्रियोऽपि हि ॥ त्रेतायुगसमः कालो वर्तते सर्वदैव हि ॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ श्रीनारायण उवाच ॥ तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा ॥ पूजयंति महादेवीं जपध्यानसमाधिभिः ॥१॥ सर्वर्तुकुसुमश्रेणीशोभिता वनराजयः ॥ फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरंतरम् ॥ २ ॥ तेषु काननवर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु ॥ गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु ॥३॥ विकचोत्पलमालासु हंससारससंचयैः ॥ विमिश्रितेषु तेष्वेव पक्षिभिः कूजितेषु च ॥ ४ ॥ जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयंति च ॥ सुन्दरीललितभ्रूणां विलासायतनेषु च ॥ ५ ॥ तत्रत्या विहरंत्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह ॥ नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः ॥ ६ ॥ "नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्" ॥ देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते ॥ आत्मव्यूहेनेज्ययाऽसौ सन्निधत्ते समाहितः ॥ ७ ॥

भागमें तथा सब पर्वतोंकी द्रोणीमें जहां कि निर्मल जल है ॥ ३ ॥ कमलोंके समूह खिले हुए हंस सारस बैठे हुए जहां परस्पर मिले हुए पक्षियोंका शब्द हो रहा है ॥४॥ जलक्रीडाके विचित्र विनोदका जहां विहार होता है जहां सुन्दरियोंकी भौंके विलास देखे जाते हैं ॥ ५ ॥ जहांके पुरुष स्वच्छन्द स्त्रियोंसे विहार करते हैं इन नौओं वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् ॥ ६ ॥ "नारायण लोकों पर अनुग्रह करने वाले" सबसे पूजित हुए देवीकी आराधना करते स्थित होते हैं और अपनी मूर्तिके भेदसे लोगोंसे की हुई पूजाके कारण सब वर्षोंमें

निवास करते हैं ॥ ७ ॥ इलावृत्त खण्डमें कमलभवके नेत्रोद्भूत एक रुद्रांशभव देव नित्य निवास करते हैं ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमें और किसीका प्रवेश नहीं होता है भवानीके शापसे वहां पुरुष जाते ही स्त्री हो जाता है ॥ ९ ॥ भवानी नाथके स्त्रियोंके कोटिगण देवेशको वेष्टन किये देव संकर्षणका भजन करते हैं ॥ १० ॥ सब प्राणियोंके हितकी इच्छासे अपने ध्यानयोग द्वारा उस तामसी तुरीया नामक अपनी प्रकृतिमूर्तिको ॥ ११ ॥ एकाग्र मनसे भगवान् ध्यान करते हैं श्रीभगवान् बोले ओं भगवन् ! महापुरुष सर्वगुणोंके संख्याता अनन्त अव्यक्तके निमित्त

इलावृते तु भगवान्पद्मजाक्षिसमुद्भवः ॥ एक एव भवो देवो नित्यं वसति सांगनः ॥८॥ तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च॥भवा न्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री भवति स्फुटम् ॥९॥ भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः ॥ संरुध्यमानो देवेशो देवं संकर्षणं भजन् ॥१०॥ आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूतहितेच्छया ॥ तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः॥११॥ उपधावते चैकाग्रमनसा भगवा नजः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानंतायाव्यक्ताय नम इति ॥ १२ ॥ भजे भजन्या रणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १३ ॥ न यस्य मायागुणकर्मवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नो जितमन्युरंहसा कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१४॥ असदृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीवेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥ १५ ॥

प्रणाम हैं ॥ १२ ॥ भजन करने योग्य शरण देनेवाले, सब ऐश्वर्यादिगुणके परम आश्रय, भक्तोंके निमित्त शरीर प्रगट करनेवाले संसारके नाशक अभक्तोंको संसारमें भावना करनेवाले आपके चरणोंका हम भजन करते हैं ॥ १३ ॥ जिसकी देखनेपर भी मायाके गुणकर्मकी वृत्तिद्वारा अणुमात्र भी दृष्टि लिप्त नहीं होती कारण कि नियमनके निमित्त वह ईक्षण करता है जैसे जितक्रोध हमारी दृष्टि विषयोंमें संयुक्त है पर आप ऐसे नहीं इससे कौन आत्म जयकी इच्छावाला मुमुक्षु उसका आदर न करे ॥ १४ ॥ जो मायासे असदृश विदित होता है जैसे

मधु और सबसे रक्तनेत्र हुआ मतवाला भयंकर विदित होता है जिनके चरण स्पर्शसे धर्षित इन्द्रिय हो नागवधू लज्जासे किसी प्रकार और उपासना करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ १५ ॥ इस जगतकी स्थिति जन्म और संमयका जिनका हेतु कहते हैं और यह इन तीनोंसे विहीन भी है इसीसे ऋषि मन्त्र इनको अनन्त कहते हैं जो कि सहस्र मस्तकके किसी एक देशमें स्थित इस भूमण्डलको सरसोंके समान भी नहीं जानते ॥१६॥ जिनका गुण निमित्तक आदि विग्रह महत्तत्त्व है, वह विज्ञान सत्त्वके आश्रय भगवान् हैं वह चित्तरूप होनेसे सत्त्व प्रधान हैं जिस ब्रह्मसे प्रगट मैं रुद्र अपने त्रिगुणात्मक तेजवाले विभूतिरूप अहंकारसे तामसभूत सर्ग तथा इन्द्रियसमूहको सृजन करता हूं ॥ १७ ॥ यह हम सब जिस

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयम त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमंडलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ १६ ॥ यस्याऽऽद्यआसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संवृतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैंद्रियं सृजे ॥ १७ ॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुंता इव सूत्रयंत्रिताः ॥ महानहंवैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वं यदनुग्रहादिदम् ॥ १८ ॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुरुसर्गमोहितः॥ न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥१९॥ नारायण उवाच ॥ एवं स भगवान्रुद्रो देवं संकर्षणं प्रभुम् ॥ इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः ॥२०॥ तथैव धर्मपुत्रोऽसौ नाम्ना भद्रश्रवा इति ॥ तत्कुलस्याऽपि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः ॥ २१ ॥

महात्माके वंशमें पक्षीके समान सूत्रमें बंधे हैं क्रियासे निरुद्ध हैं अहंकार विकार तामस इन्द्रिय हम जिसके अनुग्रहसे इस जगत्के सृजन करते हैं उसको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ जिसकी निर्माण की हुई कर्मरूप ग्रंथिवाली मायाको यह प्राणी प्रजासर्गमें मोहित हुआ कुछ जानता है परन्तु उसके निस्तारका उपाय नहीं जानता ऐसे विलीन और उदयवाले आपके रूपके निमित्त प्रणाम है ॥ १९ ॥ नारायण बोले इस प्रकार भगवान् रुद्रदेव संकर्षण प्रभुको देवीगणोंके सहित इलावृतमें उपासना करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार यह धर्मपुत्र भद्रश्रवानामसे भद्राश्व

वर्षमें सेवा करते हैं उस कुलके पति पुरुष भी भद्र नामक वर्ष पतिके सेवक हैं ॥ २१ ॥ भद्राश्ववर्षमें वासुदेवकी विख्यात हयग्रीव मूर्ति जो उसी नामसे अंकित है ॥ २२ ॥ पर एकाग्रमनसे समाधिस्थ होकर स्तुति करते उस मूर्तिकी उपासना करते हैं ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस बोले भगवान् धर्मके स्थान विशुद्ध करनेवालेको प्रणाम है अहो भगवान्‌की चेष्टा बडी विचित्र है जो यह मनुष्य मारती हुई मृत्युको देखकर भी नहीं देखता है जो कि पुत्र वा वृद्ध पिताको दग्ध करके उन्हींके धनसे स्वयं जीनेकी इच्छा करता है और तुच्छ विषय सेवन करनेको पापका ही

भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम् ॥ हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदांकिताम् ॥ २२ ॥ परमेण समाध्यन्यवारकेण नियंत्रिताम् ॥ एवमेव च तां मूर्तिं गृणंत उपयांति च ॥२३॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्न सद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥ २४ ॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यंति चाऽध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथापि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ २५ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ २६ ॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतात्रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय ते ॥ २७ ॥

ध्यान करता है ॥ २४ ॥ कविजन इस संसारको नश्वर कहते हैं अध्यात्मवादी विद्वान भी समाधिमें ऐसाही देखते हैं हे अज ! तो भी तुम्हारी मायासे मोहित होते हैं यह आपकी चेष्टा बडी विचित्र है आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥ आप विश्वके उत्पन्न पालन निरोध कर्म करते हो तथापि आवरण रहित होकर अकर्ताही हो ऐसा वेद स्वीकार करता है कारण कि मायासे ही सर्वात्मामें सृष्टि कार्य कारणतासे कही गई है, यथार्थमें तो सबसे व्यतिरिक्त निरुपाधि होनेसे आप निरावरण और अकर्ताही हैं ॥ २६ ॥ जो युगान्तमें असुररूप तमसे तिरस्कृत हुए वेदोंको हयग्रीव

विग्रहवान् होकर रसातलसे लाय याचना करते ब्रह्माजीको देते हुए उस सत्य संकल्पके निमित्त प्रणाम है ॥ २७ ॥ इस प्रकार वे भद्रश्रवस हयग्रीव भगवान्‌की स्तुति करते हैं और उनके गुण वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥ इनके चरित्रको जो पढते सुनते हैं वह पापरूपी केचलीको त्याग देवीके लोकको जाते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले हरि वर्षमें भगवान नृसिंहजी पाप नाशक हैं वह भक्तोंपर कृपाकर योगयुक्त हो निवास करते हैं ॥ १ ॥ उनके उस मनोहर रूपको देखकर महा

एवं स्तुवंति देवेश हयशीर्षं हरिं च ते ॥ भद्रश्रवसनामानो वर्णयंति च तद्गुणान् ॥ २८ ॥ एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ॥ पापकंचुकमुत्सृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः ॥२९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः ॥ वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः ॥ १ ॥ तस्य तद्दयितं रूपं महाभागवतोऽसुरः ॥ पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौतितद्गुणतत्त्ववित्॥२॥ प्रह्लाद उवाच॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा॥ अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः॥ ॐ क्ष्रौं ॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायंतु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥३॥ माऽगारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेंद्रियप्रियः ॥४॥ यत्संगलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽतः श्रुतिभिर्गतोऽगजं को वै न सेवेत मुकुंदविक्रमम् ॥५॥

भक्त प्रह्लादजी उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ प्रह्लाद बोले ओंनमो भगवते यह मंत्र है संसारका मंगलही असुरोंका भी मन निर्मल हो और सब प्राणी परस्पर मिलकर मंगल ध्यान करें मन नारायणमें कल्याण युक्त रमे प्राणियोंकी हमारी मति निष्कामा हो ॥ ३ ॥ धरा पुत्र धन बंधुओंमें हमारा प्रेम न हो यदि हो तो भगवद्भक्तोंमें प्रेम हो जिसकी आत्मा अपनी प्राणवृत्तिसे संतुष्ट है वही सिद्ध होताहै घरमें आसक्ति वाला नहीं ॥ ४ ॥ जिन हरिभक्तोंकी संगतिको प्राप्त होकर असाधारण ऐश्वर्य वाले भगवान्‌के चरित्र कर्णोंमें स्पर्श कर सेवन करनेवाले

पुरुषोंके अन्तर्गत मलको हरण करते हैं और तीर्थ तो वारंवार अवगाहनसे मलको हरण करते हैं ऐसे भगवान्‌को कौन न सेवन करै ॥ ५ ॥ जिसकी भगवानके चरणोंमें अकिंचन भक्ति है उसको सम्पूर्ण गुण और सब देवता सेवन करते हैं जिसकी हरिमें भक्ति नहीं उसको महद्गुण प्राप्त नहीं होते और वह विषय सुखके मनोरथोंमें बाहर धावमान होते हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मच्छी जलके विना जीवित नहीं हो सकती इसी प्रकार भगवान् सब शरीरियोंके जीवन रूप आत्मा हैं उन महान्‌को त्याग न कर जो घरादिमें प्रसक्त होते हैं तो उन दम्पतियोंके महत्त्वकी

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथे नासति धावतो बहिः ॥६॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ॥ ७ ॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम् ॥ ८ ॥ एवं दैत्यपतिः सोऽपि भक्त्याऽनुदिनमीडते ॥ नृहरिं पापमातंगहरिं हृत्पद्मवासिनम् ॥ ९ ॥ केतुमाले च वर्षे हि भगवान्स्मररूपधृक् ॥ आस्ते तद्वर्षनाथानां पूजनीयश्च सर्वदा ॥ १० ॥ एतेनोपासते स्तोत्रजालेन च रमाऽब्धिजा ॥ तद्वर्षनाथा सततं महतां मानदायिका ॥ ११ ॥ रमोवाच ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छंदोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कांताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपांत्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतंत्राः ॥ १२ ॥

समान अकिंचित्कर होता है ॥ ७ ॥ इस कारण रज, राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दीनता; जो आधिका मूल है इसको और गृहरूपी चक्रवालको छोडकर नृसिंहजीका भजन करनेवालेको कहीं भय नहीं है ॥ ८ ॥ इस प्रकार प्रह्लादजी भक्तिसे दिनरात स्तुति करते हैं पापरूपी मातंगको सिंहरूप नृसिंहजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं ॥९॥ केतुमाल वर्षमें भगवान् कामदेवका रूप धारण कियेहैं और उस वर्षके निवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥१०॥ लक्ष्मी इस स्तोत्रसे उनका पूजन करती हैं उस वर्षके निवासियोंको निरन्तर मानदेती हैं ॥११॥ लक्ष्मी कहती

है ओं ह्रीं यह मंत्र है भगवान् हृषीकेश सब गुणविशेषोंसे लक्षित आत्मावाले क्रिया,ज्ञान, संकल्प, अध्यवसायवालोंके अधिपति ग्यारह इंद्रिय पाँच विषय लक्षणयुक्त सोलह कला,वेदोक्त कर्मसे प्राप्त होने योग्य अन्नमय,अमृतमय,सर्वमय, ओजबल, कान्ति कामके हेतुरूप भगवानको सब ओरसे प्रणाम है लोकमें स्त्रियों व्रतोंद्वारा इन्द्रियोंके पति ईश्वर आपको आराधन करके जो अन्यकी इच्छा करती हैं उनके वे पति और अपत्य उनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते कारण कि प्रिय धन और आयुमें वे अस्वतंत्र हैं ॥ १२॥ वही पति है जो स्वयं निर्भय हो और भयातुर जनको सब ओरसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सो ऐसे एक आप ही हैं जो कि आप आत्मलाभसे अधिक और नहीं मानते, अन्याधीनमें सुख नहीं होता और स्वतंत्रोंके अधिक होनेमें मंडलेश्वरके समान परस्पर भय होता है ॥ १३ ॥ जो स्त्री तुम्हारे चरणकमलकी सेवाकी ही इच्छा करती है और फलकी

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वतः समंततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथामिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ १३ ॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं न कामयेत्साऽखिलकामलंपटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन्प्रतप्यते ॥ १४ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐंद्रियेधियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विंदंत्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ १५ ॥ स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वंदितं करांबुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः ॥ १६ ॥

इच्छा नहीं करती वह सब काममें लम्पट न होकर भी सबकामनाको प्राप्त होती है और जो फलान्तर प्राप्तिकी इच्छासे सेवा करती है वह उसको एकही कामना आप देते हो और इससे फलभोगके उपरान्त भग्नयाच्ञा होनेसे फिर भी उनको दुःख होताहै॥ १४॥हे भगवन् ! मेरी प्राप्तिके निमित्त अज,ईश, सुर, असुर, इंद्रिय सुखमें बुद्धि लगाकर तप करते हैं, परन्तु तुम्हारे चरणकी भक्ति किये बिना कोई भी मुझको प्राप्त नहीं होते, कारण कि तुममें मन लगानेके कारण मैं परतंत्र तुम्हारी अनुगामिनी हूं इससे तुम्हारे अनुगामीको देखती हूं अन्यको नहीं ॥ १५ ॥ हे अजित ! सो आपजो अपना हस्तकमल भक्तोंके ऊपर रखते हैं, वही मेरे ऊपर रखिये, वह आपका वंदित हाथ सब कामना देनेवाला होनेसे

सत्पुरुषोंसे स्तुति किया गया है हे वरेण्य मुझको तो आप वक्षस्थलमेंही धारणकरते हैं यह केवल आदर मात्र है परन्तु भक्तोंपर आपकी परम कृपा है आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सकता है ॥१६॥ उस प्रकार लोकबंधुस्वरूपवाले कामकी स्तुति करते हैं और प्रजापति वर्षके अधिपति कामकी सिद्धिके निमित्त इस प्रकार स्तुति करते हैं॥१७॥ रम्यकवर्षमें भगवानकी देवासुरोंसे वंदित मत्स्यमूर्ति है मनुजी उसकी इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥१८॥ मनु बोले सबसे मुख्य सत्वप्रधान प्राण ओजबल सम्पन्न महामत्स्यके निमित्त प्रणाम है जो अन्तर बाहर किसी लोकपालसे

एवं कामं स्तुवंत्येव लोकबंधुस्वरूपिणी ॥ प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये ॥१७॥ रम्यके नाम वर्षे च मूर्तिं भगवतः परम् ॥ मात्स्यां देवासुरैर्वंद्यां मनुः स्तौति निरंतरम् ॥१८॥ मनुरुवाच ॥ ॐ नमो मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः ॥ अंतर्वहिश्चाखिललोकपालैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम्॥१९॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २० ॥ भवान्युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरुक्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः ॥ २१ ॥ एवं स्तौति च देवेशं मनुः पार्थिवसत्तमः ॥ मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारणम् ॥ २२ ॥

भी न देखे जाकर महापराक्रमसे विचरण करते हैं वह आप ईश्वर इस जगत्को वशीभूत करते हुए विधिनिषेधके आलम्बनसे काठकी पुतलीके समान नचाते हैं ॥ १९ ॥ अभिमानरूपी ज्वरको प्राप्त होकर भी लोकपाल जिसको छोडकर अन्य समस्त मिलकर द्विपद, चतुष्पद, सरीसृप, जंगम, स्थावर किसीकी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते॥२०॥प्रलयके जलमें बडे वेगसे विचरते हुए आपने इस पृथ्वी औषधी गुल्मलता बीजके आश्रय भूतको मेरे सहित धारण किया जगत्के प्राणगणात्मा आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २१ ॥ इस प्रकार संशयके निवारण करने

वाले मत्स्यावतारधारी देवेशकी मनुजी स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥ पाप दूर होजानेसे इस प्रकार ध्यानयोगद्वारा भगवानकी परिचर्या करते हुए परम भागवत मनुजी स्थित रहते हैं ॥२३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥श्रीनारायण बोले हिरण्यवर्षमें कूर्मरूपधारी भगवान् योगपति अर्यमासे पूजे जाकर स्थित होते हैं ॥१॥ भगवान् कूर्मरूप संपूर्ण सत्वगुणोंके विशेषणोंसे उपलक्षित जलस्थानवाले सुखके वर्षानेवाले सर्वगत, सबके आधार आपको प्रणाम है जिन्होंने अपना यह दृश्यरूप मायासेही कल्पना किया है

ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः ॥ आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्ट० भुवनकोशवर्णने नवमोऽध्यायः ॥९॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हिरण्मये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक् ॥ आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते ॥ १ ॥ अर्यमोवाच ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्य यथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ २ ॥ जरायुजं स्वेदजमंडजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रं द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते ॥ ४ ॥

यह पृथ्वी आदि भी इन्हींका स्वरूप है, जो बहुतरूपोंसे निरूपित किये जाते हैं अयथार्थ उपलंभनसे जिनके रूपोंकी संख्या नहीं है ऐसे अनिरुक्त प्रपंचवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २ ॥ जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, देवता, ऋषि, पितर चराचर यह द्यौ, आकाश, भूमिमें पर्वत, सरित, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र, इन्द्रिय, सब आपही एक हो ॥ ३ ॥ जिसमें सांख्यादि आचार्योंने विशेश नामरूपादिकी कल्पना की है यह चौवीस तत्त्वादिसंख्य जिस तत्त्वदृष्टिसे अपनी न होती है उस सांख्यसिद्धान्तरूप

आपके निमित्त प्रणाम है॥४॥अर्यमावर्षाधिपोंके सहित इस प्रकार देवेशकी स्तुति करते हैं और सब भूतोंके उत्पादक प्रभुको गानकर भजन करते हैं ॥५॥ उसके उत्तरकुरुओंमें भगवान् यज्ञपुरुष आदिवराह पृथ्वी देवीसे सदा पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ भगवानका पूजन कर उनकी भक्तिसे आर्द्रहृदय होकर दैत्यमर्दन आदिवराहकी भगवती धरणी स्तुति करती है ॥ ७ ॥ भूमि बोली भगवान् मंत्रतत्वसे जानने योग्य यज्ञक्रतुरूप महा यज्ञरूप शरीरवाले महावराह (पृथ्वीके उद्धारक) शुद्धयज्ञके अनुष्ठान करानेवाले तीन युगरूप आपको प्रणाम है [कलिमें यज्ञ च्छिन्न हैं] ॥ ८ ॥

एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः ॥ गीयते चाऽपि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम् ॥ ५ ॥ ततोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ आदिवाराहरूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा ॥ ६ ॥ संपूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्याऽऽर्द्राऽऽर्द्रहृत्कजा ॥ भूमिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम् ॥ ७ ॥ भूरुवाच ॥ ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्राय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ८ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नंति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ९ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांऽगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ११ ॥

विद्वान् और चतुर पुरुष जिसके स्वरूपको देहेन्द्रियादि गुणोंमें लकड़ीमें अग्निके समान विवेक साधनवाले मनसे मथन करते हैं, कर्म और उनके फलसे भी गूढ आपको देखनेकी इच्छावाले ज्ञानसे जानते हैं ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ विषय, इंद्रियव्यापारहेतु—देवता, देह, काल अहंकार इन मायाके गुण अर्थात् कार्यद्वारा जाना जाता हुआ जो आत्मा और विचारपूर्वक यमनियमादिसे निश्चययुक्त बुद्धिवालों द्वारा माया रहित आकृति करनेवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १० ॥ अयस्कान्त मणिसे जैसे लोह घूमता है इसी प्रकार माया अपने गुणोंसे परस्पर

सहचारी कर अपने दर्शनगोचरउपस्थित होकर विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है. इससे आपका कुछभी अभिलाष नहीं है, एकमात्र जीवकेही निमित्त नितान्त अनिच्छाक्रमसे इच्छाका संवेश हुआ है यह आपका आत्मा उस अदृष्टका साक्षीमात्र है आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ युद्धमें निवारण करनेवाले दैत्यको मथन करके जो आदि वराह मुझ भूमिको अपनी ढाढपर रखकर सागरसे निर्गत हुए और हस्तीके समान क्रीडा करते आप उन विभुको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १२ ॥ किंपुरुषवर्षमें सबके अधिपति दशरथपुत्र आदिपुरुष श्रीरामकी सीतासहित महावीरजी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ हनुमानजी कहते हैं उत्तमश्लोक भगवानको प्रणाम है आर्योंके लक्षण और शीलवृत्त सम्पन्न संयत चित्तवाले

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः॥कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुम् ॥ १२ ॥ किंपुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवंतं दाशरथिं च सर्वेशम् ॥ सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपूरुषं स्तौति ॥ १३ ॥ हनुमानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति ॥ आर्यलक्षणशीलव्रताय नमः उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः ॥ साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नम इति॥यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्॥प्रत्यक्प्रशांतं सुधियोपलंभनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ १५ ॥

लोकानुसारकार्यकारीके निमित्त प्रणाम है साधुवादकी कसौटी ब्राह्मण्यदेव महापुरुष महाभागके निमित्त प्रणाम है, जो विशुद्ध अनुभववाले एक अपने तेजसेही सब गुणोंकी जाग्रदादि अवस्थाके तिरस्कार करनेवाले प्रत्यक् शान्त सुबुद्धियोंके जानने योग्य, अनामरूप, अहंकाररहित, वेदान्तके प्रसिद्ध तत्त्व हैं उनकी शरण होता हूं॥१४॥हे विभो ! आपका मनुष्यावतार लोकोंको शिक्षा करनेके निमित्त है केवल राक्षसोंके मारनेके निमित्तही नहीं है नहीं तो अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले आपको सीताके निमित्त विरहव्यसन क्यों करने पडते यही दिखाया है कि स्त्रीसंगका दुःख दुर्नि

यार है ॥१५॥ वह भगवान् वासुदेव आत्मज्ञानियोंके अतिशय सुहृद त्रिलोकीमें किसी वस्तुमें आसक्त नहीं उनको स्त्रीका कश्मल प्राप्त नहीं होता न दुर्वासाके आनेके समय लक्ष्मणको त्यागते [वाल्मीकि उत्तरकाण्ड देखो] ॥१६॥ सत्कुलमें जन्म होना, रूप, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि कर्तव्य यह भगवानके संतोषका कारण नहीं उन्हें केवल भक्ति प्यारी है देखो रामचन्द्रने इन ऊपर गुणोंसे रहित वनवासी वानरादिके साथ सख्यता की ॥ १७ ॥ सुर, असुर, नर, नारी कोई भी हो जो सर्वात्मासे थोडे भजनसे बहुत संतुष्ट होनेवाले मनुजाकार रामका भजन करते

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥१६॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ १७ ॥ सुरोऽसुरो वाऽप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवम् ॥ १८ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं किंपुरुषे वर्षे सत्यसंधं दृढव्रतम् ॥ रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान्वानरोत्तमः ॥ १९ ॥ स्तौति गायति भक्त्या च संपूजयति सर्वशः ॥ य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचंद्रकथानकम् ॥ ॥ २० ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादिजपूरुषः ॥ ॥ तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम् ॥ १ ॥

हैं वे मुक्त होते हैं कारण कि वे सब उत्तरकोसलवासियोंको स्वर्गमें लेगये श्रीनारायण बोले इस प्रकार किंपुरुषवर्षमें सत्यसंध दृढव्रत कमललोचन रामको वानरोत्तम महावीरजी ॥ १८ ॥ १९ ॥ भक्तिपूर्वक स्तुति कर गाते और पूजते हैं जो इस पवित्र रामचन्द्रकी कथा सुनते हैं ॥ २० ॥ वह सब पापसे रहित हो शुद्ध होकर रामके लोकको जाते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीनारायण बोले इस भारत वर्षमें आदिपुरुषरूपसे मैं स्थित रहता हूं और

आप इसप्रकार स्तुति करते हो ॥ १ ॥ नारदजी बोले भगवान शान्तिशीलके स्थान अहंकारहीन अकिंचनोंके धनरूप ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण परमहंस परमगुरु आत्मारामोंके अधिपतिको प्रणाम है सृष्टिके आदिमें जो इस जगत्का कर्ता होकर भी कर्मसे बद्ध नहीं होता देहको प्राप्त होकरभी जो देहकी क्षुधा पिपासासे अभिभूत नहीं होते द्रष्टा होकर भी जिसकी दृष्टि गुणोंसे दूषित नहीं होती ऐसे आसक्त विविक्त, साक्षी आपको प्रणाम है॥२॥ हे योगेश्वर! यह आपके योगकी निपुणता हिरण्यगर्भने कही है अभिमानरूप कलेवर त्यागन करते हुए अन्तमें जिसने आपका उच्चारण कर तुममें मन लगाया वही पार हो गया यही योग है ॥ ३ ॥ जैसे यहांके और परलोकके पदार्थोंके कामलम्पट पुरुष पुत्र दारा और

नारद उवाच ॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरम गुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ २ ॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ॥ यदंतकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ ३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥४॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वं माययाऽहंममतामधोक्षज॥भिंद्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगत्वयि नः स्वभावजम् ॥५॥ एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम् ॥ नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक् ॥ ६ ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तु संति हि ॥ तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षे शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ७ ॥

धनकी चिंतामें लगे रहते हैं और कुत्सित कलेवरकी मृत्युसे नाश होनेकी चिंता करते हैं यदि विद्वान् होकर भी कोई यही चिंता करै तो उसक ज्ञानमें श्रममात्र है ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप अपनेमें स्वाभाविक प्रेमरूपयोग हमको प्रदान कीजिये जिस योगसे हम आपकी मायासे इसी कुकलेवरमें हुए अहंता,ममता,आदि दुर्भेद दुःखोंको नष्ट कर सकैं ॥ ५ ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठ नारदजी सब सारके ज्ञाता अनामय नारायणकी सदा स्तुति करते हैं ॥६॥ इस भारतवर्षमें जो नदी पर्वतही हैं हे राजन् ! उनको कहता हूं सुनो ॥ ७ ॥

मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ॥ ८ ॥ ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाचल, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्षपर्वत ॥ ९ ॥ पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलपर्वत, ॥ १० ॥ गौरमुख, इन्द्रकील, कामगिरि इनके सिवाय और भी बहुतसे पुण्यदायक पर्वत हैं ॥ ११ ॥ इनसे उत्पन्न हुए सैकडों सहस्रों नदी हैं जो अवगाहन, स्नान, दर्शन और कीर्तनसे पवित्र करती हैं ॥ १२ ॥ प्राणियोंके तीनों प्रकारके पाप दूर करती हैं, ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला,

मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकश्चित्रकूटकः ॥ ऋषभः कुटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा ॥ ८ ॥ ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो व्यंकटाद्रिर्महेंद्रकः ॥ वारिधारश्च विंध्यश्च मुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ ९ ॥ पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा ॥ गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलपर्वतः ॥ १० ॥ गौरमुखश्चेंद्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा ॥ एते चान्येऽप्यसंख्याता गिरियो बहुपुण्यदाः ॥११॥ एतदुत्पन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि ॥ १२ ॥ नाशयंति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम् ॥ ताम्रपर्णी चंद्रवशा कृतमाला वटोदका ॥ १३ ॥ वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी ॥ तुंगभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा ॥ १४॥ गोदावरी भीमरथी निर्विंध्या च पयोष्णिका ॥ तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वती च सिंधुश्च अंधशोणौ महानदौ ॥ ऋषिकुल्यात्रिसामा च वेदस्मृतिमहानदी ॥ १६ ॥ कौशिकी यमुना चैव मंदाकिनी दृषद्वती ॥ गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा ॥ १७ ॥

वटोदका, ॥ १३ ॥ वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणा, शर्करावर्तका, ॥ १४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती ॥ १५ ॥ चर्मण्वन्ती, सिंधु, अंध, महानदशोण, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी ॥ १६ ॥ कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती ॥ १७ ॥

सुषोमा, शतद्रु,(सतलज)चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, और विश्वा यह नदीं हैं ॥१८॥इस भारतवर्षमें पुरुष अपने कर्मोंसे जन्म धारण करके सत, रज, तमके कारण क्रमसे शुक्ल, लोहित, कृष्ण अन्तःकरणसे स्वर्ग मनुष्य और नरकके भोगनेवाले होते हैं॥१९॥ सब निवासियोंको अनेक भोग होते हैं और अपने २ वर्णके धर्मानुसार सबकी मोक्ष होती है॥२०॥इस वर्षमें यही एक प्रधान कार्य है कि अनायासही परमेश्वर प्रसादरूप कार्य सिद्धि होती है स्वर्गवासी कहते हैं॥२१॥अहो इन भारतवासियोंने क्या उत्तम कार्य किये हैं जिनपर स्वयं भगवान् विष्णु प्रसन्न

सुषोमा च शतद्रुश्च चंद्रभागा मरुद्वृधा ॥ वितस्ता च असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिताः ॥ १८॥ अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषैः स्वस्वकर्मभिः ॥ शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥ १९ ॥ भवंति विविधा भोगाः सर्वेषां च निवासिनाम् ॥ यथावर्णविधानेनाऽपवर्गो भवति स्फुटम् ॥ २० ॥ एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धितः ॥ वदंति मुनयो वेदवादिनः स्वर्गवासिनः ॥ २१ ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २२ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपंकजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रियोत्सवात् ॥ २३ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥ २४ ॥ न यत्र वैकुंठयथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २५ ॥

हैं जो यह भारतवर्षमें जन्म लेकर मुकुन्दसेवामें हमको स्पृहा करते हैं ॥ २२ ॥ हमारे किये दुष्कर तप, व्रत, दान, जो तुच्छरूप है उसके द्वारा प्राप्त हुए स्वर्ग फलसे क्या है ? जहां नारायणके चरणारविन्दके स्मरणकी स्मृति नहीं है, इन्द्रियोंके भोगने यह स्मरण चोर लिया है ॥ २३ ॥ फिर जन्म देनेवाले कल्पायुवाले स्वर्गस्थानसे क्षणमात्रको भारत भूमिमें प्राप्त होना उत्तम है अर्थात् अल्पायुवाले भारतमें जन्म श्रेष्ठ है, जहां बुद्धिमान् मनुष्य सब कुछ त्यागन कर क्षणमात्रमें हरिके समीपको प्राप्त होना है ॥ २४ ॥ जहां अमृतमयी

नारायणकी कथा नहीं, जहां हरिभक्त साधुओंका समागम नहीं जहां यज्ञेशके यज्ञोंका महोत्सव नहीं ऐसा इन्द्रलोक भी न सेवन करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो प्राणी इस भारतवर्षमें मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान क्रिया द्रव्यसे संपूर्ण हुए मुक्त होनेका यत्न नहीं करते वे फिर भी वनके जीवोंके समान बंधनमें प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिन्होंने श्रद्धापूर्वक कुशामें विभाग कीहुई है विधि मंत्रसे पृथक्२ नाम लेकर दी है 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि कहा है उनके पृथक् इन्द्रादि नामसे आहूत परिपूर्ण हरि स्वयं उनके भागको ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ यह सत्य है कि प्रार्थना करनेपर अर्थकी कामना पूरी करते हैं परन्तु परमार्थ नहीं देते जिससे फिर मांगनेकी इच्छा न रहै, और जो निष्काम

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति बंधनम् ॥ ॥ २६ ॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमंत्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २७ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजताम् निच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २८ ॥ "यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाव्जनाभेः स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्भजतां शं तनोति ॥ १ ॥" नारायण उवाच ॥ एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ प्रवदंति च माहात्म्यं भारतस्य सुशोभनम् ॥२९॥ जंबुद्वीपस्य चाऽष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे॥ हयमार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः ॥३०॥ स्वर्णप्रस्थश्चंद्रशुक्र आवर्तनरमाणकौ ॥ मंदरोपाख्यहरिणः पांचजन्यस्तथैव च ॥ ३१ ॥

होकर भजन करते हैं उनको तो सब इच्छाओंके पूर्ण करनेवाले अपने पादपल्लवको स्वयं देते हैं इससे निष्काम भजन श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ "यदि हमको स्वर्गका सुख शेष है, हमारे इष्टापूर्तका कुछ शोभन है तो हमको अपर जन्ममें अजनाभके चरणोंका स्मरण हो और भारतवर्षमें जन्म होकर शांति मिले" नारायण बोले इस प्रकार स्वर्गके देवता सिद्ध और परम ऋषि भारतवर्षका सुन्दर माहात्म्य कहते हैं ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके समीप आठ और उपद्वीप हैं जिनको घोडा शोधते हुए सगरके पुत्रोंने कल्पित किया था ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक,

मंदर हरिण पांचजन्य ॥ ३१ ॥ सिंहलद्वीप और लंका यह आठ उपद्वीप हैं जम्बूद्वीपका प्रमाण विस्तारपूर्वक कहा ॥३२॥ अब प्लक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन करेंगे ॥ ३३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण बोले जितने प्रमाणका यह जम्बूद्वीप है उतनेही क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ है ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपसे जिस प्रकार मेरु वेष्टित है इसी प्रकार दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे क्षारसमुद्र वेष्टित है॥२॥ जैसे बाहरी परिखा उपवनोंको वेष्टन करतीहैं इसी प्रकार यह है उस प्लक्षद्वीपमें प्लक्षवृक्ष जम्बूद्वीपके जम्बूवृक्षके समान

सिंहलश्चैव लंकेति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम् ॥ जम्बुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जंबुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः ॥ तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः ॥ १ ॥ जंब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च ॥ क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः ॥२॥ यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्ट्यते ॥ प्लक्षाख्यश्च स्वयं जंबुप्रमाणो द्वीपरूपभृत् ॥ ३ ॥ हिरण्मयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः ॥ प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः ॥ ४ ॥ अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः स्वं द्वीपमेव च ॥ विभज्य सप्तवर्षाणि स्वपुत्रेभ्यो ददौ विभुः ॥५॥ स्वयमात्मविदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः ॥ तेनैव चाऽऽत्मयोगेन भगवंतमुपागतः ॥ ६ ॥ शिवं च यवसं भद्रं शांतं क्षेमामृते तथा ॥ अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम् ॥ ७ ॥ तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि ॥ अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभातिका ॥ ८ ॥

प्रमाण युक्त है॥३॥ हिरण्मय कांतिसे स्थित होता है वहां प्रियव्रतका पुत्र इध्मजिह्व निवास करता है ॥ ४ ॥ उसके अधिपति अग्निजिह्वने अपने द्वीपके सात विभाग करके अपने सात पुत्रोंको बाँट दिये ॥ ५ ॥ और स्वय आत्मारामोंकी माननीय योगचर्यामें मग्न हुआ, उसी योगसे भगवान्‌को प्राप्त हुआ ॥६॥ शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय यह सात वर्ष उसके सात पुत्रोंके नामसे हुए ॥७॥ उनमें सात

नदी और सात पर्वत मुख्य हैं अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ॥८॥ ऋतंभरा सत्यंभरा यह नदियें हैं मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ॥९॥ ज्योतिष्मान्, सुपर्ण हिरण्यग्रीव, मेघमाला यह प्लक्षद्वीपके पर्वत हैं ॥१०॥ नदियोंके जलमात्र दर्शन, स्पर्शसे सब पाप और मल वहांकी प्रजाके नष्ट होजाते हैं ॥११॥ हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यांग, यह चार वर्ण प्लक्षद्वीपमें रहते हैं ॥१२॥ मनुष्योंकी आयु सहस्र वर्षकी देखनेमें देवताओंके समान स्वरूपवान स्वर्गद्वार नामक त्रयीविद्याके विधानसे सूर्यका पूजन करते हैं ॥१३॥ कि पुराणपुरुष विष्णुका जो सूर्यरूप है उसकी

ऋतंभरा सत्यंभरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः ॥ मणिकूटो वज्रकूट इंद्रसेनस्तथैव च ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हिरण्यग्रीव एव च ॥ मेघमाल इति ख्याताः प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः ॥ १० ॥ नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ निर्धूताशेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा ॥ ११ ॥ हंसश्चैव पतंगश्च ऊर्ध्वायन इतीत च ॥ सत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके ॥१२॥ सहस्रायुः प्रमाणाश्च विविधोपमदर्शनाः ॥ स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविद्याविधिनार्कं यजंति ते ॥१३॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च च ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि ॥ १४ ॥ प्लक्षादिषु च सर्वेषु पञ्चद्वीपेषु नारद ॥ आयुरिंद्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च ॥ १५ ॥ विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पातिकी सदा ॥ प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरितां पतिः ॥ १६ ॥ प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते ॥ शाल्मलाख्यस्ततो द्वीपश्चास्माद्द्विगुणविस्तरः ॥ १७ ॥

हम शरण होते हैं जो सत्यादि आत्माका अधिष्ठानस्वरूप है उस ब्रह्मबोधक अमृतरूप शुभफल और अशुभफलके प्रेरक हैं उनको सत्यधर्मके अनुष्ठान और प्रेम भक्तिसे ध्यान कर शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नारदजी ! प्लक्षद्वीप तथा दूसरे पांचों द्वीपोंमें आयु, इन्द्रिय, ओज, बल, बुद्धि, प्राण ॥१५॥ सब प्राणियोंका विक्रम स्वाभाविक उत्पन्न होता है. प्लक्षद्वीपके आगे ईखका समुद्र सब ओरसे व्याप्त है ॥ १६ ॥ जो प्लक्षद्वीपको सब ओरसे घेर कर स्थित है इसके आगे शाल्मलीद्वीप विस्तारमें इससे दूना है ॥ १७ ॥

जो अपने समान सुरासागरसे वेष्टित हो रहा है, जहां सेमलका वृक्ष पुक्षके समान है ॥ १८ ॥ वहां महात्मा पक्षिराज गरुडजीका स्थान है उस द्वीपका स्वामी यज्ञबाहु प्रियव्रतका ॥ १९ ॥ पुत्र उसके सात भाग कर अपने सात पुत्रोंको देता हुआ उसके वर्षोंके नाम सुनो ॥ २० ॥ सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन, विज्ञातनाम ॥ २१ ॥ इनमें वर्षोंके मर्यादापर्वत सात और सात ही नदी हैं सरस, शतशृंग, वामदेव, कंदक ॥ २२ ॥ कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम कहते हैं ॥ २३ ॥ अनुमति,

समानेन सुरोदेन सिंधुना परिवेष्टितः ॥ यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षायामः प्रकीर्तितः ॥१८॥ स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः ॥ तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात् ॥ १९ ॥ जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम् ॥ तद्वर्षाणां च नामानि कथितानि निबोधत ॥ २० ॥ सुरोचनं सौमनस्य रमणं देववर्षकम् ॥ पारिभद्रं तथाचाऽप्यायनं विज्ञातनामकम् ॥ २१ ॥ तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः ॥ सरसः शतशृंगश्च वामदेवश्च कंदकः ॥ २२ ॥ कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्रश्रुतिरेव च ॥ एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते ॥ २३ ॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा ॥ रजनी चैव नंदा च राकेति परिकीर्तिताः ॥ २४ ॥ तद्वर्षपुरुषाः सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाह्वयाः ॥ श्रुतधरो वीर्यधरो वसुंधर इषुंधरः ॥ २५ ॥ भगवंतं वेदमयं यजंते सोममीश्वरम् ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ २६ ॥ सर्वासां च प्रजानां च राजा सोमः प्रसीदतु ॥ एवं सुरोदाद्द्विगुणः स्वमानेन प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते ॥ यस्मिन्नास्ते कुशस्तंबो द्वीपाख्याकारणो ज्वलन् ॥ २८ ॥

सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा, राका, कही हैं ॥२४॥ उस वर्षके सब पुरुष चारों वर्णके हैं जो श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर, इषुंधर, कहाते हैं ॥२५॥ जो वेदमय सोममय भगवान् ईश्वरका यजन करते हैं जो अपनी किरण अन्नद्वारा शुक्लकृष्णपक्षोंका विभाग करते हुए देवता पितरोंका विभाग करते हैं॥२६॥ सम्पूर्ण प्रजाओंके अधिपति सोम हमपर प्रसन्न हों इस प्रकार सुरोदसे दूना अपने मानसे प्रतिष्ठित ॥२७॥ घृतसे आवृत

कुशद्वीप प्रकाशित होता है जिसमें इस द्वीपका कारण एक कुशस्तंब प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ और अपने अंकुरोंकी कान्तिसे परम प्रकाशकर्ता स्थित होता है उस द्वीपका पति राजा हिरण्यरेता है ॥ २९ ॥ इससे भी अपने सात पुत्रोंके नामसे इस द्वीपके सात भाग किये वसु, वसुदान, दृढरुचि॥ ३०॥नाभिगुप्त,स्तुत्यव्रत,विविक्त,नामदेवक यह सात हैं और सातही इनमें मर्यादापर्वत हैं॥ ३१॥सात ही नदी हैं अब सुनो ! चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूटक॥ ३२॥देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण यह सात पर्वत कहाते हैं रसकुल्या,मधुकुल्या, मित्रविंदा ॥ ३३॥श्रुतविन्दा,

स्वशष्परोचिषा काष्ठा भासयन्परितिष्ठते ॥ हिरण्यरेतास्तद्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट् ॥ २९ ॥ स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्य स्तद्वीपं सप्तधाऽभजत् ॥ वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः ॥ ३० ॥ नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौ विविक्तनामदेवकौ ॥ तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः ॥ ३१ ॥ नद्यः सप्तैव संतीह तन्नामानि निबोधत ॥ चक्रस्तथा चतुःशृंगः कपिलश्चित्रकूटकः ॥ ३२ ॥ देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा तथैव च ॥ ३३ ॥ श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युन्मंदमालिके ॥ यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते ॥ ३४ ॥ कुशलः कोविदश्चैवाऽप्यभियुक्तस्तथैव च ॥ कुलक श्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥३५॥ जातवेदसरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः ॥ यजंते देववर्याभाः सर्वे सर्वविदो जनाः॥३६॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुपांगानां यज्ञेन पुरुषं यज ॥ ३७ ॥

देवगर्भा, घृतच्युता, मन्दमालिका, यह ७ नदी हैं जिनके जलसे सब कुशद्वीप निवासी प्रसन्न रहते हैं ॥ ३४ ॥ कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्णोंकी संज्ञा है ॥ ३५ ॥ सबका देवतोंके समान रूप है सब कुछ जाननेवाले वे कर्ममें कुशल अग्निरूप देवका यजन करते हैं॥ ३६॥हे हव्यवाट् ! आप साक्षात् परब्रह्मका रूप हो इससे देवतोंके यज्ञसे परमेश्वरको यजन करो यह उन्हींके नाम दिये हैं ॥ ३७ ॥

हे देव ! यह हम सब द्वीपवासी प्रकाश स्वरूप आपका यजन करते हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले हे सम्पूर्ण अर्थके देखनेवाले अवशेष द्वीपोंका भी प्रमाण कहिये जिसके जाननेसे परमानंद प्राप्त हो ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले कुशद्वीपके चारों ओर घृतोदनाम सागर है इसके आगे क्रौंचद्वीप मानमें इससे दूना है ॥ २ ॥ यह क्षीरोद सागरसे व्याप्त है इसीमें क्रौंचनामक पर्वत है अपने नामसे ही इसने यह द्वीप प्रगट किया है ॥ ३ ॥ जिसकी कुक्षि प्रथम कार्ति

एवं यजंते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच॥ शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन ॥ येन विज्ञातमात्रेण परानंदमयो भवेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत् ॥ ततो बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः ॥ २ ॥ क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौंचाद्रिरस्ति च ॥ नामनिर्वर्तकः सोऽयं द्वीपस्य परिवर्तते ॥३॥ योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराभवत् ॥ क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः ॥४॥ घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः ॥ प्रियव्रतात्मजः श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥५॥ स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ ॥ पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन् ॥६॥ स्वयं भगवतस्तस्य शरणं संजगाम ह ॥ आमो मधुरुहश्चैव मेघ पृष्ठः सुधामकः ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वनस्पतिरितीव च ॥ नगा नद्यश्च सप्तैव विख्याता भुवि सर्वतः ॥ ८ ॥ शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः ॥ नंदश्च नंदनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः ॥ ९ ॥

केयकी शक्तिसे विदीर्ण हुई थी, फिर क्षीरोदसे सींचकर वरुणने इनकी रक्षा की थी ॥ ४ ॥ जिसका स्वामी घृतपृष्ठ नाम शोभित होता है यह भी प्रियव्रतका पुत्र सब लोकसे नमस्कृत है ॥ ५ ॥ इससे भी अपने द्वीपको पुत्रोंके नामसे विभाग कर उन सातोंको राज्य दे दिया ॥ ६ ॥ और आप भगवानकी शरणमें हुए आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण, वनस्पति यह सात वर्षोंके नाम हैं इनमें भी सात नदी हैं ॥८॥ शुक्ल, वैवर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र यह पर्वत हैं ॥ ९ ॥

अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला, पवित्रवती यह नदी हैं ॥ १० ॥ इनका पवित्र जल वहांके चारों वर्ण पान करते हैं पुरुष, ऋषभ, द्रविण, देवक ॥ ११ ॥ यह चार वर्णके पुरुष वहां निवास करते हैं वहांके पुरुष जलमय जलोंके पतिको ॥ १२ ॥ पूर्ण भक्तिसे जलकी अंजलीसे यजन करते हैं हे जलो ! तुम ईश्वरलब्धवीर्यरूप हो इससे भूः, भुवः, स्वः, त्रिलोकीको पवित्र करते हो ॥ १३ ॥ वह आप स्पर्श करनेवाले हमारे शरीरोंको पवित्र करो जिससे कि आत्मस्वरूपसे तुम पाप हरनेवाले हो इस प्रकार मन्त्र जपके अन्तमें अनेक स्तुति

अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च ॥ वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवतिका तथा ॥ १० ॥ एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्यं [illegible] ॥ पुरुषऋषभो तद्वद्द्रविणाख्यश्च देवकः ॥ ११ ॥ एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसंति हि ॥ तत्रत्याः पुरुषा आपोमयं [illegible] ॥१२॥ पूर्णेनांजलिना भक्त्या यजंते विविधक्रियाः ॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनंतीर्भूर्भुवः स्वरः ॥ १३ ॥ ता [illegible] स्पृशतामात्मना भुवः ॥ इति मंत्रजपांते च स्तुवंति विविधैः स्तवैः ॥ १४ ॥ एवं परस्तात्क्षीरोदात्प[illegible] ॥ [illegible]लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः ॥ १५ ॥ स्वमानेन च द्वीपोऽयं दधिमंडोदकेन च ॥ शाकद्वीपो [illegible] ॥१६॥ स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारणं स हि नारद ॥ प्रैयव्रतोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति [illegible] ॥ १७ ॥ [illegible] पुत्रनामानि तेषु च ॥ सप्त पुत्रान्निजान्स्थाप्य स्वयं योगगतिं गतः ॥ १८ ॥ पुरोजवो [illegible] पवमानकः ॥ [illegible]को बहुरूपोऽथ विश्वधृक् ॥ १९

[illegible] आगे और क्षीरसागरसे [illegible] लक्ष योजनमें विस्तृत है ॥ १५ ॥ अपने मानसे आगे इस द्वीपके दधिमण्डोदसे [illegible] ॥ १६ ॥ हे नारद ! यह अपने क्षेत्र व्यपदेशके कारण विख्यात है वहां प्रियव्रतका पुत्र मेधा- [illegible] सात भाग कर वहांका राज्य पुत्रोंको दे स्वयं योग गतिको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ पुरोजव, मनः

पूर्वज, पवमानक, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधृक्, यह सात नाम हैं ॥ १९ ॥ मर्यादा पर्वत और नदी भी सातही हैं ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर ॥ २० ॥ सहस्र स्रोतक, देवपाल, महासन, यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम सुनो ॥ २१ ॥अनघा, आयुर्दा, उभय स्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्र श्रुति, ॥ २२ ॥ निजधृति यह सात नदी बडी निर्मल हैं वहांके पुरुष सत्यव्रत, क्रतुव्रत, ॥ २३ ॥ ॥ दानव्रत, अनुव्रत, यह चार वर्णयुक्त हैं प्राणायाम द्वारा भगवान् प्राणवायुको ॥ २४ ॥ रोककर निर्मल हुए परम हरिरूपसे भजन

मर्यादागिरयः सप्त नद्यः सप्तैव कीर्तिताः ॥ ईशान ऊरुशृंगोऽथ बलभद्रः शतकेशरः ॥ २० ॥ सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यंते महाशनः ॥ एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताः सरिन्नामानि सप्त च ॥ २१ ॥ अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च ॥ अपराजिता पंचपदी सहस्रश्रुतिरेव च ॥ २२ ॥ ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्तः नद्यो महोज्ज्वलाः ॥ तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥ २३ ॥ दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः ॥ भगवंतं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुताः ॥ २४ ॥ यजंति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम् ॥ अंतः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५ ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम् ॥ परस्तादधिमंडोदात्ततस्तु बहुविस्तरः ॥२६॥ पुष्करद्वीपनामाऽयं शाकद्वीपद्विसंगुणः ॥ स्वसमानेन स्वादूदकेनाऽयं परिवेष्टितः ॥२७॥ यत्राऽऽस्ते पुष्करः भ्राजदग्निचूडानिभानि च ॥ पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥ २८ ॥ श्रीमद्भगवतश्चे दमासनं परमेष्ठिनः ॥ कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोकसिसृक्षया ॥ २९ ॥

करते हैं जो प्राणियोंके अन्तरमें प्रवेश करके अपनी प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंको धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षा कर जिसके वशीभूत यह सब जगत् है इसके आगे दधिमंडोद बडे विस्तारमें है ॥ २६ ॥ यह पुष्करद्वीप, शाकद्वीपसे प्रमाणमें दूना है अपनी बराबर स्वादूदकसे चारोंओर वेष्टित है ॥ २७ ॥ जहां अग्निके वलयके समान पुष्कर विराजमान है, बडी पवित्र उसकी सुवर्ण पंखरी विस्तृत हुई सहस्रों हैं ॥ २८ ॥ यह श्रीभगवान् परमेष्ठी पुरुषका आसन है सब लोकके रचनेकी इच्छासे लोक गुरुने यहां अपने आसनकी

कल्पना की थी ॥ २९ ॥ इस द्वीपमें एकही पर्वत मानसोत्तर नामक है जो अर्वाचीन और पराचीन वर्षोंकी मर्यादा करता है ॥ ३० ॥ यह लम्बावमें १०००० योजन है जिसकी चारों दिशाओंमें चार पुर हैं ॥ ३१ ॥ यह इन्द्रादि लोकपालोंके हैं जिनके ऊपर होकर सूर्य गमन करते हैं जहां सूर्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते चलते हैं ॥ ३२ ॥ संवत्सरका चक्ररूपसे भ्रमण देवताओंका यहां उत्तरायण दक्षिणायनके भेदसे अहोरात्र होता है इसमें प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र राज्य करता है उसने अपने दो पुत्रोंको ॥ ३३ ॥ दो वर्ष कर वहां स्थापन किया, रमण

तद्द्वीप एक एवाऽयं मानसोत्तरनामकः ॥ अर्वाचीनपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः ॥३०॥ उच्छ्रयायामयोः संख्याऽयुतयोजनसंमिता ॥ यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥ ३१ ॥ इंद्रादिलोकपालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः ॥ मेरुप्रदक्षिणीकुर्वन्भानुः पर्येति यत्र हि ॥ ३२ ॥ संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन् ॥ प्रैयव्रतोऽधिपो वीतहोत्रः स्मात्मजकद्वयम् ॥ ३३ ॥ वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षनामधरं क्रमात् ॥ रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥ ३४ ॥ कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः ॥ तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वरम् ॥ ३५ ॥ सकर्मकेन योगेन यजंति परिशीलिताः ॥ यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंग जनोऽर्चयेत् ॥ ३६ ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततः परस्तादचलोलोकालोकेतिनामकः ॥ अंतराले च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः ॥ १ ॥ यावदस्ति च देवर्षे ह्यंतरं मानसोत्तरात् ॥ सुमेरोस्तावती शुद्धा कांचनी भूमिरस्ति हि ॥ २ ॥

और धातकी यही दो अधिपति हुए ॥ ३४ ॥ अपने पूर्वजोंके समानक्रिय भगवद्भक्तिमें तत्पर इस वर्षके पुरुष ब्रह्मरूप परमेश्वरको ॥ ३५ ॥ शील सम्पन्न हो कर्म योगसे यजन करते हैं इस प्रकार ब्रह्म सालोक्यादि साधनोंके फलरूप उनको खोज करते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसे एकान्त, अद्वैत शान्त भगवान्को प्रणाम है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीनारायण बोले इसके आगे लोकालोक नामक पर्वत है जिन पर्वतोंके अन्तराल मध्यमें ही लोकालोक है ॥ १ ॥ हे देवर्षे ! मानसो

न्तरसे मेरुका जितना अन्तर है उतनीही वहां सुवर्णकी भूमि है यह शुद्धोद सागरके पार है यह एक करोड़ साढे सत्तावन लाख योजन पर्यन्त है बडी मनोरम है ॥ २ ॥ वह दर्पणके समान है देवताओंके सिवाय अन्य कोई वहां नहीं जा सकता जिसमें डाला हुआ पदार्थ सुवर्णही हो जाता है ॥ ३ ॥ हे नारद ! इस कारण वहां प्राणी निवास नहीं करते लोकालोक इस पदकी लोकोंको 'अगम्य' यही व्याख्या है ॥४॥ लोकालोकके अन्तरमेंही अर्थात् मध्यमें सदा इसकी सर्वदा स्थिति है ईश्वरने यह त्रिलोकीके अन्तगामी किया है अर्थात् मर्यादा रूप है॥५॥

दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता ॥ यस्यां पदार्थः प्रहितो न किंचित्प्रत्युदीयते ॥ ३ ॥ अतः सर्वप्राणिसंघरहिता सा च नारद ॥ लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता ॥ ४ ॥ लोकालोकांतरे चास्य वर्तते सर्वदा स्थितिः ॥ ईश्वरेण सलोकानां त्रयाणामंतगः कृतः ॥ ५ ॥ सूर्यादीनां ध्रुवांतानां रश्मयो यद्वशादिह ॥ अर्वाचीनाश्च त्रींल्लोकानातन्वनाः कदाऽपि हि ॥ ६ ॥ पराचीनत्वभाजो हि न भवंति च नारद ॥ तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदयः ॥ ७ ॥ एतावांल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानसक्षणैः ॥ कविभिः स तु पंचाशत्कोटिभिर्गणितस्य च ॥ ८ ॥ भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने ॥ तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना ॥ ९ ॥ निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत ॥ ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः ॥ १० ॥ एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः ॥ तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम् ॥ ११ ॥

सूर्यसे लेकर ध्रुवतककी किरणें जिसके कारण तीन लोकसे बाहर गमन नहीं करती ॥ ६ ॥ हे नारद ! यह परम महान् पर्वतराज इस प्रकार उन्नत और विस्तारयुक्त है, कभी भी रश्मियें इसको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ ७ ॥ यही लोकोंके मानका विन्यास है कविजनोंने इन पर्वतोंके सहित पचास कोटि योजनका विस्तार कहा है ॥ ८ ॥ हे मुने ! भूगोलके चतुर्थांशमें लोकालोक पर्वत है उसकेऊपर चारों ओर परमेष्ठीब्रह्माजीने ॥ ९ ॥ जो दिग्गज निवेशित किये हैं उनके नाम सुनो ऋषभ, पुष्पचूड़, वामन, अपराजित ॥ १० ॥ यह सम्पूर्ण लोककी

स्थितिके कारण हैं इनकी विभूति पराक्रम विशेष हैं ॥ ११ ॥ भगवान् हरि इनका विशुद्ध सत्व बढाते हुए विष्वक्सेनादि आठ सिद्धोंके सहित विराजते हैं ॥ १२ ॥ वह भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अपने आयुधोंसे समान सबलोकोंके कल्याणके निमित्त स्थित हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार इसको अपनी मायासे रचकर सनातन विष्णु एक कल्पतक इसकी रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ जो यह पूर्वमें अन्तर्विस्तार वर्णित हुआ है उससे ही आलोकका परिमाण निर्दिष्ट होता है कारण कि इसके बहिर्भागमें लोकालोक प्रतिष्ठित हैं यह कहा गया है

विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान्हरिः ॥ आस्ते सिद्धचष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः ॥ १२ ॥ निजायुधैः परिवृतो भुजदंडैः समंततः ॥ आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः ॥ १३ ॥ आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः ॥ स्वमायार चितस्यास्य गोपीथायात्मसाधनः ॥ १४ ॥ योऽतर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम् ॥ व्याख्यातं यद्वहिर्लोकालोकाचल इतीरणात् ॥ १५ ॥ ततः परस्ताद्योगेशगतिं शुद्धां वदंति हि ॥ अंडमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदंतरम् ॥ १६ ॥ सूर्यांड गोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पंचविंशतिः ॥ मृतेऽड एष एतस्मिञ्जातो मार्तंडशब्दभाक् ॥ १७ ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिर ण्यांडसमुद्भवः ॥ सूर्येण हि विभज्यंते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ देवतिर्यङ्मनु ष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥१९॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ एतावान्भूमंडलस्य सन्निवेश उदाहृतः ॥ २० ॥ एतेन हि दिवो मानं वर्णयंति च तद्विदः ॥ द्विपलानां च निष्पावादीनां च दलयोर्यथा ॥ २१ ॥

॥ १५ ॥ हे नारद ! इसके ऊपर शुद्ध योगियोंकीही गति है इस द्यावाभूमिके मध्यमें सूर्य गमन करते हैं ॥१६॥ सूर्य अंड और भूमिगोलकका अन्तर [illegible] योजन है [illegible] आत्माके प्रविष्ट होनेसे यह मार्तण्ड कहा जाता है ॥ १७ ॥ हिरण्य अंडसे प्रगट होनेसे यही हिरण्यगर्भ हैं, [illegible] दिशा आकाश द्युलोक और भूमिका भेद होता है ॥ १८ ॥ स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, रसोंके स्थान, देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप, [illegible] ॥ १९ ॥ तथा [illegible] जीवसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही है यह इतना भूमंडलका घेरा कहा ॥ २० ॥ इसीके अनुसार ज्ञाता गण

द्युलोकका मान कहते हैं जैसे दोदलोंमें एकका मान जाननेसे दूसरेका जानाजाता है ॥ २१ ॥ इन दोनोंका जो मध्य है सो परस्पर सँछन्न है इनके मध्यमें तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्य ॥ २२ ॥ अपने आतपसे प्रकाश करते त्रिलोकीको तपाते हैं, पहले उत्तरायणको प्राप्त होकर मंदगति करते हैं ॥२३॥कारण कि यह आरोहणस्थान है इसमें जानेसे दिन बड़ा होता है और दक्षिणायनको प्राप्त होकर शीघ्र गति करते हैं ॥ २४ ॥ यह उतरनेका समय है उतरनेमें दिन छोटा होता है विषुव'तुला मेष' संज्ञाको प्राप्त होकर साम्यगति होती है ॥ २५ ॥ समस्थानको प्राप्त होनेसे

तयोरंत अंतरेण रिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ यन्मध्यगश्च भगवान्भानुर्वै तपतां वरः ॥२२॥ आतपेन त्रिलोकीं च प्रतपत्येव भासयन् ॥ उत्तरायणमासाद्य गतिमांद्यं वितन्वते ॥ २३ ॥ आरोहणस्थानमसौ गत्वाऽहोदैर्घ्यमाचरेत् ॥ दक्षिणायनमासाद्य गतिशैघ्र्यं वितन्वते ॥२४॥ अवरोहस्थानमसौ गच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत् ॥ विषुवत्संज्ञमासाद्य गतिसाम्यं वितन्वते ॥ २५ ॥ समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च ॥ यदा च मेषतुलयोः संचरेद्धि दिवाकरः ॥ २६ ॥ समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयीमयः ॥ वृषादिपंचसु यदा राशिष्वर्को विरोचते ॥ २७ ॥ तदाऽहानि च वर्धंते रात्रयोऽपि ह्रसंति च ॥ वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदा संचरते रविः ॥ २८ ॥ तदाऽपीमान्यहोरात्राणि भवंति विपर्ययात् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दिन बराबर होता है जब मेष और तुलामें सूर्य होते हैं ॥२६॥ तब दिनरात समान होते हैं और वृषादि पंच राशियोंमें जब गमन करते हैं ॥ २७ ॥ तब दिन बढता रात छोटी होती है जब वृश्चिकादिमें गमन करते हैं तब दिन छोटा होकर रात बढती है ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभावगते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारायण बोले अब सूर्यका गमन कहताहूं शीघ्र मंदादि गतिसे सूर्यकातीन प्रकारका गमन है ॥ १ ॥ हे सुरसत्तम ! सब ग्रहोंके तीनही स्थान जारद्गवस्थान मध्यका और ऐरावत उत्तरका है ॥ २ ॥ और वैश्वानर दक्षिणका है अश्विनी, कृत्तिका, भरणी नागवीथी हैं ॥ ३ ॥ रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिर, गजवीथी .पुष्य, आश्लेषा, आदित्या, (पुनर्वसु) ऐरावती वीथी हैं ॥ ४ ॥ इन तीन वीथियोंका उत्तरमार्ग कहा जाता है तथा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा यह आर्षभी वीथी है ॥ ५ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती

श्रीनारायण उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तरम् ॥ शीघ्रमंदादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः॥१॥ सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि सुरसत्तम ॥ स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम्॥२॥वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः॥अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता ॥ ३ ॥ रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्य भिधीयते ॥ पुष्याश्लेषा तथाऽऽदित्या वीथी चैरावती स्मृता ॥४॥ एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते ॥ तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता ॥ ५ ॥ हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता ॥ ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता ॥ ६ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ॥ मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता ॥ ७ ॥ श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक्तथा ॥ वैश्वानरीभाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता ॥ ८ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते ॥ उत्तरायणमासद्य युगाक्षांतर्निबद्धयोः ॥ ९ ॥ कर्षणं पाशयोर्वायुनद्धयो रोहणं स्मृतम् ॥ तदाभ्यंतरगान्मंडलाद्रथस्य गतेर्भवेत् ॥ १० ॥

गोवीथी है, ज्येष्ठा,विशाखा,अनुराधा, जारद्गवी, वीथी है ॥ ६ ॥ इन तीनों वीथियोंका मध्यम मार्ग कहा जाता है. मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अजवीथी है ॥ ७ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगवीथी है, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती वैश्वानरी वीथी है ॥ ८ ॥ यह तीनों वीथियें दक्षिणमार्ग कहाती हैं उत्तरायणको प्राप्त होकर युगाक्षांति पाशसे बंधा है ॥ ९ ॥ वायुके बंधे इन पाशोंका जो आकर्षण

है वह रोहण है इसके अन्तरसे जो रथकी गति होती है ॥ १० ॥ हे सुरसत्तम ! इस कारण मंदगतिसे दिनकी वृद्धि होती है रात्रिकी ह्रास होती है यह चलनेका क्रम है ॥ ११ ॥ जब दक्षिणायन पाश ध्रुवलोकसे प्रेरण करता है तब अवरोहण होनेसे बहिर्मण्डलवेशद्वारा शीघ्र गति होती है ॥ १२ ॥ उस समय दिन छोटा रात्रि बडी होती है विषयमें साम्यपाश रहनेके कारण मध्यमण्डलप्रवेशके कारण ॥ १३ ॥ गतिसाम्य होनेसे दिन रात समान होता है जब वह ध्रुवके समीप खेंचे जाते हैं ॥ १४ ॥ तब अन्तरमें सूर्य मंडलमें भ्रमण करते हैं और जब ध्रुवद्वारा पाशयुगल मुक्त किये जाते हैं ॥ १५ ॥ तब बाहरी भागमें सूर्यमंडलोंमें भ्रमण करते हैं उस मेरुके पूर्वभाग इन्द्रकी पुरी है जो देवधानी

मांद्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम ॥ रात्रिह्रासश्च भवति सौमायनक्रमो ह्ययम् ॥ ११ ॥ दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम् ॥ बहिर्मंडलवेशेन गतिशैघ्र्यं तदा भवेत् ॥ १२ ॥ तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता ॥ वैषुवेपाशसाम्यात्तु समावस्थानतो रवेः ॥१३॥ मध्यमंडलवेशश्च साम्यं रात्रिदिनादिके ॥ आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवे समधिष्ठितौ ॥ १४ ॥ तदाऽभ्यंतरतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेनतु ॥ १५ ॥ तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ तस्मिन्मेरौ पूर्वभागे पुर्यैंद्री देवधानिका ॥ १६ ॥ दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महापुरी ॥ पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी ॥१७॥ तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी ॥ ऐंद्रपुर्यां रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः ॥ १८ ॥ संयमन्यां च मध्याह्नो निम्लोचन्यां विमीलनम् ॥ विभावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः ॥१९॥ प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि सर्वशः ॥ मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तिं तानि मया मुने ॥ २० ॥

कहाती है ॥ ॥ १६ ॥ दक्षिणमें यमकी संयमनी पुरी है पश्चिममें निम्लोची वरुणकी महापुरी है ॥ १७ ॥ उत्तरमें चन्द्रकी विभावरी पुरी है प्रथम इन्द्रपुरीकी ओरसे ब्रह्मवादी सूर्यका उदय कहते हैं ॥१८॥ संयमनी आकर मध्याह्न और निम्लोचीमें आकर अस्त होता है॥१९॥ इनकी प्रवृत्तिसे मेरुके चारों ओरवाले अपना २ उदय कहते हैं जो मेरुके दक्षिणमें हैं वे इंद्रपुरीसे पूर्वादि जो पश्चिममें हैं वे यमपुरीसे जो उत्तरमें हैं वे वरुण पुरीसे आरंभ करके जो पूर्वमें हैं वे चन्द्रपुरीसे आरंभ करके सूर्यद्वारा चारों दिशा मानते हैं ॥ २० ॥

नक्षत्रादिके सन्मुख गतिसे मेरुके वाम ओर करते प्रवह नामक वायुसे भ्रमित होते ज्योतिष चक्रके कारण प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं चक्रगति वशसे अति दूर होनेसे भूमिमें लगाहुआसा दर्शन होना उदय है आकाशमें आरूढ दर्शनही मध्याह्न भूमि प्रविष्ट होनेका दर्शनही अस्त है और बहुत दूर गमनही अर्धरात्रि है यह सब विचार कर स्वर्णपर्वतकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥२१॥ उदय और अस्तमें सब समय सन्मुख होते हैं हे नारद ! और सब दिशाविदिशाओंमें ॥२२॥ जिनको यहां सूर्यका दर्शन होता है वही उनका उदय है और जहां तिरोभाव है वही अस्त है॥२३॥ वास्तविक सूर्यका उदय अस्त नहीं है सदाही उदय है अपने दीखने और न दीखनेको उदयास्त मान लिया है ॥ २४ ॥ शक्रादिके पुरमें स्थित होते

मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि ॥ सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्णपर्वतम् ॥ २१ ॥ उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सम्मुखे ॥ दिशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च ॥ २२ ॥ यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः ॥ तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः ॥ २३ ॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः ॥ उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥ २४ ॥ शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम्॥ विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा ॥ २५ ॥ सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः ॥ यैर्यत्र दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते ॥ २६ ॥ तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः ॥ यदि चैंद्र्याः प्रचलते घटिकादशपंचभिः ॥ २७ ॥

सभी इन्द्र, यम, सोम, तीनों पुरोंको किरणोंसे स्पर्श करते हैं तथा विकर्णमें स्थित हो ईशान कोण और वह्नि कोणको स्पर्श करते हैं और जब दक्षिणमें होते हैं तब त्रिकोण अर्थात् वह्निकोण, निर्ऋतिकोण, ईशान कोण, इन्द्रपुर और यमपुरको स्पर्श करते हैं शेष मेरुसे व्यवधान हुए रहते हैं इसी प्रकार याम्यादि पुरको स्थितिमें जानना ॥२५॥ सब द्वीप और वर्षोंके मेरु उत्तरमें स्थित हैं जो जहां सूर्योदय देखते हैं उसे ही पूर्व कहते हैं ॥ २६ ॥ उसीके वामभागमें मेरु होता है यह निर्णय है जब इन्द्रपुरीसे पन्द्रह घडीमें यमपुरीमें आते हैं ॥ २७ ॥

श्रीनारायण बोले अब चन्द्रादिकी गति श्रवण करो, उनकी गतिसे मनुष्योंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ १ ॥ जैसे कुलालचक्र निरन्तर भ्रमण करता रहै तौ उसके आश्रयसे और कीटादिकी भी वही गति होती है अर्थात् घूमते हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकार उसी कालचक्रकी राशिसमूहद्वारा मेरुकी धुरका अनुसरण करते सर्वदा प्रदक्षिणा करते हुए ॥ ३ ॥ सूर्यादि मुख्य ग्रहोंकी गति अन्यसी ही दीखती है नक्षत्रान्तरमें गमनके कारण इसी भाँति अन्य नक्षत्रोंमें गमन होता है ॥ ४ ॥ यह दोनों गति चक्रवशसे अविरुद्ध हैं सर्वत्र ही यह निर्णय है, यही भगवान् आदि

श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम् ॥ तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना ॥ १ ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह ॥ तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादिनां भवेत् ॥२॥ एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च ॥ मेरुं धुरं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा ॥ ३ ॥ ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्येव दृश्यते ॥ नक्षत्रांतरगामित्वाद्भांतरे गमनं तथा ॥ ४ ॥ गतिद्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः ॥ स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः ॥५॥ नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन् ॥ कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम् ॥ ६ ॥ कविभिश्चैव वेदे न विजिज्ञास्योऽर्कधाऽभवत् ॥ षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसंतादिषु च स्वयम् ॥ ७ ॥ यथोपजोपमृतुजान्गुणान्वै विदधाति च ॥ तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रमाचारपथा तथाऽऽम्नातैश्च कर्मभिः ॥ उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः ॥ ९ ॥ अंजसा च यजंते ये श्रेयो विंदंति ते मतम् ॥ अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यंतरेण च ॥ १० ॥

पुरुषलोकभावन ॥ ५ ॥ नारायण सबके आधार लोकोंकी शुभकामनाके निमित्त भ्रमण करते हैं :यही कर्मशुद्धिके निमित्त त्रयीमय कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ वही अविनाशी कवियों द्वारा अवितर्क होकर सूर्यरूपसे बारह भेदसे कहेजाते हैं, यह स्वयं वसन्तादि षट्ऋतुओंमें ॥ ७ ॥ उनको सेवन करते हुए पूर्तिपूर्वक उनमें गुणस्थापन करते हैं इन्हींको सब पुरुष त्रयीविद्याद्वारा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रम आचारके मार्गसे तथा वेद, उच्चावच कर्मोंद्वारा श्रद्धा और योगसे ॥ ९ ॥ निरन्तर अपने अभीष्टके निमित्त यजन करते और कल्याणको प्राप्तहोते हैं यही लोकोंके

आत्मा द्यावा पृथ्वीके अन्तरमें ॥ १० ॥ कालचक्रको प्राप्त हुए मेषादि बारह राशियोंद्वारा बारह मासोंको भोगते हैं महीने संवत्सरके अवयव हैं महीनेके दो पक्ष हैं दिन॥११॥और रात सौर परिमाणमें सदा दो नक्षत्रोंका भोग होता है इस परिमाणसे छठे अंश अर्थात् दो राशिका भोग होता है इसका नाम ऋतु है ॥ १२ ॥ यह संवत्सरके अवयव कविजनोंने वर्णन किये हैं जब तक सूर्य तीन ऋतुमें आकाश वीथीमें विचरण करते हैं ॥ १३ ॥ उसीको पूर्व पुरुष एक अयन कहते हैं और जब द्यावापृथ्वीक सहित समस्त मंडलमें गमन हो चुकता है ॥ १४ ॥ तो

कालचक्रगतो भुंक्ते मासान्द्वादश राशिभिः ॥ संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा ॥ ११ ॥ नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते ॥ यावता षष्ठमंशं स भुंजीत ऋतुरुच्यते ॥१२ ॥ संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः ॥ यावताऽर्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः ॥१३॥ तं प्राक्तना वर्णयंति अयनं मुनिपूजिताः ॥ अथ यावन्नभोमंडलं सह प्रतिगच्छति ॥१४॥ कात्स्न्येंन सह भुंजीत कालं तं वत्सरं विदुः ॥ संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च ॥ १५ ॥ अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पंचकमीरितम् ॥ भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः ॥ १६ ॥ एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चंद्रादीनां निबोधत ॥ एवं चंद्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्षयोजनमूर्द्ध्वतः ॥ १७ ॥ उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुजि च सः ॥ पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुंक्ते मासभुजि च सः ॥१८॥ सपादमाभ्यां दिवसभुक्ति पक्षभुजि चरेत् ॥ एवं शीघ्रगतिः सोमो भुंक्ते नूनं भचक्रकम् ॥ १९ ॥

सारा ऋतुओंके भोगनेसे उस कालको वर्ष कहते हैं उसके पांच नाम हैं संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर, यह पांच नाम हैं सूर्यकी मंद, शीघ्र, सम गतिसे कालज्ञाताओंने ॥ १५ ॥१६॥ इसप्रकार सूर्यकी गति कही है अब चन्द्रादिकी गति सुनो इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाख योजन दूर है ॥१७॥ और सूर्यके संवत्सर भोगको दो पखवारोंमें भोगते हैं ॥ १८ ॥ सवादो दिन चन्द्रमा एक राशिपर रहते हैं इस प्रकार शीघ्र गतिसे चन्द्रमा नक्षत्रोंको भोगता है । कलाओंसे पूर्ण होते देवताओंको प्रीति धारण करते हैं और क्षीणकला

होनेमें पितरोंका मन रंजन करते हैं ॥१९ ॥२०॥ पूर्व अपर पक्षसे यह दिन रात्रिका विस्तार करते हैं सब जीवधारियोंके जीवनका हेतु है कारण कि, अमृतमय है, ॥२१॥ तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोगता है यही षोडशकलात्मक अनादि उत्तम पुरुष है॥ २२ ॥ मनोमय अन्नमय अमृतके धाम सुधाकर देव, पितर, मनुष्य, सरीसृप, वीरुध ॥ २३ ॥ यह सबके प्राणोंका आयतन है शीलवान होनेसे सर्वमय है इसके आगे तीन लाख योजनमें नक्षत्रचक्र भ्रमण करता है ॥ २४ ॥ यह सब ईश्वरद्वारा नियुक्त हुए मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं यह

पूर्यमाणकलाभिश्चामराणां प्रीतिमावहन् ॥ क्षीयमाणकलाभिश्च पितृणां चित्तरजकः ॥ २० ॥ अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसु घस्त्रकैः ॥ सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हि ॥ २१ ॥ भुंक्ते चैकैकनक्षत्रं मुहूर्तत्रिंशता विभुः ॥ स एव षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तमः ॥ २२ ॥ मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः ॥ देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥ २३ ॥ प्राणाप्यायनशीलत्वात्स सर्वमय उच्यते ॥ ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः ॥ २४ ॥ मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु ॥ अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि सहाभिजित् ॥ २५ ॥ ततः शुक्रो द्विलक्षेण योजनानामथोपरि ॥ पुरः पश्चात्सहैवासावर्कस्य परिवर्तते ॥ २६ ॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ॥ लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः ॥२७॥ वृष्टिविष्टंभशमनो भार्गवः सर्वदा मुने ॥ शुक्राद् बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः ॥ २८ ॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा ॥ यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यः प्रायेण तत्र तु ॥ २९ ॥

अभिजित सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं ॥ २५ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन शुक्र है यह आगे भोगे हुए सूर्यके नक्षत्रको पश्चात् भोगता है अर्थात् आगे, पीछे और सन्मुख चलते हैं ॥ २६ ॥ यह भी शीघ्र समान मंदगतिसे विचरण करता है यह लोकोंके अनुकूल सुखदायक कहे गये हैं ॥ २७ ॥ हे मुने ! शुक्र वृष्टि रोकनेवाले ग्रहोंकी शांति करता है शुक्रसे बुध दो लाख योजन दूर है ॥ २८ ॥ इसकी भी

शुक्रके समान शीघ्र मंद और समान गति ह जिस समय बुध जब सूर्यसे दूर हो जाता है उस समयमें ॥ २९ ॥ अतिपावन, अभ्रपात और अनावृष्टिका भय सूचन करता है उसके आगे मंगल दो लाख योजन ऊंचा है ॥ ३० ॥ यह तीन, तीन, पक्षमें एक एक राशिको भोगता है, यदि वक्री न हो तो तीन पक्षमें एक राशि पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ यह प्रायः अशुभ ग्रह दुःखोंको सूचन करता है इसके आगे दो लाख योजनपर बृहस्पति ॥ ३२ ॥ एक२राशिको यदि वक्री न हो तो एक वर्षमें भोगता है वक्री न होनेपर यह ब्रह्मवादियोंको अनुकूल

अतिवातभ्रपातानावृष्टयादिभयसूचकः ॥ उपरिष्टात्ततो भौमो योजनानां द्विलक्षतः ॥ ३० ॥ पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुंक्ते राशीनथैकशः ॥ द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते ॥ ३१ ॥ प्रायेण शुभकृत्सोऽयं ग्रहौघानां च सूचकः ॥ ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः ॥ ३२ ॥ एकैकस्मिन्नथो राशौ भुंक्ते संवत्सरं चरन् ॥ यदि वक्रो भवन्नैवानुकूलो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३३ ॥ ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरो मितः ॥ योजनैः सूर्यपुत्रोऽयं त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन् ॥ ३४ ॥ एकैकराशौ पर्यैति सर्वान्राशीन्महाग्रहः ॥ सर्वेषामशुभो मंदः प्रोक्तः कालविदां वरैः ॥ ३५ ॥ ततः उत्तरतः प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः ॥ योजनैः परिसंख्यात सप्तर्षीणां च मंडलम् ॥ ३६ ॥ लोकानां शं भावयंतो मुनयः सप्त ते मुने ॥ यत्त द्विष्णुपदं स्थानं दक्षिण क्रमते च ते ॥ ३७ ॥ इति श्री ० देवीभा ० म ० अष्टमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथर्षिमंडलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः ॥ लक्षैस्त्रयोदशमितैः परमं वैष्णवं पदम् ॥ १ ॥

होता है ॥ ३३ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन घोर ग्रह शनैश्चर रहता है यह तीस महीनेमें एक राशिपरसे चलता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार यह महाग्रह बारह राशि भोग करता है ज्योतिषियोंने इसे सबके निमित्त अशुभ कहा है ॥ ३५ ॥ इसके ऊपर ग्यारह लाख योजनपर सप्तऋषियोंका मंडल है ॥३६॥ हे नारद ! यह सातों मुनिलोकोंके मंगल निमित्त विष्णुपद स्थानकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीनारायण बोले सप्तर्षिमंडलसे तेरह लाख योजन आगे

परम वैष्णवपद है ॥ १ ॥ जहां महाभागवत लोकवंदित उत्तानपादपुत्र ध्रुव, इन्द्र, अग्नि, कश्यप ॥ २ ॥ धर्मके सहित स्थित हैं और देखनेवाले सदाही उनकी बहुत मानना करते हैं ॥ ३ ॥ कल्पपर्यन्त जीनेवाले भगवत्की सब उपासना करते हैं ज्योतिश्चक्रमें प्राप्त सब ग्रह, नक्षत्रोंको ॥ ४ ॥ अव्यक्तगतिसे भ्रमण कराते हुए ईश्वरने इनको स्थाणुके समान निश्चल किया है ॥ ५॥ देवपूजित हो अपनी कांतिसे सबको प्रकाश करते हैं जैसे मेढिस्तंभमें बँधे हुए पशुगण कर्षके द्वारा ॥ ६ ॥ उसके चारों ओर मंडलरूपसे भ्रमण करते हैं इसी

महाभागवतः श्रीमान्वर्तते लोकवंदितः ॥ औत्तानपादिरिंद्रेण वह्निना कश्यपेन च ॥ २ ॥ धर्मेण सह चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः ॥ बहुमानं दक्षिणतः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा ॥ ३ ॥ आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम् ॥ ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम् ॥ ४ ॥ कालेनानिमिषेणायं भ्राम्यतां व्यक्तरंहसा ॥ अवष्टंभस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः ॥ ५ ॥ भासते भासयन्भासा स्वीयया देवपूजितः ॥ मेढिस्तंभे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः ॥ ६ ॥ मंडलानि चरंतीमे सवन त्रितयेन च ॥ एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम् ॥ ७ ॥ अंतर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः ॥ ध्रुवमेवाऽवलंब्याशु वायुनोदीरिताश्चरन् ॥ ८ ॥ आकल्पांतं च क्रमंति खे श्येनाद्याः खगा इव ॥ कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते ॥ ९ ॥ एवं ज्योतिर्गणाः सर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ संयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतंति च ॥ १० ॥ ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम् ॥ सोपयोगं भगवतो योगधारणकर्मणि ॥ ११ ॥

प्रकारसे सब ग्रह, नक्षत्र, यथाक्रमसे ॥ ७ ॥ अन्तर बाहरके विभागद्वारा कालचक्रमें बंधे हैं केवल ध्रुवसे अवलम्बित हो वायुसे विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ आकाशमें जैसे श्येनादि पक्षी उडते हैं इसी प्रकार कर्म सारथिरूप वायु रश्मि सारथिद्वारा बंधे हुए नहीं गिरते हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यह सब ज्योतिर्गण नक्षत्र प्रकृतिपुरुषके संयोगरूप अनुग्रहसे अनुग्रहीत हुए नहीं गिरते हैं ॥ १० ॥ ज्योतिषचक्रको कोई शिशुमार स्वरूपसे

कथन करते हैं कि भगवान्‌के योगसाधनकार्यसे यथोपयुक्त स्थित है इससे नहीं गिरता है॥ ११॥हे मुने ! यह कुंडली भूतकलेवरसे नीचा मुख किये स्थित है पुच्छके अग्रभागमें उत्तानपाद ध्रुव स्थित है ॥ १२ ॥ लांगूलमें पापरहित प्रजापति, तथा अग्नि, इंद्र और धर्म देवताओंसे पूजित हो स्थित होते हैं ॥१३॥ धाता, विधाता पुच्छके अन्तमें, कटिमें सप्त ऋषि यह दक्षिणावर्तके भोगसे कुण्डलाकार हैं ॥ १४ ॥ उत्तरायणके नक्षत्र अभिजितसे पुनर्वसु तक चौदह दक्ष पार्श्वमें और पुष्यसे उत्तराषाढ तक चौदह नक्षत्र दक्षिणपार्श्वमें हैं ॥ १५ ॥ कुंडलरूप शरीरके

यस्यावांक्छिरसः कुंडलीभूतवपुषो मुने ॥ पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः ॥ १२ ॥ लांगूलेऽस्य च संप्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः ॥ अग्निरिंद्रश्च धर्मश्च तिष्ठंते सुरपूजिताः ॥१३॥ धाता विधाता पुच्छांते कट्यां सप्तर्षयस्ततः ॥ दक्षिणावर्तभोगेन कुंडलाकारमीयुषः ॥१४॥ उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च ॥ दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च ॥ १५ ॥ कुंडलाभोगवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ समसंख्याश्चावयवा भवंति कजनंदन ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे ॥ पुनर्वसुश्च पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः ॥ १७ ॥ आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः ॥ अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः ॥ १८ ॥ यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा ॥ कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः ॥ १९ ॥ धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः ॥ मघादीन्यष्ट भानीह दक्षिणायनगानि च ॥२०॥ युंजीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने ॥ तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि ॥ २१ ॥

समान दोनों पार्श्वोंमें बराबर अवयवोंकी संख्या है ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागमें आकाशगंगा उदरमें पुनर्वसु पुष्य दक्षिणवामश्रेणीमें ॥ १७ ॥ आर्द्रा, श्लेषा, पश्चिमके दहिने बायें चरणमें अभिजित उत्तराषाढा दहिनी बाईं नासिकामें जानने ॥ १८ ॥ हे नारद ! इसी प्रकार यथा संख्यक श्रवण और पूर्वाषाढा दहिने और बायें नेत्रोंमें कल्पना किये हैं ॥ १९ ॥ धनिष्ठा, और मूल दहिने बायें कर्णमें मघाको आदि ले आठ नक्षत्र दक्षिण पार्श्वमें ॥ २० ॥ तथा वामपार्श्वकी अस्थियोंमें जानने, हे मुनि ! इसीप्रकार मृगशिरादि उदयगामी

नक्षत्र ॥ २१ ॥ दक्षिणपार्श्वकी अस्थियोंमें प्रतिलोमसे युक्त करै शतभिषा और ज्येष्ठा दहिने बायें स्कन्धमें ॥ २२ ॥ उत्तरठोढीमें अगस्त्य नीचेकी ठोढीमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, ॥ २३ ॥ बृहस्पति ककुदमें, बुध वक्षस्थलमें ग्रहाधिपसूर्यनारायण हृदयमें, चन्द्रमा मनमें ॥२४॥ अश्विनीकुमार स्तनोंमें, नाभिमें शुक्र, प्राणापानमें बुध, गलेमें राहु केतु ॥ २५ ॥ सर्वांग और रोमकूपमें तारागण यह भगवान विष्णुका सर्वदेवमय शरीर है [यह अलंकारहै]॥२६॥जो मौनहो प्रतिसंध्यामें इसका ध्यान करता है और इस मंत्रसे जो बुद्धिमान देखता हुआ उठता है

दक्षपार्श्वे वंक्रिकेषु प्रातिलोम्येन योजयेत् ॥ शततारा तथा ज्येष्ठा स्कंधयोर्दक्षवामयोः ॥२२॥ अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः ॥ मुखेष्वंगारकः प्रोक्तो मंदः प्रोक्त उपस्थके ॥ २३ ॥ बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः ॥ नारायणश्च हृदये चंद्रो मनसि तिष्ठति ॥ २४ ॥ स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः ॥ बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः ॥ २५ ॥ सर्वांगेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृताः ॥ एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः ॥ २६ ॥ संध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः ॥ निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठन्मंत्रेणानेन धीश्वरः ॥ २७ ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषांपतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ २८ ॥ ग्रहर्क्षताराममयमाधिदविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुमंडलम् ॥ नक्षत्रवच्चरति च सैंहिकेयोऽतदर्हणः ॥ १ ॥

उसका कल्याण होता है ॥ २७ ॥ ज्योतिर्लोक काल अनिमिषोंके पति महापुरुषका ध्यान करतेहुए प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ ग्रह नक्षत्र तारामय आप त्रिकालज्ञमें मंत्र पाठ करनेवालोंके पाप दूर करतेहो आपको नमस्कारहै और त्रिकालमें स्मरण करनेवालेके पाप तत्काल दूर होते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण बोले सूर्यके दशसहस्र योजन नीचे

अयोमय दारुण राहुका मंडल है ॥१॥ यही सिंहिकापुत्र राहु सूर्य चन्द्रमाका मर्दन करनेवाला है इसने विष्णुके अनुग्रहसे अमरत्व और नक्षत्रत्व प्राप्त किया है ॥ २ ॥ जो यह सूर्यका बिम्ब१०००० योजन तपता है उसका छादन करनेवाला यह असुर है चन्द्रमण्डल बारह सहस्र योजन है ॥ ३ ॥ तेरह सहस्र योजन होनेसे चन्द्रमाको राहु आच्छादन करता है जो अमावस्या और पूर्णिमाके पर्वसमयमें वैरसे आच्छादनकी इच्छा करताहै ॥ ४ ॥ दूर होनेसे भी यह सूर्य चन्द्रका आच्छादक होता है, आच्छादन श्रवण होते ही विष्णु अपना ॥ ५ ॥ अग्निकी

सूर्याचंद्रमसोरेव मर्दनः सिंहिकासुतः ॥ अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्णवनुग्रहात् ॥ २ ॥ यददस्तरणेर्बिंबं तपतो योजनायुतम् ॥ तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम् ॥ ३ ॥ त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः ॥ यः पर्वसमये वैरानुबंधी छादकोऽभवत् ॥४॥ सूर्याचंद्रमसोर्दूराद्भवेच्छादनकारकः ॥ तन्निशम्योभयत्रापि विष्णुना प्रेरितं स्वकम् ॥५॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् ॥ तत्तेजसा दुःसहेन समंतात्परिवारितम् ॥ ६ ॥ मुहूर्तोद्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः ॥ आरान्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह ॥ ७ ॥ उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम् ॥ ततोऽधस्तात्समाख्याता लोकाः परमपावनाः ॥८॥ सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम ॥ योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्यनिषेविताः॥९॥ ततोऽप्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम् ॥ पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम् ॥ १० ॥

लपटोंसे भीषण, सुदर्शन चक्र प्रेरित करते हैं इसके दुस्सह तेजसे सब ओर घेरा हुआ ॥ ६॥ एक मुहुर्तमें ही खेदको प्राप्त होकर चकितमन होकर समीपसे ही निवृत्त होजाता है । इसीका नाम ग्रहण है ॥ ७ ॥ हे देवर्षे ! लोकमें इसे ग्रहण कहते हैं सो तुम जानो । इसके नीचे परम पवित्र लोक ॥ ८ ॥ सिद्ध चारण और विद्याधरोंके हैं यह पुण्य निषेवित लोक १०००० दश सहस्र योजनके मध्यमें हैं ॥ ९ ॥ हे देवर्षे !

इसके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूतोंके विहारस्थान हैं ॥ १० ॥ जहां तक वायु वहन करती है वह अन्तरिक्ष है और जहां तक मेघ हैं यहीं तक इसकी अवधि है॥ ११॥ हे द्विजोत्तम! इसके नीचे सौ योजनमें पृथ्वीहै इसमें गरुड, श्येन, (गिद्ध) सारस ॥ १२ ॥ हंसादिक पृथ्वी पर होनेसे पार्थिव कहाते और उडते हैं यह तुमसे पृथिवीका सन्निवेश वर्णन किया॥ १३॥ हे नारद ! इस पृथ्वीतलमें भी सात विवर हैं इनमें एक एक दश दश सहस्र योजनमें हैं ॥ १४ ॥ यह बडे विख्यात १०००० अयुत योजनके अंतरमें स्थिति सब ऋतुओंमें सुखदायक हैं, पहला अतल,

अंतरिक्षं च तत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि ॥ यावन्मेघास्ततो द्यंति तत्प्रोक्तं ज्ञानकोविदैः ॥ ११ ॥ ततोऽधस्ताद्योजनानां शतं यावद्द्विजोत्तम ॥ पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः ॥ १२ ॥ हंसादयः प्रोत्पतंति पार्थिवाः पृथिवीभवाः ॥ भूसन्निवेशाव स्थानं यथावदुपवर्णितम् ॥ १३ ॥ अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः ॥ एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः ॥ १४॥ अयुतांतरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः ॥ अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा ॥ १५ ॥ तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम् ॥ महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम् ॥ १६ ॥ सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः ॥ एतेषु बिलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च ॥ १७ ॥ कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च ॥ नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते ॥ १८ ॥ दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः ॥ नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबंधुभिः ॥ १९॥ सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः ॥ ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्च ते ॥ २० ॥

दूसरा वितल ॥१५॥ तीसरा सुतल, चौथा तलातल, पांचवां महातल, छठा रसातल ॥ १६ ॥ सातवां पाताल है हे विप्र इस प्रकार सात विवर हैं इन बिलोंमें स्वर्गसे अधिक ऐश्वर्य है ॥ १७ ॥ कामभोग, ऐश्वर्य, सुख समृद्धिके भुवन नित्य उद्यानोंका विहार सदा सुखरूप होता है ॥१८॥ कद्रूके पुत्र, दैत्य तथा बडे बलशाली दानव अपने कलत्र सन्तान बंधुआदिके सहित सदा आनन्दसे रहते हैं॥ १९ ॥ अपने सुहृद

१ ताराआदि रहित स्थान ।

और अनुजीवियोंसे युक्त गृहोंमें रहते हैं कोई भी उनकी कामना नहीं रोक सकता वे सब मायावी होते हैं ॥ २० ॥ यह सब ऋतुओंमें सुखसे सम्पन्न हो निवास करते हैं वे स्थान मायावी मैंने बनाये हैं ॥ २१ ॥ जिनकी मणिमुक्ताओंसे बडी शोभा हो रही है भवनोंकी सहस्रों अटारी छज्जोंकी शोभा हो रही है ॥ २२ ॥ सभा चौराहे आंगनोंकी शोभा देव सदनोंका तिरस्कार करती है नाग असुरोंके मिथुन, तथा कबूतर, मैंना ॥ २३ ॥ तथा कृत्रिम भूमिपै उत्तम गृह शोभित होते हैं अलंकृत हुए उद्यान शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ २४ ॥ जहांके विशाल फल, पुष्प, मनको प्रसन्न करनेवालेहैं ललनाओंके विलास योग्य जहाँके स्थान शोभा पाते हैं ॥ २५ ॥ अनेक विहंगोंके समूहसे जहांकी जलराशी शोभित

निवसंति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः ॥ मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः ॥ २१ ॥ पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवर शालिनः ॥ विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याः सहस्रशः ॥२२॥ सभाचत्वरचैत्यादि शोभाढ्याः सुरदुर्लभाः ॥ नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः ॥ २३ ॥ कीर्णकृत्रिमभूमिश्च विवरेशगृहोत्तमैः ॥ अलंकृताश्चकासंति उद्यानानि महांति च ॥ २४ ॥ मनः प्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः ॥ ललनानां विलासार्हस्थानैः शोभितभांजि च ॥ २५ ॥ नानाविहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः ॥ स्वच्छार्णः पूरितह्रदैः पाठीनसमलंकृतैः ॥ २६ ॥ जलजंतुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥२७॥ तेषु कृतनिकेतानां विहारैः संकुलानि च ॥ इंद्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः ॥२८॥ अमराणां च परमां श्रियं चातिशयंति च ॥ यत्र नैव भयं क्वापि कालांगैर्दिनरात्रिभिः॥२९॥यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थमणिरश्मिभिः ॥ नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकांतिभिः॥३०॥न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसायनैः ॥ रसान्नपानस्नानाद्यैराधयो न च व्याधयः ॥३१॥

होती है स्वच्छ जलसे पूर्ण ह्रद जिनमें पाठीन जातिकी मछली शोभित होती हैं ॥२६॥ अनेक प्रकारके जलमें होनेवाले जन्तु जहांके जलोंको क्षुब्ध करते हैं, कुमुद, उत्पल, कह्लार, नील, लाल कमल ॥ २७ ॥ इनमें अपना विहार स्थान कल्पना किये हैं इन्द्रियोंको आनन्ददायक अनेक शब्द कर रहे हैं ॥ २८ ॥ बहुत क्या देवताओंकी परम लक्ष्मीको तिरस्कार करते हैं जहां कालके अंगवाले दिन रातका कुछ भय नहीं है ॥ २९ ॥ जहां बडे २ सर्पोंके शिरोंकी मणियोंसे कभी अन्धकार न होकर प्रकाश बना रहता है ॥ ३० ॥ यहांके निवासियोंको दिव्य औषधि रसायनसे

रस अन्नपान स्नानादिके कारण आधि व्याधि नहीं होती ॥ ३१ ॥ वली, बाल पकना, जीर्णता विवर्णता, स्वेददुर्गन्ध, अनुत्साह, शरीरकी अवस्थाके गुण कभी बाधा नहीं देते ॥ ३२ ॥ उनको सदा कल्याण रहता है मृत्युका अन्यत्र भय नहीं होता भगवानके तेज और चक्र सुदर्शनको छोड़कर अन्यत्र भय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे नारद ! जिसमें भगवानके तेज प्रविष्ट होनेसे दैत्यस्त्रियोंके गर्भ भयसे पतित हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण

वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगंधताः॥अनुत्साहवयोवस्था न बाधंते कदाचन ॥३२॥ कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः॥ भगवत्तेजसोऽन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात् ॥३३॥ यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भाशयः ॥ प्रायो भयात्पतंत्येव स्रवंति ब्रह्मपुत्रक ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे ॥ मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्वकृत् ॥ १ ॥ षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिकाः ॥ मायाविनो याश्च सद्यो धारयंति च काश्चन ॥ २ ॥ जृंभमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः ॥ स्त्रीगणा उपपद्यंते त्रयो लोकविमोहनाः ॥ ३ ॥ पुंश्चल्यश्चैव कामिन्यः स्वैरिण्यश्चेति विश्रुताः ॥ या वै बिलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः ॥ ४ ॥ रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः ॥ स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥ ५ ॥ संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयंत्यपि ता स्त्रियः ॥ यस्मिन्नुपयुक्ते जनो मनुते बहुधा स्वयम् ॥ ६ ॥

बोले हे नारद ! पहले अतल नामक विवरमें मय पुत्र बलगर्वका खंडन करनेवाले निवास करता है ॥ १ ॥ जिसने सर्वार्थ साधक ९६ छानवे माया सृजन की हैं जो कोई उनको धारण करता है वह मायावी होता है ॥२॥ उस बलीबलके जंभाई लेनेसे त्रिलोकीको मोहित करनेवाली स्त्री प्रगट हो जाती है ॥ ३ ॥ पुंश्चली, स्वैरिणी तथा दूसरी कामिनी प्रगट होती हैं जो बिलमें प्रविष्ट हुए पुरुषको ॥ ४ ॥ हाटक रससे संभोगमें समर्थ करके अपने विलास अवलोकन अनुरागस्मित आलिंगनादि ॥ ५ ॥ तथा संलाप और विभ्रमादिसे रमण कराती हैं

जिसके उपयोगमें मनुष्य अपनेको बहुत मानता है॥६॥मैं ईश्वर सिद्ध और दशसहस्र हाथीका बलवाला हूं वह ऐसे अपनेको मानता हुआ मदान्ध हो जाता है ॥७॥ हे नारद ! यह आपसे अतलकी स्थिति कही अब दूसरे विवर वितलका वृत्तान्त सुनो ॥ ८ ॥ भूतलके अधस्थल वितलमें भगवान् शिव हाटकेश्वरनामसे अपने पार्षद और गणोंसे संयुक्त हो ॥ ९ ॥ प्रजापतिके किये सर्गके बढानेके निमित्त देवताओंसे पूजित हुए भवानीके सहित विराजते हैं ॥ १० ॥ शिवके वीर्यसे यहां हाटकी सरित् प्रगट हुई है जो बढी हुई पावन और अग्निको अपने तेजसे बाहरही

ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान् ॥ आत्मानं मन्यमानः सन्मदांध इव कथ्यते ॥७॥ एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद ॥ द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत ॥८॥ भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः ॥ हाटकेश्वरनामाऽयं स्वपार्षदगणैर्वृतः ॥९॥ प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च ॥ भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः ॥ १० ॥ भवयोर्वीर्यसंभूता हाटकी सरिदुत्तमा ॥ समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि ॥ ११ ॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम् दैत्यांगनाभूषणार्हं सदा तं धारयंति हि ॥ १२ ॥ तद्बिलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम् ॥ पुण्यश्लोको बलिर्नाम आस्ते वैरोचनिर्मुने ॥१३॥ महेंद्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम् ॥ त्रिविक्रमोऽपि भगवान्सुतले बलिमानयत् ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्य स्थापितः किल दैत्यराट् ॥ इंद्रादिष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते ॥ १५ ॥ तमेव देवदेवेशमाराधयति भक्तितः ॥ व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः ॥ १६ ॥

पान करलेती है ॥११॥ वह्निद्वारा उगला हुआ वह हाटकनाम सोना दैत्योंको बहुत प्यारा है दैत्योंकी स्त्रीजन भूषण बनाय सदा उसे धारण करती हैं ॥ १२ ॥ उस बिलके नीचे सुतल है यहां पुण्यश्लोक विरोचन पुत्र राजाबलि निवास करता है ॥ १३ ॥ महेन्द्र देवका प्रिय करनेकी इच्छासे त्रिविक्रम भगवान् सुतलमें बलिको लाये ॥ १४ ॥ त्रिलोककी लक्ष्मी आक्षिप्त कर दैत्यराट्को वहां स्थापित किया जो लक्ष्मी इन्द्रादिको भी प्राप्त नहीं वह राजा बलिके है ॥ १५ ॥ वह सुतलपति निर्भय हो भगवान् वामनजीकी आराधना करते हुए आज

तक वर्तमान हैं ॥ १६ ॥ पात्रभूत जगदीश्वरको भूमिदान करनेका ही फल है हे नारद ! ऐसा महात्मा जन वर्णन करते हैं सो वह अयुक्त नहीं है ॥ १७ ॥ वासुदेव भगवान हरिमें जो अपना पुरुषार्थ लगाते हैं हे विप्र इस दानका यह फल सब प्रकार उपयुक्त नहीं है ॥ १८ ॥ जिस देवदेवके विवश होकर नाम लेनेसे अपने किये कर्म बंधनके गुण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जिस क्लेश बंधनकी हानिके निमित्त सांख्य योगादिका साधन किया जाता है यति नित्य भगवान अखिलेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ २० ॥ हे नारद ! यह भगवान् नारायण यदि हमको मायामय भोगोंका ऐश्वर्य विस्तार करते हैं ॥ २१ ॥ तो अनुग्रह नहीं है कारण कि आत्माकी स्मृतिका नष्ट होना सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है

भूमिदानफलं ह्येतत्पात्रभूतेऽखिलेश्वरे ॥ वर्णयंति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद ॥१७॥ वासुदेवे भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ ॥ एतद्दान फलं विप्र सर्वथा न हि युज्यते ॥ १८ ॥ यस्यैव देवदेवस्य नामापि विवशो गृणन् ॥ स्वकीयकर्मबंधीयगुणान्विधुनुतेऽजसा ॥१९॥ यत्क्लेशबंधहानाय सांख्ययोगादिसाधनम् ॥ कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे ॥ २० ॥ न चायं भगवानस्मानुजग्राह नारद ॥ मायामयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम्॥२१॥ सर्वक्लेशादिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम् ॥ यं साक्षाद्भगवान्विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥२२॥ याच्ञाछलेनापहृतं सर्वस्वं देहशेषकम्॥ अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसंभवैः॥२३॥बंधयित्वाऽवमुच्यापि गिरिदर्यामिवाब्रवीत् ॥ असाविंद्रो महामूढो यस्य मंत्री बृहस्पतिः ॥२४॥ प्रसन्नमिममत्यर्थमयाचल्लोकसंपदम् ॥ त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यं कियदेवातितुच्छकम् ॥२५॥ आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसंपदि॥ अस्मत्पितामहः श्रीमान्प्रह्लादो भगवत्प्रियः॥२६॥

जिसको सब उपायके ज्ञाता भगवान् विष्णुने ॥ २२ ॥ यांचाके छलसे हरण कर्म लिया अर्थात् देहको छोड और सर्वस्व ले लिया शेषभूमि न मिलनेसे वरुणकी पाशोंसे बांधकर॥२३॥फिर इस गिरिकंदरामें छोड दिया आप द्वारे रहे तब भक्तिका प्रताप देख बलिने कहा यह इन्द्र महामूढ है जिसके मंत्री बृहस्पति हैं ॥२४॥ जो प्रसन्न होकर इसने लोक सम्पत्तिकी याचना की यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य क्या है अतितुच्छ है ॥२५॥ जो मूढ कल्याणोंके स्वामी नारायणको छोडकर लोक सम्पदामें आसक्त है वह महामूढ है हमारे पितामह श्रीमान् प्रह्लाद भगवत्प्रिय ॥२६॥

सर्वलोकका उपकारक भगवत्का दासभाव मांगते हुए यद्यपि विष्णु पिताका संपूर्ण ऐश्वर्य देते थे ॥ २७ ॥ पर उन भगवत्प्रियने पिताके उपराम होनेमें इस बातकी इच्छा नहीं की यह दृश्यमान सब लोक जिसकी उपाधी ॥ २८ ॥ तथा जिसकी ऐश्वर्य शक्तिका अन्त नहीं उन भगवानका स्वरूप वा अन्त हमारी नाईं दोषयुक्त कौन जान सकता है ! इस प्रकार यह दैत्यपति बलि परमपूजित॥ २९ ॥सुतलमें वर्तता है जिसके द्वारपाल स्वयं नारायण हैं एक समय लोकोंको रुवानेवाला रावण दिग्विजयमें ॥ ३० ॥ सुतलमें प्रविष्ट हुआ तब भक्त अनुग्रहकारी भगवानने पादके

दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः ॥ पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना ॥ २७ ॥ पितर्युपरते वीरे नैवैच्छद्भग वत्प्रियः ॥ तस्यातुलानुभावस्य सर्वलोकोपधीमतः ॥ २८ ॥ अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति ॥ एवं दैत्य पतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः ॥ २९ ॥ सुतले वर्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम् ॥ एकदा दिग्विजये राजा रावणो लोकरावणः ॥ ३० ॥ प्रविशन्सुतले येन भक्तानुग्रहकारिणा ॥ पादांगुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि ॥ ३१ ॥ एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक् ॥ आस्ते सुतलराजस्थो देवदेवप्रसादतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापु राणेऽष्टमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनाराण उवाच ॥ ॥ ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम् ॥ दानवेंद्रो मयो नाम त्रिपुराधिपतिर्महान् ॥ १ ॥ त्रिलोक्याः शंकरेणाऽयं पालितो दग्धपूस्त्रयः ॥ देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः ॥ २ ॥ आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः ॥ पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये ॥ ३ ॥

अंगुष्ठसे १०००० योजन फेंक दिया था ॥ ३१ ॥ इस प्रकारके प्रभावशाली बलि सब सुखोंका स्थान है वह सुतलराजमें देवदेवके प्रसादसे स्थित है ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण बोले इसके नीचे तलातलनामक विवर है जहां त्रिपुराधिपति मयनामक दानव रहता है ॥ १ ॥ जिस समय शंकरने त्रिपुर जलाया तब इसकी रक्षा की थी देव २ के प्रसादसे राज्य और सुखकी प्राप्ति की ॥ २ ॥ यह अनेकों मायामें पंडित मायावियोंका आचार्य है सब काम समृद्धिके निमित्त घोर

राक्षस इसकी पूजा करते हैं ॥३॥ इसके नीचे विख्यात महातल है जिसमें कद्रूके पुत्र महाक्रोधी सर्प निवास करते हैं ॥ ४ ॥ हे नारद ! इनके अनेक शिर हैं प्रधान २ तुमसे कहता हूं कुहक, तक्षक, सुषेण, कालिय॥५॥ यह महाशरीरवाले महाबली क्रूर स्वजातिमें भी क्रूर हैं गरुडके डरसे यह सब भीत रहते हैं ॥ ६ ॥ अपनी स्त्री संतान सुहृत् कुटुम्बियोंसे संगत हुए प्रमत्त हुए अनेक क्रीडाओंसे संगत रहते हैं ॥ ७ ॥ इस विवरके नीचे रसातल है उसमें दैत्य और पणनामके दानव निवास करते हैं ॥८॥ तथा हिरण्यपुरवासी निवातकवचोंके समूह जो कालेय कहाते और

ततोऽधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम् ॥ सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान् ॥ ४ ॥ अनेकशिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते ॥ कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा ॥ ५ ॥ महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः ॥ पतत्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाः सर्व एव ते ॥ ६ ॥ स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुंबस्य च संगताः ॥ प्रमत्ता विहरंत्येव नानाक्रीडाविशारदाः ॥ ७ ॥ ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलस माह्वये ॥ दैतेया निवसंत्येव पणयो दानवाश्च ये ॥८॥ निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः ॥ कालेया इति ह प्रोक्ताः प्रत्यनी का हविर्भुजाम् ॥९॥ महौजसश्चोत्पत्त्यव महासाहसिनस्तथा ॥ सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः ॥ १० ॥ बिलेशया इव स दा विवरे निवसति हि ॥ वै वाग्भिः सरमया शक्रदूत्या निरंतरम् ॥ ११ ॥ मंत्रवर्णैभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह ॥ ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधिपालकाः॥१२॥वासुकिप्रमुखाः शंखः कुलिकः श्वेत एव च॥धनंजयो मशाशंखो धृतराष्ट्रस्तथैव च ॥१३॥ शंखचूडः कंबलाश्वतरो देवोपदत्तकः ॥ महामर्षा महाभोगा निवसंति विषोल्बणाः ॥१४॥ पंचमस्तकवंतश्च फणासप्तकभूषिताः ॥ केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथाऽपरे ॥ १५ ॥

देवताओंके शत्रु होते हैं ॥ ९ ॥ यह उत्पत्तिसे ही महापराक्रमी महासाहसी हैं केवल भगवानकेतेजसेही इनका पराक्रम महान् होता है॥१०॥ यह सदैवकाल विवरमें ही निवास करते हैं जो सरमा इन्द्रकी दूतीद्वारा निरन्तर मंत्ररूपवाणीसे॥११॥ जो मंत्रवर्णात्मक होती है निरन्तर ताडित होकर डरते हैं इसके नीचे पातालमें नागलोकके पालक निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वे वासुकि आदि शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट ॥१३॥ शंखचूड कंबल, अश्वतर, देवोपदत्तक, महाक्रोधी महाफण, विषैले निवास करते हैं ॥ १४ ॥ किसीके पांच, सात, दश सौ ॥ १५ ॥

कोई सहस्र शिरवाले प्रकाशमान मणियें धारण करनेवाले हैं जिनकी किरणोंसे पातालका अंधकार दूर होता है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वे सदा क्रोधसे फूत्कार करते हैं इसके मूलमें तीस सहस्र ॥ १७ ॥ योजन उपरांत भगवानकी तामसी कला सब देवताओंसे पूजित अनन्तनामसे विख्यात है ॥ १८ ॥ जिसको अहं इस अभिमानका लक्षण कहते हैं दृष्टादृश्यका जो भलीप्रकार एकीकरण है उसको संकर्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! उन अनन्तमूर्ति सहस्र शिरवाले अनंतके मस्तकपर यह सारा भूमण्डलस्थित है ॥ २० ॥ उनपर यह संपूर्ण पृथ्वीका

सहस्रशिरसः केऽपि रोचिष्णुमणिधारकाः ॥ पातालरंध्रतिमिरनिकरं स्वमरीचिभिः ॥ १६ ॥ विधमंति च देवर्षे सदा संजातमन्यवः ॥ अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिंशत्साहस्रकेंऽतरे ॥१७॥ योजनैः परिसंख्याते तामसी भगवत्कला ॥ अनंताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता ॥ १८ ॥ अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं प्रचक्षते ॥ संकर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः ॥ १९ ॥ इदं भूमंडलं यस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥ अनंतमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके ॥२०॥ पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते॥ यस्य कालेन देवस्य संजिहीर्षोः समं विभोः ॥ २१ ॥ चराचरं भ्रुवोरंतार्विवरादुदपद्यत ॥ सांकर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैकादशशोभितः ॥२२॥ त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्स्वयम् ॥ उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयंकरः ॥ २३ ॥ यस्यांघ्रिकमलद्वंद्वशोणाच्छनखमंडले ॥ विराजन्मणिबिंबेषु महाहिपतयोऽनिशम् ॥ २४ ॥ एकांतभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुंगवैः ॥ प्रणमंतः स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते ॥ २५ ॥

गोला सरसोंके समान लक्षित होता है चराचरके लय करनेको जिसकालमें इच्छा करते हैं तब उनकी भौंसे ग्यारह व्यूहसे शोभायमान संकर्षणनामक रुद्र प्रगट होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे त्रिलोचन, हाथमें शूल लिये वह महासत्व सब प्राणियोंको भय देनेवाले उत्थित होते हैं ॥ २३ ॥ जिनके चरणकमलकी लालीसे नखमंडल महा अहिपतियोंकी मणियोंमें विराजते हैं ॥ २४ ॥ जिनको श्रेष्ठ जन एकान्त भक्तियोगसे

शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए अपने मुखका प्रतिबिम्ब देखते हैं ॥ २५ ॥ स्फुरित कुंडलोंके माणिक्योंकी कान्ति मण्डलसे सुन्दर कपोल और गंडस्थल प्रकाश करते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर अंगकी कान्तिवाली नागराजकी कुमारियें भी विशद स्वच्छ, बडे ॥ २७ ॥ शोभायमान भुजदंडोंको चंदन अगर केशरसे भूषित करती है ॥ २८ ॥ उनके अंगस्पर्शमात्रसे कामातुर होजाती हैं मनोहर स्मित करके लज्जापूर्वक देखने लगती हैं ॥ २९ ॥ अनुरागके मदसे मत्त हो उनके लाल नेत्र घूमने लगते हैं और करुणावलोकी नेत्रोंसे उनके आशीर्वादोंको

स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामंडलभांज्यपि ॥ सुकपोलानि चारूणि गंडस्थलद्युमंति च ॥ २६ ॥ नागराजकुमार्योऽपि चार्वंग विलसत्त्विषः ॥ विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा ॥ २७ ॥ रुचिरैर्भुजदंडैश्च शोभमाना इतस्ततः ॥ चंदनागुरुकाश्मीरपंकलेपेन भूषिताः ॥ २८ ॥ तदभिमर्षसंजातकामवेशसमायुताः ॥ ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयंति च ॥ २९ ॥ अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् ॥ करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाऽऽशिषः ॥ ३० ॥ सोऽनंतो भगवान्देवोऽनंतसत्त्वो महाशयः ॥ अनंतगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः ॥ ३१ ॥ संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च ॥ आस्ते महातत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३२ ॥ ध्यायमानः सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा ॥ विद्याधरैश्च गंधर्वैर्मुनिसंघैश्च नित्यशः ॥ ३३ ॥ अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः ॥ वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षदगणानपि ॥ ३४ ॥ आप्यायमानः स विभुर्वैजयंतीं स्रजं दधत् ॥ अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदलसंचयैः ॥ ३५ ॥

इच्छा करती हैं ॥ ३० ॥ वह अनन्तसत्व महा यशस्वी, अनन्त गुणसागर, महा द्युतिमान् ॥ ३१ ॥ अमर्षरोषादिको रोके हुए महा सत्व सम्पन्न सब देवताओंसे पूजित उस स्थानमें निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ सुर सिद्धि, असुर, उरग, विद्याधर, गंधर्व, मुनिसमूह उनका नित्य ध्यान करते हैं ॥ ३३ ॥ निरन्तर मदोन्मत्त तथा विह्वल नेत्र किये अपने वाक्यरूपी अमृतसे देवता और अपने पार्षदोंको ॥ ३४ ॥ प्रसन्न

करते हुए वह विभु मलीन न होने वाले तुलसीदलोंसे सम्पन्न वैजयन्ती माला धारण किये स्थित हैं ॥ ३५ ॥ मत्त हुए भ्रमरोंके घोषसे संयुक्त नीलवस्त्र पहरे वह देवदेव एक कुंडल धारण किये हैं ॥ ३६ ॥ हलकी ककुदपर वह श्री अविनाशी अपनी पुष्ट भुजा रखकर तथा इन्द्रके ऐरावतके समान कक्षा धारण कर विराजते हैं ॥३७॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शियोंने देवेशको उदारलीलावाला वर्णन किया है ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारायण बोले भगवान् सनातन ब्रह्मपुत्र इनका प्रभाव ब्रह्मसभामें गाया करते हैं ॥ १ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लयके हेतु जिसके गुण हैं जिसकी ईक्षासे सत्वादि प्रकृतिके

माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुतां सदा ॥ नीलवासा देवदेव एककुंडलभूषितः ॥२६॥ हलस्य ककुदि न्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययाम् ॥ महेंद्रः कांचनीं यद्वद्वरत्रां च मतंगमः ॥२७॥ उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥ इ० दे० भा० म० अष्टमस्कंधे विंशोध्यायः ॥ २० ॥ नारायण उवाच ॥ तस्यानुभावं भगवान्ब्रह्मपुत्रः सनातनः ॥ सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते ॥ १ ॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकनामात्मन्नानाधात्कथमुहवेदतस्य वर्त्म ॥२॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनां स्युदारवीर्यः ॥ ॥ ३ ॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्त्तो वा यदि पतितः प्रलंभनाद्वा ॥ हंत्यहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ४ ॥

गुण अपने २ कार्यमें समर्थ होते हैं जिसका रूप ध्रुव और अनादि हैं जो एक होकर भी अपनेमें अनेक प्रपंच धारण करते हैं उस ब्रह्मरूपका सत्त्व यह प्राणी कैसे जान सकता है ॥ २ ॥ जिसके द्वारा यह सत् असत् प्रकाश करता है वही भक्तोंके ऊपर कृपाकर सत्त्वमूर्ति धारण करते हैं। अपने भक्तोंके मन वशीभुत करनेको जिसकी लीलासिंहरूप है उन्हींसे यह कार्यकारणमय विश्व दिखाई देता है मोक्षकी इच्छावाले उन उदार वीर्यका सेवन क्यों न करें ॥ ३ ॥ आर्त वा

पतित अवस्थामें अथवा उपहासमें भी उसका नाम एकवार कीर्तन करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप उसी समय दूर होजाते हैं, मोक्षाभिलाषी पुरुषगण इन अनन्त भगवानके अतिरिक्त और किसके आश्रय ग्रहण करैं ॥ ४ ॥ शैल, सागर, सरित, सम्पूर्ण प्राणियों सहित यह विशाल भूमि अपने मस्तकपर अणुवत् धारण करते हैं वे अनन्तस्वरूप हैं इस कारण उनके विक्रमका किसी प्रकार क्षय नहीं होता, यदि किसीके सहस्र जिह्वा हैं तो भी कोई उनके कार्य परम्पराके वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होता॥५॥इस प्रकार प्रभाववाले अनन्त गुण सम्पन्न भगवान्

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥ आनंत्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ ५ ॥ एवंप्रभावो भगवाननंतो दुरंतवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतंत्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥६॥ एता ह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम ॥ गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः ॥ ७ ॥ यथोपदेशं च कामान्सदा कामयमानकैः ॥ एतावतीर्हि राजेंद्र मनुष्यमृगपक्षिषु ॥ ८ ॥ विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगास्तथा ॥ उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं निबोधत ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ वैचित्र्यमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम् ॥ समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथात ॥१०॥ नारायण उवाच ॥ कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः ॥ त्रिगुणत्वात्सदा तासां फलं विसदृशं त्विह ॥ ११ ॥

अनन्त स्वतंत्रता पूर्वक भूमिके मूल भागमें स्थित ह जो अपनी लीलासे विश्वको धारण करते हैं ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य जिस प्रकार कर्म करै और शास्त्रविहित पदवीमें परतंत्र होकर ॥ ७ ॥ सर्वदा जिस प्रकार कामना करता है इस लोकमें उसीके अनुसार हे राजेन्द्र ! मनुष्य मृगपक्षियोंमें ॥ ८ ॥ यह विपाकगति धर्मकी वशगामिनी कही हैं यह तुम्हारे प्रश्नानुसार सब प्रकार उच्चावच गति कही ॥ ९ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! प्राणियोंके विहित कर्म सबही समान हैं, परमात्मा भगवानने इस जगत्को विचित्र क्यों किया है ॥ १० ॥ नारायण बोले

हे नारद ! कर्ताकी श्रद्धाके अनुसार कर्मकी गति अनेक प्रकारकी होती है कारण कि यह श्रद्धा त्रिगुणात्मक होनेसे फल भिन्न भिन्न देती है ॥ ११ ॥ सात्विकी श्रद्धासे कर्म करनेसे सदा सुख होता हैं और राजसी श्रद्धासे दुःखरूप होता है ॥१२॥ दुःख और मूढता तामसी श्रद्धासे होती है, श्रद्धाके तारतम्यसे फल विचित्र होता है ॥ १३ ॥ अनादि अविद्यासे विहित कर्मोंके परिणामसे होनेके कारण सहस्रों गति होजाती हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रविस्तारसे मैं इनके भेद कहता हूं त्रिजगतीके अन्तरालमें दक्षिणदिशामें ॥ १५ ॥ भूमिके अधोभाग अतलके

सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं जायते सदा ॥ दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्याश्रद्धया भवेत्॥१२॥ दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम् ॥ तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवैचित्र्यमीरितम् ॥१३॥ अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः ॥ सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुंगव॥१४॥ तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचुर्येण द्विजोत्तम ॥ त्रिजगत्या अंतराले दक्षिणस्यां दिशीह वै ॥१५॥ भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगण वर्तंते पितरश्च ह ॥१६॥ वसंति यस्यां स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः ॥ सत्याः समाधिना शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै ॥१७॥ पितृराजोऽपि भगवान्संपरेतेषु जंतुषु ॥ विषयं प्रापितेष्वेषु स्वकीयैः पुरुषैरिह ॥ १८ ॥ सगणो भगवत्प्रोक्ताज्ञापरो दमधारकः ॥ यथाकर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक् ॥१९॥ स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान्॥सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान् ॥२०॥नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयंति हि ॥ अष्टाविंशमितान्केचित्ताननुक्रमतो ब्रुवे ॥ २१ ॥ तामिस्र अंधतामिस्रो रौरवोऽपि तृतीयकः ॥ महारौरवनामा च कुंभीपाकोऽपरो मतः ॥२२॥

ऊपर अग्निष्वात्तानामक पितृगण और पितर ॥१६॥ निवास करते हैं वे परम समाधि साधनसे वहां स्थित हो अपने गोत्रोंकी आशीर्वाद करते हैं ॥१७॥ इसी प्रकार पितृराज भगवान् यम अपने पुरुषों द्वारा लाये हुए॥१८॥मृत प्राणीके प्रति यथाकर्म यथा दोषके अनुसार दण्ड देते हैं दण्डधारी भगवत्के वे गण हैं॥१९॥ धर्मके तत्त्व जाननेवाले आज्ञामें वर्तनेवाले यथा देशमें नियोजित अपने गणोंको निरन्तर भेजते हैं ॥२०॥ कोई नरकोंकी संख्या इक्कीस कोई अठाईस कहतेहैं यथा संख्यक आपसे वर्णन करता हूं॥२१॥ तामिस्र,अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक॥२२॥

कालसूत्र, असिपत्रार्णव, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन ॥ २३ ॥ संदंश, तप्तमूर्ति, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी ॥ २४ ॥ पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन ॥ २५ ॥ अवीचि, अपःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण, संभोज, शूलप्रोत, ॥ २६ ॥ दंदशूक, वाटारोध, पर्यावर्तन, सूचीमुख, यह अट्ठाईस नरक हैं॥२७॥ यह नारकियोंको दुःख देनेवाली भूमियें हैं, हे नारद ! कर्मद्वारा प्राणी इनमेंगमन करते हैं॥२८॥इतिश्रीदेवी भागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥२१ ॥ नारदजी बोले हे सनातनमुने ! कर्मभेद कितने हैं और वे यातनाभूमि कैसे प्राप्त

कालसूत्रं तथा चासिपत्रारण्यमुदाहृतम् ॥ शूकरस्य मुखं चांधकूपोऽथ कृमिभोजनः ॥ २३ ॥ संदंशस्तप्तमूर्तिश्च वज्रकटंक एव च ॥ शाल्मली चाथ देवर्षे नाम्ना वैतरणी तथा ॥ २४ ॥ पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम् ॥ लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम् ॥२५॥ अवीचिरप्ययःपानं क्षारकर्दम एव च ॥ रक्षोगणाख्यसंभोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम् ॥ २६ ॥ दंदशूको वटारोधः पर्यावर्तनकः परम् ॥ सूचीमुखमिति प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः ॥ २७ ॥ इत्येते नारका नाम यातनाभूमयः पराः ॥ कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसंभव ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥ नारद उवाच ॥ कर्मभेदाः कतिविधाः सनातन मुने मम ॥ श्रोतव्याः सर्वथैवेते यातनाप्राप्तिभूमयः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि ॥ हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः ॥ २ ॥ कालपाशेन संबद्धो याम्यैरति भयानकैः ॥ तामिस्रनामनरके पात्यते यातनास्पदे ॥ ३ ॥ ताडनं दंडनं चैव संतर्जनमतः परम् ॥ याम्याः कुर्वंति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि ॥ ४ ॥ मूर्च्छामायाति विवशो नारकी पद्मभूसुत ॥ यः पतिं वंचयित्वा तु दारादीनुपभुज्यति ॥ ५ ॥

होती हैं सो कहिये ॥१॥ श्रीनारायण बोले जो दुष्टात्मा पराया धन, दारा, सन्तान हरण करता है उसको यमदूत मारते हैं ॥ २ ॥ वे भयानक यमदूत कालपाशमें बांधकर महादुःखदायक तामिस्र नरकमें डालते हैं ॥ ३ ॥ वहां यमदूत पाश हाथमें लिये उसको ताडते दंड देते और घुडकते हैं ॥ ४ ॥ हे नारद ! तब यह नारकी मूर्छाको प्राप्त होता है जो कोई अपने स्वामीकी वंचना करके उसकी दाराको भोग करता

है ॥ ५ ॥ यमकिंकर उसको अंधतामिस्र नरकमें डालदेता है जहां पड़कर इसको महादुःख होता है ॥ ६ ॥ तत्काल इसकी दृष्टि और मति नष्ट हो जाती है मूल भग्न होनेसे जैसे वृक्ष होता है यही दशा इसकी होती है ॥ ७ ॥ इस कारण इसका अंधतामिस्र नाम कहा है जो प्राणी अहंकारके वश हो निरन्तर भूतोंसे द्रोह करते हैं ॥८॥ और कार्यमें लंपट हो अपने कुटुम्बको ही पुष्ट करते हैं वह यह सब यही छोडकर अपने कर्मसे ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंको भयावह रौरव नरकमें पडते हैं और जिन्होंने इस लोकमें प्राणियोंकी हिंसा की है ॥ १० ॥ वेही रुरु

अंधतामिस्रनरके पात्यते यमकिंकरैः ॥ पात्यमानो यत्र जंतुर्वेदनापरवान्भवेत् ॥ ६ ॥ नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाविलंबतः ॥ वनस्पतिर्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह ॥ ७ ॥ तस्मादप्यंधतामिस्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः ॥ एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम् ॥ ८ ॥ पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयकुटुंबं कार्यलंपटः ॥ एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह ॥ ९ ॥ रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे ॥ इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जंतवः पुरा ॥१०॥ त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयंति तम् ॥ तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः ॥११॥ रुरुः सर्पादतिक्रूरो जंतुरुक्तः पुरातनैः ॥ एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः ॥१२॥ यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसंभवः ॥ क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्ये घातयंति च ॥१३॥ य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि ॥ उपरंधयते मूढो याम्यास्तं रंधयंति च ॥१४॥ कुंभीपाके तप्ततैले उपर्यपि च नारद ॥ यावंति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्रकम् ॥१५॥ पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके ॥ अग्न्यर्काभ्यां तप्यमाने नारकी विनिवेशितः ॥ १६ ॥

होकर दूसरे जन्ममें उसको पीडा देते हैं इस कारण पुराणज्ञाता महात्मा इसको रौरव कहते हैं ॥ ११ ॥ पुरातन कहते हैं कि रुरु सर्पसे भी अति क्रूर हैं इसीप्रकार महा रौरव नामक नरक है ॥ १२ ॥ जो दूसरोंको यातना करते हैं वे उसमें पडते हैं और रुरुनामक क्रव्यादगण उसके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ १३ ॥ जो कोई क्रूर और उग्र पुरुष पशुपक्षियों को बंधनमें डालताहै यमदूत उसको बांधतेहैं ॥ १४ ॥ वह उसे कुंभीपाकमें डालकर ऊपरसे तत्ता तेल डालते हैं, जितने पशुके रोम हैं उतनेही सहस्रवर्षतक ॥ १५ ॥ पिता ब्राह्मणका द्रोही कालसूत्र

नरकमें पडता है अग्नि और सूर्यद्वारा तपाया जाकर नरकमें पडता है ॥ १६ ॥ क्षुधा, पिपासासे, इसका शरीर भीतर, बाहर तप्त होता है, वहीं रहना, सोना, फिरना और बैठना, दौडना, होता है ॥ १७ ॥ जो अपने वेद मार्गसे पृथक् होकर पाखण्डमार्गमें चलता है विना आपदाके ऐसा करनेसे उस पापीपुरुषको यमकिंकर ॥ १८ ॥ असिपत्रनामक नरकमें डालते हैं और उस नारकीके चाबुक मारते हैं ॥ १९ ॥ तब वह इधर उधर दौडता है और दुधारवाले असिपत्रोंसे विदीर्ण हो जाता है " यातना भोगनेको एक शरीर मिलता है जिसको पीडा होती और

क्षुत्पिपासादह्यमानान्तःशरीरस्तथा बहिः ॥ आस्ते शेते चेष्टते चावतिष्ठति च धावति ॥ १७ ॥ निजवेदपथाद्यो वै पाखंडं चोपयाति च ॥ अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः ॥१८॥ असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयंति च ॥ कशया प्रहरंत्येव नारकी तद्गतस्तदा ॥१९॥ इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगतः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः ॥ २० ॥ संछिद्यमानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति मूर्छितः ॥ वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदेपदे ॥ २१ ॥ स्वधर्मानुगतं भुंक्ते पाखंडफलमल्पधीः ॥ यो राजा राजपुरुषो दंडयेद्वै त्वधर्मतः ॥ २२ ॥ द्विजे शरीरदंडं च पापीयान्नारकी च सः ॥ नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिंकरैः ॥२३॥ विनिष्पिष्टावयवको बलवद्भिस्तथेक्षुवत् ॥ आर्तस्वरेण स्वनयन्मूर्छितः कश्मलं गतः॥२४॥ संपीड्यमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि ॥ विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम् ॥ २५ ॥

प्राण नहीं निकलता ॥२०॥ सब अंग छेदन होनेसे "हा मैं मरा" ऐसा कह मूर्च्छित होता है परमदुःखको प्राप्त हो पदपदमें गिरता है॥२१॥और वह दुष्टबुद्धि अपने धर्मानुसार पाखंडफलको भोगता है जो राजा वा राजपुरुष अधर्मसे प्रजाको दंड देता है ॥ २२ ॥ तथा ब्राह्मणके शरीरमें दण्डप्रहार करता है वह नरकको जाता है, यमदूत उसको सूकरमुख नरकमें डालते हैं ॥ २३ ॥ वहां कोल्हूमें इसके अंग बलपूर्वक पीसे जाते हैं तब आर्तस्वरसे शब्द करता हुआ मूर्च्छित होता है ॥ २४ ॥ महापीडाको प्राप्त हो वेदनाको प्राप्त होता है जो

पराई पीडाको नहीं जानता और कुत्सित कर्म करता हो ॥ २५ ॥ और ईश्वरद्वारा कल्पित रक्तपानादिकी वृत्तिवाले मत्कुणादिको व्यथा देते हैं वह अंधकूपनाम नरकमें डाले जाते हैं ॥ २६ ॥ वहां यह क्रूर जन्तु, पशु, मृग, पक्षीगण, सरीसृप, मशक, यूका, मत्कुण (खटमल), ॥ २७ ॥ मक्खी, दंदशूकादि द्वारा अंधकारमें पीडा पाते हैं यह अवस्था कुशरीरकी नाई देहमें आक्रमण करती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष यत् किंचित् अन्न और धनादिको प्राप्त होकर उससे शास्त्रविहित पंचयज्ञके अनुष्ठानपूर्वक देवताके उद्देश्यसे विभाग न करके काकके

ईश्वरांकितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम् ॥ स चांधकूपे पतति तदरिद्रोहयंत्रिते ॥ २६ ॥ तत्रासौ जंतुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः ॥ सरीसृपैश्च मशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः ॥ २७ ॥ मक्षिकाभिश्च तमसि दंदशूकैश्च पीड्यते ॥ परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जंतुवत् ॥ २८ ॥ यस्तु संविहितैः पंचयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः ॥ अश्नाति चासंविभज्य यत्किंचिदुपपद्यते ॥ २९ ॥ स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने ॥ नरकाधमके दुष्टकर्मणा परिपात्यते ॥ ३० ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयंकरे ॥ कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम् ॥ ३१ ॥ अप्रत्ताप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै ॥ यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं रत्नमेव च ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित् ॥ अनापदि च देवर्षे तममुत्र यमानुगाः ॥ ३३ ॥ अयस्मयैरग्निपिंडैः सदंशैर्निष्कुषंति च ॥ योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यं पुरुषं च या ॥ ३४ ॥

समान स्वयं भोग करता है ॥ २९ ॥ वह पापी पुरुष यमदूतोंद्वारा कृमिभोजन नरकमें पडकर अपने दुष्ट कर्मोंका फल भोगता है ॥ ३० ॥ वह भयंकर कीडोंका कुंड लाख योजनके विस्तारमें है वहां वे कृमिरूपसे उसका भक्षण करते हैं ॥ ३१ ॥ जो विना अतिथियोंको दिये स्वयं आपही खाजाता है वह इसमें पडता है जो कोई चोरी वा बलसे सुवर्ण वा रत्न ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण वा और किसीका हरण करता है विना आपत्तिके ऐसा करनेपर उसे यमदूत ॥ ३३ ॥ लोहेके लाल किये अग्नि, पिंडोंसे उसे कूटते हैं जो पुरुष अगम्या स्त्रीमें गमन करता

असत्य भाषण करते हैं ॥ १ ॥ वे मरकर अवीचिनरकमें पडते हैं सौ योजन ऊंचे पहाडपरसे नीचे गिराये जाते हैं ॥ २ ॥ अना-काशमें नीचा शिरकर इस नरकमें गिराये जाते हैं जहां स्थलभाग जलके समान तरंगवाला दीखता है ॥ ३ ॥ इसीसे इसे अवीचि कहते हैं इसमें गिरकर शरीर तिल २ छिन्न होजाता है पर हे नारद ! मरता नहीं फिर नवीन शरीर होजाताहै ॥ ४ ॥ हे नारद ! जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य सोमपान कर प्रमादवश सुरापान करते हैं ॥ ५ ॥ तो वह भी नरकमें जाते हैं हे मुने ! यमदूत उनको गरम लोहा

ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे ॥ योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः पतंति हि ॥ २ ॥ अनाकाशेऽधःशिरसस्तदवीचीतिनामके ॥ यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम् ॥ ३ ॥ अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिन्नविग्रहः ॥ म्रियते नैव देवर्षे पुनरेवावरोप्यते ॥ ४ ॥ यो वा द्विजो वा राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसंभव ॥ सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिबतीव हि ॥५॥प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम्॥कुर्वंति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने॥६॥वह्निना द्रवमाणस्य नितरां ब्रह्मसंभव॥ संभावनेन स्वस्यैव योऽधमोऽपि नराधमः ॥ ७ ॥ विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान् ॥ वरीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः ॥ ८ ॥ स नीयते यमभटैः क्षारकर्दमनामके ॥ निरयेऽर्वाक्शिरा घोरां दुरंतयातनाश्नुते ॥ ९ ॥ ये वै नरा यजंत्यन्यं नरमेधेन मोहिताः ॥ स्त्रियोऽपि वा नरपशुं खादंत्यत्र महामुने ॥ १० ॥ पशवो निहतास्ते तु यमसद्मनि संगताः ॥ सौनिका इव ते सर्वे विदार्य सितधारया ॥११॥ असृक्पिबंति नृत्यंति गायंति बहुधा मुने ॥ यथेह मांसभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः ॥१२॥

पिलाते हैं ॥६॥ हे नारद ! जो निरन्तर अग्निसे पिघलाया जाता है जो नराधम अपने गौरवपरायण होकर ॥ ७ ॥ विद्या जन्म तपसे बडे वर्णाश्रमके आचारवाले जनोंके वरिष्ठ और श्रेष्ठ जानकर आदर नहीं करते ॥ ८ ॥ यमदूत उनको क्षारकर्दम नरकमें डालते हैं वहां नीचे शिरकर घोर यातना भोगनी पडती है ॥९॥ जो स्त्री वा पुरुष मोहित होकर अन्य देवको नरपशुद्वारा यजन करते हैं अर्थात् मांस भक्षणको ऐसा करते हैं ॥ १० ॥ वेमरे हुए पशु यमलोकमें प्राप्त हुए सैनिकके समान तीक्ष्ण खड्गसे विदीर्ण कर ॥ ११ ॥ उन पुरुषोंका रक्तपान

कर अनेक प्रकार नाचते गाते हैं जैसे यहां दुरासद मांसभोजी पुरुष हैं वैसा ही करते हैं ॥१२॥ हे नारद ! जो विना अपराध वन वा ग्राममें अनेक प्रकार विश्वासोंके उपायोंसे जीवन धारणकी इच्छावालोंको विश्वास देकर ॥ १३ ॥ शूलसूत्रादिमें पाकर क्रीडा करते हैं मर कर वे यमदूतोंद्वारा शूलपात नरकमें डाले जाते ह ॥ १४ ॥ वहां उनका देह शूलमें पोया जाताहै क्षुधा पिपासासे बडे पीडित होते हैं तीक्ष्ण तुंडवाले कंक और बकोंसे ताडित होते हैं ॥ १५ ॥ वे पीडित हो अपने पापोंको स्मरण करते हैं जो तीक्ष्ण वृत्तिवाले पुरुष प्राणि

अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे वा ब्रह्मपुत्रक ॥ वैश्रंभकैरुपसृतान्विश्रंभय्य जिजीविषून् ॥ १३ ॥ शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव ॥ पातयंति च ते प्रेत्य शूलपाते पतंति ह ॥ १४ ॥ शूलादिषु प्रोतदेहाः क्षुत्तृड्भ्यां चातिपीडिताः ॥ तिग्मतुंडैः कंकबकैरितश्चेतश्च ताडिताः ॥१५॥ पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरंति हि ॥ ये भूतानुद्वेजयंति नरा उल्वणवृत्तयः ॥१६॥ यथा सर्पादिकास्तेऽपि नरके निपतंति हि ॥ दंदशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठंति सर्वतः ॥१७॥ पंचाननाः सप्तमुखा ग्रसंति नरकागतान् ॥ यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः ॥ १८ ॥ येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुंधते ॥ तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरिसेवकाः ॥ १९ ॥ तेष्वेवो पविशित्वा च वह्निना सगरेण च ॥ धूमेन च निरुंधंति पापकर्मरतान्नरान् ॥ २० ॥ योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा ॥ पापेनेहा लोकयेच्च स्वयं गृहपतिर्द्विजः ॥ २१ ॥

योंको उद्विग्न करते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सर्प भय देते हैं ऐसे पुरुष भी नरकमें पडते हैं जो नरक दंदशूक है उसमें निरन्तर रहते हैं ॥ १७ ॥ वे पांच सात मुखवाले नरकवासियोंको निरन्तर काटते हैं हे नारद ! जिस प्रकार बिलमें शयन करनेवाले मूषोंको सर्प उद्वेजित करते हैं ॥ १८ ॥ जो जीवगणोंको अन्धकूपमें तथा अन्धकारमय गुदादिमें बद्ध करते हैं यमकिंकर हाथ उठाकर उनको ॥ १९ ॥ विषविमिश्रित अग्नि और धूमसे परिपूर्ण वैसीही गुहाओंमें रुद्ध करते हैं ॥ २० ॥ जो गृहपति ब्राह्मण समयपर प्राप्त हुए अतिथियोंको नेत्रोंसे भस्म करनेसे पापदृष्टि

फैलाकर देखते हैं ॥ २१ ॥ यमके अनुचरगण वज्रतुण्ड कंक और काकवटादि विहंगम ॥ २२ ॥ तथा क्रूरतरगृध्र बलपूर्वक उनके नेत्र फोडते हैं जो धनगर्वित पुरुष अहंकारसे बड़ा गर्व प्रकाश करते ॥२३॥ और तिरछी दृष्टिसे गुरु आदिमें धन चोरादिका सन्देह करते और निरन्तर धनके आयव्ययमेंही चिन्तित रहते हैं ॥२४॥ इसीमें सदा जिनका हृदय और मुख सूखता है कभी शान्त नहीं होता धनकी रक्षा ब्रह्मराक्षसके समान करते हैं यमकिंकर उनको ॥ २५ ॥ उनके कर्मानुसार सूचीमुख नरकमें डालते हैं और इस अर्थ पिशाच

तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिंकराः ॥ अक्षिणी वज्रतुंडा ये कंकाः काकवटादयः ॥२२॥ गृध्राः क्रूरतराश्चापि प्रसह्योत्पाटयंति हि ॥ य आढ्याभिमतिर्याति अहंकृत्याऽतिगर्वितः ॥२३॥ तिर्यक्प्रेक्षण एवात्राभिविशंकी नराधमः ॥ चिंतयाऽर्थस्य सर्वत्रायति व्ययस्वरूपया ॥२४॥ शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति ॥ ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिंकरैः ॥२५॥ सूचीमुखे च नरके पात्यते निजकर्मणा ॥ वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः ॥२६॥ किंकराः सर्वतोऽगेषु सूत्रैः परिवयंति हि ॥ एते बहुविधा वित्तनरकाः पापकर्मणाम् ॥ २७ ॥ नराणां शतशः संति यातनास्थानभूमयः सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तास्तथाऽपि हि ॥ २८ ॥ विशंति नरकानेतान्यातनाबहुलान्मुने ॥ तथा धर्मपराश्चापि लोकान्यांति सुखोद्भतान् ॥ २९ ॥ स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने ॥ देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः ॥ ३० ॥

पुरुषको वायक (जुलाहे) के समान यमदूत ॥ २६ ॥ सर्वांगमें सूत्रद्वारा वयन करते हैं इस प्रकारसे अनेको नरक पापियोंको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पापियोंको सैंकडों यातना स्थानकी भूमियें हैं हे देवर्षे सहस्रों कहे और वे कहे स्थान हैं ॥ २८ ॥ हे मुने ! इनमें बड़ी यातना प्राप्त होती है और धर्मपरायण सुखके लोकोंमें गमन करते हैं ॥ २९ ॥ उनकोंउत्तम स्थान प्राप्तिका धर्म बहुत

प्रकार कहा है वह देवी पूजनरूप श्रेष्ठ धर्म है ॥ ३० ॥ जिसके अनुष्ठान मात्रसे यह प्राणी नरकको नहीं जाता पूजन करनेवाले मनुष्योंको वह देवी संसार सागरसे उद्धार करती है ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद बोले हे भगवन्! देवी आराधनरूप धर्म किस प्रकार है वह देवी आराधित होकर किस प्रकार परमपद देती है ॥ १ ॥ उसके आराधनकी विधि क्या है वह कब किस प्रकार आराधन कीजाती है किस प्रकार वह बडे नरकसे निकालकर रक्षा करती है ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले हे ज्ञाताओंमें

येनाऽनुष्ठितमात्रेण नरोन नरकं व्रजेत्॥ सा देवी भवपाथोधेरुद्धत्रीं पूजिता नृणाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः ॥ कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम् ॥ १ ॥ आराधनविधिः को वा कथमाराधिता कदा ॥ केन सा दुर्गनरकाद्दुर्गा त्राणप्रदा भवेत् ॥२॥ श्रीनारायण उवाच देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषांवर ॥ यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम् ॥ ३ ॥ स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद ॥ अनादाविह संसारे देवी संपूजिता स्वयम् ॥ ४ ॥ परिपालयते घोरसंकटादिषु सा मुने ॥ सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु ॥ ५ ॥ प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत् ॥ घृतं दद्याद्ब्राह्मणाय रोगहीनो भवेत्सदा ॥ ६ ॥ द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदंबिकाम् ॥ शर्करां प्रददेद्विप्रे दीर्घायुर्जायते नरः ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ ! आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये जैसे धर्माराधनसे देवी प्रसन्न होती है ॥३॥ हे नारद ! जिसको स्वधर्म कहते हैं वह आप मुझसे सुनिये अनादि इस संसारमें देवीकी भली प्रकार पूजा करनेसे ॥ ४ ॥ हे मुने ! वह घोर संकटसे इस संसारमें रक्षा करती है सो लोक उस देवीको जिस विधानसे पूजते हैं वह सुनो ॥ ५ ॥ प्रतिपदातिथिको देवीका घृतसे पूजन करै और ब्राह्मणके निमित्त घृत देनेसे सदा रोगहीन होता है ॥ ६ ॥ द्वितीयाको जगदम्बिकाका शर्करासे पूजन करै ब्राह्मणको शर्करा देनेसे दीर्घायुको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तृतीयाको देवीका दूधसे पूजन करै ब्राह्मणको इस दिन क्षीर देनेसे सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ८ ॥ चौथको देवी और ब्राह्मणको पुए देनेसे विघ्न नहीं होते ॥ ९ ॥ पांचैको देवीको और ब्राह्मणको कदली देनेसे पुरुष बुद्धि मान् होता है ॥ १० ॥ छठको मधुसे देवीका पूजन करै ब्राह्मणको मधु देनेसे कान्तिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ सप्तमीको गुड़ और नैवेद्य देवी तथा ब्राह्मणको देनेसे शोकरहित होता है ॥ १२ ॥ अष्टमीको देवीके निमित्त नैवेद्य और नारियल ब्राह्मणको देनेसे यह प्राणी तापहीन होता है ॥ १३ ॥ नौमीको देवी और ब्राह्मणके निमित्त

तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि ॥ क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्र्याय सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ८ ॥ चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च ॥ अपूपा एव दातव्या न विघ्नैरभिभूयते ॥ ९ ॥ पंचम्यां कदलीजातं फलं देव्यै निवेदयेत् ॥ तदेव ब्राह्मणे देय मेधावान्पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥ षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि ॥ ब्राह्मणाय च दातव्यं मधुकांतिर्यतो भवेत् ॥ ११ ॥ सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च ॥ गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम ॥ १२ ॥ नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयेत् ॥ ब्राह्मणाय प्रदातव्यं तापहीनो भवेन्नरः ॥ १३ ॥ नवम्यां लाजमंबायै चार्पयित्वा द्विजाय च ॥ दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च ॥ १४ ॥ दशम्यामर्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने ॥ ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं नहि ॥ १५ ॥ एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु यः ॥ ददाति ब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत् ॥ १६ ॥ द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाऽऽचार्याय यो ददेत् ॥ तानेव च मुनिश्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत् ॥ १७ ॥ त्रयोदश्यां च दुर्गायै चणकान्प्रददाति च ॥ तानेव दत्त्वा विप्राय प्रजासंततिमान्भवेत् ॥ १८ ॥

लाजा देनेसे इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है ॥ १४ ॥ हे मुने ! दशमीको देवीके निमित्त काले तिल चढावे ब्राह्मणको देनेसे यमका भय नहीं होता ॥ १५ ॥ एकादशीको दहीसे देवीकी पूजा कर ब्राह्मणको देनेसे देवीके प्रिय होता है ॥ १६ ॥ द्वादशीको देवी और ब्राह्मणको पृथुक (चूरा) देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १७ ॥ तेरसको देवी और ब्राह्मणको चने देनेसे प्रजा औ

सन्तानवाला होता है ॥१८॥ हे नारद ! चौदसको देवी और ब्राह्मणके निमित्त सत्तू देनेसे शिवका प्रिय होता है ॥१९॥ पूर्णिमाको जो अपर्णाको खीरसे पूजन कर ब्राह्मणको देता है उसके सब पितरोंका उद्धार होता है ॥२०॥ हे महामुने ! उस तिथिमें पजापटलके कहे अनुसार नित्य हवन करै तो सम्पूर्ण अरिष्ट शान्त होते हैं ॥ २१ ॥ रविवारको पायसका नैवेद्य देना, सोमवारको दूध, मंगलको कदलीफल ॥ २२ ॥ बुधको नवनीत (मक्खन), गुरुवारको शर्करा, शुक्रवारको मिश्री ॥ २३ ॥ शनिवारको गौका घी नैवेद्य कहा है हे मुने ! अब सत्ताइस नक्षत्रोंका नैवेद्य सुनो

चतुर्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति॥तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत् ॥ १९ ॥ पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रयच्छति॥ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान्॥२०॥तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने॥तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम्॥२१॥ रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम्॥सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम्॥२२॥बुधवारे च संप्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज॥गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे ॥ २३ ॥शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम् ॥ सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने ॥२४॥ घृतं तिलं शर्करां च दधिदुग्धं किलाटकम्॥दधिकूर्चीं मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम् ॥२५॥ कंसारं वटपत्रं च घृतपूरमतः परम् ॥ वटकं कोकरसकं पूरणं मधु सूरणम् ॥ २६ ॥ गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम् ॥ अपूपं नवनीतं च मुद्गमोदक एव च ॥२७॥ मातुलिंगमिति प्रोक्तं भनैवेद्यं च नारद ॥ विष्कंभादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम् ॥ २८ ॥ पदार्थानां कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदंबिका ॥ गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम् ॥२९॥ नवनीतं कर्कटीं च कूष्माण्डं चापि मोदकम्॥ पनसं कदलं जंबुफलमाम्रफलं तिलम् ॥ ३० ॥

॥ २४ ॥ घी, तिल, शर्करा, दही, दूध, दूधकी मलाई, दधिकूर्ची, लड्डू, फेनी, घृतमंडक ॥२५॥ कसार वटपत्र (पापड) घेवर, वटक, खर्जूररस, गुड निर्मित चणकपिष्ट, शहत, घृतमें भुना सूरण ॥ २६ ॥ गुड पृथुक, द्राक्षा, खजूर, चारक, (खाद्यविशेष) अपूप (पूये) मक्खन, मूंगके लड्डू ॥ २७ ॥ और मातुलिंग (बिजारा नींबू) यह क्रमसे अश्विनी आदि सब नक्षत्रोंका नैवेद्य हैं अब विष्कंभादि योगका नैवेद्य कहते हैं ॥ २८ ॥ इन पदार्थोंके देनेसे जगदम्बा प्रसन्न होती है गुड, मधु, घी, दूध, दही, तक्र, पुए ॥ २९ ॥ मक्खन, कर्कटी, कूष्माण्ड, मोदक,

पनस, केला जामन, आम, तिल ॥ ३० ॥ नारंगी, दाडिमी, बेर, आमला, पायस, पृथुक, चने ॥ ३१ ॥ नारियल, जंबीरी, कसेरू, जिमी कंद हे विप्र ! यह क्रमसे सुन्दर नैवेद्य ॥ ३२ ॥ विष्कंभादि योगोंमें महर्षियोंने निर्णय की हैं हे मुने ! अब पृथक् पृथक् करणोंका नैवेद्य कहते हैं, ॥३३॥ कसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्रक, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी, मधु ॥ ३४ ॥ यह करणोंमें आदरसे नैवेद्य देना अब और भी देवीका प्रीति विधायक ॥३५॥ विधान कहता हूं हे नारद ! सो आदरसे सुनो मनुष्य चैत्र शुदी दोयजको महुएके पेड़को ॥ ३६ ॥ पूजन

नारंगं दाडिमंचैवं बदरीफलमेव च ॥ धात्रीफलं पायसं च पृथुकं चणकं तथा ॥ ३१ ॥ नारिकेलं जंभफलं कसेरुं सूरणं तथा ॥ एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च ॥३२॥ विष्कंभादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः ॥ अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने ॥३३॥ कंसारं मंडकं फेणी मोदकं वटपत्रकम्॥लड्डुकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु ॥ ३४ ॥ करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात् ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि देवी प्रीतिकरं परम् ॥ ३५ ॥ विधानं नारद मुने शृणु तत्सर्वमादृतः ॥ चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम् ॥ ३६ ॥ पूजयेत्पंच खाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत् ॥ एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात् ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे ॥ वैशाखमासे नैवेद्यं गुडमुक्तं च नारद ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु ॥ आषाढे नवनीतं च मधुकस्य निवेदनम् ॥ ३९ ॥ श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा ॥ आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्त्तिके पय उत्तमम् ॥ ४० ॥ मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधिकूर्चिका ॥ माघे मासि च नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत् ॥४१॥ नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम् ॥ एवं द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत् ॥ ४२ ॥

कर पंचमेवा निवेदन करै इस प्रकार बारह महीनोंमें तीज आदि तिथियोंमें क्रमसे ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षके विधानसे नैवेद्य दे हे नारद ! वैशाख मासमें गुडयुक्त नैवेद्य दे ॥३८॥ ज्येष्ठके महीनेमें देवीकी प्रीतिके निमित्त मधु दे आषाढमें नवनीत और मधूक दे ॥३९॥ श्रावणमें दही, भादोंमें शर्करा, आश्विनमें पायस, कार्तिकमें दूध दे ॥४०॥ अगहनमें फेनी, पूषमें दधिकूर्चिका, माघमें गौका घी ॥४१॥ और फाल्गुनमें नारियलकी

नैवेद्य दे, इस प्रकार बारह महीनेमें क्रमसे नैवेद्य देकर पूज ॥ ४२ ॥ मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवासिनी ॥ ४३ ॥ शिवा, सहस्र चरणवाली, सब मंगलकी रूपवाली, इन नामोंसे देवीको मधूक वृक्षमें पूजन करै ॥ ४४ ॥ फिर मधूकमें स्थित देवेशीकी सब कामकी प्राप्ति और व्रतपूर्तिके निमित्त स्तुति करै ॥४५॥ पुष्करनेत्र जगत्की माता माहेश्वरी महादेवी महामंगलमूर्तिके निमित्त नमस्कार है ॥४६॥ परम पापनाशिनी, मुक्ति मार्गदायिनी परमेश्वरी प्रजाकी उत्पत्ति कारण परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥ मददायका, मदोन्मत्ता,

मंगला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ महामाया मतंगी च काली कमलवासिनी ॥४३॥ शिवा सहस्रचरणा सर्वमंगलरूपिणी॥ एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत् ॥४४॥ ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम् ॥ सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥४५॥ नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते ॥ माहेश्वर्यै महादेव्यै महामंगलमूर्तये ॥४६॥ परमा पापहंत्री च परमार्गप्रदायिनी ॥ परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥ मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता ॥ मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्ड सहचारिणी ॥४८॥ जयलोकेश्वरी प्राज्ञे प्रलयाम्बुदसन्निभे ॥ महामोहविनाशार्थं पूजिताऽसि सुरासुरैः ॥ ४९ ॥ यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा ॥ यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः ॥ ५० ॥ समस्वभावा सर्वेशी सर्वसंगविवर्जिता ॥ संगनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा ॥५१॥ कंकालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी ॥ माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता ॥ ५२॥

मानसे गम्या, महाउन्नत, मनस्विनी, मुनियोंसे ध्यान करने योग्य सूर्य मंडलोंमें स्थित ॥४८॥ सब लोकोंकी ईश्वरी, प्राज्ञतमा, प्रलय मेघके समान कान्तिमान् महामोहके नाश करनेको सुरासुरोंसे पूजित, आपकी जय हो ॥४९॥ तुमही यमलोककी निवारण करनेवाली, यमसे, पूजनीय, यमकी अग्रजा; यमकी, निग्रहरूप, सबको यजनयोग्य तुमको प्रणाम है॥५०॥ समान स्वभाव, सबकी अधीश्वरी, सब संगसे रहित, लोककी विषयाशक्ति नाशिनी, काम्या, दयामयशरीरवाली, ॥ ५१ ॥ कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदनी, माधुर्यरूपशीलवाली,मधुरस्वरसे पूजित वा प्रणवसे

पूजित ॥ ५२ ॥ तुम मायाबीजस्वरूपिणी, मंत्र जपकी सहायतासे प्राप्त होनेवाली, निदिध्यासनरूप, एकान्तविचारसे प्रसन्न होनेवाली साधक मनुष्योंके मानसमें प्राप्त, महादेवकी प्रियकरनेवाली ॥५३॥ अश्वत्थ, वट, नींब, आम, कैथ, वेर, पनस, अर्क (आक) करीरादिक्षीरवृक्ष स्वरूपवाली ॥ ५४ ॥ तुम दुग्धवल्लीमें निवासकरती दयनीयस्वरूप होनेसे अधिक दयावाली, दाक्षिण्य और करुणारूपवाली, सर्वज्ञवल्लभा हो आपकी जय हो ॥५५॥ इस प्रकारके स्तोत्रसे पूजनके अन्तमें देवीकी स्तुति करे तो मनुष्यको व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य देवीकी प्रीति करनेवाले इस स्तोत्रको नित्यप्रति पढ़ते हैं उसको आधिव्याधि और शत्रुका भय नहीं होता ॥ ५७ ॥ अर्थी अर्थ, धर्मार्थी धर्म, कामी

महामंत्रवती मंत्रगम्या मंत्रप्रियंकरी ॥ मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियंकरी ॥५३॥ अश्वत्थवटनिंबाम्रकपित्थबदरीगते ॥ पनसार्क करीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणि ॥ ५४ ॥ दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके ॥ दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे ॥५५॥ एवं स्तवेन देवेशीं पूजनांते स्तुवीत ताम् ॥ व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः ॥ ५६ ॥ नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवीप्रीतिकरं नरः ॥ आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि ॥५७॥ अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥५८॥ ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत् ॥ वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिपः ॥ ५९ ॥ स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी ॥ ६० ॥ एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या स देवीलोकभाग्भवेत् ॥६१॥ देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवंतिहि ॥ सर्व पापहतिः शुद्धा मतिरंते प्रजायते ॥ ६२ ॥ यत्र तत्र भवेत्पूज्यो मान्यो मानधनेषु च ॥ जायते जगदंबायाः प्रसादेन विरंचिज ॥६३॥

कामना, मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इसके पाठसे वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्य समृद्धि और शूद्र अधिक सुख पाता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नियत होकर श्राद्ध कालमें इस स्तोत्रको पढ़ते हैं तो उसके पितरोंकी कल्पपर्यन्त अक्षय तृप्ति होती है ॥ ६० ॥ इस प्रकार सुरपूजित देवीका आराधन कहा जो मनुष्य भक्तिसे पूजा करता है वह देवीके लोकको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥ हे नारद! देवीके पूजनसे सब काम प्राप्त होते हैं और अन्तमें सब पापसे रहित हो शुद्धमति होती है ॥ ६२ ॥ वह जहाँ तहाँ पूजित और

मान पाता है हे नारद ! जगन्माताके ही प्रसादसे वह उत्तम होता है ॥ ६३ ॥ उसको नरकका भय स्वप्नमें भी नहीं होता महामायाके प्रसादसे पुत्र पौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥ वह निःसन्देह देवीका भक्त होता है यह तुमसे नरकके उद्धार लक्षणवाला धर्म कहा ॥ ६५ ॥ महादेवीका पूजन सब मंगलकारक है हे मुने ! इसी प्रकार महीनोंके क्रमसे मधूकपूजन करना ॥ ६६ ॥ जो सब प्रकार यह मधूकं पूजन करता है वह पापरहित होता है उसको कोई रोगादि बाधाका भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त प्रकृतिस्वरूपिणी महादेवीके अपर पंचक कीर्त्तन करैंगे उसके नामरूप और उत्पत्ति आदि समुदाय जगत्को आनंददायक है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! आख्यान और माहात्म्यके

नरकाणां न तस्याऽस्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित् ॥ महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः ॥ ६४ ॥ देवीभक्तो भवत्येव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ इत्येवं ते महाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम् ॥ ६५ ॥ पूजनं हि महादेव्याः सर्वमंगलकारकम् ॥ मधूक पूजनं तद्वन्मासानां क्रमतो मुने ॥ ६६ ॥ सर्वं समाचरेद्यस्तु पूजनं मधुकाह्वयम् ॥ न तस्य रोगबाधादि भयमुद्भवतेऽनघ ॥ ६७ ॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पंचकं परम् ॥ नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या जगदानंददायकम् ॥ ६८ ॥ साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पंचकं मुने ॥ कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां समाराधनविधानेऽष्टमस्कंधे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोध्यायः ॥२४॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ १ ॥

नंदाग्निवसुभिः (८३९) पद्यैर्द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ देवीभागवतस्यास्याष्टमः स्कंध उदीरितः ॥ १ ॥

सहित यह प्रकृतिपंचक श्रवण करो यह कौतूहलकारी और मुक्तिका विधायक है ॥ ६९ ॥

'इसमें विराटस्वरूप वर्णन कर पश्चात् एक स्वरूपसे उपासना कही है सो विस्तार पूर्वक अष्टमस्कंध ८३९ श्लोकोंमें कहा है ।'

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां समाराधनविधाने अष्टमस्कन्धे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ ८ ॥ शुभमस्तु ॥

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते अष्टमस्कंधः समाप्तः ॥

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते नवमस्कंधः प्रारभ्यते।

दोहा—भालबिन्दु केशर लसत, करुणासार शृंगार ॥ फुल्लकमललोचन विमल, वन्दों वारंवार ॥ १ ॥
जगदम्बाके चरणगह, नारायण संवाद ॥ सो सब भाषाकर लिखत, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

भगवान् नारायण नारदजीसे बोले हे वत्स ! जो वेदादि सब शास्त्रोंमें ही त्रिगुण साम्यावस्थ मायाशबलित परब्रह्मरूपिणी प्रकृतिनामसे विख्यात है, वह परा प्रकृति ही सृष्टिके समयमें गणेश जननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री इन पंच मूर्तिमें आविर्भूत होती है ॥ १ ॥ नारायणके मुखसे यह बात सुनते ही नारदजीने कहा हे भगवन् ! जो पुरुष इस जगत्में ज्ञानी कहकर प्रसिद्ध हैं. आप उन सबमें अग्रणी हैं, साधुता वा ज्ञानवत्तादि सभी आपमें जाज्वल्यमान रहती है, अतएव आप अनुग्रहपूर्वक कहिये कि, वह मूल प्रकृति कौन है ? अर्थात्

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वर ॥ किं वा तल्लक्षणं साधो बभूव पंचधा कथम् ॥२॥ सर्वासां चरितं पूजाविधानं गुण ईप्सितः ॥ अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ किंचित्तथाऽपि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ ४ ॥

वह चैतन्यरूपिणी है वा जड़ात्मिका ? क्योंकि मैंने सुना है कि "मायाशबलित ब्रह्म ही प्रकृति नामसे कहे जाते हैं" जो हो. आप उसके लक्षण प्रकाश करके कहिये तो मैं सब समझ लूंगा और एक बात यह है कि उस मूलप्रकृतिके आविर्भावका कारण क्या है ? विशेषकर उनका पांच मूर्तियोंमें ही आविर्भाव क्यों होता है ॥ २ ॥ विशेषतः उन अवतीर्ण दुर्गा इत्यादि पंच मूर्त्तिमें प्रत्येककी चरित्र गाथा, पूजाविधि, और उनकी पूजाका क्या फल है ? और उनमें कौन कौन मूर्ति किस किस स्थलमें अवतीर्ण हुई थी ? यह आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥
कहा हे वत्स ! इस विश्वसंसारमें ऐसा कौन है कि जो सम्पूर्ण रूपसे प्रकृतिके लक्षण कहनेमें समर्थ हो ? किन्तु तो भी मैंने

अपने पिता धर्मके मुखसे जो कुछ सुना है, वह किंचित् कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ 'प्र' यह उपसर्ग प्रकृष्टवाचक और "कृति" यह पद सृष्टिवाचक है, अतएव जो सृष्टि विषयमें प्रकृष्ट रूपा हैं, वही महादेवी प्रकृति नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! तुमसे प्रकृति शब्दका यह जो व्युत्पत्तिलक्षण कहा, यह तटस्थ लक्षण मात्र है अब उसके स्वरूपका लक्षण कहता हूं, सावधान हो सुनो तीनों गुणोंमें सत्वगुणको विमल और ज्ञानप्रकाश करनेके कारण सर्वोत्कृष्ट जानना चाहिये, सुतरां "प्र" शब्द प्रकृष्टार्थबोधक सत्व गुणमें वर्तित है विक्षेपतादोष होनेके कारण रजोगुण मध्यम है,अतएव कृ शब्दको रजोगुणमें प्रवर्तित होनेसे मध्यम जानना चाहिये, तमोगुण ज्ञानका आवरक होनेके कारण अधर्मनामसे विख्यात है "ति" शब्द तमोगुण बोधक है ॥ ६ ॥ अतएव निरतिशयरूपमें आवरण विक्षेपादि दोषरहित वह गुणातीत चिन्मयीब्रह्मरूपिणी

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ॥ सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥ गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः ॥ मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥ ६ ॥ त्रिगुणात्मकस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता ॥ प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥ ७ ॥ प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ॥ सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥ योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः ॥ पुमांश्च दक्षिणार्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ॥ ९ ॥ सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ॥ यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्थिता ॥ १० ॥

जब उल्लिखित लक्षणाक्रान्त तीनों गुणोंसे मिलित होकर सर्व शक्तियुक्त होती है तिसी समय सृष्टिकार्यमें प्रधान है, इसीलिये उनको प्रकृति कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रकृति शब्दकी सलक्षण व्युत्पत्ति फिर कहता हूं सुनो सृष्टिकी पूर्व अवस्थाका नाम "प्र" और कृति शब्द सृष्टिवाचक है अतएव जो सृष्टिके पहले भी देदीप्यमान रहती हैं वह महादेवी ही प्रकृति नामसे कही गई हैं ॥ ८ ॥ इसका तात्पर्य यही है कि वह निरञ्जनदेव परमात्मा सृष्टिकार्यके निमित्त अपनी योगमायाके प्रभावसे दो प्रकार आविर्भूत होते हैं उन्हींके दक्षिणार्द्धभागका नाम पुरुष और वामार्द्ध भागका नाम प्रकृति है ॥ ९ ॥ अतएव हे वत्स ! उन प्रकृति देवीको नित्य ब्रह्मरूपा सनातनी जानना

चाहिये वस्तुतः जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों परस्पर भिन्न स्थित नहीं है इसी प्रकार पुरुष और प्रकृतिको अभिन्न जानो. हे वत्स नारद ! तुम ब्रह्माके मानसपुत्र हो अतएव तुमको समझानेके लिये बहुत श्रम उठाना नहीं पडेगा ॥ १० ॥ इसीलिये योगेन्द्र पुरुष प्रकृति पुरुषको अभिन्न चक्षुसे देखते हैं फलतः एकमात्र वह नित्य निरंजन चिदानंदमय निरन्तर प्रकृति पुरुषरूपमें सर्वत्र विराजमान हैं इस अनंन्त विश्वब्रह्माण्डमें जो कुछ दिखाई देता है वह सर्वही ब्रह्ममय है, इस विश्व संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उस प्रकृति पुरुषात्मक ब्रह्मके विना क्षण कालके लिये भी प्रकाश पासके ॥ ११ ॥ हे वत्स ! वह परब्रह्म अनिर्वचनीय महिमा शक्तिसंपन्न होनेपर भी मैंने तुम्हारी शक्ति और ज्ञानका उदय होनेके लिये उनके किंचिन्मात्र तत्त्वका वर्णन किया इस प्रकार इच्छामय सर्व

अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते ॥ सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद॥११॥ स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया ॥ साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ १२ ॥ तदाज्ञया पंचविधा सृष्टिकर्मविभेदिका ॥ अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रह विग्रहा ॥ १३ ॥ गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया ॥ नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥ १४ ॥

ज्ञानैश्वर्य शक्तिमान् उन कृष्ण परमात्माको सृजनाभिलाषात्मिका इच्छाके उदय होतेही सहसा वह मूलप्रकृति (स्वरूप पराशक्ति प्रथम सर्व नियन्त्री भगवती रूपमें (साम्यावस्थ मायोपहित ब्रह्मरूपिणी होकर) प्रादुर्भूत हुई ॥ १२ ॥ तदनन्तर सृष्टि—विषय भिन्न भिन्न कार्य संपादन करनेके लिये हो, वा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लियेहो, अपने शरीरसे निज इच्छासे भक्तानुग्रहरूप ॥ १३ पांच शक्तिमूर्ति उत्पादन करीं यद्यपि यह पंच शक्तिही जगत्‌की सर्व प्रधान कहकर विख्यात है किंतु तोभी इनमें जो दुर्गानाम प्रसिद्ध है, यही सर्व मंगलमयी पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी हैं क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण जीवोंका मंगलसाधन करनेके लिये इस दुर्गाशक्तिके गर्भसे गणेशरूपमें आविर्भूत होते हैं, इस कारण यही विश्व जगत्‌में विष्णुमाया नारायणी सब जीवोंका आश्रयरूप कही जाती हैं वास्तव

यह दुर्गाशक्तिही परम मंगलमय परब्रह्म कृष्णकी प्रियतमारूप शक्ति है ॥ १४ ॥ हे वत्स! तुमसे अधिक और क्या कहूं! यही स्थिर जानो कि यह सर्वमंगलस्वरूप सनातनी भगवती दुर्गादेवीही सबकी अधिष्ठात्री देवता है इसी कारण क्या ब्रह्मादि देवतागण क्या मुनिगण क्या मनुष्यगण सभी उनकी अर्चन और स्तवादि करते हैं ॥ १५ ॥ इन भगवती दुर्गाके भाग्यवश एकवार प्रसन्न होनेपर यह शरणागत भक्तोंके सब शोक दुःखादि विनाश करके धर्म, चिरस्थायिनी कीर्ति, परम पवित्र मंगलमय यश एवं आनन्दादि समस्त सुख और मोक्षपर्यन्त देती है ॥ १६ ॥ यह नितान्त शरणागत दीनभक्तोंका परम आश्रयस्वरूप होकर उनकी सब विपदजालसे रक्षा करती है वास्तवमें इनको ही

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता ॥ सर्वाधिष्ठात्री देवी सा शर्वरूपा सनातनी ॥ १५ ॥ धर्मसत्या पुण्यकीर्तिर्यशोमंगल दायिनी ॥ सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी ॥१६॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा ॥ तेजः स्वरूपा परमा तदधिष्ठातृ देवता ॥ १७ ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम् ॥ सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी ॥ १८ ॥ बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तंद्रा दया स्मृतिः ॥ जातिः क्षांतिश्च भ्रांतिश्च शांतिः कांतिश्च चेतना ॥१९॥ तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥ उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् ॥ गुणोऽस्त्यनंतोऽनं ताया अपरां च निशामय ॥ २१ ॥

परमात्मा श्रीकृष्णके अन्तःकरणकी अधिष्ठात्रीरूपा तेजोमयी पराशक्ति जानना चाहिये ॥१७॥ यह सर्वशक्तिस्वरूप भगवती दुर्गाही परमात्मा परमेश्वरकी नित्य संगिनी पराशक्ति है यही समस्त सिद्धपुरुषोंकी परमाराध्य है अठारह सिद्धि इनकेही हाथमें हैं यही आराधनासे संतुष्ट होकर भक्तोंको अभिलासित सिद्धिप्रदान करती है ॥१८॥ यह महादेवी ही जगत्में स्थित जीवोंकी बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षांति, भ्रांति शांति, कांति, चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टि, पुष्टि लक्ष्मी और धृतिरूपा है यही वेदादि शास्त्रमे विश्वरूपिणी महामाया कहकर कीर्तित हुई है फलतः यह जगदाराध्य शक्तिही परमात्मा कृष्णकी स्वरूपा शक्ति है ॥ २० ॥ हे वत्स! मैंने उन अनन्त

गुणमयी भगवती दुर्गाकी जो सब गुणगाथा वर्णन की यह श्रुतिवर्णित प्रसिद्ध गुणराशिमें कुछेक अंशमात्र है क्योंकि वेदही जब उनके अनन्त गुणग्राम वर्णन करके शेष नहीं करसकते तब इस विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है जो उनके सम्पूर्ण गुणोंकी, महिमा वर्णन करनेमें समर्थ हो तो केवल इतनाही जानो कि मैंने जो कुछ कहा है उसमें कहीं शास्त्रका मत अतिक्रम करके नहीं कहा सो जो हो उन परमेश्वरकी पराशक्तिके पांच अवतारोंमेंसे तुमने दुर्गारूपा प्रथमाशक्तिका माहात्म्य कुछेक सुना अब उनकी शक्तिके अवतार माहात्म्यका विषय कुछेक वर्णन करता हूं सुनो ॥ २१ ॥ परमात्माको द्वितीय अवताररूपा शक्तिका नाम पद्मा लक्ष्मी है यह विशुद्ध सत्यस्वरूपा और यह महाशक्तिही परमात्मा कृष्णके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवता है ॥२२॥ यह परम मनोहर मूर्ति लक्ष्मी रूपा महादेवी अतिशय जितेन्द्रिय है अतएव यह अतीव शान्तप्रकृति

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता ॥ २२ ॥ कांताऽतिदांता शांता च सुशीला सर्वमंगला ॥ लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥ २३ ॥ भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता ॥ प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा ॥ २४ ॥ सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी महालक्ष्मीश्च वैकुंठे पतिसेवारता सती ॥ २५ ॥ स्वर्ग च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥ २६ ॥

सुशील और समस्त मंगलकी आधार भूमि है अचंभेकी बात यही है कि ऐसे असाधारण गुण होनेपर भी लोभ मोह काम क्रोध अहंकार कोई शत्रु उनको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वह महादेवी निजपति और भक्तोंपर अत्यन्त अनुरक्त हैं विशेष कर वह निरन्तर प्रियंवदा होनेसे भगवान्के प्राणके समान प्रीतिभाजन होती है इन सब असामान्य गुणोंके कारण इन्होंने पतिव्रताओंमें प्रधान आसन ग्रहणकिया है॥२४॥ यह महाशक्ति जीवोंकी जीवन रक्षाकेलिये एकांशमें शस्यरूपिणी है किंतु स्वरूपसे यह जगत्में सती धर्मका आदर्शरूप होकर महालक्ष्मी रूपसे वैकुंठ धाममें निरन्तर निजपति वैकुंठनाथकी पदसेवामें निरत रहती है ॥२५॥ हे वत्स! यह महाशक्ति रूपिणीही स्वर्गधामकी स्वर्गलक्ष्मी राजाओंकी राजलक्ष्मी और मर्त्यलोकमें पुण्यवान् पुरुषोंकी गृहलक्ष्मी है ॥२६॥

यह दुर्गाशक्तिही परम मंगलमय परब्रह्म कृष्णकी प्रियतमारूप शक्ति है ॥ १४ ॥ हे वत्स! तुमसे अधिक और क्या कहूं! यही स्थिर जानो कि यह सर्वमंगलस्वरूप सनातनी भगवती दुर्गादेवीही सबकी अधिष्ठात्री देवता है इसी कारण क्या ब्रह्मादि देवतागण क्या मुनिगण क्या मनुष्यगण सभी उनकी अर्चन और स्तवादि करते हैं ॥ १५ ॥ इन भगवती दुर्गाके भाग्यवश एकवार प्रसन्न होनेपर यह शरणागत भक्तोंके सब शोक दुःखादि विनाश करके धर्म, चिरस्थायिनी कीर्ति, परम पवित्र मंगलमय यश एवं आनन्दादि समस्त सुख और मोक्षपर्यन्त देती है ॥ १६ ॥ यह नितान्त शरणागत दीनभक्तोंका परम आश्रयस्वरूप होकर उनकी सब विपदजालसे रक्षा करती है वास्तवमें इनको ही

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता ॥ सर्वाधिष्ठात्री देवी सा शर्वरूपा सनातनी ॥ १५ ॥ धर्मसत्या पुण्यकीर्तिर्यशोमंगल दायिनी ॥ सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी ॥१६॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा ॥ तेजः स्वरूपा परमा तदधिष्ठातृ देवता ॥ १७ ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम् ॥ सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी ॥ १८ ॥ बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तंद्रा दया स्मृतिः ॥ जातिः क्षांतिश्च भ्रांतिश्च शांतिः कांतिश्च चेतना ॥१९॥ तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥ उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् ॥ गुणोऽस्त्यनंतोऽनंताया अपरां च निशामय ॥ २१ ॥

परमात्मा श्रीकृष्णके अन्तःकरणकी अधिष्ठात्रीरूपा तेजोमयी पराशक्ति जानना चाहिये ॥१७॥ यह सर्वशक्तिस्वरूप भगवती दुर्गाही परमात्मा परमेश्वरकी नित्य संगिनी पराशक्ति है यही समस्त सिद्धपुरुषोंकी परमाराध्य है अठारह सिद्धि इनकेही हाथमें हैं यही आराधनासे संतुष्ट होकर भक्तोंको अभिलासित सिद्धिप्रदान करती है ॥१८॥ यह महादेवी ही जगत्में स्थित जीवोंकी बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षांति, भ्रांति शांति, कांति, चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टि, पुष्टि लक्ष्मी और धृतिरूपा है यही वेदादि शास्त्रमें विश्वरूपिणी महामाया कहकर कीर्तित हुई है फलतः यह जगदाराध्य शक्तिही परमात्मा कृष्णकी स्वरूपा शक्ति है ॥ २० ॥ हे वत्स! मैंने उन अनन्त

गुणमयी भगवती दुर्गाकी जो सब गुणगाथा वर्णन की यह श्रुतिवर्णित प्रसिद्ध गुणराशिमें कुछेक अंशमात्र है क्योंकि वेदही जब उनके अनन्त गुणग्राम वर्णन करके शेष नहीं करसकते तब इस विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है जो उनके सम्पूर्ण गुणोंकी, महिमा वर्णन करनेमें समर्थ हो तो केवल इतनाही जानो कि मैंने जो कुछ कहा है उसमें कहीं शास्त्रका मत अतिक्रम करके नहीं कहा सो जो हो उन परमेश्वरकी पराशक्तिके पांच अवतारोंमेंसे तुमने दुर्गारूपा प्रथमाशक्तिका माहात्म्य कुछेक सुना अब उनकी शक्तिके अवतार माहात्म्यका विषय कुछेक वर्णन करता हूं सुनो ॥ २१ ॥ परमात्माको द्वितीय अवताररूपा शक्तिका नाम पद्मा लक्ष्मी है यह विशुद्ध सत्यस्वरूपा और यह महाशक्तिही परमात्मा कृष्णके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवता है ॥२२॥ यह परम मनोहर मूर्ति लक्ष्मी रूपा महादेवी अतिशय जितेन्द्रिय है अतएव यह अतीव शान्तप्रकृति

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता ॥ २२ ॥ कांताऽतिदांता शांता च सुशीला सर्वमंगला ॥ लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥ २३ ॥ भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता ॥ प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा ॥ २४ ॥ सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी महालक्ष्मीश्च वैकुंठे पतिसेवारता सती ॥ २५ ॥ स्वग च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥ २६ ॥

सुशील और समस्त मंगलकी आधार भूमि है अचंभेकी बात यही है कि ऐसे असाधारण गण होनेपर भी लोभ मोह काम क्रोध अहंकार कोई शत्रु उनको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वह महादेवी निजपति और भक्तोंपर अत्यन्त अनुरक्त हैं विशेष कर वह निरन्तर प्रियंवदा होनेसे भगवान्‌के प्राणके समान प्रीतिभाजन होती है इन सब असामान्य गुणोंके कारण इन्होंने पतिव्रताओंमें प्रधान आसन ग्रहणकिया है ॥२४॥ यह महाशक्ति जीवोंकी जीवन रक्षाकेलिये एकांशमें शस्यरूपिणी है किंतु स्वरूपसे यह जगत्में सती धर्मका आदर्शरूप होकर महालक्ष्मी रूपसे वैकुंठ धाममें निरन्तर निजपति वैकुंठनाथकी पदसेवामें निरत रहती है ॥२५॥ हे वत्स! यह महाशक्ति रूपिणीही स्वर्गधामकी स्वर्गलक्ष्मी राजाओंकी राजलक्ष्मी और मर्त्यलोकमें पुण्यवान् पुरुषोंकी गृहलक्ष्मी है ॥२६॥

हे नारद! सम्पूर्ण प्राणियोंमें और सम्पूर्ण द्रव्य समूहमें जो मनोहर शोभा दिखाई देती है, वह समस्तही यह है यही पुण्यात्माओंकी कीर्तिरूप और बलवान् राजाओंका प्रभाव स्वरूप है ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं! यह स्थिर जानो कि यह निरन्तर परोपकार व्रतरत साधुओंके अन्तरमें दयारूपसे वैश्योंमें वाणिज्य रूपसे और पापात्माओंके घरमें कलहके अंकुरस्वरूपसे विराजमान है ॥ २८ ॥ वास्तवमें इस लक्ष्मीरूपा दूसरी शक्तिको सम्यक् प्रकार जगत्की पूजनीय और वन्दनीय जानना चाहिये अब परमेश्वरकी ज्ञानाधिष्ठात्री वाक्यबुद्धि और विद्यारूप तीसरी शक्तिके अवतारका विषय कुछेक कहता हूं सुनो ॥ २९ ॥ जो इस अनन्तविश्वकी समस्त विद्यास्वरूप हैं जो महाशक्ति परमात्मा मनुष्यके

सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा ॥ कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२७॥ वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहांकुरा दयरूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता ॥ २८ ॥ सर्वपूज्या सर्ववंद्या चान्यां मत्तो निशामय ॥ वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः ॥२९॥ सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥ सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम् ॥ ३० ॥ नानाप्रकारसिद्धांतभेदार्थकलना मता ॥ व्याख्या बोधस्वरूपा च सर्वसंदेहभंजिनी ॥३१॥ विचारकारिणी ग्रंथकारिणी शक्तिरूपिणी ॥ स्वरसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी ॥ ३२ ॥ विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी ॥ व्याख्या वादकरी शांता वीणापुस्तकधारिणी ॥ ३३ ॥

हृदयमें बुद्धिरूपसे अवस्थित होकर मेधाग्रंथ धारण सामर्थ्य, कविता शक्ति, स्मृति, शक्ति, और प्रतिभाशक्ति कार्यकालमें तत्तद् विषयकी स्फूर्ति प्रदान करती है उन तीसरी अवतार शक्तिका नाम सरस्वती है ॥३०॥ सुधी पुरुषको किसी विषयमें सन्देह होनेपर यही उसका वह दुर्बोध व्याख्या अर्थ ध्यानमें स्थित करके सब संशय छेदन और नाना विषयक सिद्धान्त सबका भिन्न भिन्न प्रकारसे अर्थ संकलनकर देती है॥ ३१ ॥ हे वत्स! पण्डितोंकी ग्रंथकरणशक्ति वा विचारशक्ति अथवा संगीत व्यवसायी गणोंकी स्वरसंगीतका सन्धान या तालयादि इस महाशक्तिको इन सबकाही कारण जानना चाहिये ॥३२॥ यह महादेवीही समस्त शास्त्रकी व्याख्या और वाद अर्थात् वितर्क-रूप हैं. इनकोही ब्रह्माण्डस्थ जीवोंको स्वस्व

विषयमें ज्ञानरूपा और वाक्यरूपा जानना चाहिये. अधिक क्या ? इस महाशक्तिको अवलम्बन करकेही जीवगण अपनी अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं " मही सब विद्याका आधार भूमि हूं " सब जीवोंको यह विदित करनेके लिये ही इन महादेवी सरस्वतीने एक हाथमें वीणा और दूसरे हाथमें पुस्तक धारण की है ॥ ३३ ॥ यह शुद्ध--सत्व--स्वरूप सुशील और श्रीहरिकी अत्यन्त प्रियतमा है इनका वर्ण हिमशिला चन्दन कुन्द चन्द्र कुमुद और श्वेत कमलके समान गौर है ॥ ३४ ॥ यह सदा रत्नकी माला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णके नामका जप करती है यह तपस्वरूप और तपस्वियोंको तपका फल देती है ॥ ३५ ॥ यह सबकी सिद्धि और विद्यास्वरूप हैं यह सदा

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ हिमचंदनकुंदेंदुकुमुदांभोजसन्निभा ॥ ३४ ॥ यजन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम् ॥ ३५ ॥ सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥ यया विना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा ॥ ३६ ॥ देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदंबिका ॥ यथागमं यथाकिंचिदपरां त्वं निबोध मे ॥ ३७ ॥ माता चतुर्णां वर्णानां च छंदसाम् ॥ संध्यावंदनमंत्राणां तंत्राणां च विचक्षण ॥ ॥ ३८ ॥ द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी ॥ ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी ॥ ३९ ॥

सबको सिद्धि प्रदान करती हैं इनके न होनेसे जगत्के सम्पूर्ण ब्राह्मण निरन्तर मृत मनुष्यके समान क गूंगे होते ॥ ३६ ॥ वेदमें जो जगदम्बिकाको तीसरी देवी कहकर वर्णन किया है यह वह तीसरी देवी सरस्वती है यह मैंने उनकी कथा वर्णन की अब शास्त्रानुसार अपरा देवीका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ ३७ ॥ जो चार वर्णकी जननी जो संपूर्ण वेदाङ्ग और सब छन्दोंकी उत्पत्तिका निदान हैं जो संध्यावन्दन मंत्र और तंत्रका स्थानीय बीज है, जो स्वयं सब विषयमें पण्डित हैं ॥ ३८ ॥ जो स्वयं तपस्विनी होकर भी ब्राह्मणोंकी जाति और तपःस्वरूप हैं, जो ब्रह्मण्य तेज और सर्व प्रकार संस्कार स्वरूप हैं ॥ ३९ ॥

जो स्वयं पवित्र रूपा, सावित्री और गायत्री नामसे कही जाती हैं, जो सदा ब्रह्मलोकमें वास करती हैं, सर्वतीर्थ पवित्र होनेके लिये जिनके स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं जिनका शुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण है, जो स्वयं शुद्ध सत्वस्वरूपका परमानन्दस्वरूपा सर्वश्रेष्ठ और सनातनी हैं ॥४०॥४१॥ जो परब्रह्मरूपिणी और मोक्ष दायिनी हैं जो ब्रह्मकी तेजोमयी शक्ति और ब्रह्मतेजकी अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ४२ ॥ जिनके चरणरेणुके स्पर्शसे सम्पूर्ण जगत् पवित्र होता है वह देवी सावित्रीही चौथी प्रकृति हैं हे वत्स नारद! अब तुमसे पांचवी शक्ति देवी राधिकाका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥४३॥ जो पंचप्राणकी अधिष्ठात्री देवी हैं जो स्वयं सबको जीवन स्वरूप जो श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं जो सब

पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वांछंति ह्यात्मशुद्धये॥४०॥शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्वस्वरूपिणी॥परमानंदरूपा च परमा च सनातनी॥४१॥परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ॥ ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ४२ ॥ यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद ॥ देवी चतुर्थी कथिता पंचमीं वर्णयामि ते ॥ ४३ ॥ पंचप्राणाधिदेवी या पंचप्राणस्वरूपिणी ॥ प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा ॥ ४४ ॥ सर्वयुक्ता च सौभाग्यमानिनी गौरवान्विता ॥ वामांगार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥ ४५ । परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी ॥ परमानंदरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥ ४६ ॥ रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः ॥ रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता ॥ ४७ ॥

प्रकृति देवियोंसे अधिक सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ जो सब पदार्थमें विद्यमान रहती हैं, जो सौभाग्यके गर्वसे अत्यन्त गर्वित हैं जिनके गौरवकी सीमा नहीं है जो श्रीकृष्णका वामांग स्वरूप हैं क्या गुण क्या तेजमें कोई उनकी अपेक्षा अधिक नहीं हैं ॥ ४५ ॥ जो श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतमा सबकी सारभूत सर्वोत्कृष्ट सबकी आदि सनातनी परमानन्द स्वरूप धन्या मान्या और सबकी पूजिता हैं ॥ ४६ ॥ जो परमात्मा श्रीकृष्णके रासकी क्रीडाकी अधिदेवी हैं जिनसे रासमंडलकी उत्पत्ति हुई है जो रासमण्डलकी भूषणस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥

जो रासेश्वरी रसिकोंमें अग्रगण्य और सदा रासापासमें स्थिति करती हैं गोलोकधाम जिनका निवासस्थान है जिनसे सब गोपियें उत्पन्न हुई हैं ॥४८॥ जो परमानन्द परमसन्तोष और परमहर्षरूपा हैं जो सत्वादि तीनों गुणोंसे अतीत पदार्थ और निराकार हैं किन्तु निर्लिप्त भावसे सर्वत्र अवस्थान करती हैं जो सबकी आत्मास्वरूप हैं ॥ ४९ ॥ जो सब विषयोंमें ही निश्चेष्ट और अहंकाररहित हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लियेही केवल शरीर धारण करती हैं विचक्षण पण्डित गण केवल वेदोक्त ध्यान द्वारा जिनकी महिमा पाठ करते हैं ॥ ५० ॥ सुरेन्द्र और मुनीन्द्रगण जिनको कभी चक्षुसे नहीं देखते जिनके अग्निमें न जलनेवाला लाल वस्त्र है और सर्वाङ्ग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं ॥ ५१ ॥ जिनके

रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥ गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका ॥४८॥ परमाह्लादरूपा च संतोषहर्षरूपिणी ॥ निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽत्मस्वरूपिणी ॥४९॥ निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥ वेदानुसारिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥५०॥ दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ॥ वह्निशुद्धांशुकधरा नानालंकारभूषिता ॥५१॥ कोटिचंद्रप्रभा पुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा ॥ श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्पवित्रा च वसुन्धरा ॥५३॥ ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते ॥ स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षस्थले स्थिता ॥ ५४ ॥ यथांऽबरे नवघने लोला सौदामनी मुने ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ ५५ ॥

शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है कि एकही वार करोडचन्द्रमा उदय हुए हैं जो कृष्णदास्य कृष्णभक्ति और सब संपत्तिकी दान करनेवाली हैं ॥ ५२ ॥ जो वराहकल्पमें अर्थात् वाराहावत रसमयमें व्रजवासी वृषभानु नामक गोपके कन्या रूपमें अवतीर्ण हुई थीं वसुन्धरा जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र होती हैं ॥ ५३ ॥ जो ब्रह्मादि देवताओंको भी अदृष्ट हैं भारतवर्षमें आय वृन्दावनमें जिनको सब सुखसे देखते हैं जो स्त्रीरत्नमें श्रेष्ठ रत्न हैं जिनके श्रीकृष्णकी छातीमें वास करनेसे बोध होता है ॥ ५४ ॥ मानों आकाशस्थित नीले बादलोंमें विजली विराजमान है पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिनके चरणनखको देखकर आत्माको पवित्र करनेके लिये साठ हजार वर्ष घोर तपस्या की थी किन्तु चरण

नखका प्रत्यक्ष देखना तो दूर रहे स्वप्नमें भी जिनका दर्शन प्राप्त करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ किन्तु अन्तमें तपके बलसे वृन्दावनके काननमें जिनका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए हे वत्स नारद ! वह यही पांचवी प्रकृति है इसीको राधानामसे निर्देश करते हैं ॥ ५७ ॥ हे वत्स ! सब जगत्‌में जितनी स्त्रियां वास करती हैं वह सभी श्रीराधाके अंश कला कलांश और अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५८ ॥ हे वत्सनारद ! मूल प्रकृतिसे दुर्गादि जो पांच पूर्णतम प्रकृति उत्पन्न हुई हैं, उनका विषय कहा, अब जो प्रकृतिकी अंशरूपा हैं उनका वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ जो प्रधानांशस्वरूप भुवन पावनी गंगा हैं जो विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई हैं जो द्रवरूपा और सनातनी हैं ॥ ६० ॥ जो पापियोंके

यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥ न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५६ ॥ तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृंदावने वने ॥ कथिता पंचमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता ॥ ५७ ॥ अंशरूपाः कलारूपाः कलांशांशांशसंभवाः ॥ प्रकृतेः प्रति विश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः ॥ ५८ ॥ परिपूर्णतमाः पंच विद्यादेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥ ५९ ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा गंगा भुवनपावनी ॥ विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥ ६० ॥ पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी ॥ ६१ ॥ गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ॥ पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परावरा ॥ ६२ ॥ शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ तपःसंपादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम् ॥ ६३ ॥ चंद्रपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ६४ ॥

पापरूपी काष्ठ जलानेमें प्रज्वलित अनलस्वरूप हैं, जो स्नान और पानादि विषयमें सुखस्पर्शा हैं,जो जीवोंको निर्वाणपद प्रदान करती हैं॥ ६१॥ जो गोलोक धाम जानेकी सुख सोपान हैं जो सब तीर्थोंमें पूततम तीर्थ हैं, जो सब स्रोतवतीमें प्रधान स्रोतवती है ॥ ६२ ॥ जो महादेवके मस्तकस्थित जटामें रुकी मुक्तापंक्ति हैं जो इस कर्मक्षेत्र भारतवासी तपस्वियोंकी सद्यो संभूत तपस्या हैं ॥ ६३ ॥ जिनकी प्रभा पूर्ण चंद्रके समान, श्वेतकमलके समान और दूधके समान धवल वर्णहै जो विशुद्ध सत्वस्वरूपिणी, निर्मल अहंकारहीन साध्वी और नारायणकी प्रिया हैं वह

त्रिभुवनपावनी गंगा मूलप्रकृतिका अंश हैं ॥ ६४ ॥ विष्णुकामिनी देवी तुलसी हैं जो नारायणकी अलंकृतिरूपा हैं जो सदा नारायणके चरण कमलोंमें अवस्थान करती हैं॥६५॥क्या तपस्या, क्या संकल्प, क्या पूजादि कार्य, समस्तकार्य जिनके द्वारा संपादित होते हैं जो पुष्पोंमें प्रधान पवित्र और पुण्यदायिनी हैं ॥ ६६ ॥जिनके दर्शन और स्पर्शसे तत्काल निर्वाणपद प्राप्त होता है जिनके अतिरिक्त कलियुगमें पापकाष्ठ दहनकी दूसरी अग्नि नहीं है जो स्वयं अग्निस्वरूपिणी हैं॥६७॥जिनके चरणकमलोंका स्पर्श करके वसुंधरा पवित्र हुई है सम्पूर्णतीर्थ स्व स्व शुद्धिलाभके लिये जिनके दर्शन और स्पर्शकी कामना करते हैं॥६८॥जिनके विना विश्वके सब कार्य निष्फल हैं जो मुमुक्षु पुरुषोंकी मोक्षदायिनी जो सबके सब

प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ॥ विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥६५॥ तपः संकल्पूजादिसंघसंपादिनी मुने ॥ सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥६६॥ दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी ॥ कलौ कलुषशुष्केध्मद हनायाग्निरूपिणी ॥ ६७ ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यःपूता वसुंधरा ॥ यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छंति तीर्थानि शुद्धये ॥ ६८ ॥ यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥६९॥ कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी॥ भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता ॥ ७० ॥ प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा ॥ शंकरप्रियशिष्या च महा ज्ञानविशारदा ॥ ७१ ॥ नागेश्वरस्यानंतस्य भगिनी नागपूजिता ॥ नागेश्वरी नागमाता सुंदरी नागवाहिनी ॥ ७२ ॥ नागेंद्र गणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता ॥ नागेंद्रवंदिता सिद्धा योगिनी नागशायिनी ॥ ७३ ॥

प्रकार मनोरथ संपन्न करती हैं ॥ ६९ ॥ स्वयं कल्पवृक्षस्वरूप जो भारतके सब वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवता भारतवासी कामिनीगणोंको प्रसन्न करनेके लिये जो उत्पन्न हुई हैं और जो सर्वश्रेष्ठ देवता कहकर भारतके सर्वत्र परिगृहीत होती हैं ॥ ७० ॥ वह तुलसी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंश हैं कश्यपकन्या मनसा जो शंकरकी प्रिय शिष्या हैं सुतरां शास्त्रज्ञान विषयमें महापण्डिता हैं ॥ ७१ ॥ जो नागेश्वर अनंत देवकी बहन और समस्त नागगणोंसे सत्कृत हैं जो स्वयं सुन्दरी नागेश्वरी नागजननी और नागवाहिनी हैं ॥ ७२ ॥ जो सदा नागेन्द्रगणोंमें परिवेष्टित

नागभूषणोंसे विभूषित नागेन्द्रगणसे वंदित और नागशय्यापर शयन करती हैं जो सिद्धयोगिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुस्वरूपिणी विष्णुभक्ता और विष्णुपूजामें तत्पर हैं जो तपःस्वरूप और तपस्याकी फलप्रदा होकरभी स्वयं तपस्विनी हैं ॥ ७४ ॥ जो देवमानके तीन लक्ष वर्षपर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके भारतमें तपस्वी और तपस्वियोंमें प्रधान कही गई हैं ॥ ७५ ॥ जो सम्पूर्ण मंत्रकी अधिदेवी जिनका शरीर ब्रह्म तेजसे जाज्वल्यमान होता है जो स्वयं ब्रह्मरूपिणी होकर भी फिर ब्रह्मभावको भावना करती हैं ॥ ७६ ॥ जो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न और जरत्कारु ऋषिकी पतिव्रता स्त्री हैं जो मुनिश्रेष्ठ आस्तिक मुनिकी माता हैं वह भी मूल प्रकृतिकी अंश हैं ॥ ७७ ॥ हे वत्स नारद !

विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायणा ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥ ७४ ॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा च या हरेः ॥ तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥ ७५ ॥ सर्वमंत्राधिदेवी च ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ॥ ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७६ ॥ जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता ॥ आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ॥ ७७ ॥ प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद ॥ मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता ॥ ७८ ॥ पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां सती ॥ षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ७९ ॥ स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥ पूजा द्वादशमासेषु यस्या विश्वेषु संततम् ॥ ८० ॥ पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः ॥ एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥ ८१ ॥

जिनका नाम देवसेना है वही षष्ठी हैं षष्ठीदेवी जो गौरीआदि षोडश मातृकामें श्रेष्ठतम मातृका हैं ॥ ७८ ॥ जो पतिव्रता तीनों जगत्को पुत्र पौत्रादि दात्री और सबकी धात्री हैं जो मूल प्रकृतिका षष्ठांशस्वरूप होनेके कारण षष्ठीनामसे कही गई हैं ॥ ७९ ॥ जो वृद्धभाव और योगिनीके वेषसे सम्पूर्ण बालकोंके निकट विद्यमान रहती हैं वैशाखादि बारह मासमें जिनकी पूजा सर्वत्र प्रचलित हुई है ॥ ८० ॥ बालकके उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिकागृह सोवरमें जिनकी पूजा होती है और बीस दिन बीतनेपर इक्कीसवें दिन जिनकी शुभकरी पूजाका

विधान करना होता है ॥८१॥ मुनि अवनतमस्तकसे जिनको प्रणाम और सदा जिनके दर्शनकी कामना करते हैं जो माताके समान स्नेहार्द्र हृदयसे सर्वदा बालकोंकी रक्षा करती हैं वह षष्ठी देवी मूल प्रकृतिका षष्ठांश हैं ॥८२॥ देवी मंगल चण्डिका जो जल स्थल अन्तरिक्ष और बालकोंके घर घर मंगल विधान करके भ्रमण करती हैं ॥ ८३ ॥ जो प्रकृति देवीके मुखमण्डलसे उत्पन्न हुई हैं और सर्वदा सबका सब प्रकार मंगल करती हैं सृष्टिकालमें मंगलमयी और संहार कालमें प्रचण्ड रोप रूपिणी मूर्ति॥८४॥ धारण करनेके कारण पण्डितोंने जिनका मंगल चण्डी नाम रक्खा है प्रतिविश्व और प्रति मंगलवारमें जिनकी पूजा होती है ॥८५॥ जो प्रसन्न होकर स्त्रियोंको पुत्र पौत्र धन ऐश्वर्य यश और सब प्रकार

मुनिभिर्नमिता चैषा नित्यकामाऽप्यतः परा ॥ मातृका च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥ ८२ ॥ जले स्थले चांतरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे ॥ प्रधानांशस्वरूपा च देवी मंगलचंडिका ॥ ८३ ॥ प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमंगलदा सदा ॥ सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥ ८४ ॥ तेन मंगलचंडी सा पंडितैः परिकीर्तिता ॥ प्रतिमंगलवारेषु प्रीतिविश्वेषु पूजिता ॥ ८५ ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी ॥ परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥ ८६ ॥ रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा काली कमल लोचना ॥८७॥ दुर्गाललाटसंभूता रणे शुंभनिशुंभयोः ॥ दुर्गार्धांशस्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा ॥ ८८ ॥ कोटिसूर्यसमाजुष्ट पुष्टजाज्वलविग्रहा ॥ प्रधाना सर्वशक्तीनां बला बलवती परा ॥ ८९ ॥

मंगल व सब प्रकार अभीष्ट प्रदान करती हैं, यह मंगल चण्डी भी मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ८६ ॥ कमललोचना महेश्वरी काली जो रुष्ट होनेसे क्षणकालमें सब विश्वकी संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ८७ ॥ जो समरमें शुंभ और निशुंभ दैत्योंको निपात करनेके लिये मूल प्रकृति दुर्गाके ललाट देशसे आविर्भूत हुई हैं; जो दुर्गाकी अर्धांश स्वरूपा और उनके समान गुणवती और तेजस्विनी हैं ॥ ८८ ॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखने से बोध होता है मानो एकही कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं जो सब शक्तियोंमें प्रधान और सबकी अपेक्षा अधिक बलवती

हैं ॥ ८९ ॥ जो संपूर्ण लोकोंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करती हैं जो सर्व श्रेष्ठ और योग स्वरूपा हैं जो अतिशय कृष्णभक्त एवं तेज गुण और विक्रममें कृष्णके समान हैं ॥ ९० ॥ निरन्तर श्रीकृष्णकी चिन्तासे जिनका शरीर कृष्णवर्ण होगया है जो सनातनी एक निश्वासमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड विध्वंस कर सकती हैं ॥९१॥ जो केवल क्रीडा और लोक शिक्षाके लिये दैत्योंके सहित समरमें प्रवृत्त हुई थीं जो पूजासे सन्तुष्ट होनेपर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों वर्गका फल प्रदान कर सकती हैं वह काली भी प्रकृतिका अंश हैं ॥ ९२ ॥ वसुंधरा देवी, जिनका ब्रह्मादि देवतागण समस्त मुनिगण, चौदह मनु और संपूर्ण मनुष्य स्तव करते हैं ॥९३॥ जो सबकी आधारस्वरूप और सर्व प्रकार शस्यसे परिपूर्ण हैं जो

सर्वसिद्धप्रदा देवी परमा योगरूपिणी ॥ कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ॥ ९० ॥ कृष्णभावनया शश्वत्कृष्ण वर्णा सनातनी ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः ॥ ९१ ॥ रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया ॥ धर्मार्थकाम मोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुंधरा ॥ ९३ ॥ आधाररूपा सर्वेषां सर्वसस्या प्रकीर्तिता ॥ रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया ॥ ९४ ॥ प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वंदिता सदा ॥ सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी ॥९५॥ यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम् ॥ प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ॥९६॥ यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते॥स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रीतिविश्वेषु पूजिता॥९७॥

रत्नाकरा रत्नगर्भा और सर्व प्रकार श्रेष्ठतम वस्तुकी प्रसूति और आश्रम स्थान हैं॥ ९४ ॥ प्रजामंडल और राजमंडल नित्य जिनकी पूजा और स्तुतिवाद करते हैं जो जीव मात्रकी (जीवनदायिनी) और सबको सब प्रकारकी सम्पद देनेवाली हैं ॥ ९५ ॥ जिनके विना स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत् निराधार हो जाता है वह वसुंधराभी मल प्रकृतिका अंश है. हे वत्स नारद ! जो प्रकृतिकी कलासे उत्पन्न है ॥ ९६ ॥ और जो जिनकी पत्नी हैं अब एकादि क्रमसे वह सब वर्णन करता हूं सुनो देवी स्वाहा अग्निकी पत्नी हैं, संपूर्ण विश्व उनकी पूजा करते हैं ॥ ९७ ॥

इनके विना देवतागण कभी आहुति ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते दक्षिणा और दीक्षा, यह दोनों यज्ञपत्नी हैं इनका सर्वत्र आदर होता है ॥ ९८ ॥ यही क्या ? दक्षिणाके विना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता देवी स्वधा पितरोंकी पत्नी हैं क्या मनुष्य गण, क्या मनुगण, क्या मुनिगण ॥ ९९ ॥ सबही स्वधादेवीकी पूजा करते हैं स्वधामंत्रके विना पितरोंको जो कुछ दान किया जाय वह सब निष्फल है देवी स्वस्ति वायुदेवकी पत्नी हैं इनका संपूर्ण विश्वमें आदर होता है ॥१००॥ स्वस्ति देवीके विना क्या आदान, क्या प्रदान कोई कार्य फल दायक नहीं हो सकता गणपतीकी पत्नीका नाम पुष्टि है जगत्में सबही पुष्टि देवीकी पूजा करते हैं ॥ १०१ ॥ जगत्में पुष्टिके विना क्या स्त्री, क्या पुरुष,

यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः ॥ दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता ॥ ९८ ॥ यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम् ॥ स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ ९९ ॥ पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना ॥ स्वस्ति देवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥१००॥ आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना ॥ पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले॥१०१॥यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥ अनंतपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वंदिता भवेत् ॥१०२॥ यया विना न संतुष्टाः सर्वे लोकाश्च सर्वतः ॥ ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ॥ १०३ ॥ सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥ धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता ॥ १०४ ॥ सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना ॥ सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता जगतीप्रिया ॥ १०५ ॥

सभी अतिशय क्षीण होते हैं, तुष्टि अनन्त देवकी पत्नी हैं पृथ्वीके सर्वत्रही वह सत्कृत और वंदित होती हैं ॥१०२॥ जिनके असद्भावसे पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई मनुष्य सुखी नहीं हो सकता सम्पत्ति देवी ईशानकी पत्नी हैं क्या देवता क्या मनुष्य सभी जिनका समान आदर करते हैं ॥१०३॥ उनके न होनेसे जगत्के सभी मनुष्य दरिद्र दोषसे अत्यन्त पीडित होते ॥ देवी धृति कपिल देवकी सहधर्मिणी हैं जगत्के सब स्थानोंमें ही सब इनका समान आदर करते हैं ॥ १०४ ॥ यही क्या ? इनके न होनेसे जगत्के सब मनुष्य ही अत्यन्त अधैर्य होते देवी सती

सत्यदेवकी पत्नी हैं यह जगत् प्रिय हैं मुक्त पुरुष सर्वदाही इनकी पूजा करते हैं ॥१०५॥ सत्यप्रिया सती यदि विद्यमान न होतीं तो एक वारही संपूर्ण जगत् बन्धुता (बाँधवपन) से वंचित हो जाता पति परायणा दया, मोह, देवकी पत्नी हैं सबहीजगत् इनका आदर करते हैं ॥१०६॥ इनके न होनेसे पृथ्वीके सब मनुष्य सब विषयमें हताश होते देवी प्रतिष्ठा पुराण देवकी पत्नी हैं मनुष्य इनका जितना यत्न करताहै, यह उनको उतनाही पुण्य प्रदान करती हैं ॥१०७॥ अधिक क्या इनके विना पृथ्वीके समस्त मनुष्य जीवन मृतके समान होते, देवी कीर्त्ति सुकर्मकी पत्नी हैं यह स्वयं सिद्ध और कृतार्थ मनुष्य इनका परम आदर करते हैं ॥१०८॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य मृतकवत् यशहीन होते. क्रिया उद्योगकी

यया विना भवेल्लोको बंधुतारहितः सदा ॥ मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया ॥ ६ ॥ सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना ॥ पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा ॥ ७ ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥ सुकर्मपत्नी संसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता ॥ ८ ॥ यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा ॥ क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसंमता ॥ ९ ॥ यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद ॥ अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता ॥ ११० ॥ यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम् ॥ सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी ॥ ११ ॥ अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता ॥ कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिका बलात् ॥ १२ ॥

पत्नी है, इनका सभी सन्मान और महा आदर करतेहैं ॥१०९॥ हे मुनिवर नारद ! जगत्में उद्योगकी पत्नी क्रिया यदि विद्यमान न होती, तो सब मनुष्य एक वारही विधिहीन हो जाते मिथ्या अधर्मकी पत्नी है इस जगत्में जितने धूर्त विद्यमान हैं वह सब इनका अत्यन्त आदर करते हैं ॥११०॥मिथ्याके न होनेसे विधाताका विधान किया सब धूर्तपन जगत्में नहीं रहता सत्य युगमें यह कभी किसीको दिखाई न दी त्रेतासे ही इसके सूक्ष्मतम शरीरका संचार हुआ है ॥ १११ ॥ जब द्वापरयु उपस्थित था, तब इसके अवयव अर्धपुष्ट थे, इसके उपरान्त कलि प्रवृत्त हुआ तब इसके

संपूर्ण अंगप्रत्यङ्ग सब अवयवमें पुष्ट होगये तिस कालमें इसके समान वाचाल और व्यापिका दूसरी नहीं है॥११२॥उस समय यह अपने भ्राता कपटको संग लेकर मनुष्योंके घर घरमें भ्रमण करती है शान्ति और लज्जा यह दोनों ही सुशीलकी भार्या हैं ॥ ११३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे संपूर्ण जगत् एकवार ही मूड और उन्मत्तके समान होजाता. बुद्धि, मेधा और धृति, यह तीनों ज्ञानकी भार्या हैं ॥११४॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य एकवार ही मूढ और उन्मत्त हो जाते, मूर्ति धर्मदेवकी पत्नी है; यह सबकी कान्तिरूपिणी और अतीव मनोहारिणी है ॥११५॥ इनके न होनेसे परमात्मा आश्रयस्थान प्राप्त नहीं कर सकते इस कारण समस्तविश्व निरालम्ब होजाता यह पतिव्रता सती मूर्ति शोभारूप

कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहेगृहे ॥ शांतिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ॥ १३ ॥ याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा धृतिस्तथा ॥ १४ ॥ याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा ॥ मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कांतिरूपा मनोहरा ॥ १५ ॥ परमात्मा च विश्वौघो निराधारो यया विना ॥ सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती ॥ १६ ॥ श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्याऽतिपूजिता ॥ कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी ॥ १७ ॥ सर्वे लोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु ॥ कालस्य तिस्रो भर्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ १८ ॥ याभिर्विना विधाता च संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते ॥ १९ ॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिंतातुरं भवेत् ॥ प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा ॥ १२० ॥

॥ ११६ ॥ लक्ष्मीरूप,सर्वत्र मान्या धन्या और पूजिता हैं सिद्धयोगिनी निद्रा कालाग्नि रुद्रदेवकी पत्नी हैं ॥ ११७ ॥ जिसके सम्बन्धसे जीवगण रात्रिकालमें समाच्छन्न होते हैं संध्या, रात्रि और दिन यह तीन कालकी भार्या हैं ॥११८॥ इनके न होनेसे विधाता भी संख्या, गणना करनेमें समर्थ नहीं होते क्षुधा और पिपासा दोनों लोभकीपत्नी हैं यह धन्य, मान्य और जगत् पूज्य हैं ॥११९॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे जगत्के सब जीव एकवार ही चिन्तासागरमें निमग्न होजाते, प्रभा और दाहिका यह दोनों तेजकी भार्या हैं ॥१२०॥

इन दोनोंके न होनेसे जगदीश्वर कभी जगत्की सृष्टि और नियमित व्यवस्था व्यवस्थापित नहीं कर सकते, मृत्यु और जरा दोनोंकालकी कन्या हैं किन्तु ज्वरकी प्रियतमा पत्नी हैं ॥ १२१ ॥ इनके न होनेसे विधातृविहित संपूर्ण सृष्टि वृद्धिको हो प्राप्त होती नष्ट न होती देवी तन्द्रा और प्रीति दोनों निद्राकी कन्या हैं यह दोनों सुखकी प्रियतमा भार्या हैं ॥ १२२ ॥ यह दोनों संपूर्ण जगत्में व्याप कर अवस्थान करती हैं हे मुनिवर ! जगत् पूज्य श्रद्धा और भक्ति, वैराग्यकी भार्या है ॥ १२३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान होनेसे विश्वको सब मनुष्य जीवन्मुक्तके समान अवस्थान

याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः ॥ कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये ॥ २१ ॥ याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मितं विधौ ॥ निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ॥ २२ ॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ ॥ वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ॥ २३ ॥ याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यज्जीवन्मुक्तिमन्मुने ॥ अदितिर्देव माता च सुरभी च गवां प्रसूः ॥ २४ ॥ दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥ उपयुक्ताः सृष्टिविधा वेतास्तु कीर्तिताः कलाः ॥ २५ ॥ कला अन्याः संति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे ॥ रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी ॥ २६ ॥ शतरूपा मनोर्भार्या शचींद्रस्य च गेहिनी ॥ तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुंधती ॥ २७ ॥ अहल्या गौतमस्त्री साऽप्यन सूयाऽत्रिकामिनी ॥ देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी ॥ २८ ॥

कर सकते हैं इनके अतिरिक्त देवमाता अदिति, गोजननी सुरभी ॥ १२४ ॥ दैत्यजननी दिति, नागमाता कद्रू, खगेन्द्रजननी विनता और दानव माता दनु यह सभी सृष्टिकार्यकी विशेष उपयोगिनी हैं, किन्तु सब मूलप्रकृतिकी कला हैं ॥ १२५ ॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो प्रकृतिकी कला विद्यमान् हैं उनके कितनोंहीके नाम कहता हूं, सुनो, चन्द्रकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी भार्या संज्ञा ॥ १२६ ॥ मनुपत्नी शतरूपा, इन्द्रपत्नी शची, बृहस्पतिकी भार्या तारा, वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती ॥ १२७ ॥ गौतमपत्नी अहल्या अत्रिकी भार्या अनुसूया, कर्दमकामिनी

देवहूती. दक्षभार्या प्रसूति ॥ १२८ ॥ पितरोंकी मानसी कन्या और अम्बिकाकी जननी, मेनका, लोपामुद्रा कुन्ती कुवेरपत्नी ॥ १२९ ॥ वरुणपत्नी, बलिराजाकी पत्नी विन्ध्यावली मनोहर दमयन्ती यशोदा, देवकी, ॥ १३० ॥ गान्धारि, द्रौपदी, शैव्या, सत्यवती, वृषभानु पत्नी कुलीना राधाकी जननी ॥ १३१ ॥ मन्दोदरी कौशल्या कौरवी सुभद्रा, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा ॥ १३२ ॥ जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, रुक्मिणी, सीता, यह स्वयं लक्ष्मी हैं ॥ १३३ ॥ काली, योजनगंधा, महासती, पतिव्रता,

पितॄणां मानसी कन्या मेनका साऽबिका प्रसूः ॥ लोपामुद्रा तथा कुंती कुवेरकामिनी तथा ॥ २९ ॥ वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विंध्यावलिस्तथा ॥ कांता च दमयंती च यशोदा देवकी तथा ॥ १३० ॥ गांधारी द्रौपदी शैव्या सा च सत्त्ववती प्रिया ॥ वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा ॥ ३१ ॥ मंदोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा ॥ रेवती सत्यभामा च कालिंदी लक्ष्मणा तथा ॥ ३२ ॥ जांबवती नाग्नजितिर्मित्रविंदा तथा पुरा ॥ लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥ काली योजनगंधा च व्यासमाता महासती ॥ बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी ॥ ३४ ॥ प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥ रेणुका च भृगोर्माता च रोहिणी ॥ ३५ ॥ एकनंदा च दुर्गा सा श्रीकृष्ण भगिनी सती ॥ वह्व्यः सत्यः कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते ॥ ३६ ॥ या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वा प्रकृतेः कलाः ॥ कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः॥३७॥ योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः॥ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती॥३८॥

व्यासजननी, बाणपुत्री, ऊषा उसकी सखी चित्रलेखा ॥ १३४ ॥ प्रभावती मानमती, सतीमायावती, परशुरामकी जननी रेणुका, बलरामकी जननी रोहिणी ॥ १३५ ॥ एकनन्दा और श्रीकृष्णकी भगिनी सती दुर्गा इत्यादि अन्यान्य अनेक कामिनी भारतमें प्रकृतिका अंशस्वरूप हैं ॥ १३६ ॥ इनके अतिरिक्त ग्रामदेवी भी प्रकृतिका अंश हैं और सब विश्वमें जितनी स्त्री विद्यमान हैं वह सब प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १३७ ॥ अतएव स्त्रीका अपमान करनेसे प्रकृतिका अपमान होता है, पतिपुत्रवती पतिव्रता ब्राह्मणीकी वस्त्र अलंकार और चन्दना

दिसे पूजा करनेपर ॥१३८॥ प्रकृतिकी पूजा हो जाती है यही क्या वस्त्रालंकार और चन्दनादिसे अष्टवर्षीय ब्राह्मण कुमारीकी पूजा करने पर भी ॥ १३९ ॥ प्रकृति देवी पूजित होती है उत्तम मध्यम और अधम सभी प्रकृति संभूत हैं ॥ १४० ॥ जो रमणी सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हैं, वही उत्तम सुशील और पतिव्रता हैं जो रजोगुणके अंशसे उत्पन्न हैं वह मध्यम हैं और भोग्या हैं ॥ १४१ ॥ और भोग विषयमें अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने कार्य साधनमें तत्पर होती हैं और जो तमोगुणसे उत्पन्न हैं वही अज्ञात कुलशील अधर्म कही गई हैं ॥ १४२ ॥ उनके समान दुर्मुख कुलनाशक धूर्त्त स्वाधीनता प्रिय और कलहनिपुण दूसरी स्त्रियें दिखाई नहीं देतीं ऐसी स्त्रियें मृत्यु

प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ ३९ ॥ पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥ सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः॥१४०॥सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः ॥ मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः॥४१॥ सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्यतत्पराः सदा ॥ अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः ॥४२॥ दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतंत्राः कलहप्रियाः ॥ पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः ॥४३॥ प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः ॥ एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम् ॥ ४४ ॥ ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ ४५ ॥ ततः श्रीरामचंद्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥ तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥ ४६ ॥ जाताऽऽदौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान् ॥ ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निंदया ॥ ४७ ॥

लोकमें कुलटा और स्वर्लोकमें अप्सरा कहाती हैं ॥ १४३ ॥ यद्यपि पुंश्चली भी प्रकृतिका अंश हैं किन्तु वह तमोगुणात्मक हैं यह तो प्रकृतिका स्वरूप वर्णन किया ॥ १४४ ॥ अतएव पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें समुदाय प्रकृति देवीकी पूजा करना सम्यक् प्रकार उचित है पूर्वकालमें सुरथ राजाने दुर्गति नाशिनी मूल प्रकृति दुर्गाकी पूजा की थी ॥ १४५ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मारनेकी इच्छासे उनकी पूजा करी फिर तीनों लोकमें उनकी पूजाका प्रचार हुआ ॥ १४६ ॥ उन्होंनेही प्रथम दक्षकी कन्यारूपमें जन्म ग्रहण किया उन्होंने ही दैत्यकुल

और दानवकुलको संहार किया था उन्होंनेही दक्षके यज्ञ समयमें पतिनिन्दा सुन अपना देह त्याग फिर जन्मग्रहण किया था ॥ १४७ ॥ उन्होंने ही हिमाचलपत्नी मेनकाके गर्भसे जन्म ग्रहण करके पशुपतिको पतिलाभ किया था फिर कार्तिकेय और गणेश नामक पार्वतीके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए तिनमें कार्तिकेय नारायणके अंश और गणपति स्वयं राधापति श्रीकृष्ण थे ॥ १४८ ॥ हे देवर्षे! इन दोपुत्रोंके उपरांत दुर्गासे जो लक्ष्मी देवीकी उत्पत्ति हुई प्रथम मङ्गलराजने उनकी पूजा की ॥ १४९ ॥ फिर त्रिलोकीमें क्या देवता क्या मनुष्य सबनेही उनकी पूजा करी प्रथम तो राजा अश्वपतिने सावित्री देवीकी पूजा करी ॥ १५० ॥ फिर त्रिभुवनमें क्या देवता क्या

जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥ गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कंदो विष्णुकलोद्भवः ॥ ४८ ॥ बभूतुस्तौ तनयौ पश्चात्त स्याश्च नारद ॥ लक्ष्मीर्मंगलभूपेन प्रथमं परिपूजिता ॥ ४९ ॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादेवतामुनिमानवैः ॥ सावित्री चाऽश्वप तिना प्रथमं परिपूजिता ॥ ५० ॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः ॥ आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता ॥५१॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः ॥ प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमंडले ॥ ५२ ॥ पौर्णमास्यां कार्त्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना ॥ गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ॥ ५३ ॥ गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः ॥ तदा ब्रह्मा दिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा॥५४॥पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वंदिता सदा ॥ पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता ॥५५॥

मुनिगण, सबही उनकी पूजा करते हैं देवी सरस्वतीके उत्पन्न होनेपर सबसे पहले भगवान् ब्रह्माजीने उनकी पूजा करी ॥ १५१ ॥ तबसे क्या श्रेष्ठतममुनिगण, क्या देवतागण, सभी उनकी पूजा करते हैं गोलोकरासमंडलमें पहले राधाकी पूजा हुई ॥ १५२ ॥ कार्त्तिकी पौणमासीकी रजनीमें परमात्मरूपी भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकधाम रासमंडलमें देवी राधाकी प्रथम पूजा करी फिर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सम्पूर्ण गोप सम्पूर्ण गोपिका सम्पूर्ण बालकबालिका ॥ १५३ ॥ गोपजननी सुरभी और अन्यान्य गोपोंने उनकी पूजा की. यही क्या ? तबसेही ब्रह्मादिदेवता और मुनिपर्यन्त अत्यन्त भक्तिसहित ॥ १५४ ॥ धूपदीपादि विविध उपहार द्वारा परमानन्दसे श्रीराधाकी

पूजामें रत हुए हैं भूतलमें राधाका प्रथम सुयज्ञराजाने पूजन किया ॥ १५५ ॥ भगवान् शंकरके उपदेशानुसार इस पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें राजा सुयज्ञने पूजा करी फिर परमात्मरूपी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार तीनों लोकमें ॥१५६॥ सर्वत्र उनकी पूजा प्रचलित हुई है मुनिगण भक्ति पूर्वक पुष्प धूपादि विविध उपाहारसे सर्वदा देवीराधिकाकी पूजा करते हैं हे वत्स नारद ! इनके अतिरिक्त प्रकृतिके अंशसे जो सब देवी उत्पन्न हुई हैं भारतमें वह सबही पूजित होती हैं ॥ १५७ ॥ यही क्या ? ग्राममें ग्राम देवी वनमें वनदेवी और नगरमें नगर देवीकी पूजा होती है हे वत्स नारद ! यह मैंने तुमसे शास्त्रानुसार संपूर्ण प्रकृतियोंके शुभचरित्र वर्णन किया ॥ १५८ ॥ शास्त्रानुसार लक्षण कहे अब क्या सुननेकी

शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः ॥ ५६ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा ॥ कला या याः समुद्भूताः पूजितास्ताश्च भारते ॥ ५७ ॥ पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥ एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ॥ १५८ ॥ यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ नारद उवाच ॥ समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो ॥ विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह ॥ कथं वा पंचधा भूता वद वेदविदांवर ॥ २ ॥ भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे ॥ व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध ॥ स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मंगलम् ॥ ४ ॥

इच्छा है ? सो कहो ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे प्रभो ! आपने जो संक्षेपसे पंचप्रकृति देवीका चरितविषय कहा वह मैंने सुना पर अब विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ आप वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं इसकारण पूछता हूं कि इस जगत् प्रपंचके पहिलेही मूलप्रकृति आद्याशक्तिकी सृष्टि क्यों हुई किस निमित्त वह पांच प्रकारसे हुई ॥ २ ॥ कैसे त्रिगुण रूपिणी होकर पांच भागोंमें विभक्त हुई ? यह आनुपूर्वीसे सब सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ अतएव अब आप उनके मंगलदायक जन्मका

वृत्तान्त पूजाप्रकरण, ध्यानविधि, स्तोत्रकवच महिमा और प्रभाव-विषय सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे देवर्षे ! आत्मा नभोमंडल, काल, दशदिक् विश्वोंके गोलक, गोलोक ॥ ५ ॥ और जिसकी अपेक्षा निम्नभाग स्थित वैकुण्ठधाम जिस प्रकार नित्य पदार्थ है परब्रह्मरूपिणीकी मायारूपिणी मूलप्रकृति भी उसी प्रकार नित्य पदार्थ है ॥६॥ अग्नि और दाहिकाशक्ति, चन्द्र और रमणीयता, कमल और शोभा रवि और प्रभा जिस प्रकार अभिन्न भावसे सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं आत्मा और प्रकृति भी उसी प्रकार अभिन्न भावसे परस्पर मिलित रहती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सुनार सुवर्णके विना कुण्डल और कुंभार मट्टीके विना घट बनानेमें समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार आत्मा सर्वशक्ति

श्रीनारायण उवाच ॥ नित्य आत्मा नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ॥ विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥५॥ तदेकदेशो वैकुंठो नम्रभागानुसारकः ॥ तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥ ६ ॥ यथाऽग्नौ दाहिका चंद्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ ॥ शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि ॥ ७ ॥ विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुंडलं कर्तुमक्षमः ॥ विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि न हीश्वरः ॥८॥ न हि क्षमस्तथाऽऽत्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा यया च शक्तिमान्सदा ॥ ९ ॥ ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च ॥ तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥१०॥ ज्ञानं समृद्धिं संपत्तिर्यशश्चैव बलं भगः ॥ तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥ ११ ॥ तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ॥ स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥

स्वरूपा प्रकृतिके विना कोई कार्य नहीं कर सकता अतएवआत्मा प्रकृतिकी सहायतासे ही सर्वशक्तिमान् है ॥ ९ ॥ "श" ऐश्वर्यवाचक और " क्ति " पराक्रमवाचक है सुतरां ऐश्वर्य और पराक्रमस्वरूपा एवं इन दोनोंकी दात्री होनेसे मूलप्रकृति शक्तिनामसे कही गई है ॥ १० ॥ भग शब्दज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलवाचक है अतएव मूलप्रकृतिकी यह सब ज्ञानादिशक्ति विद्यमान रहनेसे उनको भगवती भी कहते हैं ॥ ११ ॥ आत्मा सदा शक्तिरूपा भगवतीके संग सम्मिलन होनेके कारण भगवान् नामसे अभिहित

हुआहै भगवान् स्वयं इच्छामय देव हैं इसीलिये वह कभी साकार और कभी निराकार होते हैं ॥ १२ ॥ योगिगण सदा इन्हीं निराकार भगवान्की तेजो मूर्तिकी भावना और उनको ही परमानन्दरूपी, परब्रह्म, परमेश्वर कहकर कीर्त्तन करते हैं ॥ १३ ॥ यद्यपि वह और हो वह अदृश्य, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वदाता और सर्वरूपी है किन्तु वैष्णवगण यह बात स्वीकार नहीं करते ॥ १४ ॥ वह कहते हैं कि तेजस्वीके विना किस प्रकार तेजकी उत्पत्ति होगी ? अतएव जो ज्योति मण्डलके मध्यभागमें विराजमान रहते हैं वही परब्रह्म, वही तेजस्वीपुरुष, वही परात्पर॥१५॥वही इच्छामय वही सर्वरूपी और वही सब कारणोंका कारण हैं और उनका रूप अत्यन्त मनोहर है ॥१६॥ वह अवस्थामें

तेजोरूपं निराकारं ध्यायंते योगिनः सदा ॥ वदंति च परं ब्रह्म परमानंदमीश्वरम् ॥१३॥ अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्॥ सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते ॥१४॥ वदंति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना ॥ तेजोमंडलमध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥ अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम् ॥ १६ ॥ किशोरवयसं शांतं सर्वकांतं परात्परम् ॥ नवीननीरदाभासधामैकं श्यामविग्रहम् ॥ १७ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥ मुक्ताच्छविविनिंद्यैकदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ १८ ॥ मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमंडितम् ॥ सुनसं सस्मितं कांतं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १९ ॥ ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥

किशोर उनकी मूर्त्ति अति शान्त और सबसे कमनीय है, वह परात्पर हैं, उनका श्यामाङ्ग नवीन मेघके समान आभासमान है॥१७॥उनके दोनों नेत्रोंनें मध्याह्नके कमलोंकी शोभाका तिरस्कार किया है, उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे मुक्तापंक्ति भी लज्जित होती है ॥१८॥ उनके चूडामें मयूरपुच्छ गलेमें मालतीमाला नासिका अत्यन्त मनोहर और मुखमें हास्य सदा विराजमान है । भक्तोंके प्रति दया प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ पहरनेके पीताम्बरने मानो प्रज्वलित अग्निके समान द्युति धारण की है । आजानुलम्बित दोनों हाथमें

मुरली विराजमान और संपूर्ण अंग रत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ २० ॥ वह जगत्‌के एक मात्र आधार सबके प्रभु और सर्वशक्तिमान् विभु हैं, वह सबको सब प्रकार ऐश्वर्य और मंगल प्रदान करते हैं वह किसीके अधीन नहीं हैं॥ २१॥ उनमें अपूर्णताका लेश मात्र भीनहीं है, वह स्वयं सिद्धपुरुष और समस्त सिद्धपुरुषोंमें प्रधान हैं सबकोही सिद्धि प्रदानकरते हैं वैष्णवगण निरन्तरउन्हीं सनातन देवदेव श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं॥ २२॥ उनके प्रसादसे मनुष्योंको जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि,शोक और भयका लेशमात्र भी नहीं रहता, उनका एक निमेष ब्रह्माकी आयुकापरिमाण है ॥ २३॥ वही परमात्मा वही परब्रह्म कृष्ण नामसे अभिहित होते हैं 'कृषि' शब्द श्रीकृष्णकी भक्ति वाचक और " न " उनका दास्यवाचक है ॥ २४ ॥

सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥ सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतंत्रं सर्वमंगलम् ॥ २१ ॥ परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम् ॥ ध्यायंते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम् ॥ २२ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ब्राह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते ॥ २३ ॥ स चाऽऽत्मा स परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः ॥ २४ ॥ भक्तिदास्यप्रदाता यः स च कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजमेव च ॥ २५ ॥ स कृष्णः सर्वस्रष्टाऽऽदौ सिसृक्षन्नेक एव च ॥ सृष्ट्यन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥ २६ ॥ स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ॥ स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः ॥ २७ ॥

अतएव जो भक्ति और दास्यके दाता हैं वही कृष्ण हैं प्रकारान्तरमें "कृषि" शब्दका अर्थ सकल और "न" शब्दका अर्थ बीज है ॥ २५ ॥ सुतरां जो सबके बीज अर्थात् सबके उत्पन्न कर्ता हैं वही कृष्ण हैं जब सबसे पहिले उन्होंने इस विश्वको उत्पन्न करनेकी इच्छा की तब एकमात्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई विद्यमान नहीं था अंतमें वही प्रभु कालप्रेरित होकर अंशसे सृष्टि कार्यमें उद्योगी हुए ॥ २६ ॥ फिर उन्हीं स्वेच्छामयके स्वीय इच्छानुसार द्विधा विभक्त होनेपर उनका वामभाग स्त्री और दहिना अंग पुरुष

रूपमें परिणत होता है ॥ २७ ॥ तब वह सनातन महाकामी कामके एक मात्र आधार लोचन लोभनीय शोभायमान कमलके समान वामाङ्ग संभूता रमणीपर दृष्टिपात करते हैं ॥२८॥ इस स्त्रीके दोनों नितम्ब चन्द्रमण्डलका तिरस्कार करते हैं उसके दोनों ऊरु देखनेमें कदली स्तम्भ स्तंभित हो जायँ ॥ २९ ॥ उसके दोनों स्तनके देखनेसे शोभायमान दो श्रीफलकी भ्रान्ति होती है, कवरी बंधनमें पुष्प गुँथे हुए कमर अत्यन्त पतली, देखनेमें अत्यन्त मनोहर ॥३०॥ अतीव सुन्दर मूर्ति अतिशांत मुखमें सदा हास्य दृष्टि पैरोंमें लगी हुई पहरनेके अनलमें विशुद्ध उत्कृष्ट, वस्त्र, सर्वाङ्ग रत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ ३१ ॥ उसके नयन चकोर आनन्दसे, निरन्तर श्रीकृष्णके करोड़ चन्द्र

तां ददर्श महाकामीकामाधारां सनातनः॥ अतीव कमनीयां च चारुपंकजसन्निभाम्॥२८॥चंद्रबिंबविनिंद्यैकनितंबयुगलां पराम् ॥ सुचारुकदलीस्तंभनिंदितश्रोणिसुंदरीम् ॥२९॥ श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् ॥ पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥ ३० ॥ अतीव सुंदरीं शांतां सस्मितां वक्रलोचनाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधारां रत्नभूषणभूषिताम् ॥३१॥ शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबंतीं सततं मुदा ॥ कृष्णस्य मुखचंद्रं च चंद्रकोटिविनिंदितम् ॥३२॥ कस्तूरीबिंदुना सार्धमधश्चंदनबिंदुना ॥ समं सिंदूर बिंदुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम् ॥ ३३ ॥ वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ रत्नेंद्रसारहारं च दधतीं कांतकामुकीम् ॥ ३४ ॥ कोटिचंद्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम् ॥ गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमंडले ॥ रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडां चकार ह ॥ ३६ ॥

लजानेवाले मुख चन्द्रको पान करते हैं ॥३२॥ उसके ललाटमें सिन्दूर बिन्दु उसके ऊपर चन्दन बिन्दु और उसके ऊपर कस्तूरी लगी हुई है ॥३३॥उसके मस्तकका कवरीभार कुछेक वक्र, वहभी फिर मालती मालसे विभूषित सर्वोत्कृष्ट रत्नहार विराजित और वह सदा केवल स्वामीके प्रति स्पृहावती है ॥ ३४ ॥ उसका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एक वारही करोड़ चन्द्रमा उदय हुए हैं उसका गमन देखकर राजहंस और मातङ्गका गर्व खर्व हो जाता है ॥ ३५ ॥ हे मुनिवर ! रासेश्वर रासक्रीडा रसिक श्रीकृष्ण वे क्षणकाल अपाङ्गमें उसको देख फिर उसका

हाथ पकड रासमंडलमें जाय रासक्रीडा आरम्भ करी ॥ ३६ ॥ मानो शृङ्गारदेव स्वयं मूर्तिमान् होकर विविध शृंगार सुख संभोग करने लगे यही क्या ? इस क्रीडामें ब्रह्माका एक दिन वीत गया ॥ ३७ ॥ तब जगत्पिताने थकित होकर शुभ कालमें उस वामाङ्ग संभूता रमणीकी योनिमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ प्रकृति देवी श्रीकृष्णके निपीडनसे वहुत थक गई थी इस कारण सुरतके अन्तमें उनके गात्रसे पसीना निकलने लगा ॥ ३९ ॥ और घनघन श्वास चलने लगा, उनके ही पसीनेने जल रूपमें परिणत होकर सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित किया ॥ ४० ॥ और वह निश्वास वायु ही वायुरूप धारण करके जगत्वासी मनुष्योंके जीवन रूपमें परिणत हुआ ॥४१॥ वायु देवके वामाङ्ग

नानाप्रकारशृंगारं शृंगारो मूर्तिमानिव ॥ चकार सुखसंभोगं यावद्वै ब्रह्मणोदिनम् ॥ ३७ ॥ ततः स च परिश्रांतस्तस्या योनौ जगत्पिता ॥ चकार वीर्याधानं च नित्यानंदे शुभक्षणे ॥ ३८ ॥ गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतांते च सुव्रत ॥ निःससार श्रमजलं श्रांतायास्तेजसा हरेः ॥ ३९ ॥ महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह ॥ तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥ ४० ॥ स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह॥निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च॥४१॥बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामांगात्प्राणवल्लभा॥ तत्पत्नीसा च तत्पुत्राः प्राणाः पंच च जीविनाम्॥४२॥ प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः॥ बभूवुरेव तत्पुत्रा अधःप्राणाश्च पंच च ॥ ४३ ॥ धर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् ॥ तद्वामांगाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥ ४४ ॥ अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह ॥ शतमन्वंतरं यावज्ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ॥ ४५ ॥

जिस रमणीरत्नकी उत्पत्ति होती है वही इन वायुदेवकी पत्नी और उसकेही संसर्गसे प्राण अपान समान उदान और व्यान नामक जो पंचपुत्रोंकी उत्पत्ति होती है वही जीवोंके पांच प्राण हैं उनके अतिरिक्त वायुपत्नीके गर्भसे नागादि और पांच अधः प्राणकी उत्पत्ति हुई है ॥४२॥४३॥ पसीनेके जलसे जिस जलकी उत्पत्ति हुई वरुण देव उसके अधिष्ठाता और वरुणदेवके वामाङ्गसे जिस रमणीकी उत्पत्ति हुई वही वरुणपत्नी वरुणानी हैं॥४४॥ इस ओर श्रीकृष्णकी ज्ञानरूपा शक्तिने श्रीकृष्णके सहवाससे शत मन्वन्तर पर्यन्त गर्भधारण किया ब्रह्मतेजसे उसके शरीरने

उज्ज्वल ज्योति धारण की ॥४५॥ कृष्ण ही इसके जीवन और वही कृष्णको प्राणोंसे भी प्रियपदार्थ है सदाही कृष्णके संगमें अवस्थित है अधिक क्या श्रीकृष्णके वक्षस्थलका आश्रय करके अवस्थान करती है ॥ ४६ ॥ अनन्तर शत वर्ष काल व्यतीत होनेपर उस सुन्दरीने सुवर्णके समान वर्णयुक्त एक बालक उत्पन्न किया यह (बालक) ही विश्वाधारका एकमात्र आधार है ॥ ४७ ॥ तव श्रीकृष्णकी कान्ता उस डिम्भको देखकर मनमें अत्यन्त दुःखी हुई और क्रोधमें भरकर उस डिम्भको ब्रह्माण्ड मध्यवर्ती सलिलमें डाल दिया ॥ ४८ ॥ यह देख श्रीकृष्ण हाहाकार शब्द कर उठे और तिसी समय यथोचित शाप देकर कहा ॥ ४९ ॥ हे कोपने ! निष्ठुरे ! जब तुमने क्रोधमें भरकर अपने

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ॥ कृष्णस्य संगिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥ ४६ ॥ शतमन्वंतरांते च काले ऽतीते तु सुंदरी ॥ सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम् ॥४७॥ दृष्ट्वा डिंभं च सा देवी हृदयेन व्यदूयत ॥ उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डगोलके जले ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह ॥ शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥ ४९ ॥ यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे ॥ भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥ ५० ॥ या यास्त्व दंशरूपाश्च भविष्यंति सुरस्त्रियः ॥ अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवीजिह्वाग्रात्सहसा ततः ॥ आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥ ५२ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ॥ रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्रा धिदेवता ॥५३॥ अथ कालांतरे सा च द्विधारूपा बभूव ह ॥ वामार्धांगाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका ॥ ५४ ॥

सन्तानको त्याग दिया है तब मैं कहता हूं कि आजसे तुम निःसन्देह अपत्यसे वञ्चित होगी ॥ ५० ॥ इसके अतिरिक्त जो सब दिव्याङ्गना तुम्हारे अंशसे उत्पन्न होंगी वह भी सब स्थिर यौवन होकर तुम्हारे समान अपुत्र होंगी ॥ ५१ ॥ हे मुनिवर ! श्रीकृष्ण इस प्रकार शाप दे ही रहे थे उसी अवसरमें सहसा उस श्रीकृष्ण प्रिया की जिह्वाके अग्रभागसे श्वेतवर्ण अति मनोरम एक कन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ ५२ ॥ उसके वस्त्र सफेद हाथमें वीणा और पुस्तक और सब अंग रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थे वही सम्पूर्ण शास्त्रोंकी अधिदेवता है ॥५३॥ कुछ कालोपरान्त

वह श्रीकृष्ण प्रिया मूलप्रकृति दो भागमें विभक्त हुई उसके वाम अंगसे कमला और दक्षिणअंगसे राधिकाकी उत्पत्ति हुई ॥ ५४ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्ण भी द्विधा विभक्त हुए उनके दक्षिणार्द्धसे द्विभुज और वामार्द्धसे चतुर्भुज मूर्तिका आविर्भाव हुआ ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णने वीणाधारिणी वाणीसे कहा हे देवि ! तुम इस द्विभुज पुरुपकी कामिनी होओ और राधासे कहा हे राधे ! तुम अभिमानवती हो इस कारण तुम मेरी पत्नी हो तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने संतुष्ट होकर लक्ष्मीको भी द्विभुज नारायणके हाथमें समर्पण किया फिर जगत्पति नारायण लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको संग लेकर वैकुण्ठधाममें चले गये ॥ ५७ ॥ हे मुनिवर ! श्रीकृष्णके शापसे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही

एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः ॥ ५५ ॥ उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव ॥ अत्रैव मानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति ॥ ५६ ॥ एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च ॥ स जगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः ॥ ५७ ॥ अनपत्ये च ते द्वे च जाते राधांशसंभवे ॥ भूता नारायणांगाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥ ५८ ॥ तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः ॥ बभूवुः कमलांगाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः ॥ ५९ ॥ अत्र गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने ॥ भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥६०॥ रूपेण च गुणेनैव बलेन विक्रमेण च ॥ प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥ ६१ ॥ राधांगलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः ॥ राधातुल्याश्च ताः राधादास्यः प्रियंवदाः ॥ ६२ ॥

पुत्रधनसे वञ्चित नहीं चतुर्भुज नारायणके अंगसे उनके अनुरूप कितनेही पार्श्वचर उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ वह सब रूप गुण तेज और वयसमें उनके समान थे इधर कमलाके शरीरसे भी उसके समान रूप गुणशालिनी करोड करोड पार्श्वचारिणियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ५९ ॥ अनन्तर गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोपोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६० ॥ वह सभी रूप गुण पराक्रम और वयसमें गोलोकनाथके अनुरूप थे अधिक क्या ? वह सब उन विभुके प्राणोंके समान प्रियपात्र थे ॥ ६१ ॥ राधिकाके रोमोंसे गोपकन्याओंकी उत्पत्ति हुई वह सब गोपाङ्गना

राधाके अनुरूप राधाकी ही पार्श्वचरी और सभी प्रियंवदा थीं ॥ ६२ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर रत्नमय भूषणोंसे विभूषित और सभी स्थिरयौवना थीं श्रीकृष्णके शापसे उनमें किसीके भी सन्तान सन्तति नहीं हुई ॥ ६३ ॥ हे द्विजवर ! इस ओर इसी समय सहसा कृष्णदेवता सनातनी विष्णुमाया दुर्गाकी उत्पत्ति हुई ॥ ६४ ॥ वही नारायणी वही ईशानी सबकी शक्तिरूपिणी और वही परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी बुद्धिको अधि ष्ठात्री देवता हैं।।६५।। उनसेही अन्यान्य देवियोंकी उत्पत्ति हुई है वही मूलप्रकृति और वही ईश्वरी हैं उनमें अपूर्णताका लेशमात्र नहीं है वही तेजः स्वरूपा और वही त्रिगुणात्मिका हैं ॥ ६६ ॥ उनका वर्ण तप्त कंचनके समान उज्ज्वल है, उनका सौन्दर्य देखनेसे बोध होता है मानो एकवार

रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः ॥ अनपत्या ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्र सहसा कृष्णदेवता ॥ आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी ॥ ६४ ॥ देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ बुद्ध्यधि ष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ६५ ॥ देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणा त्मिका॥६६॥तप्तकांचनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥६७॥ नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥६८॥ यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः ॥ सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया ॥६९॥ सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् ॥ कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी ॥७०॥

ही करोड़ सूर्य उदय हुए हैं, कुछेक हास्यसे मुस्कुरातामुख संतत प्रसन्न और हस्त संख्यामें सहस्र हैं ॥ ६७ ॥ और सब हाथोंमें ही अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र हैं उन त्रिलोचनाका परिधान अग्नि विशुद्ध उज्ज्वल वर्ण वस्त्र और अंगोंमें जो कितनेही रत्नाभरण हैं उनकी सीमा नहीं है ॥६८॥ उनके ही अंश और उनके ही अंशके अंशसे संपूर्ण रमणीरत्नकी उत्पत्ति हुईहै उनकी ही मायाके प्रभावसे जगत्के संपूर्ण लोक मोहित हैं ॥ ६९ ॥ गृहस्थी लोग जिस जिस प्रकारके ऐश्वर्यकी कामना करते हैं वह उनको वही प्रदान करती हैं वही कृष्णभक्त मनुष्यको कृष्णभक्ति

प्रदान करती हैं अधिक क्या ? वही वैष्णवोंकी वैष्णवी शक्ति हैं ॥ ७० ॥ वह मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको मोक्ष और सुखकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सुख देती हैं वही स्वगकी स्वर्गलक्ष्मी और गृहकी गृहलक्ष्मी हैं ॥ ७१ ॥ वही तपस्वियोंका तप, राजाओंकी राज्यश्री, अग्निकी दाहिकाशक्ति सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥ चन्द्रकी रमणीयता, कमलकी शोभा और परमात्मरूपी श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूप हैं ॥ ७३ ॥ क्या आत्मा क्या जगत् समस्त ही उनके द्वारा शक्तिशाली है उनके विना सम्पूर्ण जगत् प्रायः जीवन्मुक्त होता है ॥ ७४ ॥

मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मी गृहेषु च ॥७१॥ तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च ॥ या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥ ७२ ॥ शोभारूपा च चंद्रे च सा पद्मेषु च शोभना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥ ७३ ॥ यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥ ७४ ॥ या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ॥ स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥ ७५ ॥ क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तंद्रा क्षमा मतिः ॥ शांतिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रांतिकांत्यादिरूपिणी ॥ ७६ ॥ सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह ॥ रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥७७॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निस्ससार महामुने ॥ ७८ ॥ कमंडलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ॥ चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ७९ ॥

हे नारद ! वही संसारवृक्षका बीज वही सनातनी वही स्थिति वही बुद्धि वही फल ॥ ७५ ॥ वही क्षुधा वही पिपासा वही दया वही निद्रा वही तन्द्रा वही क्षमा वही धृति वही शान्ति वही लज्जा वही पुष्टि वही तुष्टि और वही कान्तिरूपिणी हैं ॥ ७६ ॥ वह मूल प्रकृति सर्वेश्वर श्रीकृष्णका स्तव करके उनके सन्मुख अवस्थान करने लगी तब राधिकेश्वरने उसके बैठनेको सिंहासन दिया ॥७७॥ हे महामुने ! इसी समयमें पद्मनाभके नाभिपद्मसे अतीव रमणीय मूर्ति सावित्री पत्नीसहित चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ ॥ ७८ ॥ वह कमण्डलु

धारी ज्ञानियोंमें अग्रणी तपःपरायण श्रीमान् चतुर्मुख उत्पन्न होते ही चारों मुखसे श्रीकृष्णका स्तव करने लगे ॥ ७९ ॥ इधर वह सुख संभूत शत चन्द्रप्रभा, अग्निविशुद्धवसनधारिणी अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित ॥ ८० ॥ देवी सावित्री विश्वके एकमात्र कारण स्वरूप श्रीकृष्णका स्तव करके परमानन्दपूर्वक स्वामीके संग रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुई ॥ ८१ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णभी द्विधा अर्थात् दो भागोंमें विभक्त हुए उनका वामार्द्धभाग महादेव और दक्षिणार्द्ध गोपिकापति रूपमें परिणत हुआ ॥८२॥ महादेवजीके शरीरकी प्रभा विशुद्ध

सा तदा सुंदरी सृष्टा शतचंद्रसमप्रभा ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा ॥ ८० ॥ रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् ॥ उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा ॥ ८१ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ वामार्धांगो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः ॥ ८२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः ॥ त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मांबरो हरः ॥ ८३ ॥ ततकांचनवर्णाभो जटाभारधरः परः ॥ भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चंद्रशेखरः ॥ ८४ ॥ दिगंबरो नीलकंठः सर्पभूषणभूषितः ॥ बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥८५॥ प्रजपन्पंचवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८६ ॥ कारणं कारणानां च सर्वमंगलमंगलम् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ८७ ॥

स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण देखनेसे बोध होता है मानो एक संग सौ करोडसूर्य उदय हुए हैं जिनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश, परिधान व्याघ्र चर्म ॥ ८३ ॥ शिरपर ततकाञ्चनके समान पिङ्गलवर्ण जटाभार, सर्वाङ्गमें भस्म विलेपन मुखमें हास्य और भालमें अर्द्धचन्द्र ॥ ८४ ॥ जिनके कटितटमें वस्त्र नहीं अतएव दिगम्बर है जिनका कण्ठ नीलवर्ण है अंगमें सर्प विभूषण, दहिने हाथमें (जपके उपयोगी रत्नमाला) ॥८५॥ जो पंचमुखसे केवल सनातन वेदमंत्रका जप करते थे जो सत्यस्वरूप कृष्णस्वरूप परमात्मस्वरूप ईश्वरस्वरूप ॥ ८६ ॥ सम्पूर्ण उपादानके भी

उपादानस्वरूपसम्पूर्णमंगलके भी मंगलस्वरूप, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयभंजन ॥८७॥ श्रीकृष्णका स्तवकर मृत्युको जीत मृत्युञ्जय नाम पाया वही महादेव श्रीकृष्णके सन्मु खरत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे ! मूलशक्तिप्रसूत जो डिम्भ ब्रह्माके वयःपरिमित कालतक जलमें भासमान था वह डिम्भ अब तक यथोचित समयमें सहसा द्विधा विदीर्ण हुआ ॥१॥ इस डिम्भमें सौ करोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त एक बालक विद्यमान था माताके परित्याग करनेसे स्तनपान नहीं करसका इसकारण भूंखसे कातर होकर क्षणकालतक बारंबार रोदनकरने लगा॥२॥ जो बालक परिणाममें असंख्य ब्रह्माण्डके

संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युंजयाभिधः ॥ रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरे पुरः ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथ डिंभो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह ॥ १ ॥ तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः ॥ क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनांधः पीडितः क्षुधा ॥ २ ॥ पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥ ३ ॥ स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट् ॥ परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्तत्परः स्थूलात्तथाऽप्यसौ ॥ ४ ॥ तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ आधार सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥ ५ ॥ तेजकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ॥ अस्याऽपि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः ॥ ६ ॥

अधीश्वर रूपमें परिणत है पिता माता हीन वह बालक निराश्रय होकर जलसे ऊर्द्धभाग अवलोकन करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अन्तमें यही बालक एक ही वार स्थूलतम होकर महाविराट्नामसे अभिहित हुआ है जिसप्रकार परमाणुसे सूक्ष्म तम पदार्थ अन्य (दूसरा) नहीं है इसी प्रकार महा विराट्से स्थूलतम पदार्थ भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥ इस महाविराट्का प्रभाव परमात्मरूपी श्रीकृष्णके सोलहवें अंशका एक अंश है किन्तु राधारूपा प्रकृतिसंभूत यह बालक ही सब विश्वका एकमात्र आधार और वही महाविष्णुनामसे अभिहित है ॥ ५ ॥ उसके प्रत्येक रोममें असंख्य

विश्व विराजमान हैं अधिक क्या श्रीकृष्णभी उन सब विश्वकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥६॥ कदाचित् रजःसंख्याकी गणना होजाय किन्तु विश्वकी संख्या गणना संभव नहीं है और इसी प्रकार कितने ब्रह्मा कितने विष्णु और कितने महादेव विद्यमान रहते हैं उनकी भी संख्या नहीं है ॥ ७ ॥ प्रति ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं पातालसे ब्रह्मलोक पर्यन्त एक एक ब्रह्माण्डकी सीमा है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठ धाम उसके ऊपर अर्थात् ब्रह्माण्डके बहिर्भागमें अवस्थित है और गोलोकधाम इस वैकुंठधामके पञ्चाशतकोटि योजन ऊर्द्ध्वभागमें अवस्थितहै ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण जिस प्रकार नित्य और सत्यस्वरूप हैं यह गोलोकधाम उसी प्रकार है सप्तद्वीप समन्वित यह पृथ्वी सातसमुद्रसे

संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ॥७॥ प्रतिविश्वेषु संत्येवं ब्रह्मविष्णु शिवादयः ॥ पातालाद्ब्रह्मलोकांतं ब्रह्मांडं परिकीर्तितम् ॥ ८॥ तत ऊर्ध्वं च वैकुंठो ब्रह्मांडाद्बहिरेव सः ॥ तत ऊर्ध्वं च गोलोकः पंचाशत्कोटियोजनः ॥९॥ नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम् ॥ सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता ॥१०॥ ऊन पंचाशदुपद्वीपाऽसंख्य शैलवनान्विता ॥ ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः ॥११॥ पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्ड मेव च ॥ ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम् ॥ १२ ॥ ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथा परः ॥ ततः परस्तपोलोक स्सत्यलोकस्ततः परः ॥ १३ ॥ ततः परं ब्रह्मलोकस्तप्तकांचनसन्निभः ॥ एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यंतरमेव च ॥ १४ ॥

परिवेष्टित रहती है ॥ १० ॥ इसमें उंचास उपद्वीप विद्यमान हैं इनके अतिरिक्त कितने ही जो पर्वत और वन विद्यमान रहते हैं उनकी संख्या नहीं है उनके ऊर्द्ध्वमें ब्रह्मलोकसहित सप्तस्वर्ग ॥ ११ ॥ और अधोभागमें सप्तपाताल हैं यही ब्रह्मांडकी सीमा है धराके व्यवधानसे आगे ऊर्द्ध्वमें भूर्लोक उसके ऊपर भुवर्लोक ॥ १२ ॥ उसके ऊपर स्वर्लोक उसके ऊपर जनलोक उसके ऊपर तपोलोक उसके ऊपर सत्यलोक॥१३॥ और तिसके ऊपर ब्रह्मलोक है, इस ब्रह्मलोककी प्रभातप्तकांचनके समानहै, किन्तु यह ब्रह्माण्ड विवृतिके बहिर्भागमें स्थित हो वा आभ्यन्तरीण

हो सम्पूर्ण पदार्थ ही कृत्रिम अर्थात् अनित्य हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डके विनाशमें सम्पूर्ण ही नष्ट होता है, समस्त विश्व ही जलबुदबुदके समान अनित्य है ॥ १५ ॥ केवल गोलोक और वैकुण्ठ धाम नित्य पदार्थ है महाविराट्के प्रत्येक रोममें ही एक एक ब्रह्माण्ड विराजमान है ॥ १६ ॥ दूसरेकी तो बात ही नहीं स्वयं श्रीकृष्ण भी इन समस्त ब्रह्माण्डकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रति ब्रह्माण्डमें ही देवताओंकी संख्या तीन करोड़ हैं इनमें कितने ही दिक्पति कितने ही दिक्पाल कितने ही नक्षत्र और कितनेही ग्रहादि हैं ॥ १८ ॥ भूलोकमें ब्राह्मणादि चारोंवर्ण और पातालमें नाग हैं इस प्रकार स्थावर

तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम् ॥ १५ ॥ नित्यौ गोलोकवैकुंठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ॥प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्मांडं परिनिश्चितम् ॥१६॥ एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्याऽपि का कथा ॥ प्रत्येकं प्रतिब्रह्मांडं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१७॥ तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक ॥ दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः ॥१८॥ भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽप्यधो नागाश्चराचराः॥ अथ कालेऽत्र स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः॥१९॥डिम्भान्तरे च शून्यं च न द्वितीयं च किंचन ॥ चिंतामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः ॥ २० ॥ ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम् ॥ ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥२१॥ नवीनजलदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥ सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ २२ ॥

जंगमात्मक विश्व विद्यमान रहता है, यही ब्रह्माण्ड विवृति है ॥ १९ ॥ हे वत्स नारद ! इस ओर वह विराट् पुरुष वारंवार ऊपरको देखने लगे किन्तु उन्होंने उस (दो भाग हुए) अंडेमें शून्य पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा तब वह भूंखसे अत्यन्त कातर हो वारंवार रुदन करते हुए अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ २० ॥ कुछ कालोपरान्त पूर्वसंस्कारके बलसे ज्यों ही उनके मनमें अस्तित्व बुद्धिका उदय हुआ, उसी समय वह परम पुरुष श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हुए तब तत्काल वहां उस सनातन ब्रह्मज्योतिको देखा ॥ २१ ॥ उनका रूप नवीन

मेघके समान श्यामवर्ण दो हाथ परिधान पीताम्बर मुखमें कुछेक हास्य हाथमें मुरली और उनका रूप देखनेसे बोध होता था मानो भक्तके प्रति दया प्रकाश करनेमें अत्यन्त तत्पर हैं ॥ २२ ॥ विराट्रूपी बालक सर्वेश्वर अपने पिताको देखते ही आनन्दसे हँसने लगा तब उन वरद देवने बालकको समयोचित वरदान करके कहा ॥ २३ ॥ "हे वत्स ! तुम मेरे समान ज्ञानयुक्त होओ, तुम्हारी भूँख प्यास दूर हो तुम प्रलय कालपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आधार होओ ॥२४॥ तुम संपूर्ण वासनाको छोड सम्यक् प्रकारसे भयरहित हो प्राणियोंको अभीष्ट प्रदान करो जरा मरण रोग शोक वा किसी प्रकारकी पीड़ादि तुमको स्पर्श करनेमें समर्थ न हो" ॥ २५ ॥ यह कहकर उसके कानमें साङ्गवेद पूजित

जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥ वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम् ॥ २३ ॥ मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासादिवर्जितः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ॥ २४ ॥ निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव ॥ जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितो भव ॥२५॥ इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामंत्रं षडक्षरम् ॥ त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदांगप्रवरं परम् ॥२६॥ प्रणवादि चतुर्थ्यंतं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥ वह्निजायांतमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७॥ मंत्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः ॥ श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते ॥ २८ ॥ प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः ॥ तत्षोडशांशो विषयिणो विष्णोः पंचदशास्य वै ॥ २९ ॥ निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च ॥ नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किंचित्प्रयोजनम् ॥ ३० ॥

अभीष्टप्रद सर्वविघ्नविनाशन "ओं कृष्णाय स्वाहा" यह षडक्षर महामंत्र तीनवार जपा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! विभु श्रीकृष्णने इस प्रकार महामंत्र प्रदान करके फिर उसके भोगके लिये जिस प्रकार आहार विधान किया वह कहता हूं सुनो ॥ २८ ॥ प्रति विश्वमें भक्तलोग श्रीकृष्णको जो नैवेद्य प्रदान करते हैं उसका सोलहवां भाग वैकुण्ठपति नारायणके और अपर पन्द्रहभाग इस विराट्रूपी बालकके लिये कल्पित हुए हैं ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णने अपने लिये अंशकी कल्पना नहीं करी क्योंकि स्वयं गणातीत और पूर्णतम हैं अतएव जो सदाही

तृप्त रहते हैं उनको फिर नैवेद्यका क्या प्रयोजन है ॥ ३० ॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक उनको जो प्रदान करता है वह लक्ष्मीपति विराट् पुरुष ही उस सबको भोग करते हैं॥ ३१ ॥भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उस विराट्पुरुषको मन्त्र और वर देकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी अब क्या अभिलाषा है ? सो कहो मैं अभी प्रदान करूंगा॥ ३२॥ उस विराट्रूपी बालकने श्रीकृष्णका वचन सुनकर उनसे उचित वचन कहा॥ ३३॥ बालकबोले हे विभो ! मुझको अब कुछ वासना नहीं है केवल क्षणकाल हो वा दीर्घकालतक जीवित रहूं तबतक आपके चरणकमलोंमें सदा मेरी विमलभक्ति रहे॥ ३४॥

यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः ॥ स च खादति तत्सव लक्ष्मीनाथो विराट् तथा ॥ ३१ ॥ तं च मंत्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः ॥ वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च ॥३२॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः ॥ कृष्णं तं बालकस्तावद्वचनं समयोचितम् ॥ ३३ ॥ बालक उवाच ॥ वरो मे त्वत्पदांभोजे भक्तिर्भवतु निश्चला ॥ सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा ॥ ३४ ॥ त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च संततम् ॥ त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ३५ ॥ किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च ॥ व्रतेन चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६ ॥ कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा ॥ येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते ॥ ३७ ॥ यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुतः ॥ पश्चाद्यांति गते तस्मिन्स्वतंत्रा सर्वशक्तयः ॥ ३८ ॥

इस जगत्में जो पुरुष आपके भक्त हैं वह सदा ही जीवन्मुक्त हैं और जो आपके प्रति भक्तिशून्य हैं वह पुरुष जीवित रहनेपर भी मृतकके समान हैं ॥ ३५॥ कृष्णभक्तिविहीन पुरुषके जप तप यज्ञ पूजा नियम उपवास पवित्र तीर्थ सेवा और अन्यान्य पुण्यकर्मके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है ? ॥ ३६ ॥ जो पुरुष परमात्मरूपी श्रीकृष्णसे जीवन धारण करके फिर उनको ही अग्राह्य करता है उसके समान कृतघ्न और कौन है ? उस कृष्णभक्तिहीन मूढका जीवन धारण करना वृथा है ॥ ३७ ॥ जबतक देहमें आत्मा वास करता है तबतक संपूर्ण शक्ति विद्य

मान रहती हैं किन्तु आत्माके प्रस्थान करते ही आत्माधीन संपूर्ण इन्द्रियशक्ति भी उसके संग संग चली जाती हैं॥ ३८॥ हे महाभाग! जो प्रकृतिके अतीत स्वेच्छामय आदि पुरुष परमज्योतिस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं आप स्वयं वह विश्वात्मा हैं ॥ ३९ ॥ हे वत्स नारद! विराट्रूपी बालक केवल इतना कहते ही चुप होगया फिर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुति मधुरवचनसे कहा ॥ ४० ॥ भगवान् बोले हे वत्स ! तुम अनन्तकाल मेरे समान स्थिर भावसे अवस्थान करो असंख्य ब्रह्माके अतीत होनेपर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा ॥ ४१ ॥ तुम स्वीय अंशमें विभक्त होकर प्रति ब्रह्माण्डमें ही क्षुद्र क्षुद्र विराट्रूपसे परिणत होओ ब्रह्मा तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर विश्वकी सृष्टि करेंगे ॥ ४२ ॥ सृष्टिसंहारके

स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः ॥ स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद ॥ उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥ ४० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव ॥ ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्ते न भविष्यति ॥ ४१ ॥ अंशेन प्रतिब्रह्मांडे त्वं च क्षुद्रविराड् भव ॥ त्वन्नाभिपद्माद्ब्रह्मा च विश्वस्रष्टा भविष्यति ॥ ४२ ॥ ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ शिवांशेन भविष्यंति सृष्टिसंहरणाय वै ॥ ४३ ॥ कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः ॥ पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति ॥ ४४ ॥ मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे ॥ ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥ ४५ ॥ मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम् ॥ यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽतरधीयत ॥ ४६ ॥

निमित्त उन ब्रह्माके ललाटसे एकादशरुद्र उत्पन्न होंगे किन्तु वह सबही शिवांश हैं ॥ ४३ ॥ इन एकादशरुद्रोंमें जो कालाग्निनामक रुद्र हैं वही सब विश्वके संहारकर्ता हैं इनके सिवाय तुम्हारे क्षुद्रांशसे एक एक विष्णु उत्पन्न होंगे और वह भगवान् विष्णु ही विश्वके पालक हैं ॥ ४४ ॥ मैं कहता हूं कि मेरे वरदानसे तुम सदा मेरे प्रति भक्तिमान् होगे और तुम ध्यानयोग अवलम्बन करते ही मेरी मनोहर मूर्ति देखोगे इसमें संदेह नहीं है ॥ ४५ ॥ मेरे वक्षस्थलाश्रित तुमको जननीका दर्शन भी दुर्लभ नहीं होगा हे वत्स ! तुम स्वच्छन्दतासे इस स्थानमें वासकरो

मैं गोलोकको चलता हूं जगत्पति श्रीकृष्ण यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ ४६ ॥ फिर उन्होंने गोलोकमें उपस्थित हो तत्काल सृष्टि और संहारकार्यपटु ब्रह्मा और महादेवजीसे कहा ॥ ४७ ॥ भगवान् बोले हे वत्स विधातः ! तुम शीघ्र जाओ जाकर सृष्टिकार्यके लिये महाविराट्के लोमसे जो क्षुद्रविराट् उत्पन्न हों उन सब क्षुद्रविराट्के नाभिपद्मसे अंशमें उत्पन्न होओ ॥ ४८ ॥ हे वत्स महादेव ! तुम भी जाओ जाकर सृष्टिसंहारके लिये प्रति विश्वमें प्रत्येक ब्रह्माके कपालसे अंशमें उत्पन्न होओ किन्तु देखो अपनी दीर्घकाल तपस्या करनी मत भूल जाना ॥ ४९ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! श्रीकृष्ण ब्रह्मा और महादेवको इस प्रकार आज्ञा करके मौन हो गये इस ओर ब्रह्मा और शिवदाता शिव दोनों

गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शंकरं समुवाच ह ॥ स्रष्टारं स्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम् ॥ ४७ ॥ भगवानुवाच ॥ सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव ॥ महाविराड्लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु ॥ ४८ ॥ गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव ॥ अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत ॥ जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः ॥ ५० ॥ महाविराड्लोमकूपे ब्रह्मांडगोलके जले ॥ बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके ॥ ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः ॥ ५२ ॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः ॥ संभूय पद्मदंडे च बभ्राम युगलक्षकम् ॥ ५३ ॥ नांतं जगाम दंडस्य पद्मनालस्य पद्मजः ॥ नाभिजस्य च पद्मस्य चिंतामाप पिता तव ॥ ५४ ॥

जगत्पतिको प्रणाम करके स्वस्वकार्य करनेके लिये गये॥ ५० ॥ उधर उस ब्रह्माण्ड गोलकजलमें जो महाविराट् भासमान थे पूर्वमें उनकेही अंशसे उनके ही प्रतिलोमसे एक एक क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुए थे ॥ ५१ ॥ दूर्वादलश्यामरूप पीताम्बर धारी हास्य प्रफुल्ल वदन युवा विश्वव्यापी जो विराट्रूपी जनार्दन जलशय्यापर शयन कर रहे थे ॥ ५२ ॥ ब्रह्माने जाकर उनके नाभिपद्मसे जन्मग्रहण किया जन्मग्रहण करनेके उपरांत कमलयोनिने उस नाभिपद्म और उसके मृणालदण्डमें लक्षयुगपर्यंत भ्रमण किया॥ ५३॥ किन्तु किसी प्रकारभी पद्म और मृणालदण्डका कुछ अन्त

नहीं पाया हे वत्स नारद ! तब तुम्हारे पिता अत्यन्त चिंताकुल हो ॥५४॥ फिर अपने स्थानमें आय श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ध्यानयोग द्वारा दिव्यचक्षुसे प्रथम तो क्षुद्रविराट्॥५५॥ फिरजिनके लोममें ब्रह्माण्ड विराजमान है उन अनन्त जलशय्याशायी महाविराट्का॥५६॥ और फिर गोपगोपी समन्वित गोलोक विहारी परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया तब तुम्हारे पिताके गोलोकपतिके स्तुतिवादमें प्रवृत्त होनेपर उन्होंने तुम्हारे पिताको वर दिया इसके पीछे तुम्हारे पिता सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥५७॥ प्रथम तो तुम्हारे पिताके मानससे सनकादि मातृगण और फिर कपालसे एकादश रुद्र उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरांत उन जलमें सोये हुए क्षुद्रविराट् पुरुषके वामपार्श्वसे विश्वपाता चतुर्भुज

स्वस्थानं पुनरागम्य दध्यौ कृष्णपदांबुजम् ॥ ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥ ५५ ॥ शयानं जलतल्पे च ब्रह्मांडगोलकाप्लुते ॥ यल्लोमकूपे ब्रह्मांडं तं च तत्परमीश्वरम् ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् ॥ तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥ ५७ ॥ बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः ॥ ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः ॥ ५८ ॥ बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः ॥ चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत् ॥ ५९ ॥ क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह ॥ स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचरम् ॥६०॥ एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ॥ प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ६१ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कृष्णसंकीर्तनं शुभम् ॥ सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भगवान् विष्णुकी उत्पत्ति हुई वह श्वेतद्वीपमें जाकर वास करने लगे ॥५९॥ इस ओर तुम्हारे पिता उन क्षुद्रविराट् पुरुषके नाभिपद्ममें स्वर्ग मर्त्य और पाताल इस त्रिभुवनात्मक स्थावर जङ्गम समाकीर्ण विश्वकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६० ॥ हे वत्स नारद ! इस प्रकार उन महा विराट्के लोमसे प्रत्येक विश्वकी उत्पत्ति हुई है और प्रतिब्रह्माण्डमेंही एक एक क्षुद्र विराट् एक एक ब्रह्मा एक एक विष्णु एक एक शिव और सनकादि अन्यान्य सम्पूर्ण विद्यमान रहते हैं ॥६१॥ हे द्विजवर ! यह मैंने अतिसुखकर और मोक्षप्रद कृष्णके गुण कहे अब और क्या सुननेकी इच्छा है सो कहो ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

नारदजीने कहा हे प्रभो ! मैंने आपके अनुग्रहसे सुधाके समान मधुर पूर्वतन सब वृत्तान्त सुना, अब पंचप्रकृति देवीमें ॥ १ ॥ किसकी किसने किस मंत्रसे पूजा करी है किसने किस प्रकार किसका स्तव किया है ? किस प्रकार किसकी पूजा मर्त्यलोकमें प्रचारित हुई है ? ॥ २ ॥ उनमें प्रत्येकका स्तोत्र, ध्यान प्रभाव और चरित सेवा किस प्रकार है ? और किस देवीने किसको किस प्रकार वरदान दिया है वह आनुपूर्विक संपूर्ण पृथक् पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! सृष्टि विषयमें गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री यह पंचप्रकृति ही मूलाधार है यह तो सुना है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त उनकी पूजाविधि, अद्भुतप्रभाव अपूर्व स्तोत्र

नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम् ॥ अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम् ॥ १ ॥ कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता ॥ केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो ॥ २ ॥ तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम् ॥ काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥ श्रीनारायण उवाच॥गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥४॥ आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः ॥ सुधोपमं च चरितं सर्वमंगलकारणम् ॥५॥ प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम्॥सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानो निशामय॥६॥काली वसुंधरा गंगा षष्ठी मंगलचंडिका॥तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा॥७॥संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥८॥दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्॥तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु ॥ ९ ॥

और सुधासदृश सर्वमंगलनिदान चरित वेद पुराण और तंत्रादि संपूर्ण शास्त्रोंमें ही प्रसिद्ध हैं अतएव उनके वर्णन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ अब जो प्रकृतिके अंश और कलासे उत्पन्न हैं उनके ही शुभचरितका वृत्तान्त आद्योपान्त वर्णन करता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥ काली, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा यह प्रकृतिका अंश है ॥ ७ ॥ इनका पुण्यदायक श्रवण सुखकर चरित उसीके संग जीवोंका कर्मविपाक ॥ ८ ॥ एवं दुर्गा और राधाका अत्यन्त विस्तारित

उदारचरितका क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ सम्प्रति सरस्वतीका वृत्तान्त कहता हूं सुनो हे मुनिवर ! जिन वीणा पाणिके प्रभावसे अज्ञानान्ध मूढपुरुषोंका हृदयाकाश भी ज्ञानालोकसे प्रकाशित होता है श्रीकृष्णने सबसे प्रथम उन्हीं देवी सरस्वतीकी पूजा भारतमें अवतीर्ण की है ॥ १० ॥ कामरूपिणी कामुकी देवी सरस्वतीने राधाके जिह्वाग्रभागसे आविर्भूत होकर कामवश कृष्णको ही पति बनानेकी अभिलाषा की ॥११॥ सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण तत्काल यह जानकर उस लोकमातासे परिणाम सुखकर सत्य और पथ्यवचन कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे पतिव्रते ! मेरे अंशोत्पन्न चतुर्भुज नारायण युवा सुश्री और सर्वगुणान्वित हैं यही क्या ? वरन् मेरेही समान हैं ॥ १३ ॥ वह

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ॥ यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पंडितः ॥ १० ॥ आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः ॥ इयेषः कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥ ११ ॥ स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् ॥ तामुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम् ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥ १३ ॥ कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम् कोटिकंदर्पलावण्यलीलालंकृतमीश्वरम् ॥ १४ ॥ कांते कांतं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि ॥ त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति ॥ १५ ॥ यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः ॥ कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥ १६ ॥

ऐश्वरिक गुणसे विभूषित हैं अतएव स्त्रियोंके हृदयकी वासना विलक्षण जानते हैं और वासना पूर्ण भी करते हैं उनके सौन्दर्यकी बात क्या कहूं ? उनके शरीरमें करोड कामदेवकी लावण्यता क्रीड़ा करती है ॥ १४ ॥ हे कान्ते ! और यदि मुझको पति बनाकर मेरे निकट वास करनेकी इच्छा करो तो यह तुमको कल्याणदायक नहीं है क्योंकि मेरे समीपस्थ राधा तुम्हारी अपेक्षा प्रबल है ॥ १५ ॥ यदि कोई पुरुष अपेक्षाकृत बलवान् हो तो वह आश्रितपुरुषकी अन्यसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सकता है किन्तु यदि उसकी अपेक्षा दुर्बल हो

तो स्वयं असमर्थ होकर किस प्रकार दूसरेकी रक्षा कर सकता है ॥ १६ ॥ यद्यपि मैं सर्वेश्वर हूं और सबका शासन करता हूं किन्तु मुझमें राधाको शासन करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि वह क्या प्रभाव ? क्या रूप ? क्या गुण ? सर्वांशमें ही मेरे समान है ॥ १७ ॥ राधाको परित्याग करनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं है क्योंकि राधा मेरे प्राणकी अधिष्ठात्री देवता है अतएव कौन पुरुष अपना जीवन विसर्जन करनेमें समर्थ होता है ? यद्यपि पुत्र सबके आदरकी सामग्री है किन्तु तो भी क्या प्राणोंसे अधिक प्रियतम होसकता है ? ॥ १८ ॥ इस कारण हे भद्रे ! तुम वैकुण्ठधाममें जाओ वहां तुमको कल्याणलाभ होगा, तुम वैकुण्ठनाथको पतिपाकर चिरकाल सुखपूर्वक विहार कर सकोगी

सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां बाधितुमक्षमः ॥ तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च ॥ १७ ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणां स्त्यक्तुं च कः क्षमः ॥ प्राणतोऽपि प्रियःपुत्रः केषां वाऽस्ति च कश्चन ॥ १८ ॥ त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति॥ पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥ १९ ॥ लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता ॥ तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥ २० ॥ तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालः प्रयास्यति ॥ गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि ॥ २१ ॥ प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम् ॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां विद्यारंभे च सुन्दरि ॥२२॥ मानवा मनवो देवा मुनींद्राश्च मुमुक्षवः ॥ वसवो योगिनः सिद्धा नागा गंधर्वराक्षसाः ॥ २३ ॥

॥ १९ ॥ यद्यपि लक्ष्मी वहां वास करती है किन्तु वह भी तुम्हारे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यके वशीभूत नहीं हैं और क्या रूप, क्या गुण, क्या प्रभाव, सर्वांशमें ही तुम्हारे समान है ॥ २० ॥ अतएव उनके संग परमसुखसे काल व्यतीत कर सकोगी वैकुण्ठनाथ हरिभी तुम दोनोंकाही समान आदर करेंगे ॥ २१ ॥ विशेषतः मैं कहता हूं प्रति ब्रह्माण्डमें ही माघमासकी जो शुक्ला पंचमीके दिन विद्यारंभ होता है उस दिनके महामहोत्सवमें ॥ २२ ॥ क्या मनुष्यगण, क्या मनुगण, क्या देवगण, क्या मुमुक्षु मुनि, क्या वसु, क्या

योगी, क्या नाग, क्या सिद्ध, क्या गंधर्व, क्या राक्षस ॥ २३ ॥ सभी जबतक महाप्रलय उपस्थित नहीं होती तबतक प्रति कल्प कल्पमें भक्तिभावसे षोडशोपचार द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ २४ ॥ सब जितेन्द्रिय और संयमी होकर घटमें वा पुस्तकमें तुमको आवाहन करके यजुर्वेदके काण्वशाखोक्त विधानसे ध्यान और स्तवपाठकरके तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥ २५ ॥ तुम्हारा कवच आठ प्रकार गंधद्रव्यद्वारा भोजपत्रपर लिखसुवर्णके तावीजमें मढ़ाय कंठमें वा दक्षिण भुजामें धारण करें ॥ २६ ॥ विशेष करके विद्वान् पुरुष मात्रही पूजाकालके समय तुम्हारे स्तव पाठमें निरत होंगे इस प्रकार कहकर पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णने स्वयं सरस्वती देवीकी पूजा करी ॥ २७ ॥ उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु और

मद्वरेण करिष्यंति कल्पेकल्पे लयावधि ॥ भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश ॥२४॥ कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेनस्तवनेन च ॥ जितेंद्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च ॥२५॥ कृत्वा सुवर्णगुटिकां गंधचंदनचर्चिताम् ॥ कवचं ते ग्रहीष्यंति कंठे वा दक्षिणे भुजे ॥२६॥ पठिष्यंति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते ॥ इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम् ॥२७॥ ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अनंतश्चापि धर्मश्च मुनींद्राः सनकादयः ॥ २८ ॥ सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः ॥ बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥२९॥ नारद उवाच ॥ पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरंतरम् ॥ पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चंदनादिकम् ॥३०॥ वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥३१॥

महादेव तथा अनन्त देव, धर्म सनकादि मुनीन्द्रगण ॥ २८ ॥ समस्त देव, समस्त मुनि, समस्त राजा और समस्त दानवोंके समाजने सरस्वती देवीकी पूजा आरंभ की है. हे वत्स नारद ! इस प्रकार उन अनन्तकालस्थायिनी देवी सरस्वतीकी पूजा तीनों लोकमें प्रचलित हुई है ॥ २९ ॥ नारदजी बोले हे वेदविदाम्वर ? सरस्वती पूजाकी श्रवण मनोहर पद्धति ध्यान, कवच, स्तोत्र और पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प और चन्दनादि उपचारका ॥ ३० ॥ विषय सुननेके लिये मेरे हृदयमें सदा महाकौतूहल वियमान रहता है अतएव आप वह सब

कहिये ॥३१॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! यजुर्वेदके अन्तर्गत काण्वशाखामें जन्मदाता सरस्वतीकी पूजाविधि समन्वित जैसी पद्धति प्रचलित है वह कहता हूं सुनो ॥३२॥ माघशुक्ला पंचमी वा विद्यारम्भदिनके पहिले दिन संयत हो ॥३३॥ स्नानके पीछे नित्य कर्मका अनुष्ठान कर कण्व शाखोक्त विधानसे हो अथवा तंत्रोक्त विधानसे हो भक्तिपूर्वक घट स्थापन करे ॥३४॥ इसके उपरान्त प्रथम उस घटमें गणपतिको पूजा करके फिर जो ध्यान करता हूं उसी ध्यानसे सरस्वतीकी भावना करके आवाहनपूर्वक फिर ध्यान पढ़कर षोडशोपचारसे पूजा करे ॥ ३५ ॥ हे भद्र

श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम् ॥ जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥३२॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां विद्यारंभदिनेऽपि च ॥ पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राऽह्नि संयतः शुचिः ॥ ३३ ॥ स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः ॥ स्वशाखोक्तविधानेन तां त्रिकेणाऽथवा पुनः ॥ ३४ ॥ गणेशम्पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत् ॥ ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वाऽऽवाह्य घटे ध्रुवम् ॥३५॥ ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥ पूजोपयुक्तनैवेद्यं यच्च वेदे निरूपितम् ॥ ३६ ॥ वक्ष्यामि सौम्य तत्किंचिद्यथाधीतं यथागमम् ॥ नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम् ॥३७॥ इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥ स्वस्तिकं शर्करा शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् ॥ ३८ ॥ अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥ घृतसैंधवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम् ॥ ३९ ॥ यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम् ॥ पिष्टकं स्वस्तिकस्याऽपि पक्वरंभाफलस्य च ॥४०॥

अब वेदमें वा तंत्रमें पूजाकी जिस प्रकार नैवेद्य निर्दिष्ट हुई है ॥३६॥ अपने ज्ञानके अनुसार समस्त कहता हूं सुनो नवनीत दधि, क्षीर, खील, तिल, लड्डू ॥ ३७ ॥ गन्ना, इक्षुरस, पकाहुआ गुड, मधु, स्वस्तिक (मंगल पिष्ठघृतयुक्त अन्न) शर्करा, सफेद धान्यके अक्षत, तंडुल, ॥ ३८ ॥ अस्विन्न शुक्ल धान्यका चिपिटक (बना हुआ पदार्थ) शुक्लमोदक, घृत सैंधव संयुक्त हविष्यान्न ॥ ३९ ॥ यवचूर्ण वा गोधूम चूर्णका घृत संयुक्त पिष्टक, कसारस्वस्तिक पिष्टक (मंगलदायक मिष्टपदार्थ) स्वस्तिक युक्त पकी हुई केलेकी फलीका पिष्टक ॥ ४० ॥

घृत संयुक्त परमान्न, अमृततुल्य मिष्टान्न,नारियल, नारिकेलोदक, कसेरू, मूली ॥४१॥ अदरक, पकी हुई केलेकी फली अत्युत्कृष्ट श्रीफल,बदरीफल (बेर) और यथाकाल यथा देशोत्पन्न अन्यान्य शुक्लवर्ण सुसंस्कृतफल प्रदान करे ॥ ४२ ॥ हे वत्स नारद ! सुगंध शुक्ल पुष्प सुगंधित श्वेतचन्दन नवीन शुक्लवस्त्र, मनोहर शंख ॥४३॥ सफेद फूलोंकी माला, शुक्लहार और सुन्दर भूषण सरस्वतीको प्रदान करै हे महाभाग ! वेदमें सरस्वती देवीका जिस प्रकार भ्रम भंजन श्रवणमनोहर ध्यान निर्दिष्ट हुआ है ॥४४॥ वह कहता हूं सुनो जो सरस्वती शुक्लवर्ण हास्ययुक्त मनोहर हैं॥४५॥ जिनके शरीरकी प्रभासे करोड चन्द्रमाकी प्रभा भी मलिनता धारण करती है जिनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध पट्टवस्त्र है जिनके हाथमें

परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ॥ नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम् ॥४१॥ पक्वरंभाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लं च संस्कृतम् ॥ ४२ ॥ सुगन्धशुक्लपुष्पं च सुगंधं शुक्लचंदनम् ॥ नवीनं शुक्लवस्त्रं च शंखं च सुन्दरं मुने ॥४३॥ माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम् ॥ यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् ॥४४॥ तन्निबोध महाभाग भ्रमभंजनकारणम् ॥ सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् ॥४५॥ कोटिचंद्रप्रभामुष्टपुष्ट श्रीयुक्तविग्रहाम् ॥ वह्निशुद्धां शुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥ ४६ ॥ रत्नसारेंद्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम् ॥ सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥४७॥ वंदे भक्त्या वंदितां च मुनींद्रमनुमानवैः ॥ एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ४८ ॥ संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दंडवद्भुवि ॥ येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्या क्रिया मुने ॥ ४९ ॥

वीणायंत्र और पुस्तक है ॥ ४६ ॥ जो सर्वोत्कृष्ट रत्नजात नव भूषणोंसे विभूषित है ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवतागण सदा जिनकी पूजा करते हैं॥४७॥ जो मुनीन्द्र, मनु और मनुष्योंसे सर्वदा वंदित होती हैं मैं भक्तिभावसे उन्हीं शुक्लवर्ण हास्यानना मनोहरा सरस्वतीकी वन्दना करता हूं विचक्षण पुरुष इसप्रकार ध्यान करके सब द्रव्य मूलमंत्र उच्चारणपूर्वक प्रदान करै ॥४८॥ फिर स्तवपाठ और कवच धारणपूर्वक पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत प्रणाम करै हे मुनिवर! यह देवी सरस्वती जिनकी इष्ट देवता है उनकी तो बात ही नहीं ॥४९॥

इसके अतिरिक्त सर्व साधारणको विद्यारम्भ दिवसमें और वर्षके अन्तमें माघशुक्ला पंचमीके दिन सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये वेदोक्त अष्टाक्षरयुक्त मंत्र ही सरस्वतीका मूलमन्त्र है ॥ ५० ॥ अथवा जो जिस मन्त्रमें दीक्षित हों वही उनका मूलमन्त्र है अतएव निज मूलमन्त्रसे हो, वा सरस्वती शब्दमें चतुर्थी मिलाकर अग्नि पत्नी "स्वाहा" पर्यन्त शेष धरकर ॥ ५१ ॥ उसके पहिले प्रणव श्रीं ह्रीं बीज उच्चारण पूर्वक उस मन्त्रसे अर्थात् "श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा" इस अष्टाक्षर मन्त्रसे सरस्वतीको संपूर्ण वस्तु प्रदानकरै लक्ष्मी मायादिक यह मन्त्रही कल्पवृक्ष है अर्थात् कल्पवृक्षके निकटसे जिस प्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है इस मन्त्रसे भी उसी प्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है कृपानिधि नारायणने पूर्वकालके समय

विद्यारंभे च वर्षान्ते सर्वेषां पंचमीदिने ॥ सर्वोपयुक्तो मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः ॥ ५० ॥ येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥ सरस्वतीचतुर्थ्यंतं वह्निजायांतमेव च ॥ ५१ ॥ लक्ष्मी मायादिकं चैव मंत्रोऽयं कल्पपादपः ॥ पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ॥ ५२ ॥ प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥ ५३ ॥ चंद्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥ भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे ॥ ५४ ॥ आस्तिकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥ विभांडको ददौ मेरावृष्यशृंगाय धीमते ॥ ५५ ॥ शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा ॥ सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥ ५६ ॥ शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते ॥ ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७ ॥ चतुर्लक्षजपेनैव मंत्र सिद्धो भवेन्नृणाम् ॥ यदि स्यान्मंत्रसिद्धो हि बृहष्पतिसमो भवेत् ॥ ५८ ॥

॥५२॥ पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मन्त्र प्रदान किया इसके उपरान्त भृगुने एक समय सूर्य ग्रहणके समय पुष्करतीर्थमें महर्षि शुक्राचार्यको॥५३॥ मरीचिने चन्द्रग्रहणके समय बृहस्पतिको, बदरिकाश्रममें ब्रह्माने भृगको॥५४॥ क्षीरोदसागरके तटपर जरत्कारुने आस्तिकको सुमेरु पर्वतमें विभाण्डकने धीमान् ऋष्यशृङ्गको ॥५५॥ शिवनेकणाद और गौतमको सूर्यने याज्ञवल्क्य और कात्यायनको ॥५६॥ अनन्त देवने पातालतलमें बलिसभामें पाणिनी धीमान् भरद्वाज और शाकटायनको यह मंत्र प्रदान किया था ॥ ५७ ॥ इस मन्त्रको चार

लक्षवार जपनेसे ही मनुष्य सिद्ध होते हैं मंत्र सिद्ध होनेसे ही बृहस्पतिके समान शक्तिशाली हो सकता है ॥ ५८ ॥ पूर्वकालके समय विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीने गंधमादन पर्वतमें भृगुको विश्वजय नामक जोकवच प्रदान किया था, उसको कहता हूं, सुनो ॥ ५९ ॥ एक समय भृगुने सर्वेश्वर सर्वपूजित ब्रह्मासे कहा, भृगु बोले हे ब्रह्मन् ! आप सब वेद वेत्ताओंमें अग्रणी हैं वेदज्ञान विषयमें आपके समान दूसरा नहीं है ॥ ६० ॥ यही क्या ? आपको अविदित कुछ भी नहीं है, अर्थात् आप सभी जानते हैं, क्योंकि समस्त ही आपसे उत्पन्न हुआ है, अतएव हे प्रभो ! जो निर्दोष और समस्त मन्त्र गुणनिष्ठ है आप वही सर्वोत्कृष्ट विश्व विजय नामक सरस्वती कवच मेरे निकट कीर्तन कीजिये

कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ विश्वस्रष्ट्रा विश्वजयं भृगवे गन्धमादने॥५९॥भृगुरुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान विशारद ॥ सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥ सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो ॥ अयातयामं मंत्राणां समूह संयुतं परम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ॥ श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥६२॥ उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने ॥ रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमंडले ॥६३॥ अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्ष समं परम् ॥ अश्रुताद्भुतमंत्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥ ६४ ॥ यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः ॥६५॥ पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवींद्रो वाल्मिको मुनिः ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥

॥ ६१ ॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! तुमने जो श्रवण मनोहर वेद विहित वेद पूजित सर्वाभीष्टप्रद सरस्वती कवचको पूछा सो कहता हूं सुनो ॥ ६२ ॥ सबसे पहले रासेश्वर विभु श्रीकृष्णने गोलोक धाममें वृन्दावन नामक अरण्यमें रासोत्सवके समय रासमण्डलमें वह सरस्वती कवच मुझसे कहा था ॥ ६३ ॥ यह कवच अतीव गोपनीय ओर कल्पवृक्षके समान अश्रुत अद्भुत मन्त्रोंसे परिपूर्ण है ॥ ६४ ॥ यह कवच पाठ और धारण करके बृहस्पति बुद्धिवेत्ता विषयमें अग्रणी हुए हैं इसी कवचके बलसे शुक्राचार्यने दैत्योंके निकट प्रधानता लाभ की है ॥ ६५ ॥ इसी कवचके पाठसे मुनिवर वाल्मीकिने वाग्मिता लाभ करके कवीन्द्र पदमें आरोहण किया है स्वायंभुवमनु इसको धारण करके

सर्वत्र समादृत हुए हैं ॥ ६६ ॥ कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन यह सभी इस कवचके प्रभावसे ग्रंथकार पदमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ ६७ ॥ कृष्णद्वैपायन वेद व्यासने इस कवचको धारण करके वेद विभाग और अठारह पुराणकी रचना की है॥ ६८ ॥ शातातप, संवर्त्त वसिष्ठ पराशर और याज्ञवल्क्य सरस्वती कवचको धारण और पाठ करके ग्रंथकार हुए हैं ॥६९॥ ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इन सबने इसके ही बलसे सर्वत्र समान आदर लाभ किया है ॥ ७० ॥ हे द्विजवर ! प्रजापति स्वयं इस कवचके

कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ॥ ग्रंथं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥ धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च ॥ चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥६८॥ शातातपश्च संवर्त्तो वसिष्ठश्च पराशरः ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ग्रंथं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥६९॥ ऋष्यशृंगो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा ॥ जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः ॥७०॥ कवचस्यास्य विप्रेंद्र ऋषिरेव प्रजापतिः ॥ स्वयं छंदश्च बृहती देवता शारदाऽम्बिका ॥ ७१ ॥ सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च ॥ कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७२ ॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ॥ श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥ ७३ ॥ ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरंतरम् ॥ ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ॥७४॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु ॥ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ॥ ७५ ॥

ऋषि बृहती इसका छन्द और शारदा अम्बिका इसकी अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ७१ ॥ क्या तत्वार्थज्ञान क्या प्रयोजन सिद्धि क्या समस्त कविता सर्वत्र इसका विनियोग होता है ॥ ७२ ॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सम्यक् प्रकारसे मेरे शिरकी रक्षा करो श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा मेरे कपालकी ॥ ७३ ॥ ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों कर्णकी ओं श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों नेत्रकी ॥ ७४ ॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा सर्वदा मेरी नासिकाकी ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा सदा मेरे

ओष्ठकी ॥ ७५ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा मेरी दन्तपंक्तियें यह एकाक्षर मंत्र सदा मेरे कंठकी ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवाकी श्रीं मेरे दोनों कंधेको ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्री देव्यै स्वाहा सदा मेरे वक्षस्थल ॥ ७७ ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मेरी नाभिकी ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा मेरे दोनों हाथोंकी ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकाय स्वाहा मेरे चरणयुगल और ॐ वागधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करै॥७९॥ ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा मेरे पूर्वदिक् ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहा मेरे अग्निकोण

ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दंतपंक्तिं सदाऽवतु ॥ ऐमित्येकाक्षरो मंत्रो मम कंठं सदाऽवतु ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कंधौ मे श्रीं सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥ ७७ ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ॥ ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ॥ ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा मां सर्वदाऽवतु ॥ ७९ ॥ ॐ सर्वकंठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ॥ ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥ ॐ सर्वा॥ ८१ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मंत्रो नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा ॥ सततं मंत्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु म्बिकायै स्वाहा वायव्येमां सदाऽवतु ॥ ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ॥८४॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु ॥ ॐ ग्रंथबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥

॥ ८० ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा मेरे दक्षिणदिक्॥८१॥ ऐं ह्रीं श्रीं यह त्र्यक्षरमंत्र मेरे नैर्ऋतकोण ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मेरे पश्चिमदिक् ॥ ८२ ॥ ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा मेरे वायुकोण ॐ ऐं ह्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मेरे उत्तरदिक् ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा मेरे ईशानकोण ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा मेरे ऊर्ध्वभाग ॥ ८४ ॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा मेरे अधोभाग और ॐ ग्रंथबीज

स्वरूपायै स्वाहा मेरे समस्त दिक्की रक्षा करै ॥ ८५ ॥ हे वत्स नारद ! यह मंत्र शरीर ब्रह्मस्वरूप विश्वजय नामक कवच तुमसे कहा ॥ ८६ ॥ पूर्व कालके समय मैंने यह कवच गंधमादनपर्वतमें धर्मदेवके मुखसे सुना था अब अतिशय स्नेह होनेके कारण तुमसे कहा किन्तु यह कवच कभी किसीके निकट न कहना ॥ ८७ ॥ वस्त्र अलंकार और चन्दनद्वारा यथाविधि गुरुदेवकी अर्चना करके गुरुदेवके चरणमें दण्डवत्प्रणामपूर्वक यह कवच धारण करै ॥ ८८ ॥ फिर लक्षवार जप करनेसे कवच सिद्ध होता है कवचधारी पुरुष कवचके सिद्ध होनेसे ही बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् ॥ ८९ ॥ वाग्मी कवीन्द्र और त्रैलोक्यविजयी होता है अधिक क्या इस कवचके प्रभावसे संपूर्ण जय

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् ॥ इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥८६॥ पुरा श्रुतं कर्मवक्त्रात्पर्वते गंधमादने ॥ तवस्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ८७ ॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ पंचलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् ॥ यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ ८९ ॥ महावाग्मी कवींद्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ॥ ९० ॥ इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वंदनं शृणु ॥९१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ॥ महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥१॥ गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह ॥ तदाऽऽजगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम् ॥२॥ संप्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्कं दृष्टिगोचरे ॥ तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥३॥

करनेमें समर्थ होता है ॥ ९० ॥ हे मुने ! और मैंने तुमसे यह काण्वशाखोक्तकवचका विषय कहा, और पूजा विधि ध्यान और वन्दनादिका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! पूर्वकालके समय ऋषिवर याज्ञवल्क्यने जिस स्तोत्रसे वाग्देवी सरस्वतीका स्तव किया था इस समय सर्वकामप्रद उन्हीं सरस्वतीका स्तव कीर्त्तन करता हूं सुनो ॥ १ ॥ मुनिवर याज्ञवल्क्य गुरुशापके कारण समस्त वेदादि भूलकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे पुण्यप्रद रविस्थानमें गये ॥ २ ॥ वहां कुछ काल तपस्याके पीछे सूर्य देवके नयनगोचर होनेपर अति शोकमें पीडित हो वारंवार रोदन करते करते

उनके स्तुतिमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर उनकी संपूर्ण वेद और वेदाङ्ग शिक्षा प्रदानपूर्वक कहा हे वत्स ! अब तुम स्मरण शक्ति प्राप्तिके लिये भक्ति सहित वाग्देवीका स्तव करो ॥ ४ ॥ दिवाकर यह कहते ही वहांसे अन्तर्धान होगये इधर मुनिवर याज्ञवल्क्य स्नान करके भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाय वाग्देवीके स्तवपाठमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा हे मातः ! गुरुके शापसे मेरी मति भ्रंश हुई है मैं विद्याहीन और तेजहीन होगया हूं मेरे दुःखकी अवधि नहीं है हे जगज्जननी ! मुझपर कृपा करो ॥ ६ ॥ मुझको ज्ञान, विद्या, स्मृति, शिष्य बोधिनी शक्ति, ग्रन्थकर्तृत्व और प्रतिभासम्पन्नसुशिष्यत्व प्रदान करो ॥ ७ ॥ जिससे सज्जनोंके समाजमें मेरी भी भलीभांति

सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदांगमीश्वर ॥ उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥ ४ ॥ तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥५॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम् ॥ गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ॥ ग्रंथकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥७॥ प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ॥ लुप्तं सर्वं देवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥ ८ ॥ यथाऽङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी ॥९॥ सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः ॥ विसर्गबिंदुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ॥१०॥ तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नीत्यै नमो नमः ॥ व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ॥ ११ ॥

प्रतिभा और विचार शक्ति प्रसारित हो दैवके दुर्विपाकसे मेरा जो कुछ नष्ट हुआ है ॥ ८ ॥ वह भस्मराशिसमुद्र बीजांकुरके समान संपूर्ण मेरे उत्पादिका शक्तिशून्य चित्तक्षेत्रमें उदय होकर पुनर्वार नवीनभाव धारण करै हे मातः ! तुम ही ब्रह्मस्वरूपिणी तुम ही सर्वश्रेष्ठ तुम ही ज्योतिः स्वरूपा तुम ही सनातनी ॥ ९ ॥ और तुम ही समस्तविद्याकी अधिष्ठात्री देवी हो इस कारण तुमको वारंवार नमस्कार करता हूं । हे मातः ! अनुस्वार विसर्ग और चन्द्रबिन्दु जिन वर्णका आश्रय करके रहते हैं ॥ १० ॥ तुम वही स्वर्णस्वरूपिणी हो

अतएव तुमको नमस्कार है. हे मातः ! तुमही शास्त्रकी व्याख्यास्वरूप और तुमही समस्त व्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे विना गणितविद्याके पारदशा भी किसी विषयकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं अतएव तुम कालगणनाकी संख्यास्वरूप हो ॥ १२ ॥ तुमही मनुष्योंका भ्रमभंजन करनेवाली सिद्धान्तशक्तिरूप हो अतएव तुमको वारंवार नमस्कार है हे मातः ! तुमही स्मृतिशक्ति, तुमही ज्ञानशक्ति, तुमही बुद्धिशक्ति स्वरूपिणी हो ॥१३॥ तुमही प्रतिभाशक्ति और तुमही कल्पनाशक्ति हो अतएव वारंवार तुमको प्रणाम करते हैं स्वयं सनत्कुमारने भी जब भ्रमयुक्त होकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया ॥ १४ ॥ तब वह उसका सिद्धान्त करनेमें असमर्थ होकर मूकके समान निरुत्तर रहे तब

यया विना प्रसंख्यावान्संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १२ ॥ भ्रमसिद्धांतरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ॥ सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥१४॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥ १५ ॥ उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते ॥ स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥ १६ ॥ चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धांतमुत्तमम् ॥ यदाप्यनंतं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा ॥ १७ ॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥ १८ ॥ ततश्चकार सिद्धांतं निर्मलं भ्रमभंजनम् ॥ व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा ॥ १९ ॥

परमात्मरूपी परमेश्वर श्रीकृष्णने वहां उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ कहा हे प्रजापते ! तुम अभीष्टदात्री वागीश्वरीका स्तव करो तो तुम्हारा सिद्धान्त स्थिर होगा तब चतुराननने परमेश्वरकी आज्ञानुसार देवी सरस्वतीका स्तव करके ॥ १६ ॥ उनके प्रसादबलसे अति उत्तम सिद्धान्त स्थिर किया एक दिन वसुन्धराने संदिग्ध चित्तसे अनन्त देवके निकट प्रश्न किया ॥१७॥ तब वह भी सिद्धान्त स्थिर करनेमें असमर्थ होकर मूकके समान निरुत्तर रहे अन्तमें महाभीत हो कश्यपकी आज्ञानुसार तुम्हारा स्तव करनेसे ॥ १८ ॥ उनका भ्रम दूर होकर सिद्धान्त स्थिर

हुआ जब श्रीवेदव्यासजीने वाल्मीकिके निकट जायकर पुराणसूत्रका विषय पूँछा ॥ १९ ॥ तब मुनिवर वाल्मीकिने हतबुद्धिहोकर जगत्की मातास्वरूप तुमको स्मरण किया तुम्हारे प्रसादसे ज्ञानज्योतिके प्रकाशित होनेपर ऋषिवरका भ्रमान्धकार दूर हुआ ॥२०॥ तब वह श्रीवेदव्यासके किये प्रश्नके विषयका सिद्धान्त स्थिर करनेमें समर्थ हुए तब कृष्णांशोत्पन्न श्रीव्यासदेवजीने महर्षि वाल्मीकिजीके मुखसे पुराणसूत्रका विषय सुनकर तुम्हारी महिमा जानी ॥ २१ ॥ और फिर पुष्करतीर्थमें जाय शतवर्षपर्यन्त शान्तिदात्री स्वरूप तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुए इसके पीछे तुम्हारे प्रसन्न होकर उनको वर देनेसे वह कवीन्द्रपदवीमें आरूढ हुए ॥ २२ ॥ फिर उन्होंने वेदविभाग और अठारह पुराणोंकी

मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदंबिकाम् ॥ तदा चकार सिद्धांतं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥२०॥ संप्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमांध्यध्वंसदीपकम् ॥ पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः ॥२१॥ तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवींद्रो बभूव ह ॥२२॥ तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः ॥ यदा महेंद्रः पप्रच्छतत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥२३॥ क्षणं तामेव संचिंत्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ॥ पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेंद्रश्च बृहस्पतिम् ॥२४॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥२५॥ उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ॥ अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २६ ॥ ते च तां परिसंचिंत्य प्रवर्तंते सुरेश्वरीम् ॥ त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥ २७ ॥

रचना करी जब महेन्द्रने सदाशिवसे तत्वज्ञानकी कथा पूछी ॥२३॥ तब सदाशिवने क्षणकाल तुम्हारी चिन्ता करके तत्वज्ञानका उपदेश प्रदान किया फिर एक समय देवराजने सुरुगुरु बृहस्पतिजीके निकट शब्दशास्त्रविषयक प्रश्न पूछा ॥ २४ ॥ तब उन्होंने उसके उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पुष्कर तीर्थमें जाय देवपरिणामसे हजारवर्ष पर्यन्त तुम्हारी आराधना करके तुमसे वरपाया ॥२५॥ फिर दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त महेन्द्रको शब्दशास्त्र और शब्दशास्त्रार्थ विषयक उपदेश प्रदान करनेमें समर्थ हुए हे सुरेश्वरी ! जो मुनिगण शिष्यको शिक्षा प्रदान करते हैं ॥ २६ ॥ जो स्वयं अध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं वह कोई भी प्रथम तुम्हारा स्मरण विना किये अपने कार्यमें प्रवृत्त नहीं हो सकतेकितनेही मुनीन्द्र कितनेही

मनु ॥२७॥ कितने ही दानव कितने ही दैत्येन्द्र कितने ही अमर यही क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेव पर्यन्त तुम्हारी पूजा और तुम्हाराही स्तव करते हैं किन्तु विष्णु जब सहस्रमुखसे महादेव पांचमुखसे और ब्रह्मा चार मुखसे ॥२८॥ तुम्हारा स्तव करनेमें जड़ीभूत होते हैं तो फिर मैं सामान्य मनुष्य एक मुखसे क्या स्तव करूं ? कृतोपवास महर्षि याज्ञवाल्क्यने इस प्रकार कहकर भक्तिभावसे मस्तक झुकाय ॥२९॥ देवीको प्रणाम किया और क्षणक्षणमें रुदन करने लगे इस समय फिर उन ज्योतिरूप महामाया सरस्वतीसे नहीं रहा गया उन्होंने उनके समीप आनकर कहा ॥ ३० ॥ " हे वत्स ! तुम सुकवीन्द्र होओ " इस प्रकार वर दे वैकुण्ठधामको चली गईं जो याज्ञवल्क्यकृत इस सरस्वतीस्तवका पाठ करते हैं

दैत्येंद्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ जडीभूतः सहस्रास्यः पंचवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥ इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ २९ ॥ प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाऽप्युवाच तम् ॥ ३० ॥ सुकवींद्रो भवेत्युक्त्वा वैकुंठं च जगाम ह ॥ याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ॥ ३१ ॥ स कवींद्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ॥ ३२ ॥ स पंडितश्च मेधावी सुकवींद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती तु वैकुंठे स्वयं नारायणांतिके ॥ गंगाशापेन कलहात्कलया भारते सरित् ॥ १ ॥

॥ ३१ ॥ वह सुकवि वाग्मी और बृहस्पतिके समान बुद्धिशक्ति संपन्न हो सकते हैं यदि महामूर्ख मनुष्य भी एक वर्षतक यह वाणीस्तव पाठ करता है ॥ ३२ ॥ तो वह सहजमें ही सुपंडित मेधावी और सुकवि होनेमें समर्थ होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! सरस्वती सदाही वैकुण्ठमें नारायणके निकट वास करती हैं एक दिन गंगाके सहित कलह उपस्थित होनेपर उनके शापके कारण अंशद्वारा सरितरूपसे भारतमें अवतीर्ण हुईं ॥ १ ॥

यह भारतमें अतिपावनी पुण्यरूपा और पवित्र तीर्थस्वरूपिणी हैं पुण्यवान् मनुष्य इनके तटमें वास करके निरंतर इनकी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ यह तपस्वियोंकी तपस्या और तपका फलस्वरूप हैं, जो पापस्वरूप काष्ठराशिको आहरण करता है, यह प्रज्वलित हुताशनरूप धारण करके उसकी उस पापरूप काष्ठराशिको भस्म करती हैं ॥ ३ ॥ भारतमें जो ज्ञान सहित सरस्वतीके जलमें कलेवर त्याग करते हैं, वह सदा वैकुंठके मध्य हरिकी सभामें वास कर सकते हैं ॥ ४ ॥ भारतमें जो पापाचरणकर सरस्वती जलमें स्नान करते हैं, वह लीलापूर्वकही अपने किये सब पापोंसे छूटकर दीर्घकालतक विष्णुलोकमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ क्या चातुर्मास्यका समय, क्या पूर्णिमा, क्या अक्षया, क्या

पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी ॥ पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥ २ ॥ तपस्विनां तपोरूपा तपसः फलरूपिणी ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ३ ॥ ज्ञानात्सरस्वतीतोये मृता ये मानवा भुवि ॥ तेषां स्थितिश्च वैकुंठे सुचिरं हरिसंसदि ॥ ४ ॥ भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ ५ ॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये ॥ व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥ ६ ॥ अनुषंगेण यः स्नातो हेतुनाऽश्रद्धयाऽपि वा ॥ सारूप्यं लभते नूनं वैकुंठे स हरेरपि ॥ ७ ॥ सरस्वतीमनुं तत्र मासमेकं च यो जपेत् ॥ महामूर्खः कवींद्रश्च स भवेन्नाऽत्र संशयः ॥ ८ ॥ नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुण्डयन्नरः ॥ न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥ ९ ॥

दिनक्षय समय, क्या व्यतीपातयोग, क्या ग्रहणकाल, क्या अन्यपुण्यदिन ॥ ६ ॥ वा आनुषङ्गिक जिस किसी कारणसे हो अधिक क्या श्रद्धापूर्वक होनेपर भी सरस्वतीके जलमें केवल एकवार स्नान करनेसे वैकुण्ठधाममें जाकर श्रीहरिकी स्वरूपता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥ एक मासतक सरस्वतीके तटपर वास करके सरस्वतीका मन्त्र जपनेसे महामूर्ख पुरुष भी कवींद्रपदमें प्रतिष्ठित हो सकता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ एकवार मस्तक मुंडन करके सरस्वतीके तटपर वास करके जो पुरुष प्रतिदिन उसमें स्नान करता है

उसको फिर गर्भकी यंत्रणा भोगनी नहीं होती ॥ ९ ॥ हे वत्सनारद ! यह तो मैंने भारतके असीम गुणोंमें सुखप्रद कामप्रद और सारभूत कुछेक वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे शौनक ! मुनिवर नारदने नारायणके मुखसे इस प्रकार सुनकर सन्देह दूर होनेके लिये फिर उसी समय जो प्रश्न पूछा था, सो कहता हूं सुनो॥११॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! सरस्वती देवी गंगाके संग कलह करके उनके शापसे किस प्रकार स्वीय अंशद्वारा भारतमें पुण्यप्रद संवित् रूपसे अवतीर्ण हुई ॥ १२ ॥ यह श्रुतिसार वृत्तान्त सुननेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ है आपका वचनामृत पान करके किसी प्रकारभी मुझको तृप्ति नहीं

इत्येवं कथितं किंचिद्भारतीगुणकीर्तनम् ॥ सुखदं कामदं सारं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥१०॥ सूत उवाच ॥ नारायणवचः श्रुत्वानारदो मुनिसत्तमः ॥ पुनः पप्रच्छ संदेहमिमं शौनक सत्वरम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ कथं सरस्वती देवी गंगाशापेन भारते ॥ कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ॥१२॥ श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम ॥ कथाऽमृते न मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥ कथं शशाप सा गंगा पूजितां तां सरस्वतीम् ॥ सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा ॥ १४ ॥ तेजस्विनीर्द्वयोर्वाद कारणं श्रुतिसुंदरम् ॥ सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ १६ ॥

होती फलतः श्रेयोलाभमें किसका चित्त चारितार्थता लाभ कर सकता है ? ॥ १३ ॥ सरस्वती सामान्य नारी नहीं है, त्रैलोक्यमें सभी उसकी पूजा करते हैं और गंगाभी सत्वगुणप्रधान हैं अतएव उन्होंने सर्वदा सबको पुण्य और शुभदात्री होकर सरस्वतीको किस लिये शाप दिया ॥ १४ ॥ दोनोंही तेजस्विनी थीं, अतएव बलवत् दोनों पक्षके विवादका कारण सुननेसे कानोंमें अमृत धारा वर्षण करता है विशेषकर पुराणमें यह सब वृत्तान्त अत्यन्त दुर्लभ है अतएव आप कृपा करके मुझसे वर्णन कीजिये करता हूं ॥ १५ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! जिस कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप दूर होते हैं वही पुरातन कथा

वर्णन करता हूं सुनो ॥ १६ ॥ लक्ष्मी सरस्वती और गंगा यह तीनों नारायणके निकट समान प्रेमसे वास करती हैं ॥ १७ ॥ इनमें गंगा एक दिन हास्यवदन हो उत्सुक चित्तसे वारंवार नारायणके प्रति कटाक्ष विक्षेप करनेलगी ॥ १८ ॥ प्रभु नारायणभी यह देखकर चकितके समान गंगाकी ओर दृष्टिपात करके कुछेक हँसे यह देखकर लक्ष्मीजीने तो कुछ अपराध नहीं माना किंतु सरस्वती महाक्रोधित होगई ॥ १९ ॥ यद्यपि सत्वगुणयुक्त लक्ष्मीजीने हास्यमुख हो उन क्रुद्ध सरस्वतीको अनेक प्रकारसे समझाया किंतु

लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तिस्रो भार्या हरेरपि ॥ प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठंति सततं हरिसन्निधौ ॥ १७ ॥ चकार सैकदा गंगा विष्णो मुखनिरीक्षणम् ॥ सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥१८॥ विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा ॥ क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥१९॥ बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता ॥ क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शांता बभूव ह ॥ २० ॥ उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना ॥ कंपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥ २१ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति ॥ धार्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥ २२ ॥ ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गंगायां ते गदाधर ॥ कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो ॥ २३ ॥ गंगायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चाऽस्ति सुसंमता ॥ क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥ २४ ॥

तो भी किसी प्रकार शांत न हुई ॥ २० ॥ वरन् क्रोधसे उनके वदनमण्डलने लोहितराग धारण किया दोनोंनेत्र रक्तवर्ण हो गये वह क्रोधके वश हो कांपने लगी उनके ओष्ठ बराबर प्रस्फुरित होनेलगे तब भर्तासे कहने लगी ॥ २१ ॥ जो स्वामी सज्जन धार्मिक और गुणवान् है वह सब भार्याओंकोही समाननेत्रोंसे देखते हैं किंतु धूर्तोंके पक्षमें इसके विपरीत है ॥ २२ ॥ हे गदाधर ! गंगाके प्रतिही आपका प्रणय पक्षपात है लक्ष्मीके प्रतिभी उससे न्यून नहीं है केवल मैंही उससे वंचित हूं ॥ २३ ॥ इसी कारण गंगा और लक्ष्मीमें परस्पर प्रणय है, क्योंकि आपभी

लक्ष्मीको प्यार करते हैं अतएव लक्ष्मी यह विपरीताचरण क्यों न सहे ? ॥ २४ ॥ मैं हतभाग्य हूं मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन है कारण कि जो स्त्री पतिके प्रेमसे वंचित है उसका जीवन विडंवना मात्र है ॥ २५ ॥ जो मनीषिगण आपको सत्वगुणका अधिष्ठाता कहकर निर्देश करते हैं वह कभी पंडितपदवाच्य होनेके योग्य नहीं हैं वह नितान्त मूर्ख हैं, उनको कुछभी वेदज्ञान नहीं है वह आपकी मनोवृत्ति जाननेमें एकान्त असमर्थ है ॥ २६ ॥ हे वत्स नारद ! नारायण सरस्वतीके वचन सुन और उनको अत्यन्त कोपयुक्त जान क्षण काल चिन्ताके पीछे अन्तःपुरसे बाहर गये ॥ २७ ॥ इस ओर वागीश्वरी सरस्वती नारायणके जानेसे निर्भयचित्त हो क्रोधमें भर असहनीय कटुवचनोंके द्वारा गंगासे कहने

किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम् ॥ निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवंचिता ॥२५॥ त्वां सत्वं सत्त्वरूपं च ये वदंति मनीषिणः ॥ ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानंति मतिं तव ॥ २६ ॥ सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ॥ मनसा च समालोच्य स जगाम बहिः सभाम् ॥२७॥ गते नारायणे गंगामुवाच निर्भयं रुषा ॥ वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम् ॥ २८ ॥ हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम् ॥ अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २९ ॥ मानं चूर्णं करिष्यामि तवाऽद्य हरिसन्निधौ ॥ किं करिष्यति ते कान्तो ममैवं कांतवल्लभे ॥३०॥ इत्येवमुक्त्वा गंगायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता ॥ वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता ॥३१॥ शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती ॥ वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः॥३२॥

लगी ॥ २८ ॥ रे निर्लज्जे ! कामातुरे ! तू स्वामीके सौभाग्यका गर्व करती है. स्वामी तेरे प्रति अत्यन्त प्रणय प्रकाश करते हैं. वही जताती है? ॥ २९ ॥ तू वडी पतिसोहागिनी हुई है, आज तेरा दर्प चूर्ण करूंगी ! आज देखती हूं तेरे हरि मेरा क्या करेंगे ? ॥३०॥ यह कहतेही जब सरस्वती गंगाके केशाकर्षण अर्थात् बाल खेंचनेमें उद्यत हुई, तब लक्ष्मीने दोनोंकी मध्यवर्तिनी होकर निवारण किया ॥ ३१ ॥ वाणी (सरस्वती) गंगाके बाधा देनेसे इतनी प्रबल हो गई कि तिस काल उसको कुछभी हिताहितका विचार नहीं रहा, वरन् उसने क्रोधसे

अधीर हो उसको यह कहकर शापदिया कि हे पद्मे ! तुमने जब गंगाके अन्यान्य आचरण वा पक्षपात वशसे कुछ बात न कहकर वृक्ष तथा सरित्‌के समान जड़भावसे स्थित रही तो मैं कहती हूं कि शीघ्र तुमको वृक्ष और सरित्‌स्वरूप धारण करना होगा इसमें सन्देह नहीं ॥३२॥३३॥ लक्ष्मीने सरस्वतीकी बात सुनकर कुछभी क्रोध नहीं किया केवल दुःखितहो सरस्वतीका हाथ पकड़कर निस्तब्धभावसे अवस्थान करने लगी इस समय गंगाकेभी कोपसे वारंवार ओष्ठाधर कांपनेलगे फिर लाललाल नेत्र कर सरस्वती को क्रोधमें अत्यन्त उन्मत्त देख लक्ष्मीसे कहा ॥ ३५ ॥ ३४ ॥

विपरीतं यतो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि ॥ संतिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥ ३३ ॥ शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह ॥ तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥ ३४ ॥ अत्युन्नतां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥ उवाच गंगा तां देवीं पद्मां चारक्तलोचनाम् ॥३५॥ श्रीगंगोवाच ॥ त्वामुत्सृज महोग्रां च पद्मां किं मे करिष्यति ॥ दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी ॥ ३६ ॥ वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया ॥ यावती योग्यता चास्या यावती शक्तिरेव च ॥ ३७ ॥ तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी ॥ स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति ॥३८॥ जानंतु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति ॥ ३९ ॥ सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह ॥ अधो मर्त्यं सा प्रयातु संति यत्रैव पापिनः ॥ ४० ॥

गंगा बोली हे पद्मे ! तुम इस दुष्टस्वभावा मुखराको छोडदो, यह दुःशीला वाचाल हमारा क्या करेगी ? ॥३६॥ यह वाक्यकी अधिष्ठात्री होनेसे केवल सदा कलहही करती है उस दुर्मुखीका जितना प्रभाव है जितनी शक्ति है॥३७॥ मेरे संग विवाद करके देख ले वह अपना बल कितना और मेरा बल कितनाहै ? यह जाननेकी इच्छाकरती है॥३८॥ अतएव उपेक्षाको छोड सब हम दोनों पराक्रम और प्रभाव देखो इस प्रकार कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप देनेमें उद्यत हो लक्ष्मीसे कहा ॥ ३९ ॥ हे सखि पद्मे ! उसने जब तुमको सरिद्रूपिणी होनेका शाप दिया तब मैं भी कहती

हूं कि, जहां पापी हैं वहां मृत्यु लोक जो नीचे है गमन करै ॥४०॥ उसको भी सरित्‌रूप धारण करके पापियोंके निवासस्थान मर्त्यलोक जाकर कलियुगमें उनके पापग्रहण करना हो यह सुनकर सरस्वतीने भी शाप दिया ॥४१॥ तुमभी पृथ्वीमें जाकर पापियोंका पाप ग्रहण करो. हे वत्स नारद! इसी प्रकार कलह हो ही रहाथा कि इसी समय भगवान् आये ॥ ४२ ॥ चतुर्भुजमूर्ति सर्वज्ञ भगवान् हरि चतुर्भुज चार पार्षदोंके सहित वहां आनकर उपस्थित हुए और सरस्वतीको हाथ पकड हृदयसे लगाकर ॥ ४३ ॥ पुराना रहस्य कहने लगे तब वह अपने २ शापदान और कलहका कारण जानकर ॥४४॥ अत्यन्त दुःखित हुई इसी समय भगवान् हरि समयोचित वचनद्वारा एकादिक्रमसे उनसे सब

कलौ तेषां च पापानि ग्रहीष्यंति न संशयः ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ॥४१॥ त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवानाजगाम ह ॥४२॥ चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि ॥ ४३ ॥ बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥ श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च ॥ ४४ ॥ उवाच दुःखितास्ताश्च वाचं सामयकीं विभुः ॥ श्रीभगवान् उवाच ॥ लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे ॥४५॥ अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥ तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि ॥४६॥ मदंशस्यासुरस्यैव शंखचूडस्य कामिनी ॥ भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः ॥ ४७ ॥ त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥ कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने ॥ ४८ ॥ भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥ गंगे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी ॥ ४९ ॥

कहनेलगे भगवान् बोले हे लक्ष्मि! तुम अंशसे मर्त्यलोकमें धर्मध्वज राजाके घर ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा कन्यारूपमें जन्म लोगी वहां भाग्यके दोषसे तुमको वृक्षत्व लाभकरना होगा ॥ ४६ ॥ वहां मेरे अंशसे उत्पन्न असुरेन्द्र शंखचूड नामक तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा फिर तुम यहां आनकर जिस प्रकार मेरी पत्नी हैं उसी प्रकार रहोगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ भारतमें जाकर तुम त्रैलोक्यपावनी तुलसी नामसे विख्यात होगी हे वरानने! शीघ्र भारतमें जाय अंशके द्वारा सरित्‌रूपसे ॥ ४८ ॥ अवतीर्ण होकर पद्मावती नामसे विख्यात

होओ हे गंगे ! तुमको भी सरस्वतीके शापसे मेरे अंशसे ॥ ४९ ॥ भारतमें भारतवासियोंके पाप दूर करनेको विश्वपावनी सरित्‌रूपसे अवतीर्ण होना पडेगा भगीरथके तपसे अनेक आराधनाकरके तुमको ले जानेसे ॥५०॥ तुम भूलोकमें पूततमा भागीरथी नामसे विख्यात होगी. वहां मेरे अंशसम्भूत समुद्र ॥ ५१ ॥ और मेरे अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनु तुम्हारे पति होंगे हे भारती ! गंगाके शापसे तुमभी भारतमें जाकर अंशसे अवतीर्ण होवो ॥ ५२ ॥ दोनों सपत्नीके सहित कलहका फल भोगो, हे भद्रे ! तुम स्वयं पूर्णरूपसे ब्रह्मसदनमें जाकर ब्रह्माकी पत्नी होओ ॥ ५३ ॥ गंगा भी पूर्णरूपसे शिवके समीप जाय और पद्मा मेरेही निकट रहे पद्मा अत्यन्त शान्तप्रकृति क्रोधरहित मद्भक्तिपरायण और सत्वगुणावलम्बिनी

भारतं भारतीशापात्पापदाहाय पापिनाम् ॥ भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते ॥ ५० ॥ नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ॥ मदंशस्य समुद्रस्य जाया जायेममाज्ञया ॥५१ ॥ मत्कलांशस्य भूपस्य शंतनोश्च सुरेश्वरि ॥ गंगाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति ॥५२॥ कलहस्य फलं भुंक्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते ॥ स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव ॥५३॥ गंगा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु ॥ शांता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी ॥५४॥ महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी ॥ यदंशकलया सर्वा धार्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥ ५५ ॥ शांतरूपाःसुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः ॥ तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बांधवाः ॥ ५६ ॥ ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मंगलप्रदाः ॥ स्त्री पुंवच्च गृहे येषां गृहीणां स्त्रीवशः पुमान् ॥ ५७ ॥

है ॥ ५४ ॥ पद्माके समान साध्वी सच्चरित्रा भाग्यवती और धर्मचारिणी अतिविरल हैं जो स्त्रियें पद्माके अंशसे जन्म ग्रहण करती हैं वह सब अतिशय धार्मिका और पतिपरायण होती हैं ॥ ५५ ॥ अधिक क्या ? शान्तस्वभाव और सुशीलकामिनियोंका सर्वत्र समान आदर होता है क्या तीन भार्या क्या तीन भृत्य क्या तीन बांधव ॥५६॥ भिन्न स्वभावके तीन जन एकत्र बैठालना निषिद्ध है और वेदविरुद्ध है क्योंकि तीन जन कभी एकस्वभावके नहीं हो सकते अतएव भिन्नप्रकृति तीन जनोंका एकत्र वास कभी मंगलदायक नहीं है जिस घरमें पुरुषके समान स्त्रियोंका आधिपत्य प्रबल है और पुरुष स्त्रीके वशीभूत हैं ॥ ५७ ॥

उनका जन्म निष्फल है और पद पदमें उनको अशुभ संघटित होते हैं जिसकी स्त्री मुखदुष्ट योनिदुष्ट और कलहप्रिय है ॥ ५८ ॥ उसको निबिडवनमें चलाजाना ही श्रेष्ठ है. क्योंकि ऐसे व्यक्तिके पक्षमें महावन घरकी अपेक्षा सुखका स्थान होता है वह मनुष्य घरमें पैर धोनेका जल बैठनेका स्थान भक्षणार्थफल इत्यादि कुछ नहीं पाता ॥ ५९ ॥ किन्तु वनमें उसको किसी वस्तुका अभाव नहीं होता दुष्टा स्त्रीके संग रहनेकी अपेक्षा हिंसक जंतुओंमें वास वा अग्निमें प्रवेश करना उत्तम है ॥ ६० ॥ परन्तु दुष्ट स्त्रीके समीप अवश्य घोर दुःख है हे वरानने ! यद्यपि व्याधियंत्रण (रोगजनित कष्ट) वा विषकी ज्वाला सहन होसकती है ॥ ६१ ॥ किन्तु दुष्टा स्त्रीके वाक्यकी यंत्रणा

निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदेपदे ॥ मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया ॥५८॥ अरण्यं तेन गंतव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ॥ जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च ॥ ५९ ॥ सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च ॥ वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्रजंतूनां सन्निधौ सुखम् ॥ ६० ॥ ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम् ॥ व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने ॥ ६१ ॥ दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ॥ पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मांतं शौचमध्रुवम् ॥ ६२ ॥ यदह्नि कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ निंदितोऽत्र परत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ यशःकीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः ॥ ६४ ॥ एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन ॥ गच्छ गंगे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति ॥ ६५ ॥

नहीं सही जाती अधिक क्या उसकी अपेक्षा मृत्युही श्रेष्ठ है जो स्त्रीके अत्यन्त वशीभूत हैं, यह निश्चय जानो कि जबतक वह चितामें नहीं जायँगे तबतक उनके मन शान्त न होंगे ॥६२॥ वह प्रतिदिन जिस कार्यका अनुष्ठान करते हैं उससे किसी प्रकार वह फलभागी नहीं हो सकते उनका इस लोक वा परलोक कहीं भी यश नहीं है वरन् चरमावस्थामें नरक प्राप्त होता है ॥६३॥ जिसका यश वा कीर्ति नहीं है उसका जीवन विडम्बना मात्र है बहुत सपत्नियोंका एकत्र रहना कभी मंगलका निमित्त नहीं है ॥ ६४ ॥ केवल एक स्त्री ग्रहण करके जब मनुष्य

सुखी नहीं हो सकता तब बहुत भार्यावाले पुरुषको जो कष्ट होता है उसमें फिर कहना ही क्या है. हे गंगे! तुम शिवके समीप और सरस्वती तुम ब्रह्माके घर जाओ ॥ ६५ ॥ केवल कमलवासिनी सुशीला कमला मेरे निकट रहै जिसकी पत्नी पतिव्रता सुशीला और आज्ञाकारिणी है ॥६६॥ उसको इस लोकमें सुख और धर्म एवं परलोकमें मुक्तिलाभ होता है फलतः जिसकी स्त्री पतिव्रता है वहसर्वान्तःकरणसे सुखभोग करता है यही नहीं वरन् वह जीवन्मुक्त है ॥६७॥ और जिसकी स्त्री दुश्चरित्रा है इस लोकमें सर्वान्तःकरणके सहित उसको केवल दुःखही भोगना पड़ता है अधिक क्या उसको जीवन्मृत कहनेसे भी अन्योक्ति नहीं होती ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां

अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया ॥ सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता ॥ ६६ ॥ इह स्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च ॥ पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी ॥ ६७ ॥ जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद ॥ अतीव रुरुदुर्देव्यः समालिंग्य परस्परम् ॥ १ ॥ ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणोचुस्तदेश्वरम् ॥ कंपिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च ॥ २ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ विशापं देहि हे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम् ॥ सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुतो जीवंति ताः स्त्रियः ॥ ३ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद! जब जगन्नाथ श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर मौन (चुप) हुए, तब लक्ष्मी सरस्वती और गंगा परस्परको आलिंगन करके अत्यन्त रुदन करने लगीं ॥ १ ॥ अनन्तर वह सब जगदीश्वर श्रीकृष्णकी ओर देखकर कंपितगात्र हो शोक और भयसे आंसु बहाती हुई क्रमानुसार उनसे अपने मनका भाव कहने लगीं ॥ २ ॥ प्रथम तो सरस्वतीने कहा हे नाथ! हमारे इस आजन्म पर्यन्त क्लेशप्रद अति कठोर शापके छूटनेका क्या उपाय है? अबलागण क्या कभी अनुकूल पतिके

त्यागनेपर जीवन धारण कर सकती हैं ॥ ३॥ हे नाथ ! मैं निश्चय कहती हूं कि, मैं भारतमें जाकर योगावलम्बनपूर्वक इस देहको विसर्जन करूंगी, महात्मा लोग निःसन्देह सदा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ फिर गंगाने कहा हे जगत्पते ! आपने किस अपराधसे मुझको त्याग किया ? मैं शरीर परित्याग करूंगी इस समय आप इस दोष विहीन रमणीके वधभागी हुए ॥ ५ ॥ इस भूमण्डलमें जो मनुष्य निरपराध स्त्रीको परित्याग करता है वह यद्यपि सर्वेश्वर हो किन्तु तो भी उसको नरकगामी होना पड़ता है ॥ ६ ॥ पद्माने कहा हे नाथ ! आप पूर्णसत्वगुणस्वरूप हैं. क्या आश्चर्य है कि, आपके शरीरमें किस प्रकार क्रोधका संचार हुआ ? जो हो आप सरस्वती और गंगापर प्रसन्न हूजिये. क्योंकि क्षमा ही

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् ॥ अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम् ॥ ४ ॥ गंगोवाच ॥ अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते ॥ देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥ ५ ॥ निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि ॥ स याति नरकं घोरं किंतु सर्वेश्वरोऽपि वा ॥ ६ ॥ पद्मोवाच ॥ नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव ॥ प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा ॥ ७ ॥ भारते भारतीशापाद्यास्यामि कलयाह्यहम् ॥ कियत्कालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥ ८ ॥ दास्यंति पापिनः पापं सद्यः स्नानावगाहनात् ॥ केन तेन विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥ ९ ॥ कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती ॥ भुक्त्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादांबुजमच्युत ॥ १० ॥ वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृ देवता ॥ समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥ ११ ॥

सत्पतिका प्रधान गुण है ॥ ७ ॥ और सरस्वतीने जब मुझको शाप दिया है तब मैं इसी समय भारतमें जानेको प्रस्तुत हूं किन्तु मुझको कितने कालतक वहां रहना होगा ? कितने दिनोंमें आपके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ पापीगण सदा स्नान और अवगाहन द्वारा मेरे जलमें पापरूपी कीचड धोवेंगे तब किस उपाय द्वारा छूटकर उससे फिर आपके चरणकमलोंका दर्शन पाऊंगी ॥९॥ जब मैं अंशसे धर्मध्वजकी दुहिता हूंगी तब मुझको कितने दिन पीछे आपका दर्शन प्राप्त होगा ॥ १० ॥ कितने दिन मुझको आपका अधिष्ठानभुत

तुलसी वृक्षरूप धारण करके अवस्थान करना होगा ? हे कृपानिधे ! कहो कितने दिनोंमें मेरा उद्धार करोगे॥११॥ भारतीके शापसे यदि गंगाको भारतमें अवतीर्ण होना पडे तो शापसे और पापसे छूटकर कितने दिन पीछे आपका दर्शन कर सकती हैं ॥ १२ ॥ और यदि गंगाके शापसे सरस्वतीही भारतमें गमन करै तो उसके शापावसानमें कितना विलम्ब होगा? कितने दिन पीछे आपके चरणोंका दर्शन करनेमें समर्थ होंगी?॥१३॥ इसके अतिरिक्त सरस्वतीको ब्रह्मसदनमें और गंगाको शिवसदनमें जानेकी अनुमति दी सो इस विषयमें क्षमा कीजिये ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद !

गंगा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते ॥ शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति ॥ १२ ॥ गंगाशापेन वा वाणी यदि यास्यति भारतम् ॥ कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥ १३ ॥ तां वाणीं ब्रह्मसदनं गंगां वा शिवमन्दिरम् ॥ गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा कमला कांतपादं धृत्वा ननाम सा ॥ स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुरोद च पुनः पुनः ॥ १५ ॥ "उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥" ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि ॥ समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे ॥ १६ ॥ भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते ॥ अर्धा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥ १७ ॥ भगीरथेन सा नीता गंगा यास्यति भारते ॥ पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥ १८ ॥

देवी कमला जगन्नाथसे यह बात कहकर उनके चरणकमलोंमें गिर गई और अपने केशोंसे उनके चरणवेष्टन करके वारंवार रोदन करने लगी ॥१५॥ इसी समय भक्तानुग्रहकातर पद्मनाभ हरिने हास्यमुख और प्रसन्न चित्त हो पद्माको हृदयसे लगाकर कहा भगवान् बोले हे सुरेश्वरी! अपने वचनकी रक्षा करके तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूंगा, हे कमललोचने ! जिस प्रकारसे दोनों बातोंकी रक्षा हो वह कहता हूं सुनो॥१६॥ सरस्वती एकांशसे नदीरूप धारण करके भारतमें और अर्धांशसे ब्रह्माके समीप वास करै और पूर्णांशसे वैकुण्ठमें मेरे समीप विद्यमान रहै ॥१७॥भगीरथके

यत्नसे त्रिभुवन पूत (पवित्र) करनेके लिये गंगाको एकांशसे भारतमें जाना होगा ॥ १८ ॥ और एकांशसे चन्द्रशेखरकी दुर्लभ जटामें स्थान लाभ करके स्वभावसे जिस प्रकार पवित्र हैं, उससे भी अधिक पवित्र होगी और पूर्णांशसे मेरे समीप अवस्थान करै ॥ १९ ॥ हे वामलोचने पद्मे ! तुम सबकी अपेक्षा निरपराध हो अतएव तुम्हारा अंशका अंश भारतमें पद्मावती नामक नदी और तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होवे ॥ २० ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर तुम शापसे छूटोगी तब फिर तुम मेरे गृहमें आ सकोगी ॥ २१ ॥ हे पद्मे ! विपत्तिही देह

तत्रैव चंद्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् ॥ ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूजा भविष्यति ॥ १९ ॥ कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने ॥ पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी ॥ २० ॥ कलेः पंचसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् ॥ युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ ॥ २१ ॥ संपदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् ॥ विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत् ॥ २२ ॥ मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् ॥ युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ २३ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि संत्यसंख्यानि सुंदरि ॥ भविष्यंति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २४ ॥ मन्मत्रोपासका भक्ता विश्रमंति च भारते ॥ पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुंधराम् ॥ २५ ॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठंति पादं प्रक्षालयंति च ॥ तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥

धारियोंकी सम्पत्तिका निदान हैं संसारमें विपत्तिके विना कोई सम्पद्का गौरव नहीं समझ सकता ॥ २२ ॥ मेरे मंत्रोपासक जो साधु पुरुष तुम्हारे जलमें स्नान और अवगाहन करेंगे उनके दर्शन और स्पर्शनसे तुम्हारा पाप छूट जायगा ॥२३॥ हे सुन्दरि ! मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे भूलोकस्थित संपूर्ण तीर्थ पवित्र होंगे ॥ २४ ॥ सुपवित्रधराका उद्धार और पवित्रता साधन करनेके लिये मेरे मंत्रोपासक अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ शव वैष्णव शाक्त और गाणपत्यादि संपूर्ण भक्त भारतमें वास करते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भक्त वहां अवस्थान करके पैर धोते हैं वह स्थान

निःसन्देह पवित्र तीर्थ कहकर परिगणित होते हैं ॥ २६ ॥ यही क्या ! मेरे भक्तोंके स्पर्श और दर्शनसे स्त्री हत्या गोहत्या और ब्रह्महत्याकारी एवं कृतघ्न और गुरुदारापहारी पुरुषतक भी पवित्र और जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २७ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे एकादशीविहीन संध्याव र्जित नास्तिक और नर हत्याकारीकाभी पाप दूर होता है॥२८॥मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे असिजीवी मसिजीवी धावक अर्थात् रजककर्म कारी ग्रामयाचक और वृषवाही ब्राह्मणोंका भी पाप दूर होता है ॥ २९ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे विश्वासघातक मित्रद्रोही मिथ्या साक्षीदाता और धरोहर मारनेवाला पुरुष भी पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे अति वाग्दुष्ट अर्थात्

स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥ जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २७॥ एकादशीविहीनश्च सन्ध्या हीनोऽथ नास्तिकः ॥ नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २८ ॥ असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः ॥ वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २९॥ विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः ॥ स्थाप्यहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३० ॥ अत्युग्रवान्पुंदूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः ॥ पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३१ ॥ शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः ॥ अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३२ ॥ पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम् ॥ गुरोः कुलं च भगिनीं चक्षुर्हीनं च बांधवम् ॥ ३३ ॥ श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुंदरि ॥ स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३४ ॥

उग्रवचन बोलनेवाला जारक (अन्यपितासे उत्पन्न) पुंश्चली पति और पुंश्चलीका पुत्रभी पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे जो ब्राह्मण शूद्रका पाचक (रसोईदार) जो देवल पुजारी हो जो ग्रामवालोंका यज्ञ करानेवाला और जो गुरु मंत्रमें दीक्षित नहीं हैं वह भी पवित्र होता है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! जो पामर पिता, माता, भ्राता, स्त्री पुत्र, कन्या, भगिनी अंध, बन्धु ॥ ३३ ॥ गुरुकुल, सास और श्वसुरका भरण पोषण नहीं करता मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे वह पातकी भी पापसे छूट जाता है॥ ३४॥

मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पीपलका काटनेवाला मेरे भक्तोंकी निंदा करनेवाला और शूद्रोंका अन्न भोजन करनेवाला ब्राह्मणपर्यन्त अपने अपने किये पापोंसे मुक्त होता है ॥ ३५ ॥ जो देवताका द्रव्य और ब्राह्मणका द्रव्य हरण करता है जो लाक्षा (लाख) लोहा और रस तथा कन्या बेचता है ॥ ३६ ॥ जो महापातकी और शूद्रोंका शव फूंकनेवाला है वह भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेपर अपने अपने पापसे छूटते हैं ॥३७॥ महालक्ष्मीने कहा हे भक्तवत्सल! आप भक्तोंके लक्षण कहिये जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे नराधम शीघ्र पवित्र होते हैं ॥ ३८ ॥ हरिभक्ति विहीन घोर अहंकारी आत्मश्लाघामें निरत धूर्त शठ और साधुओंकी निन्दा करने वाले

अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिंदकस्तथा ॥ शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥ ३५ ॥ देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः ॥ लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥ ३६ ॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः ॥ भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३७ ॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर ॥ तेषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नराधमाः ॥ ३८ ॥ हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुताः ॥ स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्च साधुनिंदकाः ॥ ३९ ॥ पुनंति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् ॥ येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥ ४० ॥ येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वांछंति भारते ॥ सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥४१॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकांतश्च सस्मितः ॥ निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे ॥४३॥

॥ ३९ ॥ पापात्मा लोग भी शीघ्र महापातकसे छूटते हैं जिन भक्तोंके स्नानावगाहनसे संपूर्ण तीर्थ पवित्रतालाभ करते हैं जिन भक्तोंकी चरणरेणु और पादोदकस्पर्शसे वसुन्धरा पवित्र होती है ॥ ४० ॥ भारतीय मनुष्य सदा जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं और जिन भक्तोंके समागमसे भारी लाभ दूसरा नहीं है ॥ ४१ ॥ विशेषतः जलमय संपूर्ण तीर्थ एवं मृन्मय और शिलामय देवताओंसे बहुत कालमें पाप दूर होता है, किन्तु अब पूंछता हूं कि, आपके जिन भक्तोंसे शीघ्र महा पातक नष्ट होते हैं, आपके उन्हीं निर्दिष्ट भक्तोंके लक्षण किसप्रकार हैं ? ॥४२॥ सूतजीने कहा हे महर्षे ! लक्ष्मीकान्तने महालक्ष्मीके वचन सुन कुछेक हँसकर निगूढतत्त्व अर्थात् भक्तोंके

लक्षण निर्देश करनेका उपक्रम करके कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे लक्ष्मी ! भक्तोंके लक्षण श्रुति और पुराणमें अत्यन्त गूढभावसे कथित हुए हैं यह अत्यन्त पवित्र पापघ्न (पापनाशक) सुखद और भक्ति मुक्तिदायक है ॥४४॥ यह सारभूत गोपनीय वृत्तान्त खलके निकट प्रकाशित न करै किंतु तुम अत्यन्त सरलस्वभाव और मेरे प्राणोंके समान हो. इसकारण तुमसे कहता हूं सुनो ॥४५॥ हे सुंदरि ! गुरुदेवके मुखसे जिसके कानमें विष्णु, शिव, गणेश और सूर्यादिमंत्र पडता है, सम्पूर्ण वेदही उसको पवित्र और नरोत्तम कहते हैं ॥ ४६ ॥ ऐसे पुरुषके जन्म लेतेही उनके पूर्व शत (१००) पुरुष स्वर्गमें हों वा नरकमें हों, तत्काल मुक्तिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ और उनमें यदि कोई किसी स्थानमें वा किसी जीवयो

श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः ॥ पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥ सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च ॥ त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥ ४५ ॥ गुरुवक्राद्विष्णुमंत्रो यस्य कर्णे पतिष्यति ॥ वदंति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम् ॥ ४६ ॥ पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः ॥ स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जंतुषु ॥ जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यांति काले हरेः पदम् ॥ ४८ ॥ मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः ॥ मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम् ॥ ४९ ॥ मद्गुणश्रुति मात्रेण सानंदः पुलकान्वितः ॥ सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥ ५० ॥

निमें जन्म ग्रहण करता है तो वह जीवन्मुक्त होकर अन्तमें विष्णुपद, लाभ करता है ॥४८॥ जो पुरुष मेरे भक्ति रसमें आर्द्र होता है, जो पुरुष निरन्तर मेरे गुण कीर्तन और तदनुरूप व्यवहार करता है, जो पुरुष सदा मेरी कथामें चित्त लगाये रहता है ॥ ४९ ॥ और मेरे गुणानुवाद सुनकर जिसका मन आनन्दमें नृत्य करता रहता है, सर्वाङ्ग पुलकित होता है, कण्ठस्वर रुद्ध हो जाता है, अनवरत नेत्रोंसे आसुओं की धारा गिरती रहती है, बाह्यज्ञान तिरोहित होता है वही पुरुष मेरा भक्त है ॥५०॥

मेरे भक्त क्या सुख, क्या मुक्ति, क्या सायुज्य, क्या सारूप्य, क्या सालोक्य, क्या ब्रह्मत्व, क्या अमरत्व किसीकी इच्छा नहीं करते, वह केवल मेरी सेवा करनेमें अत्यन्त तत्पर होते हैं ॥५१॥ वास्तविक वह कभी स्वप्नमें भी दुर्लभ इन्द्रत्व, मनुत्व, ब्रह्मत्व और स्वर्ग राज्यभोग करनेकी वासना नहीं करते ॥५२॥ मेरे भक्त केवल मेरेही गुण सुननेमें लग्न और मेरेही मधुर गुणगानमें नित्य आनंदित होकर भारतमें भ्रमण करते हैं, फलतः भारतमें ऐसे भक्त जन्म अत्यन्त दुर्लभ है ॥५३॥ वह पृथ्वीको पवित्र करके अन्तमें मेरे आलयरूप श्रेष्ठतम तीर्थमें गमन करते हैं, हे पद्मे ! यह मैंने तुमसे अभिलाषित समस्त विषय वर्णन किया अब जो रुचि हो, सो करो ॥ ५४ ॥ अनन्तर गंगादि सभी श्रीहरिकी आज्ञा पालन करनेको गई,

न वांछति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वांछा मम सेवने ॥ ५१ ॥ इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम् ॥ स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वांछति ॥ ५२ ॥ भ्रमंति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम् ॥ मद्गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदाऽन्विताः ॥५३॥ ते यांति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममाऽऽलयम् ॥ इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम् ॥ ५४ ॥ तदाज्ञया तास्तच्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती पुण्यक्षेत्रमाजगाम च भारते ॥ गंगाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ १ ॥ भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया ॥ वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता ॥ २ ॥ सरोवाप्यां च स्रोतस्सु सर्वत्रैव हि दृश्यते॥ हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥ ३ ॥

इस ओर वह स्वयं हरि अपने धाममें अवस्थान करने लगे ॥५५॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
नारायणने कहा हे देवर्षे ! अनन्तर सरस्वती गंगाके शापवश अंशसे पुण्यक्षेत्र भारतमें आई और पूर्णांशसे विष्णुभवन वैकुण्ठधाममें स्थिति करने लगी ॥ १ ॥ भारतमें गमन करनेके कारण उनका नाम भारती और ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण उनका दूसरा नाम ब्राह्मी हुआ है और वाणी अर्थात् वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं इस कारण उनका वाणी नाम हुआ है ॥ २ ॥ हरि सर्वव्यापी हैं, अतएव वह क्या

सर अर्थात् सरोवर, क्या वापी, क्या स्रोत, सर्वत्रती विद्यमान रहते हैं, सरसमें विद्यमान होनेके कारण वह सरस्वान् हैं, वाणी उन सरस्वान्‌की शक्ति है, इसलिये सरस्वती नामसे कही गई हैं ॥ ३ ॥ नदी रूप सरस्वती अतिपावन तीर्थस्वरूप हैं ! मणियोंके पापरूपीकाष्ठ जलानेमें वह प्रज्वलित अग्निस्वरूप हैं ॥ ४ ॥ हे वत्स नारद ! सरस्वती शापसे देवी गंगाने अंशसे सलिलस्वरूप धारण किया, फिर भगीरथ उनको भूलोकमें लाये हैं इसी कारण उनका नाम भागीरथी हुआ है ॥ ५ ॥ भगीरथकी प्रार्थनासे जब गंगाकी एक धारा ऊपर पृथ्वीपर गिरा तब वसुन्धराके धारापातका वेग धारण करनेमें असमर्थ होनेपर एकमात्र धारण पटु श्रीमहादेवजीके निकट प्रार्थना करनेपर उन्होंने उस समय

सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपाऽतिपावनी ॥ पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४ ॥ पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भगीरथेन च ॥ सा वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥ ५ ॥ तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः ॥ वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः ॥ ६ ॥ पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी ॥ भारतं भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ ७ ॥ ततोऽन्यया सा कलया लेभे जन्म च भारते ॥ धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥ ८ ॥ पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः ॥ बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥ ९ ॥ कलेः पंचसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते ॥ जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥ १० ॥ यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृंदावनं विना ॥ यास्यंति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः ॥ ११ ॥

उनको मस्तकमें धारण किया था ॥ ६ ॥ भारतीके शापसे पद्माकोभी अंशसे पद्मावती नदी होकर भारतमें अवतीर्ण होना पड़ा है किन्तु पूर्ण भावसे वैकुण्ठ में नारायणकी अंकलक्ष्मी होकर वास करती हैं ॥७॥ इनका अपर अंश प्रथम भारतमें राजा धर्मध्वजके तुलसी नामसे विख्यात कन्यारूपमें अवतीर्ण हुआ ॥ ८ ॥ अन्तमें भारतीके शापसे और श्रीहरिकी आज्ञासे विश्वपावनी तुलसी वृक्ष रूपमें परिणत हुई हैं ॥ ९ ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर ही यह सब सरित् रूप त्यागकर भारतसे फिर वैकुण्ठधाममें हरिसदनमें गमन करेंगी ॥ १० ॥ श्रीकृष्णकी

आज्ञानुसार काशी और वृन्दावनके अतिरिक्त और संपूर्ण तीर्थ सरिद्गणोंके संग संग वैकुण्ठमें जाँयगे ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त कलिके दश हजार वर्ष बीतनेपर शालिग्राम शिला शिव और शिवशक्ति एवं पुरुषोत्तम जगन्नाथ इस भारतभूमिको छोड़कर अपने अपने स्थानको जायँगे अर्थात् भारतसे शालग्राम माहात्म्य पीठ स्थान माहात्म्य और पुरुषोत्तम माहात्म्य एक बारही अन्तर्धान होजायगा ॥ १२ ॥ शैव शाक्त, गाणपत्य और वैष्णवादि धर्मपरायण साधुगण अठारह पुराण मांगल्य शंखध्वनि श्राद्धतर्पण और वेदोक्त क्रिया कलापादि कुछभी नहीं रहेगी ॥१३॥ देवपूजा, देवप्रशंसा और देवताओंके गुणगानकी बात तो दूर रहे, देवताओंका नाम; पर्यन्तभी लुप्त होगा साङ्गवेद शास्त्रका नाम पर्यन्त

शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम् ॥ कलेर्दशसहस्रांते त्यक्त्वा यांति निजं पदम् ॥ १२ ॥ साधवश्च पुराणानि शंखानि श्राद्धतर्पणे ॥ वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १३ ॥ देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम् ॥ वेदांगानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१४॥ संतश्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः ॥ व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १५ ॥ वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः ॥ तुलसीरहिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥ १६ ॥ शठाः क्रूरा दांभिकाश्च महाहंकारसंयुताः ॥ चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यंति ततः परम् ॥ १७ ॥ पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वाऽपि निर्भयः ॥ स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम् ॥ १८ ॥

फिर सुनाई नहीं देगा ॥१४॥ साधुसमाज, सत्य धर्म, चारोंवेद, ग्राम्यवेद, देवी, व्रत, तपस्या और उपवास एक बारही लयको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ सभी मद्यमांसादिकी सेवामें अनुरक्त होंगे, मिथ्या और कपटता सबको आश्रम करेगी, यदि कोई पूजाभी करेगा तो वह अर्चना तुलसी विहीन होगी ॥१६॥ प्रायः समस्तलोक शठ, क्रूर, दाम्भिक, अहंकारी, तस्कर और हिंसक हो जाँयगे ॥१७॥ पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्रीमें परस्पर प्रणय नहीं रहेगी। केवल स्त्री पुरुष मात्र भेद रहेगा, जातिभेद एकबारही अन्तर्धान होगा, सुतरां विवाहके सम्बन्धमें भयका लेशमात्र भी

न रहेगा, प्रतिपदार्थमें ही स्वस्वस्वाति सत्य बद्धमूल होगा अर्थात् पिता पुत्रके और पुत्र पिताके द्रव्यको स्पर्श नहीं कर सकेगा ॥ १८ ॥ पुरुष मात्रही प्रायः स्त्रीके वशीभूत होंगे और प्रत्येक घरमेंही प्रायः संपूर्ण स्त्रियें पुंश्चली धर्म अवलम्बन करेंगी, वह निरंतर तर्जन गर्जन करके अपने अपने स्वामीको ताड़ना करती रहेंगी ॥१९॥ गृहिणी गृहकर्त्री होंगी और गृहस्वामी अधम मृत्युकेसमान उनके निकट हाथजोड़े रहेंगे सास और श्वशुर उनके निकट दास दासीके समान व्यवहृत होंगे ॥ २० ॥ स्त्रीके सहोदर इत्यादि बांधव लोगही गृहके कर्ता होंगे किंतु सहाध्यायी गणोंके सहित आलाप मात्र नहीं रहेगा ॥ २१ ॥ गृहस्वामिके भ्रातादि बांधवगण एकबारही अनजान परदेशीके समान अपरिचित

सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे ॥ तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयंति च ॥१९॥ गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः ॥ चेटीदाससमौ वध्वाः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥२०॥ कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबंधिबांधवाः ॥ विद्यासंबंधिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते ॥२१॥ यथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बांधवाः ॥ सर्वकर्मक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥ २२ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्राजात्याचारविवर्जिताः ॥ संध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः ॥२३॥ म्लेच्छाचारा भविष्यंति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यंति स्वशास्त्राणि विहाय च ॥२४॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ ॥ सूपकारा धावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः ॥ २५ ॥ सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी ॥ फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः ॥२६॥

होजायँगे गृहणीकी अनुमतिके विना गृहकर्ताका किसी विषयमें कर्तृक करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि जाति भेद एकबारही तिरोहित होगा. संध्यावंदनादि कर्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना तो दूररहे ब्राह्मणगण एकबारही यज्ञोपवीत रहित होंगे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्ण ही अपना अपनाशास्त्र और आचार परित्यागकरके म्लेच्छशास्त्र अध्ययन और म्लेच्छ आचारमें अत्यन्तआसक्त होंगे ॥ २४ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यगण शूद्रके दास होंगे सबही शूद्रके पाचक (रसोईदार) धावक (कपडे धोनेवाले) वा दूत और वृषवाहक अर्थात् बैलके लादने वाले होंगे ॥ २५ ॥ मनुष्यमात्रही सत्यहीन पृथ्वी सस्यरहित, वृक्ष

फलशून्य और स्त्रियें पुत्रहीन होंगी॥२६॥ गायोंके स्तनमें प्रायः दुग्ध नहीं रहेगा और यदि कुछेक दुग्ध निकलाभी, तो घृत उत्पन्न नहीं होगा स्त्री पुरुष आपसमें प्रेमहीन और गृहस्थगण मिथ्यावादी होंगे॥२७॥राजाका पराक्रम कुछ नहीं रहेगा प्रजागण कर भारसे अत्यन्त पीड़ित हो जायँगे क्या विस्तीर्ण जलवाली नदियें, क्या अल्पजला नदी, क्या कन्दरादि समस्त ही क्रमानुसार क्षीणजलवाली होंगी ॥२८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी धर्मप्रवृत्ति तिरोहित और पुण्यलोप होगा प्रथम तो लक्ष पुरुषोंमें एकजन पुण्यवान् होगा, किंतु फिर वह भी न रहेगा ॥ २९ ॥ क्या नर, क्या नारी, क्या बालक, सभी कुत्सित और विकृताकृति होंगे । कुत्सित बात और कुत्सित शब्दके अतिरिक्त किसीके मुखसे दूसरी बात

क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥ दंपती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिताः ॥२७॥ प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥ जलहीना महानद्यो दीर्घिकाकंदरादयः ॥ २८ ॥ धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च ॥ लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम् ॥२९॥ कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः ॥ कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम्॥३०॥ केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः॥ केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः॥३१॥ अरण्यानि भविष्यंति ग्रामेषु नगरेषु च॥ अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः॥३२॥ सस्यानि च भविष्यंति तडागेषु नदीषु च॥ प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यंति कलौ युगे॥ ३३ ॥ अलीकवादिनो धूर्ताः शठाश्चासत्यवादिनः ॥ प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्यहीनानि नारद ॥ ३४ ॥

उच्चारित नहीं होगी॥३०॥ कोई कोई ग्राम और कोई नगर एकबारही मनुष्यरहित होकर भीषणमूर्ति धारण करेंगे और किसी किसी स्थान वा अतिसामान्य कुटीरमें और सामान्यलोकोंमें स्थिति रहेगी ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण ग्राम और नगर अरण्यमें परिणत और अरण्यलोकोंके निवाससे पूर्ण होकर वनवासी मनुष्य करभारसे पीडित हो जायंगे ॥३२॥ अनावृष्टिके कारण जलका अभाव होनेसे तालाब और नदियोंमें खेती होने लगेगी. सद्वंशोत्पन्न कुलीन नितान्त नीच होजायंगे ॥३३॥ पृथ्वी अलीकवादी असत्यपरायण धूर्त और शठोंसे परिपूर्ण होगी भूमि भलीभांति जोतने यह

भी सस्यका नाममात्र नहीं रहेगा ॥ ३४ ॥ जो अतुल ऐश्वर्यके अधिपति कहकर विख्यात हैं वही निर्धन और जो देवभक्त हैं वही नास्तिक होंगे पुरवासियोंके शरीरमें दयाका लेशमात्र नहीं रहेगा वरन् वह प्रति वेशीके विद्वेष्टा और नरघातक होजायेंगे ॥ ३५ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंमें नर और नारीमात्र लघुकाय व्याधिग्रस्त, क्षीणायु, रोगी और हीनयौवन होंगे ॥ ३६ ॥ सोलह वर्षमें पदार्पण न करते ही केश सफेद वर्ण हो जायँगे, वीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर समस्त पुरुष महावृद्ध होंगे, अष्टवर्षीय रमणी युवती रजस्वला और गर्भवती होंगी ॥३७॥ प्रसव ! करनेमें वर्ष नहीं जायगा इसके उपरान्त सो लहवां वर्ष उपस्थित होतेही बुढापा आजायगा, कदाचित्‌ही कोई २ स्त्री पति पुत्रवती होगी नहीं तो

हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः ॥ हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः ॥३५॥ वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः ॥ स्वल्पायुषो गदायुक्ता यौवने रहिताः कलौ ॥ ३६ ॥ पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ ॥ अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी ॥३७॥ वत्सरांतप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता ॥ पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वंध्याः कलौ युगे ॥ ३८ ॥ कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च ॥ मातृजायावधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः ॥ ३९ ॥ कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्नजीविनः ॥ हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यंति कलौ युगे ॥ ४० ॥ स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे ॥ ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लंघयिष्यति ॥ ४१ ॥ देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लंघयिष्यति ॥ ४२ ॥ कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः ॥ केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः ॥ ४३ ॥

प्रायःसभी बांझ होंगी ॥ ३८ ॥ चारों वर्णही कन्या बेचेंगी माता भार्या पुत्रवधू कन्या और भगिनीके उपपतिही जीवनके अवलम्बन होंगे ॥३९॥ विना अर्थके कोई हरि नाम जपजनित पुण्यसंचयमें अधिकारी नहीं होगा ॥ ४० ॥ यश प्राप्त होनेकी इच्छासे दान करके फिर अन्तमें उस अपनी दी हुई वस्तुको ग्रहण करें ॥ ४१ ॥ देवता ब्राह्मण वा गुरुकुलके निमित्त अपनी दी हुई हो, वा अपने पूर्व पुरुषोंकी दी हुई यदि कोई वृत्ति निर्दिष्ट हो, तो फिर आत्मसात् (अपने अधीन) करनेमें त्रुटि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ कोई कोई कन्या कोई कोई सास कोई

कोई पुत्रवधू कोई संव कोई कोई ॥४३॥ भगिनी, कोई सपत्नी जननी और कोई कोई भ्रातृजाया गमन करेगा किसीको कोई गमन अवशिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४४ ॥ केवलमातृयोनिके अतिरिक्त प्रत्येक घरमेंही अगम्यागमन प्रचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ कलियुगमें कौन किसकी पत्नी और कौन किसका भर्ता कुछ निर्णय न रहेगा कौन किसीकी प्रजा और कौन किसका ग्रामहै विशेषतः कौन वस्तु किसकी है कुछ निर्दिष्ट नहीं रहेगा ।।४६॥ सभी मिथ्यावादी, लम्पट, तस्कर, परस्त्रीकातर और नरघातक होंगे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन श्रेष्ठतम तीनों

भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥ भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यंति कलौ युगे ॥ ४४ ॥ अगम्यागमनं चैव रिक ष्यंति गृहे गृहे ॥ मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यंति सर्वतः ॥ ४५ ॥ पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तॄणां च कलौ युगे ॥ प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चोराश्च लंपटाः ॥ परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यंति च पापिनः ॥ लाक्षालोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च ॥ ४८ ॥ वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥ शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः ॥ ४९ ॥ पंचयज्ञविहीनाश्च कुहूरात्रौ च भोजिनः ॥ यज्ञसूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५० ॥ पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला ॥ विप्राणां रंधनागारे भविष्यति च पाचिका ॥ ५१ ॥

वर्णके घरमें पापस्रोत बहता रहेगा शास्त्रनिषिद्ध लाक्षा (लाख) लोहा और लवण वेचना इनका जीवनोपाय होगा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणगण वृष चालन, शूद्रका शवदाहन शूद्रान्नभोजन और वृषलीगमन करेंगे ॥ ४९ ॥ ऋषियज्ञादि पंचयज्ञमें फिर आस्था नहीं रहेगी प्रायः ब्राह्मणमात्रही अमावस्या (की रातको भोजन करेंगे) भोजन न करनेकी आज्ञा पालनमें विमुख होंगे यज्ञसूत्र दूर फेंककर ब्राह्मणोचित संध्यावन्दनादि और शौचाचार एकबारही त्याग करेंगे ॥ ५० ॥ ऋणदान जीवनी पुंश्चली और रजस्वला कुटनियें ब्राह्मणोंकी रन्धनशाला (रसोईघर)

में पाचिका अर्थात् भोजन बनानेवाली होंगी ॥ ५१ ॥ अन्नविचार योनिविचार आश्रमविचार और लोकविचार कुछभी नहीं रहेगा, सब ही म्लेच्छाचार होंगे ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! नारद ! इस प्रकार घोर कलिके प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छोंसे भरजायगा सम्पूर्ण वृक्ष हस्तप्रमाण और मनुष्य सब अंगुष्ठप्रमाण होंगे ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें बलियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायण अपने अंशसे विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उसके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होंगे ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वह हाथमें खड्ग धारणकर सुदीर्घ एक घोडेपर चढ़, तीन रात्रिमें पृथ्वी

अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः ॥ आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥ ५२ ॥ एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत् ॥ हस्तप्रमाणे वृक्षे च अंगुष्ठे चैव मानवे ॥ ५३ ॥ विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति ॥ नारायणकलांशश्च भगवान्बलिनां वरः ॥ ५४ ॥ दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः ॥ म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥ ५५ ॥ निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चांतर्धानं करिष्यति ॥ अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति ॥ ५६ ॥ स्थूलाऽप्रमाणषड्रात्रं वर्षधाराप्लुता मही ॥ लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति ॥ ५७ ॥ ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यंत्युदयं मुने ॥ प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा ॥ ५८ ॥ कलौ गते च दुर्धर्षे प्रवृत्ते च कृते युगे ॥ तपःसत्त्वसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति ॥५९॥ तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि ॥ पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहेगृहे ॥६०॥

म्लेच्छहीन कर अंतर्धान होंगे ॥ ५५ ॥ तब पृथ्वी उनके अन्तर्धान होनेपर अराजक और दस्युग्रस्त होजायगी ॥ ५६ ॥ इसी समय अनवरत छःदिन धारापातसे यह विस्तीर्ण स्थूलकाय पृथ्वी डूबजायगी. मनुष्य, वृक्ष और गृहादिका चिह्नमात्रभी नहीं रहेगा ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त एक वारही बारह सूर्यके उदय होकर करप्रसारण करनेसे ही सम्पूर्ण जल सूखकर भूमण्डल समान होजायगा ॥५८॥ हे वत्सनारद ! इस प्रकार घोरतर कलिके बीतजानेपर और सत्ययुगके प्रवृत्तहोनेपर फिर तपस्यादि सत्वगुणनिष्ठ सत्य धर्मका पूर्ण प्रचार होगा ॥ ५९ ॥ फिर

ब्राह्मणगण तपस्याधर्मनिष्ठ और वेदपरायण होजायँगे फिर घर घर स्त्रियें पतिपरायण और धर्मनिष्ठ होजाँयगी ॥६०॥ फिर ब्राह्मणभक्त मनस्वी क्षत्रियगण सिंहासन अधिकार करेंगे पुनः उनका प्रताप, धर्मनिष्ठा और सत्कर्मानुराग बढ़ेगा ॥ ६१ ॥ फिर वैश्योंकी वही वाणिज्यप्रवृत्ति वही ब्राह्मणभक्ति और वही धर्मानुरक्ति प्रत्यागमन करेगी शूद्रगण फिर पुण्यशील, धार्मिक और ब्राह्मणोंके सेवक होंगे ॥ ६२ ॥ पुनर्वार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, सभी देवीध्यान देवीज्ञान और देवीमंत्र परायण होंगे ॥६३॥ फिर उन्हीं वेद उन्हीं स्मृति और उन्हीं पुराणोंका ज्ञान फैल जायगा सबही ऋतुकालमें भार्या गमन करेंगे अधर्मका लेशमात्रभी नहीं रहेगा पुनर्वार सत्ययुगमें धर्म पूर्णकलामें प्रवृत्त होगा ॥६४॥ इसके

राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः ॥ प्रतापवंतो धर्मिष्ठाः पुण्य कर्मरताः सदा ॥६१॥ वैश्या वाणिज्यनिरताविप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ॥ शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः ॥ ६२ ॥ विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः ॥ देवीमंत्ररताः सर्वे देवीध्यानपरायणाः ॥६३॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा पुंमांस ऋतुगामिनः ॥ लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णोधर्मः कृते युगे ॥ ६४॥ धर्म स्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे ततः ॥ कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम् ॥ ६५ ॥ वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः ॥ तथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव च ॥६६॥ द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् ॥ चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मास स्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥ ६७ ॥ वर्षं पंचविधं ज्ञेयं कालसंख्याविधिक्रमे ॥ यथा चाऽऽयांति यांत्येव यथा युगचतुष्टयम् ॥ ६८ ॥

पीछे जब त्रेता उपस्थित होगा तब धर्म त्रिपाद्, जब द्वापर तब द्विपाद् जब कलिकी प्रवृत्ति तब एक पाद किन्तु कलिके पूर्णकलामें प्रवृत्त होनेसे फिर धर्मका नाममात्रभी नहीं रहेगा ॥ ६५ ॥ हे वत्स नारद ! अब समयका स्वरूप कहता हूं सुनो रवि इत्यादि सातवार प्रतिपदादि षोडशतिथि वैशाखादि बारह मास. ग्रीष्मादि छै ऋतु॥ ६६ ॥ शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष एवं दक्षिण और उत्तर दो अयन कल्पित हुऐ हैं चार प्रहरमें दिन चारप्रहरमें रात्रि सुतरां रात्रि और दिन लेकर एकदिन होता है इस प्रकार तीस दिनमें एक मास परिगणित होता है ॥ ६७ ॥ काल संख्या--गणनामें पांच प्रकार वर्ष पहिलेही (अष्टमस्कंधमें) निर्देश किया है जिस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युगपर्याय क्रमसे

तब जो वह यह सब स्वीकार करते हैं सो केवल भक्तोंपर अनुग्रह प्रकाश मात्र है कमलयोनि ब्रह्मा केवल उनके ही ज्ञानबलसे ब्रह्माण्डकी रचना करनेमें समर्थ होते हैं ॥८४॥ योगीश्वर शिवने जो मृत्युञ्जय नाम धारण किया है, सबके संहारकर्त्ता और सर्वतत्त्व विज्ञाता हुए हैं, वह केवल उनकी ही कृपाका बल है ॥ ८५ ॥ तपश्चरणसे उन परब्रह्मकी उपलब्धि करनेके कारण वह सर्वेश, सर्वज्ञ, महाविभूतियुक्त, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक हैं और सर्वसम्पद्दाता हुए हैं ॥ ८६ ॥ उनपर ब्रह्मके प्रति भक्ति और उनकी आराधना ही श्रीमान् विष्णु वो सर्वेश्वरत्वलाभका मूलकारण है, महामाया प्रकृतिदेवी भी उनके ही बलसे सर्वेश्वरी और सर्वशक्तिमयी हुई है ॥ ८७ ॥ भगवती

शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित् ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान् ॥८५॥ महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ॥ सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम् ॥८६॥ विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यद्भक्त्या तस्य सेवया ॥ महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमयीश्वरी ॥ ८७ ॥ सैव प्रोक्ता भगवती सच्चिदानंदरूपिणी ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥ ८८ ॥ सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता ॥ पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥ ८९ ॥ सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा ॥ यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता ॥ ९० ॥ सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसंपत्प्रदायिनी ॥ सर्वेश्वरी सर्ववंद्या सर्वेषां पुत्रदायिनी ॥ ९१ ॥

दुर्गाने उनके ही प्रति भक्ति, उनकोआराधना और उनको ही सेवा करके अनुग्रहलाभ किया है और उस अनुग्रहके बलसे ही सच्चिदानंदरूपिणी मूलप्रकृति हुई है ॥ ८८ ॥ वेदमाता देवी सावित्री भी उनके प्रतिभक्ति और उनकी ही सेवाके बलसे चार वेदकी अधिष्ठात्री देवी वेदज्ञा और ब्राह्मणोंकी पूज्य हुई है ॥ ८९ ॥ उनको समस्तविद्याओंकी अधिदेवी, समस्त विद्वन्मण्डलीकी आराध्य और सब विश्वमें पूजित होना केवल प्रकृति देवीकी आराधना और प्रकृति देवीकी उपासनाका फलमात्र है ॥ ९० ॥ उनकी ही आराधनाके बलसे सबकी सम्पद्दात्री

और समस्त ग्रामकी अधिदेवी लक्ष्मी सबकी ईश्वरी सबसे स्तुतिको प्राप्त सर्वज्ञ सर्वदुःखनिवारिणी सबकी वन्दनीय और सबको पुत्रदायिनी हुई हैं ॥ ९१ ॥ दुर्गा श्रीकृष्णके वामाङ्गसम्भूत उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी ॥ ९२ ॥ राधा भी प्रकृतिको उपासनाके बलसे ही सबकी उपासना करनेयोग्य और सर्वज्ञान सम्पन्न हुई हैं मान गौरव और सौभाग्यमें सबसे अधिक हैं॥९३॥ राधिकाका कृष्णकी प्राणेश्वरी होना, कृष्णके निकट आदर और सन्मान लाभ करना श्रीकृष्णके वक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होना और लोकातीत सौन्दर्यशालिनी होकर कृष्णको पतिपाना इन सब बातोंका मूलकारण शक्तिसेवा अर्थात् मूलप्रकृतिकी आराधना है, क्योंकि राधिकाने श्रीकृष्णको पतिलाभ करनेके लिये भारतमें शतशृंग

सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गार्तिनाशिनी ॥ कृष्णवामांससंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता ॥ ९२ ॥ कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया ॥ सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवे ॥९३॥ कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वं प्राप सेवया ॥ तपश्चकार सा पूर्वं शतशृंगे च पर्वते ॥ ९४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च पतिप्राप्त्यर्थमेव च ॥ जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चंद्रकलोपमाम् ॥ ९५ ॥ कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः ॥ वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥ ९६ ॥ मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता च शाश्वती ॥ सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाऽथो गौरवेण च ॥९७॥ त्वं मे श्रेष्ठा न ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम ॥ वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता. पूजिता मया ॥ ९८ ॥

पर्वतपर मूल प्रकृतिको प्रसन्नताके उद्देशसे ॥ ९४ ॥ देव मानके हजार वर्षपर्यन्त घोरतर तपस्या की है फिर शक्तिरूपा मूलप्रकृतिके प्रसन्न होनेपर श्रीकृष्णने राधिकाको शशिकलाके समान देखकर ॥९५॥ स्वयं वक्षःस्थलमें धारणकर करुणायुक्त होकर उनको अनन्य दुर्लभ वर देकर कहा ॥९६॥ हे प्रिये ! तुम मेरे प्रति भक्तिमती होकर सदा मेरे वक्षःस्थलमें वास करो मेरी सब पत्नियोंके मध्य तुम सौभाग्यमें, मानमें, प्रणयमें और गौरवमें सबसे श्रेष्ठ होओ ॥९७॥ तुम आजसे मेरी ज्येष्ठ और श्रेष्ठतमा; पत्नी हुई मैं तुमको सर्वप्रधाना जानकर आदर करूंगा ॥९८॥

हे प्राणवल्लभे ! मैं सदा तुम्हारे वशीभूत और एकान्त आधीन होकर रहूंगा हे मुनिवर ! जगन्नाथ श्रीकृष्णने इस प्रकार कहकर उसको सपत्नीहीन पत्नी बनाकर प्राणप्रिया किया ॥ ९९ ॥ पूर्वमें पंचप्रकृतिके अतिरिक्त संपूर्ण देवियोंकी कथा लिखीगई हैं, उन्होंने भी एक मूलप्रकृतिकी सेवासे सबकी अपेक्षा श्रेष्ठता लाभ की है ॥ १०० ॥ हे मुने! अधिक क्या कहूं जिसकी जसी तपस्या है, वह वैसा ही फल लाभ करता है हे मुनिवर ! भगवती दुर्गा दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त हिमालय पर्वतमें तपस्या ॥ १०१ ॥ और मूलप्रकृतिके चरणकमलोंका ध्यान करके सबकी पूज

सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे ॥ इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः ॥ ९९ ॥ सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम् ॥ अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया ॥ १०० ॥ तपस्तु यादृशं यासां तादृक्तादृक्फलं मुने ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले ॥ १ ॥ दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह ॥ सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गंधमादने ॥ २ ॥ लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववंद्या बभूव सा ॥ लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे ॥ ३ ॥ सर्वसंपत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात् ॥ सावित्री मलये तप्त्वा पूज्या वंद्या बभूव सा ॥ ४ ॥ षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम् ॥ शतमन्वंतरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो ॥ ५ ॥ शतमन्वंतरं चेदं ब्रह्मा शक्तिं जजाप ह ॥ शतमन्वंतरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥ १०६ ॥ दशमन्वंतरं तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः ॥ गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्याऽपि यत्र हि ॥ ७ ॥

नीय हुई हैं देवी सरस्वती गंधमादनपर्वतमें ॥ १०२ ॥ दिव्यलक्ष वर्षतक तपस्या करके सबकी वंदनीय हुई हैं देवी लक्ष्मी दिव्य सौ युग पर्यन्त पुष्करमें तपस्या करके ॥ १०३ ॥ मूलप्रकृतिके प्रसाद—बलसे सबको सम्पद्दात्री हुई हैं देवी सावित्री मलयपर्वतमें ॥ १०४ ॥ दिव्य साठ सहस्र वर्ष पर्यन्त शक्तिकी आराधनासे सबकी पूजनीय और सबकी वन्दनीय हुई हैं हे विभो ! सौ मन्वन्तरतक शिवने तप किया है ॥१०५॥ ब्रह्मा और विष्णु इन्होंने शत मन्वन्तरतक शक्तिकी आराधना करके जगत्का पालकत्व पद लाभ किया है ॥ १०६ ॥ श्रीकृष्णने

दश मन्वन्तरपर्यन्त घोर तपस्या करके गोलोकमें स्थान पाया है और अवतक वहां परमानन्दसे वास करते हैं ॥ १०७ ॥ धर्मदेव दश मन्वन्तरतक भक्तिभावसे शक्तिकी आराधना करके सबके जीवनस्वरूप सबके आराध्य और सबके आधारस्वरूप हुए हैं ॥ १०८ ॥ हे मुनिवर ! इस प्रकार क्या देवीगण, क्या देवगण, क्या मुनिगण, क्या मनुगण, क्या भूपालगण, क्या ब्राह्मणगण सबही शक्तिकी आराधना करके जगत्में पूजनीय हुए हैं ॥ १०९ ॥ हे देवर्षे ! मैंने पूर्वकालमें गुरुके मुखसे वेदविधानानुसार जिस प्रकार सुना है वह सब पूर्वतन वृत्तान्त वर्णन किया अब और क्या सुननेकी वासना है, सो कहो ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दशमन्वंतरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः ॥ सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः ॥ ८ ॥ एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देव्याश्च पूजिताः ॥ मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥ ९ ॥ एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम् ॥ गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे शक्तिप्रादुर्भावे नारदनारायणसंवादेऽष्टमोध्यायः ॥८॥ नारद उवाच ॥ देव्या निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च ॥ तस्य पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥ प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्राऽदृष्टा वसुंधरा॥जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि ॥२॥ वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति॥सृष्टेर्विधान समये साऽऽविर्भूता कथं पुनः॥३॥कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया॥तस्याश्च जन्मकथनं वद मंगलकारणम् ॥ ४ ॥

देवर्षि नारद नारायणसे बोले हे प्रभो ! आपने कहा कि, प्रकृतिदेवीके निमेषमें प्रलय उपस्थित होती है और उस पतनमेंही ब्रह्माण्डका पतन होता है और यह प्रलयही प्राकृतप्रलय है ॥ १ ॥ इस प्रलयमें वसुन्धरा देवी तिरोहित होती है सम्पूर्ण विश्वभी जलमें डूब जाता है और सम्पूर्ण जगत् प्रपंच प्रकृतिके शरीरमें लीन होता है ॥ २ ॥ किन्तु मैं जिज्ञासा करता हूं वसुन्धरा देवी तिरोहित होकर किस स्थानमें अवस्थान करती है और फिर सृष्टिके आरम्भमें वह किस प्रकार किस स्थानसे फिर आविर्भूत होती है ? ॥ ३ ॥ उनके इस प्रकार धन्य,

मान्य, सर्वके आश्रय और विजयप्रद होनेका कारण क्या है ? आप अनुग्रह पूर्वक तनका मंगलनिदान जन्मवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! सबही कहते हैं कि, देवी वसुंधरा सृष्टिके प्रारम्भमें जन्म ग्रहण करती हैं किन्तु वास्तविक मायामयी प्रकृति देवीकी महिमासे उनकीही शक्तिरूपिणी धरणीका कभी आविर्भाव और कभी तिरोभाव होता है अतएव उनकी इच्छानुसारही प्रतिप्रलयमें पृथ्वी एकवार तिरो हित और फिर आविर्भूत होती है ॥ ५ ॥ जो हो, अब मंगलप्रद विघ्नविनाशन पापमोचन और पुण्यवर्द्धक पृथ्वीके जन्मका वृत्तांत वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, मधु और कैटभ दैत्यके मेदसे मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है किंतु वास्तवमें यह बात नहीं है, सम्प्रति; मधुकैटभके मेदसे जो मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है वह विरुद्धमत वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ७ ॥ अतिपूर्वकालमें

श्रीनारायण उवाच ॥ सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म देव्या इति श्रुतिः ॥ आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥ ५ ॥ श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमंगलकारणम् ॥ विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्धनम् ॥ ६ ॥ अहो केचिद्वदंतीति मधुकैटभमेदसा ॥ बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु ॥ ७ ॥ ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा ॥ आवां वध्यौ न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च ॥ ८ ॥ तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा साऽभवत्स्फुटम् ॥ ततो बभूव मेदश्च मरणानंतरं तयोः ॥ ९ ॥

विष्णुके संग मधु और कैटभ नामक दो दैत्योंका घोर युद्ध उपस्थित हुआ उस युद्धमें दोनों दैत्य विष्णुसे संतुष्ट होकर बोले हे "विष्णु ! हम दोनों युद्धमें संतुष्ट हुए हैं, अतएव हमसे वर मांगो" विष्णुने कहा "यदि संतुष्ट हुए हो तो मैं यही वर मांगता हूं कि तुम दोनों मुझसे मारे जाओ" तब दैत्योंने कहा पृथ्वीका जो स्थान जलमें प्लावित न हो अर्थात् जहां जल न हो उस स्थानमें हमारा वध करो" ॥ ८ ॥ इससे स्पष्ट बोध होता है कि, उन दोनों दैत्योंके जीवित कालमें पृथ्वी विद्यमान थी किंतु केवल जलमें निमग्न होकर अदृश्यभावसे अवस्थित थी, नहीं तो "पृथ्वीका जो स्थान जलकीर्ण न हो इस स्थानमें हमारा वध करो" यह बात क्यों कहते ? और केवल मेदसे पृथ्वीकी

उत्पत्तिभी असंभव है क्योंकि शतसूर्य भी मेदको शुष्क करके पृथ्वीको उत्पन्न नहीं कर सकते तो मेदिनीका फलितार्थ यही है कि, विष्णुके अपने उरुदेशके ऊपर स्थापन करके दोनों दैत्योंका विनाश करनेसे उनका जो मेद जलमें गिरा ॥ ९ ॥ और वराहदेवने धराका उद्धार होनेपर उस धराके संग मेदका संश्लेष संबंध उपस्थित होनेके कारण पृथ्वीका नाम मेदिनी हुआ है ॥ १० ॥ अब मैंने पूर्वकालके समय पुष्कर तीर्थमें धर्म देवके मुखसे श्रुतिसम्मत, संगत और मंगलदायक जो मत सुना है वह कहता हूं, सुनो ॥ ११ ॥ जलमें प्रविष्ट महा विराट्का मन सर्वाङ्ग व्यापी होनेसे प्रतिलोममेंही प्रविष्ट हुआ इसके पीछे पञ्चीकरण समयमें जो महापृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, उस महापृथ्वीको खंड

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु ॥ जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः ॥ १० ॥ कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमंगलम् ॥ पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥ ११ ॥ महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् ॥ मनो बभूव कालेन सर्वांगव्यापकं ध्रुवम् ॥ १२ ॥ तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च ॥ कालेन महता पश्चाद्बभूव वसुधा मुने ॥ १३ ॥ प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा ॥ आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता ॥ प्रलये च तिरोभूता जलस्याऽभ्यंतरे स्थिता ॥ १५ ॥ प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ॥ सप्तसागर संयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता ॥ १६ ॥ हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचंद्रार्कसंयुता ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया ॥ १७ ॥

खंड करके प्रत्येक लोममें स्थापन किया इसके अनन्तर खंड खंडमें अवस्थित वह पृथ्वी सृष्टिकालमें एकवार आविर्भूत और प्रलयकालमें तिरोहित हुई ॥ १२ ॥ अतएव महाविराट्के प्रति लोमकूपमें जो मन प्रविष्ट होता है, उस मनसेही बहुत कालके पीछे वसुधाकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥ विराट्रूपी पुरुषके प्रतिलोमकूपमेंही एक एक पृथ्वी विराजमान रहती है केवल वारंवार आविर्भूत और तिरोभूत होना मात्र है ॥ १४ ॥ जब आविर्भूत होती है, तब जलके ऊपर भासमान होती है और जब तिरोभूत होती है, तब जलमें मग्न होती है, ॥ १५ ॥ यह पृथ्वी प्रति विश्वमें ही शैल, कानन, सप्तसागर, सप्तद्वीप ॥ १६ ॥ सुमेरुपर्वत, चन्द्र सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा विष्णु शिवादि सुरलोक ॥ १७ ॥

संपूर्ण पुण्यतीर्थ, पवित्र भारतवर्ष काञ्चनीभूमि, सप्तस्वर्ग॥ १८॥ अधोभागमें सप्तपाताल, ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोक और ध्रुवलोक संयुक्त होकर स्थिति करते हैं इस प्रकार संपूर्ण पदार्थ संयुक्त एक एक भूमण्डल एक एक विश्व है ॥ १९ ॥ प्रतिभूमण्डलमें ही पूर्वोक्त नियमसे विश्व विरचित होता है सुतरां विश्वमात्रही कृत्रिम और नश्वर है ॥ २० ॥ जब प्राकृत प्रलय उपस्थित होकर ब्रह्माका पतन होता है और जब आदि सृष्टिका प्रारंभ होता है तब परमात्मा रूपी श्रीकृष्णसे ही महाविराट्की उत्पत्ति होती है ॥ २१ ॥ सृष्टि, स्थिति, प्रलय, काल और ब्रह्मादि समस्तही प्रवाहरूपसे

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता ॥ कांचनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता ॥ १८ ॥ पातालसप्तं तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः ॥ ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै ॥ १९ ॥ एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च ॥ नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै ॥ २० ॥ प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने ॥ महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना ॥ २१ ॥ नित्यौ च स्थितिप्रलयौ काष्ठाकालेश्वरैः सह ॥ नित्याऽधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः ॥ २२ ॥ मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गंधर्वादिभिरेव च ॥ विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता ॥ २३ ॥ तत्पुत्रो मंगलो ज्ञेयो घटेशो मंगलात्मजः ॥ नारद उवाच ॥ पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही ॥ २४ ॥ वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥ मूलप्रकृतिसंभूता पंचीकरणमार्गतः ॥ २५ ॥ तस्याः पूजाविधानं चाऽप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः ॥ मंगलं मंगलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो ॥ २६ ॥

नित्य हैं वराहकल्पमें सुरगण ॥ २२ ॥ मुनिगण, मनुगण, विप्रगण और गंधर्वादि द्वारा जो वसुंधरा पूजित होती है, यह भी प्रवाहरूपसे नित्य है श्रुतिमें कहा है कि; धरा वराह रूपधारी विष्णुकी पत्नी है ॥ २३ ॥ मंगल उस धराका पुत्र और मंगलके पुत्र घटेश हैं देवर्षिनारदने कहा हे भगवन्! वराहकल्पमें वाराही नामक प्रसिद्ध, भूमि देवताओंने किसरूपमें पूजी ॥ २४ ॥ सचेतन और अचेतन सम्पूर्ण पदार्थोंकी आश्रयस्थानीय सुरपूजिता यह पृथ्वी पंचीकरण प्रथानुसार किस प्रकार मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ भूलोकमें और स्वर्लोकमें उसकी पूजापद्धति

किस प्रकार है और मंगलकी भी मंगलजनक अर्थात् अत्यन्त पावन उस पृथ्वीका विस्तार किस प्रकार है और जन्मवृत्तान्त किस प्रकार है, यह विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारायणने कहा वराहदेव पूर्वकालके समय वाराह कल्पमें ब्रह्माजीके स्तुति करनेसे हिरण्याक्ष दैत्यको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल लाये ॥ २७ ॥ फिर हृदयमें जिस प्रकार पद्मपत्र भासमान होता है, इसी प्रकार पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया इस ओर ब्रह्माजीने उसी अवसरमें उस धरापृष्ठमें अत्यन्त मनोहर विश्व संसार रचा ॥२८॥ इसी समय करोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त वराहरूपी भगवान हरि पृथ्वीकी अधिदेवीको रूपवती और अनुरागवती देखकर ॥ २९ ॥ स्वयं मनोहरमूर्त्ति रमणोपयोगी वेष किया अनन्तर

नारायण उवाच ॥ वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा ॥ उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥ २७ ॥ जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे ॥ तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम् ॥२८॥ दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः ॥ वाराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २९ ॥ कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम् ॥ क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥३०॥ सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुंदरी ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमोऽतिसुखप्रदः ॥ ३१ ॥ विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥ वर्षांते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥ ३२ ॥ पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया पूजां चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥ ३३ ॥

देवमानके एक वर्ष पर्यन्त दिनरात दोनोंने रतिक्रिया की ॥३०॥ सुन्दरी धरा संभोग सुखसे एकवारही मूर्च्छित होगई, क्योंकि रसिकाके संग रसिकका समागम अत्यन्त सुखजनक है ॥३१॥ इधर विष्णु भी धराके अंगस्पर्शजनित सुखसे अत्यन्त अभिभूत हुए यही क्या ? दिनरात्रि उनसे किस ओर होकर बीत गये थे कुछ न जानपडे पूर्ण एकवर्ष बीतनेपर समागम सुखके अन्तमें पूर्ववत् बोधका विकास हुआ, तब कामुक और कामुकी दोनोंमें पृथक् हुए ॥३२॥ श्रीहरिने पुनर्वार लीलापूर्वकही पूर्ववत् वराहरूप धारण किया और उस सती धरणीकी पूजा की ॥३३॥

और धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और अन्यान्य अनेक प्रकारकी सामग्रीसे उसकी पूजा करके कहा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे शुभे! तुम सम्पूर्ण पदार्थोंका आधार होओ मुनिगण, मनुगण, देवगण, सिद्धगण और दानवादि सम्पूर्ण स्वच्छन्दतासे तुम्हारी अर्चना करैं ॥३५॥ मैं कहता हूं, अम्बुवाची[1] त्यागके दिन और इसके अतिरिक्त गृहारंभ, गृहप्रवेश वापी वा तालाव इत्यादि खोदने एवं कृषि कार्यके प्रारंभ दिनमें ॥ ३६ ॥ सबही तुम्हारी पूजा करेंगे जो मूढ तुम्हारी पूजासे विमुख होंगे वह निःसन्देह नरकवास करेंगे ॥३७॥ वसुन्धराने कहा हे प्रभो! मैं आपकी आज्ञानुसार वाराही मूर्ति धारण करके लीला पूर्वकही स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वको पीठपर वहन करूंगी ॥३८॥

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिंदूरैरनुलेपनैः ॥ वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥३४॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सुखम् ॥ मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः ॥ ३५ ॥ अंबुवाचीत्यागदिने गृहारंभे प्रवेशने ॥ वापीतडागारंभे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥ तव पूजां करिष्यंति मद्वरेण सुरादयः॥ मूढा ये न करिष्यंति यास्यंति नरकं च ते ॥३७॥ वसुधोवाच ॥ वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया ॥ लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम् ॥३८॥ मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिंगं शिवां तथा ॥ शंखं प्रदीपं यंत्रं च माणिक्यं हीरकं तथा॥३९॥यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम् ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम् ॥४०॥ गोरोचनं चन्दनं च शालग्रामजलं तथा ॥ एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु ॥४१॥

किन्तु मोती, सीपी, शालग्राम, शिवलिंग, देवी प्रतिमा, शंख, प्रदीपयंत्र, माणिक्य, हीरक ॥३९॥ यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीपत्र, जपमाला, पुष्पमाला, सुवर्ण, कपूर, ॥ ४० ॥ गोरोचन, चन्दन और शालग्राम शिलाका जल यह सब किसी प्रकार वहन नहीं कर सकूंगी इन सबको वहन करनेसे मेरे कष्टकी सीमा नहीं रहेगी अर्थात् यह वस्तु किसी आधारपर धरो ॥४१॥

[1] आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें पृथ्वी रजस्वला होती है उस दिनको त्यागना चाहिये यही अम्बुवाची है। तीन दिनतक रजस्वला जाननी।

भगवान् नारायणने कहा हे सुन्दरी! जो मूढ पापात्मा लोग तुम्हारी पीठपर यह सब द्रव्य स्थापन करेंगे, वह दिव्य शतवर्ष पर्यन्त कालसूत्र (नरकविशेष) में गमन करेंगे ॥ ४२ ॥ हे वत्सनारद! भगवान् नारायण धरासे इस प्रकार कहकर मौन होगये इस ओर पूर्वसंभोगके कारण धराके गर्भसे तेजस्वी मंगल ग्रह उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ श्रीहरिकी आज्ञानुसार सबही काण्वशाखोक्त ध्यानसे धराकी पूजा करके स्तवपाठ करने लगे ॥ ४४ ॥ मूलमंत्रसे नैवेद्य इत्यादि समस्त द्रव्य देने लगे त्रैलोक्यमें सर्वत्रही उनका स्तव और पूजा चल निकली ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले हे भगवन्! वसुन्धराका ध्यान स्तव और मूलमंत्र पुराणोंमें अति गूढ है, अतएव उसको सुननेके

श्रीभगवानुवाच ॥ द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यंति सुन्दरि ॥ यास्यंति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥ ४२ ॥ इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद ॥ बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मंगलग्रहः ॥ ४३ ॥ पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाऽऽज्ञया हरेः ॥ कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुश्च स्तवेन ते ॥४४॥ ददुर्मूलेन मंत्रेण नैवेद्यादिकमेव च ॥ संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमंत्रं च किं वद ॥ गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ४६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता ॥ ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी तदा ॥ ४७ ॥ ततः सर्वैं र्मुनींद्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः॥ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद॥४८॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण विष्णुना पूजिता पुरा ॥ श्वेतपंकजवर्णाभां शरच्चंद्रनिभाननाम् ॥ ४९ ॥

लिये मुझको बड़ा कौतूहल उपस्थित हुआ है अनुग्रहपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स! सबसे पहिले वराह देवके पृथ्वीकी पूजा करनेपर फिर ब्रह्माने उनकी पुजा की ॥ ४७ ॥ ब्रह्माकी पूजाके पीछे समस्त मुनीन्द्र समस्त मनु और मनुष्यादि सबने पृथ्वीकी पूजा आरम्भ की है अब देवीका ध्यान स्तव और मंत्र कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा" इस मूलमंत्रसे पृथ्वीकी पूजा की थी इसके उपरान्त फिर "हे देविधरे" तुम्हारा वर्ण श्वेतसरोज (कमल) के समान है,

तुहारा मुखमण्डल शरदके चन्द्रमाके समान है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा सर्वाङ्ग चदनादिलेपनसे संपूर्ण लिप्त है तुम्हारा शरीर रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित है, तुम सब रत्नोंका आधार हो, तुम्हारेही गर्भमें समस्त रत्न निहित हैं तुम्हीं रत्नाकरमें व्याप्त हो ॥ ५० ॥ तुम्हीं अग्निपरीक्षित (वस्त्र) पहरे रहती हो हे स्मिताननें तेम तीनों लोकोंसे जित हो, अतएव मैं तुम्हारी भजना करता हूं इस ध्यानसे सभी भूमिकी पूजा करने लगे ॥ ५१ ॥ नारायणने कहा हे द्विजेन्द्र! अब काण्व शाखामें पृथ्वीका जिसप्रकार स्तव निर्दिष्ट हुआ है सो कहता हूं सुनो " हे जयजये! हे जलाधारे! हे जलशीले! हे जयप्रदे! ॥ ५२ ॥ हे यज्ञवराहपत्नि! हे जयावहे! तुम मुझको जयप्रदान करो हे मङ्गले! हे

चन्दनोक्षितसर्वांगीं रत्नभूषणभूषिताम् ॥ रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् ॥ ५० ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वंदितां भजे ॥ ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताऽभवत् ॥ ५१ ॥ स्तवनं शृणु विप्रेंद्र कण्वशाखोक्तमेव च ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जय जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे ॥ ५२ ॥ यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे ॥ मंगले मंगलाधारे मंगल्ये मांगलप्रदे ॥ ५३ ॥ मंगलार्थं मंगलेशे मंगलं देहि मे भवे ॥ सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि ॥५५॥ पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे ॥ सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे ॥ ५६ ॥

मङ्गलाधारे! हे माङ्गल्ये! हे मङ्गलप्रदे! ॥ ५३ ॥ तुम मंगलप्रदानके लिये मंगलकी अधीश्वरी हुई हो, अतएव इस संसारमें मुझको मंगलप्रदान करो हे सर्वाधारे! हे सर्वज्ञे! हे सर्वशक्तिसमन्विते! ॥५४॥ हे सर्वकामप्रदे! हे देवि पृथिवि! तुम इस संसारमें मुझको वांछित फलप्रदान करो हे पुण्यस्वरूपे! हे समस्त पुण्यबीजरूपे! हे सनातनि!॥५५॥ हे पुण्याश्रये! तुम संपूर्ण पुण्यवान् पुरुषोंकी स्थानस्वरूप हो, इस संसारमें तुमसबको पुण्यप्रदान करती हो, तुम्हीं सम्पूर्ण सस्य (धान्य) का आलय और तुम्हीं सब प्रकारके शस्य धनमें धनवती हो, तुम्ही सबको सब प्रकारका सस्यप्रदान

करती हो ॥५६॥ इस संसारमें तुम्हीं एक समय समस्त सस्य करती हो और फिर एक समयमें अनेक प्रकारका सस्य उत्पन्न करती हो हे भूमे ! तुम्हीं भूमिपतियोंकी सर्वस्व स्वरूप हो ॥ ५७ ॥ उनको श्रेष्ठतम आश्रयस्वरूप और सुखस्वरूप हो, अतएव हे भूमिदे ! तुम मुझे भूमिदान करो" हे वत्स ! पृथ्वीका यह स्तोत्र अतीव पुण्यप्रद है, अधिक क्या प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर जो इस भूमिस्तोत्रको पढते हैं ॥ ५८ ॥ वह करोड २ जन्ममें सार्वभौम राजा होकर काल व्यतीत कर सकते हैं मनुष्यगण इसको पाठ करके भूमिदानके पुण्यलाभ करनेमें अधिकारी होते हैं ॥५९॥ यदि कोई भूमिदान करके उसको फेरले, जो अम्बुवाची दिनमें भुमिखनन करता है ॥६०॥ जो विना अनुमतिके दूसरेके बनाये

सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भवे॥भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे ॥५७॥ भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥५८॥कोटिजन्मसु स भवेद्बलवान्भूमिपेश्वरः॥भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः ॥५९॥ भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ अंबुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ॥ ६० ॥ अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ॥ परभूमिहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥६१॥ भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात् ॥ पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने ॥६२॥ अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥६३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कूपमें कूपखनन करता है, जो पराई भूमि हरण करता है ॥६१॥ जो भूमिमें वीर्यपात करता है जो भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करता है, तो वह निःसन्देह इस स्तोत्रका पाठ करनेपर अपने २ किये पातकसे छूट जाता है ॥ ६२ ॥ इसके पढनेसे सौ अश्वमेधके समान पुण्यलाभ होता है इसमें संशय नहीं वास्तवमें देवी धरणीका यह स्तोत्र सब प्रकारके कल्याणका आकरस्वरूप है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले हे वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य! दूसरेकी भूमिका हरण, दूसरेके कूपमें कूपखनन ॥ १ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन, पृथ्वीपर वीर्यत्याग, भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन ॥ २ ॥ वा पृथ्वीपर अन्यप्रकारका असदाचरण करनेसे जिस प्रकार पापका स्पर्श होता है, सो कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे उसका प्रतीकार होता है यह सुननेकी अभिलाषा है, कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे वत्स नारद ! इस भारतमें जो कोई एक वितस्त भूमि त्रिसंध्या करनेवाले ब्राह्मणको देता है, तो उसका शिवलोकमें वास होता है ॥ ४ ॥ धान्यपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणको दान करनेसे दाता अन्तकालमें भूमि रेणुपरिमित समयतक विष्णुलोकमें वास करता है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको ग्रामदान

नारद उवाच ॥ भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च ॥ परभूहरणात्पापं कूपेऽन्धोः खनने तथा ॥ १ ॥ अंबुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च ॥ दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥ २ ॥ अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम् ॥ यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वितस्तिमात्रां भूमिं च यो ददाति च भारते ॥ संध्यपूताय विप्राय स याति शिवमंदिरम् ॥ ४ ॥ भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति च ॥ भूमिरेणुप्रमाणाब्दमंते विष्णुपदे स्थितिः ॥५॥ ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरस्थितौ ॥ ६ ॥ भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते ॥ स च प्रयाति वैकुंठे मित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः ॥ स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥८॥ तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः ॥ पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च रौरवम् ॥ ९ ॥

भूमिदान और धान्यदान करनेसे दाता और प्रतिगृहीता दोनोंही पापसे छूटकर देवीलोकमें जाते हैं ॥ ६ ॥ अधिक क्या यदि कोई सज्जन भूमिदानके प्रसंगमें स्थित होकर दाताका प्रवृत्ति करै तो वह भी अन्तमें मित्र बांधवोंके सहित वैकुण्ठधाममें गमन करते हैं ॥ ७ ॥ अपनी दी हुई हो वा पराई दी हुई हो ब्रह्मवृत्ति हरण करनेसे जबतक जगत्में चन्द्र सूर्य प्रकाशमान रहेंगे, तबतक उसको कालसूत्र नामक नरकमें वास करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ यही नहीं, बरन् उसके पुत्र पौत्रादितकको भी भूमिहीन श्रीहीन पुत्रहीन और धनहीन हो घोरतर रौरवनर

कमें वास करना होगा ॥ ९ ॥ ग्रामके प्रान्तभागमें गोप्रचार[1] स्थानकी रक्षा करनी चाहिये, यही शास्त्रका शासन है किन्तु यदि कोई उस गोप्रचार भूमिको कर्षण करके, उस भूमिजातधान्यादिसे पुण्यसंचय वा उसको ब्राह्मणके निमित्त ही देदे तो उसका पुण्यसंचय करना तो दूर रहै, वरन् वह दिव्य शतवर्ष पर्यन्त कुंभीपाक नामक नरकमें वास करता है ॥ १० ॥ गोठ वा तालावादि नष्ट करके जो उसमें धान्यादि उत्पन्न करता है, उसको भी चौदह इन्द्रपात होनेके समयतक असिपत्र नामक नरकमें वास करना पड़ता है ॥ ११ ॥ अन्य निर्मित पुष्करणी इत्यादिमें स्नान करनेके समय पांच मिट्टीकी डली उठा करके स्नान करना चाहिये किन्तु कोई यदि ऐसा न करके स्नान करत

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति च ॥ दिव्यवर्षशतं चैव कुंभीपाके च तिष्ठति ॥ १० ॥ गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गं सस्यं ददाति यः ॥ स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ११ ॥ पंच पिंडाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः ॥ प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च ॥ १२ ॥ कामी भूमौ च रहसि वीर्यत्यागं करोति यः ॥ भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥ १३ ॥ अंबुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः ॥ स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥१४॥ परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः ॥ पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः ॥१५॥ सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुंडं व्रजेच्च सः ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥

है उसको स्नानका फललाभ होना तो दूर रहे, वरन् उसको नरकवासका आश्रय ग्रहण करना होता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष कामके वशीभूत होकर किसी प्रकारकी निर्जन भूमिमें वीर्यपात करता है, तो उसको वहांकी भूमिकी रेणुका परिमित वर्षपर्यंत नरकका दुःख भोगना पड़ता है ॥ १३ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करनेसे चार युगपर्यंत कृमिदंश नामक नरकमें काल व्यतीत करना पडता है॥ १४ ॥ जो मूढ पुरुष कूप बनानेवालेकी वा जलाशयदाताकी विना अनुमतिलिये लुप्तकूपका वा लुप्तजलाशयका पंकोद्धार करता है ॥ १५ ॥ तो उसका कुछ भी फलोदय नहीं होता, वरन् पूर्व स्वामीको ही पुण्यलाभ होता है अधिकतर उस मूर्खको तप्तकुंड नरकमें जाकर चौदह इंद्रके समयपर्यंत वहां वास

१ जहां गौ चरा करती हैं उस स्थानको गोप्रचार कहते हैं।

करना पडता है ॥१६॥ दूसरेके सरोवरके जलमें स्नान करनेके समय पांच डली उठा करके स्नान करनेसे उन गुटिकाकी रेणु परिमितकाल स्नान करनेवाला ब्रह्म- लोकमें वास करता है ॥ १७॥ पिता और पितामहादिके श्राद्धमें भूस्वामीको पिंड अर्थात कोई खाद्य वस्तु विना दिये श्राद्ध करनेसे उस मूढ श्राद्ध करनेवालेको निःसन्देह नरक में वास करना पड़ता है ॥ १८ ॥ विना आधार भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करनेसे सात जन्मतक अंधा और जन्मान्तरमें कुष्ठ रोगसे आक्रान्त होता है ॥ १९ ॥ मोती, मूंगा, हीरा, सुवर्ण, मणि इन पांच रत्नको भी भूमिमें

परकीये तडागे च पंकमुद्धृत्य चोन्मृजेत् ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥ १७ ॥ पिंडं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः॥ श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥ १८ ॥ भूमौ दीपं योऽर्पयति स चांधः सप्तजन्मसु ॥ भूमौ शंखं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मांतरे लभेत् ॥ १९ ॥ मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णरौ च मणिं तथा ॥ पंच संस्थापयेद्भूमौ स चांधः सप्त जन्मसु ॥ २० ॥ शिवलिंगं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले ॥ शतमन्वंतरं यावत्कृमिभक्षस्स तिष्ठति ॥ २१ ॥ शंखं यंत्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम् ॥ यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम् ॥ २२ ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा ॥ यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥ २३ ॥ भूमौ चंदनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम् ॥ संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वंतरावधि ॥ २४ ॥

स्थापन करनेसे स्थापन करनेवाला अंधा होता है ॥ २० ॥ शिवलिंग, शिवाकी प्रतिमूर्ति और शालग्राम शिला भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको शतमन्वन्तरतक कृमिभक्षक होकर वास करना पडता है ॥ २१ ॥ शंख यंत्र शिलाजल अर्थात् चरणामृत पुष्प और तुलसी पत्र भूमिमें स्थापन करनेसे निःसन्देह नरकवास प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जयमाला, पुष्पमाला, गोरोचन और कपुर भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको निःसन्देह घोरतर नरककी यंत्रणा भोगनी पडती है ॥ २३ ॥ चन्दन काष्ठ रुद्राक्षमाला और कुशमूल पृथ्वीमें स्थापन

करनेसे एक मन्वन्तर पर्यन्त नरकमें वास होता है ॥ २४ ॥ पुस्तक और यज्ञ सूत्र भूमिपर स्थापन करनेसे फिर उसको ब्राह्मणके कुलमें जन्म नहीं मिलता ॥ २५ ॥ वरन् उसको ब्रह्महत्याके समान पातकमें लिप्त होना पडता है ग्रंथियुक्त यज्ञसूत्र सब वर्णोंको पूज्य है ॥२६॥ यज्ञकार्य समापनके पीछे जो पुरुष दूध दहीसे पृथ्वीका अर्थात् यज्ञ भूमिका अभिषेक नहीं करता उसको सात जन्मतक संतप्त होकर तप्त भूमिमें वास करना पडता है ॥ २७ ॥ भूकम्प वा ग्रहणके समय जो मिट्टी खोदता है वह महापापी जन्मान्तरमें अंगहीन होता है ॥ २८ ॥ हे मुनिवर ! यह

पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः॥न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मांतरे जनिः ॥२५॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् ॥ ग्रंथियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः ॥ २६ ॥ यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिंचति ॥ स याति तप्तभूमिं च संतप्तः सप्त जन्मसु ॥२७॥ भूकंपे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः ॥जन्मांतरे महापापो ह्यंगहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥२८॥ भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता ॥ काश्यपी कश्यपस्येयमचलास्थिररूपतः ॥ २९ ॥ विश्वंभरा धारणाच्चानंतानंतस्वरूपतः ॥ पृथिवी पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् ॥ गंगापाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥ १ ॥ भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी ॥ विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च ॥ २ ॥

पृथ्वी सबका भवन होनेके कारण भूमि कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी स्थिर रूप होनेसे अचला ॥२९॥ संपूर्ण विश्वको धारण करनेके कारण विश्वम्भरा अनन्त विस्तार होनेसे अनन्ता और पृथुराजकी कन्या वा बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वी नामसे अभिहित हुई है ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ देवर्षि नारदने कहा हे वेदविदाम्वर ! अत्यन्त मनोहर पृथ्वीका उपाख्यान सुना अब गंगाका उपाख्यान सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ पूर्वमें सुना है कि सुरेश्वरी विष्णु स्वरूपिणी विष्णुपादोद्भवा गंगा भारतीके

शापसे भारतमें गई ॥ २ ॥ किंतु उनके भारतमें जानेका कारण क्या है! किस युगमें किसकी प्रार्थनासे वह भारतवर्षमें गई ? हे प्रभो! वही पापनाशक पुण्यप्रद शुभवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले हे वत्स ! पूर्वकालके समय सूर्यवंशमें सगर नामक श्रीमान् एक राजराजेश्वरने जन्म लिया था उनकी परमरूपवती दो भार्या थीं, तिनमें एकका नाम वैदर्भी और दूसरीका नाम शैब्या था ॥ ४ ॥ शैब्याके गर्भसे नरपतिके वंशधर अतिरूपवान् एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया इस पुत्रका नाम असमञ्जस था ॥ ५ ॥ इस और दूसरी रानी वैदर्भी पुत्रकी इच्छासे श्रीशंकरकी आराधना करने लगी भगवान् भूतनाथके प्रसन्न होकर वरदेनेसे वैदर्भी भी गर्भवती हुई ॥ ६ ॥ अनन्तर शतवर्ष गर्भ धारणके

कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा ॥ तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः ॥ तस्य भार्या च वैदर्भी शैब्या च द्वे मनोहरे ॥ ४ ॥ तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः ॥ असमंज इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्धनः ॥ ५ ॥ अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी ॥ बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह ॥ ६ ॥ गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिंडं सुषाव सा ॥ तद्दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ ७ ॥ शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह ॥ चकार संविभज्यैतत्पिंडं षष्टिसहस्रधा ॥ ८ ॥ सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ९ ॥ कपिलस्य मुनेः शापाद्बभूवुर्भस्मसाच्च ते ॥ राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने ॥ १० ॥

पीछे उसने एक मांसका पिंड प्रसव किया यह देख कर राजपत्नी अत्यन्त दुःखितमनसे महादेवकी शरणागत हो उच्चस्वरसे वारंवार रोदन करने लगी ॥ ७ ॥ तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणके वेषमें वहां उपस्थित होकर उस मांसपिंडको सहस्र खंडमें विभक्त किया ॥ ८ ॥ वह सहस्रखंड महाबलपराक्रान्त पुत्ररूपमें परिणत हुए अधिक क्या ? उन कुमारोंके शरीरकी प्रभा ग्रीष्म कालके मध्याह्न सूर्यकी प्रभासे भी अधिक उज्ज्वल थी ॥ ९ ॥ किन्तु संपूर्ण कुमारोंके कपिलमुनिके शापसे भस्म होनेपर राजाने अत्यन्त रुदन करते करते निबिड़ वनमें

१ सगरके यज्ञ करनेपर इन्द्रने घोडा हरणकर कपिलजीके समीप जा रक्खा यह राजकुमार उसको खोजने गये वहां पाय कपिलजीको दुर्वचन कहनेसे उनके कोपानलमें भस्म हुए असमंजसकी प्रार्थनासे गंगासे उद्धार होगा यह मुनिने कहा ना० पु०

प्रवेश किया ॥ १० ॥ इधर असमंजस-गंगाको लानेके लिये घोरतर तपस्या करने लगे क्रमानुसार लाख वर्ष बीतनेपर उन्होंने कालके वशीभूत होकर देह त्याग दिया ॥ ११ ॥ फिर उनके पुत्र अंशुमान् गंगाको लानेके लिये लक्षवर्ष पर्यंत कठोर तपस्या करके कालकवलमें पतित हुए ॥ १२ ॥ इसके उपरांत अंशुमान्‌के पुत्र भगवद्भक्त परम वैष्णव अजर अमर अशेष गुणोंकी खान बुद्धिमान् भगीरथने ॥१३॥ गंगाको लानेकेलिये एक लक्षवर्ष पर्यंत तपस्या की अन्तमें करोड़ ग्रीष्मके सूर्यके समान प्रभायुक्त श्रीकृष्णने उनको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ उन किशोर मूर्ति गोपवेषधारी द्विभुज श्रीकृष्णके हाथमें मुरली विराजमान थी और उनका वह गोपाल सुन्दरीरूप देखनेसे बोध होता था मानों भक्तोंके प्रति अनुग्रह

तपश्चकारासमंजो गंगानयनकारणात् ॥ लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः ॥११॥ अंशुमांस्तस्य तनयो गंगानयनकारणात् ॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥ भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः ॥ वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१३॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणात् ॥ ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१४॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम् ॥ गोपालसुंदरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥ १६ ॥ निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १७ ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१८॥ लीलया च वरं प्राप वांछितं वंशतारणम् ॥ कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकांकितविग्रहः ॥ १९ ॥

प्रकाश करनेके लिये ही सर्वदा उन्मुख रहते हैं ॥ १५ ॥ वह स्वेच्छामय परब्रह्म हैं उनकी अपूर्णता नहीं है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि देवता तथा मुनि इत्यादि सभी उन विभुका स्तव करते रहते हैं ॥ १६ ॥ वह किसीमें लिप्त नहीं हैं और सबके साक्षीरूपसे अवस्थान करते हैं वह तीनों गुणोंसे अतीत और प्रकृतिसे भी अतीत पदार्थ हैं कुछेक हास्यसे उनका मुखमंडल सदाही प्रफुल्ल है भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा और कोई नहीं है ॥१७॥ उनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध अंशुक और सर्वाङ्ग रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित था। राजाभगीरथ उस अपूर्व मूर्तिका दर्शन करके प्रणामपूर्वक वारंवार स्तव करने लगे ॥ १८ ॥ उनका सर्वाङ्ग पुलकावलीसे पूर्ण हो गया अनन्तर

उन्होंने स्वच्छन्दतासे अपने वंशका तारनेवाला अभिमत वर लाभ किया ॥ १९ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने गङ्गासे कहा हे सुरेश्वरि ! सरस्वतीके शापसे तुम शीघ्र भारतमें अवतीर्ण होओ, मेरे कहनेके अनुसार तुम शीघ्र जाकर सगर-सन्तानका उद्धार करो ॥ २० ॥ वह सलिल कणवाही वायुके स्पर्शसे पवित्र हो, मेरे समान मूर्ति धारणकर दिव्य विमानमें चढ़ मेरे भवनमें आवेंगे ॥ २१ ॥ और निरन्तर वहां मेरे पार्षद होकर वास करेंगे और उनको जन्म जन्मान्तर कृतपातकमें लिप्त होना नहीं पडेगा ॥ २२ ॥ हे वत्सनारद ! वेदमें इस प्रकार वर्णित हुआ है कि मनुष्यगण भारतमें जन्म ग्रहण करके यदि करोड करोड जन्म पापाचरण करें तो भी एक गङ्गाके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे

श्रीभगवानुवाच ॥ भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥ सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया ॥२०॥ त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यंति मम मंदिरम् ॥ बिभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यंदनगामिनः ॥ २१ ॥ मत्पार्षदा भविष्यंति सर्वकालं निरामयाः ॥ समुच्छिद्य कर्मभोगान्कृताञ्जन्मनिजन्मनि ॥ २२ ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः ॥ गंगाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ २३ ॥ स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ॥ मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् ॥ २४ ॥ शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ २५ ॥ जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति मौसलस्नानतो नृणाम् ॥ २६ ॥ पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदंति च ॥ किंचिद्वदंति ते विप्र फलमेव यथागमम् ॥ २७ ॥

वह सब ध्वंस हो जाते हैं ॥ २३ ॥ गङ्गाजीके दर्शन और गंगाजलके स्पर्शसे दशगुणा पुण्य होता है मनुष्य सामान्य दिनमें जो संकल्प रहित विधिहीन स्नान करता है गंगासलिल कणवाहि वायुसेवनकी अपेक्षा दशगुण पुण्यलाभ होता है ॥ २४ ॥ विशेषकर गंगाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र पापसे छूट जाता है वेदसे जाना गया है कि विधिपूर्वक गंगास्नान करनेपर भी शतकोटि जन्मजनित जो ब्रह्महत्यादि पातक हैं ॥ २५ ॥ ज्ञानकृत हों वा अज्ञानकृत हों जन्मपर्यंतके किये समस्त पातक विधिपूर्वक स्नानसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २६ ॥ पुण्य दिनमें

स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है, उसका वर्णन करनेकी वेदमें भी सामर्थ्य नहीं है, तो वेदमें जो कुछ वर्णन किया गया है वह अति सामान्य है ॥२७॥ अधिक क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेवादि देवतागण भी गंगास्नानकी प्रकृत महिमा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं हे विप्रवर ! यह तो साधारण दैनिक (नित्य) गंगास्नानका माहात्म्य है अब संकल्पजनित स्नानका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ २८ ॥ साधारण दैनिक स्नानसे जो फल लाभ होता है संकल्पपूर्वक गंगास्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य लाभ होता है और यदि सूर्यके संक्रमण दिनमें अर्थात् संक्रांतिके दिन गंगास्नान किया गया तो उसकी अपेक्षा तीस गुणा पुण्य बढता है ॥ २९ ॥ अमावस्याके दिनमें गंगास्नान करनेसे

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदंति च ॥ सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुंदरि ॥ २८ ॥ पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् ॥ ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥२९॥ अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ॥३०॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं पुण्यमेव च ॥ अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम्॥३१॥ असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥ सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम् ॥३२॥ मन्वंतराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च ॥ माघस्यासितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च ॥३३॥ अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः ॥ ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नंदायां तव दुर्लभम्॥३४॥

पूर्ववत् फल लाभ होता है किंतु दक्षिणायन स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दूना और उत्तरायणमें स्नान करनेसे पूर्वकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य संचय होता है ॥३०॥ चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षयनवमी वा तृतीयामें गंगा स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है उसकी सीमा नहीं है॥३१॥ और पूर्वोक्त पर्ववाले दिनमें स्नान और दान इन दोनों प्रकारके कार्योंका अनुष्ठान होनेसे पुण्य फललाभकी सीमा नहीं रहती प्रात्याहिक स्नानकी अपेक्षा दानसे शतगुणा पुण्य लाभ होता है ॥३२॥ मन्वन्तरा तिथि युगाद्या माघमासकी शुक्ला सप्तमी भीष्माष्टमी ॥ ३३ ॥ अशोकाष्टमी और श्रीराम नवमीके दिन गंगास्नान करनेसे महापुण्य लाभ होता है और नन्दास्नानसे उसकी अपेक्षा दूना पुण्य संचय होता है ॥ ३४ ॥

दशहरा दशमीमें स्नान करनेसे युगाद्या स्नानके तुल्य फल होता है और यदि महानन्दा अथवा महावारुणीमें गंगास्नान किया जाय तो पूर्वकी अपेक्षा चतुर्गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३५ ॥ महा महा वारुणीमें स्नान करनेसे साधारण गंगास्नानकी अपेक्षा करोड गुणा पुण्य लाभ होता है ॥३६॥ चन्द्रग्रहणके समयमें स्नानकी अपेक्षा सूर्यग्रहणमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य लाभ होता है किंतु अर्द्धोदययोगमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुणा पुण्य लाभ होता ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! जब देवेश हरि गंगा और भगीरथके सन्मुख इस प्रकार कहरक मौन हुए तब देवी गंगाने भक्तिपूर्वक कन्धे झुकाय उनसे कहा ॥ ३८ ॥ गंगा बोली हे नाथ ! यदि पूर्व विहित सरस्वतीके शापसे

दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम् ॥ नंदासमं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥ ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥ पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत् ॥ ३६ ॥ चंद्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ॥ पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः ॥ तमुवाच ततो गंगा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ ३८ ॥ गंगोवाच ॥ यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा ॥ तवाज्ञया च राजेंद्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ दास्यंति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च ॥ तानि मे केन नश्यंति तमुपायं वद प्रभो ॥ ४० ॥ कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते ॥ कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४१॥ ममान्यद्वांछितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित् ॥ सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥४२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामि वांछितं गंगे तव सर्वं सुरेश्वरारि ॥ पतिस्ते द्रवरूपाया लवणोदो भविष्यति ॥ ४३ ॥

और आपकी आज्ञासे अवश्य ही मुझको भारतमें जाना होगा ॥ ३९ ॥ तो पापी मनुष्य मेरे जलमें जो पापमल धोवेंगे मैं किस प्रकार उनसे छुटकारा पाऊंगी ? इसका उपाय बताइये ॥ ४० ॥ और कितने समय तक मुझको भारतमें रहना होगा कितने दिनोंके पीछे मैं आपके परम पदको प्राप्त हूंगी ॥ ४१ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वज्ञ ! हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त मेरे मनकी जो वांछा है वह आपसे छिपी नहीं है, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, अतएव अनुग्रह करके समस्त विषयका उपाय बताइये ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीहरिने कहा हे सुरेश्वरीगंगे ! मैंने तुम्हारे

हृदयका भाव समझ लिया है, कुछ चिन्ता नहीं तुम्हारी जलमयी मूर्ति धारण करनेसे लवणोदधि तुम्हारे पति होंगे ॥ ४३ ॥ वह भी मेरे अंशस्वरूप और तुम भी लक्ष्मीस्वरूपिणी हो, अतएव भूलोकमें रसिकके संग रसिकाका समागम अतीव सुखजनक होता है ॥ ४४ ॥ भारतमें सरस्वती इत्यादि जो सब नदी विद्यमान हैं तुम उनकी अपेक्षा सौभाग्य शालिनी होगी ॥ ४५ ॥ भारतीके शापवश आजसे कलिके पांच हजार वर्षतक तुमको भारतमें रहना होगा॥ ४६ ॥ तुम नित्य जलनिधिके संग क्रीडा कौतुकमें काल व्यतीत करोगी, क्योंकि जैसी तुम रसिका हो, वह भी इसी प्रकार रसिकचूडामणि है ॥ ४७ ॥ भारतवासी सब मनुष्य भगीरथकृत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति और भक्तिभावसे तुम्हारी पूजा करें

स ममांशस्वरूपश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी ॥ विदग्धा या विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥ ४४ ॥ यावत्यः संति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते ॥ सौभाग्या त्वं च तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥४५॥ अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पंचसहस्रकम् ॥ वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥ ४६ ॥ नित्यं त्वमब्धिना सार्थं करिष्यसि रहो रतिम् ॥ त्वमेव रसिका देवि रसिकेंद्रेण संयुता ॥४७॥ त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च ॥ भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यंति भक्तितः ॥४८॥ कण्वशाखोक्तध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति ॥ यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ४९ ॥ गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ५० ॥ सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति ॥ प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्धि विनंक्ष्यति ॥५१॥ पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि ॥ तन्मंत्रोपासकस्नानात्तदघं च विनंक्ष्यति ॥ ५२ ॥

॥४८॥ काण्वशाखोक्त ध्यानद्वारा ध्यान करके जो प्रतिदिन तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी स्तुति और तुमको प्रणाम करेंगे वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होंगे ॥ ४९ ॥ अधिक क्या शतयोजनके अन्तरमें भी वास करके जो कोई "गंगा गंगा," यह शब्द मुखसे उच्चारण करता है तो वह पुरुष सब प्रकारके पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ५० ॥ हजार हजार पापियोंके स्नान करनेसे तुमको जो पाप स्पर्श होगा वह अविचलित चित्तसे सहना क्योंकि प्रकृति मंत्र उपासक भक्तोंके स्पर्शसे तुम्हारे संपूर्ण पातक नष्ट होंगे ॥ ५१ ॥ अधिक क्या हजार हजार पापी

शव स्पर्श करके तुम्हारे जलमें स्नान करनेपर भी उन प्रकृति मन्त्रोपासक साधुओंके स्पर्शसे तुम्हारे समस्त ही पाप नष्ट होंगे ॥ ५२ ॥ हे शुभे ! तुम भारतमें सरस्वती इत्यादि श्रेष्ठ नदियोंक संग अवस्थान करके पापियोंके पापपंक प्रक्षालन करो ॥ ५३ ॥ जहां प्रकृति देवीकी महिमा कीर्तित होगी वह स्थान पवित्रतीर्थके नामसे विख्यात होगा तुम्हारी चरणरेणुके स्पर्शसे घोर पातकी भी पवित्र होंगे ॥ ॥ ५४ ॥ और वह निःसन्देह उस रेणुपारिमित वर्ष देवीलोक अर्थात् मणिद्वीपमें वास करेंगे जो ज्ञान सहित भक्तिपूर्वक मेरा नाम स्मरण करते करते ॥ ५५ ॥ तुम्हारे गोदमें देहत्याग करेंगे वह निःसन्देह मेरे लोकमें जाकर अन्तकाल

तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम् ॥ सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे ॥ ५३ ॥ तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र तद्गुणकीर्तनम् ॥ त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी ॥ ५४ ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च देवेलोके वसेद् ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥ समुत्सृजंति प्राणांश्च ते गच्छंति हरेः पदम् ॥ पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यंति हरेश्चिरम् ॥ ५६ ॥ लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यंति चाप्यसंख्यकम् ॥ मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत् ॥ ५७ ॥ प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि ॥ कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मकम् ॥ ५८ ॥ तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् ॥ ५९ ॥ तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ६० ॥

तक मेरे प्रधान पार्षद हो अवस्थान करेंगे ॥ ५६ ॥ कितनी ही असंख्य प्राकृतप्रलय उनक दृष्टिगोचर होगी जिनकी सीमा नहीं मृत पुरुषका महापुण्य न रहनेसे उनका देह तुम्हारे क्रोडमें कभी पात नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥ जबतक सूर्य उदय होंगे तबतक वह पुरुष वैकुण्ठधाममें वास करेगा अनेक देह धारण कराय स्वकर्मफल भोगके अन्तमें ॥ ५८ ॥ उसको सारूप्य प्रदान करके पार्षद करता हूं यदि कोई अज्ञानी पुरुष तुम्हारे जलको स्पर्श करके देहत्याग करे ॥ ५९ ॥ उसको सालोक्य प्रदान करके पार्षद करता हूं अधिक

क्या यत् किंचित् तुम्हारा नाम स्मरण करके स्थानान्तरमें भी देहत्याग करनेसे ॥ ६० ॥ ब्रह्माकी अवस्था तक उसको सालोक्य प्रदान करता हूं और यदि भक्तिभावसे तुम्हारा नाम स्मरण करके अन्यत्र देहत्याग करे ॥ ६१ ॥ उसको असंख्य प्राकृतलयपर्यन्त सारूप्य प्रदान करता हूं, वह अति उत्तम रत्ननिर्मित विमानमें बैठ तत्काल पार्षदोंके सहित ॥ ६२ ॥ गोलोकमें जाय मेरे समान रूप धारण कर सकता है उसको तीर्थ अतीर्थके मरनेमें कुछ विशेष नहीं है ॥ ६३ ॥ जो नित्य मेरे मंत्रकी उपासना करके मुझको निवेदन की हुई वस्तु भक्षण करता है वह भक्तजन

तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥६१॥ तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥६२॥ सद्यः प्रयाति गोलोकं मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ तीर्थेऽप्यर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ६३ ॥ मन्मंत्रोपासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥ पूतं कर्तु स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥ रत्नेंद्रसारयानेन गोलोक संप्रयांति च ॥ मद्भक्ता बांधवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि ॥ ६५ ॥ प्रयांति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम् ॥ यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः सति ॥ ६६ ॥ जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तेः संविधानतः ॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च प्रत्युवाच भगीरथम् ॥ ६७ ॥ स्तुहि गंगामिमां भक्त्या पूजां च कुरु सांप्रतम् ॥ भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः ॥ ६८ ॥

लीलापूर्वक ही त्रिभुवन पवित्र कर सकता है ॥ ६४ ॥ वह पुरुष सर्वोत्कृष्ट रत्ननिर्मित विमानमें चढकर गोलोकधाममें जाता है हे पतिव्रते ! मेरे भक्तके बांधवगण भी यदि पशुजन्मलाभ करें ॥ ६५ ॥ तो वह भी मेरी भक्तिके प्रभावसे पवित्र होकर रत्नमय विमानमें बैठ दुर्लभ गोलोकमें गमन कर सकते हैं भक्तगण जिस किसी स्थानमें वास क्यों न करें भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करनेपर ॥ ६६ ॥ उस भक्तिके प्रभावसे वह जीवन्मुक्त होते हैं और पवित्र होते हैं भगवान् श्रीहरिने गंगासे इस प्रकार कहकर भगीरथसे कहा ॥ ६७ ॥ हे वत्स ! अब तुम भक्तिपूर्वक

चरणोंने कैसा अरुणिमा राग धारण किया है ॥ ९ ॥ देवता सिद्ध तथा मुनींद्रोंका दिया हुआ अर्घ्य चरणोंमें कैसी शोभा पाता है तपस्वियोंके मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेसे बोध होता है कि मानों चरण कमलोंमें भ्रमरपंक्ति सन्निविष्ट हुई है ॥ १० ॥ हे मातः ! तुम्हारे पादपद्म मुक्तिकी कामना करनेवालेको मुक्ति और भोगकी अभिलाषा करनेवालेको भोग प्रदान करते हैं हे मातः ! तुम्हीं वर तुम्हीं वरेण्य तुम्हीं वरद और तुम्हीं भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली हो ॥ ११ ॥ तुम्हीं विष्णुप्रद प्रदान करती हो और तुम्हीं विष्णुपदसे उत्पन्न हुई हो सतीहो तुमको

सुरसिद्धमुनींद्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदा ॥ तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् ॥ १० ॥ मुक्तिप्रद मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम् ॥ वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥११॥ श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ॥ इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् ॥ १२ ॥ दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश ॥ आसनं पाद्यमर्घं च स्नानीयं चाऽनुलेपनम् ॥ १३ ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं तांबूलं शीतलं जलम् ॥ वसनं भूषणं माल्यं गंधमाचमनीयकम् ॥ १४ ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥ दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत्संस्तूय संपुटांजलिः ॥ १५ ॥ संपूज्यैवंप्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ नारद उवाच ॥ श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ १६ ॥ विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ १७ ॥

प्रणाम करता हू हे वत्स ! इस ध्यानसे त्रिपथगा शुभदायिनी गंगाका ध्यान करके ॥ १२ ॥ षोडश उपचारसे पूजे आसन पाद्य अर्घ्यस्नानीय अनुलेपन ॥ १३ ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, सुशीतल जल, वसन, भूषण, माल्य, चंदन, आचमनीय ॥ १४ ॥ और मनोहर शय्या इन षोडश उपचारोंसे देवीकी पूजाकरै फिर हाथ जोडे हुए स्तव करके भक्ति भावसे प्रणाम करे॥ १५ ॥ इसप्रकार पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है नारदजीने कहा हे देवेश ! अब लक्ष्मीकान्त जगत्पति विष्णुके ॥ १६ ॥ चरणोंसे उत्पन्न पतितपावनी श्रीगंगादेवीका पापना

शक पुण्यप्रद स्तोत्र सुननेकी इच्छा करता हूं, आप कहिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! अब पापनाशक पुण्यप्रद ॥ १७ ॥ गंगास्तोत्र कीर्त्तन करता हूं सुनो जो शिवके संगीतसे मोहित हो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हैं और श्री राधाके अंग जलमें सिंचित हैं उन गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ सृष्टिके पहिले गोलोक धाममें रासमंडलके मध्य जिनका जन्म हुआ है, जो सदा शंकरके समीप वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥ जिन्होंने कार्त्तिककी पूर्णिमाको गोप और गोपीमण्डलमें. समाकीर्ण शुभप्रद राधाके रास महोत्सवमें अवस्थान किया उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं॥२०॥जो विस्तारमें करोड़ योजन और दीर्घतामें अपना लक्षगुण स्थान अधिकार करके गोलोक धाममें वास

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णांगसमुद्भवाम् ॥ राधांगद्रवसंयुक्तां तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ १८ ॥ यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमंडले ॥ सन्निधाने शंकरस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १९ ॥ गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे ॥ कार्त्तिकी पूर्णिमायां च तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २० ॥ कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें लक्षगुणा ततः ॥ समावृता या गोलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २१ ॥ षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्यें चतुर्गुणा ॥ समावृता या वैकुण्ठे तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २२ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्यें पंचगुणा ततः ॥ आवृता ब्रह्मलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २३ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्यें चतुर्गुणा ततः ॥ आवृता शिवलोके या तां गंग ां प्रणमाम्यहम् ॥२४॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें सप्तगुणा ततः ॥ आवृता ध्रुवलोके या तां गंगा प्रणमाम्यहम् ॥ २५ ॥

करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ जो विस्तारमें साठलाख और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके वैकुण्ठमें वास करती हैं,उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥२२॥ जो विस्तारमें तीसलाख योजन और दीर्घतामें उससे पचगुना स्थान अधिकार करके ब्रह्मलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ जो विस्तारमें त्रिंशवलक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके शिवलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे सातगुणा

स्थान अधिकार करके ध्रुव लोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ जो विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके चन्द्रलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ जो विस्तारमें साठहजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके सूर्य लोकमें वास करती हैं. उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २७ ॥ जो विस्तारमें लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके तपोलोकमेंवास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जो विस्तारमें हजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके जललोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ जो विस्तारमें दश

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता चद्रलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥२६॥ षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दश गुणा ततः ॥ आवृता सूर्यलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २७ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता या तपोलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २८ ॥ सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ आवृता जनलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥ दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता या महर्लोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३० ॥ सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः ॥ आवृता या च कैलासे तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ मंदाकिनी येंद्रलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ पाताले भोगवती चैव विस्तीर्णा दशयोजना ॥ ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥

लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पंचगुणा स्थान अधिकार करके महर्लोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ जो विस्तारमें सहस्र योजन और दैर्घ्यमें उससे शतगुण स्थान अधिकार करके कैलासमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जो मन्दाकिनी नामसे विख्यात होकर विस्तारमें शतयोजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके इन्द्रलोकमें वास करती हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करता हूं ॥३२॥ जो भोगवती नामसे विख्यात होकर विस्तारमें दशयोजन और दैर्घ्यमें उनसे दशगुण स्थान अधिकार करके पाताल

तलमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ जो भूमण्डलमें अलकनन्दाके नामसे विख्यात होकर विस्तारमें एक कोस वा किसी स्थानमें उसकी अपेक्षा कुछेक न्यून होकर बहती हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ जो सतयुगमें क्षीरवर्ण त्रेतायुगमें चन्द्रवर्ण और द्वापरमें चन्दनवर्ण होकर बहती हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ जो कलियुगमें केवल भूमण्डलमें जलमयी और स्वर्गमें क्षीर मयी होकर बहती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३६ ॥ हे वत्स! इन गंगाके जलकणस्पर्शसे प्राणियोंके ज्ञानकृत कोटिजन्मार्जित

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् ॥ क्षितौ चालकनन्दा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३४ ॥ सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिंदुसन्निभा ॥ द्वापरे चन्दनाभा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ जलप्रभा कलौ या च नाऽन्यत्र पृथिवीतले ॥ स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसंभवः ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटि जन्मार्जितं दहेत् ॥ ३७ ॥ इत्येवं कथिता ब्रह्मन्गंगापद्यैकविंशतिः ॥ स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ॥ ३८ ॥ नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ॥ सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ ३९ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् ॥ रोगात्प्रमुच्यते रोगी बंधान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ॥ यः पठे त्प्रातरुत्थाय गंगास्तोत्रमिदं शुभम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्महत्यादि सब भारी पातक भस्म होजाते हैं ॥३७॥ हे वत्स नारद! इस प्रकार इक्कीस पद्यमें पापनाशक और पुण्यवर्द्धक गंगाका परमस्तोत्र कहा गया है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुरेश्वरी गंगाकी पूजा करके उनका स्तव करता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ इसके प्रभावसे अपुत्र पुरुषको पुत्र और भार्याहीन पुरुषको भार्या लाभ होती है रोगी पुरुष रोगसे छूटता है और बँधा हुआ पुरुष बंधनसे छूट जाता है ॥ ४० ॥ जो प्रतिदिन प्रातःकालके समय उठकर गंगास्तव पाठ करता है वह

पुरुष अख्यात नाम होनेपर भी विख्यात नाम और अज्ञानान्ध होनेपर भी ज्ञानलोकम पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ उसको दुःस्वम दर्शन सुस्वम और नित्य गंगास्नानजनित पुण्य लाभ होता है नारायणने कहा हे वत्स नारद ! राजा भगीरथ उपरोक्त स्तोत्रसे गंगाका स्तव करके ॥ ४२ ॥ उनको संग ले जहां सगरसन्तानगण कपिलदेवके शापसे भस्म हुए थे, वहां गये भागीरथीके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह तत्काल मुक्त होकर वैकुण्ठधाममें चले गये ॥ ४३ ॥ भगीरथ जोगंगाको भूलोकम लायेथे, इस कारण इनका नाम भागीरथी हुआ है हे वत्स ! यह मने तुम्हारे निकट गंगाका उपाख्यान वर्णन किया॥ ४४॥ यह उपाख्यान अतीव पुण्यप्रद और मोक्षपथका सोपान है,अब क्या सुननेकी

शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गंगास्नानफलं लभेत् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्तोत्रेणानेन गंगां च स्तुत्वा चैव भगीरथ ॥ ४२ ॥ जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ॥ वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गंगाय स्पर्शवायुना ॥ ४३ ॥ भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता ॥ इत्येवं कथितं सव गंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥४४॥ पुण्यदं मोक्षदं सारंकिं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ कथं गंगा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी ॥४५॥ कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो ॥ तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम् ॥४६॥ एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि ॥ नारायण उवाच ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः ॥ ४७ ॥ कृष्णः संपूज्य तां राधामुवास रासमण्डले ॥ कृष्णेन पूजितां तं तु संपूज्य हृष्टमानसाः ॥ ४८ ॥ ऊषुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः ॥ एतस्मिन्नंत कृष्णसंगीता च सरस्वती ॥ ४९ ॥

अभिलाषा है सो प्रकाश करो नारदने कहा हे प्रभो ! गङ्गा त्रिपथगा होकर किस प्रकार त्रिभुवनपावनी हुई ॥४५॥ कौन किस प्रकार उनको किस स्थानमें लेगया था और उस स्थानके रहनेवाले पुरुषोंने उनके सबंधमें किसप्रकार व्यवहार किया था ॥४६॥ यह सब आनुपूर्विक वर्णन कीजिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! कार्तिकी पूर्णिमाके दिन श्रीराधाके महोत्सवमें ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्णने राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें स्थिति की तब कृष्णकी पूजित राधाकी प्रसन्नतासे पूजा करके॥४८॥ब्रह्मादि देवता और शौनकादि ऋषि परमानन्दपूर्वक वहां वास करनेलगे इसी समय कृष्ण

विषयिणी संगीतशास्त्रकी अधिष्ठात्री दवी सरस्वती ॥४९॥ मनोहर ताल लयपूर्वक वीणायन्त्रमें गान करने लगी तब ब्रह्माजीने सरस्वतीको संतुष्ट होकर रत्नमय हार ॥५०॥ महादेवजीने ब्रह्माण्डमें दुर्लभमणि कृष्णने सर्वोत्कृष्ट कौस्तुभमणि ॥५१॥ राधिकाने अमूल्य रत्ननिर्मित उत्कृष्ट हार नारायणने मनोहर सर्वोत्कृष्ट रत्नमयमाला ॥५२॥ लक्ष्मीने अमूल्य रत्नखचित कनककुण्डल तथा जो विष्णुमाया मूलप्रकृति भगवती ॥५३॥दुर्गा नारायणी ईश्वरी और ईशानी हैं उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मभक्ति धर्मने धर्ममें भक्ति और विपुल यश॥५४॥ अग्निने अग्निपरीक्षित उत्कृष्ट वस्त्र और वायुने अति

जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम् ॥ तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेंद्रसारहारकम् ॥ ५० ॥ शिवो मणींद्रसारं तु सर्वब्रह्माण्ड दुर्लभम् ॥ कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम् ॥५१॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका ॥ नारायणश्च भगवान्ददौ मालां मनोहराम् ॥ ५२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुंडलम् ॥ विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥ धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे ॥५४॥ वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान् ॥ एतस्मिन्नंतरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः ॥५५॥ जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥ मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ॥५६॥ कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमंडले ॥ स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् ॥ ५७ ॥ अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः ॥ ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थमभीप्सितम् ॥ ५८ ॥

उत्तम मणिमय नूपुर प्रदान किये इसी समय भूतपति महादेवजीने ब्रह्माजीके वचनानुसार ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णके रासोत्सव विषयक संगीत आरंभ किया देवता यह देख मोहितहो चित्र लिखित पुतलीके समान रह गये और मूर्छित होगये॥५६॥ यही क्या बरन् अत्यन्त कष्टसे उनको चैतन्यता प्राप्त हुई तब उन्होंने देखा कि रासमंडलमें वह राधाभी नहीं है और वह कृष्णभी नहीं है, सम्पूर्ण जलमय है ॥५७॥ तब गोप, गोपी, देवता और

ब्राह्मण उच्चस्वरसे रोने लगे तब ब्रह्माजीने ध्यानमें स्थित होकर जाना कि, अब कुछ नहीं है, तीर्थ है ॥ ५८ ॥ संसारवासी पुरुषोंका उद्धार करनेके लियेही राधा और कृष्ण दोनोंने जलमयी मूर्त्ति धारण की है हे वत्स नारद ! तिस समय ब्रह्मादि सभी परमेश श्रीकृष्णकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ५९ ॥ और कहने लगे हे विभो ! तुम अब हमको अपनी मूर्ति दिखाकर अभिलाषित वर दो उसी समय अतिमधुर यह आकाशवाणी स्पष्टही ॥ ६० ॥ सबके कानोंमें प्रविष्ट हुई कि "मैं सर्वात्मा अर्थात् सर्वव्यापी और यह शक्तिरूपिणी राधाभी सर्वव्यापिनी है ॥ ६१ ॥ सुतरां मेरे वा राधाके संग क्षणकालके लियेभी तुम्हारा वियोग नहीं होगा तो मैं केवल भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके निमित्त देह धारण

गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति ॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥५९॥ स्वमूर्तिं दर्शय विभो वांछितं वरमेव नः ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥६०॥ तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम् ॥ सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रह विग्रहा ॥६१॥ ममाप्यस्याश्च देहेन कर्त्तव्यं च किमावयोः ॥ मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः ॥६२॥ मन्मंत्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यंति मत्पदम् ॥ मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदीच्छत सुरेश्वराः ॥६३॥ करोतु शंभुस्तत्रैवं मदीयं वाक्यपालनम् ॥ स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम् ॥६४॥ कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदांगं सुमनोहरम् ॥ अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः ॥ ६५ ॥ स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥ मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपनम् ॥ ६६ ॥

करता हूं इसीलिये मेरे देहमात्रसे केवल तुम्हारा वियोग हैं नहीं तो और कुछ नहीं है मेरे देहसे भी तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं है हे देवगण ! तो भी यदि मेरे मंत्रपूत मनुगण, मानवगण, मुनिगण, वैष्णवगण ॥ ६२ ॥ और तुम मेरी स्पष्टमूर्ति देखनेकी अत्यन्त ही अभिलाषा करते हो तो मैं जो कहता हूं ॥ ६० ॥ महेश्वरसे मेरा यह वचन प्रतिपालन करनेको कहो हे ब्रह्मन् ! विधातः ! तुम जगद्गुरु महादेवजीको यह आज्ञा दो ॥ ६४ ॥ कि वह वेदांग संगत मनोहर तन्त्रशास्त्र प्रणयन करैं और यह शास्त्र अभीष्टप्रद मंत्रसमूह॥ ६५ ॥ स्तोत्र यथाविधि पूजा

क्रमयुक्त ध्यानसे परिपूर्ण हो और इसमें मेरा मन्त्र कवच और स्तोत्र गुढभावसे सन्निवेशित रहै ॥६६॥ जिससे पापिष्ठ मनुष्यगण उसके मर्मावरोधमें असमर्थ होकर मेरे प्रति अत्यन्त विमुख हों जिससे सहस्रमें अथवा सौ मनुष्योंमें एकजन मेरा मंत्रोपासक हो ॥ ६७ ॥ और मेरे मंत्रोपासक साधुगण पूतात्मा होकर मेरे लोकमें गमन कर सकें मेरा शास्त्रप्रणीत न होनेसे अर्थात् यदि सभी इस शास्त्रके मर्मावरोधमें समर्थ होंगे और यदि सभी भूलोकसे गोलोकमें जायँगे ॥ ६८ ॥ तो तुम्हारा ब्रह्माण्ड कारण निष्फल होगा अतएव तुम सात्विक तामसिकादि भेदसे पंचप्रकार तथा नाना प्रकार लोकोंकी सृष्टि करो तो ॥ ६९ ॥ अपने कर्मके वश कोई भूलोकवासी और कोई कोई द्युलोकवासी होंगे हे ब्रह्मन् ! यदि महादेव

भवंति विमुखा येन जना मां तत्करिष्यति ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मंत्रोपासको भवेत् ॥ ६७ ॥ जना मन्मंत्रपूताश्च गमिष्यंति च मत्पदम् ॥ अन्यथा न भविष्यंति सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६८ ॥ निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्मांडं चैव ब्रह्मणः ॥ जनाः पंच प्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुं भवे भवे ॥ ६९ ॥ पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः ॥ इदं कर्तुं महादेवः करोति देवसंसदि ॥ ७० ॥ प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः ॥ ७१ ॥ तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः ॥ ७२ ॥ गंगातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः ॥ संयुक्तं विष्णुमायाया मंत्रौघैः शास्त्रमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

देवसभाके सामने ॥७०॥ तन्त्रशास्त्र बनानेके विषयमें दृढ प्रतिज्ञा करैं तो मैं अपनी मूर्ति दिखाऊं हे वत्सनारद ! सनातन पुरुष श्रीकृष्ण यह कहकर विरत होगये ॥ ७१ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीके अन्तमें जगत्कर्ता ब्रह्माजीने उसको सुननेसे आनन्दित होकर शिवजीको उस आकाशवाणीका मर्म समझाया ज्ञानियोंमें अग्रणी ज्ञानके अधीश्वर भूतनाथने विधाताका वचन सुन ॥ ७२ ॥ गङ्गाजल हाथमें लेकर प्रतिज्ञा पूर्वक कहा मैं राधामन्त्रसे परिपूर्ण वेदका अविरोधी ॥ ७३ ॥

तन्त्रशास्त्र प्रणयन करूंगा गंगाजल स्पर्श करके यदि कोई मिथ्या बात कहै॥७४॥ तो वह ब्रह्माकी अवस्थाके कालतक घोरतर कालसूत्र नामकनरकमें वास करता है हे द्विजवर ! गोलोकस्थित सुरसभाके सामने जब भगवान् शंकरने इस प्रकार कहा ॥७५॥ तब श्रीकृष्ण राधासहित वहां प्रगट हुए उनको देखतेही फिर देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही इस समय वह उन पुरुषोत्तमकी स्तुति करके ॥ ७६ ॥ फिर पूर्ववत् आनन्दसे रास महोत्सवमें प्रवृत्त हुए अनन्तर कुछकाल पीछे महादेवजीने मुक्तिदीप प्रज्वलित किया अर्थात् महादेवजीके द्वारा पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार तन्त्रशास्त्र प्रकाशित हुआ ॥ ७७ ॥ हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे निकट अति दुर्लभ गोपनीय वृत्तान्त प्रकाशित किया वह श्रीकृष्ण ही गोलोकसंभूत

वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च॥ गंगातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः॥७४॥ स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि॥७५॥ आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः॥ तं सुदृष्ट्वा च संहृष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्॥७६॥ परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्॥ कालेन शंभुर्भगवान्मुक्तिदीपं चकार सः॥७७॥ इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्॥ स एव द्रवरूपा सा गंगा गोलोकसंभवा॥७८॥ राधाकृष्णांगसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥ स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना॥७९॥ कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्मांडपूजिता॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥ नारद उवाच॥ कलेः पंचसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर॥ क्व गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥ नारायण उवाच॥ भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया॥ जगाम तत्र वैकुंठे शापान्ते पुनरेव सा॥२॥

द्रवमयी गंगा हैं॥ ७८ ॥ अभिन्न देह राधा और कृष्ण अङ्गोत्पन्न गंगा सबको भोगैश्वर्य और मुक्तिप्रदान करती हैं परमात्मा श्रीकृष्णने उनको स्थान स्थानमें स्थापित किया है ॥ ७९ ॥ सुतरां गंगा श्रीकृष्णस्वरूप और संपूण ब्रह्माण्डके सर्वत्र सबके द्वारा समान पूजनीय हैं ॥ ८० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदने कहा हे सुरेश्वर ! कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर देवी गंगा किस लोकमें गई थीं ? सो कहिये ॥ १ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! भागीरथी भारतीके शापसे

भारतमें अवतीर्ण होकर फिर ईश्वरकी इच्छासे शापके अन्तमें वैकुण्ठ धामको गईं ॥ २ ॥ और इस ओर भी जैसेही शापका अवसान हुआ उसी समय भारती और पद्मावती दोनों भारत त्यागकर नारायणके समीप गईं ॥ ३ ॥ गंगा लक्ष्मी और सरस्वती एवं तुलसी यह चार श्रीहरिकी प्रियतमा हैं ॥ ४ ॥ नारदने कहा हे भगवन् ! गंगा किस प्रकार विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई ब्रह्माजीने किस निमित्त उनको कमण्डलुमें धरा था ? सुना है कि वह शिवकी पत्नी हैं ॥५॥ तो फिर किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुईं ? हे मुनिवर ! यह सब वृत्तांत आदिसे अन्ततक मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे मुने ! पूर्व कालके समय गंगाने शिवलोकमें द्रवमूर्ति धारण

भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम् ॥ पद्मावती च शापांते गंगा सा चैव नारद ॥ २ ॥ गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैव तास्तिस्रः प्रिया हरेः ॥ तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ केनोपायेन सा देवी विष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ब्रह्मकमंडलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा ॥५॥ बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गंगा नारायणप्रिया ॥ अहो केन प्रकारेण यन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा बभूव गोलोके सा गंगा द्रवरूपिणी ॥ राधा कृष्णांगसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ द्रवाधिष्ठातृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ नवयौवनसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ८ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा ॥ तप्तकांचनवर्णाभा शरच्चंद्रसमप्रभा ॥ ९ ॥ स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ सुपीनकठिनश्रोणिः ॥ सुनितबयुगंबर ॥ १० ॥

की थी, गंगा, श्रीकृष्ण और राधाके अंगसे उत्पन्न हैं सुतरां वह दोनोंकाही अंश और आत्मस्वरूपिणी हैं ॥ ७ ॥ वह जलकी अधिष्ठात्री देवी हैं उनके समान रूपवती भूमंडलमें दूसरी नहीं हैं वह नवयौवनसे युक्त और सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हैं ॥ ८ ॥ शरत् कालीन मध्याह्न पंकजके समान उनके मुखमें हँसी रहती है, रूप अतीव मनोहर शरीरका वर्ण तप्त कांचनके समान और प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमाके समान है ॥ ९ ॥ उनकी प्रभाके देखनेसे नयन और मन अतिशय स्निग्ध होते हैं वह स्वयं अति शुद्ध सत्व

स्वरूपा हैं और नितम्ब पीन और कठिन हैं, उनके ऊपर अत्युत्कृष्ट वस्त्र ढका हुआ है ॥ १० ॥ उनके दोनों स्तन पीन, उन्नत, कठिन और सुगोल हैं नयनयुगल अति मनोहर सदा वक्रभावसे अपाङ्गमें विलोकन ॥ ११ ॥ एक तो वंक्रिमभावसे कबरी बन्धन उसके ऊपर मालतीमालाके समर्पित होनेसे अधिक मनोहर हुई हैं उनके भालमें चन्दनबिन्दुके ऊपर सिन्दूर लगा होनेसे शोभाकी सीमा नहीं है ॥ १२ ॥ और गण्डोपारि कस्तूरी पत्रकी रचना होनेसे क्या सुंदरता हुई है, उनके दोनों ओष्ठने बन्धुक पुष्पके समान रक्तवर्ण आभा धारण की है॥ १३ ॥ उनके दातोंकी पंक्ति देखनेसे बोध होता है मानो सुपक्व दाडिमबीज श्रेणीबद्ध होकर स्थापित हैं उन्होंने नीवीस्थान

पीनोन्नतं सुकठिनं स्तन युग्मं सुवर्तुलम् ॥ सुचारु नेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम् ॥११॥ वंक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ सिंदूरबिंदुललितं सार्धं चंदनबिंदुभिः ॥१२॥ कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गंडयुग्मं मनोरमम् ॥ बंधूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुंदरम् ॥ १३ ॥ पक्वदाडिमबीजाभदंतपंक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥ १४ ॥ सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता ॥ वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥ १५ ॥ निमेषरहिताभ्यां च पिबंती सततं मुदा ॥ प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥ १६ ॥ मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकांकितविग्रहा ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥ ॥ १७ ॥ गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता चन्द्रकोटिसमप्रभा ॥ कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपंकजलोचना ॥ १८ ॥

(चीन) पर्यन्त अग्नि विशुद्ध वस्त्र युगल धारण किये हैं ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! ऐसी रूपलावण्यवती और वेषभूषा संपन्न गंगा रति लाभकी इच्छाकर लज्जाभावसे वस्त्राञ्चलसे अपना मुख ढक श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठ अनिमेष नयनसे ॥ १५ ॥ परमानन्दपूर्वक उनका चन्द्र वदन पान करने लगी नवसमागम लाभके आनंदसे उनका मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया ॥ १६ ॥ वह श्रीकृष्णका रूप देखकर मूर्च्छित होगई उनका सर्वांग रोमाञ्चित होगया इसी अवसरमें कृष्णप्राणा राधिका वहां उपस्थित हुई ॥ १७ ॥ तीस करोड गोपी उनकी सहगामिनी थीं उनका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एक कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं गंगाको श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठा देख क्रोधसे उनका

मुखमण्डल और दोनों नेत्र रक्तपद्मके समान रक्तवर्ण होगये ॥ १८ ॥ उनका वर्ण पीत चंपकके समान और गमन मदवाले हाथीके समान था वह अमूल्य रत्ननिर्मित अनेक प्रकारके भूपणोंसे विभूपित थीं ॥ १९ ॥ अमूल्य रत्न खचित अग्निपरीक्षित बहुमूल्य परिधेय पीताम्बरयुगल उनके नीविस्थानमें आबद्ध थे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण प्रदत्त अर्घ्यमें समायुक्त स्थलपद्म प्रभाविनिन्दित सुरञ्जित चरणकमल पग पगमें विन्यस्त होते थे ॥२१॥ वह उत्कृष्ट निर्मित विमानमें चढकर जब मंद मंद गमन करती थीं, उस समय ऋपिगण उनका श्वेत चामरसे वीजन करते थे

पीतचंपकवर्णाभा गजेंद्रमंदगामिनी ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता ॥ १९ ॥ अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्नि शौचकम् ॥ पीतवस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥२०॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टं कोमलं च सुरंजितम् ॥ कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्य- सन्ती पदांबुजम् ॥ २१ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा ॥ सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना ॥ २२ ॥ कस्तूरीबिंदुभिर्युक्तं चंदनेन समन्वितम् ॥ दीप्तदीपप्रभाकारं सिंदूरबिंदुशोभितम् ॥२३॥ दधती भालमध्ये च सीमन्ताधः स्थलो ज्ज्वले ॥ पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तं सुवंक्रिमम् ॥ २४ ॥ सुचारुकबरीभारं कंपयंती सुकंपिता ॥ सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कंपयती रुपा ॥ २५ ॥ गत्वोवास कृष्णपार्श्व रत्नसिंहासने शुभे ॥ सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः प्रिया ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा च समु- तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम् ॥ संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ॥ २७ ॥

॥२२॥ उनके सीमन्तके अधोभागमें सिन्दूर बिन्दु उज्ज्वल दीपशिखाके समान प्रभा विस्तार करती थी उनके दोनों पार्श्वमें कस्तूरी बिन्दु और चन्दनबिन्दु विराजमान था ॥ २३ ॥ वह जैसेही क्रोधसे कंपित होने लगीं वैसेही उनका पारिजातमाला वेष्टित ॥ २४ ॥ वक्र कबरीभार कंपित होने लगा चारु राग संयुक्त ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगा ॥ २५ ॥ वह रोषयुक्त गमन करके श्रीकृष्णके पार्श्वमें रत्नमय सिंहासन पर बैठ गईं और उनकी अनुगामिनी सखियें भी यथा स्थानमें बैठ गईं ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण राधाको देखतेही संभ्रम और हास्य

वदनसे उठकर सादर संभाषणपूर्वक मीठी बातें करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियें संत्रस्त होकर मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक भक्तियुक्त हो स्तव करने लगीं तब श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥ इसी समय देवी गंगाने भी उठकर अनेक स्तव स्तुति करके भय सहित विनयनम्र वचनोंसे कुशलप्रश्न पूछा ॥ २९ ॥ भयसे उनका कठ ओष्ठ और तालु शुष्क होगया उन्होंने नम्रभावसे श्रीकृष्णके चरणोंमें शरण ग्रहण की ॥ ३० ॥ जब श्रीकृष्णने उनको हृदयसे लगाय अभय प्रदान किया तब नउका चित्त स्थिर हुआ ॥ ३१ ॥ हे वत्स नारद ! उसी समय सुरेश्वरी गंगाने सिंहासनपर विराजमान सुस्निग्धा सुखदृश्या सुराधाको देखा कि, मानो ब्रह्मतेजसे ज्वलित हो रही हैं ॥ ३२ ॥

प्रणेमुरतिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकंधराः ॥ तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥ २८ ॥ उत्थाय गंगा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा ॥ कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥२९॥ नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥ ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणांबुजे ॥३०॥ तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ ॥ बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्व सिंहासनस्थां च राधां गंगा ददर्श सा ॥ सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥ असंख्यब्रह्मणः कर्त्रीमादिसृष्टेः सनातनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां कन्याऽभिनवयौवनाम् ॥३३॥ विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च ॥ शांतां कांतामनंतां तामाद्यंतरहितां सतीम् ॥३४॥ शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ॥ सौंदर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सर्वासु सुंदरीषु च ॥ ३५ ॥ कृष्णार्धांगां कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा ॥ पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च ॥ ३६ ॥

वह सृष्टिके आदिसे असंख्य ब्रह्माकी एकमात्र कर्त्री और सनातनी हैं उनके देखनेसे बोध होता है, मानों बारहवर्षकी नव यौवना कन्या है ॥ ३३ ॥ किसी विश्वसे ऐसी रूपवती वा गुणवती रमणी दूसरी दिखाई नहीं देती वह शान्त कान्त अनन्त और आद्यन्त रहित हैं ॥ ३४ ॥ वह शुभा, सुभद्रा, ऐश्वर्यवती और स्वामि सौभाग्य शालिनी हैं, वह सम्पूर्ण रमणियोंमें प्रधान रत्न हैं देखनेसे बोध होता है मानों समुदाय सौन्दर्य एकत्र सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ वह श्रीकृष्णका अर्द्ध शरीर है. क्या तेज, क्या वयस,

क्या कान्ति, सर्वांशमेंही कृष्णके समान हैं लक्ष्मी और लक्ष्मीकान्त दोनोंही उनकी पूजा करते हैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णकी तादृश उज्ज्वल प्रभा है, किन्तु राधाके रूपसे सब आच्छादित होरही हैं वह सिंहासनपर बैठकर सखीका दिया हुआ ताम्बूल चावने लगीं ॥ ३७ ॥ वह सब जगत्को उत्पन्न करनेवाली हैं, किन्तु उनको उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है वह धन्य मान्य और मानिनी हैं वह श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी और प्राणोंसे भी प्रियतमा रमणी हैं ॥३८॥ हे देवर्षे ! सुरेश्वरी गंगा अनिमेष लोचनसे वारंवार उनको देखने लगीं किंतु किसी प्रकार भी उनके नेत्र व उनका मन तृप्त नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ इसी समय शान्तमूर्ति राधाने विनीत भाव हास्यवदन और मधुर वचन द्वारा जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहा

[illegible]च्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् ॥ सखीदत्तं च तांबूलं भुक्तवंतीं च दुर्लभम् ॥ ३७ ॥ अजन्यां सर्वजननीं धन्यां [illegible]न्यां च मानिनीम् ॥ कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा राकेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी ॥ निमे[illegible]भ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥३९॥ एतस्मिन्नंतरे राधा जगदीशमुवाच सा ॥ वाचा मधुरया शांता विनीता सस्मिता [illegible] ॥ राधोवाच ॥ केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखांबुजम् ॥ पश्यंती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना ॥४१॥ [illegible] [illegible] पुलकांकितविग्रहा ॥ वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निराक्षंती पुनः पुनः ॥ ४२ ॥ त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः [illegible] ॥ मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४३ ॥

[illegible] ॥ राधा बोली प्राणेश्वर ! आपके पार्श्वमें हास्यवदन वक्रलोचन उत्सुक चित्तसे जो आपके वदन सुधाकरका पान कर रही है ॥४१॥ [illegible] कौन है यह आपका रूप देखकर एकवार ही मोहित हुई है, इसका सब शरीर रोमाञ्चित दीखता है, यह वस्त्रसे अपना मुखमण्डल [illegible] आपको देखती है ॥ ४२ ॥ और आपभी इसको देखकर उत्सुक चित्तसे हास्य करते हैं यह क्या व्यापार है मेरे गोलोकमें [illegible] क्यों हुआ ॥ ४३ ॥

आप तो वारम्वार इस प्रकार दुष्कर्म करते हैं किन्तु क्या करूं मैं स्त्रीजाति स्वभावसे ही सरलचित्त प्रणयके वश होकर समस्त ही क्षमा करती हूं ॥ ४४ ॥ हे लम्पट ! आप शीघ्र अपनी प्रणयिनीको लेकर गोलोकसे चले जाइये नहीं तो यह कार्य आपको कल्याणदायक नहीं है ॥ ४५ ॥ पहिले एक दिन चंदन वनमें गोपाङ्गना विरजाके संग इसी प्रकार मिलित देखा था, किंतु क्या करूं सखियोंके अनुरोधसे उसको क्षमा किया ॥ ४६ ॥ उस समय आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे और विरजाने लज्जाके कारण देहत्याग करके नदीरूप

त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च ॥ क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥ ४४ ॥ संगृह्य मां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लंपट ॥ अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर ॥ ४५ ॥ दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चंदनकानने ॥ क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥ ४६ ॥ त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा ॥ देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥ ४७ ॥ कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्यें चतुर्गुणा ॥ अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥ ४८ ॥ गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदंतिके ॥ उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥४९॥ तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी॥ सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥ ५० ॥ ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया ॥ ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च ॥ ५१ ॥

धारण किया है ॥ ४७ ॥ उसका विस्तार बहुत योजन और दैर्घ्य इससे चतुर्गुण है अद्यापि आपकी कीर्तिस्वरूप वह विरजा विद्यमान है ॥ ४८ ॥ विरजाकी यह घटना देखनेके पीछे मेरे गृह प्रस्थान करनेपर आप फिर उसके निकट जाय उच्चस्वरसे "विरजे विरजे" कहकर रोदन करते फिरे थे ॥ ४९ ॥ जब आपके चीत्कार शब्दसे उस सिद्धयोगिनीने योग बलद्वारा जलसे उत्थित होकर आपको भूषणभूषित अपनी दिव्यमूर्त्ति दिखाई ॥ ५० ॥ तब आप उसको खैंचकर संगममें प्रवृत्त हुए और उसमें वीर्य निक्षेप किया विरजाके क्षेत्रमें वीर्याधान करनेसे

ही सात समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५१ ॥ दूसरे एक दिन चंपक वनमें शोभा नामक गोपिनीके संग संगत होते देखा था उस दिनभी आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे ॥५२॥ किन्तु शोभाने लज्जासे अपना कलेवर त्यागकर चन्द्र मण्डलमें प्रस्थान किया वह शोभाही चन्द्र मण्डलकी स्निग्ध तेज स्वरूपिणी है ॥ ५३ ॥ शोभाकी इसप्रकार दुर्दशा होनेपर आपने ही दुःखित अन्तःकरणसे उसका विभाग करके कुछ रत्नमें कुछ सुवर्णमें, कुछ उत्कृष्ट मणिमण्डलमें ॥ ५४ ॥ कुछ स्त्रियोंके मुखकमलमें कुछ राजशरीरमें, कुछ वृक्षपत्रमें, कुछ पुष्पमें

दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चंपककानने ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ ५२ ॥ शोभा देहं परित्यज्य जगाम चंद्रमंडले ॥ ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥ ५३ ॥ संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता ॥ रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मणिवराय च ॥५४॥ किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन ॥ किंचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥५५॥ किंचित्फलेभ्यः पक्केभ्यः सस्येभ्यश्चापि किंचन ॥ नृपदेवगृहेभ्यश्च संकृतेभ्यश्च किंचन ॥५६॥ किंचिन्नूतनपत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किंचन ॥ दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृंदावने वने ॥५७॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ प्रभा देहं परित्यज्य जगाम सूर्यमंडले ॥५८॥ ततस्तस्याः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा॥५९॥

॥ ५५ ॥ कुछ पके हुए फलोंमें, कुछ धान्यमें कुछ कुछ नृप और देवतायतन (देवस्थान) में, कुछ कुछ सुसंस्कृत पदार्थोंमें ॥ ५६ ॥ कुछ कुछ नवकिसलयमें और कुछ थोडासा दूधमें प्रदान किया था तीसरे आपको वृन्दावनमें प्रभा गोपीके संग संगत होते देखा है ॥ ५७ ॥ मेरा शब्द सुनतेही आपके भागनेपर प्रभा भी लज्जासे देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें उपस्थित हुई ॥ ५८ ॥ वह प्रभाही सूर्यमण्डलके तीव्रतेज स्वरूपमें परिणत हुई है आपने ही प्रणयविच्छेदके कारण मनमें क्षुभित हो रोदन करते

१ इनके अधिष्ठाता पुरुष ।

करते ॥५९॥ कुछ नेत्र लज्जा और कुछ मेरे भयसे उस प्रभाको विभाग करके कुछ हुताशनमें कुछ यक्षमें॥६०॥ कुछ पुरुष सिंहमें कुछ देवताओंमें कुछ वैष्णवमें कुछ नागोंमें ॥ ६१ ॥ कुछ ब्राह्मणोंमें कुछ मुनियोंमें कुछ तपस्वियोंमें यशस्वियों एवं कुछ कीर्तिमती और सौभाग्यवती अबलाओंमें समर्पण किया है ॥ ६२ ॥ पूर्वमें प्रभाका इस प्रकार विभाग करके उसके वियोगमें आपको रोदन करना पडा था चौथे मैंने रासमंडलमें आपको शान्तिनी नामक गोपिनीके संग प्रेमासक्त होते देखा है ॥६३॥ वसन्तके आगममें आप एक दिन गलेमें पुष्पमाला डाले और सर्वाङ्गमें चंदन

विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च ॥ हुताशनाय किंचिच्च यक्षेभ्यश्चापि किंचन ॥ ६० ॥ किंचित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ॥ किंचिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किंचन॥ ६१ ॥ ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ॥ स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किंचन ॥ ६२ ॥ तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूव प्ररुदितं त्वया ॥ शांतिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमंडले ॥ ६३ ॥ वसंते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चंदनोक्षितः ॥ रत्नप्रदीपैर्युक्ते च रत्ननिर्माणमंदिरे ॥ ६४ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥ तया दत्तं च तांबूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो ॥ ६५ ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ शांतिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥६६॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥६७॥ विश्वे तु विपिन किंचिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥६८॥

विलेपनपूर्वक रत्नमयभूषणोंसे विभूषित हो रत्नदीपविराजित रत्नमंदिरमें ॥ ६४ ॥ वस्त्रालंकारसे विभूषिता शान्ति गोपीके संग पुष्पशय्यापर शयन करके प्रणयिनीका दिया हुआ ताम्बूल चर्वण करते थे ॥ ६५ ॥ आपने मेरा शब्द सुनतेही तत्काल प्रस्थान किया, शान्ति गोपीभी लज्जा और भयसे देहत्यागकर एकवारही आपक शरीरमें लीन हुई ॥ ६६ ॥ इससेही शान्ति गुण श्रेष्ठ कहकर परिगणित हुई है आपनेभी प्रणयभंगसे रोदन करते करते शान्तिके देहको विभाग करके॥६७॥ विश्व संसारक मध्य कुछ वनस्थलमें कुछ ब्रह्माको कुछ मुझको कुछ शुद्धसत्व

स्वरूप लक्ष्मीको ॥६८॥ कुछ अपने मन्त्रोपासकको कुछ मेरे मंत्रोपासकोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ धमको और कुछ धार्मिकोंको प्रदान किया था ॥ ६९ ॥ पांचवें मनमें विचारकर देखो फिर एक दिन आप सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और गलेमें पुष्पमाला डाल सज्जित हो रत्नभूषणोंसे विभूषित और गंध चन्दनसे चर्चित ॥७०॥७१॥ क्षमा नाम्नीगोपीके संग पुष्पसमाकीर्ण चन्दनादियुक्त सुखशय्यापर शयन करके सुखपूर्वक सोरहे थे यही नहीं बरन् नव समागमके पीछे परस्परको आलिंगनपूर्वक नींदमें ऐसे अभिभूत हुए थे कि मेरे जाकर जगानेसे दोनोंकी निद्रा

त्वन्मंत्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किंचन ॥ तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ॥ ६९ ॥ मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह ॥ सुवेषयुक्तो मालावान्गंधचंदनचर्चितः ॥ ७० ॥ रत्नभूषितया गंधचंदनोक्षितया सह ॥ सुखेन मूर्च्छि तस्तल्पे पुष्पचंदनचर्चिते ॥ ७१ ॥ श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसंगमात् ॥ मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥ ७२ ॥ गृहीतं पीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा ॥ वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुंडलम् ॥ ७३ ॥ पश्चा त्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो ॥ लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान्पापेन यः प्रभो ॥७४॥ क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता ॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ ७५ ॥ संविभज्य त्वया दत्त प्रेम्णा प्ररुदता पुनः ॥ किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन॥ ७६ ॥ धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन ॥ तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पंडितेभ्यश्च किंचन ॥७७॥

भंग हुई ॥ ७२ ॥ मैंने आपका पीताम्बर मनोहर मुरली वनमाला कौस्तुभ और अमूल्य रत्नकुंडल लेलिये थे ॥ ७३ ॥ फिर सखियोंके अनेकयत्न और वचनोंसे पुनर्वार प्रदान किये पाप और लज्जासे आपका देह कालावर्ण होगया था ॥ ७४ ॥ इसके पीछे क्षमाने लज्जासे देह त्यागकर पृथ्वीमें गमन किया इसी कारण क्षमाका शरीर श्रेष्ठतम गुणका आधार हुआ है ॥ ७५ ॥ अनन्तर आपने प्रणयवश अत्यन्त दुःखित हो उस देहको विभागकर कुछ विष्णुको कुछ वैष्णवोंको ॥ ७६ ॥ कुछ धर्मको कुछ धार्मिकोंको कुछ दुर्बलोंको कुछ तपस्वियोंको

कुछ देवताओंको और कुछ पंडितोंको प्रदान किया था ॥ ७७ ॥ हे प्रभो ! मैं तुम्हारे गुणोंके विषयमें जितना जानती हू वह सब कहदिया अब क्या सुननेकी अभिलाषा है ? इनके अतिरिक्त और भी आपके अनेक गुण हैं किन्तु उनको मैं अधिक नहीं जानती ॥ ७८ ॥ इस समय लाल कमलके समान नेत्रोंवाली राधा कृष्णसे इस प्रकार कहकर उनकी बगलमें बैठी हुई लज्जासे नम्रमुखी गंगाकी यथोचित भर्त्सना करने लगी ॥ ७९ ॥ तब सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे समस्त रहस्य जान तत्काल सभासे अन्तर्धान हो अपनी जलमयी मूर्तिमें विलीन हुई ॥ ८० ॥ सिद्धयोगिनी राधाभी योगबलसे गंगाका रहस्यभेद जानकर चुल्लू द्वारा उसका सब जल पान करनेमें उद्यत हुई ॥ ८१ ॥

एतत्ते कथितं सव किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो ॥ ७८ ॥ इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपंकजलोचना ॥ गंगां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥ ७९ ॥ गंगा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ॥ तिरोभूय सभामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा ॥ ८० ॥ राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम् ॥ पानं कर्तुं समारेभे गंडूषात्सिद्धयोगिनी ॥ ८१ ॥ गंगा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे विवेश शरणं ययौ ॥ ८२ ॥ गोलोके सा च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा ॥ ददर्श राधा सर्वत्र नैव गंगा ददर्श सा ॥ ८३ ॥ सर्वत्र जलशून्यं च शुष्कपंकं च गोलकम् ॥ जलजंतुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥ ८४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानंतधर्मेन्द्रेंदुदिवाकराः ॥ मनवो मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः ॥ ८५ ॥

तब गंगाने योगबलसे यह सब बात जान श्रीकृष्णकी शरणागत हो उनके चरणतलमें प्रवेश किया ॥ ८२ ॥ तब राधाने प्रथम गोलोक फिर गोलोकको त्यागकर वैकुण्ठधाम वैकुण्ठ त्यागकर ब्रह्मलोक इस प्रकार योगबल द्वारा एकादि क्रमसे समस्तही देखा किन्तु कहीं भी गंगाका दर्शन न पाया ॥८३॥ गोलोक धामके सब स्थान जलहीन होकर शुष्कपंक होगये जलजन्तु सब जीवनशून्य होकर निपतित होनेलगे ॥८४॥ तब ब्रह्मा, विष्णु शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, निशाकर, दिवाकर, मनु, मुनि, सिद्ध और तपस्वीगण ॥८५॥

प्याससे शुष्ककण्ठ और शुष्कतालु हो गोलोक धाममें आय जो सर्वेश्वर प्रकृतिके अतीत पदार्थ वरस्वरूप वरेण्य वरद वरिष्ठ और वर कारण हैं जो गोपिका और गोपकुलमें सबसे प्रधान प्रभु हैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जो निराकार निरीह निर्लिप्त निराश्रय निर्गुण निरुत्साह निर्विकार और निरंजन हैं ॥ ८८ ॥ जो इच्छामय भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिये आकार धारण करते हैं, जो सत्यस्वरूप सत्येश साक्षिरूपी और सनातन पुरुष हैं ॥ ८९ ॥ जो पर परमेश परमपरमात्मा और परमेश्वर हैं, उनको भक्ति भावसे मस्तक झुकाय प्रणाम करके सब स्तव करनेमें

गोलोक च समाजग्मुः शुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥ सर्वे प्रणेमुर्गोविंदं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥ ८६ ॥ वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् ॥ गोपिकागोपवृंदानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥ निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम् ॥ निर्गुणं च निरुत्साहं निर्विकारं निरंजनम् ॥ ८८ ॥ स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ सत्त्व स्वरूपे सत्यंशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥८९॥ परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥ ९० ॥ सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकांकितविग्रहाः ॥ सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवंतं परात्परम् ॥ ९१ ॥ ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माण चित्रसिंहासनास्थितम् ॥ ९२ ॥ सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना ॥ गोपालिकानृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥ ९३ ॥ प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ तया प्रदत्तं तांबूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥ ९४ ॥

प्रवृत्त हुए ॥९०॥ सबही भक्तिभावसे गद्गद सबहीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधार भरे और सबकाही कलेवर रोमाञ्चित हुआ ऐसे वे परात्पर भगवान्की स्तुतिकरने लगे ॥ ९१ ॥ जो ज्योतिर्मय परब्रह्म जो समस्त कारणोंके भी कारण जो अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान ॥ ९२ ॥ गोपालगण जिनका श्वेतचामरसे बीजन करतेथे, जो परमानंदपूर्वक हास्यवदनसे गोपिकाओंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे॥ ९३ ॥ जो प्राणोंसे भी प्रियतमा राधाके वक्षस्थलमें स्थित होकर उसका दिया हुआ सुगंधित ताम्बूल भक्षण करते थे ॥ ९४ ॥

मुनि मनुष्य और तपस्वी इत्यादि सबनेही उन पूर्णतम विभु रामेश्वर श्रीकृष्णको देखतेही प्रणाम किया ॥ ९५ ॥ एक साथही सबके मनमें हर्ष और आश्चर्य उत्पन्न हुआ तब उन्होंने परस्पर, परस्परके सुखकी अपेक्षा करके अन्तमें ॥ ९६ ॥ अपने मनका भाव प्रकाश करनेके लिये ब्रह्माजीको नियुक्त किया तब चतुरानन ब्रह्मा विष्णुको दक्षिण ॥ ९७ ॥ और वामदेवको वामभागमें लेकर क्रमानुसार श्रीकृष्णके आगे गये और जाकर रासमंडलके जिस ओर दृष्टि डाली उसी ओर देखा कि परमानन्दरूपी परमानन्दयुक्त ॥ ९८ ॥ श्रीकृष्ण विराजमान हैं सब ही

परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम् ॥ मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः ॥ ९५ ॥ प्रहृष्टमनसः सव जग्मुः परमविस्मयम् ॥ परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम् ॥ ९६ ॥ निवेदितं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे ॥ ९७ ॥ वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसंनिधिम् ॥ परमानंदयुक्तं च परमानंदरूपिणीम् ॥९८॥ सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमंडले ॥ सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥ ९९ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् ॥ मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥ १०० ॥ अतीव कमनीयं च सुंदरं शांतविग्रहम् ॥ गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥ १ ॥ परिपूर्णतमं सव सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः ॥ २ ॥ क्षतं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम् ॥ निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥ ३ ॥

कृष्णमय सबकाही आसन एकाकार सबकाही एक वेष ॥ ९९ ॥ सभी द्विभुज और मुरलीधारी हैं सबकेही गलेमें वनमाला सबकेही चूडेमें मोरपंख और सबकेही वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि है ॥१००॥ उनकी मूर्ति अत्यन्त मनोहर अति सुंदर और अतीव शांत है क्या रूप ? क्या गुण ? क्या भूषण ? क्या प्रभा ? क्या अवस्था ? क्या कांति ? किसी विषयमेंभी किसीके संग कुछ भिन्न नहीं है ॥ १०१ ॥ कोई अपूर्ण नहीं और किसीका ऐश्वर्य्य न्यूनाधिक नहीं है उनमें कौन प्रभु और कौन सेवक है यह देखकर कहना कठिन है ॥ १०२ ॥ कभी

जोमूर्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं कभी दिव्य स्पष्ट मूर्ति कभी निराकार कभी साकार कभी द्विविध ॥ १०३ ॥ कभी राधा नहीं केवल कृष्ण विराजमान हैं और कभी प्रति आसनपरही राधाकृष्ण युगलरूपसे विराजमान हैं॥१०४॥ कभी कभी राधा कृष्णरूप धारण करती हैं सुतरां ब्रह्माजी उनको स्त्रीरूपी वा पुरुषरूपी कुछभी स्थिर न कर सके ॥ १०५ ॥ अन्तमें ध्यानद्वारा स्वीय हृदयपद्ममें स्थित कृष्णकी चिन्ता करके भक्ति भावसे उनकी स्तुति कर उनसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना की॥ १०६ ॥ तब श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ब्रह्माजीने फिर नेत्र खोल

एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम् ॥ प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥ ४ ॥ राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम् ॥ किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥ ५ ॥ हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥ ६ ॥ ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया ॥ ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षः स्थलस्थितम् ॥ ७ ॥ स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमंडलमंडितम् ॥ पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ८ ॥ तदभिप्रा यमाज्ञाय तानुवाच रमेश्वरः ॥ सर्वात्मा स च सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः ॥ १०९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आगच्छ कुशले ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते ॥ इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥ ११० ॥ आगता हि महाभागा गंगानयनकार णात् ॥ गगा च चरणांभोजे भयेन शरणं गता ॥ ११ ॥

कर देखा कि, श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें राधा विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ चारों ओर पार्षद और चारों ओर गोपीमण्डल है यह देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥ १०८ ॥ इस ओर उन सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर सर्व कारण रमापति श्रीकृष्णने उनके हृदयका भाव समझ प्रत्येकको पृथक् पृथक् संबोधन देकर कहा ॥ १०९ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन् ! तुम कुशलसे तो हो ? कमलापते ! आओ महादेव ! यहां आओ, तुम्हारा मंगल हो ॥ ११० ॥ तुम गंगाके निमित्त मेरे समीप आये हो, गंगाने

राधाके भयसे मेरे चरणमें शरण ली है ॥ १११ ॥ राधा गंगाको मेरे निकट बैठा देखकर इसको पान करनेमें उद्यत हुई थी जो हो मैं अब इसको तुम्हारे हाथमें समर्पण करता हूं, किन्तु तुम राधाके निकट प्रार्थना करके जिससे इसको अभयदान कर सको उसी विषयकी चेष्टा करो ॥ ११२ ॥ तब कमलयोनि ब्रह्मा श्रीकृष्णका वचन सुनकर कुछेक हँसे और फिर सबकी आराध्या कृष्णपूजिता राधाकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥११३॥ ऋगादि चारोंवेदके विधाता चतुरानन, धाताने भक्तियुक्त हो कन्धे झुकाय चारोंमुखसे राधाका स्तव करनेके पीछे उनसे

राधे मां पातुमिच्छंती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः ॥ दास्यामीमां च भवतां यूय कुरुत निर्भयाम् ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः ॥ तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम् ॥ १३॥ वक्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥ १४ ॥ चतुरानन उवाच ॥ गंगा त्वदंगसंभूता प्रभोश्च रासमण्डले ॥ युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शंकरस्वनात् ॥ १५ ॥ कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया ॥ त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥ १६ ॥ भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः ॥ भूस्था याः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः ॥ १७ ॥ गोलोकस्था च या गंगा सर्वत्रस्था तथांऽबिके ॥ तदंबिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा ॥ १८ ॥

कहा ॥ ११४ ॥ हे राधे ! गंगा तुम्हारे और इन प्रभुके अंगसे उत्पन्न हुई है पूर्वकाल के समय तुम दोनों रासमंडलमें शंकरका संगीत सुनकर आर्द्र हो गये थे तुम्हारी वह आर्द्रताही द्रवमयी गंगा है ॥ ११५ ॥ अतएव यह जब तुम्हारे और श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न है तब वह तुम्हारी कन्याके समान आदर करनेकी सामग्री है विशेषकर यह तुम्हारे मंत्रमें दीक्षित तुम्हारीही पूजा करती है ॥ ११६ ॥ चतुर्भुज वैकुंठनाथ उसके पति होंगे और जब अंशसे भूलोकमें अवतीर्ण होंगी तब लवणोदधि उसके पति होंगे ॥ ११७ ॥ हे मातः ! जो गंगा गोलोकविहा

रिणीहै वही सर्वत्र विहरिणी है हे देवेशि ! तुम उसकी माता हो वह सभी समयमें तुम्हारी कन्या है ॥ ११८ ॥ हे वत्स ! जब राधाने विधाताके वचन सुनकर कुछेक हास्यपूर्वक गंगाकी रक्षामें सम्मति दी तब वह श्रीकृष्णचरणके अंगुष्ठाग्रभागसे बाहर निकलीं ॥ ११९ ॥ अनंतर द्रवमयी गंगा अपनी मूर्ति धारणकर जलसे समुत्थित हो महा आदरसे उनके समीप वास करने लगीं ॥ १२० ॥ भगवान् ब्रह्माने वह गंगाका जल कुछ अपने कमंडलुमें और कुछ भगवान् चन्द्रशेखरके मस्तकमें धारण किया ॥ १२१ ॥ तब कमलयोनिने गंगाको राधामंत्रमें

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता ॥ बहिर्बभूव सा कृष्णपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ १९ ॥ तत्रैव सत्कृता शांता तस्थौ तेषां च मध्यतः ॥ उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२०॥ तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमंडलौ ॥ किंचिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धकृतशेखरः ॥२१॥ गंगायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः ॥ तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च ॥२२॥ सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा ॥ गंगा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह ॥२३॥ लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी ॥ एतानारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥२४॥ अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः ॥ सर्वकालस्य वृत्तांतं दुर्बोधमविपश्चितम् ॥ १२५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गृहाण गंगां हे ब्रह्मन्हे विष्णो हे महेश्वर ॥ शृणु कालस्य वृत्तांतं मत्तो ब्रह्मन्निशामय ॥२६॥

दीक्षित किया उसको सामवेदोक्त राधास्तोत्र राधाकवच राधाध्यान राधाकी पूजा विधि ॥ १२२ ॥ और राधाके पुरश्चरण प्रकरणकी शिक्षा प्रदान की उसीके अनुसार गंगा राधाकी पूजा करके उनके संग वैकुंठधाममें गईं ॥ १२३ ॥ हे मुनिवर ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वको पवित्र करनेवाली तुलसी यह चारों नारायणकी पत्नी हैं ॥ १२४ ॥ अनंतर श्रीकृष्ण कुछेक हँसकर विधाताके निकट दूसरेको कठिनतासे जानने योग्य कालका वृत्तान्त विस्तार सहित कहने लगे ॥ १२५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे महेश्वर ! हे विष्णो ! सम्प्रति तुम्हारे

१ यहां कन्याशब्द अलौकिक अर्थवाली कन्यामें है मनुष्योंके समान योनिप्रगटताका नहीं इससे मानुषी नियमका व्यवहार नहीं है यह दिव्य आविर्भाववाली देवी हैं इनके अनेक अंश आविर्भाव तिरोभाव अनेकरूपमें होते हैं ।

गंगाका ग्रहण और काल वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ १२६ ॥ तुम तीनजने और अन्यान्य देवता मुनि मनु सिद्ध और अपरापर जो सब महात्मा इस स्थानमें उपस्थित हैं ॥ १२७ ॥ वह सभी जीवित हैं क्योंकि इस गोलोकधाममें कालचक्रका प्रभाव नहीं है अबकल्पान्तकाल उपस्थित है इस समय सब विश्व जलमें मग्न हैं ॥ १२८ ॥ अतएव गोलोकधाम और वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त विश्वमें जो अपरापर ब्रह्मा विद्यमान थे वह सबही इस समय मेरे शरीरमें विलीन हुए हैं हे कमलयोने ! इस समय वैकुण्ठधाम और गोलोक धामके अतिरिक्त अन्य समस्तही जलमग्न हैं ॥ १२९ ॥ अब तुम जाकर फिर ब्रह्मलोकादिक्रमसे अपने ब्रह्माण्डकी रचना करो, तब गंगा

यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा ॥ सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥२७॥ एते जीवंति गोलोके कालचक्रविव र्जिते ॥ जलप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना ॥२८॥ ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाऽधुना मयि ॥ वैकुंठं च विना सर्वं जलमग्नं च पद्मज ॥२९॥ गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् ॥ स्वं ब्रह्मांडं विरचय पश्चाद्गंगा प्रयास्यति ॥१३०॥ एवमन्येषु विश्वेषु सृष्टौ ब्रह्मादिक पुनः ॥ करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥३१॥ गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः ॥ गताः कतिविधास्ते च भविष्यंति च वेधसः ॥३२॥ इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामांतःपुरे मुने ॥ देवा गत्वा पुनःसृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ गोलोके च स्थिता गंगा वैकुण्ठे शिवलोकके ॥ ब्रह्मलोके स्थिताऽन्यत्र यत्र यत्र पुरःस्थिता ॥३४॥

उस नवीन विरचित ब्रह्माण्डमें जायगी ॥ १३० ॥ सभी अन्यान्य विश्व और उन विश्वके ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करता हूं किंतु तुम शीघ्र देवताओंके संग अपना कार्य साधन करनेके निमित्त जाओ ॥ १३१ ॥ तुमको बहुत विलम्ब होगया है जितने ब्रह्मादिकोंका पतन हुआ है फिर सबकी उत्पत्ति होगी ॥ १३२ ॥ हे मुनिवर ! राधापति श्रीकृष्णने यह कहकर अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया इधर देवतालोग भी तत्काल वहांसे लौटकर फिर यत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ १३३ ॥ गंगाभी फिर पहलेके समान गोलोकधाम, वैकुण्ठधाम, शिवलोक,

ब्रह्मलोक और अन्यान्य जिस जिस स्थानमें पहिले वास किया था ॥ १३४ ॥ परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उसी स्थानमें वास करने लगी विष्णुके पाद पद्मसे निकलनेके कारण उनका नाम विष्णुपदी भी है ॥ १३५॥ हे द्विजवर ! यह मने अतिसुख कर मोक्षप्रद और सारभूत गंगाका उपाख्यान वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी वासना है सो प्रकाश करो ॥ १३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! गंगा, लक्ष्मी, सरस्वती और विश्वपावनी तुलसी, यह चारों ही

तत्रैव सा गता गंगा चाज्ञया परमात्मनः ॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता ॥ ३५ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगोपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी ॥ एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ॥ १ ॥ गंगा जगाम वैकुंठमिदमेव श्रुतं मया ॥ कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गंगा जगाम वैकुण्ठ तत्पश्चाज्जगतां विधिः ॥ गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राधा कृष्णांगसंभूता या देवी द्रवरूपिणी ॥ नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुंदरी वरा ॥ ४ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता ॥ तदंगसंभवा नाऽन्य वृणोतीयं च तं विना ॥ ५ ॥

नारायणकी प्रियतमा हैं ॥१॥ तिनमें गंगाने गोलोकधामसे वैकुण्ठमें गमन किया यह सुना, किंतु वह किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई ? यह नहीं सुना अतएव अब यही वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ नारायणने कहा जगत् स्रष्टा विधाता गंगाको आगे करके वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुए और वहां जगदीश नारायणको प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे प्रभो जो राधा कृष्णके अंगसे उत्पन्न नहीं है जो द्रवमयी नवयौवन सम्पन्न सुशील अलोक सामान्यरूपवती ॥ ४ ॥ शुद्ध सत्वस्वरूपा तथा क्रोध और अहंकार रहित हैं उन गंगाने कृष्णाङ्गसे उत्पन्न होनेके

कारण उनके अतिरिक्त और किसीको भी पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा नहीं करी ॥ ५ ॥ किन्तु राधा अत्यन्त अभिमानवती और अति उग्रस्वभाव है यही क्या वह गंगाको पान करनेमें उद्यत हुई थी ॥ ६ ॥ उसने राधाके भयसे तत्काल बुद्धिपूर्वक श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रवेश किया सुतरां सम्पूर्ण गोलोक जलरहित होगया है ॥ ७ ॥ यह देखकर मैं इसका विशेष वृत्तान्त जाननेके लिये गोलोकपति श्रीकृष्णके निकट गया तब सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने मेरे मनका भाव समझा॥८॥ तत्काल अपने चरणनखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाला और फिर राधा मन्त्रमें दीक्षित करके मेरे हाथमें समर्पण किया ॥९॥ मैं भी राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके गंगाको संग ले आपके निकट आया हूं, अब तुम

तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा ॥ समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् ॥६॥ विवेश चरणांभोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥ सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा ॥७॥ गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तांतप्राप्तये ॥ सर्वांतरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाऽऽभिप्रायमेव च ॥८॥ बहिश्चकार गंगां च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् ॥९॥ प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वाऽत्रागमं प्रभो ॥ गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् ॥ १० ॥ सुरेश्वरेषु रसिके रसिकेयं समागता ॥ ॥ त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती ॥ ११ ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥ उपस्थितां स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान् ॥ १२ ॥ ते विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः ॥ यो भवेत्पंडितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ॥१३॥ सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्य प्रकृतेः कलाः ॥ त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ १४ ॥

गांधर्व विधानसे इस सुरेश्वरी गंगाका पाणिग्रहण करो॥१०॥सुरसमाजमें तुम जैसे सुरसिक हो, यह भी वैसीही है पुरुष सम्प्रदायमें तुम जिस प्रकार रत्न हो यह भी उसी प्रकार रमणियोंमें रत्नस्वरूप है विशेषकर रसिकोंके संग रसिकोंका समागम अतीव सुखजनक है॥११॥ तुम स्वयं आई हुई इस कन्याको ग्रहण करो, जो उपस्थित कन्याको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ महालक्ष्मी रुष्ट हो उनको छोडकर चली जाती है, इसमें सन्देह नहीं है बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करते ॥ १३ ॥ पुरुष मात्रही सब प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और रमणी मात्रही प्रकृतिका

अंश हैं, सुतरां प्रकृति और पुरुष दोनों अभिन्न हैं अतएव परस्पर परस्परका अपमान करना कभी उचित नहीं है, यदि कहो कि " गंगा कृष्णासक्त हैं किस प्रकार मैं उसका पाणिग्रहण करूं?" तो इस विषयमें यह कहना है कि, श्रीकृष्ण जिस प्रकार गुणातीत और प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं तुम भी उसी प्रकार हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णका अर्द्धाङ्ग द्विभुज और अपर अर्द्धाङ्ग चतुर्भुज है अतएव श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भी भेद नहीं है राधिका श्रीकृष्णके वामाङ्गसे उत्पन्न हुई है ॥१५॥ सुतरां श्रीकृष्ण स्वयं दक्षिणांश और पद्मा उनका वामांश है जिस प्रकार राधा और कमला दोनोंमें कुछ भी भिन्नता नहीं है इसी प्रकार श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भेद नहीं है सुतरां तुम्हारे देहसे उत्पन्न होनेके कारण यह तुमको पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा करती हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष अभेदात्मक हैं इसी प्रकार स्त्री और

अर्धांगं द्विभुजः कृष्णो योऽर्धांगेन चतुर्भुजः ॥ कृष्णवामांगसंभूता बभूव राधिका पुरा ॥१५॥ दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशः कमला तथा ॥ तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा ॥१६॥ एकांगं चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥ इत्येवमुक्त्वा धाता तां तं समर्प्य जगाम सः ॥१७॥ गांधर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥ नारायणः करं धृत्वा पुष्पचंदनचर्चितम् ॥१८॥ रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितो मुदा॥गंगा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता ॥१९॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च॥ मूर्च्छां संप्राप सा देवी नवसंगमलीलया॥२०॥रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता॥ तां दृष्ट्वा दुःखिता वाणी पद्मया वर्जिताऽपि च२१॥

पुरुष दोनों एकात्मा हैं ब्रह्मा नारायणसे इस प्रकार कह गंगाको उनके हाथमें समर्पण कर वहांसे चले गये ॥ १७ ॥ इधर नारायणसे स्वयं गान्धर्व विधान द्वारा गंगाका पुष्पचन्दन चर्चित पाणिग्रहण किया ॥ १८ ॥ रमापति पद्माके समान गंगाके संग वैकुण्ठधाममें सुखसे विहार करने लगे गंगा सरस्वतीके शापसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर फिर वैकुण्ठ धाममें चलीगई थीं ॥ १९ ॥ वह विष्णुके पाद पद्मसे उत्पन्न हुई इसी कारण विष्णुपदीके नामसे विख्यात हुई हैं देवी गंगा नारायणके संग नवसमागमके कारण सुखमें एकान्त मूर्च्छित हुई थीं, यही क्या उसके शरीरमें स्पन्दमात्र नहीं रहा ॥२०॥ इस प्रकार रसिका गंगा रसिक चूडामणि नारायणके सहित मिलित होकर परमसुखसे काल व्यतीत करने लगी लक्ष्मीके

निवारण करनेपर भी गंगाके पतिसे सरस्वतीकी ईर्षा दूर न हुई ॥ २१ ॥ वह नित्य गंगाके प्रति विद्वेष प्रकाश करने लगी किन्तु गंगा उनके प्रति कुछ भी ईर्षा प्रकाश नहीं करती फिर अंतमें एक दिन बहुत विरक्त करनेसे गंगाने कुपित होकर सरस्वतीको भारतमें जन्मग्रहण करनेका शाप दिया ॥ २२ ॥ सुतरां लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा यह तीनों रमापति नारायणकी पत्नी हैं, अन्तमें देवी तुलसी भी उनकी पत्नी हुई थीं सुतरां सब समेत नारायणकी चार पत्नी हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! पतिपरायण तुलसी किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई कौन स्थान उनका जन्मभूमि है वह पूर्वजन्ममें कौन थीं उन्होंने

नित्यमीर्ष्यंति तां वाणी न च गंगा सरस्वतीम् ॥ गंगा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया ॥२२॥ गंगया सह तस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः ॥ सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रश्चाभवन्मुने ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह ॥ तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥ १ ॥ कस्य वा सा कुले जात स्य कन्या कुले सती ॥ केन वा तपसा सा च संप्राप्ता प्रकृतेः परम् ॥ २ ॥ निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम् ॥ नारायणं पर ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम् ॥ ३ ॥ सर्वा राध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ सर्वाधारं सर्व रूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥ ४ ॥ कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह ॥ कथ साप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥ ५ ॥

कौन कुल अलंकृत किया था ॥ १ ॥ और वह किसकी कन्या थी जो नारायण प्रकृतिके अतीत ॥ २ ॥ निर्विकार, निरीह (इच्छा रहित) विश्वात्मा परब्रह्म और परमेश्वर हैं, जो सबके ईश्वर ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ सर्व कारण सबके आधार पूजनीय सर्वव्यापी और सबके परिपालक हैं, तुलसीने किस तपस्याके फलसे उन नारायणको पतिलाभ किया ॥ ४ ॥ तुलसी ऐसी प्रधान देवी अर्थात् नारायणकी प्रिया होनेपर भी किस प्रकार वृक्षत्वको प्राप्त हुई ? किस प्रकार स्वय निरपराध होनेपर भी दुर्दान्त असुर अर्थात रावणके द्वारा ग्रस्त हुई ? ॥ ५ ॥

हे सन्देहभंजन ! मेरा निर्मल चित्त चंचल हो उठा है श्रवणपिपासा मुझको वारंवार व्याकुल करती है अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये॥६॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! दक्षसावर्णि मनु अत्यन्त पुण्यवान् विष्णुभक्त यशस्वी कीर्तिमान् और विष्णुके अंशसे उत्पन्न थे ॥७॥ दक्षसावर्णिके पुत्र ब्रह्मसावर्णि भी अतिशय धार्मिक विष्णुभक्त और शुद्धसत्व था ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णिभी विष्णुपरायण और जितेन्द्रिय थे ॥८॥ धर्मसावर्णिके पुत्र रुद्रसावर्णि भी जितेन्द्रिय और परमभक्त थे विष्णु परायण देवसावर्णि रुद्रसावर्णिके पुत्र थे ॥९॥ देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था इन्द्र सावर्णिके समान विष्णुभक्त अतिविरले हैं उनके ही पुत्रका नाम वृषध्वज है वृषध्वज घोरतर शैव थे ॥१०॥ शंकरने स्वयं उनके भवनमें देवमा

सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः ॥ छेत्तुमर्हसि संदेहं सर्वसंदेहभंजन ॥ ६ ॥ नारायण उवाच ॥ मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः ॥ यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥ ७ ॥ तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः ॥ तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेंद्रियः ॥८॥ तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेंद्रियः ॥ तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः ॥९॥ तत्पुत्र इंद्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः ॥ वृक्षध्वजश्च तत्पुत्रो वृक्षध्वजपरायणः ॥ १० ॥ यस्याश्रमे स्वयं शंभुरासीद्देव युगत्रयम् ॥ पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च ॥ ११ ॥ न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम् ॥ पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः ॥ १२ ॥ भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो बभज ह ॥ तथा माघीयपंचम्यां विस्तृतां सर्व देवतैः ॥ १३ ॥ पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः ॥ यज्ञं च विष्णुपूजां च निंदंतं तं दिवाकरः ॥ १४ ॥

नके तीन युगपर्यन्त वास किया था यही नहीं वरन् भगवान् भूतनाथ पुत्रसे भी अधिक उनपर स्नेह रखते थे ॥ ११ ॥ वृषध्वज नारायण, लक्ष्मी वा सरस्वती किसीको भी नहीं मानते, शंकरके अतिरिक्त और सब देवताओंकी पूजा एकवार ही छोड़ दी थी ॥ १२ ॥ उन्होंने उन्मत्त हो भादोंके महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजा और माघमासमें जो श्रीपंचमीकी पूजा ॥१३॥ जो सर्व देवसम्मत थीं. उन सरस्वतीकी पूजा एकवार ही छोड दी थी तब सूर्यने यज्ञरहित विष्णुविद्वेषी निन्दक ॥१४॥

सम्राट् वृषध्वजके प्रति कुपित होकर यह शाप दिया कि " हे राजन् ! जिस प्रकार तुम शुद्ध शिवभक्त हो और किसीको नहीं मानते, ऐसे ही मैं कहता हूं कि अचिरात् तुम भ्रष्टश्री होगे ॥ १५ ॥ देव शंकर शापकी बात सुनते ही कुपित हो स्वयं शूलास्त्र ग्रहण करके सूर्यके प्रति दौडे, तब सूर्यभयसे पिता कश्यपको संग लेकर ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥ १६ ॥ भगवान् शंकर क्रोधमें पूर्ण हाथमें त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकमें गये ब्रह्माजी महादेवके भयसे सूर्यको संग लेकर वैकुण्ठधाममें गये ॥ १७ ॥ भयसे ब्रह्मा कश्यप और सूर्यके कण्ठ तालु सूख गये वह वैकुण्ठ धाममें उपस्थित शरणागत हो भयसे ॥ १८ ॥ मस्तक झुकाय वारंवार स्तव करने लगे और अन्तमें उनसे भयका यथार्थ कारण कहा ॥ १९ ॥

चुकोप देवो भूपेंद्रं शशाप शिवकारणात् ॥ भ्रष्टश्रीस्त्वं च भवेति तं शशाप दिवाकरः ॥१५॥ शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छंकरः स्वयम् ॥ पित्रा सार्द्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१६॥ शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा ॥ ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया ॥१७॥ ब्रह्मकश्यपमार्तंडाः संत्रस्ता शुष्कतालुकाः ॥ नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया ॥१८॥ मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ ॥ १९ ॥ नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ ॥ स्थिरा भवत हे भीता भयं किं च मयि स्थिते ॥२०॥ स्मरंति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः ॥ तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥२१॥ पाताऽहं जगतां देवाः कर्ता च सततं सदा ॥ स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥२२॥ शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः ॥ विधाय नानारूपं च करोमि सृष्टिपालनम् ॥ २३ ॥

नारायणने सुनते ही दयाभावसे उनको अभय देकर कहा तुम, स्थिर होओ जो मेरे विद्यमान रहते तुम्हारे भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ २० ॥ जिस किसी स्थानमें पुरुष अवस्थान क्यों न करै यदि भयार्त्त हो मेरा स्मरण करै तो मैं तत्काल चक्रधारणपूर्वक वहां जाकर उसकी रक्षा करता हूं ॥ २१ ॥ हे देवगण ! मैं जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करता हूं मैं विष्णुरूपसे सब जगत्का पालन ब्रह्मरूपसे सब जगतकी सृष्टि और शिवरूपसे सब जगत्का संहार करता हूं ॥ २२ ॥ मैं ही शिव मैं ही तुम और मैं ही त्रिगुणात्मक सूर्य हूं

मैं ही अनेकप्रकारके रूप धारण करके जगत्को पालन करता हूं ॥ २३ ॥ तुम अपने स्थानको जाओ तुमको भय क्या है ? मैं कहता हूं आजसे तुम्हारा महा-देवजनित भय दूर हुआ ॥ २४ ॥ सर्वेश्वर भगवान् शंकर साधुओंकी गति हैं वह भक्ताधीन और भक्तवत्सल हैं ॥२५॥ सूर्य और शिव दोनोंही मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माण्डमें शंकर और सूर्यके समान तेजस्वी और कोई नहीं है ॥ २६ ॥ महादेवजी लीला पूर्वकही करोड सूर्य और करोड ब्रह्माकी सृष्टि कर सकते हैं प्रभु शूलपाणिको कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ २७ ॥ वह बाह्य (बाहरी) ज्ञानरहित होकर दिन रात मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं वह तद्गत चित्त हो भक्ति पूर्वक पंचमुखसे केवल

यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ॥ अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शंकरात् ॥२४॥ सर्वेशो वै भगवाञ्छंकरश्च सतां पतिः ॥ भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः॥२५॥ सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः ॥ ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ॥ २६ ॥ शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया ॥ कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः ॥२७॥ बाह्यज्ञानं नैव किंचिद्ध्यायते मां दिवानिशम् ॥ मन्मंत्रान्मद्गुणान्भक्त्या पंचवक्त्रेण गायति ॥ २८ ॥ अहमेवं चिंतयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् ॥ यथा च मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥२९॥ शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता॥ शिवं भवति तस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र जगाम शंकरः स्थितः ॥ शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥३१॥

मेराही मंत्र जप और मेरेही गुणोंका गान करते हैं ॥ २८ ॥ मैं भी दिन रात उनके कल्याणकी चिन्तामें रत रहता हूं मेरा जो जिस भावसे भजन करता है मैं भी उसके प्रति वैसाही अनुग्रह प्रकाश करता हूं ॥ २९ ॥ भगवान् महादेव शिवस्वरूप अर्थात् मंगलमय हैं, वह शिवके अर्थात् मोक्षके अधिष्ठात्री देवता हैं उनसे शिव अर्थात् मोक्षपद लाभ होता है इसी कारण पण्डि तोंने उनको "शिव" नाम प्रदान किया है ॥ ३० ॥ हे वत्स नारद ! नारायण इस प्रकार कहते ही थे कि, इसी अवसरमें

रक्तपद्मके समान लोहितनेत्र किये बैलपर चढे शूलधारी महादेवजी वहां आनकर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ और बलसे उतर भक्तिभावसे कंधे झुकाय उन शान्त प्रकृति परात्पर लक्ष्मीकान्तको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ लक्ष्मीकान्त इस समय रत्नमय गहनोंसे विभूषित होकर रत्नसिंहासन पर विराजमान थे उनके मस्तकमें किरीट कानमें दो कुण्डल ददीप्यमान, हाथमें चक्रास्त्र गलेमें वनमाला ॥ ३३ ॥ वर्ण नवीन नीले मेघके समान श्याममूर्त्ति अतीव मनोहर चतुर्भुज पार्षद चारों हाथोंसे श्वेत चामर बीजन करते थे ॥ ३४ ॥ सर्वाङ्गमें चन्दन विलेपन और परिधान पीताम्बर था वह परमात्मा भक्तवत्सल भगवान् रत्नसिंहासन पर बैठे पद्माका दिया ताम्बूल चर्वण और हास्यवदनमें विद्याधरि

अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ननाम भक्त्या तं शांतं लक्ष्मीकांतं परात्परम् ॥ ३२ ॥ रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥ ३३ ॥ नवीननीरदश्यामं सुंदरं च चतुर्भुजम् ॥ चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं भूषितं पीतवाससम् ॥ लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवंतं च नारद ॥ ३५ ॥ विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं सदा ॥ ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ३६ ॥ तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा नमितश्च सः ॥ ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चंद्रशेखरम् ॥३७॥ कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च ॥ शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥ ३८ ॥ सुखासने सुखासीनं विश्रांतं चंद्रशेखरम् ॥ श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥ ३९ ॥ पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम् ॥ ४० ॥

योंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महादेवजीने उपस्थित होकर जैसेही नारायणको प्रणाम किया उसी समय उन ब्रह्माने भी भूतनाथको प्रणाम किया सूर्य भी तटस्थ होकर भक्तिभावसे उन चन्द्रशेखरके चरणोंमें अवनत हुए ॥ ३७ ॥ फिर कश्यपजीभी महाभक्ति युक्त हो उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे इस ओर भगवान् शंकर भी नारायणकी स्तुति करके सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ चन्द्रशेखरके आसनपर बैठनेसे नारायणके पार्षद श्वेत चामर लेकर उनको वीजन करने लगे ॥ ३९ ॥ इसी समय विष्णुने

अमृतधारावर्षी मधुर स्वर द्वारा शंकरसे कहा विष्णु बोले हे महेश्वर ! यहां आनेका कारण क्या है किस निमित्त कुपित हुए हो ? ॥ ४० ॥ महादेवजी बोले हे विष्णो ! राजा वृषध्वज मेरा परमभक्त है, इस कारण मेरे प्राणोंसे भी प्रिय है भास्कर उसको शाप देना मेरे क्रोधके कारण हुए हैं ॥ ४१ ॥ पुत्रस्नेहके वश में अतिशय दुःखित होकर सूर्यका वध करनेमें उद्यत हुआ हूं सूर्य प्रथम तो ब्रह्माकी शरणागत हुए थे किन्तु अब विधाताको संग लेकर आपके निकट आये हैं ॥ ४२ ॥ जो विषण्ण (दुखी) होकर मनसे वा वचनसे तुम्हारी शरणागत होता है, वह एकवार ही निरापद और शंकारहित हो जाता है, बरन् जरा, मृत्यु वर्जित होता है ॥ ४३ ॥ और जो स्वशरीरसे तुम्हारी शरणागत होता है, उसको

महादेव उवाच ॥ वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकं प्रियम् ॥ सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम् ॥ ४१ ॥ पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हंतुं समुद्यतः ॥ स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च स विधिस्त्वयि ॥ ४२ ॥ त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा ॥ निरापदो विशंकास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः ॥ हरिस्मृतिश्चाभयदा [illegible] सदा ॥ ४४ ॥ किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो ॥ श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥ ४५ ॥ [illegible] ॥ कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः ॥ वैकुण्ठे घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम् ॥ ४६ ॥ वृषध्वजो मृतः [illegible]दारुणात् ॥ रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः ॥ ४७ ॥

जैसा फल प्राप्त होता है, उसका क्या वर्णन करूं वास्तवमें हरिका स्मरण करनेसे कोई भय नहीं रहता बरन् सदा सब प्रकार मंगल लाभ होता है ॥ ४४ ॥ हे जगत् प्रभो ! आप अब बताइये सूर्यके शापसे हतश्री हुए मेरे मूढ भक्तका उपाय क्या होगा ॥ ४५ ॥ विष्णुने कहा हे शंकर ! [illegible] कारण वैकुण्ठमें आनेसे इस आधीघडीमें मर्त्यलोकके मध्य इक्कीस युग बीत गये हैं अब तुम शीघ्र अपने स्थानको जाओ ॥ ४६ ॥ [illegible] दारुण कालके प्रभावसे वृषध्वजको लोकान्तर प्राप्त हुआ है, उसका पुत्र रथध्वज भी हतश्री होकर कराल कालकवलमें

निपतित हुआ है ॥ ४७ ॥ रथध्वजके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो महाभाग पुत्रोंने जन्म लिया है वह दोनोंही परम वैष्णव हैं, किन्तु सूर्यके शापसे हतश्री हुए हैं ॥४८॥ वह राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे महालक्ष्मीकी आराधनामें अनुरक्त हुए हैं, महालक्ष्मी उन दोनोंकी भार्याओंके शरीरसे अंशमें अवतीर्ण होंगी ॥ ४९ ॥ तब फिर धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों लक्ष्मीके अनुग्रहसे सम्पद्युक्त होकर नृपश्रेष्ठ होंगे हे शम्भो ! तुम्हारा सेवक वृषध्वज कालकवलमें पतित हुआ है अतएव तुम अपने स्थानको जाओ हे ब्रह्मन् ! हे भास्कर ! हे कश्यप ! तुम भी अपने अपने स्थानको जाओ ॥ ५० ॥ हे वत्स नारद ! भगवान् विष्णु इस प्रकार कहकर भार्याके सहित सभासे अन्तःपुरमें चलेगये और देवताओंने भी परमानन्दसे अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ और इस ओर पूर्णतम महादेवजी भी तपस्या करनेके लिये तत्काल वहां चले गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारायणने कहा हे देवर्षे ! धर्मराज और कुशध्वज दोनोंने घोर तपस्या द्वारा लक्ष्मीकी आराधना करके उनसे अभिमत (वांछित) वर लाभ किया ॥ १ ॥ इस वरसे वह फिर पृथ्वीश्वर हो गये, उनके पुण्यकी सीमा न रही दोनोंही पुत्रमुख देखनेमें अधिकारी हुए ॥ २ ॥ कुशध्वजकी पत्नीका नाम

तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ हृतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ परमवैष्णवौ ॥ ४८ ॥ राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातपसा रतौ ॥ तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति ॥४९॥ संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः ॥ मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यंतरं गतः ॥ देवा जग्मुः संप्रहृष्टाः स्वाश्रमं परमं मुदा ॥५१॥ शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शक्तिप्रादुर्भावे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने ॥ वरमिष्टं च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ॥ १ ॥ महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः ॥ पुण्यवंतौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ २ ॥ कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती ॥ सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ॥ ३ ॥

मालावती था सती मालावतीने बहुत कालके पीछे कमलाका अंश स्वरूप एक कन्या उत्पन्न की ॥ ३ ॥ यह कन्या लक्ष्मीका अंश होनेके कारण जन्मतेही ज्ञानपूर्ण हुई और उत्पन्न होते ही सूतिका गृहसे स्पष्ट वेद पाठ कर उठी ॥ ४ ॥ जो कि उसने वेद ध्वनि की इसी कारण पंडितोंने उसको वेदवती संज्ञा प्रदान की थी ॥ ५ ॥ वह जन्म लेनेके पीछे स्नान करके तपके अर्थ वन जानेमें उद्यत हुई, जानेके समय उस नारायण परायणा वेदवतीको यत्नपूर्वक सबने ही निषेध किया किन्तु उसने किसी प्रकार भी उनकी बातोंपर कान नहीं दिया ॥ ६ ॥ एक मन्वन्तर कालतक पुष्करमें जाकर लीलासेही उसने अति दुष्कर तपस्या की ॥ ७ ॥ तो भी उसका शरीर कुछ क्षीण नहीं हुआ बरन्

सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह ॥ कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात ॥ ४ ॥ वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका ॥ तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ५ ॥ जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम् ॥ सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥ एकमन्वंतरं चैव पुष्करे च तपस्विनी ॥ अत्युग्रां च तपस्यां च लीलया हि चकार सा ॥ ७ ॥ तथाऽपि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता ॥ शुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम् ॥ ८ ॥ जन्मांतरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम् ॥ ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि ॥ ९ ॥ इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः ॥ अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गंधमादने ॥ १० ॥ तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा ॥ ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल ॥ सुस्वादभूतं च फलं जलं चापि सुशीतलम् ॥ १२ ॥

क्रमसे मोटा होने लगा क्रमानुसार शरीरमें नवयौवनका आविर्भाव हुआ ॥ ८ ॥ एक दिन यह आकाशवाणी उसके कर्णमें प्रविष्ट हुई कि " हे सुन्दरि ! जन्मान्तरमें ब्रह्मादि वंदित श्रीहरि स्वयं तुम्हारे स्वामी होंगे " ॥ ९ ॥ यह बात सुनतेही वेदवतीके आनन्दकी सीमा न रही, वह फिर गंधमादन पर्वतके निर्जन प्रदेशमें बैठकर तप करने लगी ॥ १० ॥ बहुत काल तपस्या करते करते एक दिन दुर्निवार रावण अतिथि वेषमें वहां उपस्थित हुआ ॥ ११ ॥ वेदवतीने देखतेही अतिथिभक्ति वशतः उसको पैर धोनेको जल स्वादिष्ट फल और शीतल

पानी दिया ॥ १२ ॥ पापिष्ठने आतिथ्य स्वीकार पूर्वक उसके समीप बैठकर पूँछा कि, हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? ॥ १३ ॥ वह दुराचारी उस (पुष्ट नितम्बवाली) पीनपयोधर सम्पन्न शरत्पंकजवदना हास्यमुखी सुदती सुन्दरीको देखकर ॥ १४ ॥ कामबाणसे जर्जरित होगया बाह्यज्ञान एकवारही तिरोहित होगया और वह पापाशय वेदवतीको आकर्षण करके बलात्कार करनेमें उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ सती वेदवतीने यह देखकर कुपित हो अपने तपके प्रभावसे उसको स्तम्भित किया, अधिक क्या वह जडके समान बैठा रहा उसको हाथ पैरादि चलाने वा बोलनेकी भी सामर्थ्य न रही ॥१६॥ तब दुरात्मा मनही मनमें पद्मपलाश लोचना सती वेदवतीका स्तव करने लगा, पराशक्तिकी स्तुति कभी

तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥ शरत्पद्मोत्सवास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥ १४ ॥ मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः ॥ स करेण समाकृष्य शृंगारं कर्तुमुद्यतः ॥ १५ ॥ तीस चुकोप दृष्ट्वा त स्तंभितं च चकार ह ॥ स जडो हस्तपादैश्च किंचिद्वक्तुं न च क्षमः ॥ १६ ॥ तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम् सकी तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतं च चकार ह ॥ १७ ॥ सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबांधवः ॥ स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्बलं चाप्यवलोकय ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्याग चकार सा ॥ गंगायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ ॥ १९ ॥ अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वाऽनयाऽधुना ॥ इति संचिंत्य संचिंत्य विललाप पुनः पुनः ॥ २० ॥

व्यर्थ होनेवाली नहीं है, उन्होंने सतुष्ट होकर उसको परलोकप्रद सुकृति प्रदान की ॥ १७ ॥ किंतु उसके द्वारा यह शाप दिया गया " जब तन कामके वशीभूत होकर मेरे अंगको स्पर्श किया है. तब मेरे लियेही तुझको वंश सहित ध्वंस होना पडेगा. इस समय मेरी कितनी सामर्थ्य है, देख " ॥ १८ ॥ हे वत्स नारद ! वेदवतीने रावणसे यह बात कहकर योग बलसे देह त्याग किया, तब रावण वेदवतीका वह देहगंगाके जलमें डालकर अपने भवनको चला गया ॥ १९ ॥ किंतु

" क्या आश्चर्य देखा" इस रमणीने किस अद्भुत कार्यका अनुष्ठान किया ? रावण वारंवार यह चिंता करके विलाप करने लगा ॥२०॥ हे वत्स ! पवित्रस्वभाव यह वेदवतीने ही एक समयमें जनकात्मजा सीता होकर जन्म ग्रहण किया था, इस सीताके निमित्त ही रावण वंश समेत मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥२१॥ इस तपस्विनीनेही जन्मान्तरीय तपके प्रभावसे रामचन्द्ररूपी पूर्णतम हरिको पतिलाभ ॥ २२ ॥ और बहुत काल तक उन दुराबध्य जगतपतिके संग परम सुखसे काल विताया ॥ २३ ॥ उन्होंने जातिस्मरा होनेपर भी पूर्वजन्मकृत कठोर तपस्याका क्लेश कुछ भी अनुभव नहीं किया क्योंकि कष्ट सफल होनेपर कष्टको कष्ट कहकर बोध नहीं किया जाता ॥ २४ ॥ नवयौवना

सा च कालांतरे साध्वी बभूव जनकात्मजा ॥ सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः ॥ २१ ॥ महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मतः ॥ लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २२ ॥ संप्राप तपसाऽऽराध्यं दुराराध्यं जगत्पतिम् ॥ सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी ॥ २३ ॥ जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा ॥ सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले ॥२४॥ नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती ॥ संप्राप्य सुकुमारं तमतीव नवयौवना ॥ २५ ॥ गुणिनं रसिकं शांतं कांतं देवमनुत्तमम्॥ स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम् ॥२६॥ पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसंधो रघूद्वहः ॥ जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा ॥ २७ ॥ तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः ॥२८॥ रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह ॥ उवाच किंचित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः ॥ २९ ॥

सीता सुकुमार शांत सुरसिक सर्वप्रधान देवस्त्रियोंमें मनोहर गुणवान अभिलाषित पतिलाभ करनेसे बहुत काल अनेक प्रकारके सौभाग्य सुखभोग करने लगी ॥ २५ ॥ २६ ॥ किंतु बलवान्कालकी गति दुर्निवार है कालके प्रभावसे पिताका सत्य पालन करनेके निमित्त उन सत्यप्रतिज्ञ रघुकुल धुरन्धर श्रीरामचन्द्रजीको वनवासका आश्रय लेना पडा ॥ २७ ॥ वह सीता और लक्ष्मणके संग समुद्रके तटपर वास करने लगे एक समय हुताशन ब्राह्मणका वेष धारण करके उनके समीप आये ॥ २८ ॥ ब्राह्मणरूपी वैश्वानर श्रीरामचंद्रजीको दुःखित

देखकर स्वयं दुःखित हुए और उन्हीं सत्यपरायण हुताशनने सत्यस्वरूप रामचन्द्रजीसे कहा ॥ २९ ॥ द्विज बोले हे भगवन् श्रीरामचन्द्रजी ! जैसा समय आया है, सो कहता हूं सुनो तुम्हारी सीता हरीजानेका समय उपस्थित है ॥ ३० ॥ दैवकी गति दुर्निवार है. दैवसे बलवान् दूसरा अन्य कोई नहीं है, इस कारण तुम जगज्जननी सीताको मेरे हाथमें समर्पण करो और इस समय इस छायारूपी सीताको अपने समीप रक्खो ॥ ३१ ॥ जब सीताकी परीक्षाका समय उपस्थित होगा, तब मैं इसको पुनर्वार तुम्हें समर्पण करूंगा देवताओंने मिलकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है मैं यथार्थमें ब्राह्मण नहीं हूं, मैं अग्नि हूं ॥३२॥ श्रीरामचन्द्रजी अग्निके वचन सुनकर उनमें सम्मत हुए, किन्तु उनका

भगवञ्छ्रूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः ॥ सीता हरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः ॥३०॥ दैवं च दुर्निवार्यं च न च दैवात्परो बली ॥ जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षांतिकेऽधुना ॥३१॥ दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः ॥ देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः ॥३२॥ रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् ॥ स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता ॥३३॥ वह्नियोगेन सीताया मायासीतां चकार ह ॥ तत्तुल्यगुणसर्वांगां ददौ रामाय नारद ॥३४॥ सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च ॥ लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥ ३५ ॥ एतस्मिन्नंतरे रामो ददर्श कानकं मृगम् ॥ सीता तं प्रेरयामास तदर्थं यत्नपूर्वकम् ॥ ३६ ॥

हृदय विदीर्ण होने लगा उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह सब बात कुछ न कहा ॥ ३३ ॥ अग्निने योगबलसे माया सीताको उत्पन्न किया हे वत्स नारद ! वह माया सीता सब अंगोंमें प्रकृत सीताके समान हुई, तब उन्होंने वह मायारूपी सीता श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें समर्पण करी ॥३४॥ हुताशन प्रकृत सीताको ग्रहण पूर्वक "यह बात किसी प्रकार भी दूसरेके निकट प्रकाशित न हो" यह कहकर चले गये इधर दूसरेकी बात तो क्या कहैं; लक्ष्मण भी उस बातको कुछ न जानसके ॥ ३५ ॥ एक दिन सहसा एक सुवर्णमृग श्रीरामचन्द्रजीको दिखाई दिया सीताने उस

सुवर्णमृगके लिये यत्नपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीको भेजा ॥ ३६ ॥ सुतरां वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणजीको वहां रख स्वयं शीघ्रतासहित वहां जाय एक बाणसे उस स्वर्णमृगको बींध डाला ॥ ३७ ॥ विद्ध होते ही उस माया मृगने "हा लक्ष्मण !" कहकर ऊंचे स्वरसे चीत्कार करके सामने खडे हरिका दर्शन और हरिनाम स्मरण करते करते प्राणत्याग किया ॥ ३८ ॥ तब उसका वह मृग देह दूर होकर दिव्यमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ वह रत्ननिर्मित विमानमें चढ़कर वैकुण्ठ धाममें गया ॥ ३९ ॥ यह मायामृग पूर्वमें वैकुण्ठके दो द्वारपालोंका किंकर था, किन्तु कार्यवश राक्षसयोनि पाई थी, इस समय भगवान् भक्तहितकारी असुरारी कौशल्यानन्दवर्द्धक श्रीरामचन्द्रजीके

संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने ॥ स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च ॥ ३७ ॥ लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः ॥ प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन् ॥ ३८ ॥ मृगदेहं परित्यज्य दिव्य रूपं विधाय च ॥ रत्ननिर्माणयानेन वैकुंठं स जगाम ह ॥३९॥ वैकुंठलोकद्वार्यासीत्किंकरो द्वारपालयोः ॥ पुनर्जगाम तद्द्वारमा देशाद्द्वारपालयोः ॥ ४० ॥ अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम् ॥ तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ ॥ ४१ ॥ गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः ॥ सीतां गृहीत्वा प्रययौ लंकामेव स्वलीलया ॥ ४२ ॥ विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् ॥ तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छां संप्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः ॥ पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम् ॥ ४४ ॥

हाथसे मृत्युको प्राप्त हो फिर उन्हीं वैकुण्ठके दोनों द्वारपालोंका किंकर हुआ ॥४०॥ इधर देवी सीताने "हा लक्ष्मण !" यह आर्तनाद सुनते ही अत्यन्त कातर हो लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्रजीके निकट भेजा लक्ष्मणके आश्रमसे बाहर होते ही दुर्निवार रावण सीताको लेकर अत्यानन्दसे लंकापुरीको चलागया ॥ ४१ ॥४२॥ इस ओर श्रीरामचन्द्रजी वनमें लक्ष्मणको आया हुआ देख विषादसागरमें निमग्न हुए और काल व्यतीत न कर अपने आश्रममें आयेफिर सीताको न देखा ॥ ४३ ॥ तब तत्काल मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गये बहुत देर पीछे चेत होनेपर विलाप

करते करते इधर उधर उसकी खोजमें विचरने लगे ॥ ४४ ॥ कुछ दिनों पीछे गोदावरीके तटपर उसकी सुधि पाय वानर सैन्यकी सहायतासे समुद्रमें पुल बांधा ॥ ४५ ॥ फिर सेनासहित लंकामें प्रवेश करके बाणोंके द्वारा रावणको बांधवोंसहित मार डाला ॥ ४६ ॥ अनन्तर सीताकी अग्नि परीक्षाका समय उपस्थित हुआ तिस काल हुताशनने श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें प्रकृत सीताको समर्पण किया ॥४७॥ तब छाया सीतने विनीत भावसे अग्नि और श्रीरामचन्द्रजीसे कहा हे प्रभो ! अब मैं क्या करूं इसका उपाय बताइये ॥ ४८ ॥ अग्नि और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने

कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरीनदीतटे ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबंध सागरं हरिः ॥ ४५ ॥ लंकां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च ॥ कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बांधवैः सह ॥४६॥ तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम् ॥ हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ ॥ ४७ ॥ उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता ॥ करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥ ४८ ॥ श्रीरामाग्नी ऊचतुः ॥ त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम् ॥ कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ॥ ४९ ॥ सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः ॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह ॥ ५० ॥ सा च कालेन तपसा यज्ञकुंडसमुद्भवा ॥ कामिनी पांडवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥५१॥ कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा ॥ त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥५२॥ तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा ॥ त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये॥५३॥

छाया सीतासे कहा हे देवि ! तुम तपाचरणके लिये पुण्यप्रद पुष्करतीर्थमें जाओ वहां कुछ काल तप करके सहजमेंही स्वर्गलक्ष्मी होसकोगी॥४९॥ छायारूपी सीता यह बात सुन दिव्य तीन लाखवर्ष पर्यन्त पुष्करमें तपस्या कर स्वर्गलक्ष्मी हुई ॥ ५० ॥ अंतमें यह स्वर्गलक्ष्मी ही एकसमय यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुई यही द्रुपदकी कन्या होकर पांचों पांडवोंकी पत्नी हुई थी ॥ ५१ ॥ वही सत्ययुगमें कुशध्वजकी कन्या वेदवती त्रेतायुगमें जनककन्याके रूपसे रामपत्नी ॥ ५२ ॥ और द्वापरमें उसकी छाया द्रुपदात्मजा द्रौपदीनामसे उत्पन्न हुई, यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीनों

युगोंमें विद्यमान रहती है इस कारण उनको त्रिहारिणी कहते हैं ॥ ५३ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे मुनिपुंगव ! हे संदेहभञ्जन ! द्रौपदीके पांच पति क्यों हुए इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, अतएव आप मेरे संशय छेदन कीजिये ॥ ५४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे ! जब लंकापुरीमें प्रकृतसीता रामके समीप उपस्थित हुई तब अग्निदत्ता छायारूपी नवयौवन सीता अत्यंत व्याकुल होनेपर ॥५५॥अग्निदेव और श्रीरामचंद्रजी दोनोंने उसको पुष्करमें जाय शंकरके आराधना करनेकी अनुमति । दी अनंतर छायारूपी सीताने पुष्करमें तपस्या करते करते कामातुर और श्रेष्ठ पति प्राप्त होनेके लिये अत्यंत व्यग्र हो श्रीमहादेवजीके निकट बारंबार ॥५६॥ अर्थात् पांचवार "मुझको

नारद उवाच ॥ प्रियाः पंच कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव ॥ इति मच्चित्तसंदेहं भंज संदेहभंजन ॥ ५४ ॥ नारायण उवाच ॥ लंकायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद ॥ रूपयौवनसंपन्ना छाया च बहुचिंतया ॥ ५५ ॥ रामाग्न्योराज्ञया तप्तुमुपास्ते शंकरं परम् ॥ कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयंती पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन ॥ पतिं देहि पतिं देहि पंचवारं चकार सा ॥ ५७ ॥ शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः ॥ प्रिये तव प्रियाः पंच भविष्यंति वरं ददौ ॥ ५८ ॥ तेन सा पांडवानां च बभूव कामिनी प्रिया ॥ इति ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु ॥ ५९ ॥ अथ संप्राप्य लंकायां सीतां रामो मनोहराम् ॥ विभीषणाय तां लंकां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥ ६० ॥ एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते ॥ जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुंठमेव च ॥ ६१ ॥

पति प्रदान करो" कहकर प्रार्थना करी॥५७॥ रसिकचूडामणि शिवजीने यह कामना सुनकर "हे प्रिये ! तुम पांच पतिप्राप्त करोगी" यह कहकर उसको वर दिया॥५८॥ इसी कारण वह पांच पांडवोंकी प्रियतम भार्या हुई थीं, हे वत्स नारद ! यह मैंने तुम्हारे निकट विस्तार सहित सब विषय वर्णन किया, अब दूसरी वास्तविक कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥५९॥लंकाका युद्ध समाप्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी मनोहारिणी प्रियतमा पत्नी सीताको पाय विभीषणको लंकाके राज्यसिंहासनपर बैठाय स्वयं फिर अयोध्यामें आये॥६०॥फिर ग्यारह हजार वर्षपर्यंत भारतमें आधिपत्य विस्तार

कर अन्तमें फिर सब प्रजाओंके सहित वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुए॥६१॥ लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न वेदवती भी कमलाके शरीरमें विलीन हुई हे वत्स ! यह मैंने तुमसे वेदवतीका पवित्र उपाख्यान वर्णन किया इसके सुननेसे पापध्वंस और पुण्यका संचार होता है ॥६२॥ ऋगादि चारों वेद मूर्तिमान् होकर वेदवतीके जिह्वाग्रमें विराजमान थे, इसी कारण उसका नाम वेदवती हुआ है॥ ६३॥ यह मैंने तुम्हारे निकट कुशध्वजकी कन्या वेदवतीका वृत्तान्त वर्णन किया, अब धर्मध्वजकी कन्या तुलसीका वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ॥६४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था माधवी गंधमादन

कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा ॥ कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥ ६२ ॥ सततं मूर्तिमंतश्च वेदाश्चत्वार एव च ॥ संति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती श्रुता ॥ ६३ ॥ धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवी भागवते महा० नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता ॥ नृपेण सार्धं साऽऽरामे रेमे च गंधमादने ॥ १ ॥ शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचंदनचार्चिताम् ॥ चंदनालिप्तसर्वाङ्गी पुष्पचंदनवायुना ॥ २ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी रत्नभूषणभूषिता ॥ कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता ॥ ३ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ गतं दैवं वर्षशतं न ज्ञातं च दिवानिशम् ॥ ४ ॥

पर्वतपर जाकर राजा धर्मध्वजके संग परमसुखसे विहार करने लगी ॥ १ ॥ वहां पुष्पोंसे अलंकृत और चंदनविलिप्त रतिशय्या प्रस्तुत हुई स्वयं सर्वाङ्गमें चन्दनविलेपन किया पुष्प और चन्दन गंध समायुक्त सुस्निग्ध वायु सब शरीरको शीतल करने लगा ॥ २ ॥ माधवी एक स्त्रीरत्न थी, उसका सर्वाङ्ग अति मनोहर था इस पर भी फिर सब रत्नमय भूषण पहिरे हुई थी वह जैसी रसिका थी, नरपति भी वैसेही रसिक चूडामणि थे बोध होता है मानो विधाताने धर्मध्वजके लिये ही अनुरूप रसिका कामुकी को उत्पन्न किया है ॥३॥ दोनों ही रतिविशारद थे, सुतरां सुरतिमें किसीकी भी विरति नहीं थी इस कार्यके उपलक्षणमें देवमानके एक शतवर्षपर्यंत दिनरात्रि किधर होकर बीत गये, वह यह कुछभी

न जान सके ॥ ४ ॥ अनंतर नरपतिको चेत हुआ, तब वह रति कार्यसे विरत हुए किंतु कामातुरा सुन्दरी माधवीकी इससे कुछ भी तृप्ति न हुई ॥५॥ जो हो दैवयोगसे उसने गर्भवती होकर शतवर्ष पर्यंत गर्भधारण किया गर्भमें लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ, इस कारण दिन दिन शरीरकी कांति बढने लगी ॥ ६ ॥ अनंतर शुभदिन, शुभक्षण, शुभयोग, शुभलग्न, शुभअंश एव शुभस्वामी और ग्रहयोगके उपस्थित होनेपर ॥७॥ कार्त्तिकी पूर्णिमा शुक्रवारमें लक्ष्मी अंश संभूत एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥ ८ ॥ कन्याका मुखमंडल शरद्के पूर्ण चन्द्रमाके समान और दोनों नेत्र शारदीय कमलकी शोभा विस्तार करते थे, अधर और ओष्ठ पक्व विम्बाफलकी शोभा प्रकाशित करते थे, कन्या उत्पन्न

ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च ॥ कामुकी सुंदरी किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा ॥५॥ दधार गर्भं सा सद्यो दैवाद्ब्दशतं सती ॥ श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिनेदिने ॥ ६ ॥ शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते ॥ शुभलग्ने शुभांशे च शुभ स्वामिग्रहान्विते ॥ ७ ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पाद्मज ॥ सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम् ॥ ८ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यां शरत्पंकजलोचनाम् ॥ पक्वबिंबाधरौष्ठीं च पश्यंतीं सस्मितां गृहम् ॥ ९ ॥ हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् ॥ तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितंबयुगवर्तुलाम् ॥१०॥ शीते सुखोष्णसर्वांगीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् ॥ श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमंडलाम् ॥ ११ ॥ पीतचंपकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुंदरीम् ॥ नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः ॥ १२ ॥

होते ही हास्य वदनसे सूतिकागृह (सोवर) को देखने लगी ॥ ९ ॥ उसके करतल (हथेली और पदतल (पैरके तलुए) लालवर्ण थे नाभि गहरी और उसके निम्नदेशमें त्रिवली विराजमान तथा नितम्ब गोलाकार थे ॥ १० ॥ शीतकालमें उस श्यामाङ्गीका शरीर उष्णस्पर्श और ग्रीष्ममें शीतल तथा सुखस्पर्श था. केशकलाप न्यग्रोध जटाके समान लम्बे थे ॥११॥ उसका वर्ण पीतचम्पकके समान समुज्ज्वल था वह सब रमणी रत्नोंमें प्रधान रत्न थी नर और नारीगण उसके शरीरके सौन्दर्यकी तुलना देनेमें असमर्थ जानकर ॥१२॥

महर्षियोंने उसका तुलसी नाम रक्खा, वह उत्पन्न होतेही योग्य स्त्री प्रकृतिके समान प्रतीयमान होनेलगी ॥ १३ ॥ वारंवार सब उसको निषेध करने लगे, तो भी वह तपस्याके अर्थ बदरीवनमें चली गई वहां उसने देवमानके लक्ष वर्षतक कठोर तपस्या करी ॥ १४ ॥ नारायणके पतिलाभ करना ही उसकी तपस्याका प्रधान उद्देश्य था वह ग्रीष्ममें पंचतपा, शीतमें सलिलस्था और वर्षाके समय अनावृत (उघडे) स्थानमें बैठकर ॥१५॥ दिनरात धारापात सहने लगी बीसहजार वर्ष केवल फल और जलाशनमें बीतगये ॥ १६ ॥ तीसहजार वर्ष केवल वृक्षके पत्तेमात्र आहार किये चालीस सहस्र वर्ष उपस्थित होनेपर वायुमात्र भक्षण करनेके कारण दिन दिन शरीर दुबला होने लगा ॥१७॥ अनंतर दशहजार वर्ष काल एक

तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदंति मनीषिणः ॥ सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्रीप्रकृतिर्यथा ॥१३॥ सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥ तत्र देवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः ॥ १४ ॥ मनसा नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता ॥ ग्रीष्मे पंचतपाः शीते तोयवस्त्रा च प्रावृषि ॥ १५ ॥ आसनस्था वृष्टिधारां सहंतीति दिवानिशम् ॥ विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ॥ १६ ॥ त्रिंशत्सहस्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी ॥ चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी ॥ १७ ॥ ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥ निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः ॥१८॥ समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥ चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् ॥ १९ ॥ तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं वृणीष्व तुलसि यत्ते मनसि वांछितम् ॥ २० ॥ हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि ॥ तुलस्युवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वांछितम् ॥ २१ ॥

वारही सब आहार छोड जब लक्ष्य विहीन होकर एक पैरसे खडी हुई उसी समय कमलयोनि ब्रह्माजी ॥१८॥ यह देखकर वर देनेके लिये वहां आये तब देखते ही तुलसीने तत्काल हंसवाहन चतुराननको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तब जगत्कर्ता विधाताने उससे कहा हे देवि तुलसी ! मनोवांछित वर मांगो ॥ २०॥ तुम हरिभक्ति हरिदास्य, अजरता और अमरता इत्यादि जिस किसी अभीष्टकी प्रार्थना करोगी, मैं वही दूंगा तुलसीने कहा हे तात ! इस समय मेरी जो अभिलाषा है वह कहती हूं, सुनो ॥ २१ ॥

क्योंकि जो अंतर्यामी हैं, उनके निकट लाज क्या करूंगी हे प्रभो ! मेरा नाम तुलसी गोपी है मैं पूर्वकालके समय गोलोकमें अवस्थिति करती थी ॥२२॥और मैं कृष्ण प्रिया राधिकाकी प्रिय किंकरी थी मैंने भी उसके अंशसे जन्म ग्रहण किया था उसकी सब सखियें भी मेरा आदर करती थीं, मैं एक समय रासमण्डलमें गोविंदके द्वारा सम्भुक्त होकर तृप्त न होनेसे प्रायः मूर्छित होकर गिरपड़ी थी ॥ २३ ॥ इसी अवसरपें रासेश्वरी राधाने वहां आय मुझको उस अवस्थामें देख गोविंदकी भर्त्सना करी और क्रोधमें भरकर मुझको यह शाप दिया कि ॥२४॥ "तू अभी भूलोकमें जाकर मानवी हो" तब गोविंदने मुझसे कहा "तेरे भारतमें जाकर तपस्या करने पर ब्रह्मा संतुष्ट होकर वर देंगे तू उसी वरके पानेसे मेरे

सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम् ॥ अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ॥ २२ ॥ कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥ गोविन्दरतिसंभुक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम् ॥ २३ ॥ रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले ॥ गोविंदं भर्त्सयामास मां शशाप रुषाऽन्विता ॥ २४ ॥ याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह ॥ मामुवाच स गोविंदो मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ २५ ॥ लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् ॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ २६ ॥ देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा प्राप्तं जन्म गुरो भुवि ॥ अहं नारायणं कांतं शांतं सुन्दरविग्रहम् ॥ २७ ॥ सांप्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं च देवि मे ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ सुदामानाम गोपश्च श्रीकृष्णांगसमुद्भवः ॥ २८ ॥ तदंशश्चाति तेजस्वी लेभे जन्म च भारते ॥ सांप्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः ॥ २९ ॥

अंश संभूत चतुर्भुज मूर्त्तिको अतिलाभ करेगी" हे तात ! देवेश श्रीकृष्ण यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे गुरो ! मैंने उन देवी राधाके भयसे शरीर त्यागकर इस भूमण्डलमें जन्म ग्रहण किया है अब मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है केवल मुझको यह वर दो "जिससे मैं शान्त कान्त सुन्दर शरीर नारायण को ॥ २७ । पतिलाभ कर सकूं" ब्रह्माजीने कहा—हे वत्से ! तुलसी सुदामा नामक गोप श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ इस समय उस कृष्णांशरूपी अति तेजस्वी सुदामाने श्री राधाके शापसे भारतके मध्य दानव वंशमें

जन्म ग्रहण किया है ॥ २९ ॥ उसका नाम शंखचूड है तीनों लोकमें उसके समान पराक्रमी दूसरा नहीं है पूर्वकालके समय वह गोलोक धाममें तुमको देख उसका चित्त कामबाणसे जर्जरित हुआ ॥ ३० ॥ किन्तु केवल राधिकाके प्रभावसे तुमको आलिंगन करनेमें समर्थ न हुआ वही सुदामा अब जातिस्मर हुआ है ॥ ३० ॥ हे सुन्दरी ! तुमभी जातिस्मरा हो कोई बात भी तुमसे छिपी नहीं है हे शोभने ! तुम इस समय उसकी पत्नी होओ॥ ३२॥ फिर शान्तस्वभाव मनोहर मुर्ति नारायणको पतिलाभ कर सकोगी तुम नारायणके शाप अंशसे॥ ३३॥विश्वपावनी

शंखचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः ॥ गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः ॥ ३० ॥ विलंबितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः ॥ स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाऽभूच्च सागरे ॥३१ ॥ जातिस्मरा त्वमपि सा सर्वं जानासि सुन्दरि ॥ अधुना तस्य पत्नी त्वं संभविष्यसि शोभने ॥ ३२ ॥ पश्चान्नारायणं शांतं कांतमेव वरिष्यसि ॥ शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः ॥ ३३ ॥ भविष्यति वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी ॥ प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः ॥ ३४ ॥ त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत् ॥ वृंदावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च॥३५॥त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यंति माधवम् ॥ वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन सन्ततम् ॥३६॥ विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छंदं मद्वरेण च ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा ॥३७॥ प्रणनाम च ब्रह्माणं तं च किंचिदुवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ यथा मे द्विभुजे कृष्णे वांछा च श्यामसुन्दरे॥३८॥

तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होगी॥ तुम पुष्पोंमें सर्वप्रधान पुष्प और नारायणको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रियतम होगी॥ ३४॥ तुम्हारे पुष्पके विना किसीकी पूजा भी सिद्ध नहीं होगी तुम वृन्दावनमें वृक्षरूप धारण करके वृन्दावनी नामसे प्रसिद्ध होगी॥ ३५॥गोप और गोपियें तुम्हारे पत्रलेकर माधवकी पूजा करेंगी तुम तुलसी वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी रूपसे सदा गोपवर श्रीकृष्णके संग स्वच्छन्द विहार करोगी॥ ३६॥ हे वत्स नारद ! देवीतुलसी ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥ ३७ ॥ उनके मुखपर हास्यका विकाश हुआ तब उन्होंने विधाताको प्रणाम करके कहा

तुलसी बोली हे तात ! मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि, द्विभुज श्यामसुन्दर कृष्णके प्रति जैसी भक्ति है ॥३८॥ चतुर्भुजके प्रति वैसी नहीं है यह सत्य कहती हूं क्योंकि सहसा गोविन्दके संग मेरी रतिभंग होनेसे मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥३९॥ मैं तो केवल गोविन्दके वचनसेही चतुर्भुजकी प्रार्थना करती थी अब निश्चय बोध होता है कि; आपके अनुग्रहसे फिर दुर्लभ गोविन्दको प्राप्त हूंगी ॥ ४० ॥ किन्तु हे तात ! अब मुझको राधाके भयसे कातर होना न पड़े ब्रह्माजी बोले हे वत्से ! मैं तुमको षोडशाक्षर राधामंत्र देता हूं ॥ ४१ ॥ मेरे वरसे तुम राधाकी प्राणके तुल्य स्नेहपात्र होगी तुम्हारा गुप्त विहार व्यापार फिर राधा नहीं जान सकेगी ॥ ४२ ॥ हे सौभाग्यवती ! तुम राधाके समान गोविन्दकी प्रियतमा

सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे ॥ आतृताऽहं च गोविंदे दैवाच्छृंगारभंगतः ॥ ३९ ॥ गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थ यामि चतुर्भुजम् ॥ त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् ॥४०॥ ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ गृहाण राधिकामंत्रं ददामि षोडशाक्षरम् ॥ ४१ ॥ तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि ॥ शृंगारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञा स्यति च राधिका ॥ ४२ ॥ राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि ॥ इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्या वै षोडशाक्षरम् ॥४३॥ मंत्रे चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् ॥ सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् ॥ ४४ ॥ परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा ॥ बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा यथा ॥४५॥ सिद्धं मंत्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम् ॥ बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नमनसा देवो तत्याज तपसः क्लमम् ॥ सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम् ॥४७॥

होगी जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने तुलसीसे इस प्रकार कह उनको षोडशाक्षर ॥४३॥ राधामंत्र, स्तोत्र, कवच, पूजाविधि और पुरश्चरणके नियमका उपदेश प्रदान ॥ ४४ ॥ पूर्वक यथेष्ट आशीर्वाद दिया तब तुलसी भी तदनुसार ही पूजा करनेमें प्रवृत्त हुई लक्ष्मीके समान तुलसीने भी इस प्रकार ब्रह्माजीके अनुग्रहसे सिद्धि लाभ की थी ॥४५॥ सिद्धमन्त्रके प्रभावसे उनको अभीष्टवर प्राप्त हुआ वह जगदुर्लभ अनेक भोगोंमें सौभाग्यवती हुई ॥ ४६ ॥ उनका मन सुस्थिर हुआ तपस्याका क्लेश दूर हो गया वास्तविक मनुष्यकी मनोकामना सिद्ध होनेपर चाहै जितना कष्टभोग क्यों

न हो ? सबही सुखमें परिणत होता है ॥ ४७ ॥ फिर उन्होंने पान भोजन समाप्त करके पुष्प और चन्दन समायुक्त मनोहर शय्यापर शयन किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्री नारायण बोले हे वत्स नारद ! इस प्रकार तपश्चर्या समाप्तिके पीछे वृषध्वज कन्या नवयौवन संपन्न तुलसी देवीके अत्यन्त आनन्दित होकर सुखसे शयन करने पर ॥ १ ॥ पंचशर (कामदेव) ने उनपर सम्मोहनादि पांच बाण छोड़े यद्यपि चंदन लगाये होकर पुष्प शय्यापर शयनकर रही थीं किन्तु तो भी पुष्पधन्वाके बाणोंसे उनका

भुक्त्वा पीत्वा च संतुष्टा शयनं च चकार सा ॥ तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचंदनचर्चिते ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे तुलस्युपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा ॥ नवयौवनसंपन्ना वृषध्वजवरांगना ॥ १ ॥ चिक्षेप पंचबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति ॥ पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥ २ ॥ पुलकांचितसर्वांगी कंपिता रक्तलोचना ॥ क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥ ३ ॥ क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तंद्रां सुखावहाम् ॥ क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम् ॥ ४ ॥ क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम् ॥ ततिष्ठंती क्षणं तल्पाद्गच्छंती निकटे क्षणम् ॥५॥ भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगान्निवसंती क्षणं पुनः ॥ क्षणमेव समुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा ॥ ६ ॥ पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवातिकंटकम् ॥ विषहारि सुखं दिव्यं सुन्दरं च फलं जलम् ॥ ७ ॥ निलयं च बिलाकारं सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः ॥ सिंदूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥ ८ ॥

शरीर दग्ध होनेलगा ॥ २ ॥ उनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित होगया शरीरकाँपने लगा नेत्र रक्तवर्ण हो गये क्षणमें उद्वेग, क्षणमें मूर्च्छा ॥ ३ ॥ क्षणमें शुष्कता, क्षणमें सुखावह तन्द्रा, क्षणमें दाह, क्षणमें प्रसन्नता ॥ ४ ॥ क्षणमें चेतना और क्षणमें विषाद होने लगा कभी शय्यासे उठे कभी बैठ जाय कभी उद्वेगसे फिर निद्रा हो जाती थी ॥ ५ ॥ क्षणमें उद्वेगसे भ्रमने लगती क्षणमें स्थित होती क्षणमें उद्वेगसे सोजाती ॥ ६ ॥ चंदनदिग्ध, पुष्पशय्या उसको कंटक हो गयी अतीव सुन्दर और सुखकर फल तथा सुशीतल जल उसको विषवत् होगया ॥ ७ ॥ वासगृह

भूविवर तथा सूक्ष्म सूक्ष्म वस्त्र हुताशनके समान बोध होनेलगे सिन्दूर बिन्दु उसको व्रणतुल्य दुःखदायक हुआ ॥ ८ ॥ वह तन्द्राके आवेशमें स्वप्न देखने लगी कि, एक सुवेष सुन्दर रसिक युवापुरुष हास्यवदनसे उनके समीप उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ उसका सर्वांग चन्दन विलिप्त और उत्कृष्ट रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित और गलेमें वनमाला विराजमान है वह आनकर मानों उनके मुखकमलका मधु पान करता है ॥१०॥ और रतिकथा तथा अन्यान्य अनेक प्रकारकी मधुर बातोंसे मिष्टालाप करता है और मानों आलिंगनपूर्वक शय्यापर शयन करके संभोग सुख आस्वादन करता है ॥११॥ फिर संभोगके पीछे एकवार चला जाता है और फिर निकट आजाता है जानेके समय "हे प्राणेश्वर ! कहां

क्षणं ददर्श तंद्रायां सुवेषं पुरुषं सती ॥ सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥ ९ ॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं रत्न भूषण भूषितम् ॥ आगच्छंतं माल्यवंतं पिबन्तं तन्मुखांबुजम् ॥ १० ॥ कथयंतं रतिकथां ब्रुवंतं मधुरं मुहुः ॥ संभुक्तवंतं तल्पे च समाश्लिष्यंतमीप्सितम् ॥ ११ ॥ पुनरेव तु गच्छंतमागच्छंतं च सन्निधौ ॥ यांतं क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा ॥ १२ ॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः ॥ एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद ॥ १३ ॥ शंखचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम् ॥ कृष्णमंत्रं च सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे॥१४॥कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमंगलमंगलम् ॥ ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्ते मनसि वांछितम्॥१५॥आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं च समाययौ ॥ आगच्छंतं शंखचूडं ददर्श तुलसी मुने ॥ १६ ॥

जाते हो निकट रहो" यह कहकर वह सीमन्तिनी उनसे संभाषण करती हैं ॥१२॥ और फिर ज्योंही चेतनका संचार हुआ, उसी समय बारंवार विलाप करने लगी हे वत्स नारद ! देवी तुलसी यौवनकी सीमामें आकर इस प्रकार बद्रिकाश्रममें वास करने लगी ॥ १३ ॥ इधर महायोगी शंखचूडने महर्षि जैगीषव्यसे कृष्णमन्त्र पाय पुष्करमें सिद्धि प्राप्त करी ॥ १४ ॥ सर्वमंगलमय कवच गलेमें धारणपूर्वक ब्रह्माजीसे अपना अभिलाषित वर लाभ करके ॥ १५ ॥ उनकीही आज्ञानुसार बद्रिकाश्रममें उपस्थित हुआ उपस्थित होते ही शंखचूड देवी तुलसीके नेत्र पथका

पथिक हुआ ॥ १६ ॥ शंखचूडके शरीरमें नव यौवनका आविर्भाव होनेसे बोध होता था मानो मूर्त्तिमान् काम है वर्ण श्वेत चम्पकके समान और सर्वाङ्गमें रत्नमय आभूषण थे ॥ १७ ॥ मुखमण्डल शारदीय पूर्ण चन्द्र और चक्षु पद्मपलाशके सदृश बडे थे वह मनोहर मूर्त्ति उत्कृष्ट रत्नमय विमानमें विराजमान थी ॥ १८ ॥ दो रत्नकुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान थे गलेमें पारिजात पुष्पकी माला ॥ १९ ॥ शरीरमें कुंकुम और सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था हे वत्स नारद ! देवी तुलसी शंखचूडको समीप आया हुआ देख वस्त्रके अंचलसे अपना मुख ढक ॥ २० ॥ हास्य वदनसे वारम्वार उसके प्रति कटाक्ष विक्षेप और नव समागम पिपासाकी लज्जासे मुख नीचा करने लगी ॥ २१ ॥

नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥ १७ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यं शरत्पंकजलोचनम् ॥ रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ॥ १८ ॥ रत्नकुंडलयुग्मेन गंडस्थलविराजितम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालावंतं च सुस्मितम् ॥ १९ ॥ कस्तूरीकुंकुमायुक्तसुगंधिचंदनान्वितम् ॥ सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा ॥ २० ॥ सस्मिता तं निरीक्षंती सकटाक्षं पुनः पुनः ॥ बभूवातिनम्रमुखी नवसंगमलज्जिता ॥ २१ ॥ शरदिंदुविनिंद्यैकस्वमुखेंदुविराजिता ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता ॥२२॥ मणींद्रसारनिर्माणक्वणन्मंजीररंजिता ॥ दधती कबरीभारं मालती माल्यसंयुतम् ॥ २३ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुंडला ॥ चित्रकुंडलयुग्मेन गंडस्थलविराजिता ॥२४॥ रत्नेंद्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वला ॥ रत्नकंकणकेयूरशंखभूषणभूषिता ॥२५॥ रत्नांगुलीयकैर्दिव्यैरंगुल्यावलिराजिता ॥ दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् ॥२६॥

जिसका विमल मुखचन्द्र शरत्के चन्द्रमाकी शोभाका तिरस्कार करता है चरणोंमें अमूल्य रत्ननिर्मित चरणाभरण ॥ २२ ॥ और उत्कृष्ट मणिनिर्मित नूपुर हैं मस्तकमें सुगंधित मालतीमालासे कबरीबन्धन है ॥ २३ ॥ कानमें अमूल्य रत्ननिर्मित मकराकृत विचित्र कुण्डल गण्डस्थलपर्यन्त चलायमान है ॥ २४ ॥ अमूल्य रत्नमय हारने स्तनमण्डलके मध्यभागमें लम्बायमान होकर वक्षःस्थलको उज्ज्वल किया है हाथमें रत्नमय कंकण और शंख भूषण है ॥ २५ ॥ दोनों बाहुमें रत्नमय केयूर और हाथोंकी अंगुलियोंमें श्रेष्ठ रत्नांगुली शोभा पाती है

हे मुनिवर ! शंखचूडने उस मनोहर सुशील सुन्दरी सती तुलसीको देखते ही ॥ २६ ॥ समीप आय बैठकर मधुरस्वरसे कहा शंखचूड बोला हे मानिनी ! हे कल्याणी ! हे कल्याणदायिनी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? ॥ २७ ॥ रमणियोंमें तुम धन्या और मान्या बोध होती हो, मैं तुम्हारा मौनीभूत दास हूं मेरे संग बात चीत करो ॥ २८ ॥ उत्सुक चित्तवाली उन वामलोचना तुलसीने अनुरागवान् शंखचूडका वचन सुनतेही हास्य मुख और नम्रवदन होकर उससे कहा ॥२९॥ तुलसी बोली महाराज ! मैं वृषध्वजकी कन्या हूं तपश्चरणके अर्थ तपोवनमें

उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः ॥ शंखचूड उवाच ॥ का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ २७ ॥ का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनी ॥ मौनीभूते किंकरे मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥ २८ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना ॥ सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच ॥ धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने ॥ तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥ ३० ॥ कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम् ॥ न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम् ॥ ३१ ॥ लंपटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः ॥ येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥ ३२ ॥ आपातमधुरां मत्तामंतकां पुरुषस्य ताम् ॥ विषकुंभाकाररूपाममृतास्यां च संततम् ॥३३॥ हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् ॥ स्वकार्यपरिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम् ॥ ३४ ॥

आनकर तपस्यामें निमग्न रहती हूं आप कौन हैं आपकी बातोंसे क्या प्रयोजन है ? आप यथेच्छ यहांसे गमन कीजिये॥३०॥ शास्त्रमें सुना है कि, सद्वंशोत्पन्न पुरुष कभी सद्वंशमें उत्पन्न हुई निर्जनमें बैठी स्त्रीसे बात चीत नहीं करते ॥३१॥ जो लम्पट धर्मशास्त्रहीन, वेदज्ञानरहित और अकुलीन हैं, वही कामीपुरुष अकेलेमें कामिनीके संग बात चीत करनेकी अभिलाषा करते हैं ॥३२॥ और जो स्त्रियें आपातरमणीय कामोन्मत्त और पुरुषकी अन्तक हैं, पयोमुख विषपूर्ण घडेके समान जिनके अन्तरमें गरल और मुखमें मधुरालाप है ॥ ३३ ॥ जिनके हृदय क्षुरधार और

मुखमें मिष्टभाषा हैं जो सदा अपना कार्य साधनमें तत्पर हैं॥ ३४ ॥जो अपने कार्यके वश होकर स्वामीके वशवर्तिनी और अन्यथा स्वेच्छाचारिणी हैं,जिनके अन्तरमें मल भरा है किन्तु वदन और नेत्रमें प्रसन्नता विद्यमान रहती है॥ ३५ ॥श्रुति और पुराणमें जिनका चरित अति दूषित वर्णित हुआ है,कौन विद्वान् बुद्धिमान् उन्नताशय पुरुष उनका विश्वास करता है॥ ३६ ॥ऐसी स्त्रियोंमें शत्रु मित्रका विचार नहीं है,वह नित्य नवीन अभिलाषा करती हैं, वह वेषवान् पुरुषको देखते ही अपने कार्य साधन करनेकी वासना करती है॥ ३७ ॥किन्तु बाहरमें अत्यन्त यत्नसहित स्वीय सतीत्वका घोषण करती हैं वह एकमात्र कामको आधार हैं, वह सदा दूसरेके चित्तको आकर्षण और स्वीय कामवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये विशेष व्यग्र

कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा ॥ स्वांते मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥ ३५ ॥ श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमति दूषितम् ॥ तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः ॥ ३६ ॥ तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयंति नवंनवम् ॥ दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छंति हृदये सदा ॥ ३७ ॥ बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयंती प्रयत्नतः ॥ शश्वत्कामा च रामा च कामाधारा मनोहरा ॥३८॥ बाह्ये छलात्खेदयंती स्वांतमैथुनमानसा ॥ कांतं हसंती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता ॥३९॥ मानिनी मैथुना भावे कोपना कलहांकुरा ॥ सुप्रीता भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता ॥ ४० ॥ सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकांक्षंती च मानसे ॥ सुंदरं रसिकं कांतं युवानं गुणिनं सदा ॥ ४१ ॥ सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वंती रसिकोपरि ॥ प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥ ४२ ॥

रहती हैं ॥ ३८ ॥ वह मुखसे नायकको प्रत्याख्यान करनेके उद्योग करती हैं, किन्तु अन्तरमें रमणवासना सदा जाज्वल्यमान है नायकको अकेला पानेपर निर्लज्ज हँसती रहती हैं किन्तु बाहर लज्जाकी सीमा नहीं रहती ॥ ३९ ॥ वह नायकके सहित संगत न होनेके कारण ही अभिमान में भरती हैं क्रोधसे अंग जलते रहते हैं और उनमें कलहबीज अंकुरित हो जाता है जब बराबर संभोग वासना चरितार्थ होती रहती हैं, तब फिर आनन्दकी सीमा नहीं रहती, किन्तु उसकी लाघवता होनेपर ही ऐसी दुःखाग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ४० ॥ मिष्टान्न और सुशीतल सलिलके कारण ही गुणवान् सुरसिक सुश्रोयुत पुरुष उनके एकमात्रलक्ष्यस्थल हैं ॥ ४१ ॥ वह संभोगमें

चतुर सुरसिक युवाको पुत्रकी अपेक्षा प्राणोंसे अधिक प्रियतम जानती हैं ॥ ४२ ॥ और यदि वही प्रियतम संभोगमें अपटु (मूर्ख) वा वृद्ध हो, तो उसको शत्रुके समान जानती हैं, क्रोधमें भरी सदा उसके संग क्लेश करती हैं ॥ ४३ ॥ यही क्या सर्प जिस प्रकार चूहेको ग्रास करता है, इस प्रकार वह तादृश पुरुषको ग्रासकर जाती हैं वह मूर्तिमान् दुःसाहस और समस्त दोषोंकी आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवता भी उनके निकट मोहित होते हैं यही क्या वह ऐसी मोहिनी स्त्रियोंका अन्त नहीं पासकते यह तपोमार्गकी महान् विघ्नकारी और मोक्षद्वारकी कपाट स्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ हरिभक्ति ऐसी स्त्रियोंके निकट तीनों अवस्थामें नहीं जासकती वह मायाकी

पश्यंति रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् ॥ कलहं कुर्वंती शश्वतेन सार्धं सुकोपना ॥ ४३ ॥ वाचया भक्षयंती तं सर्पमाखुमिवोल्वणम् ॥ दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी ॥ तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका ॥ ४५ ॥ हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरंडिका ॥ संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी ॥ ४६ ॥ इंद्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्नरूपिणी ॥ बिभ्रती बाह्यसौंदर्यमधोऽगमतिकुत्सितम् ॥ ४७ ॥ नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् ॥ दुर्गंधि दोषसंयुक्तं रक्तारक्तमसंस्कृतम् ॥ ४८ ॥ मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा ॥ विषरूपा मुमुक्षूणामदृश्याऽप्यभिवांछताम् ॥४९॥ इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद ॥ सस्मितः शंखचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५०॥

एकमात्र आधार और संसाररूपी कारागारकी निगड (बेड़ी) स्वरूप हैं ॥ ४६ ॥ वह ऐन्द्रजालिकी विद्या और मिथ्यास्वप्नस्वरूप हैं उनका बाहिरी सौन्दर्य सबको मोहित करता है उनका आधाअंग अति कुत्सित ॥ ४७ ॥ और विष्ठा मूत्र तथा लार इत्यादि मलका एकमात्र आधार है उसमें दुर्गंध दोषकी सीमा नहीं और वह स्थान रक्ताक्त एवं अति अपवित्र है ॥ ४८ ॥ भगवान् विधाताने उनको मायावी पुरुषों की माया और मुमुक्षु पुरुषोंको विषरूपा कहकर उत्पन्न किया है ॥ ४९ ॥ हे वत्स नारद ! जब देवी तुलसी

शंखचूड़से इस प्रकार कहकर मौन होगई तब वह हास्यवदन हो उनसे कहने लगा ॥ ५० ॥ शंखचूड बोला हे देवि ! तुमने जो कहा वह सर्वथा मिथ्या नहीं है इसमें कुछ मिथ्या और कुछ सत्य है मैं इसका स्वरूप कहता हूं सुनो ॥ ५१ ॥ विधाताने सर्व विमोहन रमणीमूर्त्तिको द्विधा विभक्त करके उत्पन्न किया है तिनमें एकभाग प्रशंसनीय और एक भाग अप्रशंसनीय है ॥५२॥ लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री और राधा इत्यादि स्त्रियोंको सृष्टिके मूल कारण रूपमें उत्पन्न किया है अतएव यह आदि सृष्टि हैं ॥५३॥ जो

शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् ॥ किंचित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय ॥५१॥ निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम् ॥ कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका ॥ सृष्टिसूत्रस्वरूपा च आद्या सृष्टिर्विनिर्मिता ॥५३॥ एतासामंशरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् !! तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमंगलकारकम् ॥५४॥ शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥ छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा॥५५॥ कुबेरस्य च पत्नी याऽप्यादितिश्च दितिस्तथा ॥ लोपामुद्राऽनसूया च कोटिभी तुलसी तथा ॥५६॥ अहल्याऽरुंधती मेना तारा मंदोदरी तथा ॥ दमयंती वेदवती गंगा च मनसा तथा ॥ ५७ ॥ पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा ॥ षष्ठी मंगलचंडी च मूर्तिश्च धर्मकामिनी ॥ ५८ ॥ स्वस्ति श्रद्धा च शांतिश्च कांतिः क्षान्तिस्तथा परा ॥ निद्रा तन्द्रा क्षुत्पिपासा संध्या रात्रिदिनानि च ॥ ५९ ॥ सम्पत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा ॥ यत्स्त्रीरूपश्च सम्भूतमुत्तमन्तु युगे युगे ॥ ६० ॥

सब स्त्रियें इनके अंशसे उत्पन्न हैं वास्तवमें वह अति प्रशंसनीय कीर्त्तिस्वरूप और मंगलदायक हैं ॥ ५४ ॥ शतरूपा, देवहूती, स्वधा, स्वाहा. दक्षिणा, छायावती, रोहिणी,वरुणानी शची ॥५५॥ कुबेरकी पत्नी दिति, अदिति, लोपामुद्रा, अनुसूया, (कौटभी) कोटरी, तुलसी ॥५६॥ अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा ॥५७॥ पुष्टि, तुष्टि, स्मृति; मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचंडी धर्मकामिनी मूर्त्ति॥५८॥स्वस्ति,श्रद्धा,शान्ति,कान्ति,क्षान्ति,निद्रा,तन्द्रा,क्षुधा,पिपासा, संध्या, रात्रि, दिवा, ॥५९॥ सम्पत्ति,धृति,कीर्ति,क्रिया, शोभा,

प्रभा और शिवा इत्यादि जो सब स्त्रियें उत्पन्न होती हैं वह सब युगोंमें ही श्रेष्ठ हैं॥६०॥स्वर्गवेश्या रमणीगण पूर्वोक्त कामिनियोंकी कला और अंशरूप हैं विश्वमें वह प्रशंसनीय नहीं हैं वह पुंश्चली कहकर विख्यात हैं ॥६१॥ जो स्त्रियें सत्वप्रधाना हैं वह श्रेष्ठ और प्रभा सम्पन्न हैं विश्वमें वही उत्तम और साध्वी कहकर प्रसिद्ध हैं ॥६२॥ वास्तवमें वह बात भी मिथ्या नहीं है पण्डितगण भी उनको उत्कृष्ट कहकर गणना करते हैं जिस प्रकार सत्वगुणात्मक अंश है इसी प्रकार रज और तमोगुणके भेदसे अंश नानाविध हैं ॥ ६३ ॥ रजोगुणात्मिका स्त्रियोंको मध्यम कहा जाता है वह केवल भोग सुखमें लालच करनेवाली संभोगके वशीभूत और सदा स्वीय (अपने) कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ६४ ॥ ऐसी स्त्रियें प्रायः कपटी

कलाकलांशरूपं च स्ववेंश्यादिकमेव च ॥ तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ॥ ६१ ॥ सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तश्च प्रभावतः ॥ तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं च शंसितम् ॥ ६२ ॥ तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदंति मनीषिणः ॥ रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधं स्मृतम् ॥ ६३ ॥ मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः ॥ सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा ॥६४॥ कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा ॥ रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते ॥ ६५ ॥ इदं मध्यमरूपं च प्रवदंति मनीषिणः ॥ तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः ॥ ६६ ॥ न पृच्छति कुले जातः पंडितश्च परस्त्रियम् ॥ निर्जने निर्जले वाऽपि रहस्यपि परस्त्रियम् ॥ ६७ ॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना ॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥ ६८ ॥ अहमेव शंखचूडो देवविद्रावकारकः ॥ दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाऽहं हरेः पुरा ॥ ६९ ॥

मोहकारिणी और धर्मार्थ कार्यके बहिर्भूत होती हैं इस कारण रजोगुणात्मिका स्त्रियें प्रायः असती दोषमें लिप्त होती हैं ॥ ६५ ॥ पण्डित जन ऐसी स्त्रियों को मध्यम कहते हैं और तमोगुणात्मिका स्त्रियें अधम कही गई है ॥६६॥सद्वंशोत्पन्न पण्डित गण कभी निर्जनमें वा गुप्तस्थानमें पराई स्त्रीके संग बात चीत नहीं कर ते ॥ ६७ ॥ किन्तु मैं केवल ब्रह्माकी आज्ञानुसार तुम्हारे निकट आया हूं हे सुन्दरी ! इस समय गांधर्व विवाहके अनुसार तुम्हारा पाणिग्रहण करूंगा ॥ ६८ ॥ मेरा नाम शंखचूड है देवता तकभी मुझको देखकर भयसे भाग जाते हैं, मैं पूर्व कालके

समय सुदामा नामक ॥ ६९ ॥ श्रीहरिका अति प्रियतम सखा था सम्प्रति राधिकाके शापसे दानवकुलमें जन्म ग्रहण किया है, मैं श्रीकृष्णका पार्षद और आठ गोपोंमें प्रधान गोप था, इस समय राधिकाके शाप प्रभावसे दानवेन्द्र शंखचूड़ हुआ हूं ॥ ७० ॥ मैंने श्रीकृष्णके अनुग्रहसे और मंत्रके प्रभावसे जातिस्मर होकर जन्म ग्रहण किया है तुम भी जातिस्मरा तुलसी हो, पूर्वमें श्रीकृष्णने तुमसे संभोग किया है ॥ ७१ ॥ तुमने राधिकाके कोपसे भारतमें जन्म ग्रहण किया है, मैं उस समय तुमको भोग करनेके लिये अत्यन्त व्यग्र हुआ था किंतु राधाके भयसे आशा चरितार्थ नहीं कर सका॥७२॥हे मुनिवर ! जब शंखचूड यह बातें कहकर मौन हो गया तब तुलसी आनन्दितमन हो हँसते हँसते उससे

अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च ॥ अधुना दानवेंद्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥७०॥ जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमंत्रप्रभावतः ॥ जातिस्मरा त्वं तुलसी संभुक्ता हरिणा पुरा ॥७१॥ त्वमेव राधिकाकोपाज्जाताऽसि भारते भुवि ॥ त्वां संभोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥ ७२ ॥ इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने ॥ सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७३॥ तुलस्युवाच ॥ एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः ॥ कांतमेवंविधं कांता शश्वदिच्छति कामतः ॥ ७४ ॥ त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता ॥ स निंदितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः ॥७५॥ निंदंति पितरो देवा बांधवाः स्त्रीजितं नरम् ॥ स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निंदति ॥७६॥ शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके यथा ॥ भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ॥ ७७ ॥ शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीनसंकरः ॥ अशुचिः स्त्रीजितः शुद्ध्येच्चितादहनकालतः ॥ ७८ ॥

कहने लगी ॥ ७३ ॥ तुलसी बोली जगत्में ऐसे पुरुष ही यशस्वी होते हैं और स्त्रियें ऐसे कान्तकीही सदा अभिलाषा करती हैं ॥ ७४ ॥ वास्तवमें इस समय तुम्हारे द्वारा विचारसे परास्त हुई जो पुरुष स्त्रीजित है,वह अत्यन्त अशुचि और समाजनिन्दित है ॥७५॥स्त्रीजित मनुष्यको पितृलोक देवलोक और गन्धर्वगण पर्यंत याज्यज्ञान करते हैं यही नहीं वरन् पिता, माता, भ्राता पर्यंत मनही मनमें उससे घृणा करते हैं ॥ ७६ ॥ वेदमें कहा है कि, जननाशौच और मरणाशौच होने पर ब्राह्मण दशवें, क्षत्रिय बारह दिनमें ॥ ७७ ॥ वैश्य पन्द्रह दिनमें

और हीन जाति शूद्रभी एक महीनेमें शुद्धिलाभ करता है, किंतु स्त्रीजित अशुचि पुरुषका चितानलके अतिरिक्त शुद्धिका उपाय नहीं है ॥७८॥ पितर कभी इच्छापूर्वक स्त्रीजित पुरुषका पिंड और तर्पणादि ग्रहण नहीं करते अधिक क्या देवताभी उसका दिया पुष्प और जलांजलि ग्रहण करनेमें संकुचित होते हैं ॥ ७९ ॥ जिनका चित्त स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत है, उनके विज्ञान, तपस्या, जप, होम, पूजा, विद्या और यशसे कोई फल उदय नहीं होता ॥ ८० ॥ मैंने तुम्हारा विद्याबल जाननेके लिये तुम्हारी परीक्षा की है, क्योंकि दोषगुणकी परीक्षा करके कान्तको वरण करना स्त्रियोंका अवश्य कर्तव्य है ॥ ८१ ॥ गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानान्ध, दरिद्र, मूर्ख, रोगयुक्त, कुत्सिताकार, अत्यन्त

न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम् ॥ न गृह्णन्त्येव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम् ॥ ७९ ॥ किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः ॥ किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ८० ॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः ॥ कृत्वा परीक्षां कांतस्य वृणोति कामिनी वरम् ॥ ८१ ॥ वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा ॥ दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥ ८२ ॥ अत्यन्तकोपयुक्ताय वाऽत्यन्तदुर्मुखाय च ॥ पंगवे चांगहीनाय चांधाय बधिराय च ॥ ८३ ॥ जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने ॥ ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः ॥ ८४ ॥ शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च ॥ साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत् ॥ ८५ ॥ यः कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम् ॥ विक्रेता धन लोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति ॥ ८६ ॥

कोपनस्वभाव, अत्यन्त दुर्मुख, पंगु, अंगहीन अंध वधिर (बहरा) ॥ ८२ ॥ मूक (गूंगा) जड और क्लीबतुल्य पापीको कन्यादान करनेसे ब्रह्महत्याके समान फल लाभ होता है ॥ ८३ ॥ शांतस्वभाव, गुणवान् विज्ञान सच्चरित्र, युवापुरुषको कन्या दान करनेसे दश अश्व मेधयज्ञका फललाभ होता है ॥ ८४ ॥ यदि कोई कन्याका पालन करके धनके लोभसे उस कन्याको बेचता है, उसको कुम्भीपाक नरकमें गिरना पड़ता है॥८५॥ वह पातकी उस नरकमें वास करके उस कन्याका मूत्र और मल भक्षण करके काल

व्यतीत करता है, वह चौदह इन्द्रोंके समय पर्यंत कृमि और काकोंके द्वारा दंशित होते हैं॥८६॥उसमें भी उसका निस्तार नहीं होता इस नरकके भोगनेपर फिर उसको व्याधि ग्रसित होकर मनुष्य लोकमें जन्म ग्रहण करना पडता है उस मनुष्य जन्ममें मांसविक्रय और मांसभार वहन करके जीविका (निर्वाह) करनी पडती है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे तपोधन ! जब तुलसी इस प्रकार कहकर मौन अर्थात् चुप हो गई, तब ब्रह्मा जीने वहां प्रगट होकर शंखचूडसे कहा हे शंखचूड ! तुम क्यों वृथा तुलसीके संग कथोपकथनमें काल व्यतीत करते हो ॥ ८९ ॥ शीघ्र

कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी ॥ कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥ तदंते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम् ॥ विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम् ॥ ८८ ॥ इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह ॥ ८९ ॥ गान्धर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु ॥ पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियं सती ॥ ९० ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥ निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम् ॥९१॥ योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥ किं परीक्षसि त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति ॥ ९२ ॥ देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥ यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका ॥ ९३ ॥ यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा ॥ यथा धरा वराहे च दक्षिणा च यथाऽध्वरे ॥ ९४ ॥

गांधर्व विवाहमें इसको ग्रहण करो तुम जैसे पुरुषरत्न हो, तुलसी भी वैसेही स्त्रीरत्न है ॥ ९० ॥ रसिकाके संग रसिकका समागम अतीव सुखकर होता है, हे राजन् ! अनायास प्राप्त दुर्लभ सुखको कौन पुरुष छोडनेकी इच्छा करता है ॥९१॥ जो पुरुष उसको त्याग करता है, इस जगत्में उसके समान पशु दूसरा कोई नहीं है, हे तुलसी ! तुमभी किसलिये ऐसे ॥ ९२ ॥ देवासुर दानव विमर्दनकारी गुणवान् पुरुषकी परीक्षा करती हो, हे वत्से ! तुम नारायणकी लक्ष्मी कृष्णकी राधिका ॥ ९३ ॥ मेरी सावित्री, भव (शिव) की भवानी, वराहकी धरा,

यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९४ ॥ अत्रिकी अनसूया, नलकी दमयन्ती, चन्द्रकी रोहिणी, कन्दर्पकी रति ॥ ९५ ॥ कश्यपकी अदिति, वसिष्ठजीकी अरुन्धती, गौतमकी अहिल्या, कर्दमकी देवहूति, ॥ ९६ ॥ बृहस्पतिकी तारा, मनुकी शतरूपा, हुताशनकी स्वाहा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९७ ॥ देवेन्द्रकी शची, गणेश्वरकी पुष्टि, स्कन्दकी देवसेना, और धर्मकी मूर्तिके समान ॥ ९८ ॥ शंखचूडकी सौभाग्यशालिनी प्रियतमा पत्नी हो तुम रूपवान् शंखचूडके संग कुछ कालतक ॥ ९९ ॥ अनेक स्थानमें इच्छानुसार विहार करो इसके पीछे जब शंखचूड देहत्याग करेगा तब

यथाऽत्रावनसूया च दमयंती यथा नले ॥ रोहिणी च यथा चंद्रे यथा कामे रतिः सती ॥ ९५ ॥ यथा दितिः कश्यपे च वसिष्ठे ऽरुंधती सती ॥ यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्चकर्दमे ॥ ९६ ॥ यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा ॥ यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने ॥ ९७ ॥ यथा शची महेंद्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे ॥ देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती ॥ ॥९८॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च शंखचूडे तथा भव ॥ अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि ॥ ९९ ॥ स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु सन्ततम् ॥ पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च ॥१००॥ चतुर्भुजं च वैकुंठे शंखचूडे मृते सति ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम् ॥ श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदाऽपि हि जायते ॥ १ ॥ ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते ॥ नारायण उवाच ॥ इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः ॥ २ ॥

तुम गोलोकमें द्विभुज श्रीकृष्ण ॥१००॥ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णके सहित महासुखसे अनायास विहार कर सकोगी ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारदजी बोले यह आपने बडा विचित्र आख्यान कहा जिसके सुननेसे किसी प्रकार मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥१॥ इसके उपरान्त जो हुआ सो हे महामते ! आप कहिये नारायण बोले इस प्रकार

हारि आशिष दे अपने स्थानको गये ॥ २ ॥ दानवने गांधर्व विवाहसे उसको ग्रहण किया, उस समय स्वर्गमें दुंदुभी बजी और पुष्प वर्षा हुई ॥ ३ ॥ तब वह अपने घरमें उसके साथ रमण करने लगा और नवसंगमसे संगम होनेके कारण तुलसी मूर्छित हो गई ॥ ४ ॥ और वह साध्वी संभोग रूपी सुखसागरमें विना जलके ही निमग्न हो गई । चौंसठ शृंगारकी कलाओंसे युक्त जो चौंसठ प्रकारका सुख है ॥ ५ ॥ जो कामशास्त्रमें रसिकोंके निमित्त कहा है जो अंग प्रत्यंगके श्लेषसे स्त्रीजनोंको मनोहर है ॥ ६ ॥ वह सब शृंगार रस उस रसि

गांधर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥ स्वर्गे दुंदुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥३॥ स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोरमे ॥ मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसंगमसंगता ॥ ४ ॥ निमग्ना निर्जले साध्वी संभोगसुखसागरे ॥ चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम् ॥ ५ ॥ कामशास्त्रे य[illegible]रुक्तं रसिकानां यथेप्सितम् ॥ अंगप्रत्यंगसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् ॥ ६ ॥ तत्सर्वं रसशृंगारं चकार रसिकेश्वरः ॥ अतीवरम्यदेशे च सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ ७ ॥ पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना ॥ पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ ८ ॥ गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥ भूषितो भूषणैनैव रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ९ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ जहार मानसं भर्तुर्लोलया लीलया सती ॥ १० ॥ चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित् ॥ वक्षसश्चंदनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा ॥ ११ ॥ स च जहार तस्याश्च सिंदूरबिंदुपत्रकम् ॥ तद्वक्षस्युरोजे च नखरेखा ददौ मुदा ॥ १२ ॥

केश्वरने किया, अतीव मनोहर जन्तु और हित स्थानमें ॥ ७ ॥ पुष्प चन्दनकी शय्यामें पुष्प चन्दनकी सुगंधिद्वारा पुष्प चन्दनसे चर्चित फूलोंके उद्यान और नदियोंके किनारे ॥ ८ ॥ रासमें उस पुष्प चन्दनसे चर्चिताको ग्रहण कर रत्न और भूषणोंसे भूषित ॥ ९ ॥ उन सुरत चतुरोंकी सुरतसे विरति न हुई अपनी अनेक लीलाओंसे सतीने स्वामीकामन हर लिया ॥ १० ॥ और उस रसभावके ज्ञाताने भी अपनी प्रियाका मन हरलिया परस्पर शरीर संघर्षणसे राजाने उसकी छातीका और मस्तकका तिलक हर लिया ॥ ११ ॥ उसने उस प्रियाका

सिन्दूर और बिन्दी हरण की उसने उसके वक्षस्थल और उरोजोंमें प्रसन्नतासे नखरेखा की ॥ १२ ॥ और प्रियाने उसके वामपार्श्वमें कर भूषणकी रेखा की राजाने उसके होठोंमें दंतदंशन किया ॥ १३ ॥ उसने उसके दोनों कपोलोंमें चौगुना दन्तचिह्न किया, आलिंगन चुम्बन जंघादि मर्दन ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे दोनों परस्पर क्रीडा करने लगे, सुरतके विरत होनेमें वे दोनों परस्पर उठकर ॥ १५ ॥ मन वांछित वेष करते हुए उसने चन्दन और रक्त कुंकुमसे उसका तिलक किया ॥ ॥ १६ ॥ और सर्वांगमें सुन्दर अनुलेपन किया सुवासित ताम्बूल और

सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् ॥ राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम् ॥ १३ ॥ तद्गंडयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ आलिंगनं चुम्बनं च जंघादिमर्दनं तथा ॥१४॥ एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ ॥ सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम् ॥१५॥ सुवेषं चक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वांछितम् ॥ चन्दनैः कुंकुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ ॥१६॥ सर्वांगे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् ॥ सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी ॥ १७ ॥ पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमंगुलीयकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ सुंदरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः ॥ १९॥ ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् ॥ सस्मिता तन्मुखांभोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः ॥२०॥ निमेषरहिताभ्यां चाप्यपश्यत्कामसुन्दरम् ॥ स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् ॥ २१ ॥ सस्मितं वाससाऽऽच्छन्नं ददर्श मुखपंकजम् ॥ चुचुंब कठिने गंडे बिंबोष्ठौ पुनरेव च ॥ २२ ॥

अग्निमें शुद्ध वस्त्र दिये ॥ १७ ॥ पारिजातके फूल जरारोगके हरनेवाले तथा अमूल्य रत्नोंसे जडी अँगूठी ॥ १८ ॥ तथा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ सुन्दर मणियें मैं तुम्हारी दासी हूँ इस प्रकार वारंवार कह पहराई ॥ १९ ॥ और परम भक्तिसे अपने गुणशाली स्वामीको प्रणाम किया और हँसकर उसके मुखको वारंवार अपने नेत्रोंसे ॥ २० ॥ निमेषरहित हो सुन्दरताको ध्यान देखने लगी. तब शंखचूडने उसे खैंचकर हृदयसे लगाया ॥ २१ ॥ घूंघटमें उसका हास्य युक्त मुखकमल देखने लगा. फिर भी उसके कपोल और बिम्बोष्ठोंको चुम्बन किया ॥ २२ ॥

और वरुणके लाये दो वस्त्र उसको दिये और उसीकी लाई त्रिलोकीमें दुर्लभ रत्नमाला दी ॥ २३ ॥ स्वाहाद्वारा अग्निसे लाये दो मंजीर नूपुर दिये सूर्यपत्नी छायाके लाये केयूर बाजूबन्द और चन्द्रपत्नी रोहिणीके लाये कुंडल दिये ॥ २४ ॥ अँगूठी आदि रत्न और रतिके भूषण तथा विश्वकर्माका दिया हुआ शंख ॥ २५ ॥ विचित्र पद्मरागमणिकी बनी शय्या तथा भूषण आदि देकर राजाने हास किया ॥ २६ ॥ और उसके कबरी भारमें मंगलके भूषण बांधे और सुचित्र चन्दन वल्लीरूप पत्र इसके गंडस्थलमें किये ॥ २७ ॥ तीन कर्पूरकी लेखा सुगंधित

ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् ॥ तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥ २३ ॥ ददौ मंजीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत् ॥ केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ॥ २४ ॥ अंगुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम् ॥ शंखं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥ २५ ॥ विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम् ॥ भूषणानि च दत्त्वा च भूपो हासं चकार ह ॥ २६ ॥ निर्ममे कबरीभारे तस्या मांगल्यभूषणम् ॥ सुचित्रं पत्रकं गंडमण्डलेऽस्याः समं तथा ॥ २७ ॥ चन्दलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना ॥ परीतं परितश्चित्रैः सार्धं कुंकुमबिंदुभिः ॥ २८ ॥ ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिंदूरतिलकं ददौ ॥ तत्पादपद्म युगले स्थलपद्मविनिंदिते ॥२९॥ चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा ॥ स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणांबुजम् ॥३०॥ हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनःपुनः ॥ रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ३१ ॥ तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानांतरं ययौ ॥ मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने ॥ ३२ ॥

चन्दन और सब ओर विचित्र कुंकुमकी बिन्दु लगाई ॥ २८ ॥ प्रज्वलित दीपकके समान सिंदूरका तिलक किया. उसके दोनों पदकमल जो स्थल पद्मको लज्जित करते थे ॥२९॥ वहां नखरेखाओंमें महावरसे विचित्र किया फिर वह रँगा हुआ पद अपनी छातीमें रखकर॥३०॥ हे देवी ! मैं तेरा दास हूं इस प्रकार वारंवार उच्चारण कर रत्नभूषित हाथसे उसे अपने वक्षस्थलमें कर ॥ ३१ ॥ तपोवनको छोडकर

राज्यके स्थानान्तरमें आया. मलयाचल, देवस्थान, तपोवन प्रत्येक पर्वतमें ॥ ३२ ॥ अतिरमणीय स्थान स्थान तथा निर्जन पुष्पोद्यान प्रति कन्दरा समुद्रके तट ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे जहां मनोहर जल मिश्रित पवन चलती है दिव्य पुलिन २ नदी २ नद २ में ॥ ३४ ॥ मधुके कारण मधुकरोंकी दिव्य ध्वनिसे शब्दायमान विस्पन्दन वन सुरसन वन नन्दन गंधमादन ॥ ३५ ॥ देवोद्यान नन्दन चित्र चन्दन काननमें चम्पक केतकी वसन्तमें वासन्ती लताओंके वनमें ॥ ३६ ॥ कुमुद मालती कुमुदाम्भोजवन प्रति कल्पवृक्ष

स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने ॥ कंदरे कंदरे सिंधुतीरे चैवातिसुंदरे ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे॥ पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥ ३४ ॥ मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते ॥ विस्पंदने सुरसने नन्दने गन्धमादने ॥ ३५ ॥ देवोद्याने नंदने च चित्रचंदनकानने ॥ चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥ ३६ ॥ कुन्दानां मालतीनां च कुमुदांभोजकानने ॥ कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥ ३७ ॥ निर्जने कांचने स्थाने धन्ये कांचनपर्वते ॥ कांचीवने किंजलके कंचुके कांचनाकरे ॥ ३८ ॥ पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥ पुष्पचन्दसंयुक्तः पुष्पचंदनवायुना ॥ ३९ ॥ कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह ॥ न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा ॥ ४० ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः ॥ तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥ ४१ ॥ रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः ॥ एवं स बुभुजे राज्यं शंखचूडः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥

पारिजातके वन वनमें ॥ ३७ ॥ निर्जन कांचन स्थान धन्य कांचन पर्वत कांचीवन किंजल्क कंचुक कांचनाकर ॥ ३८ ॥ पुष्प चंदनोंकी शय्या पुंस्कोकिलाओंके शब्द पुष्प चन्दनसे संयुक्त पुष्प चन्दनकी वायुसे सेवित ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उस कामुकी रामाके संग वह कामुक रमण करने लगा दानवेन्द्र और तुलसी कोई भी तृप्त नहीं हुए ॥ ४० ॥ अग्निमें पडे घीके समान दोनोंका काम बढने लगा, तब दानवराज उसके सहित अपने आश्रममें आय ॥ ४१ ॥ फिर रम्य क्रीडा गृहमें जाकर वारंवार विहार करने लगा इस प्रकार प्रतापी शंखचूडने

राज्य भोगा ॥ ४२ ॥ एक मन्वन्तर पर्यन्त वह राजराजेश्वर रहा. देव असुर दानवोंको ॥ ४३ ॥ तथा गन्धर्व, किन्नर, राक्षसोंको शान्तिमें रक्खा परन्तु देवता अधिकार हरजानेसे भिक्षुकके समान विचरते थे ॥ ४४ ॥ वे सब बडे दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और वारम्वार अपना वृत्तान्त कहकर रोये ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा देवताओंके साथ शंकरके स्थानमें गये और विधाताने चन्द्रशेखर विश्वेशसे सब वर्णन किया ॥ ४६ ॥ तब देवतोंके साथ ब्रह्मा और भगवान् शम्भु वैकुण्ठको गये जो परमधाम बडादुर्लभ जरामृत्युका हरनेवाला है ॥ ४७ ॥

एकमन्वन्तरं पूर्णं राजा राजेश्वरो महान् ॥ देवानामसुराणां च दानवानां च संततम् ॥ ४३ ॥ गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शांतिदः ॥ हृताधिकारा देवाश्च चरंति भिक्षुका यथा ॥ ४४ ॥ ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम् ॥ वृत्तांतं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः ॥ ४५ ॥ तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शंकरालयम् ॥ सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् ॥४६॥ ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह ॥ दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥ ४७ ॥ संप्राप चं वरं द्वारमाश्रमाणां हरे रहो ॥ ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् ॥ ४८ ॥ शोभितान्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान् ॥ ४९ ॥ शंखचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥ सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥ ५० ॥ ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तांतं गमनार्थकम् ॥ तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ ५१ ॥ एवं षोडश द्वाराणि निरीक्ष्य कमलोद्भवः ॥ देवैः सार्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ॥ ५२ ॥

उन हरिके स्थानके द्वारमें प्राप्त हुए वहां रत्नसिंहासनोंपर स्थित द्वारपालोंको देखा ॥ ४८ ॥ जो पीतवस्त्रोंसे शोभित और रत्नभूषणोंसे भूषित थे सब वनमाला पहरे श्यामसुन्दर शरीर ॥ ४९ ॥ चार भुजा शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये कमलमुख मुसकुराते हुए कमल लोचन मनोहर है ॥ ५० ॥ तब ब्रह्माने उनसे अपने आनेका वृत्तान्त कहा तब उनकी आज्ञासे ब्रह्माजी आदि भीतर गये ॥५१॥ इसप्रकार

ब्रह्माजी सोलह द्वार देखतेहुए देवताओंके साथ हरिकी सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥ जो सभा देवर्षि तथा चतुर्भुजी पार्षदोंसे परिवृत थी सब नारायणस्वरूप और कौस्तुभ धारण किये थे ॥५३॥ जो नये चन्द्रके मण्डलके समान चौकोन मनोहर मणीन्द्रहारसे बनी हीरोंके सारसे शोभित ॥५४॥ अमूल्यरत्नोंसे खचित स्वेच्छासे हरिकी बनाई माणिक्य मालाके जालकी आभावाली मुक्ता पंक्तिसे विभूपित ॥ ५५ ॥ मंडलाकार कोटिरत्नोंके दर्पणोंसे मंडित विचित्र चित्ररेखा और अनेकचित्रोंसे विचित्रित ॥ ५६ ॥ पद्मरागमणियोंसे रचित रुचिर मणियोंके कमलोंसे संयुक्त

देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ॥ ५३ ॥ नवेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् ॥ मणींद्रहारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम् ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः ॥ माणिक्यमालाजालाभां मुक्तापंक्तिविभूषिताम् ॥ ५५ ॥ मंडितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः ॥ विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ॥ ५६ ॥ पद्मरागेन्द्ररचितां रुचिरां मणिपंकजैः॥ सोपानशतकैर्युक्तां स्यमंतकविनिर्मितैः ॥ ५७ ॥ पट्टसूत्रग्रंथियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ इन्द्रनीलस्तंभवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम् ॥ ५८ ॥ सद्रत्नपूर्णकुंभानां समूहैश्च समन्विताम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् ॥ ५९ ॥ कस्तूरीकुंकुमारक्तैः सुगंधिचन्दनद्रुमैः ॥ सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना ॥ ६० ॥ विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम् ॥ सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः ॥ ६१ ॥ ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शंकरश्च सुरैः सह ॥ वसंतं तन्मध्यदेशे यथेंदुं तारकावृतम् ॥ ६२ ॥

तथा स्यमन्तकमणि निर्मित सैकड़ों सोपानोंसे शोभित ॥ ५७ ॥ रेशमकी ग्रंथि लगे सुन्दर चन्दनके पत्ते जो इन्द्रनीलमणीके स्तंभोंमें लिपट रहे थे जिससे बड़ी मनोहर थी ॥ ५८ ॥ उन्हीं रत्नोंके पूर्णकुम्भोंके समूहोंसे युक्त तथा पारिजातके फूलोंकी बनी सैकड़ों मालाओंसे विराजित ॥ ५९ ॥ कस्तूरी, कुंकुम, महावर, सुगंधितद्रव्य चन्दनवृक्षोंसे सर्वत्र संस्कार की हुई और गंधवायुसे सुगंधित होरही ॥ ६० ॥ विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे सहस्रयोजनके विस्तारमें किंकरोंसे व्याप्त॥६१॥इसप्रकार ब्रह्मा और शिवजीने सभामें हरिभगवान्का दर्शन किया जो उनके

मध्य तारोंमें चन्द्रमाके समान शोभित थे ॥६२॥ जो अमूल्य रत्नोंके बने विचित्र सिंहासनपर स्थित थे किरीट कुण्डल और वनमालासे भूषित ॥ ६३ ॥ सर्वांगमें चंदन लगाये लील कमल हाथमें लिये आगे हँसते हुए नृत्य गीतका अवलोकन करते ॥ ६४ ॥ शान्त लक्ष्मी और सरस्वती जिनके चरणोंका स्पर्श कर रही लक्ष्मीके दिये सुगंधित ताम्बूलको चाबतेहुए ॥ ६५ ॥ परमभक्तिसे गंगा श्वेत चमर कर रही और भक्तिसे शिर झुकाये सब कोई स्तुति कर रहे ॥ ६६ ॥ इसप्रकार परिपूर्णतम प्रभुको देखकर सब ब्रह्मादिक प्रणाम कर स्तुति करनेलगे ॥ ६७ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम् ॥ ६३ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं बिभ्रतं केलि पंकजम् ॥ पुरतो नृत्यगीतं च पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥ ६४ ॥ शांतं सरस्वतीकांतं लक्ष्मीधृतपदांबुजम् ॥ लक्ष्म्या प्रदत्तता. म्बूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥६५॥ गंगया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः ॥ सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥ ६६ ॥ एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥ ६७ ॥ पुलकांचितसर्वांगाः साश्रुनेत्राश्च गद्गदाः ॥ भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्मकंधराः ॥६८॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि ॥ वृत्तांतं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥ ६९ ॥ हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् ॥ प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम् ॥ ७० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शंखचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि पद्मज ॥ मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥७१॥ शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम् ॥ गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ ७२ ॥

उनके सर्वांग पुलकित होगये आखोंमें जलभर गद्गद कंठ हो परम भक्तिसे भयभीत हुए शिर झुकाये रहे ॥ ६८ ॥ तब जगत्के विधाताने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक हरिसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ सर्वभावज्ञाता हरि उन सबके वचन सुन हँसकर ब्रह्मासे रहस्य कहने लगे ॥७०॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्माजी ! मैं शंखचूडका सब रहस्य जानता हूं वह पहले मेरा भक्त महातेजस्वी गोप रहा है ॥ ७१ ॥ उसके वृत्तान्तका

पुरातन इतिहास सुनो, गोलोकका चरित पापनाशक पुण्यकारी है ॥ ७२ ॥ सुदामा नाम गोप मेरा श्रेष्ठ पार्षद था उसनेही राधाके दारुण शापसे दानवी योनि पाई है ॥ ७३ ॥ एक समयमें अपने स्थानसे रासमण्डलमें गया और अपनी प्राणाधिक प्रिया विरजा गोपी भी संग थी ॥७४॥ उस समय राधा किंकरीके मुखसे विरजाके संग मुझे सुनकर देखनेको क्रोध किये आई परन्तु मुझे वहां न देखा ॥७५॥ विरजाको नदी रूप और मुझे अन्तर्धान जानकर तब वह फिर सखियोंके सहित अपने स्थानको गई ॥ ७६ ॥ तब वह देवी सुदामाके सहित मुझे मन्दिरमें देखकर मौन

सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम ॥ स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात् ॥ ७३ ॥ तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमंडलम् ॥ विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा ॥ ७४ ॥ सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किंकरीमुखात् ॥ पश्चात्क्रुद्धा साऽऽजगाम न ददर्श च तत्र माम् ॥ ७५ ॥ विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् ॥ पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह ॥७६॥ मां दृष्ट्वा मंदिरे देवी सुदाम्ना सहितं पुरा ॥ भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम् ॥७७॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमानश्च सुदामा तां चुकोप ह ॥ स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपंकजलोचना ॥ बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि ॥ ७९ ॥ सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्वणम् ॥ बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पंतं च पुनः पुनः ॥८०॥ सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह ॥ याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः॥८१॥ तं गच्छंतं च शपंतं च रुदंतं मां प्रणम्य च ॥ वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः ॥ ८२ ॥

हुए मेरी क्रोधसे भर्त्सना करने लगी ॥७७॥ यह सुनकर इस बातको न सहकर सुदामाको क्रोध हुआ और मेरे समीपही उसने क्रोधसे राधाको घुडका ॥ ७८ ॥ यह सुनतेही राधा क्रोधसे लाल नेत्र कर उसे मेरी सभामेंसे बाहर जानेकी आज्ञा दी ॥७९॥ तब आज्ञा पातेही सहस्रों सखियां उठ खडी हुई और निवारण करनेके अयोग्य महातेजस्वी उस जल्पना करते गोपको बाहर करती हुई ॥८०॥ फिर सुदामाने उन सखियोंको ताडन किया तब राधिकाने सखियोंका ताडन सुनकर रुष्ट हो यह दारुण शाप दिया अरे ! तू दानवी योनिको प्राप्त होगा ॥ ८१ ॥ तब शापित हो रुदन करता मुझे प्रणाम कर सुदामा जाने लगा तब नेत्रोंमें जल भर कृपाकर राधाने उसको निवारण किया ॥८२॥

हे वत्स ! स्थिर हो मत जाओ कहां जाते हो ऐसा वारम्वार कहा इसप्रकार कहकर फिर बडे खेदको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ सब गोपी रुदन करने लगीं और गोपभी बडे दुःखित हुए उन सबने और मैंनेभी राधिकाको पीछे समझाया ॥ ८४ ॥ तब उसने कहा यह आधे क्षणमें शापका पालन करके आवेगा. हे सुदामा ! तुम यहां आना ऐसा कह उसको शोकसे निवारण किया स्वयं भी शोकरहित हुई ॥ ८५ ॥ परन्तु गोलोकका आधा क्षण मर्त्यलोकका एक मन्वन्तर होता है जगत्के धाताने पृथ्वीमें ऐसा हीं नियम किया है ॥ ८६ ॥ इस प्रकार यह शंखचूड फिर वहीं आवेगा

हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्क यासीति पुनःपुनः ॥ समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम् ॥ ८३ ॥ गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः ॥ ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ॥ ८४ ॥ आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम् ॥ सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता ॥ ८५ ॥ गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वतरं भवेत् ॥ पृथिव्या जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम् ॥८६॥ इत्येवं शंखचूडश्च पुरस्तत्रैव यास्यति ॥ महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः ॥८७॥ मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम् ॥ शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः ॥ ८८ ॥ ममैव कवचं कंठे सर्वमंगलकारकम् ॥ बिभर्त्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः ॥८९॥ तस्मिन्ब्रह्मन्स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः ॥ तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥९०॥ सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र कालं भविष्यति ॥ तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥९१॥

वह महाबलिष्ठ योगेश सब मायाका पण्डित है ॥८७॥ यह तुम हमारा शूल ग्रहण कर शीघ्र भारतमें जाओ इस मेरे शूलसे शिवजी उस दानवका संहार करैंगे ॥ ८८ ॥ और वह दानव कण्ठमें मेरा ही सर्व मंगलकारक कवच धारण करता है इस कारण संसारमें विजयी हो रहा है ॥८९॥ हे ब्रह्मन् ! जबतक उसके पास वह कवच है तबतक उसको कोई नहीं मार सकता, ब्राह्मणका रूप धारणकर उसको मैं मांग लूंगा ॥ ९० ॥ जिस समय उसकी स्त्रीके सतीत्वकी हानि होगी उसी समय उसकी मृत्यु होगी यह वर तुमने ही दिया है ॥ ९१ ॥

सो मैं उसकी पत्नीसे निश्चित संगम करूंगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी इसमें सन्देह नहीं [जगन्निवास हरिके प्रत्यक्ष संभोगसे उनमें दोष नहीं है कारण कि, वह सर्वत्र व्यापक हैं]॥१२॥पीछे वह देहत्यागन कर मेरी ही प्रिया होगी. यह कह जगत्पतिने शिवजीको शूल दिया॥१३॥ शूल देकर भगवान् निज मन्दिरमें प्रविष्ट हुए, ब्रह्मा शिव आदि देवता भारत वर्षमें आये ॥ १४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार दानवोंके संहारमें ब्रह्माजी शिवको नियुक्त कर देवता शीघ्रतासे अपने

तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् ॥ तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥ १२ ॥ पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥ १३ ॥ शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यंतरे मुदा ॥ भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥ १४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा० नवमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च ॥ जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः ॥ १ ॥ चंद्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ॥ तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे ॥२॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम् ॥ शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिकं मुदा ॥ ३ ॥ सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम् ॥ महेंद्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ४ ॥ पंचयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणं भवेत् ॥ स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम् ॥ ५ ॥ सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥ ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः ॥ ६ ॥

स्थानको चले गये ॥ १ ॥ चन्द्रभागा नदीके किनारे मनोहर वटमूलमें देवताओंके निस्तारके निमित्त महादेव स्थित हुए ॥ २ ॥ और गंधर्वोंके अधिपति चित्ररथगंधर्वको दूत बनाकर शीघ्र ही शंखचूडके निकट भेजा ॥ ३ ॥ वह सर्वेश्वरकी आज्ञासे शीघ्र उस नगरमें गये जो महेन्द्र और कुबेरके नगरसे भी उत्कृष्ट था ॥ ४ ॥ पांचयोजनका विस्तार दशयोजन दीर्घ स्फटिकमणियोंके समूहसे युक्त यानसे वेष्टित ॥ ५ ॥ सात

परिखा और दुर्गसमन्वित जलती हुई अग्निके समान कोटिरत्नोंसे व्याप्त ॥६॥ मणिकी विचित्र वेदीवाली सैकडों गलियोंसे व्याप्त,अनेक वस्तुओंसे विराजित वणिकोंके महलसे व्याप्त ॥७॥ सिन्दूरके आकारवाली विचित्रमणि योंसे वेष्टित भूषित और दिव्य सैकडों कोटियों आश्रमोंसे व्याप्त था ॥ ८ ॥ उसके मध्यमें शंखचूडका आश्रम था जो वलयाकार पूर्णचन्द्रमण्डलके समान था ॥ ९ ॥ अग्निकी शिखासे युक्त प्रज्वलित चार परिखासे व्याप्त वह दुर्ग शत्रुओंको दुर्गम तथा दूसरोंको सुगम था ॥ १० ॥ अति ऊँचे आकाशको छूनेवाले मणिजडित शिखरोंसे सम्पन्न बारह

युक्तं च वीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः ॥ परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः ॥ ७ ॥ सिंदूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥ भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः ॥ ८ ॥ गत्वा ददर्श तन्मये शंखचूडालयं परम् ॥ अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेंदुमंडलम् ॥ ९ ॥ ज्वलदग्निशिखाक्ताभिः परिखाभिश्चतसृभिः ॥ तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् ॥१०॥ अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृङ्गविराजितम् ॥ राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥ मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः ॥ शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तंभविराजितम् ॥१२॥ तद्दृष्ट्वा पुष्पदंतोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः ॥ द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम् ॥ १३ ॥ तिष्ठंतं पिंगलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् ॥ कथयामास वृत्तांतं जगाम तदनुज्ञया ॥ १४ ॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः ॥ न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥ १५ ॥ गत्वा सोऽभ्यन्तरद्वारं द्वारपालमुवाच ह ॥ रणस्य सर्ववृत्तांतं विज्ञापयत मा चिरम् ॥ १६ ॥

द्वारोंमें स्थित द्वारपालोंसे सम्पन्न ॥ ११ ॥ मणियोंके सारवाले लक्ष मंदिरोंसे शोभित रत्नसोपान और रत्नोंके स्तंभोंसे शोभित था ॥ १२ ॥ यह देखकर पुष्पदन्तने द्वारको देखा कि, द्वारमें एक पुरुष शूल हाथमें लिये नियुक्त है ॥ १३ ॥ जो ताम्रवर्ण पिंगल लोचन बड़ा भयंकर है यह अपना वृत्तान्त कहकर उसकी आज्ञासे भीतर गया ॥ १४ ॥ उस द्वारको अतिक्रमणकर भीतर गया रणसम्बन्धी आह्वानमें आये हुए दूतको सुनकर कोई भी नहीं रोकता था ॥ १५ ॥ वह भीतरके द्वारपर जाय द्वारपालसे बोला कि, युद्धका वृत्तान्त बहुत शीघ्र कहो ॥ १६ ॥

उसने वहां जाकर दूतकी बात कही उसने बुलाया तब यह जाकर शंखचूडको देखने लगा ॥ १७ ॥ जो राजमंडलके मध्यमें स्थित रत्न सिंहासनपर शोभित जिसमें मणियोंके रचित सुन्दर दण्डे लगे थे ॥१८॥ रत्नोंके कृत्रिम मनोहर पुष्पोंसे शोभित भृत्य द्वारा मस्तकपर श्वेतछत्र धारण किये हुए ॥ १९ ॥ श्वेतचमर लिये मनोहर पार्षदोंसे वीज्यमान रत्नोंके भूषणोंसे भूषित मनोहर सुन्दर वेष किये ॥२० ॥ माला अनुलेपन और सुन्दर वस्त्र धारण किये अनेक सुवेष किये दानवोंसे व्याप्त ॥ २१ ॥ सैकडों शस्त्रधारी योधाओंसे सम्पन्न इस प्रकार उसको

स च तं कथयित्वा च दूतो गंतुमुवाच ह ॥ गत्वा वै शंखचूडं तं ददर्श सुमनोहरम् ॥ १७ ॥ राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम् ॥ मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदंडसमन्वितम् ॥ १८ ॥ रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा ॥ भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ १९ ॥ सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः ॥ सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने ॥ दानवेंद्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः ॥ २१ ॥ शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः ॥ एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंतः सविस्मयः ॥ २२ ॥ उवाच स च वृत्तांतं यदुक्तं शंकरेण च ॥ पुष्पदंत उवाच ॥ राजेंद्र शिव भृत्योऽहं पुष्पदंताभिधः प्रभो ॥ २३ ॥ यदुक्तं शंकरेणैव तद्ब्रवीमि निशामय ॥ राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम् ॥२४॥ देवाश्च शरणापन्ना देवेशं श्रीहरिं परम् ॥ हरिर्दत्त्वाऽस्य शूलं च तेन प्रस्थापितः शिवः ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे वट मूले त्रिलोचनः ॥ विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम् ॥ २६ ॥

देख पुष्पदन्त बडा विस्मित हुआ ॥ २२ ॥ और शंकरका कहा वृत्तान्त कहने लगा. पुष्पदन्त बोला हे राजेन्द्र ! मैं पुष्पदन्तनामवाला शिवका दूत हूं ॥२३॥ मैं शिवजीका सन्देशा कहता हूं सुनो इस समय देवताओंका राज्य और अधिकार उनको दे दो ॥२४॥ सब देवता भगवान् विष्णुकी शरण हुए हैं हरिने शूलदेकर शिवको प्रस्थापित किया है ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे वटमूलमें भगवान् त्रिलोचन

स्थित हैं या तो देवताओंका राज्य दो अथवा युद्ध करो ॥ २६ ॥ मैं शिवजीसे जाकर क्या कहूंगा सो आप कहिये. दूतके वचन सुनकर शंखचूड हँसकर बोला ॥ २७ ॥ तुम चलो प्रभातको मैं आऊंगा तब उस दूतने जाकर वटमूलमें स्थित ईश्वरसे कहा ॥ २८ ॥ जो कुछ शंखचूडके मुखसे वचन निकले थे कहे, इसी समय स्कन्द शिवजीके निकट आये ॥ २९ ॥ वीरभद्र, नंदी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकंपन ॥ ३० ॥ विरूप, विकृत, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकंठ, बलीभद्र, कालजिह्व,

गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुमथ तद्वद मामपि ॥ दूतस्य वचनं श्रुत्वा शंखचूडः प्रहस्य च ॥२७॥ प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वं च गच्छे त्युवाच ह ॥ स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम् ॥२८॥ शंखचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम् ॥ एतस्मिन्नंतरे स्कन्द आजगाम शिवांतिकम् ॥२९॥ वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः ॥ विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः ॥ ३० ॥ विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः ॥ कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः ॥ ३१ ॥ कालकण्ठो बली भद्रः कालजिह्वः कुटीचरः ॥ बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥३२॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः ॥ वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ३३ ॥ हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माऽश्विनौ च तौ ॥ कुबेरश्च यमश्चैव जयंतो नलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलस्तथा ॥ धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटरा कैटभी तथा ॥ स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी ॥ ३६ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता ॥ रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ ३७ ॥

कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य ॥ ३३ ॥ हुताशन चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर ॥ ३४ ॥ वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, बली, कामदेव ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रचंड, कोटर, कैटभी और स्वयं अष्टभुजा भयंकरी कालिकादेवी ॥ ३६ ॥ यह रत्नोंके सारसे निर्मित विमानोंपर स्थित थीं, लालवस्त्र

पहरे लाल मालाका अनुलेपन लगाये ॥ ३७ ॥ नाचती सुन्दर सुरसे गाती हुई हँसती थी वह अभया अपने भक्तोंको अभय और शत्रुओंको भय देती थी ॥ ३८ ॥ एक योजन तक विस्तार होनेवाली विकट चलायमान जिह्वाको धारण किये. शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष, शर ॥ ३९ ॥ गोल एक योजन परिमाणका खप्पर लिये,तथा गगनस्पर्शी त्रिशूल और एक योजनके परिमाणकी शक्ति धारण किये ॥ ४० ॥ मुद्गर, मूसल, वज्र, खेट, उज्ज्वल फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्र, गंधर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र

नृत्यंती च हसंती च गायन्ती सुस्वरं मुदा ॥ अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम् ॥३८॥ बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् ॥ शंखचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुःशरान् ॥ ३९ ॥ खर्परं वर्तुलाकारं गंभीरं योजनायतम् ॥ त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम् ॥ ४० ॥ मुद्गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम् ॥ वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वाह्नेयं नागपाशकम् ॥४१॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा ॥ पर्जन्यास्त्रं पाशुपतं जृंभणास्त्रं च पार्वतम् ॥४२॥ माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दंडं संमोहनं तथा ॥ अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥ ४३ ॥ आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः ॥ सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४४ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्मांडा ब्रह्मराक्षसाः ॥ वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः ॥४५॥ ताभिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् ॥ पितुः पार्श्वे सहायार्थं समुवास तदाज्ञया ॥४६॥ अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतावान् ॥ उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाऽभ्यन्तरमेव च ॥ ४७ ॥

पाशुपतास्त्र, जृंभणास्त्र, पर्वतास्त्र ॥४२॥ माहेश्वर वायव्य दंड सम्मोहन अव्यर्थमस्त्र, तथा दूसरे सैकडों दिव्यास्त्र युक्त थे ॥ ४३ ॥ और वहां तीनकोटि योगिनी आनकर स्थित हुई, जिनके संग विकट डाकिनी भी तीनकोटि थी ॥ ४४ ॥ भूत प्रेत पिशाच कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस,वेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नर ॥ ४५ ॥ इनके सहित स्कंदजी शिवजीको प्रणामकर सहाय करनेको पिताके समीप उनकी आज्ञासे स्थित हुए॥ ४६ ॥ उधर दूतके चलेजानेपर प्रतापवान् शंखचूड मंदिरमें जाय तुलसीसे यह सब बात कहने लगा ॥ ४७ ॥

रणकी वार्ता सुनकर उसका ओष्ठ और कंठ सूख गया और दुःखी मनसे वह साध्वी कहने लगी॥४८॥ तुलसी बोली हे प्राणबंधो ! हे स्वामिन् ! क्षणमात्र मेरे हृदयमें स्थित हो, हे प्राणके अधिष्ठाता देव ! मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ मेरे मनकी वांछित रतिको इस जन्ममें भोगो कुछ क्षणमें तुमको सादर नेत्रोंसे देखती हूं ॥ ५० ॥ इस समय मेरे प्राण चंचल और मन दग्ध होता है, हे स्वामिन् ! आजही रातको मैंने बुरा स्वप्न देखा है ॥ ५१ ॥ तुलसीके वचन सुन वह राजा भोजन पान करके यथेच्छ हितकारी सत्यवचन कहने लगा ॥ ५२ ॥ शंखचूड

रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥ उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ॥ ४८ ॥ तुलस्युवाच ॥ हे प्राणबन्धो हे नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् ॥ हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम् ॥४९॥ भुंक्ष्व जन्मसमासाद्य यन्मे मनसि वांछितम् ॥ पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां च सादरम् ॥५०॥ आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनो दग्धं च सन्ततम् ॥ दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि ॥ ५१ ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः ॥ उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम् ॥ ५२ ॥ शंखचूड उवाच ॥ कालेन योजितं सर्वं कर्म भोगनिबन्धनम् ॥ शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मंगलम् ॥ ५३ ॥ काले भवंति वृक्षाश्च स्कंधवंतश्च कालतः ॥ क्रमेण पुष्पवंतश्च फलवंतश्च कालतः ॥ ५४ ॥ तेषां फलानि पक्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ ते सर्वे फलिताः काले पातं यांति च कालतः ॥ ५५ ॥ काले भवंति विश्वानि काले नश्यंति सुन्दरि ॥ कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः ॥ ५६ ॥

बोला सब कर्म योगनिबंधन कालसे युक्त है, शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक, मंगल कालसे होता है ॥ ५३ ॥ कालसेही वृक्ष और उसके स्कंध होते हैं, फिर कालसेही वे फल पुष्पवान् होते हैं ॥ ५४ ॥ कालसेही उनके फल पकते हैं फिर कालसेही पककर कालसेही गिरते हैं ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरि ! यह सब विश्व कालसे होकर कालसेही नष्ट होता है. स्रष्टा कालसे प्रगट करता, रक्षक कालसे

ही रक्षा करता है ॥५६॥ कालसेही संहार और काल क्रमसे संचरण होता है ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी पराप्रकृति ईश्वरी है ॥ ५७ ॥ वह प्रकृतिरूप ईश्वर सबका सृजनकर पालन करने उपरांत संहार करता है वही कालकोभी नचाता है. समयपरही वह प्रभु अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको निर्माण करके ॥ ५८ ॥ इस चराचर विश्वको करता है. वह सर्वात्मा परमेश्वर सर्वेश और सर्वरूप है ॥ ५९ ॥ वही जनसे जनको प्रगट करते और जनसेही पालन करते हैं. जनको जनसेही हरण कराते हैं इस समय उन्हीं देवका भजन करते ॥ ६० ॥ जिनकी आज्ञासे पवन

संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण संचरंति ते ॥ ब्रह्मविष्णु शिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा ॥ ५७ ॥ स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा कालनर्तकः ॥ काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः ॥ ५८ ॥ निर्माय कृतवान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् ॥ सर्वेशः सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः ॥ ५९ ॥ जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः ॥ जनं जनेन हरते तं देवं भज सांप्रतम् ॥ ६० ॥ यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सांप्रतम् ॥ यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥ ६१ ॥ यथाक्षणं वर्षतींद्रो मृत्युश्चरति जंतुषु ॥ यथाक्षणं दहत्यग्निश्चंद्रो भ्रमति शीतवान् ॥ ६२ ॥ मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम् ॥ विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे ॥६३॥ संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं व्रजः ॥ को वा बन्धुश्च केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये ॥६४॥ अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा ॥ त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥ ६५ ॥

शीघ्रतासे गमन करता जिनकी आज्ञासे सूर्य प्रतिक्षण तपता है ॥६१॥ इन्द्र यथा क्षण बरसता मृत्यु प्राणियोंमें विचरण करता अग्नि जलाता और चन्द्रमा शीतल रहता ॥ ६२ ॥ मृत्युका मृत्यु कालका काल यमका यम स्रष्टाके भी स्रष्टा रक्षकके भी रक्षक विभु ॥ ६३ ॥ संहर्ताके भी संहार करनेवाले परमात्माकी शरण हो. हे प्रिये ! कौन किसका बंधु है जो सबका बंधु है उसका भजन करो ॥ ६४ ॥ मैं और तुम कौन हो विधाताने नियुक्त कर दिया है कर्मसेही तुमसे मिले अब वही तुमसे नियुक्त करता है ॥६५॥

शोक विपत्तिमें अज्ञानीही कातर होते हैं पंडित नहीं, यह सुख दुःखरूप काल चक्रनेमि क्रमसे भ्रमण करता है ॥ ६६ ॥ तुम अवश्य सर्वेश नारायणको प्राप्त होगी, जिस निमित्त पहले बद्रिकाश्रममें तप किया था॥ ६७ ॥ मैंने तुमको ब्रह्माके वर और तपसे प्राप्त किया है और तुम्हारा तप हरिके निमित्त था इस कारण हे कामिनी ! तुम हरिको प्राप्त होगी ॥ ६८ ॥ गोलोकके वृंदावनमें तुम गोविंदको प्राप्त होगी और मैं भी यह दानवी शरीर त्यागनकर उस लोकमें जाऊंगा ॥ ६९ ॥ वह तुम मुझे और मैं तुमको देखूंगा

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पण्डितः ॥ सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च ॥ ६६ ॥ नारायणं तं सर्वेशं कांतं यास्यसि निश्चितम् ॥ तपः कृतं यदर्थं च पुरा बदरिकाश्रमे ॥ ६७ ॥ मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च॥ हर्यर्थं यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसिकामिनी ॥ ६८ ॥ वृन्दावने च गोविंदं गोलोके त्वं लभिष्यसि ॥ अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥ ६९ ॥ तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वां च सांप्रतम् ॥ अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥ ७० ॥ पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये ॥ त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यं रूपं विधाय च ॥ ७१ ॥ तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कांते कातरा भव ॥ इत्युक्त्वा च दिनांते च तया सार्धं मनोहरम् ॥ ७२ ॥ सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे ॥ ७३ ॥ रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम् ॥ निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ ७४ ॥

मैं राधाके शापसे दुर्लभ भारत वर्षमें आया था ॥ ७० ॥ फिर वहीं जाऊंगा, हे प्रिये ! इसमें मुझको क्या शोक है तुम भी यह देहत्याग दिव्यरूप धारण कर ॥ ७१ ॥ तत्काल हरिको प्राप्त होगी हे प्रिये ! शोक मत करो, यह कह दिनान्तमें उसके साथ मनोहर ॥ ७२ ॥ दिव्यचन्दनसे चर्चित शय्यामें शयन करके तथा रत्न मंदिरमें अनेक प्रकारके विभवकर ॥ ७३ ॥ जहां रत्नोंके दीपक जल रहे उस स्थानमें परम सुन्दरी

स्त्रीरत्नको प्राप्त होकर क्रीडा कौतुक मंगलसे राजाने रात्रि व्यतीत की ॥ ७४ ॥ रोती और अति दुःखित अपनी प्रियाको गोदीमें बैठाय जो कृशोदरी निराहार शोकसागरमें निमग्न थी ॥ ७५ ॥ उस ज्ञानीने फिर भी दिव्यज्ञानसे उसको समझाया जो पहले कृष्णने भांडीर वनमें तत्त्वज्ञान दिया था ॥ ७६ ॥ वह सब शोकनाशी ज्ञान उसने उसको दिया तब वह देवी उस ज्ञानको प्राप्त होकर प्रसन्नवदन हुई ॥ ७७ ॥ सब विश्वको नश्वर मान प्रसन्नतासे क्रीडा करने लगी, तब वे दोनों स्त्री पुरुष क्रीडा करते हुए सुखसागरमें

कृत्वा वक्षसि तां कांतां रुदतीमतिदुःखिताम् ॥ कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥ ७५ ॥ पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् ॥ पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भांडीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम् ॥ ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥ ७७ ॥ क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम् ॥ तौ दंपती च क्रीडतौ निमग्नौ सुखसागरे ॥ ७८ ॥ पुलकांचितसर्वांगौ मूर्च्छितौ निर्जने मुने ॥ अंगप्रत्यंगसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ ॥ ७९ ॥ एकांगौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा ॥ प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥ ८० ॥ प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम् ॥ तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तंद्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८१ ॥ सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ ॥ क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयंतौ रसाश्रयात् ॥ ८२ ॥ कथां मनोरमां दिव्यां हसंतौ च क्षणं पुनः ॥ क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ ॥ ८३ ॥

निमग्न हुए ॥ ७८ ॥ सर्वांग उनके पुलकित और निर्जनमें मूर्च्छित हुए सुरतमें उत्सुक होकर उन्होंने अंग प्रत्यंगसंयुक्त कर लिये थे ॥ ७९ ॥ वे दो थे परन्तु अर्धनारीश्वरके समान एक अंग होगये थे उस समय तुलसी प्राणपतिको प्राणोंसे अधिक मानती हुई ॥ ८० ॥ और राजाने भी उस प्राणेश्वरी सतीको प्राणोंसे अधिक माना वह दोनों समान सुन्दर सुखसे स्थित हो सोये ॥ ८१ ॥ वह सुन्दर वेषवाले मनोहर सुख सम्भोगसे अचेष्ट होगये और रसाश्रयकी कथासे क्षणमें चैतन्यताको प्राप्त हुए ॥ ८२ ॥ मनोहर दिव्य कथा करते हास्य

करने लगे, वह रसभावमें युक्त हो क्षणमें केलि करते क्षणमें बात करते ॥ ८३ ॥ वे दोनों इस विषयमें पंडित थे, इस कारण सुरतिसे विरामको प्राप्त न हुए निरन्तर दोनों जयकी इच्छा करते क्षणमात्रको भी पराजित न हुए ॥८४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां शक्तिप्रादुर्भावेविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले वह कृष्णपरायण दानव कृष्णको मनमें ध्यानकर उस मनोहर फूलोंकी शय्यासे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ॥१॥ रात्रिके वस्त्रत्याग मंगल जलसे स्नानकर धुले वस्त्रपहर उज्ज्वल तिलक धारणकर ॥ २ ॥ अभीष्ट आह्निक कर्म और देववंदन कर

सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपंडितौ ॥ सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ८४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे शक्तिप्रादुर्भावे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥ १ ॥ रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मंगलवारिणा ॥ धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम्॥२॥चकराह्निकमावश्यमभीष्टदेववंदनम् ॥ दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मंगलम् ॥३॥ रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च कांचनम् ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥ ४ ॥ अमूल्यरत्नं यत्किंचिन्मुक्तामाणिक्य हीरकम् ॥ ददौ विप्राय गुरवे यात्रामंगलहेतवे ॥५॥ गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम् ॥ ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मंगलाय च ॥ ६ ॥ भांडाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम् ॥ ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणाय ददौ मुदा ॥ ७ ॥ पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च ॥ पुत्रं समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसंपदम् ॥ ८ ॥

दही घृत मधु खील इन मांगलिक पदार्थोंका दर्शन कर ॥३॥ श्रेष्ठ रत्न,श्रेष्ठमणि,श्रेष्ठ वस्त्र, श्रेष्ठ सुवर्ण जैसे वह नित्य ब्राह्मणोंको दान करता था इसी प्रकार कर ॥४॥ जो अमूल्य रत्न मुक्तामणि हीरे आदि थे वह यात्रा मंगलके निमित्त ब्राह्मण और गुरुजीको दे ॥ ५ ॥ गजरत्न, अश्वरत्न, धनरत्न यह सब दरिद्र ब्राह्मणोंको मंगलके निमित्त दिये ॥ ६ ॥ सहस्रों भंडारे दोलाख नगर शतकोटि ग्राम प्रसन्न हो ब्राह्मणोंको दिये ॥७॥ सब दानवोंका अधिपति अपने पुत्रको करके उस भार्या और सब राज्यको पुत्रके समर्पणकर ॥ ८ ॥

प्रजा अनुचरोंके समूह भांडारादि दे आपने वस्त्र पहर धनुष धारण किया ॥ ९ ॥ और भृत्योंके द्वारा सेनासंग्रह कराई, तीन लाख घोडे, ए
लाख हाथी ॥ १० ॥ दशसहस्र रथ, तीनकोटि धनुषधारी तीनकोटि वर्मधारी तीनकोटि शूलधारी ॥ ११ ॥ हे नारद ! उस दानवेन्द्र
इतनी सेना एकत्र की उस सेनाका अधिपति युद्धशास्त्रमें विशारद ॥ १२ ॥ रथियों में प्रवर महारथी था, उसको तीन लाख अक्षौणीका सेन
पति करके ॥ १३ ॥ और तीस अक्षौहिणीको रक्षामें किया, यह सब मनसे भगवान्का स्मरणकर शिबिरोंसे बाहर हुए ॥ १४ ॥ और व

प्रजानुचरसंघं च भांडारं वाहनादिकम् ॥ स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥ ९ ॥ भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसंच
यम्॥अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम् ॥ १० ॥ रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः॥त्रिकोटिभिर्वर्मिणां च शूलिनां
च त्रिकोटिभिः ॥ ११ ॥ कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद ॥ तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥
महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे ॥ त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥ १३ ॥ त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भां
डौघं च चकार ह ॥ बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥ १४ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः ॥ गुरुवर्गान्पुर
स्कृत्य प्रययौ शंकरांतिकम् ॥ १५ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः ॥ सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नारद ॥
॥१६॥कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रं च भारते ॥ पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥ १७ ॥ श्रीशैलोत्तरभागे च गन्ध
मादनदक्षिणे ॥ पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥१८॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥ शाश्वती जलपूर्णा
च पुष्पभद्रा नदी शुभा॥१९॥लवणाब्धि प्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता॥शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्॥२०॥

रत्नोंसे बने विमानपर चढा और गुरुजनोंको आगेकर शंकरके समीप गया ॥ १५ ॥ जहां पुष्पभद्रा नदीके किनारे सुन्दर अक्षयवट था, ।
नारद ! वह सिद्धोंका सिद्धाश्रम सिद्धक्षेत्र है ॥ १६ ॥ इस पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलजीके तपका स्थान पश्चिम सागरके पूर्व और मलयाचलके
पश्चिममें ॥ १७ ॥ श्रीशैलके उत्तरभाग गंधमादनके दक्षिणमें पाँचयोजनके चौडावमें और इससे सौगुनेके विस्तारमें ॥ १८ ॥ शुद्ध स्फटिक
मणिके समान स्वच्छजलवाली इस पुण्य दायक भारतमें निरन्तर जलसे पूर्ण पुष्पभद्रा नदी है ॥ १९ ॥ वह सागरकी प्रिया भार्या निरन्तर

सौभाग्यसे सम्पन्न शरावतीसे मिली है जो हिमालयसे निकली है ॥ २० ॥ वह गोमतीको बाईं ओर करती पश्चिमसागरमें मिली है वहां जाकर शंखचूडने शिवजीका दर्शन किया ॥ २१ ॥ जो सौकोटि सूर्यके समान कान्तिमान् वटमूलमें स्थित थे योगासनमारे मुद्रायुक्त हास्य करते हैं ॥ २२ ॥ जो शुद्धस्फटिक मणिके समान ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त हो रहे हैं. त्रिशूल पट्टिश और व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारे ॥ २३ ॥ भक्तोंकी मृत्यु हरनेवाले शांत गौरीकांत मनोहर तपके फल और सब सम्पत्तियोंके देनेवाले ॥ २४ ॥ आशुतोष प्रसन्नमुख भक्तोंपर दया

गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥ तत्र गत्वा शंखचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् ॥ २१ ॥ वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम् ॥ २२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्॥२३॥ भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकांतं मनोहरम् ॥ तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ २४ ॥ आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ॥ २५ ॥विश्वंभरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम् ॥ कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥२६॥ ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानंदं सनातनम् ॥ अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २७ ॥ सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः ॥ वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम् ॥ २८ ॥ आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शंकरः ॥ उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥ २९ ॥ परस्परं च भाषां ते चक्रुस्तत्र च सांप्रतम् ॥ राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसंनिधौ ॥ ३० ॥

करनेमें तत्पर विश्वनाथ विश्वबीज विश्वरूप विश्वज ॥ २५ ॥ विश्वके भरण करनेवाले विश्वमें श्रेष्ठ विश्वके संहारकारक कारणोंकेभी कारण नरकसागरसे तारनेवाले ॥ २६ ॥ ज्ञानदाता ज्ञानके बीज ज्ञानमें आनन्द सनातनशिवको विमानसे उतरकर दानवेन्द्रने देखा ॥ २७ ॥ और सबके सहित भक्तियुक्त हो प्रणाम किया जिनके बाईं और भद्रकाली और आगे स्कन्दजी स्थित थे ॥२८ ॥ तब काली स्कन्द और शंकरने उसको आशीर्वाद दिया और नन्दीश्वरादि उसको आया देख खडे होगये ॥ २९ ॥ और परस्पर वार्ता करने लगे, राजाभी वार्ता

कर शिवजीके समीप स्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब भगवान् महादेवने प्रसन्न हो उससे कहा महादेवजी बोले ब्रह्मा जगत्के विधाता और धर्मवित् धर्मके पिता हैं ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र मरीचि परम धार्मिक वैष्णव हैं. उनके पुत्र धर्मिष्ठ प्रजापति कश्यप हैं ॥ ३२ ॥ जिनको प्रसन्न हो दक्षने तेरह कन्या दान की हैं उसमें एक साध्वी दनु सौभाग्यसे वर्द्धित है ॥ ३३ ॥ उस दनुके चालीस पुत्र दानव बडे तेजस्वी हुए उनमें एक विप्रचित्ति महाबली दानव हुआ ॥ ३४ ॥ उसका पुत्र धार्मिक दंभ विष्णुभक्त जितेन्द्रिय हुआ, उसने लाख वर्षतक पुष्करमें परम मंत्रका जप

प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ महादेव उवाच ॥ विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ॥३१॥ मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ॥ कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः ॥३२॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश ॥ तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता ॥ ३३ ॥ चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्वणाः ॥ तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेंद्रियः ॥ जजाप परमं मंत्र पुष्करे लक्षवत्सरम् ॥३५॥ शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् ॥ ३६ ॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः ॥ अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः ॥ ३७ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि ॥ ३८ ॥ दीयमानं न गृह्णंति वैष्णवाः सेवनं विना ॥ ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ ३९ ॥

किया ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यको गुरु करके परमात्मा कृष्णको आराधन किया तब कृष्णपरायण तुम पुत्रको पाया ॥ ३६ ॥ पहले तुम गोप पार्षद गोपोंमें अति धार्मिक थे. हे दानवेश्वर ! अब इस भारतवर्षमें तुम राधाके शापसे ॥ ३७ ॥ जन्म ले वैष्णव हो ब्रह्मासे स्तम्ब पर्यन्त तुच्छ मानते हो सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य मुक्ति हरिके ॥ ३८ ॥ देनेपर भी वैष्णव उनकी सेवा विना कुछ ग्रहण नहीं करते हैं

वैष्णव ब्रह्मत्व और अमरत्व भी तुच्छ मानते हैं ॥ ३९ ॥ इन्द्रत्व और मनुत्वकी भी इच्छा नहीं करते फिर तुम कृष्णके भक्तका देवताओंके अधिकार लेनेमें क्यों भ्रमता है ॥४०॥ हे भूमिपति ! देवताओंको राज्य देकर मेरी प्रीतिकी रक्षा करो तुम अपने राज्यमें सुख भोगो, देवता अपने अधिकारमें संतुष्ट हो॥ ४१ ॥ तुम सब कश्यपके वंशमें हो विरोध मत करो जो कोई पाप ब्रह्महत्यादिक है॥ ४२ ॥ वे ज्ञातिद्रोह पापकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं है. हे राजेन्द्र! यदि अपनी सम्पदाकी हानि मानते हो॥ ४३ ॥ तो सब अवस्था किसके

इंद्रत्वं वा मनुत्वं वा न मेने गणनासु च ॥ कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे ॥४०॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप ॥ सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु वै पदे ॥ ४१ ॥ अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥४२॥ ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे ॥४३॥ सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा ॥ ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा ॥४४॥ आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावादीश्वरेच्छया ॥ ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम् ॥४५॥ करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च ॥ परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रये सदा ॥ ४६ ॥ त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः ॥ एकभागः कलौ पूर्वे तद्ंशश्च क्रमेण च ॥ ४७ ॥ कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चंद्रकला यथा ॥ यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्छिशिरे पुनः ॥ ४८ ॥

समान बीतती है. लय प्राकृत लयमें ब्रह्माका भी तिरोभाव हो जाता है ॥ ४४ ॥ फिर ईश्वरकी इच्छासेही उसका आविर्भाव होता है. तपसे ज्ञानकी वृद्धि होती है. यह सत्य है किन्तु स्मृतिका लोप होता है ॥ ४५ ॥ ज्ञानसे ही स्रष्टा सृष्टि करता है. सत्ययुगमें सत्याश्रयसे परिपूर्ण धर्म होता है ॥ ४६ ॥ त्रेतामें तीन भाग द्वापरमें दो भाग रहता है कलियुगमें एक भाग और फिर वह भी क्रमसे घटता है ॥ ४७ ॥ कलियुगान्तमें कलामात्र शेष रह जाता है जैसे अमावसमें चन्द्रमाकी कला रहती है जैसे ग्रीष्म ऋतुमें

सूर्यका तेज रहता है वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं होता॥ ४८ ॥ दिनमें भी जैसा मध्याह्नमें होता है वैसा प्रभात और संध्यामें नहीं, समयपर ही उदय बाल ॥ ४९ ॥ और समयपर प्रचण्डता तथा फिर अस्त होजाता है, और समयपरही दुर्दिन होकर बादलोंमें छिप जाता है ॥ ५० ॥ राहुके ग्रासमें कुपित होकर फिर प्रसन्न होता है पूर्णिमाको चन्द्रमा परिपूर्ण होता है ॥ ५१ ॥ वैसा दिन दिन नहीं होकर क्षय होता रहता है और अमावसके उपरान्त फिर दिन २ पुष्ट होता है ॥ ५२ ॥ शुक्ल पक्षमें संपत् युक्त कृष्ण पक्षमें

दिनेषु यादृङ् मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् ॥ उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च ॥ ४९ ॥ प्रकांडतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः ॥ दिने प्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने ॥ ५० ॥ राहुग्रस्ते कंपितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥ परिपूर्णतमश्चंद्रः पूर्णिमायां च जायते ॥ ५१ ॥ तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिनेदिने ॥ पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिनेदिने ॥ ५२ ॥ संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा ॥ राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते ॥५३॥ काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः काल भेदतः ॥ भविष्यति बलिश्चेंद्रो भ्रष्टश्री सुतलेऽधुना ॥ ५४ ॥ कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा ॥ काले जले निमग्ना सा तिरोभूताऽम्बुविप्लुता ॥ ५५ ॥ काले नश्यंति विश्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ चराचरश्च कालेन नश्यंति प्रभवंति च ॥ ५६ ॥ ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ अहं मृत्युंजयो यस्मादसंख्यं प्रकृतं लयम् ॥ ५७ ॥

क्षयसे मलीन होता है, राहुग्रस्त होनेसे मलीन और दिनमें शोभा नहीं पाता॥ ५३ ॥ समयसे ही चन्द्रमा शुभ्र और समयसेही भ्रष्टश्री होता है इस समय सुतलमें बली भ्रष्टश्री है समयपर इंद्र होगा ॥ ५४ ॥ समयपरही पृथ्वी सब सस्य शालिनी होती है, यह पृथ्वी सबकी आधार है और समयपरही जलमें निमग्न हो छिप जाती है ॥ ५५ ॥ समयपरही जगत् नष्ट होकर समयपरही फिर होता है यह. चराचर कालसे नष्ट होकर फिर प्रगट होता है ॥ ५६ ॥ ईश्वर की समता ब्रह्म परमात्मा देखो जिससे मैं मृत्युंजय होकर असंख्य प्राकृत

प्रलयोंको ॥ ५७ ॥ अन्तर्धान और प्रगट होता बार २ देखता हूं वही प्रकृतिरूप और वही पुरुष है ॥५८॥ वहीं आत्मा वही नानारूपधारी जीव है. जो निरन्तर उसके नामगुणोंका कीर्तन करता है ॥ ५९ ॥ वह समयपर जन्म रोग भय जरावाली मृत्युको जय करता है विधाताको सृजनेवाला और विष्णुको पालक इसीने किया है ॥ ६० ॥ और अहंकार युक्त संहार करनेवाला मैं हुआ हूं हे राजन् ! संहारमें कालाग्नि रुद्र नियुक्त होते हैं ॥६१॥ मैं स्वयं उसके नाम गुणका कीर्तन करता रहता हूं इसीके ज्ञानसे मैं निर्भय और मृत्युंजय कहाता हूं ॥६२॥ गरुडसे

अदर्शं चापि द्रक्ष्यामि वारंवारं पुनः पुनः ॥ स च प्रकृतिरूपं च स एव पुरुषः स्मृतः ॥५८॥ स चात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः ॥ करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ॥५९॥ काले मृत्युं स जयति जन्म रोगभयं जराम् ॥ स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत्॥६०॥अहं कृतश्च संहर्ता भयं विषयिणः कृताः ॥ कालाग्निरुद्रं संहारे नियोज्य विषये नृप॥६१॥ अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः ॥ ६२ ॥ मृत्युर्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः ॥ इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः ॥६३॥ विरराम च शंभुश्च सभामध्ये च नारद ॥ राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६४ ॥ उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम् ॥ शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम् ॥६५॥ तथाऽपि किंचिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम् ॥ ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ॥ ६६ ॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः ॥ मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर ॥ ६७ ॥

सर्पके समान मृत्यु भी मृत्युके भयसे जिससे भागती है इस प्रकार सर्व भावनामें तत्पर सर्वेश उससे यह वचन कहा ॥ ६३ ॥ हे नारदजी ! सभाके मध्यमें शिवजी विरामको प्राप्त हुए और राजा भी यह वचन सुन वारंवार शिवजीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ६४ ॥ और विनय पूर्वक शिवजीसे मधुर वचन बोला शंखचूड बोला हे महादेवजी ! आपने कहा यह इसी प्रकार है इसमें अन्यथा नहीं है ॥६५॥ तो भी आप यथार्थ मेरे निवेदनको सुनो जो कि आपने अभी ज्ञातिद्रोहका बडा पाप बताया है ॥ ६६ ॥ तब बलिका सर्वस्व हरण करके उसको पातालमें

क्यों भेजा ? हे ईश्वर ! मैंने अब ऊर्ध्व लोकका ऐश्वर्य ग्रहण कर लिया है॥६७॥ और सुतलसे उसको ऐश्वर्य उद्धार करनेकी सामर्थ्य स्वयं गदाधर भगवान् फिर भाई सहित हिरण्याक्षको देवताओंने क्यों मरवाया ॥ ६८ ॥ देवताओंने शुम्भादि असुरोंको क्यों मारा पहले समुद्र मंथनमें अमृत भी देवताओंने ही पिया ॥ ६९ ॥ हम दैत्यके बल क्लेशभागी और वह सब फलभोगी हुए यह विश्व परमात्मा प्रकृतिका क्रीड भाजन है ॥७०॥ जिसको जहां देता है वहीं उसको ऐश्वर्य मिलता है देवदानवोंका विवाद निमित्तसे निरन्तर होता है ॥ ७१ ॥ कालानुसारा

सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः ॥ सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ॥ ६८ ॥ शुंभादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः ॥ पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ॥ ६९ ॥ क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥ क्रीडाभांडमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः ॥ ७० ॥ यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥ देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा ॥ ७१ ॥ पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च ॥ तदाऽऽवयोर्विरोधं वा गमनं निष्फलं परम् ॥ ७२ ॥ समसंबंधिनो बंधोरीश्वरस्य महात्मनः ॥ इयं ते महती लज्जा युद्धेऽस्माभिः सहाधुना ॥ ७३ ॥ जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ॥७४॥ यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम् ॥ महादेव उवाच ॥ युष्माभिः सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः ॥७५॥ का लज्जा महती राजन्न कीर्तिर्वा पराजये ॥ युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च ॥ ७६ ॥

उनकी हमारी जय पराजय होती है. हमारे उनके बीचमें आपका आना परम निष्फल है ॥ ७२ ॥ ईश्वर महात्माका तो सबसे समान सम्बन्ध होता है और हमारे साथ युद्धमें तो आपको लज्जा होनी चाहिये॥७३॥ कारण कि, आपके होते यदि हमारी जय होगी तो अधिक कीर्तिहोगी. आप जीतेंगे तो कुछभी आपकी बड़ाई नहीं;कारण कि, आप ईश्वर हो पराजयमें आपकी बडीहानि है यह वचन सुनकर शिवजीहँसते हुए॥७४॥ उस दानवको यथोचित उत्तर देने लगे महादेवजी बोले ब्रह्माके वंशमें प्रगट हुए तुम्हारे साथ युद्धमें ॥ ७५ ॥ क्या लज्जा है, हे राजन् ! परा

जयमें अकीर्ति भी नहीं है आदिमें हरिने भी मधुकैटभसे युद्ध किया था ॥ ७६ ॥ तथा हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षसे भी गदाधरका युद्ध हुआ था ॥ ७७ ॥ मैंने भी पहिले त्रिपुरासुरके साथ युद्ध किया था सर्वेश्वरी सबकी माता प्रकृति देवीका भी॥ ७८ ॥ शुम्भादिकके संग परम अद्भुत संग्राम हुआ था, तुम परमात्मा कृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो ॥७९॥ इससे जो जो दैत्य मरे उनमें तुम्हारी समान कोई न था, सो हे राजन् ! मेरी तुमसे युद्ध करनेमें क्या लज्जा है॥८०॥हरिने देवताओंको शरण देनेके ही निमित्त मुझे भेजा है देवताओंका राज्य देदो यह मेरा निश्चित

हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥ हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता ॥ ७७ ॥ त्रिपुरैः सह युद्धं च मयाऽपि च पुरा कृतम् ॥ सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह ॥ ७८ ॥ सह शुंभादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः ॥ पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ७९ ॥ ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपि त्वया समाः ॥ का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह॥ ॥ ८० ॥ सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो ॥ देहि राज्यं च देवानामिति मे निश्चितं वचः ॥ ८१ ॥ युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम् ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद ॥ उत्तस्थौ शंखचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे एकविंशोऽध्यायः॥२१॥श्रीनारायण उवाच ॥ शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेंद्रः प्रतापवान् ॥ समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः ॥ १ ॥ शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरम् ॥ दानवेंद्रः ससैन्यश्च युद्धारंभे बभूव ह ॥२॥ स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा ॥ भास्करो युयुधे विप्रचितिना सह सत्वरः॥३॥

वचन है ॥ ८१ ॥ "अथवा हमारे साथ संग्राम करो वाणीके व्ययसे क्या प्रयोजन है" हे नारद ! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हुए तब अमात्योंके सहित तत्काल शंखचूड उठ खडा हुआ ॥८२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले वह प्रतापी दानवेन्द्र शिवजीको शिरसे प्रणाम कर अमात्योंके सहित शीघ्र अपने विमानपर चढा ॥ १ ॥ और शिवजीने भी अपनी सेना और देवताओंको शीघ्र प्रेरणा किया और दानवेन्द्रने भी सेनासहित युद्धका आरम्भ किया ॥ २ ॥ स्वयं

महेन्द्रका वृषपर्वासे, भास्करका विप्रचित्तिसे ॥३॥ दम्भका चन्द्रसे, कालका कालस्वरसे, हुताशनका गोकर्णसे ॥४॥ कुबेरका कालकेयसे, विश्वकर्माका भयसे, भयंकरका मृत्युसे, यमका संहारसे ॥ ५ ॥ वरुणका विकंकणसे, वायुका चंचलसे, बुधका घृतपृष्ठसे, शनैश्वरका रक्ताक्षसे ॥६॥ जयन्तका रत्नसारसे, वसुओंका वर्चस्गणोंसे, अश्विनीकुमारोंका दीप्तिमान्‌से, नलकूबरका धूम्रसे ॥ ७ ॥ धर्मका धुरन्धरसे मंगलका उषाक्षसे, भानुका शोभाकरसे मन्मथका पिठरसे ॥ ८ ॥ गोधामुख चूर्णखड्ग ध्वज कांचीमुख पिण्ड धूम्र नन्दी ॥ ९ ॥ विश्व और पलाशसे आदित्यादि

दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार परमं रणम् ॥ कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥ ४ ॥ कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ॥ भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥५॥ विकंकणेन वरुणश्चंचलेन समीरणः ॥ बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ ६ ॥ जयन्तो रत्नसारेण विसवो वर्चसां गणैः ॥ अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः ॥७॥ धुरंधरेण धर्मश्च उषाणक्षे च मंगलः ॥ शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः ॥ ८ ॥ गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च ॥ कांचीमुखेन पिंडेन धूम्रेण सह नंदिना ॥९ ॥ विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे ॥ एकादश च रुद्रा वै एकादशभयंकरैः ॥ १० महामारी च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह ॥ नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥११॥ युयुधुश्च महायुद्धे प्रलयेऽपि भयंकरे ॥ वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥ १२ ॥ सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहः सततं मुने ॥ रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह ॥ १३ उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ शंकरस्य च ये योधा दानवैश्च पराजिताः ॥ १४ ॥

युद्ध करने लगे. ग्यारह रुद्र ग्यारह भयंकर दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥१०॥ महामारी दैत्या उग्रचण्डादिके सहित संग्राम करने लगी और नन्दीश्वरादि सब दानवादि गणोंके साथ ॥ ११ ॥ उस उस महाप्रलयके भयंकर संग्राममें युद्ध करने लगे और स्कन्दके सहित शंकर वटमूलमें स्थित हुए ॥१२॥ हे मुने ! वह सब सैन्यसमूह संग्राम करने लगा मनोहर रत्नोंके सिंहासनमें कोटियों दानवोंके सहित ॥१३॥ रत्नोंके भूषणोंसे भूषित शंखचूड स्थित हुआ, शंकरके योद्धा दानवोंसे पराजित होने लगे ॥ १४ ॥

और देवता भीत तथा क्षतविग्रह होकर भागने लगे, तब स्कन्दने कोपकर देवताओंको अभय दी ॥ १५ ॥ और तेजसे अपने गणोंका बल बढाने लगे सो यह एकमात्र ही दानवोंके गणोंसे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ और युद्धमें सैकडों अक्षौहिणी सेनाका वध किया इधर कमललोचना कालीने अनेक असुरोंका संहार किया ॥ १७ ॥ और अतिक्रुद्ध हो दानवोंका रक्तपान करने लगी, दशलक्ष गजेन्द्र और कोटिशों लक्ष अश्व ॥ १८ ॥ हाथसे पकड पकड लीलासे ही मुखमें डालने लगी हे मुने ! युद्धमें सहस्रों कबन्ध नाचने लगे

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः ॥ चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ॥१५॥ बलं च स्वगणानां च वर्धयामास तेजसा॥ सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥ १६ ॥ अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः ॥ असुरान्पातयामास काली कमललोचना॥ १७ ॥ पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः परम् ॥ दशलक्षगजेंद्राणां शतलक्षं च कोटिशः ॥ १८॥ समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ कबंधानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥ १९ ॥ स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः ॥ भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंभश्चापि विकंकणः ॥ स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते सर्वे विक्रमेण च ॥२१॥ महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी ॥ बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः ॥ २२ ॥ न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारुद्रसमुल्वणम् ॥ २३ ॥ दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः॥ राजा विमानमारुह्य चकार बाणवर्षणम् ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ स्कन्दके शरजालसे दानवोंका शरीर क्षत विक्षत होगया और वे महारणके पराक्रमी भयभीत हो भागने लगे ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्ति दंभ विकंकण यह बडे विक्रमसे स्कन्धके साथ युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ और पराङ्मुखी न होकर महामारी युद्ध ही करती रही वे सब स्कन्दकी शक्तिसे पीडित हो क्षुब्ध हुए ॥ २२ ॥ समरभयसे भागे नहीं इस कारण स्वर्गसे पुष्पवृष्टि हुई, स्कंदका महाभयंकर समर देखकर ॥ २३ ॥ जो प्रकृति प्रलयके समान दानवोंका क्षयकारी था यह देख राजाने विमानपर चढ

बाणोंकी वर्षा की ॥ २४ ॥ राजाकी शरवृष्टि मेघवर्षाके समान थी उससे महाघोर अन्धकार और अग्नि उठने लगी ॥ २५ ॥ नंदीश्वरादि और देवता यह देख भागने लगे इकले कार्तिके ही संग्रामस्थलमें स्थित हुए ॥ २६ ॥ पर्वत शिला सर्पवृक्षकी बडी भयंकर वर्षा राजा करने लगा राजाकी घोर शरवृष्टिसे स्कन्द ताडित हुए जैसे घने कुहरसे सूर्य ढकजाता है ॥ २७ ॥२८॥ राजाने स्कंधका महाघोर भयंकर धनुष छेदन कर दिया दिव्यरथको तोड़कर रथके पीठको छेदन कर दिया ॥ २९ ॥ दिव्यास्त्रसे उनके मयूरको भी जर्जरित कर दिया

नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा ॥ महाघोरांधकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव च ॥ २५ ॥ देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वेऽप्यन्ये नंदीश्वरादयः ॥ एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि ॥ २६ ॥ पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा ॥ नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च भयंकरीम् ॥ २७ ॥ नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनंदनः ॥ नीहारेण च सांद्रेण प्रहितो भास्करो यथा ॥२८॥ धनुश्चिच्छेद स्कंदस्य दुर्वहं च भयंकरः ॥ बभंज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान् ॥ २९ ॥ मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः ॥ शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षस्य घातिनीम् ॥ ३० ॥ क्षणं मूर्छां च संप्राप बभूव चेतनः पुनः ॥ गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा ॥३१॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानमारुह्य कार्त्तिकः ॥ शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्वणम् ॥ ३२ ॥ सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा ॥ सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥ ३३ ॥ वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् ॥ रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ॥ ३४ ॥

और सूर्यके समान प्रकाशित घातिनीशक्ति उनकी छातीमें मारी ॥ ३० ॥ जिससे क्षणमें मूर्च्छाको प्राप्त होकर फिर चैतन्य हुए तब पहले विष्णुके दिये दिव्य धनुषको लेकर ॥ ३१ ॥ रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नसार विमानमें कार्तिकेय चढे और अस्त्र शस्त्र लेकर घोर दारुण संग्राम किया ॥ ३२ ॥ सर्प, पर्वत, वृक्ष, पत्थर इन सबको शिवकुमारने क्रोधकर अपने अस्त्रजालसे छेदन कर दिया ॥ ३३ ॥ और

पर्जन्य अस्त्रसे सब अग्नि बुझा दी और लीलासेही शंखचूडका रथ और धनुष छेदन कर दिया ॥ ३४ ॥ उसका बख्तर सारथि किरीट उज्वल मुकुट तोडकर दानवेन्द्रकी छातीमें एक स्वच्छ शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥ जिससे राजा मूर्छित हो कुछ कालमें फिर चेतनाको प्राप्त हुए और दूसरे विमानपर चढकर शीघ्रही दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥३६॥ तब उस मायावीने मायासे शरजाल बना लिया । हे नारद ! युद्धमें उस शरजालसे स्कन्दको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥ और व्यर्थ न होनेवाली सौ सूर्यके समान शक्ति ग्रहण की, जो प्रलयाग्निके

सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि॥३५॥मूर्च्छां संप्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह ॥ आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः॥३६॥चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः॥गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद ॥ ३७ ॥ जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम् ॥प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसा वृताम् ॥ ३८ ॥ चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्त्तिके ॥ पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥ ३९ ॥ मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्त्तिकेयो महा बलः ॥ काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥ ४० ॥ शिवस्तं चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया ॥ ददौ बलम नंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ ४१ ॥ काली जगाम समरं रक्षितुं कार्त्तिकस्य या ॥ वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नंदीश्वरादयः ॥ ४२ ॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ वाद्यभांडश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ॥ ४३ ॥

शिखाके समान विष्णुके तेजसे युक्त थी ॥३८॥ बडे वेग और कोपसे वह कार्तिकेय पर छोडी उनके शरीरपर वह शक्ति अग्निसमूहके समान गिरी ॥ ३९ ॥ महाबली स्कन्द उस शक्तिके लगनेसे मूर्छित हुए. तब काली उन्हें गोदीमें ले शिवके समीप चली आई ॥ ४० ॥ तब शिवजीने लीलासेही अपने ज्ञानद्वारा उनको जीवित किया और अनन्तबल दिया जिससे वह प्रतापी शीघ्र उठ खडे हुए ॥ ४१ ॥ तब काली स्कन्दकी रक्षा करनेको समरमें चली और नंदीश्वरादि वीर उनके पीछे चले ॥ ४२ ॥ सब देवता,गन्धर्व, यक्ष, किन्नर चले. सैकडों

बाजे और सैकडों मधुवाहक चले ॥ ४३ ॥ तब कालीनें संग्राममें जाकर सिंहनाद किया, देवीके सिंहनादसेही दानव मूर्छित हो गये ॥ ४४ ॥ भगवतीने वारंवार भयंकर सिंहनाद किया और मधुपान कर सग्राममें नृत्य करने लगी ॥ ४५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रदंडा कोटिकीने मधुपान किया, योगिनी डाकिनीके गण सुरोंके समूह गर्जे ॥ ४६ ॥ कालीको देख शंखचूड शीघ्रही संग्राममें आया, दानव जो भयभीत हुए थे राजाने उनको अभय दिया ॥ ४७ ॥ कालीने प्रलयाग्नि शिखाके समान अग्नि फेंकी, राजाने पर्जन्य अस्त्रसे लीलापूर्वक उसको बुझा दिया ॥ ४८ ॥

सा च गत्वाऽथ संग्रामं सिंहनादं चकार च ॥ देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥ ४४ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनःपुनः ॥ दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि ॥४५॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटकी च पपौ मधु ॥ योगिनी डाकिनीनां च गणाः सुरगणादयः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ ॥ दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ४७ ॥ काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया ॥ ४८ ॥ चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम् ॥ गांधर्वेण च चिच्छेद दानवेंद्रश्च लीलया ॥ ४९ ॥ माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम् ॥ राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च लीलया ॥ ५० ॥ नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् ॥ राजा ननाम तद्दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ ॥५१॥ ऊर्ध्वं जगाम तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ पपात शंखचूडश्च भक्त्या तं दंडवद्भुवि ॥ ५२ ॥ ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥ ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः ॥ ५३ ॥

तब भगवतीने तीव्र वारुणास्त्र छोड़ा, तब दानवेन्द्रने लीलापूर्वक गन्धर्व अस्त्रसे उसको छेदन कर दिया ॥ ४९ ॥ तब कालीने वह्निशिखाके समान माहेश्वर अस्त्र त्यागन किया, राजाने लीलापूर्वक वैष्णव अस्त्रसे उसको शांत किया ॥ ५० ॥ तब देवीने मन्त्रपूर्वक नारायण अस्त्र छोड़ा राजाने इसे देखतेही रथसे उतर प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ इससे प्रलयाग्निके समान वह अस्त्र ऊपरको चला गया और शंखचूड भक्तिपूर्वक पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ ॥ ५२ ॥ तब भगवतीने यत्नसे मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा राजाने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसको शान्त किया ॥ ५३ ॥

तब देवीने मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्रजालसे उसको शांत किया ॥ ५४ ॥ देवीने एक योजन प्रमाणकी शक्ति छोड़ी राजाने अपने दिव्यास्त्रोंसे उसको खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ५५ ॥ तब देवीने क्रोधसे मन्त्रपूत पाशुपतास्त्र ग्रहण किया तब उसके छोडनेका निषेध करती हुई अशरीरिणी वाणी हुई ॥ ५६ ॥ इस महात्मा राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं है, जबतक इसके पास हरिका मन्त्र और कवच है ॥ ५७ ॥ जबतक इस राजाकी भार्यामें सतीत्व है तबतक इस राजाकी जरा मृत्यु न होगी यह ब्रह्माजीका वर है ॥ ५८ ॥ यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं छोड़ा

तदा चिक्षेप दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च ॥ ५४ ॥ देवी चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखंडां चकार ह ॥ ५५ ॥ जग्राह मन्त्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा ॥ निक्षेपणं निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥५६॥ मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥ यावदस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति ॥५७॥ यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नृपयोषितः ॥ तावदस्य जरा मृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः ॥ ५८ ॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम् ॥ शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ॥५९॥ ग्रस्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी॥दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः ॥६०॥ खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं यथा ॥ दिव्यास्त्रेण दानवेंद्रः शतखंडं चकार सः ॥६१॥ पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम् ॥ सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः ॥६२॥ वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयंकरी ॥ बभंज च रथं तस्य जघान सारथिं सती॥६३॥सा च शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ वामहस्तेन जग्राह शंखचूडः स्वलीलया॥६४॥

और क्षुधा होनेसे लीला पूर्वक सौलक्ष दानवोंको ग्रहण कर लिया ॥ ५९ ॥ और बडे वेगसे भय देती हुई शंखचूडके ग्रास करनेको दौडी तब दानवने तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे भगवतीको निवारण किया ॥ ६० ॥ तब देवीने ग्रीष्मके सूर्यके समान प्रकाशित खड्गका प्रहार किया, दानवेन्द्रने अपने दिव्यास्त्रसे उस खड्गके सौखण्ड करदिये ॥ ६१ ॥ फिर महादेवी बडेवेगसे उसे खानेको दौडी तब वह श्रीमान सब सिद्धोंका ईश्वर दानव अपना शरीर बढाने लगा ॥६२॥ तब भयंकरी कालीदेवीने बडे वेगसे एक घूंसेसे उसका रथ तोड सारथिको नष्ट किया ॥६३॥ प्रलयाग्निके समान

उसके ऊपर शूल चलाया, शंखचूडने लीलापूर्वक उसे बायें हाथसे पकड लिया॥६४॥तब देवीने बडे कोर और बड़े वेगसे उसके घूंसा मारा जिससे घूमकर दैत्य क्षणमात्रमें मूर्छित हो गया॥६५॥फिर वह प्रतापी क्षणमात्रमें चैतन्य हो उठा और देवीके साथ बाहुयुद्ध न करके प्रणाम किया॥६६॥देवीके अस्त्रोंको छेदन किया और अपने तेजसे ग्रहण किये परन्तु भक्तिके कारण देवीपर अस्त्र नहीं चलाये.कारण कि,वह वैष्णव मातृभक्त था॥६७॥तब देवीने दानवको ग्रहणकर वारंवार घुमाकर महावेगसे कोपकर ऊपरको उछाल दिया॥६८॥तब प्रतापी शंखचूड बडे वेगसे ऊपरसे कूदा और भद्रकालीको प्रणाम

मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥ बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च ॥ ६५ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् ॥ ६६ ॥ देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा ॥ नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः ॥६७॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥ ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता ॥ ६८ ॥ ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ॥ निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥ ६९ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम् ॥ आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रांतो महारणे ॥ ७० ॥ दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा ॥ पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शंकरांतिकम् ॥ ७१ ॥ उवाच रणवृत्तांतं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् ॥ श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम् ॥ ७२ ॥ लक्षं च दानवेंद्राणामत्रशिष्टं रणेऽधुना ॥ भुंजंत्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर ॥ ७३ ॥ संग्रामे दानवेंद्रं च हंतुं पाशुपतेन वै ॥ अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ७४ ॥

कर स्थित हुआ ॥ ६९ ॥रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नोंके बने मनोहर विमानमें प्रसन्नतासे चढा और युद्धमें कुछभी थकित न हुआ॥७०॥तब देवीने क्षुधासे दानवोंका रुधिरपान किया तब उसको पान भोजन कर भद्रकाली शंकरके समीप गई॥७१॥और यथाक्रम पूर्वापर युद्धका वृत्तान्त कहा दानवोंका विनाश सुन शिवजी हँसे॥७२॥ काली बोली अब युद्धमें लाखही दानव अवशिष्ट हैं जो मेरे मुखसे भोजन करते निकल गये हैं । हे शिव ! और सब खा लिये ॥७३॥ जब संग्राममें पाशुपतास्त्रसे दानवेन्द्रको मारने लगी तब यह अशरीरिणी वाणी हुई कि, राजा तुमसे अवध्य है ॥ ७४ ॥

यह राजेन्द्र महाज्ञानी महाबली पराक्रमी है इससे मेरे ऊपर अपने अस्त्र नहीं चलाये किन्तु मेरे अस्त्र छेदन किये ॥७५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ श्रीनारायणजी बोले तत्त्वज्ञान विशारद शिवजी इस तत्त्वको श्रवण कर हेनारद ! अपने गणोंके सहित युद्धमें गये ॥१॥ शंखचूड शिवजीको देख विमानसे उतर परम भक्तिसे भूमिमें दंडवत् करता हुआ ॥ २ ॥ और उनको प्रणाम कर बडे वेगसे विमानपर चढा और दुर्वह उद्योग कर धनुष धारण किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारसे सौवर्ष पर्यन्त शिव और दान-

राजेंद्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः ॥ न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम्॥७६॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ॥ ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद ॥१॥ शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च ॥ ननाम परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि॥२॥ तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः ॥ तूर्णं चकर सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥ ३ ॥ शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ॥ न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ ॥ ४ ॥ न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः ॥ रथस्थः शंखचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥ ५ ॥ दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह ॥ रणे ये ये मृता शंभुर्जीवयामास तान्विभुः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे वृद्धब्राह्मणः परमातुरः ॥ आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥७॥ वृद्धब्राह्मण उवाच ॥ देहि भिक्षां च राजेंद्र मह्यं विप्राय सांप्रतम् ॥ त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वांछितम् ॥ ८ ॥

वका युद्ध होता रहा परन्तु किसीकी जयपराजय न हुई ॥ ४ ॥ तो शिव और दानव दोनोंहीने शस्त्र रख दिये रथमें स्थित शंखचूड और वृषमें स्थित शंकर थे ॥ ५ ॥ उस समय दानवोंके शतक अनेक युद्धमें मथित हो गये थे युद्धमें जो देवताओंके पक्षवाले मरे थे शिवजीने उनको जीवित कर दिया ॥ ६ ॥ इसी समय कोई वृद्ध ब्राह्मण परम आतुर रण स्थानमें आकर दानवेश्वरसे बोला ॥ ७ ॥ वृद्ध ब्राह्मणने

कहा हे राजेन्द्र ! इस समय मुझ ब्राह्मणको भिक्षा दो तुम मेरी मनवांछित सब सम्पत्तियोंके दाता हो ॥ ८ ॥ निरीह वृद्ध प्यासेके निमित्त दक्षिणा दो, परन्तु जब पहले शपथ कर लोगे तब पीछे तुमसे कहूंगा ॥ ९ ॥ राजाने प्रसन्नहो शपथपूर्वक स्वीकार किया तब उस मायीपुरुषने कहा मैं तुम्हारे कवच लेनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥ यह सुन उसने कवच उतार दिया और वह हरि कवच ग्रहणकर शंखचूडका रूप धारण कर तुलसीके समीप गये ॥ ११ ॥ और जाकर उसमें मायापूर्वक वीर्य आधान किया और उसी समय शिवजीने

निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च सांप्रतम् ॥ पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥ ९ ॥ ओमित्युवाच राजेंद्र प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव च ॥ शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥ ११ ॥ गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार च ॥ अथ शंभुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति ॥ १२ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥ १३ ॥ तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम् ॥ शिवकेशवयोरन्यदुर्वहं च भयंकरम् ॥ १४ ॥ धनुःसहस्रं दैर्घ्येण प्रस्थेन शतहस्तकम् ॥ सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्देश्यम् ॥ १५ ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमलं यत्स्वीयलीलया ॥ चिक्षेप तोलनं कृत्वा शंखचूडे च नारद ॥१६॥ राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणांबुजम् ॥ ध्याने चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया ॥ १७ ॥

हरिका शूल दानवके प्रति ग्रहण किया ॥ जो ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यके समान प्रलयाग्निके शिखाके समान था दुर्निवार दुर्धर्ष और शत्रुनाशमें अव्यर्थ था ॥ १२ ॥ १३ ॥ तेजमें चक्रके समान सब शस्त्र अस्त्रका सार शिवके सिवाय दूसरों को दुर्वह और भयंकर ॥ १४ ॥ दीर्घतामें सहस्र धनुष चौडाईमें सौहाथ, सजीव ब्रह्मरूप और नित्यरूप अनिर्देश्य ॥ १५ ॥ जो अपनी लीलासे सब ब्रह्माण्डके संहार करनेको समर्थ है हे नारद ! उसको उत्तोलन कर शिवजीने शंखचूडपर छोडा ॥ १६ ॥ तब राजा चापको छोड श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंको योगासनसे ध्यान

करने लगे ॥१७॥ इधर वह शूल भ्रमणकर दानवके ऊपर गिरा और लीला सहितहीं रथ सहित उसको भस्म कर दिया ॥१८॥ इधर राजाभी किशोर गोपवेष धारण कर दो भुजा मुरली हाथमें लिये रत्नभूषणोंसे भूषित॥१९॥रत्नेंद्रसारसे बने गहने पहरे कोटिगोपोंसे वेष्टित गोलोकसे आये उस विमानपर आरोहण कर अपने पुरको गया ॥ २० ॥ हे मुने ! जाकर शिरसे राधा–कृष्ण को प्रणाम किया और वृन्दावनके रासमें भक्तिसे चरणारविंदोंमें प्रणाम किया ॥ २१ ॥ यह दोनों सुदामाको देख प्रसन्नवदन हुए और प्रेमसे उनको अपनी गोदीमें लेते हुए ॥ २२ ॥

शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि ॥ चकार भस्मसात्तं च सरथं चाऽथ लीलया ॥ १८ ॥ राजा धृत्वा दिव्य रूपं किशोरं गोपवेषकम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः ॥ गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ ॥ २० ॥ गत्वा ननाम शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुने ॥ भक्त्या च चरणांभोजं रासे वृन्दावने वने ॥२१॥ सुदामानं च तौ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥ क्रोडे चक्रतुरत्यंतं प्रेम्णाऽतिपरिसंयुतौ ॥२२ ॥ अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम् ॥ अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ॥ २३ ॥ नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने ॥ प्रशस्तं शंखतोयं च देवानां प्रीतिदं परम् ॥ २४ ॥ तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंभुना विना ॥ शंखशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा ॥ २५ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शंखवारिणा ॥ शंखो हरेरधिष्ठानं यत्र शंखस्ततो हरिः ॥ २६ ॥ तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् ॥ स्त्रीणां च शंखध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः ॥ २७ ॥

और बडे वेगसे वह शूल श्रीकृष्णके समीप चला गया और शंखचूडकी अस्थिओंसे शंखजाति हुई ॥ २३ ॥ जो अनेक प्रकारके रूपसे पवित्र हुए देवार्चनमें युक्त रहते हैं और शंखका जल देवताओंको प्रीति दायक है ॥ २४ ॥ यह तीर्थके जलस्वरूप है, पर शिवजीके ऊपर शंखका जल नहीं दिया जाता जहां शंखका शब्द होता है वहां लक्ष्मी स्थित रहती है ॥ २५ ॥ जो शंख जलसे स्नान करता है वह मानो सब तीर्थोंमें न्हा चुका, शंख हरिका अधिष्ठान है जहां शंख है वहीं हरि स्थित है ॥ २६ ॥ वहीं लक्ष्मी स्थित रहती और

सब अमंगल दूर होते हैं पर स्त्री और शूद्र शंखध्वनि न करैं स्त्री और शूद्रोंकी शंखध्वनिसे ॥२७॥ भीत और रुष्ट हो लक्ष्मी उस स्थानसे अन्यत्र चली जाती है, शिवजी भी दानवको मारकर निज लोकको चले गये ॥ २८ ॥ प्रसन्न हो वृषपर चढे अपने गणों सहित चले गये और देवता भी परमानन्दको प्राप्त अपने स्थानको गये ॥२९॥ स्वर्गमें दुंदुभी बजी गंधर्व किन्नर गाने लगे और शिवजीके ऊपर पुष्पवर्षा हुई ॥३०॥और बडे २ मुनीन्द्रादि शिवजीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्ततस्थलादन्यदेशतः ॥ शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह ॥ २८ ॥ प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः ॥ सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानंदसंयुताः ॥ २९ ॥ नेदुर्दुंदुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ॥ ३० ॥ प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनींद्रप्रवरादयः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयोविंशो ऽध्यायः ॥२३॥ नारद उवाच ॥ नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह ॥ तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च ॥ शंखचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥ २ ॥ पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम् ॥ पातिव्रत्यस्य नाशेन शंखचूडजिघांसया॥३॥ दुंदुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ ॥ जयशब्दं च तद्वारे बोधयामास सुंदरीम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा च स्वं साध्वी परमानंदसंयुता ॥ राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥ ५ ॥

नारदजी बोले भगवान् नारायणने तुलसीमें किसरूपसे वीर्याधान किया था वह आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले नारायण भगवान् देवताओंके कार्य साधनको शंखचूडका कवच मायासे ग्रहण कर ॥ २ ॥ शंखचूडका रूप विधान कर शंखचूडके नाशकी इच्छासे उसका पातिव्रत्य भंग करने लगे ॥ ३ ॥ तुलसीके द्वार दुंदुभीका शब्द कराया और जय शब्द कराकर उस सुन्दरीको उद्बोधन कराया ॥ ४ ॥ वह सुनकर वह साध्वी परमानन्दको प्राप्त हुई और झरोखेमें परम आदरसे राजमार्गको देखने लगी ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंको धन देकर मंगल पाठ कराया. बन्दी, भिक्षुक वाचियोंको बडा धन दिया ॥ ६ ॥ इधर रथपर स्थित हो देव देवीके मंदिरमें गये जो अमूल्य रत्नोंका बना बडा सुन्दर और मनोहर था ॥ ७ ॥ वह मनोहर अपने स्वामीको आगे देखतेही प्रसन्न हो उनका चरण धोय प्रणाम कर प्रेमाश्रु वर्षाने लगी ॥ ८ ॥ उस कामवतीने उन्हें रत्नोंके मनोहर सिंहासनपर बैठाया और कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल इनको दिया ॥ ९ ॥ और बोली इस समय मेरा जीवन और जन्म सफल है जो युद्धमें गये प्राणेशको फिर आया देखती हूं ॥ १० ॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम् ॥ बंदिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ॥६॥अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं सा तं कान्त मुदाऽन्विता ॥ तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥ ८ ॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी ॥ ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह ॥ रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥ १० ॥ सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकांकिता ॥ पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥ ११ ॥ तुलस्युवाच ॥ असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो ॥ कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥ १२ ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः ॥ शंखचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः ॥१३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आवयोः समरः कांते पूर्णमब्दं बभूव ह ॥ नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥ १४ ॥ प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः ॥ देवानामधिकारश्च प्रदत्तो ब्रह्मणाऽऽज्ञया ॥ १५ ॥

जब वह कटाक्षसे देखती कामकी व्याप्तीसे पुलकित हुई और मधुर वाणीसे पतिसे रणवृत्तान्त पूँछने लगी ॥ ११ ॥ तुलसी बोली हे प्रभो ! तुम्हारा संग्राम असंख्य विश्वके संहार करनेवालेके संग हुआ, हे कृपानिधे ! विजय किस प्रकार हुई सो कहो ॥ १२ ॥ कमलापति तुलसीके वचन सुन हँसकर शंखचूडके रूपसे अमृतमय वचन कहने लगे ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे कान्ते ! हम दोनोंका संग्राम पूरे सौ वर्ष हुआ हे कामिनि ! उसमें सम्पूर्ण दानवोंका नाश होगया ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंकी प्रीति

करादी और ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैंने देवताओंका अधिकार दे दिया ॥ १५ ॥ मैं अपने घर और शिवजी अपने लोकको गये, यह कह जगत्पतिने शयन किया ॥ १६ ॥ हे नारद ! तब उस रामाके सहित रमापति रमण करने लगे उस साध्वीने अलौकिक सुख संभोग तथा आकर्षणके व्यतिक्रमसे " स्त्रीका बल आकर्षण कर स्वयं च्युत न होना " ॥ १७ ॥ वितर्क कर जाना कि यह मेरे पति नहीं हैं तब यों बोली तुम कौन हो ? तुलसी बोली हे मायेश ! तुम कौन हो जो मायासे तुमने मुझे भोगा ॥ १८ ॥ मेरा सतीत्व दूर किया

मयाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥ १६ ॥ रेमे रमापतिस्तत्र रमया सह नारद ॥ सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥ १७ ॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया ॥ १८ ॥ दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥ १९ ॥ दधार लीलया ब्रह्मन्सुमूर्तिं सुमनोहराम् ॥ ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥ २० ॥ नवीननीरदश्यामं शरत्पंकजलोचनम् ॥ कोटिकंदर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम् ॥ तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्च्छां संप्राप लीलया ॥ २२ ॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह ॥ तुलस्युवाच ॥ हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ॥ २३ ॥

इस कारण मैं तुमको शाप देती हूं तुलसीके वचन सुनकर हरि शापके भयसे ॥ १९ ॥ अपनी मनोहर मूर्ति लीलासेही धारण करते हुए. तब उस देवीने आगे सनातन देवदेवका दर्शन किया ॥ २० ॥ जो नवीन मेघके समान श्याम शरत्कमलके समान नेत्र कोटि कामके समान आभा रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ २१ ॥ कुछ हँसते प्रसन्न मुख पीतवस्त्रसे शोभित थे उनको देखतेही तुलसी तत्काल मूर्छित होगई ॥ २२ ॥ फिर चैतन्य हो हरिसे बोली तुलसीने कहा हे नाथ ! तुम पाषाणके समान हो तुमको कुछभी दया नहीं है ॥ २३ ॥

छलसे धर्म नष्ट कर तुमने मेरे स्वामीको मारा तुम दयाहीन होनेसे पाषाण हृदय हो ॥ २४ ॥ इस कारण तुमको पाषाण होना पडेगा जो तुमको साधु कहते हैं वे अवश्य भ्रान्त हैं ॥ २५ ॥ आपने विना अपराध अपना भक्त दूसरोंके निमित्त क्यों मारा ? इसप्रकार कह वह शोकसे व्याकुल हो वारंवार विलाप करने लगी ॥ २६ ॥ तव करुणासागर उसकी करुणाको देखकर नीतिसे उसे समझाते हुए बोले श्रीभगवान् बोले हे भद्रे ! कृष्ण मेरे पति हों इस निमित्त तुमने भारतवर्षमें मेरा आराधन किया और शंखचूडने तुम्हारे पानेको तप किया ॥ २७ ॥

छलेन धर्मभंगेन मम स्वामी त्वया हतः ॥ पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ॥ २४ ॥ तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना ॥ ये वदंति च साधुं त्वां ते भ्रांता हि न संशयः ॥ २५ ॥ भक्तो विनाऽपराधेन परार्थं च कथं हतः ॥ भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः ॥ नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थं भारते चिरम् ॥ त्वदर्थं शंखचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥ २८ ॥ कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात् ॥ अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ २९ ॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ॥ रामे रम मया सार्धं त्वं रमा सदृशी भव ॥ ३० ॥ इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ॥ पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते ॥ ३१ ॥ तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ॥ तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विश्रुता ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ उसने तुमको भार्या पाकर विहार कर अपने तपका फल पाया अब तुमने जिसनिमित्त तप किया था तुमको वह फल देना उचित है ॥ २९ ॥ अब इस शरीरको त्याग दिव्य देह धारण कर लक्ष्मीके समान होकर तुम हमारे साथ रमण करो ॥ ३० ॥ यह तुम्हारा शरीर नदीरूप होकर गंडकी नामसे विख्यात होगा और भारतमें स्नान करनेवालोंको पुण्यरूप होगा ॥ ३१ ॥ तुम्हारे केशसमूहोंका एक पवित्र

वृक्ष होगा, तुलसीके केशसे प्रगट होनेसे लोकमें तुलसी नामसे विख्यात होगी ॥ ३२ ॥ तीन लोकमें देवपूजनमें जितने पत्र, पुष्प हैं हे वरानने ! उनमें तुम प्रधानरूपसे तुलसी होगी ॥ ३३ ॥ स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, गोलोकमें मेरे समीप हे सुन्दरि ! सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुम तुलसी वृक्ष होगी ॥ ३४ ॥ गोलोकमें विरजाके किनारे रासवृन्दावनके वनमें, भांडीर चम्पकवन और सुन्दर चन्दनोंके वनमें ॥ ३५ ॥ माधवी, केतकी, कुंद, मालिका, मालतीके वन और पुण्यस्थानोंमें पुण्यदायक तुम्हारा निवास होगा ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुके मूलमें पुण्यदेशोंमें

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ॥ प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥३३॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ॥ भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी॥३४॥गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने ॥ भांडीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥ ३५ ॥ माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने ॥ वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम् ॥ अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥३७॥ तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च ॥ तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ॥३८॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः ॥ सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥ गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् ॥ तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्त्तिके सति ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४२ ॥

पुण्यदायक सब तीर्थोंका अधिष्ठान तुम्हारा निवास होगा ॥ ३७ ॥ वहीं और भी सब देवताओंका अधिष्ठानी होगा हे वरानने ! तुलसी पत्रके मस्तकमें गिरनेके समय ॥ ३८ ॥ प्राणी सब यज्ञोंमें दीक्षित और सब तीर्थोंमें स्नात हो जाता है, जो तुलसीपत्रके जलसे अभिषेक करता है ॥ ३९ ॥ जो सहस्र अमृत घटसे भगवान्‌की तुष्टि होती है वह फल तुलसी पत्रके दानसे हो जाती है ॥ ४० ॥ दश सहस्र गोदानका जो फल है वही फल कार्तिकमें तुलसीके दानका है ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रका जल जिसको मृत्युकालमें प्राप्त हो

वह सब पापसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य नित्य भक्तिसे तुलसी जल प्राप्त करता है उसको लाख अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपने हाथ वा देहमें तुलसी धारणकर तीर्थमें प्राण त्यागन करता है वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य तुलसी काष्ठकी बनी मालाको धारण करता है उसको पद पदमें अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ४५ ॥ जो तुलसीपत्रको हाथमें ले स्वीकार की हुई बातकी रक्षा नहीं करता वह चंद्र आदित्यकी स्थितितक कालसूत्र नरकमें पडता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य तुलसी लेकर

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च मानवः ॥ लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति स मानवः ॥ ४३ ॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः ॥ प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥४४॥ तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥४५॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति ॥ स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४६॥ करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः ॥ स याति कुम्भीपाकं च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥४७॥ तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठे प्राप्यते ध्रुवम् ॥४८॥ पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे ॥ तैलाभ्यंगं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि सन्ध्ययोः ॥४९॥ अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नरा ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिंदंति हरेः शिरः ॥ ५० ॥ त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति ॥ श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥ ५१ ॥ भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति ॥ शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥ ५२ ॥

मिथ्या शपथ करता है वह चौदह इंद्रके कालपर्यंत कुंभीपाकमें जाता है ॥ ४७ ॥ जो मृत्युकालमें तुलसी जलकी कणिका भी मिल जाय तो वह रत्नोंके विमानपर बैठकर अवश्य वैकुंठको जाता है ॥ ४८ ॥ पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, संक्रांति तथा मध्याह्न और निशिसंध्यामें तेल मलतेमें ॥ ४९ ॥ आशौच अपवित्र समयमें तथा रात्रिमें जो मनुष्य तुलसी तोडते हैं वे मानो हरिका शिर छेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तीनरातका भी बासी तुलसीपत्र शुद्ध है श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा, देवार्चन ॥५१॥ इनमें पृथ्वीपर गिरा जलमें पतित, जो विष्णुको दिया है,

वह सब तुलसीपत्रक्षालनसे अन्य कर्ममें शुद्ध है ॥ ५२ ॥ जो यह वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी है यह निरामय गोलोकमें कृष्णके साथ नित्य क्रीडा करैगी ॥५३॥ और नदीकी अधिष्ठात्री देवी होकर भारतमें भी पुण्यदायक है और यह मेरे अंगरूप सागरकी पत्नी होगी ॥५४॥ हे महासाध्वी ! तुम स्वयं वैकुण्ठमें मेरे समीप लक्ष्मीके समान होगी इसमें संदेह नहीं॥५५॥और मैं पाषाण रूपसे गंडकी नदीके किनारे तुम्हारे शापसे निवास करूंगा ॥ ५६ ॥ कोटि संख्यांक कीट अपनी तीक्ष्ण डाढोंसे इसमें चक्रका चिह्न करेंगे ॥ ५७ ॥ एक द्वार, चार चक्र, वनमालासे भूषित

वृक्षाधिष्ठातृदेवी या गोलोके च निरामये ॥ कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यं क्रीडां करिष्यसि ॥ ५३ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा ॥ लवणोदस्य सापत्नी मदंशस्य भविष्यति ॥५४॥ त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ ॥ रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः ॥५५॥ अहं च शैलरूपेण गण्डकीनीरसन्निधौ॥ अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥५६॥ कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रा वरायुधैः ॥ तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यंति मदीयकम् ॥५७॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमाला-विभूषितम् ॥ नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥५८॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम् ॥ लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया ॥५९॥ द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम् ॥ रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥ ६० ॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम् ॥ तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६१॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम् ॥विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥ ६२ ॥ स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया ॥ द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥ ६३ ।.

मालाकार रेखा नवीन मेघके आकारवाली लक्ष्मी नारायण नामक होगी ॥ ५८ ॥ जो एक द्वार चार चक्र नवीन मेघके समान हो वह वनमालासे रहित लक्ष्मी जनार्दन जानने ॥ ५९ ॥ जो दो द्वार चार चक्र और गोष्पादसे विराजित हों यह वनमाला रहित रघुनाथजी हैं ॥ ६० ॥ जो जिसमें अतिछोटे दोचक्र नवीन मेघके समान हों वह वनमाला रहित वामनजी हैं ॥ ६१ ॥ जो अतिक्षुद्र दोचक्र वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सदा लक्ष्मीदायक श्रीधरका रूप जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ जो स्थल गोल वनमालासे रहित हों और स्फुट दो चक्र हों

उनको दामोदर जानो ॥ ६३ ॥ जो मध्यम वर्तुलाकार दोचक्र शरप्रहारके चिह्नसे अंकित हों वे शरतूण सहित रणराम जानने ॥ ६४ ॥ जो मध्यम सातचक्र और छत्र भूषणसे भूषित हो वह मनुष्योंको राजसंपत्ति देनेवाले राजराजेश्वर जानने ॥ ६५ ॥ जिनमें स्थल चौदह चक्र हों नये मेघके समान कान्तिमान उनको चारवर्गके फलदाता अनन्त जानना ॥ ६६ ॥ जो चक्राकार दोचक्र हों वामांकमें लक्ष्मीका चिह्न हो वह जगत्‌के समान कांतिमान् गोपदसे अंकित मध्यमें परिमाण मधुसूदन जानने ॥ ६७ ॥ एक सुदर्शन चक्र

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम् ॥ रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥ ६४ ॥ मध्यमं सप्तचक्रं च च्छत्रभूषण भूषितम् ॥ राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम् ॥ ६५ ॥ द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम् ॥ अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६६ ॥ चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् ॥ सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥ ६७ ॥ सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम् ॥ द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ॥ ६८ ॥ अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति ॥ नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ॥ ६९ ॥ द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम् ॥ लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥ ७० ॥ द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ॥ वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम् ॥ सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥ ७२ ॥ द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् ॥ संकर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ॥ ७३ ॥

गुप्तचक्र गदाधर जानने और दोचक्र हयमुखके आकारके हयग्रीव जानने ॥ ६८ ॥ जिनका अति विस्तृत मुख दो चक्र विकटाकार हो वह मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य देनेवाले नृसिंहजी जानने ॥ ६९ ॥ जो दो चक्र विस्तृत मुख वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सुख देनेवाले लक्ष्मीनृसिंह जानने ॥ ७० ॥ जिनके द्वार देशमें दोचक्र लक्ष्मीका वाम और चिह्न सम (वक्रभिन्न) स्फुट हो उनको सब कामनादायक वासुदेव जानो ॥ ७१ ॥ सूक्ष्मचक्र नवीन मेघके समान प्रभावाले महामुखके अन्तमें सूक्ष्म छिद्र हों तो प्रद्युम्न जानो ॥ ७२ ॥ जो दोचक्र

एकत्र मिले हों अर्थात् परस्पर दोनोंका मुख मिला हो और उनका पृष्ठ भाग विशालरूप हो वह गृहस्थियोंको सदा सुखदायक संकर्षण जानो ॥ ७३ ॥ जो गोल अति शोभित पीतवर्ण हो वह अनिरुद्ध जानो, मनीषी इनको गृहस्थियोंका सुखपायी कहते हैं॥७४॥ जहां शालिग्रामकी शिला है वहां साक्षात् हरि हैं वहां लक्ष्मी सब तीर्थोंके सहित निवास करती हैं ॥ ७५ ॥ जितने पाप ब्रह्महत्याको आदि लेकर हैं सब वह शालिग्राम शिलाके पूजनेसे नष्ट होजाते हैं ॥ ७६ ॥ चक्राकारसे राज्य और गोलाकारसे महालक्ष्मी मिलती है, शकटाकारसे दुःख और शूला-

अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम् ॥ सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदंति मनीषिणः ॥ ७४ ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥ तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ॥ ७५ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७६ ॥ छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः ॥ दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥७७॥ विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिंगले हानिरेव च ॥ भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम् ॥ शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति ॥७९॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥ सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥८०॥ पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति ॥ तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ८१ ॥ "शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं सदाचरेत् ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा ॥" शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुंक्ते च यो नरः ॥ सुरेप्सितं प्रसादं च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥

कार अग्रभागवाली मूर्तिके पूजनसे मरण होता है ॥ ७७ ॥ विकृत मुखीसे दारिद्र पिंगल वर्णसे हानि भग्नचक्रसे व्याधि और विदीर्णसे अवश्य मरण होता है ॥ ७८ ॥ व्रत दान प्रतिष्ठा श्राद्ध देवपूजन शालिग्राम शिलाके निकट सब प्रशस्त होता है ॥ ७९ ॥ वह सब तीर्थोंमें स्नान और सब यज्ञोंमें दीक्षित हो चुका तथा सब यज्ञ तीर्थ व्रत तप करचुका ॥ ८० ॥ चारों वेदोंका पाठ तपस्या करनेका फल पा चुका जो शालि-ग्रामशिलाका पूजन करता है ॥ ८१ ॥ " जो शालिग्रामकी शिलाको जलसे सदा अभिषेक करता है उसको सब दानका पुण्य और भूमिकी

प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है" जो मनुष्य नित्य शालिग्राम शिलाके जलको पान करते हैं वह निःसन्देह देवताओंके इच्छित प्रसादको पाते हैं ॥ ८२ ॥ उसके स्पर्शकी सम्पूर्ण तीर्थ वांछा करते हैं वह जीवन्मुक्त और महापवित्र हो अन्तमें हरिके पदको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वहां हरिके साथ असंख्य प्राकृत प्रलय पर्यंत निवास करता है जो उनकी सेवामें नियुक्त होता है॥८४॥ जितने ब्रह्महत्याके समान पातक हैं वह उसे देखकर गरुडसे सर्पके समान भागते हैं॥८५॥हे देवि ! उसके चरणोंकी रजसे शीघ्रही वसुन्धरा पवित्र होती है उसके जन्मसे लाख पितर

तस्य स्पर्शं च वांछंति तीर्थानि निखिलानि च ॥ जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यंते याति हरेः पदम् ॥ ८३ ॥ तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि ॥ ८४ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ तं दृष्ट्वा च पलायंते वैनतेयादिवोरगाः ॥ ८५ ॥ तत्पादरजसा देवी सद्यः पूता वसुंधरा ॥ पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः ॥ ८६ ॥ शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८७ ॥ निर्वाणमुक्तिं लभते कर्म भोगात्प्रमुच्यते ॥ विष्णोः पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥८८॥ शालग्राम शिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः ॥ स याति कुंभीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥८९॥ शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत् ॥ स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि ॥ ९० ॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः ॥ तस्य जन्मांतरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥ ९१ ॥

उसके कुलके तरजाते हैं ॥ ८६ ॥ जो कोई मृत्युकालमें शालिग्राम शिलाजलको पान करता है वह सब पापरहित हो विष्णुलोकको जाता है ॥ ८७ ॥ वह कर्म भोगसे रहित हो निर्वाण मुक्तिको प्राप्त होता है और निःसन्देह विष्णुके पदमें लीन होता है ॥ ८८ ॥ शालिग्राम शिलाको धारणकर जो मिथ्या वाक्य बोलता है वह ब्रह्माकी अवस्थापर्यंत कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८९ ॥ शालिग्राम शिलाको धारणकर जो स्वीकारको पालन नहीं करता वह लाख मन्वन्तर तक असिपत्र वनमें जाता है ॥९०॥ जो शालिग्रामसे तुलसी

पत्रका वियोग करता है हे कांते ! जन्मान्तरमें उसका स्त्रीसे वियोग होता है ॥ ९१ ॥ अथवा जो शंखसे तुलसीपत्रका वियोग करता है वह सात जन्म भार्याहीन और रोगी रहता है ॥ ९२ ॥ जो महाज्ञानी शालिग्राम तुलसीपत्र और शंखको एकत्र रखता है रक्षा करता है वह श्रीहरिका प्रिय होता है ॥ ९३ ॥ एकबारही जो जिसमें वीर्याधान करता है उसके वियोगमें परस्पर उनको दुःख होता है ॥ ९४ ॥ तुम शंखचूडकी प्रिया एक मन्वन्तरतक रहीं तब शंखके सहित तुम्हारा वियोग केवल दुःखदाई ही है ॥ ९५ ॥ हे नारद ! इस प्रकार हरि उससे

तुलसीपत्रविच्छेदं शंखे यो हि करोति च ॥ भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥ ९२ ॥ शालग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्र एव च ॥ यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ॥ ९३ ॥ सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च ॥ तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परम्परम् ॥ ९४ ॥ त्वं प्रिया शंखचूडस्य चैकमन्वंतरावधि ॥ शंखेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद ॥ सा च देहं परित्यज्य दिव्य रूपं विधाय च ॥ ९६ ॥ यथा श्रीश्च तथा सा चाऽप्युवास हरिवक्षसि ॥ स जगाम तया सार्धं वैकुंठं कमलापतिः ॥ ९७ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी चापि नारद ॥ हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥ ९८ ॥ सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी ॥ ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥ ९९ ॥ कुर्वंति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने ॥ जले पतंति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम् ॥ १०० ॥

कह विरामको प्राप्त हुए वह भी यह देह त्याग दिव्यरूप धारणकर ॥९६॥ लक्ष्मीके समान हरिके हृदयमें निवास करने लगी और लक्ष्मीपति उसके सहित वैकुंठको गये ॥ ९७ ॥ हे नारद ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी, यह चारों हरिकी प्रिया हुईं ॥ ९८ ॥ तुलसीके देहसे तत्काल गंडकी नदी हुई और ईश्वरभी शिलारूपसे उसके समीप मनुष्योंको पुण्यदेनेको स्थित हैं ॥ ९९ ॥ हे मुने ! वहांके कीट अनेक

प्रकारके शिलाओंमें चिह्न करते हैं उनमें जो जो जलमें पतित होती हैं वह वह मनुष्योंको फलदायी हैं ॥ १०० ॥ स्थलकी शिला सूर्यके उपतापसे पिंगलवर्ण होजाती हैं यह आपसे सब कहा अब और कथा सुननेकी इच्छा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तुलसीमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नारदजी बोले जब नारायणने अपनी प्रिया तुलसीको पूजनीय किया तो हे ब्रह्मन् ! इसकी पूजाविधि और स्तोत्रभी कहिये ॥ १ ॥ हे मुने ! पहले किसने इनकी पूजा और स्तुति की और किससे किस प्रकार पूजनीया हुई वह

स्थलस्थाः पिंगला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति ॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०१॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नारद उवाच ॥ तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया ॥ अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद सांप्रतम् ॥१॥ केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने ॥ तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः ॥ कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम् ॥ ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ हरिः संपूज्य तुलसीं रेमे च रमया सह ॥ रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥ ४ ॥ सेहे च लक्ष्मीर्गंगा च तस्याश्च नवसंगमम् ॥ सौभाग्यगौरवं कोपात्तेन सेहे सरस्वती ॥ ५ ॥ सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ ॥ व्रीडया चापमानेन सान्तर्धानं चकार ह ॥ ६ ॥ सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धियोगिनी ॥ जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो ॥ ७ ॥

आप कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुण्यदायक पापहारिणी कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ नारायण बोले हरिने तुलसीका पूजन कर रमाके साथ क्रीडा की और गौरवमें लक्ष्मीके समान उसका सौभाग्य किया ॥ ४ ॥ लक्ष्मी और गंगाने तो उसका नवसंगम सहन कर लिया परन्तु सौभाग्य और गौरवके क्रोधसे सरस्वतीने सहन न किया ॥ ५ ॥ उस मानिनीने क्लेश कर हरिके समीपही उसे ताडन किया तब तुलसी लज्जा और अपमानसे अन्तर्धान हो गई ॥ ६ ॥ वह सब सिद्धोंकी ईश्वरी देवी ज्ञानियोंकी सिद्धयोगिनी कोपसे

हरिसे अन्तर्हित हो गई ॥ ७ ॥ तब हरिने तुलसीको न देखकर सरस्वतीको समझाया और फिर उसकी आज्ञा लेकर तुलसीके वनमें गये ॥ ८ ॥ वहां जाय हरिने स्नानकर तुलसी सतीका ध्यानकर पूजन किया और भक्तिसे स्तोत्र पढा ॥९॥ श्रीबीज, भुवनेश्वरी बीज, मन्मथबीज, वाग्बीज, चतुर्थीयुक्त, वृंदावनी वह्निजाया पूर्वक दशाक्षरमंत्र वह्निजायात्मक पढा अर्थात् बीज युक्त श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृंदावन्यै स्वाहा ॥ १० ॥ हे नारद ! इस कल्पवृक्षरूप मंत्रराजसे जो विधानसे तुलसीका पूजन करता है उसको अवश्य सब सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥ घृतका दीपक

हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् ॥ तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम् ॥ ८ ॥ तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम् ॥ पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह ॥ ९ ॥ लक्ष्मीमायाकामवाणीबीज पूर्वं दशाक्षरम् ॥ वृंदावनीति ङेन्तं च वह्निजायांतमेव च ॥ १० ॥ अनेन कल्पतरुणा मंत्रराजेन नारद ॥ पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥ घृतदीपेन धूपेन सिंदूरचंदनेन च ॥ नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद ॥ १२ ॥ हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात् ॥ प्रसन्ना चरणांभोजे जगाम शरणं शुभा ॥ १३ ॥ वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति ॥ अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि ॥ १४ ॥ सर्वे त्वां धारयिष्यंति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम् ॥ तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥

धूप, चंदन नैवेद्य और पुष्पादि षोडशोपचारसे पूजी हुई ॥ १२ ॥ हरिके स्तोत्रसे संतुष्ट हो वह वृक्षसे निर्गत हुई और प्रसन्न हो हरिके चरणोंकी शरणमें हुई ॥१३॥ तब विष्णुने उसको वर दिया तुम सर्वपूज्या होगी मैं तुम सुरूपाको शिर और वक्षस्थल में धारण करूंगा ॥१४ ॥ और सब देवता आदि तुमको अपने शिरपर धारण करेंगे यह कह हरि उसको ग्रहणकर वैकुण्ठको गये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! तुलसीका ध्यान स्तोत्र पूजनविधान किस प्रकार है ? हे महाभाग ! सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥

हैं वह सब पापसे रहित हो विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३५ ॥ कार्तिकमें जो वैष्णवको तुलसीपत्र देता है उसको अवश्य दशसहस्र गोदानका फल मिलता है ॥३६॥ अपुत्रको पुत्र, प्रियाहीनको प्रिया, बंधु, इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे प्राप्त होता है ॥३७॥ रोगी रोगसे, बंधनमें पडाहुआ बंधनसे, भीत भयसे और पापी पातकसे छूटजाता है ॥ ३८ ॥ यह आपसे स्तोत्र कहा वह अब ध्यान पूजा विधिको सुनो जिसको कण्वशाखामें कहे वेदमें तुम भी सब जानते हो ॥ ३९ ॥ विना आवाहनके तुलसीके वृक्षमेंही भक्तिसे पूजन करै उसको ध्यानकर षोडश उपचारसे पूजन करै ध्यान पातकोंका नाशक है ॥ ४० ॥ तुलसी, पुष्पसारा, सती, पूता, (पवित्र) मनोहरा, पापरूपी ईधनके भस्मकरनेको जलती

कार्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च वैष्णवे ॥ गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ३६ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ बन्धुहीनो लभेद्बंधून्स्तोत्रश्रवणमात्रतः ॥ ३७ ॥ रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी ॥ ३८ ॥ इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव च ॥ ३९ ॥ तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना ॥ तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम् ॥ ॥ ४० ॥ तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम् ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥ ४१ ॥ पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम् ॥ पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥ ४२ ॥ शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्व पावनी ॥ जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४३ ॥ इति ध्यात्वा च सम्पूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत्सुधीः ॥ उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अग्निके शिखाकेसमान ॥ ४१ ॥ जिसके समान कोई पुष्प नहीं ऐसा वेदोंमें कहा है, सबमें पवित्र होनेसे जो तुलसी कहाती है ॥ ४२ ॥ सबको शिरपर धारण करनेयोग्य ईप्सिता, विश्वकी पवित्र करने वाली स्वयं जीवनमुक्त, भक्तोंको मुक्ति देनेवाली,हरिभक्ति देनेवालीको भजता हूं॥४३॥ बुद्धिमान् इसप्रकार ध्यानकर पूजन करने उपरान्त प्रणाम करै यह तुलसीका उपाख्यान कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

नारदजी बोले यह मैंने अमृतके समान तुलसीका उपाख्यान सुना अब आप मुझसे सावित्रीका उपाख्यान कहिये॥१॥यह सावित्री वेदकी माता है इन्होंने किस कारणसे जन्म लिया और प्रथम किसके द्वारा लोकमें पूजित हुई॥२॥नारायण बोले हे मुने ! इस वेदमाताका प्रथम ब्रह्माजीने पूजन किया है, दूसरे कालमें वेदगणोंने और पश्चात् विद्वानोंने पूजन किया है ॥३॥ फिर भारतमें अश्वपति राजाने इनकी पूजा की पीछे चारों वर्णोंने इनकी पूजाकी ॥ ४ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वह अश्वपति कौन थे और किस प्रकार उन्होंने पूजा की सर्वपूज्या वह देवी प्रथम एक

नारद उवाच ॥ तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुखोपमम् ॥ ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः ॥ केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे ॥ २ ॥ नारायण उवाच॥ ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने ॥ द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥ ३ ॥ तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते ॥तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता ॥ सर्वपूज्या च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे ॥ ५ ॥ नारायण उवाच ॥ मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने ॥ वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥ ॥ ६ ॥ आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषी धर्मचारिणी ॥ मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ॥ ७ ॥ सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः ॥ चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद ॥८॥ प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम्॥ गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता ॥ ९ ॥ राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै ॥ सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा ॥ १० ॥

और फिर दूसरोंसे पूजित हुई ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले हे मुने ! राजा अश्वपति मद्रदेशके निवासी थे, वह वैरियोंके बलहर्ता और मित्रोंका दुःखनाश करते थे ॥ ६ ॥ धर्मचारिणी उनकी महारानी मालतीनामक विष्णु प्रिया लक्ष्मीके समान थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! उसकी रानी वंध्या थी वसिष्ठके उपदेशसे भक्तिसे सावित्रीका आराधन करने लगी ॥ ८ ॥ बहुत कालतक आराधन करनेपर भी भगवतीसे उत्तर वा दर्शन न मिला तब दुःखी मनसे अपने घर चली आई ॥ ९ ॥ राजाने उसे दुःखी देखकर नीतिपूर्वक समझाया और भक्तिसे सावित्रीकी तपस्या

करनेको पुष्करमें गया ॥ १० ॥ वहां नियत इन्द्रिय होकर शतवर्ष तप किया परन्तु सावित्रीका दर्शन न पाकर आज्ञा पाई ॥११॥ राजाने आकाशसे अशरीरिणी वाणी सुनी कि, हे नारद ! तुम गायत्रीका दशलक्ष जप करै॥१२॥उसीसमय वहां पराशरजी आये राजाके प्रणाम करनेपर मुनिने उनसे कहा॥१३॥मुनि बोले एकवार गायत्री जप दिनका किया पाप हर लेता है, दशवार जपनेसे दिनरातका किया पाप दूर होता है ॥१४॥ सौवार जपनेसे महीनेका पाप दूर होजाता है, सहस्रवार जपनेसे सम्वत्सरकृत पाप नष्ट होजाता है ॥१५॥ एक लाख जपनेसे जन्मका किया पाप और

तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् ॥ न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च ॥ ११ ॥ शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेंद्र श्चाशरीरिणीम् ॥ गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र आजगाम पराशरः ॥ प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृपमुवाच च ॥१३॥ मुनिरुवाच ॥ सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत्॥दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम् ॥ ॥ १४ ॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् ॥ सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं मत्सरार्जितम् ॥ १५ ॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम् ॥ सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद्विनश्यति ॥ १६ ॥ करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः ॥ करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रंध्रमुद्रितम् ॥ १७ ॥ आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः ॥ अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च ॥ १८ ॥ तर्जनीमूलपर्यंतं जपस्यैवं क्रमः करे ॥ श्वेतपंकजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम् ॥ १९ ॥ कृत्वा वा मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये ॥ संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः ॥ २० ॥

दश लक्षसे अन्य जन्मका और सौलाख जपनेसे सब जन्मका किया पाप नष्ट होता है ॥ १६ ॥ दशकोटि जपसे ब्राह्मणोंकी मुक्ति होजाती है, जपका विधान कहते हैं, सर्पके फणके समान हाथ करके और अंगुलियोंके छिद्र मूँद और ऊर्ध्वांगुलीके अग्र भागको अधोभागमें भुग्न करके ॥ १७ ॥ शिर झुकाये अचल भावसे प्राङ्मुख होकर द्विज जप करै अनामिकाके मध्य देशसे नीचे वामक्रमसे ॥ १८ ॥ तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करै यह करमालाका क्रम है श्वेत कमलके बीज स्फटिक मणिकी माला ॥१९॥ बनाकर तीर्थमें जाय देवालयमें जप करै मालाको

स्थापनकर पीपलके पत्ते कमलमें संयत होकर ॥ २० ॥ गोरोचनसे लिखकर सुधी पुरुष गायत्रीको स्नान करावे उसपर गायत्री शतकक जप करै ॥ २१ ॥ और पंचगव्यसे संस्कारकी हुई मालाको संस्कार कराकर और फिर स्वयं स्नानकर मालाको भी गङ्गाजलसे स्नान कराय ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार दशलाख जप करो तब तीन जन्मके पातक क्षय होनेसे साक्षात् गायत्री देवीका दर्शन करोगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दिन दिन नित्य सन्ध्याको करोगे मध्याह्न, सायाह्न और प्रभातमें सदा पवित्र रहोगे तो दर्शन पाओगे ॥ २४ ॥ जो संध्याहीन

कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः ॥ गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम् ॥ अथ गंगोदकेनैव स्नात्वा वाऽतिसुसंस्कृताम् ॥ २२ ॥ एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु ॥ साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥ २३ ॥ नित्यं संध्यां च हे राजन्करिष्यसि दिनेदिने ॥ मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥ २४ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २५ ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ २६ ॥ यावज्जीवनपर्यंतं त्रिसंध्यां यः करोति च ॥ स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ॥२७॥ तत्पादपद्मरजसा सद्यःपूता वसुंधरा ॥ जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः ॥२८॥ तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः ॥ ततः पापानि यांत्येव वैनतेयादिवोरगाः ॥२९॥

है वह नित्य अशुचि होनेसे सब कर्मोंके अयोग्य होता है बिना संध्याके जो दिनका किया कर्म है वह उसका फलभागी नहीं होता ॥ २५ ॥ जो प्रभात और सायंसंध्या नहीं करता उसको सर्व द्विजकर्मोंसे बाहर कर देना चाहिये ॥२६॥ जो जीवन पर्यन्त तीनों कालमें संध्या करता है वह ब्राह्मण सूर्यके समान सदा अपने तेजसे तपता है ॥२७॥ उसके चरणकमलकी रजसे भूमि सदा पवित्र होती है जो ब्राह्मण संध्यासे पवित्र हैं वह पवित्र तेजस्वी जीवन्मुक्त होता है ॥ २८ ॥ उसके स्पर्श मात्रसे तीर्थ पवित्र होते हैं सर्प जैसे गरुडको देख भागते हैं

इस प्रकार उसे देख पाप भागते हैं ॥२९॥ और जो ब्राह्मण तीनों कालकी संध्यासे रहित है देवता उसकी पूजा और पितर उसका पिण्ड ग्रहण नहीं करते ॥३०॥ जो मूलप्रकृतिका अभक्त है और उसके मंत्रकी अर्चा नहीं करता और भगवतीके उत्सवविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण विष्णुमंत्र और तीनों संध्याओंसे रहित हैं तथा एकादशीव्रत विहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३२ ॥ जो विना भगवान्‌को भोग लगाये नैवेद्य खाता धावक कर्मकारी, बैलोंपर बोझ लादनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला जो ब्राह्मण है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३३ ॥ जो शूद्रोंके शवका दहन करनेवाला है वह ब्राह्मण शूद्रीपति होता है जो शूद्रोंकी रसोई करता है वह विषहीन

न गृह्णंति सुराः पूजां पितरः पिंडतर्पणम् ॥ स्वेच्छया च द्विजातेश्चं त्रिसध्यारहितस्य च ॥३०॥ मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मंत्रस्याप्यनर्चकः ॥ तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३१ ॥ विष्णुमंत्रविहीनश्च त्रिसंध्यारहितो द्विजः ॥ एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः ॥ शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥ ३३ ॥ शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३४ ॥ शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः ॥ असिजीवी मसिर्जीवी विषहीनो यथोरगः ॥ ३५ ॥ यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी ॥ यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः ॥ ३६ ॥ भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः ॥ यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥ ३७ ॥ सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः ॥ शिवापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः ॥ ३८ ॥

सर्पके समान है ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंसे प्रतिग्रह लेता शूद्रोंको यजन कराता स्याहीका व्यवहार करनेवाला शस्त्र बेचनेवाला विषहीन सर्पके समान है॥३५॥जो ब्राह्मण कन्याका बेचनेवाला हरिनाम बेचनेवाला जो ब्राह्मण पुत्ररहित अवीर है ब्राह्मणी पतिके भोजन करता है जो ऋतुस्नाताके अन्नका भोगनेवाला है॥३६॥जो कुटना है जो व्याजसे जीता है,जो व्याज लेता है जो विद्या बेचता है वह विषहीन सर्पके समान होता है ॥३७॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयतक सोता है जो ब्राह्मण मच्छी खाता है जो देवीकी पूजासे रहित है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३८ ॥

यह कहकर पराशरने सब पूजाकी विधि क्रम और सावित्रीका ध्यानादिक वर्णन किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजाको सब देकर हे मुने ! वह मुनि अपने आश्रमको गये राजाने सावित्रीको पूज वर पाया ॥ ४० ॥ नारदजी बोले सावित्रीका ध्यान और पूजाविधि क्या है और क्या स्तोत्र देकर पराशरजी चले गये ॥ ४१ ॥ और राजाने किस विधानसे वेद माताका पूजन किया और उस पूजाके विधानसे क्या वर पाया ॥ ४२ ॥ वह मैं सब सावित्रीके परम महत् श्रुतिसिद्ध रहस्यको संक्षेपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४३ ॥ नारायण बोले ज्येष्ठकृष्ण त्रयोदशीको शुद्ध

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥ तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥ ३९ ॥ दत्त्वा सर्वं नृपेंद्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने ॥ राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किंवा पूजाविधानकम् ॥ स्तोत्रं मंत्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥४१॥ नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम् ॥ वरं च कं वा संप्राप संपूज्य तु विधानतः ॥४२॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत् ॥ रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः ॥४३॥ नारायण उवाच ॥ जेष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः ॥ व्रतमेवं चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥ ४४ ॥ व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम् ॥ दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत् ॥ ४५ ॥ वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम् ॥ संस्थाप्य मंगलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥४६॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते द्विजः ॥ ४७ ॥ शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत् ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च मंत्रं च सर्वकामदम् ॥ ४८ ॥

समय यत्नपूर्वक रहकर परम भक्तिसे चौदशको व्रत करै ॥ ४४ ॥ यह चौदश वर्षका व्रत चौदह फलसे संयुक्त है भगवतीको चौदह नैवेद्य देनेसे पुष्प और धूपादि करै ॥ ४५ ॥ वस्त्र यज्ञोपवीत विधिपूर्वक भोजन निवेदन करे फल शाखासंयुक्त मंगल घटस्थापन करके ॥ ४६ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा, इनको भली प्रकार पूजनकर ब्राह्मण घटमें आवाहन करै ॥ ४७ ॥ जो मध्यंदिनमें ध्यान कहा है वह

सावित्रीका ध्यान सुनो. स्तोत्र पूजाविधान और सब कामना देनेवाला मंत्र है ॥ ४८ ॥ तपाये सुवर्णके समान कांतिमान् ब्रह्मतेजसे प्रकाशित ग्रीष्मऋतुके सहस्र मध्याह्न सूर्यके समान अति कांतिमान् ॥ ४९ ॥ कुछ हँसीसे प्रसन्नमुख रत्नके भूषणोंसे भूषित [अग्निशुद्धां शुकाधान] " अग्निमें न जलनेवाले वस्त्र पहरे " भक्तोंके ऊपर अनुग्रहका शरीर धारण करनेवाली ॥ ५० ॥ सुखदायक मुक्तिकारक शान्त भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली मनोहर जगत्की निधियोंमें श्रेष्ठ सब सम्पत्ति स्वरूपवाली सब सम्पत्तिकी स्वरूप और सब सम्पत्तियोंकी देनेवाली॥५१॥

तप्तकांचनवर्णाभां ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रसंमितप्रभाम् ॥ ४९ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहविग्रहाम् ॥ ५० ॥ सुखदां मुक्तिदां शांतां कांतां च जगतां विधेः ॥ सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसम्पदाम् ॥ ५१ ॥ वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् ॥ वेदबीजस्वरूपां च भजे तां वेदमातरम् ॥ ५२ ॥ ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि ॥ पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ॥ ५३ ॥ दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥ संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः ॥ ५४ ॥ आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं तांबूलं शीतलं जलम् ॥ ५५ ॥ वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥५६॥ दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा ॥ देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५७ ॥

वेदकी अधिष्ठातृदेवी वेदशास्त्रकी स्वरूपवाली वेदबीजकी स्वरूपा जगन्माताका भजन करते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ध्यानमें ध्यानकर अपने शिरपर हाथ लगाय नैवेद्य देकर फिर घटमें भक्तिसे ध्यान कर व्रती देवीका आवाहन करै॥५३॥वेदोक्त मंत्रपूर्वक षोडश उपचार देकर पूजन और स्तुति करके विधानसे देवदेवीका पूजन करै ॥ ५४ ॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल ॥ ५५ ॥ वसन, भूषण, माला, गंध आचमन, मनोहर शय्या, यह षोडशवस्तु देनी चाहिये ॥ ५६ ॥ चन्दन वा सुवर्णादिका बना सिंहासन

देवाधार पुण्यदायक मैंने तुमको निवेदन किया है ॥ ५७ ॥ देवी तीर्थजल पवित्र पाद्य रूप जो कि, महान् प्रीतिका देनेवाला है वह पूजाङ्गभूत शुद्ध मैंने तुमको निवेदन किया ॥ ५८ ॥ पवित्ररूप अर्घ्य, दूर्वा, पुष्पदलके सहित पुण्यदायक शंखजल सम्पन्न मैंने तुमको निवेदन किया है ॥ ५९ ॥ सुगंध रूप गंध जल स्नेह और सुगन्ध करनेवाला मैंने यह स्नानीय जल भक्तिसे निवेदन किया है तुम इसको ग्रहण करो ॥ ६० ॥ यह गन्धद्रव्योंसे प्रगट प्रीतिदायक दिव्य गन्ध है हे अम्बिके ! यह प्रेमसे दिया गन्धजल ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ सब मंगलका रूप

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत् ॥ पूजांगभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५८ ॥ पवित्ररूपमर्घं च दूर्वापुष्पदलान्वितम् ॥ पुण्यदं शंखतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५९ ॥ सुगंधं गंधतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६० ॥ गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगन्धदम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या गन्धतोयं तवांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वं च मंगलप्रदम् ॥ पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि ॥ ६२ ॥ सुगंधयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम् ॥६३॥ अंधकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ तुष्टिदं पुष्टिद चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम् ॥ ६४ ॥ पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ तांबूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६५ ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारणम् ॥ ६६ ॥ जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ॥ देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम् ॥ ६७ ॥

और सब मंगलका देनेवाला पुण्यदायक धूपको हे परमेश्वरी ! ग्रहण करो ॥ ६२ ॥ सुगंध युक्त सुखदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह जगत्के दर्शनके निमित्त दीप्तिकारक दीपक ॥ ६३ ॥ अंधकारके नाशका बीज मैंने तुमको निवेदन किया, यह सुन्दर ठंडा जल पिपासा नाशक ॥६४॥ जगत्का जीवरूप जीवन ग्रहण करो, यह सुन्दर रम्य ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥६५॥ तुष्टि, पुष्टिदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह सुन्दर ठंडाजल पिपासा नाशक॥६६॥जगत्का जीवरूप जीवन ग्रहण करो, देहका शोभास्वरूप सभाकी शोभा बढ़ानेवाला॥६७॥

सूत और रेशमका यह वस्त्र ग्रहण करो, सुवर्णादिका निर्मित लक्ष्मी करनेवाला श्रीयुक्त ॥ ६८ ॥ सुख और पुण्य देनेवाला यह पवित्र भूषण ग्रहण करो अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न अनेक रूप सम्पन्न ॥ ६९ ॥ फलस्वरूप फलदायक यह फल ग्रहण करो, सब मंगलरूप सब मंगलोंका मंगलकर्ता ॥ ७० ॥ अनेक फूलोंसे निर्मित बहुत शोभा सम्पन्न प्रीति और पुण्यदायक यह माला ग्रहण करो ॥ ७१ ॥ हे देवि ! पुण्यदायक सुगंध भरी यह गंध ग्रहण करो, यह सुन्दर सिन्दूर मस्तककी शोभा बढानेवाला है॥ ७२॥भूषणोंमें श्रेष्ठ यह सिन्दूर ग्रहण करो

कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् ॥ कांचनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा ॥६८॥ सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् ॥६९॥ फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम् ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥७०॥ नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम् ॥ प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥७१॥ पुण्यदं च सुगंधाढ्यं गंधं च देवि गृह्यताम् ॥ सिंदूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम् ॥७२॥ भूषणानां च प्रवरं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ विशुद्ध ग्रंथिसंयुक्तं पुण्यसूत्र विनिर्मितम् ॥७३॥ पवित्रं वेदमंत्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः ॥७४॥ ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ सावित्रीति चतुर्थ्यंतं वह्निजायांतमेव च ॥७५॥ लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मंत्रमष्टाक्षरं विदुः ॥ माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम् ॥७६॥ विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते ॥ कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥७७॥ नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद ॥ ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम् ॥ ७८ ॥

विशुद्ध ग्रंथियोंसे संयुक्त पुण्यसूत्रसे बने ॥ ७३ ॥ वेदमंत्रसे पवित्र इस यज्ञ सूत्रको ग्रहण करो. यह द्रव्य मूल मन्त्रसे देकर फिर बुद्धिमान् स्तोत्र पाठ करै ॥ ७४ ॥ फिर व्रती भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे " सावित्र्यै स्वाहा " इस प्रकारसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मी बीज (श्रीबीज) मायाबीज (भुवनेश्वरी बीज) मन्मथबीज इन तीन बीज " पूर्वसावित्र्यैस्वाहा" यह मन्त्र पढे माध्यन्दिनोक्त स्तोत्र सब कामनाका देनेवाला है ॥ ७६ ॥ यह ब्राह्मणोंका जीवनरूप है सुनो मैं आपसे कहता हूं कृष्णने गोलोकमें पहले ब्रह्माको सावित्री दी थी ॥ ७७ ॥ नारद ! वह उनके साथ

ब्रह्मलोकमें आनेको सम्मत न हुई तब ब्रह्माजीने कृष्णकी आज्ञासे वेदमाताको सन्तुष्ट किया॥७८॥ तब उसने प्रसन्न होकर ब्रह्माको स्वामित्वमें वरण किया ब्रह्माजी बोले सच्चिदानन्दरूपे ! हे मूल प्रकृतिरूपवाली ! ॥ ७९ ॥ हे हिरण्य गर्भरूपिणी सुन्दरि ! तुम प्रसन्न हो. हे तेजस्वरूपे ! हे परमानन्द रूपिणी ! ॥८०॥ हे द्विजातियोंकी जातिरूप सुंदरि ! प्रसन्न हो नित्य नित्य प्रिय देवी नित्यानंद स्वरूपिणी॥ ८१ ॥ हे सब मंगलरूप सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्न हो सर्वस्वरूप ब्राह्मणोंके मन्त्रसार परात्पर ॥ ८२ ॥ हे सुखमोक्षकी देनेवाली सुंदरी देवी ! प्रसन्न हो तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी अग्निदाहके निमित्त जलती हुई अग्निकी शिखाहो ॥८३॥ हे ब्रह्मतेजकी देनेवाली सुन्दरी देवी ! प्रसन्न हो मन वचन

तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सच्चिदानंदरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि ॥ ७९ ॥ हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ तेजःस्वरूपे परमे परमानंदरूपिणि ॥ ८० ॥ द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानंदस्वरूपिणी ॥ ८१ ॥ सर्वमंगलरूपे च प्रसन्ना भव सुंदरि ॥ सर्वस्वरूपे विप्राणां मंत्रसारे परात्परे ॥ ८२ ॥ सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे ॥ ८३ ॥ ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः ॥८४॥ तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्र च संसदि ॥ ८५ ॥ सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा ॥ अनेन स्तवराजेन संस्तूया श्वपतिर्नृपः ॥ ८६ ॥ ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् ॥ स्तवराजमिमं पुण्यं संध्यां कृत्वा च यः पठेत् ॥ ८७ ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कर्मसे मनुष्य जो पाप करता है॥८४॥ वह पाप तुम्हारे स्मरणमात्रसे भस्मीभूत होजाता है जगत्के धाता ऐसा कहकर उस सभामें स्थित हुए ॥ ८५ ॥ तब सावित्री ब्रह्माके साथ ब्रह्मलोकमें गई. हे नारदजी ! अश्वपतिने इसी स्तवराजसे भगवती की स्तुति की ॥८६॥ तब सावित्रीका दर्शन कर मनवांछित वर पाया यह पवित्र स्तवराज संध्या करके जो पढता है ॥ ८७ ॥ वह इसके पाठसे चारवेद पढनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीनारायण बोले अश्वपति इस मंत्रसे स्तुति कर विधिपूर्वक पूजन करने उपरान्त सहस्र सूर्यके समान कांतिवाली देवीने उनको दर्शन दिया॥ १ ॥ और वह प्रसन्न मुख राजासे बोली जैसे माता अपने पुत्रसे कहती है. उनकी दशनकान्तिसे दिशायें प्रदीप्त होगई ॥ २ ॥ सावित्री बोली हे राजन् ! जो तुम्हारे मनवांछित है मैं उसको जानती हूं जो तुम्हारी पत्नीको वांछित है वह मैं तुमको देती हूं॥३॥तुम्हारी साध्वी स्त्री कन्याकी अभिलाषी है और तुम पुत्रकी इच्छा करते हो तोभी क्रमसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ ऐसे कहकर वह देवी ब्रह्मलोकको गई. राजा अपने घर गये

श्रीनारायण उवाच ॥ स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् ॥ ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ॥ १ ॥ उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती ॥ यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयंती दिशस्त्विषा ॥ २ ॥ सावित्र्युवाच ॥ जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वांछितम् ॥ वांछितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥३॥ साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी ॥ त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च॥४॥इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह ॥ ५ ॥ आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमलापरा ॥ सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः ॥ ६ ॥ कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिनेदिने ॥ रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चंद्रकला यथा ॥ ७ ॥ सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं सदा ॥ सत्यवंतं सत्यशीलं नाना गुणसमन्वितम् ॥ ८ ॥ राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम् ॥ सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ॥ ९ ॥ स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः ॥ जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥ १० ॥

उनके पहले कन्या हुई ॥५॥ सावित्रीके आराधनासे वह मानो दूसरी कमलाही हुई, अश्वपतिने उसका नाम 'सावित्री' रक्खा ॥ ६ ॥ फिर वह समयानुसार दिन २ बढने लगी यह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान बढती हुई रूपयौवन सम्पन्न हुई ॥७॥ तब उसने द्युमत्सेनके पुत्रको वरण किया, जो सत्यवान् सत्यशील अनेक गुण सम्पन्न था ॥८॥ राजाने अपनी उस सब भूषणोंसे भूषित कन्याको द्युमत्सेनके पुत्रको दिया वह भी उसको कौतुकसे लेकर घर गया ॥ ९ ॥ वह सत्यवान् सत्यविक्रमी संवत्सर बीतने पर पिताकी आज्ञासे वनमें फल और काष्ठ लेने गया ॥१०॥

देवयोगसे उस दिन सावित्रीभी सत्यवान्‌के संग गई वहां वृक्षसे निपतित होनेसे सत्यवान्‌का शरीर छूट गया ॥ ११ ॥ यमराज उस पुरुषको अंगुष्ठ प्रमाणके शरीरसे लेकर चले पतिव्रता धर्मके प्रभावसे सावित्रीने यमराजको देखा और उनके पीछे २ चली ॥ १२ ॥ संयमनी पति यमराज इस प्रकार उस धर्मशीलाको देखकर साधुओंमें प्रवर महानुभावतासे कहने लगे ॥ १३ ॥ अहो सावित्री ! मानुषीशरीरसे तुम कहाँ जाती हो यदि जाना चाहती हो तो यह देह त्यागनकर चलो ॥ १४ ॥ पांच भौतिक शरीरसे कोई मनुष्य हमारे यहां जानेको समर्थ

जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः ॥ निपत्य वृक्षाद्देवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ॥ ११ ॥ यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वां ऽगुष्ठसमं मुने ॥ गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती ॥ १२ ॥ पश्चात्तां सुकृतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः ॥ उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥ १३ ॥ धर्मराज उवाच ॥ अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम् ॥ यदि यास्यसि कांतेन सार्धं देहं तदा त्यज ॥१४॥गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पांच भौतिकम्॥देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा ॥१५॥ भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति ॥ स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम् ॥१६॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते ॥ १७ ॥ कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत् ॥१८॥ स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥ लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥१९॥ सुरत्वं च मनुत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ॥ कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च ॥ २० ॥

नहीं है कारण कि पांच भौतिक देह नश्वर है ॥ १५ ॥ तुम्हारे स्वामीकी आयु पूरी होगई अपने कर्मफल भोगनेको सत्यवान् मेरे लोकको जाता है ॥ १६ ॥ कर्मसे ही यह प्राणी प्रगट होकर कर्मसेही लय होता है, सुख दुःख भय शोक कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ कर्मसेही यह जीव इन्द्र कर्मसेही ब्रह्मपुत्र होता है अपने कर्मसेही हरिका दास और जन्मादि रहित होता है ॥ १८ ॥ अपने कर्मसेही सब सिद्धि और अमरत्व प्राप्त होता है और कर्मसेही विष्णुके सालोक्यादि चारलोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ देवत्व, मनुष्यत्व, राजेन्द्रत्व, शिवत्व, गणेशत्वकर्म

सेही मनुष्यको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ मुनीन्द्रपन, तपस्वीपन, क्षत्रिय, तथा वैश्यत्व सब कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कर्मसे म्लेच्छत्व होता है जंगमपन और शैलत्वभी कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ कर्मसे राक्षसत्व किन्नरत्व प्राप्त होता है आधिपत्य और वृक्षत्व प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ कर्मसेही पशुत्व और वनजीवी होता है कर्मसेही क्षुद्र जन्तुपन कृमिपन प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ सब दैत्यदानव असुरत्व अपने कर्मसे प्राप्त होते हैं सावित्रीसे यह कहकर यमराज मौन हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषटीकायां

कर्मणा च मुनींद्रत्वं तपस्विस्त्वं स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा ॥ २१ ॥ कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः ॥ स्वकर्मणा जङ्गमत्वं शैलत्वं च स्वकर्मणा ॥ २२ ॥ कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा ॥ कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा ॥ २३ ॥ कर्मणैव पशुत्वं च वनजीवी स्वकर्मणा ॥ कर्मणा क्षुद्रजन्तुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणा ॥ २४ ॥ दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा ॥ इत्येतदुक्त्वा सावित्री विरराम स वै यमः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता ॥ तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च ॥ को वा देही च देहः कः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥ २ ॥ किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम् ॥ कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥ ३ ॥ भोक्ता भोजयिता को वा को वा भोगश्च निष्कृतिः ॥ को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारायण बोले पतिव्रता सावित्री यमके यह वचन सुन परमभक्तिसे यमको प्रसन्न करती हुई बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली कर्मका स्वरूप क्या है कैसे वह होता है उसका हेतु क्या है देही और देह क्या है तथा इसमें कर्म करनेवाला कौन है ॥ २ ॥ ज्ञान, बुद्धि, शरीरियोंका प्राण इन्द्रिय यह क्या हैं इसके लक्षण और देवता क्या हैं ॥३॥ भोक्ता और इसको भुगानेवाला कौन

है भोग और इसकी निष्कृति क्या है, जीवन और परमात्मा क्या है ? इसकी व्याख्या आप हमसे कीजिये ॥ ४ ॥ धर्मने कहा वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वही धर्म है उसका करनाही परमंगल है और जो अवैदिक कर्म है वही अशुभ और नरकका देनेवाला है ॥ ५ ॥ जो देवसेवा विनाकारण संकल्परहित होकर की जाती है वही सेवा कर्मकी निर्मूल करनेवाली परमभक्ति दायका है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मभक्त है वही श्रुतियोंमें मुक्त कहा गया है उसको कौन कर्मफलका भोक्ता और कौन निर्लिप्त है यह कुछ नहीं है ॥ ७ ॥ वह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयसे वर्जित होता है वेदमें कही भक्ति दो प्रकारकी है ॥ ८ ॥ एक निर्वाणपद देनेवाली निर्गुण भक्ति है दूसरी

धर्म उवाच ॥ वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मंगलं परम् ॥ अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥ ५ ॥ अहैतुकी देवसेवा संकल्परहिता सती ॥ कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परिभक्तिदा ॥ ६ ॥ को वा कर्मफलं भुंक्ते को वा निर्लिप्त एव च ॥ ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ ॥७॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥ भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता ॥ ८ ॥ निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम् ॥ हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वांछंति वैष्णवाः ॥ ९ ॥ अन्ये निर्वाणमिच्छन्ति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः ॥ कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत्फलप्रदाः ॥१०॥ कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा ॥ सोऽपि तद्धेतुरूपश्च देही नश्वर एव च ॥ ११ ॥

सगुण भक्ति हरिरूप देनेवाली है हरिरूपस्वरूप भक्तिकी वैष्णव इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ और जो ब्रह्मवियोगी हैं वे निर्वाणपदकी इच्छा करते हैं अब कर्मका उपादान कारण कहते हैं जो परमात्मा है वही कर्मरूप बीजका फल देनेवाला है ॥ १०॥ कर्मरूप भगवान् हैं, जो परात्मा है और पराप्रकृति उसका हेतु है अर्थात् सृष्टिकी सृष्टि स्थिति संहार कर्मवाले भगवान् हैं मूल प्रकृति इसका उपादान कारण है विवृत तथा निमित्त कारण है उसमें अविद्या उपादान अर्थात् अविद्यामें चित्प्रतिबिम्ब निमित्त कारण ब्रह्म विवृत कारण है अविद्यासे काम और कामसे कर्म होता है इससे

निमित्त कारण अदृष्टरूप विना कहे भी अर्थसे जानलेना, देह नश्वररूप ह ॥११॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज यह ब्रह्माकी सृष्टिरूप विधिमें सूत्ररूप हैं ॥१२॥जो कर्मकर्ता जीव है वही देही है. वही भोक्ता है अन्तर्यामी आत्मा उसका भुगानेवाला है विभवके भेद सुखदुःख साक्षात्कार पर्यन्त भोग है आत्मामें अवस्था न होनेको निष्कृति मुक्ति कहते हैं ॥ १३ ॥ सत् आत्मा और असत् माया इनके भेदका बीजरूप कारण ज्ञान है अर्थात् अपरोक्ष आत्मवस्तु विषय ब्रह्मविद्या ज्ञान है वह अनेकविधि घटपदादि विषय तथा विषयोंके जो परस्पर विभाग हैं उनका भेदक सब वासनाओंका बीज है ॥ १४ ॥ सबकी विवेचना करने वाली बुद्धि ज्ञानका बीज है ऐसा श्रुतिमें कहा गया है और वायुके भेद पांच प्राण देह

पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च ॥ एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः ॥ १२ ॥ कर्म कर्त्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा ॥ भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥ १३ ॥ सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत् ॥ विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम् ॥ १४ ॥ बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम् ॥ वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् ॥ १५ ॥ इंद्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम् ॥ प्रेमकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम् ॥१६॥ अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम् ॥ लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिंद्रियम् ॥ १७ ॥ अंगिनामंगरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥ रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम् ॥ १८ ॥ सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः ॥ प्राणदेहादिभृद्योहि स जीवः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥

धारियोंको बलरूप हैं ॥ १५ ॥ मनका रूप कहते हैं इंद्रियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरका अंश अर्थात् ईश्वर परमात्माका बिम्बभूत संशयात्मक कर्मों अर्थात् इंद्रियविकारका प्रेरण करनेवाला देहधारियोंको स्वाधीन करनेमें अशक्य ॥ १६ ॥ निरूपण करनेमें अशक्य, दीखनेमें न आनेवाला, बुद्धिके भेदवाला मन है उसको ज्ञानेंद्रिय कहते हैं लोचन, श्रवण, नासिका, त्वचा रसना इंद्रियोंका ॥ १७ ॥ तथा अंगियोंका अवयवरूप सब कर्मेंद्रियव्यापारोंका प्रेरक है रिपुरूप मित्ररूप सुखरूप तथा दुःखदायी है इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे रिपुरूप दुःखदाई होता है सद्विषयोंमें आसक्त होनेसे मित्ररूप सुखदाई है ॥१८॥ इंद्रियोंके देवता सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मादिक हैं विस्तारसे दिशा वायु, सूर्य, प्रचेता अश्विनीकुमार, अग्नि

यह है जो प्राण देहादिका धारक है वह अन्तः-करणमें प्रतिबिम्बरूपजीव कहाता है ॥ १९ ॥ परमात्माका स्वरूप कहते हैं जो परमव्यापक ब्रह्म निर्गुणप्रकृतिसे परे और कारणोंका भी कारण है उसको परमात्मा कहते हैं ॥२०॥ हे देवी ! जो तुमने शास्त्रकी बात पूछी सो तुमसे सब कही यह ज्ञानियोंको ज्ञानरूप है। हे वत्से ! अब तुम यथासुख गमनकरो॥२१॥ सावित्री बोली अपने स्वामीको और ज्ञानके सागर तुमको त्यागकर मैं कहां जाऊं ? जो मैं तुमसे प्रश्नकरूं सो आप उत्तर दीजिये ॥२२॥ हे पिता ! किस २ कर्मसे यह प्राणी किस २ योनियोंमें गमन करता है

परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते ॥ २० ॥ इत्येवं कथितं सर्वं त्वयापृष्टं यथागमम् ॥ ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम् ॥२१॥ सावित्र्युवाच ॥ त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम् ॥ यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥ कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः ॥ केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः ॥ २३ ॥ केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्गुरौ ॥ केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा ॥ २४ ॥ केन दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा ॥ केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा ॥ २५ ॥ अंगहीनश्च काणश्च वधिरः केन कर्मणा ॥ अंधो वा पंगुरपि वा प्रमत्तः केन कर्मणा ॥२६॥ क्षितोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत् ॥ केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा॥स्वर्गभोगादिकं केन वैकुंठं केन कर्मणा ॥२८॥ गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम् ॥ नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा ॥ २९ ॥

किस कर्मसे स्वर्ग और किसकर्मसे नरक होता है॥२३॥ किस कर्मसे मुक्ति और किस कर्मसे गुरुमें भक्ति होती है, किस कर्मसे योगी और किस कर्मसे रोगी होता है॥२४॥ किस कर्मसे दीर्घजीवी और किस कर्मसे अल्पायु होता है, किस कर्मसे दुःखी और सुखी होता है ॥२५॥ अंगहीन, काणा, बहरा, अन्धा, पंगु, प्रमत्त किस कर्मसे होता है॥२६॥क्षित, अति लोभी, चोर किसकर्मसे होता है और सिद्धि सालोक्यादिचतुष्टय किस कर्मसे प्राप्त होता है॥२७॥ ब्राह्मणत्व तपस्वित्व स्वर्गभोगादि वैकुण्ठ किस कर्मसे प्राप्त होता है॥२८॥ सबसे उत्कृष्ट निरामय गोलोक किस कर्मसे

प्राप्त होता है नरक कितने हैं उनकी संख्या और नाम कहिये॥२९॥कौन नरकमें जाना कितनेकाल वहां रहना होता है पापियोंकी किस कर्मसे क्या व्याधि होती है जो मैंने आपसे पूँछा सो मुझसे कहिये॥३०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥ श्रीनारायण बोले सावित्रीके वचन सुन यमराज अति विस्मित हुए और हँसकर जीवोंका कर्मविपाक कहने लगे ॥ १ ॥ धर्म बोले हे वत्से ! अवस्थामें तो तुम द्वादश वर्षीया कन्या हो और ज्ञान तुम्हारा ज्ञानी योगियोंसे भी अधिक है ॥ २ ॥ सावित्रीके वरदानसे तुम सावित्रीकी कला हो राजाने

को वा कं नरकं याति कियंतं तेषु तिष्ठति ॥ पापिनां कर्मणा केन यो वा व्याधिः प्रजायते॥यद्यत्प्रिय मया पृष्टं तन्मे व्याख्या तुमर्हसि ॥३०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः ॥ प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम्॥१॥धर्म उवाच ॥ कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना ॥ ज्ञानं ते पूर्वविदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम् ॥२॥ सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती ॥ प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते ॥ ३ ॥ यथा श्रीः श्रीपते क्रोडे भवानी च भवोरसि ॥ यथाऽदितिः कश्यपे च यथाऽहल्या च गौतमे ॥ ४ ॥ यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥ यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने ॥ ५ ॥ यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दिवाकरे ॥ वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा ॥ ६ ॥ यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्त्तिके ॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये ॥ ७ ॥

तपसे तुमको प्राप्त किया है॥ ३ ॥ जैसे लक्ष्मी भगवान्की गोदमें, भवानी शिवकी गोदमें, आदिति कश्यप, अहिल्या गौतम समीप ॥४॥ शची महेन्द्रसे, रोहिणी चन्द्रमासे, रति कामसे, स्वाहा अग्निसे ॥ ५ ॥ स्वधा पितरोंमें, संज्ञा दिवाकरमें, वरुणानी वरुणमें, दक्षिणा यज्ञमें ॥ ६ ॥ पृथ्वी वराहमें देवसेना कार्तिकेयमें अनुरक्त हैं अर्थात् जैसे देवताओंकी यह स्त्रियें अखंडित सौभाग्यवाली है इसी प्रकार तुम

सत्यवान्में अखण्ड सौभाग्यवाली हो ॥ ७ ॥ यह मैंने तुझको वर दिया है हे महाभागे ! और भी जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग मैं तुझको दूंगा ॥ ८ ॥ सावित्री बोली हे महाभाग ! सत्यव्रतके औरससे मेरे सौ पुत्र हों यही वर मुझको दीजिये ॥९॥ मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों श्वशुर नेत्रविहीन हैं उनके नेत्र होजांय और उनका राज्य उनको प्राप्त हो जाय यही वर मुझको दो ॥ १०॥ अन्तमें सत्यवान्के सहित हरिमंदिरमें मेरा गमन हो, लक्षवर्षके उपरान्त सत्यवान् और मैं इसलोकसे गमन करें ॥ ११॥ तथा जीवोंके कर्मविपाक सुननेका मुझे परम कौतूहल है यही विश्वके

अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं च यथेप्सितम् ॥ वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम् ॥ ८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सत्यवत और सानां पुत्राणां शतकं मम ॥ भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥ ९ ॥ मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी ॥ राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम् ॥ १० ॥ अंते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमंदिरम् ॥ समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो ॥ ११ ॥ जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १२ ॥ धर्मराज उवाच ॥ भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव ॥ जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय ॥ १३ ॥ शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते ॥ पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुंजते जनाः ॥ १४ ॥ सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः ॥ नराश्च कर्मजनका न सर्वे जीविनः सति ॥ १५ ॥ विशिष्टजीविनः कर्म भुंजते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च ॥ १६ ॥ विशेषतो जीविनश्च भ्रमंते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभं भुंजते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥ १७ ॥

निस्तारका बीज है सो आप मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ धर्मराज बोले हे महासाध्वी ! तेरे सब मनोरथ पूर्णहोंगे जीवोंका कर्मविपाक कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ इस पुण्यक्षेत्रभारतवर्षमें शुभाशुभकर्मोंसे ही जन्म होता है दूसरे स्थानोंमें केवल पुण्य वा पापही भोगा जाता है ॥ १४ ॥ सुर, दैत्य, दानव, गंधर्व, राक्षसादि यह सब नर कर्मके करनेवाले हैं, पश्वादि सब जीव कर्मकारी नहीं हैं ॥ १५ ॥ मुख्यजीव कर्माधिकारी मनुष्यही सब योनियोंमें कर्म भोगते हैं स्वर्ग नरकमें शुभ अशुभ सर्वत्र है ॥ १६ ॥ विशेषकर यह जीव सब योनियोंमें भ्रमता है और पूर्व

अर्जित कर्मके अनुसार अशुभ भोगता है ॥ १७ ॥ शुभकर्मसे स्वर्गलोकादिमें गमन करता है अशुभकर्मोंसे नरकमें भ्रमण करना होता है ॥१८॥ कर्मके निर्मूल करनेका साधन भक्ति है वह दो प्रकारकी है एक निर्वाणरूप निर्गुण भक्ति और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी है॥१९॥ बुरे कर्म करनेसे रोगी और अच्छे कर्मसे अरोगी होता है दीर्घजीवी सुखी शुभकर्मसे अल्पायु और दुःखी दुष्टकर्मसे होता है ॥२०॥ अंधे और हीनांग खोटेकर्मोंसे होते हैं सर्वोत्कृष्ट कर्मोंसे सिद्धि आदिको प्राप्त होता है ॥२१॥ हे देवी ! यह आपसे सामान्यसे कहा अब विशेषरूपसे सुनो

शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादिकमेव च ॥ कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमंति नरकेषु च ॥ १८ ॥ कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति ॥ निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह ॥१९॥ रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा ॥ दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा ॥२०॥ अंधादयश्चांगहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च ॥ सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ॥२१॥ सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुंदरि ॥ सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥२२॥ दुर्लभा मानुषी जातिः सर्वजातिषु भारते ॥ सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति ॥ निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो द्विविधः सति ॥२४॥ सकामाच्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च ॥ कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥२५॥ स याति देहं त्यक्त्वा च पदं यत्तन्निरामयम् ॥ पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २६ ॥

यह पुराणस्मृतियोंमें दुर्लभ है इसको भले प्रकार गुप्त रखना चाहिये ॥२२॥ भारतकी सब जातियोंमें मानुषीजाति बडी दुर्लभ है इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है और वह सबकर्ममें श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ भारतमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है निष्काम सकामभेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं ॥ २४ ॥ सकाम ब्राह्मण लोकप्रधान है और निष्काम भक्त है कर्मभोगी सकाम है और निष्काम उपद्रवरहित हैं ॥२५॥ वह निष्काम देहत्यागकर निरामय पदको गमन करता है उन निष्कामियोंका फिर आगमन नहीं होता ॥ २६ ॥

जो परमात्मा ईश्वर द्विभुज कृष्णका सेवन करते हैं वह दिव्यरूपधारी भक्त गोलोकमें निवास करते हैं ॥२७॥ सकामी वैष्णव वैकुण्ठमें जाकर फिर भारतमें आय द्विजातियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २८ ॥ फिर वे कालपाय क्रमसे निष्कामी होते हैं मैं उनकी निर्मल भक्ति प्रदान करता हूं ॥ २९ ॥ अवैष्णव ब्राह्मण सब जन्ममें सकाम होते हैं विष्णुभक्तिरहित होनेसे उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती ॥३०॥ जो ब्राह्मण तीर्थमें आश्रित और तपस्यामें निरत हैं वह ब्रह्मलोकतक जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३१ ॥ जो अपने धर्ममें निरत हुए तीर्थ वा अन्यत्र कहीं निवास

सेवंते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ गोलोकं प्रति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ॥२७॥ सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुंठ मेव च ॥ भारतं पुनरायांति तेषां जन्म द्विजातिषु ॥२८॥ कालेन ते च निष्कामा भवंत्येव क्रमेण च॥भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु ॥ न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ ॥ ३० ॥ तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति ॥ ते यांति ब्रह्मलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३१ ॥ स्वधर्मनिरता ये च तीर्थान्यत्रनिवासिनः ॥ व्रजंति ते सत्यलोकं पुनरायांति भारते ॥३२॥ स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते ॥ व्रजंति ते सूर्यलोकं पुनरायांति भारते ॥३३॥ मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः ॥ मणिद्वीपं प्रयांत्येव पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥३४॥ स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः ॥ ते यांति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारते ॥ ३५ ॥ ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताःसति ॥ ते यांति सर्वलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३६ ॥

करते हैं वे सत्यलोकमें जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३२ ॥ स्वधर्ममें निरत ब्राह्मण सूर्यभक्त होनेसे सूर्यलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥३३॥ मूलप्रकृतिके भक्त निष्काम ब्रह्मचारी महात्मा मणिद्वीपमें जाकर फिर नहीं आते हैं ॥ ३४ ॥ अपने धर्ममें निरत शैव, शाक्त, गाणपत्य, शिवादिलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत हुए अन्यदेवताओंका यजन करते हैं वे

सवलोकोंमें गमन करते फिर भारतमें आते हैं ॥ ३६ ॥ जो हरिभक्त निष्काम ब्राह्मण स्वधर्ममें तत्पर भक्त हैं वे अपनी भक्तिके बलसे हरि लोकमें गमन करते हैं ॥ ३७ ॥ अपने धर्मसे रहित ब्राह्मण देवताओंके त्याग भूत प्रेतादिका सेवनकरते हैं वे भ्रष्टाचार अवश्य नरकमें जाते हैं ॥ ३८ ॥ चारों वर्ण अपने धर्ममें तत्पर हुए शुभकर्मके फलभोगी होते हैं ॥ ३९ ॥ जो अपने कर्मसे रहित हैं वेही नरकमें जाते हैं वह अपने कर्मफलभोगनेके कारण भारतवर्षमें नहीं होते॥४०॥चारोंवर्ण अपने धर्ममें निरत हुए शुभफल पाते हैं अपने धर्ममें निरतब्राह्मण अपने धर्ममें

हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः ॥ ते च यांति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो ॥ ३७ ॥ स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा ॥ भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यांति नरकं ध्रुवम् ॥३८॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च ॥ भवंत्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभोगिनः ॥ ३९ ॥ स्वकर्मरहिता ये च नरके यांति ते ध्रुवम् ॥ भारते न भवंत्येव कर्मणः फलभोगिनः ॥ ४० ॥ स्वधर्मनिरता एवं वर्णाश्चत्वार एव च ॥ स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च ॥ ४१ ॥ कन्यां ददाति विप्राय चंद्रलोकं प्रयांति ते ॥ वसंति लभते साध्वि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४२ ॥ सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ॥ सकामा यांति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः ॥ ४३ ॥ ते प्रयांति विष्णुलोकं फलसंघातवर्जिताः ॥ गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं सर्पिः फलं जलम् ॥ ४४ ॥ ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चंद्रलोकं प्रयांति ते ॥ वसंति ते च तल्लोके यावन्मन्वन्तरं सति ॥ ४५ ॥ सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वंति तेन ते जनाः ॥ ये ददति सुवर्णांश्च गाश्च ताम्रादिकं सति ॥ ४६ ॥

निरत ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणको कन्या देता है वह चन्द्रलोकमें गमन करता है. हे साध्वि ! वे चौदह इन्द्र भोग कालतक इन्द्रलोकमें निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ अलंकृत कन्यादानसे दूना फल मिलता है. सकामा उस लोकको जाते हैं निष्काम नहीं ॥ ४३ ॥ वे फलसंघातसे रहित विष्णुलोकको जाते हैं, घी, चांदी, सोना, वस्त्र, दूध, फल,जल ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको देते हैं वे चन्द्रलोकमें गमन करते हैं वे एकमन्वन्तरपर्यन्त उस लोकमें निवास करते हैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार वे प्राणी वहां बहुत कालपर्यन्त निवास करते हैं जो सुवर्ण

और ताम्रसे अलंकृत कर गोदान करते हैं ॥४६॥ वे पवित्र ब्राह्मणको देनेवाले सूर्यलोकमें निवास करते हैं वे उन लोकोंमें दशसहस्र वर्षतक निवास करते हैं ॥४७॥ वे उन लोकोंमें चिरकाल तक निरामय हो निवास करते हैं अनेक धन, भूमि जो ब्राह्मणोंको देते हैं ॥ ४८ ॥ वह मनोहर श्वेतद्वीप और विष्णुलोकमें गमन करतेहैं वह चन्द्रदिवाकरके स्थिति पर्यन्त वहां रहते हैं ॥४९॥ और वह विपुल लोकमें बहुत समयतक निवास करते हैं, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके निमित्त घर देते हैं ॥५०॥ वह सुखदायक विष्णुलोकमें बहुत समयतक रहते हैं उसके रेणुप्रमाणतक विष्णु लोकमें महाप्रतिष्ठा होती है ॥ ५१ ॥ ऐसा होनेसे मनुष्य विपुललोकमें बहुत काल निवास करते हैं जो मनुष्य जिस जिस देवताके निमित्त घर

ते यांति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च ॥ वसंति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ४७ ॥ विपुले सुचिरं वासं कुर्वंति च निरामयाः ॥ ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च ॥ ४८ स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम् ॥ तत्रैव निवसत्येव यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ४९ ॥ विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने ॥ गृहं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ ते यांति विष्णुलोकं च सुचिरं सुखदायकम् ॥ गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे ॥ ५१ ॥ विपुले विपुलं वास कुर्वंति मानवाः सति ॥ यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः ॥ ५२ ॥ स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम् ॥ ५३ ॥ प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥ यो ददाति तडागं च सर्वपापप्रवृत्तये ॥ ५४ ॥ स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा ॥ ५५ ॥ स तु वापीप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥ धनुश्चतुः सहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम् ॥ ५६ ॥

देता है उस घरकी जितनी रेणु हैं उतने वर्षतक वह देवताके लोकमें निवास करता है, राजमहलका चौगुना पुण्य और देशको सौगुनापुण्य होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ प्रकृष्ट देशका इससे दूना पुण्य है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है जो सब पापनाशके निमित्त सरोवर दान करता है ॥५४॥ वही उसके रेणुप्रमाण वर्षोंतक जनलोकको जाता है, बावडीका इससे दशगुण फल मनुष्यको प्राप्त होता है "चार हाथका एक धनुष चार सहस्र धनुषकी वापी होती है दो सहस्र धनुषका कोश होता है" ॥ ५५ ॥ वापी प्रदानसे भी तडागका फल प्राप्त होता है जिसकी दीर्घता चार

सहस्र धनुष हो ॥५६॥ उतनी ही चौडी वा उसके कुछ न्यून हो तो वह वापी कहाती है, यदि पात्रको दी जाय तो कन्यादानका इससे दशगुणा पुण्य है ॥ ५७ ॥ यदि कन्या अलंकारयुक्त हो तो दूना फल देती है जितना फल तडाग खुदानेमें है उतना ही उसके जीर्णोद्धारमें है ॥५८॥ बावडीकी पंक निकलवानेमें वापी दानका ही फल है, जो पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है॥५९॥वह दशसहस्र तपलोकमें जाता है, हे सावित्री! जो सबके निमित्त फूलोंका उद्यान लगाता है देता है ॥ ६० ॥ वह दशसहस्र वर्ष ध्रुवलोकमें निवास करता है, जो भार-

न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता ॥ दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते ॥५७॥ फलं ददाति द्विगुणं यदि साऽलंकृता भवेत् ॥ यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम् ॥ ५८ ॥ वाप्याश्च पंकोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत् ॥ अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोति च ॥ ५९ ॥ स प्रयाति ततो लोकं वर्षाणामयुतं सति ॥ पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये ॥ ६० ॥ स वसेद्ध्रुवलोकं च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति ॥ ६१ ॥ विष्णु लोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥ चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥ तस्यार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् ॥ यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमंदिरम् ॥ ६३ ॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम् ॥ राज मार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते ॥ ६४ ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥ ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दाने सम-फलं लभेत् ॥ ६५ ॥ यद्धि दत्तं च तद्भुंक्ते न दत्तं नोपतिष्ठते ॥ भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते ॥ ६६ ॥

तवर्षमें विष्णुके निमित्त विमान देता है ॥ ६१ ॥ वह मन्वन्तर पर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है और जो चित्रयुक्त विपुलविस्तारका विमान देता है उसका चौगुना फल होता है ॥ ६२ ॥ पालकीदानका इससे आधा फल है जो भक्तिपूर्वक हरिके निमित्त दोल (झूले) योग्य स्थानवाले मंदिरको देता है ॥ ६३ ॥ वह सौ मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें निवास करता है, हे प्रतिव्रते! जो महलयुक्त राजमार्गको करता है ॥६४॥ वह दशसहस्रवर्ष इन्द्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण और देवताके निमित्त दानमें समान फल देता है ॥ ६५ ॥ जो दिया है

सोई भोगा जाता है विनादिये नहीं मिलता स्वर्गादि सुख भोगकर यह पुण्यात्मा प्राणी भारतमें जन्म लेकर ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण होता है क्रमसे उत्तम गतिको प्राप्त होता है भारतमें पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गादि फल भोग कर फिर ॥ ६७ ॥ विप्रही होता है इसी प्रकार क्षत्रियादि जानने. क्षत्रिय, वैश्य, कोई क्यों न हो सौ कोटिकल्पमें भी ॥ ६८ ॥ तपस्या करके ब्राह्मण नहीं बनता, जन्मसे ही होता है यह श्रुतिमें कहा है सौ कोटिकल्पमें भी विनाभोगे कर्मका क्षय नहीं होता ॥६९॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना होता है देव और तीर्थकी सहायतासे

[illegible]शोद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥ भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम् ॥ ६७ ॥ पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च [illegible]दयः ॥ क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च ॥ ६८ ॥ तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥ नाभुक्तं [illegible] कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६९ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुद्ध्यति ॥ [illegible] ॥ [illegible]ते कथितं किंचित्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे [illegible] एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सावित्र्युवाच ॥ प्रयांति स्वर्गमन्यं च येनैव कर्मणा यम ॥ मानवाः पुण्यवंतश्च [illegible] ॥१॥ धर्मराज उवाच ॥ अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते ॥ अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते ॥ [illegible] ॥ [illegible]न्येभ्योऽपि करोति यः ॥ अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते ॥ २ ॥

[illegible] ॥ ७० ॥ यह कुछ तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे [illegible] ॥ २९ ॥ सावित्री बोली हे भगवन् यम । जिस कर्मसे यह प्राणी स्वर्गमें गमनकरते वे पुण्यवान् [illegible] ॥ १ ॥ धर्म बोले इस भारतमें जो अन्नदान करते हैं वह अन्नके जितने रेणु हैं उतने समयतक [illegible] ॥ [illegible] ॥ यह [illegible] महादान है जो ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तके निमित्त देता है वह अन्नदानके प्रमाणसे शिवलो

कमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥ अन्नदानके समान न कुछ और दान है न होगा इसमें पात्रपरीक्षा और कालका नियम नहीं है ॥ ४ ॥ यदि देवता और ब्राह्मणोंके निमित्त आसन देता वह दशसहस्रवर्ष विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥५॥ जो ब्राह्मणको दिव्य दुधारी गाय देता है वह उसके रोमप्रमाणवर्षतक विष्णुलोकमें महिमा पाता॥६॥पुण्यदिन दानकरनेसे चौगुना, तीर्थमें सौगुणा; नारायणक्षेत्रमें दानका कोटिगुना फल है॥७॥जो भक्तिपूर्वक भारतमें ब्राह्मणको गौ देता है वह१०००० दश सहस्रवर्षतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥८॥ जो ब्राह्मणको उभयमुखी

अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥ ४ ॥ देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ॥ महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥५॥ यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥६॥ चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् ॥ दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥७॥ गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् ॥ वर्षाणामयुतं चैव चंद्रलोके महीयते ॥ ८ ॥ यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥९॥ यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम् ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥१०॥ विप्राय पीडितांगाय वस्त्रयुग्मं ददाति च ॥ महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥११॥ यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् ॥ महीयते स वैकुंठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १२ ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम् ॥ महीयते चंद्रलोके यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥

गोदान करता है उसके लोममान वर्षतक विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मणको मनोहर श्वेतछत्र देता है वह अयुत १०००० वर्ष वरुणलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १० ॥ जो पीडितशरीर ब्राह्मणके निमित्त दो वस्त्र देता है वह अयुतवर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥११॥ जो ब्राह्मणके निमित्त सवस्त्र शालिग्राम देता है वह चन्द्रसूर्यकी स्थितितक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥१२॥जो ब्राह्मणको दिव्य मनोहर शय्या

१ गर्भिणी ।

देता है वह चन्द्र सूर्यकी स्थितितक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १३ ॥ जो देवता ब्राह्मणके निमित्त दीपदान करता है वह मन्वन्तर पर्यन्त वह्निलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ १४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त गजदान करता है वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त इन्द्रके अर्ध आसनमें निवास करता है ॥१५॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त अश्वदान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुण लोकमें निवास करता है ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मणको पालकी दान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मणको

यो ददाति प्रदीपं च देवभ्यो ब्राह्मणाय च ॥ यावन्मन्वंतरं सोऽपि वह्निलोके महीयते ॥ १४ ॥ करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते ॥ यावदिंद्रो नरस्तावदिंद्रस्यार्धासने वसेत् ॥ १५ ॥ भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ महीयते वायुलोके यावन्मन्वंतरं सति ॥ १८ ॥ यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ १९ ॥ धान्यं रत्नं यो ददाति चिरंजीवी भवेत्सुधीः ॥ दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुंठगामिनौ ॥ २० ॥ सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः ॥ स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते ॥ २१ ॥ यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेत्सुधीः ॥ पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते विष्णुमंदिरम् ॥ निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वंतरावधि ॥ २३ ॥

श्रेष्ठ बगियाका दान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें निवास करता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणको व्यजन और श्वेतचामर देते हैं वह दश सहस्रवर्ष वायुलोकमें निवास करते हैं ॥ १९ ॥ धान्य और रत्न देनेवाला चिरजीवी होता है. इसके दाता ग्रहीता दोनों वैकुण्ठको जाते हैं ॥ २० ॥ इस भारतमें जो मनुष्य निरंतर श्रीहरिका नाम जपता है वह चिरजीवी होता है उससे मृत्यु पलायमान होती है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें दोलोत्सव कराता है पूर्णिमा और रात्रिके शेषमें इस उत्सवका करनेवाला जीवन्मुक्त होता है ॥ २२ ॥ इस लोकमें

सुख भोगकर अंतमें विष्णुमन्दिरको जाता है और निश्चय वहां सौ मन्वन्तरतक निवास करता है ॥ २३ ॥ उत्तराफाल्गुनीमें इससे भी दूना फल होता है वह कल्पान्तजीवी होता है यह ब्रह्माजीका कथन है ॥ २४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त तिल दान करता है वह तिल जितने हों उतने वर्षतक शिव मंदिरमें निवास करता है ॥२५॥ फिर अच्छीयोनिको प्राप्त होकर चिरजीवी सुखी होता है इससे ताम्रपात्रके दानसे दूना फल होता है ॥ २६ ॥ जो अलंकार सम्पन्न सवस्त्रा सुन्दरी पतिव्रता अपनी भार्याको ब्राह्मणके निमित्त दान करता है ॥ २७ ॥ वह मन्वन्तर पर्यन्त चंद्रलोकमें निवास करता है "पतिव्रताका दानकर फिर उसके भार वा यथाशक्ति सुवर्ण ब्राह्मणोंको देकर उसे ग्रहण करै अन्यथा

फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् ॥ कल्पांतजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः ॥ २४ ॥ तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते ॥ तिलप्रमाणवर्षं च मोदते शिवमंदिरे ॥२५॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी॥ ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत् ॥२६॥ सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुंदरीं प्रियाम् ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम् ॥ २७ ॥ महीयते चन्द्रलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तत्र स्ववेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम् ॥२८॥ ततो गंधर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥ दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ॥ २९ ॥ ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुंदरीं प्रियाम् ॥ सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम् ॥ ३० ॥ प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः ॥ फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते ॥ ३१ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् ॥ सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम् ॥ ३२ ॥

दाता प्रतिग्रहीता दोनों नरकमें जाते हैं यह पतिव्रता शब्द ही सूचित करता है स्कन्दमें कहा है "स्त्रियं दत्त्वा ततस्तां तु क्रीणीयात्कांचनादिना" और वहां वह अप्सराओंके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ २८ ॥ फिर दश सहस्र वर्ष गंधर्व लोकमें दिनरात कौतुक देखता उर्वशीके साथ प्रसन्न होता है ॥२९॥ और सहस्र जन्मतक सुंदरी प्रियाको प्राप्त होता है जो सती सौभाग्ययुक्त कोमल और प्रियवादिनी होती है ॥३०॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके निमित्त श्रेष्ठफल देता है वह फल प्रमाण वर्षतक इंद्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है॥३१॥फिर सुयोनिको प्राप्तहो सुंदर पुत्र पाताहै फलयुक्त

सहस्र वृक्षोंका दान प्रशंसनीय है॥३२॥अथवा जो ब्राह्मणोंको केवल फलदान करता है वह बहुतकाल स्वर्गमें रहकर फिर भारतमें आता है ॥३३॥ अनेक द्रव्य और धान्ययुक्त घर जो भारतमें ब्राह्मणको देता है॥३४॥ वह सौ मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्ग लोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महाधनी होता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण पुण्यक्षेत्र भारतमें सस्ययुक्त भूमि ब्राह्मणको देता है ॥ ३६ ॥ वह सौमन्वन्तरवैकुण्ठमें वास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महान् राजा होता है ॥ ३७ ॥ सौ जन्म भी उसको भूमि त्यागन नहीं करती वह श्रीमान् धनवान् पुत्रवान् प्रजेश्वर

केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति च ॥ सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते ॥ ३३ ॥ नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम् ॥ ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम् ॥ ३४ ॥ सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य स महाधनवान्भवेत् ॥ ३५ ॥ यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च सुचिरां सति ॥ ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ३६ ॥ महीयते च वैकुण्ठं मन्वंतरशतं ध्रुवम् ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत् ॥३७॥ तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् ॥ श्रीमांश्च धनमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ॥ ३८ ॥ यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद् द्विजाय च ॥ लक्षमन्वंतरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥३९॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम् ॥ न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च ॥४०॥ सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम् ॥ नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ॥४१॥ नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि ॥ महीयते स कैलासे दशलक्षेंद्रकालकम् ॥ ४२ ॥

होता है॥३८॥जो गोठ सहित अच्छा ग्राम ब्राह्मणको देते हैं वह लाख मन्वन्तरतक वैकुण्ठमें रहते हैं॥३९॥फिर सुयोनिको प्राप्त होकर लाख ग्रामसे युक्त होता है लाख जन्म भी उसको पृथ्वी त्यागन नहीं करती है॥४०॥भली प्रजायुक्त प्रकृष्ट पक्वसस्य सम्पन्न अनेक पुष्करणी वृक्ष फल वल्लीसे सम्पन्न ॥४१॥ नगर जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त देता है वह कैलासमें दशलाख इंद्रके काल पर्यन्त प्रसन्न रहता है ॥ ४२ ॥

फिर सुयोनिको प्राप्त हो भारतमें राजेंद्र होता है वह एक नियुत (१००००००) नगर प्राप्त करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ दशसहस्र जन्म पर्यन्त भी भूमि उसको त्यागन नहीं करती महीतलमें परम ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको नगरोंका शतक सुप्रकृष्ट मध्यकृष्ट प्रजायुक्त देता है ॥ ४५ ॥ तथा तडागसंयुक्त वापी अनेक वृक्षसंयुक्त देता है वह कोटिमन्वन्तरतक वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ४६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है स्वर्गमें जैसे इंद्र, इस प्रकार परम ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ कोटिजन्मतक

पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजेंद्रो भारते भवेत् ॥ नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः ॥४३॥ धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम् ॥ परमैश्वर्यनियुतो भवेदेव महीतले ॥ ४४ ॥ नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये ॥ सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च ॥ ४५ ॥ वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम् ॥ महीयते स वैकुण्ठे कोटि मन्वंतरावधि ॥ ४६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य जंबुद्वीपपतिर्भवेत्॥परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि॥४७॥महीतं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च ॥ कल्पांतजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥४८॥ स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये ॥ चतुर्गुणं फलं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ४९ ॥ जम्बुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ फलं शतगुणं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ५० ॥ जम्बुद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः ॥ सर्वेषां तपसां कर्तुस्सर्वेषां वासकारिणः ॥५१॥ सर्वदानं प्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च॥अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः ॥५२॥ असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यंति भुवनेशितुः ॥ निवसंति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे ॥५३॥

भी उसको पृथ्वी नहीं छोडती वह राजराजेश्वर कल्पान्तजीवी होता है ॥ ४८ ॥ जो अपना समस्त अधिकार ब्राह्मणको देता है उसको अंतमें उसका चौगुना फल होता है ॥ ४९ ॥ जो तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका अधिकार देता है उसको अंतमें उसका सौगुना फल होता है ॥ ५० ॥ जम्बूद्वीपका पृथ्वीका दान, सब तीर्थोंका सेवन सब तपस्या सब वासकारी ॥५१॥ सब दानके देनेवाले सब सिद्धेश्वरदर्शनसे पुनरावृत्ति होती है परंतु महेशानीके भक्त फिर नहीं लौटते ॥ ५२ ॥ जो मणिद्वीपमें श्रीदेवीके परमपदमें निवास करते हैं उन्होंने असंख्य

ब्रह्माओंका पात देखा है ॥ ५३ ॥ देवी मंत्रके उपासक मानवी शरीर त्यागकर जरामृत्यु रहित दिव्यरूप और ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ देवीके सारूप्यको प्राप्त होकर देवीकी सेवा करते हैं और मणिद्वीपमें अखंड लोक संक्षय देखते हैं ॥ ५५ ॥ देव सिद्ध और सब विश्व नष्ट होते हैं, परन्तु जन्म मृत्यु जराके हरनेवाले देवीके भक्त नष्ट नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ जो कार्तिकमें हरिके निमित्त तुलसी दान करते हैं वह तीन युग पर्यंत हरिमंदिरमें निवास करते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर हरिभक्तको प्राप्त होते हैं वह भारतभूमिमें जितेन्द्रियोंमें

देवीमंत्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम् ॥ विभूतिं दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ५४ ॥ लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते ॥ पश्यंति ते मणिद्वीपे सखंडं लोकसंक्षयम् ॥ ५५ ॥ नश्यंति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च ॥ देवीभक्ता न नश्यंति जन्ममृत्युजराहराः ॥ ५६ ॥ कार्त्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः ॥ युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरिमंदिरे ॥ ५७ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥ ५८ ॥ मध्ये यः स्नाति गंगायामरुणोदयकालतः ॥ युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमंदिरे ॥ ५९ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य विष्णुमंत्रं लभेद्ध्रुवम् ॥ त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥ ६० ॥ नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले ॥ करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च ॥ ६१ ॥ नित्यस्नायी च गंगायां स पूतः सूर्यवद्भुवि ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ६२ ॥ तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥ मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ६३ ॥

श्रेष्ठ होते हैं ॥ ५८ ॥ जो अरुणोदयके समय गंगाके मध्यमें स्नान करते हैं, वह साठ सहस्र युगतक हरिमंदिरमें निवास करता है ॥५९॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर श्रेष्ठ हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं, मनुष्य देहत्याग करनेपर फिर हरिके पदको जाते हैं ॥६०॥वैकुण्ठसे भूलोकमें फिर आवृत्ति नहीं होती हरि अपने दासोंको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ६१ ॥ गंगामें नित्य स्नान करनेवाला सूर्यके समान पृथ्वीमें पवित्र होता है और पद पदमें उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ६२ ॥ उसीकी पादरजसे भूमि शीघ्र पवित्र होती है, वह चन्द्र

दिवाकर पर्यंत वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो हरिकी परमभक्तिको प्राप्त होता है, वह जीवन्मुक्त तेजस्वी तपस्विप्रवर होता है ॥ ६४ ॥ तथा स्वधर्ममें निरत शुद्ध विद्वान् जितेन्द्रिय होता है जैसे मीन और कर्कके मध्यमें सूर्य गाढरूपसे तपता है ॥ ६५ ॥ जो भारतमें किसीको सुगंधित जल देता है वह चौदह इन्द्र पर्यंत कैलासमें प्रसन्न होता है ॥ ६६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रूपवान् और सुखी होता है शिवभक्त तेजस्वी वेदवेदाङ्गका पारगामी होता है॥६७॥जो वैशाखमें ब्राह्मणको सत्तु दान करता है वह सत्तुके कणप्रमाण वर्षोंतक शिव मंदिरमें प्रसन्न रहता है ॥ ६८ ॥ जो भारतमें कृष्णजन्माष्टमीव्रत करता है निःसंदेह उसके सौ जन्मके

पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्॥जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत्॥६४॥ स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेंद्रियः॥मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः॥६५॥भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम्॥ स मोदते च कैलासे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥६६॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥ शिवभक्तश्च तेजस्वी वेदवेदांगपारगः ॥६७॥ वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये ॥ सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिवमंदिरे ॥ ६८ ॥ करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६९ ॥ वैकुंठे मोदते सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं सप्राप्य कृष्णे भक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ ७० ॥ इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः ॥ मोदंते शिवलोके स सप्तमन्वंतरावधि ॥७१॥ शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति च ॥ पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमंदिरे ॥७२॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत्॥७३॥चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती॥करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥ ७४ ॥

पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ चौदह इन्द्रकी आयुपर्य्यंत वह निःसंदेह वैकुंठमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो कृष्णभक्ति लेते हैं ॥ ७० ॥ इस भारतवर्षमें जो शिवरात्रिका व्रत करते हैं वह सात मन्वन्तर पर्यंत शिवलोकमें निवास करते हैं ॥७१॥ जो शिवरात्रिमें शिवके निमित्त बेलपत्र देता है वह पत्रके प्रमाण वर्षोंतक शिव मंदिरमें निवास करता है ॥ ७२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो शिवभक्ति पाता है. विद्यावान् पुत्रवान्, श्रीमान्, प्रजावान्, भूमिमान् होता है॥७३॥जो व्रती चैत्र वा माघमें शंकरका अर्चन करता है और भक्तिसे नृत्य

कर दिनरात वेत्रपाणी होता है ॥ ७४ ॥ महीने पखवारे वा दश सातदिन जितने दिन अर्चन करे उतनेही युगपर्यंत शिवलोकमें प्रतिष्ठा है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीराम नवमीव्रत करते हैं वह सात मन्वंतरतक विष्णुलोकमें प्रसन्न होते हैं ॥ ७६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रामभक्तिको अवश्य लेते हैं जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ और महाधनी होते हैं ॥ ७७ ॥ जो शरत्कालमें देवीकी महापूजा करते हैं महिष, छाग, मेष, खड्ग, भेकादि ॥ ७८ ॥ नैवेद्य, उपहार, धूप, दीपादि तथा नृत्य गीतादिसे अनेक कौतुक करते हैं ॥ ७९ ॥

मांसं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्तदिनानि च ॥ दिनमानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥ ७५ ॥ श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान् ॥ सप्तमन्वंतरं यावन्मोदते विष्णुमंदिरे ॥ ७६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत् ॥ ७७ ॥ शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च ॥ महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकादिभिः सति ॥ ७८ ॥ नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा ॥ नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमंगलम् ॥ ७९ ॥ शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य नरो बुद्धिं च निर्मलाम् ॥ ८० ॥ अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥ ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥ ८२ ॥ नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥ ८३ ॥ गोलोके च वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥ ८४ ॥

वह सात मन्वन्तरतक शिव लोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो निर्मल बुद्धि पाता है ॥ ८० ॥ पुत्र पौत्रकी बढनेवाली अतुल श्रीको प्राप्त होता है और महाप्रभावसे युक्त हाथी घोडोंसे युक्त होता है ॥ ८१ ॥ निःसंदेह वह राजराजेश्वर होता है. फिर शुक्लाष्टमीको प्राप्त होकर जो महालक्ष्मीको अर्चन करता है ॥ ८२ ॥ नित्य भक्तिसे पुण्यक्षेत्र भारतमें जो एक पक्षतक प्रकृष्ट षोडशोपचार करता है ॥ ८३ ॥ वह चौदह इन्द्रके समयतक गोलोकमें निवास करता है फिर सुयोनियोंको प्राप्त होकर राज

राजेश्वर होता है ॥ ८४ ॥ जो कार्तिकी पूर्णिमाको रासमण्डल करके गोप और गोपियोंका शतक पढै ॥ ८५ ॥ शिलाकी प्रतिमामें श्रीकृष्णराधिकाको षोडश उपचारसे भक्तिपूर्वक जो पूजन करता है ॥ ८६ ॥ वह गोलोकमें ब्रह्माकी आयु पर्यंत निवास करता है फिर भारतमें आकर कृष्णकी दृढभक्ति लेता है ॥ ८७ ॥ क्रमसे दृढ भक्ति हरिकी प्राप्त होती है, तथा देहत्यागन कर फिर वह गोलोक को जाता है ॥ ८८ ॥ फिर कृष्णके सारूप्यको पाय पार्षद होता है वहांसे फिर पतन नहीं होता जरा मृत्यु नहीं होती ॥ ८९ ॥

कार्त्तिकीपूर्णिमायां तु कृत्वा तु रासमंडलम् ॥ गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥ ८५ ॥ शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह ॥ भारते पूजयेद्भक्त्या चोपहाराणि षोडश ॥ ८६ ॥ गोलोके वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ भारतं पुनरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेद्दृढाम् ॥ ८७ ॥ क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मंत्रं हरेरहो ॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ८८ ॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत् ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरा-मृत्यु हरो भवेत् ॥ ८९ ॥ शुक्लां वाऽप्यथवाकृष्णां करोत्येकादशीं च यः ॥ वैकुंठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ९० ॥ भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ क्रमेण भक्तिं सुदृढां करोत्येकां हरेरहो ॥ ९१ ॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् ॥ ९२ ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत् ॥ भाद्रे मासे तु द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः ॥९३॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते ॥ रविवारे च संक्रांत्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके ॥ ९४ ॥

और जो शुक्ला वा कृष्णा एकादशी करता है वह ब्रह्माकी अवस्थातक वैकुंठमें निवास करता है ॥९०॥ फिर भारतमें आकर कृष्णभक्त होता है अहो फिर क्रमसे हरिका दृढभक्त होता है ॥ ९१ ॥ देह त्यागनकर यह फिर गोलोकको जाता है फिर कृष्णका सारूप्य पाकर पार्षद होताहै ॥९२॥ फिर वह जरामृत्युरहित हो वहांसे पतित नहीं होता भाद्रशुक्ला द्वादशीको मनुष्योंको इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये॥९३॥ तो वह साठसहस्र

वर्षतक इन्द्रलोकमें निवास करता है शुक्लपक्ष वा रविवार संक्रातिमें ॥ ९४ ॥ भारतमें सूर्यका पूजनकर जो हविष्य अन्न करता है वह चतुर्दश इन्द्रकी स्थितितक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ ९५ ॥ फिर भारतमें आकर श्रीयुक्त योगी होता है ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको जो सावित्रीका पूजन करता है ॥९६॥ वह सात मन्वन्तरतक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर पृथ्वीमें आकर श्रीमान् अतुलविक्रमी होता है ॥ ९७ ॥ वह ज्ञानवान् सम्पत्तिसे युक्त चिरंजीवी होता है माघशुक्ल पंचमीको जो सरस्वतीका पूजन करताहै ॥ ९८ ॥ और भक्तिपूर्वक सोलह उपचार

संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते ॥ महीयते सोऽर्कलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥९५॥ भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् ॥९६॥ महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वंतरावधि ॥ पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ९७ ॥ चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः ॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम् ॥९८॥ संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥ महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ९९ ॥ संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपंडितः ॥ गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च ॥ १०० ॥ नित्यं जीवनपर्यंतं भक्तियुक्तश्च भारते ॥ गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमंदिरे ॥ १ मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ तदंते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥ २ ॥ श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वान्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी ॥ भोजयेद्योऽपि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते ॥ ३ ॥

देता है वह कल्पपर्यन्त मणिद्वीपमें निवास करता है ॥ ९९ ॥ फिर जन्मको प्राप्त होकर वह कवि पंडित होता है. सुवर्ण संयुक्त गौ जो ब्राह्मणके निमित्त देता है १०० ॥ वह जीवनपर्यन्त नित्य भक्तियुक्त भारतमें गौओंका दान करनेसे जितने गौके लोम हों उससे दूने वर्ष विष्णुमंदिरमें निवास करता है ॥१०१॥ क्रीडा कौतुक मङ्गलपूर्वक हरिके सहित प्रसन्न होता है फिर लौटकर यहां राजराजेश्वर होता है॥२॥ श्रीमान् पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् सब प्रकार सुखी होता है जो भारतमें ब्राह्मणकोमिष्टान्न भोजन कराताहै ॥ ३ ॥

वह ब्राह्मणके लोमप्रमाणवर्षतक विष्णु मंदिरमें प्रसन्न होता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥४॥ विद्वान् चिरजीवी श्रीमान् अतुलविक्रम होता है जो भारतमें हरिका नाम लेता लिवाता है ॥५॥ वह नामके अनुसार विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥६॥ जो नारायण क्षेत्रमें हरिका नाम लेनेसे कोटिगुणाफल होता है ॥ ७ ॥ ऐसा पुरुष सब पापसे रहित होकर जीवन्मुक्त होता है उसका फिर जन्म न होकर वह वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥ वह विष्णुके सारूप्यको प्राप्त होता है फिर उसका पतन नहीं होता

विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमंदिरे ॥ ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत् ॥ ४ ॥ विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः ॥ यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते ॥ ५ ॥ युगं नाम प्रमाणं च विष्णुलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत् ॥ ६ ॥ यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्र नारायणे जपेत् ॥ ७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते ॥ ८ ॥ लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत् ॥ विष्णुभक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम् ॥ यावज्जीवनपर्यंतं स याति शिवमंदिरम् ॥११०॥ मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य राजेंद्रो भारते भवेत् ॥ ११ ॥ शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति ॥ महीयते च वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥१२॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम् ॥ महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत् ॥ १३ ॥

वह विष्णुभक्तिको प्राप्त होकर विष्णुकी सारूप्यताको प्राप्त होता है ॥९॥ और जो पार्थिवलिंग बनाय नित्य शिवका पूजन करै वह जीवनपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है ॥ ११० ॥ उस पार्थिवलिंगके रेणुप्रमाण वर्षतक शिवलोकमें निवास करता है फिर भारतमें आय राजेन्द्र होता है ॥ ११ ॥ जो शालिग्रामशिलाका नित्य पूजन कर चरणामृत लेता है वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर जन्म लेकर दुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त होता है और विष्णुलोकमें प्राप्त होकर फिर नहीं आता ॥ १३ ॥

सब तप और व्रत करके चौदह इंद्रके कालतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १४ ॥ फिर भारतमें जन्मले राजा होता है पश्चात् जन्मले मुक्त होकर फिर जन्म नहीं पाता ॥१५॥ जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह निर्वाणताको प्राप्त होता है उसका भूमिमें जन्मा नहीं होता ॥१६॥ जो इस पुण्यक्षेत्र भारतमें अश्वमेध करता है वह घोडेके लोम प्रमाण वर्षतक इंद्रके अर्धासनका भागी होता है ॥१७॥ यह मनुष्य राजसूयसे चौगुने फलको प्राप्त होता है सब यज्ञोंसे विशेष देवीयज्ञ है ॥१८॥ यह पहिले ब्रह्मा विष्णु और त्रिपुरासुरनाशके

तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च ॥ कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १४ ॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेंद्रो भारते भवेत् ॥ ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥११५॥ यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ स तु निर्वाणतां याति न च जन्म भवेद्भुवि ॥१६॥ पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च ॥ अश्वलोममिताब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत्॥११७॥ चतुर्गुणं राजसूयं फलमाप्नोति मानवः ॥ सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः ॥११८॥ विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने ॥ शंकरेण महेशेन त्रिपुरासुरनाशने ॥ १९ ॥ शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि ॥ नानेन सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२० ॥ दक्षेण च कृतः पूर्वं महान्संवादसंयुतः ॥ बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोः सति ॥ २१ ॥ शेपुश्च नंदिनं विप्रा नंदी विप्रांश्च कोपतः ॥ यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभंज चंद्रशेखरः ॥ २२ ॥ चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः ॥ २३ ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः ॥ शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा ॥ २४ ॥ राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः ॥ १२५ ॥

निमित्त शंकरने किया था ॥ १९ ॥ हे सुन्दरि सब यज्ञोंमें शक्तियज्ञ प्रधान है तीन लोकमें इसके समान और यज्ञ नहीं हैं ॥१२०॥ बडे संभारसंयुक्त पहले इसको दक्षने किया जहां शंकर और दक्षका क्लेश हुआ था ॥ २१ ॥ वहां ब्राह्मणोंमें नंदिको और नंदिने क्रोधकर ब्राह्मणोंकोशाप दिया जिस कारण चन्द्रशेखरने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया ॥ २२ ॥ दक्ष प्रजापतिने पहले देवीका यज्ञ किया धर्म कश्यप और कर्दमने यज्ञ किया ॥२३॥ स्वायंभुव मनु उनके पुत्र प्रियव्रत शिव सनत्कुमार कपिल ध्रुव ॥ २४ ॥ यह सबही यज्ञ करते हुए इससे

सहस्र राजसूयका फल प्राप्त होता है देवी यज्ञकी बराबर वेदमें फल देनेवाला और यज्ञ नहीं है ॥ २५॥ सैकडों वर्ष जीकर जीवन्मुक्त होता है वह ज्ञान और तेजमें विष्णुकी तुल्य होता है ॥२६॥ देवताओंमें जैसे विष्णु, वैष्णवोंमें जैसे नारद शास्त्रोंमें जैसे वेद वर्णोंमें ब्राह्मण ॥२७॥ तीर्थोंमें गंगा पवित्र करनेवालोंमें शिव व्रतोंमें एकादशी पुष्पोंमें जैसे तुलसी ॥२८॥ नक्षत्रोंमें चन्द्रमा पक्षियोंमें गरुड स्त्रियोंमें जैसे प्रकृति राधा वाणी भूमि॥ २९ ॥ शीघ्रगामी इंद्रियों और चंचलोंमें जैसे मन प्रजापतियोंमें प्रजाओंके पति ब्रह्मा ॥ १३० ॥ वनोंमें वृंदावन, वर्षोंमें भारत,

वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह ॥२६॥ देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां च नारदः ॥ शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ २७ ॥ तीर्थानां च यथा गंगा पवित्राणां शिवो यथा ॥ एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी तथा ॥२८॥ नक्षत्राणां यथा चंद्रः पक्षिणां गरुडो यथा ॥ यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुंधरा ॥२९॥ शीघ्राणां चेंद्रियाणां च चंचलानां मनो यथा ॥ प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः ॥१३०॥ वृंदावनं वनानां च वर्षाणां भारतं तथा ॥ श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका ॥ देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि ॥३२॥ अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं च लभेद् ध्रुवम् ॥ सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्तः पृथुरेव च ॥ ३३ ॥ स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् ॥ सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च ॥ ३४ ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम् ॥ १३५ ॥

श्रीमानोंमें जैसे लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रताओंमें दुर्गा, सौभागिनीयोंमें राधिका हैं हे भामिनी ! इसी प्रकार सब यज्ञोंमें देवी यज्ञ श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ सौ अश्वमेधसे शक्रत्वकी निश्चयही प्राप्ति होती है और सहस्रसे विष्णुपद मिलता है जो राजा पृथुको प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सब यज्ञोंमें स्नान सब यज्ञोंमें दीक्षा सब व्रत और तपका फल ॥ ३४ ॥ चार वेदोंके पाठ भू प्रदक्षिणाका फल इनसेही मुक्तिदायक

देवीके चरणकमलकी भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ वेद पुराण और सब इतिहासोंमें देवीके चरणकमल पूजनको ही सार कहा है ॥ ३६ ॥ उसीका वर्णन ध्यान उसीके नाम गुणका कीर्तन उसीके स्तोत्रका स्मरण वंदन और जप ॥ ३७ ॥ उनके चरणको अमृत लेना उनका नैवेद्य भक्षण यह सब सम्मत और सब इच्छितोंका देनेवाला है ॥ ३८ ॥ परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति मायाविशिष्ट मूलरूपिणीका भजन करो हे वत्से ! अपने स्वामीको ग्रहण कर अपने मंदिरमें सुखसे निवास करो ॥ ३९ ॥ यह मैंने तुमसे मनुष्योंका मांगलिक कर्मविपाक वर्णन

पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः ॥ निरूपितं सारभूतं देवीपादांबुजार्चनम् ॥ ३६ ॥ तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तत्स्तोत्रस्मरणं चैवं वंदनं जपमेव च ॥ ३७ ॥ तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च ॥ सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥ १३८ ॥ भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम् ॥ गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मंदिरे ॥ ३९ ॥ अयं ते कथितः कर्मविपाको मंगलो नृणाम् ॥ सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा० नवमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः ॥ साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम् ॥ श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥ २ ॥ दानवानां च सिद्धानां तपसां च परं पदम् ॥ योगानां चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभोः ॥ ३ ॥ मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च ॥ श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ ४ ॥

किया यह सबके ईप्सित सर्व सम्मत और तत्त्वज्ञानका देनेवाला है ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीनारायण बोले यमराजके मुखसे सावित्री शक्तिका कीर्तन सुनकर नेत्रमें जल भरनेसे पुलकित हो यमराजसे बोली ॥१॥ सावित्री बोली हे धर्म ! शक्तिका उत्कीर्तन सब धर्मोंका कारण सुनने और कहनेवालोंकी जरा मृत्यु हरता है ॥ २ ॥ दानव सिद्ध तपस्वियोंको परमपद दायक है,योग और वेदोंका कीर्तन हे विभो!सबको मंगल करनेवाला है ॥ ३ ॥ मुक्ति अमरत्व और सब सिद्धियें भी शक्तिके सेव

ककी सोलहवीं कला भी नहीं है॥४॥हे वेद विदांवर!किस प्रकार उनका भजन कियाजाय सो कहो मैंने मनुष्योंका शुभ कर्मविपाक तो सुना॥५॥ अशुभ कर्मोंका विपाक भी आप हमसे कहिये हे ब्रह्मन् ! ऐसा कहकर वह सती नम्र कंधाकर ॥६॥ वेदोक्त स्तवसे धर्मराजको प्रसन्न करने लगी सावित्री बोली पहले पुष्करमें सूर्यदेवने तपसे धर्मकी आराधनाकर ॥७॥ धर्मराज नामक पुत्रको प्राप्त किया जिस सर्वसाक्षीकी सब भूतोंमें समानता है उस धर्मराजको प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ इससे जिनका नाम शमन है इस कारण उसको प्रणाम करती हूं जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणधारियोंका

भजामि केन विधिना वद वेदविदां वर ॥ शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम् ॥ ५ कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ ६ ॥ तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ॥ सावित्र्युवाच ॥ तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा ॥ ७ ॥ धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥ समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः ॥ ८ ॥ अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥ येनांतश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम् ॥ ९ ॥ कामानुरूपं कालेन तं कृतांतं नमाम्यहम् ॥ बिभर्ति दंडं दंडाय पापिनां शुद्धिहेतवे ॥ १० ॥ नमामि तं दंडधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम् ॥ विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च संततम् ॥ ११ ॥ अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं च प्रणमाम्यहम् ॥ तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी संजितेंद्रियः ॥ १२ ॥ जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥ स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत् ॥ १३ ॥ पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम् ॥ यज्जन्म ब्रह्मणोऽंशेन ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ १४ ॥

अंत किया है ॥ ९ ॥ जो समयपर कामानुरूप हरण करता है उसको मैं प्रणाम करती हूं जो पापियोंकी शुद्धिके हेतु दंड धारण करते हैं ॥ १० ॥ उन सब जीवोंके शास्ता दंड धरको प्रणाम करती हूं जो निरंतर सब विश्वका कलन करता है ॥ ११ ॥ जो अतीवदुर्निवार है उस कालको प्रणाम करती हूं जो तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ संयमी जितेन्द्रिय हैं ॥ १२ ॥ जीवोंके कर्म फलदाता यमको प्रणाम करती हूं जो स्वात्माराम सर्वज्ञ पुण्य कर्म करनेवालोंके मित्र हैं ॥ १३ ॥ तथा पापियोंके क्लेश देनेवाले पुण्यके मित्रको मैं प्रणाम करती

हूं. जिनका जन्म ब्रह्मके अंशसे तेजसे प्रज्वलित है ॥ १४ ॥ जो परब्रह्मका ध्यान करनेवाले हैं उन ईशको मैं प्रणाम करती हूं, हे मुने ! ऐसा कह सावित्रीने यमको प्रणाम किया ॥ १५ ॥ तब यमने उनको शक्तिका भजन और कर्मविपाक वर्णन किया जो प्रभात उठकर नित्य इस आष्टकको पढते हैं ॥ १६ ॥ उनको यमराजका भय नहीं होता वह सब पापोंसे छूट जाते हैं महापापी भी यदि नित्य भक्तिसे पढे तो ॥ १७ ॥ निश्चय उसको यमराज कायव्यूहसे शुद्ध कर देते हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषा

यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने ॥ १५ ॥ यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाकमुवाच ह ॥ इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ १६ ॥ यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥१७॥ यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम्॥१८॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्ध एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मायाबीजं महामंत्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम् ॥ कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः ॥ १ ॥ धर्मराज उवाच ॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः ॥ कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय ॥ २ ॥ नानापुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि ॥ नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः ॥ ३ ॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः ॥ कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः ॥ ४ ॥ नरकाणां च कुण्डानि संति नानाविधानि च ॥ नाना शास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च ॥ ५ ॥

टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण बोले विधिपूर्वक मायाबीज महामंत्रको देकर अशुभ कर्मके विपाकको यमराज कहने लगे ॥ १ ॥ धर्मराज बोले शुभकर्मके विपाकसे यह मनुष्य नरकको नहीं जाता है अब अशुभ कर्मका विपाक कहता हूं सुनो ॥ २ ॥ हे भामिनि ! अनेक पुराण और नामके भेद तथा अनेक प्रकारके कर्मोंसे यह जीव विविध प्रकारके स्वर्गमें जाता है ॥ ३ ॥ शुभ कर्मके विपाकसे नरकको नहीं जाता है कुकर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके नरकमें जाता है ॥ ४ ॥ नरकके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं वह अनेक शास्त्रके

प्रमाण और कर्म भेदसे ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंके क्लेश देनेवाले गर्त दुःखियोंको क्लेश देनेको विस्तृत हुए हैं भयंकर घोर और बंडे कुत्सित हैं ॥ ६ ॥ इसी प्रकार ८६ कुंड हैं वेदप्रसिद्ध उनके नाम सुनो ॥ ७ ॥ वह्निकुंड, तप्तकुंड, भयानक क्षारकुंड, विष्ठाकुंड, मूत्रकुंड, श्लेष्माकुंड, बडा दुःसह ॥ ८ ॥ गरकुंठ दूषिकुंड, वसाकुंड, शुक्रकुंड, रुधिरकुंड, कुत्सित अश्रुकुंड ॥ ९ ॥ शरीरके मलोंकाकुंड, कर्णविट्कुंड, मज्जाकुंड, मांस कुंड, दुस्तर नक्रकुंड ॥ १० ॥ लोमकुंड, केशकुंड, दुस्तर अस्तिकुंड ताम्रकुंड, लोहकुंड, तप्तकुंड बड़ाक्लेश देनेवाला है ॥ ११ ॥ चर्मकुंड तप्त

विस्तृतानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम् ॥ भयंकराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥ ६ ॥ षडशीति च कुंडानि एवमन्यानि संति च ॥ निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥ ७ ॥ वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम् ॥ विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥ ८ ॥ गरकुण्डं दूषिकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च ॥ शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम् ॥ ९ ॥ कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुंडमेव च ॥ मज्जाकुंडं मांसकुण्डं नक्रकुण्डं च दुस्तरम् ॥ १० ॥ लोमकुंडं केश कुण्डमस्थिकुंडं च दुस्तरम् ॥ ताम्रकुण्डं लोहकुंडं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥ ११ ॥ चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम् ॥ ॥ तीक्ष्ण कण्टककुंडं च विषोदं विषकुण्डकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम् ॥ कृमिकुण्डं पूयकूण्डं सर्प-कुण्डं दुरंत कम् ॥ १३ ॥ मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् ॥ कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते ॥ १४ ॥ शरकुण्डं शूलकुंडं खड्गकुंडं च भीषणम् ॥ गोलकुंडं नक्रकुण्डं काककुंडं शुचास्पदम् ॥ १५ ॥ मंथानकुंडं बीजकुंडं वज्रकुण्डं च च दुःसहम् ॥ तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम् ॥ १६ ॥

सुराकुंड; तीक्ष्णकंटककुंड, विषोदककुंड, विषकुंड, ॥ १२ ॥ तप्ततैलकुंड, दुर्वह अनेक प्रकारके तुंडकुंड, कृमिकुंड, पूयकुंड दुरन्त सर्पकुंड ॥ १३ ॥ मण्डककुंड, दंशकुंड, भीष्मकुंड गरलकुंड, वज्रदंष्ट्रकुंड वृश्चिककुंड ॥ १४ ॥ शरकुंड, शूलकुंड, खड्ग कुंड, गोलकुंड, नक्रकुंड, काककुंड, शोकका स्थान ॥ १५ ॥ मंथान जीवोंकेकुंड, बीज नामक जीवोंके कुंड, दुःसह वज्रकुंड, तप्त पाषाणकुंड, तीक्ष्ण पाषाणकुंड ॥ १६ ॥

लालाकुंड, मसीकुंड, चूर्णकुंड, चक्रकुंड, वक्रकुंड, बड़ा विकट कूर्मकुंड ॥ १७ ॥ ज्वालाकुंड भस्मकुंड, दग्धकुंड, तप्तसूची असिपत्र क्षुरधार, सूचीमुख ॥ १८ ॥ गोकामुख नक्रकुंड, गजदंश, गोमुख, कुंभीपाक, कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकंतुक, ॥१९॥ पांसुभोज, पाशोंसे वेष्टित, शूलप्रोत, प्रकंपन, उल्कामुख, अंधकूप, वेधन, ताडन ॥ २० ॥ जालरंध्र, देहचूर्ण, दलन, शोषण, कशाघात, शूर्पज्वालामुख, धूमांध, नागवेष्टन ॥ २१ ॥ हे सावित्रि ! यह सब कुण्ड पापियोंको क्लेश देनेवाले हैं लक्षों किंकर गण इनकी रक्षा करते हैं ॥ २२ ॥ दण्ड पाश हाथमें लिये

लालाकुंडं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं तथैव च ॥ चक्रकुण्डं वक्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम् ॥ १७ ॥ ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं दग्धकुण्डं शुचिस्मिते ॥ तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरधारं सूचीमुखम् ॥ १८ ॥ गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम् ॥ कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमिकंतुकम् ॥ १९ ॥ पांसुभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकंपनम् ॥ उल्कामुखमंधकूपं वेधनं ताडनं तथा ॥ २० ॥ जालरंध्रं देहचूर्णं दलनं शोषणं कषम् ॥ शूर्पं ज्वालामुखं चैव धूमांधं नागवेष्टनम् ॥ २१ ॥ कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च ॥ नियुतैः किंनरगणै रक्षितानि च संततम् ॥ २२ ॥ दंडहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयंकरैः॥शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः ॥२३॥ तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्च न सर्वतः ॥ तेजस्विभिश्च निःशंकैस्ताम्रपिंगललोचनैः ॥ २४ ॥ योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः ॥ आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः ॥ २५ ॥ स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः ॥ अदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धैर्योगिभिरेव च ॥ २६ ॥ स्वधर्मनिरतैर्वाऽपि विततैर्वा स्वतंत्रकैः ॥ वलवद्भिश्च निःशंकैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥ २७ ॥

मदमत्त भयंकर शक्ति गदा दारुण असि हाथमें लिये ॥ २३ ॥ तमयुक्त दयाहीन अनिवार्य तेजस्वी निश्शंक ताम्रपिंगल लोचनवाले ॥ २४ ॥ कोई योगयुक्त कोई सिद्धियुक्त नानारूपधारी भट हैं यह जिनकी मृत्यु निकट है उन पापियोंको दीखनेवाले हैं ॥ २५ ॥ और जो अपने कर्ममें निरत सब शाक्त सौर गाणपत्य सिद्ध योगी पुण्यात्मा हैं उनको नहीं दीखनेवाले हैं ॥२६॥ अपने धर्ममें श्रेष्ठ ज्ञानवाले वा स्वतंत्र

मानसिक बलवान् निश्शंक वैष्णव ज्ञानियोंको देव भावापन्न होनेसे दूत स्वप्नमें दीखें तो दीखें नहीं तो उनको नहीं दीखते उन देवरूप पुरुषोंसे यमदूत अदृश्य हैं हे साध्वी ! यह तुमसे कुंडसंख्या निरूपणकी जिनका निवास जिस कुण्डमें है वह समझो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २७ ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले हरिसेवामें निरत शुद्ध, योगसिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी इनमें कोई नरकको नहीं जाता ॥ १ ॥ जो बलके विद्याधनके घमंडसे कटुवचन बोलकर अपने बंधु आदिको दग्ध

एतत्ते कथितं साध्वि कुडसंख्यानिरूपणम् ॥ येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥धर्मराज उवाच ॥ हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धो व्रती सति ॥ तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम् ॥ १ ॥ कटुवाचा बांधवांश्च बललेपेन यो नरः ॥ दग्धान्करोति बलवान्वह्नि कुंडं प्रयाति सः ॥ २ ॥ स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने ॥ पशुयोनिवाप्नोति रौद्रदग्धां त्रिजन्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम् ॥ न भोजयति यो मूढस्तप्तकुंडं प्रयाति सः ॥४॥ तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च दुःखदे ॥ तप्तस्थले वह्नितल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु ॥ ५ ॥ रविवारे च संक्रांत्याममायां श्राद्धवासरे ॥ वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः ॥ ६ ॥ स याति क्षारकुंडं च सूत्रमानाब्दमेव च ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥ ७ ॥

करता है वह वह्निकुंडमें जाता है ॥ २ ॥ वह अपने शरीरके लोमप्रमाण वर्षतक हुताशनमें स्थित हो पीछे छायारहित वनमें पशुयोनिको तीन जन्मतक प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई ब्राह्मण अपने यहां भूखा प्यासा आगया हो उसको जो मूढ भोजन नहीं कराता वह तप्त कुण्डको जाता है ॥ ४ ॥ वहां उसके लोमप्रमाण वर्षतक तप्तकुण्डमें निवास कर फिर कहीं तप्तस्थल वह्नितल्पमें सातजन्म पक्षी होता है ॥ ५ ॥ रविवार संक्रांति अमावस श्राद्धदिवसमें जो वस्त्रोंमें खार लगाता है ॥ ६ ॥ वह उसके सूत्र प्रमाण वर्षतक

क्षार कुण्डमें जाता है और सात जन्मतक वह भारतमें धोबीकी योनिको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्याधम मूल प्रकृतिकी निंदा करे है तथा वेद शास्त्र पुराणकी निंदा करते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी निंदा करते हैं तथा गौरी वाणी आदि देवताओंकी निंदा करते हैं ॥ ९ ॥ वे उस भयानक कुण्डमें सब जाते हैं इससे अधिक दुःखदायक और कोई कुण्ड नहीं है ॥१०॥ उसमें अनेक कल्प निवास कर फिर यह प्राणी सर्पयोनिमें जाता है देवी निंदाके अपराधका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ११ ॥ जो स्वयं वा

मूलप्रकृति निंदां यः कुरुते मानवाधमः । वेदनिंदां शास्त्रनिंदां पुराणानां तथैव च ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा निंदापरो जनः॥ गौरीवाण्यादि देवीनां तथानिंदापरो जनः॥९॥ते सर्वे निरये यांति तस्मिन्कुन्कुंडे भयानके॥ नातःपरतरं कुंडं दुःखदं तु भविष्यति ॥१०॥ तत्र स्थित्वाऽनेककल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः ॥ देवीनिंदापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥११॥ स्वदत्तां परदत्तां वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुंडं च प्रयाति सः ॥ १२ ॥ तावंत्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि ॥१३॥ परकीयतडागे च तडागं यः करोति च ॥ उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ १४ ॥ तद्रेणु–मानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत् ॥ १५ ॥ एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ १६ ॥

दूसरेकी दी हुई सुरविप्रकी वृत्तिको हरण करते हैं वह साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाके कुण्डमें गमन करते हैं ॥ १२ ॥ और साठ सहस्र वर्षतक वहां विष्ठा भोजन करता है फिर इतनेही समयतक भूमिमें आनकर विष्ठाका कृमि होता है ॥ १३ ॥ जो दूसरेके सरोवरमें उनकी आज्ञाके विना स्वयं तडाग करते हैं तथा मूत्र करते हैं तो वे मूत्रकुण्डको गमन करते हैं ॥ १४ ॥ उसके रेणुमान वर्षतक मूत्रपान करता वहां स्थित रहता है फिर वहांसे आनकर पूर्ण सौ वर्ष भारतमें वृष होता है ॥ १५ ॥ जो इकलाही मीठा खाता

है वह श्लेष्म कुण्डमें गमन करता है और सौ वर्षतक वहां उसको भोजन करता स्थित रहता है ॥ १६ ॥ फिर भारतमें आकर सौ वर्षतक प्रेत होता है यहां भी वह श्लेष्मा मूत्र पूय भोजन करने उपरान्त शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ माता, पिता, गुरु, भार्या, सुत, कन्या, तथा अनाथोंका जो पालन नहीं करता, वह विषकुण्डमें गमन करता है ॥ १८ ॥ और सौवर्षतक वहां उसे यही भोजन करनेको प्राप्त होता है फिर भूतयोनिको प्राप्त हो सौ वर्षमें पवित्र होता है ॥१९॥ जो मनुष्य अतिथिको देखकर कुटिलनेत्र करते हैं उस पापीका जल पितृदेव ग्रहण नहीं करते ॥ २० ॥ और भी जो ब्रह्महत्यादि पाप है वह यही प्राप्त होकर अन्तमें दूषिकाकुण्डको गमन करता

ततः पूर्णशताब्दं च स प्रेतो भारते भवेत्॥श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुंक्ते ततः शुचिः॥१७॥पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्॥ यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुंडं प्रयाति सः॥१८॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१९॥दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुःकरोति यो हि मानवः॥पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः॥२०॥यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥इहैव लभते चांते दूषिकाकुंडमाव्रजेत्॥२१॥पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥२२॥ दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि॥स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२३॥ कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥ ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥ २४ ॥ पुमांसं कामिनी वाऽपि कामिनीं वा पुमानथ ॥ यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥२५॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः ॥२६॥ संताडय च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत् ॥ स च तिष्ठत्यसृक्कुंडे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ २७ ॥

है ॥२१॥ वहां यही भोजन करता सौ वर्षतक निवास करता है फिर सौवर्षतक भूतयोनिको प्राप्त होकर सौवर्षमें पवित्र होता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणको देनेको कहा द्रव्य यदि औरको दिया जायतो वह वसाकुण्डमें जाय वहां सौवर्षतक वही भोजन करते हैं ॥ २३ ॥ वह सात जन्ममें गिरगट होता है फिर यहां आकर महादरिद्री अल्पायु होता है ॥२४॥ पुरुषको कामिनी वा कामिनीको पुरुष जो अपना वीर्यपान कराते हैं वह वीर्यके कुंडमें जाते हैं ॥ २५ ॥ और सौ वर्षतक यही भोजन करते वहां रहते हैं फिर सौ जन्म कृमिकी पाकर शुचि होताहै ॥ २६ ॥ जो गुरु या

ब्राह्मणको ताडनकर उनका रक्त भूमिपर गिराता है वह सौ वर्ष रक्तके कुंडमें स्थित हो उसीको भोजन करता है ॥ २७ ॥ फिर भारतमें आय सात जन्मतक व्याघ्र होता है फिर क्रमसे शुद्धिको प्राप्त होता है ॥२८॥ जो कोई अश्रुत्यागकर गद्गद हो गाते हुए भक्त वा श्रीकृष्णके गुण संगीत पर हास्य करता है ॥ २९ ॥ वह सौवर्षतक अश्रुकुण्डमें उन्हींको भोजन करता स्थित रहता है फिर तीन जन्म चांडाल होकर शुचि होता है ॥३०॥ जो मनुष्य अपने सुहृदोंमें नित्य शठता करता है वह सौ वर्षतक शरीरके मलोंके कुण्डमें निवास करता है ॥ ३१ ॥ फिर वह तीन

ततो लभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते ॥ ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह ॥ २८ ॥ योऽश्रु तत्याज गायंतं भक्तं दृष्ट्वा सगद्गदम् ॥ श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः ॥ २९ ॥ स वसेदश्रुकुंडे च तद्भोजी शतवर्षकम् ॥ ततो भवेच्च चंडालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥३०॥ करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः ॥ कुंडं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम् ॥३१॥ ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि ॥ त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥३२॥ बधिरं यो हसत्येव निंदत्येवाभिमानतः ॥ स वसेत्कर्णविट्कुंडे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥३३॥ ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥ सप्तजन्मन्यंगहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३४॥ लोभात्स्वभरणार्थाय जीविनं हंति यो नरः ॥ मज्जाकुंडे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ ततोऽभवच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मानि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ ३६ ॥

जन्म गधा होता है तीन जन्म शृगाल होकर शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ जो बहरेके ऊपर हँसकर अभिमानसे उसकी निंदा करता है वह सौ वर्षतक कर्णविट्में निवास कर उसीको भोगता है ॥ ३३ ॥ फिर वह बहरा होकर सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर सात जन्म अंगहीन होकर शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य लोभसे अपनी उदरपूर्तिके निमित्त जीवघात करते हैं वह मज्जाकुण्डमें निवास कर सौ वर्ष उसीको खाते हैं ॥३५॥ फिर खरगोश और सात जन्म मछली होता है तीन जन्म वराह और सात जन्म कुक्कुट होता है ॥ ३६ ॥

फिर कर्मसे मृगादि होकर फिर शुद्ध होता है जो मनुष्य अपनी कन्याका पालनकर बेचता है॥३७॥वह महामूढ अर्थके लोभसे मांसकुंडको गमन करता है और कन्याके लोकप्रमाण वर्ष वहां रहकर वह खाता हुआ वहां निवास करता है ॥ ३८ ॥ यमकिंकर उसपर महादंडका प्रहार करते हैं मांस भार शिरपर कराकर जिह्वासे रक्त चटवाते हैं ॥ ३९ ॥ फिर वह पापी भारतमें आय विष्ठा कीट तथा अन्य कीटादिमें जन्म लेता है साठसहस्र वर्ष यह योनि भोगकर सातजन्मतक व्याध होता है ॥ ४० ॥ तीन जन्ममें वराह सातजन्ममें कुक्कुट और सातजन्म

एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति च यो नरः ॥ ३७ ॥ अर्थलोभान्महामूढो मांसकुंडं प्रयाति सः ॥ कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ३८ ॥ तस्य दंडप्रहारं च कुर्वंति यमकिंकराः ॥ मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा ॥३९॥ ततो हि भारते पापी कन्याविट्कृमिगो भवेत् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु ॥४०॥ त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ मंडूको हि जलौकाश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ४१ ॥ सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संगमे ॥४२॥ करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥ स च तिष्ठति कुंडं च नखादीनां च सुंदरि ॥ ४३ ॥ तद्दैवदिनमानाब्दं तद्भोजी दंडताडितः ॥ सकेशं पार्थिवं लिंगं यो वाऽर्चयति भारते ॥ ४४ ॥ स तिष्ठति केशकुंडे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥ तदंते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः ॥ ४५ ॥

भारतमें मण्डूक और जलौका होता है ॥ ४१ ॥ फिर सातजन्म काक होकर पश्चात् शुद्ध होता है व्रत उपवास और श्राद्धादिके सम गममें ॥ ४२ ॥ जो क्षौर कराता है वह सब कर्ममें अशुचि होता है. हे सुंदरि ! वह नखादिके कुंडमें पडता है ॥ ४३ ॥ और देवताओंके एकवर्ष पर्यन्त वहीं भोजन करता वहां स्थित रहता है जो भारतमें सकेश पार्थिवलिंगका पूजन करता है ॥ ४४ ॥ वह मृद्रेणुवर्ष परिमाण वर्ष

तक केशकुंडमें निवास करता है फिर हरके कोपसे यवनयोनिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सौवर्षमें शुद्धिको प्राप्त होकर राक्षस होता है जो गयामें पितरोंके निमित्त पिंड नहीं देता है ॥४६॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक महाभयंकर अस्थिकुण्डमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त होकर सातजन्ममें कुखंजा होता है ॥ ४७ ॥ फिर महा दरिद्री हो देहसे शुद्ध हो जाता है। जो महामूढ गर्भवती अपनी कामिनीकी मैथुन सेवा करता है ॥ ४८ ॥ वह प्रतप्त ताम्रकुंडमें सौवर्ष निवास करता है, जो अवीरा और ऋतुस्नाताका अन्न खाता है ॥ ४९ ॥ वह सात

शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद् ध्रुवम् ॥ पितॄणां यो विष्णुपदे पिंडं नैव ददाति च ॥ ४६ ॥ स च तिष्ठत्यस्थि कुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्वणे ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य कुखंजः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः ॥ यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम् ॥ ४८ ॥ प्रतप्ते ताम्रकुंडे च शतवर्षं स तिष्ठति ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते ऋतुस्नातान्नमेव च ॥ ४९ ॥ लोहकुंडे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु ॥ ५० ॥ महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ यो हि चर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् ॥५१॥ शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स तिष्ठति ॥ यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुंक्ते शूद्रान्नमेव च ॥ ५२ ॥ स च तप्तसुराकुंडे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥ ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु ॥ ५३ ॥ शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ वाग्दुष्टः कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णकंटककुंडे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ताडितो यमदूतेन दण्डेन च चतुर्गुणम् ॥ ५५ ॥

जन्म तप्तलोह कुंडमें निवास करता है वह रजकयोनिमें और सातजन्म काकयोनिमें निवास करता है ॥ ५० ॥ फिर वह मनुष्य महाव्रणी दरिद्री और शुद्ध होता है। जो चर्मके हाथसे देवद्रव्यको स्पर्श करता है ॥ ५१ ॥ वह सौवर्षतक चर्मके कुंडमें निवास करता है जो शूद्रकी आज्ञासे शूद्रका अन्न खाता है ॥ ५२ ॥ वह द्विज सुराकुण्डमें सौवर्ष निवास करता है फिर सातजन्म तक वह ब्राह्मण शूद्रयाजी होता है ॥ ५३ ॥ फिर शूद्रके श्राद्धका अन्न भोगकर पश्चात् शुद्ध होता है। जो वाग्दुष्ट कटुवाणीसे सदा स्वामीको त्यागन करता है ॥५४॥ वह तीक्ष्ण

कंटकके कुंडमें उसीको खाता सदा निवास करता है और यमदूत अपने दंडसे उसे चौगुना दंडदेते हैं ॥ ५५ ॥ फिर सातजन्ममें उच्चैःश्रवा होकर पवित्र होता है जो मनुष्य निर्दयी होकर विषसे किसीका जीवन हरते हैं ॥५६॥ वह सहस्रवर्ष उसीको खाते सहस्रवर्षतक रहते हैं फिर मनुष्यघाती और व्रणी सातजन्मतक होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सातजन्ममें कुष्ठी होकर शुद्ध होते हैं जो वृषवाहक दंडसे वृष और गौकी ताडना करता है ॥ ५८ ॥ अथवा भृत्यद्वारा ताडन करता वा स्वतंत्र ताडन करता है वह चारयुगतक तप्त तेलके कुंडमें निवास करता है॥५९॥

तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥ विषेण जीवनं हंति निर्दयो यो हि मानवः॥ ५६ ॥ विषकुंडे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति ॥ ततोभवेन्नृघाती च व्रणी च शतजन्मसु ॥ ५७ ॥ सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ दण्डेन ताडयेद्गां हि वृषं च वृषवाहकः ॥५८॥ भृत्यद्वारा स्वतंत्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ प्रतप्ते तैलकुंडेऽग्नौ तिष्ठति स्म चतुर्युगम् ॥५९॥ गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम्॥कुंतेन हंति यो जीवं वह्निलोहेन हेलया॥६०॥कुंतकुंडे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः॥६१॥जन्मनेकेन क्लेशेन ततःशुद्धो भवेन्नरः॥यो भुंक्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः ॥ ६२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुंडं प्रयाति सः॥ स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ६३ ॥ ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार गौओंके लोमप्रमाण वर्षतक वहां रहकर फिर वृष होता है जो कुन्त बरछी वा लोहको लालकर खेलसेही जीवको मारते हैं ॥६०॥ वह दशसहस्र वर्षतक कुन्तके कुंडमें निवास करते हैं फिर सुयोनिको प्राप्त होकर उदरमें व्याधिवाले होते हैं ॥ ६१ ॥ एकजन्म क्लेश पाकर फिर शुद्ध होते हैं जो द्विजाधम मांसके लोभसे वृथा मांस खाता है ॥६२॥ हरिको विना भोगलगाये नैवेद्य भोग लगाता है वह कृमिकुंडमें गमन करता है और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर तीनजन्मतक म्लेच्छजातिमें रहकर ब्राह्मण होता

है जो ब्राह्मण शूद्रयाजी और शूद्रका अन्न खानेवाला है ॥ ६४ ॥ जो शूद्रोंके शवदाह करता है वह पूयकुंडमें निवास करता है हे सुव्रते! वह लोमप्रमाण वर्षोंतक यमदंडसे ॥ ६५ ॥ यमदूतोंद्वारा ताडित होकर वहां निवास करता है फिर भारतमें आय सातजन्म तक शूद्र होता है ॥ ६६ ॥ महारोगी दरिद्री बधिर मूक होता है वह कृष्ण सर्प वा जिसके मस्तकमें पद्माकार चिह्न होता है उस सर्पको जो मनुष्य मारता है ॥ ६७ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक सर्पकुंडमें गमन करता है वह सर्पोंसे भक्षित हो यमदूतोंसे ताडित होता है ॥ ६८ ॥ और सर्पोंकी विष्ठा

शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद् ध्रुवम् ॥ यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदंडेन सुव्रते ॥ ६५ ॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु ॥ ६६ ॥ महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च ॥ कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हंति यो नरः ॥ ६७ ॥ स्वलोममानवर्षं च सर्पकुंडं प्रयाति सः ॥ सर्पेण भक्षितः सोऽथ यमदूतेन ताडितः ॥ ६८ ॥ वसेच्च सर्पविविड्भोजी ततः सर्पो भवेद् ध्रुवम् ॥ ततो भवेन्मानवश्च स्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः ॥ ६९ ॥ महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षिताद् ध्रुवम् ॥ विधिप्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजंतूंश्च हंति यः ॥७०॥ स दंशमशयोः कुण्डे जंतुमानाब्दमेव च ॥ दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान् ॥ ७१ ॥ हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः ॥ ततो भवेत्क्षुद्रजंतुर्जातिश्च यावनी भवेत् ॥ ७२ ॥ ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः ॥ यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुमक्षिकाः ॥ ७३ ॥

खाता हुआ निवास करता है पीछे सर्प ही होता है फिर वह मनुष्य स्वल्पायु दादोंसे संयुक्त होता है ॥ ६९ ॥ फिर सर्पसे भक्षित होनेसे महाक्लेशसे उसकी मृत्यु होती है और विधिकी दी हुई जीविकासे जो क्षुद्रजंतुओंको मारता है ॥ ७० ॥ वह जन्तुप्रमाण वर्षतक दंश मशकके कुंडमें निवास करता है और रातदिन यही जीव उसको भक्षण करते हैं जिससे वह अनाहार होकर शब्द करता है ॥ ७१ ॥ हाथपर विद्धहुए यमदूतोंसे ताडित हुआ रहता है फिर यहां आकर क्षुद्रजन्तु होकर पीछे यावनी जाति होता है ॥ ७२ ॥ फिर अंग

हीन मनुष्य होकर पीछे शुद्ध होता है जो मूढ मधुमाखीको मारकर मधु खाता है ॥७३॥ वह विषके कुंडमें जीवोंके प्रमाणवर्षतक निवास करता है और गरलसे दग्धहो जीवोंसे दग्ध हो मेरे दूतोंसे ताडित होता है॥७४॥ फिर मक्षिक होकर मनुष्य शुद्ध हो जाता है जो अदंडको दंड करता और ब्राह्मणको दंडदेता है ॥ ७५ ॥ वह वज्रदंष्टकीटोंके कुंडमें अवश्य गमन करता है और वह उसके लोमप्रमाण वर्षतक वह रातदिन रहता है ॥ ७६ ॥ बडा शब्द करता है जीव भक्षण करते हैं मेरे दूत उसको ताडना करते हैं. हे भद्रे ! वहां वह क्षण क्षणमें

स एव गारले कुण्डे जीवमानाब्दकं वसेत् ॥ भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः ॥ ७४ ॥ ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ दंडं करोत्यदंडच्ये च विप्रे दंडं करोति च ॥७५॥ स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम् ॥ स तल्लोमप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् ॥७६॥ शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु यमदूतेन ताडितः ॥ करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणेक्षणे ॥ ७७ ॥ पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ७८ ॥ अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः ॥ वृश्चिकानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ततो नरश्चांगहीनो व्याधिशुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत् ॥ संध्याहीनश्च यो विप्रो हरिभक्तिविहीनकः ॥ ८१ ॥ स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु ॥ विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ८२ ॥ कारागारे सांधकारे प्रणिहंति प्रजाश्च यः ॥ प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः ॥ ८३ ॥

हाहाकार करता रोता है ॥७७॥ फिर सातजन्म सूकर होकर तीन जन्म काक होकर शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥ जो मूढ अर्थलोभसे प्रजाको दंड देता है वह उनके लोमप्रमाण वर्षतक विच्छुओंके कुंडमें निवासकरता है ॥ ७९ ॥ फिर भारतमें सातजन्म वृश्चिक होकर फिर अंगहीन व्याधियुक्त मानव होता है॥८०॥ब्राह्मण शस्त्रधारी जो दूसरोंका घातक होताहै जो ब्राह्मण संध्याहीन हरिभक्तिरहित है॥८१॥वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बाणोंके कुंडमें पडता है शरादिसे विद्ध होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥८२॥ जो अंधकारयुक्त कारागारमें प्राणी और प्रजाको मारता है वह

अपने दोपसे प्रमत्त हुआ गोलकुंडमें जाता है ॥ ८३ ॥ वह तत्ते जलकी कीच अंधकारसे भयंकर तीक्ष्ण डाढोंवाले जीवोंसे युक्त गोलकुंड है ॥ ८४ ॥ वहां कीटसे विद्ध हुआ प्रजाके लोमप्रमाण वर्पतक निवास करता है फिर प्रजाका मृत्यु होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८५ ॥ जो सरोवरसे उडते हुए नक्रादिको मारता है वह नक्रकंटकप्रमाण वर्पतक नक्रकुंडमें जाता है॥८६॥ फिर नक्रादिमेंही अवश्य उसका जन्म होता है फिर वारंवार दंडको प्राप्त हो शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्रमें कामी होकर कामनासे परस्त्रियोंके हृदय, स्तन, मुख, नितम्ब देखता

स पंक्ततप्ततोयाक्तं सांधकारं भयंकरम् ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुंडकम् ॥ ८४ ॥ कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाव्द मेव च ॥ ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात् ॥ ८५ ॥ सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हंति यो नरः ॥ नक्रकंटकमानाव्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ ८६ ॥ ततो नक्रादिजातीयो भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम् ॥ ततः सद्यो विशुद्धो हि दंडेनैव पुनः पुनः ॥ ८७ ॥ वक्षःश्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः ॥ कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ८८ ॥ स वसेत्काकतुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः ॥ ततः स्वलोममानाव्दं भवेदन्धस्त्रिजन्मनि ॥ ८९ ॥ स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः ॥ स च मंथानकुंडे वै स्वलोमाव्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९० ॥ ताडितो यमदूतेन मंथानैश्छन्नलोचनः ॥ तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चांधस्त्रि जन्मनि ॥ ९१ ॥ सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी ॥ भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः ॥ ९२ ॥ यो भारते ताम्र चौरो लोहचोरश्च सुंदरि ॥ स च स्वलोममानाव्दं वीजकुंडं प्रयाति सः ॥ ९३ ॥

है ॥८८॥ वह काककुंडमें वसता है वहां कौए उसके नेत्र फोडते हैं फिर वह अपने लोमप्रमाण वर्प वहां रहकर तीन जन्ममें वह्नि आदिसे दग्ध होता है ॥ ८९ ॥ जो भारतमें देवब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्पतक मंथानकुंडमें पडता है ॥९०॥ यमदूतोंसे ताडित हुआ मंथानसे छन्न लोचन हो वहां उसको ही विटभोजन करनेको मिलती है, फिर तीन जन्म अंधा होता है ॥ ९१ ॥ फिर वह महाक्रूर पातकी सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर वह भारतमें स्वर्णकार और स्वर्णवणिक् होता है ॥ ९२ ॥ हे सुन्दरी ! जो भारतमें तांबा और लोहा चुराता है वह

अपने लोमप्रमाण वर्षतक बीजकुंडमें जाता है ॥ ९३ ॥ वहां वह बीजरूप विष्ठाभोजन करनेवाला बीजसेही छन्ननेत्र हुआ यमदूतोंसे ताडित हो पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९४ ॥ फिर भारतमें देवचोर और देवद्रव्यको हरनेवाला दुस्तर वज्रकुंडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है ॥ ९५ ॥ वहां वह देहसे वज्रोंसे दग्ध होनेपर भोजन न मिलनेसेही 'हा हा' शब्द करता है यमदूतोंसे ताडित हो पीछे शुद्ध होता है ॥९६॥ जो चांदी गौओंके पदार्थ तथा सुरविप्रके पदार्थोंका चोर है वह तप्त पाषाणकुंडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ९७ ॥ तीन

तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः ॥ ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९४ ॥ भारते देवचौरश्च देवद्रव्यापहारकः ॥ स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥९५॥ देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत् ॥ ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९६ ॥ रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः ॥ तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९७ ॥ त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि ॥ जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः ॥ ९८ ॥ ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत् ॥ सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९९॥ रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः ॥ तीक्ष्णपाषाणकुंडे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः ॥ १०० ॥ स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु ॥ ततोऽधिकांगजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुक्ते पुंश्चलीजीव्यजीविनः ॥ स्वलोममानवर्षं च लालकुण्डे वसेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥

जन्म कूर्म और तीन जन्म कुष्ठी होता है एक जन्ममें श्वेतचिह्नवाला फिर श्वेत पक्षी होता है ॥ ९८ ॥ फिर रक्तविकार और शूलरोग ग्रसित मनुष्य होता है फिर सात जन्म अल्पायु होकर फिर शुद्ध होता है ॥९९॥ जो देव और ब्राह्मणके पीतलकांसेके पात्र हरण करता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक पाषाणकुंडमें जाता है॥१००॥ फिर सातजन्मतक भारतमें अश्वजाति होता है फिर अधिक अंगवाला पश्चात् पादरोगी होता है ॥ १ ॥ जो पुंश्चलीका अन्न खाता और पुंश्चलीके अन्नसे जीता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक लाला (लार) कुंडमें निवास

करता है ॥ २ ॥ वहां यमदूत उसको ताडनकर लारही खवाते हैं इससे वह बडा दुःखी होता है फिर शूलरोगी और पश्चात् क्रमसे शुद्ध होता है ॥३॥ जो ब्राह्मण म्लेच्छोंकी सेवा और लेखे आदि कार्य करता है वह ब्राह्मण मसीकुंडमें पडकर दुःखी होता है और स्वलोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ४ ॥ यमदूत उसे मारते हैं और वह मसी भक्षण करता वहां निवास करता है, फिर तीन जन्मतक कृष्णपशु होता है ॥ ५ ॥ फिर कृष्णवर्ण छाग फिर तीन जन्ममें कृष्णवर्ण फिर तालवृक्ष और पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जो देव ब्राह्मणके

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र दुःखितः ॥ ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः ॥ ३ ॥ म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि ॥ वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुंडे स दुःखभाक् ॥ ४ ॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति ॥५॥ त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिजन्मनि ॥ ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥६॥ धान्यादि शस्यं तांबूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुंडे प्रयाति सः ॥ ७ ॥ शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः ॥ ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि ॥ ८ ॥ ततो भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि ॥ वंशहीनो दरिद्रश्च अल्पायुश्च ततः शुचिः ॥ १०९ ॥ करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः ॥ स वसेच्चक्रकुंडे च शताब्दं दंडताडितः ॥ ११० ॥ ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि ॥ व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥ ११ ॥

धान्यादि श्रेष्ठ ताम्बूल हरण करते हैं तथा जो आसन, शय्या, हरण करते हैं वह चूर्णकुण्डमें जाते हैं ॥ ७ ॥ सौ वर्षतक वहां यमदूतोंसे ताडित होकर वहां निवास करते हैं. फिर वह मेष जाति और तीन जन्मतक कुक्कुट होता है ८ ॥ फिर कास व्याधिसंयुक्त भूमिमें वानर होता है फिर वंशहीन और दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणोंका द्रव्य हरण कर चक्रपूजा वा कुलालादि चक्र करता है वह दंडसे ताडित होकर सौ वर्षतक चक्रकुण्डमें निवास करता है ॥ १० ॥ फिर तीन

जन्मतक मर्त्यलोकमें तेली होता है व्याधियुक्त रोगी वंशहीन होकर पश्चात् शुचि होता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष गोधन और ब्राह्मणोंमें वक्रता करता है वह वक्रकुण्डमें जाकर वहां सौ युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १२॥ फिर वह वक्रांग और हीनांग सातजन्ममें होता है व दरिद्र वंशहीन भार्याहीन होकर फिर शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ फिर गृध्र और तीन जन्ममें शूकर होता है तीन जन्ममें बिडाल और तीन जन्ममें मयूर होता है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कूर्ममांस भक्षण करता है सौ वर्ष कूर्मकुंडमें उसको कूर्म भक्षण करते हैं ॥ १५ ॥ फिर कूर्म

गोधनेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां पुमान् ॥ प्रयाति वक्रकुंडं स स तिष्ठेद्युगशतं सति ॥ १२ ॥ ततो भवेत्स वक्रांगो हीनांगः सप्तजन्मनि ॥ दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥ १३ ॥ ततो भवेद् गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः ॥ त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥१४॥ निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति ॥ कूर्मकुंडे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः ॥१५॥ततो भवेत्कूर्मजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः ॥ त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः शुचिः ॥१६॥ घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ स याति ज्वालाकुंडं च भस्मकुंडं च पातकी ॥ १७ ॥ तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः ॥ सप्त जन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः ॥१८॥ सुगंधि तैलं धात्रीं वा गंधद्रव्यान्यदेव वा ॥ भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ १९ ॥ स वसेद्दग्धकुंडे च भवेद्दग्धो दिवानिशम् ॥ स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गंधिको भवेत् ॥ १२० ॥

जन्म और तीन जन्ममें सूकर होता है तीन जन्मतक बिडाल और मयूर होकर शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ जो देव ब्राह्मणका घी और तेल हरण करता है वह पातकी ज्वालाकुण्ड और भस्मकुण्डमें गमन करता है ॥ १७ ॥ वहां सौ वर्ष रहकर तैलपाचित होता है सात जन्ममें मत्स्य और फिर मूषक होकर पवित्र होता है ॥ १८ ॥ सुगंधि तेल धात्री (आमले) वा दूसरे गन्धद्रव्य जो सुरविप्रकी कोई वस्तु हरण करता है ॥ १९ ॥ वह दग्धकुण्डमें निवासकर दिनरात दग्ध होता है. वह अपने लोम प्रमाण वर्षतक वहाँ निवास करके फिर दुर्गन्धिवाला

होता है ॥ १२० ॥ सात जन्ममें दुर्गन्धिक, तीन जन्मतक मृगनाभि, सात जन्म मंथान और फिर मनुष्य होता है ॥ २१ ॥ जो छल बल वा हिंसासे बलिष्ठ पुरुष दूसरेकी पैतृकभूमि हरण करता है ॥ २२ ॥ वह तप्तसूची कुण्डमें पडकर दिनरात तप्त होता है जैसे तप्त तेलमें जीव निरंतर दग्ध होता है ॥ २३ ॥ परंतु वह भस्म नहीं होता भोगमें देही नष्ट नहीं होता वह पापी सात मन्वन्तरतक वहीं निवास करता है ॥२४॥ और अनाहार होकर 'हा हा' शब्द करता यमदूतोंसे ताडित होता है फिर वह साठ सहस्रवर्ष रहकर विष्ठाका कीट होता है

दुर्गंधिकः सप्तजन्म मृगानाभिस्त्रिजन्मनि ॥ सप्तजन्मसु मंथानस्ततो हि मानवो भवेत् ॥ २१ ॥ बलेनैव च्छलेनैव सारूपेण वा सति ॥ बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥ २२ ॥ स वसेत्तप्तसूचिं च भवेत्तापी दिवानिशम् ॥ तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति संततम् ॥ २३ ॥ भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति ॥ सप्तमन्वंतरं पापी संततस्तत्र तिष्ठति ॥२४॥ शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः॥२५॥ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततःशुचि॥ततः स्वयोनिं संप्राप्य शुभकर्मा चरेत्पुनः ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ यम धर्म उवाच ॥ छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः ॥ नरघाती हंति नरमर्थलोभेन भारते ॥ १ ॥ असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तेषु यो ब्राह्मणान्हंति शतमन्वंतरं वसेत् ॥ २ ॥ छिन्नांगः संवसेत्सोऽपि खड्गधारेण संततम् ॥ अनाहारः शब्द मुच्चैर्यमदूतेन ताडितः ॥ ३ ॥

॥ २५ ॥ फिर भूमिहीन दरिद्री होकर पश्चात् शुचि होता है फिर स्वयोनिको प्राप्त होकर शुभकर्म करता है ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ धर्मराज बोले जो दयाहीन हो खड्गसे जीवोंको मारते हैं और जो लोभसे भारतमें मनुष्योंको मारते हैं ॥ १ ॥ वह चौदह मन्वन्तरतक असिपत्र वनमें निवास करते हैं उनमें जो ब्राह्मणोंको मारता है वह सौ मन्वन्तर निवास करता है ॥ २ ॥ अर्थात् वह खड्गसे छिन्न अंग होकर वहां निवास करता है और यमदूतोंसे ताड़ित हो अनाहार होनेसे हाहाकार करता

है ॥ ३ ॥ सौ जन्म मंथानजीव, सौ जन्म शूकर सात जन्म कुक्कुट और सात जन्म शृगाल होता है ॥ ४ ॥ सात जन्मतक व्याघ्र, तीन जन्मतक वृश्चिक, सात जन्म मंडूक यमदूतोंसे ताडित हुआ होता है ॥ ५ ॥ फिर वह भारतवर्षमें महिष होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो ग्राम और नगरोंमें आग लगाते हैं ॥ ६ ॥ वह असिधार कुण्डमें पड़कर तीन युगोंतक छिन्नांग होता है फिर प्रेत होकर वह्निमुख हो विचरण करता है ॥ ७ ॥ सात जन्मतक अमेध्य वस्तुका खानेवाला सात जन्मतक कपोत होकर फिर मनुष्यजन्ममें शूलरोगयुक्तहोता है ॥ ८ ॥ फिर

मंथानः शतजन्मानि शतजन्मानि सूकरः ॥ कुक्कुटः सप्तजन्मानि सृगालः सप्तजन्मसु ॥ ४ ॥ व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु ॥ सप्तजन्मसु मंडूको यमदूतेन ताडितः ॥ ५ ॥ स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः ॥ ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च ॥ ६ ॥ क्षुरधारे वसेत्सोऽपि च्छिन्नांगस्त्रियुगं सति ॥ ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्रो भ्रमन्महीम् ॥७॥ सप्तजन्मामेध्यभोजी कपोतः सप्तजन्मसु ॥ ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि ॥ ८ ॥ सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिंदां करोति यः ॥ ९ ॥ परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिंदकः ॥ सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूचीविद्धो युगत्रयम् ॥ १० ॥ ततो भवेद् वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ वज्रकीटस्सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् ॥ ११ ॥ ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥ गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ॥ १२ ॥ गाश्च च्छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः ॥ ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥ १३ ॥

सात जन्ममें गलितकुष्ठ और पश्चात् शुद्ध होता है जो दूसरेके कानमें दूसरोंकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और पराये दोषमें महाश्लाघी देव ब्राह्मणकी निंदा करता ह वह सूचीमुख नरकमें सूचीविद्ध हो तीन युग पर्यन्त निवास करता है ॥ १० ॥ फिर वृश्चिक और सात जन्मतक सर्प होता है सात जन्म वज्रकीट और फिर भस्मकीट होता है ॥ ११ ॥ फिर महाव्याधियुक्त मनुष्य होकर सात जन्ममें शुद्ध होता है जो गृहस्थियोंके घरमें सैंध लगाय वहांकी वस्तु हरण करता है ॥ १२ ॥ तथा गौ छाग, मेषादिको जो हरण

करता है वह गोकामुखमें गमन करता है और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां तीन युग निवास करता ॥ १३ ॥ फिर सातजन्मतक व्याधि सम्पन्न हो गोजाति होता है तीन जन्म मेष और तीन जन्म छाग होता है ॥ १४ ॥ फिर मनुष्यजन्ममें नित्य रोगी दरिद्री होता है भार्याहीन वन्धुहीन संतापी और फिर शुचि होता है ॥ १५ ॥ सामान्य द्रव्यका चुरानेवाला नक्रमुख नरकमें जाता है और यमदूतोंसे ताडित हो तीनवर्ष वहां निवास करता है ॥ १६ ॥ फिर सातजन्म व्याधियुक्त गोपति होता है फिर मानव महारोगी होकर पश्चात् शुद्ध होता

ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः ॥ त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि ॥ १४ ॥ ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः ॥ भार्याहीनो बंधुहीनः संतापी च ततः शुचिः ॥ १५ ॥ सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः ॥ ताडितो यम दूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम् ॥ १६ ॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः ॥ ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः ॥१७॥ हंति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा ॥ स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम् ॥ १८ ॥ ताडितो यमदूतेन नागदंतेन संत तम् ॥ स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि ॥ १९ ॥ गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ जलं पिबंतीं तृषितां गां वारयति यः पुमान् ॥ २० ॥ नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वंतरावधि ॥ २१ ॥ ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः ॥ सप्तजन्मांत्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ २२ ॥

है ॥ १७ ॥ जो गौ, हाथी, घोडे और वृक्षोंका नाश करते हैं वह महापापी तीनयुगपर्यंत गजदंशनरकमें जाते हैं ॥ १८ ॥ और यमदूत हाथीदाँतसे निरंतर उनको मारते हैं फिर वह तीनजन्म घोडे और हाथीकी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ फिर गोजाति और म्लेच्छ जाति होकर पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं. जो प्याससे जलपानकरती गायको निवारण करता है ॥ २० ॥ वह गोमुखाकार कृमितप्तोद नरकमें जाता है और वहां तप्त होकर एक मन्वन्तरतक रहता है ॥ २१ ॥ फिर वह मनुष्य गोहीन महारोगी दरिद्री होता है सातजन्म नीचजातिमें

जन्म लेकर फिर शुद्ध होता है ॥२२॥ जो शास्त्र वचनके तात्पर्यको न जानकर गोहत्या ब्रह्महत्या करता है जो अगम्यागमन और स्त्रीहत्या करता है ॥२३॥ तथा जो महापापी भिक्षुहत्या और भ्रूणहत्या करता है वह चौदहमन्वन्तरतक कुम्भीपाकमें निवास करता है॥२४॥ वहाँ यमदूतोंसे ताडित होकर चूर्ण होता है कभी क्षणमें अग्नि और क्षणमें कंटकमें डाला जाता है ॥२५॥ क्षणमें तप्ततेल और क्षणमें तपते जलमें निवास करना होता है क्षणमें तप्तलोह और क्षणमें तप्ततांबेके पत्रमें डाला जाता है ॥२६॥ सहस्रजन्ममें गृध्र और सौ जन्मतक शूकर सातजन्मतक काक और सातजन्मतक

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यातिदेशिकीम् ॥ यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च ॥२३॥ भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते ॥ कुंभीपाके वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ २४ ॥ ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च संततम् ॥ क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कंटके ॥ २५ ॥ क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम् ॥ क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके ॥ २६ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥ काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्त जन्मसु ॥ २७ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः ॥ २८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चाऽऽतिदेशिकी ॥ का वा नृणामगम्या च को वा संध्याविहीनकः ॥२९॥ अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रही ॥ द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः ॥ ३० ॥ शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥ एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर ॥ ३१ ॥

सर्प होता है ॥ २७ ॥ फिर साठ सहस्रवर्षतक विष्ठाका कीडा होता है. अनेक जन्मतक वृष और पश्चात् कुष्ठी दरिद्री होता है ॥२८॥ सावित्री बोली अतिदेशिकी विप्रहत्या और गोहत्या कैसी होतीहै, मनुष्योंको अगम्या कौनहै और संध्याविहीन कौनहै? ॥ २९ ॥ कौन अदीक्षित और तीर्थप्रतिग्रही कौन है कौन ग्रामयाजी ब्राह्मण है और कौन देवल है ॥३०॥शूद्रोंका रसोइया प्रमत्तवृषलीपति कौन है हे वेदविदांवर इन सबके लक्षण कहो ॥ ३१ ॥

धर्मराज बोले श्रीकृष्ण उनकी पूजा तथा दूसरोंकी मूर्ति शिव शिवलिंग सूर्य सूर्यमणि ॥ ३२ ॥ गणेश दुर्गा हे सुंदरी! इसीप्रकार सर्वत्र देवताओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३३ ॥ अपना गुरु इष्टदेव जन्मदाता माता इनमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३४ ॥ वैष्णवभक्त तथा ब्राह्मणादि इतर देवताभक्त महात्माओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका पादोदक शालिग्रामोदकमें जो भेदबुद्धि करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ शिव और हरिके

धर्मराज उवाच ॥ श्रीकृष्णे च तदर्चायामन्येषां प्रकृतौ सति ॥ शिवे च शिवलिंगे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥ ३२ ॥ गणेशे वाथ दुर्गायामेवं सर्वत्र सुन्दरि ॥ यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३३॥ स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३४ ॥ वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३५ ॥ विप्रपादोदके चैव शालग्रामोदके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३६ ॥ शिवनैवेद्यके चैव हरिनैवेद्यके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३७ ॥ सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे ॥ सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वांतरात्मनि ॥ ३८ ॥ माययाऽनेकरूपे वाऽप्येक एव हि निर्गुणे ॥ करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ३९ ॥ शक्तिभक्ते द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च ॥ द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४० ॥ पितृदेवार्चनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम् ॥ यः करोति निसिद्धं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४१ ॥

नैवेद्यमें भेद करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३७ ॥ सर्वेश्वर सबके कारणके कारण सबके आदि सब देवताओंसे सेवनीय सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णमें ॥ ३८ ॥ मायासे अनेकरूप धारण करनेवाले वा एकनिर्गुणमें जो भेद करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ जो शक्तिके भक्त और शक्तिशास्त्रमें द्वेषबुद्धिसे द्वेष करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४० ॥ जो वेद निरूपित पितृदेवताओंके पूजनको

निषेध करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४१ ॥ जो हृषीकेश और उनके मंत्रोपासककी निंदा करता है तथा पवित्रोंका पवित्र सनातन ज्ञानानंद ॥ ४२ ॥ वैष्णवोंके प्रधान देव सेवनीय विष्णुकी जो अर्चा नहीं करता और निंदा करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४३ ॥ जो कारण ब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिमहादेवी सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति सबकी माता ॥ ४४ ॥ सर्ववेदस्वरूपिणी सबको जाननेयोग्य सबकी कारणरूपकी निंदा करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥४५॥ कृष्णजन्माष्टमी और पवित्र रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी, रविवार ॥ ४६ ॥ इन पांच पवित्रपर्वोंको जो मनुष्य नहीं करते हैं वह हत्याको प्राप्त होकर चांडालसे अधिक पापी होते हैं ॥ ४७ ॥ अम्बुवाची अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके आदिपादसे तीन दिन भूमि रजस्वला होती है उस समय उसका खनन तथा उस जलसे जो शौचादि करते हैं वे ब्रह्महत्याको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ गुरु, माता, साध्वीभार्या, पुत्र, बेटी इन अनिंद्योंका जो पालन नहीं करते उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४९ ॥ जिसका विवाह न हुआ जिसने पुत्रका मुख न देखा वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है तथा हरि

यो निंदति हृषीकेशं तन्मंत्रोपासकं तथा ॥ पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानंदं सनातनम् ॥४२॥ प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम् ॥ ये नार्चयंति निन्दंति ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥४३॥ ये निंदंति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम् ॥ सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ ४४ ॥ सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वंदितां सदा ॥ सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥ ४५ ॥ कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं च सुपुण्यदाम् ॥ शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा ॥ ४६ ॥ पंच पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वंति मानवाः ॥ लभंति ब्रह्महत्यां ते चांडालाधिकपापिनः ॥ ४७ ॥ अंबुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये ॥ कुर्वंति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४८ ॥ गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम् ॥ अनिंद्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ॥४९॥ विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं तु यः ॥ हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ५० ॥

भक्तिहीन पुरुषको ब्रह्महत्या लगती ह ॥ ५० ॥ जो हरिको नवेद्यका भोग नहीं लगाता तथा जो विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता तथा जो पवित्र पाथवलिंगका पूजन नहीं करता उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५१ ॥ जो गौ प्रहार करते हुएको देखकर निवारण नहीं करता है गौ ब्राह्मणके मध्यसे होकर देखता चलाजाता ह उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५२ ॥ जो विप्र दण्डसे गौको ताडन करते और बलपर चढते हैं उनको दिन दिन गोहत्या लगती है इसमें संदेह नहीं ॥५३॥ जो गौओंको उच्छिष्ट देते गोवाहकको भोजन कराते तथा बैलपर चढनेवालेका अन्न खाते हैं उनको गोहत्या लगती ह ॥ ५४ ॥ जो शूद्रीपतिको यजन

हरेर्नैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत् ॥ पुण्यं पार्थिवलिंगं च ब्रह्महाऽसौ प्रकीर्तितः ॥ ५१ ॥ गोप्रहारं प्रकुर्वंतं दृष्ट्वा यो न निवारयेत् ॥ याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां तु लभेत्तु सः ॥५२॥ दंडैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहनः ॥ दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः ॥५३॥ ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद्वृषवाहकम् ॥ भुनक्ति वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥५४॥ वृषलीपतिं याजयेद्यो भुक्तेऽन्नं तस्य यो नरः ॥ गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः ॥५५॥ पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च पादेन ताडयेत् ॥ गेहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात् ॥५६॥ यो भुंक्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धांघ्रिरेव च ॥ सूर्योदये च यो भुंक्ते स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५७ ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते योनिजीव्यस्य च द्विज ॥ यस्त्रिसंध्या विहीनश्च गोहत्यां लभते च सः ॥५८॥ स्वभर्तरि च देवे वा भेदबुद्धिं करोति या ॥ कटूक्त्या ताडयेत्कांतं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥

कराते वा जो उसका अन्न खाते हैं उसको सौ गोहत्याका पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ जो अग्निपर पर रखते और चरणसे गायको ताडन करते हैं विना पैरधोये जो घरोंमें घुसते हैं वह गोहत्या पाते हैं ॥ ५६ ॥ जो गीले चरणोंसे भोजनको बैठते हैं तथा गीले चरण सोते हैं तथा सूर्योदयके समय जो भोजन करते हैं उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५७ ॥ जो अवीरान्न खाता और जो ब्राह्मण कुटनापन करता है और जो तीनों कालकी संध्यासे रहित है उसे गोहत्या लगती है ॥ ५८ ॥ जो स्त्री अपने स्वामी और देवतामें भेदबुद्धि

करती है और स्वामीको कटूक्ति कहती है उसको गो हत्या लगती है ॥ ५९ ॥ जो गोमार्गको बिगाडकर सस्य तडाग वा दुर्गमें खेदता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६० ॥ जो गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम करता है पुत्र लोभ वा अज्ञानसे न करे तो अर्थात् पुत्रने हत्या की है ऐसा जानकर जो प्रायश्चित्त नहीं कराता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६१ ॥ राजोपद्रव और देवके उपद्रवमें यत्नसे जो गोस्वामी गौओंकी रक्षा नहीं करता और जो मूढ दुःख देता है उसको अवश्य गोहत्या प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ जो प्राणी देवार्चा, अनल, जल, नैवेद्य, पुष्प,

गोमार्गवर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा ॥ तडागे वा तु दुर्गे वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम् ॥ पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६१॥ राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न रक्षति ॥ दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्या स लभेद्ध्रुवम् ६२ ॥ प्राणिनो लंघयेद्यो हि देवार्चामनलंजलम् ॥ नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेध्रुवम् ॥ ६३ ॥ शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः ॥ देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति ॥ संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६५ ॥ न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः ॥ विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥६६॥ गोहत्या विप्रहत्या च कथिता चाऽऽतिदेशिकी ॥ गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते ॥ ६७ ॥ स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम् ॥ अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥

अन्न इनको उल्लंघन करता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६३ ॥ जो मिथ्यावादी छली अतिथिके आने पर नहीं हैं ऐसा कहता है जो देवता और गुरुसे द्वेष करता है उसे गोहत्या लगती ह ॥ ६४ ॥ देवताकी प्रतिमाको देखकर गुरु वा ब्राह्मणको देखकर सहसा प्रणाम नहीं करता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण क्रोधसे प्रणाम करनेवालेको आशीर्वाद नहीं देता तथा वियार्थीको विद्या नहीं देता उसको गोहत्या लगती है ॥ ६६ ॥ यह तुमसे शास्त्रानुसार गोहत्या और विप्रहत्या कही अब गम्य स्त्रियोंका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ६७ ॥ अपनी

स्त्री सबको गम्य है यह वेदानुशासन है, दूसरी अगम्या है यह वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ हे सुन्दरि ! सामान्यसे तुमसे सब कहा अब विशेषको श्रवण करो, जो अत्यन्त अगम्य है उसको कहता हूं सुनो ॥६९॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी विप्रोंको शूद्रकी स्त्री हे पतिव्रते ! यह अत्यन्त अगम्य और निन्दनीय हैं ॥ ७० ॥ शूद्र यदि ब्राह्मणीमें गमन करे तो सौ ब्रह्महत्या लगती हैं और उसीके समान वह ब्राह्मणी भी कुंभीपाकमें जाती है ॥ ७१ ॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी और ब्राह्मणोंको शूद्रपत्नी ऐसी ही है यदि ब्राह्मण शूद्रामें गमन करे

सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुंदरि ॥ अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामि ताः ॥ ६९ ॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥ अत्यगम्या च निंद्या च लोके वेदे पतिव्रते ॥ ७० ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥ तत्समं ब्राह्मणी चापि कुंभीपाकं लभेद् ध्रुवम् ॥ ७१ ॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥ यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः ॥ ७२ ॥ स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चांडालात्सोऽधमः स्मृतः ॥ विष्ठासमश्च तत्पिंडो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥ ७३ ॥ न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति ॥ कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्यार्चातपसाऽर्जितम् ॥ ७४ ॥ द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः ॥ ब्राह्मणश्च सुरापीतिर्विड्भोजी वृषलीपतिः ॥ ७५ ॥ तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलांकितस्तथा ॥ हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद्द्विजः ॥ ७६ ॥

तो वह वृषलीपति होता है ॥ ७२ ॥ वह विप्र ब्राह्मण जातिसे भ्रष्ट होकर चांडाल होता है उसका पिंड विष्ठाके समान और तर्पण मूत्रके समान होता है ॥ ७३ ॥ उसका दिया देवता पितरोंको प्राप्त नहीं होता और कोटि जन्मोंमें जो उसने जप पूजासे फल प्राप्त किया है॥७४॥वह उस ब्राह्मणका वृषलीके लोभसे नाश हो जाता है जो ब्राह्मण सुरापान करता है और वृषलीपति है वह विड्भोजी है ॥ ७५ ॥ तथा जिसका शरीर तप्तमुद्रासे दग्ध है तप्तशूलसे अंकित है तथा जो एकादशीके दिन भोजन करता है वह कुंभी

पाकमें जाता है ॥ ७६ ॥ गुरुपत्नी, राजपत्नी, सपत्नीमाता, पुत्री, पुत्रवधू, सास, सहोदरा, भगिनी, सती ॥ ७७ ॥ सगे भाईकी स्त्री, मामी, मा, (दादी) माताकी मा, (नानी) नानीकी बहन, भगिनी, भाईकी कन्या ॥ ७८ ॥ शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भांजेकी बहू, भाईके पुत्रकी स्त्री, ब्रह्माने इनको अधिक अगम्य कहा है ॥ ७९ ॥ जो अधमपुरुष इनके निकट कामनासे गमन करता है वह वेदमें मातृगामी है और सौ ब्रह्महत्याका उसको पाप लगता है ॥ ८० ॥ वह किसी कर्मके योग्य नहीं तथा स्पर्शके योग्य नहीं वह लोकवेदमें निंदित होता है वह महापापी

गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम् ॥ सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम् ॥ ७७ ॥ सोदरभ्रातृजायां च मातुलानीं पितुः प्रसूम् ॥ मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीं भ्रातृकन्यकाम् ॥ ७८ ॥ शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम् ॥ भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्यगम्या आह पद्मजः ॥ ७९ ॥ एताः कामेन कांता यो व्रजेद्वै मानवाधमः ॥ स मातृगामी वेदेषु ब्रह्मह त्याशतं व्रजेत् ॥ ८० ॥ अकर्मार्होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निंदितः ॥ स याति कुंभीपाके च महापापी सुदुष्करे ॥ ८१ ॥ करोत्यशुद्धां संध्यां वा न संध्यां वा करोति च ॥ त्रिसंध्यं वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥८२॥ वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम् ॥ योऽहंकारान्न गृह्णाति मंत्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥८३॥ प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥ तत्र नारायणः स्वामी गंगागर्भांतरे वसेत् ॥ ८४ ॥ तत्र नारायणक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम् ॥ वाराणस्यां बदर्यां च गंगासागरसंगमे ॥८५॥

रौरव दुःखरूप कुंभीपाकमें गमन करता है ॥ ८१ ॥ जो अति अशुद्ध शास्त्रसे विहीन सन्ध्या करता है वा जो तीनों कालमें सन्ध्या नहीं करता वह सन्ध्याहीन ब्राह्मण है ॥ ८२ ॥ वैष्णव, शव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, इनमें जो अहंकारसे मन्त्र ग्रहण नहीं करता वही अदीक्षित है॥८३॥ गंगाके प्रवाहसे चार हाथ भूमिपर्यन्त गंगागर्भ कहाताहै भगवान् नारायण निरन्तर वहां रहते हैं अथवा बहते जलके चार हाथतक किनारे तकके नारायण स्वामीहैं उस नारायणक्षेत्र काशी आदिमें जो प्रतिग्रह करताहै वह तीर्थ प्रतिग्राही हैं ॥ ८४ ॥ नारायणक्षेत्रमें मरकर हरिके पदकोजाता है

वाराणसी बद्रिकाश्रम गंगासागर संगम ॥ ८५ ॥ पुष्कर, हरिहरक्षेत्र, त्र्यम्बक, प्रभास, कामरू, हरिद्वार, केदार, श्रीरेणुका स्थान ॥ ८६ ॥ सरस्वतीके किनारे पवित्र वृन्दावनमें गोदावरी कौशिकी त्रिवेणी हिमालय ॥ ८७ ॥ जो इन पवित्र तीर्थोंमें कामना पूर्वक दान ग्रहण करता है यह तीर्थप्रतिग्राही कुंभीपाकमें जाता है ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी, शूद्रयाजी, ग्रामयाजी कहा है देवताकी पूजाकर आजीविका करनेवाला देवल कहाता है ॥ ८९ ॥ जो शूद्रकी रसोई करके जीविका करता है वह रसोइया है जो सन्ध्या पूजनसे हीन है वह प्रमत्त और पतित हो जाता है

पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले ॥ हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च॥८६॥सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने ॥ गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले ॥८७॥ एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः ॥ स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाके प्रयाति सः ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः ॥ तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः ॥८९॥ शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः ॥ संध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥९०॥ उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः॥ एते महापातकिनः कुम्भीपाके प्रयान्ति ते ॥ ९१ ॥ कुंडान्यन्यानि ये यांति निबोध कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ धर्मराज उवाच ॥ देवसेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृंतनम् ॥ शुद्धकर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते योऽस्यां गच्छेत्पतिव्रते ॥ स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम् ॥ २ ॥

॥ ९० ॥ हे भद्रे ! मैंने वृषलीपतिके सब लक्षण कहे यह महापातकी कुंभीपाकको जाते हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो दूसरे कुंडोंमें जाते हैं उनको सुनो मैं कहता हूं ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ धर्मराज बोले हे साध्वि ! देवताओंकी सेवाके विना कर्म बन्धन नष्ट नहीं होता शुद्धकर्म सुकर्मका बीज है और कुकर्मसे नरक होता है ॥ १ ॥ हे पतिव्रते ! जो

व्यभिचारिणीका अन्न खाता है और उससे गमन करता है वह ब्राह्मण मर कर कालसूत्र नरकमें जाता ह ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक कालसूत्रमें पडा रहता है उस जन्ममें रोगी और फिर यह मनुष्य शुद्ध होता है ॥३॥ एकपति तक पतिव्रता दूसरा करनेमें कुलटा तीसरेपर गमन करनेसे धर्षिणी और चतुर्थपर गमन करनेसे पुंश्चली कहाती है ॥४॥ पांच और छः पुरुषतक वेश्या, सातवें आठवें पुरुषतक पुंगी, इससे अधिक पुरुषोंमें गमन करै तो वह महावेश्या कहाती है सब जातियोंसे वह स्पर्शके अयोग्य है ॥५॥ जो ब्राह्मण कुलटा धर्षिणी और पुंश्चलीके पास जाता है अथवा पुंगी वेश्या महावेश्याके समीप गमन करता है वह मत्स्योदनरकमें जाता है ॥ ६ ॥ कुलटागामी सौ वर्ष धृष्टागामी ४०० वर्ष पुंश्चलीगामी छःगुणे वर्ष,

शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद् ध्रुवम् ॥ तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद् द्विजः ॥ ३ ॥ पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता ॥ तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीत्यपि ॥४॥ वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे॥तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥ ५ ॥ यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि ॥ पुङ्गीं वेश्यां महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम् ॥ षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥ ७ ॥ पुङ्गीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः ॥ महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत् ॥ ८ ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यमदूतेन ताडितः ॥ तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः ॥९॥ कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः ॥ पुङ्गीगामी सूकरश्च सप्तजन्मनि भारते ॥ १० ॥ महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः ॥ यो भुंक्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ११ ॥ अरुंतुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च ॥ ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरे रोगपीडितः ॥ १२ ॥

वेश्यागामी अठगुणे ॥७॥ पुंगीगामी दशगुणे वर्ष वहां निवास करता है इसमें सन्देह नहीं,महावेश्याकी इच्छावाला इससे दशगुणे वर्ष नरकमें रहता है ॥८॥और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां ही यातनाको भोगता है कुलटागामी तीतर, धृष्टागामी वायस ॥ ९ ॥ पुंश्चलीगामी कोकिल वेश्यागामी भेडिया होता है और पुंगीगामी सातजन्म भारतमें सूकर होता है ॥१०॥ महावेश्यागामी सेमलका वृक्ष होता है, जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण में भोजन करता है ॥११॥ वह अन्नके मानप्रमाण अरुंतुद नरकमें जाता है फिर उदररोगग्रसित मनुष्य होता है ॥१२॥

गुल्मयुक्त काना दांतोंसे हीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो अपनी कन्याको वाग्दान कर फिर अन्यको देता है ॥ १३ ॥ वह धूरिके कुंडमें पडकर निरन्तर धूलिपान करता है हे साध्वि ! जो कन्याका द्रव्य हरण करता है वह सौवर्षतक धूरिसे युक्त ॥ १४ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो शरशय्यापर शयन करता है जो ब्राह्मण भक्तिसे शिवलिंगका पूजन नहीं करता ॥ १५ ॥ वह पापी शूलप्रोत नामक नरकमें शूली होकर निवास करता है वह सौवर्षतक रहकर सात जन्मतक श्वापद जीव होता है ॥ १६ ॥ फिर देवल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है जो

गुल्मयुक्तश्च काणश्च दंतहीनस्ततः शुचिः ॥ वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च ॥ १३ ॥ स वसेत्पांसुकुंडे च तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ तद्द्रव्यहारी यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम् ॥१४॥ निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः ॥ भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिंगं च पार्थिवम् ॥ १५ ॥ स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥ स्थित्वा शताब्दं तत्रैवश्वापदः सप्तजन्मसु ॥ १६ ॥ ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्म ततः शुचिः ॥ करोति कुंठितं विप्रं यद्भिया कंपते द्विजः ॥ १७ ॥ प्रकंपेन वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च ॥ प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति ॥ १८ ॥ कटूक्ति तं प्रवदति सोल्मुकं संप्रयाति हि ॥ उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किंकरः ॥ १९ ॥ दंडेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥ ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु ॥ २० ॥ सा भुक्त्वा चैव वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥ या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चांधकूपे प्रयाति सा ॥ २१ ॥ तप्तशौचोदके ध्वांते तदाहारी दिवानिशम् ॥ निवसेदतिसंतप्ता मम दूतेन ताडिता ॥ २२ ॥

ब्राह्मणको कुंठित करता है वा जिसके भयसे ब्राह्मण कंपित होता है ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाण वर्षतक प्रकम्पन नरकमें निवास करता है जो क्रोधकरके अपने स्वामीको देखता है ॥ १८ ॥ तथा कटूक्ति कहता है वह उल्मुकनरकमें जाता है मेरे दूत निरन्तर उसके मुखमें उल्मुख देते हैं ॥ १९ ॥ और उसके लोम प्रमाणवर्षतक शिरपर दण्डकी ताडना होती है फिर वह मानवी और सातजन्मतक विधवा होती है ॥ २० ॥ वह व्याधियुक्त वैधव्य भोगकर पश्चात् शुद्ध होती है जो ब्राह्मणी शूद्रसे संगम करती है, वह अन्धकूपमें जाती है ॥ २१ ॥ तत्ते

शौचजल और अंधकारमें निराहार पड़ी रहती है और यमदूतोंसे ताडित हो बडेदुःखसे रहती है ॥ २२ ॥ वह चौदहइन्द्रके कालतक शौचके जलमें निमग्न रहती है सहस्र काकी जन्म और सौजन्म सूकरी होती है ॥ २२ ॥ सौजन्मतक शृगाली सौजन्ममें कुतिया सौजन्म कबूतरी, सात जन्म वानरी ॥ २४ ॥ फिर भारतमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है फिर धोवन फिर यक्ष्मरोगवाली पुंश्चली होती हैं ॥ २५ ॥ फिर कुष्ठयुक्त होकर पश्चात् तेलन होती है तब शुद्ध होती ह वेश्यावेधन और पुंगी दंडताडन नरकमें निवास करती है ॥२६॥ वेश्या जलरंध्रस्थान और

शौचोदके निमग्ना सा यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी ॥२३॥ सृगाली शतजन्मानि शतजन्मानि कुक्कुटी ॥ पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु ॥ २४ ॥ ततो भवेत्सा चांडाली सर्वभोग्या च भारते ॥ ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली ॥ २५ ॥ ततः कुष्ठयुता तैलाकारी शुद्धा भवेत्ततः ॥ निवसेद्वेधने वेश्या पुंगी च दंडताडने ॥ २६ ॥ जलरंध्रे वसेद्वेश्या कुलटा देहचूर्णके ॥ स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा ॥२७॥ निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता॥ विण्मूत्रभक्षा सततं यावन्मन्वंतरं सति ॥ २८ ॥ ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः ॥ ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वाऽपि क्षत्रियः ॥ २९ ॥ वैश्यो वैश्यां च शूद्रां वा शूद्रश्चापि व्रजेद्यदि ॥ सवर्णपरदारैश्च कषायं यांति ते जनाः ॥३०॥ भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम् ॥ ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः ॥ ३१ ॥

कुलटा देहचूर्णस्थानमें निवास करती है, स्वैरिणी दलन और धृष्टा शोषण नरकमें निवास करती है ॥२७॥ यह हमारे दूतोंसे ताडित हो बडी यातना युक्त निवास करती है, विष्ठा मूत्र भक्षणको निरंतर मिलता, ऐसे एक मन्वन्तरतक रहती है ॥ २८ ॥ फिर विष्ठाका कृमि होकर लाख वर्षमें शुचि होती है जो ब्राह्मण ब्राह्मणीमें क्षत्रिय क्षत्रियामें गमन करता है ॥ २९ ॥ वैश्य वैश्या और शूद्र शूद्रामें गमन करता है अर्थात् सवर्ण परदाराओंमें जो गमन करता है वह कषाय नरकमें जाता है ॥ ३० ॥ वहां कसैला तत्ता जल पानकर बारह वर्ष निवास करता है तब ब्राह्मण

और क्षत्रिय शुद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ और इसी प्रकार स्त्री भी शुद्ध होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे पतिव्रते ! जो क्षत्रिय वा वैश्य ब्राह्मणीमें गमन करता है ॥ ३२ ॥ वह मातृगामी होकर सूर्पनामक नरकमें पडता है वह ब्राह्मणीके सहित उन कीडोंसे भक्षित होता है ॥ ३३ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो तत्ते मूत्रका भोजन करना होता है एक मन्वन्तरपर्यन्त वहां इस प्रकार दुःखभोगना होता है ॥३४॥ सात जन्म वराह और फिर छाग होकर पवित्र होता हे जो हाथमें तुलसी लेकर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं

योषितश्चापि शुद्ध्यंतीत्येवमाह पितामहः ॥ क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते ॥ ३२ ॥ मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत् ॥ शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः ॥ ३३ ॥ प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥३४॥ सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥ करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ॥ ३५ ॥ मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ गंगातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३६ ॥ शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ दत्त्वा दक्षिणहस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३७ ॥ स्थित्वा देवगृहे वापि स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ आस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं व्रजेद्द्विजः ॥ ३८ ॥ न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च विश्वासघातकः ॥ ३९ ॥

करता ॥३५॥ वा मिथ्या शपथ करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है वा जो हाथमें गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता ॥ ३६ ॥ जो शालिग्राम वा देवमूर्ति हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उसे उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है अथवा दहिना हाथ मिलाकर जो प्रतिज्ञापूर्ण नहीं करता ॥ ३७ ॥ देवगृहमें स्थित होकर भी जो कृत्यको उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ब्राह्मण और गौको स्पर्शकर जो प्रतिज्ञा टालता है वहां ज्वालामुख नरकमें जाता है ॥ ३८ ॥ प्रतिज्ञाका न पालनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता

है मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती ॥ ३९ ॥ और मिथ्या साक्षी देनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता है वो वहां चौदह इंद्रके समय तक निवास करता है ॥ ४० ॥ अंगारोंसे प्रदग्धकर यमदूत उनको ताडन करते हैं तुलसीकी शपथकर पालन न करनेसे चाण्डाल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है ॥ ४१ ॥ गंगा जलको स्पर्शकर मिथ्या करनेवाला म्लेच्छ होकर पांच जन्ममें शुचि होता है, शालिग्राम स्पर्शकर मिथ्या करनेसे विष्ठाका कृमि होकर सात जन्ममें पवित्र होता हैं ॥ ४२ ॥ अर्चाका स्पर्श करनेवाला ब्राह्मण गृहस्थोंकयहां कृमि होता है सात जन्ममें शुद्ध होता है, दक्षिण हाथ देनेसे परकार्य न करनेवाला सातजन्मतक सर्प होता है ॥ ४३ ॥ फिर ब्रह्महीन होकर पश्चात् शुद्ध

मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ एते तत्र वसंत्येव यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४० ॥ तथांगारप्रदग्धाश्च यमदूतेन ताडिताः ॥ चांडालस्तुलसीं स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः ॥ ४१ ॥ म्लेच्छो गंगाजलस्पर्शी पंचजन्म ततः शुचिः ॥ शिला स्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुंदरि ॥४२॥ अर्चास्पर्शी ब्रह्मकृमिः सप्तजन्म ततः शुचि ॥ पक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तज न्मसु ॥ ४३ ॥ ततो भवेद्ब्रह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः ॥ मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु ॥ ४४ ॥ विप्रादिस्पर्शकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि ॥ ४५ ॥ भार्याहीनो बंधुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः ॥ मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चाऽपि गंडकः ॥४६॥ विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मंडूकः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ पूर्वान्सप्तापरान्सप्त रुषान्हंति चात्मनः ॥ नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः ॥ ४८ ॥

होता है जो देवगृहमें मिथ्या बोलता है वह सातजन्मतक पुजारी होता है ॥ ४४ ॥ विप्रादिका स्पर्श करनेवाला व्याघ्रजाति होता ह फिर मूक और तीन जन्मतक बहरा होता है ॥४५॥ भार्या बंधु और वंशहीन होकर पश्चात् पवित्र होता है मित्रद्रोही न्यौला और कृतघ्न होनेसे विघ्नकारी गंडक होता है ॥ ४६ ॥ विश्वासघाती भारतमें सातजन्म पर्यन्त व्याघ्र होता है और मिथ्या साक्षीदेनेवाला सातजन्मतक मैंडक होता है ॥ ४७ ॥ वह अपने सात पहलेके और सात पीछेके पुरुषोंको मारता है जोनित्य क्रियासे हीन हैं वह ब्राह्मण जडत्वको प्राप्त

होता है ॥४८॥ जिसको वेदवाक्यमें श्रद्धा नहीं और मंद मंद हँसता है जो व्रत और उपवाससे हीन तथा सद्वाक्यका निंदक है ॥ ४९ ॥ वह सौ वर्ष धुवां पीता हुआ धूम्रांध नरकमें निवास करता है और सब जन्मके क्रमसे वह जलजंतु होता है ॥ ५० ॥ फिर अनेक प्रकारका मत्स्य होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवता और ब्राह्मणके धर्ममें उपहास करता है ॥५१॥ वह दश पहले और दश आगेके पुरुषोंको नरकमें डालकर धूम समूहसे युक्त धूम्रांध नरकमें जाता है ॥ ५२ ॥ धूमसे क्लेशित धूम्रभोगी वहां चौगुने समयतक निवास करता है फिर भारतमें सात जन्मतक

यस्यानास्था वेदवाक्ये मंदं हसति सन्ततम् ॥ व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरनिंदकः ॥ ४९ ॥ धूम्रांधे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्रभक्षकः ॥ जलजंतुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च ॥ ५० ॥ ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥ यः करोत्युपहासं च देवब्राह्मणयोर्धने ॥ ५१ ॥ पातयित्वा स पुरुषान्दशपूर्वान्दशापरान् ॥ सोऽयं याति च धूम्रांधं धूमध्वांतसमन्वितम् ॥५२ ॥ धूम्रक्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम् ॥ ततो मूपकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ५३ ॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः ॥ ततो नानाविधा वृक्षः पशवश्च ततो नरः ॥५४॥ विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः ॥ लाक्षालोहादिव्यापारी रसादिविक्रयी च यः ॥ ५५ ॥ स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च ॥ वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः ॥ ५६ ॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः ॥ ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु ॥ ५७ ॥ गोपश्च कर्मकारश्च रंगकारस्ततः शुचिः ॥ प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते ॥ ५८ ॥

मूषक होताहै ॥५३॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजाति और कृमि योनियोंमें जाकर फिर अनेक जातिके वृक्ष और पशुयोनियोंमें जाकर पश्चात् मनुष्य होता है ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण ज्योतिपसे डराकर धन लेते धन ठहराकर चिकित्सा करते हैं तथा लाख लोहादिका व्यापार और रसादि बेचते हैं ॥५५॥ वह नागोंसे वेष्टित होकर नागवेष्ट नरकमें जाते हैं और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजातिमें जन्म लेकर पश्चात् मनुष्य होते फिर वह गणक और सात जन्म वैद्य होता है ॥ ५७ ॥ गोप कर्मका रंगकार होकर

फिर शुचि होता है हे पतिव्रते ! यह प्रसिद्ध कुंड तुमसे कथन किये॥५८॥और भी बहुतसे अपवित्र और क्षुद्र कुण्ड उस स्थानपर हैं उससे पातकी अपने कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ ५९ ॥ और अनेक योनिमें भ्रमते हैं अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सावित्री बोली हे महाभाग धर्मराज ! वेद वेदांगके पारगामी अनेक पुराण इतिहासका जो सार है सो दिखाइये ॥ १ ॥ जो सबका सारभूत सबका इष्ट सर्वसम्मत हो जो कर्मच्छेदका बीजरूप हो प्रशस्त और मनुष्योंको

अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि संति तत्र वै ॥ संति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः ॥ ५९ ॥ भ्रमंति नाना योनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ सावित्र्युवाच ॥ धर्मराज महाभाग वेदवेदांगपारग ॥ नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय ॥ १ ॥ सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् ॥ कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम् ॥ २ ॥ सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमंगलकारणम् ॥ भयं दुःखं न पश्यंति येन वै सर्वमानवाः ॥ ३ ॥ कुण्डानि ते न पश्यंति तेषु नैव पतंति च ॥ न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सांप्रतम् ॥ ४ ॥ किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च ॥ के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः ॥ ५ ॥ स्वदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकांतरं नरः ॥ केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम् ॥ ६ ॥ सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति ॥ देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ नारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् ॥ कथां कथितुमारेभे कर्मबंधनिकृन्तनीम् ॥ ८ ॥

सुखदायक हो ॥२॥ सब कुछ देनेवाला सबके मंगलका कारण जिससे मनुष्य भय और दुःखको प्राप्त हो ॥ ३ ॥ यह कुंड न देखे न कभी इनमें पडै जिससे जन्मादि न हो उसकर्मको दिखाइये और कहिये ॥ ४ ॥ यह कुंड किस आकारके बनेहुए हैं और किसप्रकारसे कौनरूपसे पापी वहां निवास करते हैं ॥५॥ अपना देह भस्म होनेसे यह प्राणी लोकान्तर गमन करता है फिर यह किस देहसे शुभाशुभका भोग करता है ॥६॥ और बहुत कालतक क्लेश भोगनेसे भी यह देह क्यों नष्ट नहीं होता है हे ब्रह्मन् ! वह देह किस प्रकारका है सो आप मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ नारायण

बोले सावित्रीके वचन सुन धर्मराज हरिका स्मरण करते हुए इस कर्मबंधननाशिनी कथाको कहने लगे ॥ ८ ॥ धर्मराज बोले हे वत्से! चारवेद सब धर्मसंहिताओंमें पुराण इतिहास पंचरात्र ॥ ९ ॥ हे सुव्रते! तथा दूसरे धर्मशास्त्र वेदांगोंमें सबका इष्ट और सारभूत पंचदेवताओंकी उपासना है ॥१०॥ यह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और संतापनाशिनी है सब मंगलकी रूप परमानंदकी कारण है ॥ ११ ॥ सब सिद्धियोंकी कारण नरकार्णवसे तारक भक्तिरूपी वृक्षका अंकुर करनेवाली कर्मवृक्षका छेदन करनेवाली है ॥ १२ ॥ यह विमोक्षकी सोपान

धर्मराज उवाच ॥ वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च ॥ पुराणेष्वितिहासेषु पांचरात्रादिकेषु च ॥ ९ ॥ अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदांगेषु च सुव्रते ॥ सर्वेष्टं सारभूतं च पंचदेवानुसेवनम् ॥ १० ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् ॥ सर्वमंगलरूपं च परमानंदकारणम् ॥११॥ कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् ॥ भक्तिवृक्षांकुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥ १२ ॥ विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम् ॥ सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम् ॥ १३ ॥ कुंडानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे ॥ न हि पश्यंति स्वप्ने च पंचदेवार्चका नराः ॥१४॥ देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यंति ममालयम् ॥ यांति ये हरितीर्थं वा श्रयंति हरिवासरम् ॥ १५ ॥ प्रणमंति हरिं नित्यं हर्यर्चां कलयंति च ॥ न यान्ति तेऽपि घोरां च मम संयमिनीं पुरीम् ॥१६॥ त्रिसंधूपिता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः ॥ निवृत्तिं नैव लप्स्यंति देवीसेवां विना नराः ॥ १७ ॥

अविनाश पद है, सालोक्य सार्ष्टि सारूप्य सामीप्यादि देनेवाला शुभ है ॥ १३ ॥ हे शुभे! कुण्डोंको जो तुमने पूँछा इन कुण्डोंकी यमदूत सदा रक्षा करते हैं पंचदेवकी उपासना करनेवाले स्वप्नमें भी इन कुण्डोंका दर्शन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ जो देवीकी भक्ति नहीं करते वही हमारे स्थानमें आते हैं जो हरितीर्थमें जाते एकादशी आदि व्रत करते हैं ॥१५॥ जो नित्य भगवान्‌को प्रणाम कर उनकी अर्चा करते हैं वे हमारी घोर संयमनी पुरीको नहीं आते ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण तीनों संध्याओंसे पवित्र शुद्धाचार हैं वह भी विना देवीकी उपासनाके

मुक्तिको प्राप्त नहीं होते ॥ १७ ॥ जो अपने धर्ममें निरत आचारवाले स्वधर्ममें निरत हैं मर्त्यलोकमें जाते उनको मेरे दूतोंका दर्शन नहीं होता ॥ १८ ॥ शिवके उपासकोंसे मेरे दूत इस प्रकार भय खाते हैं जैसे गरुडसे सर्प और ऐसे स्थानमें पाशधारी दूतको जाता देखकर मैं निवारण कर देता हूं ॥ १९ ॥ हरिदासके आश्रयके सिवाय वे सर्वत्र गमन करते हैं गरुडसे सर्पके समान कृष्णभक्तसे मेरे दूत डरते हैं ॥ २० ॥ देवीमंत्रके उपासकोंको भगवतीका नाम ही कर्म बंधनसे मुक्त करता है इनके कोई कर्म हो तो चित्रगुप्त नखलेखिनीसे भीत हुए लिखते हैं और जो अज्ञानसे चित्रगुप्तने लिखा है वह मंत्रजापसे नष्ट होता है ॥२१॥ और उनको वारंवार मधुपर्क दिया जाता है वह इस लोकको उल्लंघनकर ब्रह्म

स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मनिरतास्तथा॥गच्छंतो मृत्युलोकं च दुर्दृशा मम किंकरा ॥१८॥ भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवो रगाः॥स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम् ॥१९॥ यास्यंति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रयं विना ॥ कृष्णमंत्रोपासकाच्च वैनते यादिवोरगाः ॥२०॥ देवीमंत्रोपासकानां नाम्नां चव निकृंतनम् ॥ करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् ॥२१॥ मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः ॥ विलंघ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छंति ते सति ॥२२॥ दुरितानि च नश्यंति येषां संस्पर्शमात्रतः ॥ ते महाभाग्यवंतो हि सहस्रकुलपावनाः ॥ २३ ॥ यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्काणि च तृणानि च ॥ प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ॥ २४ ॥ कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति ॥ मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥२५॥ कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ये ये न यांति तां पीडां कथितास्ते मया सति ॥ २६ ॥

लोकमें जाते हैं ॥२२॥ इनके स्पर्श मात्रसे पाप नष्ट होजाते हैं वे महाभाग्यवान् सहस्र कुलके पवित्र करनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ जैसे प्रज्वलित अग्निमें शुष्क तृण भस्म होते हैं इस प्रकार उन भक्तोंको देखकर भयसे मोह भी मोहको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ उनके काम कामियों पर जाते कामनाहीन होनेसे लोभ क्रोध भी नष्ट होते हैं. फिर रोग, जरा, शोक, भय और मृत्यु उनकी लीन होजाती है ॥ २५ ॥ काल, सभा, शुभकर्म हर्ष, भोग यह निवृत्त होता है. हे देवि ! जो जो इस पीडाको प्राप्त नहीं होते उनका वर्णन तुमसे किया ॥ २६ ॥

अब देहका विवरण सुनो यथायोग्य कहता हूं पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज, जल ॥ २७ ॥ यह देहधारी और स्रष्टाकी सृष्टिके बीज हैं जो देह पृथ्वी आदि पंचभूतका बना है ॥२८॥ वह कृत्रिम और नश्वर है यह यहां ही भस्म होता है परंतु पुरुषाकृति जीव अंगुष्ठप्रमाण शरीरवाला कर्मसे बद्ध है ॥२९॥ यह भोगके निमित्त उस देहको धारण करता है वह देह यमालयकी प्रज्वलित अग्निमें भी भस्म नहीं होता ॥ ३० ॥ जल वा प्रहारसे भी यह नष्ट नहीं होता. शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्ण कंटक ॥ ३१ ॥ उपद्रव, तप्तलोह, तप्तपाषाण, तप्त प्रतिमासे आलिंगन

शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम् ॥ पृथिवी वायुराकाशं तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥ २७ ॥ देहिनां देहबीजं च स्रष्टृसृष्टिविधौ परम् ॥ पृथिव्यादिपंचभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत् ॥२८॥ स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह ॥ बद्धोऽङ्गुष्ठप्रमाणश्च यो जीवः पुरुषः कृतः॥२९॥ बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपभोगहेतवे ॥ स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ यमालये ॥३०॥ जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते ॥ न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण सुतीक्ष्णकंटके तथा ॥ ३१ ॥ तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च ॥ प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च ॥ ३२ ॥ न दग्धो न च भग्नः स भुंक्ते संतापमेव च ॥ कथितो देहवृत्तांतः कारणं च यथागमम् ॥३३॥ कुंडानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्णेन्दुमंडलाकारं सर्वं कुंडं च वर्तुलम् ॥ निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति ॥ १ ॥ न नश्वरं चाऽऽप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया ॥ क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम् ॥ २ ॥

कराने तथा पातन करनेसे ॥ ३२ ॥ दग्ध और भग्न नहीं होता अनेक संताप सहता है यह देहका वृत्तान्त और कारण तुमसे कथन किया ॥३३॥ अब कुण्डोंका विवरण कहता हूं सुनो ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ धर्मराज बोले सम्पूर्ण कुंड चन्द्रमाके मंडलके समान गोल हैं और विलक्षण पाषाणरूप अंगारोंसे निरन्तर जलते रहते हैं ॥ १ ॥ यह

ईश्वरकी इच्छासे निर्मित हुए प्रलयपर्यन्त अविनाशी रहते हैं वह स्थान पापोंके कारण अनेक क्लेश देनेवाला है॥२॥और इनमेंसे जलते अंगारोंसे सौ हाथ ऊंची ज्वाला निकलती है यह अग्निकुण्ड सब ओरसे एक कोशके घेरेमें है ॥ ३ ॥ और महाशब्द करनेवाले पापियोंसे पूर्ण रहता है मेरे दूत निरंतर रक्षा कर पापियोंको दण्ड देते हैं ॥ ४ ॥ तप्त जलसे पूर्ण कुण्ड हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण है और दृढप्रहारसे वहां महाघोर काकु शब्द होता है ॥५॥ यह आध कोशमें है मेरे पार्षद दूत यहां पापियोंको दंड देते हैं एक कुंड तप्त क्षार जलसे पूर्ण और काकोंसे व्याप्त है ॥ ६ ॥ पापियोंसे युक्त एक कोश पर्यन्त बडा भयानक है और मेरे दूतोंसे ताडित हो पापी त्राहि त्राहि (रक्षा करो) यह शब्द करते हैं ॥ ७ ॥

ज्वलदंगाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम् ॥ परितः क्रोशमानं च वह्निकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् ॥ रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ॥ ४ ॥ प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजंतुसमन्वितम् ॥ महाघोरं काकुशब्दं प्रहारेण दृढेन च ॥५॥ क्रोशार्धमानं तद्दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदैः तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनःकाकैश्च संकुलम् ॥६॥ संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम्॥त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितः ॥७॥ प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च कुत्सितम् ॥८॥ अतिदुर्गंधिसंसक्तं व्याप्तं पापिभिरन्वहम् ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च तदाहारैः सुदारुणैः ॥९॥ रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः॥ तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् ॥ १० ॥ युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैः सदा ॥ गव्यूतिमानं ध्वांताक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥११॥ मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः॥श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं तदा ॥१२॥

अनाहारसे इनका ओष्ठतालु सूख जाता है इस प्रकार एक कुंड क्रोशपर्यन्त विट्से पूर्ण है ॥ ८ ॥ अति दुर्गन्धयुक्त है इसमें पापी भरे रहते हैं उस दारुण आहार करानेको पापी उनको ताडन करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं उस समय वे रक्षा करो रक्षा करो इस प्रकारका शब्द करते हैं यह तप्त मूत्र जलसे पूर्ण और मूत्रके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १० ॥ कीटोंसे खाये जाते महा पापियोंसे यह कुण्ड व्याप्त रहता है दो कोशके बीचमें ध्वान्त नामक कुण्ड है जिसमें पापियोंका बडा शब्द होता है ॥ ११ ॥ घोर रूप मेरे

दूतोंसे ताडित कंठ ओष्ठ तालु सूखनेसे दुःख पाते हैं श्लेष्मासे पूर्ण श्लेष्मकुंड है और उसी प्रकारके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १२ ॥ और उसीके भोजी पापियोंसे यह वेष्टित रहता है आधे कोशमें गरलकुंड है इसमें गरभोजी डाले जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके पापी गरलके कीडोंसे भक्षित होते हैं और मेरे दूतोंसे ताडित होकर बडा शब्द कर कंपित होते हैं ॥ १४ ॥ जो कि सर्पाकार वज्रसी डाढोंवाले दारुण शुष्ककंठ हैं नेत्रोंके मलसे पूर्ण दूषिकाकुंड है यह आधकोशमें है ॥ १५ ॥ यह पापियोंसे व्याप्त है इसमें भ्रमण करते कीट इनको भक्षण करते हैं वसाकुंड चारकोश पर्यंत व सारससे पूर्ण है ॥ १६ ॥ इसके भोजन करनेवाले पापियोंको मेरे दूत ताडना करते हैं शुक्रकुंड

तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा ॥ कोशार्धं गरकुंडं च गरभोजिभिरन्वितम् ॥ १३ ॥ गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कंपितैः ॥ १४ ॥ सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककंठैः सुदारुणैः ॥ नेत्रयोर्मलपूर्णं च कोशार्धं कीटसंयुतम् ॥१५॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः ॥ वसारसेन संपूर्णं कोशतुर्यं सुदुःसहम् ॥ १६॥ तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ शुक्रकुंडं कोशमितं शुक्रकीटैश्च संयुतम् ॥१७॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः ॥ दुर्गंधि रक्तवर्णं च वापीमानं गभीरकम् ॥ १८॥ तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितम् ॥ पूर्णं नेत्राश्रुभिस्ततं बहुपापिभिरन्वितम् ॥ १९ ॥ वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः॥ नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥२०॥ ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥ कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥ २१ ॥

एक कोश परिमाणमें शुक्र कीडोंसे युक्त है ॥ १७ ॥ यहांके पापी निरन्तर इन कीडोंसे खाये जाते हैं. रक्त कुंड बडा दुर्गंधियुक्त वापीके समान गहरा है ॥१८॥ और उसके भोजी पापियोंसे संकुल कीटोंसे भक्षित होता है नेत्रोंके आंसुओंसे भरा अश्रुकुंड अनेक पापियोंसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ यह पूर्वोक्त वापीकी प्रमाणमें चौथाई यहां कीटोंसे भक्षित होता रोता है गात्रमल कुंड मनुष्योंके गात्रके मलसे भरा है इसके खानेवाले पापी उसमें पडे रहते हैं ॥ २० ॥ यह यमदूतोंसे ताडित होकर कीटोंके भक्षणसे बडे दुःखी होते हैं कर्णविट्कुंड कानके मैलसे युक्त है यहां

पापी यही खाते हैं और वहांके कीडे उनको काटते हैं ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त बावडीसे विस्तारमें चौथाई है इसमें कीटोंसे भक्षित हो प्राणी रोता है मज्जाकुंड मनुष्योंकी मज्जासे युक्त महा दुर्गंधवाला है ॥ २२ ॥ यह महा पातकियोंसे युक्त वापीसे चौथाई परिमाण युक्त है मांसकुंड मांससे पूर्ण है यहां यमदूत पापियोंको ताडन करते हैं ॥ २३ ॥ यह वापी मानतक अनेक पापियोंसे व्याप्त होनेसे महा भयानक है इसमें कन्याके बेचनेवाले पडते और वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं ॥ २४ ॥ वे बडे भयानक शब्दसे त्रासित हो हाहाकार करते हैं नखकुंड लोमकुंड अस्थि कुंड यह बावडीसे चतुर्थांश विस्तारवाले हैं ॥२५॥ यह पापियोंसे भरे निरंतर मेरे दूतोंसे ताडित होते हैं तांबेके ऊपर प्रतप्त ताम्रकुंड है उल्मुकसे

पापीतुर्यप्रमाणं च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः ॥ मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गंधिसंयुतम् ॥२२॥ महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम्॥ परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥२३॥ पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकैः॥कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीट भक्षितैः॥२४॥पाहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः॥ वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम् ॥२५॥ पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तताम्रकुण्डं च ताम्रोपर्युल्मुकान्वितम्॥२६॥ ताम्राणां प्रतिमालक्ष्यैः प्रतप्तैर्व्याप्तं तदा॥ प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ॥२७॥ गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदंगारसंयुतम्॥२८॥लोहानां प्रति माश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम्॥प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया॥२९॥रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः॥महापातकि भिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ३० ॥ भयानकं ध्वांतयुक्तं लोहकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ चर्मकुंडं तप्तसुराकुंडं वाप्यर्धमेव च ॥ ३१ ॥

युक्त है ॥ २६ ॥ इसमें तांबेकी तपाई लाखों प्रतिमा हैं प्रत्येक पापी इनसे चिपटाये जाते हैं तब यह बडा शब्द करते हैं ॥२७॥ यह दो कोशके विस्तारमें हैं यमदूत यहां पापियोंको मारते हैं तप्त लोहधार और जलते अंगारोंसे युक्त लोहकुंड है ॥ २८ ॥ उसमें लोहोंकी गरम प्रतिमाओंसे पापी चिपटाये जाते हैं और गरम प्रतिमाओंमें चिपटनेसे बडा रुदन करते हैं ॥ २९ ॥ और दूतोंसे ताडित होकर रक्षा करो २ ऐसा शब्द करते हैं यह दो कोशमें महा पापियोंसे युक्त है ॥ ३० ॥ भयानक अंधकारसे युक्त लोहकुंड कहा है चर्मकुंड तप्तसुराकुंड

वापीसे आधा है ॥ ३१ ॥ यमदूतोंसे ताडित उनके भोजी पापियोंसे युक्त है यह शाल्मलीकुंड तीक्ष्ण कांटोंसे व्याप्त है ॥ ३२ ॥ यह लक्षपुरुष प्रमाण एक कोशमें महा दुःखदायक है और धनुष प्रमाण लम्बे कांटे इसमें भरे पड़े हैं ॥ ३३ ॥ इसके प्रत्येक कंटकमें महापापी विंधे पडे हैं, यमदूत वृक्षके अग्रभागसे उस कुंडमें धकेलते हैं ॥ ३४ ॥ तालु शुष्क होनेसे जल दो २ ऐसा शब्द करते हैं डरसे व्याकुल और दंडसे शिर चूर्ण किया जाता है ॥ ३५ ॥ और डरसे तेलपायी जीवोंके समान इधर उधर चलायमान होता है विपोदकुंड एक कोशतक तक्षकोंसे पूर्ण

तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतः शाल्मलिकुंडं च वृक्षकंटकशोभितम् ॥ ३२ ॥ लक्षपौरुषमानं च क्रोश मानं च दुःखदम् ॥ धनुर्मानैः कंटकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥३३॥ प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ वृक्षाग्रान्निपत द्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः ॥ ३४ ॥ जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः ॥ महाभियाऽतिव्यग्रैश्च दण्डैः संभग्न मस्तकैः ॥३५॥ प्रचलद्भिर्यथा तत्ततैलजीविभिरेव च ॥ विपोदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम् ॥३६॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् ॥ ३७ ॥ महापातकिभिर्युक्तं दग्धांगारैश्च वेष्टितम् ॥ काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः ॥ ३८ ॥ ध्वांतयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम् ॥ शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥३९॥ शस्त्रतल्पस्वरूपं च क्रोशतुर्यप्रमाणकम् ॥ वेष्टितं तत्पातकिभिः कुंतविद्धैश्च वेष्टितैः ॥४०॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककं ठोष्ठतालुकैः ॥ कीटैश्च शंकुप्रमितैः सर्पमानैर्भयंकरैः ॥ ४१ ॥

है ॥ ३६ ॥ उसके भक्षणवाले जीवों और पापियोंसे वह व्याप्त है मेरे दूत उनको ताडन करते हैं तप्त तेलका कुंड कीटादिसे रहित है ॥ ३७ ॥ यह दग्ध अंगारोंसे वेष्टित महा पापियोंसे व्याप्त है और दूतोंके मारनेसे दौडते महा शब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ ध्वान्तयुक्त कुंतकुंड क्रोशमान क्लेशदायक बडा भयानक है शूलाकार अग्रमें तीक्ष्ण लोहशस्त्र बरछी समूहोंसे व्याप्त है ॥ ३९ ॥ यहां चार कोशतक बर्छियोंकीही शय्या है वहां बरछियोंसे विंधे पापी भरे पड़े हैं ॥ ४० ॥ मेरे दूतोंके ताडन करनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूख गये हैं कीट

कुंडमें सर्पाकार शंकुके समान कीट हैं ॥ ४१ ॥ यह तीक्ष्ण दांतवाले विकृत अंग अंधकारसे व्याप्त हैं इनसे महापातकी भरे मेरे दूतोंसे ताडित होते हैं ॥ ४२ ॥ चार कोशमें पूयकुंड है इसके जीव यहांके प्राणियोंको काटते यही पापी खाते और मेरे दूत इनको ताडन करते हैं ॥ ४३ ॥ सर्पकुंड तालवृक्षके समान लम्बे अनंत सर्पोंसे भरा है यहां सर्प पापीके सब शरीरमें लिपटकर उसको भक्षण करते हैं ॥ ४४ ॥ और मेरे दूतोंसे ताडित हो बडा शब्द करते हैं. मशककुंड दंशकुंड गरलकुंड यह तीन कुंड मशकादिसे पूर्ण हैं ॥ ४५ ॥ यह सब आधेकोशके परिमाणमें महा पातकियोंसे युक्त हैं उसमें हाथ पैर बांधकर डालते हैं शरीर लोहू लुहान होजाता है ॥४६॥ मेरे दूतोंसे ताडित

तीक्ष्णदंतैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वांतयुतं सति ॥ महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ४२ ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च पूयकुंडं प्रचक्षते ॥ तद्भक्ष्यैः प्राणिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥४३॥तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥ सर्ववेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः॥४४॥ संकुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ कुंडत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः ॥४५॥ सर्वं क्रोशार्धमानं च महापातकिभिर्युतम् ॥ हस्तपादादिबद्धैश्च क्षतजौघेन लोहितैः ॥४६॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः॥ वज्रवृश्चिकयोः कुंडं ताभ्यां च परिपूरितम् ॥४७॥ वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः ॥ कुंडत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् ॥४८॥ तैर्बद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः ॥ तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुंडकम् ॥४९॥ कीटैः संकुलमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धमानं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः ॥५०॥ रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतिदुर्गंधिसंयुक्तं दुःखदं पापिनां सदा ॥ ५१ ॥

हो हाहाकार शब्द करते हैं वज्रदंष्ट्रकुंड और वृश्चिककुंड यह इन दोनोंसे पूर्ण हैं ॥ ४७ ॥ यह प्रमाणमें वापीसे आधे, वापियोंसे युक्त है, जहां वज्रके समान विच्छू काटते हैं शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, यह उन्हींसे पूर्ण हैं ॥ ४८ ॥ इनमें इन्हींसे बद्ध हुए पापी रहते हैं यह प्रमाणमें आधी बावडीके हैं और रक्त (रुधिर) से पूर्ण हैं गोलकुंड अंधकारमें तप्त जलसे पूर्ण है ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके कीटोंसे परिपूर्ण जो पापियोंको भक्षण करते हैं यह भी पापीके अर्ध प्रमाणमें है यहां कीटभक्षित पापी दुःख पाते हैं ॥ ५० ॥ सब प्रकार रोते और दुःखी होते

और यमदूत उनको ताडन करते हैं यह अति दुर्गंधिसे संयुक्त पापियोंको सदा दुःखदायक है ॥ ५१ ॥ दारुण विकरालाकार योंसे भक्षित नक्रकुंड है यह बावडीसे अर्धपरिमाणमें है, इसके जलमें कोटियों नाके हैं ॥ ५२ ॥ विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, भक्षण करनेवाले अनन्त काकभी जहां पापियोंको भक्षण करते हैं ॥५३॥ मंथानकुंड और बीजकुंड, मंथान और बीज नामक कीटोंसे व्याप्त है सो धनुषके प्रमाणमें है यहां इनसे भक्षितहो पापी बडाशब्द करते हैं ॥५४॥ सौ धनुषमें जीवोंसे जिनकी दंष्ट्रा वज्रके आकार युक्त हैं यह पापियोंको भक्षण करते जिनका बडा शब्द होता है और वहाँ बडा अंधकार है ॥ ५५ ॥ पाषाणकुंड बापी मानसे बना तप्त पत्थरका है जलते अंगारके समान भूमिपर दौडते हुए

दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं पापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः ॥ ५२ ॥ विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शत कोटिभिः ॥ काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ५३ ॥ मंथानकुंडं बीजकुंडं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम् ॥ भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥ ५४ ॥ धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा ॥ शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सांद्रध्वांतमयं परम् ॥ ५५ ॥ वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् ॥ ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥ क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् ॥ महापातकिभिर्युक्तं लालकुण्डं च लोहितैः ॥ ५७ ॥ क्रोशमात्रं च गंभीरं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ तप्तांजनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् ॥ ५८ ॥ चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानं च संततम् ॥ ६० ॥

पापियोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ क्षुरधारके समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे निर्मित तीक्ष्ण पाषाणकुंड हैं लोहितयुक्त पापियोंसे युक्त लाला कुंडहै ॥५७॥ यहएक कोशपर्यंत गहरा है मेरे दूत यहां पापियोंको दण्ड देते हैं मसीकुण्ड तप्तांजन पर्वतके समानवाले पाषाणोंसे व्याप्त है सो धनुषपरिमाणमें है ॥५८॥ इसमें अनेक पापी पडते और मेरे दूत उनको दंड देते हैं यह चूर्ण द्रव्यसे पूर्ण चिल्लाते हुए पापियोंसे युक्त हैं ॥५९॥ यहीं भोजन करनेको जलना बडे प्रदग्ध होते मेरे दूत उनको मारते हैं कुलालचक्रकुंड निरंतर भ्रमण करता रहता है ॥ ६० ॥ यह बडा तीक्ष्ण सोलह आरोंसे सम्पन्न

चूर्णीभुत हुए पापियोंसे युक्त है बडाही टेढा निम्न चार कोशके मध्यमें है ॥६१॥ कन्दराके आकारमें निर्मित तत्ते जलोंसे व्याप्त जलजंतुओंसे युक्त महापापियोंसे भराहुआ है ॥ ६२ ॥ जहांके पानी प्रज्वलित होकर भयानक शब्द करते हैं महा अंधकार है, कूर्मकुंड अनेक विकृत आकारवाले दारुण कच्छपोंसे भरा है ॥ ६३ ॥ जो अपने जलमें पडे पापियोंको निरंतर भक्षण करते हैं ज्वालाकुण्ड अग्निके समान तेजवाले पदार्थोंसे निर्मित एक कोशपर्यंत है ॥ ६४ ॥ शब्द करनेवाले क्लेश पाये हुए पापियोंसे निरंतर व्याप्तहै, भस्मकुंड एक कोशपर्यंत गहरे तत्तेभस्मसे युक्त है ॥६५॥ निरंतर भस्म होनेवाले और भस्म खानेवाले पापियोंसे युक्त है तत्ते पाषाण और लोह समूहोंसे परिपूर्ण है ॥ ६६ ॥ दग्धकुण्डमें

सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम् ॥ अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ६१ ॥ कंदराकारनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम् ॥ महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजंतुभिः ॥ ६२ ॥ ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च ध्वांतयुक्तं भयानकम् ॥ कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः ॥ ६३ ॥ जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम् ॥ ६४ ॥ शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा ॥ क्रोशमानं च गंभीरं तप्तभस्माभिरन्वितम् ॥ ६५ ॥ शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षिभिः ॥ तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः ॥ ६६ ॥ पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं च शुष्कतालुकैः ॥ क्रोशमानं ध्वांतयुक्तं गंभीरमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥ ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम् ॥ ६८ ॥ नानाप्रकारैर्विरुतैर्जलजंतुभिरन्वितम् ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् ॥६९॥

दग्धगात्र हुए जीव रहते हैं और उनके कंठ तालु सूखजाते हैं यह कुंड एक कोशपर्यंत अंधकारमय बडा गंभीर और दारुण है ॥ ६७ ॥ यहां मेरे दूत पापियोंको मारते और दग्धकरते हैं, इससे यह दग्धकुंड कहाता है क्षारकुंड बडी २ लहरोंवाला तत्ते क्षारसे संयुक्त है ॥ ६८ ॥ अनेक प्रकारके शब्द करनेवाले जलजंतुओंसे सम्पन्न दो गव्यूती (चार कोश) के प्रमाणमें गम्भीर अंधकारसे युक्त है ॥ ६९ ॥

वहांके जीव पापियोंको दुःख देते और काटते हैं यह जलते और शब्द करते परस्पर एक दूसरेको देखते हैं ॥ ७० ॥ प्रतप्त सूचीकुंड बडाभयानक है असिपत्रकुंड असिपत्रके समान धारवाले पत्तोंसे सम्पन्न ताल वृक्षके नीचे है ॥ ७१ ॥ यह इन्हीं पत्तोंसे युक्त आधे कोशके मध्यमें है और वृक्षाग्रसे गिराये जाते पापियोंके रुधिरसे व्याप्त है ॥ ७२ ॥ रक्षा करो इस प्रकार असत् पुरुष शब्द करते हैं वो कुंड गंभीर ध्वांतयुक्त रक्तकीटसे सम्पन्न है ॥ ७३ ॥ यह असिपत्रकुंड बडा भयानक है क्षुरधाराकुंड सौधनुषके प्रमाणमें तीक्ष्ण अस्त्रोंसे व्याप्त है

तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजंतुभिः ॥ ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम् ॥ ७० ॥ प्रतप्तसूचीकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ असीवधारा पत्रस्याऽप्युच्चैस्तालतरोरधः ॥७१॥ क्रोशार्धमानं कुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥ पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां ध्रुवम् ॥७२॥ परित्राहीतिशब्दं च कुर्वतामसतामपि ॥ गम्भीरं ध्वान्तयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम् ॥ ७३ ॥ तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ धनुःशतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम् ॥ ७४ ॥ पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् ॥ सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् ॥ ७५ ॥ पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं च सुचीमुखम् ॥ कस्यचिज्जंतुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति ॥७६॥ कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ महापातकिनां चैव महाक्लेशप्रदं परम् ॥७७॥ तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम् ॥ कुण्डं नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम् ॥ ७८ ॥ गम्भीरं कूपरूपं च पापिनां संकुलं सदा ॥ धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ॥ ७९ ॥

॥ ७४ ॥ यह पापियोंके रक्तसे पूर्ण भयानक क्षुरधाराओंसे सम्पन्न है. सूचीमुखकुंड अस्त्रोंसे परिपूर्ण पापियोंके रक्तोंसे पूर्ण है ॥ ७५ ॥ यह परिमाणमें पचास धनुष, पापियोंको बडा क्लेशकारक है गोकानामक जन्तुविशेषके मुखके समान गोकामुख नरक है ॥ ७६ ॥ यह कूपके समान बड़ा गंभीर वीस धनुषके प्रमाणमें है यह महा पातकियोंको बड़ा क्लेशदेनेवाला है ॥ ७७ ॥ वहां गोकामुख नामवाले कीट पापियोंको भक्षण करते हैं वहां जीव निरंतर नम्र मुख रहते हैं नक्रमुखाकार कुंड सोलह धनुषके प्रमाणमें है ॥ ७८ ॥ यह कूपके समान

गंभीर पापियोंसे सम्पन्न है गजदंशनकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें है इसमें भी पापी दुःखपाते हैं ॥ ७९ ॥ गोमुखाकृतिकुंड तीस धनुषके प्रमाणमें है यह गोमुख निरंतर पापियोंको क्लेश देता है ॥ ८० ॥ कुंभीपाककुंड कालचक्रके समान भ्रमण करता कुंभके आकार अंधकार युक्त चार कोशमें है ॥ ८१ ॥ यह लाख पुरुषप्रमाण गंभीर और बडे विस्तारमें है इसमें पापी दुःख पाते हैं इसके अन्तर्गत कहीं तेल और कहीं ताम्रकुंड है ॥ ८२ ॥ यह कृमियोंसे भरा है प्रधान पापी इसमें मूर्छित पडे रहते हैं सब ओरसे शब्द करते परस्पर नाशको प्राप्त होते हैं

धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति ॥ पापिनां क्लेशदं शश्वद्गोमुखं परिकीर्तितम् ॥ ८० ॥ कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम् ॥ कुंभाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ८१ ॥ लक्षपौरुषमानं च गंभीरं विस्तृतं सति ॥ कुत्र चित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुंडमेव च ॥८२॥ पापिनां च प्रधानैश्च मूर्च्छितैः कृमिभिर्युतम् ॥ परस्परं च नश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥ ८३ ॥ ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा ॥ घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च क्षणंक्षणम् ॥८४॥ पातितैर्यमदूतैश्च रुदंत्यस्मात्क्षणं पुनः ॥ यावंतः पापिनः संति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि ॥८५॥ ततश्चतुर्गुणाः संति कुम्भीपाके च दुःखदे ॥ सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः ॥ ८६ ॥ सर्वकुण्डं प्रधानं च कुंभीपाकं प्रकीर्तितम् ॥ कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः ॥ ८७ ॥ उत्थापिताश्च दूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः ॥ निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः पुनः ॥ ८८ ॥

॥ ८३ ॥ यहां यमदूत मूशल और मुद्गरोंसे ताडन करते हैं घूणमान और पतित होते क्षण क्षण मूर्छित होत हैं ॥ ८४ ॥ और यमदूतोंसे पतित होते हुए रुदन करते हैं. हे सुन्दरि! सब कुंडमें जितने पापी हैं ॥ ८५ ॥ कुंभीपाकमें इनसे चौगुने पापी रहते हैं वे इस दुःखदायक नरकमें चिरकाल तक अपने कर्मोंका भोग भोगते हैं ॥ ८६ ॥ यह कुंभीपाक सब कुंडोंमें प्रधान कहा है कालसूत्र नरकमें कालनिर्मित सूत्रसे पापी बंधे रहते हैं ॥ ८७ ॥ क्षणमात्रमें दूत ऊपरको उछालते और क्षणमें डुबा देते हैं. बहुत कालतक निश्वासबद्ध होकर मोहको प्राप्त हो

जाते हैं ॥८८॥ हे सुन्दरि ! वह देहभोगके कारण दुःख पाते हैं यह कालसूत्रनरक तप्त जलसे पूर्ण है ॥८९॥ अवट गर्तसमान कूपके भेदवाला मत्स्योदकुंड है यह भी तप्तजलसे भरा चौबीस धनुषके प्रमाणमें है ॥ ९० ॥ दग्ध अंगवाले महापातकियोंसे व्याप्त है और मेरे दूतों द्वारा वे ताडित होते हैं और दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसके जलस्पर्श करते ही गिरते हुए पापियोंकी सब व्याधी एकसाथ प्राप्त हो जाती है यह सौ धनुषप्रमाण कुंड है॥९२॥और कृमि कंतुक कुंडमें इसी नामके जीव पापियोंको दुःख देते हैं वह मर्मस्थान छेदन होनेसे हाहाकार शब्द करते

अतीव क्लेशसंयुक्ता देयभोगेन सुन्दरि ॥ प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रप्रकीर्तितम् ॥ ८९ ॥ अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः ॥ प्रतप्ततोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ ९० ॥ व्याप्तं महापातकिभिर्व्यादग्धांगैश्च संततम् ॥ मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥ यत्रोदस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् ॥ भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुंडे धनुःशते ॥ ९२ ॥ अरुंतुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभिर्यच्च संकुलम् ॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवारुंतुदं विदुः ॥ ९३ ॥ तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुपदग्धकैः ॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजधनुःशतम् ॥ ९४ ॥ पातमात्रेण पापी च पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥ क्रोशमात्रेण कुंभं च तत्पाशवेष्टनं विदुः ॥ ९५ ॥ पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत् ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम् ॥ ९६ ॥ पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकंपनम् ॥ अतीव हिमतोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकंपनम् ॥ ९७ ॥ ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसंकुलम् ॥ ९८ ॥

हैं ॥९३॥ पांसुभोज्यकुण्ड तत्ती धूरिसे भरा, जलती हुई भूमिसे व्याप्त सौ धनुषके प्रमाणमें है. यहांके जीवोंको तुष भक्षण कराई जाती है ॥ ९४ ॥ पाशसे वेष्टनकुंडमें गिरतेही प्राणी पाश वेष्टित हो जाता है यह पाश वेष्टनकुण्ड एक कोश पर्यन्त है ॥ ९५ ॥ शूलकुण्डमें गिरतेही पापी शूलसे वेष्टित होता है. यह शूलप्रोत कुण्ड वीस धनुषके प्रमाणमें है ॥ ९६ ॥ प्रकंपनकुण्डमें गिरतेही प्राणी कंपित होता है. यह बडे शीतल जलका कुण्ड आधे कोशमें है ॥ ९७ ॥ जिसमें यमदूत पापियोंके मुखमें उल्का देते हैं. यह वीस धनुषके प्रमाणमें उल्का मुख नरक है ॥ ९८ ॥

अंधकूप कुण्ड लाख पुरुषके प्रमाण गहरा, सौ धनुषमें विस्तारवाला अनेक प्रकारके कृमियोंसे व्याप्त बडा भयानक है ॥ ९९ ॥ अधिक अंधकारसे व्याप्त गोल कूपाकार हैं और वहां वैसेही जीव पापियोंको भक्षण करते हैं व जीवगण परस्पर नष्ट होते हैं ॥ १०० ॥ तप्त जलमें दग्ध होने और कीटोंके सन्मुखभक्षित होनेसे तथा नेत्रोंसे निरंतर अंधकार रहनेसे इसको अंधकूप कहते हैं ॥ १०१ ॥ जहां अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे पापी विद्ध होते हैं वहां वीस धनुष्के प्रमाणमें वेधन नामवाला नरक है ॥ २ ॥ जहां यमदूत पापियोंको निरंतर दण्डसे ताडित करते

लक्षपौरुषमानं च गंभीरं च धनुःशतम् ॥ नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तं च भयानकम् ॥ ९९ ॥ अत्यंधकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम् ॥ तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम् ॥ १०० ॥ तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः ॥ ध्वांतेन चक्षुषा चांधैरंधकूपः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥ नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ दंडेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः ॥ धनुःषोडशमानं च तत्कुंडं दंडताडनम् ॥ १०३ ॥ निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरंध्रं प्रकीर्तितम् ॥ १०४ ॥ पततां पापिनां कुंडे देहश्चूर्णो भवेदिह ॥ लोहबंदीनि बद्धानां कोटिपौरुषमानकम् ॥ १०५ ॥ गंभीरध्वांतसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ मूर्च्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥ ॥ १०६ ॥ दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः ॥ धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥ १०७ ॥ पतनेनैव पापी च शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ वालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥ ८ ॥

हैं वह सोलह धनुष्प्रमाण दंडताडनकुंड है ॥ ३ ॥ जिसमें पापी मच्छियोंके समान जालमें बाँधे जाते हैं वहां वीस धनुष्के प्रमाणमें जालरन्ध्र नाम कुंड है ॥ ४ ॥ जहां गिरतेही पापियोंका देह चूर्ण हो जाता है जहां पापी लोहेकी वेडीमें बाँधे जाते हैं कोटि पुरुषोंके मानवाला ॥ ५ ॥ गंभीर अंधकारसे युक्त वीस धनुष्के समान विस्तारवाला मूर्च्छित जड़ पापियोंसे युक्त देह चूर्ण नरक कहा है ॥ ६ ॥ और जहां यमदूतोंसे ताडित हो पापी दलित होते हैं वह सोलह धनुष्के प्रमाणमें दलनकुंड ह ॥ ७ ॥ जहां गिरतेही पापीके कण्ठ ओष्ठ तालु शुष्क होजाते हैं.

जहां तत्ती वालुका ह तीस धनुष्के प्रमाणवाला ॥ ८ ॥ सौ पुरुषमान गहरा अंधकारसे युक्त दूसरेको दुःख देनेवाले पापियोंको दुःखदायक शोषणकुंड है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके चर्मकषायके जलसे पूर्ण सौ धनुषके प्रमाणमें दुर्गन्धसे युक्त और वहांके भक्षण करनेवाले प्राणियोंसे व्याप्त कुपकुण्ड है ॥ ११० ॥ शूर्पकुण्ड शूर्पाकार बारह धनुषके प्रमाणमें है यह तत्ते लोहेकी वालुकासे युक्त पूर्ण पातकियोंसे भरा हुआ॥ ११॥ दुर्गन्धसे युक्त यही वस्तु खानेवाले पापियोंसे संकुल यह शूर्पाकारमुख कुण्ड बारह धनुषके विस्तारमें है ॥ १२ ॥ ज्वालामुखकुण्ड तत्ती

नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःश शतपौरुषमानं च गम्भीरं ध्वांतसंयुतम् ॥ पोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम् ॥ ९ ॥ ध्वांतसंयुतम् ॥ ११० ॥ शूर्पाकारमुखं कुंण्डं धनुर्द्वादशमानकम् ॥ तप्तलोह तम् ॥ दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः संकुलं कपम् ॥ ११० ॥ शूर्पाकारमुखं कुंण्डं धनुर्द्वादशमानकम् ॥ तप्तलोह वालुकाभिः पूर्णं पातकिसंयुतम् ॥ ११ दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः संकुलं सति ॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनु द्वादशमात्रकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तवालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम् ॥ अंतरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा ॥ १२ ॥ धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुंदरि ॥ ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च ॥ १४ ॥ तन्महाक्लेशदे शश्वत्कुण्डे ज्वालमुखे स्मृतम् ॥ पातमात्रात्र पापीमूर्छितो वै नरो भवेत् ॥ ११५ ॥ तप्तेष्टकाभ्यंतरितं वाप्यर्ध जिह्व कुंडकम् ॥ ॥ धूम्रांधकारसंयुक्तं धूम्रांधैः पापिभिर्युतम् ॥ १६ ॥ धनुःशतं श्वासरन्ध्रैर्धूम्रांधं परिकीर्तितम् ॥ पातमा त्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् ॥ १७ ॥

वालुकासे व्याप्त महा पापियोंसे युक्त अन्तरमें अग्निशिखा और मुखपर भी ज्वालासे व्याप्त ॥ १३ ॥ जिसका वीस धनुष्का प्रमाण है और ज्वालासे दग्ध शरीर हुए पापियोंसे संकुल ॥ १४ ॥ यह महाक्लेश देनेवाला ज्वालामुखकुंड है जहां गिरतेही पापी मूर्छित होते हैं ॥ १५ ॥ धूम्रांधकुंड तत्ती ईंटोंके अंतरमें अर्धजिह्व धूम्र अंधकारसे संयुक्त धूम्रांध पापियोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ यह सौ धनुष्के प्रमाणमें स्वांसरंध्र होनेसे

धूम्रांध कहाता है और जहां गिरतेही पापी नागोंसे वेष्टित होता है ॥१७॥ वह सौ धनुषमें नागोंसे पूर्ण नागवेष्टितकुंड है यह मैंने ८६ छयासी कुंडोंका तुमसे वर्णन किया ॥ ११८ ॥ और उनका लक्षण भी कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सावित्री बोली अब आप सारोंकी सार देवीभक्ति मुझको प्रदान कीजिये जो पुरुषोंके मुक्तिद्वारका बीज और नरकसागरसे तारनेवाली है ॥ १ ॥ मुक्तिसारोंकी कारण सम्पूर्ण अशुभोंकी विनाशक कर्मरूपी वृक्षकी निवारक और किये हुए

धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत् ॥ षडशीति च कुंडानि मयोक्तानि निशामय ॥ लक्षणं चाऽपि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे न० स्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सावित्र्युवाच ॥ देविभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम् ॥ पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥१॥ कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम् ॥ दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम् ॥२॥ मुक्तिश्च कतिधाप्यस्ति किंवा तासां च लक्षणम् ॥ देविभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्याऽपि खंडनम् ॥ ३ ॥ तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता ॥ किंचिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदांवर ॥ ४ ॥ सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थस्नानं व्रतं तपः ॥ अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ५ ॥ पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम् ॥ मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥ ६ ॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्वं सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वांछितः ॥ अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥७॥

पापसमूहोंकी विनाशक है ॥ २ ॥ और मुक्ति कितने प्रकारकी हैं उनके लक्षण क्या हैं तथा भक्तिका स्वरूप और उसके भेद कितने हैं और किये कर्मोंका भोग किस प्रकार खण्डन होता है सो कहिये ॥ ३ ॥ विधाताने स्त्रीजातिको तत्त्वज्ञानसे विहीन कहा है, हे वेदविदांवर ! सो आप सारभूत कुछ ज्ञान कहिये ॥४॥ सर्व दान, यज्ञ, तीर्थ स्नान,तप, व्रत यह अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेकी सोलहवीं कलाभी नहीं है ॥५॥ गौरवमें पितासे माता सौ गुनी है यह निश्चय है, परन्तु हे प्रभो ! ज्ञानदाता गुरु मातासे सौ गुण पूज्य है ॥ ६ ॥ धर्मराज बोले हमने

पहले तुमको वर दिया है कि, जो तुम्हारे मनमें इच्छित है सो प्राप्त होगा अब मेरे वरसे तुमको भगवतीकी भक्ति भी प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ हे कल्याणि ! अब तुम देवीके गुण कीर्तन सुननेके योग्य हो जो वक्ता पृच्छक और सुननेवालोंके कुल तारण करनेवाली है ॥ ८ ॥ शेषजी जिसको सहस्र मुखसे नहीं कह सकते शंकर जिसको पंचमुखसे नहीं कह सकते ॥ ९ ॥ चारों वेदोंके धाता जगत्के रचनेवाला विधाता ब्रह्मा चार मुखसे तथा सर्ववित् विष्णु भी पूर्णतया कहनेको समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ कार्तिकेय छःमुखसे गणेश तथा योगीन्द्रोंके गुरु भी कहनेको

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम् ॥ वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम् ॥ ८ ॥ शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः ॥ मृत्युंजयो न क्षमश्च वक्तुं पंचमुखेन च ॥९॥ धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि॥ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नाऽलं विष्णुश्च सर्ववित् ॥१०॥ कार्त्तिकेयः षण्मुखेन नाऽपि वक्तुमलं ध्रुवम् ॥ न गणेशः समर्थश्च योगींद्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ११ ॥ सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च ॥ कलामात्रं यद्गुणानां न विदंति बुधाश्च ये ॥ १२ ॥ सरस्वती जडीभूता नाऽलं तद्गुणवर्णने ॥ सनत्कुमारो धर्मश्च सनंदश्च सनातनः ॥ १३ ॥ सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः ॥ विचक्षणा न यद्वक्तुं किं चान्ये जडबुद्धयः ॥१४॥ न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनींद्रा योगिनस्तथा ॥ के चाऽन्ये च वयं के वा श्रीदेव्या गुणवर्णने ॥ १५ ॥ ध्यायन्ते यत्पदांभोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥ १६ ॥

समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ सब शास्त्रोंके सारभूत चार वेद हैं तथा दूसरे पंडित जिसके गुणोंकी कलामात्रभी नहीं जानते हैं ॥ १२ ॥ जिनके गुणवर्णनमें सरस्वती भी जडीभूत हो रही है.सनत्कुमार,धर्म, सनन्दन, सनातन ॥ १३ ॥ सनक, कपिल, सूर्य तथा दूसरे ब्रह्माजीके पुत्र यह चतुर भी जिनके गुण नहीं कहसकते फिर दूसरे जडबुद्धियोंकी कौन कहे ॥ १४ ॥ जिन देवीके गुण कहनेको सिद्ध मुनीन्द्र भी समर्थ नहीं तो मैं तथा दूसरे क्या कह सकते हैं ? ॥ १५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि जिनके चरणकमलका ध्यान करते हैं वह केवल

भक्तोंकोही अतिशय साध्य है और दूसरोंको अतिशय दुर्लभ है ॥ १६ ॥ कोईही कुछ उनके गुणोंका कीर्तन जानता है पर हाँ ब्रह्मविशारद ब्रह्माजी कुछ विशेष जानते हैं ॥१७॥ उनसे अधिक गणेश ज्ञानियोंके गुरु जानते हैं और सबसे अधिक सर्वज्ञ शंकर जानते हैं ॥ १८ ॥ परमात्मा कृष्णने उनको पहिले ज्ञान दिया था जो अतिशय निर्जनवन गोलोकके रासमण्डलमें ॥ १९ ॥ यह ज्ञान कहा था और शिवलोकमें शंकरने धर्मके निमित्त यह ज्ञान कहा था ॥ २० ॥ धर्मने पूछनेपर सूर्यसे कहा था जिसको सुनकर हमारे पिताने तपसे आराधनकर देवीको प्राप्त

कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः ॥१७॥ ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः ॥ सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव सः ॥ १८ ॥ तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना ॥ अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोकं रासमण्डले ॥ १९ ॥ तत्रैव कथितं किंचित्तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥२०॥ धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा ॥ यमाराध्य मत्पिताऽपि संप्राप तपसा सति ॥२१॥ पूर्वं स्वं विषयं चाऽहं न गृह्णामि प्रयत्नतः ॥ वैराग्ययुक्ततपसे गंतुमिच्छामि सुव्रते ॥२२॥ तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् ॥ यथागमं तद्वदामि निबोधाऽतीव दुर्गमम् ॥२३॥ तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा ॥ यथाकाशो न जानाति स्वांतमेव वरानने ॥ २४ ॥ सर्वात्मा सर्वभगवान्सर्वकारणकारणः ॥ सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः ॥ २५ ॥ नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः ॥ निरंकुशो निराशंको निर्गुणश्च निरामयः ॥ २६ ॥

किया ॥ २१ ॥ प्रथम मुझको देवताओंके यह अधिकार देनेपर मैंने यह स्वीकार न किया और वैराग्ययुक्त होकर मैंने तपस्या करनेके निमित्त वनजानेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ तब हमारे पिताने हमसे वह दुर्लभ ज्ञान कहा सो मैं तुमसे कहता हूं तुम सुनो ॥ २३ ॥ स्वयं वह भगवती भी अपने गुणोंको नहीं जानती औरोंकी तो क्या कथा है. हे वरानने ! जैसे आकाश अपना अन्त नहीं जानता ॥ २४ ॥ इसी कारण सर्वात्मा भगवान् सबके कारणोंका कारण सर्वेश्वर सबकी आदि सब कुछ जाननेवाले सबसे परिपालक ॥ २५ ॥ नित्यरूपी, नित्य

स्वरूपवाले, नित्यानंद, निराकृति, निरंकुश, निरानंद, निर्गुण, निरामय ॥२६॥ निर्लिप्त सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, प्रकृति और उसके विकार प्राकृत ॥ २७ ॥ स्वयं पुरुष और प्रकृति यह परस्पर अभिन्न है जैसे अग्निके अग्निकी शक्ति भिन्न नहीं है ॥ २८ ॥ सो यह महामाया सच्चिदानंदरूपिणी शक्ति अरूप होनेपर भी भक्तोंके अनुग्रह करनेको अनेक रूप धारण करती है ॥ २९ ॥ पहला इनका रूप परम अद्भुत गोपालसुन्दरी है जो अतिशय सुन्दर और मनोहर है ॥ ३० ॥ यह नये मेघके समान श्याम किशोरवेप सम्पन्न जो

निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्पर ॥ मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः ॥ २७ ॥ स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम् ॥ यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नाऽस्त्येव कुत्रचित् ॥ २८ ॥ सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानंदरूपिणी ॥ रूपं बिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥ गोपालसुन्दरीरूपं प्रथमं सा ससर्ज ह ॥ अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥३०॥ नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेपकम् ॥ कंदर्पकोटिलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥ ३१ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभा मोचन लोचनम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥ ३२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूपणभूपितम् ॥ सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा ॥३३॥ परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ सुखदृश्यं च शांतं च राधाकांतमनंतकम् ॥ ३४ ॥ गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिश्च संततम् ॥ रासमंडलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ३५ ॥

कोटिकंदर्पके समान सुन्दर लीला धाम मनोहर ॥ ३१ ॥ शरत्के मध्याह्न कमलकी शोभाको जिनके नेत्र लज्जित करते शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रोंको जिनका मुख लज्जित करता है ॥ ३२ ॥ अमूल्य रत्नोंके बने अनेक भूषणोंसे भूषित स्मितमुख पीताम्बरसे निरन्तर शोभायमान ॥३३॥ वह परब्रह्मका स्वरूप ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान सुखदृश्य शान्त राधाके कान्त अनन्तरूप ॥ ३४ ॥ निरन्तर मन्दमुसकानयुक्त गोपियोंसे देखे जाते

1 गोपीवेषधारी कृष्ण ।

हुए रासमण्डलके मध्यमें रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३५ ॥ वंशी बजाते द्विभुज वनमालासे विभूषित कौस्तुभेन्द्र मणियोंमें श्रेष्ठ मणियोंसे जिनका वक्षस्थल उज्ज्वल हो रहा है ॥ ३६ ॥ कुंकुम अगर कस्तूरी और चन्दनसे चर्चित विग्रह सुन्दर चंपेकी मालासे युक्त मालती मालासे मंडित ॥ ३७ ॥ सुंदर चंद्रके भूषणकी शोभासे व्याप्त चूडा वंकिमसे विराजमान जिनको इस प्रकारसे भक्तजन ध्यान करते हैं ॥ ३८ ॥ जिनके भयसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते हैं और कर्मानुसार लिखे सब कर्मोंको करते हैं ॥३९॥ जिनकी आज्ञासे तप और कर्मोंके

वंशीं क्वणंतं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभेंद्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥ चारुचंपकमालाक्तं मालतीमाल्यमंडितम् ॥ ३७ ॥ चारुचन्द्रकशोभाढ्यं चूडावंक्रिमराजितम् ॥ एवंभूतं च ध्यायंति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च ॥ कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया ॥ विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् ॥ ४० ॥ कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥ शिवो मृत्युंजयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥ यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः ॥ परमानंदयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः ॥ ४२ ॥ यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥ तपनश्च प्रतपति यद्भयात्संततं सति ॥ ४३ ॥ यदाज्ञया वर्षतींद्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥ यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम् ॥ ४४ ॥ दिशो रक्षंति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया ॥ भ्रमंति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च ॥ ४५ ॥

फलभी देते हैं और जिनके भयसे विष्णु सबकी रक्षा करते हैं॥४०॥जिनके भयसे कालाग्नि रुद्र जगत्का संहार करते हैं शिव मृत्युंजय ज्ञानियोंके भी गुरु ॥ ४१ ॥ जिनके ज्ञानसे वह योगीश ज्ञानवित्प्रभु ज्ञानवान् हैं परमानंद तथा भक्ति वैराग्यसे संयुक्त है ॥ ४२ ॥ जिनके भयसे शीघ्रगामियोंमें श्रेष्ठ पवन वहन करती है जिनके भयसे सूर्य निरंतर तपता है ॥ ४३ ॥ जिनकी आज्ञासे मेघ वर्षता मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है जिनकी आज्ञासे अग्नि जलाती और जलशीतल रहता है ॥४४॥ दिक्पाल दिशाओंकी रक्षा करते जिनकी आज्ञासे महाभीत रहते हैं जिनके

भयसे राशिचक्र और ग्रह भीत होकर चलते हैं ॥४५॥ वृक्षोंमें फल लगते और भयसे फूल त्यागते हैं जिनकी आज्ञाके भयसे समयपर काल कलन करता है॥४६॥जलस्थलके जीव जिसकी आज्ञाके विना जीवन धारण नहीं कर सकते जो अकालमें रणमें विद्धको भी हरण नहीं कर सकते॥४७॥ उन्हींकी आज्ञासे वायु जलको तथा कूर्म सागरके जलको धारण करता है; कूर्म और शेष सागर पर्वतसहित भूमिको ॥४८॥ अर्थात् क्षमायुक्त नानारत्न सम्पन्नको जिसकी आज्ञासे धारण करती है जिसमे सब प्राणी स्थित और मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ इन्द्रकी आयु इकहत्तर चौकडी

भयात्फलंति वृक्षाश्च पुष्पंत्यपि च यद्भयात् ॥ यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात् ॥ ४६ ॥ तथा जलस्थल स्थाश्च न जीवंति यदाज्ञया ॥ अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च ॥ ४७ ॥ धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयकूर्मं तदाज्ञया ॥ कूर्मोऽनंतं स च क्षोणीं समुद्रान्सा च पर्वतान् ॥ ४८ ॥ सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या ॥ यतः सर्वाणि भूतानि स्थी यंते हंति तत्र हि ॥ ४९ ॥ इंद्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥ अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम् ॥ ५० ॥ एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः ॥ ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः॥ चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः ॥५२॥ प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः॥ लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपंकजे ॥५३॥ विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः॥ विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः ॥५४॥

युगकी होती और अट्ठाईस इंद्रके पातमें ब्रह्माका एकदिन होता ॥५०॥ इस प्रकार ब्रह्माके तीस दिनका महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु छःऋतुओंका ब्रह्माका एक वर्ष इस प्रकारके सौ वर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माके निपात होनेपर विष्णुका एकपल होता है उनके चक्षु मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाती है ॥५२॥ प्राकृतिक प्रलय होनेमें चराचर सब देवता धाता विधाता श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं ॥५३॥ क्षीरोदशायी विष्णु और वैकुण्ठमें जो चतुर्भुज हैं वह श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें लीन हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

जिसके ज्ञानमें ज्ञानाधीश सनातन शिव लीन हो जाते हैं और दुर्गा विष्णुमायामें सब शक्तियें लीन हो जाती हैं ॥ ५५ ॥ और वह कृष्णकी बुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता होती है. नारायणके अंश स्कन्द उनके वक्षस्थलमें लीन हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण अंशरूप गणेश्वर उनकी भुजामें लीन हो जाते हैं और पद्मांशा पद्मा राधामें लीन हो जाती है ॥ ५७ ॥ और सब देवताओंकी स्त्रियें गोपियोंमें और गोपी राधामें लीन होती हैं, वह कृष्णकी प्राणप्रिया देवी उनके प्राणोंमें स्थित होती है ॥ ५८ ॥ सावित्री और सब वेदशास्त्र सरस्वतीमें लीन होकर वह

यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञानाधीशः सनातनः ॥ दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ॥ ५५ ॥ सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता ॥ नारायणांशः स्कंदश्च लीनो वक्षसि तस्य च ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः ॥ पद्मांशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते ॥ ५७ ॥ गोप्यश्चाऽपि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोषितः ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता ॥ ५८ ॥ सावित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः ॥ ५९ ॥ गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु ॥ तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः ॥ ॥ ६० ॥ जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः ॥ वैष्णवाश्चरणांभोजे परमानंदसंयुताः ॥ ६१ ॥ सारात्सारतरा भक्ती रसपीयूषपायिनः ॥ विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट्[1] ॥ ६२ ॥ यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ॥ यस्य चक्षुष उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत् ॥ ६३ ॥

वाणी परमात्माकी जिह्वामें स्थित होती है ॥ ५९ ॥ गोलोकके गोप उनके लोममें स्थित होते हैं उनके प्राणमें सबके प्राणवायु अग्निमें लीन होते हैं ॥ ६० ॥ जठराग्निमें हुताशन, जल उनके जिह्वाग्रमें, भक्तिसम्पन्न वैष्णव उनके चरणकमलमें परमानंदसे लीन होते हैं ॥६१॥ जो सारसे भी सार भक्तिरूप अमृत पानेवाले हैं क्षुद्र विराट्के रूप महाविराट्में और महाविराट् कृष्णमें विलीन होते हैं ॥६२॥ जिसके लोमकूपोंमें

[1] कठिनसे प्राप्त।

अनन्त विश्व हैं जिनके नेत्रके उन्मेषमें प्राकृत प्रलय हो जाता है ॥६३॥ फिर पलक खोलनेमें सृष्टि हो जाती है जितना समय पलक लगानेका है इतना ही खोलनेका है ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके सौ वर्षमें सृष्टिका सूत्र लय होता है हे सुव्रते ! ब्रह्माकी सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है ॥६५॥ जैसे पृथ्वीके रजोंकी संख्या नहीं है इस प्रकार सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है, जिस सर्वान्तरात्माके नेत्रोंके पलक लगानेमें प्रलय हो जाती है ॥६६॥ और पलक खोलनेमें उनकी इच्छासे फिर सृष्टि हो जाती है वह कृष्ण भी उसकी प्रलयमें प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ कहीं पराशक्ति

चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः ॥ यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलनेन च ॥ ६४ ॥ ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः ॥ ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥६५॥ यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते ॥ चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वांतरात्मनः ॥ ६६ ॥ उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया ॥ स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि ॥ ६७ ॥ एकैव चैं परा शक्तिर्निर्गुणः परमः पुमान् ॥ सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिरव्यक्ताऽप्यव्याकृतपदाभिधा॥ चिदभिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति ॥६९॥ तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥७०॥ तत्प्रधाना देवभक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी ॥ सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा ॥ ७१ ॥ सामीप्यदाऽथ निर्वाण प्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा ॥ भक्तास्ता नहि वांछन्ति विना तत्सेवनं विभोः ॥ ७२ ॥ शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकं धनम् ॥ ७३ ॥

और निर्गुणपरम पुरुष हैं, पहले आगे सत् ही था ऐसा वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिही अव्यक्त और अव्याकृत पदनामवाली है चित्से अभिन्न हुई प्रलयमें स्थित रहती है ॥६९॥ उसके गुण कथन करनेको ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है ? चारों वेदोंमें चार प्रकारकी मुक्ति कही है ॥ ७० ॥ इनमें प्रधान होनेसे भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है सालोक्य, सारूप्य, ॥ ७१ ॥ सामीप्य और निर्वाण यह चार प्रकारकी मुक्ति है उस विभुकी सेवा भक्तिके सिवाय भक्तजन मुक्तिकी इच्छा करते हैं ॥ ७२ ॥ शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्ममृत्यु, जराव्याधि, भयशोका

दिक धन यह सब वे तुच्छ जानते हैं ॥७३॥ तथा दिव्यरूपका धारण निर्वाण मुक्ति नहीं चाहते मुक्ति सेवा रहित है और भक्ति सेवाकी बढाने वाली है ॥७४॥ यह भक्ति और मुक्तिका भेद है. अब निषेक खण्डनके स्वरूपको सुनो. पंडितजन किये कर्मोंके भोगको ही निषेक कहते हैं ॥७५॥ उस भोगका खण्डन ही श्रीविभुकी सेवा है. हे साध्वि ! यही तत्त्वज्ञान लोकवेदमें स्थित है ॥७६॥ यह विघ्नरहित और शुभका देनेवाला है. हेवत्से ! अब तुम यथासुख गमन करो. यह कह यमराजने उसके पतिको जिवाकर ॥ ७७ ॥ और उसको शुभ आशीर्वाद देकर

दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः ॥ मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी ॥७४॥ भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखंडनं शृणु ॥ विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम् ॥७५॥ तत्खंडनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम् ॥ तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं च लोकवेदयोः ॥७६॥ निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम् ॥ इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम् ॥ ७७ ॥ तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥ दृष्ट्वा यमं च गच्छंतं सा सावित्री प्रणम्य च ॥ ७८ ॥ रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता ॥ सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः ॥७९॥ तामित्युवाच संतुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह ॥ धर्म उवाच ॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्य क्षेत्रे च भारते ॥८०॥ अन्ते यास्यसि तल्लोकं यत्र देवी विराजते ॥ गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु ॥८१॥ द्विसप्तवर्षपर्यंतं नारीणां मोक्षकारणम् ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम् ॥ ८२ ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथाव्रतम् ॥ द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते ॥ ८३ ॥

जानेकी इच्छा की. यमराजको जाता देख सावित्री प्रणामकर ॥ ७८ ॥ साधुके वियोगसे दुःखी हो चरण पकडकर रोनेलगी सावित्रीका रोदन सुनकर कृपासागर यमराज ॥ ७९ ॥ स्वयं नेत्रोंमें आँसूभर उससे कहने लगे धर्म बोले पुण्यक्षेत्र भारतमें लाख वर्षतक सुख भोगकर ॥८०॥ अन्तमें इस लोकको गमन करैगी. जहां देवी विराजमान होती है, हे भद्रे ! अपने घर जाकर सावित्रीका व्रत करो ॥ ८१ ॥ यह चौदह वर्ष करनेसे स्त्रीकी मोक्षका कारण है ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशीको सावित्रीका सुन्दर व्रत करै ॥८२॥ भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको महालक्ष्मीका

जिस प्रकार व्रत है वैसा करै. हे शुचिस्मिते!अथवा सोलह वर्षतक इस व्रतको ॥ ८३ ॥ भक्तिसे जो स्त्री करती है वह विभुके लोकको गमन करती है प्रति मंगलवारको करनेसे देवी मंगलकी देनेवाली होती है ॥ ८४ ॥ प्रति महीनेको शुक्ला छठको छठ मंगलदायिनी है और इसी प्रकार आषाढकी षष्ठी मनसे सब सिद्धि देनेवाली है ॥ ८५ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको राधाव्रत जो कृष्णकी प्राणोंके समान अधिक प्यारी है तथा शुक्ला अष्टमीमें दुर्गाव्रत करै यह प्रतिमहीनेमें करनेसे वरदायी होती है ॥ ८६ ॥ विष्णुकी माया भगवती दुर्गा कठिन दुःखोंकी दूर करने

करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम्॥प्रतिमंगलवारे च देवीं मंगलदायिनीम् ॥८४॥ प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मंगलदायिनीम् ॥ तथा चाषाढसंक्रांत्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८५ ॥ राधां रासे च कार्त्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम् ॥ उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम् ॥ ८६ ॥ विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गार्तिनाशिनीम् ॥ प्रकृतिं जगदंबां च पति पुत्रवतीषु च ॥८७॥ पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेपु प्रतिमासु च ॥ या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसंतानहेतवे ॥८८॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते श्रीविभोः पदम् ॥ एवं देव्या विभूतिश्च पूजयेत्साधकोऽनिशम् ॥ ८९ ॥ सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी ॥ नातः परतरं किंचित्कृतकृत्यत्वदायकम् ॥ ९० ॥ इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम् ॥ गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम् ॥ ९१ ॥

वाली प्रकृति जगदम्बाको पतिपुत्रवाली ॥ ८७ ॥ तथा शुद्ध पतिव्रता वा यंत्र और प्रतिमाओंमें जो स्त्री धन सन्तानके निमित्त पूजा करती है ॥ ८८ ॥ वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविभुके स्थानमें गमन करती है, इस प्रकार उत्तम साधक नित्य देवीकी विभूतिको भक्तिसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ सब समय सर्वरूपा परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये इससे अधिक कृत्यकृत्यदायक और कुछ नहीं है ॥ ९० ॥ यह कहकर धर्मराज अपने स्थानको गये और अपने स्वामीको लेकर सावित्री अपने स्थानको चली ॥ ९१ ॥

सावित्री और सत्यवानने अपने आश्रममें जाय दूसरोंसे वह वृत्तांत कथन किया ॥ ९२ ॥ क्रमसे सावित्रीके पिताके पुत्र हुए और श्वसुरको नेत्र प्राप्त हुए और वरदानके कारण उसने भी पुत्रोंकी प्राप्ति की ॥ ९३ ॥ वह पतिव्रता इस भारतक्षेत्रमें लाख वर्षतक सुख भोगकर स्वामीके संग देवीके मणिद्वीपको गई ॥ ९४ ॥ जो सविता अर्थात् सूर्यमंडलात्मक देवताकी अन्तर्यामी ब्रह्मरूपिणी है तथा गायत्रीकी अधिष्ठात्री है, वेदोंकी माता होनेसे सावित्री कहाती है ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! यह आपसे इस प्रकार सावित्रीका उत्तम आख्यान कहा

सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागमम् ॥ अन्यांश्च कथयामास स्ववृत्तांतं हि नारद ॥ ९२ ॥ सावित्रीजनकः पुत्रान्संप्राप्तः प्रक्रमेण च ॥ श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान्वरेण च ॥ ९३ ॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ जगाम स्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता ॥ ९४ ॥ सवितुश्चाधिदेवी या मंत्राधिष्ठातृदेवता ॥ सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ॥ ९५ ॥ इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ॥ जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नारद उवाच ॥ श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निराकृते ॥ सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः ॥ १ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मंगलानां च मंगलम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥ २ ॥ केनाऽऽदौ पूजिता साऽपि किंभूता केन वा पुरा ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदांवर ॥ ३ ॥

है तथा जीवका कर्मविपाक कहा अब फिर क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ नारदजी बोले श्रीमूल प्रकृति तारिणी गायत्री देवीके माहात्म्ययुक्त सावित्री और यमके संवादमें निर्मल यश श्रवण किया ॥१॥ तथा उनके सत्यरूप गुणोंका कीर्तन जो मंगलोंका मंगल है सो सुना, हे भगवन् ! अब महालक्ष्मीका उपाख्यान सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ प्रथम किसने उनका पूजन किया है वह किस प्रकारकी है ? हे वेदविदांवर मुझसे आप उनके गुणोंका कीर्तन

कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे नारदजी! सृष्टिकी आदिमें परमात्मा कृष्णकी देवी राधाके वाम अंशसे रासमंडलमें यह प्रगट हुई है ॥ ४ ॥ यह अति सुंदरी श्यामा न्यग्रोधपर मंडित अथवा द्वादशवर्षकी अवस्थासे सम्पन्न निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥ ५ ॥ श्वेतचम्पकके वर्णके समान सुखदृश्या परममनोहर शरत्की पूर्णिमाके कोटिचंद्रके प्रभाके समान मुखवाली ॥ ६ ॥ और शरत्के मध्याह्न कमलोंकी शोभाको जिनके लोचन मोचन करनेवाले हैं वह देवी सहसाही ईश्वरकी इच्छासे दो रूप हुई ॥ ७ ॥ अपना रूप, वर्ण,

नारायण उवाच ॥ सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ देवी वामांससंभूता बभूव रासमण्डले ॥४॥ अतीव सुंदरी श्यामा न्यग्रोधपरिमंडिता ॥ यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥ ५ ॥ श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा ॥ शरत्पार्वण कोटींदुप्रभाप्रच्छदनानना ॥ ६ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥ सा देवी द्विविधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥ ७ ॥ स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा ॥ यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च ॥ ८ ॥ स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वाऽनुनयेन च ॥ तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका ॥ ९ ॥ राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् ॥ महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् ॥ १० ॥ कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥ दक्षिणांसश्च द्विभुजो वामांसश्च चतुर्भुजः ॥११॥ चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा ॥ लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययानिशम् ॥ १२ ॥

तेज, वय, कांति यश, वसन, कृति, भूषण गुण ॥ ८ ॥ स्मितवीक्षण प्रेम अनुनयमें राधाके समानही थी. उन कृष्णके वाम अंशसे महालक्ष्मी और दक्षिण अंशसे राधिका प्रगट हुई है ॥ ९ ॥ राधाने प्रथम द्विजभुज परात्पर देवको वरण किया. महालक्ष्मीने पश्चात् उन मनोहरकी इच्छा की ॥ १० ॥ तब कृष्ण राधाके गौरवसे दो रूप हुए दक्षिणांशसे द्विभुज और वाम अंशसे चतुर्भुज हुए ॥ ११ ॥ द्विभुज भगवान्‌ने महालक्ष्मीको चतुर्भुजके निमित्त दिया, जिससे यह सब जगत् निरन्तर स्निग्ध दृष्टिसे दीखता है ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ वह शुद्धसत्त्वस्वरूपवाली गोप
और जो महती देवी है इसी कारण महालक्ष्मी कहाती है; राधाकांत द्विभुज और लक्ष्मीकांत चतुर्भुज है ॥ १३ ॥ वह शुद्धसत्त्वस्वरूपवाली गोप
और गोपियोंसे आवृत्त है चतुर्भुज लक्ष्मीके सहित वैकुंठमें गये ॥ १४ ॥ वह कृष्ण और विष्णु सर्वांशमें समान है महालक्ष्मीके योगमें वह
अनेक रूपा हुई ॥ १५ ॥ वैकुंठमें महालक्ष्मी परिपूर्णतमा रमा है शुद्ध सत्वस्वरूपा सर्व सौभाग्यसे संयुक्त है ॥ १६ ॥ वह सब स्त्रियोंमें प्रेमसे
प्रधान है स्वर्गोंमें स्वर्गलक्ष्मी इंद्रके सम्पत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पातालमें नागलक्ष्मी राजाओंमें राजलक्ष्मी घरोंमें गृहलक्ष्मी गृहिणी कला

देवीभूता च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥ राजाकांतश्च द्विभुजो लक्ष्मीकांतश्चतुर्भुजः ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा
च गोपैर्गोपीभिरावृता ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह ॥ १४ ॥ सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥ महाल
क्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा ॥१५॥ वैकुंठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा रमा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता
॥ ॥ १६ ॥ प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पाताले नाग-
लक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः ॥१८॥ संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमंगलमंगला ॥ गवां
प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥ १९ ॥ क्षीरोदसिंधुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥ शोभास्वरूपा चंद्रे च सूर्यमंडलमंडिता
॥२०॥ विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥ नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च ॥ २१ ॥ सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु
संस्कृतेषु च ॥ प्रतिमासु च देवानां मंगलेषु घटेषु च ॥ २२ ॥ माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥ मणीन्द्रेषु च
हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च ॥ २३ ॥

अंशसे निवास करती है॥१८॥गृहस्थियोंके यहाँ सम्पत् स्वरूपा सब मंगलकी मंगल करनेवाली गायोंकी प्रकृति होनेसे सुरभी यज्ञकी कामनामें
दक्षिणा ॥१९॥ क्षीरसागरकी कन्या पद्मनियोंमें श्रीरूपा चन्द्रमामें शोभास्वरूप सूर्यमंडलमें मंडित ॥२०॥ विभूषण रत्नफल जल नृप नृपपत्नी
दिव्यस्त्री और घरोंमें ॥ २१ ॥ सब धान्य वस्त्र संस्कृतस्थान देवताओंकी प्रतिमा मंगल घटोंमें ॥२२॥ माणिक्य मुक्ता मनोहर माला मणियोंके

हार क्षीर और चन्दनमें ॥ २३ ॥ मनोहर वृक्षशाखा नवीन मेघ और वस्तुओंमें रहती है, प्रथम नारायणने वैकुंठमें पूजन किया ॥ २४ ॥ दूसरी वार भक्तिसे ब्रह्माने और तीसरी वार शंकरने पूजन किया है, हे मुने । फिर क्षिरोदमें विष्णुने पूजन किया है ॥ २५ ॥ मानवेन्द्र स्वायंभु मनुने तथा ऋषि मुनि और सद्भक्ति करनेवाले गृहस्थियोंने पूजन किया है ॥ २६ ॥ गन्धर्व तथा नागादिने पातालमें पूजन किया है शुक्लाष्टमीको भाद्रपदमें ब्रह्माजीने पूजन किया ॥ २७ ॥ हे नारद ! तीनों लोकमें भक्तिसे पक्षपर्यंत पूजन होता है. चैत्र, पौष, भाद्रपद, मंगल

वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥ वैकुण्ठपूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च ॥ २४ ॥ द्वितीये ब्रह्मणाभक्त्या तृतीये शंकरेण च ॥ विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने ॥२५॥ स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥ ऋषींद्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे ॥२६॥ गंधर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा ॥ २७ ॥ भक्त्या च पक्षपर्यंतं त्रिषु लोकेषु नारद ॥ चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मंगलवासरे ॥ २८ ॥ विष्णुना पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥ वर्षांते पौषसंक्रांत्यां माघ्यामावाह्य मंगले ॥ २९ ॥ मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये ॥ पूजिता सा महेन्द्रेण मंगलेनैव मंगला ॥ ३० ॥ केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च ॥ ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा ॥ ३१ ॥ कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता ॥ प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना ॥ ३२ ॥ यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वंदिता सदा ॥ ३३ ॥

वारमें पूजन होता है ॥ २८ ॥ विष्णु तथा त्रिलोकीने भक्तिपूर्वक पूजा की वर्षके अन्तमें पुषसंक्राति माघी पूर्णिमाको आवाहन करके ॥२९॥ मनुने उनका पूजन कराया और मंगलारूपा लक्ष्मीका महेन्द्रने भी पूजन किया है ॥ ३० ॥ केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, इन्द्र, बलि, ॥ ३१ ॥ कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु ॥ ३२ ॥ यम, वह्नि, वरुणने पूजन किया और

प्रणाम किया. इस प्रकार सबने सर्वत्र पूजन किया ॥ ३३ ॥ वह सब ऐश्वर्यकी देवी सब सम्पत्स्वरूपिणी है ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले वह नारायणकी प्रिया श्रेष्ठ वैकुण्ठवासिनी, वैकुंठकी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी सनातनी ॥ १ ॥ फिर भूमिमें किस प्रकार क्षीरसागरकी कन्या हुई और पहले किसने उनकी स्तुति की सो आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले एक समय दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए थे और मृत्युलोकमें देवताओंके समूह एकत्रित हुए

सर्वैश्वर्याधिदेवी स सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥३४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया सा च परा वैकुण्ठवासिनी ॥ वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥ कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिंधुकन्यका ॥ पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीश्च पुरंदरः ॥ बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोके च नारद ॥ ३ ॥ लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता ॥ गत्वा लीना च वैकुंठे महालक्ष्मीश्च नारद ॥४॥ तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुंठमेव च ॥ ५ ॥ वैकुण्ठे शरणापन्ना देवी नारायणे परे ॥ अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ ६ ॥ तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया ॥ बभूव सिंधुकन्या सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह ॥ संप्राप्ताश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह ॥ ८ ॥ सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे ॥ ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ लक्ष्मी स्वर्गादिको त्यागकर रुष्ट और परम दुःखित हुई. हे नारद ! वह जाकर वैकुंठमें लीन होगई ॥ ४ ॥ तब सब कोई दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और ब्रह्माजीको आगेकर वैकुण्ठमें गये ॥ ५ ॥ सब देवता वैकुण्ठमें परमदेव नारायणकी शरण हुए अतिदैन्ययुक्त होनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूखगये ॥६॥ तब पुराण पुरुषकी आज्ञासे कलारूप लक्ष्मी सर्व संपत्स्वरूपिणी सागरकन्या हुई थी ॥७॥ तब देवता दैत्योंने क्षीरसागर मंथनकर महालक्ष्मीको प्राप्त किया विष्णुने उनको देखा ॥ ८ ॥ देवादिको वर और क्षीरसागरशायी विष्णुको प्रसन्नतासे वनमाला

देकर प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ हे नारद ! तब देवताओंने असुरोंके ग्रसित राज्यको फिर पाया तब भगवतीकी पूजाकर सब कोई आपत्तिरहित हुए ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! तत्त्ववित् मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने क्यों शाप दिया क्या दोष था वह तो तत्त्ववित् थे ॥ ११ ॥ और उन सुरादिने किस प्रकार सागरको मथा और किस स्तोत्रसे देवी इन्द्रके सन्मुख प्रगट हुई ॥१२॥ हे प्रभो ! किस प्रकार उन इन्द्र और दुर्वासाका सम्वाद हुआ सो आप कहिये श्रीनारायण बोले पहले त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मधुपानसे मत्त होकर ॥ १३ ॥ कामुक हो एकांतमें रंभाके साथ

देवाश्चाऽप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद ॥ तान्संपूज्य च सम्भूय सर्वत्र च निरापदः ॥१०॥ नारद उवाच॥कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन ॥ केन दोषेण वा ब्रह्मन्ब्रह्मिष्टस्तत्त्ववित्पुरा ॥ ११ ॥ ममंथुः केन रूपेण जलधिं ते सुरादयः ॥ केन स्तोत्रेण वा देवी शक्रं साक्षाद्बभूव सा ॥ १२ ॥ को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ॥ १३ ॥ क्रीडां चकार रहसि रंभया सह कामुकः ॥ कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः ॥१४॥ तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः ॥ कैलासशिखरे यांतं वैकुण्ठादपिसत्तमम् ॥१५॥ दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥ १६ ॥ प्रतप्तकांचनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीतं च चीर दंडौ कमंडलुम् ॥ १७॥ महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चंदुसन्निभम् ॥ समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदांगपारगैः॥ १८ ॥ दृष्ट्वा ननाम शिरसा संभ्रमत्तः पुरंदरः ॥ शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम् ॥ १९ ॥

क्रीडा करने लगे, उसके साथ क्रीडा करनेसे देवराजका मन उसमें लग गया ॥ १४ ॥ कामसे उन्मथित हो उस महावनमें निवास करने लगे उस समय ऋषिश्रेष्ठ वैकुंठसे कैलास शिखरमें जाते थे ॥१५॥ उन ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित दुर्वासा ऋषिको देखकर कि, जिनकी प्रभा मध्याह्न कालीन सूर्यके समान चमक रही थी ॥१६॥ तप्त सुवर्णके समान जटाभार बडा उज्वल था श्वेत यज्ञोपवीत चीर दंड कमंडलु लिये ॥१७॥ महा प्रकाशमान चलायमान इन्द्रके समान प्रकाशित लाखों वेदवेदांगके पारगामी शिष्योंसे युक्त ॥१८॥ देखते ही इन्द्रने उनको शिरसे प्रणाम

किया और प्रसन्न हो उन मुनिके शिष्य समूहोंको संतुष्ट किया ॥ १९ ॥ मुनिराजने शिष्योंसहित आशीर्वाद दिये और विष्णुके दिये मनोहर पारिजात पुष्पको ॥ २० ॥ " जो कि जरारोग और मृत्युका नाशक शोकहारी और मोक्षका करनेवाला है" दिया शक्रने उस फूलको लेकर राज्य सम्पत्तीसे प्रमत्त हो ॥ २१ ॥ उस अपने हाथीके ऊपर रखदिया हाथी उसके स्पर्शमात्र रूप और गुणसे ॥ २२ ॥ तेज और वयसे विष्णुके तुल्य हुआ तब गजेन्द्र इन्द्रको छोडकर गहन वनमें चला गया॥२३॥हे मुने!तेजसे इन्द्र इसकी रक्षा करनेको समर्थ न हुआ,मुनीश्वरने

मुनिना च सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः ॥ विष्णु दत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् ॥ २० ॥ तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम् ॥ शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसंपदा ॥२१॥ पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके ॥ हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च ॥ २२ ॥ तेजसा वयसा कस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह ॥ त्यक्त्वा शक्रं गजेंद्रश्च जगाम घोरकाननम् ॥२३॥ न शशाक महेंद्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने ॥ तत्पुष्पं त्यक्तवंतं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः ॥ २४ ॥ तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः ॥ मुनिरुवाच ॥ अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे ॥ २५ ॥ मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण करिमस्तके ॥ विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम् ॥ २६ ॥ प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत् ॥ भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु सः ॥२७॥ यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥ प्राप्तिमात्रेण यो भुंक्ते भक्तो विष्णु निवेदितम् ॥ २८ ॥ पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत् ॥ नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम् ॥ २९ ॥

इन्द्रको इस प्रकार फूल त्यागन करता हुआ देखकर ॥ २४ ॥ महारुष्ट होकर शाप दिया, मुनि बोले अरे ! लक्ष्मीसे प्रमत्त तुम मेरा अपमान क्यों करते हो ॥ २५ ॥ मेरा दिया फूल तैंने हाथीके मस्तकपर क्यों रख दिया. विष्णुको निवेदन किया नैवेद्य, जल, फल, ॥ २६ ॥ प्राप्तमात्रही भोगना चाहिये. अन्यथा ब्रह्महत्या लगती है,तुम भ्रष्टश्री भ्रष्टबुद्धि और अपने पुरसे भ्रष्ट हो जाओ ॥२७॥ जो भाग्यसे उपस्थित हुए विष्णुके नैवेद्यको प्राप्त होतेही भोग लगाता है जो भक्त विष्णु निवेदित नैवेद्यको इस प्रकार भोग करते हैं ॥२८॥ वह सौ पुरुषोंका उद्धार कर

स्वयं जीवन्मुक्त होता है, जो नैवेद्य भोग लगाकर नित्य नारायणको प्रणाम करता है॥२९॥ अथवा भक्तिसे पूजन और स्तुति करता है वह विष्णुके समान होता है. उसकी स्पर्शकी हुई वायुसे शीघ्र तीर्थ समूह शुद्ध हो जाते हैं ॥३०॥ हे मूढ! उनकी पादरजसे फिर भूमि शुद्ध होती है पुंश्चलीका अन्न अवीरान्न शूद्रान्न श्राद्धान्न ॥ ३१ ॥ तथा हरिके विना निवेदन किया अन्न वृथा मांसका भक्षण शिवलिंगपर चढाया हुआ पदार्थ शूद्रयाजीका दिया द्रव्य ॥३२॥ चिकित्सक ब्राह्मणका अन्न पुजारीका अन्न कन्या वेचनेवालेका अन्न कुटनीका अन्न ॥३३॥ उच्छिष्ट अन्न बासी

पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या सा विष्णुसदृशो भवेत् ॥ तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति ॥ ३० ॥ तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥ ३१ ॥ यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम् ॥ शिवलिंगप्रदानं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना ॥ ३२ ॥ चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव च ॥ कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् ॥ ३३ ॥ उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम् ॥ शूद्रापतिद्विजानां च वृषवाहद्विजान्नकम् ॥ ३४ ॥ अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम् ॥ अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च ॥ ३५ ॥ मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम् ॥ मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च ॥ ३६ ॥ एते सर्वे विशुध्यंति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥ हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः ॥ अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च ॥ ३८ ॥

अन्न सबके अन्न, खालेनेपर अवशिष्ट अन्न शूद्रापति ब्राह्मणोंका अन्न, वृषवाहक द्विजका अन्न ॥३४॥ अदीक्षित ब्राह्मणका अन्न शवदाही ब्राह्मणका अन्न अगम्यागामियोंका अन्न ॥३५॥ मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती मिथ्या साक्षी देनेवाले ब्राह्मणका अन्न ॥ ३६ ॥ ये सब विष्णुका नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं यदि श्वपचभी विष्णुका सेवी हो तो कोटिवंशोंका उद्धार करता है ॥३७ हरिका अभक्त मनुष्य अपनेको रक्षा करनेमें असमर्थ होता है वह अज्ञानसे यदि विष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर ले ॥ ३८ ॥

तो इसमें सन्देह नहीं कि वह सात जन्मके आर्जित पापसे मुक्त होता है और जो जानकर भक्तिसे विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! वह कोटिजन्मके आर्जित पापसे निश्चयही मुक्त हो जाते हैं जो कि तुमने हमारा दिया फूल हाथीके मस्तकपर स्थापित किया है ॥४०॥ इसकारण तुमको छोडकर लक्ष्मी नारायणके स्थानको गमन करेगी मैं नारायणका भक्त हूं देवता विधातासे नहीं डरता हूं ॥४१॥ कालमृत्यु जरा किसीसे भी नहीं डरता हूं प्रजापति कश्यप तुम्हारे पिता मेरा क्या करसकते हैं ॥ ४२ ॥ मैं बृहस्पति गुरुसे निःशंक हूं, हे

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ॥ ३९ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे ॥ यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके ॥ ४० ॥ तस्माद्युस्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥ नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः ॥ ४१ ॥ कालान्मृत्योर्जरातश्च कानन्यान्गणयामि च ॥ किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशंकस्य च मे हरे ॥ इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम् ॥ ४३ ॥ इति श्रुत्वा महेंद्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः ॥ उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ॥ ४४ ॥ महेंद्र उवाच ॥ दत्तः समुचितः शापो मह्यं मायापहः प्रभो ॥ हृतां न याचे संपत्तिं किंचिज्ज्ञानं च देहि मे ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम् ॥ मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम् ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ जन्ममृत्युजराशोकरागबीजांकुरं परम् ॥ संपत्तितिमिरांधश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥ ४७ ॥

इन्द्र ! यह फूल जिसके शिरपर होता हैं उसका परम पूजन होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनतेही इन्द्रने मुनिराजके चरण पकडे और शोकसे व्याकुल हो ऊंचे स्वरसे रोता हुआ भयाकुल हुआ ॥ ४४ ॥ महेन्द्रने कहा हे मायाहारी प्रभो! आपने मुझको उचित शाप दिया है, मैं हरी हुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता आप मुझे कुछ ज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्य विपत्तिका बीज ज्ञानका प्रच्छन्न करनेवाला है तथा मुक्तिमार्गको कुठार और भक्तिमें व्यवधान करनेवाला है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले जन्म मृत्यु जरा शोक रोगका बीजांकुर हैं सम्पत्तिरूपी तिमिरमें

अन्ध हो मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४७ ॥ सम्पत्तिसे मत्त विमूढ पुरुष सुरामत्तही कहा है और बांधवोंसे वेष्टित हुआ भी एक प्रकारके बंधनमें पडा है॥ ४८ ॥ सम्पत्तिके मदमें मत्त हुआ विषयमें अंधा मदसे विह्वल महाकामी राजसी पुरुष मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥४९॥ रजोगुणी तमोगुणी भेदसे विषयांध दो प्रकारका है अशास्त्रज्ञ तामसी और शास्त्रज्ञ रजोगुणी होता है॥५०॥हे इन्द्र ! शास्त्र दो प्रकारका मार्ग दिखलाता है एक प्रवृत्तिका बीज और एक निवृत्तिका कारण है ॥ ५१ ॥ प्रथम मार्ग प्रवृत्तिरूपमें जीव भ्रमण करते हैं स्वच्छन्द प्रसन्न निर्विरोध

संपन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च ॥ बांधवैर्वेष्टितः सोऽपि बंधुत्वेनैव हे हरे ॥ ४८ ॥ संपत्तिमदमत्तश्च विषयांधश्च विह्वलः ॥ महाकामा राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥ ४९ ॥ द्विविधो विषयांधश्च राजसस्तामसः स्मृतः ॥ अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥ ५० ॥ शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुंगव ॥ प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम् ॥ ५१ ॥ चरंति जीविनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि ॥ स्वच्छंदं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च संततम् ॥ ५२ ॥ आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः ॥ परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥ ५३ ॥ अनेकजन्मपर्यंतं कृत्वा च भ्रमणं मुदा ॥ स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥ ५४ ॥ ततश्चेशानुग्रहाच्च सत्संगं लभते च सः ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम् ॥ ५५ ॥ साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् ॥ तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखंडने ॥ ५६ ॥ अनेकजन्मयोगेन तमसाऽनशनेन च ॥ तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥ ५७ ॥

उन्मत्तवत् रहता है ॥ ५२ ॥ मधुके लोभसे आकर क्लेशमें सुखमानता है परिणाममें नाशकारक जन्म मृत्यु और जरा करनेवाला हैं ॥५३॥ इस प्रकार अनेक जन्म पर्यन्त भ्रमण करके अपने कर्मानुसार अनेक योनियोंमें विचरण करता है ॥ ५४ ॥ फिर ईश्वरके अनुग्रहसे उसको सत्संगकी प्राप्ति होती है सहस्रों सैकड़ोंमें कोई एक संसार सागरके पारके कारण ॥ ५५ ॥ साधु तत्त्वदीपकसे मुक्तिमार्ग दिखाता है तब यह जीव बंधनके खण्डनका यत्न करता है ॥ ५६ ॥ अनेक जन्मके योग तपस्या भोजन त्यागसे निर्विघ्न परम सुखदायक मुक्तिमार्गको प्राप्त

होता है ॥ ५७ ॥ हे इन्द्र ! जो तुमने पूछा है यह मैंने गुरुके मुखसे सुना है तब मुनिके वचन सुन इन्द्र वीतराग हुए ॥ ५८ ॥ और दिन दिन वैराग्य बढने लगा मुनिके स्थानसे घरको जाकर जब इन्द्रने अमरावतीको देखा तो ॥ ५९ ॥ वह दैत्य असुरोंसे व्याप्त बडी भयानक होगई थी कहीं विषका उपद्रव कहीं बंधुहीनता ॥ ६० ॥ कहीं पिता माता कलत्रसे विहीन अतिचंचल तथा विविध शत्रुसे ग्रसित देखकर इन्द्र बृहस्पतिके समीप गये ॥ ६१ ॥ इन्द्रने मन्दाकिनीके किनारे गुरुजीको देखा जो परब्रह्मको ध्यान

इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत्पृच्छसि पुरंदर ॥ मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः ॥ ५८ ॥ वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिनेदिने ॥ मुनेः स्थानाद् गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् ॥ ५९ ॥ दैत्यैरसुरसंघैश्च समाकीर्णां भयाकुलम् ॥ विषमोपप्लवां कुत्र बंधुहीनां च कुत्रचित् ॥ ६० ॥ पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचंचलाम् ॥ शत्रुग्रस्तां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति ॥ ६१ ॥ शक्रो मंदाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् ॥ ध्यायमानं परं ब्रह्म गंगातोये स्थितं परम् ॥ ६२ ॥ सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं च विश्वतोमुखम् ॥ साश्रुनेत्रं पुलकिनं परमानंदसंयुतम् ॥ ६३ ॥ वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितम् ॥ प्रेष्ठं च बंधुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च ज्ञानिनाम् ॥ ६४ ॥ ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम् ॥ दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ॥ ६५ ॥ प्रहरांते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥ प्रणम्य चरणांभोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥ वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥ पुनर्वरोपलब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् ॥ ६७ ॥

करते गङ्गाके जलमें स्थित थे ॥ ६२ ॥ सूर्यके सन्मुख पूर्वको मुख किये सब ओर मुखवाले ईश्वरके प्रेममें आंसू भरे रोमांच शरीर परमानन्द सम्पन्न थे ॥ ६३ ॥ वरिष्ठ गरिष्ठ धनिष्ठ श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित बंधुवर्गोंमें प्रेष्ठ ज्ञानियोंमें अतिश्रेष्ठ ॥ ६४ ॥ भ्रातृवर्गोंमें ज्येष्ठ देव वैरियोंके अनिष्टकारक उन गुरुजीको जपमें तत्पर देखकर इन्द्र उसी स्थानमें स्थित हुए ॥ ६५ ॥ जब एक पहरके अन्तमें गुरुजी उठे तब प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पडकर अमरेश रुदन करने लगे ॥ ६६ ॥ और दुर्वासाके शापका सब वृत्तान्त

कहा फिर वर और दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति कही ॥ ६७ ॥ फिर वैरियोंसे ग्रस्त अपनी पुरीका वृत्तान्त कहा शिष्यके वचन सुनकर बोलनेवालोंमें अति श्रेष्ठ सुबुद्धि ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिजी क्रोधकर यह वचन बोले बृहस्पति बोले हे इन्द्र ! यह मैंने सब सुना परन्तु मत रोओ हमारे वचन सुनो ॥ ६९ ॥ नीतिज्ञाता पुरुष विपत्तिमें कभी कातर नहीं होते हैं सम्पत्ति वा विपत्ति यह सब श्रमरूप और नश्वर है ॥ ७० ॥ यह अपने पूर्व कर्मके अनुसार सबका स्वयं कर्त्ता है यह जन्म २ सबकोही प्राप्त होती है ॥ ७१ ॥ पहिलेके समान सुख दुःख घूमते हैं इसमें दुःख करना क्या

वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥ शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतांवरः ॥६८॥ बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः ॥ गुरुरुवाच ॥ श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु ॥ ६९ ॥ न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥ संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वराश्रमरूपिणी ॥ ७० ॥ पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि ॥ सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनिजन्मनि ॥ ७१ ॥ चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥ उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते ॥ ७२ ॥ शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥ नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७३ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना ॥ ७४ ॥ सामवेदोक्तशाखायां संबोध्य कमलोद्भवम् ॥ जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥ अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥ कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च सुभाशिषम् ॥ ७६ ॥ कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा ॥ कोटि जन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति ॥ ७७ ॥

है यह कहा ही है अपना किया कर्म भोगा जाता है ॥ ७२ ॥ शुभ अशुभ कोई क्यों न हो यह पुरुष अपने कर्मका फल भोगता है कोटिकल्प शतवर्षमें भी विना भोगे कर्मक्षय नहीं होता है ॥ ७३ ॥ शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना पड़ता है यह वेदमें श्रीकृष्ण परमात्मा द्वारा कथित हुआ है ॥ ७४ ॥ अर्थात् सामवेदकी शाखामें ब्रह्माजीसे सबके कर्मोंका जन्म भोगावशेष कहा है ॥ ७५ ॥ अर्थात् कर्मकेही अनुसार भारतमें वा अन्य कहीं जन्म होता है कर्मसेही ब्रह्मशाप और कर्मसेही आशीर्वाद प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ कर्मसेही

महालक्ष्मी और दीनता प्राप्त होती है कोटि जन्मोंका उपार्जित पुण्य भी जीवोंके पीछे चलता है ॥ ७७ ॥ हे पुरन्दर ! विना भोगके उसकी छाया कभी नहीं छोडती देश काल पात्रके भेदसे कर्मोंकी ॥ ७८ ॥ कर्मसे ही न्यूनता और अधिकता होती है वस्तुके दानसे दिनदिन वस्तुओंके समान पुण्य होता है ॥ ७९ ॥ दिनके भेदसे कोटिगुण और असंख्य वा इससे भी अधिक पुण्य होता है और हे इन्द्र ! समदेशमें वस्तु दानका समान पुण्य है ॥ ८० ॥ देशभेदसे कोटिगुण असंख्य वा इससे अधिक होताहै समपात्रमें वस्तु दानकरनेवालेको समान पुण्य होता है ॥ ८१ ॥

नहि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरंदर ॥ कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ॥ ७८ ॥ न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा ॥ वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिनेदिने ॥ ७९ ॥ दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ समदेशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर ॥ ८० ॥ देशभेदे कोटिगुणमसंख्या वा ततोऽधिकम् ॥ समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च ॥ ८१ ॥ पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ यथा फलंति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च ॥ ८२ ॥ कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा ॥ सामान्यदिवसे विप्रदानं समफलं भवेत् ॥ ८३ ॥ अमायां रविसंक्रात्यां फलं शतगुणं भवेत् ॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं फलमेव च ॥ ८४ ॥ ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च ॥ सूर्यस्य ग्रहणे वाऽपि ततो दशगुणं भवेत् ॥ ८५ ॥ अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते ॥ एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति ॥ ८६ ॥ यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्यकर्मसु ॥ एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥ ८७ ॥

पात्र भेदसे सौगुना असंख्य वा उससे भी अधिक होताहै जैसे धान्य बराबर बोये जाकर न्यूनाधिक फलतेहैं ॥ ८२ ॥ कर्षकोंके क्षेत्र भेदसे न्यूनाधिकता होती है इसी प्रकार पात्रभेदमें फल होता है हे इन्द्र ! सामान्यदिनमें दानका समानफल होता है ॥ ८३ ॥ अमावस्या और संक्रांतिमें सौ गुना फल होता है चातुर्मास्यकी पूर्णमासीमें अनन्त फल होता है ॥ ८४ ॥ चन्द्रग्रहणका कोटिगुणा फल सूर्यग्रहणका उससे भी दशगुणा फल होता है ॥८५॥ और अक्षय तिथिमें अक्षय फल होता है इसी प्रकार और भी पुण्यदिनोंमें अधिक फल होता है ॥८६॥ जैसे दान स्नान जप

और पुण्यकर्मोंमें होता है इसीप्रकार मनुष्योंके कर्मका फल जानना चाहिये ॥८७॥ जिस प्रकार दण्डचक्रादिके भ्रमणसे कुम्हार घट निर्माण करता है और मृत्तिकासे कार्य करता है ॥८८॥ इसीप्रकार विधाता कर्मसूत्रसे फल देता है जिसकी आज्ञासे यह सृष्टि चलती है उस नारायणको भजो ॥८९॥ वह विधाताका विधाता,रक्षकका रक्षक,तीनों जगत्का रक्षक,सृष्टिकाभी सृजन करनेवाला,संहार करनेवालेका भी संहार करनेवाला है ॥९०॥ महा विपत्तिवाले संसारमें जो मधुसूदनका स्मरण करता है उसकी विपत्तिमें सम्पत्ति होती है ऐसा शंकरने कहा है ॥ ९१ ॥ वह तत्त्वज्ञ

यथा दंडेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च ॥ कुम्भं निर्माति निर्माता कुंभकारो मृदा भुवि ॥ ८८ ॥ तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च ॥ यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं च नारायणं भज॥८९॥स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये ॥ स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः ॥९०॥ महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्॥विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शंकरः॥९१॥इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समालिंग्य सुरेश्वरम्॥दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥९२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ नारायण उवाच॥ हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम्॥बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह॥१॥ शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् ॥ प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेंद्रा गुरुणा सह ॥ २ ॥ वृत्तांतं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति ॥ प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः ॥ बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम् ॥ ४ ॥

इस प्रकार कह इन्द्रको आलिंगनकर और इष्ट आशीर्वाद देकर समझा दिया ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ नारायण बोले तब इंद्रने हरिका ध्यानकर ब्रह्माकी सभामें गमन किया तब सब देवता बृहस्पतिको आगे करके ॥ १ ॥ शीघ्र ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्माजीको देख इंद्र और गुरुके सहित उनको प्रणाम करते हुए ॥ २ ॥ तब सुराचार्यने विधातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब कमलासनने हँसकर महेन्द्रसे कहा ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले हे वत्स ! मेरे वंशमें उत्पन्न हुए तुम मेरे चतुर

प्रपौत्रहो बृहस्पतिके शिष्य और देवताओंके स्वयं अधिपति हो ॥ ४ ॥ तुम्हारे मातामह दक्ष प्रतापवान् विष्णुभक्त हैं जिसके तीनों कुल शुद्ध हैं उसको अहंकार कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥ जिसकी माता पतिव्रता और पिता शुद्ध जितेन्द्रिय है मातामहके मामा जिसका शुद्ध हो वह अहंकार युक्त कैसे होसकता है ॥ ६ ॥ यह मनुष्य पिता और मातामहके दोषसे तथा गुरुके दोषसे देवताका अपराधी होता है ॥ ७ ॥ सबके अन्तरात्मा भगवान् सबके देहमें स्थित है जिसके देहसे निगत हो जाता है वह उसीसमय शवरूप होजाता है ॥ ८ ॥

मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान् ॥ कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ५ ॥ माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेंद्रियः ॥ मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ६ ॥ जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च ॥ गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥ सर्वांतरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः ॥ यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणे भवेत् ॥८॥ मनोऽहमिंद्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शंकरः ॥ विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥९॥ निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः ॥ आत्मनः प्रतिबिंबश्च जीवो भोगशरीरभृत् ॥ १० ॥ आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यांति ससंभ्रमाः ॥ यथा वर्त्मनि गच्छंतं नरदेवमिवानुगाः ॥ ११ ॥ अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महाविराट् ॥ यूयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया ॥ १२ ॥ शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च ॥ तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया ॥ १३ ॥

मन इंद्रियोंका अधिपति और शंकर ज्ञानरूप है प्रकृति भगवती बुद्धिसती विष्णुकी प्राणस्वरूपा है ॥ ९ ॥ निद्रादिक शक्तियें सब प्रकृतिकी कला हैं अपना प्रतिबिम्बजीव भोग शरीरका धारण करनेवाला है ॥ १० ॥ और जब आत्माका अधीश्वर चला जाता है तब सब संभ्रमरूपसे चलेजाते हैं, जैसे मार्गमें जाते राजाके पीछे उनके अनुचरभी जाते हैं ॥ ११ ॥ मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महाविराट् तुम जिसके अंशके भक्तहो उसी फूलका तुमने तिरस्कार किया है॥ १२ ॥ जिस पुष्पसे शिवने भगवान्के चरणकमलका पूजन किया है वह दुर्वासाका

दिया हुआ तुमने तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥ वह कृष्णके चरणकमलका चढा पुष्प जिसके मस्तकमें स्थित है उसकी सबसे अधिक और पहले पूजा क्यों नहो ॥ १४ ॥ तुम प्रारब्धसे वंचित हुए हो दैव ही बलवान् है भाग्यहीन मनुष्यकी देवता भी रक्षा करनेको समर्थ नहीं ॥ १५ ॥ कृष्ण निर्माल्यके वर्जनसे अब लक्ष्मी चलीगई अब हमारे और गुरुके सहित वैकुण्ठको चलो ॥ १६ ॥ वहां श्रीनाथको सेवनकर मेरे वरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी ब्रह्माजी यह कह सब देवतादिके सहित ॥ १७ ॥ वहां जाय सनातन परब्रह्म तेजस्वरूप अपने तेजसे प्रकाशमान

तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् ॥ सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥ १४ ॥ दैवेन वंचितस्त्वं हि दैवं च बलवत्तरम् ॥ भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः ॥ १५ ॥ सा श्रीगताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥ अधुना गच्छ वैकुंठं मया च गुरुणा सह ॥१६॥ निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि मद्वरात् ॥ एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह ॥१७॥ तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवंतं सनातनम् ॥ दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं तं प्रज्वलंतं स्वतेजसा ॥ १८ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडशत कोटिसमप्रभम् ॥ शांतमनादिमध्यांतं लक्ष्मीकांतमनंतकम् ॥ १९ ॥ चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम् ॥ भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गंगया परिवेष्टितम् ॥२०॥ तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः ॥ भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥२१॥ वृत्तांतं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृतांजलिः ॥ रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः ॥ २२ ॥ स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् ॥ रत्नभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम् ॥ २३ ॥

तेजस्वरूपको देखकर ॥१८॥ ग्रीष्म मध्याह्न मार्तण्डके समान सौ कोटि सूर्यकी प्रभावाली, कांति शान्ति अनादि मध्यांतलक्ष्मीकान्त अनंत॥१९॥ चार भुजावाले पार्षद और सरस्वतीसे युक्त भक्तिपूर्वक चारवेद और गंगासे परिवेष्टित ॥२०॥ और ब्रह्मा आदि सब देवता उनको प्रणाम करते हुए और भक्तिसे नम्र हो नेत्रोंमें आंसू भर परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥२१॥ और स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोडकर अपना वृत्तान्त कहने लगे और अपने अधिकारसे च्युत होनेसे देवता भी सब रोने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने विपद्ग्रस्त भयाकुल देवताओंको देखा, जो रत्नभूषण शून्य वाह-

नादिसे वर्जित थे ॥ २३ ॥ शोभासे शून्य लक्ष्मीसे हत, प्रभारहित भयभीत हुए देवताओंको कातर देखकर भयमोचन भगवान् कहने लगे ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन् ! हे देवताओ ! मत डरो मेरे होते तुमको भय नहीं है मैं परम ऐश्वर्य बढानेवाली अचललक्ष्मी को दूंगा ॥ २५ ॥ परन्तु इस समय समयोचित मेरे वचनको सुनो जो हित सत्य सारभुत और परिणाममें सुख करनेवाले हैं ॥ २६ ॥ असंख्य विश्वमें स्थित प्राणी मेरे आधीन हैं परन्तु यथा तथा मैं भक्तोंके विषयमें पराधीन हूं ॥ २७ ॥ मेरे भक्त निरंकुश हैं वह जिस जिसपर रुष्ट होंगे मैं लक्ष्मीके सहित उनके यहां स्थित नहीं रहता हू ॥ २८ ॥ दुर्वासा शंकरांश वैष्णव मेरे परम भक्त हैं उनके शापसे

शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं सभयं परम् ॥ उवाच कातरं दृष्ट्वा भयभीतिविभंजनः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माभैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते ॥ दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥२५॥ किंच मद्वचनं किंचिच्छ्रूयतां समयोचितम्॥ हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥ २६ ॥ जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम् ॥ यथातथाऽहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतंत्रकः ॥ २७ ॥ यं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरंकुशः ॥ तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥२८॥ दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः ॥ तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात् ॥ २९ ॥ यत्र शंखध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम् ॥ न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥३०॥ मद्भक्तानां च मे निंदा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः ॥ महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम् ॥ ३१ ॥ मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुंक्ते यो हरिवासरे ॥ मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि ॥३२॥ मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ॥ यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३३॥

मैं तुम्हारे घरसे लक्ष्मीसहित चला आया हूं ॥ २९ ॥ जहां शंख ध्वनि नहीं है तुलसी और शिव शिवार्चन नहीं है तथा जहां ब्राह्मण भोजन नहीं होता वहां लक्ष्मी नहीं रहती ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! जहां मेरे भक्त और मेरी निन्दाहोती है वहां महारुष्ट हो महालक्ष्मी पराभवको प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ मेरी भक्तिसे हीन होकर जो मूढ हरिवासर एकादशीको भोजन करता है वा मेरे जन्मदिनमें भोजन करता है लक्ष्मी उनके घरसे चली जाती है ॥ ३२ ॥ जो मेरे नामको बेचता और स्वकन्याको बेचता है तथा जहां अतिथि भोजन नहीं करते मेरी

प्रिया उनके घरसे चली जाती है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण पुंश्चलीका पुत्र है उसका पति महापापी है जो पापियोंके घर जाते हैं तथा जो शूद्रके श्राद्धान्नका भोजन करता है ॥ ३४ ॥ उसके यहांसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती है जो शूद्रोंके शव जलाते हैं वह द्विजाधम भाग्यहीन हैं ॥ ३५ ॥ हे देवताओ ! उसके गृहसे लक्ष्मी कमलवासिनी चली जाती है जो ब्राह्मण होकर शूद्रोंका सूपकारी तथा जो ब्राह्मण वृषवाही है ॥ ३६ ॥ उनके जलपानके भयसे भी उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है जिसका हृदय अशुद्ध क्रूर जो द्विज हिंसक और निन्दक

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः ॥ पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ३४ ॥ महारुष्टा ततो याति मंदिरात्कमलालया ॥ शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः ॥ ३५ ॥ याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवाः कमलवासिनी ॥ शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः ॥ ३६ ॥ तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात् ॥ अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजी च याति देवी च तद्गृहात् ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥३८॥ तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम् ॥ निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया ॥ ३९ ॥ सूर्योदये द्विजो भुंक्ते दिवाशायी च ब्राह्मणः ॥ दिवामैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया ॥४०॥ आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रतिग्रही ॥ अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्धि याति मत्प्रिया ॥ ४१ ॥

है ॥ ३७ ॥ तथा जो ब्राह्मण शूद्रयाजी है हे देवी ! उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है तथा जो अवीराका अन्न खाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३८ ॥ जो नखूनोंसे तृणछेदन करते वा उनसे जो भूमिको लिखते हैं, जहांसे ब्राह्मण निराश चले जाते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयमें भोजन करते हैं जो ब्राह्मण दिनमें शयन करते हैं तथा जो दिनमें मैथुन करते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४० ॥ जो ब्राह्मण आचार हीन और शूद्रसे प्रतिग्रह लेता है जो मूढ अदीक्षित

है उसके स्थानसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४१ ॥ जो ज्ञान हीन गीले पैरसे नंगा होकर सोता है तथा वाचाल और निरन्तर हँसता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४२ ॥ शिरसे तेलसे न्हाया हुआ जो दूसरेका अंग स्पर्श करै तथा जो अपने शरीरमें बाजा बजाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥४३॥ जो ब्राह्मण व्रत उपवाससे हीन और संध्यासे हीन अशुचि है तथा, जो विष्णुभक्तिसे हीन है, उसके स्थानमें मेरी प्रिया नहीं रहती ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणकी निन्दा करता और निरन्तर उनसे द्वेष करता है जो जीवहिंसक दयाहीन है

स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः॥ शश्वद्धसति वाचालो याति सा तद्गृहात्सती ॥४२॥ शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्यांगं समुपस्पृशेत् ॥ स्वांगे च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात् ॥४३॥ व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः ॥ विष्णु भक्तिविहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया ॥४४॥ ब्राह्मणं निंदयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि संततम् ॥ जीवहिंसो दयाहीनो याति सर्व प्रसूस्ततः ॥ ४५ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा ॥ तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमंगलमंगला ॥४६॥ यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह ॥ सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥ ४७॥ यत्र शंखध्वनिः शंखः शिला च तुलसीदलम् ॥ तत्सेवा वंदनं ध्यानं तत्र सा परितिष्ठति ॥ ४८ ॥ शिवलिंगार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् ॥ दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥४९ विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम् ॥ अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती ॥ ५० ॥

उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४५ ॥ जहां जहां हरिकी अर्चा और हरिका कीर्त्तन होता है वहाँ २ सर्वमंगला देवी निवास करती है ॥४६॥ हे पितामह ! जहां कृष्ण और उनके भक्तोंकी प्रशंसा है वहां कृष्ण प्रिया देवी निरंतर निवास करती है ॥ ४७ ॥ जहां शंख, शंखध्वनि, शालिग्राम, तुलसीदल तथा भगवान्की सेवा, वंदन, ध्यान है वहां कमला निवास करती है ॥ ४८ ॥ जहां शिवलिंगार्चन और उनका सुन्दर कीर्त्तन है तथा दुर्गाका अर्चन और उनके गुणोंका गान है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ४९ ॥ जहां ब्राह्मणोंका सेवन और

उनका भोजन है जहां सब देवोंका अर्चन है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥५०॥ सब देवताओंसे ऐसा कहकर रमापतिने लक्ष्मीसे कहा कि तुम अपनी कलासे क्षीरसागरमें जन्म लो ॥ ५१ ॥ जगन्नाथ इस प्रकार कहकर फिर ब्रह्मासे बोले कि, सागरसे लक्ष्मी मंथन कर देवताओंको दो ॥५२॥ हे मुने ! कमलाकान्त यह कहकर अन्तःपुरमें चले गये देवता भी तत्काल क्षीरसागरको गये ॥ ५३ ॥ कूर्मको भाजन कर और मंदरको मंथान करके और शेषको मंथपाश करके सुर असुरोंने सागरमंथन किया ॥५४॥ धन्वन्तरि, अमृत, उच्चैःश्रवा, अनेक रत्न, ऐरावत हाथी, सुदर्शन, लक्ष्मी उसमेंसे निर्गत हुई ॥५५॥ हे मुने ! उन्होंने क्षीरोदशायीके निमित्त वनमाला दी जो विष्णु सर्वेश्वर अति मनोहर हैं, उनहीको वैष्णवी सतीने

इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान्रमामाह रमापतिः ॥ क्षीरोदसागरे जन्म कलयाऽऽकलयेति च ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च ॥ मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामांतःपुरं मुने ॥ देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम् ॥५३॥ मंथानं मंदरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् ॥ कृत्वा शेषं मंथपाशं ममंथुरसुराः सुराः ॥ ५४ ॥ धन्वंतरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमेव च ॥ नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनम् ॥ ५५ ॥ वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने ॥ सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥ ५६ ॥ देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचनात् ॥ ५७ ॥ प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयंकरम् ॥ महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥ ५८ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

माला दी ॥५६॥ फिर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो वह ब्रह्मा और शंकरसे पूजित हुई और ब्रह्माके शाप मुक्त होनेसे उन्होंने देवताओंके स्थानमें दृष्टि दी ॥५७॥ तब देवताओंने दैत्योंसे भयंकर ग्रसित अपने विषय (राज्य) को पाया हे नारद ! महालक्ष्मीके प्रसाद और वरदानसे ॥ ५८ ॥ राज्य पाया यह सब तुमसे लक्ष्मीका उपाख्यान कहा यह सुखदायक सारभूत है अब आपको क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

नारदजी बोले हे भगवन् ! हरिका उत्कीर्तन और उनका ज्ञान श्रवण किया और लक्ष्मीका उपाख्यान भी सुना हे प्रभो! अब उनका स्तोत्र कहिये ॥१॥ नारायण बोले इन्द्र तीर्थमें स्नानकर धुले वस्त्र पहरकर क्षीरसागरमें घट स्थापन कर छः देवताओंका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा इनको भक्तिपूर्वक पुष्प गंधादिसे अर्चनकर ॥३॥ परमैश्वर्यरूपिणी लक्ष्मीका आवाहन कर देवेश ब्रह्मा और अपने पुरोहितके सहित पूजा करते हुए ॥ ४ ॥ मुनि ब्राह्मण हरि गुरु इनके आगे स्थित होनेमें तथा ज्ञानानन्द शिव और देवादिके सुदेशमें स्थित

नारद उवाच ॥ हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी ॥ घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड्देवान्पर्यपूजयत् ॥ २ ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगंधादिभिस्तदा ॥ ३ ॥ आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् ॥ पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥ ४ ॥ पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ ॥ देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानंदे शिवे मुने ॥ ५ ॥ पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चंदनोक्षितम् ॥ ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ॥६॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥ हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ॥ ७ ॥ सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभामुष्टिकरां पराम् ॥ ८ ॥ स्वतेजसा प्रज्वलंतीं सुखदृश्यां मनोहराम् ॥ प्रतप्तकांचननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ९ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा ॥ ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ १० ॥

होनेसे ॥ ५ ॥ चन्दनसे सिक्त पारिजातका फूल ग्रहण करनेपर महालक्ष्मीदेवीका ध्यान करके हे नारद ! उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ जो प्रथम ब्रह्माजीको हरिने सामवेदोक्त लक्ष्मीका ध्यान कहा था वही ध्यान किया सुनिये मैं वह ध्यान आपसे कहताहूं ॥ ७ ॥ सहस्रदल कमलकी कर्णिकामें निवास करनेवाली शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रकी प्रभाको तिरस्कार करनेवाली ॥ ८ ॥ अपने तेजसे प्रज्वलित सुख दृश्या मनोहर तप्त सुवर्णके समान शोभावाली मूर्तिमती सती ॥ ९ ॥ रत्नभूषणोंकी शोभासे पूर्ण पीतवस्त्रसे शोभित कुछ हास्यसे प्रसन्नमुखी निरन्तर स्थिरयौव

नवाली॥१०॥ सब सम्पत्तिकी देनेवाली शुभ महालक्ष्मीका भजन करता हूँ इस ध्यानसे उन अनेक गुणसम्पन्नका ध्यान करके ॥११॥ और सोलह उपचारसे ब्रह्मवाक्यसे पूजन कर प्रत्येक पदार्थको मंत्र पूर्वक भक्तिविधानसे दिया ॥ १२॥ प्रशस्त और प्रकृष्ट अनेक प्रकारके श्रेष्ठ पदार्थ अमूल्य रत्नसार जो ब्रह्माजीके बनाये हैं ॥१३॥ और विचित्र आसन हे महालक्ष्मी ! ग्रहण करो और यह सबसे वंदित मनोहर शुद्ध गंगाजल है ॥१४॥ यह पापरूपी ईंधनके जलानेको अग्निरूप है हे लक्ष्मी ! इसको ग्रहण करो, यह पुष्प चंदन दूर्वादिसे संयुक्त जाह्नवी जल है ॥ १५ ॥ और इस

सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् ॥ ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम् ॥ ११ ॥ संपूज्य ब्रह्म वाक्येन चोपचाराणि षोडश ॥ ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मंत्रपूर्वकम् ॥ १२ ॥ प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च ॥ अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ १३ ॥ आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥ शुद्धं गंगोदक मिदं सर्ववंदितमीप्सितम् ॥ १४ ॥ पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये ॥ पुष्पचंदनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् ॥ १५ ॥ शंखगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥ सुगंधिपुष्पतैलं च सुगंधामलकीफलम् ॥ १६ ॥ देहसौंदर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥ १७ ॥ रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम् ॥ शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम्॥१८॥सर्वसौंदर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम् ॥ वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम्॥१९॥श्रीकृष्ण कांते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम् ॥ सुगंधियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम् ॥ २० ॥

शंखमें स्थित अर्घ्यको हे कमललोचने ! ग्रहण करो सुगंधित पुष्पका तेल और सुगंधित आमला ॥ १६ ॥ हे हरिप्रिये ! इस देहकी सुन्दरताके बीजको ग्रहण करो हे देवी ! यह सूती और रेशमी वस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ रत्न और सुवर्णके गहने देहकी शोभा बढानेवाले हैं यह श्रीकररत्न शोभाके निमित्त हैं हे देवि ! इनको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सुन्दरताके बीज और सब शोभा करनेवाले वृक्षकी निर्यासरूप गंध ग्रहण करो ॥ १९ ॥ हे कृष्णकांते ! यह पवित्र धूप ग्रहण करो यह सुगंधियुक्त सुखद चंदन है इसको ग्रहण करो ॥ २० ॥

यह जगत्के चक्षुःस्वरूप पवित्र अन्धकारनाशक सुखरूप दीपक हे सुरेश्वरि ! ग्रहण करो ॥ २१ ॥ अनेक उपहाररूप अनेक रससे सम्पन्न अति स्वादिष्ठ नैवेद्य ग्रहण करो ॥ २२ ॥ यह अन्न ब्रह्मस्वरूप प्राणरक्षणका कारण है हे देवि ! इस तुष्टि और पुष्टि देनेवालेको ग्रहण करो ॥ २३ ॥ शालि अन्नसे बनाई खीर शर्करा और दधिघृतयुक्त है, हे महालक्ष्मी ! यह परम स्वादिष्ठ है इसको ग्रहण करो ॥ २४ ॥ शर्करा दूधमें पक्क सुस्वादिष्ठ मनोहर मेरा निवेदित यह स्वस्तिक अन्न ग्रहण करो ॥ २५ ॥ और भी अनेक प्रकारके पक्क मधुर अन्न मनोहर

जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम्॥प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि ॥२१॥ नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् ॥ अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥२२॥अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्॥तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥२३॥ शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् ॥ स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥ शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥२५॥ नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च ॥ सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम् ॥ २६ ॥ मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युतप्रिये ॥ सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम् ॥ यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् ॥ २८ ॥ सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् ॥ सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम् ॥ २९ ॥ मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् ॥ ३० ॥ कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ तांबूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ३१ ॥

सुरभीके स्तनसे निकला स्वादिष्ठ ॥ २६ ॥ मनुष्योंका अमृत स्वरूप दूध घृतादि हे अच्युत प्रिये ग्रहण करो, अच्छे स्वादिष्ठ रससे संयुक्त गन्नेके रससे प्रगट ॥ २७ ॥ अग्निमें पक्क अति स्वादिष्ठ गुड ग्रहण करो एवं गोधूम सस्योंका चूर्ण ॥ २८ ॥ सुपक्व गुड और गव्यसे युक्त मिष्टान्न ग्रहण करो सस्यचूर्णोद्भव पक्क स्वस्तिकादिसे युक्त ॥ २९ ॥ यह मेरे दिये नैवेद्यको भक्ति पूर्वक ग्रहण करो शीत वायुका करनेवाला और दाहमें भी परम सुखकारी ॥ ३० ॥ हे कमल देवि ! यह व्यजन और श्वेतचमर आप ग्रहण करो मनोहर ताम्बूल कर्पूरादिसे

सुवासित ॥ ३१ ॥ जिह्वाकी जडताका छेदकारी ताम्बूल ग्रहण करो सुवासित सुशीतल प्यासका नाशक ॥ ३२ ॥ जगत्का जीवनरूप जल हे देवि ! ग्रहण करो देहकी सुन्दरताका बीज सदा शोभाका बढानेवाला ॥ ३३ ॥ कपास और रेशमी वस्त्र हे देवि ! ग्रहण करो यह स्वर्ण विकार रत्न देहकी शोभा बढानेवाले ॥ ३४ ॥ शोभाधारक श्रीकरभूषण हे देवि ! ग्रहण करो अनेक ऋतुओंमें निर्मित बहु शोभाकारी ॥ ३५ ॥ सुरभूप प्रियमाला हे देवि ! ग्रहण करो शुद्धिदायक शुद्धरूप सब मंगलका मंगलरूप ॥ ३६ ॥ गन्ध

जिह्वा जाड्यच्छेदकरं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम् ॥ ३२ ॥ जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥ देहसौंदर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम् ॥ ३३ ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥ रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषादिवर्धनम् ॥ ३४ ॥ शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम् ॥ नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम् ॥ ३५ ॥ सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥ शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ ३६ ॥ गंधवस्तूद्भवं रम्यं गंधं देवि प्रगृह्यताम् ॥ पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा ॥ ३७ ॥ गृह्यतां कृष्णकांते त्वं रम्यमाचमनीयकम् ॥ रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचंदन चर्चितम् ॥ ३८ ॥ वस्त्रभूषणभूपाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम् ॥ यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥ ३९ ॥ देवभूपार्हभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देवपुंगवः ॥ ४० ॥ मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥ जपेन दशलक्षेण मंत्रसिद्धिर्बभूव ह ॥ ४१ ॥

वस्तुओंका उद्भव परम मनोहरगंध हे देवि ! ग्रहण करो पुण्यतीर्थका जल विशुद्ध और शुद्धिका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे कृष्णकान्ते ! यह मनोहर आचमन ग्रहण करो रत्नसारादिसे निर्मित पुष्प चन्दनसे चर्चित ॥ ३८ ॥ वस्त्र भूषणोंसे भूषित शय्याको ग्रहण करो जो जो द्रव्य अपूर्व है और पृथ्वीमें अपूर्व है ॥ ३९ ॥ देवभूषणके योग्य हे देवि ! उन उन भूषणोंको ग्रहण करो हे देवपुंगव ! मूलमंत्रसे इन द्रव्योंको देकर ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक भक्तिसे दशलक्ष मंत्रका जप करे दश

लाख जपसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ ४१॥ ब्रह्माका दिया मंत्र सब प्रकार कल्पवृक्ष होता है लक्ष्मी श्रीबीज मायाबीज कामबीज वाणीबीज इनका उच्चारण कर चतुर्थीविभक्ति लगावै अर्थात् कमलवासिन्यै स्वाहा ॥ ४२ ॥ यह वैदिक मंत्रराज है और प्रसिद्ध है इसी मंत्रसे कुबेरने परमैश्वर्य पाया था ॥ ४२ ॥ राजराजेश्वर दक्ष सावर्णि मनु इसी मंगलदायक मंत्रसे सप्तद्वीपावसुमतीके पति हुए ॥ ४४ ॥ प्रियव्रत उत्तानपाद केदार नृपति हे नारद! यह राजेन्द्र इसी मंत्रके प्रभावसे सिद्ध हुए थे ॥ ४५ ॥ मंत्रसिद्ध होनेपर महालक्ष्मीने इंद्रको दर्शन

मंत्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः ॥ लक्ष्मीर्माया कामवाणी ङेंता कमलवासिनी ॥ ४२ ॥ वैदिको मंत्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयाऽन्वितः ॥ कुबेरोऽनेन मंत्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ४३ ॥ राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥ मंगलोऽनेन मंत्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः ॥ ४४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च ॥ एते सिद्धाश्च राजेंद्रा मंत्रेणानेन नारद ॥ ४५ ॥ सिद्धे मंत्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा ॥ ४६ ॥ सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयंति त्विषा च सा ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥ ४७ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचंद्रसमप्रभाम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शांतां तुष्टां वै तां पुरंदरः ॥ पुलकांचितसर्वांगः साश्रुनेत्रः कृतांजलिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः ॥ सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥ पुरंदर उवाच ॥ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः ॥ कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ५१ ॥

दिया वह वर देनेको रत्नोंके सारके सिंहासनपर स्थित होकर आई ॥ ४६ ॥ जिनकी कांतिसे सात द्वीपकी वसुमती आच्छादित होती थीं वह श्वेत चम्पेके वर्णवाली रत्न भूषणोंसे भूषित ॥ ४७ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी भक्तोंके अनुग्रहसे कातर हुई कोटिचंद्रमाके समान कांतिवाली रत्न मालाको धारण करती ॥ ४८ ॥ जगन्माताका दर्शन कर इंद्र उनको संतुष्ट करने लगे उनका सब अंग पुलकितनेत्रोंमें जलभरि आया हाथ जोडे ॥ ४९ ॥ ब्रह्माके दिये स्तोत्रराजसे जो सर्वाभीष्ट प्रद वैदिक है स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ इंद्र बोले कमल

वासिनी नारायणी कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरंतर नमस्कार है ॥ ५१ ॥ कमल लोचनी कमल मुखी पद्मासना पद्मिनी वैष्णवीके निमित्त प्रणाम है॥५२॥ सर्व सम्पत् स्वरूपिणी सर्वाराधिनी हरिभक्ति और हर्षदायिनीको प्रणाम है ॥ ५३ ॥ कृष्णके वक्षस्थलमें स्थित कृष्णेशा चंद्रशोभा स्वरूपिणी रत्नपद्मा शोभना ॥ ५४ ॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी वृद्धिरूपा वृद्धिदायिनीको नित्य प्रणाम है ॥ ५५ ॥ जो महा लक्ष्मी वैकुंठ क्षीरसागर स्वर्ग इंद्रके घरमें और राजोंके स्थानमें है ॥ ५६ ॥ जो गृहस्थियोंके घरकी लक्ष्मी गृह देवता है जो सागरमें

पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः ॥ पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमोनमः ॥५२॥ सर्वसंपत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः ॥ हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः ॥५३॥ कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥ चंद्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने ॥५४॥ संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमोनमः ॥ नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमोनमः ॥५५॥ वैकुंठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे ॥ स्वर्गलक्ष्मीरिंद्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥५६॥ गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता॥ सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥५७॥ अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया ॥ स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥ ॥ ५८ ॥ त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥ ५९ ॥ क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा ॥ परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥६०॥ यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम् ॥ जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना ॥६१॥ सर्वेषां च परा माता सर्वबांधवरूपिणी ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥६२॥

प्रगट हुई सुरभी दक्षिणा और यज्ञकामिनी है ॥ ५७ ॥ तुमही अदिति देवमाता कमला कमलालया हवि देनेमें स्वाहा और कव्यदानमें स्वधा हो ॥ ५८ ॥ तुमही विष्णुस्वरूपिणी सर्वाधारा वसुंधरा हो शुद्ध सत्वस्वरूपा नारायण परायणी हो ॥ ५९ ॥ क्रोध हिंसासे वर्जित वरदा यक शारदा शुभा हो तुमही परमार्थ दायिनी हरिका दासत्व देनेवाली ॥ ६० ॥ जिसके विना यह सब जगत् भस्मीभूत और असार है और जिसके विना यह सब विश्व जीताहुआही मृत है ॥ ६१ ॥ वह सबकी परामाता सबकी बंधुस्वरूपिणी तथा धर्म अर्थ काम मोक्षकी कारण

रूपिणी तुमही हो ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार माता दूध पीनेवाले बालकोंकी बालकपनमें रक्षा करती है हे माता ! इसीप्रकार तुम सबकी सर्वरूपसे रक्षाकरती हो ॥ ६३ ॥ चाहे मातासे पृथक् हुआ दुधारीबालक दैववश जीवित होजाय परन्तु तुम्हारे विना कोई जीवित नहीं रहसकता यह सत्य है ॥ ६४ ॥ हे अम्बिके ! प्रसन्न स्वरूपिणी तुम हमसे प्रसन्न हो हे सनातनि! हमारे वैरियोंके ग्रसे देशको हमें दीजिये ॥ ६५ ॥ जबतक मैं तुमसे हीन हू तबतक बंधुहीन भिक्षुक हूं हे हरिप्रिये ! तबहीतक सब सम्पत्तिसे हीन हूं ॥ ६६ ॥

यथा माता स्तनांधानां शिशूनां शैशवे सदा ॥ तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः ॥ ६३ ॥ मातृहीनः स्तनांधस्तु स च जीवति दैवतैः ॥ त्वया हीनो जनःकोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥६४॥ सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवांबिके ॥ वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥६५॥ अहं यावत्त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः ॥ सर्वसंपद्विहीनश्च तावदेव हरिप्रिये ॥६६॥ ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥ प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च ॥६७॥ जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥ इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह ॥६८॥ प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः ॥ ब्रह्मा च शंकरश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः ॥६९॥ सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः ॥ देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम् ॥७०॥ केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि ॥ ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद ॥७१॥ देवी ययौ हरेः स्थानं हृष्टा क्षीरोदशायिनी ॥ ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद ॥ ७२ ॥

ज्ञान धर्म और ईप्सित सौभाग्य मुझको दीजिये, प्रभाव प्रताप और सब अधिकार दीजिये ॥ ६७ ॥ युद्धमें जय पराक्रम तथा परम ऐश्वर्य दो ऐसा कहकर महेन्द्रने सब देवताओंके सहित ॥ ६८ ॥ नेत्रोंमें जलभर वारंवार शिरसे प्रणाम किया, ब्रह्मा शंकर शेष धर्म केशव ॥ ६९ ॥ यह सबही देवताओंके निमित्त प्रार्थना करते हुए तब देवताओंको वर और मनोहर पुष्पमाला ॥ ७० ॥ संतुष्ट होकर देवताओंकी सभामें केशवको देती हुई हे नारद ! तब सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो अपने २ स्थानको गये ॥ ७१ ॥ और देवीभी

प्रसन्न हो क्षीरोद शायीके स्थानको गईं हे नारद ! ब्रह्मा और शिवभी अपने स्थानोंको गये ॥ ७२ ॥ यह दोनों प्रेमसे देवताओंको शुभ आशिर्वाद देकर गये इस महापवित्र स्तोत्रको जो तीनों संध्याओंमें पढ़ता है ॥ ७३ ॥ वह कुबेरतुल्य महान् राजराजेश्वर होता है पांच लाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि हो जाती है ॥ ७४ ॥ इस सिद्धस्तोत्रको जो एकमास निरन्तर पाठ करता है वह राजेन्द्र महासुखी होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले हे महाभाग

दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ॥७३॥ कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥७४॥ सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संततम् ॥ महासुखी च राजेंद्रो भविष्यति न संशयः ॥७५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ नारद उवाच॥नारायण महाभाग नारायण मम प्रभो ॥ रूपेणैव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विषा ॥१॥ त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने ॥ तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदांवरः ॥ २ ॥ महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥ अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम् ॥ ३ ॥ अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः ॥ अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ४ ॥ नारायण उवाच ॥ नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः ॥ श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥ तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किंवा त्वमिच्छसि ॥ तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥ ६ ॥

हे नारायण ! हे प्रभो ! तुम रूप गुण यश तेजमें नारायण हो ॥ १ ॥ हे मुने ! आप ज्ञानी सिद्ध और योगियोंमें श्रेष्ठ हो तुम तपस्विमुनियोंमें परे वेद विदाम्वर हो ॥ २ ॥ मैंने महालक्ष्मीका महा अद्भुत आख्यान जाना अब और भी कोई निगूढ़ उपाख्यान कहिये ॥ ३ ॥ जो अधिकही गोपनीय और सबके उपयोगी हो जो पुराणोंमें अप्रकाश्य और वेदोक्त धर्मसंयुक्त हो ॥ ४ ॥ नारायण बोले पुराणोंमें अनेक प्रकारके आख्यान अप्रकाशित हैं वह सुने हुए अनेक प्रकारसे गूढ हैं ॥ ५ ॥ क्या उनमेंके सारभूत आख्यान सुननेकी तुम्हारी इच्छा है वह

कितने प्रकारका गूढ तुमने सुना है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले हविर्दानमें स्वाहादेवी सब कर्ममें प्रशस्त है पितृदानमें स्वधा और सबसे अधिक दक्षिणारूप है ॥ ७ ॥ इनका जन्म चरित फल और प्रधानता हे वेदविदाम्बर ! आपके मुखसे सुनना चाहता हूं ॥ ८ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुराणोक्त पुरानी कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ नारायण बोले सृष्टिसे प्रथम देवता अपने आहारके निमित्त गये अर्थात् ब्रह्मलोकमें मनोहर ब्रह्मसभामें प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे मुने ! जाकर अपने आहारके निमित्त निवेदन किया यह वार्त्ता सुन प्रतिज्ञाकर

नारद उवाच ॥ स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥ पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥ ७ ॥ न तासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च ॥ श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदांवर ॥८॥ सूत उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ॥ कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥९॥ नारायण उवाच॥सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा ॥ ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम् ॥१०॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहेतुकं मुने ॥ ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम् ॥११॥ नारद उवाच ॥ यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव ह ॥ यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः ॥१२॥ नारायण उवाच ॥ हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः ॥ सुरा नैव प्राप्नुवंति तद्दानं मुनिपुंगव ॥ १३ ॥ देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः ॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ ॥ पूजां चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ नारदजी बोले यज्ञरूप परमात्मा है अर्थात् यह यज्ञ उनकी कलाही है तो यज्ञमें जो ब्राह्मण देवताओंके निमित्त हवि देते हैं क्या देवता उससे तृप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ नारायण बोले ब्राह्मण क्षत्रिय जो भक्तिसे हवि देते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! देवता उस दानको नहीं प्राप्त होते थे वह किसी और कोही प्राप्त होता था ॥ १३ ॥ तब देवता दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये और जाकर आहारके निमित्त निवेदन किया॥१४॥ ब्रह्माजी यह सुनकर ध्यानसे श्रीकृष्णकी शरण हुए और उनकी आज्ञासे ध्यानमें प्रकृतिकी पूजा

की॥ १५॥प्रकृतिकी कलासे वह शर्वशक्ति स्वरूपिणी अति सुन्दरी नवीनवया रमणीया मनोहरा॥ १६॥कुछेक हंसीसे प्रसन्नमुखी भक्तोंपर अनुग्रह कर नेमें तत्पर ब्रह्मासे बोली हे पद्मयोने'वर मांगो॥ १७॥विधाता यह वचन सुनकर संभ्रमसे उससे बोले प्रजापति बोले हे सुन्दरि! तुम अतिशय अग्निकी दाहिका शक्ति हो ॥ १८ ॥ तुम्हारे विना यह भौतिक अग्नि जलानेको समर्थ नहीं होती तुम्हारा नाम उच्चारणकर मंत्रान्तमें जो मनुष्य हवि देगा ॥ १९ ॥ उसको देवता आनंद पूर्वक प्राप्त होंगे वह गृहेश्वरी अग्नि की सम्पत्स्वरूप और गृहेश्वरी है ॥ २० ॥ हे अंबिके ! इस प्रकारसे

प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ अतीव सुंदरी श्यामा रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥ १७ ॥ विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा स भ्रमात्समुवाच ताम् ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ ॥ त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव याऽतीव सुन्दरी ॥१८॥ दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना ॥ त्वन्नामोच्चार्य मंत्रांते यो दास्यति हविर्नरः ॥ १९ ॥ सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवंति सुराः सानंदपूर्वकम् ॥ अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी ॥ २० ॥ देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवांबिके ॥ ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह ॥ २१ ॥ तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ॥ स्वाहोवाच ॥ अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च ॥२२॥ ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रममेव च ॥ विधाता जगतस्त्वं च शंभुर्मृत्युंजयो विभुः ॥ २३ ॥ बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम् ॥ सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः ॥ २४ ॥ प्रकृतिः सर्वसंपूज्या यत्प्रसादात्पुराऽभवत् ॥ ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यत्रिषेवया ॥ २५ ॥

तुम देवता मनुष्योंकी निरन्तर पूजनीया हो ब्रह्माके वचन सुनकर वह विषण्णवदन हुई ॥ २१ ॥ और स्वयंभूसे अपना अभिप्राय कहने लगी मैं चिरकालके तपसे श्रीकृष्णका भजन करूंगी ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! उनके विना जो कुछ भी है वह भ्रमरूप है वह जगत्के विधाता शंभु मृत्युंजय विभु हैं ॥ २३ ॥ शेष हो विश्वको धारण करते धर्मरूप हो धर्मियोंके साक्षी होते देवताओंमें सबके आद्य पूज्य गणेश्वर हैं ॥ २४ ॥ जिनके प्रसादसे प्रकृति सर्वाद्या और सर्व पूज्य हुई है ऋषि और मुनियोंने सेवापूर्वक जिसको सेवन किया है ॥२५॥

मैं परमभावसे उनके पादपद्मको चिंतन करती हूं पद्ममुखी पद्मजन्मा ब्रह्मासे यह वचन कहकर भगवान्‌के उद्देश्यसे ॥ २६ ॥ निरामय भगवान् कृष्णके निमित्त तप करनेको गई और एक चरणसे खड़े होकर लक्षवर्षतक तप किया ॥ २७ ॥ तब प्रकृतिसे पर कृष्णका दर्शन हुआ, वह रूपिणी उनका अत्यंत कमनीयरूप देखकर ॥ २८ ॥ और उनकी शोभासे कामुकी मूर्च्छित होगई तब वह सर्वज्ञ उनके अभिप्रायको जानकर उनसे बोले ॥ २९ ॥ उन तपसे क्षीण हुईको गोदीमें बैठाकर श्रीभगवान् बोले हे वरारोहे ! तुम अंशसे मेरी पत्नी होगी

तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिंतयाम्यहम् ॥ पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः ॥ २६ ॥ जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम् ॥ तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा ॥ २७ ॥ तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी ॥ २८॥ मूर्च्छां संप्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी ॥ विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह ॥२९॥ समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणांगीं तपसा चिरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि ॥ ३० ॥ नाम्ना नाग्नजिती कन्या कांते नग्नजितस्य च ॥ अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भवपत्नी च भामिनी ॥ ३१ ॥ मंत्रांगरूपा पूजा च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवो देवीं संभाष्य नारद ॥ ३३ ॥ तत्राऽऽजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥ सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदंबिकाम् ॥ ३४ ॥ सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मंत्रतः ॥ तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह ॥ ३५ ॥

॥ ३० ॥ हे कांते ! तुम नामसे नग्नजित् राजाकी कन्या नाग्नजिती होगी हे भामिनी ! इससमय तुम अग्निकी दाहिकारूप पत्नी हो ॥ ३१ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम मंत्रांगरूपा पूजनीया होगी अग्नि तुमको गृहेश्वरिरूपसे भक्तिभावसे पूजन करेगी ॥ ३२ ॥ और रमणीय रामा होकर रमण करोगी हे नारद ! इस प्रकार देवीसे कहकर देव अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ वहां ब्रह्माकी आज्ञासे व्याकुलीभूत हुए अग्निदेवता आये सामवेदोक्त ध्यानसे जगदम्बिकाका ध्यान करके ॥ ३४ ॥ मंत्रपूर्वक पाणिग्रहणकर संतोष करते हुए और दिव्य सौवर्षतक

रामाके साथ रमण करते हुए ॥ ३५ ॥ अत्यन्त निर्जनदेश संभोगमें सुखका देनेवाला हुआ तब अग्निके तेजसे देवीके गर्भकी स्थिति हुई ॥ ३६ ॥ देवीने बारह वर्षतक उस गर्भको धारण किया और फिर रमणीय मनोहर पुत्रोंको प्रगट किया ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि यह क्रमसे हुए ऋषि मुनि और क्षत्रियादि ब्राह्मण ॥३८॥ यह स्वाहान्त मंत्रको उच्चारणकर हविर्दानादि करते हुए, जो यह प्रशस्त स्वाहायुक्त मंत्र ग्रहण करता है ॥ ३९ ॥ मंत्र ग्रहण मात्रसे उसको सब सिद्धि होती है जैसे विषहीन सर्प और वेदहीन ब्राह्मण है ॥ ४० ॥

अतीव निर्जने देशे संभोगसुखदे सदा बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा ॥ ३६ ॥ तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादश वत्सरम् ॥ ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेण च ॥ ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ॥ ३८ ॥ स्वाहांतं मंत्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे ॥ स्वाहायुक्तं च मंत्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम् ॥ ३९ ॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मंत्रग्रहणमात्रतः ॥ विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः ॥ ४० ॥ पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान् ॥ फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निंदितः ॥ ४१ ॥ स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः ॥ परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतीः ॥ ४२ ॥ स्वाहांतेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च ॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् ॥४३॥ सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर ॥४४॥ सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम् ॥४५॥

जैसे पतिकी सेवासे विहीन स्त्री, विद्याहीन जैसे पुरुष, जैसे फल शाखाहीन निन्दित वृक्ष ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार स्वाहा हीन मंत्र फलदायक नहीं होता इससे सब ब्राह्मण संतुष्ट हुए देवताओंने आहुति ग्रहण की ॥४२॥ स्वाहांत मंत्र लगाकर ही सब सफल हो जाता है यह आपसे सब उत्तम स्वाहाका उपाख्यान कहा है ॥ ४३ ॥ यह सुख और मोक्षदायक सारभूत है अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुनीश्वर! स्वाहाकी पूजा विधान ध्यान स्तोत्र ॥ ४४ ॥ जिसके द्वारा अग्निने स्तुति की थी सो आप कहिये श्रीनारायण बोले सामवेदोक्त ध्यान

स्तोत्र पूजाका विधान ॥४५॥ कहता हूं सो सावधान होकर आप श्रवण करो सब यज्ञके आरम्भकालमें शालिग्राम तथा घटमें ॥४६॥ यत्नपूर्वक स्वाहाको पूजनकरके फलप्राप्तिके निमित्त यज्ञ करै स्वाहाअंगसे युक्त मंत्र सिद्धिस्वरूप है॥४७॥ सिद्ध और मनुष्योंको सिद्धकरनेवाला कर्मका फल देनेवाला परम शुभ है इस प्रकार ध्यानकर मूलमंत्रादिसे पाद्यादिक दे ॥ ४८ ॥ तो स्तुतिकरनेसे सब सिद्धि होती है । अब मूलमंत्रको सुनो ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा ॥४९॥ जो इस प्रकार भक्तिसे पूजन करते हैं उनको सब सिद्धि होती है अग्निबोले स्वाहा वह्निप्रिया

वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानो मुनीश्वर ॥ सर्वयज्ञारंभकाले शालग्रामे घटेऽथवा ॥ ४६ ॥ स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये ॥ स्वाहां मन्त्रांगयुक्तां च मंत्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ॥४७॥ सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम् ॥ इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः ॥ ४८ ॥ सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु ॥ ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च ॥ ४९ ॥ यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं संभवेद् ध्रुवम् ॥ वह्निरुवाच ॥ स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा ॥ गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥ ५१ ॥ संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ॥ देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५२ ॥ षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥ ५३ ॥ नांगहीनं भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ ५४ ॥

वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिक्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा सदा मनुष्योंकी गति दाहिका दहनमें समर्थ ॥ ५१ ॥ संसारकी साररूप घोर संसारकी तारनेवाली देवी जीवनरूप देवपोषण कारिणी ॥ ५२ ॥ जो भक्तिपूर्वक इन सोलह नामोंको पढता है उसको इस लोक परलोकमें सर्व सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ अंगहीन न होकर उसके सब कर्म शुद्ध होते हैं इसके पाठसे अपुत्रके

पुत्र भार्याहीनके भार्या प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ वह रंभाके समान अपनी कान्ताको प्राप्त होकर सुख पाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! सुनो उत्तम स्वधा उपाख्यान कहता हूं यह पितरोंका तृप्तिकारी श्राद्धान्नका फल बढानेवाला है ॥ १ ॥ जगत्के विधाताने सृष्टिकी आदिमें पितृगणोंकी रचना की है उसमें चार मूर्तिमान् और तीन तेज :स्वरूपा है ॥ २ ॥ सात पितृगणोंको सुखरूप मनोहर देखकर विधाताने श्राद्ध तर्पण पूर्वक उनके

रंभोपमां स्वकांतां च संप्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥५५॥ इति श्रीदे० म० नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे स्वाहोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नारद शृणु वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ॥ पितृणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥ १ ॥ सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः ॥ चतुरश्च मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान् ॥ आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३ ॥ स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धं तु देवपूजनम् ॥ आह्निकं च त्रिसंध्यांतं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४ ॥ नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसंध्यं श्राद्धतर्पणम् ॥ बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥ ५ ॥ देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ॥ भस्मांतं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद ॥ ६ ॥ ब्रह्मा श्राद्धोदकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे ॥ न प्राप्नुवंति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥ ७ ॥

आहारकी सृजना की ॥३॥ स्नान तर्पण पर्यन्त श्राद्ध और देवपूजन पंचायतन पूजन तीनों संध्या और आह्निक कर्म जैसे शास्त्रमें श्रुत हुआ है ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य तीनों संध्याओंमें श्राद्ध तर्पण नहीं करते तथा बलि और वेदध्वनि जिनके नहीं वह विषहीन सर्पके समान है ॥५॥ जो देवीकी सेवासे विहीन है और भगवान्को विना निवेदन किये खाता है हे नारद ! भस्मपर्यन्त उसको सूतकही रहता है वह कर्मके योग्य नहीं रहता ॥ ६ ॥ ब्रह्मा पितरोंके श्राद्धादि निर्माण करके पितरोंके निमित्त प्राप्तहुए, उस समय पितर ब्राह्मणादिके दिये अन्नको नहीं

पाते थे ॥ ७ ॥ तब वे सब क्षुधित हो ब्रह्माकी सभामें गये और उस जगतके विधातासे निवेदन करने लगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने मनोहर एक मानसी कन्या प्रगट की जो रूप यौवनसे सम्पन्न सौ चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थी ॥ ९ ॥ विद्यावान् गुणवान् अतिरूप सम्पन्न सती श्वेतचम्पकके वर्णके समान रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १० ॥ विशुद्ध प्रकृतिका अंश मन्द हँसयुक्त वरदायक शुभ स्वधानामवाली सुरती लक्ष्मीके लक्षणसे संयुक्त ॥ ११ ॥ शतपद्मके पदमेंचिह्नवाली चरणकमलोंके विलाससे युक्त पितरोंकी पत्नी पद्मास्या पद्मजा पद्मलोचना ॥ १२ ॥

सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम् ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम् ॥ रूपयौवनसंपन्नां शतचंद्रनिभाननाम् ॥ ९ ॥ विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥ विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् ॥ स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम् ॥ ११ ॥ शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् ॥ पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥ १२ ॥ पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्य स्तुष्टिरूपिणी ॥ ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम् ॥ १३ ॥ स्वधांतं मंत्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि ॥ क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥१४॥ स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता ॥ सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम् ॥१५॥ पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा ॥ पूजां चक्रुः स्वधां शांतां तुष्टुवुः परमादरात्॥१६॥देवादयश्च सतुष्टाः परिपूर्ण मनोरथाः ॥ विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवी वरेण च ॥ १७ ॥

उस तुष्टिरूपिणीको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया और ब्राह्मणोंको गोपनीय उपदेश किया ॥ १३ ॥ इस कारण स्वधारूप मन्त्रको उच्चारण कर पितरोंको अन्न देना चाहिये क्रमसे विप्रोंने इस दानको दिया ॥ १४ ॥ इससे देवताओंके दानमें स्वाहा और पितृदानमें स्वधा कही जाती है और दक्षिणा सर्वत्र शस्त है अदक्षिण यज्ञ हत होता है ॥ १५ ॥ पितर देवता विप्र मुनि मनु यह सब शांत स्वधाको परम आदरसे पूजनकर स्तुति करते हुए ॥ १६ ॥ और देवादि संतुष्ट होकर पूर्ण मनोरथ हुए तथा विप्रादि और स्वधा देवीके वरदानसे

भागभोजी हुए ॥ १७ ॥ यह सब स्वधाका उपाख्यान तुमसे कहा यह सबका तुष्टि करनेवाला है फिर और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १८ ॥ नारदजी बोले हे महामुने ! स्वधा पूजा विधान ध्यान स्तोत्र यह आपसे सुननेकी इच्छा करता हूं हे वेदविदाम्बर ! आप कहिये ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सब मंगलका ध्यान यह तुम सब जानते हो वृद्धिके लिये सब जानते हो ॥ २० ॥ शरद्कृष्ण त्रयोदशी मघा नक्षत्रयुक्त श्राद्धके दिनमें यत्नपूर्वक स्वधाका पूजन कर श्राद्ध आरंभ करै ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण

इत्येवं कथितं सत्र स्वधोपाख्यानमेव च ॥ सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ स्वधापूजा विधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने ॥ श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदांवर ॥ १९ ॥ नारायण उवाच ॥ ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वमंगलम् ॥ सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥२०॥ शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे ॥ स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥२१॥ स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः ॥ न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥ ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥ २३ ॥ इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मंगले घटे ॥ दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने ॥ समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद् द्विजः ॥ २५ ॥ स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद ॥ सर्ववांछाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृत पुरा ॥ २६ ॥

बिना स्वधाके अर्चन किये अहंकारसे श्राद्ध करता है वह श्राद्ध और तर्पणका फल भागी नहीं होता है ॥ २२ ॥ ब्रह्माकी मानसी कन्या जो निरन्तर स्थिर यौवनवाली है देवता पितरोंकी पूज्य श्राद्धका फल देनेवालीको भजन करता हूं ॥ २३ ॥ इस प्रकार शिला वा मंगल घटमें ध्यान करके मूल मंत्रसे पाद्यादिक उसके निमित्त दे ऐसा श्रुतिमें कहा है ॥ २४ ॥ ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा इस प्रकार उच्चारण और पूजन करके उनको प्रणाम करै ॥ २५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ हे विशारद ! आप स्तोत्रको सुनिये जो पहले मनुष्यका

वांछादायक ब्रह्माजीने कहा है ॥ २६ ॥ नारायण बोले स्वधाके उच्चारण मात्रसे ही मनुष्योंको तीर्थ स्नानका फल होता है और सब पापसे मुक्त होकर वाजपेयका फल मिलता है ॥ २७ ॥ जो तीनवार स्वधा ३ उच्चारण करता है वह श्राद्ध और बलितर्पणके फलको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ श्राद्धकालमें सावधान हो जो स्वधास्तोत्रको सुनता है उसको निःसन्देह श्राद्धका फल प्राप्त होता है ॥२९॥ स्वधास्वधा स्वधा इस प्रकार जो तीनों संध्याओंमें पढ़ता है वह साध्वी पुत्र गुणयुक्त विनीत प्रियाको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ तुम पितरोंकी प्राणतुल्या द्विजोंकी

नारायण उवाच ॥ स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ॥२७॥ स्वधास्वधास्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ॥ श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च ॥२८॥ श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः॥ स लभेच्छ्राद्धसंभूतं फलमेव न संशयः ॥२९॥ स्वधास्वधास्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः॥ प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्र गुणान्विताम् ॥ ३० ॥ पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी ॥ श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥३१॥ नित्या त्वं सत्यरूपाऽसि पुण्यरूपासि सुव्रते ॥ आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव ॥ ३२ ॥ ॐस्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा ॥ निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः ॥ ३३ ॥ कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः ॥ इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि ॥ ३४ ॥ तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽविर्बभूव ह ॥ तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् ॥ ३५ ॥

जीवन रूपिणी हो, श्राद्धकी अधिष्ठातृदेवी श्राद्धादिके फल देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ तुम नित्य सत्यरूपा पुण्यरूपा हो. हे सुव्रते ! आविर्भाव और तिरोभावमें तुम्हारी सृष्टि और प्रलय होती है ॥३२॥ ओं स्वस्ति नमः स्वाहा स्वधा दक्षिणा तुम हो चारों वेदोंमें श्रेष्ठ कर्मद्वारा तुमही निरूपित हुई हो ॥३३॥ ईश्वरने यह कर्मपूर्त्तिके अर्थ ही निर्माण किये हैं इसप्रकारसे ब्रह्मा कथन कर ब्रह्मलोककी सभामें ॥ ३४ ॥ स्थित हुए उस समय

सहसा स्वधा प्रगट हुई तब उस कमलाननाको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया ॥ ३५ ॥ उसको प्राप्त हो पितृगण परमहर्षित होकर अपने स्थानको गये इस स्वधा स्तोत्रको जो बड़ा पवित्र कोई सावधान हो सुनते हैं ॥ ३६ ॥ वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥ इति देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्रीनारायण बोले स्वाहा और स्वधाका आख्यान सुनाया जो अत्यन्त श्रेष्ठ है अब दक्षिणाख्यान कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥१॥ गोलोकमें एक सुशीलानामक गोपी हरिको बहुत प्यारी थी

तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ॥ स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः ॥ ३६ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु वांछितं फलमाप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे स्वधोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्री नारायण उवाच ॥ उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् ॥ वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय ॥ १ ॥ गोपी सुशीला गोलोके पुराऽसीत्प्रेयसी हरेः ॥ राधा प्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥ २ ॥ अतीव सुन्दरा रामा सुभगा सुदती सती ॥ विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना ॥ सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता ॥ ४ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालंकारभूषिता ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा बिंबोष्ठी मृगलोचना ॥ ५ ॥ कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी ॥ भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी ॥ ६ ॥

वह राधाकी प्रधान सखी धन्यामान्या और अति मनोहरा थी ॥ २ ॥ वह बहुत सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती विद्यावती गुणवती तथा अति रूपवती थी ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा शरीर शोभामें वट वृक्षके समान शोभित ॥ ४ ॥ कुछेक हास्यसेही प्रसन्नमुखी रत्नोंके अलंकारोंसे युक्त श्वेतचंपकके वर्णके समान कान्तिशाली बिम्बोष्ठी चारुमृगलोचनी ॥ ५ ॥ कामशास्त्रमें निपुण कामिनी हंसगामिनी भावमें अनुरक्त भावकी ज्ञाता कृष्णकी प्रिया भामिनी ॥ ६ ॥

रसकी ज्ञाता रासमें रसिक तथा रासेशके रसमें उत्सुक राधाके सन्मुख हरिके वाम अंगमें स्थित हुई ॥ ७ ॥ भयसे मधुसूदन नम्रमुख हुए गोपियोंमें श्रेष्ठ राधाको सन्मुख देखकर ॥ ८ ॥ जो कामिनी क्रोधसे लाल मुख किये लाल कमलके समान नेत्र कोपसे कंपित शरीर किये होठ फड़कते हुए ॥ ९ ॥ बडे वेगसे राधाको गमन करती जानकर विरोधसे भीत हो भगवान् अन्तर्धान हुए ॥ १० ॥ शान्तशरीर सत्वविग्रह कृष्णको गमन करते देखकर सुशीलादिगोपी भयसे कंपित हुईं ॥ ११ ॥ गोपियोंके लक्ष कोटि समूह उन लम्पटको देखकर भीत हो हाथ

रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका ॥ उवासाऽदक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा ॥ ७ ॥ संबभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम् ॥ ८ ॥ कामिनीं रक्तवदनां रक्तपंकजलोचनाम् ॥ कोपेन कंपितांगीं च कोपेन स्फुरिताधराम् ॥ ९ ॥ वेगेन तां तु गच्छंतीं विज्ञाय तदनंतरम् ॥ विरोधभीतो भगवानंतर्धानं चकार सः ॥ १० ॥ पलायन्तं च कांतं च शांतं सत्त्वं सुविग्रहम्॥विलोक्य कंपिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया॥११॥विलोक्य लम्पटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः ॥ पुटांजलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ १२ ॥ रक्षरक्षेत्युक्तवंत्यो देवीमिति पुनः पुनः ॥ ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपंकजे ॥१३॥ त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च ॥ ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद ॥१४॥पलायंतं च कांतं च विज्ञाय परमेश्वरी॥पलायंतीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा॥१५॥अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका ॥ सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥१६॥ इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा ॥ रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥ १७ ॥

जोड भक्तिसे नम्र कंधे किये ॥ १२ ॥ रक्षा करो २ ऐसे वार २ देवीसे कहने लगे भयसे उनके चरण कमलकी शरणमें प्राप्त हुईं ॥ १३ ॥ सुदामाको आदिले तीनलाखकोटि गोप हे नारद ! भयसे यह सब उनके शरणागत हुए ॥ १४ ॥ स्वामीको द्रुत वेगसे गमन करता देखकर तथा पलायन करती उस सुशीला सहचरीको देखकर परमेश्वरीने शापदिया ॥ १५ ॥ यदि यह गोपी आजसे कभी गोलोकमें आवेगी तो तत्काल भस्म हो जायगी ॥ १६ ॥ देवदेवेश्वरीने क्रोधसे यह वचन कहकर रासेश्वरीने रासके मध्यमें रासेशको बुलाया ॥ १७ ॥

तब आगे कृष्णको न देखकर विरहसे कातर राधाने एकक्षणको कोटि युगके समान जाना॥ १८ ॥ हे कृष्ण प्राणनाथ ईश प्राणाधिक प्रिय प्राणके अधिष्ठातृदेवता ! आओ तुम्हारे विना प्राण जाते हैं ॥ १९ ॥ पतिके सौभाग्यसेही दिन दिन स्त्रीका गर्व बढता है और बडा सुख होता है इस कारण धर्मसे उसको सदा सेवन करै ॥ २० ॥ कुलस्त्रियोंका पति ही बंधु अधिदेवता सदा गति है परमसम्पत्ति स्वरूप मूर्तिमान् भोगदायक है॥२१॥ धर्म सुख प्रीति और सदा शांतिका देनेवाला है सन्मानसे दीप्तिमान् मानदायक मानका खण्डन करनेवाला है ॥२२॥ यह स्वामी सारसे

नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा ॥ युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥ १८ ॥ हे कृष्ण प्राणनाथे शाऽऽगच्छ प्राणाधिकप्रिय ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यांति त्वया विना ॥ १९ ॥ स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिनेदिने ॥ सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा ॥ २० ॥ पतिर्बंधुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः ॥ परसंपत्स्वरूपश्च मूर्त्तिमान्भोगदः सदा ॥२१॥ धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शांतिदः सदा ॥ सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखंडनः ॥ २२ ॥ सारात्सारतरः स्वामी बंधूनां बंधुवर्धनः ॥ न च भर्तुः समो बंधुर्बंधोर्बंधुषु दृश्यते ॥२३॥ भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते ॥ शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कांत उच्यते ॥ २४ ॥ बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः ॥ ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः ॥ ॥ २५ ॥ रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः ॥ पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः ॥ २६ ॥ शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा ॥ असत्कुलप्रसूता या कांतं विज्ञातुमक्षमा ॥ २७ ॥

भी सारतर बंधुओंकी बंधुताका बढानेवाला स्त्रियोंको भर्ताके समान कहीं दूसरा बंधु नहीं है ॥ २३ ॥ स्वामी भरण करनेसे भर्ता और पालनसे पति कहाता है शरीरका ईश होनेसे स्वामी और कामदायक होनेसे कान्त कहाता है ॥ २४ ॥ सुखवृद्धि करनेसे बंधु और प्रीतिदानसे प्रिय कहाता है ऐश्वर्यदानसे ईश और प्राणेश होनेसे प्राणनायक होता है ॥ २५ ॥ रतिदानसे रमण, इससे अधिक कोई प्रिय नहीं इस कारण यह प्रियात्पर है स्वामीके वीर्यसे ही पुत्र होता है इस कारण इसको प्रिय कहते हैं ॥ २६ ॥ कुलस्त्रियोंको स्वामी सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय

है और असत् कुलकी स्त्री अपने स्वामीकी महिमा नहीं जानती ॥ २७ ॥ सब तीर्थोंमें स्नान, सब यज्ञोंकी दक्षिणा, पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण तप ॥ २८ ॥ सब व्रत और महादान और जितने प्रसिद्ध उपवास हैं ॥ २९ ॥ गुरु ब्राह्मण तथा वेदकी सेवा स्वामीकी पादसेवाकी सोलहवीं कलाके भी योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ गुरु विप्र देव सेवाओंमें गुरु सबसे अधिक ह कारण कि पुरुषोंको विद्या दान करता है, इसी प्रकार कुलस्त्रियोंको स्वामी प्यारे हैं ॥ ३१ ॥ लक्षकोटि गोपी और गोप असंख्य ब्रह्माण्ड और उनकी स्थिति ॥ ३२ ॥ जिसके प्रसादसे विश्वादि

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा ॥ प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्चसर्वाणि च तपांसि च ॥ २८ ॥ सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च ॥ उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च ॥२९॥ गुरुसेवाविप्रसेवावेदसेवादिकं च यत् ॥ स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ३० ॥ गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः ॥ विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा स्त्रियः ॥३१॥ गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च ॥ ब्रह्मांडानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥ ३२ ॥ विश्वादिगोलकांतानामीश्वरी यत्प्रसादतः ॥ अहं न जाने तं कांतं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः ॥ रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथनाथेति चाऽब्रवीत् ॥ ३४ ॥ दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता ॥ अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने ॥ ३५ ॥ सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ ॥ अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् ॥ ३६ ॥ नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् ॥ विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम् ॥ ३७ ॥

गोलकान्तोंकी ईश्वरी हूं म उस स्वामीको नहीं जानती स्त्रियोंका स्वभाव बडा दुरवगाह है ॥ ३३ ॥ यह कहकर राधिकाने भक्तिसे कृष्णका ध्यान किया और प्रेमसे रुदन कर नाथ २ कहने लगी ॥३४॥ हे रमण ! मैं दीना तुम्हारे वियोगसे दुःखी हूं मुझे दर्शन दो हे मुने ! इस प्रकार तो राधा व्याकुल हुई और उधर वह देवी दक्षिणा गोलोकसे भ्रष्ट हो॥ ३५ ॥ महातप करके लक्ष्मीके शरीरमें प्रवेश करगई तब सम्पूर्ण देवता बडा दुस्तर यज्ञ करके भी ॥ ३६ ॥ उसका फल न पाते हुए तब दुःखी हो ब्रह्माजीके समीप गये तब विधाताने उनका निवेदन

सुनकर देवादिके जगत्पतिका ॥ ३७ ॥ बहुत कालतक ध्यान करके उनकी आज्ञा पायी कि मैं तुम्हारा कार्य करूंगा तब नारायण भगवान्‌ने महालक्ष्मीके शरीरसे ॥ ३८ ॥ निकालकर मनुष्योंकी लक्ष्मी दक्षिणा नाम उनको दी ब्रह्माजीने यज्ञके पूर्ण करनेमें और कर्मोंकी पूर्तिमें उनको दिया॥३९॥विधिपूर्वक यज्ञको पूजन कर परम प्रसन्नतासे उनको सन्तुष्ट किया जो कि तप्त सुवर्णके वर्णके समान कोटि चन्द्रके समान प्रभावाली ॥ ४० ॥ अति ही कमनीय सुन्दरी मनोहर कमलमुखी कोमलांगी कमलके समान दीर्घलोचनी ॥ ४१ ॥ विधातासे पूजित लक्ष्मीके अंगसे प्रगट

दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः ॥ नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः ॥ ३८ ॥ निष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ ॥ ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम् ॥३९॥ यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा ॥ तप्तकांचनवर्णाभां चंद्रकोटिसमप्रभाम् ॥ ४० ॥ अतीव कमनीयां च सुंदरीं सुमनोहराम् ॥ कमलास्यां कोमलांगीं कमलायतलोचनाम् ॥ ४१ ॥ कमलासनपूज्यां च कमलांगसमुद्भवाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां बिंबोष्ठीं सुदतीं सतीम् ॥ ४२ ॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषण भूषिताम् ॥४३॥ सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् ॥ कस्तूरीबिंदुभिः सार्धं सुगंधिचंदनेंदुभिः ॥४४॥ सिंदूरबिंदुनाल्पेनाप्यलकाधः स्थलोज्ज्वलाम् ॥ सुप्रशस्तनितंबाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् ॥४५॥ कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् ॥ तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह ॥ ४६ ॥ पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् ॥ दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने ॥ ४७ ॥

अग्निसे शुद्ध पट्ट वस्त्रधारिणी बिम्बा फलके समान ओष्ठवाली सुन्दर दांतवाली सती ॥ ४२ ॥ मालती मालासे गुंथे वेणीके जूडेको धारण किये कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ ४३ ॥ सुवेष सुस्नात मुनियोंका मन भी मोहनेवाली कस्तूरीके बिन्दुओंके सहित सुगंधित चन्दन लगाये ॥४४॥ सिन्दूरके अल्प २ बिन्दुधारे उज्वल अच्छे नितम्बोंसे सम्पन्न पुष्टश्रोणी और स्तनोंसे युक्त ॥४५॥ कामदेवके आधार रूपवाली कामबाणसे पीडित इस प्रकार उस मनोहारिणीको देखकर यज्ञको मूर्छा प्राप्त हुई ॥ ४६ ॥ और विधातासे पूर्वमें बोधित

होनेके कारण उसको भार्यात्वमें ग्रहण किया ॥ ४७ ॥ उसके साथ यज्ञ परम आनंदसे विहार करने लगा तब उस देवीने बारह दिव्य वर्षतक गर्भ धारण किया ॥ ४८ ॥ तब सब कर्मोंके फलरूप पुत्रको उत्पन्न किया कर्मके पूर्ण होनेमें वह पुत्र फलदायक होता है ॥ ४९ ॥ यज्ञ अपनी दक्षिणा पत्नी और फलरूप पुत्रके सहित यज्ञकर्म करनेवालोंको फलका दाता है ऐसा वेदवादी कहते हैं ॥ ५० ॥ इस प्रकार यज्ञ दक्षिणा और फलदायक पुत्रको प्राप्त होकर हे नारद ! सबको कर्मोंका फल देने लगे ॥ ५१ ॥ तब देवादि संतुष्ट

यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह॥गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम् ॥४८॥ ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् ॥ परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥४९॥ यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च ॥ कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेद विदो विदुः ॥५०॥ यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् ॥ फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मिणां चैव नारद ॥५१॥ तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः ॥ स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥ ५२ ॥ कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥५३॥ कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम् ॥ न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथ वा ॥५४॥ मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् ॥ एकरात्रे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा च सा ॥ ५५ ॥ त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥ मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ॥ ५६ ॥

होकर पूर्ण मनोरथ हुए और सब अपने २ स्थानमें गये हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥ ५२ ॥ कर्ता कर्म करके शीघ्र दक्षिणाको दे तो हे मुनिराज उसी समय वह उसके फलको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मके पूर्ण होनेमें उसी समय यदि दक्षिणा ब्राह्मणोंको प्रारब्धवश वा अज्ञानसे न दे ॥ ५४ ॥ तो एक मुहूर्तके बीतनेमें वह दुनी हो जाती है एक रातके बीतनेमें सौगुणी हो जाती है ॥ ५५ ॥ तीन रातमें उससे सौगुणी और सप्ताहमें उससे द्विगुणी होती है और एक महीना बीतनेमें ब्राह्मणोंकी दक्षिणा लाख

गुणी हो जाती है ॥ ५६ ॥ एकवर्ष बीतनेपर फिर तीन कोटि गुणी होती है और उसके विना यजमानोंका सब कर्म निष्फल हो जाता है ॥ ५७ ॥ वह मनुष्य ब्रह्मस्वहारी होकर कर्मके योग्य नहीं होता उस पापसे पातकी होकर दरिद्र और व्याधियुक्त होता है ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती है उसका दिया श्राद्ध तर्पण पितर ग्रहण नहीं करते ॥ ५९ ॥ इस प्रकार देवता उसकी पूजा और अग्नि आहुती ग्रहण नहीं करते कर्म समय मनसे संकल्पित दक्षिणारूप दान यजमान न दे तथा ग्रहीता ब्राह्मण न ले ॥ ६० ॥ वह टूटी

संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ॥ कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥ ५७ ॥ स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः ॥ दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥ ५८ ॥ तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ पितरो नैव गृह्णंति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥ ५९ ॥ एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम् ॥ दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नैव याचते ॥ ६० ॥ उभौ तौ नरके यात छिन्नरज्जौ यथा घटः ॥ नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥ भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुंभीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ॥ ६२ ॥ ततो भवेत्स चांडालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥ पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्तजन्मतः ॥ ६३ ॥ इत्येवं कथितं विप्रः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुंक्ते तत्फलं मुने ॥ ६४ ॥ पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद ॥ नारायण उवाच कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने ॥ ६५ ॥

रस्सीवाले घटकेसमान दोनोंही नरकको जाते हैं और मांग नेपरभी यदि दक्षिणा न दे ॥ ६१ ॥ तो ब्राह्मणका धन हरण करनेका प्रायश्चित्त लगता है इससे वह अवश्य कुंभीपाक नरकमें जाता है ॥ ६२ ॥ फिर वह व्याधियुक्त दरिद्री चांडाल होता है सात आगे और सात पीछेके पुरुषाओंको नरकमें डालता है ॥ ६३ ॥ हे नारद ! यह तो आपसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुने ! जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल कौन भोगता है ॥ ६४ ॥ और यज्ञकी की हुई दक्षिणाकी पूजाविधि कहिये नारायण बोले हे मुने !

अदक्षिणा कर्मका फलही कहा है ॥ ६५ ॥ दक्षिणावाले कर्मकाही फल मिलता है और जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल बलि भोगते हैं ॥ ६६ ॥ यह पहले वामनजीने बलिको वर दिया है कि अश्रोत्रियके श्राद्धका द्रव्य तथा विना श्राद्धका दिया हुआ ॥ ६७ ॥ तथा वृषली ब्राह्मणोंका जो कुछ पूजादि द्रव्य है वा अशुद्ध असत् ब्राह्मणोंका यज्ञ अशुचिका पूजन ॥ ६८ ॥ तथा गुरुके अभक्तका कर्म बलि भोगता है इसमें सन्देह नहीं दक्षिणाका जो ध्यान स्तोत्र पूजा विधान है ॥६९॥ वह सब कण्व शाखामें लिखा है सुनो पहले वह यज्ञ अपनी कर्मदक्ष दक्षि-

सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते ॥ अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुंक्ते च बलिर्मुने ॥६६॥ बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने ॥ अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च ॥६७॥ वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥ असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत् ॥६८॥ गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुंक्ते न संशयः ॥ दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ॥६९॥ तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥ पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम् ॥ ७० ॥ मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः ॥ यज्ञ उवाच ॥ पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरावरा ॥७१॥ राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया ॥ कार्तिकी पूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे ॥ ७२ ॥ आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा ॥ पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा ॥ गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता ॥७४॥

णाको प्राप्त होकर ॥ ७० ॥ उसके स्वरूपसे मोहित हो कामसे व्याकुलीभूत मनसे प्रार्थना करने लगा यज्ञ बोला पहले तुम गोलोककी गोपी सब गोपियोंमें श्रेष्ठ थीं ॥ ७१ ॥ और श्रीकृष्णकी सखी राधाके समान प्रिय थीं कार्तिकी पूर्णमासीको राधाके महोत्सव रासमें ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रगट हुई इससे दक्षिणा कहाती हो हे शोभने ! पहले तुम शीलसे सुशील नामसे विख्यात थी ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांस भागवाली तुम राधाके शापसे दक्षिणा हुई हो तुम गोलोकसे भ्रष्ट होकर हमारे भाग्यसे यहां प्राप्त हुई हो ॥ ७४ ॥

हे महाभागे ! कृपाकरके मुझको अपना स्वामी करो हे देवि ! कर्मियोंके कर्मकी फलदाता तुम्ही हो ॥ ७५ ॥ तुम्हारे विना सबके सब कर्म निष्फल होते हैं और तुम्हारे विना कर्मियोंके कर्म शोभा नहीं पाते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि दिक्पाल तुम्हारे विना कर्मके फल देनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ७७ ॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्माजी हैं और फलरूपी महेश्वर हैं यज्ञरूपी विष्णु मैं हूं और तुम इनकीसाररूपिणी हो ॥ ७८ ॥ फलदायक परब्रह्म निर्गुण पराकृति है स्वयं कृष्ण भगवान् तुम्हारे सहित कार्यमें समर्थ हैं ॥ ७९ ॥ हे कान्ते ! तुमही हमारे जन्म जन्मान्त

कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु ॥ कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा ॥७५॥ त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च न शोभते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च ॥ कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७७॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः ॥ यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७८॥ फलदातृपरं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा ॥ स्वयं कृष्णश्च भगवान्स च शक्तस्त्वया सह ॥ ७९ ॥ त्वमेव शक्तिः कांते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि॥सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥८०॥इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता ॥ तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥ ८१ ॥ इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् ॥ फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः ॥८२॥ राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके ॥ अश्वमेधे लांगले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥८३॥ धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके॥लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके ॥८४॥ शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बंधुके ॥ वृष्टौ वरुणयागे च कंडके वैरिमर्दने ॥ ८५ ॥

रकी शक्ति हो हे वरानने ! तुम्हारे सहित मैं सब कर्म करनेमें समर्थ हूं ॥ ८० ॥ यज्ञके अधिष्ठात्री देवता यह कहकर उसके आगे स्थित हुए तब वह कमलाकी कला उनपर संतुष्ट हुई और उनको भजने लगी ॥ ८१ ॥ यह दक्षिणा स्तोत्र जो कोई यज्ञकालमें पढता है निःसन्देह उसको सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥ राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध,लांगल, श्रीकर, यशस्कर, वैष्णवयज्ञ ॥८३॥ धनदायक, भूमिदायक, पूर्त, फलद, गजमेध, लोहयज्ञ स्वर्णयज्ञ,रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ,॥८४॥शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, शक्रयज्ञ, बंधुकयज्ञ,वृष्टिमें वरुणयाग,कंडक,

वैरिमर्दन ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञ धर्मयज्ञ पापमोचनयज्ञ ब्रह्माणीयज्ञ कर्मयाग योनियाग भद्रकयाग ॥८६॥ यदि इन यागोंके आरम्भमें इस स्तोत्रको जो कोई पढे निश्चय ही उसका सब कर्म निर्विघ्न होता है ॥ ८७ ॥ यह स्तोत्र तो कहा अब ध्यान और पूजा विधि सुनो शालिग्राम वा घटमें दक्षिणाको पूजन करै॥८८॥लक्ष्मीके दक्षिणांशसे समुत्पन्न कालाकी कला दक्षिणा सब कर्ममें दक्ष और सब कर्मोंका फल देनेवाली॥८९॥ विष्णुकी शक्तिस्वरूपा पूजित और विदित शुद्धिदा शुद्धिरूपा सुशीला शुभदायकका मैं भजन करता हूं ॥ ९० ॥ वरदायकाको इस प्रकार

शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने ॥ ब्रह्माणी कर्मयागे च योनियागे च भद्रके ॥ ८६ ॥ एतेषां च समारंभे इदं स्तोत्रं च यः पठेत् ॥ निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम् ॥ ८७ ॥ इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ शाल-ग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीदक्षांससंभूतां दक्षिणां कमलाकलाम् ॥ सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्व कर्मणाम् ॥ ८९ ॥ विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वंदितां शुभाम् ॥ शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे ॥ ९० ॥ ध्यात्वाऽनेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः ॥ दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद ॥ ९१ ॥ ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥ ९२ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्दक्षिणाख्यानमेव च ॥ सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥ ९३ ॥ इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः ॥ अंगहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि ॥९४॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् ॥ भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥९५॥

ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजन करै और हे नारदजी ! वेदानुसार देवीको पाद्यादिक देकर ॥९१॥ ओं श्रींक्लींह्रींदक्षिणायै स्वाहा इस प्रकारके मंत्रसे विचक्षण पुरुष परम भक्तिसे सर्वपूजित दक्षिणाका पूजन करै॥९२॥हे ब्रह्मन् ! यह आपसे दक्षिणाका आख्यान कहा यह सुखदायक प्रीतिदायक और सब कर्मोंका फल देनेवाला है ॥९३॥ जो सावधान होकर इस दक्षिणाके आख्यानको सुनते हैं भारतभूमिमें वह कर्म अंगहीन नहीं होता है ॥ ९४ ॥ अवश्यही अपुत्र पुरुषके निश्चित गुणसम्पन्न पुत्र होता है भार्याहीन पुरुष सुशीलसुन्दर भार्याको प्राप्त करता है ॥ ९५ ॥

जो सुन्दरमुखी पुत्र प्रगट करनेवाली पतिव्रता शुद्ध कुलजा श्रेष्ठ वधू होती है ॥ १६ ॥ विद्याहीनको विद्या और धनहीनको धन मिलता है भूमिहीनको भूमि और प्रजा होनको प्रजा प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ संकटमें भाइयोंके वियोग विपत्ति वंधनकी उपस्थितिमें एक महीने इस स्तोत्रको सुनकर संकटसे मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषाटीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले अनेक देवियोंका आख्यान सुना हे वेदविदांवर ! अब दूसरी देवियोंका चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥ पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम् ॥ १६ ॥ विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम् ॥ भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम् ॥ १७ ॥ संकटे बंधुविच्छेदे विपत्तौ बंधने तथा ॥ मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे दक्षिणोपाख्याने पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ॥ अन्यासां चरितं ब्रह्मन्वद वेदविदां वर ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ सर्वासां चरितं विप्र वेदेषु च पृथक्पृथक् ॥ पुर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ षष्ठी मंगलचंडी च मनसा प्रकृतेः कला ॥ उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता ॥ बालकानामधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा ॥ ४ ॥ मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या ॥ प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कंदभार्या च सुव्रता ॥ ५ ॥

नारायण बोले हे ब्रह्मन् ! वेदमें पृथक् पृथक् सबके चरित्र कहे हैं तुम पूर्वोक्त देवियोंमें किसके चरित्र सुनना चाहते हो ॥ २ ॥ नारदजी बोले षष्ठी, मंगली, चण्डी और मनसा प्रकृतिकी कला हैं इनकी उत्पत्ति और चरित्र मैं तत्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ नारायण बोले प्रवृत्तिका षष्ठांशही षष्ठी है यह बालकोंकी अधिष्ठात्री विष्णुकी माया बालकोंको देनेवाली है ॥ ४ ॥ यह देवसेना नामक मातृकाओंमें विख्यात है यह प्राणसे अधिक प्रिय स्कंदकी साध्वी सुव्रता भार्या है ॥ ५ ॥

बालकोंको आयु देनेवाली धात्री रक्षण करनेवाली है योगसे सिद्ध यह योगिनी निरन्तर बालकके पार्श्वभागमें स्थित रहती है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् । उसकी पूजाविधि और इतिहास सुनो जो पुत्रदायक सुखदायक कथा धर्मराजके मुखसे सुनी है ॥ ७ ॥ स्वायंभु मनुके पुत्र राजा प्रियव्रत हुए यह तपस्यामें सदा रत योगीन्द्र भार्या परिग्रह न करते हुए ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे स्त्री ग्रहण की परन्तु चिरकालतक भी कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ ९ ॥ तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मुनिने

आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ॥ सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी ॥ ६ ॥ तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु ॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥ राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायंभुवमनोः सुतः॥ योगींद्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥ ८ ॥ ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह ॥ सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥ ९ ॥ पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः ॥ मालिन्यै तस्य कांतायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥ १० ॥ भुक्त्वा च तं चरुं तस्याः सद्यो गर्भो बभूव ह ॥ दधार तं च सा देवी देवं द्वादशवत्सरम् ॥ ११ ॥ ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् ॥ सर्वावयवसंपन्नं मृतमुत्तार लोचनम् ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बांधवस्त्रियः ॥ मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन भूयसा ॥ १३ ॥ श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने ॥ रुरोद तत्र कांतारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ १४ ॥ नोत्सृजद्बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥ ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥ १५ ॥

यज्ञचरु उनकी मालिनी नामक स्त्रीको दिया ॥ १० ॥ उस चरुके भक्षण करते ही उसको तत्काल गर्भ रहा तब देवीने बारह वर्षतक गर्भको धारण किया ॥ ११ ॥ तब उसके सुवर्णके समान कांतिमान् पुत्र जन्मा जो सब अवयवसे सम्पन्न मृत उत्तार नेत्रयुक्त था ॥ १२ ॥ उसको मृतक देख सब स्त्री आदि हा हा कारसे रोने लगीं और पुत्रशोकसे माता मूर्छित होगई ॥ १३ ॥ हे मुने ! उस बालकको लेकर राजा श्मशानमें गये और उसे हृदयसे लगाय वनमें रुदन करने लगे ॥ १४ ॥ राजाने बालकको न छोड़ा और प्राणत्यागन करनेपर

उतारू हुआ और दारुण शोकसे ज्ञानयोगको भूल गया ॥१५॥ इसी समय उसने एक विमान देखा जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान मणिश्रेष्ठोंसे बना था ॥१६॥ निरन्तर तेजसे प्रकाशमान क्षौमवस्त्रोंसे शोभित और अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र फूलमालाओंसे विराजित ॥ १७ ॥ उसमें एक बडी मनोहरा देवीका दर्शन किया जो श्वेत चंपकके समान वर्ण सम्पन्न निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥१८॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नभूषणोंसे भूषित कृपामयी योगसिद्धा भक्तोंके अनुग्रहमें तत्पर थी ॥ १९ ॥ राजाने भगवतीको देख परम आदरसे सन्तुष्ट किया और बालकको भूमिपर छोड

एतस्मिन्नंतरे तत्र विमानं च ददर्श सः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविनिर्मितम् ॥१६॥ तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा ॥ नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥१७॥ ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥१८॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरम् ॥ चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥२०॥ पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्॥ तेजसा ज्वलितां शांतां कांतां स्कन्दस्य नारद ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ का त्वं सुशोभने कांते कस्य कांतासि सुव्रते ॥ कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥ २२ ॥ नृपेंद्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मंगलचंडिका ॥ उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी ॥ २३ ॥ देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा ॥ जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥ २४ ॥ श्रीदेवसेनोवाच ॥ ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी ॥ सृष्ट्वा मां मनसा धाता ददौ स्कंदाय भूमिप ॥ २५ ॥

कर उसका पूजन किया ॥ २० ॥ उस ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान कान्तिवाली प्रसन्न, तेजसे प्रज्वलित, शान्त, स्कंदकी- भार्यासे राजा पूछने लगे ॥२१॥ राजा बोला, हे शोभने कान्ते ! तुम कौन किसकी प्रिया हो हे वरारोहे! तुम स्त्रियोंमें धन्या मान्या किसकी कन्या हो ॥ २२ ॥ राजाके यह वचन सुन यह जगन्मंगला चण्डिका देवसेना देवरणकारिणी बोली ॥ २३ ॥ पहले मैं दैत्योंसे ग्रस्त देवताओंकी सेना हुई थी, और देवताओंको जय देनेके कारणही देवसेना हुई ॥ २४ ॥ देवसेना बोली मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या देवसेना ईश्वरी हूं, हे राजन् विधाताने मुझे मनसे

रचनाकर स्कंदके निमित्त दिया ॥ २५ ॥ मैं माताओंमें विख्यात स्कंदकी सुव्रता भार्या हूं और प्रकृतिका षष्ठांश होनेसे संसारमें षष्ठीनामसे विख्यात हूं ॥ २६ ॥ मैं अपुत्रोंको पुत्र और प्रियाकी इच्छावालोंको प्रिया देती हूं, दरिद्रोंको धन और कर्मियोंको कर्म देती हूं ॥ २७ ॥ सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, संपत्ति, विपत्ति, सब कर्मसे होती है ॥ २८ ॥ कर्मसे बहुत पुत्र कर्मसेही वंशहीन कर्मसेही मृत पुत्र और कर्मसेही चिरजीवी पुत्र होता है ॥ २९ ॥ कर्मसेही गुणवान् अङ्गहीन बहुत भार्यावाला तथा भार्याहीन होता है ॥ ३० ॥ कर्मसेही रूपवान् धर्मी रोगी व्याधित और अरोगी होता है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस कारण सब शास्त्र वेदमें कर्मविशेष सुना गया है हे मुने ऐसा कह वोह देवी बालकको ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ महा ज्ञानसे अपनी लीलासेही उसको जिवाती हुई जब राजाने कंचन वर्ण उस बालकको हँसता देखा ॥ ३३ ॥ तब राजासे देवसेना पूछकर उस बालकको लेकर आकाशमें जानेकी इच्छा करने लगी ॥३४॥ तब फिर राजा शुष्क कण्ठ ओष्ठ तालुसे उसकी प्रार्थना करने लगे तब वह देवी राजाके स्तोत्रसे सन्तुष्ट हुई ॥ ३५ ॥

मातृकासु च विख्याता स्कंदभार्या च सुव्रता ॥ विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेः परा ॥२६॥ अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियादात्री प्रियाय च ॥ धनदाऽहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा ॥२७॥ सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मंगलमेव च ॥ संपत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥२८॥ कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा ॥ कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीवनः ॥ २९ ॥ कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चांगहीनकः ॥ कर्मणा बहुभार्यश्च भार्या हीनश्च कर्मणा ॥३०॥ कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्वकर्मणा ॥ कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणाऽऽरोग्यमेव च ॥३१॥ तस्मात्कर्म परं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ॥३२॥ महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया ॥ राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम्॥३३॥ देवसेना च पश्यंतं नृपमापृच्छ्य सा तदा ॥ गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गंतुमुद्यता ॥३४॥ पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ॥ ३५ ॥

और वेदोक्त कर्मको राजासे कहने लगी देवी बोली तुम स्वायंभुव मनुके पुत्र त्रिलोकीके राजा हो ॥ ३६ ॥ तुम सर्वत्र हमारी पूजा कराओ तब मैं तुमको कुलवर्द्धक मनोहर पुत्र दूंगी ॥ ३७ ॥ जो सुव्रत नामसे विख्यात गुणवान् पंडित जातिस्मरणवाला योगीन्द्र नारायणकी कलाही होगा ॥ ३८ ॥ सौ यज्ञका करनेवाला श्रेष्ठ क्षत्रियोंसे नमस्कृत लक्ष मत्त मातंगके बलसे सम्पन्न ॥३९॥ धनी गुणी शुद्ध विद्वानोंका प्रिय योगी ज्ञानी और तपस्वियोंका सिद्धरूप ॥ ४० ॥ लोकमें यशस्वी सब संपत्तियोंका देनेवाला होगा यह कहकर देवीने वह बालक राजाको दिया ॥ ४१ ॥

उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्म निर्मितम् ॥ देव्युवाच ॥ त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायंभुवमनोः सुतः ॥ ३६ ॥ मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥ तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् ॥ ३७ ॥ सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवंतं सुपंडितम् ॥ जातिस्मरं च योगींद्रं नारायणकलात्मकम् ॥ ३८ ॥ शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वंदितम् ॥ मत्तमातंगलक्षाणां धृतवंतं बलं शुभम् ॥३९॥ धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥ योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम् ॥ ४० ॥ यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसंपदाम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ॥ ४१ ॥ राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः ॥ जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् ॥४२॥ आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः ॥ आगत्य कथयामास वृत्तांतं पुत्रहेतुकम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा बभूवुः संतुष्टा नरा नार्यश्च नारद ॥ मंगलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥ ४४ ॥ देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनंददौ ॥ राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् ॥ ४५ ॥

राजाने पूजा स्वीकार की और देवी उसको सुन्दर वर देकर स्वर्गको गई ॥ ४२ ॥ राजा मंत्रियों सहित प्रसन्न हो अपने घर आये और आकर पुत्र पानेका वृत्तान्त कहा ॥ ४३ ॥ पुरुष स्त्रियें यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और पुत्रके निमित्त सर्वत्र मंगल कराया ॥ ४४ ॥ देवीको पूजनकर ब्राह्मणोंको धन दिया और राजाने प्रतिमहीने शुक्लापष्ठीमें महोत्सव ॥ ४५ ॥

षष्ठी देवीका कराया और सूतिका स्थानमें बालकोंके निमित्त छठीका उत्सव करवाया ॥ ४६ ॥ छठे अथवा इक्कीसवें दिन उसकी पूजा कराई बालकोंके शुभकार्य अथवा अन्नप्राशनदिनमें ॥ ४७ ॥ राजाने सर्वत्र पूजा कराई और आपभी की, उनकी ध्यानपूजाविधान और स्तोत्र मुझसे सुनो ॥४८॥ हे सुव्रत ! जो धर्मके मुखसे सुनकर कौथुमने कहा शालिग्राम, घट, अथवा वट मूलमें ॥ ४९ ॥ वा भित्तिमें मूर्ति खैंचकर चतुर पुरुष पूजन करै इस शुद्ध प्रकृतिके छठे अंशकी पूजा करके जो सुप्रभा ॥ ५० ॥ सुपुत्रदा शुभदा दयारूपा जगत्की प्रसूति

षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः ॥ बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥ बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा ॥ ४७ ॥ सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥ ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत ॥ शालग्रामे घटेवाऽथ वटमूलेऽथवा मुने ॥ ४९ ॥ भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः ॥ षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम् ॥ ५० ॥ सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ५१ ॥ पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ५२ ॥ पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गंधपुष्पप्रदीपकैः ॥५३॥ नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥ ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् ॥५४॥ अष्टाक्षरं महामंत्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ॥ ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः ॥ ५५ ॥

श्वेतचम्पकके वर्णवाली रत्नोंके भूषणोंसे भूषित है ॥ ५१ ॥ उस पवित्ररूपा परमा देवसेनाका मैं भजन करता हूं इस प्रकार चतुर पुरुष ध्यानकर अपने शिरपर फूल रखकर ॥ ५२ ॥ फिर ध्यानकर मूलमंत्रसे सुव्रता सतीका पूजन करै । पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गंध, पुष्प, दीप ॥ ५३ ॥ विविध नैवेद्य और फल निवेदनकरै ओंह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा, यह मंत्र विधिपूर्वक जपै ॥५४॥ इस अष्टाक्षर महामंत्रको यथाशक्ति जपै फिर स्तुति

कर भक्ति से प्रणामकरै ॥५५॥ सामवेदोक्त स्तोत्र वर और पुत्रफलका देनेवाला है इस अष्टाक्षर महामंत्रको जो एकलाखवार जपै ॥५६॥ उसको अवश्य सुपुत्रकी प्राप्ति होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे मुनिश्रेष्ठ!सब कामना दायक सुन्दर स्तोत्र सुनो॥५७॥हे नारद!यह सबको वांछादायक स्तोत्र वेदोंमें गूढ रूपसे स्थित है प्रियव्रत बोले देवी महादेवी सिद्धि शांतिके निमित्त नमस्कार है॥५८॥शुभा देवसेना षष्ठी देवीको न०वरदा पुत्रदा धन दाके निमित्त प्रणामहै ॥५९॥सुखदा, मोक्षदा, षष्ठी देवीको न०सृष्टि षष्ठांशरूपा सिद्धाको प्रणाम है ॥ ६० ॥ माया सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी सारा

स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम् ॥ अष्टाक्षरं महामन्त्र लक्षधा यो जपेत्ततः ॥५६॥ सुपुत्रं च लभेन्नूनमित्याह कमलो द्भवः ॥ स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ॥५७॥ वांछाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥ नमो देव्यै महा देव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥ शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः ॥ ५९ ॥ सुख दायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ षष्ठ्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ॥ ६० ॥ मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठी देव्यै नमो नमः ॥ सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥ बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ कल्या णदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम् ॥ ६२ ॥ प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ पूज्यायै स्कंदकांतायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वंदितायै नृणां सदा ॥ ६४ ॥ हिंसाक्रोधव र्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥ ६५ ॥

शारदा परा देवीको प्रणाम है ॥ ६१ ॥ बालकोंकी अधिष्ठात्रीदेवीषष्ठी देवीको प्रणाम है कल्याणदा कल्याणी कर्मोका फल देनेवाली ॥ ६२ ॥ अपने भक्तोंके निमित्त प्रत्यक्ष होनेवाली षष्ठी देवीको प्रणाम है सब कर्मोंमें पूजनीया स्कन्दकांता ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिणी षष्ठी देवीको प्रणाम है शुद्धसत्वस्वरूपा मनुष्योंसे सदा वंदित ॥ ६४ ॥ हिंसा क्रोध रहित षष्ठी देवीको प्रणाम है हे सुरेश्वरि !

धन, प्रिया और पुत्र दीजिये ॥ ६५ ॥ हे महेश्वरि ! मान और जय दो शत्रुओंको नष्टकरो धर्म और यश दो, षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६६ ॥ हे सुपूजित ! भूमि प्रजा और विद्या दो कल्याण जयदायक षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ इससे देवीकी स्तुतिकर प्रियव्रतने पुत्र पाया था हे राजेन्द्र ! षष्ठी देवीके प्रसादसे यशस्वी पुत्र मिला था ॥ ६८ ॥ जो यह षष्ठीका स्तोत्र एक वर्षतक सुनता है यह अपुत्र चिरंजीवी पुत्र को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और जो एक वर्ष भक्तिसे इसका पूजनकर सुनता है वह सब पापसे रहित होता है और महावंध्या भी

मानं देहि जयं देहि द्विषो जहि महेश्वरि ॥ धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ६६ ॥ देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते ॥कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमोनमः॥६७॥इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ॥ यशस्विनं च राजेंद्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः॥६८॥षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्यः शृणोति तु वत्सरम्॥अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीवनम्॥६९॥वर्षमेकं च यो भक्त्या संपूज्येदं शृणोति च सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ॥ ७० ॥ वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावंतं यशस्विनम् ॥ सुचिरायुष्यवन्तं च सूते देवीप्रसादतः ॥ ७१ ॥ काकवंध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ॥ वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥ रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत् ॥ मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥७३॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे षष्ठ्युपाख्याने षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् ॥ देवी मंगलचण्डी च तदाख्यानं निशामय ॥ १ ॥

प्रसूती होती है ॥ ७० ॥ वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी, चिरायुष पुत्रको देवीके प्रसादसे प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ जो स्त्री काकवंध्या और मृतवत्सा होती वह एक वर्ष इस स्तोत्रको सुनकर षष्ठी देवीके प्रसादसे पुत्र पावैगी ॥ ७२ ॥ बालकके रोगी होनेमें जो पिता माता इसको सुने तो षष्ठी देवीके प्रसादसे एक महीनेमें बालक रोगसे मुक्त होजाता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! यथाशास्त्र षष्ठीका उपाख्यान कहा अब मंगल चंडी देवीका उपाख्यान

सुनो ॥१॥ उसकी सब पूजादि जो धर्मके मुखसे सुनी है जो श्रुति और सब विद्वानोंको इष्ट है ॥ २ ॥ जोकल्याणकर्मोंमें प्रतापवती है वह दक्षा चंडी है और जो मंगल कार्योंमें दक्ष है वह मंगलाचण्डी है ॥३॥ अथवा भूमि पुत्र मंगलकी अभीष्टदात्री जो चंडी है वह मंगलचंडिका है ॥ ४ ॥ मंगल एक मनु वंशमें सप्त द्वीपका अधिपति हुआ है उसकी पूज्या और अभीष्टदानसे भी यह मंगलचंडिका कहाती है ॥ ५ ॥ मूर्त्ति भेदसेही वह दुर्गा मूलप्रकृति अधीश्वरी है प्रत्यक्षरूपसे स्त्रियोंको अभीष्टदात्री है ॥ ६ ॥ प्रथम इस परात्पराका शंकरने पूजन

तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्रेण यच्छ्रुतम् ॥ श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ॥ २ ॥ दक्षा या वर्तते चंडी कल्याणेषु च मंगला ॥ मंगलेषु च या दक्षा सा च मंगलचंडिका ॥ ३ ॥ पूज्या या वर्तते चंडी मंगलोऽपि महीसुतः ॥ मंगलाभीष्टदेवी या सा वा मंगलचंडिका ॥ ४ ॥ मंगलो मनुवंश्यश्च सप्तद्वीपधरापतिः ॥ तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मंगलचंडिका ॥ ५ ॥ मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥ ६ ॥ प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण परात्परा ॥ त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥ ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतेन च संकटे ॥ आकाशात्पतिते याने दैत्येन पातिते रुषा ॥८॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः ॥ सा च मंगलचंडी या बभूव रूपभेदतः ॥ ९ ॥ उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति तं प्रभो ॥ भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ युद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि न संशयः ॥ मायात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥११॥ जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघातकम् ॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी शंभो शक्तिर्बभूव सा ॥१२॥

किया था जब घोर त्रिपुर वधको विष्णुने प्रेरणा की थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! जब दैत्यने क्रोधकर आकाशमें विमान पातित किया था तब दुर्गतसंकटमें ब्रह्माके उपदेशसे ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णुके उपदेशसे शंकरने दुर्गाभगवतीको सन्तुष्ट किया था वह रूपभेदसे मंगलचंडी कहाती है ॥ ९ ॥ शिवजीसे यह कहा था कि हे प्रभो ! अब भय नहीं है विष्णु भगवान् वृषरूपसे तुम्हारे वाहन होंगे ॥ १० ॥ और निःसन्देह मैं युद्ध शक्तिस्वरूपा हूंगी हे शंकर ! मेरे और विष्णुके सहायक होनेसे ॥ ११ ॥ देवताओंके पदघातक शत्रुको तुम भलीभांति जयकर सकोगे यह

कह भगवती अन्तर्द्धान होकर शंभुकी शक्ति हुई ॥ १२ ॥ और विष्णुके दिये शस्त्रसे शिवजीने उस दैत्यको मारा हे मुनीन्द्र ! उस दैत्यके पतित होनेमें सम्पूर्ण देवतामहर्षि ॥ १३ ॥ भक्तिसे नम्र कंधा हो शंकरकी स्तुति करने लगे और उसी समय शिवजीपर पुष्पवृष्टि हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विष्णुने प्रसन्न हो उनको श्रेष्ठ आशीर्वाद दिये और इन दोनोंकी आज्ञासे शिवजी स्नानकर ॥ १५ ॥ भक्तिसे मंगल चंडीका देवीकी पूजा करते हुए पाद्य अर्घ्य आचमन दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्र ॥ १६ ॥ हे मुने ! पुष्प चन्दन नैवेद्य और अनेक प्रकार

विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः ॥ मुनींद्रपतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१३॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः सद्यः शिरसि शंभोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च संतुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरस्तथा ॥ १५ ॥ पूजयामास तां भक्त्या देवीं मंगलचंडिकाम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥ ॥ १६ ॥पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने ॥ छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा ॥ १७ ॥ वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि ॥ मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि ॥ १८ ॥ संगीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः ॥ ध्यात्वा माध्यंदिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ ददौ द्रव्याणि मूलेन मंत्रेणैव च नारद ॥ ॐह्रींश्रीक्लींसर्वपूज्ये देवि मंगलचंडिके ॥ २० ॥ हूंहूं फट्स्वाहाप्येकविंशाक्षरो मन्त्रः ॥ पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः ॥ २१ ॥ दशलक्षजपेनैव मंत्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥ २२ ॥

छाग, मेष, महिष, गवय, विविध पक्षी ॥ १७ ॥ वस्त्र, अलंकार, माला, पायस, पिष्ट पदार्थ, मधु, सुधा अनेक प्रकारके फल ॥ १८ ॥ संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव, नामकीर्तन द्वारा माध्यन्दिनके अनुसार ध्यान करके भक्तिपूर्वक ॥ १९ ॥ हे नारद ! मूलमंत्रसे देवीकी प्रीतिके निमित्त यह सब दिये "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्व पूज्ये देवी मंगल चंडिके हूं हूं फट् स्वाहा ॥ २० ॥ यह इक्कीस अक्षरका ओंकार रहित मंत्र है यह पूज्य कल्पतरु और भक्तोंको सब कामना देनेवाला है ॥ २१ ॥ दशलाख जपनेसे इस

मंत्रकी सिद्धि अवश्य होती है ब्रह्मन् ! वेदोक्त सर्व सम्मत भगवतीका ध्यान सुनो ॥ २२ ॥ वह सोलहवर्षकी अवस्थावाली निरन्तर स्थित यौवनवाली बिम्बोष्ठी सुदती निरन्तर शुद्ध शरत्पद्मके समान मुखवाली ॥ २३ ॥ श्वेतचम्पकके वर्णके समान नीलकमलवत् नेत्र जगद्धात्री और सबको सब संपत्तियोंकी देनेवाली ॥ २४ ॥ इस घोर संसारसागरमें ज्योतिरूपका सदा भजन करता हूं हे मुने ! देवीका यह ध्यान है अब स्तुति सुनो ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले हे जगन्माता चण्डिके! हमारी रक्षा करो विपत्ति समूहकी हरनेवाली और हर्ष मंगलकी करनेवाली हो ॥ २६ ॥ हर्ष मंगलदक्ष और हर्ष मंगलकी देनेवाली शुभ मंगलमें दक्ष शुभ मंगल चंडिके ॥ २७ ॥

देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ बिंबोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥२३॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पललोचनाम् ॥ जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम् ॥२४॥ संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे॥देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने॥२५॥महादेव उवाच॥रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचंडिके ॥ हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥२६॥हर्षमंगलदक्षे च हर्षमंगलदायिके ॥ शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचंडिके॥२७॥मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले ॥ सतां मंगलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये॥२८॥पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते॥पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥२९॥ मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले॥संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥३०॥ सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये मङ्गसुखप्रदे ॥३१॥ स्तोत्रेणानेन शंभुश्च स्तुत्वा मङ्गलचंडिकाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः ॥३२॥

मंगला मंगलके योग्य सब मंगलकी करनेवाली हे देवी ! सत्पुरुषोंको मंगल देनेवाली सबके मंगलका स्थान ॥ २८ ॥ मंगलवारमें पूज्य मंगलकी अभीष्ट देवता तथा मनुवंशमें हुए मंगल राजासे निरन्तर पूजित ॥ २९ ॥ हे देवि! तुम मंगलकी अधिष्ठात्री देवी मंगलोंकी भी मंगलस्वरूपा इस मंगलाधार संसारमें मोक्षमंगल देनेवाली तुम हो ॥ ३० ॥ मंगलाधारकी सार सब कर्मोंकी पारगामिनी प्रतिमंगलवारमें पूज्य सर्वत्र जानेवाली बहुत सुखकी देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ शिवजी इस स्तोत्रसे मंगलचंडिकाकी स्तुतिकरके

और प्रतिमंगलवारमें पूजा देकर गये ॥ ३२ ॥ प्रथम सर्व मंगलाका शंकरने पूजन किया दूसरीवार मंगल ग्रहने इसका पूजन किया ॥ ३३ ॥ तीसरीवार राजा मंगलने पूजन किया चौथीवार मंगलवारको सुन्दरियोंने पूजा की ॥ ३४ ॥ पांचवींवार मंगलाकांक्षी मनुष्योंने पूजा की फिर सब संसार और विश्वेशने पूजा की ॥ ३५ ॥ फिर यह परमेश्वरी सर्वत्र पूजित हुई हे मुने ! देवता मुनि मानव मनु इन्होंने पूजन किया ॥ ३६ ॥ जो कोई सावधान होकर इस देवीके मंगलस्तोत्रको सुनते हैं उसका मंगल ही होता है अमंगल नहीं होता पुत्र पौत्रयुक्त मंगल दिन दिन

प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला ॥ द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च ॥ ३३ ॥ तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च ॥ चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता ॥ ३४ ॥ पंचमे मङ्गलाकांक्षिनरैर्मंगलचंडिका ॥ पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा ॥ ३५ ॥ ततः सर्वत्र संपूज्या बभूव परमेश्वरी ॥ देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने ॥ ३६ ॥ देवाश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहिताः ॥ तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम् ॥ वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिनेदिने ॥ ३७ ॥ नारायण उवाच ॥ उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् ॥ श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ ३८ ॥ सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी ॥ तेनैव मनसा देवी मनसा या च दिव्यति ॥ ३९ ॥ मनसा जायते या च परमात्मानमीश्वरम्॥तेन सा मनसा देवी तेन योगेन दीव्यति॥४०॥आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी॥त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥४१॥ जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमीश्वरः ॥ गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥४२॥

बढता है ॥ ३७ ॥ नारायण बोले हे नारद ! यथाशास्त्र दोनों देवियोंका उपाख्यान कहा अब धर्मके मुखसे सुना मनसाका आख्यान सुनो ॥ ३८ ॥ यह भगवती कश्यपकी मानसी कन्या है यह मनसे क्रीडा करनेकेही कारण मनसा देवी विख्यात हैं ॥ ३९ ॥ जो मनसा परमात्मा ईश्वरका ध्यान करती है वह मनसा देवी इसी कारण उस योगसे क्रीडा करती है ॥ ४० ॥ यह देवी आत्मारामा वैष्णवी सिद्धयोगिनी है इसने तीन युगपर्यन्त परमात्मा कृष्णका तप किया ॥ ४१ ॥ पुराने वस्त्रके

समान इसका शरीर क्षीण देखकर वा जरत्कारु मुनिके समान क्षीण शरीर देखकर श्रीकृष्णने इसका जरत्कारु नाम रक्खा ॥ ४२ ॥ और कृपानिधिने इसको मनवांछित वर देकर स्वयं इनकी पूजा की और कराई थी ॥ ४३ ॥ स्वर्ग नागलोक पृथ्वी और ब्रह्मलोक तक पूजा हुई तथा गौरी सुन्दरी मनोहर ॥४४॥ जगत् गौरी नामोंसे उनसे पूजित हो विख्यात हुई और शिवकी शिष्या होनेसेही यह शैवी कहाती हैं ॥ ४५ ॥ और अत्यन्त विष्णुभक्त होनेसे यह वैष्णवी कहाती हैं जनमेजयके यज्ञमें इसीने नागोंके प्राणोंकी रक्षा की

वांछितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः ॥ पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः ॥४३॥स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः ॥ भृशं जगत्सुगौरी सा सुंदरी च मनोहरा ॥ ४४ ॥ जद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ॥ शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्ताऽतीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥ नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च ॥ ४६ ॥ नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च ॥ विषं संहर्तुमीशा या तेन विषहरी स्मृता ॥ ४७ ॥ सिद्धयोगहरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी ॥ महाज्ञानं च योगं च मृतसंजीवना पराम् ॥ ४८ ॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवदंति मनीषिणः ॥ आस्तीकस्य मुनींद्रस्य माता सापि तपस्विनी ॥ ४९ ॥ आस्तीकमाता विज्ञाता जगत्यां सुप्रतिष्ठता ॥ प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनींद्रस्य महात्मनः ॥ ५० ॥ योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः ॥ जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धियोगिनी ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा ॥ जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेति च ॥ ५२ ॥

थी ॥ ४६ ॥ इसीसे यह नागेश्वरी और नागभगिनी कहकर विख्यात है यह विषहरण करनेमें स्वतंत्र होनेसे विषहरी कहाती है ॥ ४७ ॥ शिवजीसे सिद्धयोग प्राप्त होनेसे यह सिद्धयोगिनी है यह महाज्ञान योगदायक मृतसंजीवनी परा विद्या है ॥ ४८ ॥ मनीषी इसी कारण इसको महाज्ञानवती कहते हैं यह तपस्विनी आस्तीक मुनिश्रेष्ठकी माता है॥४९॥ आस्तीककी माता होकर ही जगत्में प्रतिष्ठित है और महात्मा जरत्कारु मुनीन्द्रकी प्रिया है ॥ ५० ॥ इसीसे विश्वपूज्ययोगी जरत्कारुकी प्रिया कहाती है जरत्कारु जगद्गौरी मनसा सिद्ध योगिनी है ॥ ५१ ॥ वैष्णवी

नाग भगिनी शैवी नागेश्वरी जरत्कारु प्रिया आस्तीकमाता विषहरा ॥ ५२ ॥ महाज्ञानयुता देवी विश्वपूजिता यह बारह नाम जो पूजाके समय पढते हैं ॥ ५३ ॥ उसको तथा उनके वंशवालोंको सर्पोंका भय नहीं होता नागभयमें, शयनमें नागग्रस्त मंदिरमें कहीं भय नहीं होता ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टित विग्रहवाली ऐसा यह स्तोत्र पढकर सर्प भयसे छूट जाता है ॥ ५५ ॥ जो इस स्तोत्रको पढता है उसे देखकर सर्प समूह भाग जाते हैं दशलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि हो जाती है॥ ५६॥जिसको स्तोत्रसिद्धि हो जाय वह विष भी

महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥ द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत् ॥ ५३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मंदिरे॥५४॥नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ५५ ॥ नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥ दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ५६ स्तोत्र सिद्धिर्भवेद्यस्य सविषं भोक्तुमीश्वरः ॥ नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ॥ ५७ ॥ नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥ अंते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायण संवादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ मत्तः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुंगव ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम् ॥ १ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम् ॥ सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धप्रदां भजे ॥ ३ ॥

खा सकता है और भय नहीं होता और नागोंके भूषण करके वह नागवाहन हो सकता है ॥ ५७ ॥ वह पुरुष नागोंके आसन नागोंकी शय्या पर स्थित होनेवाला महासिद्ध होता है अन्तमें विष्णुके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! अब मुझसे पूजाका विधान सुनो और ध्यान विधानभी सामवेदोक्त कहता हूं ॥ १ ॥ श्वेतचंपकके समान वर्ण रत्नोंके भूषणोंसे भूषित, वह्नि शुद्धां शुकाधाना, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २ ॥ महाज्ञान

युता बडे २ ज्ञानियोंमें भी बडी सिद्धाधिष्ठातृ देवी सिद्धासिद्धि देनेवालीका भजन करता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार देवीका ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजा करै नैवेद्य धूप पुष्प गंधानुलेपन ॥ ४ ॥ और वेदोक्त मूलमंत्र पढनेसे वह भक्तोंको मनवांछित फलको देनेवाली है हे मुने! इस मंत्रको कल्पतरु कहते हैं यह बारह अक्षरका है ॥ ५ ॥ " ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा " यह मंत्र है इसके पांच लाख जपसे सिद्धि होती है ॥ ६ ॥ जिसको इस मंत्रकी सिद्धि हो वही भूमिमें सिद्ध है उसको विप भी अमृतके समान होता है वह धन्वन्तारिके

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगंधानुलेपनैः ॥ ४ ॥ मूलमंत्रेश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वांछितप्रदः ॥ मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥ ५ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मानसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः ॥ पंचलक्षजपेनैव मंत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ६ ॥ मंत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले ॥ सुधासमं विपं तस्य धन्वंतरिसमो भवेत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्स्नात्वा तु संक्रांत्यां गूढशालसु यत्नतः ॥ आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥ ८ ॥ पंचम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ॥ धनवान् पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥ पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय ॥ कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ १० ॥ पुरा नागभयाक्रांता बभूवुर्मानवा भुवि ॥ गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुंगवम् ॥ ११ मंत्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणान्वितः ॥ वेद बीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥ १२ ॥

समान होता है ॥ ७ ॥ हे नारद! स्नानकर एकान्त शालामें बैठ ईशानी देवीको आवाहन कर यत्नसे पूजन करै ॥ ८ ॥ जो पंचमीको मनसे ध्यानकर देवीको बलि देता है वह अवश्य धन पुत्र और कीर्तिमान् होता है ॥ ९ ॥ यह पूजा विधान कहा अब आख्यान सुनो हे महाभाग! वह धर्मके मुखसे निर्गत हुआ कहता हूं ॥ १० ॥ पहले मनुष्य नागोंसे बहुत व्याकुल हुए थे तब सब कश्यपकी शरणमें गये थे ॥ ११ ॥ तब ब्रह्माके सहित कश्यपने मन्त्रोंको निर्माण किया वे वेदके बीजानुसार ब्रह्माके उपदेशसे

नाग भगिनी शैवी नागेश्वरी जरत्कारु प्रिया आस्तीकमाता षहरा ॥ ५२ ॥ महाज्ञानयुता देवी विश्वपूजिता यह बारह नाम जो पूजाके समय पढते हैं ॥ ५३ ॥ उसको तथा उनके वंशवालोंको सर्पोंका भय नहीं होता नागभयमें, शयनमें नागग्रस्त मंदिरमें कहीं भय नहीं होता ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टित विग्रहवाली ऐसा यह स्तोत्र पढकर सर्प भयसे छूट जाता है ॥ ५५ ॥ जो इस स्तोत्रको पढता है उसे देखकर सर्प समूह भाग जाते हैं दशलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि हो जाती है॥ ५६ ॥जिसको स्तोत्रसिद्धि हो जाय वह विष भी

महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥ द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत् ॥ ५३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मंदिरे॥५४॥नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ५५ ॥ नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥ दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ५६ स्तोत्र सिद्धिर्भवेद्यस्य सविषं भोक्तुमीश्वरः ॥ नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ॥ ५७ ॥ नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥ अंते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायण संवादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ मत्तः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुंगव ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवाविधानकम् ॥ १ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम् ॥ सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धप्रदां भजे ॥ ३ ॥

खा सकता है और भय नहीं होता और नागोंके भूषण करके वह नागवाहन हो सकता है ॥ ५७ ॥ वह पुरुष नागोंके आसन नागोंकी शय्या पर स्थित होनेवाला महासिद्ध होता है अन्तमें विष्णुके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! अब मुझसे पूजाका विधान सुनो और ध्यान विधानभी सामवेदोक्त कहता हूं ॥ १ ॥ श्वेतचंपकके समान वर्ण रत्नोंके भूषणोंसे भूषित, वह्नि शुद्धां शुकाधाना, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २ ॥ महाज्ञान

युता बडे २ ज्ञानियोंमें भी बडी सिद्धाधिष्ठातृ देवी सिद्धासिद्धि देनेवालीका भजन करता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार देवीका ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजा करै नैवेद्य धूप पुष्प गंधानुलेपन ॥ ४ ॥ और वेदोक्त मूलमंत्र पढनेसे वह भक्तोंको मनवांछित फलको देनेवाली है हे मुने! इस मंत्रको कल्पतरु कहते हैं यह बारह अक्षरका है ॥ ५ ॥ "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा" यह मंत्र है इसके पांच लाख जपसे सिद्धि होती है ॥ ६ ॥ जिसको इस मंत्रकी सिद्धि हो वही भूमिमें सिद्ध है उसको विष भी अमृतके समान होता है वह धन्वन्तरिके

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगंधानुलेपनैः ॥ ४ ॥ मूलमंत्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वांछितप्रदः ॥ मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥ ५ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मानसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः ॥ पंचलक्षजपेनैव मंत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ६ ॥ मंत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले ॥ सुधासमं विषं तस्य धन्वंतरिसमो भवेत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्स्नात्वा तु संक्रांत्यां गूढशालसु यत्नतः ॥ आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥ ८ ॥ पंचम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ॥ धनवान् पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥ पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय ॥ कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ १० ॥ पुरा नागभयाक्रांता बभूवुर्मानवा भुवि ॥ गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुंगवम् ॥ ११ मंत्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणान्वितः ॥ वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥ १२ ॥

समान होता है ॥ ७ ॥ हे नारद! स्नानकर एकान्त शालामें बैठ ईशानी देवीको आवाहन कर यत्नसे पूजन करै ॥ ८ ॥ जो पंचमीको मनसे ध्यानकर देवीको बलि देता है वह अवश्य धन पुत्र और कीर्तिमान् होता है ॥ ९ ॥ यह पूजा विधान कहा अब आख्यान सुनो हे महाभाग! वह धर्मके मुखसे निर्गत हुआ कहता हूं ॥ १० ॥ पहले मनुष्य नागोंसे बहुत व्याकुल हुए थे तब सब कश्यपकी शरणमें गये थे ॥ ११ ॥ तब ब्रह्माके सहित कश्यपने मन्त्रोंको निर्माण किया वे वेदके बीजानुसार ब्रह्माके उपदेशसे

विषहर मंत्र बने ॥ १२ ॥ और सब मं॰ अधिष्ठात्री देवीको मनसे सृजन किया वह तप और मनसे प्रगट होनेके कारण मनसा नामवाली हुई ॥ १३ ॥ वह कुमारी शंकरके स्थानको गई और कैलासमें जाय भक्तिसे पूजन कर शंकरको संतुष्ट किया ॥ १४ ॥ उस कन्याने शिवजीको दिव्य सहस्र वर्ष तक सेवन किया तब आशुतोष शिवजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ उसको महाज्ञान देकर सामवेद पढाया और आठ अक्षरका कल्पतरु नामक कृष्ण मंत्र उसको दिया ॥ १६ ॥ लक्ष्मी माया कामबीज चतुर्थी विभक्तियुक्त

मंत्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तथा ॥ तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा ॥ १३ ॥ कुमारी सा च संभूता जगाम शंकरालयम् ॥ भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टाव चंद्रशेखरम् ॥ १४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषेवे च मुनेः सुता ॥ आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूवह ॥ १५ ॥ महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च ॥ कृष्णमंत्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥ १६ ॥ लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं ततः ॥ त्रैलोक्यमंगलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥ १७ ॥ पुरश्चर्याक्रमं चाऽपि वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥ प्राप्य मृत्युंजयान्मंत्रं सा सती च मुनेः सुता ॥ १८ ॥ जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया ॥ त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥ सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥ दृष्ट्वा कृशांगीं बालां च कृपया च कृपानिधिः॥२०॥ पूजां च कारयामास चकार च स्वयं हरिः ॥ वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ॥ २१ ॥ वरं दत्त्वा च कल्याण्यै ततश्चांतर्दधे हरिः ॥ प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ॥ २२ ॥

कृष्णका मंत्र दिया और त्रैलोक्य मंगल नामक कवच और पूजन क्रम बताये ॥ १७ ॥ और वेदोक्त सर्वसम्मत पुरश्चरण कहा इस प्रकार वह मुनिसुता सती शिवजीसे मंत्रोंको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ शंकरकी आज्ञासे वह साध्वी पुष्करमें तप करनेको चली गई वहां परमात्मा कृष्णका तीन युग पर्यन्त आराधन करके ॥ १९ ॥ सिद्ध हुई और कृष्णका दर्शन पाया उस कृशांगीबालाको देखकर कृपापूर्वक कृपानिधिने ॥ २० ॥ उसकी पूजा स्वयं की और दूसरोंसे कराई और उसको वर दिया कि तुम संसारमें पूजित होगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस

कल्याणीको वर दे भगवान् अन्तर्द्धान हुए प्रथम परमात्मा कृष्णने उसका पूजन किया ॥ २२ ॥ फिर शंकर कश्यप मुनि मनु नाग मनुष्योंने पूजन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह सुव्रता त्रिलोकीमें पूजित हुई कश्यपजीने प्रथम उसको जरत्कारु मुनीन्द्रको दिया था ॥ २४ ॥ मुनि श्रेष्ठकी इच्छा न थी परन्तु ब्रह्माकी आज्ञासे उसको ग्रहण किया वह महायोगी उससे विवाह कर तपसे थकित हो ॥ २५ ॥ पुष्कर क्षेत्रवटके मूलमें देवीकी जंघापर शिर धरकर सो गये अर्थात् निद्रेश ईश्वरको स्मरण कर सोये ॥ २६ ॥ जब सन्ध्या समय सूर्य अस्त होने लगे तब पतिव्रता

द्वितीये शंकरेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥ मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः॥२३॥ बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता ॥ जरत्कारुमुनींद्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा ॥२४॥ अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया ॥ कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रांतस्तपसा चिरम् ॥२५॥ सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे ॥ निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् ॥२६॥ जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थिते ॥ संचिन्त्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता ॥ २७ ॥ धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ॥ अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ २९ ॥ स सर्वत्राऽशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् । वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास सुंदरी ॥ ३० ॥ स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने ॥ मुनिरुवाच ॥ कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभंगः कृतस्त्वया ॥ ३१ ॥ व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चाऽपकारिणी ॥ तपश्चाऽनशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् ॥ ३२ ॥

मनसाने विचार किया ॥२७॥ अर्थात् सन्ध्याके धर्म लोप भयसे विचारने लगी ब्राह्मण नित्यकी पश्चिम सन्ध्या न करके ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादि पापको प्राप्त होते हैं सो मेरे पतिको यह प्रायश्चित्त लगेगा जो पूर्व और पश्चिमकी संध्या नहीं करते ॥ २९ ॥ वह सर्वत्र नित्य अशुचि होता है उसे ब्रह्महत्यादि पाप लगते हैं यह वेदोक्त वार्ता विचारकर सुन्दरीने अपने पतिको जगाया ॥३०॥ हे मुने ! वह मुनि जागतेही उसपर बडे कुपित हुए मुनि बोले हे साध्वी ! तुमने सुखपूर्वक सोते मेरी निद्राभंग क्यों की ॥ ३१ ॥ जो स्वामीका अपकार करती है उसके

व्रतादि सब व्यर्थ हो जाते हैं तप अनशन व्रत दान जो कुछ भी हो ॥ ३२ ॥ स्वामीकी अप्रिय करने वालीका सब वृथा ही जाता है जिसने स्वामीका पूजन किया उसने श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताके व्रतके निमित्त पतिही स्वयं नारायण है सब दान सब यज्ञ सब तीर्थोंका सेवन ॥ ३४ ॥ सब व्रत तप सब उपवासादि सब सत्य धर्म और सब देवपूजन ॥ ३५ ॥ यह सब स्वामीसेवाकी सोलहवीं कला भी नहीं है जो पवित्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है ॥ ३६ ॥ वह स्वामीके सहित

भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥ यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपो हरिः स्वयम् ॥ सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ॥ ३४ ॥ सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत् ॥ सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् ॥ ३५ ॥ तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या ॥ ३६ ॥ वैकुंठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम् ॥ विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् ॥ ३७ ॥ असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति ॥ कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ३८ ॥ ततो भवति चांडाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः ॥ ३९ ॥ चकंपे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ॥ साध्व्युवाच ॥ संध्यालोपभयेनैव निद्राभंगः कृतस्तवः ॥ ४० ॥ कुरु शांतिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥ शृंगारहारनिद्राणां यश्च भंगं करोति वै ॥ ४१ ॥

वैकुण्ठमें ब्रह्मपदको प्राप्त होती है जो स्वामीका अप्रिय करती और उनको अप्रिय वचन बोलती है ॥ ३७ ॥ वह असत्कुलकी उत्पन्न हुई जाननी उसका फल सुनो वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाकमें पडती है ॥ ३८ ॥ फिर पतिपुत्रसे वर्जित चांडाली होती है यह कहते २ मुनि श्रेष्ठके होठ फडक उठे ॥ ३९ ॥ तब वह साध्वी भयसे कंपितहो मुनिश्रेष्ठसे बोली साध्वीने कहा स्वामिन् संध्याविधिके लोप होनेके भयसे ही आपको जगाया था ॥ ४० ॥ हे महाभाग मुझ दुष्टाकी शांतिकरो शृंगार आहार निद्राको जो भंग करता

है ॥ ४१ ॥ वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें पडता है मनसा देवी यह कहकर स्वामीके चरणकमलमें ॥ ४२ ॥ भयभीत हो गिरपडी और वारंवार रुदन करते लगी तब क्रोधकर मुनि सूर्यको शाप देनेको उद्यत हुए ॥ ४३ ॥ उस स्थानमें भगवान् संध्याके सहित वहां आये, हे नारद ! उस समय मुनिसे स्वयं भास्कर कहने लगे ॥ ४४ ॥ और विनय तथा भीतसे यथोचित वचन कहने लगे भास्कर बोले सूर्यास्तका समय देखकर इस साध्वीने धर्मके भयसे ॥ ४५ ॥ हे विप्र इस कारण तुमको जगाया अब मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं हे ब्रह्मन् मुझे क्षमा कीजिये मुझे शाप मत दीजिये ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय

स ब्रजेत्कालसूत्रं वै यावचंद्रदिवाकरौ ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणांबुजे ॥ ४२ ॥ पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः ॥ कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् ॥४३॥ तत्राजगाम भगवान्संध्याया सह नारद ॥ तत्रागत्य मुनिं सम्यगुवाच भास्करः स्वयम् ॥ ४४ ॥ विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम् ॥ भास्कर उवाच ॥ सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च ॥ ४५ ॥ बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः ॥ क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने ॥४६॥ ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥ तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च यतो भस्म भवेज्जगत् ॥ ४७ ॥ पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥४८॥ श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह ॥ ४९ ॥ सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥ तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च ॥५०॥ रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता ॥ सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं विधिं हरिम् ॥ ५१ ॥

मक्खनके समान कोमल होता है इनका क्रोध क्षणार्ध होता है नहीं तो जगत् भस्म होजाय ॥ ४७ ॥ और फिर भी जगत्के निर्माण करनेमें समर्थ होसकते हैं ब्राह्मणसे अधिक कोई तेजस्वी नहीं है ब्राह्मण ब्रह्माके वंशमें होनेसे तेजसे अधिक प्रज्वलित होता है ॥ ४८ ॥ सनातन ब्रह्मज्योति कृष्णकी नित्य भावना करै सूर्यके वचन सुन ब्राह्मण जरत्कारु संतुष्ट हुए ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणका आशीर्वाद ले सूर्य अपने स्थानको गये और ब्राह्मणने अपनी प्रतिज्ञा पालनके निमित्त मनसाको त्यागदिया ॥ ५० ॥ उसके शोकसे

रोता देख यह भी दुखी हुए उस समय मनसाने अपने गुरु शंकर इष्टदेव विधाता हरिका स्मरण किया ॥ ५१ ॥ तथा इस विपत्तिमें जन्म दाता कश्यपका स्मरण किया तब उस स्थानमें गोपीश्वर, भगवान् शम्भु ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा और कश्यप मनसाके विचार करतेही आ गये जब ब्राह्मणने निर्गुण प्रकृतिसे परे अपने इष्टदेवको देखा ॥ ५३ ॥ तब परम भक्तिसे स्तुतिकर बारम्बार प्रणाम करने लगे तथा शिव ब्रह्मा और कश्यपको प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ हे देवताओ ! तुम कैसे आये यह प्रश्न भी किया ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर सहसा

कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता ॥ तत्राजगाम गोपीशो भगवाञ्छंभुरेव च ॥ ५२ ॥ विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिंतितः ॥ दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ५३ ॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा ॥ ५४ ॥ कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम् ॥ ५५ ॥ प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदांबुजम् ॥ यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती ॥ ५६ ॥ कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै ॥ जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने ॥ ५७ ॥ अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम् ॥ स्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथाजलम् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ चकार नाभिसंस्पर्शयोगेन मंत्रपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ मनसा या मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् ॥ जरत्कारुरुवाच ॥ गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति ॥ ६० ॥

समयानुसार ॥ ५५ ॥ हृषीकेशके चरणकमलको प्रणाम कर बोले यदि तुमने अपनी धर्मपत्नी सती मनसाको त्यागन किया है तो ॥ ५६ ॥ अपने धर्म पालन करनेके निमित्त इसको एक पुत्र दीजिये हे मुने ! जायामें पुत्रोत्पत्ति करके पश्चात् त्याग दो ॥ ५७ ॥ जो विरागी विना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी प्रियाको त्यागता है उसका पुण्य चलनीके जलके समान निर्गत हो जाता है ॥ ५८ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर इस प्रकार ब्रह्माजीका वचन सुन योगसे मंत्र पूर्वक उसकी नाभिस्पर्श करते हुए ॥ ५९ ॥ मनसे यह करके मुनिश्रेष्ठने मनसासे

कहा जरत्कारु बोले हे मनसे ! इस गर्भसे तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ६० ॥ जितन्द्रियोंमें प्रवर धर्मात्मा ब्राह्मणोंमें अग्रणी होगा तेजस्वी तपस्वी यशस्वी गुणान्वित ॥ ६१ ॥ वेदवित् ज्ञानी और योगियोंमें श्रेष्ठ वह पुत्र धर्मात्मा विष्णुभक्त कुलका उद्धार करेगा ॥ ६२ ॥ ऐसे पुत्रके जन्म मात्रसे प्रसन्न हो पितर नृत्य करते हैं पतिव्रता सुशीला स्वामीसे प्रिय बोलनेवाली ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रकी माता कुलकी स्त्री कुलपालिका है जो बंधु हरिकी भक्ति देवही बंधु है, केवल अभीष्ट सुखप्रदबंधु नहीं होता ॥ ६४ ॥ हरिमार्गको दिखानेवाला बंधुही पिता है वही माता

जितेंद्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः ॥ तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः ॥६१॥ वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा ॥ शतपुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत् ॥६२॥ नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा ॥ पतिव्रता सुशीला या सा प्रियप्रियवादिनी ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलस्त्री कुलपालिता ॥ हरिभक्तिप्रदो बंधुर्नचाभीष्टसुखप्रदः ॥ ६४ ॥ यो बंधुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः ॥ सा गर्भधारिणी या च गर्भवासविमोचनी ॥ ६५ ॥ दयारूपा च भगिनी यमभीति विमोचनी ॥ विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥ ६६ ॥ गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं यतो विश्वं चराचरम् ॥ ६७ ॥ आविर्भूतं तिरोभूतं किंवा ज्ञानं तदन्यतः ॥ वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम् ॥ ॥ ६८ ॥ तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडंबनम् ॥ दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः ॥ ६९ ॥

यथार्थमें गर्भ धारिणी है जो गर्भका रहना छुडा दे ॥ ६५ ॥ यमका भय छुडानेवाली दयाही भगिनी है विष्णुका मंत्र और भक्तिका देनेवाला गुरु होता है ॥ ६६ ॥ ज्ञानदाता गुरु वही है जिस ज्ञानसे कृष्णकी भावना होती है ब्रह्मासे स्तंबपर्यन्त जिससे चराचर विश्व होता है ॥ ६७ ॥ आविर्भाव और तिरोभाव जो है उसके जाननेसे अधिक और क्या ज्ञान होगा हरिका सेवन ही वेदका और यज्ञका सार है ॥ ६८ ॥ यही तत्वोंका सारभूत है हरिसे अन्य वस्तु विडम्बना मात्र है मैंने तुझको ज्ञान दिया है ज्ञानदाता ही यथार्थ स्वामी है ॥ ६९ ॥

ज्ञानसे ही बंधसे छूटता है जो बंधनमें डाले वह शत्रु है जो गुरु विष्णु भक्तियुक्त ज्ञानको नहीं देता ॥ ७० ॥ वह शत्रु शिष्यघाती है कारण कि वह बंधनसे मुक्त नहीं करता जननीके गर्भस्थितिके क्लेश और यमयातनासे ॥ ७१ ॥ जो मुक्त नहीं करता वह कैसा गुरु पिता वा बंधु है परमानन्द रूप अविनाशी कृष्णका मार्ग है ॥ ७२ ॥ जो इसको निरन्तर नहीं दिखाता वह कैसा बंधु है हे साध्वि ! अच्युत निर्गुण परब्रह्मका भजन करो॥७३॥इनकीही सेवासे पुरुष कर्म बंधनसे छूटता है मैंने इसी निमित्तसे तुमको त्यागा है सो क्षमा करना "विवाहके

ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बंधदः॥विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति हि यो गुरुः॥७०॥ स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत् ॥ जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा ॥ ७१ ॥ न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बांधवः ॥ परमानंदरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम् ॥ ७२ ॥ न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बांधवो नृणाम् ॥ भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम् ॥७३॥ निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया ॥ मया च्छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये ॥ ७४ ॥ क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते ॥ पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम् ॥ ७५ ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे निस्पृहाणां मनोरथाः ॥जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा ॥ ७६ ॥ साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ॥ मनसोवाच ॥ दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभंगेन ते प्रभो ॥७७॥ यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि ॥ बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम् ॥ ७८ ॥

समय प्रतिज्ञा की थी यदि यह मेरी आज्ञा न पालन करेगी तो त्याग दूंगा " ॥ ७४ ॥ क्षमायुक्त साध्वी स्त्रियोंको सत्वगुण अधिक होनेसे क्रोध नहीं होता हे देवि ! अब मैं पुष्करमें तप करने जाताहूं तुम यथा सुख गमन करो ॥७५॥ निस्पृही पुरुषोंके मनोरथ श्रीकृष्णके चरण कमलमेंही होते हैं जरत्कारुके वचन सुन मनसा बडी शोकित हुई ॥ ७६ ॥ आंखोंमें आंसू भर अपने प्राणवल्लभसे बोली मनसा बोली हे प्रभो ! आपकी निद्राभंग होनेसे मेरे त्यागनेमें आपका दोष नहीं है ॥ ७७ ॥ पर जहां मैं आपको स्मरण करूं वहां तुम आना

बंधुका भेद महाक्लेशदायक है और इसके उपरान्त पुत्रका भेद क्लेशकर है ॥ ७८ ॥ पर स्वामीका वियोग प्राणविच्छेदसे भी दुस्तर है पतिव्रताओंको पति सौ पुत्रोंसे अधिक प्रिय होता है ॥ ७९ ॥ सबसे अधिक प्रिय होनेसेही स्त्री पतिको प्रिय कहती है एक पुत्रवालीका जैसे पुत्रमें वैष्णवोंका जैसे हरिमें ॥ ८० ॥ एक नेत्रवालोंका जैसे नेत्रोंमें प्यासोंका जैसे जलमें भुखोंका अन्नमें और कामियोंका मैथुनमें ॥ ८१ ॥ चोरोंका पराये धनमें कुलटाओंका जारमें पण्डितोंका शास्त्रमें बनियोंका व्यापारमें ॥ ८२ ॥

प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः ॥ पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं प्रियः ॥ ७९ ॥ सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः ॥ पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ ॥८०॥ नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथाजले ॥ क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां च मैथुने ॥ ८१ ॥ यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ विदुषां च यथाशास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ॥ ८२ ॥ तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे ॥ ८३ ॥ क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः ॥ नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः ॥८४॥ साश्रुनेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा ॥ तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ सम्बभूवतुः ॥ ८५ ॥ स्मारं स्मारं पदांभोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ जगाम तपसे विप्रः स्वकान्तां संप्रबोध्य च ॥ ८६ ॥ जगाम मनसा शंभोः कैलासं मंदिरं गुरोः ॥ पार्वतीं बोधयामास मनसां शोककर्शिताम् ॥८७॥

जैसे मन होता है इसी प्रकार साध्वी स्त्रियोंका स्वामीमें मन होता है यह कहकर मनसा देवी स्वामीके चरणोंमें गिरी ॥ ८३ ॥ तब वह कृपानिधि क्षणमात्रको प्रियाको गोदमें लेते हुए और मुनिके नेत्रोंके जलसे मनसा भीजगई ॥ ८४ ॥ और वियोगके कारण नेत्रोंके जलसे स्वामीकी गोदी मनसाने भिजोदी तब दोनों ज्ञान अवलम्बन कर शोकरहित हुए ॥ ८५ ॥ वारवार परमात्मा कृष्णके चरणकमलका स्मरण कर अपनी प्रियाको समझाय ब्राह्मण तप करने गये ॥ ८६ ॥ और मनसा शिवजीके स्थान

कैलास मंदिरको गई और शोकसे व्याकुल मनसाको पार्वतीने समझाया ॥ ८७ ॥ और शिवके अतिशय ज्ञान दानके कारण शिवालयमें स्थित वह साध्वी अच्छे दिन मंगलमुहूर्तमें ॥ ८८ ॥ नारायणके अंश योगी और ज्ञानियोंके गुरु पुत्रको उत्पन्न करती हुई, शिवजीके मुखसे गर्भमेंही वह ज्ञान सुनकर ॥ ८९ ॥ योगीन्द्र योगी और ज्ञानियोंका गुरु हुआ तब मंगलवाचनकर उसके जातकर्म कराये ॥ ९० ॥ शिवजीने स्वयं उस बालकके कल्याणके निमित्त वेदपाठ करवाया और मणि रत्नकिरीटादि ब्राह्मणोंको दिया ॥ ९१ ॥ पार्वतीने लाख

शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः ॥ सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मंगलक्षणे ॥ ८८ ॥ नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम् ॥ गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकरवक्त्रतः ॥ ८९ ॥ संम्बभूव च योगींद्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥ जातकं कारयामास वाचयामास मंगलम् ॥ ९० ॥ वेदांश्च पाठयामास शिशाय च शिवः शिशोः ॥ मणिरत्न किरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः ॥ ९१ ॥ पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च ॥ शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदांगानितरां स्तथा ॥ ९२ ॥ बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥ भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा ॥ ९३ ॥ यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवाऽऽस्तीक एव च ॥ जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शंकराज्ञया ॥९४॥ संप्राप्य च महामंत्रं ततश्च परमात्मनः ॥ दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः ॥ ९५ ॥ आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम् ॥ शंकरं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः ॥९६॥ सा चाऽऽजगाम मनसा कश्यपस्याऽऽश्रमं पितुः ॥ तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः ॥ ९७ ॥

गौ और रत्न दिये शिवजीने चारों वेद और वेदांग ॥ ९२ ॥ मृत्युंजयके सहित ज्ञानपूर्वक बालकको पढाये और देवगुरुकी अधिक भक्ति उसकी माताके थी ॥ ९३ ॥ इस कारण उसके बालकका नाम आस्तीक रक्खा तब वह शिवजीकी आज्ञासे पुष्करमें तप करनेको गया ॥ ९४ ॥ वहां परमात्माके महामन्त्रको जो शिवने दिया था जपते जपते उस तपस्वीने दिव्य तीन लाख वर्षतक तप किया ॥ ९५ ॥ तब फिर वह महायोगी शिवके नमस्कार करनेको आये और शिवजीको प्रणामकर वह कुमार वहां स्थित हुए ॥ ९६ ॥ और तब मनसा

अपने पुत्रसहित पिता कश्यपके आश्रममें गई, महर्षिने सुपुत्रा अपनी कन्याको देख बड़ा आनंदमान ॥ ९७ ॥ उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको सौलाख रत्न दिये और बालकके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ९८ ॥ हे परंतप! उस समय अदिति और दिति सबको आनंद हुआ, तब वह सुपुत्रा चिरकालतक पिताके ॥९९॥ आश्रममें रही मैं उसका आख्यान कहता हूं सुनो उसी समय अभिमन्युतनय परीक्षित् को ब्राह्मणका शाप हुआ था॥१००॥ हे नारद! देव दोष कर्मसेही ऐसा हुआ कि एक सप्ताहमें तक्षक तुझको काटेगा ॥ १ ॥ यह शृंगी ऋषिने

शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः ॥ ९८ ॥ अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्राप परंतप ॥ सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये सदा ॥ ९९ ॥ तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय ॥ अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते ॥ १०० ॥ वभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा ॥ सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति ॥ १०१ ॥ शशाप शृंगी तत्रैव कौशिक्याश्च जलेन वै ॥ राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः ॥ २ ॥ तत्र तस्थौ च सप्ताहं देहरक्षणतत्परः ॥ सप्ताहे समतीते तु गच्छंतं तक्षकं पथि ॥ ३ ॥ धन्वंतरिर्नृपं भोक्तुं ददर्श गामुकः पथि ॥ तयोर्वभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् ॥ ४ ॥ धन्वंतरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ ॥ स ययौ तं गृहीत्वा तु संतुष्टो हृष्टमानसः ॥ ५ ॥ तक्षको भक्षयामास नृपं तं मंचके स्थितम् ॥ राजा जगाम तरसा देहं त्यक्त्वा परत्र च ॥ ६ ॥

कौशिकीका जल हाथमें लेकर शाप दिया राजा यह सुनकर ऐसे स्थानमें स्थित हुए जहां स्वच्छन्द पवनभी नहीं जासकता ॥ २ ॥ वह सात दिन देहकी रक्षामें तत्पर होकर रहा, सप्ताह बीतनेपर मार्गमें जाते तक्षकको ॥३॥ राजाके पास धनकी इच्छासे गमन करते धन्वन्तरि मिले वहां उन दोनोंका परस्पर प्रेमपूर्वक संवाद हुआ ॥ ४ ॥ तब तक्षकने स्वेच्छासे धन्वन्तरिको मणि दी वह उसे ले सन्तुष्ट मनसे गये ॥ ५ ॥ तक्षकने मंचपर स्थित राजाको डस लिया राजाका तत्काल देह नष्ट हो गया ॥ ६ ॥

जनमेजयने पिताके संस्कार कराये फिर जनमेजयने सर्पसत्र यज्ञ किया ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्मतेजके कारण सर्पोंके समूह नष्ट होने लगे तब तक्षक डरकर महेन्द्रकी शरण गया ॥ ८ ॥ तब ब्राह्मणोंने इंद्रसहित तक्षकके नष्ट करनेका उद्योग किया तब देवता इंद्रादिक मनसाके समीप गये ॥ ९ ॥ वहां भयसे कातर और विह्वल हो इंद्रने उसको संतुष्ट किया तब माताकी आज्ञासे आस्तीकने यज्ञमें आकर ॥ १० ॥ राजासे महेन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना करी तब नृपश्रेष्ठने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वर दिया

संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः ॥ राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने ॥ ७ ॥ प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥ स तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ ॥ ८ ॥ सेंद्रं च तक्षकं हंतुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥ अथ देवाश्च सेंद्राश्च संजग्मुर्मनसान्तिकम् ॥ ९ ॥ तां तुष्टाव महेंद्रश्च भयकातरविह्वलः ॥ तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया ॥ ११० ॥ महेंद्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं परम् ॥ ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया ॥ १११ ॥ यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा ॥ विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसांतिकम् ॥ १२ ॥ मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक् ॥ शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥ १३ ॥ मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरम् ॥ नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा ॥ १४ ॥ प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ संपूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते ॥ १५ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेंद्रो मनसां सतीम् ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ और यज्ञ समाप्तकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी तथा विप्रमुनिदेवता मनसाके समीप गये ॥ १२ ॥ और मनसाका पूजनकर पृथक् पृथक् पूजन करते हुए और उस समय इन्द्रने भी सामग्री सजाय पवित्रहो ॥ १३ ॥ आदरसे मनसाको पूज उसकी स्तुति करी उसको प्रणामकर षोडशोपचारसे पूज बलि दी ॥ १४ ॥ यह भेंट पूजा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे सन्तुष्ट होकर दी वे मनसा देवीको पूज अपने २ स्थानको गये ॥ १५ ॥ यह आपसे सब कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले महेन्द्रने मनसाको किस स्तोत्रसे

प्रसन्न किया ॥ १६ ॥ और तत्त्वसे उनके पूजाविधि क्रमको कहिये नारायण बोले स्नान आचमन कर पवित्र वस्त्र पहर ॥ १७ ॥ रत्नसिंहासनपर मनसा देवीको बैठाय भक्तिपूर्वक रत्नघटमें भरे स्वर्गगंगाके जलसे ॥ १८ ॥ वेदमंत्रसे इन्द्रने मनसादेवीको स्नान कराया और अग्निमें शुद्ध मनोहर वस्त्र पहराये ॥ १९ ॥ सर्वांगमें चंदन लगाय भक्तिसहित पादार्घ देकर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा ॥ १२० ॥ पहले इन छहों देवताओंको पूजन कर फिर उस सतीकी पूजा की, 'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा', यह मन्त्र है ॥ २१ ॥ दशाक्षर मूलमन्त्रसे

पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ नारायण उवाच ॥ सुस्नातः शुचिराचांतो धृत्वा धौते च वाससी ॥ ॥ १७ ॥ रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः ॥ स्वर्गंगाया जलेनैव रत्नकुंभस्थितेन च ॥ १८ ॥ स्नापयामास मनसां महेंद्रो वेदमन्त्रतः ॥ वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे ॥ १९ ॥ सर्वाङ्गे चंदनं कृत्वा पादार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ १२० ॥ संपूज्याऽऽदौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् ॥ ॐह्रींश्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः ॥ २१ ॥ दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम् ॥ दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायक ॥ २२ ॥ पूजयामास भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो मुदा ॥ वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै ॥ २३ ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥ देवप्रियाज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ २४ ॥ तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकांकितविग्रहः ॥ पुरंदर उवाच ॥ देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम् ॥ २५ ॥ परात्परां च परमां नहिं स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥ स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम् ॥ २६ ॥

सब वस्तु समर्पण की इस प्रकार इन्द्रने दुर्लभ षोडश उपचार देकर ॥ २२ ॥ विष्णुसे प्रेरित हो भक्तिपूर्वक पूजा करी और वहां अनेक प्रकारके बाजे बजाये ॥ २३ ॥ आकाशसे मनसाके ऊपर पुष्पवृष्टि हुई देवप्रियता विप्रकी आज्ञासे तथा ब्रह्मा विष्णु शिवकी आज्ञासे ॥२४॥ पुलकित हो नेत्रोंमें जलभर इंद्र स्तुति करने लगे, इंद्र बोले हे साध्वियोंमें श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी स्तुतिकी इच्छा करता हूं ॥२५॥ तुम परात्पर पर

मात्माकी कौन स्तुति कर सकता है, वेदमें स्तोत्रका लक्षण और स्वभावाख्यान ॥२६॥ हे प्रकृति ! तुम्हारे गुणोंकी गणना कोई नहीं कह सकता तुम शुद्धसत्वकी स्वरूपवाली क्रोध हिंसासे रहित हो ॥ २७ ॥ इससे मुनि तुमको त्यागनेके योग्य नहीं थे कारण कि चलते समय उन्होंने तुम्हारी याचना की थी हे साध्वी ! मैंने तुम्हारी पूजा की तुम मेरी माता अदितिके समान हो ॥२८॥ तुम दयारूप होनेसे भगिनी और क्षमारूप होनेसे माता हो हे सुरेश्वरि! तुमने मेरे प्राण पुत्रदारादि बचाये हैं ॥ २९ ॥ मैं प्रीति बढानेवाली तुम्हारी पूजाको करता हूं हे जगदंबिके ! तुम नित्य और सर्वत्र पूजनीया हो ॥ १३० ॥ हे सुरेश्वरि ! तो भी तुम्हारी पूजाको बढाताहूं जो भक्तिसे तुम्हारी आषाढकी संक्रांतको पूजन करैंगे

न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता ॥ २७ ॥ नच शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः ॥ त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथाऽदितिः ॥ २८ ॥ दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः ॥ त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि ॥ २९ ॥ अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च वर्धतां सदा ॥ नित्या यद्यपि पूज्या ॥ त्वं सर्वत्र जगदंबिके ॥ १३० ॥ तथाऽपि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि ॥ ये त्वमाषाढसंक्रांत्यां पूजयिष्यंति भक्तितः ॥३१॥ पंचम्यां नमसाख्यायां मासान्ते वा दिनेदिने ॥ पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥ ३२ ॥ यशस्विनः कीर्तिमंतो विद्यावन्तो गुणान्विताः ॥ ये त्वां न पूजयिष्यंति निंदंत्यज्ञानतो जनाः ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीहीना भविष्यंति तेषां नागभयं सदा ॥ त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुंठे कमलालया ॥ ३४ ॥ नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥ ३५ ॥ अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥ मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥ ३६ ॥

॥ ३१ ॥ वा मनसा नागपंचमी मासान्त वा दिन दिनमें पूजा करैंगे उनके पुत्र पौत्र और धनादिकी वृद्धिहोगी ॥ ३२ ॥ वे यशस्वी कीर्तिमान् विद्यावान् गुणी होंगे और जो तुम्हारा पूजन न कर अज्ञानसे निन्दा करैंगे ॥ ३३ ॥ वे लक्ष्मीहीन होंगे और उनको सदा नागोंसे भय होगा तुमही स्वयं सबकी लक्ष्मी वैकुंठमें कमलास्वरूप हो ॥ ३४ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर नारायणके अंश हैं पिताने तुमको तेज और तपसे मनसे निर्माण किया है ॥३५॥ हमारी रक्षाको मनसे तुमको प्रगट किया है इस कारण तुम मानसी हो हे देवि ! तुम सिद्धियोगिनी

मनसेही सब कुछ करनेको समर्थ हो ॥ ३६ ॥ इस कारण हे मानसी देवि ! तुम पूजित और वंदित हुई हो जो कि देवता भक्तिसे मनसे तुमको पूजन करते हैं ॥ ३७ ॥ इसकारण विद्वान् लोग तुमको मानसी देवी कहते हैं हे देवि ! निरन्तर सत्यसेवनसे तुम सत्यस्वरूप हो ॥ ३८ ॥ जो तुम्हारी नित्य भावना करते हैं वह तुममें तत्पर हुए तुमको प्राप्त होंगे इस प्रकार इन्द्र मनसाकी स्तुतिकर और अपनी भगिनीसे वर ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ भूषण और सब सामग्रीले कुटुंबसहित अपने घर गये और वह देवी पुत्रके सहित चिर

तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वंदिता भव ॥ ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयंत्यनिशं भृशम् ॥ ३७ ॥ तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदंति मनीषिणः ॥ सत्य स्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात् ॥ ३८ ॥ यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोति तत्परः ॥ इंद्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम् ॥ ३९ ॥ प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम् ॥ पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे ॥ १४० ॥ भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वंद्या च सर्वतः ॥ गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ॥ ४१ ॥ तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥ ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम् ॥ ४२ ॥ तथा देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ ॥ इंद्रस्तोत्रं पुण्यबीजं मनसां पूजयेत्पठेत् ॥ ४३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥ विषं भवेत्सुधा तुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत् ॥ ४४ ॥

कालतक पिताके यहां रही ॥ १४० ॥ वह अपने भाइयोंसे भी पूजित हो सर्वत्र माननीय और पूजनीया हुई, हे नारद! गोलोकसे कामधेनुने उस पूजिताके समीप आकर ॥ ४१ ॥ क्षीरसे उसको स्नान कराकर आदरसे पूजन किया है और बडा दुर्लभ गुप्त ज्ञान उसको कथन किया ॥ ४२ ॥ उससे और देवतोंसे पूजित होकर वह स्वर्गलोकको गई, इन्द्रके स्तोत्र पुण्य बीजवालेसे जो मनसाका पूजन करता है और पढता है ॥ ४३ ॥ उसे और उसके वंशवालोंको नागभय नहीं होता जब यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो विषभी सुधाकी तुल्य होजाता है ॥ ४४ ॥

पांच लाख जपनेसे मनुष्य यह स्तोत्र सिद्ध कर लेता है और वह अवश्यही सर्पोंपर सोनेवाला और सर्पोंपर चढनेवाला होसकता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ नारदजी बोले वह सुरभी देवी कौन है जो गोलोकसे आई हे ब्रह्मन् ! मैं उसके जन्म चारित्र सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ नारायण बोले यह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी प्रसूता गौओंमें प्रधान सुरभी गोलोक वासिनी गोलोकमें प्रगट हुई ॥ २ ॥ मैं सर्वादि सृष्टिका चारित्र कहता हूं सुनो जिस कारण फिर वृन्दावनमें उसका जन्म

पंचलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ॥ सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ नारद उवाच ॥ का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या ॥ तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः ॥ गवां प्रधाना सुरभि र्गोलोके सा समुद्भवा ॥ २ ॥ सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय ॥ बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥ ३ ॥ एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी ॥ गोपांगनापरिवृतः पुण्यं वृंदावनं ययौ ॥ ४ ॥ सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात् ॥ बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥ ५ ॥ ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः ॥ वत्सयुक्तां दुग्ध वतीं वत्सो नाम मनोरथः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च ॥ क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ॥ ७ ॥ तदुत्थं च पयः स्वादु पापौ गोपीपतिः स्वयम् ॥ सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च ॥

हुआ ॥ ३ ॥ एक समय कौतुकी राधिकानाथ राधाके सहित गोपाङ्गनाओंसे युक्त पवित्र वृंदावनमें गये ॥ ४ ॥ और वहां कौतुकसेही एकान्तमें विहार करने लगे तब उनकी स्वेच्छासे क्षीरपानकी इच्छा हुई ॥ ५ ॥ तब उन्होंने लीलापूर्वक वाम ओरसे सुरभी देवीकी सृष्टिकी जो वत्सयुक्त दुधारी थी वत्सका नाम मनोरथ था ॥ ६ ॥ उसको देखकर श्रीदामाने नये बर्तनमें दुहा वह क्षीर जन्म मृत्यु जराका हरनेवाला है ॥ ७ ॥ उसके स्वादुदूधको स्वयं गोपीपतिने पानकिया फिर उस पात्रके टूटनेसे वहां एक दूधका कुंड होगया ॥ ८ ॥

वह दीर्घ और विस्तृत सौयोजनके मध्यमें था वह क्षीरसरोवर गोलोकमें प्रसिद्ध है ॥९॥ वह गोपी और राधाकी क्रीडा बावडी हुई और ईश्वरकी इच्छासे वह रत्नजडित होगई ॥ १० ॥ और वहां सहसा लक्ष कोटि कामधेनु हो गईं जितने वहां गोप थे उतनेही सुरभीके लोम कूपसे ॥ ११ ॥ उनके असंख्य पुत्र हुए यह गौओंकी सृष्टि कही जिससे जगत् पूर्ण है ॥ १२ ॥ हे मुने ! पहले भगवान्ने सुरभीकी पूजा की फिर त्रिलोकीमें इनकी पूजा होने लगी ॥ १३ ॥ दिवालीसे दूसरे दिन श्रीकृष्णकी आज्ञासे गौओंकी पूजा चली है यह हमने धर्मके मुखसे सुना है॥ १४॥

दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम् ॥ गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः ॥ ९ ॥ गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा ॥ रत्नेंद्ररचितापूर्णं भूता चाऽपीश्वरेच्छया ॥१०॥ बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः ॥ यावंतस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः ॥ ११ ॥ तासां पुत्राश्च बहवः संवभूवुरसंख्यकाः ॥ कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत् ॥ १२ ॥ पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने ॥ ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥ १३ ॥ दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽज्ञया हरेः॥बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥१४॥ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम्॥वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते॥१५॥ॐसुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः॥सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥१६॥ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः॥ ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा॥१७॥ लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् ॥ गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥ १८ ॥ पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम् ॥ यया पूतं सर्वं विश्वं तां देवीं सुरभिं भजे ॥ १९ ॥

ध्यान स्तोत्र मूल मंत्र जो जो पूजा विधिका क्रम है हे महाभाग ! वह वेदोक्त मैं सब कहता हूं सुनो ॥ १५ ॥ ॐ सुरभ्यै नमः यह षडक्षर मन्त्र है यह लाख बार जपनेसे सिद्ध होकर कामना पूर्ण करता है ॥ १६ ॥ यजुर्वेदका कहा ज्ञान और उसकी पूजा ऋद्धि और वृद्धि देनेवाली है ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपा परमा राधा सहचरी परमा गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी आद्या प्रसूति ॥ १८ ॥ पवित्राकी पवित्र

रूपा परमा भक्तोंको सब कामना देनेवाली जिसने सब विश्व पवित्र किया है उस सुरभी देवीको भजन करता हूं ॥ १९ ॥ घटमें वा धेनुके शिरमें गौओंके बंधन और स्तंभमें शालिग्राम जल तथा अग्निमें सुरभीको ब्राह्मण पूजा करै ॥ २० ॥ दिवालीसे अगले दिन पूर्वाह्नमें भक्तिपूर्वक जो गौओंकी पूजा करता है वह पृथ्वीमें पूजनीय होता है ॥ २१ ॥ एक समय वाराह कल्पमें विष्णुकी मायासे सुरभीने त्रिलोकीका क्षीर ग्रहण कर लिया तब सब देवता चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ और वे सब ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माको सन्तुष्ट करने लगे तब उनकी आज्ञासे इन्द्रने सुरभीकी

घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवामपि ॥ शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद्द्विजः ॥ २० ॥ दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे शक्तिसंयुतः ॥ यः पूजयेच्च सुरभिं स वै पूज्यो भवेद्भुवि ॥ २१ ॥ एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया ॥ क्षीरं जहार सुरभिश्चिंतिताश्च सुरादयः ॥ २२ ॥ ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा ॥ तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टाव पाकशासनः ॥२३॥ पुरंदर उवाच ॥ नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः ॥ गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदंबिके ॥२४॥ नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः ॥ नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे॥क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥ शुभायै च सुभद्रायै गोपप्रदायै नमो नमः॥ यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥ स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्ट जगत्प्रसूः॥ आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥ २८ ॥ महेंद्राय वरं दत्त्वा वांछितं चापि दुर्लभम् ॥ जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥ २९ ॥

प्रार्थना की थी ॥ २३ ॥ इन्द्र बोले देवी महादेवी सुरभी गौओंकी बीजस्वरूपा जगदम्बाको प्रणाम है ॥२४॥ राधाप्रिया पद्मांशा कृष्णप्रिया गौओंकी माताको प्रणाम है ॥ २५ ॥ कल्पवृक्षकी स्वरूपवाली सबको निरन्तर क्षीर धन और बुद्धि देनेवालीको प्रणाम है ॥ २६ ॥ शुभा, सुभद्रा, गोप्रदा, यशोदा, कीर्तिदा, धर्मदाको प्रणाम है ॥२७॥ इस स्तोत्रके सुनतेही जगत्प्रसूती प्रसन्न हुई और वहीं वह सनातनी ब्रह्मलोकमें प्रगट हुई ॥ २८ ॥ इन्द्रको वांछित और दुर्लभ वर देकर वह गोलोकको और देवादि अपने लोकको गये ॥ २९ ॥

हे नारद ! तब सब विश्व दूधसे पूर्ण होगया दूधसे घी उससे यज्ञ और यज्ञसे देवताओंकी प्रीति हुई ॥ ३० ॥ इस महा पुण्यदायक स्तोत्रको जो भक्तिपूर्वक पढता है वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान् पुत्रवान् होता है ॥३१॥ मानो वह सब तीर्थोंमें नहा लिया सब यज्ञोंमें दीक्षित होगया और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें कृष्णके मन्दिरमें जाता है ॥३२॥ वहां चिरकालतक निवास कर कृष्णका सेवन करता है फिर यहां न लौटकर ब्रह्मपुत्र होता है ॥ ३३ ॥ इतिश्री देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ प्रकृतिका यथायोग्य

बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद ॥ दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च॥३०॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ॥ स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा ॥३१॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते कृष्ण मन्दिरे ॥३२॥ सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम् ॥ न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं वेदगोपितम् ॥ राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम् ॥२॥ महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः ॥ श्रुत्वा तं तद्गतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर ॥ ३ ॥ ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नियम्यं चराचरम् ॥ ययोर्भक्त्या भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाऽधुना ॥ ४ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम् ॥ यन्न कस्यापि चाऽऽख्यातं सारात्सारं परात्परम् ॥ ५ ॥

सब उपाख्यान सुना जिसके सुननेसे प्राणी जन्म संसारबंधनसे छूट जाता है ॥ १ ॥ अब वेदमें गुप्त रहस्यके सुननेकी इच्छा करता हूं जो राधा और दुर्गाका श्रुतिकथित विधान है ॥ २ ॥ तुमने इन दोनोंकी बडी महिमा वर्णन की है इसको सुनकर इसमें किसका मन न लगेगा ॥ ३ ॥ जिनके अंशसे यह सब चराचर जगत है जिनकी भक्तिसे मुक्ति होती है उसका अब विधान कहो ॥४॥ नारायण बोले हे नारद ! सुनो वेदकथित विधानरहस्य कहता हूं जो आजतक किसीसे नहीं कहा और सारका भी सार है परात्पर है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम् ॥ मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे ॥ ६ ॥ प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम् ॥ जीवानां चैव सर्वेषां नियंतृप्रेरकं सदा ॥ ७ ॥ तदधीनं जगत्सर्वं विराडादि चराचरम् ॥ यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः ॥ ८ ॥ ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम् ॥ तत्रादौ राधिकामन्त्रं शृणु नारद भक्तितः ॥ ९ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः ॥ श्रीराधेति चतुर्थ्यंतं वह्निजाया ततः परम् ॥ १० षडक्षरो महामन्त्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः ॥ मायाबीजादिकश्चायं वांछाचिंतामणिः स्मृतः ॥ ११ ॥ वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥ जग्राह प्रथमं मन्त्रं श्रीकृष्णो भक्तितत्परः ॥ उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमंडले ॥ १३ ॥

और यह सुनकर दूसरेसे न कहना चाहिये कारण कि बडा गुप्त है मूलप्रकृति जगदीश्वरीसे जगत्के प्रगट होनेमें ॥ ६ ॥ समष्टि व्यष्टि प्राणकी अधिदेवता राधा शक्ति तथा समष्टि व्यष्टि बुद्धिकी अधिदेवता दुर्गा यह समस्त जीवोंकी प्रेरणकरनेवाली प्रगट हुई है ॥ ७ ॥ यह विराटादि सचराचर जगत् उसीके आधीन है जबतक इन दोनोंका प्रसाद न हो तबतक मुक्ति बडी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ इस कारण उन दोनोंके प्रसन्न करनेके निमित्त दोनोंकाही सेवन करै हे नारद ! प्रथम भक्तिसे राधिकाका मन्त्र सुनो ॥ ९ ॥ जो परात्पर ब्रह्मा विष्णु आदिसे नित्य सेवित है उसके साथ श्रीराधा यह चतुर्थ्यन्त मन्त्र लगावै अर्थात् ओं ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा ॥ १० ॥ यह छः अक्षरका महामन्त्र धर्मादि अर्थका प्रकाशक है और माया बीज होनेसे वांछावालोंको चिन्तामणि है ॥ ११ ॥ सौ करोड मुख सौ करोड जिह्वा भी इस मन्त्रका माहात्म्य नहीं कह सकती ॥ १२ ॥ प्रथम इस मन्त्रको परम भक्तिसे

१ बुद्धि प्राणके संयमनाधीनही योग विचार है उनके आधीन मोक्ष है इससे बुद्धि प्राणके अधिष्ठात्री देवताओंकी उपासना करनी ॥

कृष्णने ग्रहण किया गोलोकमें रासमण्डलमें मूलदेवीने उपदेश दिया था ॥ १३ ॥ उनसे विष्णुने, विष्णुसे ब्रह्माने, ब्रह्मासे विराट्ने, उनसे धर्मने, धर्मसे मैंने लिया यह इस मन्त्रकी परम्परा है ॥ १४ ॥ मैं इस मन्त्रको जपता हूं, इसकारण मैं इस मन्त्रका ऋषि हूं, ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी नित्य उसका प्रसन्नतासे ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ राधामन्त्रकी उपासनाके विना कृष्ण पूजाका अधिकार नहीं होता इस कारण सब वैष्णवोंको राधाका अर्चन करना चाहिये ॥ १६ ॥ वह कृष्णकी प्रिया देवी हैं और इसीसे वह विभु राधाके आधीन हैं और वह रासेश्वरी उनके विना स्थित नहीं रह सकती ॥ १७ ॥ सब कामके साधनेसेही इनका राधा नाम है दुर्गा मन्त्रके विना

विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा विराट् तथा ॥ तेन धर्मस्तेन चाऽहमित्येषा हि परंपरा ॥ १४ ॥ अहं जपामि तं मन्त्रं तेनाऽह मृषिरीडितः ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायंति तां मुदा ॥ १५ ॥ कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना ॥ वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥ १६ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः ॥ रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥१७॥ राध्नोति सकलान्कामास्तस्माद्राधेति कीर्तिता ॥ अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिःस्म्यहमेव च ॥ १८ ॥ छन्दश्च देवीगायत्री देवताऽत्र च राधिका ॥ तारो बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता ॥ १९ ॥ मूलावृत्त्या षडंगानि कर्तव्यानीतरत्र च ॥ अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम् ॥२०॥ पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे निगीतया ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां शरदिंदु समाननाम् ॥२१॥ कोटिचंद्रप्रतीकाशां शरदंभोजलोचनाम् ॥ बिंबाधरां पृथुश्रोणीं कांचीयुतनितम्बिनीम् ॥ २२ ॥ कुन्दपंक्ति समानाभदन्तपंक्तिविराजिताम् ॥ क्षौमांबरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥ २३ ॥

और जो मन्त्र इस स्कंधमें कहे हैं उन सबका ऋषि मैं हूं ॥ १८ ॥ इसका देवी गायत्री छन्द राधा देवता है प्रणव बीज भुवनेश्वरी शक्ति है ॥ १९ ॥ मूल मन्त्रको छः वार आवर्तनकर षडंग न्यास करै फिर रासकी नायिका महादेवी राधिकाका ध्यान करै ॥ २० ॥ हे मुने ! सामवेदके कहे अनुसार पूर्वोक्त प्रकारसे ध्यान करै श्वेत चम्पेके समान वर्णकी कांति शरद्चन्द्रके समान मुख ॥ २१ ॥ कोटिचन्द्रके समान कांति शरद् कमलके समान नेत्र बिम्बाके समान अधर बडा श्रोणिभाग कौंधनीयुक्त नितंब ॥ २२ ॥ कुंदकी पंक्तिके समान दांतोंकी पंक्ति

क्षौमवस्त्र पहरे अग्निमें शुद्ध जो अग्निमें रखनेसे न जले वस्त्रोंसे युक्त ॥ २३ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखवाली हस्तीके कुंभके समान स्तन द्वादश वर्षकी अवस्था रत्नोंके भूषणोंसे युक्त ॥२४॥ शृंगारसागरकी लहरवाली भक्तके अनुग्रहमें तत्पर मल्लिका चमेलीकी मालायुक्त केशपाशसे विराजित ॥ २५ ॥ सुकुमार अंगकी लतावाली रासमण्डलके मध्यमें स्थित सुन्दर अभयकारिणी शान्त निरन्तर स्थित यौवनवाली ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनपर स्थित गोपी मण्डलकी नायिका कृष्णकी प्राणसे अधिक प्यारी वेदबोधित परमेश्वरीकी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुंभयुगस्तनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ २४ ॥ शृंगारसिंधुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम् ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ २५ ॥ सुकुमारांगलतिकां रासमंडलमध्यगाम् ॥ वराभयकरां शांतां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनासीनां गोपीमंडलनायिकाम् ॥ कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितं परमेश्वरीम् ॥ २७ ॥ एवं ध्यात्वा ततो बाह्ये शालग्रामे घटेऽथवा ॥ यंत्रे वाऽष्टदले देवीं पूजयेत्सुविधानतः ॥ २८ ॥ आवाह्य देवीं तत्पश्चादासनादि प्रदीयताम् ॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत् ॥ २९ ॥ पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम् ॥ मुखेत्वाचमनीयं स्याद्द्विवारं मूलविद्यया ॥ ३० ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम् ॥ ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यंगादिस्नानविधिं कल्पयित्वाऽथ वाससी ॥ ततश्च चंदनं दद्यान्नानालंकारपूर्वकम् ॥ ३२ ॥ पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमंजरीयुताः ॥ पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च ॥ ३३ ॥

ध्यान करके शालिग्राम शिला अथवा घटमें बाह्य ध्यान करके वा अष्टदल यंत्रमें विधानसे देवीका पूजन करै ॥ २८ ॥ आवाहन करनेके उपरांत आसनादि दे मूल मन्त्रका उच्चारणकर आसनादिकी कल्पना करे ॥ २९ ॥ पाद्य चरणोंमें और मस्तकमें अर्घ्य दे और मुखमें मूल मंत्रसे तीनवार आचमन करै ॥ ३० ॥ फिर मधुपर्क और एक पयस्विनी गौ दे फिर स्नानशालामें लाकर वहां उसकी भावना करै ॥ ३१ ॥ उबटन स्नानविधि और वस्त्रादिकी कल्पना करके फिर अनेक अलंकारपूर्वक चन्दन दे ॥ ३२ ॥ अनेक प्रकारकी पुष्पमाला तुलसीकी

मंजरीयुक्त दे पारिजातके फूल शतपत्र कमल पुष्प दे ॥ ३३ ॥ फिर पवित्रतापूर्वक परिवारका अर्चन करै फिर अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, मध्यादिमें अंगपूजन करै ॥ ३४ ॥ फिर अष्टदल यंत्रमें दक्षिण क्रमसे मालादि अष्टशक्तिका पूजन करै उसका क्रम यह है कि अग्रदलमें मालावतीका, अग्निकोणमें माधवीका ॥ ३५ ॥ दक्षिणमें रत्नमालाका, नर्ऋत्यमें सुशीलाका, पश्चिममें शशिकलाका; बुद्धिमान् नित्य पूजन करै ॥ ३६ ॥ वायव्यमें पारिजातका, उत्तरमें परावतीका, ईशानकोणमें प्रियकारिणी सुन्दरीका

ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः ॥ अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वंगपूजनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणाव र्ततोऽग्रतः ॥ मालावतीमग्रदले वह्निकोगे च माधवीम् ॥ ३५ ॥ रत्नमालां दक्षिणे च नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम् ॥ पश्चाद्दले शशिकलां पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३६ ॥ मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम् ॥ ईशानकोणे संपूज्या सुंदरी प्रिय कारिणी ॥ ३७ ॥ ब्राह्म्यादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे ॥ वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ ततो देवीं सावरणां गंधाद्यैरुपचारकैः ॥ राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ३९ ॥ ततः स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः ॥ सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नत ॥ ४० ॥ य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम् ॥ स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति संततम् ॥ ४१ ॥ यः कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः ॥ कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ ब्राह्मी आदिका उसके बाहरभागमें आशापालका भूमिके अग्रभागमें और वज्रादि आयुध सहित इस प्रकारसे निरन्तर देवीका पूजन करै ॥ ३८ ॥ फिर आवरण सहित देवीका गंधादि उपचारके सहित तथा राजउपचारके सहित बुद्धिमान् पूजन करै ॥ ३९ ॥ फिर सहस्रनाम स्तोत्रसे देवीका पूजन करै सहस्र संख्यक जप नित्य प्रयत्न से करै ॥ ४० ॥ जो इस प्रकारसे परादेवी परमेश्वरीका पूजन करते हैं वह विष्णुके तुल्य होकर गोलोकमें जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो पण्डित कार्तिकी पूर्णमासीको राधाका जन्मो-

त्सव करता है उसको परादेवी रासेश्वरी अपना सान्निध्य देती है ॥ ४२ ॥ किसी एक कारणसे वृंदावन वनमें वही गोलोकस्थायिनी राधा वृषभानुनन्दिनी हुई ॥ ४३ ॥ इसमें कहे मंत्र और वर्ण संख्याके विधानसे पुरश्चरण कर्म कहा है और इसका दशांश होम करना चाहिये ॥ ४४ ॥ तिल, मधु, घृत, पयके साथ हवन करै और परमभक्ति करै नारदजी बोले हे मुने ! वह स्तोत्र कहिये जिससे देवी प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥ नारायण बोले हे परमेशानि ! हे रासमण्डलमें निवासकरनेवाली ! हे रासेश्वरि ! हे कृष्णप्राणाधिका ! तुमको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यजननी

केनचित्कारणेनैव राधावृंदावने वने ॥ वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा ॥४३॥ अत्रोक्तानां तु मंत्राणां वर्णसंख्याविधानतः ॥ पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत् ॥ ४४ ॥ तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति ॥४५॥ नारायण उवाच ॥ नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि ॥ रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥ ४६ ॥ नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदांबुजे ॥४७॥ नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शंकरि ॥ गंगापद्मावतीरूपे षष्ठिमंगलचंडिके ॥ ४८ ॥ नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि ॥ नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि ॥४९॥ मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम् ॥ संसारसागरादस्मादुद्धरांब दयां कुरु ॥५०॥ इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः ॥ तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिन्न भविष्यति ॥ ५१ ॥ देहांते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमंडले ॥ इदं रहस्यं परमं नचाऽऽख्येयं तु कस्यचित् ॥ ५२ ॥

करुणाकी सागर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंसे नमस्कृतचरणवाली तुमको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ सरस्वती रूप सावित्रि शांकरि गंगा पद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचंडिके ! तुमको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ तुलसीरूप लक्ष्मी स्वरूपिणी दुर्गे भगवति सर्वस्वरूपिणी तुमको प्रणाम है ॥ ४९ ॥ तुम मूलप्रकृति करुणा रूपिणी हो तुमको प्रणाम हे मातः ! हमको संसार सागरसे उद्धार कर दया करो ॥ ५० ॥ जो इस स्तोत्रको राधाको स्मरण करता तीनों संध्याओंमें पढता है उसको कभी कोई बात दुर्लभ नहीं रहेगी ॥ ५१ ॥ वह देहान्तमें नित्य रासमण्डलमें निवास करता

है यह परम रहस्य किसीसे नहीं कहना चाहिये ॥५२॥ हे ब्रह्मन् ! अब दुर्गाका विधान सुनो जिसके स्मरणमात्रसे महाआपत्ति दूर होती है॥५३॥ जो इनका भजन नहीं करते हैं उनको कहीं कुछ नहीं है वह सर्व माता शैवीशक्ति सबसे उपासनीय है ॥५४॥ वह सबकी बुद्धि अधिष्ठात्री देवी अन्तर्यामी स्वरूपिणी बडे संकटकी हरनेवाली पृथ्वीमें दुर्गा नामसे विख्यात है ॥ ५५ ॥ यह वैष्णव और शैवोंसे नित्य उपासनीय है वह मूल प्रकृतिरूप सृष्टिकी स्थिति अन्त करनेवाली है ॥ ५६ ॥ उसका मंत्रोंमें उत्तम नवाक्षर मन्त्र कहता हूं, वाणी बीज भुवनेश्वरी बीज काम बीज

अधुना शृणु विप्रेंद्र दुर्गादेव्या विधानकम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः ॥ ५३ ॥ एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित् ॥ सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता ॥ ५४ ॥ सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमंतर्यामिस्वरूपिणी ॥ दुर्गसंकटहंत्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥ ५५ ॥ वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः ॥ मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ ५६ ॥ तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ वाग्भवं शंभुवनिता कामबीजं ततः परम् ॥ ५७ ॥ चामुंडायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम्॥नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां ऋषियोऽस्य प्रकीर्तितः ॥ छन्दांस्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यापि देवता ॥ स्याद्रक्तदंतिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा ॥ ६० ॥ नन्दा शाकंभरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः ॥ ६१ ॥ ऋषिच्छंदोदैवतानि मौलौ वक्रे हृदि न्यसेत् ॥ स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ ६२ ॥

॥१७॥ ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इस प्रकार यह नवाक्षर मन्त्र है यह भजन करनेवालोंको कल्पवृक्षरूप है ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश यह इनके ऋषि हैं गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् यह छन्द है ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता हैं रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामरी बीज हैं ॥ ६० ॥ नन्दा शाकंभरी देवी भीमा शक्तियें हैं धर्म अर्थ काम मोक्षमें इनका विनियोग है ॥ ६१ ॥ ऋषि छन्द देवता मौली (शिर) मुख और हृदयमें न्यास करै सर्व अर्थ सिद्धिके निमित्त स्तनोंमें शक्तिबीजका न्यास कर तीन बीज दक्षिणस्तनमें

और तीन शक्ति वामस्तनमें न्यास कर ॥ ६२ ॥ फिर तीन और चामुण्डाये इन चार बीजको और विचे इन दोसे और पूरे मन्त्रसे नमःस्वाहा वषट् हूं वौषट् फट् लगाकर षडंगन्यास करे ॥ ६३ ॥ शिखा दोनों नेत्र कान नासिका मुख गुद इनमें मन्त्रवर्णोंका न्यास कर सर्वांगमें न्यास करे ॥६४॥ ध्यान कहते हैं खड्ग,चक्र, गदा, बाण, चाप, परिघ, शूल, भुशुण्डी, शिर, शंख, हाथमें लिये ॥६५। महाकाली त्रिनयना नाना भूषणोंसे भूषित नीलांजनके समान दशपाद और दश मुखवालीको भजन करता हूं॥६६॥ मधुकैटभके नाशके निमित्त ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी महाकालीका ध्यान करै ॥ ६७ ॥ महालक्ष्मीका ध्यान कहते हैं अक्षमाला, परशु, गदा,वज्र, पद्म, धनुष,

बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण चैव हि ॥ षडंगानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि देशिकः ॥ ६३ ॥ शिखायां लोचनद्वंद्वं श्रुतिनासाननेषु च ॥ गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्सर्वेण व्यापकं चरेत् ॥ ६४ ॥ खड्गचक्रगदाबाणचापानि परिघं तथा ॥ शूलं भुशुंडीं च शिरः शंखं संदधतीं करैः ॥ ६५ ॥ महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम् ॥ नीलांजनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे ॥ ६६ ॥ मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टवांबुजासनः ॥ एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ ६७ ॥ अक्षमालां च परशुं गदेषु कुलिशानि च ॥ पद्मं धनुष्कुंडिकां च दंडं शक्तिमसिं तथा ॥ ६८ ॥ चर्माम्बुजं तथा घंटां सुरापात्रं च शूलकम् ॥ पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम् ॥ ६९ ॥ रक्तांबुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम् ॥ महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम् ॥ ७० ॥ घंटाशूले हलं शंखं मुसलं च सुदर्शनम ॥ धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानां कुंदसन्निभाम् ॥ ७१ ॥ शुंभादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम् ॥ महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानंदविग्रहाम् ॥ ७२ ॥

कुंडिका,दंड, शक्ति, असि (तलवार) ॥६८॥ चर्माम्बुज, घंटा, सुरापात्र, शूल, पाश, सुदर्शन धारण करनेवाली अरुणप्रभा ॥ ६९ ॥ नवार्ण अन्तर्गत माया बीजकी अधिदेवता लाल कमलके आसनमें स्थित महिषासुरमर्दिनी महादेवीको भजन करता हूं ॥७०॥ महासरस्वतीका ध्यान कहते हैं घंटा,शूल, हल,मुसल, सुदर्शन, धनुर्बाण हस्तकमलमें धारे कुन्दके समान ॥७१॥ शुंभादि दैत्यका संहार करनेवाली नवार्णमन्त्रके वाग् बीजकी अधिदेवता सच्चिदानन्द विग्रहवाली महासरस्वतीका ध्यान करता हूं ॥७२॥

इसका यन्त्र पहले तीनकोण पट्कोण युक्तकरे तथा उसे अष्टदल पद्म और चौबीसदल पद्मयुक्त करै ॥७३॥ भूगृह (गृह) से युक्त इस प्रकारसे विचारकरै शालिग्राम घटयन्त्र वा प्रतिमामें ॥ ७४ ॥ वाणलिंग वा सूर्यमें अनन्य बुद्धिसे देवीका यजन करै जयादि शक्ति संयुक्त पीठ 'सिंहासन' में देवीका ध्यान करै जयादिशक्ति जयायैनमः विजयायै नमः अजितायै नमः अपराजितायै नमः नित्यायै नमः विलासिन्यै नमः दोग्ध्यैनमः अघोरायै नमः मङ्गलायै नमः ॥ ७५ ॥ आवरण देवता कहते हैं पूर्णकोण नाम देवीके अग्रकोणमें सरस्वती सहित ब्रह्माजीको पूजै ' सरस्वती सहिताय

यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्रं षट्कोणसंयुतम् ॥ ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम् ॥ ७३ ॥ भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिंतयेत् ॥ शालग्रामे घटे वाऽपि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा ॥ ७४ ॥ वाणलिंगेऽथवा सूर्ये यजेद्देवी मनन्यधीः ॥ जयादिशक्ति संयुक्ते पीठे देवीं प्रपूजयेत् ॥७५॥ पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत् ॥ श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत् ॥७६॥ पार्वत्या सहितं शंभुं वायुकोणे समर्चयेत् ॥ देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम् ॥ ७७ ॥ महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात् ॥ नंदजां रक्तदन्तां च तथा शाकंभरीं शिवाम् ॥ ७८ ॥ दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च ॥ ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा॥७९॥वाराहीं नारसिंहीं च ऐंद्रीं ।मुंडकां तथा ॥ पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः ॥८०॥ विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा ॥ छायाशक्तिं परां तृष्णां शांतिं जातिं च लज्जया ॥ ८१ ॥

ब्रह्मणेनमः' इत्यादि सर्वत्र जानना नैर्ऋत्य कोणमें लक्ष्मीसहित हरिको ॥ ७६ ॥ वायुकोणमें पार्वतीसहित शिवको देवीके उत्तरकी ओर सिंह और वाम ओर महासुर महिषकी सायुज्य पानेके कारण पूजा करै ॥ ७७ ॥ महिषपूजा अन्तमें करै यह जनक्रमसे षट्कोणमें करै नन्दजा, रक्तदन्तिका, शाकंभरी, शिवा, ॥७८॥ दुर्गा, भीमा, भ्रामरीको पूजै आठों दलोंमें फिर ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ७९ ॥ वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री चामुण्डाको पूजै फिर चौबीस दलोंमें पूर्वसे क्रमानुसार ॥ ८० ॥ विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा,

छाया, शक्ति, परा, तृष्णा, शांति, जाति, लज्जा ॥८१॥ शांतिश्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि मातृ, भ्रांति यह क्रमसे पूजै ॥ ८२ ॥ फिर भूपुर कोणमें गणेश क्षेत्रपाल बटुक योगिनीका बुद्धिमान् पूजन करै ॥ ८३ ॥ इसके बाहर वज्रादि हाथमें लिये इन्द्रादिका पूजन करै इस प्रकार आवरणसहित देवीको पूज ॥ ८४ ॥ और भगवतीकी सन्तुष्टताके निमित्त विधिवत् राज उपचार समर्पण कर, फिर अर्थपूर्वक नवार्ण मंत्रका जप करे, इस मंत्रमें महासरस्वती महालक्ष्मी महाकालीके क्रमसे बीज हैं और चित् च इ यह तीन पद क्रमसे सत् चित् आनंदके वाचक चामुण्डापद ब्रह्मविद्याका विशेषण है, उसका हम ध्यान करते हैं, अर्थात् हे चिद्रूपिणी महासरस्वती हे सद्रूपिणी महासर

शांतिं श्रद्धां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम् ॥ दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात् ॥८२॥ ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम् ॥ बटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ८३ ॥ इंद्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ पूजयेदनया रीत्या देवीं सावरणां ततः ॥ ८४ ॥ राजोपचारान्विविधान्दद्यादंबाप्रतुष्टये ॥ ततो जपेन्नवार्णं च मन्त्रं मन्त्रार्थपूर्वकम् ॥ ॥ ८५ ॥ ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु संपठेत् ॥ नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये ॥ ८६ ॥ ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत्प्रत्यहं नरः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः ॥ ८७ ॥ इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम् ॥ कृतार्थता येन भवेत्तदेतत्कथितं तव ॥ ८८ ॥ सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा ॥ मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाऽऽश्रमास्तथा ॥ ८९ ॥

स्वती हे आनंदरूपिणी महाकालिका तुमको चामुण्डायै ब्रह्मविद्या प्राप्तिके लिये ध्यान करता हूं ॥ ८५ ॥ फिर देवीके आगे सप्तशती स्तोत्र पढै इसके समान तीनों भुवनमें दूसरा स्तोत्र नहीं है. [यह मार्कण्डेय पुराणका है] ॥ ८६ ॥ इससे प्रतिदिन मनुष्य देवेशीका यजन करै चार लाख इसका पुरश्चरण और दशांश पायसका हवन करै ॥ इससे मनुष्यको धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ८७ ॥ हे विप्र ! यह आपसे श्रीदुर्गा पूजाका विधान कहा, इससे कृतार्थता प्राप्त होती है सो आपसे सुनाया ॥ ८८ ॥ सब देवता, हरि, ब्रह्मा, मनु, ज्ञाननिष्ठ,

मुनि, योगी, आश्रमवासी ॥ ८९ ॥ लक्ष्मी आदिक देवी सब ही उस शिवाका ध्यान करती हैं दुर्गाके स्मरणसे ही जन्मकी फलता होती है ॥ ९० ॥ चौदह मनु जिसके चरणकमलका ध्यान करके मनुत्वको प्राप्त हुए तथा दूसरे देवता निज २ पदको प्राप्त हुए ॥९१॥ सो रहस्यसे भी यह रहस्य हमने तुमसे कहा है पांचों प्रकृति तथा उनके अंशोंका वर्णन किया ॥ ९२ ॥ इसके सुननेसे मनुष्य चारों पदार्थोंको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं यह मैंने सत्य ही कहा ॥ ९३ ॥ इसके सुननेसे अपुत्रको पुत्र, विद्यार्थीको विद्या

लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायंति तां शिवाम् ॥ तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्तिचेत् ॥ ९० ॥ चतुर्दशाऽपि मनवो ध्यात्वा चरणपंकजम् ॥ मनुत्वं प्राप्तवंतश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा ॥ ९१ ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं ॥ रहस्यातिरहस्कम् ॥ प्रकृतीनां पंचकस्य तदंशानां च वर्णनम् ॥ ९२ ॥ श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लभते नाऽत्र संदेहः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ९३ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी प्राप्नुयाच्च ताम् ॥ यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः ॥ परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम् ॥ ९५ ॥ नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः ॥ तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः ॥ ९६ ॥ शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि ॥ कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकहस्ततः ॥ ९७ ॥ मनोरथं तु संकल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः ॥ देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ ९८ ॥

मिलती है बहुत क्या जिस जिस निमित्त सुन उसको उसी २ कामनाकी प्राप्ति होती हैं ॥ ९४ ॥ जो देवीके आगे सावधान होकर नौरात्रमें इसको पढे उसपर भगवती अवश्य संतुष्ट होती हैं ॥ ९५ ॥ और जो मनुष्य नित्य एक एक अध्यायको पढता है वह देवीका प्रिय करनेवाला है, देवी उसके वशीभूत होती है ॥ ९६ ॥ इसमें यथाविधि शकुनोंकी परीक्षा करै उसका क्रम यह है कुमारीके अथवा बटुकके हाथसे ॥ ९७ ॥ अपना मनोरथ मनमें विचार कर पुस्तक पूजन करावै और जगत्की ईशानी देवीको

वारंवार प्रणाम करै ॥ ९८ ॥ अच्छी प्रकार स्नान करी कन्याको लाकर और स्वयं स्नान कर एक सुवर्णशलाका उनके हाथमें दे ॥ ९९ ॥ उन अध्यायोंके चक्रमें उस शलाकाको रखावै फिर जिस अध्यायमें वह शलाका रक्खै उसके अनुसार उस अध्यायको देखकर जैसा लिखा हो वैसा कहै, उसीके अनुसार ग्रंथका शुभाशुभ फल कहै यदि शुभ हो तो शुभ यदि अशुभवार्त्ता निकलै तो अशुभ फल जानना यदि

सुस्नातां कन्यकां तत्राऽऽनीयाऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ शलाकां रोपयेन्मध्ये तया स्वर्णेन निर्मिताम् ॥ ९९ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत् ॥ उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम् ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

बाणाक्षिरसरामैस्तु सार्धैः (३६२५ ॥) श्लोकैः सुविस्तरः ॥ देवीभागवतस्यास्य नवमस्कन्ध ईरितः ॥

उसके डालनेमें कुमारी उदासीनता करै तो उदासीन फल जानना चाहिये यह आपसे देवीचरित्र वर्णन किया॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगागर्भसम्भूतसर्वविद्यासम्पन्नमिश्रसुखानंदात्मजविद्यावारिधिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ भाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन श्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर"–(स्टीम्)–मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

संवत २०११, शकाब्दाः १८७६.



॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते नवमस्कंधः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते दशमस्कंधः प्रारभ्यते ॥

दोहा—शिवा भवानी भक्तहित,—कारिणि सब सुखमूल। जन ज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥

श्रीनारदजी बोले हे नारायण अधराधार! सबके पालनके कारण आपका कहा हुआ पापनाशन देवीचरित्र सुना ॥१॥ सब मन्वन्तरमें वह देवी जो स्वरूप धारण करती है जिस आकारसे वह महेश्वरी प्रादुर्भाव करती है ॥ २ ॥ वह देवी माहात्म्य संयुक्त कथा हमसे कहिये जिस प्रकार वह जिससे पूजित और स्तुतिको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और भक्तोंके भक्तवत्सलतासे मनोरथ पूर्ण करती है वह हम देवीचरित्र सुननेवालों

श्रीगणेशाय नमः॥ नारद उवाच ॥ नारायण धराधार सर्वपालनकारण ॥ भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम् ॥ १ ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी ॥ यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी ॥२॥ तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान् ॥ यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुतापि हि ॥ ३ ॥ मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानां देवीचरित मुत्तमम् ॥ ४ ॥ वर्णयस्व कृपासिंधो येनाप्नोति सुखं महत् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम् ॥ ॥५॥ भक्तानां भक्तिजननं महासंपत्तिकारणम् ॥ जगद्योनिर्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते ॥ ७ ॥ मनुं स्वायंभुवं नाम जनयामास मानसात् ॥ स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ८ ॥ शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्मस्वरूपिणीम् ॥ स मनुः क्षीरसिंधोश्च तीरे परमपावने ॥ ९ ॥ देवी माराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम् ॥ मूर्तिं च मृन्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः ॥ १० ॥

को ॥ ४ ॥ वर्णन कीजिये जिससे बडे सुखकी प्राप्ति हो। श्रीनारायण बोले हे महर्षे! पापनाशन चरित्रको श्रवण कीजिये ॥५॥ जो भक्तोंको भक्ति देनेवाला और महासंपत्ति करनेवाला है लोकपितामह ब्रह्मा महातेजस्वी जगत्के आदिकारण ॥ ६ ॥ भगवान् चक्रधारीके नाभिकमलसे प्रगट हुए हे महामते! इस प्रकार उन चतुर्मुखका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने मनसे स्वायंभुव मनुको प्रगट किया वह ब्रह्मा परमेश्वरीके मानस पुत्र हुए ॥८॥ धर्मरूपिणी उनकी पत्नी शतरूपा हुई वह मनु क्षीरसागरके परम पावन तटमें ॥ ९ ॥ महाभाग्य फलकी देनेवाली देवीकी

आराधना करनेलगे राजा उसकी मृण्मयी मूर्त्तिका विधान करके ॥१०॥व एकान्तमें भजन करते वाङ्मय देवीका आराधना करने लगे निराहार श्वास रोके हुए नियमव्रतसे कर्शित ॥ ११ ॥ एक पैरसे निरन्तर पृथ्वीमें खडे रहे इस प्रकार सौवर्षतक महात्माने काम क्रोध जीते रक्खा ॥ १२ ॥ और हृदयमें देवीके चरणोंका ध्यान करते रहे उनके तपसे जगन्माता देवी प्रगट हुईं ॥१३॥ और कहा हे राजन्! वर माँगो यह आनन्दजनक दिव्यवचन सुन राजा ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थित उन अमरदुर्लभ वरोंको मांगता हुआ मनु बोले हे विशालाक्षि ! सर्वान्तरमें स्थित आपकी

उपासते स्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः॥ निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः ॥ ११ ॥ एकपादेन संतिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः ॥ शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना ॥ १२ ॥ भजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ चिंतयन् हृदि ॥ तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी॥१३॥उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप॥ तत आनन्दजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः॥१४॥वरयामास तान्हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान् ॥ मनुरुवाच ॥ जय देवि विशालाक्षि जय सर्वांतरस्थिते ॥ १५ ॥ मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमंगल मंगले ॥ त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत् ॥ १६ ॥ वैकुंठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात् ॥ शचीपतिस्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया ॥ १७ ॥ प्राणिनः शिक्षयत्येव दंडेन च परेतराट् ॥ यादसामधिपः पाशी पालनं माहशामपि ॥ १८ ॥ कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः ॥ हुतभुङ्नैर्ऋतो वायुरीशानः शेष एव च ॥ १९ ॥ त्वदंशसंभवा एव त्वच्छक्तिपरिबृंहिताः ॥ अथापि यदि मे देवि वरो देयोऽस्ति सांप्रतम् ॥ २० ॥

जय हो ॥१५॥ हे माननीय! पूजनीय जगत्की माता सब मंगल मंगला तुम्हारी कटाक्षसेही ब्रह्मा जगत् निर्माणकरते हैं ॥ १६ ॥ भगवान् पालते और शंकर क्षणमें संहार करते हैं, तुम्हारी आज्ञासे ही इन्द्र त्रिलोकीका शासक हैं ॥ १७ ॥ और यमराज दण्डसे प्राणियोंको शिक्षा देते हैं और वरुण पाशलिये अस्मदादिका पालन करते हैं ॥ १८ ॥ निधिपतित्व कुबेर करता है नैर्ऋत अग्नि वायु ईशान शेष ॥ १९ ॥ यह सब तुम्हारी शक्तिसे होकर तुम्हारी शक्तिसेही परिबृंहित होते हैं तो भी हे देवि ! यदि इस समय मुझे वर देती हो तो ॥ २० ॥

हे शिवे ! इस बडे सृष्टिके कार्यमें मेरे विघ्न नाशको प्राप्त हों जो वाग्बीज मंत्रका सेवन करते हैं॥२१॥ उनके कार्योंमें शीघ्रही सिद्धि हो जो इस देवीके संवादको पढ़ते सुनाते हैं ॥ २२ ॥ हे शिवे ! लोकमें उनको भक्ति मुक्ति सुलभ हो तुम्हारी कृपासे स्मरणता प्राप्त हो ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धि कर्ममार्ग सिद्धि भी हो तथा पुत्र पौत्रकी समृद्धि हो यही मेरा वचन है ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः॥१॥श्री देवी बोली हे राजन् ! हे महाबाहो ! यह सब कुछ होगा जो तैंने प्रार्थना की यह मैं प्रदान करती हूं ॥१॥

तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे ॥ वाग्भवस्याऽपि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः ॥ २१ ॥ तेषां सिद्धिः सत्वरापि कार्याणां जायतामपि ॥ ये संवादमिमं देवि पठंति श्रावयंति च ॥ २२ ॥ तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे ॥ जाति स्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि ॥ पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायेदित्येव मे वचः ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति ॥ यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप ॥ १ ॥ अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रनाशनाऽमोघविक्रमा ॥ वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम् ॥ २ ॥ राज्यं निष्कंटकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि ॥ मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षांते सत्पदे भवेत् ॥३॥ एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने ॥ पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विंध्यपर्वतम् ॥ ४ ॥ योऽसौ विंध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा ॥ भानुमार्गावरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन् ॥ ५ ॥

हे महीपाल ! मैं प्रसन्न हूं मैं दैत्येन्द्रोंकी नाशक अमोघविक्रमवाली तुम्हारे मायाबीज जप और तपसे ॥ २ ॥ प्रसन्न हूं तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा और पुत्र वंश करनेवाले होंगे हे वत्स! मुझमें तुम्हारी दृढभक्ति और अन्तमें सत् पदकी प्राप्ति होगी ॥ ३ ॥ हे महामुने ! इस प्रकार मनुराजसे कहकर देवी देखते २ विन्ध्यपर्वतको चली गई ॥ ४ ॥ जिस विंध्याचलको महर्षि अगस्त्यने रुद्ध कर लिया था जो पर्वत

एकसमय सूर्यका मार्ग रोकनेको उठ खडा हुआ था ॥ ५ ॥ वह वरदायक विंध्यवासिनी विष्णुकी अवरजा सब लोकोंकी पूजनीया हुई ॥६॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! यह विंध्याचल क्या है और किस प्रकार आकाश स्पर्श करने लगा था और इसने सूर्यका मार्ग क्यों रोका था ॥७॥ और किस प्रकार अगस्त्यजीने महा ऊँचे पर्वतको प्रकृतिमें स्थित किया यह आप विस्तारसे कहो ॥ ८ ॥ हे साधो ! आपके मुखसे निर्गत देवीचरित्ररूपी अमृतको पानकरके हम तृप्त नहीं हो हैं ॥ ९ ॥ सूतजी बोले विन्ध्याचल सब पर्वतोंमें मान्य महावन और

सा विंध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी ॥ बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम ॥६॥ ऋषय ऊचुः ॥ कोऽसौ विन्ध्याचलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन् ॥ भानुमार्गविरोधं च किमर्थं कृतवानसौ ॥ ७ ॥ कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम् ॥ प्रकृतिस्थं च चकारेति सर्वं विस्तरतो वद ॥८॥ नहि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम् ॥ देव्याश्चरित्ररूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते ॥९॥ सूत उवाच ॥ आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम् ॥ महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः ॥ १० ॥ सुपुष्पितै-रनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः ॥ मृगा वराहा महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि ॥ ११ ॥ वानराः शशका ऋक्षाः शृगालाश्च समंततः ॥ विचरंति सदा हृष्टाः पुष्टः एव महोद्यमाः ॥ १२ ॥ नदीनदजलाक्रांतो देवगंधर्वकिन्नरैः ॥ अप्सरोभिः किंपुरुषैः सर्वकामफल द्रुमैः ॥ १३ ॥ एतादृशे विंध्यनगे कदाचित्पर्यटन्महीम् ॥ देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः ॥ १४ ॥ तं दृष्ट्वासनगो मंक्षु तूर्णमुत्थाय संभ्रमात् ॥ पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत् ॥ १५ ॥

वृक्षोंसे समृद्ध है ॥ १० ॥ वह अनेक पुष्प लता गुल्मोंसे युक्त मृग वराह महिष व्याघ्र शार्दूल ॥ ११ ॥ वानर खरगोश रीछ शृगालोंसे निषेवित जहां यह सब हृष्ट पुष्ट होकर विचरण करते हैं ॥ १२ ॥ नदी नदोंके जलोंसे आक्रांत, देव गन्धर्व किन्नर अप्सरा किंपुरुष और सब कामना देनेवाले वृक्षोंसे सम्पन्न ॥ १३ ॥ पर्वतराज हैं वहां एक समय पृथ्वीपर्यटन करते हुए मुनिराज अपनी इच्छासे आनकर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ उनको देखतेही विंध्यका अधिष्ठात्री देवता अपने आसनसे शीघ्रताके सहित उठ पाद्य अर्घ्य दे ऋषिराजको आसन देता

हुआ ॥ १५ ॥ देवर्षिके प्रसन्न होकर बैठनेपर 'विन्ध्यने कहा' हे देवर्षे ! इस समय आपने कहांसे आगमन किया है ॥ १६ ॥ आपके आनेसे मेरा मन्दिर पवित्र हुआ हे देव ! आपका विचरण सूर्यके समान अभयके निमित्तही है ॥ १७ ॥ सो जो आपका मनोवृत्त हो उसको कहिये नारदजी बोले हे पर्वतराज ! मैं सुमेरुसे आता हूं ॥ १८ ॥ वहां मैंने इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदिके लोक देखे सब लोकपालोंके भवन चारों ओर हैं ॥ १९ ॥ जो कि मैंने अनेक भोगोंके देनेवाले देखे ऐसा कह नारदने फिर श्वास लिया ॥ २० ॥ मुनिको श्वास लेते देखकर फिर

सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान् ॥ विंध्य उवाच ॥ देवर्षे कथ्यतां जात आगमः कुत उत्तमः ॥ १६ ॥ तवाऽऽगमनतो जातमनर्घ्यं मम मंदिरम् ॥ तव चंक्रमणं देवाऽभयार्थं हि यथा रवेः ॥ १७ ॥ अपूर्वं जन्मनो वृत्तं तद् ब्रूहि मम नारद ॥ नारद उवाच ॥ ममाऽऽगमनमिद्राद्रे जातं स्वर्णगिरेरथ ॥ १८ ॥ तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां भवनानि समंततः ॥ १९ ॥ मया दृष्टानि विंध्यागनानाभोगप्रदानि च ॥ इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्वासमाविशत् ॥ २० ॥ उच्छ्वसंतं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट् ॥ उच्छ्वासकारणं किं तद् ब्रूहि देवऋषे मम ॥ २१ ॥ इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः ॥ अब्रवीच्छ्रूयतां वत्स ममोच्छ्वासस्य कारणम् ॥ २२ ॥ गौरीगुरुस्तु हिमवाञ्छिवस्य श्वशुरः किल ॥ संबंधित्वात्पशुपतेः पूज्य आसीत्क्षमाभृताम् ॥ २३ ॥ एवमेव च कैलासः शिवस्यावथः प्रभुः ॥ पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघदारणः ॥ २४ ॥ निषधः पर्वतो नीलो गंधमादन एव च ॥ पूज्याः स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्षमाभृतः ॥ २५ ॥

विन्ध्य पूछा हे ऋषिराज दीर्घनिःश्वास लेनेका कारण कहिये ॥ २१ ॥ पर्वतराजके यह वचन सुन परम द्युतिमान् नारदजी बोले हे वत्स ! मेरे दीर्घश्वासका कारण सुनो ॥ २२ ॥ गौरी गुरु हिमालय शिवके श्वसुर हैं वह पशुपतिके सम्बन्धसे सदा प्राणियोंसे पूजित हैं ॥ २३ ॥ एक कैलास शिवका निवासस्थान है वह भी पापनाशक होनेसे लोकोंसे पूज्य है ॥ २४ ॥ निषध पर्वत नीलपर्वत गन्धमादन

पर्वत यह सब पर्वत अपने स्थानको प्राप्त होकर सदा पूजनीय हैं ॥२५॥ जिसकी विश्वात्मा सहस्रकिरण ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा करते हैं वह यह कनकपर्वत है ॥ २६ ॥ वह सब भूमिके पर्वतोंसे अपनेको श्रेष्ठ मानते हैं कि सबसे अग्रणी मैं हूं मेरे समान कोई नहीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार मानियोंके अभिमान देखकर मैं श्वासत्यागन करता हूं, हम तपोबलवालोंका भी ऐसा कृत्य नहीं होता ॥ २८ ॥ यह बात मैंने प्रसंगसे कही अन्तमें ब्रह्मलोकको गमन करता हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ इस प्रकार

यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट् ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः ॥२६॥ आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च धराभृताम् ॥ सर्वेषामहमेवाग्र्यो नास्ति लोकेषु मत्समः ॥२७॥ एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्वासो मयोज्झितः ॥ अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग ॥ प्रसंगतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम् ॥२८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे द्वितीयोध्यायः ॥२॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट् ॥ जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः ॥१॥ गते मुनिवरे विंध्य चिंतां लेभेऽनपायिनीम् ॥ नैव शांतिं स लेभे च सदांतःकृतशोचनः ॥२॥ कथं किंत्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम् ॥ नैव शांतिं लभे नाऽपि स्वास्थ्यं मे मानसे भवेत् ॥ ३ ॥ "धिगुत्साहं च मानं च धिङ्मे कीर्तिं च धिक्कुलम् ॥" धिग्बलं मे पौरुषं धिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः ॥ एवं चिंतयमानस्य विंध्यस्य मनसि स्फुटम् ॥ ४ ॥ प्रादुर्भूता मतिः कार्यं कर्तव्या दोष कारिणी ॥ मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः ॥ ५ ॥

महातेजस्वी नारदजी उसको उपदेश देकर स्वच्छन्द विचरण करते ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १ ॥ मुनिके चले जानेपर विन्ध्यको बडी चिन्ता हुई सदा शोचके कारण उसको शान्तिकी प्राप्ति न हुई ॥ २ ॥ मैं अब क्या करूं मेरुको किस प्रकार जय करूं मेरे मनमें शांति और स्वास्थ्य नहीं होता ॥३॥ 'मेरे उत्साह मान और कीर्तिको धिक्कार है तथा कुलको धिक्कार है' मेरे बल पौरुषको धिक्कार है जिसको पूर्व महात्माओंने सराहा है इस प्रकार चिंता करते विन्ध्यके मनमें ॥ ४ ॥ दोषकार्य करनेकी मति प्रकट हुई कि यह सूर्य नित्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते

उदय होते हैं ॥ ५ ॥ ग्रहनक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा होनेसे मेरु सदा अभिमानमें है मैं अपने शृंगोंसे इसका मार्ग रोध करूंगा ॥ ६ ॥ तब सूर्य निरुद्ध होकर पर्वतकी परिक्रमा कैसे करैगा इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यमार्ग निरुद्ध होनेसे ॥ ७ ॥ तो यह दिव्य पर्वत भग्नदर्प होगा इसमें संदेह नहीं यह विचार विन्ध्याद्रि अपने शृंगोंसे आकाशको स्पर्श करता बढने लगा ॥८॥ और बडे उन्नत शृंगोंसे सबको व्याप्त कर बढा कि कब सूर्य उदय हो और मैं उसका रोध करूं ॥९॥ इस विचारमेंही उसको रात बीत गई जिस समय प्रभातको सूर्यकिरणोंसे दिशा अंधकार

सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः ॥ तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः ॥६॥ तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम् ॥ एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च ॥७॥ भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चितम् ॥ एवं निश्चित्य विंध्याद्रिः खं स्पृशन्ववृधे भुजैः ॥८॥ महोन्नतैः शृंगवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः ॥ कदोदेष्यति भास्वांवास्तं रोधयिष्याम्यहं कदा ॥९॥ एवं संचिंतयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः ॥ १० ॥ कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदया गोदये गिरौ ॥ प्रकाशते स्म विमलं नभो भानुकरैः शुभः॥११॥ विकासं नलिनीं भेजे मीलनं च कुमुद्वती ॥ स्वानि कार्याणि सर्वे [illegible] लोकाः समुपतस्थिरे ॥१२॥ हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन् ॥ प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः ॥ १३ ॥ [illegible] [illegible] तथाग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम् ॥ ज्वलंतीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम् ॥ १४ ॥ भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं [illegible] निगाय च ॥ याम्यां गंतुं ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः ॥ १५ ॥

हीन हुई ॥ १० ॥ और उदयाचलसे सूर्य उदय होने लगे और सूर्यकी उज्ज्वल किरणोंसे आकाश निर्मल हुआ ॥११॥ कमल खिले कुमोदिनी कुंभिलाई सब लोक अपने अपने कार्यमें लगे ॥१२॥ देवताओंको हव्य पितरोंको कव्य भूतोंको बलि दी जाने लगी, पराह्न तीसरा [illegible] और मध्याह्न समय सूर्य ॥ १३ ॥ वियोगिनीरूप पूर्व और आग्नेयी दिशाको सावधान करते हुए जो चिरकालकी विरहवती कामिनीके [illegible] प्रज्वलित हो रही थी ॥ १४ ॥ इस प्रकार सूर्य अग्नि दिशाको छोडकर जब दक्षिणदिशाको गमन करने लगे ॥ १५ ॥

तब आगे चलनेको समर्थ न हुए उस समय वरुणने कहा वरुण बोले हे सूर्य ! इस समय मानो विन्ध्य पर्वत ऊपरके उठा है ॥१६॥ और आपसे प्रदक्षिणा पानेवाले मेरुसे स्पर्धा करता है, सूतजी बोले वरुणके वचन सुन सूर्य विचारने लगे॥१७॥अहो आश्चर्य है क्या आकाशमार्ग भी रुद्ध हो सकता है उत्पथमार्गमें स्थित होकर शूर क्या नहीं कर सकते॥१८॥मेरे अश्व मार्गमें रुकेंगे दैवही बलवान् है जो राहुकी बाहुसे व्यग्र होकर क्षणमात्रको भी स्थित नहीं होते॥१९॥वह चिरकालतक मार्गमें रुद्ध होंगे बली विधाता क्या करेगा इस प्रकार रुद्धमार्ग होनेपर सब लोक और

न शेकुश्चाग्रतो मन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ अनूरुरुवाच ॥ भानो मानोन्नतो विंध्यो निरुध्य गगनं स्थितः ॥ १६ ॥ स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम् ॥ सूत उवाच ॥ अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यसा चिंतयन् ॥१७॥ अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चाऽतिविस्मयः ॥ प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः ॥१८॥ निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम् ॥ राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते ॥ १९ ॥ स चिरं रुद्धमार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली ॥ एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः ॥ २० ॥ नान्वविंदंत शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ चित्रगुप्तादयः सर्वे कालं जानंति सूर्यतः ॥ २१ ॥ स रुद्धो विंध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः ॥ यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा ॥ २२ ॥ नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत् ॥ एवं च पाश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च ॥ २३ ॥ निद्रामीलितचक्षुष्का निशा मेव प्रपेदिरे ॥ प्रांचस्तथोत्तराहाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः ॥ २४ ॥

सब ईश्वर॥२०॥शरण और कर्तव्यको नहीं जानते हुए चित्रगुप्तादि भी सूर्यके द्वाराही कालको जानते हैं॥२१॥वह भी विन्ध्य पर्वतसे रुद्ध होते हैं अहो देव बड़ा विपरीत है जब इस प्रकार स्पर्धा करते हुए गिरि देवने सूर्यके रोकनेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ उस समय स्वाहा स्वधाकार नष्ट होकर प्रायः जगत् ही नष्ट होने लगा इस प्रकार पश्चिम और दक्षिणके आलोक ॥ २३ ॥ निद्रासे नेत्र मूँदकर निशाको प्राप्त हुए पश्चिम

और उत्तरके देश दिन रहनेसे तीक्ष्ण तापसे तपने लगे ॥ २४ ॥ प्रजागण मृत नष्ट भग्न और विनाशको प्राप्त होने लगी, स्वधा और कव्यसे वर्जित हो जगत्में हाहाकार होने लगा ॥ २५ ॥ देवता इन्द्र उद्विग्न होकर क्या करें इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले तब सम्पूर्ण देवता महेन्द्र आदि ब्रह्माजीको आगेकर शंकरकी शरणमें गये ॥ १ ॥ और नम्रहो अनेक प्रकारकी स्तुति करने लगे उस समय देवदेव गिरिशायी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शंकर

मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन्प्रजाः ॥ हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम् ॥ देवाः सेंद्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवा दिनः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ ततः सर्वे सुरगणा महेंद्रप्रमुखास्तदा ॥ पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरणमन्वयुः ॥ १ ॥ उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः ॥ देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ जयदेव गणाध्यक्ष उमालालितपंकज ॥ अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय ते ॥ ३ ॥ महामायाविलसितस्थानाय परमात्मने ॥ वृषांकायामरेशाय कैलासस्थितिशालिने ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्याय मान्याय मनवे मानदायिने ॥ अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शंभवे ॥ ५ ॥ गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते ॥ महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च ॥ ६ ॥ विष्णुहृत्कंजवासाय महायोगरताय च ॥ योगगम्याय योगाय योगिनां पतये नमः ॥७॥ योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने ॥ दीनदानपरायापि दयासागरमूर्तये ॥ ८ ॥

[illegible] इस प्रकार प्रार्थना करने लगे ॥ २ ॥ देवता बोले हे देवगणोंके अधिपति उमासे सेवित चरणवाले भक्तजनोंको आठ सिद्धि और विभूतिके देनेवाले ॥ ३ ॥ महामायासे परमात्मारूप स्थानपर शोभित वृषांके अमरोंके पति कैलासपर निवास करनेवाले ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्नमान्य मनुके मानदेने वाले अज बहुरूप स्वात्माराम शंभु ॥ ५ ॥ गणनाथदेव गिरिशायीके निमित्त प्रणाम है महाविभूतिके दाता महाविष्णुके पुत्र ॥ ६ ॥ [illegible] हृदय कमलमें वास करने वाले महायोगमें रत योगगम्य योगस्वरूप योगियोंके पतिके निमित प्रणाम है ॥ ७ ॥ आप योगीशके निमित्त

प्रणाम है योगियोंके फलदाता दीन दानमें तत्पर दया सागररूप ॥ ८ ॥ दुःखोंके शान्त करने वाले उग्रवीर्य गुणमूर्त्ति वृषध्वज कालकालके कलन करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले जब देवताओंने इस प्रकार शंकरकी स्तुति की तब हँसकर गंभीर वाणीसे शिवजी देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! तुम्हारे इस रूपसे हम प्रसन्न हैं हे देवताओ ! मैं तुम सबके मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ ११ ॥ देवता बोले हे सर्वदेवेश गिरिशायी भालचन्द्र महाबली आप दुःख दूर करनेवाले हमारा मंगल करो ॥ १२ ॥ विन्ध्याचल पर्वत

आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्याय गुणमूर्तये ॥ वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स देवेशो यज्ञ भुग्भिर्वृषध्वजः ॥ प्राह गंभीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षभान् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तमपूरुषाः ॥ मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः ॥११॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजिता ॥ अर्तानां शंकरस्त्वं च शं विधेहि महाबल ॥१२॥ पर्वतो विंध्यनामस्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः ॥ भानुमार्गनिरोद्धा हि सर्वेषां दुःखदोऽनघ ॥ १३ ॥ तद्वृद्धिस्तंभयेशान सर्वकल्याणकृद्भव ॥ भानुसंचाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत् ॥ १४ ॥ नष्टस्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत् ॥ अस्माकं च भयार्तानां भवानेव हि दृश्यते ॥ १५ ॥ दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नाऽस्माकं शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तंभने सुराः ॥ १६ ॥ इममेवं वदिष्यामो भगवंतं रमाधवम् ॥ सोस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक् ॥ १७ ॥

मेरुसे द्वेषकर ऊंचा हुआ है वह सूर्यका मार्ग निरोधकर सबको दुःख देता है॥१३॥ हे ईशान ! सब मंगलकर्त्ता आप इसकी वृद्धिको निवारण कीजिये, यदि सूर्यका संचार रुक गया तो कालज्ञान किस प्रकार होगा ॥ १४ ॥ स्वाहा स्वधाकार नष्ट होनेमें लोक किसकी शरण होंगे, हम भयार्तोंकी आपही शरण हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिजापते ! हमारे दुःखनाशक होकर हमपर आप कृपा कीजिये, श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! इस समय नियमके पालनानुसार तो हम उसकी वृद्धि नहीं रोकेंगे ॥ १६ ॥ परन्तु भगवान् माधवसे आप यह कहिये वह हम सबके आत्मा

पूज्य कारणरूप धारी हैं ॥ १७ ॥ गोविन्द भगवान् विष्णु सब कारणोंके कारण हैं उनसे चलकर कहैं वे सबका दुःख नाश करैंगे ॥ १८ ॥ शिवजीके यह वचन सुनकर इन्द्रादिक देवता गणोंके सहित रुद्रको आगेकर कंपित होते हुए शीघ्रतासे वैकुण्ठको गये ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले वे सब देवता वहां जाय कमललोचन, रमानाथ जगद्गुरु प्रभासे व्याप्त भगवान् विष्णुका दर्शन करते हुए ॥ १ ॥ और गद्गद स्वरसे स्तोत्र गा

गोविंदो भगवान्विष्णुः सर्वकारण कारणः ॥ तं गत्वा कथयिष्यामः स दुःखांतो भविष्यति ॥ १८ ॥ इत्येवमाकर्ण्य गिरीश-भाषितं देवाश्च सेंद्राः सपयोजसंभवाः ॥ रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना वैकुंठलोकं प्रति जग्मुरंजसा ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम् ॥ विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम् ॥ १ ॥ स्तोत्रेण तुष्टुवुर्भक्त्या गद्गदस्वरसत्कृताः ॥ देवा ऊचुः ॥ जय विष्णो रमेशाऽद्य महापुरुषपूर्वज ॥ २ ॥ दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद ॥ महावराहगोविंद महायज्ञस्वरूपक ॥ ३ ॥ महाविष्णो ध्रुवेशाऽऽद्य जगदुत्पत्ति-कारण ॥ मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रतधराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः ॥ जयाऽकूपारदैत्यारे सुरका-र्यसमर्पक ॥ ५ ॥ अमृतार्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः ॥ जयाऽऽदिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥ ६ ॥ मह्युद्धारकृतोद्योग-कोलरूपाय ते नमः ॥ नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः ॥ ७ ॥

करने लगे, देवता बोले हे महापुरुषपूर्वज विष्णु! आपकी जय हो ॥ २ ॥ हे दैत्यशत्रुकाम जनक सब कामना और फलको देनेवाले महावराह गोविन्द महायज्ञके स्वरूपवाले ॥ ३ ॥ महाविष्णु, ध्रुवेश, आद्य, जगतके उत्पत्ति कारण मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेवाले आधार रूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपधारी के निमित्त नमस्कार है अकूपार दयासागर दैत्यशत्रु देवकार्य कर्त्ता ॥ ५ ॥ अमृत प्राप्ति कर ईशान कूर्मरूप आपके निमित्त प्रणाम है जयादि दैत्यके नाश निमित्त आदि सूकररूप धारण करनेवाले ॥६॥ मही उद्धारके उद्योगकर्त्ता काल

रूप आपके निमित्त प्रणाम है जो महानृसिंहरूप धारणकर महादैत्यकुलको नष्ट करते हुए ॥ ७ ॥ नखोंसे दीप्त अंगवाले नृसिंहजीके निमित्त प्रणाम है वामनरूप धारणकर त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित हुए ॥ ८ ॥ बलिको छलते हुए उन वामनरूप धारीके निमित्त प्रणाम है दुष्ट शत्रुके नाश करने सहस्र भुजावाले शत्रुको मारते हुए ॥ ९ ॥ उन रेणुकागर्भसंभूत परशुरामको प्रणाम है, दुष्ट राक्षस रावणके शिर छेदन करनेवाले ॥ १० ॥ अनन्त विक्रमी रामके निमित्त प्रणाम है, कंस दुर्योधन शिशुपाल राजचिह्नधारी दैत्योंके ॥ ११ ॥ भारसे आक्रान्त हुई पृथ्वीको

करजैर्वरदृप्तांगं तस्मै नृहरये नमः ॥ वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥ ८ ॥ बलिं संछलयामास तस्मै वामनरूपिणे ॥ दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे ॥ ९ ॥ रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः ॥ दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥ १० ॥ श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनंतक्रमाय च ॥ कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलांछनैः ॥ ११ ॥ भाराक्रांतां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः ॥ धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः ॥ १२ ॥ तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो ॥ दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये ॥ १३ ॥ बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः ॥ म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते ॥ १४ ॥ कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः ॥ दशवतारास्ते देवभक्तानां रक्षणाय वै ॥ १५ ॥ दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत् ॥ जयभक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु ॥ १६ ॥

जिन महाप्रभुने उद्धार किया और पापोंको दूरकर धर्मको स्थापन किया ॥१२॥ बहुत प्रकारसे उन कृष्ण देवके निमित्त प्रणाम है दुष्ट यज्ञको विघात और पशुहिंसा निवृत्तिके लिये ॥ १३ ॥ बौद्धरूप धारण करनेवाले देवके निमित्त प्रणाम है जब लोक म्लेच्छ प्राय होकर दुष्टराजोंसे पीडित हुआ ॥ १४ ॥ तब कल्किरूपधारी आप देवदेवके निमित्त प्रणाम है हे देव ! आपके दशावतार भक्तोंके रक्षा करने ॥ १५ ॥ और दुष्ट दैत्योंके नाशके निमित्त हैं इस कारण आप सब दुःखोंके हरनेवाले हैं भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले नारी जलात्मरूपधारी आपकी जय हो ॥१६॥

हे देव ! जो इस प्रकार रूप धारण करै तुमसे अधिक ऐसा दया सागर कौन है ? इस प्रकार देवदेव श्रीनिवासकी स्तुतिकर ॥ १७ ॥ देवता साष्टांग भक्तिसे प्रणाम करते हुए श्रीपुरुषोत्तमदेव उनकी स्तुति सुनकर ॥ १८ ॥ उनको प्रसन्न करके गदाधर श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं आप दुःख त्यागो ॥ १९ ॥ तुम्हारा मैं परमदुःख दूर करूंगा हे देवताओ ! मुझसे तुम परम दुर्लभ वर मांगो ॥ २० ॥ मैं प्रसन्न हो इस स्तवके प्रभावसे तुमको वर देता हूं जो मनुष्य प्रभात ही उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है ॥ २१ ॥ उसको मेरी

रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः ॥ इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम् ॥ १७ ॥ प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टांगं बिबुधर्षभाः ॥ तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयञ्छ्री गदाधरः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाऽहं देवास्तापं विमुंचथ ॥ १९ ॥ भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम् ॥ वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम् ॥ २० ॥ ददामि परमप्रीतः स्तवस्याऽस्य प्रसादतः ॥ य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ मयि भक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा ॥ अलक्ष्मी कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः ॥ २२ ॥ नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्मराक्षसाः ॥ न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसंभविनस्तथा ॥ २३ ॥ नाऽकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति ॥ संततिश्चिरकालस्था भोगाः सर्वे सुखादयः ॥ २४ ॥ सम्भविष्यंति तन्मर्त्यगृहे यस्तोत्रपाठकः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम्॥२५॥एतस्य पठनान्नृणांभुक्तिमुक्ती न दूरतः ॥ देवा भवत्सु यद् दुःखं कथ्यतां तदसंशयम् ॥२६॥

भक्ति होती और कभी दुःख नहीं होता है तथा उसके घरमें अलक्ष्मी काल कभी नहीं आक्रमण करती ॥ २२ ॥ उपसर्ग, वेताल, ग्रह, ब्रह्मराक्षस, वात, पित्त, श्लेष्माके रोग ॥ २३ ॥ अकाल मरण कभी नहीं होता चिरकालमें रहनेवाली सन्तति और सब सुखदायी भोग होते हैं ॥ २४ ॥ यह सब वस्तु स्तोत्रपाठीको प्राप्त होती हैं बहुत कहनेसे क्या है यह स्तोत्र सम्पूर्ण अर्थका साधक है ॥ २५ ॥ इसके पाठसे मनु

क्योंके भुक्ति मुक्ति दूर नहीं रहती हे देवताओ ! जो तुमको दुःख है वह निश्चय कहो ॥ २६ ॥ मैं तुम्हारा वह दुःख दूर करूंगा इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है सब देवता इस प्रकार श्रीभगवान्का वचन सुनकर ॥ २७ ॥ प्रसन्न मन होकर विष्णुसे कहने लगे । इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूतजी बोले विष्णुके वचनसे सब देवता प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन होकर फिर भी कहने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे देवदेव महाविष्णु ! सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले देव यह

नाशयामि न संदेहश्चाऽत्र कार्योऽणुरेव च॥एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः॥२७॥प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरूचुर्वृषाकपिम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पंचमोऽध्याय॥५॥सूत उवाच ॥ श्रीशस्य वचनाद्देवाः संतुष्टा सर्व एव हि ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे ॥ १ ॥ देवा ऊचु ॥ देवदेव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यंतकारण ॥ विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्यमार्गरोधं करोति हि ॥२॥ तेनभानुविरोधेन सर्व एव महाविभो॥ अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र यामहि॥३॥ श्रीभगवानुवाच॥ या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी॥ देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः ॥ ४ ॥ अगस्त्यो मुनिवर्योऽसौ वाराणस्यां समासते ॥ तत्तेजोवंचकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः ॥५॥ तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम् ॥ याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसःपदीम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिष्टास्ते विष्णुना विबुधोत्तमाः ॥ प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम् ॥ ७ ॥ क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम् ॥ मणिकर्णीं समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः ॥ ८ ॥

विन्ध्यपर्वत सूर्यका मार्ग रोध करता है ॥ २ ॥ सो भानुके विरोधसे विना भाग पाये हुए क्या करैं कहां जाँय ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले जो सबकी निर्माता आद्या कुलवर्द्धिनी देवी भगवती है उसीके उपासक परमकान्तिमान् ॥ ४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी वाराणसीमें स्थित हैं हे देवताओ ! वह अगस्त्यजी विन्ध्याचलका तेज हरण करेंगे ॥ ५ ॥ उन ब्राह्मण श्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्नकर मुक्तिदायक काशीमें जाय अभयदान मांगो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले जब इस प्रकार विष्णुने कहा तब सब देवता प्रणाम कर काशीमें गये ॥ ७ ॥ वह

देवता क्षणमात्रमें काशीपुरीमें जाय मणिकर्णिकामें भक्तियुक्त प्रणाम करके॥८॥देवता पितरोंका तर्पणकर विधिपूर्वक दान दे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके आश्रममें आये ॥ ९ ॥ जो प्रशान्त श्वापदोंसे व्याप्त अनेक वृक्षोंसे संघटित मयूर सारस हंस चक्रवाकोंसे उपाश्रित ॥ १० ॥ महावराह, कोल, व्याघ्र, शार्दूल, मृग, रुरु, खड्ग, शरभसे ॥ ११ ॥ युक्त परम लक्ष्मीसे व्याप्त मुनिश्रेष्ठको देखते हुए और दंडके समान लेटकर सब प्रणाम करने लगे ॥ १२ ॥ हे द्विजगणोंसे पूज्यमान भूमिसुर ! आपकी जय हो वातापीके बलनाशक अगस्त्यजीको प्रणाम है ॥ १३ ॥

सन्तर्प्य देवांश्च पितॄन्दत्त्वा दानं विधानतः ॥ आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत् ॥ ९ ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णं नानापादपसंकुलम् ॥ मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम् ॥ १० ॥ महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूलकैरपि ॥ मृगैरुरुभिरत्यर्थं खड्गैः क्षरभकैरपि ॥ ११ ॥ समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा ॥ दंडवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर ॥ वातापीबलनाशाय नमस्ते कुंभयोनये ॥ १३ ॥ लोपामुद्रापते श्रीमन्मित्रावरुणसम्भव ॥ सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ यस्योदये प्रसन्नानि भवंत्युज्ज्वलभांज्यपि ॥ तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ काशपुष्पविकासाय लंकावासप्रियाय च ॥ जटामंडलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तुते ॥ १६ ॥ जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने ॥ वरिष्ठाय च पूज्याय सस्त्रीकाय नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥ प्रसादः [illegible] स्वामिन्वयं त्वां शरणं गताः ॥ दुस्तराच्छैलजाद्दुःखात्पीडिताः परमद्युते ॥ १८ ॥

लोपामुद्राके पति श्रीमान् मित्रवरुणसे प्रगट सब विद्याके निधि, शास्त्रयोनि अगस्त्यजीके निमित्त प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिनके उदय होते ही जलसमूह निर्मल और उज्ज्वल हो जाते हैं उन आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १५ ॥ काशपुष्पोंके खिलानेवाले लंकावासके प्रिय जटामंडल युक्त शिष्योंके सहित आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥ सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त गुणराशि महामुनिवरिष्ठ पूज्य स्त्री सहित आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ हे स्वामिन् ! प्रसन्न हो हम सब आपकी शरण हुई हैं हे परमकांतिमान् ! हम दुस्तर शैलके दुःखसे पीडित हुए हैं ॥ १८ ॥

जब परमधर्मात्मा अगस्त्यजीकी इस प्रकार प्रार्थना की तब हँसते हुए महर्षि प्रसन्न हो बोले ॥ १९ ॥ मुनिने कहा हे देवताओ ! तुम त्रिभुवनमें सबसे श्रेष्ठ हो लोकपाल महात्मा निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ हो ॥ २० ॥ जो अमरावतीके अधिपति तथा वज्र जिनका आयुध है, जिसके द्वारे आठों सिद्धि निवास करती हैं वह मरुत्पति इन्द्र ॥ २१ ॥ वैश्वानर हव्य कव्यका वहन करनेवाला अग्नि सब देवताओंका मुख है उसको दुष्कर क्या है ॥ २२ ॥ सब रक्षोंका अधिपति कान्तिमान् सबके कर्मोंका साक्षी दण्डधारी देव है हे

इत्येवं संस्तुतोऽगस्त्यो मुनिः परमधार्मिकः ॥ प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ भवंतः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ लोकपाला महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ २० ॥ योऽमरावत्यधीशानः कुलिशं यस्य चाऽऽयुधम् ॥ सिद्ध्यष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः ॥ २१ ॥ वैश्यवानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम् ॥ मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम् ॥ २२ ॥ रक्षोगणाधिपो भामः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः ॥ दंडव्यग्रकरो देवः किं तस्याऽरुकरं सुराः ॥ २३ ॥ तथाऽपि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत् ॥ अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः ॥ २४ ॥ एवं मुनिवरेणोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः ॥ प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाःकार्यं निजगदुर्निजम् ॥२५॥ महर्षे विंध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः॥ त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥ तद्वृद्धिं स्तंभय मुने निजया तपसः श्रिया ॥ भवतस्तेजसाऽगस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति ॥ २७ ॥

देवताओ ! कौन बात इनको दुर्लभ है ॥२३॥ तौ भी जो देवता अपने कार्यकी इच्छा करते हैं वह कहिये मैं अवश्य उसको करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवता मुनिके वचन सुनकर विश्वासकर प्रेमसे अपना कार्य कहने लगे ॥ २५ ॥ हे महर्षि ! विन्ध्याचलने सूर्यका मार्ग निरुद्ध किया है उससे त्रिलोकी नष्ट होकर हाहाकार करती है ॥ २६ ॥ हे मुने ! अपने तपकी कान्तिसे उसकी वृद्धि स्तंभित

कीजिये हे ऋषे! आपके तेजसे वह अवश्य नम्र होगा बस केवल यही हमारा कर्तव्य कार्य है॥२७॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले अगस्त्यजी इस प्रकार ब्राह्मणोंके वचन श्रवणकर बोले मैं यह तुम्हारा कार्य करूंगा ॥ १ ॥ जब कुम्भजन्मा अगस्त्यजीने यह देवताओंका कार्य स्वीकार किया हे द्विजसत्तम! तब देवता बडे प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ मुनिके वचनसे सब देवता अपने २ स्थानोंको गये तब मुनिवर नृपकन्या अपनी स्त्रीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! यह अनर्थकारी विघ्न प्राप्त हुआ है विन्ध्य पर्वतने

एतदेवाऽस्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः ॥ करिष्ये कार्यमेतद्वः प्रत्युवाच ततो मुनिः ॥ १ ॥ अंगीकृते तदा कार्ये मुनिना कुंभजन्मना ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः ॥ पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम् ॥ ३ ॥ अये नृपसुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः ॥ भानुमार्गनिरोधेन कृतो विंध्यमहीभृता ॥ ४ ॥ अज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम् ॥ काशीमुद्दीश्य यद्गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥ अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः ॥ किंतु विघ्ना भविष्यंति काश्यां निवसतां सताम् ॥ ६ ॥ सोऽन्तरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये॥ इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः ॥ ७ ॥ मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम् ॥ दंडपाणिं समभ्यर्च्य कालराज समागतः ॥ ८ ॥ कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक ॥ कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वरः ॥ ९ ॥

सूर्यका मार्ग रोकनेकी इच्छा की है ॥४॥ उस विघ्नका कारण पुरातन तत्त्ववादी ऋषियोंका वाक्य स्मरण करके मैंने जाना है जो काशीके उद्देश्यसे कहा गया है ॥ ५ ॥ मुमुक्षुओंको कभी काशीवास त्यागना न चाहिये परन्तु काशी सेवन करनेवालोंको बडे विघ्न उपस्थित होते हैं ॥६॥ हे प्रिये! वही काशीमें निवास करते हुए मुझे विघ्न प्राप्त हुआ है परम तपस्वी मुनि भार्यासे इस प्रकार कहकर ॥ ७ ॥ मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वरका दर्शनकर दण्डपाणिकी अर्चनाकर कालभैरवके समीप आये ॥ ८ ॥ कहने लगे हे महाबाहु! भैरवजी भक्तोंका भय

शौनकजी बोले मैंने आपसे जो पूछा सो आपने आद्यमन्वन्तर कहा अब आप दिव्य तेजवाले मनुओंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार स्वायंभुवकी उत्पत्ति सुनकर क्रमसे उनकी संभूतिकी इच्छासे ॥ २ ॥ परमज्ञानी देवीके तत्त्व जाननेसे पण्डित नारदजी पूछने लगे हे भगवन्! मुझसे मनुओंकी उत्पत्ति कहिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले पहले हमने आपसे स्वायंभुवमनुका चरित्र कहा जिससे देवीके आराधनसे उन्होंने अकंटक राज्य पाया ॥४॥ उस मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए यह राजपालनमें पृथ्वीमें विख्यात हुए ॥ ५ ॥

शौनक उवाच॥आद्यो मन्वंतरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः ॥ अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्यतेजसाम् ॥१॥ सूत उवाच ॥ एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वयंभुवस्य हि॥अन्येषां क्रमशस्तेषां सम्भूतिं परिपृच्छति॥२॥नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः ॥ नारद उवाच ॥ मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन॥३॥नारायण उवाच ॥ प्रथमोऽयं मनुः स्वायंभुव उक्तो महामुने ॥ देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥४॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ राज्यपालनकर्तारौ विख्यातौ वसुधातले ॥५॥ द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः ॥ प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥ ६ ॥ स स्वरोचिषनामापि कालिंदीकूलतो मनुः ॥ निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियंकरः ॥७॥ जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः ॥ देव्या मूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥ ८ ॥ एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः ॥ देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ ९ ॥ ततः प्रसन्नादेवेशी स्तवराजेन सुव्रता ॥ ददौ स्वरोचिषायैव सर्वमन्वंतराश्रयम् ॥ १० ॥ आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात् ॥ एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः ॥ ११ ॥

दूसरे मनु स्वारोचिष हुए यह अप्रमेय पराक्रमी प्रियव्रतके पुत्र थे ॥ ६ ॥ वह स्वारोचिषनाम मनु कालिन्दीके तटपर सब प्राणियोंके प्रिय करनेको निवास करते हुए ॥ ७ ॥ और जीर्ण पत्ते खाकर तप करनेको उद्यत हुए और देवीकी मृत्तिकाकी मूर्त्तिकी भक्तिसे पूजा करने लगे ॥ ८ ॥ इसप्रकार वनमें निवास करते बारह वर्ष बीत गये हे तात! तबसहस्र सूर्यके समान कान्तिवाली देवी प्रगट हुई ॥ ९ ॥ हे सुव्रत! तब उनके स्तवराजसे देवी प्रसन्न हुई और स्वारोचिषको मन्वन्तरका आश्रय दिया ॥ १० ॥ इस प्रकार जगन्माता आधिपत्य देकर

तारिणी नामसे विख्यात हुई इसप्रकार स्वारोचिषमनु तारिणीके आराधनसे ॥ ११ ॥ सब शत्रुओंसे रहित हो आधिपत्यको प्राप्त हुए इस
प्रकार विधिपूर्वक धर्मको स्थापित कर राज्यको पुत्रोंको दे॥ १२ ॥ भोग भोगकर अपने मन्वन्तरके आश्रयसे स्वर्ग लोकको गया प्रियव्रतका पुत्र
मनु तीसरा उत्तमनामक हुआ ॥ १३ ॥ वह गंगा किनारे देवीका जप करता हुआ तप करने लगा इस प्रकार तीन वर्षमें देवीके अनुग्रहको प्राप्त
हुआ ॥ १४ ॥ भक्तिसे भावित मन हो देवी को अनेक स्तोत्रोंसे पुजकर चिरकालिक सन्तातिके सहित निष्कंटक राज्यको प्राप्त होता हुआ॥१५॥

आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवार्जितम् ॥ धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः ॥ १२ ॥ भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात् ॥ तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥१३॥ गंगाकूले तपस्तप्त्वा वाग्भवं संजपन्नहः ॥ वर्षाणि त्रीण्युपं वसन्देव्यनुग्रहमाविशत् ॥ १४ ॥ स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः ॥ राज्यं निष्कंटकं लेभे सन्ततिं चिरकालिकीम् ॥ १५ ॥ राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्त्वा धर्मान्युगस्य च ॥ सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम् ॥ १६ ॥ चतुर्थस्तामसो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम् ॥१७॥ महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः ॥ वासन्ते शारदे काले नवरात्रसपर्यया ॥ १८ ॥ तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम् ॥ तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तोत्रैरनुत्तमैः ॥ १९ ॥ अंकटकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः ॥ पुत्रान्बलोद्धतान्छूरान्दशवीर्यनिकेतनान् ॥२०॥ उत्पाद्य निजभार्यायां जगांबरमुत्तमम् ॥ पंचमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः ॥ २१ ॥

राजोंके योग्य सुख और युग धर्मको भोगकर राजर्षियोंसे भावित पदवीको प्राप्त होता हुआ ॥ १६ ॥ चौथा तामस नाम मनु प्रियव्रतका
पुत्र हुआवह नर्मदाके दक्षिणकूलमें जगन्माताकी आराधना कर ॥१७॥ जो माहेश्वरी है उनका भजन कर कामराजके कूटजापमें परायण
हुआ वसन्त शरद् और नवरात्रमें पूजा जपसे ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ कमललोचनी देवीको सन्तुष्ट करता हुआ उनकी प्रसन्नताको अनेक स्तोत्रोंसे
प्राप्त होकर ॥ १९ ॥ निर्भय हो अकंटक राज्य भोगने लगा और बडे पराक्रमी शूर दशपुत्रोंको ॥ २० ॥ भार्यामें प्रगटकर स्वर्गलोकको

गमन किया तामसका छोटा भाई पांचवाँ मनु रैवत हुआ ॥ २१ ॥ उसने भी यमुनाके किनारे कामराज मंत्रका जप किया जो साधकको अनेक प्रकारकी मनोरथसिद्धिका देनेवाला है ॥ २२ ॥ इसके आराधनसे उस मनुको श्रेष्ठ राज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई और लोकमें सब सिद्धि विधायक बडा बल प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और चिरायुष पुत्र पौत्र भार्या सन्तति हुईं इस प्रकार धर्मको स्थापन कर विषयोंको भोगकर ॥ २४ ॥ अन्तमें वह शूर महेन्द्र स्थानको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कालिंदीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम्॥बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम्॥२२॥एतदाराधनादाप स्वारा ज्यार्द्धिमनुत्तमाम्॥ बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ २३ ॥ सन्ततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम् ॥ धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च ॥२४॥ जगामाप्रतिमः शूरो महेंद्रालयमुत्तमम् ॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अंगपुत्रेण मनुना यथाऽऽप्तं राज्यमुत्तमम् ॥१ ॥ अंगस्य राज्ञः पुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः ॥ षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः ॥ २ ॥ ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्राणतार्तिहन् शाधि मां किंकरं स्वामि येनाऽहं प्राप्नुयां श्रियम् ॥३॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखंडितम् ॥ अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षणम् ॥ ४ ॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखण्डं वय उत्तमम् ॥ अन्तेऽपवर्गलाभश्च यात्तथोपादिशाऽद्य मे ॥ ५ ॥

श्रीनारायण बोले अब विचित्र देवीका माहात्म्य सुनो जिसप्रकार अंगपुत्र मनुने उत्तम राज्य पाया ॥ १ ॥ अंगराजाका पुत्र चाक्षुषमनु हुआ यह छठवाँ मनु पुलहनाम ब्रह्मर्षिकी शरणको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! मैं आपकी शरण हुआ हूं हे दुःखनाशक ! आप मुझे समझाइये जिससे मैं श्रेष्ठ लक्ष्मीको प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥ जैसे मेरा पृथ्वीमें अखण्ड राज्य होजाय मेरी भुजाओंका बल अप्रतिहत और अस्त्र शस्त्रमें मैं निपुण होजाऊं ॥ ४ ॥ निरन्तर स्थायी सन्तति, अखण्ड उत्तम आयु और अन्तमें मुक्ति हो इस प्रकार मुझे

उपदेश करो ॥ ५ ॥ जब इस प्रकारके वचन मुनिने सुने तब राजपुत्रसे देवीका परमाराधन कहने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मेरे श्रोत्रसुखकारी वचन सुनो तुम शिवाका आराधन करो उसके प्रसादसे यह सब कुछ होजायगा ॥ ७ ॥ चाक्षुष बोले हे मुने ! भगवतीका परमाराधन किस प्रकार है किस प्रकार करना चाहिये वह कृपाकर आप कहिये ॥ ८ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! देवीका परम अव्यय पूजन आप सुनिये महासरस्वती देवता वाला बीज निरन्तर जपना चाहिये ॥ ९ ॥ तीन काल जपनेसे भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होती है

इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत् ॥ प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान्देव्याः संराधनं परम् ॥६॥ राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत् ॥ शिवामाराधयाऽद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत् ॥७॥ चाक्षुप उवाच ॥ कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम् ॥ केनाकारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥८॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम् ॥ वाग्भवं बीजमव्यक्तं संजप्यमनिशं तथा ॥९॥ त्रिकालं संजपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु हि ॥ न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनंदन ॥ १० ॥ जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धि करं परम् ॥ एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः ॥११॥ विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः ॥ महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप ॥ १२ ॥ लोकपालास्तथाऽन्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः ॥ १३ ॥ एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदंबिकाम् ॥ समाराध्य महार्द्धिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः ॥ १४ ॥ एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः ॥ अंगपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम् ॥ १५ ॥

हे राजन् ! वाग्भवबीजके समान और मंत्र नहीं है ॥ १० ॥ यह जपसेही सिद्धि करनेवाला बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला है इसीके जपसे ब्रह्माजी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ ११ ॥ इसीके जपसे विष्णु सृष्टिपालक और महेश्वर संहर्ता कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा इसीसे दूसरे लोकपाल भी निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ होते हैं जिसके आश्रयसे यह सब कोई बलवीर्य सम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ हे राजन्! इसी प्रकार तुम भी माहेश्वरी जगदम्बिकाको आराधन कर शीघ्र ही महासमृद्धिको प्राप्त होगे ॥ १४ ॥ जब

गमन किया तामसका छोटा भाई पांचवाँ मनु रैवत हुआ ॥ २१ ॥ उसने भी यमुनाके किनारे कामराज मंत्रका जप किया जो साधकको अनेक प्रकारकी मनोरथसिद्धिका देनेवाला है ॥ २२ ॥ इसके आराधनसे उस मनुको श्रेष्ठ राज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई और लोकमें सब सिद्धि विधायक बडा बल प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और चिरायुष पुत्र पौत्र भार्या सन्तति हुई इस प्रकार धर्मको स्थापन कर विषयोंको भोगकर ॥ २४ ॥ अन्तमें वह शूर महेन्द्र स्थानको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कालिंदीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम्॥बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम्॥२२॥एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम्॥ बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ २३ ॥ सन्ततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम् ॥ धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च ॥२४॥ जगामाप्रतिमः शूरो महेंद्रालयमुत्तमम् ॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशम स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अंगपुत्रेण मनुना यथाऽऽप्तं राज्यमुत्तमम् ॥१ ॥ अंगस्य राज्ञः पुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः ॥ षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः ॥ २ ॥ ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन् शाधि मां किंकरं स्वामि येनाऽहं प्राप्नुयां श्रियम् ॥३॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखंडितम् ॥ अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षणम् ॥ ४ ॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखण्डं वय उत्तमम् ॥ अन्तेऽपवर्गलाभश्च यात्तथोपादिशाऽद्य मे ॥ ५ ॥

श्रीनारायण बोले अब विचित्र देवीका माहात्म्य सुनो जिसप्रकार अंगपुत्र मनुने उत्तम राज्य पाया ॥ १ ॥ अंगराजाका पुत्र चाक्षुषमनु हुआ यह छठवाँ मनु पुलहनाम ब्रह्मर्षिकी शरणको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! मैं आपकी शरण हुआ हूं हे दुःखनाशक ! आप मुझे समझाइये जिससे मैं श्रेष्ठ लक्ष्मीको प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥ जैसे मेरा पृथ्वीमें अखण्ड राज्य होजाय बैरी भुजाओंका बल अप्रतिहत और अस्त्र शस्त्रमें मैं निपुण होजाऊं ॥ ४ ॥ निरन्तर स्थायी सन्तति, अखण्ड उत्तम आयु और अन्तमें मुक्ति हो इस प्रकार मुझे

उपदेश करो ॥ ५ ॥ जब इस प्रकारके वचन मुनिने सुने तब राजपुत्रसे देवीका परमाराधन कहने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मेरे श्रोत्रसुखकारी वचन सुनो तुम शिवाका आराधन करो उसके प्रसादसे यह सब कुछ होजायगा ॥ ७ ॥ चाक्षुष बोले हे मुने ! भगवतीका परमाराधन किस प्रकार है किस प्रकार करना चाहिये वह कृपाकर आप कहिये ॥ ८ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! देवीका परम अव्यय पूजन आप सुनिये महासरस्वती देवता वाला बीज निरन्तर जपना चाहिये ॥ ९ ॥ तीन काल जपनेसे भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होती है

इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत् ॥ प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान्देव्याः संराधनं परम् ॥६॥ राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत् ॥ शिवामाराधयाऽद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत् ॥७॥ चाक्षुप उवाच ॥ कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम् ॥ केनाकारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥८॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम् ॥ वाग्भवं बीजमव्यक्तं संजप्यमनिशं तथा ॥९॥ त्रिकालं संजपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु हि ॥ न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनंदन ॥ १० ॥ जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धि करं परम् ॥ एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः ॥११॥ विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः ॥ महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप ॥ १२ ॥ लोकपालास्तथाऽन्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः ॥ १३ ॥ एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदंबिकाम् ॥ समाराध्य महर्द्धिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः ॥ १४ ॥ एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः ॥ अंगपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम् ॥ १५ ॥

हे राजन् ! वाग्भवबीजके समान और मंत्र नहीं है ॥ १० ॥ यह जपसेही सिद्धि करनेवाला बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला है इसीके जपसे ब्रह्माजी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ ११ ॥ इसीके जपसे विष्णु सृष्टिपालक और महेश्वर संहर्ता कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा इसीसे दूसरे लोकपाल भी निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ होते हैं जिसके आश्रयसे यह सब कोई बलवीर्य सम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ हे राजन्! इसी प्रकार तुम भी माहेश्वरी जगदम्बिकाको आराधन कर शीघ्र ही महासमृद्धिको प्राप्त होगे ॥ १४ ॥ जब

मुनिश्रेष्ठ पुलहने इस प्रकार समझाया तब अंगपुत्र तप करने विरजा नदीके तटपर गया ॥ १५ ॥ वहां वाग्बीजका जप करता परम तप करने लगा और यह राजा सूखे पत्तोंका आहार करने लगा ॥ १६ ॥ पहले वर्षमें पत्ते खाये दूसरेमें जल पिया तीसरेमें वायु भक्षण कर ठूंठके समान अचल रहे ॥ १७ ॥ इस प्रकार बारह वर्षपर्यन्त राजाने भोजन त्यागकर जप किया जिससे मतिमें प्रकाश हुआ ॥ १८ ॥ जब एकान्तमें देवीका भजन करने लगा तब साक्षात् परमेश्वरी जगन्माता प्रसन्न हो प्रगट हुईं ॥ १९ ॥ जो तेज सम्पन्न दुराधर्ष

स च तेपे तपस्तीव्रं वाग्भवस्य जपे रतः ॥ बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः ॥ १६ ॥ प्रथमेऽब्दे पल्लवाशो द्वितीये तोयभक्षणः ॥ तृतीयेऽब्दे पवनभुक्तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ १७ ॥ एवं द्वादशवर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः ॥ वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता ॥ १८ ॥ तथा च देव्याः परमं मंत्रं संजपतो रहः ॥ प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी ॥ १९ ॥ तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी ॥ उवाचांगतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम् ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ पृथिवीपाल ते यत्स्याच्चिंतितं परमं वरम् ॥ तद्ब्रूहि संप्रदास्यामि तपसा ते सुतोषिता ॥ २१ ॥ चाक्षुष उवाच ॥ जानासि देवदेवेशि यत्प्रार्थ्यं मनसेप्सितम् ॥ अंतर्यामिस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते ॥ २२ ॥ तथाऽपि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम् ॥ ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं मन्वंतराश्रितम् ॥ २३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दत्तमन्वंतरस्याऽस्य राज्यं राजन्यसत्तम ॥ पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यंति गुणाधिकाः ॥ २४ ॥

सर्व देवमय ईश्वरी है, वह मनोहर अक्षरोंसे अंगपुत्रसे कहने लगी ॥ २० ॥ देवी बोली हे पृथ्वीपाल ! जो तुमने अपने मनमें विचारा है वह मांगो मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हो तुमको देती हूं ॥ २१ ॥ चाक्षुष बोले हे देवेशि ! जो प्रार्थना मेरे मनमें है उसको तुम जानती हो हे देवपूजिते ! अन्तर्यामिस्वरूपसे तुम सब जानती हो ॥ २२ ॥ यह मेरा बड़ा भाग्य है जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ हे देवि ! मुझको मन्वन्तरपर्यन्तके आश्रयका राज्य दो ॥ २३ ॥ देवी बोली, हे राजसत्तम ! मैंने मन्वन्तरपर्यन्तका राज्य

तुमको दिया, तुम्हारे गुणी महावली पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ निष्कंटक राज्य और अन्तमें तुम्हारी मोक्ष होगी इस प्रकार देवी मनुको वर दे ॥ २५ ॥ उससे भक्तिपूर्वक स्तुतिको प्राप्त होकर अदर्शनको प्राप्त हुईं वह राजा भगवतीके आश्रयसे छठा मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह वडा मान्य और सार्वभौम सुखसे युक्त हुआ इसके पुत्र वडे वली कार्यके भार वहनमें समर्थ हुए ॥ २७ ॥ वह सब देवीके भक्त, शूर, महावली, पराक्रमी हुए सर्वत्र माननीय महाराज सुखसे सम्पन्न हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार चाक्षुप मनुने देवीका आराधनकर श्रेष्ठताको प्राप्त

राज्यं निष्कंटकं भाविमोक्षोंऽते चापि निश्चितः ॥ एवं दत्त्वा वरं देवी मनवे वरमुत्तमम् ॥२५॥ जगामाऽदर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता ॥ सोऽपि राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात् ॥ २६ ॥ बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः ॥ पुत्रास्तस्य बलोद्युक्ताः कार्यभारसहाद्दताः ॥ २७ ॥ देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः ॥ अन्यत्र माननीयाश्च महाराज्यसुखास्पदाः ॥२८॥ एवं च चाक्षुपमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः ॥ बभूव मनुवर्योऽसौ जगामांते शिवापदम् ॥२९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवीचरित्रे नवमोऽध्यायः ॥९॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ श्राद्धदेवः परानन्द भोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम् ॥१॥ स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादत ॥ तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वंतराधिपः ॥२॥ अष्टमो ममराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ ॥ स जन्मांतर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः॥३॥ जातो मन्वंतरपतिः सर्वराजन्यपूजितः ॥ महापराक्रमी धीरो देवीभक्तिपरायणः ॥ ४ ॥

हो अन्तमें वैकुण्ठ गमन किया और शिवाका पद पाया ॥२९॥ इति श्री देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥ श्रीनारायण बोले सातवें वैवस्वत मनु हुए जो श्राद्धदेवनामसे विख्यात परानंदके भोक्ता राजोंके माननीय हुए ॥ १ ॥ यह वैवस्वत मनु देवीकी परम प्रसन्नतासे उस तप और जपसे मन्वन्तरके अधिपति हुए ॥ २ ॥ आठवें मनु पृथ्वीमें विख्यात सावर्णि होंगे वह जन्मान्तरमें देवीका आराधन कर उनके वरदानसे ॥ ३ ॥ सब राजोंसे पूजित मन्वन्तर पति हुए, यह धीर महापराक्रमी देवीकी भक्तिमें परायण

हुए ॥ ४ ॥ नारदजी बोले इन मनुने किस प्रकार पूर्व जन्ममें पृथ्वीसे प्रगट भगवतीका आराधन किया था, सो आप हमसे कहिये ? ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें चैत्रवंशमें एक सुरथ नामवाला राजा बडा बली और विख्यात था ॥ ६ ॥ यह गुणग्राही, धनुर्धर मान्य श्रेष्ठ और कवि था, धनका संग्रह कर्त्ता और याचकमंडलको दान देता था ॥७॥ वह मानी शत्रुओंका मर्दन करनेवाला सब अस्त्रोंमें कुशल और बली हुआ एक समय उसकी कोला[1]नगरीके विध्वंस करने वाले राजा ॥ ८ ॥ शत्रु सेनाके सहित आकर इसे घेरते हुए जब इस

नारद उवाच ॥ कथं जन्मांतरे तेन मनुनाऽराधनं कृतम् ॥ देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेंऽतरे ॥ सुरथो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ६ ॥ गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती ॥ धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमंडले ॥ ७ ॥ अरीणां मर्दनो मानः सर्वास्त्रकुशलो बली ॥ तस्यैकदा बभूवुस्ते कोला विध्वंसिनो नृपाः ॥८॥ शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः ॥ रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि ॥९॥ तदा स सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः ॥ निर्ययौ नगरात्स्वीयासर्वशत्रुनिबर्हणः ॥१०॥ तत्र स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः ॥ अमात्यैर्मंत्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम् ॥११॥ हृतं सर्वमशेषेण तदाऽतप्यत भूमिपः ॥ निष्कासितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः ॥ १२ ॥ जगामाऽश्वमथाऽऽरुह्य मृगयामिषतो वनम् ॥ एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रांतमानसः ॥ १३ ॥

मानधनी राजाकी नगरी उन्होंने घेर ली ॥ ९ ॥ तब सुरथराजा सेनासहित शत्रुके मारनेकी इच्छासे नगरीसे बाहर निकला ॥ १० ॥ तब शत्रुओंने युद्ध कर सुरथ राजाको जीत लिया अमात्य मंत्री और कोषधन उसका सब जाता रहा ॥ ११ ॥ जब सब धन हरगया तब राजा बडा दुःखी हुआ तब वह परमद्युति नगरीसे बाहर किये गये ॥ १२ ॥ और मृगयाके मिषसे वनको चले गये इकले वनमें भ्रांत

१ प्रकृतिखण्डके दुर्गामाहात्म्यमें इसका विस्तार है कि ध्रुवका गौत्र नंदि शत १०० अक्षौहिणी सेना लेकर नगरीपर चढा था ।

हो राजा विचरने लगे ॥१३॥ फिर किसी एक शान्तमनवाले श्वापदोंसे व्याप्त मुनि और शिष्यगणोंसे संयुक्त ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् दीर्घदृष्टिके आश्रममें राजा कुछ दिनों तक निवास करता हुआ ॥ १५ ॥ एक समय वह राजा पूजाके अन्तमें मुनिके समीप जाय प्रणाम कर नम्रतासे पूछने लगा ॥ १६ ॥ हे मुनिराज ! मेरा मन बडा दुःखी है हे भूदेव ! तत्त्वज्ञान होने और निष्प्रज्ञा होनेपरभी ॥ १७ ॥ शत्रुके द्वारा जो मेरा राज्यधन हरण हुआ है तो भी मेरे मनसे राज्यका ममत्व नहीं छूटता ॥ १८ ॥ हे मुनिराज ! मैं क्या करूं कहां जाऊं किस

मुनेः कस्यचिदागत्य स्वाश्रमं शांतमानसः ॥ प्रशांतजंतुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम् ॥१४॥ उवास कंचित्कालं स राजा परम शोभने ॥ आश्रमे मुनिवर्यस्य दीर्घदृष्टेः सुमेधसः ॥ १५ ॥ एकदा स महीपालो मुनि पूजावसानके ॥ काले गत्वा प्रणम्याऽशु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥१६॥ मुने मम मनो दुःखं बाधते चाधिसंभवम् ॥ ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च संततम् ॥ १७ ॥ शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः ॥ तथापि तेषु मनसि मम त्वं जायते स्फुटम् ॥ १८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने ॥ त्वदनुग्रहमाशासे वद वेदविदांवर ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम् ॥ देवी माहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं परम् ॥ २० ॥ जगन्मयी माहामाया विष्णुब्रह्महरोद्भवा ॥ सा बलादपहृत्यैव जंतूनां मानसानि हि ॥ २१ ॥ मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीहि भूमिप ॥ सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा ॥ २२ ॥ संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप ॥ कामदात्री महामाया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ २३ ॥

प्रकार मेरे मनमें शान्ति होगी हे वेदज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! अब मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं सो आप कृपा कर कहिये ॥ १९ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! महाआश्चर्य करनेवाली बातको सुनो, जो देवीका माहात्म्य सब कामनादायक है॥२०॥जो जगन्मयी महामाया विष्णु,शिव ब्रह्माकी भी प्रगट करनेवाली है, जो बलसे जन्तुओंके मन आकर्षण करती है ॥ २१ ॥ और फिर मोहितकर देती है ऐसा जानो वही सब जगत्को उत्पन्न कर पालन करती है ॥२२॥ और संहारके समय हररूप धारण करती है, वह कामदात्री महामाया दुरन्ता कालरात्री है ॥ २३ ॥

यह काली विश्वकी संहार करनेवाली कमला कमलमें निवास करनेवाली है उसीसे सब जगत् होकर उसीमें प्रतिष्ठित है॥२४॥अन्तमें उसीमें लय होगा इस कारण वही परात्पर है हे राजन् ! जिसके ऊपर उस देवीका प्रसाद हो जाता है ॥ २५॥ वही मोहके पार होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ राजा बोले हे काल जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! कहो वह कौनसी देवी है कौन इन प्राणियोंको मोहित करती है इसमें कारण क्या है ॥ १ ॥ वह देवी किससे प्रगट होती है क्या उसका स्वरूप है क्या

विश्वसंहारिणी काली कमला कमलालया ॥ तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥२४॥ लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा ॥ तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप ॥ स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते॥२५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे दशमोऽध्यायः॥१०॥राजोवाच ॥ का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदांवर ॥ का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद्द्विज ॥ १ ॥ कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका॥ सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः॥२॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय ॥ तथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी ॥३॥ यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट् ॥ आस्तीर्य शेषं भगवान्समुद्रे निद्रितोऽभवत् ॥ ४ ॥ तदा प्रस्वापवशगो देवदेवो जनार्दनः ॥ तत्कर्णमलसंजातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं हंतुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ ॥ तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ ॥ ॥ ६ ॥ निद्रितं देवदेवेशं चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ ॥ ७ ॥

आत्मा है हे ब्रह्मन् ! कृपा कर आप यह सब कहिये ॥२॥ मुनि बोले सुनो राजन् ! मैं तुमसे देवीका स्वरूप कहता हूं जिस प्रकार वह जगन्मयी प्रगट हुई सो आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ जिस समय योगनिद्रामें भगवान् सब जगतका संहार कर शयनकर गये और शेष शय्यापर सागरमें निद्रित हुए ॥ ४ ॥ तब देव देव जनार्दनके शयन करनेसे मधु कैटभ दानव उनके कानोंके मैलसे प्रगट हुए ॥ ५ ॥ वह घोररूप दानव ब्रह्माजीके मारनेको उद्यत हुए तब ब्रह्माजी उन दोनों दैत्योंको देखकर ॥ ६ ॥ तथा विष्णुको सोता देख बडी चिन्ताको प्राप्त हुए कि भगवान् शयन

करते हैं और ये दोनों दैत्य बडे प्रबल हैं ॥ ७ ॥ मैं क्या करूं कहां जाऊं किस प्रकार मुझे मंगलकी प्राप्ति हो इस प्रकार महात्मा ब्रह्माजी जब चिन्ता करने लगे ॥ ८ ॥ तब कार्यसाधनी बुद्धि प्रगट हुई जिसके द्वारा भगवान् निद्रित हुए थे ॥ ९ ॥ उस सबकी प्रसूती भगवती देवीके शरण होता हूं ब्रह्माजी बोले हे जगद्धात्री ! भक्तोंके अभीष्ट फल देनेवाली आपकी जय हो ॥ १० ॥ हे जगत्की माया, महामाया, समुद्रमें शयन करनेवाली शिवे ! तुम्हारी आज्ञामें वश हुए सब अपना २ कार्य करतेहैं ॥ ११ ॥ तुम कालरात्री महारात्री, मोहरात्री, मदसे उत्कट हो सर्वत्र

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम् ॥ एवं चिंतयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ॥ ८ ॥ बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसादिनी ॥ यस्या वंशगतोदेवो निद्रितो भगवान्हरिः ॥ ९ ॥ तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवि जगद्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे ॥ १० ॥ जगन्माये महामाये समुद्रशयने शिवे ॥ त्वदाज्ञावाशगाः सर्वे स्वस्व कार्यविधायिनः ॥ ११ ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिर्मदोत्कटा ॥ व्यापिनी वशगा मान्या महानंदैकशेवधिः ॥ १२ ॥ महनीया महाराध्या माया मधुमती मही ॥ परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता ॥ १३ ॥ लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कांतिः कारुण्यविग्रहा ॥ कमनीया जगद्वंद्या जाग्रदादिस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ परमापरमेशानी परनंदापरायणा ॥ एकाऽप्येकस्वरूपा च सद्वितीया द्वयात्मिका ॥ १५ ॥ त्रयी त्रिवर्गनिलया तुर्या तुर्यपदात्मिका ॥ पंचमी पंचभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च ॥ १६ ॥

व्याप्त वशगामिनी महा आनन्दकी मर्यादा हो ॥ १२ ॥ तुम पूजनीय महा आराधनीया माया, मधुमती, मही, परमा, परमेशानी अर्थात् सब पर और अपरकी परमा कही गई हो ॥ १३ ॥ लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति, कारुण्य विग्रहवाली, मनोहर जगत्से वंदित जाग्रदादि स्वरूपवाली ॥ १४ ॥ परमा, परमेशानी, परनन्दा, परायणा, अद्वितीया, एक, एक स्वरूपवाली तथा मायावस्तुके सहित दयामयी हो कहीं द्वयात्मिका पाठ है, तब यह अर्थ करना कि द्वित्व संख्याविशिष्ट पदार्थात्मिका हो ॥ १५ ॥ त्रयीविद्यारूप, त्रिगुणरूप धर्म, अर्थ, काम, स्वरू

पिणी तुर्यावस्था स्वरूप ब्रह्मपदात्मिका, अथवा एकसे चार संख्या तिथिरूपा हो पंचतत्त्व संख्यारूप पांच भूतोंकी अधीश्वरी षष्ठी, षट् संख्या रूपा अथवा छः के पूरक पदार्थकी अधीश्वरी हो ॥१६॥ सप्तमी तिथि सातों बारकी अधीश्वरी सातसात वरकी देनेवाली अष्टमी वसुओंकी अधीश्वरी, नवग्रहयुक्त और उनकी अधीश्वरी ॥ १७ ॥ नवीन रागवानो रागोंकी कलासे मनोहर नौ संख्या तथा नौकी अधीश्वरी दशमी दशदिशाओंमें पूजनीया, दशों दिशाओंमें व्याप्त रमारूप ॥ १८ ॥ एकादशात्मायुक्त ग्यारह रुद्रोंसे निषेवित, एकादशी तिथिको प्यार करनेवाली, एकादश गणोंकी स्वामिनी ॥ १९ ॥ द्वादशी, बारह भुजावाली बारह आदित्योंको प्रगट करनेवाली, त्रयोदशात्मिका " मलमासके सहित तेरहवां

सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा ॥ अष्टमी वसुनाथा च नवग्रहमयीश्वरी ॥ १७ ॥ नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी ॥ दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा ॥ १८ ॥ एकादशात्मिका चैकादशरुद्रनिषेविता ॥ एकादशीतिथिप्रीता एकादश गणाधिपा ॥ १९ ॥ द्वादशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः ॥ त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया ॥२०॥ त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता ॥ चतुर्दशेंद्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः ॥ २१ ॥ पंचाधिकदशी वेद्या पंचाधिकदशी तिथिः ॥ षोडशी षोडशभुजा षोडशेंदुकलामयी ॥ २२ ॥ षोडशात्मकचंद्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा ॥ एवंरूपाऽसि देवेशि निर्गुणे तामसोदये ॥ २३ ॥ त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः ॥ एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रांतौ मधुकैटभौ ॥ २४ ॥

महीना भी ग्रहण करना " देवी त्रयोदश गणको प्यार करनेवाली ॥२०॥ त्रयोदश नामवाली, तथा इनसे अभिन्न विश्वेदेवाओंकी अधिदेवी चौदह इन्द्रोंको वर देनेवाली चौदह मनुओंको प्रगट करनेवाली ॥ २१ ॥ पंचदशी कामराज विद्यारूपवाली त्रिपुर सुन्दरी विद्या, जानने योग्य पंचदशी तिथिवाली षोडशी षोडश भुजा सोलह चन्द्रमाकी कलामय व्याप्त ॥ २२ ॥ षोडशात्मक चन्द्रकिरणमें व्याप्त दिव्य कलेवरवाली हो, हे देवेशि ! तुम इस प्रकारके रूपवाली निर्गुण तमके उदयमें ॥ २३ ॥ आपने देवदेव रमापतिको ग्रहण किया है और यह दोनों दुरासद

मधु कैटभ दैत्य हैं ॥२४ ॥ इनके वधके निमित्त देवदेवको जगाओ, मुनि बोले जब भगवत् प्रिया तामसीकी इस प्रकार स्तुति की ॥२५॥ तब देवदेवको त्यागन कर उसने दोनों दानवोंको मोहित किया, तभी भगवान्, विष्णु, परमात्मा, जगत्पति ॥ २६ ॥ जागे और उन्होंने दोनों दानवोंको देखा तब वे दोनों घोर दानव मधुसूदनको देखकर ॥२७॥ युद्धका संकल्प कर भगवान्के समीप गये उनके संग भगवान् वासुदेवका युद्ध हुआ ॥२८॥ पांच सहस्र वर्षतक भगवान्ने बाहुयुद्ध किया तब यह दोनों बलसे मत्त हो जगन्मायासे मोहित हुए॥२९॥ वर मांगो यह मधु

एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रति बोधय ॥ मुनिरुवाच ॥ एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया ॥ २५ ॥ देवदेवं तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ ॥ तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः ॥ २६ ॥ प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ ॥ तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं मधुसूदनम्॥२७॥युद्धाय कृतसंकल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः ॥ युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः॥२८॥ पंचवर्ष सहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ तौ तदाऽतिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ ॥२९॥ व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम् ॥ एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः ॥३०॥ वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम् ॥ तौ तदाऽतिबलौ देवं पुनरेवोचतु र्हरिम् ॥३१॥ आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता ॥ तथेत्युक्त्वा भगवता गदाशंखभृता नृप ॥ ३२ ॥ कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप ॥३३॥ महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी ॥ महाल [illegible]त्पत्तिं निशामय महीपते ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

[illegible] प्रकट भगवान् उन दोनोंके वचन सुन ॥३०॥ बोले तुम दोनों हमारे वध्य हो तब वे दोनों बडे बली हरिसे बोले ॥३१॥ [illegible] जहां कहीं पृथ्वी जलसे व्याप्त न हो तब भगवान् शंखचक्रधारीने॥३२॥ चक्रसे उसका शिरच्छेदन करदिया हे राजन्! [illegible] हो देवी प्रगट हुई ॥३३॥ हे महाराज ! वह महाकाली सब योगेश्वरोंकी ईश्वरी है हे राजन् ! अब महालक्ष्मी [illegible] ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११ ॥

मुनि बोले महिषी गर्भसे प्रगट हुआ महाबली पराक्रमी महिषासुर सब देवताओंको जीतकर जगत्का अधिपति स्वयं हुआ ॥१॥ वह महासुर सब लोकपालोंके अधिकारोंको बलसे छीन त्रिलोकीका ऐश्वर्य भोगने लगा ॥ २ ॥ तब पराजित हो सब देवता स्वर्गसे च्युत हुए और ब्रह्माको आगेकर उत्तम लोकको गये ॥ ३ ॥ जहां उत्तम देव शंकर और अच्युत निवास करते हैं वहां जाकर दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त कथन किया ॥४॥ कि उस असुरने बडे वेगसे सब देवताओंके स्थान जीतकर मदोद्धत हो उनको स्वयं भोगा है ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! वह महिषासुर बडा दुष्ट दैत्य है

मुनिरुवाच ॥ महिषागर्भसंभूतो महाबलपराक्रमः ॥ देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥ १ ॥ सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः ॥ बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम् ॥२॥ ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युताः॥ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्रोत्तमौ देवदेवौ संस्थितौ शंकराच्युतौ ॥ वृत्तांतं कथयामासुर्महीषस्य दुरात्मनः ॥४ ॥ देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसा सुरः ॥ विनिर्जित्य स्वयं भुंक्ते बलवीर्यमदोद्धतः ॥ ५ ॥ महिषासुरनामाऽसौ दुष्टदैत्यामरेश्वरौ ॥ वधोपायश्च तस्याऽऽशु चिंत्यतामसुरार्दनौ ॥ ६ ॥ एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः ॥ चकार कोपं सुबहुं तथा शंकरपद्मजौ ॥ ७ ॥ एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते ॥ तेजः प्रादुरभूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ॥ ८ ॥ अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान् ॥ ९ ॥ यदभूच्छंभुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत ॥ केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः ॥ १० ॥

हे असुरनाशको ! उसके वधका उपाय विचारो ॥६॥ वह भगवान् देवताओंका इस प्रकार दुःखपूर्ण वचन सुनकर शंकर भगवान् बडा क्रोध करते हुए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस समय क्रोध करते हुए भगवान् हरिके मुखसे सहस्र सूर्यके समान दिव्यतेज निर्गत हुआ ॥ ८ ॥ फिर क्रमसे सब देवताओंका तेज देवताओंको प्रसन्न करता हुआ उनके शरीरसे निर्गत हुआ ॥ ९ ॥ शंभुके तेजसे मुख, यमके तेजसे केश, विष्णुके तेजसे भुजा ॥ १० ॥

चन्द्रमाके तेजसे स्तन, महेन्द्रके तेजसे मध्यभाग, वरुणके तेजसे जंघा हुई॥ ११॥ भूमिके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे चरण, सूर्यके तेजसे पादांगुली, इन्द्रके तेजसे हाथोंकी अंगुली॥ १२॥ कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके उत्तम तेजसे दांत॥ १३॥ अग्निके तेजसे तीन नेत्र, संध्याके तेजसे तेजकी निधि भ्रुकुटी १४॥ हे राजन् ! वायुके तेजसे कान, इस प्रकार सबके तेजसे महिषमर्दिनी प्रगट हुई ॥ १५॥ शिवने शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निने शक्ति, वायुने धनुषबाण ॥ १६ ॥ महेन्द्रने वज्र, ऐरावतने घंटा, यमने कालदण्ड, ब्रह्माने अक्षमाला और कमंडलु ॥ १७ ॥

सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेंद्रेण च मध्यमः ॥ वरुणेन ततो भूप जंघोरू संबभूवतुः ॥ ११ ॥ नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा ॥ पदांगुल्यो भानवेन वासवेन करांगुलीः ॥ १२ ॥ कौबेरेण तथा नासा दंताः संजज्ञिरे तदा ॥ प्राजापत्येनात्तमेन तेजसा वसुधाधिप ॥ १३ ॥ पावकेन च संजातं लोचनत्रितयं शुभम् ॥ साध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी ॥ १४ ॥ कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप ॥ सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिषमर्दिनी॥ १५॥ शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शंखं च पाशभृत् ॥ हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ ॥ १६॥ वज्रं महेंद्रः प्रददौ घण्टां चैरावतादृजात् ॥ कालदंडं यमो ब्रह्मा चाक्षमालाकमंडलू ॥ १७॥ दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु संददौ ॥ कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप ॥ १८ ॥ समुद्रो निर्मलं हारमजरे चांवरे नृप ॥ चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथांगदे ॥ १९ ॥ अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ ॥ ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः ॥ २० ॥ विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते ॥ हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २१ ॥ पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः ॥ शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः ॥ २२ ॥

दिवाकरने रोमकूपोंमें रश्मिमाला, हे राजन् ! कालने दिव्य ढाल तलवार ॥ १८॥ समुद्रने निर्मलहार और मलीन न होनेवाले वस्त्र चूडामणि कटक कुंडल बाजूबंद ॥ १९ ॥ निर्मल अर्धचन्द्र और नूपुर तथा गलेका भूषण प्रसन्नतासे देवीके निमित्त दिया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विश्वकर्माने यह सब देवीके निमित्त दिया, हिमालयने वाहनसिंह तथा अनेक रत्न दिये ॥ २१ ॥ धनाधिप कुबेरने सुरापूर्ण पानपात्र दिया

शिवजीने नागहार दिया ॥२२॥ और भी सम्पूर्ण देवताओंने जगन्माताका मान्य किया महिषपीडित देवता महादेवीकी स्तुति करने लगे ॥२३॥ इस प्रकार जगत्की उत्पन्न करनेवाली महेशानी की स्तुति की, देवताओंसे पूजित भगवती उनके स्तोत्रको सुनकर ॥ २४ ॥ महिषासुरके मारनेको महानाद करती हुई हे राजन् ! उस नादसे महिषासुर चकित होगया ॥ २५ ॥ और सब सेना लेकर जगद्धात्रीके समीप आया तब महिषासुर देवीसे युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ और शस्त्रास्त्रोंसे आकाश पूर्ण कर दिया; चिक्षुर, ग्रामणी, दुर्धर, दुर्मुख, ॥२७॥ बाष्कल, ताम्र

अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी ॥ तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवामहिषपीडिताः॥२३॥नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम् ॥ तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता ॥ २४ ॥ महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह ॥ तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद्धरापते ॥२५॥ आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः ॥ ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महासुरः ॥ २६ ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नंबरांतरम् ॥ चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ ॥२७॥ बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः ॥ एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामांतकसन्निभैः ॥ २८ ॥ योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः॥ ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी ॥ २९ ॥ जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान् ॥ ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्छितः ॥ ३० ॥ आससाद तदा देवीं तूर्णं मायाविशारदः ॥ रूपांतराणि संभेजे मायया दानवेश्वरः ॥ ३१ ॥ तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा ॥ ततोऽन्ते माहिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम् ॥ ३२ ॥

बिडालवदन इसप्रकारके और भी दैत्य असंख्य संग्राम करनेवाले ॥ २८ ॥ योद्धाओंसे युक्त दानवश्रेष्ठ महिषासुर आया तब क्रोधसे लाल नेत्रकर लोकमोहिनी देवी ॥ २९ ॥ महिषके आश्रित योद्धाओंको समरमें मारनेलगीं, तब उनके मरनेसे क्रोधसे मूर्च्छित हो वह दैत्य ॥ ३० ॥ मायामें चतुर देवीके समीप प्राप्त हुआ और मायासे दानव अनेक प्रकारके रूपान्तर धारण करने लगा ॥ ३१ ॥ भगवती उसके

उन्हीं २ रूपोंका नाशकरने लगीं तब अन्तमें अमरमर्दकने महिषका रूप धारणकरा ॥३२॥ तब देवीने पाशसे बाँधकर खड्गसे उसका शिरच्छेदन किया और देवगणोंके नाशक महिषासुरको भूमिमें पटक दिया ॥ ३३ ॥ तब सब सेनामें हाहाकार मचगया, सब ओर सेना भग्न हो गयी और सब देवता प्रसन्न हो देवेशीकी स्तुतिकरने लगे ॥३४॥इस प्रकार महिषमर्दिनी लक्ष्मी प्रगट हुई हे राजन् ! अब जैसे सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ सो सुनो ॥ ३५ ॥ एक समय बड़ा बली दैत्य शुंभनामक था, निशुंभ उसका भ्राता महाबली पराक्रमी था ॥३६॥उससे पीडित हो देवता राजलक्ष्मीसे

पाशेन बद्ध्वा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः ॥ पातयामास महिषं देवी देवगणांतकम् ॥ ३३ ॥ हाहाकृतं ततः शेषसैन्यं भग्नं दिशो दश ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवा प्रमोदिताः ॥३४॥ एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी ॥ राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् ॥ ३५ ॥ एकदा शुंभनामाऽऽसीद्दैत्यो मदबलोत्कटः ॥ निशुंभश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः ॥ ३६ ॥ तेन संपीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप ॥ हिमवंतमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय देवेशि भक्तानामार्ति नाशनकोविदे ॥ दानवांतकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे ॥ ३८ ॥ देवेशि भक्तिसुलभे महाबलपराक्रमे ॥ विष्णुशंकरब्रह्मादिस्वरूपेऽनंतविक्रमे ॥ ३९ ॥ सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कांतिदायिनि ॥ महातांडवसुप्रीते मोददायिनि माधवि ॥ ४० ॥ प्रसीद देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे ॥ निशुंभशुंभसंभूतभयापारांबुवारिधेः ॥ ४१ ॥ उद्धराऽस्मान्प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान् ॥ एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां धरापते ॥ ४२ ॥

विहीन हो गये तब देवता हिमालयको प्राप्त देवीकी प्रार्थना आदरसे करने लगे॥३७॥देवता बोले हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली देवी ! आपकी जय हो तुम दानवोंके नाश करनेको रूप धारण करती हो हे पापरहिते ! तुम अजर अमर हो ॥ ३८ ॥ हे देवेशि ! तुम भक्तिसे ही प्राप्त होती हो तुम अनन्त विक्रमवाली विष्णु शंकर ब्रह्मादिका स्वरूप हो ॥३९॥ हे कान्तिदायिनी!तुम सृष्टिकी स्थिति उत्पत्ति और संहार करती हो, महातांडवसे प्रसन्न होनेवाली तथा मोद दायक हो ॥ ४० ॥ हे करुणानिधे देवदेवेशि ! प्रसन्न हो, तथा निशुंभशुंभका भय दूर करती हो ॥ ४१ ॥ हमारा

उद्धार करो हम तुम्हारी शरणमें आनकर प्राप्त हुए हैं हमारा उद्धार करो हे धरापते!इस प्रकार उनके स्तुति करनेपर॥४२॥प्रसन्न होकर पार्वती बोली अपने स्तवनका कारण कहो इसी समय उसके शरीर कोशसे उत्थित होकर ॥ ४३ ॥ जगत्पूज्या कौशिकी प्रसन्न हो देवताओंसे कहने लगी, हे देवताओ! मैं इस आपके स्तवनसे प्रसन्न हूं ॥ ४४ ॥ तुम वर मांगो तब देवता बोले कि शुभ निशुंभ यह दो भ्राता हैं इनमें बड़ा भाई ॥ ४५ ॥ शुंभ अपने पराक्रमसे त्रिलोकीको आक्रमण किये है, हे देवी! वह दानवेश्वर बड़ा दुरात्मा है, इसका वध विचार किया जाय ॥ ४६ ॥ वह अपने तेजसे

प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्याः कोशरूपात्समुत्थिता ॥ ४३ ॥ कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत् ॥ प्रसन्नाऽहं सुरश्रेष्ठा स्तवेनोत्तमरूपिणी ॥ ४४ ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम् ॥ शुंभनामा-वरो भ्राता निशुंभस्तस्य विश्रुतः ॥४५॥ त्रैलोक्यमोजसा क्रांतं दैत्येन बलशालिना ॥ तद्वधश्चिंत्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः ॥४६॥ बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवशत्रु पातयिष्ये निशुंभं शुंभमेव च ॥ ४७ ॥ स्वस्था स्तिष्ठत भद्रं वः कंटकं नाशयामि वः ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेंद्रान्दयामयी ॥ ४८ ॥ जगामाऽदर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम् ॥ देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभाम् ॥ ४९ ॥ चंडमुंडौ पश्यतः स्म भृत्यौ शुंभनिशुंभयो ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं देवीं लोकविमोहिनीम् ॥ ५० ॥ कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चंडमुंडकौ ॥ देव सर्वासुर श्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद ॥ ५१ ॥ अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपुमर्दन ॥ तस्याः संभोगयोग्यत्वमस्त्येव तव सांप्रतम् ॥ ५२ ॥

सबको तिरस्कार करता है श्रीदेवी बोली देवशत्रु शुंभ और निशुंभका मैं वध करूंगी ॥ ४७ ॥ तुम स्वस्थ होकर स्थित हो मैं तुम्हारे कंटकको नाश करूंगी इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंसे दयामयी देवी कहकर ॥ ४८ ॥ देवताओंके देखते २ अदर्शन होगई और देवता प्रसन्न हो सुमेरुकीगुहाओंमें आये ॥४९॥ तब शुंभ निशुंभके भृत्य चंडमुण्डने उस सुन्दर अंगवाली लोक मोहिनी देवीको देख ॥५०॥ अपने राजासे जाकर उसका रूप वर्णन किया है मानदायी असुरश्रेष्ठ देव ! आप सम्पूर्ण रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ हे शत्रुमर्दन ! हमने

एक अपूर्व कामिनीका दर्शन किया है वह आपके ही संभोग योग्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ उस सुन्दर अंगवालीको बुलाकर सुख भोगो, उस प्रकारकी स्त्री असुर, गंधर्व, दानव ॥ ५३ ॥ मनुष्य देवताओंमें कहीं नहीं है, वह जैसी मनोहर है ऐसा कोई नहीं इस प्रकार शत्रुतापन शुंभ भृत्योंका वचन सुन ॥ ५४ ॥ सुग्रीव नामक अपने दानवदूतको भेजता हुआ, वह दूत शीघ्रतासे जाकर आदर पूर्वक ॥ ५५ ॥ देवीसे शुम्भके वचन आदरसे कहता हुआ; हे देवी ! शुम्भासुर नामक त्रिलोकीमें विजयी है॥ ५६ ॥ वह त्रिलोकीके सब रत्नोंका भोक्ता

तां समानय चार्वंगीं भुंक्ष्व सौख्यसमन्वितः ॥ तादृशी नासुरी नारी न गंधर्वी न दानवी ॥५३॥ न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा ॥ एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुंभः परबलार्दनः ॥ ५४ ॥ दूतं संप्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम् ॥ स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात् ॥ ५५ ॥ वृत्तांतं कथयामास देव्यै शुंभस्य यद्वचः ॥ देवि शुंभासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥ ५६ ॥ सर्वेषां रत्नवस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम् ॥ तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताऽहमव्ययः ॥ ५७ ॥ त्वं चापि रत्नभूताऽसि भज मां चारुलोचने ॥ सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च ॥ ५८ ॥ तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजै रसैः ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियंकरम् ॥ ५९ ॥ प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साप्यनृता कथम् ॥ भवेत्तां शृणु मे दूत या प्रतिज्ञा मया कृता ॥ ६० ॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति ॥ यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगभाक् ॥ ६१ ॥

देवताओंका मान्य है, हे देवि ! जो उसने कहा है वह हमारे अविनाशी वचन सुनो हे चारुलोचने ! जब कि मैं रत्नोंका भोक्ता हूं अविनाशी हूं ॥५७॥ तब तुम रत्नरूप होनेसे मेरा भजन करो, देवता असुर नरोंमें जितने रत्न हैं ॥ ५८ ॥ वह सब मेरे यहां हैं, हे सुभगे ! मुझे काम [illegible] भजन करो, देवी बोली हे दूत ! तुम सत्य ही दैत्यराजके प्रियकर वचन कहते हो ॥५९॥ पर जो पहले मैंने प्रतिज्ञा की है वह मिथ्या [illegible] प्रकार हो सकती है हे दूत ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ६० ॥ जो मेरा दर्प और बल नष्ट करै, जो लोकमें मुझसे अधिक बली होगा

वही मेरे भोगका भागी होगा ॥६१॥ हे असुरेश्वर! उस मेरी प्रतिज्ञाको सत्य कर मेरा पाणिग्रहण करै और उसे तो कुछ अशक्य नहीं है ॥६२॥ हे दूत ! इस कारण तुम जाकर स्वामीसे आदर पूर्वक मेरा वचन कहो यदि वह बलाधिक मेरी सत्य प्रतिज्ञा करेगा तो कार्य होगा ॥६३॥ वह दानव इस प्रकार देवीके वचन सुन आदिसे शुम्भके निमित्त देवीका वृत्तान्त कहता हुआ ॥६४॥ महाबली शुम्भ दूतसे यह अप्रिय वचन सुन बलकी अधिकता और अधिकाईसे महा क्रोध करता हुआ ॥ ६५ ॥ तब उस दैत्यपतिने धूम्राक्षनामक दैत्यसे कहा मेरे वचन सुनो ॥ ६६ ।

ततः एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वा सुरेश्वरः ॥ गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि ॥ ६२ ॥ तस्माद्गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः ॥ प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः ॥ ६३ ॥ एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः ॥ कथयामास शुंभाय देव्या वृत्तांतमादितः ॥ ६४ ॥ तदाप्रियं दूतवाक्यं शुंभः श्रुत्वा महाबलः ॥ कोपमाहारयामास महांतं दनुजाधिपः ॥ ६५ ततो धूम्राशनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः ॥ आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः ॥ ६६ ॥ तां दुष्टां केशपाशेषु धृत्वाऽप्यानीयतां मम ॥ समीपमविलंबेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः ॥ ६७ ॥ इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः ॥ षष्ट्यासुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः ॥ ६८ ॥ तुहिनाचलमासाद्य देव्याः सविधमेव सः ॥ उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्यपतिं शुभे ॥ ६९ ॥ शुंभं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि ॥ नो चेत्केशान्गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति ॥ ७० ॥ इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा ॥ उवाच दैत्य यद्ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल ॥ ७१ ॥

उस दुष्टाके बाल पकड कर यहां ले आओ देर न हो शीघ्र जाकर मेरे समीप लाओ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ धूम्रलोचन दैत्य यह आज्ञा पाकर साठ सहस्र असुरोंको लेकर हिमालयमें देवीके समीप गया और ऊंचे स्वरसे बोला हे शुभे! दैत्यपतिको भजो ॥६९॥ उस महाबली शुम्भके भजनेसे सब भोगोंको प्राप्त होगी, न मानोगी तो केश पकडकर दैत्यराजके पास तुमको ले जाऊंगा ॥ ७० ॥ यह वचन उस दैत्यके सुनकर देवी बोली हे दैत्य ! जो कहता है वह सब सत्य है ॥७१॥

राजा शुम्भ और तू क्या करेगा सो कह ऐसा कहनेपर शस्त्र लेकर वह दैत्य धावमान हुआ ॥ ७२ ॥ महेश्वरीने हुंकारसे ही उसको भस्म कर दिया और देवीके वाहन सिंहने सब सेना नष्ट कर दी ॥ ७३ ॥ और वह हाहाकार करती अचेतन हो दशों दिशामें धावमान हुई, दैत्य पति शुम्भने यह वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ७४ ॥ महाक्रोधसे कुटिल भौंहें करली, तब वह प्रतापी दैत्यराज महा क्रोधकर ॥ ७५ ॥ क्रमसे चंड, मुंड, और रक्तबीजको भेजता हुआ, वे तीनों दैत्य बडे विक्रमी वहां जाकर ॥ ७६ ॥ यत्नसे देवीके ग्रहणका यत्न करने लगे,

राजा शुंभासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद्वद ॥ इत्युक्तो दैत्यपोऽधावच्चूर्णं शस्त्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ भस्मसात्तं चकाराशु हुंकारेण महेश्वरी ॥ ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते ॥ ७३ ॥ दिशो दशाभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम् ॥ तद्वृत्तांतं समाश्रुत्य स शुंभो दैत्यराड्विभुः ॥ ७४ ॥ चुकोप च महाकोपाद् भ्रुकुटीकुटिलाननः॥ ततः कोपपरीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान् ॥७५॥ चंडं मुंडं रक्तबीजं क्रमतः प्रैषयद्विभुः ॥ ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रांता बहुविक्रमाः ॥ ७६ ॥ देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नास्ते ह्यभवन्बलात् ॥ तानापतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा ॥ ७७ ॥ शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले ॥ ससैन्यान्निहतान्श्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ ॥७८॥ शुंभश्चैव निशुंभश्च समाजग्मतुरोजसा ॥ निशुंभश्चैव शुंभश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम् ॥७९॥ देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयासुरौ ॥ इति दैत्यवरं शुंभं घातयित्वा जगन्मया ॥८०॥ विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा ॥ एवं ते वर्णितो राजन्प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः ॥ ८१ ॥ काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च ॥ परापरेश्वरी देवी जगत्सर्गं करोति च ॥ ८२ ॥

तब जगद्धात्री मदोत्कटा उनपर टूट पडी ॥ ७७ ॥ शूल ग्रहण कर बडे वेगसे उनको पृथ्वीमें गिरा दिया तब दानवेश्वर शुंभ, निशुंभने तीनों दैत्योंको मृतक और सेनाको नष्ट हुआ सुन ॥ ७८ ॥ तब क्रोध कर शुंभ निशुंभही आनकर प्राप्त हुए और दोनोंने महा युद्ध किया ॥ ७९ ॥ और देवीके वशीभूत होकर निहत हुए, इस प्रकार जगन्माता दैत्यप्रवर शुंभ निशुंभको मारकर ॥ ८० ॥ वह वागीश्वरी देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होने लगी, हे राजन् ! यह भगवतीका उत्तम प्रादुर्भाव आपसे वर्णन किया ॥८१॥ यह क्रमसे महाकाली,

महालक्ष्मी, महासरस्वतीका वर्णन किया यही परा परेश्वरी देवी जगत्की सृष्टि करती है ॥ ८२ ॥ यही देवी पालन और संहार करती है, इस जगत्के मोह निवारण करनेवाली देवीका आश्रय करो ॥ ८३ ॥ वही पूज्यतम महामाया आपका कार्य विधान करेगी, श्रीनारायण बोले इस प्रकार राजा मुनिके परम उत्तम वचन सुनकर ॥ ८४ ॥ सब कामना और फलके देनेवाली देवीकी शरणमें हुआ निराहार यतात्मा और सावधान हो उन्हीमें मन लगाया ॥ ८५ ॥ भक्तिसे देवीकी मृन्मयी मूर्तिकी पूजा करने लगा और पूजनके अन्तमें बलिमें अपने शरीरका रुधिर

पालनं चैव संहारंसैव देवी दधाति हि ॥ तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम् ॥८३॥ महामायां पूज्यतमां सा कार्यं ते विधास्यति ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम ॥ ८४ ॥ देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः ॥ ८५ ॥ देवीमूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥ पूजनांते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत् ॥ ८६ ॥ तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्योनि कृपावती ॥ प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी ॥ ८७ ॥ स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम् ॥ राज्यं निष्कंटकं चैव याचति स्म महेश्वरीम् ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच॥ राजान्निष्कंटकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम् ॥ भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव ॥ ८९ ॥ अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मांतरविचेष्टितम् ॥ भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान् ॥ ९० तत्र मन्वंतरस्यापि पतित्वं बहुविक्रमम् ॥ संततिं बहुलांचाऽपि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान् ॥ ९१ ॥

देने लगा ॥८६॥ तब जगत्की योनि कृपावती देवी प्रसन्न हुई और आगे प्रगट हो वर मांगनेको कहा ॥ ८७ ॥ तब राजाने अपने मोहनाशनका उत्तम ज्ञान और निष्कंटक राज्य देवीसे मांगा ॥ ८८ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजन् ! निष्कंटक राज्य और मोहनाशक ज्ञान मेरी कृपासे इसी शरीरमें तुझको प्राप्त होगा ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! और भी जन्मान्तरकी चेष्टा सुनो आप सूर्यसे जन्म लेकर सावर्णिमनु होंगे ॥ ९० ॥ वहाँ मन्वन्तरका पतिपन बड़ा विक्रम तथा बहुत सन्तान मेरे वरसे तुमको प्राप्त होंगी ॥ ९१ ॥

इस प्रकार वर देकर भगवती अन्तर्द्धान हो गई, वह भी देवीके प्रसादसे मन्वन्तराधिप हुआ ॥ १२ ॥ हे साधो ! यह आपसे सावर्णिका जन्मकर्म वर्णन किया, इसके पढने सुननेसे देवीके अनुग्रहकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण बोले अब शेषमनुओंका चरित्र श्रवण कीजिये जिसके स्मरणमात्रसे देवीकी भक्ति होती है ॥ १ ॥ वैवस्वतमनुके छःपुत्र बडे विज्ञानी थे, करूण पृषध्र, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ शर्याति, त्रिशंकु यह

एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा ॥ सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वंतराधिपः ॥ १२ ॥ एवं ते वर्णितं साधो सावर्णे र्जन्म कर्म च ॥ एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण देवी भक्तिः प्रजायते ॥ १ ॥ आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड् विमलोदयाः ॥ करूपश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च ॥ २ ॥ शर्यातिश्च त्रिशंकुश्च सर्व एव महाबलाः ॥ ततः षडेव ते गत्वा कालिंद्यास्तीरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः ॥ देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥ विविधैरुपचारैस्तां पूजयामासुरादृता ॥ ततश्च सर्व एवैते तपः सारा महाबलाः ॥ ५ ॥ जीर्णपर्णाशना वायुभक्षणारतोयजीवनाः ॥ धूम्रपानरश्मिपानाः क्रमजश्च बहुश्रमाः ॥६॥ ततस्तेषामादरेणाऽऽराधनं कुर्वतां सदा ॥ विमला मतिरुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी ॥ ७ ॥

महाबली थे तब यह छहों कालिन्दीके तटपर जाकर ॥ ३ ॥ निराहार हुए श्वास रोककर पूजा करने लगे देवताकी मट्टीकी मूर्ति बनाकर पृथक् २ सेवा की ॥ ४ ॥ और अनेक उपचारोंसे आदरपूर्वक पूजा करने लगे तब यह सब तपके सार महाबली ॥ ५ ॥ जीर्ण पर्ण, वायुभक्षण, तथा जल जीवी मात्र होकर धूमपान रश्मिपान करके महाश्रम करने लगे ॥ ६ ॥ तब इस प्रकार आदरसे

उनके आराधन करनेपर सबमोहनाशिनी उज्ज्वल मति उनको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ वे सब देवीके चरणोंका ध्यान करनेवाले मनुके पुत्र हुए, वह मतिकी विमलतासे अपनेमेंही सब जगत् ॥ ८ ॥ देखने लगे, यह बडी अद्भुत बात हुई इस प्रकार बारह वर्षके उपरान्त वह जगदीश्वरी तपस्यासे ॥ ९ ॥ सहस्र सूर्यके समान कांतिमान् प्रगट हुई, विमलात्मा वे छः राजपुत्र उनको देखकर ॥ १० ॥ भक्तिसे नम्र अन्तःकरण भाव संयुक्त हो स्तुति करने लगे राजपुत्र बोले, माहेश्वरि, ईशानी, आपकी जय हो आप परम करुणामयी हो ॥ ११ ॥ सरस्वतीबीजके आराधनसे

बभूवुर्मनुपुत्रास्ते देवीपादैकचिन्तनाः ॥ मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ ८ ॥ दर्शनं संजगामाशु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ एवं द्वादशवर्षांते तपसा जगदीश्वरी ॥ ९ ॥ प्रादुर्बभूव देवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेवते ॥१०॥ तुष्टुवुर्भक्तिनम्रांतःकरणा भावसंयुताः ॥ राजपुत्रा ऊचुः ॥ महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये ॥११॥ वाग्भवाराधनप्रीते वाग्भवप्रतिपादिते ॥ क्लींकारविग्रहे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनि ॥१२॥ कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि ॥ महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि ॥१३॥ विष्णवर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि ॥ एवं स्तुता भगवती राजपुत्रैर्महात्मभिः ॥१४॥ प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजपुत्रा महात्मानो भवंतस्तपसा युताः ॥१५॥ निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात् ॥ वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलंबितम् ॥ १६ ॥

प्रसन्न होनेवाली, सरस्वतीबीजमें प्रतिपादित ' क्लीं ' विग्रहवाली क्लींसे प्रीति देनेवाली ॥ १२ ॥ कामराज मंत्र जपनेसे मनको आनंद देनेवाली हे ईश्वरको प्रसन्न करनेवाली ! हे महामाया ! हे मोदमें तत्पर ! हे महासाम्राज्यदायिनी ! ॥ १३ ॥ हे विष्णु, सूर्य, शिव, इन्द्रादिके स्वरूपवाली ! हे भोगकी बढानेवाली ! आपकी जय हो, जब महात्मा राजपुत्रोंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुति की ॥ १४ ॥ तब प्रसन्न हो, देवी सुन्दर वचन बोली देवी बोली हे महात्मा राजपुत्रो ! आप बडे तपसे संयुक्त हो ॥ १५ ॥ तुम मेरी उपासनासे पापरहित और शुद्धिबुद्धि हुए

हो, शीघ्र अपना मनवांछित वर मांगो ॥१६॥ मैं प्रसन्न होकर आपके मनचिन्तित वरको दूंगी राजपुत्र बोले हे देवि ! निष्कंटकराज्य और चिर जीविनी सन्तान ॥१७॥ विघ्नरहित भोग, यश, तेज, मति यह सब अकुंठित रहैं, यही वर हमैं हितकारी है ॥१८॥ श्रीदेवी बोली जो तुम सबके मनमें स्थित है वह सब इसी प्रकार होगा और भी मेरे वाक्य आदरसे सुनो ॥ १९ ॥ तुम सब मन्वन्तरोंके अधिपति होंगे और दीर्घजीवी सन्तानको प्राप्त होंगे, तथा अनेक भोग भोगोगे ॥ २० ॥ अखंडित बल ऐश्वर्य तेज और विभूति होगी, हे राजपुत्रो! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ

प्रसन्नाऽहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम् ॥ राजपुत्रा ऊचुः ॥ देवि निष्कंटकं राज्यं संततिश्चिरजीविनी ॥ १७ ॥ भोगा अव्याहताः कामं यशस्तेजोमतिश्च ह ॥ अकुंठितत्वं सर्वेषामेष एव वरो हितः ॥ १८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम् ॥ अथान्यदपि मे वाक्यं श्रूयतामादरादिदम् ॥ १९ ॥ भवंतः सर्व एवैते मन्वंतरपतीश्वराः ॥ संतत्या दीर्घ या भोगैरनेकैरपि संगमः ॥ २० ॥ अखंडितबलैश्वर्यं यशस्तेजोविभूतयः ॥ भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः क्रमेण तु ॥ २१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदंबिका ॥ अंतर्धानं जगामाऽऽशु भक्त्या तैः संस्तुता सती ॥ २२ ॥ ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम् ॥ राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः ॥ २३ ॥ संततिं चाऽखंडितां ते समुत्पाद्य महीतले ॥ वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन् ॥ २४ ॥ भवांतरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः ॥ प्रथमो दक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः ॥२५॥ अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः ॥ द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च ॥ २६ ॥

प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार भ्रामरी जगदम्बिका उनको वरदान देकर उनसे भक्तिद्वारा स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥२२॥ वे सब राजपुत्रभी उस जन्ममें पृथ्वीका उत्तम राज्य भोगते हुए ॥ २३ ॥ पश्चात् भूतलमें अखण्ड सन्तान उत्पन्नकर और वंश स्थापन कर सब मनुओंके पति हुए ॥ २४ ॥ और जन्मान्तरके क्रमसे सावर्णिके पदभागी हुए पहला दक्ष नौवाँ सावर्णि मनु हुआ ॥ २५ ॥ यह देवीके वरसे अव्याहतगतिवाला महाबली हुआ, दूसरा मेरुसावर्णि दशवाँ मनु हुआ ॥ २६ ॥

यह भी महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तरका अधिपति हुआ तीसरा मनु सूर्यसावर्णि नामके ॥ २७ ॥ अपने तपके बलसे ग्यारहवां मनु हुआ चौथा, चन्द्रसावर्णि बारहवां मनु हुआ ॥ २८ ॥ यह भी देवीके आराधनसे मन्वन्तराधिपति हुआ, पांचवाँ रुद्रसावर्णि तेरहवां मनु हुआ ॥ २९ ॥ यह महाबली महासत्ववान् जगत्का अधिपति हुआ, छठा विष्णु सावर्णि चौदहवाँ मनु हुआ ॥ ३० ॥ यह देवीके वरसे जगत्के प्रभु हुए यह चौदह मनु महातेज और बलसे सम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥ यह देवीके आराधनसे लोकमें वंदित और पूजनीय हुए, और भ्रामरीके प्रसादसे

बभूव मन्वंतरनृपो महादेवीप्रसादतः ॥ तृतीयो मनुराख्यातः सूर्यसावर्णिनामकः ॥ २७ ॥ एकादशो महोत्साहस्तपसा स्वेन भावितः ॥ चतुर्थश्चंद्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभुः ॥ २८ ॥ देवीसमाराधनेन जातो मन्वंतरेश्वरः ॥ पंचमो रुद्रसावर्णिस्त्रयो दशमनुः स्मृतः ॥ २९ ॥ महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः ॥ षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुः कृती ॥ ३० ॥ बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः ॥ चतुर्दशैते मनवो महातेजोबलैर्युताः ॥ ३१ ॥ देव्याराधनतः पूज्या वंद्या लोकेषु नित्यशः ॥ ॥ महा प्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः ॥ ३२ ॥ नारद उवाच ॥ केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका ॥ तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम् ॥ ३३ ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम् ॥ अमृतं पिबतां मृत्युर्नास्य श्रवणतो यतः ॥ ३४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम् ॥ अचिंत्याव्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्ष दायकम् ॥ ३५ ॥ यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे ॥ निर्व्याजया करुणया पुत्रे मातुर्यथा तथा ॥ ३६ ॥

महाप्रतापी हुए ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले यह भ्रामरी देवी कौन है कैसे प्रगट हुई क्या आत्मावाली है आप यह विचित्र शोकनाशन आख्यान कहिये ॥३३॥ देवीकथामृत पानकरते मेरी तृप्ति नहीं होती है इस अमृतपानसे मृत्युका भय नहीं रहता ॥३४॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! जगन्माताकी चेष्टा सुनो मैं कहता हूं. जो अचिन्त्य अव्यक्तरूपा विचित्र और मोक्षदायक है ॥ ३५ ॥ देवीका जो जो चरित्र है

सो सब लोकके हितके निमित्त है, जैसा माताका कार्य पुत्रके निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ पहले एक महाबली अरुण नामक दैत्य हुआ है, वह महाखल दैत्योंके निवासस्थान पातालमें देवीका द्वेष करता स्थित था ॥ ३७ ॥ वह देवताओंके जीतनेकी इच्छासे परमतप करता हुआ, और ब्रह्मकाही तप किया कि यह हमारी रक्षा करेंगे ॥ ३८ ॥ हिमालयके निकट जाय शीतल गंगाजल पके पत्ते खाता हुआ श्वास रोककर ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपमें संसक्त हुआ, तमयुक्त हो सकामतासे तपकर दशसहस्र वर्षतक जलकणका भोजन किया ॥ ४० ॥ फिर दशसहस्र वर्षतक वायु

पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः ॥ पाताले दैत्यसंस्थाने देवद्वेषी महाखलः ॥ ३७ ॥ स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः ॥ पद्मसंभवमुद्दिश्य स नस्त्राता भविष्यति ॥ ३८ ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे गंगाजलसुशीतले ॥ पक्कपर्णाशनो योगी संनिरुध्य मरुद्गणम् ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः ॥दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः ॥ ४० ॥ दशवर्षसहस्राणि ततः पवनभोजनः॥दशवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवत्ततः ॥४१॥ एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः॥ ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥ किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकंपिरे॥ संत्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥४३॥ विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः ॥ गायत्रीसहितो हंससमारूढो ययौ मुदा ॥४४॥ प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशत संकुलम् ॥ शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यानमीलितलोचनम् ॥ ४५ ॥ ददर्श तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम् ॥ वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम् ॥ ४६ ॥

भोजन किया फिर दशसहस्रवर्षतक निराहार रहा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार तप करते २ उसके शरीरसे अग्नि निकली उससे सब जगत् भस्म होने लगा यह बड़ी अद्भुत बात हुई ॥ ४२ ॥ यह क्या है यह क्या है यह कहकर सब देवता कम्पित होगये, और सब लोक संत्रस्त होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी देवतोंकी विज्ञापना सुनकर गायत्रीके सहित हंसपर आरूढ होकर गये ॥४४॥ जो कि वह दैत्य प्राणमात्रसे अवशिष्ट सैकडों नसोंसे व्याप्त सूखा पेट दुबला शरीर ध्यानसे नेत्र मीचे था ॥४५॥ तेजसे दीप्त दूसरी अग्निके समान उसको

देखा,तब ब्रह्माजी बोले हे भद्र! जो तुम्हारे मनमें आवै सो वर मांगो ॥ ४६ ॥ जब श्रवणमात्रसेही सन्तोषकारक वाक्य सुना तब अरुणने यह वाणी सुधाधाराके समान मानी ॥ ४७ ॥ आंख खोलतेही आगे गायत्रीसहित चारोंवेदोंसे संयुक्त ॥ ४८ ॥ रुद्राक्षकी माला लिए कुण्डिका हाथमें लिये, ओंकारका जपकरते ब्रह्माजीको देखा, देखतेही प्रणाम करने उपरान्त अनेक स्तोत्रसे स्तुतिकर ॥ ४९ ॥ यह बुद्धिसे विचार कर वर मांगा कि मेरी मृत्यु न हो, अरुणके वचन सुन ब्रह्मा आदरसे समझाने लगे ॥५०॥ जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भी कालधर्म

श्रुतिमात्रेण सतोषकारके वाक्यमूचिवान् ॥ श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः ॥ ४७ ॥ उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्श जलजोद्भवम् ॥ गायत्रीसहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ ४८ ॥ अक्षस्रक्कुंडिकाहस्तं जपंतं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ दृष्ट्वोत्थाय ननामाऽथ स्तुत्वा च विविधैः स्तवैः॥ ४९ ॥ वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि ॥ श्रुत्वाऽरुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या मृत्युनाकवलीकृताः ॥ तदाऽन्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ॥ ५१ ॥ वरं योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया ॥ नाऽत्राऽऽग्रहं प्रकुर्वंति बुद्धिमंतो जनाः क्वचित् ॥५२ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम् ॥ न युद्धे न च शस्त्रास्त्रान्न पुंभ्यो नापि योषितः ॥ ५३ ॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा ॥ भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो ॥५४॥ बलं च विपुलं देहि येन देवजयो भवेत् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥५५॥ दत्त्वा वरं जगामाशु पद्मजः स्वं निकेतनम् ॥ ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तु पातालात्स्वाश्रयस्थितान् ॥५६॥

मानते हैं,तो हे दानव! मरणमें औरोंकी तो बातही क्या है ॥ ५१ ॥ तुम वरके योग्य मांगो जिसको मैं देसकूं, बुद्धिमान् पुरुष इसमें आग्रह नहीं करते॥५२॥यह ब्रह्माके वचन सुन फिर वह दैत्य आदरसे बोला कि युद्धमें शस्त्र, अस्त्र, पुरुष, स्त्री ॥ ५३ ॥ द्विपाये, चौपाये, वा दोनों प्रकारके आकारवाले इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो हे देव ! यही वर दो ॥ ५४ ॥ हे देव ! इतना अधिक बल दो जिससे मेरी जय हो ब्रह्माजीने यह वचन सुनकर तथास्तु कहा ॥ ५५ ॥ वर देकर ब्रह्माजी शीघ्र ही अपने स्थानको चलेगये, तब दैत्यने पातालसे

दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ॥ ५७ ॥ दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम् ॥ दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकंपितः ॥ ५८ ॥ देवैः सार्धं जगामाऽऽशु ब्रह्मणः सदनं प्रति ॥ ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य जग्मुस्ते शंकरालयम् ॥ ५९ ॥ विचारं चक्रिरे तत्र ते वधार्थं सुरद्रुहाम् ॥ एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेना समावृतः ॥ ६० ॥ अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाऽऽशु त्रिविष्टपम् ॥ सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ॥ ६१ ॥ स्वयं चकार तपसा नानारूपधरोमुने ॥ स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमंडलम् ॥ ६२ ॥ शशंसुः शंकरं देवाः स्वस्वदुःखं पृथक्पृथक् ॥ महान्विचारस्तत्राऽऽसीत्किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ६३ ॥ न युद्धे न च शस्त्राद्यैर्न पुंभ्यो नापि योषितः ॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतोऽपि वा ॥ ६४ ॥ मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः ॥ इति चिंतातुराः सर्वे कर्तुं किंचिन्न च क्षमाः ॥ ६५ ॥ एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी ॥ भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति ॥ ६६ ॥

अपने आश्रित ॥ ५६ ॥ दैत्योंको बुलाय ब्रह्माका वर सुनाया, वे सब असुर आकर दैत्यपतिको घेर लेते हुए ॥ ५७ ॥ और युद्धके निमित्त अमरावतीमें दूतको भेजा दूतके वचन सुनकर देवराज भयसे कंपित हुए ॥ ५८ ॥ और देवताओंके साथ शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये फिर ब्रह्माजी विष्णुको लेकर शंकरके स्थानमें गये ॥ ५९ ॥ और उस दैत्यके मारनेका विचारकरने लगे. इसी समय वह दैत्य सेना लिये ॥ ६० ॥ बडी शीघ्रतासे स्वर्गको चला, सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि इन सबके अधिकारोंको पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥ लेकर आप अनेक रूप धारणकर तपसे स्वर्ग भोगने लगा यह सब देवता अपने २ स्थानसे भ्रष्ट हो कैलासको गये ॥ ६२ ॥ और सब देवता अपना २ दुःख पृथक् पृथक् शिवजीसे निवेदन करने लगे, उस स्थानमें बडा विचार प्रारंभ हुआ कि, हमको अब क्या करना चाहिये ॥ ६३ ॥ युद्ध, अस्त्र शस्त्र, पुरुष, स्त्री, दुपाये, चौपाये वा दोनों प्रकारके जीवोंसे ॥ ६४ ॥ मृत्यु न हो यही उसको ब्रह्माजीका वरदान है, ऐसा विचारकर वे कुछ भी करनेमें समर्थ न हुए ॥ ६५ ॥ इसी समय अशरीरिणी वाणी हुई तुम ईशा

नीका भजन करो वह तुम्हारा कार्य करैगी ॥ ६६ ॥ यह दैत्यराज गायत्रीका जप निरन्तर करता है, जो उसको त्याग देगा तो यह वधके योग्य होगा ऐसी संतोषकारिणी वाणी हुई ॥ ६७ ॥ देवीकी यह वाणी सुन आदरसे देवता मंत्रणा करने लगे तब बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्रने कहा ॥ ६८ ॥ हे गुरुदेव ! आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त असुरके पास जाओ जिस प्रकार वह गायत्रीका त्याग करे वैसा करो ॥ ६९ ॥ हम ध्यान योगसे परमेशानीकी सेवा करते हैं, वह भगवती प्रसन्न होकर तुम्हारी सहायता करैगी ॥ ७० ॥ यह आदेश करके सब

गायत्रीजपसंयुक्तो दैत्यराड्यदि तां त्यजेत् ॥ मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा दैवीं तथा वाणीं मंत्रयामासुरादृताः ॥ बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट् ॥ ६८ ॥ गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति ॥ यथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु ॥ ६९ ॥ अस्माभि परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः ॥ प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति ॥ ७० ॥ इत्यादिश्य गुरुं सर्वे जग्मुर्जाम्बूनदेश्वरीम् ॥ सास्मान्दैत्यभयत्रस्तान्पालयिष्यति शोभना ॥ ७१ ॥ तत्रा गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः ॥ मायाबीजजपासक्ता देवीमखपारायणाः ॥ ७२ ॥ बृहस्पतिस्ततः शीघ्रं जगामाऽसुरसन्निधौ ॥ आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाऽथ स दैत्यराट् ॥ ७३ ॥ मुने कुत्राऽऽगमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद ॥ नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युतारातिरेव च ॥ ७४ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः ॥ अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम् ॥ ७५ ॥

देवता जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये कि, वह शोभना दैत्योंके भयसे घबराये हुए हमारी रक्षा करैगी ॥ ७१ ॥ वहां जाकर सब कोई तपश्चर्या करने लगे वे सब मायाबीजके जपमें आसक्त देवीके ध्यानयज्ञमें परायण हुए ॥ ७२ ॥ तब बृहस्पति बहुत शीघ्र असुरके समीप गये मुनिको आया देख दैत्यराज पूंछने लगा ॥ ७३ ॥ हे मुनि ! तुम्हारा आगमन कहांसे किस निमित्त हुआ है, मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं किन्तु शत्रु हूं ॥ ७४ ॥ यह उसके वचन सुन मुनिराज बोले जो देवी हमारी सेवनीय है, उसीको निरन्तर तुम आराधन

करते हो ॥ ७५ ॥ फिर तुम हमारे पक्षपाती क्यों नहीं यह कहिये यह वचन सुन वह दैत्य देवमायासे मोहित हो ॥ ७६ ॥ अभिमानसे उस परम मंत्रका जप त्यागन करता हुआ, गायत्रीके त्यागतेही वह तेजहीन हो गया ॥ ७७ ॥ यह कार्यकर गुरु उस स्थानसे निर्गत हुए और इन्द्रसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ७८ ॥ तब देवता संतुष्ट हो परमेश्वरीका भजन करने लगे हे मुने ! इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे कुछ कालके उपरान्त ॥ ७९ ॥ जगन्मंगलकारिणी जगन्माता प्रगट हुई, कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान, कोटि कामवत् सुन्दर

तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया ॥ ७६ ॥ तत्याज परमं मंत्रमभिमानेन सत्तम ॥ गायत्रीत्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह ॥ ७७ ॥ कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः ॥ ततो वृत्तांतमखिलं कथयामास वज्रिणे ॥ ७८ ॥ संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम् ॥ एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने ॥ ७९ ॥ प्रादुरासीज्जगन्माता जगन्मंगलकारिणी ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकंदर्पसुंदरा ॥ ८० ॥ चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता ॥ विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका ॥ ८१ ॥ वराभयकरा शांता करुणामृतसागरा ॥ नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता॥८२॥भ्रमरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिः समावृता ॥भ्रमरैर्गायमानैश्चह्रींकारमनुमन्वहम् ॥ ८३ ॥ समंततः परिवृता कोटिकोटिभिरंबिका ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता ॥ ८४ ॥ सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमंगलरूपिणी ॥ सर्वज्ञा सर्वजननी सर्वा सर्वेश्वरी शिवा ॥ ८५ ॥

॥ ८० ॥ चित्रविचित्र लेपन लगाये चित्रित दो वस्त्रोंसे सम्पन्न विचित्र मालाका आभरण पहरे चित्र भ्रमरोंको मुठीमें लिये ॥ ८१ ॥ वरदायका अभयकारिणी शांत, करुणामृत सागरा अनेक भौंरोंसे संयुक्त फूलोंकी मालासे विराजित ॥ ८२ ॥ असंख्यात विचित्र भ्रमरियोंसे संयुक्त भ्रमरोंसे गीयमान अर्थात् ह्रींकार शब्द करते हुए भौंरोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ चारों ओर कोटि २ ऐसे भ्रमर व्याप्त सब शृगार वेषसे सम्पन्न, सब वेदोंसे प्रशंसित ॥ ८४ ॥ सर्वात्मावाली, सर्वमयी, सब मंगलकी रूपवाली, सर्वज्ञा, सबकी जननी, सर्वरूपा, सर्वेश्वरी,

शिवाको ॥ ८५ ॥ देखकर चंचलात्मा देवता प्रसन्नमन होकर वेदप्रतिपाद्या देवीका स्तव करने लगे ॥ ८६ ॥ देवता बोले हे देवि ! महाविद्ये सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाली कमललोचनी सर्वाधारे ! तुमको प्रणाम है ॥८७॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट् सूत्रात्मावाली तुमको प्रणाम है, अव्याकृतरूप कूटस्थके निमित्त प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे दुर्गे ! तुम सर्वादिसे रहित दुष्टोंके निरोध करनेको शृंखलारूप स्वयं निरर्गल, प्रेमसे गम्यमान हो तेजरूप देवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ८९ ॥ हे मातः कालिके हे नीलसरस्वती, हे उग्रतारा, महाउग्रा, ! आपके निमित्त वारंवार प्रणाम है ॥ ९० ॥ हे पीताम्बरा ! [बगलामुखी देवी] हे त्रिपुरसुन्दरि भैरवी, मातंगी, धूमावती तुमको वारंवार प्रणाम है

दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसं शिवाम् ॥८६॥ देवा ऊचुः॥ नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यं तकारिणि ॥ नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते ॥८७॥ सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः ॥८८॥ दुर्गे सर्वादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले ॥ निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥८९॥ नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति ॥ उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमो नमः ॥९०॥ नमः पीतांबरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि ॥ नमो भैरवि मातंगि धूमावति नमो नमः ॥९१॥ छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते रक्तदंतिके ॥९२॥ निशुम्भशुम्भदलनि रक्तबीजविनाशिनि ॥ धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि ॥ ९३ ॥ चंडमुंडप्रमथिनि दानवांतकरे शिवे ॥ नमस्ते विजये गंगे शारदे विकचानने ॥ ९४ ॥ पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमोनमः ॥ प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ९५ ॥

॥ ९१ ॥ हे छिन्नमस्ता, ! आपको प्रणाम है हे क्षीरसागर कन्या ! आपको प्रणाम है हे शांकभरि ! हे शिवे ! हे रक्तदन्तिके ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९२ ॥ हे शुम्भनिशुंभकी दलन करनेवाली ! हे रक्तबीजनाशिनी ! हे धूम्रलोचनकी नाशक तेजरूपिणी ! तुमको वारम्वार प्रणाम है वृत्रासुरनाशिनी तुमको प्रणाम है ॥ ९३ ॥ चण्डमुण्डनाशिनी दानवान्तकरी शिवा, विजया, गंगा, शारदा विकच [खिले] मुखवाली शारदाको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ हे पृथ्वीरूप दयारूप, तेजोरूप, प्राणरूप, महाभूतरूप, तुमको वारम्वार प्रणाम है ॥ ९५ ॥

विश्वमूर्ति, दयाकी मूर्ति, धर्ममूर्ति, देवमूर्ति, ज्योतिमूर्ति, ज्ञानमूर्ति, तुमको वारम्वार प्रणाम है ॥९६॥ हे गायत्री ! [गान करनेवालोंकी रक्षक,] वरदायक, दिव्यगुणवाली, सावित्रि, सरस्वति, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणामाता, आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ९७ ॥ सब आगम तुमको नेति वाक्यसे वर्णन करते हैं, हम सबसे पृथक् रूप परदेवताका भजन करते हैं ॥ ९८ ॥ भ्रमरोंसे वेष्टित होनेसे तुम्हारा नाम भ्रामरी होगा; इस देवी स्वरूप आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ९९ ॥ दोनों ओर पृष्ठभाग आगे पीछे ऊपर नीचे सर्वत्र तुमको प्रणाम ह ॥ १०० ॥ हे मणिद्वीप-

विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमोनमः ॥ देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ ९६ ॥गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति ॥ नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमोनमः ॥ ९७ ॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ सर्वप्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम् ॥९८॥ भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद्भ्रामरी या ततः स्मृता ॥ तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमोनमः ॥९९॥ नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोंबिके ॥ नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमोनमः ॥ १०० ॥ कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपनिवासिनि ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिके जगदंबिके ॥ १ ॥ जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे ॥ जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे ॥ २ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि ॥ प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतो रणे ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः ॥ उवाच जगदंबा सा मत्तकोकिलभाषिणी ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रसन्नाऽहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः ॥ ब्रुवंतु विबुधाः सर्वे यदेव स्याच्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥

मणिद्वीपनिवासिनी महादेवि ! कृपा करो हे अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी नायिका जगदम्बा ! ॥ १०१ ॥ देवी जगमातः परात्परा श्रीभुवनेशानी, सर्वोत्तमोंमें उत्तम तुम्हारी जय हो ॥ १०२ ॥ कल्याणकारी गुणरूपी, रत्नोंकी खान भुवनेश्वरि, परमेशानी, जगत्‌की कारण प्रसन्न हो ॥ ३ ॥ नारायण बोले, देवताओंके प्रगल्भ और मनोहर वचन सुन मत्त कोकिलाके समान जगदम्बा बोली ॥ ४ ॥ श्रीदेवी बोली, हे देवताओ जो तुम्हारी इच्छा हो सो हमसे कहो ॥ ५ ॥

देवीके वचन सुनकर देवता अपने दुःखका कारण दुष्टदैत्यका चारित्र और उसकी जगत्को बाधा देना कहने लगे ॥ ६ ॥ जिस प्रकार उसने देवता और ब्राह्मणोंकी अवमानना की उनका नाश किया तथा जैसे देवताओंको स्थानभ्रष्ट किया, वह सब आदरसे कहा ॥ ७ ॥ और यथावत् उन्होंने ब्रह्माके वरदानको कथन किया, तब महाभगवती देवताओंके मुखसे यह वचन सुन ॥ ८ ॥ उस स्थानमें स्थित भ्रमरोंको प्रेरणा करती हुई जो पार्श्वमें स्थित नाना रूप धारण किये थे ॥ ९ ॥ इस प्रकार बहुतसे भ्रमर और भ्रामरियोंको देवीने

देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम् ॥ दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम् ॥ ६ ॥ देवब्राह्मणवेदानां हेलनं नाशनं तथा ॥ स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृताः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे ॥ श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा ॥ ८ ॥ प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रमरी तदा ॥ पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तदा ॥ ९ ॥ जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम् ॥ मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः ॥ ११० ॥ तदांतरिक्षं तैर्व्याप्तमंधकारः क्षितावभूत् ॥ दिवि पर्वतशृंगेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि ॥ ११ ॥ भ्रमरा एव संजातास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासु रुद्रताः ॥१२॥ नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः ॥ उपायो न च शस्त्राणां तथाऽस्त्राणां तदाऽभवत् ॥ १३ ॥ न युद्धं न च संभाषा केवलं मरणं खलु ॥ यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा ॥ १४ ॥

प्रगट किया, जिनसे जगत् व्याप्त होगया शलभोंके यूथके समान उनका यूथ निर्गत हुआ ॥ ११० ॥ तब उनसे अन्तरिक्ष व्याप्त होगया जिससे पृथ्वीमें अन्धकार छागया आकाश पर्वत वृक्षों और वनोंमें ॥ ११ ॥ भ्रमरही व्याप्त होगये यह अद्भुत बात हुई वे सब एकत्र होकर दैत्योंकी छाती विदीर्ण करने लगे ॥ १२ ॥ जिस प्रकार शहतकी मक्खी शहत लेनेवाले मनुष्यको लिपट जाती है, ऐसे भौंरे लिपट गये उस समय अस्त्रशस्त्रोंका उपाय न चला ॥ १३ ॥ युद्ध और बात नहीं होती थीं केवल मरणही होता था जिस २ स्थान जो जो दैत्य

जिस प्रकार स्थित थे ॥१४॥ वह वहां उसी प्रकार मरणको प्राप्त होते हुए, उस समय परस्पर किसीको किसीका समाचार ज्ञात न हुआ ॥१५॥ क्षणमात्रमें वह सब दैत्य नष्ट होगये इस प्रकार कार्यकर भौंरे देवीके समीप आ गये ॥ १६ ॥ लोक सब आश्चर्य आश्चर्य कहने लगे कि, जगदम्बामें क्या आश्चर्य है,जिसकी माया इस प्रकार है ॥ १७ ॥ तब विष्णुको आदिलेकर सब देवतागण वहां प्रसन्न हो जगदम्बाका पूजन करने लगे ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके उपचार और भेंटोंसे पूजते जयशब्द करते फूल वर्षाने लगे ॥ १९ ॥ आकाशमें दुन्दुभी बजी, अप्सरा नाचने

तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः ॥ परस्परं समाचारो न कस्याप्यभवत्तदा ॥ १५ ॥ क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्य पुंगवाः ॥ कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देविनिकटमाययुः ॥ ११६ ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमिति लोका समूचिरे ॥ किं चित्रं जगदंबाया यस्या मायेयमीदृशी ॥१७॥ ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ निमग्ना हर्षजलधौ पूजयामासुरंबिकाम् ॥ १८ ॥ नानोप चारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः ॥ जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः समुनांसि च ॥१९॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पेठुर्वे दान्मुनिश्रेष्ठा गंधर्वाद्या जगुस्तथा॥१२०॥मृदंगमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः॥घण्टाशंखनिनादैश्च व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥२१॥ नानास्तोत्रैस्तदा स्तुत्वा मूर्ध्न्याधायांजलींस्तदा ॥ जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे ॥ २२ ॥ ततस्तुष्टा महादेवी वरान्द त्त्वा पृथक्पृथक् ॥ स्वस्मिंश्च विपुलां भक्तिं प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम् ॥२३॥ पश्यतामेव देवानामंतर्धानं गता ततः ॥ इति ते सर्व माख्यातं भ्रामर्याश्चरितं महत् ॥२४॥ पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम् ॥ २५ ॥

लगीं मुनिश्रेष्ठ वेदपाठ करने लगे और गन्धर्वादि गान करने लगे ॥ १२० ॥ मृदंग मुरज वीणा ढक्का डमरू घण्टा और शंखके शब्दोंसे त्रिभुवन व्याप्त होगया ॥२१॥ अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिको करते शिरपर अंजली बांधकर माता ! आपकी जय हो, हे ईशानी ! आपकी जय हो. इस प्रकारसे सब कहने लगे ॥२२॥ तब महादेवी सब पर प्रसन्न हो उनको पृथक् २ वर देकर और उनको अपनेमें प्रार्थनानुसार अचला भक्ति देकर ॥ २३ ॥ देवताओंके देखते २ अन्तर्धान होगई यह आपसे सम्पूर्ण भ्रामरीका चरित्र कहा ॥ २४ ॥ यह पढते और

सुनतेमें सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ २५ ॥ यह देवीमाहात्म्यसे संयुक्त चरित पढने सुननेसे शुभ देता है ॥ २६ ॥ जो इसको नित्य पढते और सुनते हैं वह सम्पूर्ण पापसे रहित हो देवीके सायुज्यको पाते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम् ॥ देवीमाहात्म्यसंयुक्तं पठञ्छृण्वञ्शुभप्रदम् ॥२६॥ यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्वोऽनिशं नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥१२७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥

दशमस्कन्धः समाप्तः ॥ १० ॥

सार्धरुद्रैः पंचशत (५११ ॥) श्लोकैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्याख्य दशमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन श्रेष्ठिना
स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर"-(स्टीम्)-मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।
संवत २०११, शकाब्दाः १८७६.

॥ इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः प्रारभ्यते॥

दोहा–शरणसुखद दुखभयहरण, करन सकल सुरकाज । रखहिं सदा जनमिंञकी, श्रीजगदम्बा लाज ॥ १ ॥

नारदजी बोले, हे भगवन् ! भूतभव्येश नारायण सनातन आपने देवीका चरित्र परम उत्तम कथन किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी प्रार्थनासे माता प्रगट होती है और देवीकी पूर्णकृपासे आपने अधिकारकी प्राप्ति कही ॥ २ ॥ अब वह सुननेकी इच्छा करता हूं जिससे वह सदा प्रसन्न होती है और अपने भक्तोंसे प्रसन्न होती है, वह आचार हमसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले, हे तत्त्वज्ञाता नारदजी ! आपसे क्रमसे आचारकी विधि कहता हूं जिसके अनुष्ठानसे सदा देवी प्रसन्न होती है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणको जो बातें दिन २ प्रभात समय उठकर करनी

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन ॥ आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम् ॥ अधिकारातिरुक्ताऽत्र देवीपूर्णकृपावशात् ॥२॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा ॥ स्वभक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम् ॥ यदनुष्ठानमात्रेण देवीं प्रीणाति सर्वदा ॥ ४ ॥ प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्द्विजेन दिनेदिने ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ ॥ ५ ॥ उदयास्तमयं यावद्द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥६॥ आत्मैव न सहायार्थे पिता माता च तिष्ठति ॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥७॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनु साधनैः ॥ धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम् ॥८॥ आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः॥९॥

चाहिये वह मैं ब्राह्मणोंके उपकारके निमित्त कहता हूं ॥ ५ ॥ उदयसे अस्तपर्यन्त जिसके द्वारा ब्राह्मण सत्कर्म करता है तथा नित्य नैमित्तिक अगर्हित कर्म करता है ॥ ६ ॥ आत्माका सहायक परलोकमें पिता, माता, पुत्र, स्त्री, ज्ञाति, कोई नहीं है केवल धर्म ही स्थित होता है ॥ ७ ॥ इस कारण अपनी सहायताके निमित्त साधनोंद्वारा धर्मका उपार्जन करना चाहिये धर्मकी सहायतासे ही दुस्तर अंधकार तरा जाता है ॥ ८ ॥ श्रुति स्मृतिमें पहला मुख्य धर्म आचार ही कहा है इस कारण ब्राह्मणको नित्य आचारयुक्त होना चाहिये ॥ ९ ॥

आचारसे ही आयु, आचारसे सन्तान, आचारसे ही अक्षय अन्न प्राप्त होता और आचारसे ही पाप दूर होता है ॥ १० ॥ आचार ही मनुष्योंके कल्याणका कर्ता है जिससे इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें सुख प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ अज्ञान और अंधजन्मवाले कुदृष्टियोंसे मोहित पुरुषोंको धर्मरूपी हम दीपक ही मुक्तिका दिखानेवाला है ॥ १२ ॥ आचारसे ही श्रेष्ठता प्राप्त होती है आचारसे कर्म प्राप्त होता, कर्मसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष होती है यह मनुजी कहते हैं ॥ १३ ॥ हे परंतप ! यह आचार ही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इसीसे ज्ञान होता है इस ज्ञानसे ही सब साधा जाता ह ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पुरुष आचारहीन होकर वर्तता है वह शूद्रके

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः ॥ आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हंति पातकम् ॥१०॥ आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः ॥ इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम् ॥ ११ ॥ अज्ञानांधजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम् ॥ धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः ॥१२॥ आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते ॥ कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम् ॥१३॥ सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः ॥ तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते ॥ १४ ॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १५ ॥ आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा ॥ उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता ॥ १६ ॥ ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः ॥ परिग्राह्या नृभिः सर्वे नैव तांल्लङ्घयेन्मुने ॥१७॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च ॥ १८ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ॥ १९ ॥

समान सब धर्मोंसे बाहर होनेसे आचार भ्रष्ट होनेसे शूद्रके समान है ॥ १५ ॥ शास्त्र और लौकिक भेदसे आचार दो प्रकारका है शुभकी इच्छावालेको यह दोनों ही करने चाहिये, त्यागने न चाहिये ॥ १६ ॥ ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म, कुलधर्म यह सब मनुष्योंको ग्रहण करने चाहिये और उल्लंघन न करना चाहिये ॥ १७ ॥ दुराचारी पुरुष लोकमें निंदित होता ह वह सदा दुःखभागी और व्याधिसे व्याप्त रहता है ॥१८॥ धर्मसे रहित अर्थ और कामको भी त्यागन कर दे और जो धर्म भी प्राणियोंका पीडा करनेवाले हों उनको भी

त्यागन कर दे पशुहननादि धर्म भी गर्हित है ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे मुने ! शास्त्र बहुत हैं इनमें निश्चय किस प्रकार हो सकता है ? सो धर्मसार्गके निर्णयमें किसका प्रमाण किया जाय ॥२०॥ श्रीनारायण बोले, परमात्माके श्रुति स्मृति यह दोनों नेत्र हैं, पुराण हृदय है, इन्हीं तीनमें कहा हुआ धर्म है और इनके सिवाय कहीं नहीं अर्थात् परमेश्वरके नेत्ररूप श्रुति स्मृतिसे देखा हुआ धर्म सत्य है और पुराणरूप हृदयमें विचारा हुआ सत्य है ॥ २१ ॥ जहां कहीं वेद स्मृति और पुराणोंमें विरोध दीख वहां श्रुतिका प्रमाण मानना होता है और जहां पुराण और स्मृतिका विरोध हो वहां स्मृतिका प्रमाण मानना चाहिये ॥ २२ ॥ और जहां श्रुतिमें परस्पर विरोध हो वहां दोनों ही प्रमाण हैं जहाँ

नारद उवाच ॥ बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने ॥ कियत्प्रमाण तद्ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णये ॥ २० ॥ नारायण उवाच ॥ श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम् ॥ एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥२१॥ विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम् ॥ श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्याद्द्वयोर्द्वैधस्मृतिर्वरा ॥ २२ ॥ श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥ स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक् ॥ २३ ॥ पुराणेषु क्वचिच्चैव तन्त्रदृष्टं यथातथम् ॥ धर्मं वदंति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथंचन ॥ २४ ॥ वेदाविरोधि चेत्तंत्रं तत्प्रमाणं न संशयः ॥ प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च ॥ २५ ॥ सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः ॥ तेनाविरुद्धं यत्किंचित्तत्प्रमाणं न चान्यथा ॥ २६ ॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः ॥ कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसंति हि ॥ २७ ॥

स्मृतिमें दो भाँति लिखा हो वहाँ भिन्न विषयकी कल्पना करके विरोधका परिहार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कहीं पुराण और तंत्रोंमें किसी कटाक्षसे जो धर्म कहा है वह श्रुति स्मृतिका विरोधी धर्म ग्रहणकरना न चाहिये ॥ २४ ॥ और वेदका अविरोधी तंत्रका प्रमाण हो सकता है इसमें संदेह नहीं जो प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध हो उसका प्रमाण नहीं हो सकता जिस प्रकार कि, तप्त मुद्राधारण आदि कहीं कहीं लिखा है, वह वेदके विरुद्ध होनेसे अप्रमाण है ॥ २५ ॥ धर्ममार्गमें सर्वथा वेद ही प्रमाण हैं, उसके अविरुद्ध ही जो कुछ हो उसीका प्रमाण है औरका नहीं ॥ २६ ॥ जो वेद धर्मको त्यागकर दूसरे प्रमाणमें वर्तते हैं उनके ही शिक्षाके निमित्त यमलोकमें कुण्ड विद्यमान हैं ॥ २७ ॥

इस कारण सब प्रयत्नसे वेदोक्त धर्मका आश्रय करना चाहिये स्मृति पुराण दूसरे और ग्रंथ वा तंत्रशास्त्र ॥ २८ ॥ यह वेदमूलक होनेसे ही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं जो कुशास्त्रोंके योगसे मनुष्योंको वर्तवाते हैं ॥ २९ ॥ वे अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर नरकसागरमें पडते हैं यथेष्ट आचरण करनेवाले, लिंगधारी पाशुपत ॥ ३० ॥ जो तप्तमुद्रा शंख चक्रजलाकर शरीरपर धारण करनेवाले वैखानस मतके अनुसार चलनेवाले वे वेदमार्गके बाहर चलनेवाले सब नरकमें जायँगे ॥ ३१ ॥ वेदकाही कहाहुआ सद्धर्म है इसकारण मनुष्योंको वही सदा करना चाहिये बार २ जागरूक होकर जानना चाहिये कि, मैंने आज क्या किया है ॥ ३२ ॥ दिया दिलाया वा वाणीसे कहा हुआ, वा सब

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत् ॥ स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तंत्रं वा शास्त्रमेव च ॥ २८ ॥ तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन ॥ ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयंतीह मानवान् ॥२९॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यंति नरकार्णवम् ॥ कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिंगधारिणः ॥३०॥ तप्तमुद्रांकिता ये च वैखानसमतानुगाः ॥ ते सर्वे निरयं यांति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ ३१ ॥ वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा ॥ उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किं मयाद्य कृतं कृतम् ॥३२॥ दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम् ॥ उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि ॥३३॥ अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौ तथोत्तरम् ॥ ३४ ॥ तत्तानं किंचिदुत्तानं मुखमवष्टभ्य चोरसा ॥ निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दंतैर्दंतान्न संस्पृशेत् ॥ ३५ ॥ तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥ सन्निरुद्धेंद्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः ॥ ३६ ॥

उपपातक और महापातकोंमें मैंने क्या पातक किया है यह निरन्तर विचारना चाहिये ॥३३॥ जब पहरभर रात रहजाय तब उठकर ब्रह्मका ध्यान करै वह क्रम यह है कि पहले वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण चित्त करके रक्खे और दक्षिण ऊरुके ऊपर बाँयाँ चरण उसी प्रकारस्थापित करै ॥३४॥ फिर मस्तक कुछेक ऊंचा होकर हिलावे मुख ऊंचाकर अपनी ठोडीसे वक्षस्थलको स्पर्शकर नेत्र बंदकर अपने बलसे स्थित होकर दाँतोंसे दाँतोंको न लगावै ॥ ३५ ॥ जिह्वाको लौटाकर तालुस्थानमें लगादे विवृतमुख हो निश्चल हुआ इन्द्रियसमूहको रोके हुए चैल

अजिन वा कुशके आसनपर स्थित जो बहुत नीचा न हो बैठे ॥३६॥ दूने वा तिगुने प्राणायामको करै इसके उपरान्त जो प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित हैं उनका ध्यान करै ॥ ३७ ॥ और विद्वान् धारणपूर्वक धारणा करै, प्राणायाम सधूम (श्वाससंयुक्त) विधूम अर्थात् अतिशय अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेपर मध्यम कहाता है, वही दो प्रकारका है सगर्भ (मंत्रजपके सहित) अगर्भ मन्त्रजपरहित ॥ ३८ ॥ फिर अति अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेसे प्राणायाम उत्तम होता है वह सलक्ष्य देवताके ध्यानके सहित अलक्ष्य ध्यानरहित होनेसे यह प्राणायाम छः प्रकारका है प्राणायामके समान योगप्राणायामही है दूसरा नहीं ॥ ३९ ॥ रेचक, पूरक, कुंभक नामसे तीन प्रकारका है इसमें 'ओं' के

द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ततोऽध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥ ३७ ॥ धारयेत्तत्र चाऽऽत्मानं धारणां धारयेद् बुधः ॥ सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः ॥ ३८ ॥ सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्रणायामस्तु षड्विधः ॥ प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः ॥ ३९ ॥ प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुंभकैः ॥ वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुंभका ॥ ॥ ४० ॥ स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः ॥ इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ॥ ४१ ॥ शनैः षोडशमात्राभिरन्यया तं विरेचयेत् ॥ एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने ॥ ४२ ॥

तीनों वर्णोंका क्रमसे ध्यान होता है ॥ ४० ॥ वह परमात्माही प्रणव कहाता है और तन्मय होनेसे प्राणायाम उसीका रूप है बाँई ओरकी नाडी इडा दक्षिण ओरकी नाडी पिंगला कहाती है सो इडानाडीद्वारा वायुको पूर्णकर अर्थात् वामनासिका पुटसे ३२ वार अकारको आवर्तन कर वायुको आरोपण कर उसे खैंचकर पूरक करै पीछे चौसठ वार उकारको आवर्तन करते हुए उदरमें स्थित कुंभक करके फिर दक्षिणनासापुटसे ॥ ४१ ॥ सोलह वार मकारका आवर्तन करता हुआ उस वायुको विरेचन करै अर्थात् त्यागे इसी प्रकार पिंगलासे करै यह प्राणायाम सधूम कहाता है ॥ ४२ ॥

प्राणायामके पश्चात् कुण्डलिनीके चक्रभेद कहते हैं इस देहमें क्रमसे षट् कमल हैं पहला गुदस्थानमें, दूसरा लिंगके मूलमें, तीसरा नाभिचक्र चौथा हृदयमें, पांचवां कण्ठ और छठा भ्रूमध्यमें हैं उनमें भ्रूमध्यमें जो कमल है उसमें दो दल हैं उन दो दलोंमें दक्षिण क्रमानुसार लगे हुए ब्रह्मा हं, क्षं वर्ण हैं उनको नमस्कार करता हूं कण्ठमें जो कमल हैं उसमें सोलह दल हैं उन दलोंमें दक्षिणावर्तक क्रमसे लगे हुए अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ऋ,ॠ,ऌ,ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, सोलह स्वर वर्णरूप हैं उनको नमस्कार है हृदयस्थित पद्मके बारह दल हैं उनमें यथा क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, यह बारह वर्णरूप है, उनको प्रणाम है नाभिस्थानमें स्थित पद्मके १० दल हैं उनमें दक्षिणावर्तके अनुसार लगे हुए ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, वर्ण हैं इनको नमस्कार है लिङ्गमूल पद्मके छः दल हैं उसमें दक्षिणावर्त क्रमसे लगे हुए ब, भ, म, य, र, ल, वर्ण

आधारे लिंगनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के ॥ वासांते बालमध्ये डफक ठहिते कंठदेशे स्वराणां हक्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ ४३ ॥ अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा हरनियमित चिह्ना पद्मतंतुस्वरूपा ॥ रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्या सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः ॥ ४४ ॥ स्थितिः सैव गतिर्यात्रा मतिश्चिंता स्तुतिर्वचः ॥ अहं सर्वात्मिको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम् ॥ ४५ ॥ अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ सच्चिदानंदरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिंतयेत् ॥ ४६ ॥

को नमस्कार है गुदमूलस्थित पद्मके चार दल हैं उनमें दक्षिणावर्तक्रमसे स्थित व, श, ष, स, चार वर्णको नमस्कार है. इनका आशय यह है कि, उक्त छः स्थानोंमें कहे छः पद्मोंके ध्यान कर उनके दलमें प्रत्येक रूप और वर्णका ध्यानकरकेनमस्कार करै ॥ ४३ ॥ रक्तवर्ण चार युक्त गुदमूलमें जो कमल है उसमें पद्मनीलके सूतके समान अत्यन्त सूक्ष्मरूपवाली कुलकुण्डलिनी शक्ति विराजमान है वह रजोगुण मयी रक्तवर्ण है सूर्यबिन्दु उसका मुख अग्निबिन्दु उसके दोनों: स्तन हैं उसका नाम मायाबीज अर्थात् (ह्रीं) है यह बीज प्रतिपाद्य अर्थ है, वह जिसके हृदयमें एकवार भी प्रगट होता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४४ ॥ वही कुण्डलिनी शक्ति सहकृत अहंशब्द प्रतिपाद्य है यही हम, यही भगवती,वही, स्थिति, गति, यात्रा, मति, चिन्ता, स्तुति वचन सर्वात्मक देव मैंही हूं और सब स्तुति हमारा अर्चन है ॥ ४५ ॥ मैं ही

देवी हूं दूसरा नहीं मैं ही ब्रह्म हूं शोकभागी नहीं हूं मैं ही सच्चिदानंद हूं इस प्रकार अपने आत्मामें विचार करै ॥ ४६ ॥ फिर हर्षगद्गद चित्तसे देवी कुंडलिनीका ध्यान करै जो प्रथमही ब्रह्मरन्ध्रमें जानेसे प्रकाशमान है फिर मूलाधारमें आनेसे अमृतसे परिव्याप्त अर्थात् ब्रह्मरंध्रमें स्थित अमृतधारासे युक्त सुषुम्नामें गमन करती हुई आनंदरूप अचला कुंडलिनीको शरण होता हूं ॥ ४७ ॥ फिर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें गुरुरूप ईश्वरका ध्यान करै और मनके कल्पित उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करै ॥४८॥ इस प्रकार इस मंत्रसे संयुक्त होकर साधक स्तुति करै गुरुही ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर है गुरुही परब्रह्म है उन श्रीगुरुदेवके निमित्त प्रणाम है ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानन्दरूपामवलां प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ ततो निज ब्रह्मरंध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम् ॥ उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तु यथाविधि ॥ ४८ ॥ स्तुवीताऽनेन मंत्रेण साधको नियतात्मवान् ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभा० म० एकादशस्कंधे प्रातश्चितनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यदप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुंता इव जातपक्षाः ॥१॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥ रात्रेरंतिमं यामे तु वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ २ ॥ किंचित्कालं ततः कुर्यादिष्टदेवानुचिंतनम् ॥ योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥३॥ जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरंतरम् ॥ जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद ॥ ४ ॥

भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीनारायण बोले चाहे पट् अंगोंसहित वेद पढा हो परन्तु आचारहीनको पवित्र नहीं करसकता मृत्युकालमें आचारहीन पुरुषको वेद इस प्रकार त्यागन कर देते हैं जैसे पंख निकलनेसे पक्षी घौंसलोंको त्याग देते हैं ॥ १ ॥ ब्राह्म मुहूर्त पिछले पहरमें उठ मुखादि प्रक्षालनकर वह सब कुछ भली प्रकार करै और उस अन्तिम प्रहरमें विद्वान् वेदाभ्यास करै ॥ २ ॥ फिर कुछ कालपर्यन्त अपने इष्ट देवका चिन्तन करै पूर्व कहे अनुसार योगी छः घडीतक ब्रह्मध्यान करै ॥ ३ ॥ जिसके द्वारा जीव ब्रह्मकी निरन्तर एकता होती है

हे नारद ! वह उसी समय जीवन्मुक्त होता है ॥ ४ ॥ पचपन घडीके उपरान्त उषःकाल होता है सत्तावन घडीके उपरान्त अरुणोदय होता है अट्ठावन घडीपर प्रभात और शेषमें सूर्योदय होता है ॥ ५ ॥ प्रभातकाल उठकर ब्राह्मण विष्ठा मूत्र करै अर्थात् शयनस्थानसे उठकर बाणविक्षेप मात्रतक दूर जाकर वा अधिक दूर जाकर शौचादि करै ॥ ६ ॥ प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्यमें विष्ठा मूत्र करतेमें कानमें यज्ञोपवीत रक्खै वानप्रस्थ और गृहस्थ अवस्थामें यज्ञोपवीत पीठकी ओरही लगाकर ॥ ७ ॥ पृष्ठकी ओर कंठलम्बित यज्ञोपवीत करके

पंचपंच उषःकालः सप्तपंचाऽरुणोदयः ॥ अष्टपंचाशद् भवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः ॥ नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥ ६ ॥ विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः ॥ निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ७ ॥ कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलंबितम् ॥ विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी ॥८॥ अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः ॥ ९ ॥ न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते ॥ जीर्णदेवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले ॥ १० ॥ न स सत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः ॥ संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दंतधावने ॥११॥ पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ उत्सारे मैथुने वापि तथा वा गुरुसन्निधौ ॥ १२ ॥ यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत् ॥ देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥ १३ ॥

गृहस्थी विष्ठा मूत्र करै ब्रह्मचारी कानपर धरै ॥ ८ ॥ तृणसे पृथ्वी आच्छादित करके वस्त्रसे शिर ढककर यत्नपूर्वक वाणीको रोक निष्ठीवन करै और श्वाससे वर्जित हो ॥ ९ ॥ हलसे जोती भूमि, जल, चिता, पर्वत, जीर्णदेवालय, वल्मीक, (सर्पस्थान) हरित तृण ॥ १० ॥ जीवसहित गर्तस्थानमें, चलते हुए मार्गमें स्थित होता हुआ मलत्याग न करै दोनों संध्याओंमें जप, भोजन, दंतौन ॥ ११ ॥ पितृकार्य, देवकार्यमें, मूत्रपुरीष करनेमें, मैथुनमें गुरुके समीपमें ॥ १२ ॥ योग दान तथा

ब्रह्मयज्ञमें द्विजको मौन रहना चाहिये सब देवता, ऋषि, उरग राक्षस ॥ १३ ॥ इस भूमिसे बाहर होजाओ मैं शौच करता हूं इस प्रकार प्रार्थना कर विधिपूर्वक शौच करै ॥१४॥ वायु, अग्नि, ब्राह्मण, आदित्य, जल और गौको देखता हुआ कभी विष्ठामूत्र न करै ॥ १५ ॥ दिनमें उत्तरकी ओर मुखकर रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुखकर मलमूत्र करै फिर उसके ऊपर मृत्तिका पत्ते और तृण डाल दे जिससे सूर्यकी किरणें न पड़ैं ॥१६॥ फिर मेढ्र ग्रहण किये उठकर जलके समीप जाय और पात्रमें जल ग्रहण कर अन्यत्र जाय ॥ १७ ॥ किनारेसे अच्छी श्वेतवर्णकी

इतो गच्छंतु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम् ॥ इति संप्रार्थ्य पश्चात्तु कुर्याच्छौचं यथाविधि ॥ १४ ॥ वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥१५॥ उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ तत आच्छाद्य विण्मूत्रं लोष्टपर्णतृणादिभिः ॥१६॥ गृहीतलिंग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ ॥ पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि ॥१७॥ गृहीत्वा मृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः ॥ रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः ॥१८॥ अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्या द्विजोत्तमैः ॥ अंतर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९ ॥ कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः सप्तमृत्तिकाः ॥ मूत्रात्तु द्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् ॥ २० ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ॥ मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥ २१ ॥ विट्शौचे लिंगदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम् ॥ पंचाऽपाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥ २२ ॥

मृत्तिकाको ग्रहण करै और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रक्त, पीत, कृष्णवर्णकी मृत्तिका ग्रहण करै ॥ १८ ॥ अथवा अभावमें जिस देशमें जो हो द्विजोत्तम उसीको ग्रहण करे जलके भीतरसे, देवगृहसे बँबईसे मूषककी खोदी हुई ॥ १९ ॥ शौचसे अवशिष्ट रही मृत्तिका यह सात मृत्तिका ग्रहण न करै मूत्रसे दूनी शौचमें और मैथुनमें तिगुनी पवित्रता करै ॥ २० ॥ एकवार लिंगमें तीनवार हाथमें दोनों हाथोंमें दोवार मूत्र करनेपर शुद्धि करै और शौचमें उससे दूना करै ॥२१॥ विष्ठाशौचमें लिंगदेशमें दोवार मृत्तिका लगावै पांचवार गुदामें दशवार हाथमें और

फिर सातवार दोनों हाथोंमें मृत्तिका लगावै ॥ २२ ॥ वाम चरणको आगे कर पीछे दक्षिणको आगेकर प्रत्येकमें चार २ वार मृत्तिका लगावै ॥ २३ ॥ इस पकार गृहस्थीका शौच कहा है ब्रह्मचारीका इससे दूना वानप्रस्थका तिगुना और यतियोंका चौगुना है ॥ २४ ॥ गीली आमलेके समान मृत्तिका शौच कर्ममें लेनी चाहिये यह एक२वार ग्रहण करै इससे न्यून न करै ॥ २५ ॥ यह दिनका शौच कहा रातको इससे आधा करै आतुरको इससे आधा और मार्गमें स्थितको इससे भी आधा करना चाहिये ॥ २६ ॥ स्त्री, शूद्र, अशक्त और बालकोंको

वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च ॥ प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेपयेत्सुधीः ॥२३॥ एव शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम् ॥२४ ॥ आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि ॥ प्रत्येकं तु सदा ग्राह्या नातो न्यूना कदाचन ॥२५॥ एतद्दिवा स्याद्द्विट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ॥ आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम्॥२६॥ स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि ॥ यथा गंधक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम् ॥२७॥ गंधलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते ॥ सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः ॥ २८ ॥ वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न ॥ नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः ॥ २९ ॥ शौचकर्मणि विज्ञेयौ नान्यथा द्विपुंगवैः ॥ जलपात्रं न गृह्णीयाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥ ३० ॥ गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः ॥ मोहाद्वाप्यथवाऽऽलस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः ॥ ३१ ॥ जलाहारस्त्रि रात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति ॥ देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तीश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥

शौचकर्म वहांतक करै जहांतक गंधक्षय हो इसमें संख्या नहीं है ॥ २७ ॥ जबतक गंध और लेपका क्षय हो तबतक अशुद्ध है यह सब वर्णोंके निमित्त है ऐसा भगवान् मनुने कहा है ॥ २८ ॥ वाम हाथसे शौच करै दक्षिणसे नहीं नाभिसे नीचे बायाँ हाथ रहै नाभिसे ऊपर दहना रहै ॥२९॥ यह शौचकर्मकी विधिमें है अन्यथा नहीं विष्ठा मूत्र उत्सर्जन करते समय जलपात्रको ग्रहण न करै ॥ ३० ॥ और जो मोहसे ग्रहण करै तो प्रायश्चित्त करै जो मोह वा आलस्यसे अपना शौच नहीं करै तो ॥ ३१ ॥ तीनराततक जलाहार मात्र करता हुआ

गायत्रीके जपसे शुद्ध होता है देश काल द्रव्य शक्ति और अपनी उपपत्ति ॥ ३२ ॥ विचारकर शौच करना चाहिये, इसमें आलस्य न करै पुरीपोत्सर्जनके उपरान्त बारह कुल्ले करै ॥ ३३ ॥ मूत्र करने उपरान्त चार कुल्ले करैं कमती नहीं नीचेको मुख करता हुआ वाम ओरसे त्यागन करै ॥३४॥ फिर आचमनकर आदरसे दँतौन करैं जो कीकड, अश्वत्थ गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकी बारह अंगुल प्रमाणकी व्रणादिसे रहित हो ॥ ३५ ॥ जो कनिष्ठिकाके अग्रभागवत् स्थूल हो पूर्वार्द्ध जिसका पत्थरसे कूटकर कूचीके समान किया हो करंज, गूलर,

ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत् ॥ पुरीपोत्सर्जने कुर्याद्गंडूपान्द्वादशैव तु ॥३३॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन ॥ अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः ॥३४॥ आचम्य च ततः कुर्याद्दंतधावनमादरात् ॥ कंटकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमव्रणम् ॥ ३५ ॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम् ॥ करंजोदुंबरो चूतः कदंबो लोध्रचम्पकौ ॥ बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दंत प्रधावने ॥३६॥ अन्नाद्यायव्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत् ॥ समे मुखं प्रक्षाल्यते यशसा च भगेन च ॥ ३७ ॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥३८॥ अभावे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च अपां द्वादशगंडूषैर्विदध्याद्दंतधावनम् ॥ ३९ ॥ सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम् ॥४०॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशी रवौ ॥ दंतानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४१ ॥

आम, कदम्ब, लोध, चम्पा ॥ ३६ ॥ बेरी इनकी दँतौन करनी उत्तम है मंत्र यह है कि, अन्नके भक्षण और शत्रुओंके ध्वंसके निमित्त सोम राजा इस वृक्षमें प्रगट है ॥ ३७ ॥ वह यश और ऐश्वर्यद्वारा मेरे मुखको प्रक्षालन करै आयु, बल, यश, कान्ति, प्रजा, पशु, धन, ॥३८॥ ब्रह्म, प्रज्ञा और मेधा हे वनस्पते ! मुझे दीजिये निषिद्ध दिनोंमें जब कि, दँतौन न की जाती हो ॥ ३९ ॥ जलके बारह कुल्लेसे दँतौन करै उसने सविताका भक्षण और अपने कुलका घात किया ॥ ४० ॥ जिसने पडवा अमावस छठ नौमी एकादशी रविवारको

दँतौन की इन दिनोंमें दातोंमें काष्ठका संयोग होनेसे सातकुलतक दग्ध करता है ॥ ४१ ॥ फिर निर्मल जलसे पादशौच करके तीनवार उत्तम जल पियै, फिर तर्जनी और अंगूठेसे दोवार जलस्पर्शकर नासिकाके दोनों पुटछुये फिर अंगुष्ठ अनामिकासे दोनों नेत्र फिर कनिष्ठिका अंगुष्ठसे कान और हृदय करतलसे सब अंगुलियोंसे शिरस्पर्श करै ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले—"शुद्ध, स्मार्त आचमन, पुराण, वेद, तंत्र, श्रुतिमें कहा हुआ आचमन छःप्रकारका है विष्ठा मूत्र आदिद्वारा शौचकरने उपरान्त आचमन करना शुद्ध कहाता है, स्मार्त पौराणिक कर्मके उपरान्त किया हुआ आचमन स्मार्त और पौराणिक कहाताहै ब्रह्मयज्ञादिपूर्वक आचमन वैदिक और श्रौत कहाता है अस्त्रवियादि कर्ममें तांत्रिक विधिका आचमन कहाता है" ॐकारपूर्वक गायत्रीका स्मरणकर शिखा बाँधे फिर आचमन कर हृदय वा बाहु और कंधोंको छुये ॥१॥ छींक, खखार, दांतोंकी उच्छिष्ट, असत्यभाषण और पतितोंसे भाषण करनेमें दहिना कान स्पर्श करै ॥२॥ अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य, अनिल (वायु) यह सब ब्राह्मणके दहिने कानमें स्थित रहते हैं यह मंत्र पढे ॥ ३ ॥ फिर नदी आदिमें जाकर प्रभातस्नानकी शुद्धि करै. हे मुने! इससे देहकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥

कृत्वाऽलं पादशौचं ह्यमलमथ जलं त्रिः पिबेद् द्विर्विमृज्य तर्जन्यांगुष्ठवत्या सजलमभिमृशेन्नासिकारंध्रयुग्मम् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं कर्णयुग्मं कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तले नांगुलीभिः शिरांसि ॥४२॥ इति श्रीदे०म०ए०द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ " शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा ॥ तांत्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम् ॥ विण्मूत्रादिकशौचं च शुद्धं च परिकीर्तितम् ॥ स्मार्तपौराणिकं कर्म आचांते विधिपूर्वकम् ॥ वैदिकं श्रौतमित्यादिब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम् ॥ अस्त्रविद्यादिकं कर्म तांत्रिको विधिरुच्यते॥" स्मृत्वा चोंकारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा ॥ पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कन्धौ च संस्पृशेत् ॥ १ ॥ क्षुत निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥ पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ २ ॥ अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ॥ सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३ ॥ ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥ समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धिहेतवे ॥ ४ ॥

यह देह अत्यन्त मलिन है इसके नौओं द्वारोंसे मल बहता है, इनके शोधनको सदा प्रभात स्नान करै ॥ ५ ॥ अगम्या स्त्रीमें गमनका पाप प्रतिग्रहका पाप गुप्तपाप भी स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥६॥ विना स्नान कियेकी सब क्रिया नष्ट होजाती है इस कारण प्रतिदिन नित्य प्रभातमें स्नान करै ॥ ७ ॥ कुशाग्रहण करके स्नान और सन्ध्यावंदन करै प्रभातस्नान न करनेसे सातदिनमें विना संध्याके तीन दिनमें ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र न करनेसे बारह दिनमें द्विज शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है स्नानादिविधिके बहुत होने और हवनकालके अल्प होनेसे इस प्रकार

अत्यन्तमलिनो देही नवद्वारैर्मलं वहन् ॥ सदाऽऽस्ते तच्छोधनाय प्रातःस्नानं विधीयते ॥ ५ ॥ अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात् ॥ रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा ॥ ६ ॥ अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवंति विफला यतः ॥ तस्मात्प्रातश्चरे त्स्नानं नित्यमेव दिनेदिने ॥ ७ ॥ दर्भयुक्तश्चरेत्स्नानं तथा संध्याभिवंदनम् ॥ सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्या हीनस्त्रिभिर्दिनैः ॥८॥ द्वादशाहमनग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥ अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥ ९ ॥ प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोम कालेविगर्हितः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ १० ॥ गायंतं त्रायते यस्माद्गायत्रीत्यभिधीयते ॥ प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम् ॥ ११ ॥ वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात् ॥ ब्राह्मणः श्रुतिसम्पन्नः स्वधर्मनिरतः सदा ॥ १२ ॥ स वैदिकं जपेन्मंत्रं लौकिकं न कदाचन ॥ गोशृंगे सर्षपो यावत् तावत्रेपां न संस्थिरः ॥ १३ ॥

स्नानविधि करके तथा संध्यादि विधि करनेमें होमकाल नहीं मिलता है ॥ ९ ॥ इससे प्रभातकालमें वैसी विधिसे स्नान न करके संक्षेपसे करै इस लोक और परलोकमें गायत्रीसे परे कुछ नहीं है ॥ १० ॥ अपने जपनेवालीकी रक्षा करती है इसीसे इसको गायत्री कहते हैं ओंकार और तीनों व्याहृतियोंके सहित ॥ ११ ॥ ब्राह्मण तीनवार प्राणायाम करके वायुका निरोध करै श्रुतिसम्पन्न ब्राह्मण सदा अपने धर्ममें निरत हुआ ॥ १२ ॥ वैदिक मंत्रका जप करै लौकिक मंत्रका नहीं गौके शृंगपर जितनी देर सरसों स्थित रहती है इतने

कालतक भी जिनका प्राणनिरोध नहीं होता ॥ १३ ॥ वह माता पिताके १०१ एकसौ एक पितरोंको तारनेमें समर्थ नहीं होता सगर्भ प्राणायाम जपसे युक्त और अगर्भ ध्यानमात्रका होता है ॥१४॥ स्नानका अंग भूत तर्पण देवता पितरोंको संतुष्ट करता है जलसे बाहर आय शुद्ध वस्त्र धारण कर ॥१५॥ विभूति और रुद्राक्ष धारण करे जपसाधकोंको सदा क्रमयोगसे करना चाहिये ॥१६॥ कण्ठमें ३२ मस्तकमें ४० कानोंमें छः छः,बारह २ हाथोंमें, भुजदण्डोंमें सोलह, नेत्रमें एक, शिखामें एक वक्षस्थलमें १०८जो धारण करता है वह स्वयं शिवस्वरूप होता है ॥ १७ ॥ सुवर्ण

न तारयंत्युभौ पक्षौ पितॄनेकोत्तरं शतम् ॥ सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः ॥ १४ ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम् ॥ शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद्बहिरुपागतः ॥१५॥ विभूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः ॥ १६ ॥ रुद्राक्षान्कंठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिंदोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ १७ ॥ बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाऽथवा मुने ॥ शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ॥१८॥ यज्ञोपवीते हस्ते वा कंठे तुंदेऽथ वा नरः ॥ श्रीमत्पंचाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ॥ १९ ॥ निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ॥ रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥२०॥ रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् ॥ कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत् ॥२१॥ यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् ॥ कंठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत् ॥ २२ ॥

अथवा चांदीके तारमें हे मुने ! रुद्राक्ष पिरोकर शिखा वा कर्णमें धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥ यज्ञोपवीतमें हाथमें कंठमें तुंदमें पंचाक्षर मंत्र नमःशिवाय वा ॐकारसे धारण करै ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् निष्काम भक्तिसे रुद्राक्षको धारण करै रुद्राक्षका धारण साक्षात् शिवके ज्ञानका साधक होता है ॥ २० ॥ शिखामें रुद्राक्ष है इस तारकतत्त्वका स्मरण करै दोनोंके कानोंमें रुद्राक्षमें देवदेवीको भावना करै ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीतमें वेदोंकी, हाथोंमें दिशाओंकी कृण्ठमें सरस्वती देवी और अग्निकी भावना करै ॥ २२ ॥

सब आश्रम और वर्णोंको रुद्राक्षधारण करना चाहिये उनमें द्विजातियोंको मन्त्रपूर्वक धारण करना चाहिये अन्यथा नहीं ॥२३॥ रुद्राक्षके धारण करनेसे वह निःसन्देह रुद्रही हो जाता हैं निषिद्धोंको देखता सुनता स्मरण करता हुआ॥२४॥सूंघता, खाता, प्रलाप करता, गमन विसर्जनमें इन निषिद्ध कर्मोंको करता हुआ॥२५॥रुद्राक्ष धारण करनेसे फिर उसको पाप नहीं लगता है इसका भोजन किया हुआ देवताओंके भोजन करनेके समान है॥२६॥जो उसने पान किया सो रुद्रने उसने सूंघा सो शिवने हे महामुने! जिनको रुद्राक्ष धारणमें लज्जा हैं ॥२७॥ उनका संसारसे करोड

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ कर्तव्यं मंत्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवार्णिनाम् ॥ २३ ॥ रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः ॥ पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥ २४ ॥ जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन्प्रलपन्नपि संततम् ॥ कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ॥ अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ॥ २६ ॥ पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत् ॥ रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ॥ २७ ॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ॥ २८ ॥ उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः ॥ रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ मुनयः सत्यसंकल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ॥ रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः ॥ पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥

जन्ममें भी निस्तार नहीं होता रुद्राक्ष धारणको देखकर जो निन्दा करता है ॥२८॥ उसकी उत्पत्तिमें संकरता है यह निश्चय है रुद्राक्षके धारणसे रुद्र भी रुद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ मुनि सत्य संकल्प और ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए रुद्राक्ष धारणसे कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है॥३०॥रुद्राक्ष धारीके निमित्त जो वस्त्र और धान्य देता है वह सब पापसे रहित होकर शिवलोकको जाता है ॥ ३१ ॥ जो रुद्राक्षधारीको प्रसन्न होकर

जिमाता है वह पितृलोकको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष रुद्राक्षधारण किये पुरुषको चरण धोकर जलपान करे वह सब पापसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण हार कटक वा सुवर्णको रुद्राक्षके सहित धारण करता है वह रुद्रताको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ हे महामते ! केवल रुद्राक्षको भी जहां कहीं मन्त्र वा अमन्त्रसे भाव वा अभावसे ॥ ३५ ॥ जो कोई भक्ति वा लज्जासे भी धारण करता है वह सर्व पापसे रहित हो भली प्रकारके ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ अहो मैं रुद्राक्षका माहात्म्य नहीं

रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३३ ॥ हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः ॥ रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्रुद्रतामियात् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ॥ समंत्रकं वा मंत्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥ ३५ ॥ यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपि वा ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सदाचारवर्णने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवताऽनघ ॥ वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः ॥ षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत् ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः ॥ त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽसीत्सर्वदुर्जयः ॥ ३ ॥

कह सकता. इससे सब प्रकार रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदजी बोले हे अनघ ! जब रुद्राक्षका इस प्रकारका प्रभाव है और महान् पुरुषोंसे पूजित है तो इसका क्या कारण है कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले यही वार्ता पहले भगवान् गिरीशसे षण्मुखने पूछी थी रुद्रने इसपर जो कहा सो सुनो ॥ २ ॥ ईश्वर बोले हे कुमार ! तत्व

पूर्वक सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं पहले एक त्रिपुरनामक दैत्य बडा दुर्जय हो गया है ॥३॥ उसने ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवताओंको तिरस्कृत करदिया, तब सबने उसकी व्यवस्था मुझसे कही ॥ ४ ॥ तब मैं अपने अघोरनामक महाशस्त्रको विचारकर जो सब देवमय दिव्य ज्वलित महाघोररूपी है ॥ ५ ॥ उस समय त्रिपुरके वधकरने और देवताओंकी रक्षा करनेकी सब विघ्नके नाशके निमित्त अघोर अस्त्रका चिन्तन किया ॥ ६ ॥ दिव्य सहस्रवर्षतक मैंने नेत्र निमीलित किये तब मेरे नेत्रोंसे जलविन्दु गिरे ॥ ७ ॥ उन आंसुओंकी बूंदोंसे महारुद्राक्षके वृक्ष

हतास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः ॥ सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाऽहं त्रिपुरं प्रति ॥ ४ ॥ अचिंतयं महाशस्त्रमघोराख्य मनोहरम् ॥ सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलंतं घोररूपि यत् ॥ ५ ॥ त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च ॥ सर्वविघ्नोपशमनम घोरास्तमचिंतयम् ॥ ६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया ॥ पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः ॥ ७ ॥ तत्राश्रुबिंदुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ॥ ममाऽऽज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ वभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ॥ सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः ॥ ९ ॥ सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात् ॥ वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवंति हि ॥ १० ॥ श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते ॥ क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ॥ ११ ॥ एकवक्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ द्विवक्रो देवदेव्यौ स्याद्विविधं नाशयेदघम् ॥ १२ ॥ त्रिवक्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥ चतुर्वक्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ॥ १३ ॥

उत्पन्न हुए हे महासेनापते ! सबके हितकी कामनासे मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ वे अट्ठाईस प्रकारके भेदवाले हुए सूर्यनेत्रसे उत्पन्न कपिलवर्णके बारह उत्पन्न हुए ॥९॥ सोमनेत्रसे उत्पन्न हुए श्वेतवर्णके सोलह प्रकारके हैं और वह्निनेत्रसे उत्पन्न हुए कृष्णवर्ण दशभेदवाले हैं ॥ १० ॥ श्वेतवर्ण रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण कहाता है, रक्तवर्ण क्षत्रिय; मिश्र वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्रसंज्ञक हैं ॥ ११ ॥ एकमुखी साक्षात् शिव ब्रह्महत्याको दूर करता है दोमुखी देवी और देवतास्वरूप हैं अनेक पाप दूर करता है ॥ १२ ॥ तीनमुखी साक्षात् अनल स्त्रीहत्या दूर

करता है चतुर्मुखी स्वयं ब्रह्मा नरहत्या दूर करता है ॥१३॥ पंचमुखी साक्षात् रुद्र कालाग्नि नामक है वह अभक्ष्यभक्षण और अगम्यागमन अपराधसे ॥ १४ ॥ तथा और भी सब पापोंसे मुक्त करता हैं.षण्मुखवाले साक्षात् कार्तिकेय हैं इनको दक्षिणहाथमें धारण करना चाहिये ॥१५॥ तो वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं सातमुखी अनंगनामक हैयह महाभाग है ॥१६॥ इसके धारणादिसे स्वर्णचोरी आदिके पापसे छूट जाता है हे पुत्र ! अष्टमुखी साक्षात् विनायक देव है ॥ १७ ॥ अन्नकूट, तुलाकूट, स्वर्णकूट, दुष्टवंशस्त्री वा गुरुस्त्रीका स्पर्श

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ॥ अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ १४ ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥ षड्वक्त्रः कार्त्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनंगो नाम नामतः ॥ १६ ॥ तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः ॥ अष्टवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः ॥१७॥ अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च ॥ दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम् ॥ १८ ॥ एवमादीनि पापानि हंति सर्वाणि धारणात् ॥ विघ्नास्तस्य प्रणश्यंति याति चांते परं पदम् ॥१९॥ भवंत्येते गुणा सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात् ॥ नववक्त्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके ॥ २० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ॥ भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ॥ ॥ २१ ॥ सद्यः प्रलयमायांति नववक्त्रस्य धारणात् ॥ दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ॥ २२ ॥

॥ १८ ॥ इत्यादि पाप उसके धारणसे दूर होते हैं उनके सब पापनाश हो जाते हैं और अन्तमें परमपदको जाते हैं ॥१९॥ यह सब गुण अष्टमुखीके धारणकरनेसे होते हैं नौ मुखका भैरव है उसे बाईं भुजामें धारणकरना चाहिये ॥ २० ॥ उसको भुक्तिमुक्तिकी प्राप्ति और मेरे तुल्य बल होता है सहस्रों गर्भहत्या सैकडों ब्रह्महत्या ॥ २१ ॥ नौमुखीके धारणसे शीघ्रही नाश होजाती है दशमुखी साक्षात् देवदेव जनार्दन है॥२२॥

ग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस, पन्नगादि सब दशमुखके धारणसे शान्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ एकादशमुखी साक्षात् रुद्र है जो इसको शिखामें धारण करते हैं उसके पुण्यफलको सुनो ॥२४॥ सहस्र अश्वमेध सौ वाजपेय और सौ सहस्र गोदानका जो फल है ॥ २५ ॥ वह एकादश मुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे मिलता है और द्वादशमुखी रुद्राक्ष कर्णमें धारण करै ॥ २६ ॥ तो उससे बारह आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं गोमेध और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ शृंगवाले शस्त्रधारी और व्याघ्रादिका भय नहीं होता उसको आधि व्याधिका भी भय

ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः॥ पन्नगाश्चोपशाम्यंति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥२३॥ वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम्॥शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥२५॥ तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् ॥ द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात् ॥२६॥ आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः ॥ गोमेधे चाऽश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ शृंगिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं नहि ॥ नच व्याधिभयं तस्य नैव चाधिः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥ न च किंचिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रर्तते ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥२९॥ हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् ॥ खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥३०॥ मुच्यते नात्र सन्देहो वक्रद्वादशधारणात् ॥ वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥ ३१ ॥ कार्त्तिकेयसमो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥

नहीं होता ॥ २८ ॥ न उसके कोई भय और न व्याधि होती है न कहीं भय होगा किन्तु सर्वत्र सुख होता है तथा अधिपति होता है ॥२९॥ हाथी, अश्व, मृग, मार्जार, मूषक, दर्दुर, खर, कुत्ते, शृगाल बहुत प्रकारके जीवोंको मारकर भी ॥ ३० ॥ द्वादशमुखी रुद्राक्षधारणसे इनके पापसे छूट जाता है हे वत्स ! यदि तेरह मुखी रुद्राक्ष प्राप्त होजाय ॥ ३१ ॥ तब वह कार्तिकेयके समान सब अर्थ और कामका देने

वाला होता है उसको रस रसायन सब सिद्ध हो जाती हैं ॥३२॥ उसको सब भोग प्राप्त होते हैं इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं जो माता पिता वा भाईको मारता है ॥ ३३ ॥ हे षण्मुख ! वह उसके धारणसे उस पापसे मुक्त हो जाता है-हे पुत्र ! यदि चौदह मुखी रुद्राक्ष धारण करता है ॥ ३४ ॥ तो शिरपर धारण करनेसे शिवके शरीररूप होता है हे मुने ! वारंवार वर्णनसे क्या है ॥ ३५ ॥ वह सदा देवतोंसे पूजित होकर परमगतिको प्राप्त होता है. एक ही रुद्राक्ष शिखापर भक्तिसे धारण करनेसे ॥ ३६ ॥ छव्वीसकी माला शिरपर पचासकी हृदयमें,

तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा ॥ मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहंति यः ॥ ३३ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख॥चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक॥३४॥धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिंडः शिवस्य तु॥किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनःपुनः ॥ ३५ ॥ पूज्यते संततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः ॥ रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ॥३६॥ षड्विंशद्भिः शिरोमाला पंचाशद्धृदयेन तु ॥ कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणिबंधनम्॥३७॥अष्टोत्तरशतेनापि पंचाशद्भिः षडानन ॥ अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ ३८ ॥ धारणाद्वा जपाद्वापि ह्यनंतं फलमश्नुते ॥ अष्टोत्तरशतैर्मालारुद्राक्षैर्धार्यते यदि ॥ ३९ ॥ क्षणेक्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोध्यायः ॥४॥ ईश्वर उवाच ॥ लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख ॥ रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिंदू रुद्र इतीरितः ॥१॥ विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम्॥पंचविंशतिभिश्चाक्षैः पंचवक्त्रैः सकंटकैः ॥२॥

सोलहकी बाहुमें बारहकी मणिबन्धमें ॥ ३७ ॥ हे षडानन ! एक सौ आठ, पचास, अथवा सत्ताईस दानेकी रुद्राक्षमाला ॥ ३८ ॥ धारण या जपसे अनन्त फल होता है १०८ रुद्राक्षोंकी माला धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे षण्मुख ! उसको क्षण २ में अश्वमेधका फल प्राप्त होता है तथा २१ कुल उद्धारकर शिवलोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है ॥४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ईश्वर बोले हे षण्मुख ! जपमालाका लक्षण सुनो मैं कहता हूं रुद्राक्षका मुख ब्रह्मा बिन्दु रुद्र कहा है ॥ १ ॥ विष्णु

पुच्छ है जो भोगमोक्षको देनेवाला है पचीस रुद्राक्षोंकी पंचमुखी कंटकमाला ॥ २ ॥ जो लाल श्वेत वर्णोंसे मिश्रित रन्ध्रद्वारा ग्रंथित हो तो गोपुच्छबढायके आकारमाला निर्माण करनी चाहिये ॥ ३ ॥ मुखसे मुख और पुच्छसे पुच्छ संयुक्त करै मेरुको ऊर्ध्वमुख करै उसके ऊपर नागपाश धारण करै ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे ग्रथित हुई गोपुच्छमाला सब सिद्धि देनेवाली होती है गंध जलसे धोकर फिर पंचगव्यसे प्रक्षालनकर ॥५॥ फिर शुद्ध जलसे प्रक्षालन करके मन्त्र समूहोंका न्यास करै फिर शिवास्त्र मंत्रसे जो षडंगमें है स्पर्शकर कवचमंत्र हुम् से संयुक्त करै॥६॥ फिर मूल

रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरंध्रविदर्भितैः ॥ अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति ॥ ३ ॥ वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ॥ मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम् ॥ ४ ॥ एवं संग्रथितां मालां मंत्रसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ प्रक्षाल्य गंधतोयेन पंचगव्येन चोपरि ॥ ५ ॥ ततः शिवांभसाऽऽक्षाल्य ततो मंत्रगणान्न्यसेत् ॥ स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमंत्रेण कवचेनावगुंठयेत् ॥ ६ ॥ मूलमंत्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा ॥ सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च ॥ तस्योपरि न्यसेत्सांबं शिवं परमकारणम् ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा ॥ यस्य देवस्य यो मंत्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत् ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि कंठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम् ॥ रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना ॥ १० ॥ कंठे मूर्ध्नि हृदि प्रांते कर्णे बाहुयुगेऽथवा ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया युतः ॥ ११ ॥

मन्त्रसे न्यास करै यह स्वयं पूर्वोक्तप्रकारसेकरै वा गुरुके हाथसे करावे फिर सद्योजातादि मंत्रोंसे शोधन एकसौ आठ॥७॥ मूलमन्त्रको उच्चारणकर शुद्ध भूमिमें रख, उसके ऊपर अम्बासहित परमकारुणिक शंकरका न्यास करै॥८॥ इस प्रकार माला प्रतिष्ठित होकर सब कामना और फलके देनेवाली होती है जिस देवताकाजो मंत्र है उसको उसीसे पूजन करै ॥९॥ मूर्धा कंठ वा हाथमें जपमालाका न्यास करै अर्थात् जपके अन्तमें इस स्थानोंपर रखले नियतात्मा होकर रुद्राक्षमालासे जप करना चाहिये ॥ १० ॥ कंठ, शिर, हृदय, कान, बाहु इनमें परमभक्तिसे रुद्राक्ष धारण करना

चाहिये ॥ ११ ॥ बहुत कहने और वारंवार वर्णन करनेसे क्या है, रुद्राक्ष नित्य धारणसे प्रतिष्ठा होती है ॥ १२ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और विशेष कर दक्षिणाकालमें ॥१३॥ विनारुद्राक्षके धारण किये जो कुछ भी वैदिककर्म करते हैं वह मोहसे नरकमें जाते हैं ॥ १४ ॥ रुद्राक्षको शिरमें कण्ठमें यज्ञोपवीत और हाथमें सुवर्णमणिसे युक्त रुद्राक्ष धारण करे कुछ मिलाके नधारे अशुचि होकर रुद्राक्षको न धारण करै सदा भक्तिसे ही धारण करै रुद्राक्ष वृक्षसे लगी हुई वायुके तृण भी पुण्यलोकको प्राप्त होते हैं, जिनके जीवोंकी फिर आवृत्ति

किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते ॥ १२ ॥ स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥ १३ ॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कंठे सूत्रे करेऽथवा ॥ सुवर्णमणिसंभिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम् ॥ १५ ॥ नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत् ॥ रुद्राक्षतरुसंभूतवातोद्धूततृणान्यपि ॥ १६ ॥ पुण्यलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ रुद्राक्षं धारयन्पापं कुर्वन्नपि च मानवः ॥ १७ ॥ सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि ॥ पशवो हि च रुद्राक्षधारणाद्यांति रुद्रताम् ॥ १८ ॥ किमु ये धारयंतिस्म नरा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा ॥ ॥ १९ ॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम् ॥ व्याहरंति च नामानि ये शंभोः परमात्मनः ॥ २० ॥ रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः ॥ २१ ॥

नहीं होती रुद्राक्ष धारण कर पाप करते हुए भी मनुष्य ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब पापतर जाते हैं ऐसा जाबाल श्रुति कहती है पशु भी रुद्राक्ष धारणसे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं॥ १८॥ और जो मनुष्य रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं उनकी बात तो कौन कहै एक भी रुद्राक्ष जो शिरपर शिवके भक्त धारण करते हैं ॥१९॥ सब दुःखोंका ध्वंस करनेवाला और सब पापोंकामुक्त करनेवाला परमात्मा शंकरका जो नाम लेते हैं॥२०॥और

जो रुद्राक्षसे अलंकृत हैं वह उत्तम भागवत हैं सब कल्याणकी इच्छावालोंको सदा रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥२१॥ कर्ण, शिखा, कण्ठ, हाथ, उदरमें महादेव विष्णु और ब्रह्माकी विभूति हैं ॥ २२ ॥ तथा और भी देवता भक्तिसे रुद्राक्ष धारण करते हैं सबके गोत्र ऋषि सब कूटस्थ मूलरूपी श्रौतधर्ममें रत रुद्राक्षके धारण करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ उन्हींसे सब मुनियोंके वंश हैं वे सब रुद्राक्षधारी श्रौतधर्ममें तत्पर और शुद्ध हैं ॥ २४ ॥ वेदसिद्ध रुद्राक्षधारणमें एकसंग श्रद्धा नहीं होती परन्तु बहुत जन्मोंके अन्तमें महादेवके प्रसादसे ॥२५॥ रुद्राक्षधारणमें स्वभावसे ही

कर्णपाशे शिखायां च कंठे हस्ते तथोदरे ॥ महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः ॥ २२ ॥ देवाश्चान्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः ॥ गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः ॥ २३ ॥ तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि ॥ श्रोतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः ॥ २४ ॥ श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे ॥ बहूनां जन्मनामंते महादेवप्रसादतः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणे वांछा स्वभावादेव जायते ॥ रुद्राक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु ॥ २६ ॥ पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च ॥ रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २७ ॥ फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत् ॥ शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥ २८ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥ हस्ते चोरसि कंठे च कर्णयोर्मस्तके तथा ॥ रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः ॥३०॥ अवध्यः सर्वभूतानां रुद्रवद्विचरेद्भुवि ॥ सुराणामसुराणां च वंदनीयो यथा शिवः ॥ ३१ ॥

वांछा होती है रुद्राक्षमाहात्म्य जाबालश्रुतियोंमें आदरपूर्वक ॥२६॥ सब मुनियोंसे पढ़ा जाता है हे पुत्र। हम भी पढते हैं रुद्राक्षका फल त्रिलोकीमें विख्यात है ॥२७॥ रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य और धारणसे उससे भी सौकोटिगुण पुण्य होता है ॥२८॥ लक्षकोटि सहस्र लक्षकोटि सौगुना फल जपसे प्राप्त होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ हाथ, हृदय, कंठ कान और मस्तकमें जो रुद्राक्ष धारण करता है वह शिव है इसमें संदेह नहीं ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियोंसे अवध्य हो भूमिमें विचरण करता है वह शिवके समान सुरासुरोंका वन्दनीय होता

है ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सदा मनुष्योंसे वन्दनीय होता है उच्छिष्ट वा विकर्ममें स्थित वा सब पापोंसे युक्तहो ॥ ३२ ॥ वह रुद्राक्षके धारणसे सब पापोंसे छूट जाता है कंठमें रुद्राक्ष बांधकर श्वान भी यदि प्राण त्यागे ॥ ३३ ॥ वह भी मुक्त होजाता है मनुष्योंकी तो बातही क्याहै जप ध्यानसे विहीन भी यदि रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३४ ॥ वह सब पापसे निर्मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है जो एक भी रुद्राक्ष यत्नपूर्वक धारण करता है ॥ ३५ ॥ वह इक्कीस कुलका उद्धार करके रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता

रुद्राक्षधारी सततं वंदनीयस्तथा नरैः ॥ उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ३२ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ कंठे रुद्राक्षमाबध्य श्वापि वा म्रियते यदि ॥ ३३ ॥ सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः ॥ जपध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥ ३४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ एकं वापि हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत् ॥ ३५ ॥ एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ महासेन कुशग्रंथिपुत्रा जीवादयः परे ॥ रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम् ॥ १ ॥ पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः ॥ नदीनां तु यथा गंगा मुनीनां कश्यपो यथा ॥ २ ॥ उच्चैःश्रवा यथाश्वानां देवानामीश्वरो यथा ॥ देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ ३ ॥ नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम् ॥ अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥ ४ ॥

है अब रुद्राक्षका फिर विधान कहता हूं ॥ ३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ईश्वर बोले हे महासेन ! कुशग्रंथि जीयापोता आदिक जो कितनेही दूसरी वस्तु हैं यह रुद्राक्षकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त हो सकते ॥१॥ पुरुषोंमें जैसे विष्णु ग्रहोंमें जैसे सूर्य, नदियोंमें जैसी गंगा, मुनियोंमें कश्यप ॥२॥ अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें जैसे महादेव, देवीमें जैसी गौरी इसीप्रकार यह सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ इससे परे दूसरा स्तोत्र इससे परे व्रत तथा अक्षय्य दोनोंमें रुद्राक्ष सबसे विशेष है ॥ ४ ॥

शिवभक्त शान्तके निमित्त उत्तम रुद्राक्ष देने चाहिये उसके पुण्यफलकी अनन्तता कोई नहीं कह सकता ॥ ५ ॥ कंठमें रुद्राक्षधारण किये पुरुषको जो अन्न देता है वह कुलोंका उद्धारकर रुद्रलोकको जाता है ॥ ६ ॥ जिसके मस्तकमें विभूति, अंगमें रुद्राक्ष नहीं जो शिवके मंदिरमें जाकर पूजा नहीं करता वह ब्राह्मण श्वपचोंमें नीच है ॥७॥ मांस खाते मद्य पीते अन्त्यजोंका संग करते भी शिरमें रुद्राक्ष धारण करके पातकोंसे छूटता है ॥ ८ ॥ सब यज्ञ तपो दान वेदाभ्यासका जो फल है वह फल रुद्राक्षके धारणसे तत्काल मिलता है ॥ ९ ॥ जो चार वेद और पुराणपाठका फल

शिवभक्ताय शांताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् ॥ तस्य पुण्यफलस्यांतं नचा ह वक्तुमुत्सहे ॥५॥ धृतरुद्राक्षकंठाय यस्त्वन्नं संप्रयच्छति त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥६॥ यस्य भाले विभूतिर्न नांगे रुद्राक्षधारणम् ॥ न शंभोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः ॥७॥ खादन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्नंत्यजानपि ॥ पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम् ॥ यत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ ९ ॥ वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च ॥ यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वं विद्यादिभिस्तथा ॥१०॥ तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ प्रयाणकाले रुद्राक्षं बंधयित्वा म्रियेद्यदि ॥११॥ स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते ॥ रुद्राक्षं धारयेत्कंठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि ॥१२॥ कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः ॥ ब्राह्मणो वापि चांडालो निर्गुणः सगुणोऽपि च ॥१३॥ भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत् ॥ शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाऽभक्षस्य भक्षकः ॥१४॥ म्लेच्छो वाप्यथ चांडालो युतो वा सर्वपातकैः॥ रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः ॥१५॥

है जो तीर्थ और सब विद्यासेवनका फल है वह फल शीघ्र ही रुद्राक्षधारणसे प्राप्त होता है प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारणकर यदि मरजाय॥१०॥११॥ वह फिर जन्मको प्राप्त न होकर रुद्रलोकमें गमन करता है कंठ और भुजामें रुद्राक्ष धारण करके यदि मृत्यु होजाय ॥१२॥ वह २१ कुल तारकर रुद्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण वा चाण्डाल निर्गुण वा सगुण कोई हो ॥ १३ ॥ भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवताको प्राप्त होता है, शुचि अशुचि अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १४ ॥ म्लेच्छ चाण्डाल वा सब पातकोंसे युक्त हो वह रुद्राक्ष धारणसे रुद्रही हो जाता

है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ एक कोटि गुना फल शिरपर, दश कोटि कर्णमें, शतकोटि गलेमें मूर्धापर सहस्र कोटि ॥१६॥ यज्ञोपवीतमें अयुत, भुजाओंमें लक्षकोटि गुना फल होता है, तथा मणिबंधनमें रुद्राक्ष धारणकर मोक्षसाधनमें तत्पर होता है ॥ १७ ॥ रुद्राक्षधारण करता हुआ जो कुछ कर्म ब्राह्मण वेदके अनुसार करता है उससे बडे फलको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जो भक्तिरहित होकर भी कंठमें रुद्राक्षकी मालाको धारण करता है वह पापकर्मा भी मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ जो रुद्राक्षमें चित्त लगाकर रुद्राक्ष धारण करता है वह शिवभक्त शिवलोकमें

शिरसा धार्यते कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः ॥ शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥ १६ ॥ अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते ॥ मणिबंधे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः ॥ १७ ॥ रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम् ॥ १८ ॥ रुद्राक्षमालिकां कंठे धारयेद्भक्तिवर्जितः ॥ पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबंधनात् ॥ १९ ॥ रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तु न वै धृतः ॥ असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिंगवत् ॥ २० ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा ॥ ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ रुद्राक्षान्संदधे देव गर्दभः केन हेतुना ॥ कीकटे केन वा दत्तस्तद्ब्रूहि परमेश्वर ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विंध्यपर्वते ॥ धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु ॥ २३ ॥ श्रांतोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि ॥ प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः ॥ २४ ॥

शिवके समान नमस्कृत होता है ॥ २० ॥ विद्यावान् वा अविद्यावान् कोई भी रुद्राक्ष धारण करे वह शिवलोकको प्राप्त होता है, जैसे कीकट देशमें रासभ मुक्त हुआ ॥२१॥ स्कन्दजी बोले हे देव ! गर्दभने किस प्रकार रुद्राक्ष धारण किया ? कीकटमें किसने उसको दिया सो आप भलीप्रकार कहिये ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले हे पुत्र ! पहली एक कथा सुनो विंध्याचल पर्वतपर एक गर्दभ रहता था, वह पथिकद्वारा रुद्राक्ष भार ढोया करता था ॥ २३ ॥ एक समय वह भार उठानेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिरगया और प्राण

निकल गये तब त्रिनेत्र शूलपाणि महेश्वररूप हो ॥ २४ ॥ मेरे प्रमादसे वह मेरे समीप प्राप्त हुआ जितने रुद्राक्षोंके मुखकी संख्या थी ॥ २५ ॥ उतनेही सहस्रवर्ष शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाई यह अपने शिष्योंके प्रतिही कहनी अशिष्योंसे नहीं कहनी ॥ २६ ॥ अभक्त तथा मूर्खोंसे कथाओंको प्रकाश न करे कोई अभक्त वा भक्त नीचसे भी नीच क्यों न हो ॥ २७ ॥ जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब पातकोंसे छूट जाता है रुद्राक्षके धारणका पुण्य किसके समान कहै ॥ २८ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह महाव्रत कहा है जो सहस्र रुद्राक्षको

मत्प्रसादान्महासेन मदंतिकमुपागतः ॥ यावद्वक्त्रास्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम् ॥ २५ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिव लोके महीयते ॥ स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन ॥ २६ ॥ अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत् ॥ अभक्तो वास्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा ॥ २७ ॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥२८॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥२९॥ तं नमंति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडशषोडश ॥३०॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु ॥ द्वात्रिंशत्कंठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥३१॥ एकैकं कर्णयोः षट्षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्स तु पूज्यते ॥३२॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकांचनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥ ३३ ॥ केवलानपि रुद्राक्षान्यथालस्या द्बिभर्ति यः ॥ तं न स्पृशंति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ ३४ ॥

धारण करता है ॥ २९ ॥ उसको सब देवता प्रणाम करते हैं वह रुद्रके समान है सहस्र न मिलें तो भुजाओंमें सोलह २ धारण करै ॥ ३० ॥ शिखामें एक, हाथोंमें बार २ कंठमें ३२ और चालीस मस्तकमें ॥ ३१ ॥ एक एक कानमें छः छः वक्षस्थलमें १०८ रुद्राक्ष जो धारण करता है वह रुद्रके समान पूजित होता है ॥ ३२ ॥ मुक्ता प्रवाल (मूँगा) स्फटिक चांदी वैडूर्य सुवर्णसहित जो धारण करता है वह शिवरूप होता है ॥ ३३ ॥ जो आलस्यसेही केवल रुद्राक्षोंको धारण करता है उसको पाप नहीं छूसकते जैसे सूर्यको अंधकार ॥ ३४ ॥

रुद्राक्ष मालाका मंत्र जपनेसे अनन्त फलका देनेवाला होता है जिसके अंगमें बहुत पुण्य देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है॥३५॥उसका जन्म निरर्थक होता है इसीप्रकार त्रिपुण्ड्ररहित है जो कोई रुद्राक्ष शिरपर धारण करके शिरसे स्नान करता है॥३६॥उसको गंगास्नानका फलप्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं.एकमुखी पंचमुखी एकादशमुखी॥३७॥चौदहमुखी रुद्राक्ष लोकमें पूजित है जो शंकरात्मक रुद्राक्षको भक्तिसे पूजन करता है ॥ ३८ ॥ वह दरिद्रको भी राजा करदेता है इसमें आपसे उत्तम पुराणका मत कहता हूं ॥ ३९ ॥ कोशल देशमें कोई ब्राह्मण गिरिनाथ नामक बडा

रुद्राक्षमालया मंत्रो जप्तोऽनंतफलप्रदः ॥ यस्यांगे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ॥ ३५ ॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुंड्ररहितं यथा ॥ रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः ॥ ३६ ॥ गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ एकवक्त्रः पंचवक्त्र एकादशमुखाः परे ॥ ३७ ॥ चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ॥ भक्त्या संपूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शंकरात्मकः ॥३८॥ दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्गिरिनाथ इति श्रुतः ॥ महाधनी च धर्मात्मा वेदवेदांगपारगः ॥४०॥ यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुन्दराकृतिः॥ नाम्ना गुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः ॥४१॥ गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्तावलीमथ ॥ मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च ॥४२॥ संगतस्तु तया सार्धं कंचित्कालं ततो भिया ॥ विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चात्तु निर्भयः ॥ ४३ ॥ यदा माता पिता कर्म किंचिज्जानाति यत्क्षणे ॥ मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात् ॥ ४४ ॥

विख्यात महाधनी धर्मात्मा वेदवेदांगका पारगामी ॥ ४० ॥ यज्ञ करनेवाला दीक्षित था उसका पुत्रभी सुन्दर गुणनिधि नामवाला तरुण कामवत सुन्दर था ॥ ४१ ॥ वह सुधिष्ण गुरुकी मुक्तावली पत्नीको अपने रूपयौवनमदसे मोहित करता हुआ ॥ ४२ ॥ उसके साथ कुछ कालतक तो भयसहित संगति करता हुआ पीछे गुरुको विष देकर उससे निर्भय मैथुन करने लगा ॥ ४३ ॥ जब माता पिताने उसके इस कुकर्मको जान

तव विष देकर उनको भी मारडाला ॥४४॥ तव अनेक विलासभोगमें द्रव्यके व्यय हो जानेसे वह दुष्ट ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करनेलगा ॥४५॥ सुरापानसे मदोन्मत्त होनेके कारण ज्ञातिने उसको बाहर कर दिया सवने इसको ग्रामसे निकाल दिया तव यह वनचारी हो गया ॥४६॥ तव उस मुक्तावलीके साथ गहन वनको चला गया, मार्गमें स्थित हो द्रव्यके लोभसे बहुतसे ब्राह्मणोंको मारडाला॥४७॥ इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे वह अधम मृत्युको प्राप्त होगया उसको लेनेको अनेक यमदूत आये ॥ ४८ ॥ उसी अवसर शिवलोकसे शिवजीके गण आये हे गिरजासुत !

नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः॥ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः ॥४५॥ सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिवहिष्कृतः ॥ ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः ॥४६॥ मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम्॥मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान्वहून् ॥४७॥ एवं वहुगते काले ममार स तदाऽधमः ॥ नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥४८॥ शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः ॥ तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत ॥ ४९ ॥ यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि ॥ ब्रुवंतु सेवकाः शंभोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ ॥ ५० ॥ शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः ॥ दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि ॥ ५१ ॥ तत्प्रभावेन हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम् ॥ ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः ॥ ५२ ॥ गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शंकरालयम् ॥ इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत ॥ ५३ ॥

उनका परस्पर विवाद होनेलगा ॥४९॥ यमदूत बोले इसका क्या पुण्य है हे शिवके सेवको कहो ! जिसके कारण तुम इसको लेने आये हो ॥५०॥ शिवदूत बोले यह जिस स्थानमें मृतक हुआ है वहां भूमिसे दश हाथ नीचे रुद्राक्ष है ॥ ५१ ॥ हे दूतो ! उसीके प्रभावसे हम इसको शिवके समीप ले जायँगे तव वह ब्राह्मण दिव्यरूप धर विमानपर चढ ॥ ५२ ॥ गुणनिधि दूतोंके साथ शिवके स्थानको गया । हे सुव्रत ! यह तुमसे

रुद्राक्षका माहात्म्य कहा ॥ ५३ ॥ यह रुद्राक्षकी महिमा संक्षेपसे तुमसे कही यह सब पापक्षयकारी महापुण्यका फल देनेवाला है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! इस प्रकार शिवजीने कार्तिकेयसे कहा था, रुद्राक्षकी महिमा जानकर वह कृतार्थ हुए ॥ १ ॥ इस प्रकार रुद्राक्षका प्रभाव मैंने कहा सदाचारके प्रसंगसे औरभी सुनो ॥ २ ॥ जैसे रुद्राक्षकी महिमा बहुत पुण्यकी देनेवाली कही है वैसेही लक्षण और मंत्र न्यास भी मैं तुमसे वर्णन करता हूं हे मुने ! सुनो ॥ ३ ॥

एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया ॥ सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं नारद षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः ॥ रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वाऽसीत्स कृतार्थकः॥१॥ इत्थंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्णितो मया॥सदाचारप्रसंगेन शृणु चान्यत्समाहितः॥२॥यथारुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनन्तपुण्यदः ॥ लक्षणं मंत्रविन्यासं तथाऽहं वर्णयामि ते ॥ ३ ॥ लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ॥ तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥४॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ॥ ॥ ५ ॥ रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम् ॥ धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥ बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः ॥ अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ॥ वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ८ ॥

देखनेसे लाखगुण स्पर्शसे करोड गुण और धारणसे उससे भी कोटि गुण पुण्य फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ लक्षकोटि सहस्र लक्षकोटि सौ गुना रुद्राक्षके जपसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ रुद्राक्षोंमें भद्राक्ष धारणका बडा पुण्य है आमलेके समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ बेरके समान मध्यम, चनेके समान अधम हैं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ७ ॥ शिवकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चार प्रकारके रुद्राक्षके वृक्ष हैं

उन्हींके जातवाले सुभाक्ष कहाते हैं ॥ ८ ॥ श्वेत ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीत वर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र जानने ॥ ९ ॥ ब्राह्मण श्वेत वर्णके, क्षत्रिय, लाल, वैश्य और शूद्र कृष्ण वर्णके धारण करै ॥ १० ॥ समान स्निग्ध दृढ कंटक उठे हुए शुभ होते हैं कृमिदष्ट छिन्न भिन्न कंटकोंसे रहित ॥ ११ ॥ व्रणयुक्त अनावृत यह छः प्रकारके रुद्राक्ष धारण न करे जिसमें स्वयं छिद्र हो वह उत्तम रुद्राक्ष है ॥१२॥ और जो यत्नसे छिद्र किया रुद्राक्ष है वह मध्यम है समस्निग्ध, दृढ, गोलदानोंको रेशमके सूत्रसे पहरे ॥ १३ ॥ सब शरीरमें साम्यता

श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः॥पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥९॥ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान्रक्ता न्राजा तु धारयेत्॥पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत्॥१०॥समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत्कंटकैः संयुताः शुभाः॥कृमिद ष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कंटकै रहितांस्तथा॥११॥व्रणयुक्तानावृतांश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत्॥स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः॥१२॥ यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्॥समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत्॥१३॥ सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविल क्षणा॥ निघर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते॥१४॥तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः॥शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत् ॥ १५ ॥ षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश ॥ मणिबंधे द्वादशाक्षान्स्कंधे पंचाशतं भवेत् ॥१६॥अष्टोत्तरशतैर्मा लोपवीतं च प्रकल्पयेत्॥द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कंठदेशतः ॥ १७ ॥ कुंडले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च ॥ केयूरे कट के चैव कुक्षिवंशे तथैव च ॥ १८ ॥ सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥ त्रिशतं त्वधमं पंचशतं मध्यममुच्यते ॥ १९ ॥

पूर्वक विलक्षण धारण करै जैसे कसौटीपर घर्षण करनेसे सुवर्ण रेखा पड जाती है इस प्रकार जिसकी कसौटीपर रेखा पडजाय ॥ १४ ॥ वह उत्तम रुद्राक्ष शिव भक्तोंको सदा धारण करना चाहिये जो शिखामें एक और तीस रुद्राक्ष शिरपर धारण करता है ॥ १५ ॥ गलेमें बाहुओंमें सोलह सोलह पहुँचेमें बारह और स्कन्धदेशमें पचास धारण करता है ॥ १६ ॥ एकसौ आठकी मालासे यज्ञोपवीतकी कल्पना करै दो लड वा तीन लडकी माला कण्ठमें धारण करै ॥ १७ ॥ कुंडल, मुकुट, कर्णिका, हार, केयूर, कटक, कुक्षिवंशमें ॥ १८ ॥ सोते पान करते सब समयमें

मनुष्य रुद्राक्ष धारण करै तीनसौ धारण करना अधम, पांचसौ धारण करना मध्यम है ॥ १९ ॥ सहस्र धारण करना उत्तम है इस प्रकारके भेदसे धारण करै शिरमें 'ईषानं' मंत्रसे कानमें 'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि मंत्रसे ॥ २० ॥ ललाटमें अघोर मंत्रसे इसी मन्त्रसे हृदयमें अघोर बीज मन्त्रसे हाथोंमें धारण करै ॥ २१ ॥ पचास रुद्राक्षकी माला 'वामदेव' मन्त्रसे उदरमें इस प्रकार पंच ब्रह्म मन्त्रोंसे अंगोंमें रुद्राक्ष धारण करै ॥ २२ ॥ मूलमन्त्रसे ग्रथित कर रुद्राक्षोंको धारण करै एकमुखी रुद्राक्ष परतत्वका प्रकाशक

सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत् ॥ शिरसीशानमंत्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ॥ २० ॥ अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च ॥ अघोरबीजमंत्रेण करे यो धारयेत्पुनः ॥ २१ ॥ पंचाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ॥ पंचब्रह्मभिरंगैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम् ॥ २२ ॥ ग्रथितान्मूलमंत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥ एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः ॥ २३ ॥ परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम् ॥ द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ॥ २४ ॥ धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥ त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥२५॥ त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः ॥ तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यशः ॥ २६ ॥ चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः ॥ तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥ महती ज्ञान संपत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः ॥ पंचमुखस्तु रुद्राक्षः पंचब्रह्मस्वरूपकः ॥ २८ ॥

॥ २३ ॥ परतत्वकी धारणासे उसका प्रकाश होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी अर्धनारीश्वर होता है जो उसे धारण करता है उससे अर्धनारीश्वर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २४ ॥ त्रिमुखी अग्निरूप है साक्षात् स्त्रीहत्याको दूर करता है ॥ २५ ॥ त्रिमुखी रुद्राक्ष भी तीन अग्निके रूपवाला है उसके धारणसे अग्निकी तृप्ति होती है ॥ २६ ॥ चतुर्मुखी रुद्राक्ष पितामह स्वरूपवाला है उसके धारणसे श्री और उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥ इससे महाज्ञान, सम्पत्ति और शुद्धिके निमित्त मनुष्यको धारण करना चाहिये पंचमुखी रुद्राक्ष पंचब्रह्म स्वरूप

१ यह मन्त्र हमारे टीका किये शिवपुराणमें देखो ।

वाला है ॥ २८ ॥ उसके धारणमात्रसे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं षण्मुखीके कार्तिकेय देवता हैं ॥ २९ ॥ कोई बुद्धिमान् गणेश देवता कहते हैं इससे यह दोनों प्रसन्न होते हैं सात मुखी रुद्राक्षकी सात मातायें देवता हैं ॥ ३० ॥ तथा सूर्य और सातों मुनि भी देवता हैं इसके धारणसे महालक्ष्मी और महाआरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥ पवित्र होकर धारण करनेसे बडी ज्ञानकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अष्टमुखी रुद्राक्षकी आठ मातायें देवता हैं ॥३२॥ यह आठो वसु और गंगाकोभी प्रसन्न करनेवाला है इसके धारण करनेसे यह सत्यवादी देवता प्रसन्न होते हैं॥३३॥

तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति महेश्वरः ॥ षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्त्तिकेयाधिदैवतः ॥ २९ ॥ विनायकं चापि देवं प्रवदंति मनीषिणः ॥ सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः ॥ ३० ॥ सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः ॥ तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्स हदारोग्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः ॥ अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः ॥३२॥ वस्वष्टक प्रीतिकरो गंगाप्रीतिकरः शुभः ॥ तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥ ३३ ॥ नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः ॥ तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा ॥ ३४ ॥ दश वक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः ॥ दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादश दैवतः ॥ तमिंद्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ॥ ३६ ॥ रुद्राक्षो द्वाद शमुखो महाविष्णुस्वरूपकः ॥ द्वादशादित्यदवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥ ३७ ॥ त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः ॥ तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥ ३८ ॥

नवमुखीके यमराज देवता हैं इसके धारणसे यमराजका भय नहीं होता है ॥३४॥ दशमुखी रुद्राक्षकी दशदिश देवता हैं इसके धारणसे दशों दिशाओंको प्रीति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ एकादशमुखीके ग्यारह रुद्र देवता हैं, इन्द्र देवता भी कहाते हैं यह सदा प्रीतिका बढानेवाला है ॥३६॥ बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुके स्वरूपवाला है इसके बारह आदित्य देवता हैं इसके धारणसे उनकी प्रीति होती है॥३७॥ तेरहमुखी रुद्राक्ष काम और सिद्धि देनेवाला है इसके धारणमात्रसे कामदेव प्रसन्न होता है ॥ ३८ ॥

चौदहमुखी रुद्रके नेत्रसे प्रगट हुआ है यह सब व्याधि हरनेवाला और सब आरोग्यको देनेवाला है ॥ ३९ ॥ मद्य, आमिष, लहसन, प्याज, शिग्रु (सहिंजना) श्लेष्मातक, (लहसोडा) विड्वराह इतनी वस्तुओंका रुद्राक्षधारी सेवन न करै ॥ ४० ॥ ग्रहण विषुव (मेषतुला) संक्रान्ति अयनसमय अमावस पूर्णिमा पवित्र दिनोंमें ॥ ४१ ॥ रुद्राक्ष धारणसे शीघ्रही सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले हे महामुने ! अब भूतिशुद्धिका प्रकार तुमसे कहते हैं पर देवता कुंडलीको

चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ॥ सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ॥ ३९ ॥ मद्यं मांसंच लशुनं पलांडुं शिग्रुमेव च ॥ श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥४०॥ ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा ॥ दश च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि ॥४१॥ रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने ॥ मूलाधारात्समुत्थाय कुंडलीं परदेवताम् ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरंध्रगतां स्मरेत ॥ जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमंत्रेण साधकः ॥ २ ॥ पादादिजानुपर्यंतं चतुष्कोणं सवज्रकम् ॥ लंबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमंडलम् ॥ ३ ॥ जान्वाद्यानाभि चंद्रार्धनिभं पद्मद्वयांकितम् ॥ वंबीजयुक्तं श्वेताभमंभसो मंडलं स्मरेत् ॥ ४ ॥ नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ॥ रंबीजेन युतं रक्तं स्मरेत्पावकमंडलम् ॥ ५ ॥ हृदो भ्रूमध्य पर्यंतं वृत्तं षड्बिंदुलांछितम् ॥ यं बीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मंडले स्मरेत् ॥ ६ ॥

मूलाधारसे उठाकर॥ १॥ सुषुम्नामार्गमें आश्रित होकर ब्रह्मरंध्रतक गई है इसप्रकार विचार करै और साधक हंसमात्रसे जीवब्रह्मकी एकता संयुक्त करके ॥२॥ चरणोंसे लेकर जानुपर्यन्त चतुष्कोण यंत्रका विचार करै उससे लंबीजसे युक्त सुवर्णके वर्णका अवनीमण्डल स्मरण करै॥ ३॥ जानुसे आदि लेकर नाभि पर्यन्त अर्धचन्द्रके समान दोपद्मसे अंकितबीजसे युक्त श्वेतकांतिवाले सोममण्डलका स्मरण करै ॥ ४ ॥ नाभिसे लेकर हृदयपर्यन्त त्रिकोण स्वस्तिक आसन बीजसे युक्त रक्तवर्ण पावक मंडलका स्मरण करे ॥ ५ ॥ हृदयसे लेकर भ्रूमध्य पर्यंत गोल छः बिन्दुसे लक्षित यंबीजसे

युक्त धूम्रवर्ण वायुमंडलका स्मरण करै ॥६॥ भ्रूमध्यसे ब्रह्मरंध्रपर्यंत गोलाकार स्वच्छ परममनोहर हंबीजयुक्त आकाशमण्डलका विचार करै ॥ ७ ॥ इसप्रकार भूतोंकी चिन्ताकर प्रत्येकको अपनेमें लयकरै भूको जलमें जलको अग्निमें अग्निको वायुमें वायुको आकाशमें ॥ ८ ॥ विलीन करके आकाशको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें महान्को प्रकृतिमें मायाको आत्मामें लय करै ॥ ९ ॥ शुद्धसंवित् होकर अपने शरीरमें पाप पुरुषका चिन्तन करै जो बाईं ओर स्थित कृष्णवर्ण अंगुष्ठपरिमाणवाला है ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यारूप शिरसे युक्त कनककी चोरीरूप बाहुसेयुक्त मदिरापानरूपी हृदय गुरुतल्परूपी कटिसे युक्त ॥ ११ ॥ उसके संसर्गरूपी दोनों चरण उपपातकरूप मस्तकसे संयुक्त खड्ग चर्म धारण करनेवाले

आब्रह्मरंध्र भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छं मनोहरम् ॥ हंबीजयुक्तमाकाशमण्डलं च विचिंतयेत् ॥७॥ एवंभूतानि संचिंत्य प्रत्येकं संविलापयेत् ॥ भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम् ॥ ८ ॥ विलाप्य खमहंकारे महत्तत्त्वेऽप्यहंकृतिम् ॥ महांतं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत् ॥ ९ ॥ शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिंतयेत्पापपूरुषम् ॥ वामकुक्षिस्थितं कृष्णमंगुष्ठपरिमाणकम् ॥१०॥ ब्रह्महत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम् ॥ मदिरापानहृदयगुरुतल्पकटीयुतम् ॥ ११ ॥ तत्संसर्गिपदद्वंद्वमुपपातकमस्तकम् ॥ खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ॥१२॥ वायुबीजं स्मरन्वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत् ॥ स्वशरीरयुतं मंत्री वह्निबीजेन निर्दहेत् ॥ १३ ॥ कुंभके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् ॥ बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुबीजेन रेचयेत् ॥ १४ ॥ सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म संप्लावयेत्सुधीः ॥ भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकांडवत् ॥ १५ ॥

दुष्ट, अधोमुखसे दुःसह ॥ १२ ॥ इस प्रकार चिन्ताकर वायुबीजको स्मरण कर उस बीजसे उठी हुई वायुद्वारा पूरक प्राणायामसे देहको पूर्णकर पाप पुरुषको शुष्ककरै पश्चात् अपने शरीरमें स्थित पापपुरुषको रंबीजसे अग्नि प्रगट कर भस्म करै ॥ १३ ॥ कुंभकद्वारा वह्नि बीजके जपके उपरान्त वायुबीजको उच्चारणकर पापपुरुषकी भस्मको अपने शरीरसे बाहर फेंक दे यह क्रिया रेचक प्राणायामसे करै ॥ १४ ॥ अनन्तर स्वशरीरोद्भव भस्मको अमृत बीज 'वम्' बीजका उच्चारणकरके उससे उठे अमृतसे उसे संप्लावित करै जिससे पिण्डहो पीछे भूबीज 'लम्'

मंत्रसे उसभस्मको घनीभूत करै और उसको कनक अंडवत् भावनाकरै ॥ १५ ॥ फिर आकाशका हंबीज जपकर उसपिंडकी मुकुराकार भावना करै फिर उस पिण्डके मूर्धासे नखपर्यन्त अवयव मनसेही रचना करै ॥ १६ ॥ फिर जिस क्रमसे ब्रह्ममें पंचभूतोंका संहार किया है इसी क्रमसे फिर ब्रह्मसे पंचभूतोंको प्रगट करै, फिर 'सोहम्' मंत्रसे ब्रह्ममें एकीभूत हुए जीवको हृदयकमलमें लावे ॥ १७ ॥ पहले जैसे कुंडलीमें जीवब्रह्मसे संयुक्त हुआ था वही कुंडली उस परमात्माके संगसे सुधामय जीवनको हृदयकमलमें स्थापनकर मूलाधारमें प्रातस्स्मरण करै यही जीवनका प्रकार है इसके उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा करै ॥ १८ ॥ शोणसागरमें स्थित नौका है उसमें स्थित एक रक्तकमल है उसमें आरूढ करकमलोंमें

विशुद्धमुकुराकारं जपबीजं विहायसः ॥ मूर्धादिपादपर्यंतान्यंगानि रचयेत्सुधीः ॥ १६ ॥ आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः ॥ सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमायेद्धृदयांबुजे ॥ १७ ॥ कुण्डली जीवमादाय परसंगात्सुधामयम् ॥ संस्थाप्य हृदयांभोजे मूलाधारगतां स्मरेत् ॥ १८ ॥ रक्तांभोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः शूलं कोदंडमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यंकुशं पञ्चबाणान् ॥ बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥ १९ ॥ एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम् ॥ विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतिसिद्धये ॥ २० ॥ विभूते विंस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम् ॥ श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शूलकोदण्ड अर्थात् इक्षुका धनुष्य, पास अंकुश, पांच बाण, रक्तपूर्ण कपाल, धारण किये षड्हस्ता, तीन नेत्रसे शोभित, पीनवक्षस्थल बालसूर्यके समान वर्णवाली देवी पराप्राणशक्ति हमको सुखकारी हो ॥ १९ ॥ इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्तिको ध्यान करके प्राणको स्थापनकर सब सिद्धिके निमित्त विभूति धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ विभूतिके धारणका महाफल विस्तारसे कहता हूं कि श्रुतिस्मृतिके पुराणसे युक्त भस्मधारण करना परमउत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीनारायण बोले जिन ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक यह शिरोव्रत किया है उन्हींसे अज्ञानबाधक इस परा विद्याको प्रकाश करना चाहिये ॥ १ ॥ और जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत नहीं किया है उनको श्रुतिस्मृतिका आचरण उपकारी नहीं होता ॥ २ ॥ शिरोव्रतके आचारवाले ब्रह्मादि देवता हैं इससे ब्रह्माने ब्रह्मत्व पाया है औरसे नहीं ॥ ३ ॥ शिरोव्रतका माहात्म्य पूर्वसे पूर्वतरोंने भी किया है. सब ब्रह्मा विष्णु रुद्रदेवता शिरोव्रत करते हैं ॥ ४ ॥ सब पातकोंसे युक्त हुआ भी, इसके अनुष्ठानसे सब पातकोंसे

श्रीनारायण उवाच ॥ इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः ॥ तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम् ॥ १ ॥ विधिवच्छ्रद्धयासार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम् ॥ श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः ॥२॥ शिरोव्रतसमाचारा देवब्रह्मादिदेवताः ॥ देवता अभवन्विद्वन् खलु नान्येन हेतुना ॥३॥ शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वं पूर्वतरं कृतम् ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि ॥४॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ शिरोव्रतमिदं येन चरितं विधिवद् बुध ॥ ५ ॥ शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः ॥ यदुक्तं तद्धिनैवान्यत्तत्तु पुण्येन लभ्यते ॥ ६ ॥ शाखाभेदेषु नामानि व्रतस्यास्या विभेदतः ॥ पठ्यंते मुनिशार्दूल शाखास्वे कव्रतं हि तत् ॥ ७ ॥ सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम् ॥ तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम् ॥ ८ ॥ शिरोव्रतविहानस्तु सर्वधर्मविवर्जितः ॥ अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः ॥ ९ ॥

छूट जाता है, हे ब्राह्मणो ! जिन्होंने शिरोव्रतका आचरण किया है वह मंगलको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ अथर्वशिर उपनिषदमें यह शिरोव्रत कथन किया है परन्तु यह पुण्यके द्वारा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे मुनिराज ! शाखाभेदसे इस एकही व्रतके अनेकनाम पढेजाते हैं कोई पाशुपत और कोई उसे शिवव्रत कहते हैं ॥ ७ ॥ सब शाखाओंमें यह एकही शिवनामक व्रत सत् चित् घन है तथा उसको विषयका ज्ञान इसी प्रकार शिरोव्रत है ॥ ८ ॥ शिरोव्रतसे विहीन पुरुष सब धर्मोंसे रहित होता है सब विद्याओंमें अधिकारी हो तो भी धर्मवर्जित ही जानना

यदि यह व्रत न किया हो ॥ ९ ॥ यह शिरोव्रत पापरूपी वनका दहन करनेवाला है सब विद्याओंका साधक है इस कारण इसको भलीभांतिसे आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥ अथर्वणकी श्रुति सूक्ष्म अर्थका प्रकाश करनेवाली है उसने प्रीतिसे जो कहा है उसको भली प्रकार आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥ अग्नि इत्यादि छःमंत्र अर्थात् 'अग्निरितिभस्म, जलमितिभस्म, स्थलमितिभस्म, वायुरितिभस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं हवाइदं भस्म' इन अथर्वणमें कहे छः मंत्रोंद्वारा भस्मको सब अंगमें लगावै इसका नाम शिरोव्रत है ॥ १२ ॥ सन्ध्यासमय आदरसे यह शिरोव्रत करै जबतक ब्रह्मविद्याका उदय हो तबतक उसकी विद्या उत्तम है ॥ १३ ॥ बारह वर्ष, एकवर्ष, छःमहीने तीन महीने अथवा बारह

शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकांतारदाहकम् ॥ साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत् ॥ १० ॥ श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत् ॥ ११ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम्॥१२॥एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्संध्याकालेषु सादरम् ॥ यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा॥१३॥द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम् ॥ प्रकुर्याद् द्वादशाहं वा संकल्पेन शिरोव्रतम् ॥ १४ ॥ शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः ॥ तस्य विद्या विनष्टा स्यान्निर्घृणः स गुरुः खलु ॥१५॥ ब्रह्मविद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु ॥ यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुः कारुणिकः खलु ॥ १६ ॥ जन्मांतरसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः ॥ तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन ॥१७॥ प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद् द्वेष एव विजायते ॥ अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम् ॥ १८ ॥

दिन संकल्प करके शिरोव्रत करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो शिरोव्रतसे स्नात है उसको जो गुरु उपदेश नहीं करता उसकी विद्या नष्ट होती है और वह गुरु कठोर है ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्याका देनेवाला ही साक्षात् परम कारुणिक गुरु है जैसे सर्वेश्वर श्रीमान् परमकारुणिक नारायण हैं इसी प्रकार सत् उपदेष्टा गुरु हैं ॥ १६ ॥ जिन मनुष्योंने सहस्रों जन्मान्तरोंमें धर्माचरण किया है उनकी ही इसमें श्रद्धा होती है अन्योंकी नहीं ॥ १७ ॥ अज्ञानकी बहुतापनसे इसमें द्वेष ही होता है इस कारण द्वेष युक्तको आत्मज्ञान नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! इस ब्रह्मविद्या उपदेशके वेही अधिकारी हैं जो शिरोव्रतमें स्नान करचुके हैं ॥ १९ ॥ जिन ब्राह्मणोंने आदरसे पाशुपतव्रत किया है उन्हींको उपदेश करना चाहिये. यह वेदका अनुशासन है॥२०॥ जो पशु है वह पुरुष इस व्रतसे पशुत्व त्यागन करै उन पशुओंको मारकर वह ज्ञानी पापी नहीं होता यह वेदान्तका निश्चय है॥२१॥जाबालि श्रुतिमें आदरपूर्वक त्रिपुंड्र धारण करना कहा है त्र्यम्बकमंत्र और तारकमंत्रसे लगावै ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै तीनवार ॐकार अथवा हंस इस मंत्रसे धारण करै॥२३॥ भिक्षुकभी नित्यधारण करै

ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः ॥ त एव नेतरे विद्वन्ये तु स्नाता शिरोव्रतैः ॥ १९ ॥ व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैराद रेण तु ॥ तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥ २० ॥ यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत् ॥ तान्हत्वा न स पापी यान्भवेद्वेदांतनिश्चयः ॥ २१ ॥ त्रिपुंड्रधारणं प्रोक्तं जावालैरादरेण तु ॥ त्रियंबकेन मंत्रेण सतारेण शिवेन च ॥२२॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः ॥ ओंकारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥ धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः ॥ त्रियंबकेन मन्त्रेण प्राणवेन शिवेन च ॥२४॥ गृहस्थश्च वानप्रस्थो धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ मेधावीत्यादिना वाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ॥२५॥ भस्मना सजलेनाऽपि धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नत्रिपुंड्रभस्मनैव तु ॥ २६ ॥ ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुंठनम् ॥ "महादेवस्य सम्बंधात्तद्धर्मेऽप्यस्ति संगतिः ॥" सम्यक् त्रिपुंड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत् ॥ २७ ॥ आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुंड्रं भस्मना धृतम् ॥ यतोऽत एव विप्रस्तु त्रिपुंड्रं धारयेत्सदा ॥ २८ ॥

यह जाबालकी श्रुति है त्र्यम्बकमंत्र, ओंकारमंत्र नमःशिवाय मंत्र चाहै॥२४॥ गृहस्थ और वनवासीको त्रिपुंड्र धारण करना उचित है मेधावी इत्यादि मंत्रसे दिन २ ब्रह्मचारी धारण करै ॥२५॥ भस्म तथा जलसे त्रिपुंड्र धारण करै,ब्राह्मण विधिपूर्वक भस्मद्वारा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २६ ॥ ललाटमें तिरछी भस्म धारण करै [महादेवके सम्बन्धसे इस धर्ममें संगति होती है] त्रिपुंड्रधर्मको नित्य ही ब्राह्मणको धारण करना चाहिये ॥२७॥ आदि ब्राह्मण ब्रह्माजीने त्रिपुंड्र धारण किया है इस प्रकार ब्राह्मण सदा त्रिपुंड्र धारण करै ॥ २८ ॥ वेदसिद्ध भस्मसे देहमें भस्मलगाकर त्रिपुंड्र चढाना

चाहिये और मोहसे भी कभी शिवलिंगका अर्चन न त्यागे ॥ २९ ॥ त्र्यम्बकमंत्र तारक मंत्र पंचाक्षर वा प्रणवमंत्रसे ॥ ३० ॥ हे महामुने ! ललाट हृदय भुजाओंमें संन्यासाश्रममें भी स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ३१ ॥ त्र्यायुषंजमदग्नेः० मेधावीत्यादि० मंत्रसे गौणभस्म (अग्निहोत्र की जो न हो) का त्रिपुंड्र भी ब्रह्मचारी धारणकर सकता है ॥ ३२ ॥ 'शिवायनमः' इस मंत्रसे सेवामें तत्पर शूद्र भी शरीरमें भस्म और मस्तकपर नित्य भक्तिसे त्रिपुंड्र लगावै ॥ ३३ ॥ हे सुव्रत और सबोंको विना मंत्रके ही शरीरमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करना

भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुंड्रदेहगुंठनम् ॥ रुद्रलिंगार्चनं वाऽपि मोहतोऽपि च न त्यजेत् ॥ २९ ॥ त्रियंबकेन मन्त्रेण सतारेण तथैव च॥पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवे न तथैव च॥३०॥ललाटे हृदये चैव दोर्द्वंद्वे च महामुने ॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रमाश्रितः ॥३१॥ त्रियायुषेण मंत्रेण मेधावीत्यादिनाऽथवा॥गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुंड्रं ब्रह्मचारिणा॥३२॥ नमो तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च नित्यं भक्त्या समाचरेत् ॥३३॥ अन्येषामपि सर्वेषां विना मन्त्रेण सुव्रत ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने ॥ ३४ ॥ भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तस्मान्नित्यं समाचरेत् ॥३५॥भस्माग्निहोत्रजं वाऽथ विरजाग्निसमुद्भवम्॥आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत् ॥३६॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः॥गृहीत्वा भस्म तत्पंचब्रह्ममंत्रैः शनैःशनैः॥३७॥प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादि मंत्रितम् ॥ तैरेव सप्तभिर्मंत्रैस्त्रिवारमभिमंत्रयेत् ॥३८॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मंत्रानुदीरयेत्॥सितेन भस्मना पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम् ॥ ३९ ॥

चाहिये ॥३४॥ ऐश्वर्यके निमित्त शरीरमें भस्म लगाना त्रिपुंड्रका धारण करना सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है इस कारण नित्य इसको भक्तिसे आचरण करै ॥ ३५ ॥ अग्नि होत्रकी भस्म वा विरजा होमकी भस्म आदरसे लेकर शुद्ध पात्रमें रख छोडे ॥ ३६ ॥ हाथ पैर धोये दो वार आचमन कर भस्म लेकर शनैः शनैः वह सद्योजातादि पंचब्रह्म मंत्रों [सद्योजातादि] से ग्रहण कर ॥ ३७ ॥ तीन प्राणायाम करके अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म, सर्वंहवा इदं भस्म इन सात मंत्रोंसे तीन वार अभिमंत्रण करै ॥ ३८ ॥

आपोज्योतीरसोमृतम् यह कहकर मंत्रोंको उच्चारण कर पहले श्वेत भस्मसे शरीरको उद्धूलन करे ॥३९॥ इससे मनुष्य पापरहित होते हैं इसमें संदेह नहीं फिर जगन्नाथ जलाधिप महाविष्णुको ध्यान कर ॥ ४० ॥ भस्मसे जल मिलाय अग्निरित्यादि मंत्रोंसे वारंवार मिलाकर शिवका ध्यान करते ऊर्ध्व मस्तकमें उद्धूलन करै ॥ ४१ ॥ इस भावनासे ब्रह्मभूत सितभस्म द्वारा अपने आश्रमके उचित मंत्रोंसे ललाट छाती स्कन्धोंमें ॥ ४२ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठ इनसे सव्य अपसव्य द्वारा अर्थात् दो अंगुलीसे बाईं ओरसे आरंभ कर दक्षिण भागपर्यन्त दो रेखा करे और अँगूठेसे दक्षिण भागसे आरंभकर वामभाग पर्यन्त एक रेखा करै इस प्रकार भक्तिसे

विपापो विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः ॥ ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथं जलाधिपम् ॥ ४० ॥ संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः ॥ विमृज्य सांबं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥ ४१ ॥ ते च भाव नया ब्रह्मभूतेन सितभस्मना ॥ ललाटवक्षःस्कंधेषु स्वाश्रमोचितमंत्रतः ॥ ४२ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः ॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेश्वपि भक्तितः ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम् ॥ गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम् ॥ २ ॥ पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम् ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३ ॥

तीनों कालमें त्रिपुंड्र धारण करै ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारायण बोले अग्निकी गौणभस्म भी अज्ञाननाशक और ज्ञानसाधक है हे ब्रह्मन् ! हे ब्रह्मविदांवर ! तुम गौणभस्मको भी अनेक प्रकारकी जानो ॥ १ ॥ हे मुने ! और जैसे अग्निहोत्रकी भस्म है वैसे ही विरजाहोमकी [संन्यासके] समय विरजाहोमका विशेष प्रचार है उपासन अग्निसे उत्पन्न स्मार्त विवाहाग्निसे प्रगट समिधाकी अग्निसे उत्पन्न ॥ २ ॥ पंचाग्निसे दावानलसे तथा

अग्नि होत्रसे उत्पन्न हुई तीनो वर्णों और सबको हितकारी है ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विरजाभस्म तीनों वर्णोंको धारण करनी चाहिये, स्मार्ताग्नि गृहस्थोंको धारण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ समिधाग्नि ब्रह्मचारियोंको, शूद्रोंको श्रोत्रियके स्थानकी पचनाग्नि भस्म धारण करनी चाहिये ॥ ५ ॥ और सबको दावानलके अग्निकी भस्म धारण करनी चाहिये विरजानलकी उत्पत्तिका समय कहते हैं चित्रायुक्तपूर्णमासी पुण्यकाल है जहां स्वयं स्थित हो वही पुण्यदेश है ॥ ६ ॥ क्षेत्र वगीचा वन शुभलक्षणवाला उत्तम है सो पहले त्रयोदशीके दिन स्नानकर

विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥ ४ ॥ समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा ॥ शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ॥५॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम् ॥ कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परिग्रहः ॥ ६ ॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः ॥ तत्र पूर्वत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ॥ ७ ॥ अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥ ८ ॥ शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ॥ ९ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ १० ॥ व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्पदीक्षितः ॥ यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथाऽपि वा ॥ ११ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा ॥ १२ ॥ दिनद्वादशकं वाऽपि दिनषट्कमथापि वा ॥ तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ॥ १३ ॥

आह्निक क्रियाकर ॥ ७ ॥ अपने आचार्यसे अनुज्ञालेकर पूजापूर्वक प्रणामकर तथा विशेष पूजाकर स्वयं शुक्लवस्त्र धारणकर ॥ ८ ॥ शुद्ध यज्ञोपवीत और श्वेतमालाको पहर श्वेत अनुलेपन लगाय कुशासनपर बैठ एकमुष्टि कुश ग्रहण कर ॥ ९ ॥ तीन प्राणायामकर पूर्व वा उत्तरको मुखकर देवी और देवका ध्यान कर उसकी आज्ञा मनसे ग्रहण करके ॥१०॥ मैं यह व्रत करता हूं इस प्रकार संकल्पकर दीक्षित हो जब तक शरीरपात हो अथवा बारह वर्षतक ॥११॥ वा छः वा तीन वा एक वर्षतक छः महीने तीन महीने वा एक महीने ॥ १२ ॥ बारह दिन छः

दिन तीन दिन वा एकदिन व्रतकी संकल्पना विधिके अनुसार ॥१३॥ अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निका आधान करके विरजाहोमके निमित्त अग्निमें हवनकरै घृत, समिधा और यथाविधि चरुको त्यागे ॥ १४ ॥ पूर्णमासीसे प्रथमही तत्वकी शुद्धि होती है इस उद्देश्यसे यह हवन करना चाहिये मूलमंत्रसे उन्हीं समिधाओं द्वारा हवनकरना चाहिये ॥ १५ ॥ और यह स्मरणकरै कि यह मेरे देहके तत्व शुद्धहों पीछे पांच महाभूत उन पांचोंकी तन्मात्रा पंचकर्मेन्द्रिय ॥१६॥ यह ज्ञान और कर्मके भेदसे पांच,पांच,तथा त्वचाआदि सातधातु और प्राणादि पांचवायु ॥ १७ ॥

अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात् ॥ हुत्वाऽऽज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि ॥ १४ ॥ पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन् ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेण तैरेव समिदादिभिः ॥ १५ ॥ तत्त्वान्येतानि मे देहे शुध्यंतामित्यनुस्मरन् ॥ पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पंचकर्मेन्द्रियाणि च ॥ १६ ॥ ज्ञानकर्मविभेदेन पंच पंच विभागशः ॥ त्वगादिधा तवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः ॥ १७ ॥ मनोबुद्धिरहंकारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ ॥ रागो विद्या कला चैव नियतिः काल एव च ॥ १८ ॥ माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ॥ शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशोः विदुः दे १९ ॥ मंत्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् ॥ अथ गोमयमादाय पिंडीकृत्याभिमंत्र्य च ॥ २० ॥ न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन्ह विष्यभुक् ॥ प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ॥ २१ ॥

मन, बुद्धि, अहंकार उनके सत्वादि गुण प्रकृति और पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल ॥ १८ ॥ माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिवतत्व यह क्रमसे तत्त्व हैं ॥ १९ ॥ विरजाहोमके मंत्रोंसे हवन करनेसे होता पापरहित होता है, गौका गोवर लाय उसका पिण्ड बनाय पंचाक्षरमंत्रसे उसको अभिमंत्रणकर ॥ २० ॥ उसको अग्निमें रखकर रक्षाकरै और उस दिन हविष्यान्न खाय फिर प्रभातकाल

---

१ पृथ्वीतत्वमें शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा यह क्रमसे मंत्र जाने इस प्रकार एक २ तत्त्वका नाम उच्चारण कर हवन करै।

चतुर्दशीको पूर्वोक्तरीतिसे पंचाक्षर द्वारा हवन करके ॥ २१ ॥ उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करै फिर पूर्णिमाको नित्यकर्म समाप्त करके फिर पंचाक्षर मंत्रसे हवन करकै ॥ २२ ॥ रुद्राग्निको विसर्जनकर यत्नसे भस्म लेकर फिर जटावान् वा मुंड शिखा वा एक जटावाला होकर ॥ २३ ॥ स्नानकरै यदि लोकलाज न रही हो तो दिगम्बर होजाय यदि सलज्ज हो तो काषाय वस्त्र चर्म चीरके वस्त्र धारण किये रहै ॥ २४ ॥ एक वस्त्र वा वल्कलधारी दण्ड और मेखला धारण किये रहे, पश्चात् अपने दोनों चरणोंको प्रक्षालनकर फिर दोबारा आचमन कर ॥ २५ ॥ विरजानलकी भस्मको एकत्र करकै 'अग्निरिति भस्म" इन अथर्वणके छः मंत्रोंसे ॥ २६ ॥ मूर्धासे चरणोंतक धोकर इसी

तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत् ॥ प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ॥ २२ ॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः ॥ ततश्च जटिलो मुंडः शिखैकजट एव च ॥ २३ ॥ भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः ॥ अन्यः काषायवसनश्चर्मचीरांबरोऽथवा ॥ २४ ॥ एकांबरो वल्कलवान्भवेद्दंडी च मेखली ॥ प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद् द्विराचम्याऽऽत्मनस्तनुम् ॥ २५ ॥ संकलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्षड्भिराथर्वणैः क्रमात् ॥ २६ ॥ विमृज्यांगानि मूर्धादि चरणांत च तैः स्पृशेत् ॥ ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य च भस्मना ॥ २७ ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा ॥ ततश्च पुंड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥२८॥ शिवभावं समागम्य शिवभावमथाचरेत् ॥ कुर्यात्त्रिसंध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥ २९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत् ॥ तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ ३० ॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सदाशिवः ॥ भस्मस्नानं महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम् ॥ ३१ ॥

क्रमसे भस्मसे उद्धूलन करै ॥ २७ ॥ फिर ओंकार वा शिवमंत्रसे सर्वांगमें भस्म लगावै फिर "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इस प्रकारके मंत्रसे त्रिपुंड्र धारणकरै ॥ २८ ॥ शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावकाही आचरण करै. ऐसा तीनों संध्याओंमें करै. यह पाशुपत व्रत है ॥ २९ ॥ यह भुक्तिमुक्तिका दाता और पशुत्वका निवृत्त करनेवाला है. इस कारण पशुत्व त्याग पाशुपत व्रत करके ॥ ३० ॥ लिंगमूर्ति सदाशिव महादेव सदा पूजाके योग्य है भस्मका स्नान महा पवित्र सब सुखदायक है ॥ ३१ ॥

आयु, बल, आरोग्य, श्री और पुष्टिका बढानेवाला है, रक्षामंगल और सब सम्पत्तिकी समृद्धिके निमित्त करना चाहिये ॥ ३२ ॥ भस्मसे स्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं होता यह भस्म शान्ति पुष्टि और कामना देनेसे तीन प्रकारकी है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे देव ! यह भस्म तीन प्रकारकी कैसे है इसके सुननेका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये ॥१॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! भस्मके तीन प्रकार आपसे कहता हूं सुनो यह महापापक्षयकारी महाकीर्ति

आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः ॥ रक्षार्थं मंगलार्थं च सर्वं संपत्समृद्धये ॥३२॥ भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च ॥ शांतिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत् ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥ नारद उवाच ॥ त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम् ॥ एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु ॥ महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम् ॥ २ ॥ गोमयं योनिसंबद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु संदग्धं तच्छांतिकृदिहोच्यते ॥३॥ सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयं तु यत् ॥ अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्प डंगेन दहेदतः ॥४॥ पौत्रिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणु ॥ प्रसादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम् ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः ॥ गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्वा तु गोकुलम् ॥ ६ ॥ गवां वर्णानुरूपाणां गृह्णीयाद्गोमयं शुभम् ॥ ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च ॥ ७ ॥

करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गोबर भूमिपर नहीं गिरनेपाता और हाथोंमेंही ग्रहणकर लिया जाता है और ' सद्योजातादि ' पंच ब्रह्म मंत्रोंसे दग्धकियाजाय वह शांतिकरनेवाला होता है ॥ ३ ॥ मनुष्य सावधान होकर गोबर ग्रहण करै अर्थात् उसे अन्तरिक्षमेंही ग्रहणकर षडंगाके मंत्रोंसे भस्मकरै ॥४॥ यह पुष्टिकारक भस्म होती है अब कामनादायकको सुनो जो 'हौम्' मंत्रसे भस्मकी जाय वह कामद है ॥ ५ ॥ हे नारद ! भस्मका व्रत करनेवाला प्रभात ही उठकर गौके गोठमें जाय गोकुलको नमस्कार कर ॥ ६ ॥ गौओंके वर्णके अनुसार सुन्दर गोबर

लेकर अर्थात् ब्राह्मणकी गौ श्वेत क्षत्रियकी . ॥ ७ ॥ वैश्यकी पीली और शूद्रकी कृष्णवर्णकी कही है विशुद्धबुद्धिवाला पूर्णिमा अमावस अष्टमीमें ॥८॥ 'हौम्' इस मंत्रसे सुन्दर गोबर ग्रहण कर 'हृदयायनमः' इस मंत्रसे उसकी पिण्डी बनाय ॥ ९ ॥ अच्छे स्थानमें सूर्यकी किरणोंसे सुखावे और भूसी वा बुस (भूसा) से वेष्टित कर प्रसाद मंत्रसे उसमें निक्षेप करे ॥१०॥ वनकी अग्नि श्रोत्रियके स्थानकी अग्निमें शिवके बीज मंत्रसे डालकर पूर्वोक्त रीतिसे हवन करै ॥ ११ ॥ फिर चतुर पुरुष उस अग्निकुंडसे भस्म ग्रहण करै नया पात्र लेकर 'हौम्' मंत्रसे उसमें

पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते ॥ पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः ॥ ८ ॥ प्रासादेन तु मंत्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम् ॥ हृदयेन तु मन्त्रेण पिंडीकृत्य तु गोमयम् ॥९॥ रविरश्मिसुसन्ततं शुचौ देशे मनोहरे ॥ तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥ १० ॥ अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजन्तु वा ॥ तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मन्त्रतः ॥ ११ ॥ गृह्णीयादथ तत्राग्निकुंडाद्भस्मविचक्षणः ॥ नवपात्रं समादाय प्रसादेन तु निक्षिपेत् ॥ १२ ॥ केतकी पाटली तद्वदुशीरं चंदनं तथा ॥ नानासुगंधिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च ॥ १३ ॥ निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्यो मन्त्रेण शुद्धधीः ॥ जल स्नानं पुरा कृत्वा भस्मस्नानमतः परम् ॥ १४ ॥ जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशा नमन्त्रतः ॥ १५ ॥ समुद्धूल्य ततः पश्चादाननं तत्पुरुषेण तु ॥ अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम् ॥ १६ ॥ सद्योमन्त्रेण सर्वांगं समुद्धूल्य विचक्षणः ॥ पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत् ॥ १७ ॥

भस्म डाले ॥ १२ ॥ केतकी, पाटल, खस, चन्दन और केशरादि अनेक सुगंधके द्रव्य ॥१३॥ 'सद्योजात' मंत्रसे उसमें डालै पहले जल और पीछे भस्मस्नान करै ॥ १४ ॥ जलस्नानमें अशक्त हो तो भस्मस्नानही करै 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि मंत्रसे हाथ पैर शिरके प्रक्षालन करनेपर ॥ १५ ॥ अंगोंमें उद्धूलन करै तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें, अघोर मंत्रसे हृदयमें, वामदेव मंत्रसे नाभिमें ॥ १६ ॥ सद्योजात मंत्रसे विच

क्षण सर्वांगमें समुद्धूलन करै. पहले वस्त्रको त्यागकर फिर शुद्ध वस्त्रको ग्रहण करै ॥ १७ ॥ हाथ पैर धोकर पीछे आचमन करै भस्मके उद्धूलनके अभावमें त्रिपुंड्र धारण करै ॥ १८ ॥ मध्याह्नसे पहले जलसे स्नान करै फिर जलके विना स्नान करै तर्जनी और अनामिका मध्यसे त्रिपुंड्र लगावै ॥१९॥ शिर, लालट, कर्ण, कंठ, हृदय, बाहु यह न्यासके स्थान हैं ॥ २० ॥ 'हौम्' मंत्रसे पांच अंगुलीसे शिरमें लगावै तीन अंगुलीसे भालमें शिरोमंत्र (स्वाहा) से लगावै ॥२१॥ 'सद्यो' मंत्रसे दहिने कानमें 'वामदेव' मंत्रसे बांये कानमें 'अघोर' मंत्रसे कंठमें मध्य अंगुलीसे

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत् ॥ भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुंड्रं तु विधियते ॥ १८ ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥ तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुंड्रं च समाचरेत् ॥ १९ ॥ मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च ॥ हृदये चैव बाह्वोश्च न्यासस्थानं हि चोच्यते ॥ २० ॥ पंचांगुलैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः ॥ त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमंत्रेण देशिकः ॥ २१ ॥ सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः ॥ अघोरेण तु कंठे च मध्यांगुल्या स्पृशेद्गुदम् ॥ २२ ॥ हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरंगुलिभिः स्पृशेत् ॥ विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामंत्रेण देशिकः ॥ २३ ॥ वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियंगुलैः ॥ मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मन्त्रतः ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रो रेखा इति स्मृताः ॥ आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः ॥ २५ ॥ एकांगुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता ॥ शिरोमध्ये स्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके ॥ २६ ॥

स्पर्श करै॥२२॥हृदयको हृदयद्वारा 'हृदयेनैवनमः' इस प्रकार तीन अंगुलीसे स्पर्श करै दक्षिण बाहुमें शिखामंत्रसे न्यास करै॥२३॥तीन अंगुलसे वामबाहुमें तीन अंगुल कवचकान्यास करै 'ईशान' मंत्रसे मध्यमा अंगुलीसे नाभिस्पर्श करै॥२४॥ यह तीन रेखाब्रह्मा विष्णु महेशरूप हैं पहली रेखा ब्रह्मा दूसरी विष्णु और तीसरी महेश्वर है ॥ २५ ॥ जो एक अंगुलीसे न्यास है उसका ईश्वर देवता है शिरो मध्यका ब्रह्मा और लालटका देवता

पूजनके जन्म विना शिवाश्रयके विद्याको धिक् है जो त्रिपुण्ड्र और शिवकी निन्दा करते हैं उनको धिक् है ॥ १८ ॥ जो भक्तिसे धारण करते कराते हैं वह कृशानुरहित भूधरके समान शोभित नहीं होते॥१९॥जो विना सब साधनोंके भस्महीन शिवार्चन करते हैं भस्म धारण और त्रिपुंड्र जो भक्तिसे धारण नहीं करते ॥२०॥ उनका पूर्वाचरित सब विपरीत होता है, भस्म और वेदमंत्रद्वारा त्रिपुण्ड्रका धारण करना ॥२१॥ विना त्रिपुण्ड्रके उचित आचार स्मार्त्त वैदिक कर्म अनर्थका कारण है उसका किया न करनेके समान और सुना न सुनेके समान है ॥ २२ ॥

धारयंति च ये भक्त्या धारयंति तमेव ते ॥ यथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते ॥ १९ ॥ अशेषसाधनेऽप्येव भस्महीनं शिवार्चनम् ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये ॥ २० ॥ तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि ॥ भस्मना वेदमंत्रेण त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ २१ ॥ विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम् ॥ कृतं स्यादकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत् ॥२२॥ अधीतमनधीतं च त्रिपुंड्रं योन धारयेत्॥ वृथा वेदा वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा तपः ॥२३॥ वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुंड्रं यो न धारयेत् ॥ भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः पुमान् ॥ २४ ॥ विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः ॥ स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ २५ ॥ ससर्ज स ललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम् ॥ तिर्यग्रेखाः प्रदृश्यंते ललाटे सर्वदेहिनाम् ॥ २६ ॥ तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वंति त्रिपुंड्रकम् ॥ न तद्ध्यातं न तन्मोक्षं तज्ज्ञानं न तत्तपः ॥ २७ ॥

पढा अनपढा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता उसका वेद, यज्ञ, दान, तप वृथा है॥ २३ ॥ व्रत उपवास वृथा है जो त्रिपुण्ड्रको धारण नहीं करता जो पुरुष भस्म धारणको त्यागकर मुक्तिकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥ वह विषपान करके अपनेको नित्य माननेकी इच्छा करता है जगत्स्रष्टाने सृष्टिके छलसेही त्रिपुंड्रका धारण करना कहा है ॥ २५ ॥ उसने ललाटको दण्डाकार ऊर्ध्व वा कदम्बपुष्पवत् वर्तुलाकार सृजन नहीं किया है सबके ललाटमें तिर्यक् रेखा दिखाई देती हैं ॥ २६ ॥ तो भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते हैं वह ध्यान, मोक्ष, ज्ञान,

तपस्या नहीं है जिसमें त्रिपुंड्र न हो ॥ २७ ॥ त्रिपुंड्र धारण किये विना ब्राह्मणने जो अनुष्ठान किया है वह वृथा है जैसे वेदके अध्ययनका शूद्र अधिकारी नहीं है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार त्रिपुंड्रके विना विप्र शिवार्चनका अधिकारी नहीं, प्राङ्मुख हो ब्राह्मण पूर्ववत् हाथ पैर धोये आचमन कर ॥ २९ ॥ प्राणायाम पूर्वक संकल्प करके भस्मस्नान करै अग्निहोत्रकी शुद्ध भस्म लेकर ॥ ३० ॥ 'ईशान' मंत्रसे अपने शिरपर धारण करै फिर 'तत्पुरुष' मंत्रसे मुखमें धारण करै 'अघोर' मन्त्रसे हृदय, 'वामदेव' मंत्रसे गुह्य, और 'सद्योजातसे' दोनों

विना तिर्यक् त्रिपुंड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥ वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत् ॥२८॥ त्रिपुंड्रेण विना विप्रो नाधिकारी शिवार्चने ॥ प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् ॥ २९ ॥ प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३० ॥ ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत् ॥ तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु ॥ ३१ ॥ अघोराख्येण हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च ॥ सद्योजाताभिधानेन भस्मपादद्वये क्षिपेत् ॥ ३२ ॥ सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूलनं ततः ॥ एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः ॥ ३३ ॥ सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः ॥ ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि ॥३४॥ तिर्यक्त्रिपुंड्रं विधिना ललाटे हृदये गले ॥ पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च॥३५॥ धृतमेतत्त्रिपुंड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ शूद्रैरंत्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म च क्वचित् ॥ ३६ ॥ भस्मना साग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत् ॥ अन्यथा सर्वकर्माणि न फलंति कदाचन ॥ ३७ ॥

चरणोंमें मले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ (ओंकारसे) सर्वांगमें उद्धूलन करै परम ऋषियोंने इसका आग्नेयस्नान नाम कहा है ॥ ३३ ॥ सब कर्मकी समृद्धिके निमित्त पंडितको पहले इसे करना चाहिये फिर हाथादिको प्रक्षालन कर यथा विधि जलस्पर्श कर ॥३४॥ जो त्रिपुंड्रकी विधिसे ललाट हृदय गलेमें पंच ब्रह्मके मन्त्रसे धारण करते हैं तथा भस्म धारण करते हैं ॥ ३५ ॥ तो त्रिपुंड्र धारण करनेसे सब कर्मोंमें पवित्रहो जाते हैं शूद्र और अन्त्यजोंके हाथकी भस्म कभी धारण न करनी चाहिये॥३६॥जो अग्निहोत्रकी भस्मसे लिप्त होकर कर्म करते हैं वे सिद्ध होते



हैं इससे अन्यथा कोई कर्म भी नहीं फलते हैं ॥ ३७ ॥ सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ, देवादिपूजन त्रिपुण्ड्र न धारण करनेवालेके सब वृथ हैं ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण पवित्र हो त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष धारण करता है वह रोग, दुरित, व्याधि और तस्करोंके शान्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ और आवृत्ति रहित ब्रह्मको प्राप्त होता है फिर नहीं लौटता वह ब्राह्मण पंक्तिपावन है श्राद्धमें ब्राह्मण और देवताओंसे पूजनीय है ॥ ४० ॥ श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन इनमें त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे पवित्र हो मनुष्य मृत्युको जय करता है ॥ ४१ ॥ मैं

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थदेवादिपूजनम् ॥ तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुंड्रं न धारयेत् ॥ ३८ ॥ त्रिपुंड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः ॥ स हंति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान् ॥ ३९ ॥ समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः ॥ स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ॥ ४० ॥ श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ धृतत्रिपुंड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥ ४१ ॥ भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ महापातकसंघाश्च पातकान्यपराण्यपि ॥ नश्यंति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं नचान्यथा ॥ १ ॥ एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ॥ २ ॥ गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मवृद्धिकरं तथा ॥ ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च ॥ ३ ॥ शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम् ॥ भस्म नोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ४ ॥

भस्मधारणका माहात्म्य फिर भी तुमसे कहता हूं ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण बोले महापातक समूह तथा दूसरे पातक इसके धारणसे अवश्य नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ एक भस्महीं जिसने धारण की है उसके पुण्यका बल सुनो । यतियोंको ज्ञान और वनवासियोंको वैराग्य देता है ॥ २ ॥ हे मुने ! गृहस्थोंको धर्म वृद्धिका करनेवाला है ब्रह्मचारियोंको स्वाध्यायका देनेवाला है ॥ ३ ॥ शूद्रोंको पुण्यदायक तथा दूसरोंका भी पापनाश



करनेवाला है. भस्म लगाना त्रिपुण्ड्र धारण करना ॥ ४ ॥ सब प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त होता है यह वेदकी श्रुति है भस्मका सर्वांगमें लेपन तथा त्रिपुण्ड्र धारण ॥ ५ ॥ यह यज्ञमें सबको धारण करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है भस्म द्वारा उद्धलन और तिर्यक् त्रिपुंड्र धारण ॥ ६ ॥ सब धर्मोंका कारण है यह वेदकी श्रुति है भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण ॥ ७ ॥ यह शैवोंका चिह्न है यह वेदकी श्रुति है भस्म लगाना त्रिपुण्ड्र धारण करना ॥ ८ ॥ सबके विज्ञानके निमित्त है. यह वेदकी श्रुति है, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र ॥९॥ हिरण्यगर्भ उनके अवतार वरुणादि

रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ५ ॥ यज्ञतेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ६ ॥ सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ७ ॥ माहेश्वराणां लिंगार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ८ ॥ विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः ॥ देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मकम् ॥ १० ॥ उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ॥ सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ ११ ॥ यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ॥ मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १२ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च संकरैः ॥ अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १३ ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च यैः समाचरितं मुदा ॥ त एव शिष्टा विद्वांसो नेतरे मुनिपुंगव ॥ १४ ॥

इन सब देवताओंने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥१०॥ उमादेवी लक्ष्मी तथा सरस्वती दूसरे आस्तिक तथा और देवांगनाओंने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है॥ ११ ॥ यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, मुनि सबने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संकरजाति अपभ्रंश सबने भस्म और त्रिपुंड्रधारण किया है॥१३॥ जो उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र आनंदसे धारण करते हैं वही शिष्ट और विद्वान् हैं हे मुनिश्रेष्ठ! दूसरे नहीं ॥ १४ ॥

जैसे स्त्रीवशीकरणमें कंठमें बहुमूल्य मणि सख्यता वाजीकरण औषधी वा गुटिका एक साधन है इसी प्रकार मुक्तिरूपी स्त्रीके वश करनेमें शिवलिंग मणि पंचाक्षर मंत्र सख्यता विभूति औषधी है ॥ १५ ॥ जहां भस्म धारण किये मूर्ख वा पंडित कोई भोजन करता है वहां सपत्नीका शंकर ही भोग लगाते हैं ॥ १६ ॥ जो शरीरमें भस्मलगाये कहीं गमन करते हैं वह सब पातकोंसे युक्त होकर भी पूजित होता है ॥ १७ ॥ भस्म लगाकर जो श्रद्धासे स्तुति करता है वह सब पातकोंसे हितहो पूजित होता है ॥ १८ ॥ जो त्रिपुंड्र धारियोंको भिक्षा देते हैं उसने सब कुछ

शिवलिंगं मणिः संख्यं मंत्रः पंचाक्षरस्तथा ॥ विभूतिरौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि ॥ १५ ॥ भुनक्ति यत्र भस्मांगो मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ तत्र भुंक्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥ १६ ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगमनुगच्छति यः पुमान् ॥ स पापातकयुक्तोऽपि पूजितो मानवोऽचिरात् ॥ १७ ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगं यः स्तौति श्रद्धया सह ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात् ॥ १८ ॥ त्रिपुंड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम् ॥ तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ॥ १९ ॥ येन विप्रेण शिरसि त्रिपुंड्रं भस्मना कृतम् ॥ कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः ॥ २० ॥ मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत् ॥ दुःशीलः शीलयुक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः ॥ २१ ॥ भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत् ॥ छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमैश्वरम् ॥ २२ ॥ सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि ॥ संपर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः ॥२३॥ विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम् ॥ २४ ॥

पढा सुना और अनुष्ठान करलिया ॥ १९ ॥ जिस ब्राह्मणने शिरपर भस्मका त्रिपुंड्र लगाया वह मगधदेशमें भी विभूतिधारी ॥ २० ॥ रहता हुआ उसे काशी क्षेत्रके समान करता है दुःशील शीलयुक्त योगयुक्त वा लक्षणहीन हो ॥ २१ ॥ जो विभूति धारण करता है वह मेरे पुत्रवत् पूज्य है जो छद्मसभी विभूति धारण करता है ॥ २२ ॥ वह भी जिस गतिको प्राप्त होता है कोई सौ यज्ञकरनेसे भी उस गतिको नहीं प्राप्त होता संपर्क लीला वा भयसे भी जो विभूति धारण करता है वह भी महापुण्य पाता है ॥ ॥ २३ ॥ और विधियुक्त विभूति धारण

करनेवाला मेरे समान पूज्य होता है वह शिव विष्णु और ब्रह्मादि देवतोंकी तृप्तिका कारण होता है ॥ २४ ॥ पार्वती महालक्ष्मी और महा सरस्वतीकी तृप्तिका कारण होता है दान यज्ञ और दुर्लभ तपसे भी ऐसा नहीं ॥२५॥ तथा तीर्थयात्राका पुण्यभी त्रिपुंड्रधारणके समान नहीं है हे नारद! दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा ॥ २६ ॥ ध्यान, तप यह त्रिपुंड्रधारणकी सोलहवीं कलाकेभी बराबर नहीं है जैसे राजा अपने चिह्नसे अपने भृत्यको पहँचानते हैं मानते हैं ॥ २७ ॥ इसी प्रकार शिव त्रिपुंड्रधारीको अपने समान मानते हैं द्विजाति हो वा अन्त्यजाति हो

पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम् ॥ न दानेन न यज्ञेन तपोभिः सुदुर्लभैः ॥ २५ ॥ न तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुंड्रेण च लभ्यते ॥ दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद ॥२६॥ ध्यानं तपस्त्रिपुंड्रस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ यथा राजा स्वचिह्नांकं स्वजनं मन्यते सदा ॥२७॥ तथा शिवस्त्रिपुंड्रांकं स्वकीयमिव मन्यते ॥ द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना ॥ २८ ॥ धारयेद्यस्त्रिपुंड्रांकं रुद्रस्तेन वशीकृतः ॥ त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः॥ २९ ॥ सकृत्तिर्यक्त्रिपुंड्रांकं धारयेत्सोऽपि मुच्यते ॥ नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥ ३० ॥ त्रिपुंड्रांकितभालेन पूज्य एव हि नारद ॥ शिवमन्त्रात्परो मन्त्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम् ॥ ३१ ॥ शिवार्चनात्परं पुण्यं नहि तीर्थं च भस्मना ॥ रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥३२॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम् ॥ अंत्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ ३३ ॥

जो शुद्धचित्तसे भस्म ॥२८॥ और त्रिपुंड्र धारण करता है मानो उसने शंकरको वशीभूत कर लिया है ॥ २९ ॥ जो एकबारभी तिरछा त्रिपुंड्र धारण करते हैं वहभी मुक्त होजाते हैं इसके ज्ञान और कुल तथा व्रतकी परीक्षा न करै ॥ ३० ॥ मस्तकपर त्रिपुंड्र धारण करते ही वह पूज्य होता है शिवमंत्रसे अधिक मंत्र शिवसे परे देवता ॥ ३१ ॥ शिवार्चनसे परे पुण्य और भस्मसे अधिक तीर्थ नहीं है रुद्राग्निका जो परवीर्य है उसीको भस्म कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह सब पापोंका नाशक और सब दुःखनिवारक है अन्त्यज, अधम,

मूर्ख वा पंडित ॥ ३३ ॥ जिस स्थानमें विभूतिधारणपूर्वक निवास करता है उसमें सदाशिव पार्वतीसहित सब भूत गणोंको लिये सब तीर्थोंसे संयुक्तहो उसके निकट निवास करते हैं यह 'सद्योजातादि' शिवके पांचमंत्र पवित्र हैं, भस्म शिवके अंगसे विभूषित है जिन्होंने [illegible] त्रिपुंड्र लगाये हैं उनके दैवके लिखे खोटे अक्षर मिटजाते हैं ॥ ३५ ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारायण बोले जो भस्मधारीके निमित्त प्रसन्नतासे धन देता है उसके सब पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥

यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः ॥ तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा ॥३४॥ एतानि पञ्च शिवमन्त्रपवित्रितानि भस्मानि कामदहनांगविभूषितानि ॥ त्रैपुंड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुंपंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥३५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ नारायण उवाच ॥ भस्म दिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यंति न संशयः ॥ १ ॥ श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्यखिलान्यपि ॥ वदंति भूतिमाहात्म्यं तत्तस्माद्धारयेद्द्विजः ॥ २ ॥ विभूत्या भस्मना कुर्यात्त्रिपुंड्रं यस्तु त्रिपुंड्रकम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥ रोगी सरोगकं स्नानमाशु [illegible] ॥ निस्संशयमिदं [illegible] ॥४॥ भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत ॥ भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणाधिकम् ॥ ५ ॥ सर्वेषु [illegible] सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानात संशयः ॥ ६ ॥

॥१॥ श्रुतिस्मृति और सब पुराण विभूतिका माहात्म्य कहते हैं इससे ब्राह्मण भस्मधारण करें ॥ २ ॥ जो विभूति भस्मसे [illegible] त्रिपुंड्र धारण करता है वह सब पापोंसे रहित हो शिवलोकमें जाता है ॥ ३ ॥ रोगी पुरुष भस्मस्नानसे [illegible] स्नान करे जो [illegible] ओंमें ऐसा करता है वह शीघ्र रोगको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ भस्मस्नानी पुरुष अपने कुलका उद्धारक होता है जलस्नानसे भस्मस्नान असंख्य गुणवाला है ॥ ५ ॥ सब तीर्थोंमें जो पुण्य सब तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है वह सब भस्मस्नानसे प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

महापातक वा उपपातकसे युक्त हो वह सब भस्मस्नानसे ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे अग्निसे ईंधनकी दशा होती है ॥ ७ ॥ जो महापातक वा उपपातक हैं वह सब दूर होते हैं बहुत क्या भस्मस्नानसे अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं यह प्रथम शिवने कहकर पीछे स्वयं स्नान किया॥ ८ ॥ उसी दिनसे ब्रह्मादिमुनि शिवकी इच्छावाले सब प्रकार यत्नसे भस्म स्नान कहते हैं ॥९॥ इस कारण जो कोई इस आग्नेय स्नानको करते हैं वह इसी शरीरसे रुद्र होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१०॥ जो भस्मधारण करनेवालेको देखकर परितुष्ट होते हैं वह निःसन्देह देवता असुर मुनीन्द्रोंसे पूजित होते हैं सन्देह नहीं ॥ ११ ॥ भस्मधारी पुरुषको देखकर जो खड़े होते हैं उनको देखकर देवराजभी प्रणाम करैंगे ॥ १२ ॥ हे मुने ! जिन्होंने भस्मधारणके उपरान्त अभक्ष्यभी भक्षणकर लिया है उनका वह भक्ष्यही है इसमें विचार नहीं है ॥ १३ ॥ जो जलमें स्नान करनेसे पहले भस्मसे स्नान करता है ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ कोई हो आदरसे स्नानकरके ॥ १४ ॥ सब पापरहित हो परमगतिको पाता है आग्नेय भस्मसे स्नानकरना यतियोंको विशेष रीतिसे उचित है ॥ १५ ॥ जलके स्नानसे भस्म स्नान श्रेष्ठ है कारण कि भस्मस्नानसे प्रकृतिरूप

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकः ॥ भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनम् ॥ ७ ॥ भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते ॥ एवमुक्तं शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः ॥ ८ ॥ तदा प्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः ॥ सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे ॥ ९ ॥ तस्मादेतच्छिरस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ॥ अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः ॥ १० ॥ ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवंति ते ॥ देवासुरमुनीन्द्रैश्च पूज्या नित्यं न संशयः ॥ ११ ॥ भस्मसंच्छन्नसर्वांगं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान् ॥ तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दंडवत्प्रणमिष्यति ॥१२॥ अभक्ष्यभक्षणं तेषां भस्मधारणपूर्वकम् ॥ तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा ॥ १३ ॥ यः स्नानि भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम् ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात् ॥१४॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥ आग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां च विशिष्यते ॥ १५ ॥ आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रुवः ॥ आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बंधनं विदुः ॥ १६ ॥

बंधनका नाश होता है ॥१६॥ प्रकृतिबंधनके नाशके निमित्त ही भस्मस्नान कहा है हे ब्रह्मन्! भस्मके समान कुछ भी त्रिलोकीमें नहीं है ॥ १७ ॥ पहले देवताओंने यह रक्षामंगल पवित्रताके निमित्त धारणकी थी हे मुने! पहले शंकरने यह अपनी प्रियाको दी थी ॥ १८ ॥ इस कारण इस तेज सम्पन्न स्नानको सदा करना चाहिये कारण कि भस्ममें अग्नि विद्यमान है जो सूक्ष्मरूपसे उसमें रहती है जिससे विद्युत् शक्ति बढती है, इससे स्नानकर भव पाशसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है ॥ १९ ॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ, गुल्म सब प्रकारके भगन्दर

प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते ॥ भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि ॥१७॥ रक्षार्थं मंगलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः ॥ भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु॥१८॥तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत्॥भवपाशविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ १९ ॥ ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः ॥ भगंदराणि सर्वाणि चाऽशीतिर्वातरोगकाः ॥ २० ॥ चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्माः सप्तत्रिपञ्चकाः ॥ व्याघ्रचोरभयं चैवाप्यन्ये दुष्टग्रहा अपि ॥ २१ ॥ भस्मस्नानेन नश्यंति सिंहेनेव यथा गजाः ॥ शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च त्रिपुंड्रकम् ॥२२॥ यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः ॥ "भस्मना च त्रिपुण्ड्रं च यः कोपि धारयेत् परम् ॥ स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः ॥" यथाविधिर्ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात् ॥ २३ ॥ नाशयेद्विखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम् ॥ कंठोपरिकृतं पापं नाशयेत्तत्प्रधारणात् ॥ २४ ॥

अस्सीवातके रोग ॥२०॥ चौंसठ पित्तके रोग बत्तीस प्रकारके श्लेष्मरोग व्याघ्र चोरका भय वा दूसरे दुष्टग्रहोंके रोग ॥ २१ ॥ भस्म स्नानसे ऐसे नष्ट होते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी पलायन करते हैं शुद्ध शीतलजल और भस्मसे त्रिपुंड्रको ॥ २२ ॥ जो धारण करता है वह निःसन्देह परब्रह्मको प्राप्त होता है " जो कोई भस्मसे त्रिपुंड्रको धारण करता है वह निःसन्देह पापरहित हो ब्रह्म लोकको प्राप्त होता है " यथाविधि मस्तकमें अग्निवीर्य धारणकरनेसे ॥ २३ ॥ मस्तकमें लिखी यमकी लिपी मिट जाती है कंठके

ऊपर भागसे किये पाप इसके धारणसे नष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥ अर्थात् कंठमें धारणसे कंठभोगादिक किये पातक बाहुमें धारण करनेसे भुजासे किये पाप वक्षस्थलमें धारण करनेसे मनके किये पाप ॥ २५ ॥ नाभिमें धारणसे मेढ्रके, गुदमें धारण करनेसे गुह्यके, पार्श्वमें धारण करनेसे परस्त्री आलिंगनके सब पाप दूर होते हैं ॥ २६ ॥ इस कारणसे सर्वथा त्रिलिंगयुक्त भस्म धारण करनी चाहिये यह ब्रह्मा विष्णु महेशरूप तीन अग्नियोंका धारण है ॥ २७ ॥ त्रिपुंड्र धारण करनेसे मानो त्रिलोकीके गुण धारण कर लिये भस्म लगाये हुए विद्वान् ब्राह्मण महापात

कंठे च धारणात्कंठभोगादिकृतपातकम्॥बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम्॥२५॥नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत्॥ पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्मन्परस्त्र्यालिंगनादिकम् ॥ २६ ॥ तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिंगकम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम् ॥२७॥ गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम् ॥ भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसंभवैः ॥ २८ ॥ दोषैर्वियुज्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः ॥ भस्मनिष्ठस्य दह्यंते दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥ २९ ॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥ भस्मनादिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुंड्रकः ॥ ३० ॥ भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इतिस्मृतः ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः ॥३१ ॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ॥ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्मकल्मषभक्षणात् ॥३२॥ भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पुरा ॥ त्रिपुंड्रधारणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः ॥ ३३ ॥

कसे प्रगट हुए ॥२८॥ दोषोंसे शीघ्रही मुक्त होता है इसमें संदेह नहीं भस्म लगानेवालेके दोष भस्माग्निसे नष्ट होजाते हैं ॥२९॥ भस्मस्नानसे शुद्ध पुरुष आत्मनिष्ठ कहाता है सर्वांगमें भस्म लगाये भस्मसे त्रिपुंड्र जिनका दीप्तिमान् है ॥ ३० ॥ जो पुरुष भस्ममें शयन करते हैं वही आत्मनिष्ठ हैं भूत प्रेत पिशाच और बडे दुःसह रोग ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठकी निकटतासे ही दूर होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं यह प्रकाश मान होनेसे भसित,और पाप भक्षण करनेसे भस्म कहाती है ॥ ३२ ॥ यह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्य करनेवाली और राक्षसोंसेरक्षा करनेवाली

है, त्रिपुंड्रधारीको देखकर भूत प्रेतादि ॥ ३३ ॥ भीत और कंपित होकर शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं जैसे रुद्रके स्मरण करते ही पाप नाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥ जो सहस्रों अकार्य करके भी भस्म स्नान करता है वह भस्म सब नष्टकरती जैसे अग्निके तेजसे वन नष्ट होजाता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अनेक पाप करके भी अन्तसमयमें भस्मस्नान करै वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३६ ॥ भस्मस्नानसे शुद्धात्मा जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे समीप आकर फिर संसारमें नहीं पडता है ॥ ३७ ॥ जिस समय अमावास्याको चन्द्रमा वन

भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं नश्यंत्येव न संशयः ॥ स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति ॥ ३४ ॥ अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ॥ तत्सर्वं दहते भस्म यथाऽग्निस्तेजसा वनम् ॥ ३५ ॥ कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः ॥ भस्मस्नायी भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ भस्मस्नानाद्धि शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥ मत्समीपं समागम्य न स भूयोऽभिवर्तते ॥ ३७ ॥ वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ अर्चितं शंकरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥ आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोऽथवा नरः ॥ नित्यं वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ॥ ३९ ॥ त्रिपुंड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः ॥ ४० ॥ त्रिपुंड्रधारणं दृष्ट्वा पलायंते न संशयः ॥ कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले ॥ ४१ ॥ भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम् ॥ केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्यमलापहम् ॥ ४२ ॥

स्पतिमें जाता है उस समय शरीरमें भस्म लगाकर शंकरके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होजाते हैं अमावसको पन्द्रहकला क्षीण होती हैं सो सोलहवीं कलासे सब प्राणियोंमें प्रवेश करके प्रभातको प्रगट होता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष आयु ऐश्वर्य मोक्षकी कामना करै वह नित्य भस्म धारण करे ॥ ३९ ॥ यह त्रिपुंड्र ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक परम पवित्र है जो घोर राक्षस प्रेत और क्षुद्र जन्तु हैं ॥ ४० ॥ वह त्रिपुंड्रधारीको देखकर पलायन करते हैं इसमें सन्देह नहीं शौचादि कर्मकर उज्ज्वल जलमें स्नान करके ॥ ४१ ॥ शिखासे मस्तकपर्यन्त

भस्म लगावै, जलस्नान तो देहका बाह्य मल दूर करता है ॥ ४२ ॥ और विभूतिस्नान बाहर भीतरका मल हरण करता है इससे जलस्नान न किया हो तो भी विभूति स्नान करै॥४३॥ हे मुने ! भस्मस्नानके विना किया कार्य भी नहीं किया है. यह श्रुतिमें कहा भस्मस्नान आग्नेय स्नान कहाता है ॥४४॥ जब भीतर बाहर शुद्ध हो तब शिवपूजाका फल प्राप्त होताहै जो बाह्य मल नाश करै वही स्नान है ॥ ४५ ॥ पर भस्म तीव्रतासे प्राणीके बाहर भीतरका मलनाश करती है जो करोडोंवार आदरसे जलस्नान किया जाय ॥४६॥ हे मुने!वह भस्मस्नान विना पवित्र नहीं होता है

विभूतिस्नानमनघं बाह्यांतरमलापहम् ॥ त्यक्त्वाऽपि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः ॥ ॥ ४३ ॥ कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने ॥ भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते ॥ ४४ ॥ अंतर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत् ॥ यद्बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नानमस्ति तत् ॥ ४५ ॥ तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यांतरं मलम् ॥ कृत्वाऽपि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात् ॥ ४६ ॥ न भवत्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने ॥ यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वेदो वेद तत्त्वतः ॥ ४७ ॥ यद्वा वेद महादेवः सर्वदेवशिखामणिः ॥ भस्मस्नानमकृत्वैव यः कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥ ४८ ॥ स तत्कर्म कलार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः ॥ यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि ॥ ४९ ॥ स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुति-श्रुतः ॥ पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम् ॥५०॥ न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत् ॥ अनंतैर्वारुणैः स्नानै-र्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः ॥ ५१ ॥ ततोऽनंतगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते ॥ कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

जो भस्मस्नानका माहात्म्य है वह तत्त्वसे वेदही जानता है ॥ ४७ ॥ अथवा सब देवताओंके अधिपति महादेव उसको जानते हैं भस्मस्नानके विना किये जो वैदिक कर्म करता है॥४८॥वह उस कर्मकी कलाके आधेको भी प्राप्त नहीं होता जो यत्नसे भस्मस्नान विधिपूर्वक करता है॥४९॥ वह सब कर्ममें अधिकारी है यह शास्त्रमें कथित है वेदमें कहा है भस्मस्नान पवित्रोंका भी पवित्र करनेवाला है ॥ ५० ॥ जो मोहसे नहीं करता है वह महापातकी होता है जो पुण्य ब्राह्मणोंको अनन्त जलस्नानसे प्राप्त होता है ॥५१॥ उससे अनन्त गुण भस्मस्नानसे प्राप्त होता है तीनों

कालमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ भस्मस्नान श्रौतकर्म है उसके त्यागनेसे पतित होता है मुत्रादि उत्सर्जनके उपरान्त यत्नस भस्मस्नान ॥ ५३ ॥ करना चाहिये अन्यथा वह पवित्र न होगा जिसने विधिपूर्वक शौच किया हो वह ब्राह्मण भस्मस्नानके विना ॥५४॥ पवित्र नहीं होता न किसीकर्ममें अधिकारी होता है अपानवायुके आनेमें जंभाई स्कन्दन तथा छींक आनेमें ॥५५॥ तथा थूकादिके निकलनेमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये यह भस्मस्नान माहात्म्यका एकदेश तुमसे वर्णन किया॥५६॥फिरभी भस्मस्नानका माहात्म्य तुमसे कहता हूं हे

भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ मूत्राद्युत्सर्जनांते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५३॥ कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यंति मानवाः ॥ विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः ॥ ५४ ॥ न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि ॥ अपानवायु निर्याते जृंभणे स्कंदने क्षुते ॥ ५५ ॥ श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः ॥ ५६ ॥ पुनश्च संप्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम् ॥ सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुंगव ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संशोध्य सादरम् ॥ धारणीयं ललाटादौ त्रिपुंड्रं केवलं द्विजः ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः ॥ तस्माद्द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुंड्रं धार्यमन्वहम् ॥ २ ॥ यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते ॥ तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ ३ ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्मसमाचरेत् ॥ तत्कृतं चाऽकृतप्रायं भवत्येव न संशयः ॥ ४ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! सावधान होकर आप सुनो ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण बोले अग्नि इत्यादि मंत्रोंसे आदरपूर्वक भस्मको शोधनकर ब्राह्मणको ललाटादिमें त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह द्विज कहाते हैं इस कारण द्विजोंको यत्नपूर्वक त्रिपुंड्रधारण करना नित्य उचित है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसका यज्ञोपवीत होगया हो उसीको ब्राह्मण कहते हैं इसकारण श्रौत ब्राह्मणोंको त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो विभूति न धारणकरके दूसरे सत्कर्मकरता है वह निःसन्देह

उसका विना कियेके समान होता है ॥ ४ ॥ भस्मधारण विना गायत्रीका उपदेश उचित नहीं अंगमें भस्मधारण करकेही गायत्रीका जप करै ॥५॥ मुनिश्रेष्ठ ! गायत्रीही ब्राह्मणताकी मूल है वह विना भस्मधारे किसीके यथार्थ उपदेश नहीं होते ॥ ६ ॥ हे मुने ! तबतक गायत्री ग्रहणका अधिकार नहीं है जबतक अग्निकी प्रगट हुई भस्म भालपर धारण नहीं की जाती ॥ ७ ॥ भस्मके विना मस्तकमें ब्राह्मणता नहीं दीखती हे ब्रह्मन् ! इसी कारण मैंने इसे हेतुयुक्त पुण्यदायक कहा है ॥ ८ ॥ जिसके मस्तकमें मंत्रसे पवित्र भस्म दिखाई देती है हम उसको

न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना ॥ ततो धृत्वैव भस्मांगे गायत्रीजपमाचरेत् ॥ ५ ॥ गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुंगव ॥ सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते ॥ ६ ॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने ॥ यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥ ७ ॥ भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम् ॥ एवमेव मया ब्रह्मन्हेतुरुक्तः सुपुण्यदः ॥ ८ ॥ मंत्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिवर्तते ॥ स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥९॥ यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १० ॥ न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स चांडाल इति ज्ञेयो जन्म जन्मांतरे ध्रुवम् ॥ ११ ॥ न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुंड्रोद्धूलनादिषु ॥ स चांडाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १२ ॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुंजंते च फलादिकम् ॥ ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवंति न संशयः ॥ १३ ॥ "विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ॥ स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेपो नरकप्रदः ॥ सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः ॥" विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः ॥ १४ ॥

ही विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं यह सत्य है ॥ ९ ॥ जिसकी मणिके समान भस्म संग्रहमें स्वाभाविक प्रीति है हे ब्रह्मन् ! वही ब्राह्मण है यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ १० ॥ और मणिके समान भस्म संग्रहमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति नहीं है वह जन्म जन्मान्तर चांडाल जानना ॥ ११ ॥ जिसकी त्रिपुंड्र और भस्ममें स्वाभाविक प्रीति नहीं वह अन्त्यज है यह मैं सत्य कहता हूं ॥१२॥ जो भस्म धारण किये विना फलादिक खाते हैं वे सब घोर नरकको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ "विभूति धारण किये विना जो शंकरका पूजन करैंगे वह दुर्भागी

शिवद्वेषी हैं वही द्वेष नरकका देनेवाला है विना विभूति धारण किये जो सुवर्णकी तुला करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता वह पतित होता है ॥१४॥ जैसे उपवीतरहित ब्राह्मण सन्ध्या नहीं करता इसीप्रकार विभूतिके विना संध्या न करै ॥ १५ ॥ उपवीत रहितोंको संध्यामें कहीं प्रतिनिधि होता है गायत्रीका जपादि तथा उपोषणादि होता है ॥ १६ ॥ पर विभूतिधारणमें कोई प्रतिनिधि नहीं होता यदि कोई विभूति विना धारण किये संध्या करै ॥१७॥ तो उसको प्रत्यवाय लगता है विना भस्मके यह ब्राह्मण गायत्रीका अधिकारी नहीं होता जैसे अन्त्यज वेदोंको

यथोपवीतरहितैः संध्या न क्रियते द्विजैः ॥ तथा संध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि ॥ १५ ॥ गतोपवीतैः संध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्वचित् ॥ जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम् ॥ १६ ॥ विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति प्रतिनिधिः क्वचित् ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यदि संध्यां करोति यः ॥ १७ ॥ प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः ॥ यथा श्रुत्वांत्यजो वेदान्प्रत्यवैति तथा द्विजः ॥ १८ ॥ प्रत्यवैति न सन्देहः संध्याकृद्भस्मवर्जितः ॥ संपादनीयं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजैः ॥ १९ ॥ स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः ॥ यादृशं तादृशं वाऽस्तु पवित्रं भस्म संततम् ॥ २० ॥ धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः संध्यादिकर्मसु ॥ न संविशंति पापानि भस्मनिष्ठं ततः सदा ॥ २१ ॥ कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम् ॥ मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ॥ २२ ॥ षडंगुलायतं मानमपि चाधिकमानकम् ॥ नेत्र युग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥

सुनकर प्रत्यवायको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इसप्रकार भस्म विना धारण किये शैव संध्या करनेसे प्रायश्चित्तको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ स्मार्त वा उसके अभावमें लौकिक कर्म सावधान होकर चाहै जैसे कर्म करै वह भस्मसंयुक्त हो तो पवित्र होता है ॥ २० ॥ संध्यादि कर्मोंमें ब्राह्मणको पवित्रतापूर्वक भस्मधारण करनी चाहिये भस्मनिष्ठ पुरुषको पाप स्पर्श नहीं करते ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भस्मधारण करनी चाहिये अपने दहिनें हाथसे मध्यकी तीन अंगुलीसे धारण करै ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रका छः अंगुली वा इससे अगुलीकाभी प्रमाण है. दोनों नेत्रोंके

पर्यन्त मस्तकमें तीनि रेखा त्रिपुंड्र ॥२३॥ जो कभी भी भस्मका धारण करता है वह रुद्र होता है इसमें सन्देह नहीं, अकार अनामिका, उकार मध्यमा ॥ २४ ॥ मकार तर्जनी है इस प्रकार त्रिपुंड्र त्रिगुणात्मक है त्रिपुंड्रको मध्यमा तर्जनीके अनुलोमसे लगावै ॥ २५ ॥ मैं इसमें पुरातन इतिहास कहता हूं एक समय दुर्वासा पितृलोकको गये ॥ २६ ॥ सर्वांगमें भस्म लगाये रुद्राक्षके आभरणोंसे युक्त श्रीशंकर सर्वात्मन् श्रीमाता जगदम्बिका ॥ २७ ॥ इसप्रकार [illegible] शिवनामोंका उच्चारण करते गये तब कव्यवाडनलादि उस समय प्रत्युत्थान

ब्रह्माविष्णुमहेशाः स्युर्भवेन्नात्र संशयः ॥ अकारोऽनामिका प्रोक्त उकारो मध्यमांगुलिः ॥२४॥ मकारस्तर्जनी तस्मात्त्रिपुंड्रं त्रिगुणात्मकम् ॥ त्रिपुंड्रं मध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥ २५ ॥ अत्र ते कथयाम्येनमितिहासं पुरातनम् ॥ कदाचिदथ दुर्वासाः पितृलोकं जगाम सः ॥२६॥ भस्मोद्धूलितसर्वांगो रुद्राक्षाभरणान्वितः ॥ शिवशंकरसर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदंबिके ॥२७॥ नामानीति प्रगृणन्नामानि शिवात्मनः ॥ कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २८ ॥ आसनाद्युपचारैश्च संमानं [illegible] चक्रिरे तदा ॥२९॥ तस्मिन्नेव समये कुंभीपाकस्थानां तु पापिनाम् ॥ घोरःसमभवच्छब्दो महान्सर्वार्तिदायकः ॥ ३० ॥ मृताः स्मेति चाहत्येके दग्धाः स्मेति परे जगुः ॥ छिन्नाः स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणां ॥३१॥ श्रुत्वा तं करुणं शब्दं दुःखितो मुनिराट् हृदि ॥ पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यति ॥३२॥ ते समूचुर्मुनिश्रेष्ठ पुरी संयमनी परा ॥ यत्रैव यमराजश्च पापिनां शासको मुने ॥ ३३ ॥

अभिवादन करते हुए ॥ २८ ॥ और आसनादिके उपचारसे बहुत मान करते हुए, तथा अनेक कथाओंसे परस्पर सम्भाषण करने लगे ॥ २९ ॥ उसी समय कुंभीपाक नरकमें पडे रहनेवालोंका घोर हाहाकार शब्द सुनाई दिया ॥ ३० ॥ कोई बोले मरे कोई बोले दग्ध हुए कोई बोले छिन्न भिन्न हुए इसप्रकार परस्पर रुदन करने लगे ॥ ३१ ॥ मुनिराज हृदय भर उस करुणा शब्दको सुनकर बडे दुःखी हुए पितृगणोंसे पूछा कि यह किनका शब्द है ॥ ३२ ॥ वे कहने लगे कि यह संयमनी पुरी है यहां यमराज पापियोंको कष्ट देते हैं ॥ ३३ ॥

अनेक कालरूपी कृष्णवर्ण भयंकर दूतोंके सहित इस पुरीके नायक यहां वर्तमान हैं ॥३४॥ यहां अनेक कुंड पापियोंको भोगदायक हैं जो चौरासी घोररूप दूतोंसे व्याप्त हैं ॥३५॥ वहां मुख्य कुंड कुंभीपाक नामवाला है वहां रहनेवालोंके दुःखका वर्णन ॥ ३६ ॥ कोई सौ वर्ष भी नहीं करसकते जो शिव और देवीके द्रोही हैं तथा जो विष्णुके द्रोही हैं वे इस नरकमें पडते हैं जो वेद सूर्य और गणेशके निंदक हैं ॥३७॥३८॥ हे मुने! जो ब्राह्मणोंके द्रोहीहैं वह यहां पतित होते हैं जो यथेच्छ मनके अनुसार आचरण करते तथा तपाकर बाहोंपर शंख चक्रादि लगाते

नानादूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयंकरैः ॥ सहितोऽत्रैव तत्पुर्या नायको विद्यतेऽनघ ॥ ३४ ॥ तत्र कुंडान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च ॥ षडशीतिघोररूपैर्दूतैः परिवृतानि च ॥ ३५ ॥ तत्र मुख्यतमं कुंडं कुंभीपाकाभिधं महत् ॥ वर्तते तद्ग तानां च यातनानां तु वर्णनम् ॥ ३६ ॥ कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि ॥ ये शिवद्रोहिणः संति तथा देवीविनिंदकाः ॥ ॥ ३७ ॥ ये विष्णुद्रोहिणः संति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ ये वेदनिंदकाः संति सूर्यस्य च गणेशितुः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ कामाचाराश्च ये संति तप्तमुद्रांकिताश्च ये ॥ ३९ ॥ त्रिशूलधारिणो ये च पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ मातृपितृ गुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिंदकाः ॥४०॥ ये धर्मदूषकाः संति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः ॥ ४१ ॥ श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत् ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया ॥ ४२ ॥ उत्थाय चलितस्तूर्णं ययौ कुण्डसमीपतः ॥ अवाङ्मुखो ददर्शाऽधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने ॥ ४३ ॥

॥ ३९ ॥ तथा जो त्रिशूलका अंक धारण करते हैं वह यहां पतित होते हैं "कारण कि यह बातें वेदानुकूल नहीं हैं" जो माता, पिता, गुरु, ज्येष्ठ, पुराण और स्मृतियोंके निन्दक हैं ॥ ४० ॥ तथा जो धर्मके दूषक हैं वह यहां पतित होते हैं उन्हींका यह महाघोर दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ४१ ॥ यह हम रातदिन सुनते हैं इसके सुननेसे वैराग्य होता है यह उनके वचन सुन मुनिराज उनके देखनेकी इच्छासे शीघ्रही उठकर चले और कुण्डके समीप गये और नीचेको मुखकर देखने लगे उसी समय ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वहांके निवासियोंको स्वर्गसे अधिक सुख हुआ कोई हँसने गाने और नाचने लगे ॥ ४४ ॥ कोई उत्तम सुख बढनेसे परस्पर आलाप करने लगे मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का, दुंदुभीके शब्द ॥ ४५ ॥ पंचमस्वरसे भूषित वहांसे उठने लगे वसन्तकी वेलफूलोंकीसी हवा वहन करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनि भी चकित और यमदूत भी विस्मित हुए उन्होंने शीघ्रही धर्मराजसे कहा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इस समय बड़ा आश्चर्य हुआ कुंभीपाकवाले पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख हुआ है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! यह किस कारणसे ऐसा हुआ इस निमित्तको मैं

तत्रत्यानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम् ॥ हसंति केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति च तथा परे ॥ ४४ ॥ परस्परं रमंते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात् ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्कादुंदुभिनिस्वनाः ॥४५॥ समुद्भूतास्तु मधुराः पंचमस्वरभूषिताः ॥ वसंतवल्लीपुष्पाणां सुगंध मरुतो ववुः ॥४६॥ मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः ॥ शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने ॥ ४७ ॥ महाराज महाश्चर्यमधुनै वाभवद्विभो ॥ स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुंभीपाकस्थपापिनाम् ॥४८॥ निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो ॥ चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदंतिकम् ॥ ४९ ॥ निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः ॥ महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापि नः ॥ ५० ॥ तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वाराऽमरावतीम् ॥ श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुंठाद्विष्टरश्रवाः ॥ तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह ॥ ५२ ॥ परिवार्य स्थिताः सर्वे कुंभीपाकमितस्ततः ॥ अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान् ॥ ५३ ॥

नहीं जानता हूं हम चकित होकर आपके समीप आकर प्राप्त हुए हैं ॥४९॥ यह वाणी सुनकर धर्मराज बहुत शीघ्रतासे उठे और महा महिषपर चढकर पापियोंके समीप गये ॥ ५० ॥ और दूतोंकेद्वारा इस बातको अमरावतीमें कहा भेजा, यह सुनकर देवराजभी देवताओंके सहित प्राप्त हुए ॥५१॥ ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा वैकुण्ठसे भगवान् तथा दूसरे सब लोकपालभी वहां आनकर प्राप्त हुये ॥ ५२ ॥ अपने गणोंके सहित कुंभीपाकको घेरकर खड़े हुए और वहांके जीवोंको स्वर्गसे अधिक सुखी देखने लगे ॥ ५३ ॥

सब चकित रहे किसीने उसके कारणको न जाना और बोले अहो यह कुण्ड तो पापके भोगके निमित्त किया था ॥ ५४ ॥ जब यहां यह सुख हुआ तो फिर पापसे क्या भय होगा परमात्माकी की हुई वेदमर्यादा कैसे छिन्न हुई ॥५५॥ भगवान्‌ने अपने संकल्पको मिथ्या किस प्रकार किया यह बड़ा आश्चर्य है इस प्रकार सब परस्पर कहने लगे ॥ ५६ ॥ समीपवर्ती होकर भी किसीने इस कारणको न जाना इसी समय भगवान् विष्णु देवताओंसे सम्मतिकर ॥५७॥ कुछ देवताओंको साथले शिवके स्थानपर गये जहां वह देव कोटिकामके समान सुन्दर

चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम् ॥ अहो पापस्य भोगार्थं कुंडमेतद्विनिर्मितम् ॥ ५४ ॥ तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम् ॥ उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम् ॥ ५५ ॥ भगवान्स्वस्य संकल्पं वितथं कृतवान्कथम् ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येवभाषिणः ॥ ५६ ॥ तटस्था अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे शौरिः संमंत्र्य विबुधादिभिः ॥५७॥ ययौ कैश्चित्सुरगणैः सहितः शंकरालयम् ॥ पार्वत्या सहितं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥ ५८ ॥ रमणीयतमांगं तं लावण्यखनिमद्भुतम् ॥ सदा षोडशवर्षीयं नानालंकारभूषितम् ॥ ५९ ॥ नानागणैः परिवृतं लालयंतं परां शिवाम् ॥ ददर्श चन्द्रमौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह ॥ ६० ॥ वृत्तांतं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम् ॥ एतस्य कारणं देव न जानीमः कथंचन ॥६१॥ वद तत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो ॥ विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ६२ ॥ उवाच मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरया गिरा ॥ शृणु विष्णो तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते ॥ ६३ ॥

पार्वतीके सहित विराजमान थे ॥ ५८ ॥ जो अतिशय रमणीय और लावण्यताकी खान है सदा, सोलह वर्षकी अवस्था अनेक अलंकारोंसे शोभित ॥५९॥ नाना गणोंसे युक्त शिवाको प्यार करते हुए शंकरको देख चतुर्वेदके सहित हरिने प्रणाम किया ॥६०॥ और उस चमत्कारका वृत्तान्त कहा कि हे देव ! हम इसका कारण नहीं जानते हैं ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हो इस कारण इसका कारण कहो विष्णुके यह वचन सुनकर प्रसन्नमुखसे ॥६२॥ मेघगंभीरवाणीसे शिवजी मधुर वाक्य बोले इसका निमित्त सुनो इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं है ॥ ६३ ॥

यह सब भस्मकी महिमा है भस्मसे क्या नहीं होता है शैवसंमत दुर्वासाजी कुंभीपाक देखने गये ॥ ६४ ॥ सो वह नीचेको मुखकर देखने लगे उसी समय वायुवशसे उनके मस्तकसे भस्मके कण कुण्डमें पतित हुए ॥ ६५ ॥ उसीसे यह सब कुछ हुआ है यह भस्मकी महिमा है अबसे यह पितृलोक निवासियोंको तीर्थ ॥ ६६ ॥ होगा इसमें सन्देह नहीं यहां स्नान करनेसे सुख होगा और पितृतीर्थनाम होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ यहाँ मेरी प्रतिमा देवीके सहित स्थापन करनी, पितृलोकनिवासी इसका पूजन करैंगे ॥ ६८ ॥ त्रिलोकीके

भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्नहि ॥ कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसंमतः ॥ ६४ ॥ अवाङ्मुखो ददर्शाऽधस्तदा वायुवशाद्धरे ॥ भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः ॥ ६५ ॥ तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम् ॥ इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम् ॥ ६६ ॥ भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत् ॥ पितृतीर्थं तु तन्नाम्नाऽप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति ॥ ६७ ॥ मल्लिंगस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम ॥ पूजयिष्यंति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः ॥ ६८ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ पित्रीश्वरीपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥ ६९ ॥ नारायण उवाच ॥ इति देव वचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ तदनुज्ञां समादाय ययौ देवांतिकं हरिः ॥७०॥ तत्सर्वं कथयामास कारणं शंकरोदितम् ॥ साधु साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः ॥७१॥ शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः सुराः ॥ पितरश्चैव संतुष्टास्तीर्थलाभात्परंतप॥७२॥ तत्तीर्थतीरे लिंगं च देव्या मूर्तिं यथाविधि ॥ स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम् ॥ ७३ ॥

सब तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ होगा यहां पित्रीश्वरीकी पूजासे त्रिलोकी पूजित जाननी ॥ ६९ ॥ नारायण बोले हरि इस प्रकार हरके वचन सुन उनको शिरसे प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले देवताओंके समीप आये ॥ ७० ॥ और शिवकी कही सब बात सुनाई सब देवता शिरकंपित करते धन्य २ कहने लगे ॥ ७१ ॥ हरि ब्रह्मादिक देवता भस्मका माहात्म्य कहनेलगे हे परंतप ! तीर्थलाभसे पितरभी सन्तुष्ट हुए ॥ ७२ ॥ देवताओंने उस तीर्थके निकट शिवलिंग और देवीकी मूर्त्ति विधिपूर्वक स्थापन कर निरन्तर पूजा की ॥ ७३ ॥

उस स्थानमें पाप भोगनेको जितने प्राणी थे वे सब विमानोंमें बैठ कैलासमंडलको चले गये॥७४॥वे भद्र नामवाले गण होकर आजतक वहां निवास करते हैं फिर वहांसे दूर देशमें कुंभीपाक नरक बनाया गया॥७५॥ उस दिनसे देवताओंने वहां शिवभक्तोंके जानेकी मनाई की है यह तुमसे सब भस्मका माहात्म्य कहा॥७६॥हे मुने!इससे अधिक और कुछ नहीं है,ऊर्ध्वपुंड्रकी विधि अधिकारीके भेदसे॥७७॥ वर्णन करता हूं जो वैष्णवशास्त्रमें है हे मुनिश्रेष्ठ! ऊर्ध्वपुंड्रका प्रमाण दिव्य अंगुलीके भेद ॥ ७८ ॥ तथा वर्णमंत्र और उसका फल कहूंगा पर्वतके अग्रभाग नदीके तट तथा

तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः॥ ते विमानं समारूह्य गताः कैलासमंडलम् ॥७४॥ नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसंत्यद्यापि तत्र हि ॥ पुनश्च दूरदेशे तु कुंभीपाको विनिर्मितः ॥७५॥ निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात् ॥ इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥७६॥ नातः परतरं किंचिदधिकं विद्यते मुने ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविधिं चैवाऽप्यधिकारीविभेदतः ॥ ७७ ॥ प्रवक्ष्ये मुनि शार्दूल वैष्णवागमलोकनात् ॥ ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानि दिव्यान्यंगुलिभेदतः ॥ ७८ ॥ वर्णाभिमंत्रदेवांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च ॥ पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः ॥ ७९ ॥ सिंधुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥ मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जये दन्यमृत्तिकाः ॥ ८० ॥ श्यामं शांतिकरं प्रोक्तं रक्तवश्यकरं भवेत् ॥ श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत् ॥ अनामिकान्नदा नित्यमुक्तिदा च प्रदेशिनी ॥ ८२ ॥ एतैरंगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् ॥ वर्तिदीपावलिकृतिं वेणुपत्राकृतिं तथा ॥ ८३ ॥

विशेष कर शिवक्षेत्रमेंसे ॥ ७९ ॥ समुद्र तट, वल्मीक, तुलसीकी जडकी मृत्तिका लावै और सब मृत्तिका वर्जित हैं ॥ ८० ॥ श्याम कांतिकारी, लाल वश्यकारी, पीली श्रीकरनेवाली, श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र धर्म देनेवाला है ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठ पुष्टिदायक, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदायक, प्रदेशिनी अंगुली मुक्तिदायक है ॥ ८२ ॥ इन अंगुलीके भेदोंसे तिलक करै नखूनोंसे स्पर्श न करै जलते हुए दीपकके लोपके समान

तथा बांसपत्रके आकार ॥८३॥ वा पद्मकी कलीके समान,प्रयत्नसे करै,मत्स्य कूर्मके आकार शंखके आकार ॥८४॥ बनावै दशांगुलि प्रमाणका परमोत्तम तिलक है नौ अंगुलका मध्यम और आठ अंगुलका उससे भी निकृष्ट है ॥ ८५ ॥ सात छः पांच अंगुलका तीन प्रकारका मध्यम है चार तीन दो अंगुलका तीन प्रकारका कनिष्ठ है ॥ ८६ ॥ ललाटमें केशवको जानै, उदरमें नारायण, हृदयमें माधव, कण्ठमें गोविन्द ॥८७॥ उदरके दक्षिणपार्श्वमें विष्णु, उसके दूसरे पार्श्व और बाहुमध्यमें मधूसूदन ॥ ८८ ॥ कर्णमें त्रिविक्रम, बाईंकोखमें वामन, बाईंभुजामें श्रीधर

पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ मत्स्यकूर्माकृतिं वापि शंखाकारं ततः परम् ॥ ८४ ॥ दशांगुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते ॥ नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम् ॥ ८५ ॥ सप्तषट्पंचभिः पुंड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ चतुस्त्रिद्व्यंगुलैः पुंड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥ ८६ ॥ ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ॥ माधवं हृदि विन्यस्य गोविंदं कंठकूपके ॥ ८७ ॥ उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते ॥ तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च ॥ ८८ ॥ त्रिविक्रमकर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम् ॥ श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके ॥ ८९ ॥ पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत् ॥ द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥ ९० ॥ पूजाकाले च होमे च सायं प्रातः समाहितः ॥ नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुंड्रकम् ॥ ॥ ९१ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् ॥ शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि पुंड्रांकितो नरः ॥ ९२ ॥

दहिने कानमें हृषीकेश ॥८९॥ पीठमें, पद्मनाभ कन्धेमें, दामोदरको स्मरण करै यह बारह वासुदेवके नाम लेकर तिलक करै यह तिलकोंके देवता हैं ॥ ९० ॥ प्रभात सन्ध्या समय पूजा और हवनके समय विधिसे इन नामोंको उच्चारणकर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करै ॥९१॥ जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं वह अशुचि अनाचारी, चाहैं मनमें पाप भी स्मरण करते हों तोभी शुद्ध होते हैं ॥ ९२ ॥

---

१ ब्रह्माण्ड पुराणमें इसका विनियोग लिखा है ललाटमें बाहुवत् कानमें दंडके समान हृदयमें कमलके समान उदरमें दीपके समान स्कन्धमें जम्बू और पलाशवत् धारण करै ॥ ८४ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी जहां कहींभी मृत्युको प्राप्त हो चण्डाल पर्यंतभी हो वह विमानमें चढकर मेरे लोकको आता है ॥ ९३ ॥ एकांत रहनेवाले महाभाग निर्मलही मेरा स्वरूप जानते हैं, जो दो रेखावाला मध्यमें शून्य विष्णुके पदके समान तिलक करते हैं ॥ ९४ ॥ वे परम एकान्ती भी मेरे चरणोंके भक्त हैं, जो हलदीके चूर्णसे संयुक्त शूलाकार अमल तिलक करते हैं ॥ ९५ ॥ तथा जो दूसरे वैष्णव भक्तिपूर्वक दीप कमलकी बांसीके पत्तेके समान अच्छिद्र तिलक करते हैं ॥ ९६ ॥ तथा जो अच्छिद्र और सच्छिद्र केवल वैष्णव तिलक करते हैं, तो

ऊर्ध्वपुंड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ॥ श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ ९३ ॥ एकांतिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः ॥ सांतरालान्प्रकुर्वंति पुंड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ॥ ९४ ॥ परमैकांतिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्तान्छूलाकारांस्तु वाऽमलान् ॥ ९५ ॥ अन्ये तु वैष्णवाः पुंड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः ॥ प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥ ९६ ॥ अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान्कुर्युः केवलवैष्णवाः ॥ अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ॥ ९७ ॥ एकांतिनां प्रपन्नानां परमैकांतिनामपि ॥ अच्छिद्रपुंड्राकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत् ॥ ९८ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रं तु यः कुर्याद्दंडाकारं तु शोभनम् ॥ मध्येच्छिद्रं वैष्णवाश्च नमोऽन्तैः केशवादिभिः ॥ ९९ ॥ विमलान्यूर्ध्वपुंड्राणि सांतरालानि यो नरः ॥ करोति विपुलं तत्र मंदिरं मे करोति सः ॥ १०० ॥ ऊर्ध्वपुंड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे ॥ लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः ॥१॥ निरंतरालयः कुर्यादूर्ध्वपुंड्रं द्विजाधमः ॥ सहि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति ॥२॥

अच्छिद्र करणमें उनको कोई विघ्न नहीं है ॥९७॥ जो एकांतिक परं वीरभक्त वैष्णव हैं उनको अच्छिद्र पुण्ड्रके करनेमें महा प्रत्यवाय प्राप्त होता है ॥९८॥ जो कोई दंडके आकार शोभित ऊर्ध्व पुण्ड्र करता है मध्यमें छिद्र रखता है अर्थात् दोनों रेखाओंके मध्यमें अवकाश रखता है केशवादि नामोंको उच्चारण करते हैं ॥९९॥ तथा जो अवकाशयुक्त उज्ज्वल ऊर्ध्व पुण्ड्रोंको धारण करता है वह मानो मेरा मंदिरही करता है ॥१००॥ विशाल मनोहर ऊर्ध्व पुण्ड्रके मध्यमें लक्ष्मी सहित अविनाशी विष्णु रमण करते हैं ॥१॥ और जो द्विजाधम निरवकाश

ऊर्ध्वपुण्ड्रको करता है वह विष्णुको स्थितकर वहांसे लक्ष्मीवियुक्त करता है ॥ २ ॥ जो मूढबुद्धि अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्रको करते हैं वह क्रमसे इक्कीस नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों पार्श्व सीधे स्फुट करने चाहिये ऊर्ध्वपुण्ड्र दण्ड कमलके और दीपकके समान करने चाहिये ॥ ४ ॥ द्विजको शिखा उपवीतके समान ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये हे महामुने ! इसके विना किये सब क्रिया निष्फल होगी॥ ५ ॥ इस कारण सब कार्योंमें बुद्धिमान्‌को ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिशूल, वर्तुलाकार चौकोन तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥ वेदनिष्ठ पुरुषको अर्ध चन्द्रादि चिह्न धारण करने उचित नहीं हैं, वेदसे अतिरिक्तही इनके अधिकारी हैं जो जन्मसे द्विज हैं वेदमार्गका आश्रय लिये हैं ॥ ७ ॥ वह भ्रमसे

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु यः करोति विमूढधीः ॥ स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम् ॥ ३ ॥ ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सांतरालानि विन्यसेत् ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दंडाब्जदीपमत्स्यनिभानि च ॥ ४ ॥ शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजेन च ॥ विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः॥ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रक म् ॥ ६ ॥ अर्धचंद्रादिकं लिंगं वेदनिष्ठो न धारयेत् ॥ जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपंथानमाश्रितः ॥ ७ ॥ पुण्ड्रांतरं भ्रमाद्वा ऽपि ललाटे नैव धारयेत् ॥ ख्यातिकांत्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु ॥ ८ ॥ स्थितं पुण्ड्रांतरं नैव धारयेद्वैदिको जनः ॥ तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं संत्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात् ॥ ९ ॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ विना पुण्ड्रांतरं मोहा द्धारयन्नारकी भवेत् ॥ ११० ॥ वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यंकितो यदि ॥ पतत्येव न संदेहस्तथा पुण्ड्रांतरादपि ॥ ११ ॥

भी मस्तक ललाटमें कोई दूसरा पुण्ड्र न धारण करै वैष्णवशास्त्रोंमें ख्याति और कांति आदिकी सिद्धिके निमित्त तिलक धारण कहे हैं पर वैदिक पुरुषोंको नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ वैदिक पुरुषको और तिलक न देना, अर्थात् वैदिक जो तिरछे त्रिपुण्ड्रको छोडकर किसी प्रकार भी भ्रमसे ॥९॥ ललाटमें भस्म वा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रको छोडकर और कुछ धारण न करै जो मोहसे धारण करता है वह नारकी (आवागमन सम्पन्न होता है जो ॥ ११० ॥ वेदमार्गमें निष्ठावाला होकर यदि मोहसे अंकित होजाय तो अवश्य पतित होगा इसमें संदेह नहीं यही दशा अन्य पुण्ड्र

धारणमें जाननी ॥ ११ ॥ वेदमार्गमें स्थित पुरुषको शरीर दगाना अंकित करना उचित नहीं, श्रौतधर्ममें निष्ठावालोंको तो श्रौतलिंगही युक्त है ॥ १२ ॥ हां जो श्रुतियोंके धर्ममें निष्ठ नहीं हैं उनके कारण वेदबाह्य चिह्न धारण करनेमें क्या निषेध है वेदसिद्ध देवताओंका सो वेदही चिह्न है॥१३॥ जो श्रौतकर्म नहीं करते तंत्रनिष्ठावाले हैं उनके अपरापर चिह्न होते हैं, पर वैदिक कर्मसिद्ध महादेव साक्षात् संसारके छुडानेवाले हैं ॥ १४ ॥ भक्तोंके उपकारके निमित्तही श्रुतिसम्मत भस्मादि चिह्न धारण करते हैं वैदिक कर्मकारी वैष्णवको भी श्रुतिसम्मत भस्मही धारण करनी होगी अन्य नहीं (तप्तमुद्रा ऊर्ध्वपुंड्र तंत्रोक्त दीक्षावाले वैष्णवोंको है वेदानुसार वर्तनेवालोंको नहीं) ॥ १५ ॥ जो रामकृष्ण

नांकनं विग्रहे कुर्याद्वेदमार्गं समाश्रितः ॥ श्रौतधर्मैकनिष्ठानां लिंगं तु श्रौतमेव हि ॥ १२ ॥ अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिंगमीरितम् ॥ देवता वेदसिद्धा यास्तासां लिंगं तु वैदिकम् ॥ १३ ॥ अश्रौततंत्रनिष्ठा यास्तासाम श्रौतमेव हि ॥ वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः ॥ १४ ॥ भक्तानामुपकाराय श्रौतं लिंगं दधाति च ॥ वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिंगं न चेतरत् ॥ १५ ॥ प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि ॥ श्रौतं लिंगं तु विज्ञेयं त्रिपुंड्रोद्धूलनादिकम् ॥ १६ ॥ अश्रौतमूर्ध्वपुण्ड्रादिनैव तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना ॥ १७ ॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि ॥ यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ॥ ११८ ॥

इत्यादि विशेष अवतार हुए हैं, उन्होंने वेदानुसार कर्मकर त्रिपुंड्र भस्म धारण की है इससे उनके भक्तोंको भी वही कर्तव्य है "रामचन्द्रका शिव स्थापन वाल्मीकिमें और कृष्णका शिवकी तपस्या करना हरिवंश पुराणमें स्पष्ट है ॥ १६ ॥ जो श्रुतिकर्मसे बाह्य है वही ऊर्ध्वपुंड्रादिक धारण करते हैं वह तिर्यक् त्रिपुंड्र धारण नहीं करते जो वेदमार्गमें ही निष्ठावाले हैं वे वेदोक्त मार्गसे ॥ १७ ॥ लल[illegible]
हैं जो नारायण देवकी शरण हो परम पदकी इच्छा करता है ॥१८॥

वह गंधजलसे ललाटमें सदा शूलाकार तिलक धारै " इस अध्यायसे तथा दूसरे सूतसंहिता, पराशर कूर्मपुराणादिसे सिद्ध है कि भस्म धारण वैदिक कर्म है, त्रिपुंड्र वैदिक कर्म है, कारण कि श्रौतस्मार्त्त कर्मवालेही त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, इनकी पद्धति वैदिक है और दूसरे तिलकधारी वेदानुसार वा वेदको मुख्य मानकर कर्म नहीं करते बहुत क्या सन्ध्या आदि न करके सम्प्रदाय भेदमें रत हो रहे हैं इन्हीं कारणोंसे भारतवर्षमें वेदविद्या लुप्तसी होगई है " ॥ ११९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारायण बोले अब हम उत्तम संध्योपासन कहते हैं और भस्म धारणका माहात्म्य तो विस्तारसे कह चुके, सन्ध्याकालकी अधिष्ठात्री देवी गायत्रीकी उपासनाही सन्ध्योपासना है सन्ध्या तीन कालमें होती है सोई याज्ञवल्क्य कहते हैं पूर्वसन्ध्या गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सरस्वती

धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गंधावारिणा ॥ ११९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां पुण्यं संध्योपासनमुत्तमम् ॥ भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात् ॥ १ ॥ प्रातः-संध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम् ॥ २ ॥ ससूर्यां पश्चिमां संध्यां तिस्रः संध्या उपासते ॥ तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम ॥ ३ ॥ उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ॥ अधमा सूर्य सहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥४॥ उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमाऽस्तमिते रवौ ॥ अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ ५ ॥

रूप है गायत्री श्वेत, सावित्री रक्त, सरस्वती कृष्णवर्ण है इसी क्रमसे ब्रह्म, रुद्र, विष्णुके समानाकार होनेसे तीन देवताओंका ध्यान कहा है, उपासनाका अर्थ ध्यान है कोई ध्यान जप कहते हैं, पर गायत्रीका जप प्रधान है, ऋषियोंने गायत्रीनामसेही दीर्घायु पायी है यह मनु कहते हैं ॥ १ ॥ हे पाप रहित! अब मैं प्रभात संध्याका विधान कहूंगा जब तारे दीखते हों उस समयसे आरंभ कर सूर्योदयपर्यन्त प्रातःसंध्या है। मध्य स्थानमें सूर्य आनेसे मध्यमा है ॥ २ ॥ और सूर्यास्तसमयकी पश्चिमासंध्या है इस प्रकार तीन संध्या हैं हे नारद! सुनो इनके भेदभी कहता हूं ॥ ३ ॥ तारोंसे युक्त उत्तमा लुप्ततारेवाली मध्यमा; और सूर्य निकलेमें संध्या अधमा इस प्रकार प्रातःसंध्या तीन प्रकारकी है॥ ४ ॥ सायंसन्ध्या सूर्यके

सहित उत्तमा, सूर्यास्तमें मध्यमा, तारोंमें अधमा है इस प्रकार इसके भी तीन भेद हैं॥ ५ ॥ ब्राह्मण वृक्ष है मूल उसकी संध्या है वेद शाखा है धर्म कर्म पत्ते हैं इससे मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी मूल नष्ट होनेसे वृक्ष और शाखा कुछ नहीं रहती ॥ ६ ॥ जिसने संध्या न जानी तथा जिसने सन्ध्याकी उपासना न की, वह जीता हुआ ही शूद्र है वह मरकरभी शूद्र होता है ॥ ७ ॥ इस कारण नित्यही सन्ध्योपासन करना चाहिये सन्ध्याके विना और कर्मोंका अधिकारी नहीं होता ॥ ८ ॥ उदय और अस्तसे जबतक तीन घडी हो तब तक संध्योपासन करना

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र संध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा ॥ ॥ ६ ॥ संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता ॥ जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ ७ ॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपासनमुत्तमम् ॥ तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥ ८ ॥ उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् ॥ तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तं ततः परम् ॥ ९ ॥ कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ अथवाऽष्ट शतं देवीं जप्त्वाऽऽदौ तं समाचरेत् ॥ १० ॥ यस्मिन्काले तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम् ॥ संध्यामुपास्य पश्चात्तु तत्कालीनं समाचरेत् ॥ ११ गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा भवेत् ॥ नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहे तदुत्तमा ॥ १२ ॥ यतो देव्या उपास्येयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ ॥ संध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदानंत्याय कल्पते ॥ १३ ॥ एतस्या अपरं दैवं ब्राह्मणानां न विद्यते ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥ १४ ॥

चाहिये ऐसा न करनेसे प्रायश्चित्त लगता है ॥ ९ ॥ यदि कालातिक्रम हो जाय तो चतुर्थअर्घ्य दे अथवा आठ सौ गायत्री देवीको जपकर पीछे प्रायश्चित्त करै ॥ १० ॥ जिस कालमें जो कर्म करना है उस कालकी अधीश्वरी सन्ध्याकी उपासना करके उस कर्मको करै ॥ ११ ॥ घरमें साधारण, गोष्ठमें मध्यमा, नदीतीरमें उत्तमा, और देवीके मंदिरमें उत्तमोत्तम है ॥ १२ ॥ जिस कारणसे कि यह देवीकी उपासना है इससे देवीके निकट तीनोंकालमें सन्ध्या करै तो अनन्त फलकी देनेवाली है ॥ १३ ॥ इससे अधिक ब्राह्मणोंको और देवता नहीं है, विष्णु

और महादेवकी उपासना अनन्त फल देनेवाली नहीं है॥१४॥ जैसे महादेवी गायत्रीकी उपासना वेदबोधित है सर्ववेदसारभुत गायत्रीकी अर्चना करनी चाहिये॥ १५ ॥ ब्रह्मादिकभी सन्ध्यामें उसीका ध्यान और जप करते हैं, वेदभी उसकी नित्य उपासना करते हैं इस कारण वह वेद द्वारा उपासनीय है ॥ १६ ॥ इस कारण सबही द्विज शाक्त हैं शैव वैष्णव नहीं हैं, आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥१७॥ आचमन कर केशवादिनामोंसे प्राणायाम करके केशव, नारायण, माधव ॥ १८ ॥ गोविंद, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर

यथा भवेन्महादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता ॥ सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ॥१५॥ ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायंति जपंति च ॥ वेदा जपंति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता ॥ १६ ॥ तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः॥आदिशक्तिमुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ १७ ॥ आचांतः प्राणमायम्य केशवादिकनामभिः ॥ केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च॥ १८ ॥ गोविंदो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च ॥ त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम् ॥ १९ ॥ हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम् ॥ संकीर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः ॥ २० ॥ पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा ॥ जनार्दन उपेंद्रश्च हरिः कृष्णोऽतिमस्तथा ॥ २१ ॥ ॐकारपूरकं नाम चतुर्विंशतिसंख्यया ॥ स्वाहाऽन्तैः प्राशयेद्वारि नमोऽतैः स्पर्शयेत्तथा ॥ २२ ॥ केशवादित्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ ॥ मुखं प्रक्षालयेद्वाभ्यां द्वाभ्यामुन्माजनं तथा ॥२३॥ एकेन पाणिं संप्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च ॥ संकर्षणादिदेवानां द्वादशांगानि संस्पृशेत् ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ॥२०॥ पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण॥२१॥ यह चौवीस नाम २४ संख्यामें ओंकारपूर्वक स्मरण कर स्वाहा लगाय फिर नमःलगावे ॥ २२ ॥ केशवाय स्वाहा, नारायणाय स्वाहा, माधवाय स्वाहा, ऐसे तीन नामसे जलपान करै गोविन्दायनमः विष्णवेनमः कहकर दोनों हाथ धोवै मधुसूदन त्रिविक्रम नामोंसे अंगुष्ठमूलसे होठ वामन श्रीधरादिदो नामोंसे मुखमार्जनकर ॥ २३ ॥ हृषीकेश नामसे बायांहाथ प्रोक्षणकर पद्मनाभनामसे चरण प्रोक्षणकर दामो

दर नामसे मूर्धा संकर्षणादिनामसे बारह अंगोंमें स्पर्शकरै संकर्षणसे मध्यमा अंगुली, वासुदेव प्रद्युम्नसे अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासापुटस्पर्शकरै अनिरुद्ध और पुरुषोत्तम नामसे अंगुष्ठ और अनामिकासे नेत्र छूकर, अधोक्षज नारसिंह नामसे श्रोत्र, अच्युत नामसे कनिष्ठ अंगुष्ठसे नाभिको स्पर्शकर, जनार्दननामसे पाणितलसे हृदयको स्पर्शकर उपेन्द्रनामसे शिरछूकर हरयेनमः श्रीकृष्णायनमः इनसे दहिनी और बाईं भुजमूलको स्पर्शकरै ॥२४॥ दक्षिण हाथसे जल पीकर वामसे स्पर्शकरै, जबतक वामहाथसे स्पर्श नकरै तबतक जल शुद्ध नहीं होता ॥२५॥ गौके कानके समान हाथका आकार करके एकमासे जलपिये फिर इससे न्यूनाधिकपिये तो ब्राह्मण सुरापायी होता है ॥ २६ ॥ दक्षिण हाथकी मिली

दक्षिणेनोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद्बुधः ॥ तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत् ॥ २५ ॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापानी भवेद द्विजः ॥ २६ ॥ संहतांगुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु ॥ मुक्तांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः ॥ २७ ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम् ॥ गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुतम् ॥ ॥२८॥ दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् ॥ कुंभेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥ २९ ॥ पीडयेद्दक्षिणानाडीमंगुष्ठेन तथोत्तराम् ॥ कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ ३० ॥ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुंभकः ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥ ३१ ॥ रेचकः सृजते वायुं पूरकः पूरयेत्तु तम् ॥ साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुम्भकः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥

हुई अंगुलियोंसे अंगूठा और कन अंगुली छोडकर शेषसे आचमन करै ॥ २७ ॥ तब आकार स्मरण कर प्राणायाम करके तुरीयपाद सहित गायत्रीको जपता हुआ प्राणायाम करै ॥२८॥ दक्षिणनासापुटसे वायु रेचन करै, बायेंसे उदरको पूर्णकर कुंभसे धारण करै इसका नाम पंडितोंने प्राणायामकहा है ॥ २९ ॥ अंगुष्ठसे दक्षिण नाडीको पीडितकरै, कनिष्ठ और अनामिकासे यह कार्य करै मध्यमा और तर्जनीको त्यागन करै ॥ ३० ॥ रेचक पूरक और कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम जितेंद्रिय योगी कहते हैं ॥ ३१ ॥ रेचकसे वायु छोडी जाती, पूरक पूर्ण

करती, और समानतासे इसकी स्थितिका नाम कुंभक है ॥ ३२ ॥ नीलोत्पलके समान श्यामस्वरूप नाभिमें प्रतिष्ठित है, वहां चतुर्भुज हरि को पूरकके समय ध्यानकरै ॥ ३३ ॥ कुंभकके समय हृदयमें कमलासन प्रजापति जगन्नाथ चतुर्मुख पिता महका ध्यान करै ॥ ३४ ॥ रेचकके समय ललाटमें स्थित महेश्वर शुद्ध स्फटिकके समान पापनाशी शंकरका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ पूरकमें विष्णुका सायुज्य कुंभकमें ब्रह्मकी गति, रेचकसे शिवकी परम गति प्राप्त होती है ॥३६॥ हे देवर्षि! यह पुराणसम्मत आचमन आपसे कहा आपसे अब श्रौत आचमन कहता हूं ॥ ३७ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥ चतुर्भुजमहात्मानं पूरके चिंतयेद्धरिम् ॥ ३३ ॥ कुंभके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तु कमलासनम् ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥३४॥ रेचके शंकरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ॥ ३५ ॥ पूरके विष्णुसायुज्यं कुम्भके ब्रह्मणो गतिम् ॥ रेचकेन तृतीयं तु प्राप्नुयादीश्वरं परम् ॥ ३६ ॥ पौराणाचमनाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम ॥ श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने ॥ ३७ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम्॥पादादौ व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते ॥३८॥ गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्वकाम् ॥ प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ ३९ ॥ "सलक्षणं तु प्राणानामायामं कीर्त्यतेऽधुना ॥ नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम् ॥" पचांगुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु ॥ सर्वपापहरा मुद्रा वाप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ४० ॥

पहले ओंकार पढकर फिर गायत्री त्रिपदी उच्चारणकर जलपान करै, यह श्रौत आचमनहै ॥ ३८ ॥ जो व्याहृतिपूर्वक शिरके सहित गायत्रीका जपकरता प्रत्येकवार प्राणायाम रेचक पूरक कुंभककर ऐसे तीनवार करनेका नाम प्राणायाम करै ॥ ३९ ॥ अब लक्षण सहित प्राणोंका आयाम कहतेहैं जो अनेक पापनाशक और महापुण्यका फलदेने वाला है ओंकारसे पांचोंअंगुलियों द्वारा नासाग्रभागको पीडित करै यह मुद्रा

१ ओमापोज्योतिरसोमृतम ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् यह गायत्रीशिर है ।

वानप्रस्थ और गृहस्थोंके सब पापकी हरनेवाली है॥४०॥ कनिष्ठिकाअनामिका और अंगूठेसे यती और ब्रह्मचारीका प्राणायामहोता है आपोहिष्ठा, तीनमंत्रसे कुशोदकसे प्रोक्षण करै ॥४१॥ ऋचाके अन्त वा पादके अन्तमें मार्जन करै नौवार आपोहिष्ठादिके साथ प्रणव लगाय मार्जन करै ॥४२॥ मार्जनसे एक वर्षका किया पाप नष्ट होता है फिर 'सूर्यश्चमा' ७ ऋचा पढकर जलपिये ॥ ४३ ॥ जो उसके अन्तःकरणका पाप नष्ट हो जाता है प्रणव व्याहृति गायत्री सबमें ॐकार लगाय ॥४४॥ 'आपोहिष्ठा' सूतसे मार्जन करै गोकर्णवत् किये दक्षिण हाथमें जललेकर ॥४५॥

कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः ॥ ४१ ॥ ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ॥ नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठेत्यनेन तु ॥ ४२ ॥ नश्येदघं मार्जने न संवत्सरसमुद्भवम् ॥ तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः ॥ ४३ ॥ अंतःकरणसंभिन्नं पापं तस्य विनश्यति ॥ प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥ ४४ ॥ आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव कारयेत् ॥ उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते ॥ ४५ ॥ नीत्वा तं नासिकाग्रे तु वामकुक्षौ स्मरेदघम् ॥ पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः ॥४६॥ द्रुपदा वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च ॥ श्वासमार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि ॥४७॥ नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत् ॥ निष्पापं तु शरीरंमे संजातमिति भावयेत् ॥४८॥ उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ मासौ सन्नियोजयेत् ॥ जलांजलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यंगुष्ठवर्जितम् ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ॥ त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने ॥ ५० ॥

उसे नासिकाके अग्रभागमें लाकर बाईं ओरके पापको स्मरण करै कृष्णवर्ण पापपुरुषका ध्यानकरके 'ऋतंचसत्यं' यह पढै ॥ ४६ ॥ फिर द्रूपदादि मंत्रको पढता हुआ दक्षिण नासापुटसे श्वासमार्गसे उस पापको हाथके जलमें लावै ॥ ४७ ॥ विना देखे हुए उस जलको वाम भागमें अश्मके समान डाले मेरा शरीर पापरहित हो यही भावना करै ॥ ४८ ॥ फिर उठकर दोनों चरणोंको समान नियुक्त करके जलांजलि ग्रहण करै तर्जनी और अंगुष्ठके विना ॥ ४९ ॥ गायत्री पढ सूर्यको देख जल छोडदे ऐसा तीनवार करै हे मुनि! यह विधि पापनाश और अर्घ

मोचनके निमित्त है ॥ ५० ॥ फिर 'असौवाआदित्य' इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करे मध्याह्नमें एकही वार अर्घ्य होता है संध्याओंमें तीनवार अर्घ्य दे ॥ ५१ ॥ प्रभातकालमें कुछ नम्र हो मध्याह्नमें दंडवत् स्थितहो और संध्यासमय आसनपर बैठा हुआ ही जल त्यागे ॥ ५२ ॥ जिस कारण जल त्यागाजाता है सो कारण सुनो मन्देहा नामक तीस करोड़ महाबली राक्षस ॥ ५३ ॥ बडे कृतघ्न और घोर दारुण हैं यह सूर्यके खानेकी इच्छाकरते हैं जब सब देवता और तपोधन ऋषि संध्यायोंके उपासनामें जलांजलि देते हैं वह जल वज्रीभूत होकर दैत्योंको नष्ट करते हैं

ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः ॥ मध्याह्ने सकृदेव स्यात्संध्ययोस्तु त्रिवारतः ॥ ५१ ॥ ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दंडवत्स्थितः ॥ आसने चोपविष्टस्तु द्विजः सायं क्षिपेदपः ॥ ५२ ॥ उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु ॥ त्रिंशत्कोट्यो महावीरा मंदेहा नाम राक्षसाः॥५३॥कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्यमिच्छंति खादितुम्॥ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ५४ ॥ उपासते महासंध्यां प्रक्षिपंत्युदकांजलीन्॥दह्यंते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा ॥५५॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः संध्यां नित्यमुपासते॥महापुण्यस्य जननं संध्योपासनमीरितम्॥५६॥ अर्घ्यांगभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद ॥ यदुच्चारणमात्रेण सांगं संध्याफलं भवेत् ॥५७॥ सोहमर्कोस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः॥आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम्॥५८॥आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि॥जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम ॥ ५९ ॥ उत्तिष्ठ देवि गंतव्यं पुनरागमनाय च ॥ ६० ॥

[ताआपोवज्रीभूतास्तानिरक्षांसि मंदेहारुणेद्वीपे प्रक्षिपन्ति तैत्तिरीयश्रुतिः] ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस कारणसे विप्र नित्यसंध्योपासनमें ऐसा करते हैं संध्योपासन महापुण्यका देनेवाला कहा है ॥ ५६ ॥ हे नारद ! यह अर्घ्यका अंगभूत मंत्र कहते हैं सुनो जिसके उच्चारणमात्रसे सांग संध्याका फल होता है ॥५७॥ वह मैं हूं सूर्य मैं हूं ज्योति, आत्मा ज्योति शिव मैं हूं आत्मज्योति शुक्र और सब ज्योतिका रस मैं हूं ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मरूपिणी गायत्री देवी!आकर मुझे वरदीजिये जपानुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त मेरे हृदयमें प्रवेशकर ॥५९॥ हे देवी ! उठो और फिर आनेके लिये

१ इनका विचार हमारी निर्मित संध्या विधिमें देखो।

जाओ हे देवि ! मेरे हृदयमें प्रवेशकर अर्घ्योंमें गमन करो ॥ ६० ॥ फिर चतुर शुद्ध स्थानमें अपने आसनकी कल्पना करै उसपर बैठ वेदमाता गायत्रीका जप करै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! प्राणायामके उत्तर यही खेचरी मुद्रा करै हे मुनिश्रेष्ठ ! वह प्रातःसंध्याके विधानमें कीर्त्तन की है ॥ ६२ ॥ हे नारद ! सुनो इसके नामका अर्थ कहता हूं जिस कारण कि, चित्त आकाशमें विचरता है आकाशमें गई जिह्वा चरती है ॥ ६३ ॥ जिस समय भौंके मध्यमें दृष्टि लगती है उसमें खेचरी मुद्रा होती है । सिद्धासनके समान आसन कुंभकके समान प्राणायाम ॥ ६४ ॥

अर्घ्येषु देवि गंतव्यं प्रविश्य हृदयं मम ॥ ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद् बुधः ॥ तत्रारुह्य जपेत्पश्चाद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ६१ ॥ अत्रैव खेचरीमुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने ॥ प्रातःसंध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुंगव ॥ ६२ ॥ तन्नामार्थं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु नारद ॥ चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता ॥ ६३ ॥ भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ न चासनं सिद्धसमं न कुंभसदृशोऽनिलः ॥ ६४ ॥ न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद ॥ घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुं निर्जित्य यत्नतः ॥ ६५ ॥ स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहंकारनिर्ममः ॥ लक्षणं नारदमुने शृणु सिद्धासनस्य च ॥ ६६ ॥ योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम् ॥ स्थाणुः संयमितेंद्रियो ऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरं तिष्ठत्येतदतीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ६७ ॥ आयातु वरदादेवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ॥ गायत्रीं छंदसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥ ६८ ॥

खेचरीके समान दूसरी मुद्रा नहीं, हे नारद! यह सत्य सत्य है घंटाके समान ॐकारके उच्चारणसे यत्नपूर्वक वायुको जीतकर ॥ ६५ ॥ अहंकार ममता छोड़ दृढ आसनपर दृढ होकर बैठे हे नारद! सिद्धासनके लक्षण सुनो ॥ ६६ ॥ एक पादमूल लिंगके मूलमें दूसरे चरणका मूल वृषणके नीचे हृदय और शरीरको दंडवत् स्थितकर स्थाणुके समान नियतेन्द्रिय हो अचल दृष्टिसे भौंके मध्यभागको देखता हुआ स्थित हो, यह योगियोंको सुखदायक सिद्धासन है ॥ ६७ ॥ आसन बांधने उपरान्त इस प्रकार आवाहन करै वरदा

यक देवी गायत्री छन्दोंकी माता ब्रह्मसम्मित अक्षर ब्रह्मके सेवनके निमित्त मेरे समीप आवै ॥ ६८ ॥ दिनमें पाप किया जाता है वह सब इससे छूट जाता है जो रात्रिमें पाप किया जाय वह रातकी उपासनासे छूट जाता है ॥ ६९ ॥ हे सब अक्षररूप हे महादेवि ! संध्या विद्या सरस्वति अजर अमर सर्व देवि तुमको प्रणाम है ॥ ७० ॥ फिर 'तेजोसि' इत्यादि मंत्रसे देवीका आवाहन करै जो तुम्हारा अनुष्ठान किया है वह सब पूर्ण हो ॥ ७१ ॥ फिर शापनाशके निमित्त भली प्रकार विधान करै ब्रह्मा और विश्वामित्र दोका शाप है ॥ ७२ ॥ तथा वशिष्ठका

यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते ॥ यद्रात्र्यात्कुरुते पापं तद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते ॥ ६९ ॥ सर्ववर्णे महादेवि सन्ध्याविद्ये सरस्वति ॥ अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोस्तु ते ॥ ७०॥ तेजोसीत्यादिमंत्रेण देवीमावाहयेत्ततः ॥ यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे ॥ ७१ ॥ ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत् ॥ ब्रह्मशापस्ततो विश्वामित्रस्य च तथैव च ॥७२॥ वशिष्ठ शाप इत्येतद्द्विविधं शापलक्षणम् ॥ ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्त्यते ॥७३॥ विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः॥ वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति ॥ ७४ ॥ हृत्पद्ममध्ये पुरुषं प्रमाणं सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम् ॥ ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम् ॥ ७५ ॥ अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अंगसंभवम् ॥ ॐकारं पूर्वमुच्चार्य ततो मन्त्रानुदीरयेत् ॥ ७६ ॥

यह तीन प्रकारका शाप लगा है, ब्रह्माके स्मरणसे ब्रह्माका शाप ॥ ७३ ॥ विश्वामित्रके स्मरणसे विश्वामित्रका शाप वशिष्ठके स्मरणसे वशिष्ठका शाप दूर होता है ॥ ७४ ॥ हृदयकमलमें सत्यस्वरूप सत्यात्मक पुरुष निवास करते हैं उस परमात्माको मैं नित्य ध्यान करता हूं जो एकचित्तस्वरूप वाणीसे भी परे है ॥ ७५ ॥ अब संध्यामें अंगसंभव न्यासकी विधिको कहता हूं पहले ॐकार उच्चारण कर पीछे मंत्रको

संयुक्त करै ॥ ७६ ॥ भूः पादाभ्यांनमः, भुवः जानुभ्यांनमः, स्वःकटिभ्यांनमः, इस प्रकार कहै ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यैनमः, जनःहृदयायनमः, तपःकंठायनमः, सत्यंललाटायनमः इस प्रकार कल्पना करै ॥७८॥ तत्सवितुः अंगुष्ठाभ्यांनमः, वरेण्यम् तर्जनीभ्यांनमः, भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः, धीमहि ॥ ७९ ॥ अनामिकाभ्यांनमः, धियोयोनः कनिष्ठाभ्यांनमः, प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः इसप्रकार बुद्धिमान् न्यास करै ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयायनमः । विष्णवात्मने वरेण्यं शिरसे नमः, ॥ ८१ ॥ भर्गोदेवस्य रुद्रात्मने शिखायैवषट् शक्त्यात्मने

भूरित्युक्त्वा च पादाभ्यां नम इत्येव चोच्चरेत् ॥ भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वःकटिभ्यां नमो वदेत् ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः ॥ कंठाय च ततः सत्यं ललाटं परिकीर्तयेत् ॥ ७८ ॥ अंगुष्ठाभ्यां तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां वरेण्यकम् ॥ भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव कीर्तयेत् ॥ ७९ ॥ अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं वदेत् ॥ प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधी ॥ ८० ॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा ॥ विष्णवात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्यपि ॥८१॥ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै प्रकीर्तितम् ॥ शक्त्यात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम् ॥ ८२ ॥ कालात्मने धियो यो नो नेत्रत्रय उदीरितम् ॥ प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम् ॥ ८३ ॥ अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने ॥ गायत्री वर्णसंभूतन्यासः पापहरः परः ॥ ८४ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वर्णन्यासः प्रकीर्तितः ॥ तत्कारमादावुच्चार्य पादांगुष्ठद्वये न्यसेत् ॥ ८५ ॥ सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जंघयोर्न्यसेत् ॥ जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम् ॥ ८६ ॥ रेकारं च गुदे न्यस्यणिकारं लिंग एव च ॥ कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले ॥ ८७ ॥

धीमहि कवचायहुम्, ॥ ८२ ॥ कालात्मने धियोयोनः नेत्रत्रयाय वौषट्, प्रचोदयातसर्वात्मने अस्त्राय फट् ॥ ८३ ॥ हे मुने ! अब अक्षरन्यास कहता हूं गायत्री मंत्रसंभुत न्यास पापके हरनेवाले हैं ॥ ८४ ॥ पहले प्रणवको उच्चारण कर वर्णन्यास करना चाहिये पहले तत् उच्चारण करके पादांगुष्ठमें न्यास करै ॥ ८५ ॥ सकारका गुल्फोंमें विकारका जंघाओंमें तुकार जानुओंमें वकारका ऊरुओंमें ॥ ८६ ॥ रेकार गुदामें णिकार

मेढ्रमें यकार कटिमें भकार नाभिमें ॥ ८७ ॥ गोकार हृदयमें दे दोनों स्तनोंमें व हृदयमें स्य कंठमें ॥८८॥ धी मुखमें तालुमें हि नासिकाके अग्रभागमें धि नेत्रमंडलमें ॥ ८९ ॥ यो दोनों भ्रूमध्यमें यो ललाटमें नकार पूर्व मुखमें प्रकार दहिने मुखमें ॥ ९० ॥ चो पश्चिम मुखमें दकार उत्तर मुखमें या मूर्धामें तकारक व्यापकतामें न्यास करै ॥ ९१ ॥ कोई जापक यह न्यासविधि नहीं भी करते, फिर न्यास कर जगन्माता अम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ९२ ॥ जो परमेश्वरी चमकते हुए जपाके फूलोंके समान प्रकाशमान है, जो लाल कमलके आसनमें आरूढ है

गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः ॥ वकारं हृदि विन्यस्य स्यकारं कंठकूपके ॥८८॥ धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालुदेशके ॥ हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं नेत्रमंडले ॥ ८९ ॥ भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके ॥ नकारं वै पूर्वे मुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे ॥९०॥ चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे मुखे ॥ योकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत् ॥९१॥ एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छंति जपतत्परा ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमंबिकाम् ॥ ९२ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम् ॥ रक्तांबुजासनारूढां रक्तगंधानुलेपनाम् ॥९३॥ रक्तमाल्यांबरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम् ॥ द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुंडिकां चैव बिभ्रतीम् ॥ ९४ ॥ सर्वाभरणसंदीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम् ॥ हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम् ॥ ९५ ॥ चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम् ॥ अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत् ॥ ९६ ॥

लाल गंधका अनुलेपन लगाये है ॥ ९३ ॥ लाल माला और वस्त्र पहरे हुए चारमुख चतुर्भुजा प्रतिमुखमें दो दो नेत्र स्रुक् स्रुवा जपमाला और कमण्डलु धारण किये ॥९४॥ सम्पूर्ण आभरणोंसे संदीप्त ऋग्वेदकी कथन करनेवाली परा हंसके ऊपर स्थापित रक्तकमलपर स्थित आहवनीयके मध्यमें स्थित, ब्रह्म देवता अर्थात् ब्रह्मकी उपास्य देवता ॥९५॥ चार वेदरूप चार चरणवाली पूर्व,दक्षिण, पश्चिम,उत्तर,ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष अवान्तर दिशारूप आठकुक्षिसम्पन्न व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास, पुराण, उपनिषदरूप सात शिरवाली अग्नि

१ ओंतत् नमः पादांगुष्ठद्वये, ओंसनमः गुल्फद्वये, ओंविनमः जंघाद्वये इस प्रकार चौवीसौ न्यास करे।

रूप मुख रुद्रशिखा और विष्णु रूप चिह्नालीका ध्यान करै ॥ ९६ ॥ जिसके ब्रह्मा कवच सांख्यायन गोत्र है आदित्य मण्डलमें स्थित उस महेश्वरी देवीका ध्यान करै ॥ ९७ ॥ इस प्रकार विधिसे वेदमाता गायत्रीका ध्यान करके फिर देवीकी प्रसन्न करनेवाली मुद्रा दिखावै ॥९८॥ संमुख, संपुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुष्क, पंचक ॥ ९९ ॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, आंजलिक, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख ॥ १०० ॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रांत, मुद्गर, पल्लव ॥ १ ॥ यह चौवीस मुद्रा एकान्तमें गायत्रीको दिखावै और बुद्धिपूर्वक शताक्षरा गायत्रीको आवर्तन करै ॥ २ ॥ गायत्रीके २४ अक्षर कहे हैं 'जातवेदसे सुन वामसो' यह

ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं सांख्यायनं स्मृतम् ॥ आदित्यमण्डलांतस्थां ध्यायेद्देवीं महेश्वरीम् ॥ ९७ ॥ एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः ॥९८॥ संमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पंचकं तथा ॥ ९९ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ॥ ॥ १०० ॥ विलंबं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥ १ ॥ चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः संप्रदर्शयेत् ॥ शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः ॥ २ ॥ चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि ॥ जातवेदस नाम्नीं च ऋचमुच्चारयेदतः ॥३॥ त्र्यंबकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका ॥ भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम् ॥४॥ ॐ कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥ चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः ॥५॥ एवं नित्यं जपं कुर्याद्ब्राह्मणो विप्रपुंगवः स समग्रं फलं प्राप्य संध्यायाः सुखमेधते ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

चौवालीस अक्षर ऋचा साथमें उच्चारण करै ॥ ३ ॥ तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे' यह ३२ अक्षरके मन्त्रके साथमें गायत्री शताक्षरी हो जाती है यह महा पुण्यदायक है गायत्रीसे पहले शताक्षरी गायत्री जपै ॥ ४ ॥ पहले ओंकार उच्चारण कर फिर 'भूः भुवः, स्वः' कहकर २४ अक्षरवाली गायत्रीको जपै ॥ ५ ॥ इस प्रकार जो ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्य जप करता है वह सन्ध्याका सब फल पाकर पूरा सुख पाता है ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नारायण बोले भिन्नपाद गायत्री ब्रह्महत्या दूर करती है और मंलग्न सब पाद पढनेसे जिसमें सन्दिग्ध अक्षर निकले, ऐसी पढनेसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१॥ जो पाद आदिके सहित यथार्थ गायत्रीका उच्चारण नहीं करते वे द्विज अधोमुखसे सौ कोटि कल्प रहते हैं ॥ २ ॥ प्रणव, संपुट, षट् ओंकारादिसे गायत्री इतिहास पुराणोंमें विविध प्रकार लिखी है ॥ ३ ॥ पांच प्रणवसे युक्त जप करनेकी भी आज्ञा है जितनी संख्याका जप करै उसके अष्टम भागमें 'परोरजसे' इत्यादि लगाकर चतुर्थ पाद जपना चाहिये ॥ ४ ॥ वह द्विज परम जानना और ऐसा

नारायण उवाच ॥ भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी ॥ अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥ १ ॥ अच्छिन्नपादागायत्रीजपं कुर्वंति ये द्विजाः ॥ अधोमुखाश्च तिष्ठंति कल्पकोटिशतानि च ॥ २ ॥ संपुटैकषडोंकारा गायत्री विविधा मता ॥ धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत ॥ ३ ॥ पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ॥ जपसंख्याऽष्टभागान्ते पादो जप्य स्तुरीयकः ॥ ४ ॥ स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात् ॥ अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत ॥ ५ ॥ संपुटैका षडोंकारा भवेत्सा उर्ध्वरेतसाम् ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरीयां जपेत् ॥ ६ ॥ तुरीयापादो गायत्र्याः परो रजसे सावदोम् ॥ ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि जपसांगफलप्रदम् ॥ ७ ॥ हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिंबं प्रणवमयर्चित्यं यस्य पीठं प्रकल्प्यम् ॥ अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानन्दरूपः ॥ ८ ॥ त्रिशूलयोनी सुरभिमक्ष मालां च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥

करनेसे परमायुज्यकी प्राप्ति होती है अन्यथा जप करनेसे जप निष्फल होता है ॥ ५ ॥ संपुटा और षडोंकारा ऊर्ध्वरेतसवालोंको जपनी और गृहस्थी वा ब्रह्मचारी तुरीया एक ओंकारवालीको जपै ॥६॥ गायत्रीका चौथा पाद 'परोरजसे सावदोम्' है अब इसका ध्यान जप सांग फलका देनेवाला कहता हूं ॥ ७ ॥ हृदयमें कमल खिला है सूर्य सोम अग्निका बिम्बरूप प्रणवमय अचिन्त्यरूप जिसका सिंहासन है अचल परम सूक्ष्मज्योति आकाशका सार सच्चिदानन्दस्वरूप मेरे आनन्दका देनेवाला हो ॥ ८ ॥ तुरीया गायत्रीकी मुद्रा कहते हैं। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला,

लिंग, अम्बुज, महामुद्रा यह सात दिखावै ॥ ९ ॥ जो सन्ध्या है वही सच्चिदानन्दरूपिणी गायत्री है उसको भक्तिसे ब्राह्मण नित्य पूजे और नमस्कार करे ॥ १० ॥ ध्यान योग्य देवकी पंचोपचारसे पूजा करै 'लंपृथिव्यात्मने गंधं समर्पयामि' नमोनमः इससे गंध ॥ ११ ॥ हमाकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि मोनमः इससे पुष्प, यंवाय्वात्मने धूपं समर्पयामि इसे धूप ॥ १२ ॥ रंवह्न्यात्मने दीपं समर्पयामि इससे दीप, वममृतात्मने नैवेद्यं समर्पयामि इससे नैवेद्य दे ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हं कहकर पुष्पांजलि दे इस प्रकार पूजाकर अन्तमें मुद्रा दिखावै ॥ १४ ॥

या संध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः॥१०॥ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः ॥ लंपृथाव्यात्मने गंधसर्पयामि नमो नमः ॥ ११ ॥ हमकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः ॥ यञ्च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत् ॥ १२॥ रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत् ॥ वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत् ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हमिति च पुष्पांजलिमथार्पयेत् ॥ एवं पूजां विधायाथ चांते मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ १४ ॥ ध्यायेत्तु मनसा देवीं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ॥ न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥ विधिनाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥ दश वारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन ॥ १६ ॥ तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः ॥ न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथं चन ॥ ॥१७॥ यतः साऽग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः ॥ सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पंकजम् ॥ १८ ॥ लिंगं निर्वाणकं चैव जपांतेऽष्टौ प्रदर्शयेत् ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यंजनवर्जितम् ॥ १९ ॥

मनसे देवीका ध्यान कर शनैःमुद्रा दिखावै शिर ग्रीवाको कंपित न करै दांत भी न दिखावै ॥ १५ ॥ विधिपूर्वक एक सौ आठ बार वा २८ और शक्ति न हो तो दशवार जपे इससे न्यून न करे ॥ १६ ॥ फिर उत्तम अनुवाकसे देवीका अनुवासन करे जलके मध्यमें गायत्रीको न जपै " बहुत स्थानोंमें हारितादिके वचनोंसे जलमें भी जप लिखा है पर यदि आसनादि विद्यमान हो तो आलस्यसे जलमें न जपै इस कारण कहा है" ॥ १७ ॥ कारण कि गायत्री नअग्निमुखी है ऐसा कोई महर्षि कहते हैं सुरभि ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज ॥१८॥ लिंग निर्वाण

यह आठ मुद्रा दिखावै जो अक्षर पद भ्रष्ट स्वर व्यंजन वर्जित है ॥ १९ ॥ हे कश्यप ! प्रियवादिनी यह हमारी क्षमा करना हे महामुने ! इस उपरान्त गायत्रीका तर्पण करना चाहिये ॥ २० ॥ गायत्री छन्द विश्वामित्र ऋषि सवितादेवता तर्पणमें विनियोग करै ॥ २१ ॥ ओं भूरिति ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि ओं भुव इति यजुर्वेदं तर्पयामि ॥ २२ ॥ ओंस्वः इति सामवेदं तर्पयामि, ओं मह इत्यथर्ववेदं तर्पयामि ॥ २३ ॥ ओंजन इति इतिहास पुराणपुरुषं तर्पयामि, ओं तपःसर्वागमपुरुषं तर्पयामि ॥२४॥ ओं सत्यमिति सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि, ओं भूःभूर्लोकपुरुषं तर्पयामि

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनी ॥ गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने ॥२०॥ गायत्रीछन्द आख्यातं विश्वामित्र ऋषिः स्मृतः ॥ सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे ॥२१॥ भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च ॥ भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत् ॥२२॥ स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत् ॥ मह इत्येतदुक्त्वांऽतेऽथर्ववेदं च तर्पयेत् ॥ २३ ॥ जनःपदांत इतिहास पुराणमितीरयेत् ॥ तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च ॥२४॥ सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च ॥ ॐ भूर्भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ २५ ॥ भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च ॥ स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम् ॥ २६ ॥ ॐ भूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च ॥ भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत् ॥ २७ ॥ स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ ॐ भूर्भुवःस्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम् ॥ २८ ॥ उपसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम् ॥ वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ॥२९॥ सांकृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत् ॥ तर्पणांते च शांत्यर्थं जातवेदसमीरयेत् ॥३०॥

॥ २५ ॥ ओं भुवः इति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि ओं स्वः स्वर्लोकपुरुषं तर्पयामि ॥ २६ ॥ ओं भूरेकपदां गायत्रीं तर्पयामि. ओं भुवः द्विपदां गायत्रीं तर्पयामि ॥२७॥ ओं स्वः त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भूर्भुवःस्वः चतुष्पदां गायत्रीं तर्पयामि ॥ २८ ॥ उपसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी ॥ २९ ॥ सांकृति, सार्वजिति, गायत्री इन सबको तर्पणमें कहै तथा उपसी

[1] गायत्र्येकपदीद्विपदी इत्यादिसे हृदयसे उठावै ॥ उत्तरे शिखरे जातेसे विदा करै।

तर्पयामि इत्यादि तर्पणके अन्तमें शान्तिके निमित्त 'सुनवामसोमम्' यह मंत्र बोले ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त मानस्तोक यह मन्त्रबोले वा त्र्यम्बकं यजामहे यह मन्त्र उच्चारण करै ॥ ३१ ॥ वा शान्तिके निमित्त 'तच्छंयोः' यह मन्त्र उच्चारण करै 'अतोदेवा' यह दो मंत्र पढ सर्वांगमें स्पर्श करै ॥ ३२ ॥ 'स्योनापृथ्वी' इस मंत्रसे पृथ्वीमें प्रणाम करै फिर ब्राह्मण विधिसे गोत्रादिका उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इस प्रकार प्रभातकालीन संध्याका विधान है सन्ध्या करने उपरान्त अग्निहोत्र करै ॥ ३४ ॥ फिर सावधान हो पंचायतन पूजा करै शिवा, शिव,

मानस्तोकेति मंत्रं च शांत्यर्थं प्रजपेत्सुधीः ॥ ततोऽपि त्र्यंबको मंत्रः शांत्यर्थः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥ तच्छंयोरिति मंत्रं च जपेच्छांत्यर्थमेव तु ॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वांगस्पर्शनं चरेत् ॥ ३२ ॥ स्योनापृथिविमंत्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम् ॥ यथाविधि च गोत्रादीनुच्चरेद्द्विजसत्तमः ॥३३॥ एवं विधानं संध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम् ॥ संध्याकर्मसमाप्त्यां तेऽप्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत् ॥३४॥ पंचायतनपूजां च ततः कुर्यात्समाहितः ॥ शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथाऽर्चयेत् ॥३५॥ पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः ॥ मूलमंत्रेण वा कुर्याद् ह्रीश्च ते इति मंत्रतः ॥ ३६ ॥ भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम् ॥ आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि ॥३७॥ वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थिति क्रमः ॥ षोडशानुपचारांश्च षोडशर्भिर्हरेन्नरः ॥३८॥ देवीमभ्यर्च्य पुरतो यजेदन्याननुक्रमात् ॥ न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते ॥ ३९ ॥

गणपति, विष्णुको पूजे ॥ ३५ ॥ पुरुषसूक्त व्याहृतिसंयुक्त वा देवीके मूलमंत्रसे वा श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यौ इस तैत्तिरीय शाखाके मंत्रसे पूजे ॥३६। मध्यमें भवानीको, ईशानमें माधवको, आग्नेय दिशामें गिरिजापति शंकरको गणेशको राक्षसोंकी दिशामें पूजे ॥ ३७ ॥ वायव्य दिशामें सूर्यका यजन करै यह देवताओंके स्थापनका क्रम है पुरुषसूक्तके सोलह मंत्रोंसे भगवानका षोडशोपचार पूजन करै ॥ ३८ ॥ पहले देवीका

पूजाकर पीछे अन्य देवताओंकी पूजा करै देवी पुजनसे अधिक पुण्य कहीं नहीं है ॥ ३९ ॥ इसी कारण संध्यामें संध्योपासनकी श्रुति कही है अक्षतसे विष्णु और तुलसीसे गणेशका पूजन न करे ॥ ४० ॥ दूर्वासे भगवतीको केतकीसे शंकरको न पूजै. मल्लिका, जातिकुसुम, कुटज, पनस ॥ ४१ ॥ किंशुक, वकुल, कुंद, लोध, करवीर (कनेर) शिंशपा, अपराजिता फूल, बंधुक, अगस्त्य ॥ ४२ ॥ मदंत, सिन्धुवार, ढाकके फूल, दूर्वांकुर, वेलपत्र, जरिकाफूल ॥ ४३ ॥ शल्लकी, चमेली, आक, मंदार केतकी कार्णिकार कदम्बके फूल ॥ ४४ ॥ पुन्नाग चम्पक,

अत एव तु संध्यासु संध्योपास्तिः श्रुतीरिता ॥ नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम् ॥ ४० ॥ दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम् ॥ मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा ॥४१॥ किंशुकं वकुलं कुंदं लोध्रं तु करवीरकम् ॥ शिंशपाऽपराजितापुष्प बंधूकागस्त्यपुष्पके ॥ ४२ ॥ मदंतं सिंदुवारं च पालाशकुसुमं तथा ॥ दूर्वांकुरं बिल्वदलं कुशमंजरिका तथा ॥ ४३ ॥ शल्लकी माधवीपुष्पमर्कमन्दारपुष्पकम् ॥ केतकीं कर्णिकारं च कदंबकुसुमं तथा ॥ ४४ ॥ पुन्नागश्चंपकस्तद्वद्यूथिकातगरौ तथा ॥ एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च ॥ ४५ ॥ गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः ॥ कृत्वेत्थं देवतापूजां ततो मूलमनुं जपेत् ॥ ४६ ॥ एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ ततः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ४७ ॥ तृतीयदिनभागे तु नियमेन विचक्षणः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यूथिका, तगर इत्यादि पुष्प देवीके प्रिय हैं, भगवतीके दुर्गा विग्रहपर दूर्वा कुरका निषेध है अन्यत्र नहीं ॥ ४५ ॥ गुग्गुलकी धूप तिलके तेलका दीपक करएक और घृतका भी रख' पुजा करने उपरान्त मूल मंत्र जपै ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पूजाकर वेदाभ्यास करै फिर अपनी वृत्तिके अनुसार पालनीयोंका पालनकरै ॥ ४७ ॥ माता पिता गुरु गुरुपत्नी भार्या पुत्र अनाथादि पोष्य वर्ग हैं नियमपूर्वक चतुर पुरुष यह कृत्य दिनके तीसरे भागमें करै ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी बोले हे मानद! देवीकी विशेष पूजा सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके आश्रयसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो श्रीमाताका पूजनक्रम कहता हूं जो साक्षात् भुक्तिमुक्तिदायक सब आपत्तियोंका निवारक है ॥२॥ मौन हो आचमनकर संकल्प करनेउपरान्त भूतशुद्धि करै फिर मातृकान्यासपूर्वक षडंगन्यास करै ॥ ३ ॥ शंखको स्थापनकर सामान्य अर्घ्य देकर फट् मन्त्रके जलसे पूजा द्रव्यको प्रोक्षण करै ॥४॥ फिर गुरुकी आज्ञा लेकर पूजा आरंभ करै, पहले पीठ पूजाकर फिर देवीका ध्यान करै ॥ ५ ॥ भक्ति प्रेमसे आस

श्रीनारद उवाच ॥ पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद ॥ येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम् ॥ २ ॥ आचम्य मौनी संकल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ मातृकान्यासपूर्वं तु षडंगन्यासमाचरेत् ॥ ३ ॥ शंखस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः ॥ ४ ॥ गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत् ॥ पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम् ॥ ५ ॥ आसनाद्युपचारैश्च भक्तिप्रेमयुतां सदा ॥ स्नापयेत्परदेवीं तां पंचामृतरसादिभिः ॥ ६ ॥ पौंड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः ॥ स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते ॥ ७ ॥ यश्च चूतरसैरेवं स्नापयेज्जगदंबिकाम् ॥ वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा ॥ ८ ॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन् ॥ ९ ॥ अभिषिंचेन्महेशानीं सकुटुंबो नरोत्तमः ॥ रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते ॥ १० ॥

नादि उपचार करे और पंचामृतके जलोंसे देवीको स्नान करावै रसादिसे न्हवावै ॥६॥ पौंड्र ईखके रससे सौकलशोंसे जो देवीको स्नान कराता है उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ जो आमक रससे देवीको स्नान कराता है वा वेदपारायण करके इक्षुरससे न्हवावै ॥८॥ उसके घरको लक्ष्मी सरस्वती कभी त्यागन नहीं करती, जो वेदपारायण करता हुआ दाखके रससे ॥९॥ महेशानीको सकुटुम्ब स्नान कराता है वह नरोत्तम

होता है, रेणुमात्र रसदेनेसे भी देवीलोकमें पूजित होता है ॥ १० ॥ कपूर अगर केसर कस्तूरीके जलोंसे न्हवाते वेदपारायण करता है ॥ ११ ॥ उसके सौ जन्मोंके पाप भस्म होते हैं, जो वेदपाठकरते दूधके कलशोंसे देवीको स्नान कराते हैं ॥ १२ ॥ वह कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें निवास करते हैं जो दहीसे न्हवाते वह दधिकुल्या नदी जो देवलोकमें है उनके अधिपति होते हैं ॥ १३ ॥ मधु घी शर्करासे स्नान करानेसे मधु, घी, शर्करादि कुल्याओंका अधिपति होता है ॥ १४ ॥ जो भक्तिपूर्वक सहस्र कलशोंसे देवीको स्नान कराता है वह दोनों लोकमें सुखी होता है

कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपंकपंकिलैः ॥ सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपारायणं चरन् ॥११॥ भस्मीभवंति पापानि शत जन्मार्जितानि च ॥ यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः ॥ १२ ॥ आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन्वै क्षीरसागरे ॥ यस्तु दध्नाभिषिंचेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत् ॥ १३ ॥ मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयाऽपि च ॥ स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत् ॥ १४ ॥ सहस्रकलशैर्देवीं स्नापयेद्भक्तितत्परः ॥ इह लोके सुखीभूत्वाप्यन्यलोके सुखी भवेत् ॥ १५ ॥ क्षौमं वस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति ॥ रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ काश्मीरचंदनं दत्त्वा कस्तूरीबिंदुभूषितम् ॥ तथा सीमंतसिंदूरं चरणेऽलक्तपत्रकम् ॥१७॥ इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः ॥ पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि सात्वतः[1] ॥ १८ ॥ तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम् ॥ बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये ॥ १९ ॥

॥१५॥ दो अलसीके बने वस्त्र देकर वायुलोकमें जाता है, और रत्ननिधियोंका देनेवाला निधिपति होता है ॥ १६ ॥ केशर चन्दन, कस्तूरी, बिन्दी, केशविधायक सिंदूर चरणोंमें महादर ॥१७॥ देकर इन्द्रासनमें स्थित हो देवपति होता है, महात्माओंने पूजामें अनेक फूल कहे हैं ॥१८॥ यथालाभ उनको देकर कैलासवासी होता है जो अमोघ बेलपत्र भगवतीको देता है ॥१९॥

१ सात्वितः शुद्ध।

उसको कभी कदाचित् दुःख नहीं होता, तीन बेलपत्र पर लालचंदनसे ॥ २० ॥ स्फुट तीन मायाबीज (ह्रीं) लिखकर और चतुर्थीयुक्त "ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः" उच्चारणकर ॥ २१ ॥ परम भक्तिसे देवीके चरणकमलमें कोमल पत्रोंको अर्पण करै ॥ २२ ॥ जो परम भक्तिसे ऐसा करते वह मनु होते हैं, जो कोमल और अति निर्मल ऐसे कोटि दलोंसे ॥ २३ ॥ भुवनेश्वरीका पूजन करते हैं, वह ब्रह्माण्डके अधिपति होते हैं, जो नवीन कुन्दके पुष्पोंको अष्टगंधसे युक्त ॥ २४ ॥ एककोटि चढाय पुजा करते हैं वह प्राजापत्य पदको प्राप्त

तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति ॥ बिल्वपत्रत्रये रक्तचन्दनेन तु संलिखेत् ॥ २० ॥ मायाबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुन्दरम् ॥ मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यंतं समुच्चरेत् ॥ २१ ॥ नमोऽतं परया भक्त्या देवीचरणपंकजे ॥ समर्पयेन्महादेव्यै कोमलं तच्च पत्रकम् ॥२२॥ य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः ॥ यस्तु कोटिदलैरेव कोमलैरतिनिर्मलैः ॥ २३ ॥ पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् ॥ कुन्दपुष्पैर्नवीनैस्तु लुलितैरष्टगन्धतः ॥२४॥ कोटिसंख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद्ध्रुवम् ॥ मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगन्धेन लोलितैः ॥ २५ ॥ कोटिसंख्यैः पूजया तु जायते स चतुर्मुखः ॥ दशकोटिभि रप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने ॥२६॥ विष्णुत्वं लभते मर्त्यो यत्सुरेष्वपि दुर्लभम् ॥ विष्णुनैतद्व्रतं पूर्वं कृतं स्वपदलब्धये ॥ २७ ॥ शतकोटिभिरप्येवं सूत्रात्मत्वं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः ॥ २८ ॥ तेन व्रतप्रभावेन हिरण्योदरतां व्रजेत् ॥ जपाकुसमपुष्पस्य वन्धूककुसुमस्य च ॥ २९ ॥

होते हैं, अष्टगन्धसे माया बीज लिखकर उसके सहित जो मल्लिका मालतीका ॥ २५ ॥ एक कोटि फूल चढाकर पूजा करते हैं वह चतुर्मुख होते हैं हे मुने ! जो उसके दशकोटि पुष्प चढाते हैं ॥ २६ ॥ वह मनुष्य देवताओंको दुर्लभ विष्णुत्वको प्राप्त होते हैं अपनी पद प्राप्तिके निमित्त पहले विष्णुने यह व्रत किया था ॥ २७ ॥ इसके सौ कोटि फूल चढानेसे जिसमें मायाबीज लिखा हो मनुष्य सूत्रात्मापद 'हिरण्यगर्भ' को प्राप्त होता है यह व्रत प्रयत्नसे भक्तिपूर्वक करनेसे ॥ २८ ॥ इसके प्रभावसे हिरण्यगर्भताको प्राप्त होता है जपाकुसुम,

वंधूक पुष्प ॥ २९ ॥ दाडिमी कुसुमकी भी यही विधि है इसी प्रकार और भी फूल भक्तिसे देवीको अर्पण करै ॥ ३० ॥ इसके पुण्यफलोंके अन्तको ईश्वर भी नहीं जानते प्रत्येक ऋतुमें हुए फूलोंसे ॥ ३१ ॥ स्कन्धमें लिखे सहस्र नामकी संख्यासे सावधान हो प्रतिवर्ष देवीको समर्पण करै, जो ऐसा करता है वह महापातक संयुक्त होकर भी ॥ ३२ ॥ वा उपपातक संयुक्त हो वह उनसे छूट जाता है देहान्तमें वह साधक देवताओंको भी दुर्लभ देवीके पदकमलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने ! इसमें सन्देह नहीं काला

दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः ॥ एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनाऽर्पयेत् ॥ ३० ॥ तस्य पुण्यफलस्यांतं न जानातीश्वरोऽपि सः ॥ तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया ॥ ३१ ॥ समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः ॥ ३२ ॥ उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ देहांते श्रीपदांभोजं दुर्लभं देवसत्तमैः ॥ ३३ ॥ प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः ॥ कृष्णागुरुं सकर्पूरं चन्दनेन समन्वितम् ॥३४॥ सिल्हकं चाज्यसंयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम् ॥ धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितं गृहम् ॥ ३५ ॥ तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम् ॥ दीपं कर्पूरखण्डैश्च दद्याद्देव्यै निरंतरम् ॥३६॥ सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान्वा समाहितः ॥ ३७ ॥ नैवेद्यं पुरतो देव्या स्थापयेत्पर्वताकृतिम् ॥ लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः ॥३८॥ नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनि रसवंति च ॥ स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरंतरम् ॥ ३९ ॥

अगर, कपूर, चन्दन ॥ ३४ ॥ सिह्लक (लोवान) घृत, गुग्गुल इनसे महादेवीको धूप दे जो भगवतीका मंदिर धूपित करता है ॥३५॥ उससे प्रसन्न हो देवेशी उसको त्रिलोकी देती है जो निरन्तर देवीको दीपक और कपूर देता है ॥ ३६ ॥ वह निःसन्देह सूर्य लोकको प्राप्त होता है जो सौ वा सहस्र दीपक देता है ॥ ३७ ॥ और महान् पर्वताकार नैवेद्य भगवतीके आगे स्थापित करता है लेह्य, चोष्य, पेय षड्रसोंको ॥ ३८ ॥ तथा अनेक दिव्य स्वादिष्ठ रसभरे फल सोनेके पात्रमें रखकर जो

देवीको देता है ॥ ३९ ॥ तो महादेवीके तृप्त होनेपर सब जगत् तृप्त हो जाता है, कारण कि यह सब जगत् तदात्मक ही है रज्जुमें सर्पकीसी समान भ्रम है ॥४०॥ फिर सुन्दर गङ्गाजल पीनेको दे जो कर्पूर नेत्रवाला, इनसे शीतलकर कलशमें स्थापन किया है ॥ ४१ ॥ फिर देवीके निमित्त सम्पूर्ण सुगन्ध लवंगसे युक्त मुखकी सुगंधि करनेवाला ताम्बूल दे, जिसमें कपूर भी हो ॥४२॥ महाभक्तिसे देनेसे देवी प्रसन्न होती है, मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का, दुंदुभीके शब्दोंसे ॥४३॥ तथा मनोहर गानोंसे जगन्माताको सन्तुष्ट करै, वेदपारायण तथा पुराणोंके स्तोत्र पढै ॥ ४४ ॥ सावधा न

तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्रयम् ॥ यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा ॥ ४० ॥ ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गंगाजलं महत् ॥ कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम् ॥ ४१ ॥ तांबूलं च ततो देव्यै कर्पूरश कलान्वितम् ॥ एलालवंगसंयुक्तं मुखसौगंध्यदायकम् ॥ ४२ ॥ दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवी प्रसीदति ॥ मृदंगवीणामु रजढक्कादुंदुभिनिःस्वनैः ॥ ४३ ॥ तोषयेज्जगतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः ॥ वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिसमन्वितैः ॥ ४४ ॥ छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः ॥ राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत् ॥ ४५ प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्दे व्या अनेकधा ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदंबां मुहुर्मुहुः ॥४६॥ सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवी प्रसीदति ॥ एतादृशोपचारैश्च प्रसी देदत्र कः स्मयः ॥ ४७ ॥ स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती ॥ तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम् ॥ ४८ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं सनातनम् ॥ बृहद्रथस्य राजर्षेः प्रियं भक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ चक्रवाको भवेत्पक्षी क्वचिद्देशे हिमालये भ्रमन्नानाविधान्देशान्ययौ काशीपुरं प्रति ॥ ५० ॥

हो देवीके निमित्त छत्र और दो चँवर प्रदान कर श्रीदेवीके निमित्त नित्य ही राजोपचार समर्पण करै ॥ ४५ ॥ अनेक प्रकारसे देवीको प्रदक्षिणा नमस्कार करै और वारंवार जगद्धात्री जगदम्बासे क्षमा करावै ॥ ४६ ॥ जहां एकवार स्मरण करनेसे ही देवी प्रसन्न होती है फिर इतने उपचारोंसे प्रसन्न हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ४७ ॥ माता स्वभावसे ही पुत्रमें दयावती होती है, फिर भक्ति करनेपर तो क्या कहना है ॥ ४८ ॥ यहां एक भक्तिदायक बृहद्रथ राजर्षिका पुरातन इतिहास कहते हैं ॥ ४९ ॥ कहीं एक हिमालय देशमें चक्रवाक

पक्षी था. वह अनेक देशोंमें भ्रमण करता काशीपुरीमें गया ॥ ५० ॥ वह प्रारब्धवश अन्नपूर्णाके स्थानमें प्राप्त हुआ, वह कणलोभसे अनाथवत् लीलासे होगया ॥ ५१ ॥ फिर एक प्रदक्षिणकर आकाशमें गया, इस प्रकार देशान्तरोंको छोडकर मुक्तिदायक पुरीमें रहा ॥ ५२ ॥ फिर कुछ कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गमें गया दिव्यरूपधारी युवा होकर सब विषयोंको भोगने लगा ॥ ५३ ॥ इस प्रकार दो कल्प आनंदकर फिर भूलोकमें आया और सर्वोत्तम क्षत्रियोंके कुलमें जन्म पाया ॥ ५४ ॥ भूमण्डलमें बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ जो महायज्ञ करनेवाला धर्मात्मा

अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः ॥ जगाम लीलया तत्र कणलोभादनाथवत् ॥ ५१ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम च विहायसा ॥ देशांतरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम् ॥५२॥ कालांतरे ममारासौ गतः स्वर्णपुरीं प्रति ॥ बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा ॥५३॥ कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति ॥ क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥ बृहद्रथेति नाम्नाऽभूत्प्रसिद्धः क्षितिमंडले ॥ महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५५ ॥ त्रिकालज्ञः सार्वभौमो यमी परपुरंजयः ॥ पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य वर्तते दुर्लभा भुवि ॥ ५६ ॥ इति श्रुत्वा किंवदंतीं मुनयः समुपागताः ॥ कृता तिथ्या नृपेंद्रेण विष्टरेषूपुरेव ते ॥५७॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप ॥ केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव ॥ ५८॥ त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्यप्रभावतः ॥ ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवांतिकम् ॥ ५९ ॥ वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥ ६० ॥

सत्यवादी जितेंद्रिय था ॥ ५५ ॥ त्रिकालका ज्ञाता सार्वभौम यम नियममें तत्पर शत्रुनाशी था और उसको इस भूमिमें दुर्लभ पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ ५६ ॥ इस किंवदन्तीको सुनकर वहां मुनिराज आनकर प्राप्त हुए और राजासे अतिथि सत्कारको प्राप्त हो विस्तरोंपर बैठे ॥५७॥ और सब ऋषि बोले हे राजन् ! हमको बडा संशय है किस पुण्यके प्रभावसे तुमको पूर्वजन्मकी स्मृति है ॥ ५८ ॥ तथा किस पुण्यके प्रभावसे तुमको त्रिकालज्ञान है तुम्हारा ज्ञान जाननेके निमित्त हम तुम्हारे समीप आये हैं ॥ ५९ ॥ सो आप उपालंभरहित हो

यथार्थ रूपसे हमसे वर्णन कीजिये. नारायण बोले इस प्रकार उनके वचन सुन परम धर्मात्मा राजा ॥६०॥ संपूर्ण त्रिकालज्ञानके कारणको कहने लगा, हे मुनियो ! तुम सब मेरे ज्ञानका कारण सुनो ॥६१॥ मैं पहले नीच योनि चक्रवाकमें स्थित था, अज्ञानसे मैंने अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा की थी ॥ ६२ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें दो कल्प रहा. हे सुव्रतो ! अब इस जन्ममें भूलोकमें त्रिकालज्ञान प्राप्त होकर स्थित हुआ हूं ॥६३॥ कौन जाने जगदम्बाके चरण स्मरणका कितना फल है वह महिमा उनकी स्मरण कर मेरे अश्रुपात होते हैं ॥ ६४ ॥ उन

उवाच सकलं ब्रह्मंस्त्रिकालज्ञानकारणम् ॥ श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम् ॥ ६१ ॥ चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा ॥ अज्ञानतोऽपि कृतवानन्नपूर्णा प्रदक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे कल्पद्वय स्थितिः ॥ त्रिकालज्ञानतोऽप्यस्मिन्नभूज्जन्मनि सुव्रत ॥ ६३ ॥ को वेद जगदंबायाः पदस्मृतिफलं कियत् ॥ स्मृत्वा तन्महिमानं तु पतंत्यश्रूणि मेऽनिशम् ॥६४॥ धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम् ॥ ये सर्वे मातरं देवीं स्वोपास्यां न भजंति हि ॥ ६५ ॥ न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा ॥ नित्योपास्तिः परादेव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता ॥ ६६ ॥ किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते ॥ सेवनीयं पदांभोजं भगवत्या निरंतरम् ॥ ६७ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं जगतीतले ॥ सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥ ६८ ॥ नारायण उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ प्रसन्नहृदया सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम् ॥ ६९ ॥

कृतघ्न पापी जनोंके जन्मको धिक्कार है जो सबकी माता देवीकी उपासना नहीं करते ॥ ६५ ॥ शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है परादेवीके उपासनाकी नित्य आज्ञा वेदमें स्थित है [अहरहःसंध्यामुपासीत इत्यादि] ॥ ६६ ॥ इस सन्देह रहित स्थानमें बहुत क्या कहूं निरन्तर भगवतीके चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ भूमितलमें इससे अधिक और कुछ नहीं है वह परादेवी सगुणा निर्गुणा सेवन करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ नारायण बोले इस प्रकार धार्मिक राजाका वचन सुन प्रसन्न मन हो सब अपने २ स्थानको

गये ॥६९॥ भगवतीका इतना प्रभाव है फिर उसकी पूजाका फल कितना है यह कौन कह सकता है ? इसके पूँछनेपर पूरा उत्तर कौन दे सकता है ? ॥ ७० ॥ जिनका जन्म सफल है उन्हींकी इसमें श्रद्धा होती है जिनका जन्म संकरता युक्त है उनकी श्रद्धा नहीं होती ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीनारायण बोले अब मध्याह्न समयकी शुभ संध्याको सुनो जिसके अनुष्ठानसे उत्तम फल होता है ॥ १ ॥ मध्याह्न समय सावित्री युवती श्वेतवर्णा त्रिलोचना वरदायक अक्षमालासे युक्त त्रिशूल अभय

एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत्॥अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित् ॥७०॥ येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते॥येषां तु जन्मसांकर्यं तेषां श्रद्धा न जायते॥७१॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ नारायण उवाच॥अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् सन्ध्यां माध्याह्निकीं शुभाम् ॥ यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम् ॥ १ ॥ सावित्रीं युवतीं श्वेतवर्णां चैव त्रिलोचनाम्॥वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलाभयहस्तकाम्॥२॥वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदेवताम्॥ ततो गुणयुतां चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम्॥३॥आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम् ॥ आदिदेवीमथ ध्यात्वाऽऽचमनादि च पूर्ववत्॥४॥ अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः॥तदलाभे बिल्वपत्रं तोयेनामिश्रयेत्ततः ॥५॥ ऊर्ध्वं च सूर्याभिमुखं क्षिप्त्वाऽर्घ्यं प्रतिपादयेत् ॥ प्रातःसंध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥ ६ ॥ मध्याह्ने केचिदिच्छंति सावित्रीं तु तदित्यृचम् ॥ असंप्रदायं तत्कर्म कार्यहानिस्तु जायते ॥ ७ ॥

हाथमें धारण किये ॥ २॥ वृषपर आरूढ यजुर्वेद उच्चारण करती रुद्रसे उपास्य तमोगुणयुक्त भुवर्लोकमें स्थित ॥ ३ ॥ आदित्यमार्गमें संचार करनेवाली मायाको मैं प्रणाम करता हूं, इस प्रकार आदिदेवीको ध्यान कर पूर्ववत् आचमनादि कर ॥ ४ ॥ फिर अर्घ्यके निमित्त पुष्पचयन करै उसके अभावमें बिल्वपत्र जलसे संयुक्तकरै ॥ ५ ॥ सूर्यके सन्मुख ऊर्ध्वमुख होकर अर्घ्य दे और सब प्रभात संध्याके समान उपचार करै ॥ ६ ॥ कोई मध्याह्नमें अर्घ्यदानका निषेधकर कहते हैं कि यह संप्रदायसिद्ध नहीं इसमें कार्यहानि होती है ॥ ७ ॥

कारण यह है कि, दोनों सन्ध्याओंमें मन्देहा नाम राक्षस सूर्यके भक्षणकी इच्छा करते हैं इससे अर्घ्य देते हैं यह श्रुतिकथित कारण है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण ! इसकारण सन्ध्यामें दोनोंसमय अवश्य अर्घ्य दे और दोनों संध्याओंमें ओंकार सहित गायत्रीका जप करै ॥ ९ ॥ फिर अर्घ्य दे अन्यथा श्रुतिघातक होता है 'आकृष्णेन' वा 'हंसः शुचिषद्' यह मन्त्र पढकर फूल और जल मिलावै ॥ १० ॥ यदि बिल्वदूर्वादि न मिलैं तो फूल फूलके अभावमें दूर्वादि मिलाय अर्घ्य दे तो संध्याका सांग फल प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ हे

कारणं संध्ययोश्चात्र मंदेहानाम राक्षसाः ॥ भक्षितुं सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम् ॥ ८ ॥ अतस्तु कारणाद्विप्रः संध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ संध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च ॥ ९ ॥ अंभस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः ॥ आकृष्णेनेति मंत्रेण पुष्पैर्वांबु विमिश्रितम् ॥ १० ॥ अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम् ॥ अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सांगं संध्याफलं लभेत् ॥ ११ ॥ अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम ॥ भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमोनमः ॥ ॥ १२ ॥ यजुर्वेदं तर्पयामि मण्डलं तर्पयामि च ॥ हिरण्यगर्भं च तथाऽन्तरात्मानं तथैव च ॥१३॥ सावित्रीं च ततो देवमातरं साकृतिं तथा ॥ सन्ध्यां तथैव युवतीं रुद्राणीं नीमृजां तथा ॥ १४ ॥ सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमंत्रार्थसिद्धिदाम् ॥ भूर्भुवःस्वः पुरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम् ॥१५॥ उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च ॥ चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत् ॥१६॥ ततो जपं प्रकुर्वीत मंत्रसाधनतत्परः ॥ जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ १७ ॥

देवर्षिसत्तम ! इसी विषयमें तर्पण कहते हैं ॐ भुवः पुरुषं तर्पयामि नमोनमः ॥ १२ ॥ ॐ यजुर्वेदं तर्पयामि ॐ मण्डलं तर्पयामि ॐ हिरण्यगर्भंत० ॐ अन्तरात्मानंत० ॥ १३ ॥ ॐ सावित्रींत० ॐ वेदमातरंत० ॐ सांकृतिंत० ॐ सन्ध्यांत० ॐ युवतींत० ॐ रुद्राणींत० ॐ नीमृजांत० ॥ १४ ॥ ॐ सर्वार्थानामसिद्धिकरींत० ॐ सर्वमन्त्रार्थसिद्धिदांत० ॐ भूर्भुवःस्वः पुरुषं तर्पयामि, यह मध्याह्न तर्पण है ॥ १५ ॥ ओं 'उदुत्यम्' इस सूक्तसे और 'चित्रं देवानां' इस मन्त्रसे सूर्यका उपस्थान करै ॥ १६ ॥ फिर मन्त्र

साधनमें तत्पर अपना जप करै हे नारद ! सुनो मैं जपका भी प्रकार कहता हूं ॥ १७ ॥ प्रभातको हाथ ऊँचेकर सन्ध्याको नीचे और मध्याह्नको हृदयमें हाथ धरकर जप करै ॥१८॥ अनामिकाके दोनों पर्व मध्यम और मूल और कनिष्ठाके मूलपर्वसे दक्षिणावर्त क्रमसे तर्जनी मूल पर्वपर्यन्त करमाला कही गई है ॥ १९ ॥ जो गोघ्न, पितृघ्न, मातृहा, गर्भहा, गुरुतल्पगामी, ब्राह्मणका धनहरनेवाला तथा जो सुरापान करता है ॥ २० ॥ वह मनुष्य एक सहस्र गायत्री जपकर पवित्र हो जाता है मन वचन कर्म और विषयेन्द्रियके संगसे

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाऽधः करौ तथा ॥ मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥ १८ ॥ पर्वद्वयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु ॥ तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता ॥ १९ ॥ गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुरां पिबेत् ॥२०॥ स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः ॥ मानसं वाचिकं पापं विषयेंद्रियसंगजम् ॥२१॥ तत्किल्बिषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः ॥ गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ॥ २२ ॥ पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत् ॥ वेदानां चावृतेस्तद्वद्गायत्रीजप उत्तमः ॥ २३ ॥ इति मध्याह्नसंध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम् ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ श्रीनारायण उवाच ॥ द्विराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत् ॥ उपस्पृशेत्सव्यपाणिं पादौ च प्रोक्षयेत्ततः ॥ १ ॥ शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके ॥ हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत् ॥ २ ॥

उत्पन्न हुआ पाप ॥२१॥ गायत्री ऐसे तीन जन्मके मनुष्यके पाप दूर करती है जो गायत्रीको नहीं जानता है उसका परिश्रम वृथा है ॥ २२ ॥ चारों वेदका पढना, और एक ओर गायत्रीका जप इनमें गायत्रीही मुख्य है ॥ २३ ॥ यह मन मध्याह्न सन्ध्याका प्रकार कहा अब ब्रह्मयज्ञ विधिका क्रम कहते हैं ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ नारायण बोले ब्राह्मण पहले तीनवार आचमन कर दोवार मार्जन करे सीधा हाथ धोकर फिर चरणोंको प्रक्षालन करै ॥ १ ॥ शिर चक्षु नासिका श्रोत्र

हृदय शिर इनमें प्रोक्षण करै फिर देश काल उच्चारण कर ब्रह्मयज्ञ करै दक्षिणहाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन, आसनमें एक ॥२ ॥ ३॥ उपवीत शिखा और पादमूलमें एक एक रक्खै यह मुक्ति और सबपापक्षयमें उपयोगी हैं ॥ ४ ॥ सूत्रमें कहे देवताकी प्रीतिके निमित्त मैं ब्रह्मयज्ञ करता हूं पहले तीन गायत्री पढकर फिर 'अग्निमीळ पुरोहितम्' ॥ ५ ॥ 'यदंग' इति, 'अग्निर्वै' इत्यादि मंत्र पढ फिर महाव्रतका यह मार्ग है महाव्रतंचैवपंथा, ऐसा कहै ॥ ६ ॥ फिर संहिताके 'विदामघवत्' 'महा व्रतस्य इषेत्वा ऊर्जेत्वा' ॥ ७ ॥ 'अग्नआयाहि, शन्नोदेवी'

देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत् ॥ द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामे त्रीनासने सकृत् ॥३॥ उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत् ॥ निर्मुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि ॥४॥ सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम् ॥ गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीळे ततः परम् ॥५॥ यदंगेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्तयेत् ॥ अथ महाव्रतं चैव पंथा एतच्च कीर्तयेत् ॥ ६ ॥ अथातः संहितायाश्च विदामघवादित्यपि ॥ महाव्रतस्येति तथा इषे त्वोर्जे इतीव हि ॥७॥ अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नो देवीरितीति च ॥ अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि ॥ ८ ॥ अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पञ्चसंवत्सरेति च ॥ मयरसतजभनेत्येव गोग्मा इत्येव कीर्तयेत् ॥९॥ अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि ॥ तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि ॥ १० ॥ तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रजापतिश्च ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः ॥११॥ सर्वाणि चैव च्छन्दांसि तथोंकारस्तथैव च ॥ वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम् ॥१२॥ गायत्री चैव यज्ञाश्च द्यावा पृथिवी इत्यपि ॥ अन्तरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम् ॥१३॥

और उसका समाम्नाय 'वृद्धिरादैच्' पाणि० सू० ॥ ८ ॥ और अथशिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति मयारसतजभेत्येवगोग्मा, यह प्रतीक हैं इनको सम्यक् प्रकार कीर्त्तन करै ॥ ९ ॥ फिर अथातो धर्मजिज्ञासा, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, पढकर फिर नमोब्रह्मणे नमोऽस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै इत्यादि तच्छंयो इति उच्चारण करके पढै ॥ १० ॥ फिर देवताओंका तर्पण और प्रदक्षिणा करै प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि ॥११॥ सब छंद, ओंकार, वषट्कार, व्याहृति, सावित्री ॥ १२ ॥ गायत्री, यज्ञ, द्यावापृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य ॥ १३ ॥

सिद्ध, समुद्र, नदी पर्वत, औषधि, वनस्पति, गंधर्व, अप्सरा ॥ १४ ॥ नाग, पक्षी, गौ, साध्य, विप्र, यक्ष, राक्षस, भूतादि कीर्त्तनकर तर्पण करे ॥१५॥ फिर निवीती (गलेमें यज्ञोपवीत डाल) ऋषियोंका तर्पण करे वह शतार्चि, माध्यमा, गृत्समद ॥ १६ ॥ विश्वामित्र वामदेव अत्रि भरद्वाज वशिष्ठ प्रगाथ पावमान्य ॥१७॥ क्षुद्रसूक्त महासूक्त सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार ॥ १८ ॥ कपिल आसुरि वोहलि पंचशीर्षक यह ऋषि

सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततःपरम् ॥ क्षेत्रौषधिवनस्पत्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ १४ ॥ नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च ॥ यक्षा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत् ॥ १५ ॥ अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्सन्तर्पयेदपि ॥ शतर्चिनो माध्यमाश्च गृत्समदस्तथैव च ॥ १६ ॥ विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च ॥ वसिष्ठश्च प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम् ॥ १७ ॥ क्षुद्रसूक्ता महासूक्ता सनकश्च सनन्दनः ॥ सनातनस्तथैवाऽत्र सनत्कुमार एव च ॥ १८ ॥ कपिलासुरिनामानो वोहलिः पञ्चशीर्षकः ॥ प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम् ॥ १९ ॥ सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक् ॥ भाष्यभारतपूर्वं च महाभारत इत्यपि ॥ २० ॥ धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यंत्विति च कीर्तयेत् ॥ जानंतिवाहविगार्ग्यगौतमाश्चैव शाकलः ॥ २१ ॥ बाभ्रव्यमांडव्ययुतो मांडूकेयस्ततः परम् ॥ गार्गी वाचक्नवी चैव वडवा प्रातिथेयिका ॥ २२ ॥ सुलभायुक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततःपरम् ॥ कौषीतकम्महाकौषीतकं वै तर्पयेत्ततः ॥ २३ ॥

तर्पण प्राचीनावीतिसे करै ॥१९॥ सुमंतु जैमिनि वैशंपायन पैल सूत्रभाष्य भारत महाभारत ॥२०॥ धर्माचार्यास्तृप्यन्तु ऐसा कहै जानन्ति बाहवि गार्ग्य गौतम शाकल्य २१ बाभ्रव्य माण्डव्यमाण्डूकेयास्तृप्यन्तु गर्गीवाचक्नवी तृप्यतु वडवा प्रातिथेयी तृप्यतु ॥२२॥ सुलभामैत्रेयी तृप्यतु कहोळा कौषीतक और महाकौषीतकको तर्पण करै ॥२३॥

१ ओं प्रजापतिस्तृप्यतु ॐ ब्रह्मा तृप्यताम् ओ३म् वेदास्तृप्यन्ताम् इत्यादि तर्पणमें देख लो ।

भरद्वाज पैंग्य महापैंग्य सुयज्ञ सांख्यायन ऐतरेय महैतरेय ॥ २४ ॥ बाष्कल शाकल वसुजातवक्र औदवाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ॥२५॥ तथा जो और आचार्य हैं वे सब तृतिको प्राप्त हों जो हमारे कुलमें हुए अपुत्र और गोत्री मरे हैं ॥ २६ ॥ यह मेरा दिया वस्त्रनिष्पीडित जल ग्रहण करैं हे मुने ! यह आपसे ब्रह्मयज्ञकी विधिकही ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! जो इस यज्ञकी उत्तम विधि करता है उस साधकको सब वेदांग पाठका फल होता है ॥२८॥ फिर वैश्वदेव और नित्य श्राद्ध करै अतिथियोंको नित्य अन्न दान करै ॥ २९ ॥ फिर गोग्रास दे ब्राह्मणोंके सहित

भारद्वाजं च पैंग्यं च महापैंग्यं सुयज्ञकम् ॥ सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च ॥ २४ ॥ बाष्कलं शाकलं चैव सुजात वक्रमेव च ॥ औदवाहिं च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम् ॥२५॥ ये चान्ये सर्व आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः ॥ ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ॥ २६ ॥ ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥ एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तो महामुने ॥२७॥ यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम् ॥ सर्ववेदांगपाठस्य फलमाप्नोति साधकः ॥२८॥ वैश्वदेवे ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च ॥ अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत् ॥ २९ ॥ गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुंजीत ब्राह्मणैः सह ॥ अह्नस्तु पंचमे भागे प्रकुर्यादेतदुत्तमम् ॥३०॥ इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्यां ततः पुनः ॥ ३१ ॥ अथ सायन्तनीं संध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने ॥ यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदतु ॥ ३२ ॥ आचम्य प्राणानायम्य साधकः स्थिरमानसः ॥ बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत् ॥ ३३ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः ॥ अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥

भोजन करै दिनके पंचम भागमें यह उत्तम कर्म करै ॥ ३० ॥ दिनके छठे सातवें भागमें इतिहास पुराण पढै आठवें भागमें लोकयात्रा करे फिर बहिः सन्ध्या करै ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! अब सायंसन्ध्या कहता हूं जिसके अनुष्ठान मात्रसे महामाया प्रसन्न होती है ॥ ३२ ॥ साधक आचमन कर प्राणायाम करके स्थिर मौन हो पद्मासनसे बैठ योगयुक्त हो सायंकाल में स्थिर हो ॥ ३३ ॥ श्रुति स्मृति

आदि कर्मादिमें सगर्भ प्राणायाम होता है, अगर्भ प्राणायाम ध्यान भावका और अमन्त्र कहा है ॥ ३४ ॥ भूतशुद्धि आदि करके अन्यथा कर्म दूर कर रेचक पूरक कुम्भकद्वारा सलक्षण (इष्ट) देवताका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार चतुर पुरुष सन्ध्या कालमें ध्यान करके वृद्धा सरस्वती देवी कृष्ण अंग कृष्णवस्त्र धारण किये ॥ ३६ ॥ शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुडवाहना अनेक रत्नोंके भूषणोंसे शोभित मंजीर मेखलाके शब्दसे व्याप्त ॥ ३७ ॥ अनर्घ्य रत्नके मुकुट धारे तारहारावलीसंयुक्त ताटंक कर्णभूषणमें बँधे माणिक्यकी

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम् ॥ सलक्षो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ३५ ॥ ध्यानं प्रकुर्यात्संध्यायां सायंकाले विचक्षणः ॥ वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णांगीं कृष्णवाससम् ॥ ३६ ॥ शंखचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम् ॥ नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३७ ॥ अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारवलीयुताम् ॥ ताटंकबद्धमाणिक्यकांतिशोभिकपोलकाम् ॥ ३८ ॥ पीतांबरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना ॥ ३९ ॥ व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम् ॥ आवाहयाम्यहं देवीमायांतीं सूर्यमण्डलात् ॥ ४० ॥ एवं ध्यात्वा च तां देवीं संध्यासंकल्पमाचरेत्॥ आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च ॥ ४१ ॥ विदध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदीरितम् ॥ गायत्रीमंत्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये ॥ ४२ ॥ अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानसः ॥ उभौ पादौ समौ कृत्वा हस्ते कृत्वा जलांजलिम् ॥ ४३ ॥ देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात् ॥ अर्घ्यं दद्यात्तु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः ॥ ४४ ॥

कांतिसे शोभित कपोलवाली ॥ ३८ ॥ पीताम्बरधारिणी सच्चिदानन्दरूपिणी देवी सामवेदके सहित सत्यमार्गमें संयुक्त ॥ ३९ ॥ स्वर्लोकमें स्थित आदित्य मार्गमें गमन करनेवाली सूर्यमण्डलसे आती हुई देवीको आवाहन करता हूं ॥ ४० ॥ इस प्रकार देवीको ध्यान करके सन्ध्या संकल्पकरै आपोहिष्ठा और अग्निश्चेति मन्त्रोंसे ॥ ४१ ॥ और शेषपूर्ववत् आचमन आदि करै श्रीनारायणकी प्रीतिके निमित गायत्रीका उच्चारणकर ॥४२॥ शुद्ध मनसे साधक सूर्यके निमित्त अर्घ्य दे दोनोंचरण समानकर हाथमें अंजलिले ॥ ४३ ॥ मंडलमें स्थित

देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्यदे जो मूढात्मा ज्ञानसे वार्जित हो नीरमें अर्घ्यदेता है वह ज्ञानरहित होता है ॥ ४४ ॥ जो स्मृतिके मंत्रोंको उल्लंघन करता है वह प्रायश्चित्ती होता है फिर असावादित्य इन मन्त्रसे सूर्योपस्थान करके ॥ ४५ ॥ आसनपर बैठ गायत्रीका जप करै सहस्र वा पांचसौ श्रीदेवीके ध्यानपूर्वक जप करै ॥४६॥ और प्रभात कालके समान उपस्थानादि करै सायंसंध्याके तर्पण क्रमसे परिकीर्त्तन करै ॥४७॥ सायं संध्यारूप सरस्वतीका वसिष्ठ ऋषि विष्णु देवता सरस्वती छन्द है ॥ ४८ ॥ और सायंसंध्याके तपणमें विनियोग है स्व कहकर पुरुषको सामवेदको

उल्लंघ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥ ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमन्त्रतः ॥ ४५ ॥ गायत्र्याश्च जपं कुर्यादुपविश्य ततो बृसीम् ॥ सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ यथा प्रातः पुनस्तद्वदुपस्थाना दिकं चरेत् ॥ सायंसंध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ वसिष्ठ ऋषिरेवाऽत्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः ॥ देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती ॥ ४८ ॥ सायंकालीनसंध्यायास्तर्पणे विनियोगकः ॥ स्वरित्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च ॥ ४९ ॥ मण्डलं चेति संप्रोच्य हिरण्यगर्भकन्तथा ॥ तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम् ॥ ५० ॥ वेदमातरमेवात्र संकृतिं तद्वदेव च ॥ संध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुपसीं तथा ॥ ५१ ॥ निमृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा ॥ सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवः स्वश्च पूरुषम् ॥ ५२ ॥ इत्येवं तर्पणं कार्यं संध्यायाः श्रुतिसम्मतम् ॥ सायंसंध्याविधानं च कथितं पापनाशनम् ॥ ५३ ॥

॥ ४९ ॥ मण्डल हिरण्यगर्भका उच्चारण करके तथा परमात्मा, संरस्वती ॥ ५० ॥ वेद माता संकृति सन्ध्या वृद्धा विष्णुरूपिणी उपसी ॥५१॥ निमृजी सर्वसिद्धीनां करणीम् सब मंत्रकी अधिपतिका भुर्भुवः पुरुष ॥ ५२ ॥ इस प्रकार संध्यामें श्रुतिसम्मत तर्पण करना चाहिये यह तुमसे पापनाशक सायंसंध्याका विधान कहा ॥ ५३ ॥

सब दुःख हरनेवाला व्याधिनाशक और मोक्षदायक है हे मुनिश्रेष्ठ! सदाचारमें यह सायंसंध्यामें प्राधान्य कहा है ॥ ५४ ॥ सन्ध्या करनेसे देवी भक्तोंको इष्ट देती हैं ओं स्वःपुरुषं तर्पयामि, ओं सामवेदं तर्पयामि, आ मंडलं तर्पयामि इत्यादि कहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले हे ब्रह्मन् अत्र गायत्रीका पापनाशक यथेष्टफलदायक पुरश्चरण कहता हूं ॥१॥ पर्वतके अग्रभाग नदीके किनारे बेलकी मूल जलाशय गोष्ठ देवालय अश्वत्थ उद्यान तुलसीवन ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्र गुरुके पार्श्व चित्त एकाग्रवाले स्थलमें पुरश्चरण करनेवाला मन्त्री सिद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ जिस किसी भी मन्त्रका पुरश्चरण आरंभ करै तीनों

सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा ॥ सदाचारेषु संध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुंगव ॥ ५४ ॥ सन्ध्याचरणतो देवी भक्ता भीष्टं प्रयच्छति ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम् ॥ पुरश्चरणकं पुण्यं यथेष्टफलदायकम् ॥ १ ॥ पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये ॥ गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च ॥ पुरश्चरणकृन्मंत्री सिद्ध्यत्येव न संशयः ॥३॥ यस्य कस्यापि मंत्रस्य पुरश्चरणमारभेत् ॥ व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चाऽऽयुतं जपेत् ॥ ४ ॥ नृसिंहार्कवराहाणां तांत्रिकं वैदिकं तथा ॥ विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥६॥ मंत्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः ॥ मंत्रशोधनपूर्वांगमात्मशोधनमुत्तमम् ॥७॥

व्याहृतियोंके सहित १०००० गायत्री जपै ॥ ४ ॥ नृसिंह सूर्य वाराहादि तांत्रिक वा वैदिक पुरश्चरण कोई हो विना गायत्रीके जपे सब निष्फल होजाता है ॥ ५ ॥ सबही ब्राह्मण शाक्त हैं शैव और वैष्णव नहीं. सब वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ पुरश्चरणमें तत्पर मनुष्य यत्नसे इसप्रकार प्रथम १०००० दशसहस्र मन्त्र जपकर उसे शोधन कर पीछे पुरश्चरणमें तत्पर हो और मन्त्र शोधनसे पहले अंगशोधन आत्मशोधन करै सो तीन लाख वा एकलाख आत्मशोधनके निमित्त गायत्री जपै, यही पुरश्चरण भास्करमें लिखा है ॥ ७ ॥

विद्वान् आत्मतत्त्वशोधनके निमित्त तीन लाख गायत्रीका जप करै अथवा वेदकथित आज्ञानुसार एक लाख जपै॥८॥जो अपने और मंत्रशोधनके विना जो कुछ क्रिया करताहै वह सब निष्फल होती है यह श्रुतिकथित कारण है ॥ ९ ॥ तपसे देहको तापित करै पितृ और देवताओंका तर्पण करै कारण कि तपसे ही स्वर्ग मिलता, तपसे महानता होती है ॥ १० ॥ क्षत्रिय अपनी आपत्ति बाहुवीर्यसे तरजाता है धनसे वैश्य, शूद्र सेवासे और ब्राह्मण जप होमसे आपत्ति तरजाता है ॥ ११ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस कारण यत्नपूर्वक तप करे तापस शरीर शोषणको

आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद् बुधः ॥ अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ८ ॥ आत्मशुद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः ॥ निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम् ॥ ९ ॥ तपसा तापयेद्देहं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ १० ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः ॥ धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥११॥ अत एव तु विप्रेंद्र तपः कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचांद्रायणादिभिः ॥ अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ १३ ॥ अयाचितोञ्छशुक्लाख्यभिक्षावृतिचतुष्टयम् ॥ तांत्रिकैर्वैदिकैश्चैवं प्रोक्तान्नस्य विशुद्धता ॥१४॥ भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम् ॥ एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः॥१५॥अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः॥आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वा ग्रासविधिं क्रमात्॥१६॥आदौ क्षिप्त्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम् ॥ तदूर्ध्वं ग्राससंख्या स्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ १७ ॥

ही उत्तम तपस्या कहते हैं ॥ १२ ॥ इसको विधिमार्ग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतसे शोधे हे नारद ! अब अन्नशुद्धि कारणको कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ विना मांगे जो मिला, उञ्छ वृत्ति शुक्ला अयाचित भिक्षा यह चार वृत्ति हैं इस प्रकार वैदिकोंने अन्नकी शुद्धि कही ॥ १४ ॥ शुद्ध भिक्षा अन्नको लेकर उसके चार भाग करके उसमें एकभाग ब्राह्मणको दूसरा गोग्रास ॥ १५ ॥ अतिथियोंको तीसरा भाग तदुपरान्त अपनी भार्याको दे औरआप ले जिस आश्रममें हो उसीके अनुसार ग्रासविधि करके॥१६॥यथाशक्ति यथाक्रमसे पहले गोमूत्रप्रक्षेप करके फिर वानप्रस्थ

और गृहस्थको ग्रास संख्याका विधान करना चाहिये॥१७॥ कुक्कुट मुर्गेके अण्डके समान ग्रासका परिणाम कहा है गृहस्थीको आठ वनस्थको चार ब्रह्मचारीको यथेष्ट गोमूत्रसे विधिपूर्वक नौवार छःवार तीनवार प्रोक्षण करने चाहिये गायत्री मन्त्र उतनीही वार पढना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ दोनों हाथ छिद्ररहित करके सावित्री मन्त्रको उच्चारण कर मनसे प्रोक्षणकी विधि कही है ॥२०॥ चौर चांडाल वैश्य क्षत्रिय इनके दिये अन्न अधम जाने इनके अन्नकी अधम विधिहै॥२१॥ शूद्रका अन्न शूद्रसे संपर्क शूद्रके साथ भोजन जो करते हैं वह चन्द्रदिवाकर पर्यन्त घोरनरकमें जावेहैं॥२२॥

कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते ॥ अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्र विधिपूर्वकम् । प्रोक्षणं नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम् ॥१९॥ निच्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणं विधिरुच्यते ॥ २० ॥ चौरो वा यदि चांडालो वैश्यः क्षत्रस्तथैव च ॥ अन्नं दद्यात्तु यः कश्चिदधमो विधिरुच्यते ॥२१॥ शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहाशनम् ॥ ते यांति नरकं घोरं यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥२२॥ गायत्रीच्छन्दो मंत्रस्य यथा संख्याक्षराणि च ॥ तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥२३॥ द्वात्रिंशल्लक्षमानं तु विश्वामित्रमतं तथा ॥ जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ २४ ॥ पुरश्चरणहीनस्तु तथा मंत्रः प्रकीर्तितः ॥ ज्येष्ठाषाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम् ॥ २५ ॥ अंगारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम् ॥ अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम् ॥ २६ ॥ चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च तथा निशाम् ॥ यमाग्निरुद्रसर्पेंद्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७ ॥

गायत्री छन्द मन्त्रके जितने संख्यावाले अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये यह गायत्री मन्त्रका पुरश्चरण है और जो दूसरे मन्त्रका पुरश्चरण हो वहां उसके अक्षरोंकी संख्या देखे ॥२३॥ विश्वामित्रका मत २४ लाख पुरश्चरणका है जैसे विना जीवके देह कोई कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार पुरश्चरणके विना मन्त्र है ज्येष्ठ आषाढ भाद्रमास पौषमास मलमास ॥ २४ ॥ २५ ॥ मंगल शनिवार व्यतिपात वैधृति योग अष्टमी नौमी षष्ठी चतुर्थी त्रयोदशी ॥ २६ ॥ चौदह अमावस्या प्रदोष रात्रि यम 'भरणी' अग्नि 'कृत्तिका'

रुद्र 'आर्द्रा' सर्प 'आश्लेषा' इन्द्र 'ज्येष्ठा वसु 'धनिष्ठा' श्रवण नक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रमें ॥ २७ ॥ मेष कर्क तुला कुम्भ मकर लग्न पुरश्चरणमें यह मास तिथि नक्षत्र योग लग्न सब वर्जित हैं ॥ २८ ॥ जब चंद्रतारा (ग्रह) अनुकूल हो विशेषकर शुक्लपक्षमें पुरश्चरण करनेसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ २९ ॥ पहले स्वस्तिवाचन कराय विधिपूर्वक नांदीश्राद्ध करके भोजनाच्छादनसे यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको तृप्तकर ॥ ३० ॥ गुरु आदिकी आज्ञासे आरंभ करे शिवके स्थानमें लिंगके समीप पश्चिम मुख होय जप करै वा अन्य शिवस्थानोंमें जप करै ॥ ३१ ॥ काशीपुरी केदारनाथ महाकाल (उज्जैन) नासिक त्र्यम्बक महाक्षेत्र यह पांच द्वीप अर्थात् शंकरके प्रसिद्ध स्थान हैं ॥ ३२ ॥ सत्र द्वीपोंमें कूर्मासन

मेषकर्कतुलाकुंभान्मकरंचैववर्जयेत्॥सर्वाण्येतानि वर्ज्यानिपुरश्चरणकर्मणि॥२८॥चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषतः॥ पुरश्चरणकं कुर्यान्मंत्रसिद्धिः प्रजायते ॥ २९ ॥ स्वस्तिवाचनकं कुर्यान्नांदीश्राद्धं यथाविधि ॥ विप्रान्संतर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥३०॥ आरभेत्तु ततःपश्चादनुज्ञानपुरःसरम् ॥ प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत् ॥३१॥ काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम् ॥ त्र्यंबकं च महाक्षेत्रं पंचदीपा इमे भुवि ॥३२॥ सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम् ॥ प्रारंभदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि ॥ ३३ ॥ न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने ॥ नैरंतर्येण कुर्वंति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यंदिनावधि ॥ मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मंत्रार्थचिंतनम् ॥३५॥ गायत्रीच्छंदो मंत्रस्य यथा संख्याक्षराणि च ॥ तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥३६॥ जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोंऽधसा ॥ तिलैः पत्रैः प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः ॥ ३७ ॥ कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥ गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ३८ ॥

कहा है और इन स्थलोंके अतिरिक्त कूर्मचक्रभी द्वीप है प्रारंभसे लेकर जबतक समाप्ति हो ॥ ३३ ॥ प्रतिदिन बराबर जप करै न्यूनाधिक न करै मुनीश्वर पुरश्चरणको निरन्तरही करते हैं ३४ ॥ प्रभातसे लेकर विधिपुर्वक मध्याह्नतक जप करै मनका रोकना पवित्रता ध्यान मंत्रार्थका चिन्तन करना गायत्री छन्दके जितने अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पश्चात् उसका दशांश घृत दूध ओदनसे तथा तिल बेलपत्र फूल शर्करादि युक्त पदार्थोंसे हवन करे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार दशांश होमसे गायत्रीका सेवन करै

तो यह धर्म अर्थ काम मोक्षकी देनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ नित्य निमित्त काम्य कार्यों तथा मोक्षमें परायण हुआ यही जपै इस लोक वा परलोकमें गायत्रीसे परे कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ दूसरा पुरश्चरण कहते हैं, मध्याह्नमें मित भोजन कर मौन रहै तीनवार स्नानकर अर्चनमें तत्पर रहै जलमें धीमान् अनन्य मन तीन लाख जप करै ॥ ४० ॥ इस प्रकार पहले पुरश्चरण कर पीछे काम्य कर्म वा स्वेच्छासे जबतक कार्यसिद्धि न हो जपादिक करता रहै ॥ ४१ ॥ सामान्य काम्य कर्मादिकी यथावत् विधि कहते हैं सूर्योदयमें स्नानकर प्रतिदिन,

नित्ये नैमित्तिके काम्ये त्रितये तु परायणः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमितभुङ्मौनी त्रिस्नानार्चनतत्परः ॥ जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः ॥ ४० ॥ कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयाऽपि वा ॥ यावत्कार्यं न सिद्ध्येत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम् ॥ ४१ ॥ सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते ॥ आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ४२ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम् ॥ षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षांते सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ॥ ४३ ॥ पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने ॥ प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्यत्येव न संशयः ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः ॥ काम्यं वा यदि वा मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥ ४५ ॥ पंचविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात् ॥ स्वदेहे सिध्यते जंतुर्महर्षीणां मतं तथा ॥४६॥ अष्टांगयोगसिद्ध्या च नरः प्राप्नोति यत्फलम् ॥ तत्फलं सिद्धि माप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४७ ॥

सहस्र जप करै ॥ ४२ ॥ तो आयु आरोग्य ऐश्वर्य और धन बहुत मिलता है, छः महीने तीन महीने वा एक वर्षके उपरान्त सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ एक लाख घृतमें बोरे कमलोंके हवनसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ मंत्रसिद्धिके विना कर्त्ताकी जप होमादि सब क्रिया काम्य वा मोक्ष सब निष्फल होती हैं॥४५॥पचीस लाख दधि और क्षीरकी आहुति देनेसे इसी जन्ममें प्राणी सिद्ध होता है यह महर्षियोंका मत है ॥४६॥ अष्टांग योगकी सिद्धिसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है उस फलको मंत्र

सिद्धिसे प्राप्त कर सकता है, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ४७ ॥ शक्त वा अशक्त जो नियत आहारसे मंत्र जपता है उस गुरुभक्तको छः महीनेमें सिद्धि हो जाती है ॥४८॥ एकदिन पंचगव्य एकदिन वायुभोजन एकदिन ब्राह्मणोंके यहांका अन्न खाकर गायत्री जप करै ॥४९॥ गंगादि तीर्थोंमें जाकर जलके अन्तरमें ही सौवार जपै और सौवार जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥५०॥ और चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रतोंका अवश्य फल पाता है राजा वा ब्राह्मण जो अपने घरमें तप करै ॥ ५१ ॥ गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थके अपने अधिकार परत्वसे यज्ञादि पूर्वक फल

शक्तो वाऽपि त्वशक्तो वा आहारं नियतं चरेत् ॥ षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद्गुरुभक्तिरतः सदा ॥ ४८ ॥ एकाहं पंचगव्याशी चैकाहं मारुताशनः ॥ एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत् ॥ ४९ ॥ स्नात्वा गंगादितीर्थेषु शतमंतर्जले जपेत् ॥ शते नापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ चांद्रायणादिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ राजा वा यदिवा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे ॥ ५१ ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथवापि च ॥ अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकांक्षिभिः ॥ साग्निकश्च सदाचारे विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः ॥ ५३ ॥ ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदका दिभिः ॥ भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुजेत् ॥ ५४ ॥ एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मंत्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यं विलयं व्रजेत् ॥५५॥ यच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकविंशोऽध्यायः॥२१॥नारायण उवाच॥अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वैश्वदेवविधानकम्॥पुरश्चर्याप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम्॥१॥

मिलता है ॥५२॥ मोक्षकी आकांक्षावाले श्रौतस्मार्तादि कर्म करते हैं, साग्निक सदाचार विद्वानोंसे शिक्षित ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ प्रयत्नसे फल मूल उदक वा भिक्षा अन्न शुद्धखाय आठ ग्रास स्वयं भोजन करै ॥ ५४ ॥ इस प्रकार पुरश्चरण करके मंत्रसिद्धिको प्राप्त होता है, हे देवर्षे ! इसके अनुष्ठानसे दरिद्र नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥ इसके सुननेसे पुण्योंकी वडी सिद्धि प्राप्त होती है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥२१॥श्रीनारायण बोले हे देवर्षे ! अब वैश्वदेवके विधान सुनो पुरश्चरणके प्रसंगसे जो हमको स्मरण हुआ है ॥१॥

देवयज्ञ ब्रह्मयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ यह पांचयज्ञ हैं ॥२॥ गृहस्थको पांच हत्या लगती हैं चूल्हा चक्की बुहारी ओखली घटकुंभ यहां जो चैंटी आदि मरती हैं इनकी पापशांतिके निमित्त यज्ञ करै ॥ ३ ॥ चूल्हा लोहपात्र भूमि खर्पर इन स्थानोंमें वैश्वदेव न करै कुंड वा स्थंडिल स्थानमें करै ॥ ४ ॥ हाथ शूर्प मृगचर्म इनसे अग्निको न फूंके किन्तु मुखकी फूंकसे धमन कर कारण कि मुखसे अग्नि उत्पन्न हुई है ॥ ५ ॥ वस्त्रसे बाले तो व्याधि हो शूर्पसे धननाश, हाथसे मृत्यु होती है मुखसे कर्मसिद्धि होती है ॥ ६ ॥ फल दही घी मूल शाक उदक आदिसे करै यदि यह प्राप्त

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च ॥ पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पंचमः ॥२॥ पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ही पेषण्युपस्करः ॥ कंडणी चोदकुंभश्च तेषां पापस्य शांतये ॥३॥ न चुल्ह्यां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे ॥ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुंडे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥ ४ ॥ न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः ॥ मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत ॥ ५ ॥ पटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ॥ पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ॥ ६ ॥ फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः ॥ अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः ॥७॥ जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ॥ दध्यक्तं वा पायसाक्तं तदभावेऽम्भसापि वा ॥८॥ शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी ॥ रूक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः ॥९॥ अंगारान्भस्ममिश्रांस्तु निर्हृत्योत्तरतोऽनलात् ॥ जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम् ॥१०॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते मूढधीर्द्विजः ॥ स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥११॥ शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ॥ संकल्पयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि ॥१२॥

न हों तो जिस किसी काष्ठ मूल तृणादिसे करै ॥ ७ ॥ तेल क्षारको छोडकर सर्पि (घी) दही दूधसे हवन करै यह न हों तो जलसेही हवन करै ॥ ८ ॥ शुष्क और बासी अन्न हवन करनेसे कुष्ठी उच्छिष्टसे शत्रुओंके वशीभूत रूखे पदार्थोंसे दरिद्र और क्षारसे हवन करै तो नरकमें जाता है ॥ ९ ॥ भस्मयुक्त अंगारोंको अन्नपाचक अग्निके उत्तर देशसे लावै यह लेकर वैश्वदेवके निमित्त हवन करै क्षारादि मिश्रित न करै ॥ १० ॥ जो मूर्ख विना वैश्वदेव किये भोजन करते हैं वह मूढ कालसूत्रमें नीचेको मुख कर गिरते हैं ॥ ११ ॥ शाकपत्र मूल फल जिस वस्तुको भोजन

करै उसे अग्निमें हवन करै ॥ १२ ॥ विना वैश्वदेव किये भिक्षुकके भिक्षा करनेके निमित्त आनेमें वैश्वदेव भाग निकालकर भिक्षा देकर विसर्जन करै ॥ १३ ॥ अतिथि वैश्वदेवका दोष दूर कर सकता है पर भिक्षुकके दोषको वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता. जो उसको भिक्षा न दी जाय ॥१४॥ यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पक्वान्नके स्वामी हैं, उनको विना दिये भोजन करके चान्द्रायण करना पडता है ॥ १५ ॥ वैश्वदेव करनेके उपरान्त गोग्रास दे हे देवर्षे ! सुनो उसका विधान कहता हूं ॥१६॥ सुर भी वैष्णवी माता नित्य विष्णपदमें स्थित है मैं गोग्रासको देता हूं

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ १३ ॥ वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षु र्व्यपोहितुम् ॥ न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥१४॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामि नावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १५ ॥ वैश्वदेवानंतरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत् ॥ तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिपूजित ॥ १६ ॥ सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ॥ गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम् ॥ ॥१७॥ गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत् ॥ गोग्रासेन तु गोमाता सुरभिः सम्प्रसीदति ॥ १८ ॥ ततो गोदोहनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहांगणे ॥ अतिथिर्यत्र भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥१९॥ स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः ॥२०॥ अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः ॥ एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम् ॥ २१ ॥

सुर भी ग्रहण करै, ॥१७॥ "गोभ्यश्च नमः" ऐसा कहकर गौकी भुजा गौको अर्पण करै, गोग्राससे गोमाता सुर भी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ फिर गोदोहन कालतक अर्थात् जितनी देरतक गौ दुही जाती है उतने समयतक अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ आँगनमें स्थित रहै कि, कोई आवे तो उसे कुछ भागदे भोजन करै अतिथि जिसके घरसे भग्न आशा होकर लौटजाता है ॥ १९ ॥ वह उसको अपने पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है मातापिता गुरुभ्रातादास आश्रित ॥२०॥ अभ्यागत अतिथि अग्नि यह पोष्यवर्ग कहे गये हैं यह जानकर जो मूढ गृहाश्रम

नहीं करता ॥ २१ ॥ उसको धर्मसे यह लोक और परलोक नहीं है धनवान्‌को जो फल सोमयागसे प्राप्त होता है॥२२॥दरिद्र उसको पंचयज्ञ द्वारा विना ही परिश्रम प्राप्त करता है हे मुनिश्रेष्ठ ! अब प्राणाग्निहोत्रको कहूंगा॥ २३ ॥ जिसको जानकर यह प्राणी जन्म मृत्यु जरा आदिसे छूटजाता है इसके ज्ञानसे मनुष्योंके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥२४॥ जो विधिपूर्वक भोजन करता है वह तीनों ऋणसे छूट जाता है और वह ब्राह्मण (२१) कुलको उद्धार करता है ॥२५ सब यज्ञोंके फलकी प्राप्ति सब लोकोंकी प्राप्ति होती है। हृदयकमलको अरणी मन मथानी॥ २६ ॥

तस्य नायं तु न परो लोको भवति धर्मतः॥यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः॥२२॥सम्यक्पंचमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात् ॥ अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्मामि तु मुनिपुंगव॥२३॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्ममृत्यजरादिभिः॥परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्बिषैः ॥२४॥ विधिना भुज्यते येन मुच्यते स ऋणत्रयात् ॥ कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम् ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति ॥ हृत्पुण्डरीकमरणिर्मनो मंथानसंज्ञकम् ॥ २६ ॥ वायुरज्ज्वा मथेदग्निं चक्षुरध्वर्युरेव च ॥ तर्जनीमध्यमांगुष्ठैः प्राणस्यैवाहुतिं क्षिपेत् ॥ २७ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्यानस्थ तदनंतरम्॥२८॥कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ सर्वांगुलैर्गृहीत्वाऽन्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ २९ ॥ स्वाहांतान्प्रणवाद्यांश्च नाममंत्रांश्च वै पठेत् ॥ मुखे चाहवनीयस्तु हृदये गार्हपत्यकः ॥३०॥ नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ॥ वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युरेव च॥३१॥मनोब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थानं एव च॥अहंकारः पशुश्चात्र प्रणवःपयईरितम् ॥३२॥

वायुकी रज्जुकरके अग्निको मथै चक्षुको अध्वर्यु करै तर्जनी मध्यमा अंगुष्ठसे प्राणकी आहुति दे ॥ २७ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठसे अपानकी आहुति दे कनिष्ठिका अनामिका अंगुष्ठसे व्यानकी आहुति दे ॥२८॥ कनिष्ठिका तर्जनी अंगुष्ठसे उदानकी आहुति दे सर्व अंगुलियोंसे अन्नको ग्रहण करके समानकी आहुति दे ॥ २९ ॥ सबके अन्तमें स्वाहा लगाकर 'ओं प्राणायस्वाहा" इस प्रकार नाम मंत्रोंसे पढै मुखमें आहवनीय हृदयमें गार्हपत्य ॥ ३० ॥ नाभिमें दक्षिणाग्नि अधस्थानमें आवसथ्य कहैं वाक होता प्राण उद्गाता चक्षुअध्वर्यु ॥ ३१ ॥ मन ब्रह्मा श्रोत्र

आग्नीध्र अहंकार पशु प्रणव पय है ॥३२॥ बुद्धि पत्नी है जिसके अधीन यह गृहाश्रमी है हृदय वेदी रोम दर्भ हैं स्रुक् स्रुवं दोनों हाथ हैं प्राण मंत्रोंका ऋषि सुवर्णवर्ण क्षुधाग्निक ऋषि है आदित्य देवता गायत्री छन्द है ॥३३॥ ३४ ॥ यह उच्चारण कर "प्राणायस्वाहा" कहे "इदमादित्य देवाय नमः" यह भी कहै ॥३५॥ अपान मंत्रका धवलाकार गोक्षीर श्रद्धा अग्नि ऋषि सोम देवता है ॥ ३६ ॥ उष्णिक् छन्द है यह कह "अपानाय स्वाहा सोमाय इदं च न मम" यह इसमें ऊह करै ॥ ३७ ॥ व्यान मंत्रका अम्बुजवर्ण हुताशन ऋषि है अग्नि देवता अनुष्टुप

बुद्धिश्च पत्नी सम्प्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी ॥ उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्युः स्रुक्स्रुवौ करौ ॥ ३३ ॥ प्राण मंत्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः ॥ देवतादित्य एवात्र गायत्रीच्छन्द उच्यते ॥ ३४ ॥ प्राणाय च तथा स्वाहा मंत्रांते कीर्तयेदपि ॥ इदमादित्यदेवाय न ममेति वदेदपि ॥ ३५ ॥ अपानमंत्रस्य तथा गोक्षीरधवलाकृतिः ॥ श्रद्धाग्नि ऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता ॥ ३६ ॥ उष्णिक् छन्दस्तथाऽपानाय स्वाहेत्यपि कीर्तयेत् ॥ सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः ॥३७॥ व्यानमंत्रस्य चाख्यातोऽब्जुजवर्णहुताशनः ॥ ऋषिरुक्तो देवताग्निरनुष्टुप्छन्द ईरितम् ॥ ३८ ॥ व्यानाय च तथा स्वाहाऽग्नयेदं न ममेत्यपि ॥ उदानमंत्रस्य तथा शक्रगोपसवर्णकः ॥ ३९ ॥ ऋषिराग्निः समाख्यातो वायुर्वैदेवता स्मृता ॥ बृहतीच्छंद आख्यातमुदानाय च पूर्ववत् ॥ ४० ॥ वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद्द्विजः॥ समानवायुमंत्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः ॥४१॥ ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता ॥ पंक्तिश्छन्दः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत् ॥ ४२ ॥ पर्जन्यायेदमित्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत् ॥ वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥

छन्द है ॥३८॥ "व्यानायस्वाहा अग्नय इदं नमम" कहै उदान मंत्रका शक्र गोप सवर्ण ॥ ३९ ॥ अग्नि ऋषि कहा है वायु देवता बृहती छन्द है "उदानाय स्वाहा ॥ ४० ॥ वायवेचेदं नमम" कहे समान वायु मंत्रका विद्युद्वर्ण विरूपक ॥ ४१ ॥ अग्नि ऋषि है. पर्जन्य देवता पंक्ति छन्द है "समानायस्वाहा ॥४२॥ पर्जन्यायेदं नमम" कहकर छठी आहुति दे वैश्वानर महान् अग्निमें ऋषि कहा है ॥ ४३ ॥

गायत्री छन्द आत्मा देवता है " ओं ब्रह्मणे स्वाहा " इस प्रकार कहकर " इदं नमम " कहे ॥ ४४ ॥ यह प्राणाग्निहोत्र है यह जानकर विधि करनेसे ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ यह प्राणाग्निहोत्र विद्या संक्षेपसे कही है ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नारायण बोले " अमृतापिधानम् " यह, कहकर अर्थात् हे अमृतरूपी जल ! तुम हमारे भक्त अन्नके आच्छादकरूप हो यह कह भोजनान्तमें एक गंडूष जलपानकर फिर पात्रासे उच्छिष्टभागियोंको

गायत्रीच्छंद आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि ॥ स्वहांतो मंत्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत् ॥ ४४ ॥ इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम् ॥ एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४५ ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्येयं संक्षेपात्कथिता हि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ नारायण उवाच ॥ अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः ॥ उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादंते विचक्षणः ॥ १ ॥ ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकांक्षिणः ॥ ते सर्वे तृप्तिमायांतु मया दत्तेन भूतले ॥ २ ॥ रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ३ ॥ पवित्रग्रंथिमुत्सृज्य मंडले भुवि निक्षिपेत् ॥ पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिदूषकः ॥ ४ ॥ उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः शुना शूद्रेण च द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुध्यति ॥ ५ ॥

दे ॥ १ ॥ जो कोई हमारे कुलमें, बंधु आदि तथा दासादि अन्नके कांक्षी हैं वे सब मेरे दिये अन्नसे तृप्तिको प्राप्त हों ॥ २ ॥ जो दुःखदायक अपुण्यस्थान है उसमें पद्मों अरवों वर्षों रहनेवाले अर्थियोंको दिया हुआ यह उदक प्राप्त हो इससे उनकी अक्षय तृप्ति हो यह मंत्र पढकर जल दे ॥ ३ ॥ पवित्र ग्रंथिको छोडकर मंडलभूमिमें निक्षेप कर जो उस कुशग्रंथिके पात्रमें डालता है वह ब्राह्मण पंक्तिदूषक है ॥ ४ ॥ जो उच्छिष्ट होकर सुना और शूद्रको स्पर्श किया हो वा उच्छिष्टको छुआ हो तो एक रात व्रत रहकर पंचगव्यसे

शुद्धि होती है ॥५॥ जो स्वयं उच्छिष्ट अनुच्छिष्टसे अस्पर्श होजाय तो स्नान करना चाहिये और एक आहुति देनेसे कोटि यज्ञका फल होता है ॥ ६ ॥ पांच आहुतिसे पांच कोटि यज्ञका फल कहा है तथा अनन्त होता है जो प्राणाग्नि होत्र करनेवालेको अन्नदान करता है ॥ ७ ॥ दाता भोक्ताको जोफल है उससे वह दोनोंही स्वर्गगामी होते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विधानसे पवित्र हाथकर खाता है उसको प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्यके समान फल होता है ॥ ९ ॥ पूजाकालमें जो जप तर्पण तीनों काल करता है होम ब्राह्मण भोजन मार्जनादि करता है उसको पंचांग पुरश्चरण कहते हैं ॥ १० ॥ अधःशयन करता हुआ धर्मात्मा इंद्रिय और क्रोध जय किये लघु और मिष्टभोजी विनीत शान्त

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टेः स्नानमेव विधीयते ॥ एकाहुतिप्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ६ ॥ पंचभिः पञ्चकोटीनां तदनं तफलं स्मृतम् ॥ प्राणाग्निहोत्रवेत्त्रे यो ह्यन्नदानं करोति च ॥७॥ दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम् ॥ प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ ॥८॥ स पवित्रकरो भुंक्ते यस्तु विप्रो विधानतः ॥ ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पंचगव्यसमम्भवेत् ॥९॥ पूजाकाल त्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च ॥ होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥ १० ॥ अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः॥ लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शांतचेतसा ॥ ११ ॥ नित्यं त्रिषवणस्नायी निय्यं स शुभभाषणः ॥ स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिको च्छिष्टभाषणम् ॥ १२ ॥ चांडालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम ॥ नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु ॥ १३ ॥ मैथुनस्य तथा लापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत्॥कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१४॥सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥राज्ञश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥१५॥ ऋतुस्नातेषु दारेषु संगतिर्या विधानतः ॥ संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः॥१६॥

चित्त ॥ ११ ॥ नित्यही तीन सवनमें स्नान करनेवाला नित्य शुभ भाषण करनेवाला हो, स्त्री शूद्र पतित व्रात्य नास्तिक उच्छिष्टोंसे भाषण करता है ॥ १२ ॥ तथा चाण्डाल इनसे हे मुनिसत्तम ! भाषण न करै. जप होम अर्चनादिमें प्रवृत्त पुरुषको प्रणाम करै उससे भाषण न करै ॥ १३ ॥ मैथुनका आलाप और उसकी गोष्ठी भी त्यागनकरै कर्म मन वचनसे यह सब अवस्थाओंमें त्याग दे ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनके त्यागसेही ब्रह्मचारी होता है, राजा और गृहस्थ दोनोंको ब्रह्मचर्य कहा है ॥ १५ ॥ ऋतुस्नाता होनेपर जो विधिपूर्वक

स्त्री गमन है और संस्कार की हुई भार्यामें प्रयत्नसे ऋतु देखकर ॥ १६ ॥ रात्रिमें जो गमन करता है वह ब्रह्मचर्य दूरकरनेवाला नहीं है बिना देव ऋषि पितृ ऋणके शोधे संतान उत्पन्न किये बिना ॥१७॥ और यज्ञोंके किये विना मोक्षकी इच्छा करनेवाला अधोगमन करता है. श्रुतिने उसका जन्म अजागलस्तनके समान निरर्थक कहा है ॥ १८ ॥ इस कारण ब्राह्मणको तीनों ऋणका शोधन करना चाहिये देवता ऋषि और पितरोंके ऋणी हुए पुरुष ॥ १९ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंके, तिलोदकसे पितरोंके और यज्ञकरनेसे देवताओंके ऋणसे छूटते

रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत् ॥ ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि ॥ १७ ॥ तथा यज्ञानविज्ञा च मोक्षमिच्छ न्व्रजत्यधः ॥ अजागलस्य यज्जन्म तज्जन्म श्रुतिचोदितम् ॥ १८ ॥ अतः कार्यं तु विप्रेन्द्र ऋणत्रयविशोधनम् ॥ ते देवानामृ षीणां च पितृणामृणिनस्तथा ॥ १९ ॥ ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः ॥ मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत् ॥ २० ॥ क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक् ॥ भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचांद्रायणादि कृत् ॥ २१ ॥ लवणं क्षारमम्लं च गृंजनं कांस्यभोजनम् ॥ तांबूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम् ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्ज येत् ॥ वृथा न कालं गमयेद् द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥ २३ ॥ गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः ॥ भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौन चर्या तथैव च ॥ २४ ॥ नित्यं त्रिषवणस्नानं शूद्रकर्मविसर्जनम् ॥ नित्यपूजा नित्यदानमानंदस्तुतिकीर्तनम् ॥ २५ ॥

हैं इस कारण अपने आश्रमका धर्म आचरण करै ॥ २० ॥ क्षीर आहारी फलाहारी शाकाहारी हविष्यभोजी वा भिक्षाशी कृच्छ्रचान्द्रायण किये हुए जप करै ॥ २१ ॥ लवण खार अम्लपदार्थ गुंजन, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल भक्षण, दोवार भोजन, अशुद्ध वस्त्र धारण, प्रमाद ॥ २२ ॥ श्रुति स्मृतिसे विरोध और रात्रिमें जप यह सब वर्जित हैं, द्यूत स्त्री और अपवादमें वृथा समय न गमावै ॥ २३ ॥ स्तोत्रपाठ तथा शास्त्र आगमके अवलोकनसे देवपूजा वितावै । भूमिशय्या, ब्रह्मचर्य, मौनचर्या ॥ २४ ॥ नित्य तीनों सवनमें स्नान,

शूद्रकर्मसे वर्जना, नित्यपूजा नित्यदान आनंद स्तुति कीर्तन ॥ २५ ॥ नैमित्तिक अर्चन, गुरुदेवतामें विश्वास यह बारह धर्म जप निष्ठके कहे हैं जिससे सिद्धिहोती है ॥ २६ ॥ नित्य सूर्यका उपस्थानकर सन्मुख गायत्री जपै, देवताकी प्रतिमा वा अग्निमें अर्चन करै ॥ २७ ॥ स्नान पूजा जप ध्यान होममें तथा तर्पणमें तत्पर निष्कामहो देवतामें सब कर्म अर्पण करदे ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे नियमोंसे पुरश्चरण करै और प्रसन्न मन हो द्विज जप होममें परायण रहै ॥ २९ ॥ तप और अध्ययनमें युक्त प्राणियोंपर दया करनेवाला रहै तपसेही स्वर्ग और तपसे ही

नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ॥ जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः ॥ २६ ॥ नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत् ॥ देवता प्रतिमादौ वा वह्नौ वाऽभ्यर्च्य तन्मुखः ॥ २७ ॥ स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ निष्कामो देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः॥२८ एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥ तस्माद्द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः ॥२९॥तप स्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकंपकः॥॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥३०॥ तपोयुक्तस्य सिद्ध्यंति कर्माणि नियतात्मनः ॥ विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम् ॥ ३१ ॥ येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः॥स स कामः समृद्ध्येत तेषां तेषां तथा तथा ॥ ३२ ॥ तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम् ॥ पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारकम् ॥३३॥ स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद् द्विजः ॥ केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः ॥ ३४ ॥ तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत वाग्यतः ॥ सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा ॥ ३५ ॥

महत्त्व प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जितेन्द्रिय तपस्वीके सब कर्म सिद्ध होते हैं विद्वेषण,संहरण,मारण, रोगनाशन ॥३१॥ जिस २ तिनि ऋषियोंने देवताओंकी स्तुति की है उनके वह वह काम सिद्ध होते हैं ॥३२॥ वह कर्म ओर उन कर्मोंके विधान कहता हूं पहले पुरश्चरण कर्मोंकी सिद्धि करनेवाला है ॥ ३३ ॥ पहले स्वाध्यायके अभ्यासके आदिमें ब्राह्मण प्राजापत्य व्रत करै, बाल, डाढी, मूछ, लोम नख इनको वपन कराय स्नान कर पवित्रहो ॥ ३४ ॥ दिनरात वाणीको रोके पवित्र रहै सत्यवादी पवित्रहो व्याहृतियोंका जप करै ॥ ३५ ॥

पहले ओंकार पूर्वक सावित्रीको जपकरै फिर पवित्र पापनाशी 'आपोहिष्ठा'सूक्तका जपकर ॥ ३६ ॥ पुनन्ती, स्वस्तिमती, पावमानी ऋचाओंका पाठ करै,कर्मोंके आदि अन्तमें इन सबका प्रयोग करना चाहिये॥३७॥सहस्र सौ अथवा दश गायत्री जपै ओंकार तीनों व्याहृतिपूर्वक१०००० दशसहस्र गायत्री जपै ॥ ३८ ॥ जलसे आचार्य ऋषि छन्द देवताओंका तर्पण करे, अनार्य भाषाका भाषण न करै, शूद्र तथा गर्हितोंसे भाषण न करै ॥ ३९ ॥ उदकी (रजस्वला) स्त्री पतित अन्त्यज इनसे भाषण न करै, ब्राह्मण आचार्य गुरुसे निन्दा वा द्वेष न करै ॥ ४० ॥ माता पिताका

ॐकाराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ आपोहिष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम्॥३६॥पुनंत्यः स्वस्तिमत्यश्चपावमान्यस्तथैव च ॥ सर्वत्रैतच्च प्रोक्तव्यमादावंते च कर्मणाम् ॥ ३७ ॥ आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत् ॥ ॐकारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीमथवाऽयुतम् ॥ ३८ ॥ तर्पयित्वाद्भिराचार्यानृषींश्छंदांसि देवताः ॥ अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः ॥३९॥ नापि चोदक्यया वध्वा पतितैर्नान्त्यजैर्नृभिः ॥ न देवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिंदकैः ॥ ४० ॥ न मातृपितृविद्विष्टैर्नाव मन्येत कंचन ॥ कृच्छ्राणामेष सर्वेषां विधिरुक्तोऽनुपूर्वशः ॥ ४१ ॥ प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सांतपनस्य च ॥ पराकस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चांद्रायणस्य च ॥ ४२ ॥ पंचभिः पातकैः सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते ॥ तप्तकृच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात् ॥ ४३ ॥ त्रिभिश्चांद्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत वरदास्तदा ॥४४॥ छंदांसि दशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ ४५ ॥

द्वेष वा उनका तिरस्कार कभी न करै और सब कृच्छ्रोंमें भी यही विधि करै ॥ ४१ ॥ प्राजापत्य कृच्छ्र सांतपन पराक् कृच्छ्रकी विधि चान्द्रायणकी विधि करनेसे ॥ ४२ ॥ ब्रह्महत्यादि पांच महापातक और सब पापोंसे मुक्त होता है, तप्तकृच्छ्र व्रतसे क्षणमें सब पाप दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ तीन चान्द्रायणसे पवित्रहो ब्रह्मलोकमें गमन करता है, आठ करनेसे वरदायक देवताओंका दर्शन कर सकता है ॥ ४४ ॥ दश चान्द्रायणोंसे छन्दोंको जानकर सब कामनाओंको प्राप्त होता है. तीन दिन प्रभात तीनदिन संध्यासमय तीन दिन अयाचित भोजन ॥ ४५ ॥

तीनदिन निराहार रहना. इसप्रकार बारहदिन करनेसे प्राजापत्य व्रत होता है. गोमूत्र गोबर दूध दही घी कुशाका जल यह पहलेदिन सेवन करे ॥४६॥ परदिन एकरातका उपवास करै यह कृच्छ्र सांतपन है और पूर्ववत् तीन दिन एक२ग्रास खाय ॥ ४७ ॥ फिर तीन दिन उपवास करै यह कृच्छ्र व्रत है यही तिगुना करनेसे महासांतपन होता है. तीनदिन गोमूत्र ३ दिन गोबर ३ दिन दही ३ दिन क्षीर ३ दिन घी पीनेसे महा सांतपन व्रत होताहै यह सब पाप दूर करता है॥४८॥जल क्षीर घृत इनको प्रति तीन दिन गरमकर पिये तथा वायु आहार तीन दिन करै एकवार स्नान और सावधान रहै यह तप्तकृच्छ्र व्रत होता है ॥ ४९ ॥ जो प्राजापत्य विधिसे नियत होकर जितेन्द्रिय हो जलमात्र पान कर रहै बारह दिन

त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद्द्विजः॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदयम् ॥४६॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ एकैकं ग्रासमश्नीयादहानि त्रीणि पूर्ववत् ॥४७॥ त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ एवमेव त्रिभिर्युक्तं महासांतपनं स्मृतम् ॥४८॥ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रति त्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥४९॥ नियतस्तु पिबेदापः प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ॥५०॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः॥ एकैकं तु ग्रसेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्॥५१॥अमावस्यां न भुंजीत एवं चांद्रायणे विधिः ॥ उपस्पृश्य त्रिषवणमेतच्चांद्रायणं स्मृतम्॥५२॥चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिंडान्कृताह्निकः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम्॥५३॥ अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्यस्य यतिचांद्रायणं व्रतम् ॥ ५४ ॥ एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरंति हि ॥ सर्वे कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह ॥ ५५ ॥

भोजन न करै ॥ ५० ॥ यह पराक् नामक कृच्छ्र सब पापका दूर करनेवाला है. कृष्णपक्षमें एक एक ग्रास घटावै शुक्लपक्षमें एक २ बढावै॥५१॥ अमावास्याको भोजन न करै यह चान्द्रायणकी विधि है. तीनों सवनमें स्नान करै यह चान्द्रायण है ॥ ५२ ॥ आह्निक कर्म समाप्त कर चार पिण्ड प्रभात और चार पिण्ड संध्याको भोजन करै इसका नाम शिशुचान्द्रायण है ॥ ५३ ॥ जो मध्य दिनमें आठ आठ समान ग्रास भोजन करै नियतात्मा होकर हविष्य ग्रास भोजन करै यह यतिचान्द्रायण है ॥ ५४ ॥ इसको रुद्र आदित्य और वसु भी करते हैं, इसीसे

सब देवता निरापद हुए थे और मरुत्भी इसीको करके प्रसन्न हुए थे ॥ ५५ ॥ यह एक एक विधिपूर्वक किया हुआ सातरातमें ही क्रमसे त्वचा, रुधिर, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा, वसा; एक२धातुको पवित्र करता है ॥ ५६ ॥ निःसन्देह यह सात रातमें एक २ शुद्ध होजाते हैं, इन व्रतोंसे पवित्र हो नित्यकर्म करै ॥ ५७ ॥ इस प्रकार शुद्ध हुएके कर्म अवश्य सिद्ध होते हैं, सत्यवादी जितेंद्रिय शुद्धात्मा होकर कर्म करै ॥५८॥ तो वह निःसन्देह अपनी इष्ट कामनाओंको प्राप्त होता है, सब कर्मोंसे रहित हो तीनरात उपवास करे ॥ ५९ ॥ अथवा तीनरात व्रत

एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम् ॥ त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा ॥ ५६ ॥ एकैकं सप्तरात्रेण शुद्धयत्येव न संशयः ॥ एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः ॥ ५७ ॥ एवं शुद्धस्य कर्माणि सिद्धयंत्येव न संशयः ॥ शुद्धात्मा कर्म कुर्वीत सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ ५८ ॥ इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्संप्राप्नोति न संशयः ॥ त्रिरात्रमेवो पवसेद्रहितः सर्वकर्मणा ॥ ५९ ॥ त्रीणि नक्तानि वा कुर्यात्ततः कर्म समारभेत् ॥ एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम् ॥६०॥ गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी ॥ ६१ ॥ आदौ कुर्याद्व्रतं मंत्री देहशोधनकार कम् ॥ पुरश्चर्या ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत् ॥ ६२ ॥ इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम् ॥ एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

करके कर्म समाप्त करै. इस प्रकार विधान करनेसे पुनश्चरणका फल मिलता है ॥ ६० ॥ गायत्रीका पुरश्चरण सब कामना देनेवाला है. हे देवर्षे ! यह महापापनाशक व्रत तुमसे कहा ॥ ६१ ॥ मंत्रीको पहले देह शोधनके निमित्त व्रत करना चाहिये फिर पुरश्चरण करनेसे सब फलका भागी होता है ॥६२॥ यह आपसे गुह्य पुरश्चरणका विधान कहा यह प्रत्येकसे न कहना श्रद्धावानसे कहना कारण कि, यह श्रुतिका सार है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

नारदजी बोले हे नारायण महाभाग ! संक्षेपसे गायत्रीके शान्ति आदि प्रयोगोंको कहिये आप करुणासागर हो ॥१॥ नारायण बोले हे नारद ! आपने बडी गुप्त बात पूँछी है,यह दुष्ट और चुगलोंसे कभी न कहनी चाहिये ॥२॥ शांतिके निमित्त ब्राह्मण पयमें भिजोकर सहस्र समिधाओंसे जो शमी वृक्षकी हों हवन करै तो भूत रोग ग्रहादि शांत होते हैं॥३॥भूतरोगादिकी शांतिमें अश्वत्थ उदुंबर पिलखन न्यग्रोधादि वृक्षकी गीली समिधा वा क्षीरवृक्षके खण्डोंसे हवन करै ॥४॥ हवनमें सर्वत्र गायत्री पढै यह अनुष्ठान(४९)दिनपर्यन्त करै फिर'सूर्यं तर्पयामिनमः'इस मंत्रसे सूर्यको तर्पणकर

नारद उवाच ॥ नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः ॥ शांत्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे॥१॥ नारायण उवाच ॥ अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव ॥ न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च॥२॥अथ शांतिः पयोक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ शमीसमिद्भिः शाम्यंति भूतरोगग्रहादयः ॥ ३ ॥ आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ जुहुयाच्छकलैर्वाऽपि भूतरोगादिशांतये ॥ ४ ॥ जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शांतिमाप्नुयात् ॥ जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत् ॥ ५ ॥ कंठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणांतिकाद्भयात् ॥ सर्वेभ्यः शांतिकर्मभ्यो निमज्याप्सु जपः स्मृतः ॥ ६ ॥ सौवर्णे राजते वाऽपि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा ॥ क्षीरवृक्षमये वाऽपि निर्व्रणे मृन्मयेऽपि वा ॥७॥ सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले ॥ क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं संपादयेच्छनैः ॥ ८ ॥ प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम् ॥ तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मंत्रमनुस्मरन् ॥ ९ ॥

हाथोंसे जलदे तो शांतिकी प्राप्ति होती है.और जंघापर्यन्त जलमें जपनेसे सब दोष शांत होते हैं ॥५॥ कंठपर्यन्त जलमें जपै तो प्राणान्तका भय छूटता है सब शांति कर्मोंमें जलमें स्थित हो जप करना चाहिये ॥ ६ ॥ अब प्रयोगान्तर कहते हैं सोना, चांदी,तांबा वा क्षीरीवृक्ष वा मृत्तिकाके अच्छिद्र पात्रमें पंचगव्य स्थापन कर ॥ ७ ॥ प्रज्वलित अग्निमें क्षीरी वृक्षके काष्ठोंकी समिधाके सहित पंचगव्यका हवन करै ॥ ८ ॥ प्रत्येक आहुतिमें पंचगव्यका स्पर्श करता हुआ पीछे पात्रमें स्थित पंचगव्यको गायत्री मंत्रसे सहस्र जपकर अभिमंत्रणकर गायत्री मंत्रसे प्रोक्षण

करै ॥ ९ ॥ और बलिदान करके परदेवताका ध्यान करे इससे अभिचारसे प्रगट हुई कृत्या नष्ट होती है ॥ १० ॥ जो इसप्रकार आचरण करते हैं, वे देवता भूत पिशाच ग्रह ग्राम पुर राज्य सबको वशी करता है और सबसे छूट जाते हैं ॥ ११ ॥ वक्ष्यमाण शूलके चतुरस्र मण्डलके लिखने और उसके भूमिमें गाडनेसे पूर्वोक्त कृमि आदि उपद्रव होजाते हैं, चतुरस्रमण्डलमें अष्टगंधसे शूलको लिखकर ॥ १२ ॥ गायत्रीसे सहस्रवार अभिमंत्रित कर सब शांतिके लिये उसे भूमिमें गाडदे. सोना चांदी वा तांबेका घडा ॥ १३ ॥ वा मृत्तिकाका नया साबूत घट लेकर उसे

बलिं किरंस्ततस्तस्मिन्ध्यायेत्तु परदेवताम् ॥ अभिचारसमुत्पन्ना कृत्यापापं च नश्यति ॥ १० ॥ देवभूतपिशाचाद्या यद्येवं कुरुते वशे ॥ गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते ॥ ११ ॥ निखने मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च ॥ मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥ १२ ॥ अभिमंत्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशांतये ॥ सौवर्णं राजतं वाऽपि कुंभं ताम्रमयं च वा ॥ ॥ १३ ॥ मृन्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम् ॥ स्थंडिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मंत्रविज्जलैः ॥ १४ ॥ दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ॥ एलाचंदनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः ॥ १५ ॥ बिल्वपत्रं तथा क्रांतां देवीव्रीहियवांस्तिलान् ॥ सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥ १६ ॥ सर्वाण्यभिविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम् ॥ स्नातःसमाहितो विप्रः सहस्रं मंत्रयेद्बुधः ॥ १७ ॥ दिक्षु सौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रास्त्रयीविदः ॥ प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिषिंचयेत् ॥ १८ ॥

दिव्य सूत्रसे वेष्टित कर स्थंडिल वा रेतेके समीप रख उसको मंत्रका ज्ञाता जलसे पूर्ण करै ॥ १४ ॥ चारों ओर दिशाओंके तीर्थोंके जल ब्राह्मणोंद्वारा मँगाय इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, मल्लिका ॥ १५ ॥ बेलपत्र, विष्णुकान्त, सहदेई, व्रीहि, जौ, यव, तिल, सरसों, क्षीरवृक्ष, पीपल, गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकोंके फलोंको भी घटमें डालदे ॥ १६ ॥ यह सब इसप्रकार लेकर उसमें कुशकूर्च 'सताईस कुशाओंकी ग्रंथि' डाल कर फिर विप्र स्नान करने उपरान्त उसको सहस्र गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रण करले ॥ १७ ॥ तीनों वेदके ज्ञाता

ब्राह्मण सब ओरसे सौरमन्त्रोंको पढते रहैं इस जलको प्रोक्षणकर भूतादिरोगग्रस्तको पिलावै और उसका अभिषेक करै ॥१८॥ तो वह भूत रोगादि अभिचारसे मुक्त होकर सुखी होता है. इस अभिषेकसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हुआ भी प्राणी छूटता है ॥ १९ ॥ इसको विद्वान् राजा दीर्घजीवनकी इच्छासे अवश्य करै. हे मुने ! इस अभिषेकमें ऋत्विजोंको सौ गायें देनी चाहिये ॥ २० ॥ अथवा जिस प्रकार वे संतुष्ट हो जायँ इसप्रकार दक्षिणा दे. यदि अभिचारका महाभय हो तो हे ब्राह्मण ! शनिवारके दिन अश्वत्थके नीचे बैठकर सौवार गायत्रीमन्त्र जपै ॥ २१ ॥ वह भूतरोगादिके उपचार और महाभयसे छूट जाता है, जो ब्राह्मण पर्व पर्वमें अर्थात् पोरी पोरीसे काटी हुई गुडूची (गिलोय)

भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत् ॥ अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः ॥१९॥ अत्रश्यं कारयेद्विद्वान्राजा दीर्घजिजीविषुः ॥ गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने ॥ २० ॥ दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथा शक्त्याऽथवा भवेत् ॥ जपेदश्वत्थमालभ्य मंदवारे शतं द्विजः ॥ २१ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात् ॥ गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोक्ता जुहुयाद्द्विजः ॥ २२ ॥ एवं मृत्युंजयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः॥ आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोक्तैर्ज्वरशांतये ॥ २३ ॥ वचाभिः पयसाक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ॥ मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥ २४ ॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ॥ राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ॥२५॥ लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद्द्विजः ॥ सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोक्ताः क्षयशांतये॥२६॥कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् ॥ अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तंडुलैः ॥२७॥

को दूधके सहित हवन करता है ॥ २२ ॥ तो यह मृत्युंजय होम सब व्याधिनाशक है. ज्वरशांतिके निमित्त आमके पत्ते और दूधका हवन करै ॥२३॥ दूध दही घी इन तीन मधुके हवनसे राजयक्ष्मा दूर होता है. वचको दूधमें भिजो हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है ॥२४॥ पायस अन्न होमपूर्वक सूर्यको निवेदन कर पश्चात् उसे प्राशन कर राजयक्ष्मा दूर होता है ॥ २५ ॥ अथवा क्षयशांतिके निमित्त सोमलताकी पोरी छेदन कर अमावास्याको पयके सहित हवन करै ॥ २६ ॥ शंखवृक्षों कौडिल्लाके फूलोंसे हवन करनेसे कुष्ठ और

चिरचिरेके बीजोंसे हवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ २७ ॥ क्षीरी वृक्षकी समिधाओंके होमसे उन्माद नष्ट होता है उदुम्बर (गूलरकी) समिधाओंके होमसे अतिमेह (प्रमेह) भेद नष्ट होता है ॥ २८ ॥ मधु और गन्नेके रसका हवन करे तो प्रमेह, दूध दही घीके होमसे मसूरिका पाद रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥ कपिलाके घृतसे हवन करनेसे मसूरिका शान्त होती है, उदुम्बर वट अश्वत्थसे गौ गज अश्वका रोग दूर होता है ॥ ३० ॥ पिपीलिका, वल्मीक, मुहाल, इनका घरमें विशेष उपद्रव हो तो सौ सौ शमीकी समिधाओंसे घी सहित हवन करै ॥ ३१ ॥ तो शांति होती है. शेष अन्नकी बलि दे मेघगर्जन, भूकम्प, आदिमें वनके वेतकी

क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति ॥ औदुंबरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत् ॥ २८ ॥ प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा ॥ मधुत्रितयहोमेन नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥ २९ ॥ कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥ उदुंबरवटाश्वत्थैर्गो गजाश्वामयं हरेत् ॥ ३० ॥ पिपीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम् ॥ शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद्द्विजः॥३१॥ तद्धुत्वं शांतिमायाति शेषैस्तत्र बलिं हरेत् ॥ अभ्रस्तनितभूकंपालक्ष्यादौ वनवेतसः ॥ ३२ ॥ सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत् ॥ यां दिशं शतजप्तेन लोष्टेनाभिप्रताडयेत् ॥ ३३ ॥ ततोऽग्निमारुतादिभ्यो भयं तस्य विनश्यति ॥ मनसैव जपेदेतां बद्धो मुच्येत बंधनात् ॥ ३४ ॥ भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत् ॥ भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाऽभिमन्त्रितम् ॥ ३५ ॥ अभिमंत्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशांतये ॥ शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥ ३६ ॥

एक लक्ष आहुति दे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सात दिन हवन करनेसे राज्य सुखी होता है, सौवार मट्टीके ढेलेको जपकर जिस दिशामें फैंक दे ॥ ३३ ॥ उसको वहां अग्नि और पवनका भय नष्ट होता है कारागारमें मनसेही इनको जपनेसे बँधुआ बन्धनसे छूट जाता है कारण कि, वहां सामग्रीका अभाव है इससे मनसे ही जपै ॥ ३४ ॥ भूतरोग विषादिमें कुशसे स्पर्श कर जपै तो व्याधि जाय और अभिमन्त्रित जलपानसे भूतादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ भूतादिकी शांतिके निमित्त १०० वार अभिमन्त्रित कर भस्म धारण करै

सावित्रीसे अभिमन्त्रित करके शिरपर भस्म धारण कर ॥ ३६ ॥ वह सब व्याधिसे मुक्त हो सौ वर्ष जीता है. स्वयं समर्थ न हो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे शांति करावै ॥ ३७ ॥ पुष्टि श्री लक्ष्मी फूलोंके हवनसे प्राप्त होती है, श्रीकामनावाला लालकमलोंसे हवन करै ॥ ३८ ॥ वा जातीके नये पत्तोंसे हवन करै वा शालितण्डुलके हवनसे भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ अथवा बेलवृक्षकी समिधा वा उसके खण्ड पत्र पुष्प फलोंसे हवन करनेसे ॥ ४० ॥ वा मूलके खण्डोंसे हवन करनेसे महालक्ष्मीकी प्राप्ति होती है बेलकी समिधा दूध और घीके

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः ॥ अशक्तः कारयेच्छांतिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ अथ पुष्टिं श्रियंलक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद्द्विजः ॥ श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवैः शुभैः ॥ शालितंडुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥ ३९ ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ॥ बिल्वस्य शकलैर्हुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥ ४० ॥ श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ॥ ४१ ॥ शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ॥ लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वांछितम् ॥ रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबे जलं हुत्वा जलस्थं हेम चाप्नुयात् ॥ अन्नं हुत्वाऽप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात् ॥ प्रियंगुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ॥ ४५ ॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ॥ भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

साथ ॥ ४१ ॥ सौ सौ वार सप्ताहतक हवन करनेसे शांतिकी प्राप्ति होती है पय दधि घृतके साथ लाजाहोम करनेसे कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ इसी विधानसे कन्या मनोवांछित वरको प्राप्त होती है सप्ताहभर प्रतिदिन सौ लाल कमलोंका हवन करै तो सुवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ सूर्यबिंबमें जलका तर्पण करनेसे जलमें गुप्त हुए सुवर्णकी प्राप्ति होती है, अन्नके हवनसे अन्न और व्रीहिके हवनसे व्रीहिपति होता है ॥ ४४ ॥ बछडेके गोबरके चूर्णको हवन करनेसे पशुकी और प्रियंगु घी दूधके हवन करनेसे प्रजाकी प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥ हो

पूर्वक पायसान्न सूर्यको निवेदन कर फिर ऋतुस्नाता स्त्रीको भोजन करानेसे परम पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ पलाशसमिधाके गीले प्ररोह हवन करनेसे वा क्षीरवृक्षकी समिधाओंके हवनसे आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ दूध दही घी इनके साथ क्षीरवृक्षके लाल गीले अंकुरोंका हवन तथा सौ व्रीहियोंका हवन करनेसे सुवर्ण और आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥ सौ सुवर्ण कमलोंके हवनसे वा दूर्वा, दूध, मधु, घी इन एक एकके हवनसे आयु मिलती है ॥ ४९ ॥ प्रतिदिन सौ सौ वार सप्ताह भर इसी हवनसे अकाल मृत्यु दूर होती है, जो मनुष्य दूधके आहारसे सातदिन मंत्र जपै तो विजयी होता है ॥ ५० ॥ जो न्यग्रोधकी सौ सौ समिधा पायसके साथ

सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वा समाप्नुयात् ॥ समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुपमावाप्नुयात् ॥ ४७॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभिरक्ताभिर्म धुरत्रयैः ॥ व्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात ॥ ४८ ॥ सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात् ॥ दूर्वाभिः पयसा वाऽपि मधुना सर्पिषाऽपि वा ॥४९॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ शमीसमिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ॥५०॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ॥ ५१ ॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत् ॥५२॥ अनश्नन्वाग्यती जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात् ॥ निमज्याप्सु जपेदेव सद्यो मृत्योर्विमुच्यते ॥ ५३ ॥ जपेद्बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात् ॥ बिल्वं हुत्वाऽप्नुयाद्राज्यं समूलफल पल्लवम् ॥ ५४ ॥ हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकंटकम् ॥ यवागूं ग्राममाप्नोति हत्वा शालिसमन्विताम् ॥ ५५ ॥

सप्ताहभर हवन करै तो अपमृत्यु दूर होती है ॥ ५१ ॥ यह प्रतिदिन सौ सौ आहुति देनेसे एक सप्ताहमें अपमृत्यु दूर करता है जो मनुष्य क्षीरका आहार कर एक सप्ताहतक इसको जपै वह विजयी होता है ॥ ५२ ॥ और विना भोजन किये मौन हो तीन रात जपै तो यमके भयसे छूट जाता है और जो जलमें निमग्न होकर जपै तो शीघ्र ही मृत्युभय छूट जाता है ॥ ५३ ॥ बिल्वके निकट एक महीने जपै तो राज्य मिलता है बिल्वके मूल फल पल्लव हवन करनेसे राज्य मिलता है ॥ ५४ ॥ एक महीनेतक सौ पद्म प्रतिदिन हवन करनेसे

अकंटक राज्य मिलता है शालियुक्त यवागूका हवन करनेसे ग्रामकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ अश्वत्थकी समिधाओंका हवन करनेसे युद्धमें जय प्राप्त होती है आककी समिधाओंसे हवन करनेसे सर्वत्र विजयी होता है ॥ ५६ ॥ वेतके पत्र पुष्प दूधके साथमें सौवार प्रतिदिन हवन करै तो सात दिनमें वर्षा होती है ॥ ५७ ॥ वा नाभिपर्यन्त जलमें सात दिन जपनेसे वर्षा होती है जलमें सौवार भस्मका हवन करनेसे महावृष्टि निवृत्त होती है ॥५८॥ ढाककी समिधाओंके हवनसे ब्रह्मतेज और ढाकके फूलोंसे सब इष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ दूधके हवनसे मेधा,

अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् ॥ अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥५६॥ संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च ॥ पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥५७॥ नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥ जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥५८॥ पालाशीभिरवाप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम् ॥ पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥५९॥ पयो हुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अभिमंत्र्य पिबेद्ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ॥ ६० ॥ पुष्पहोमे भवेद्वासस्तंतुभिस्तद्विधं पटम् ॥ लवणं मधुसंमिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत् ॥६१॥ नयदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीपुष्पैर्मधुप्लुतैः ॥ नित्यमंजलिनाऽत्मानमभिषिंचेज्जले स्थितः ॥६२॥ मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ॥ कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥ ६४ ॥

घृतसे बुद्धि, अभिमंत्रणकर ब्रह्मीका रसपीनेसे मेधा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ पुष्पके हवनसे वास (सद्गंध) तंतुओंसे उसी प्रकारका पटलाभ होता है और मधु मिले लवणसे हवन करनेसे इष्ट वशमें होता है ॥ ६१ ॥ बेलके फूलोंको मधु मिलाय होमे तो अभीष्ट वशीभूत होता है, जो जलमें स्थित हो नित्य अंजलिसे अपने आपको सिंचन करता है ॥ ६२ ॥ वह मति आरोग्य आयुष्य अग्रता और स्वस्थताको प्राप्त होता है, जो ब्राह्मण दूसरेके उद्देशसे करै वहभी अभीष्टको प्राप्त होता है ॥६३॥ और जो श्रेष्ठ विधिसे प्रतिदिन एक सहस्र महीने भरतक पवित्र

स्थानमें आयुकी कामनासे जपे तो उसको आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ आयु आरोग्यकी कामनासे ब्राह्मण दोमहीने जपे तो आयु आरोग्य होती है, लक्ष्मी तीन महीने जप करनेसे मिलती है ॥ ६५ ॥ चारमहीने जपसे आयु लक्ष्मी पुत्र श्री यश प्राप्त होता है, पांच महीने जपसे पुत्र दारा आयु आरोग्य श्री विद्या प्राप्त होती है ॥६६॥ इसीप्रकार उत्तरोत्तर जप करनेसे अधिकतर कामनाओंकी प्राप्ति होती है, एक चरणसे ऊर्ध्व भुजाकर निराश्रय ॥ ६७ ॥ तीन महीने जप करनेसे सब कामनाओंको प्राप्त होता है, इस प्रकार सौसे सहस्रतक जप करनेसे सब मनोरथ मिलते हैं ॥६८॥ जो प्राण अपानको रोक कर प्रतिदिन तीन सौ एकमहीने तक जपता है वह यथेच्छ फल पाता है और सहस्र

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः ॥ भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥ ६५ ॥ आयुःश्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात् ॥ पुत्रदारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥६६॥ एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥ ६७ ॥ मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥६८॥ रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् ॥ यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥ ॥ ६९ ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वाऽनिलं वशः ॥ मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः ॥ ७० ॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नुयात्॥७१॥एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ॥ ७२ ॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात् ॥ गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥७३॥

हवनसे परम उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ एक चरणसे स्थित हो ऊपरको भुजा उठाये प्राण रोककर सौवार महीनेभरतक जप करनेसे यथेच्छ फल पाता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार तीन शत वा सहस्र जपसे सब कामना प्राप्त होती हैं. जलमें स्थित हो मास पर्यन्त सौवार जपनेसे इष्टको प्राप्त होता है ॥७१॥ इस प्रकार प्राणका अपान रोक कर प्रतिदिन तीनशत गायत्री जपनेसे सब कुछ प्राप्त होता है विश्वामित्रनेकहा है एक चरणसे स्थित ऊपरको भुजा उठाये निराश्रय हो प्राण रोक॥७२॥ केवल रात्रिमें हविष्य अन्नखाता हुआ वर्षदिनमें ऋषिताको प्राप्त होता है

दो वर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी होजाती है जो कहे सो होजाय ॥ ७३ ॥ इसी प्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी होजाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान् सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे काम रूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दश वर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥७६॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसीप्रकार बारह वर्षतक जपै तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥७७॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है. कोई शाक, कोई मूल, कोई फल, कोई पय

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम्॥आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत्॥७४॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् ॥ एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥७५॥ सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥७६॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥ ७७ ॥ एतेनैव जिता लोका स्तपसा नारदादिभिः ॥ शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥७८॥ घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः ॥ ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥७९॥ हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परंतपः ॥ अथ शुद्धये रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः ॥८०॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ॥ जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥ मासं जपेत्त्रिसाहस्रं शुचिः स्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥ ८२ ॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् ॥ द्वादशाहं निमज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ८३ ॥

॥ ७८ ॥ कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकवार ॥७९॥ हविष्य अन्नखाते हुए परम तपकरते हैं, रहस्य पापोंकी शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जपकरै ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकर शुद्ध होजाता है महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटीबनाया वनमें रहकर

महीनेभरतक तीन सहस्र जपकरं ॥ ८२ ॥ तो ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है यह कौशिक विश्वामित्रने कहा है जो जलमें निमग्न हो बारह दिनमे बारह सहस्र जप करै ॥ ८३ ॥ उसके सब पाप और महापातक नष्ट होजाते हैं, जो प्राणायामकर वाणी रोक महीनेमें तीन सहस्र जपकरै ॥ ८४ ॥ वह महापातक तथा महाभयसे छूट जाता है, सहस्र प्राणायामसे ब्रह्महत्याराभी शुद्ध होजाता है ॥ ८५ ॥ जो सावधान हो प्राण अपानको छः वार ऊपरको कर अभ्यास करता है तो यह प्राणायाम सब पापका नाशक हो जाता है ॥ ८६ ॥ जो महीनेतक

मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः ॥ त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ८४ ॥ महापातक युक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति ॥ ८५ ॥ षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ॥ प्राणायामो भवेदेष सर्वपापप्रणाशनः ॥ ८६ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ॥ द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ॥८७॥ अगम्यगमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे ॥ दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयद्द्विज ॥ ८८ ॥ प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ सर्वेषामेव पापानां संकटे सति शुद्धये ॥ ८९ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्य जापी वने वसन् ॥ उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रतदित्यृचम् ॥९०॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता ॥ चतुष्षष्टि सहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ॥९१॥

सहस्रवार अभ्यास करे वह राजा शुद्ध हो जाता है, गोहत्या लगनेमें बारह दिनतक तीन सहस्र जप करै ॥ ८७ ॥ अगम्यागमन करनेसे चोरी, अभक्ष्य भक्षणमें दशसहस्र गायत्री जप ब्राह्मणको शुद्ध करता है ॥ ८८ ॥ सौ प्राणायाम करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है सब पापोंकी संकरताकी शुद्धिमें ॥ ८९ ॥ वनमें निवासकर सहस्र नित्य जपकर महीना व्यतीत करै, तीन सहस्र गायत्रीजप उपवासके समान है ॥ ९० ॥ चौवीस सहस्र जप कृच्छ्र व्रतके समान है, चौंसठ सहस्र जप चान्द्रायण व्रतके समान है ॥ ९१ ॥

दोनों सन्ध्याओंमें प्राणायामकर सौ सौ बार अभ्यास करे तो सब पाप क्षय हो जाते हैं ॥ ९२ ॥ जो जलमें निमज्जन कर सौवार गायत्री जपकर सूर्यरूपा देवीका ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९३ ॥ यह आपसे शान्ति शुद्धि आदिकी कल्पना भली प्रकारसे कही यह रहस्यसे भी रहस्य है इसको आप सदा गुप्त रखना ॥ ९४ ॥ यह संक्षेपमें सदाचारकी कल्पना कही इसके विधिपूर्वक आचरणसे माया दुर्गा प्रसन्न होती है ॥ ९५ ॥ नैमित्तिक और नित्य यथाविधि काम्य कर्म, आचरण करनेसे मनुष्य भुक्ति मुक्तिके

शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः ॥ तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥ ९२ ॥ निमज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम् ॥ ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ इति ते सम्यगाख्याताः शांतिशुद्ध्यादिकल्पनाः ॥ रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा ॥ ९४ ॥ इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः ॥ विधिनाचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति ॥ ९५ ॥ नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि ॥ आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक् ॥९६॥ आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ॥ इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचारफलम्महत् ॥९७॥ आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी ॥ आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥ ९८ ॥ देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम् ॥ यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक् ॥ ९९ ॥

फलको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ आचारही प्रथम धर्म है धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती है, इस प्रकार सब शास्त्रोंमें आचारका बडा फल कहा है ॥ ९७ ॥ आचारवान् सदा पवित्र और आचारवान् सदा सुखी है आचारवान् सदा धन्य है, हे नारद ! यह सत्य २ है ॥ ९८ ॥ यह सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नता करनेवाला है जो मनुष्य इसको सुने वह महासम्पत्ति तथा सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥

सदाचारसे ही इस लोक और परलोकका सुख सिद्ध होता है सो यह आपसे वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०० ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सदाचारेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम् ॥ तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥ ११ ॥
सार्धैरामाब्धिनेत्रेंदु (१२४३॥) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यैकादशः स्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

एक सहस्र दो सौ तैतालीस श्लोकोंमें एकादशस्कन्ध पूर्ण हुआ ।

दोहा-शिवाभवानी मायके, चरणकमल मन लाय । भाषा रुद्रस्कन्धकी, बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं मोद महान् । श्रीदेवी तिनके करहिं, नित नूतन कल्यान ॥ २ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगरमुरादाबाद । गुण गावत जगदम्बके, जनज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
गायत्रीसम द्विजनको, नहिं कोउ और उपास । तासे गायत्री जपहु, दोनों लोक विकास ॥ ४ ॥
गायत्री ही भगवती, देवी रूप लखाय । कही भागवत मध्यमें, ऋषि द्वैपायन गाय ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

एकादश स्कन्ध समाप्त ।

॥इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते एकादशस्कंधः समाप्तः॥

अथ श्रीमद्देवीभागवत भाषाटीकासमेते द्वादशस्कंधः प्रारभ्यते।

दोहा—श्रीजगदम्बा शारदा, कीजै आय सहाय ॥ एहि द्वादशस्कन्धकी, भाषा देहु बनाय ॥ १ ॥

नारदजी बोले हे प्रभो ! आपने सदाचार विधि और उसका सब पाप दूर करनेवाला बडा माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥ आपके मुखकमलसे निर्गत देवीकथामृत श्रवण किया और जो आपने चान्द्रायणादि व्रत कहे ॥ २ ॥ वह दुःसाध्यसे हैं कारण कि कर्ताके साध्यरूप है साधारणोंके उपयोगी नहीं परन्तु इस समय जो शरीरधारियोंको सुखरूप हों ॥ ३ ॥ जो देवीकी प्रसन्नता करनेवाला सुखदायक अनुष्ठान हो हे सुरेश्वर !

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो ॥ तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ १ ॥ श्रुतं भवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम् ॥ व्रतानि यानि चोक्तानि चांद्रायणमुखानि ते ॥ २ ॥ दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तुं साध्यानि तानि च ॥ तदस्मात्सांप्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम् ॥ ३ ॥ देवीप्रसादजनकं सुखानुष्ठानसिद्धिदम् ॥ तत्कर्म वद मे स्वामिन्कृपापूर्वं सुरेश्वर ॥ ४ ॥ सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः ॥ तस्मिन्मुख्यतमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम् ॥ ५ ॥ ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः ॥ तेषां के ऋषयः प्रोक्ताः कानि च्छंदांसि वै मुने ॥ ६ ॥ तेषां का देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो ॥ महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ॥ गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ॥ ८ ॥ संध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च ॥ सहस्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ॥ ९ ॥

कृपा करके हमसे वही वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सदाचारकी विधिमें जो गायत्रीकी सिद्धि कही है उसमें मुख्य पुण्यरूप क्या है और कौन अधिक पुण्यदायक है ॥ ५ ॥ जो गायत्रीके वर्ण हैं उतनेही आपने तत्व कथन किये हैं, उनके कौन ऋषि और कौन छन्द हैं । ।६ ॥ हे प्रभो ! उनके कौन देवता हैं यह सब बात आप हमसे कहो हमारे मनमें इसका बडा कौतूहल हो रहा है ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले और अनुष्ठान करै वा न करै केवल गायत्री मात्रकी निष्ठा करनेसे ही ब्राह्मण कृतकृत्य होजाता है ॥ ८ ॥ तीनों सन्ध्याओंमें अर्घ्यदान गायत्रीका

जप तीन सहस्र करनेसे हे मुने ! वह देवताओंसे पूजित होता है ॥९॥ न्यास करै वा न करै निर्व्याज भक्तिसे सच्चिदानंदरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीका अभ्यास करै ॥ १० ॥ जिस गायत्रीके एक अक्षरकी सिद्धि जो ब्राह्मण कर लेता है उसकी स्पर्धा हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और अग्नि करते हैं ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब गायत्रीके वर्णोंके ऋष्यादि छन्द देवता क्रमसे कहते हैं सुनो ॥ १२ ॥ वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महा तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान्, शौनक ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम,

न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत्॥ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥१०॥यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ॥ हरिशंकरकंजोत्थसूर्यचन्द्रहुताशनैः॥११॥अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वर्णऋष्यादिकांस्तथा ॥छंदांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्त त्वानि चैव हि॥१२॥वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः॥विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान्॥१३॥याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः॥गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः॥१४॥अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकस्तथा॥ दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा ॥ १५ ॥ इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च॥१६॥त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता ॥ शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा॥१७॥विराट्प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः॥विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च ॥१८॥ भूर्भुवःस्वरिति च्छंदस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम्॥इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने॥१९॥ दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः॥आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम्॥२०॥

मुद्गल, वेदव्यास लोमश ॥१४॥ अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, मांडूक, दुर्वासा, नारद, कश्यप ॥ १५ ॥ हे मुने ! यह क्रमसे (२४) वर्णोंके चौबीस ऋषि हैं अब छन्द कहते हैं गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, ॥१६॥ त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति ॥ १७ ॥ विराट्प्रस्तार पंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, संकृति, अक्षर पंक्तिः ॥ १८ ॥ भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती यह क्रमसे (२४) छन्द कहे गये हैं ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! अब क्रमसे इनके देवता सुनो प्रथमके अग्नि, दूसरेके प्रजापति ॥ २० ॥

तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पांचवेंके सविता, छठेके आदित्य ॥ २१ ॥ सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दशवेंके अर्यमा ॥२२॥ ग्यारहवेंके गणेश, बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्र और अग्नि ॥ २३ ॥ पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मैत्रावरुण ॥ २४ ॥ अठारहवेंके विश्वेदेवा उन्नीसवेंके मातायें, बीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु ॥ २५ ॥ बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुवेर, चौबीसवेंके अश्विनीकुमार ॥ २६ ॥ यह चौबीस वर्णोंके देवता कहे जो परमश्रेष्ठ और महापापके शोधक हैं

तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम् ॥ सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम् ॥ २१ ॥ बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम् ॥ नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम् ॥ २२ ॥ गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम् ॥ पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैंद्राग्नं च चतुर्दशम् ॥२३॥ वायव्यं पंचदशकं वामदेव्यं च षोडशम् ॥ मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम् ॥२४॥ अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशं तु मातृकम् ॥ वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम् ॥ २५ ॥ एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम् ॥ त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विने तत्त्वसंख्यकम् ॥२६॥ चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः ॥ कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः ॥२७॥ यदाकर्णनमात्रेण सांगं जाप्यफलं मुने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने ॥ वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रा विलासिनी ॥ १ ॥

॥ २७ ॥ हे मुने ! जिनके श्रवणसे सांग जाप्यका फल होता है गायत्री ब्रह्मकल्पमें भिन्न देवता कहे हैं वह भी क्रमसे लिखते हैं अग्नि, वायु, सूर्य, कुवेर, यम, वरुण, बृहस्पति, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, प्रोष्ठ, मित्रावरुण, त्वष्टा, वासव, मरुत्, सोम, अङ्गिरा, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, पूषा, रुद्र, विद्युत् ब्रह्म, अदिति यह क्रमसे देवता हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! अब वर्णोंकी शक्तियोंको क्रमसे सुनो वामदेवी

प्रिया सत्या, विश्वा, भद्रा, विलासिनी ॥१॥ प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला ॥२॥ तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जाया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा, भद्रा, त्रिपदा ॥ ३ ॥ यह क्रमसे चौबीस अक्षरोंकी शक्ति हैं, अब चौबीस वर्णोंके रंग कहते हैं ॥ ४ ॥ चम्पक, अलसीके फूलके समान मूँगेका रंग स्फटिकके समान, पद्मरागमणिके समान ॥ ५ ॥ तरुणसूर्यके समान, शंख, कुंद, इन्दु, प्रवाल, पद्मपत्रके समान, पद्मरागके समान ॥ ६ ॥ इन्द्रनीलमणिके समान, मोती, कुंकुम, अंजन समान, लाल वैडूर्यके

प्रभावती जया शांता कांता दुर्गा सरस्वती ॥ विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा ॥२॥ तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयो निर्जया वशा ॥ पद्मालया पराशोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता ॥३॥ चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः ॥ अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम् ॥४॥ चम्पका अतसीपुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा ॥ स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम् ॥५॥ तरुणादित्यसंकाशं शंखकुंदेन्दुसन्निभम् ॥ प्रवालपद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम् ॥ ६ ॥ इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम् ॥ अंजनाभं च रक्तं च वैडूर्यं क्षौद्रसन्निभम् ॥ ७ ॥ हारिद्रकुंददुग्धाभं रविकांतिसमप्रभम् ॥ शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा ॥ ८ ॥ केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम् ॥ करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥ वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः ॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ॥१०॥ गंधो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च ॥ उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि च क्रमात् ॥११॥ घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् श्रोत्रं च ततः परम् ॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम् ॥१२॥

समान, शहदके समान ॥ ७ ॥ हलदी, कुंद, दूध, सूर्यकान्ति, शुकपुच्छ, शतपत्रके समान ॥ ८ ॥ केतकीपुष्पके समान, मल्लिका (चमेली) और कनेरके समान चौबीसोंके क्रमसे रंग जानने ॥ ९ ॥ यह वर्णोंके रंग महापापके शुद्ध करने वाले हैं, पृथ्वी, अप (जल;) तेज, वायु, आकाश ॥१०॥ गंध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, उपस्थ, गुद, चरण, हाथ, वाणी ॥ ११ ॥ घ्राण, (नासा) जिह्वा, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, प्राण,

अपान, व्यान. समान ॥ १२ ॥ यह क्रमसे सब वर्णोंके तत्त्व हैं अब क्रमसे वर्णोंकी मुद्रा कहते हैं ॥ १३ ॥ सन्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत एकमुख, द्विमुख,त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, ॥ १४ ॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजली, शकट, यमपाशक, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख, ॥१५॥ विलम्ब, मुष्टिके, मत्स्य, कूर्म,वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १६ ॥ त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अंबुज (कमल) यह महा मुद्रा गायत्रीके चतुर्थ चरणरूप कही हैं ॥ १७ ॥ हे महामुने ! यह वर्णोंकी मुद्रा कही यह महा पापनाशिनी कीर्ति और

तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु॥अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ॥१३॥सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपंच मुखं तथा ॥ १४ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम्॥१५॥विलंबम्मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥१६॥ त्रिशूल-योनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥ इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने ॥ महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कांतिदा मुने ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो ॥ चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर ॥ १ ॥ मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत् ॥ देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥ २ ॥ कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधि-पूर्वकम् ॥ ऋषिश्छंदोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवत्प्रभो ॥ ३ ॥

कान्ति देती हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले,हे स्वामिन् ! हे सब जगत्के प्रभो ! हे चौसठ कलाके ज्ञाता, योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! यह मुझको संदेह है कि पातकोंसे ॥ १ ॥ किस पुण्यसे छूटकर ब्रह्म हुआ जाता है देह देवतारूप और विशेष कर मंत्ररूप है ॥ २ ॥ उस कर्म और विधिपूर्वक न्यासके जाननेकी इच्छा करता

हूं, हे प्रभो ! ऋषि, छन्द, देवता और विधिपूर्वक ध्यान कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले एक परम गुह्य गायत्रीकवच है जिसके पढ़ने और धारण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और सब कामनाओंको प्राप्तहो देवीरूप हो जाता है, इस गायत्री कवचके ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ ५ ॥ ऋषि हैं हे नारद ! ऋक्, यजु, साम, अथर्व छन्द हैं, ब्रह्मरूपा देवता और गायत्री परमा कला है ॥ ६ ॥ तत् पदबीज, भर्गशक्ति धियः कीलक और मोक्षमें इसका विनियोग है ॥७॥ प्रथमके चार अक्षरोंसे हृदय, तीनसे शिर, चारसे शिखा, तीनसे कवच ॥ ८ ॥ फिर चारसे नेत्र और चार अक्षरोंसे अस्त्र क्रिया करे, इस प्रकार २४ अक्षर हुए, अब साधकको सब अभीष्ट देनेवाला ध्यान कहते हैं

श्रीनारायण उवाच ॥ अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा ॥ पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते ॥ गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥ ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वश्छन्दांसि नारद॥ ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला ॥ ६ ॥ तद्बीजभर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥ कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम्॥७॥ चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ॥ चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम् ॥८॥ चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम् ॥ ९ ॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहंतीं भजे ॥१०॥ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ॥ ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती ॥ ११ ॥

॥ ९ ॥ मोती, मूँगे, सुवर्ण, नीलमणि, उज्ज्वल छायायुक्त प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र ऐसे पांच मुखयुक्तरत्नके मुकुटमें चन्द्रमा धारण किये २४ तत्त्ववर्णस्वरूपिणी वरदायिनी ऊर्ध्व हाथोंमें दो कमल, उससे नीचेके करोंमें चक्र, शंख उससे नीचेकेमें रज्जु, कपाल उससे नीचेकेमें पाश, अंकुश, उससे नीचेके हाथोंमें अभयवर धारण किये गायत्री देवीको भजन करता हूं ॥ १० ॥ पूर्वसे गायत्री, दक्षिणसे सावित्री पीछेसे ब्रह्मा द्वारा आराधना की हुई संध्या, उत्तरसे सरस्वती रक्षा करे ॥ ११ ॥

पार्वती अग्निकोणमें, यातुधानभयंकरी नैर्ऋत्य कोणमें रक्षा करे ॥ १२ ॥ पवमानविलासिनी वायव्यमें, रुद्ररूपिणी रुद्राणी ईशान कोणमें ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व दिशामें ब्रह्माणी नीचे वैष्णवी, इस प्रकारसे सब अंग और दशों दिशामें भुवनेश्वरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ तत् पदचरणोंकी, सवितुः जंघाओंकी, वरेण्यम् कमरकी; भर्ग नाभिकी ॥ १५ ॥ देवस्य हृदयकी, धीमहि गालोंकी, धियः पदनेत्रोंकी यः ललाटकी ॥ १६ ॥ नः पद शिरकी, प्रचोदयात् शिखाकी, फिर तत् शिरकी, सकार भालकी ॥ १७ ॥ विकार नेत्रोंकी, तुकार कपोलोंकी, वकार नाशिकाकी, रेकार

पावती मे दिशं रक्षेत्पावकी जलशायिनी ॥ यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयंकरी ॥ १२ ॥ पावमानी दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी ॥ दिशं रौद्री च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥१३॥ ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ॥ एवं दशदिशो रक्षेत्सर्वांगं भुवनेश्वरी ॥ १४ ॥ तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम् ॥ वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ १५ ॥ देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः ॥ धियः पदं च मे नेत्रे यः पदं मे ललाटकम् ॥ १६ ॥ नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् ॥ तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम् ॥१७॥ चक्षुपी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः ॥ नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा ॥ १८ ॥ णिकार ऊर्ध्वमोष्ठन्तु यकारस्त्वधरोष्ठकम् ॥ आस्यमध्ये भकारार्णो गोंकारश्चुबुके तथा ॥ १९ ॥ देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कंधदेशकम् ॥ स्यकारोदक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम् ॥२०॥ मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा ॥ धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥२१॥ गुह्यं रक्षस्तु योकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम्॥ प्रकारोजानुनी रक्षेच्चोकारो जंघदेशकम् ॥ २२ ॥ दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम् ॥ तकारव्यंजनं चैव सर्वांगे मे सदाऽवतु ॥ २३ ॥

मुखकी ॥ १८ ॥ णिकार ऊपरके होठकी, यकार नीचेके होठकी, भकार मुखमध्यकी गोकार दाढी की ॥ १९ ॥ देकार कण्ठदेशकी, वकार कन्धोंकी, स्यकार दहने हाथकी, धीकार वाम हाथकी ॥२०॥ मकार हृदयकी; हिकार पेटकी, धिकार नाभिकी, योकार कटिकी ॥ २१ ॥ योकार गुह्यस्थानकी, नः दोनों ऊरुओंकी प्र जानुकी, चों जंघाकी ॥ २२ ॥ दकार गुल्फोंकी, या दोनों चरणोंकी, व्यंजन मेरे सर्वांगकी रक्षा

करे॥२३॥यह दिव्यकवच सैकडों बाधा दूर करता है चौसठ कलायुक्त विद्या और मोक्षदायक है॥२४॥इसके धारणसे सब पापोंसे छूटकर परब्रह्मको प्राप्त होता है इसके पठनश्रवणसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥
नारदजी बोले हे भगवन् ! देवदेवेश भूतभव्य जगतके प्रभु ! मैंने दिव्य गायत्रीमंत्रका विग्रह और कवच सुना ॥ १ ॥ अब गायत्री हृदयके सुननेकी इच्छा है जिसके धारणसे गायत्री जपका समस्त पुण्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! अथर्वमें देवीका हृदय लिखा

इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम् ॥ चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम् ॥२४॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गो सहस्रफलं लभेत् ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीमंत्र कवचं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ नारद उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो ॥ कवचं च श्रुतं दिव्यगायत्रीमंत्रविग्रहम् ॥१ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम् ॥ यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्रीजपतोऽखिलम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणस्फुटम् ॥ तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् ॥ ३ ॥ विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेद मातरम्॥ ध्यात्वा तस्यास्त्वथांगेषु ध्यायेदेताश्च देवताः ॥ ४ ॥ पिंडब्रह्मांडयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा ॥ देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः ॥ ५ ॥ नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः ॥ ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः ॥ ६ ॥ अथ तत्संप्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत् ॥ गायत्रीहृदयस्याऽस्याऽप्यहमेव ऋषिः स्मृतः ॥ ७ ॥ गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी ॥ पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादंगानि षट्क्रमात् ॥ आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥ ८ ॥

है वह रहस्यका भी रहस्य तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ वह विराट् रूप महादेवी गायत्री वेदमाता है उसका ध्यानकर अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करै ॥ ४ ॥ जब विराट्रूपमें पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकतासे अपने देहको गायत्रीरूप देखे तो अपने देहमें गायत्रीकी भावना करै जिससे तन्मय होजाय ॥ ५ ॥ वेदवित् कहते हैं अदेव देवकी पूजा न करै अभेद होनेके निमित्त अपने शरीरमें इन देवताओंकी भावना करै ॥६॥ जिससे तन्मय होजाय वह मैं तुमसे कहता हूं इस गायत्री हृदयका मैं नारायण ऋषि हूँ ॥ ७ ॥ गायत्री छन्द परमेश्वरी देवता है,

पूर्वोक्त प्रकारसे षडङ्ग न्यास करै, विजन स्थानमें आसन लगाय एकाग्रमनसे ध्यान करै ॥ ८ ॥ अर्थन्यास कहते हैं द्यौः मस्तकमें, दन्तपंक्तिमें अश्विनीकुमार, दोनों सन्ध्या ओष्ठोंमें, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, स्तनोंमें आठों वसु, दोनों भुजाओंमें मरुत्, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष,कटिमें इन्द्राग्नी, जंघामें विज्ञानघन प्रजापति, ऊरुओंमें कैलास और मलयाचल, जानुओंमें विश्वदेव जङ्घामें कौशिक, इन्द्र गुह्यमें,दोनों अयन ऊरुओंमें, पितरचरणोंमें, पृथ्वी अंगुलियोंमें, वनस्पति रोमोंमें, ऋषि नखोंमें, मुहूर्त्त अस्थियोंमें,

अथार्थन्यासः द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम् ॥ दन्तपंक्तावश्विनौ ॥ उभे संध्ये चोष्ठौ ॥ मुखमग्निः ॥ जिह्वा सरस्वती ॥ ग्रीवायां तु बृहस्पतिः॥ स्तनयोर्वसवोऽष्टौ ॥ बाह्वोर्मरुतः ॥ हृदये पर्जन्यः ॥ आकाशमुदरम् ॥ नाभावन्तरिक्षम् ॥ कट्योरिंद्राग्नी ॥ जघने विज्ञान घनः प्रजापतिः ॥ कैलासमलये ऊरू ॥ विश्वेदेवा जान्वोः ॥ जंघायां कौशिकः ॥ गुह्यमयने ॥ ऊरू पितरः ॥ पादौ पृथिवी ॥ वनस्पतयोऽगुलीषु ॥ ऋषयो रोमाणि ॥ नखानि मुहूर्तानि ॥ अस्थिषु ग्रहाः ॥ असृङ्मांसमृतवः ॥ संवत्सरा वै निमिषम् ॥ अहोरात्रावादित्यश्चंद्रमाः ॥ प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये ॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः ॥ ॐ तत्पूर्वा जयाय नमः ॥ तत्प्रातरादित्याय नमः ॥ तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठाय नमः ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ॥ सायमधी यानो दिवसकृतं पापं नाशयति ॥ सायं प्रातरधीयानो अपापो भवति ॥ सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति ॥ सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति ॥ अवाच्यवचनात्पूतो भवति ॥ अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति ॥ अभोज्यभोजनात्पूतो भवति ॥ अचोष्यचोषणात्पूतो भवति ॥

ग्रह रुधिर मांसमें, छहों ऋतु निमेषमें, संवत्सर अहोरात्रमें, आदित्य, चन्द्रमा, ऐसी श्रेष्ठ दिव्य सहस्र नेत्रवाली गायत्रीको मैं शरण होता हूं, ॐतत्सवितुर्वरेण्याय श्रेष्ठतेजके निमित्त नमस्कार है। ॐ उस पूर्वदिशामें उदय होनेवालेके निमित्त प्रणाम है। प्रभातके आदित्यके निमित्त प्रणाम है। प्रभात कालके सूर्यकी प्रतिष्ठाको प्रणाम है। प्रभातमें स्मरण किये सविता रात्रके पापको दूर करते हैं। संध्यामें स्मरण किये हुए

दिनके पापको दूर करते हैं । सायंप्रातः स्मरण करनेसे मनुष्य पापरहित होता है । वह पुरुष मानो सब तीर्थोंमें स्नानकर चुका वह सब देवताओंसे जाना जाता है । अवाच्य वचन कहनेके दोषोंसे पवित्र हो जाता है अभक्ष्य भक्षण करनेसे पवित्र होता है, अभोज्य भोजनसे पवित्र होता है अचोष्य वस्तु चूसनेसे पवित्र होता है । असाध्य साधनसे पवित्र होता, सैकडों सहस्र नष्ट दान लेनेसे पवित्र होता, सब प्रतिग्रहोंसेपवित्र होता, पंक्तिदूषणोंसे पवित्र होता, अनृत वचन कहनेके पापसे छूटता, अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी होता, इस गायत्री हृदयके पाठसे सहस्र यज्ञका फल मिलता है (६००००) साठ सहस्र गायत्री जपका फल होता है, आठ ब्राह्मणोंकी भली प्रकार ग्रहण करावे तो उसको सिद्धि होती है, जो ब्राह्मण

असाध्यसाधनापूतो भवति ॥ दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति ॥ सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति ॥ पंक्तिदूषणात्पूतो भवति ॥ अनृतवचनात्पूतो भवति ॥अथाऽब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति ॥ अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति ॥ षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवंति ॥ अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत् ॥ तस्य सिद्धिर्भवति ॥ य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यत इति ॥ ब्रह्मलोके महीयते ॥ इत्याह भगवाञ्श्रीनारायणः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीहृदयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तानुकंपिन्सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम् ॥ गायत्र्याः कथितं तस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमीरय ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ॥ सर्वत्र व्यापिकेऽनंते श्रीसंध्ये ते नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

पवित्र होकर प्रातःकालमें इसको नित्य अध्ययन करता है वह सब पापसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें गमन करता है ऐसा भगवान् नारायणने कहा है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारदजी बोले हे भक्तोंपर दया करनेवाले सर्वज्ञ ! आपने पाप नाशक गायत्रीका हृदय कथन किया अब गायत्रीका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे आदि शक्ति जगत्की माता ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाली सर्वत्र व्यापक अनन्त श्री दोनों संध्यारूप ! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥

आप ही संध्या गायंत्री सरस्वती सावित्री ब्राह्मी वैष्णवी रौद्री रक्त श्वेत श्याम हो ॥ ३ ॥ प्रभातमें बाला, मध्याह्नमें युवा, सायमें वृद्धा होती हो. इस प्रकार मुनिजन सदा तुम्हारी चिन्तना करते हैं ॥ ४ ॥ हंसपर गरुडपर वृषभपर चढी ऋग्वेदकी पढनेवाली जो तपस्वियोंको भूमिपर दीखती है ॥ ५ ॥ और यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान होती है वह सब में सामगाती भूमिमें भ्रमण करती है ॥ ६ ॥ तुम ही रुद्रलोकमें प्राप्त होकर विष्णुलोकमें निवास करती हो तुम ही ब्रह्मलोकमें ही मनुष्योंपर अनुग्रह करती हो

त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती ॥ ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा ॥ ३ ॥ प्रातर्बाला च मध्याह्न यौवनस्थाभवेत्पुनः ॥ वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा ॥ ४ ॥ हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी ॥ ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ॥ ५ ॥ यजुर्वेदं पठंती च अंतरिक्षे विराजते ॥ सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि ॥ ६ ॥ रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी ॥ त्वमेव ब्रह्मणो लोके ऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥ ७ ॥ सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा ॥ शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा ॥ ८ ॥ आनंदजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते ॥ वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥९॥ गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी ॥ नीलगंगा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा ॥ १० ॥ भागीरथी मर्त्यलोकेपाताले भोगवत्यपि ॥ त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी ॥ ११ ॥ भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री शोकधारिणी ॥ भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः ॥ १२ ॥

॥ ७ ॥ सप्त ऋषियोंको प्रसन्न करनेवाली बहुत वर देनेवाली माया शिव और शक्ति हाथ नेत्रसे उत्पन्न उन्हींके अश्रु और पसीनेसे उद्भव ॥ ८ ॥ आनन्दकी प्रगट करनेवाली दुर्गा दश प्रकार पढी जाती है वरेण्या वरदा वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गारीष्ठा, वराहा, वरारोहा, नीलगंगा संध्या, सदा भोग मोक्ष देनेवाली ॥ १० ॥ मर्त्यलोकमें भागीरथीरूप, पातालमें भोगवती, स्वर्गमें सीता इस प्रकार त्रिलोकवाहिनी देवी तीनों स्थानमें निवास करती है ॥ ११ ॥ भूलोकमें लोकधारिणी भूमि तुम ही हो भुवर्लोकमें वायुशक्ति रूप और स्वर्लोकमें

तेजोंकी निधि तुम हो ॥१२॥ महर्लोकमें महासिद्धिरूप जनलोकमें जननी तपोलोकमें तपस्विनी और सत्यलोकमें सत्यवाक् तुमही हो॥ १३ ॥ विष्णुलोकमें कमला ब्रह्मलोक देनेवाली गायत्री और रुद्रलोकमें गौरी शिवके अर्धांग निवास करनेवाली तुमही हो ॥१४॥ अहं महान् प्रकृतिरूपसे तुमही गाई जाती हो, साम्यावस्थात्मिका शबल ब्रह्मरूपिणी तुमही हो ॥१५॥ तिससे परे परा परमाशक्ति तुमही गाई जाती हो. इच्छाशक्ति क्रिया शक्ति ज्ञानशक्ति, तीनशक्ति देनेवाली तुमही हो ॥१६॥ गंगा यमुना विपाशा सरस्वती सरयू देविका सिन्धु नर्मदा ऐरावती॥१७॥ गोदावरी शतद्रु

महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि ॥ तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक् ॥ १३ ॥ कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा ॥ रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धांगनिवासिनी ॥ १४ ॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे ॥ साम्याव स्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी ॥ १५ ॥ ततः परापराशक्तिः परमा त्वं हि गीयसे ॥ इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति स्त्रिशक्तिदा ॥ १६ ॥ गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती ॥ सरयूर्देविका सिंधुर्नर्मदेरावती तथा ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रूश्च कावेरी देवलोकगा ॥ कौशिकी चंद्रभागा च वितस्ता च सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि ॥ इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ १९ ॥ गांधारी हस्तिजिह्वा च पूपा पूपा तथैव च ॥ अलंबुसा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः ॥ हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कंठस्था स्वप्ननायिका ॥ २१ ॥ तालुस्था त्वं सदाधारा बिंदुस्था बिंदुमालिनी ॥ मूले तु कुंडलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा ॥ २२ ॥

कावेरी देवलोकगामिनी कौशिकी चन्द्रभागा वितस्ता सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तपनी करतोया गोमती वेत्रवती तुमही इडा पिंगला तीसरी सुषुम्ना ॥ १९ ॥ गांधारी हस्तजिह्वा पूपा अपूपा अलंबुषा कुहू शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ यह शरीरमें स्थित नाडीस्वरूप तुमही हो ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं, हृदय कमलमें स्थित प्राणशक्ति कंठमें स्थित स्वप्ननायिका ॥ २१ ॥ तालुमें सदाधारा,

भौंहके मध्यमें बिन्दुमालिनी, मूलाधारमें कुंडलिनी शक्ति केशमूलमें व्यापिनी ॥ २२ ॥ शिखाके मध्य अर्थात् ज्ञानकलामें आसन करनेवाली, शिखोंके अग्रमें मनोन्मनी तुमही हो. बहुत कहनेसे क्या है त्रिलोकीमें जो कुछ है ॥ २३ ॥ हे महादेवि ! वह सब तुमही हो, श्री और सन्ध्यारूप तुमको प्रणाम है, सन्ध्याके समय यह स्तोत्र पढनेसे महापुण्य होता है ॥ २४ ॥ यह महापापका शान्त करने और महासिद्धिके देनेवाला है, जो सावधान हो सन्ध्याकालमें यह स्तोत्र पढते हैं ॥ २५ ॥ अपुत्रको पुत्रकी प्राप्ति धनार्थिको धन मिलता है, सब तीर्थ तप

शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी॥किमन्यद्बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये ॥२३॥तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते ॥ इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्यायां बहुपुण्यदम् ॥ २४ ॥ महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम् ॥ इदं च कीर्तयेत्स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः ॥ २५ ॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत् ॥ २६ ॥ भोगान्भुक्त्वा चिरंकालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥ २७ ॥ यत्र कुत्र जले मग्नः संध्यामज्जनजं फलम् ॥लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद ॥ २८ ॥ शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्रमुच्यते ॥ पीयूषसदृशं वाक्यं संध्योक्तं नारदेरितम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० द्वादशस्कंधे गायत्रीस्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥१॥

दान यज्ञ योगका फल मिलता है ॥ २६ ॥ वह चिरकाल भोग भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है तपस्वियोंका किया स्तोत्र जो स्नानकालमें पढते हैं ॥ २७ ॥ जहां कहीं जलमें स्नान करै सन्ध्याके मज्जनका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है नारद ! यह सत्य है ॥ २८ ॥ जो भक्तिसे सुने वह सब पापोंसे छूट जाता है हे नारद ! मैंने यह स्तोत्र तुमसे कहा सन्ध्याके उद्देशसे अमृतके समान है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां गायत्रीस्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नारदजी बोले

हे भगवन् ! सब धर्मोंके जाननेवाले सब शास्त्रमें पण्डित, आपके मुखसे श्रुति स्मृति पुराणोंका रहस्य सुना ॥ १ ॥ अब जिससे सब पापहारिणी विद्याकी प्रवृत्ति होती है किससे ब्रह्मविज्ञान और मोक्षका साधन होता है ॥ २ ॥ किसे ब्राह्मणोंकी गति और किससे मृत्युका साधन होता है हे पद्मलोचन, किसके द्वारा दोनों लोकका साधन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ वह आदिसे आप सब वर्णन कीजिये । श्रीनारायण बोले हे महाभाग ! धन्य हो तुमने भली बात पूँछी ॥ ४ ॥ सुनो मैं यत्नसे गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंको वर्णन करता हूं जो शुभ दिव्य और

सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते ॥ केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्यु नाशनम्॥ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन ॥ ३ ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः॥ श्रीनारायण उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ ४ ॥ शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापवि नाशनम् ॥ ५ ॥ सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते ॥ अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥ छंदोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्री देवता स्मृता ॥ हलोबीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः ॥ ७ ॥ अंगन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥८॥ रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ॥ गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुंडांबुजां पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ॥ ९ ॥

सम्पूर्ण पापोंके नाशक है ॥ ५ ॥ जो सृष्टिकी आदिमें पूर्वमें भगवान्ने कहे सो मैं आपसे सब कहता हूं, इन १००८ नामोंके ब्रह्मा ऋषि ॥ ६ ॥ अनुष्टुप्छन्द, गायत्रीदेवी, हलअक्षर बीज और स्वर शक्तियें हैं ॥ ७ ॥ मातृका अक्षरोंसे अंगन्यास कर न्यास होता है अब साधकोंके हितके निमित्त ध्यान कहता हूं ॥ ८ ॥ लाल श्वेत हिरण्य नील धवल वर्णके मणिगणोंसे युक्त तीनों नेत्रोंसे उज्ज्वल अरुण वर्ण लाल फलोंकी नवीन माला पहरे कुमारी कमलासनपर आरूढ कंडिका और कमल धारण किये कमललोचनी इष्ट अक्षमाला पहरे हंसा

रूढ गायत्रीको भजता हूं ॥ ९ ॥ अकारादि ३५नाम कहते हैं अचिन्त्य लक्षणवाली अव्यक्ता (अस्पष्ट नामरूपवाली) अर्थमातृमहेश्वरी अमृतसागरके मध्यमें स्थित, अजिता, अपराजिता ॥ १० ॥ अणिमादि गुणोंकी आधार अर्कमंडलमें स्थित अजरा अजा, अपरा अधर्मा (जाति आदि धर्मसे रहित) अक्षसूत्रको धारण करनेवाली अक्षर (निकृष्टरूपा) ॥ ११ ॥ अकारसे आदि लेकर क्षकार पर्यन्त, अरिषड्वर्गकी भेद करनेवाली, अंजनाद्रिके समान कांतिवाली अंजनाद्रिपर निवास करनेवाली ॥ १२ ॥ अदिति (देवमाता) अजपा (गायत्री) अविद्या अरविन्दलोचनी अन्तर बाहरमें स्थित अविद्या जीव उपाधिकी ध्वंस करनेवाली अन्तरात्मिका ॥ १३ ॥ अजा,

अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ॥ अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता ॥१०॥ अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमंडलसंस्थिता॥अजराऽजाऽपराऽधर्मा अक्षसूत्रधराऽधरा ॥११॥ अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ॥ अंजनाद्रिप्रतीकाशाप्यंजनाद्रिनिवासिनी॥१२॥अदितिश्चाजपा विद्याप्यरविंदनिभेक्षणा॥अंतर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनी चांतरात्मिका॥१३॥अजा चाजमुखा वासाप्यरविंदनिभानना ॥ अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमंडलमर्दिनी ॥१४॥ असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यंत्यजार्चिता ॥ आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५ ॥ आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ॥ आचार्यावर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥१६॥ आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता ॥ आधारनिलयाधारा चाकाशांतनिवासिनी ॥ १७ ॥

अजमुखा (ब्रह्ममुखमें निवास करनेवाली) अवासी अरविन्द लोचनी अर्धमात्रा, अर्थ दानज्ञा (चारों पुरुषार्थके दानको ज्ञाता) अरिमंडलकी मर्दन करनेवाली ॥ १४ ॥ असुरोंकी नाशक अमावास्या अलक्ष्मी नाशक अन्त्यजार्चिता (मातंगी रूपसे पूजित) आकारादि २२ नाम आदिलक्ष्मी आदिशक्ति आकृति आयतानना (विस्तृतमुखवाली) ॥ १५ ॥ आदित्य मार्गमें विचरण करनेवाली अदितिपुत्रोंसे सेवित आचार्या (स्वयं व्याख्याता) आवर्तना (जगत्‌की आवर्तन करनेवाली) आचारा (दक्षिणाचारादि आचारवाली) आदिमूर्ति ब्रह्ममें निवास करनेवाली ॥ १६ ॥ आग्नेयीदिशारूप आमरी अमरावतीरूपवाली आद्या आराध्या आसनमें स्थित आधारनिलया मूलाधारमें निवासवाली

आधारा सब की आधारा (कुंडलिनीरूप) आकाशान्तनिवासिनी (अहंकार तत्वमें स्थित) आद्याक्षरसे युक्त अन्तराकाश अर्थात् दहराकाश रूपवाली आदित्यमण्डलमें प्राप्त, अन्तरध्वान्त अविद्या अंधकारकी नाशिनी ॥ १७ ॥ १८ ॥ [इकारादि १५ नाम] इंदिरा, इष्टदा, इष्टा, इंदीवर कमलके समान नेत्रवाली, इरावती (भूवाक् सुराम्बुमती) इंद्रपदा, इंद्राणी इंदुरूपिणी ॥ १९ ॥ इक्षु पौंड इक्षु धनुषसे युक्त इषुसंधान करनेवाली, इंद्रनीलमणिके समान आकारवाली इडा पिंगलारूपवाली ॥ २० ॥ इंद्राक्षी (शताक्षी) ईकारादि दो नाम, ईश्वरी देवी, ईहात्रयवर्जिता (तीनों इच्छाओंसे रहित) उकारादि आठनाम उमा, उपा, उडुनिभा, (नक्षत्र समान) उर्वारुक

आद्याक्षरसमायुक्ता चांतराकाशरूपिणी ॥ आदित्यमंडलगता चांतरध्वांतनाशिनी ॥ १८ ॥ इंदिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवरनिभेक्षणा ॥ इरावती चेंद्रपदा चेंद्राणी चेंदुरूपिणी ॥१९॥ इक्षुकोदंडसंयुक्ता चेषुसंधानकारिणी ॥ इंद्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी ॥२०॥ इंद्राक्षीचेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता॥उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥ २१ ॥ उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा ॥ ऊर्ध्वा चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥२२॥ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमाला वाग्ग्रंथदायिनी ॥ ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता ॥२३॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमंडलचारिणी ॥ ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्मप्रवर्तिनी ॥ लूतारिवरसंभूता लूतादिविषहारिणी ॥ २५ ॥

फल कर्कटी फलके समान मुखवाली ॥ २१ ॥ उडप्रभा, उडुमती, उडुपा (पोत रूपिणी) उडुमध्यगामिनी, (ऊकारादि ५ नाम,) ऊर्ध्वा, ऊर्ध्वकेशी ऊर्ध्व और अधो ऊंच नीच गतिकी भेदनकरनेवाली ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया ऊर्मिमाला वा ग्रन्थदायिनी समुद्रवत् कवितारूप ग्रंथकी देनेवाली ऋकारादि नाम ऋत (सत्य) ऋषि (वेदरूप) ऋतुमती ऋषिदेवताओंसे नमस्कृत ॥ २३ ॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री ऋषिमंडलमें विचरण करनेवाली, ऋद्धि ऋजुमार्गमें स्थित, ऋजुधर्मवाली, ऋतुदायिनी ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी, (लृकारादि लृकारादि अप्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे, लकारादिके यहां लकारके जानने) लुप्तधर्मोंको प्रवृत्त करनेवाली लूतारिवरसंभूता, लूता (मकरी)

आदिके विषकी हरनेवाली ॥ २५ ॥ (एकारादि ४ नाम) एकाक्षरा, एकमात्रा, एका, एकैकनिष्ठिता (ऐकरादि ३ नाम) ऐन्द्री ऐरावतपर आरूढ, ऐहिक इस लोक और परलोकमें फल देनेवाली (ओकारादि ४ नाम) ओंकारा, ओषधी ओता ओतप्रोता (सूपके समान सबके अभ्यन्तरमें व्याप्त) (औकारादि ३ नाम) और्वा भूमिमें होनेवाली, औषधसम्पन्ना औपासन उपासनावालोंको फल देनेवाली ॥ २६ ॥ २७ ॥ (अं आदि एक नाम) अंडमध्यमें स्थित देवी (अः कारादि नाम) अःकार विसर्ग रूप मंत्रके रूपवाली (ककारादि १६ नाम) कात्यायनी, कालरात्रि, कामाक्षी, कामसुन्दरी ॥ २८ ॥ कमला, कामिनी कांता कामदा, कालकंठिनी, करिकुंभस्तनभरा, करवीरसे पूजित हो वहां

एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता ॥ ऐंद्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा ॥ २६ ॥ ओंकारह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी ॥ और्वा ह्यौषधसंपन्ना औपासनफलप्रदा ॥२७॥ अंडमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी ॥ कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी ॥ २८ ॥ कमला कामिनी कांता कामदा कालकंठिनी ॥ करिकुंभस्तनभरा करवीरसुवासिनी ॥ २९ ॥ कल्याणी कुंडलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी ॥ कुरुविंददलाकारा कुण्डली कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा करालास्या कालिकाकालरूपिणी ॥ कमनीयगुणा कांतिः कालधारा कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभंजिनी ॥ कौमारी करुणापांगी ककुबंता करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केसरी केशवनुता कदंबकुसुमप्रिया ॥ कालिंदी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता ॥ ३३ ॥ काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती ॥ कुमारी कुंडनिलया किराती कीरवाहना ॥ ३४ ॥

निवास करने वाली ॥२९॥ कल्याणी, कुंडलवती, कुरुक्षेत्र निवासिनी, कुरुविंद, रत्नके दलके समान आकारवाली, कुंडली, कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालाजिह्वा, करालमुखी कालिका, कालरूपिणी, कमनीयगुणवाली, कांति, कलधारा, कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी, कमलाकारा कामचारकी ध्वंसकरनेवाली, कौमारी, करुणापांगी, ककुबंत (दिशाओंकी अवसानरूप) करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केशरीरूप केशवसे स्तुतिको प्राप्त, कदम्ब पुष्पकी इच्छावाली, कालिन्दी, कालिका, कांची, कलशोद्भव अगस्त्य से स्तुतिको प्राप्त होनेवाली ॥ ३३ ॥ काममाता, ऋतुमती, कामरूपा, कृपा

वती, कुमारी कुंडनिलया, (अग्निहोत्रमें स्थित) किराती, कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी कोकिलाके समान शब्द करनेवाली, केतकीरूपा, कुसुमप्रिया, कमंडलुधरा, काली, कर्मको निर्मूल करनेवाली, ॥ ३५ ॥ कलहंसगति, कक्षा, कृतकौतुकमंगला, कस्तूरीतिलका, कम्रा सुन्दरी करीन्द्र समान गमनवाली कुहू ॥३६॥ कर्पूरलेपनाकृष्णा, कपिला, कुहराश्रया, कूटस्था, कुधरा (पर्वतधारिणी) कम्रा कुक्षिस्था खिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ (खकारादि ११ नाम) खड्ग, खेटकरा, खर्वा, खेचरी, खगवाहना, खट्वांगधारिणी, ख्याता, खगराजपर स्थित ॥ ३८ ॥

कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया ॥ कमडंलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी ॥ ३५ ॥ कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमंगला ॥ कस्तूरीतिलका कम्रा करींद्रगमना कुहूः ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया ॥ कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥३७॥ खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना ॥ खट्वांगधारिणी ख्याता खगराजोपरि स्थिता ॥३८॥ खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी ॥ खण्डेन्दुतिलका गंगा गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥ गायत्री गोमती गीता गांधारी गानलोलुपा ॥ गौतमी गामिनी गाधा गंधर्वाप्सरसेविता ॥ ४० ॥ गोविंदचरणाक्रांता गुणत्रयविभाविता ॥ गंधर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी ॥ ४१ ॥ गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी ॥ गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी ॥४२॥ गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा ॥ गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमंडलवर्तिनी ॥ घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥

खलनाशिनी, खंडितजरा, खंडाख्यानकी देनेवाली, खण्डेन्दुतिलका (गकारादि ३६ नाम) गंगा, गणेशगुहपूजिता ॥३९॥ गायत्री, गोमती, गीता, गान्धारी, गानलोलुपा, गौतमी, गामिनी, गांधा, (प्रतिष्ठारूपिणी, गन्धर्वाप्सरोंसे सेवित॥४०॥गोविन्दचरणाकान्ता, गुणत्रयविभाविता गंधर्वी गह्वरी, गोत्रा, (पृथ्वी) गिरीशा, गहना गभी (पर्यालोचन करनेवाली.)॥४१॥ गुहावासा, गुणवती, गुरुपापप्रणाशिनी, गुर्वी, गुणवती, गुह्या,गोप्तव्या, गुणदायिनी ॥ ४२ ॥ गिरिजा, गुह्यमातंगी, गरुडध्वजकी प्रिया, गर्वापहारिणी, गोदा, गोकुलस्था, गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्ण

स्थानमें आसक्त गुह्य मण्डलमें निवास करनेवाली (घकारादि १४ नाम) घर्मदा, घनदा, घंटा, घोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणि (सूर्य) मंत्रमयी, घोषा, घनसंतापदायिनी, घंटारवप्रियाघ्राणा, घृणि संतुष्टकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला, घूर्णी, घृताची, घनवेगिनी (ङकार अप्रसिद्ध हैं ञकारका नाम एक है) ज्ञानधातुमयी (चिद्धातुमय) (चकारादि ४९ नाम) चर्चा (भाषणादि) चर्चिता, चारुहासिनी, ॥ ४६ ॥ चटुला चंडिका, चित्रा, चित्रमाल्यसे विभुषित, चतुर्भुजा, चारुदंता, चातुरी, चरितप्रदा ॥ ४७ ॥ चूलिका, चित्रवस्त्रान्ता, चन्द्रमारूप कानोंमें कुंडल धारण करनेवाली, चन्द्रहासा, चारुदात्री, चकोरी, चन्द्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिका, चन्द्रधात्री, चौरी चौरा (औषधि विशेष

घृणिमन्त्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी ॥ घंटारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला घूर्णा घृताची घनवेगिनी ॥ ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुला चंडिका चित्रा चित्रमाल्यविभूषिता ॥ चतुर्भुजा चारुदंता चातुरी चरितप्रदा ॥ ४७ ॥ चूलिका चित्रवस्त्रांतचन्द्रमःकर्णकुण्डला ॥ चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी ॥४८॥ चंद्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चंडिका ॥ चंचद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी ॥४९॥ चारुचन्दनलिप्तांगी चंचच्चामरवीजिता ॥ चारुमध्या चारुगतिश्चंदिला चन्द्ररूपिणी ॥ ५० ॥ चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका ॥ चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमण्डलदर्पणा ॥ ५१ ॥ चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी ॥ चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चंदनप्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी ॥ छत्रयाता छत्रधरा छाया छन्दःपरिच्छदा ॥ ५३ ॥

रूपा) चंडिका, चंचद्वाग्वादिनी, चन्द्रचूडा, चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचन्दनलिप्तांगी (सुन्दर चन्दनसे लिप्त अंगवाली) चंचत् चलायमान चामरोंसे वीजित, चारुमध्यभागवाली, चारुगति, चंदिला (कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध देवता), चन्द्ररूपिणी ॥५०॥ चारुहोमप्रिया, चार्वाचारिता, चक्रबाहुका, चन्द्रमंडलके मध्यमें स्थित चन्द्रमण्डल दर्पणवाली ॥ ५१ ॥ चक्रवाकके समान स्तनवाली, चेष्टा, चित्र, चारुविलासिनी, चित्स्वरूपा, चन्द्रवती, चन्द्रमा, चन्दनप्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री (प्रेरणा करनेवाली) चिरप्रज्ञा, चारुहेतुकी (जगत् निर्माणमें सुन्दर

हेतुवाली) (छकारादि १४ नाम) छत्रयाता, छत्रधरा, छाया, छन्दा परिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी (स्वामिनी) छिद्रनखा (रन्ध्रयुक्त नखोंवाली) छन्नेन्द्रिय विसर्पिणी (इन्द्रियजित योगियोंके निकट जानेवाली) छन्दोनुष्टुप् प्रतिष्ठान्ता (अनुष्टुप् छन्दवाले मंत्रसे जानने योग्य), छिद्रोपद्रवभेदनी (कपटके) उपद्रव नाशनेवाली ॥ ५४ ॥ छेदा, छत्रेश्वरी, छिन्ना, छूरिका, छेदनप्रिया (जकारादि ४० नाम) जननी, जन्मरहिता, जातवेदा, जगन्मयी, जाह्नवी, जटिला, जेत्री, जरामरणसे वर्जित, जम्बूद्वीपवती, ज्वाला, जयन्ती, जलशालिनी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जितेन्द्रिया, जितक्रोधा, जितमित्रा, जगत्प्रिया, जातरूपमयी, जिह्वा, जानकी जगती, जरा ॥ ५७ ॥ जनित्री, जह्नुतनया, जगत्त्रयहितैषिणी,

छायादेवी च्छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी ॥ छन्दोऽनष्टुप्प्रतिष्ठांता छिद्रोपद्रवभेदिनी ॥ ५४ ॥ छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया ॥ जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी ॥ ५५ ॥ जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता ॥ जंबूद्वीपवती ज्वाला जयंती जलशालिनी ॥ ५६ ॥ जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया ॥ जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा ॥ ५७ ॥ जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जिताक्रांतमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता ॥ ज्वलंती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी ॥ ५९ ॥ जंभिनी जृंभणा जृंभा ज्वलन्माणिक्यकुंडला ॥ झिंझिका झणनिर्घोषा झंझमारुतवेगिनी ॥ ६० ॥ झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता ॥ टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी ॥ ६१ ॥

ज्वालामुखी, जपवती, ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जिताक्रान्तमयी, (जयसे आक्रान्त पुरुषमयी) ज्वाला, जाग्रती, ज्वरदेवता, ज्वलंती, जलदा, ज्येष्ठा, ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी (ज्याघोषसे दिशाओंके मुख फोड़नेवाली) ॥ ५९ ॥ जंभिनी, जृंभणा, जृंभा, ज्वलितमाणिक्यके कुंडलवाली (झकारादि ४ नाम) झिंझिका झणनिर्घोषा, झंझामारुतवेगिनी (सवृष्टि पवनके वेगवाली) ॥ ६० ॥ झल्लकी, बाजेमें कुशल (ञकारादि २ नाम) ञरूपा (बलीवर्दरूपा), ञभुजास्मृता (श्यामलांगिका वा बलीवर्दके समान भुजावाली) (टका

रादि ६ नाम) टंकबाणसे युक्त, टंकिनी, टंकभेदिनी ॥ ६१ ॥ टंकीगण रुद्रवत् घोप करनेवाली, टंकनीयमहोरसा (वर्णनयोग), महा रस्थलवाली, टंकार कारिणीदेवी (ठकारादि एकनाम) ठठशब्दसे नाद करनेवाली ॥ ६२ ॥ (डकारादि आठ नाम डामरी, डाकिनी, डिंभ (बालक रूप), डुंडुमारैकनिर्जिता, डामरी तंत्र मार्गस्था (डामरी तंत्रके मार्गमें स्थित) डमड्डमरुनादिनि ॥ ६३ ॥ डिंडीनामके बाजेके शब्दको सहन करनेवाली, डिंभलसत् क्रीडापरायण (ढकारादि ॰ नाम) ढुंढि विघ्नेशकी माता ढक्का बाजा हाथमें धारण करनेवाली, ढिलिव्रजा (ढिलिनामक शिवगणके समुदायवाली) ॥ ६४ ॥ णकारादि नाम अप्रसिद्ध

टकीगणकृताघोषा टकनीयमहोरसा ॥ टंकारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी ॥ ६२ ॥ डामरी डाकिनी डिंभा डुंडमारैकनिर्जिता ॥ डामरीतंत्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी ॥६३॥ डिंडीरवसहा डिंभलसत्क्रीडापरायणा ॥ ढुंढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा ॥ ६४ ॥ नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी ॥ त्रिगुणा त्रिपदा तंत्री तुलसी तरुणा तरुः ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाक्रांता तुरीयपदगामिनी ॥ तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसंपन्ना त्रिवली च त्रिलोचना ॥ त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा ॥ ६७ ॥ तिमिंगिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी ॥ तंत्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्यात्रिविष्टपा ॥६८॥ त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी ॥ ताटंकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥

उसके स्थानमें पांच नकारादि कहते हैं नित्यज्ञानवाली, निरुपमा, निर्गुण, नर्मदा नदीरूप (तकारादि ३२ नाम) त्रिगुणा, त्रिपदा, तंत्री, वीणारूप तुलसी, तरुणा, तरु ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाकान्ता, तुरिया पदमें गमन करनेवाली, [illegible] आदित्यके समान प्रकाशवान् तामसी, तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसे सम्पन्न, त्रिवली, त्रिलोचना, त्रिशक्ति, त्रिपुरा, तुंगा, तुरंगवदना ॥६७॥ तिमिंगिलगिल, तीव्रा, त्रिस्रोता, तामसादिनी, तंत्र मंत्रकी विशेषरूपसे ज्ञाता, तनुमध्या, त्रिविष्टपा ॥ ६८ ॥ त्रिसंध्या, त्रिस्तनी तोषासंस्था (संतोषमें

स्थित) तालव्रतापिनी, तारंकिनी तुषाराभा (तुषारके समान कान्तिवाली), तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालमें युक्त, तारहारावलिप्रिया, तिलहोमप्रिया, तीर्था, तमाल कुसुमके समान आकृतिवाली ॥ ७० ॥ तारका त्रियुता (तीन गुण वा तीन वेदसे युक्त), तन्वी, त्रिशंकुसे परिवारित, तलोदरी, तिलोभाषा, तांटकप्रियवादिनी॥७१॥त्रिजटा, तित्तरी, तृष्णा, त्रिविधा, तरुणाकृति, तप्त कांचनके समान, तप्तकांचनके भूषणोंवाली ॥७२॥ त्रैयम्बका, त्रिवर्गा, त्रिकालका ज्ञान देनेवाली तर्पणा, तृप्तिदा, तृप्ता, तामसी, तुम्बुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था, त्रिगुणा

तंतुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया ॥ तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः ॥ ७० ॥ तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुप रिवारिता ॥ तलोदरी तिलाभूषा तारंकप्रियवाहिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः ॥ तप्तकांचनसं काशा तप्तकांचनभूषणा ॥ ७२ ॥ त्रैयंबका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी ॥ तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुंबुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभंगी तनुवल्लरिः ॥ थात्कारी थारवा थांता दोहिनी दीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवांतकरी दुर्गा दुर्गा सुरनिबर्हिणी ॥ देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा ॥ दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥ दंडकारण्यनिलया दंडिनी देवपूजिता ॥ देववंद्या दिविपदा द्वेषिणी दानवाकृतिः ॥ ७७ ॥ दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी ॥ धात्री धनुर्धरा धेनुधारिणी धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥

कारा, त्रिभंगी, तनुवल्लरी (थकारादि ३ नाम) थात्कारी (शब्दकारी) थारवा (भयसे रक्षाकरने वाली) थान्ता (मंगलकी पर्यवसान भूमि) (दकारादि २७ नाम) दोहिनी, दीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवान्तकरी, दुर्गा, दुर्गासुरनिबर्हिणी (भयंकर असुरकी मारनेवाली) देवरीति, दिवारात्री, द्रौपदी, दुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी, दुरावासा, दारिद्र्यभेदिनी दिवा, दामोदरकी प्रिया, दीप्ता, दिग्वासा, दिग्विमोहिनी ॥७६॥ दण्डकारण्यमें निवासवाली दण्डिनी, देवपूजित, देवताओंसे नमस्कृत, दिविपदा द्वेषिणी, दानवाकृति ॥ ७७ ॥ दीनानाथस्तुता,

दीक्षास्वरूप, देवतादिस्वरूपिणी, (धकारादि २० नाम) धात्री, धनुर्धरा, धेनु, धारिणी, धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥ धुरंधुरा धरा, धारा, धनदा, धान्यदोहिनी, धर्मशीला, धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा ॥ ७९ ॥ धृति, धन्या, धृतपदा, धर्मराजप्रिया, ध्रुवा (निश्चल) धूमवती, धूमकेशी, धर्मशास्त्रकी प्रकाश करनेवाली ॥ ८० ॥ [नकारादि ५५ नाम) नन्दा (आनन्ददायिनी), नन्दप्रिया, नन्दा, निद्रा, नृनुता (मनुष्योंसे नमस्कृत), नंदनात्मिका, नर्मदा, नलिनी, नीला, नीलकण्ठ समाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रिया, नित्या, निर्मला, निर्गुणा, निधि, निराधारा

धरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी ॥ धर्मशीला धनाध्यक्षा धर्मवेदविशारदा ॥ ७९ ॥ धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा ॥ धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी ॥ ८० ॥ नंदा नंदप्रिया निद्रा नृनुता नंदनात्मिका ॥ नर्मदा नलिनी नीला नीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥ नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः ॥ निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना ॥८२॥ नादबिंदुकलातीता नादबिंदुकलात्मिका ॥ नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा ॥ निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका ॥ नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी ॥ ८५ ॥ नंदजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी ॥ नवनीतिप्रिया नारी नीलजीमूतनिस्वना ॥ ८६ ॥ निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी ॥ नामावलिर्निशुंभघ्नी नागलोकनिवासिनी ॥ ८७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता ॥ नूपुराक्रांतचरणा नरचित्तप्रमोदिनी ॥ ८८ ॥

निरुपमा, नित्यशुद्धा, निरंजना॥ ८२ ॥ नाद बिन्दुकी कलासे परे, नादबिन्दु कलामय, नृसिंह वेषवाली, नगधरा, नृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकका क्लेश शान्त करनेवाली, नारायणपदोद्भवा, निरवद्या, निराकारा, नारदप्रियकारिणी॥८४॥नाना ज्योतिसे कही गई, निधि देनेवाली, निर्मलात्मिका, नवसूत्र धरा, नीति, निरुपद्रवकारिणी॥८५॥नन्दके होनेवाली, नवरत्नाढ्या, नैमिषारण्यवासिनी, नवनीत प्रिया, नारी, नीलमेघके समान शब्दवाली॥८६॥निमेषिणी, नदीरूपा, नीलग्रीवा, निशीश्वरी, नामावली, निशुम्भकीमारनेवाली, नागलोकमें निवास करनेवाली ॥८७॥ नवीन सुवर्णके समान

कांतिवाली, नागलोककी अधिदेवता, नूपुराक्रान्तचरणा, नरचित्त प्रमोदिनी॥८८॥ निमग्ना, रक्तनयना, निर्घात समनिस्वना(वज्रवत् शब्दवाली) नंदनवनमें स्थानवाली,निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥८९॥ (पकारादि १२५नाम) पार्वती,परमोदारा,परब्रह्मात्मिका,परा,पंचकोशसेनिमुक्त, पांच पातकोंकी नाशक ॥ ९० ॥ परचित्तके विधानकी ज्ञाता, पंचिका (श्रीविद्यामें दक्षिणा मूर्तिके सहित पूजित पंचिका देवतारूप) पंच रूपिणी, पूर्णिमा, परमा, प्रीति, परतेजप्रकाशिनी ॥९१॥ पुराणी पौरुषी (पुरुषार्थरूपा) पुण्डरीक (कमल) के समान नेत्रवाली, पातालतल निर्मग्ना, प्रीता, प्रीतिकी

निमग्ना रक्तनयना निर्घातसमनिस्वना नंदनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥ ८९ ॥ पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा ॥ पंचकोशविनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी ॥ ९० ॥ परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी ॥ पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजःप्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा ॥ पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी ॥ ९२ ॥ पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी ॥ प्रजापतिः परिश्रांता पर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसंभवा ॥ पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरंध्री पुरवासिनी ॥ पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा ॥ प्रज्ञावती सुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा पंक्ति पितृलोकप्रदायिनी ॥ पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी ॥ ९७ ॥

बढाने वाली ॥ ९२ ॥ पावनी (पवित्र करनेवाली) पाद सहिता (किरणयुक्त), पेशला, (श्रेष्ठ), पवन भोजिनी, प्रजापतिरूपा, परिशान्ता, पर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया, पद्ममें स्थिर, पद्माक्षी, पद्मसंभवा, पद्मपत्रा, पद्मपदा, पद्मिनी, प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशसे निर्मुक्त, पुरन्ध्री, पुरवासिनी, पुष्कला, पुरुषा, पर्वा, पारिजात कुसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रता, पवित्रांगी, पुष्पहास परायणा, प्रज्ञावती, सुता, पौत्री,पुत्र पूज्या, यशस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा, पंक्ति, पितृलोककी देनेवाली, पुराणी, पुण्यशीला, प्रणत पुरुषोंके दुःखनाश करने

वाली ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्न जननी, पुष्टा, पितामह परिग्रहा, पुंडरीकपुर (चिदम्बरक्षेत्र) में वास करनेवाली, पुण्डरीकके समान मुखवाली ॥ ९८ ॥ पृथुजंघा, पृथुभुजा, पृथुपादा, पृथदरी, प्रवाल शोभा, पिंगाक्षी, पीतवासा, प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसन्ना, पुष्टिदा, पुण्या, प्रतिष्ठा, प्रणवागतिः (स्तुति करनेवाले देवताओंको शरण देनेवाली) पंचवर्णा (विस्तृत वर्ण), पंचिका, देवता, पंजरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया, परज्योति, परप्रीति, परागति, पराकाष्ठा परेशानो पावनी, पावकद्युति (अग्निके समान कान्ति) ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा, परिच्छेद्या, पुष्पहासा, पृथूदरा,

प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा ॥ पुंडरीकपुरावासा पुंडरीकसमानना ॥९८॥ पृथुजंघा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी ॥ प्रवाल शोभा पिंगाक्षी पीतवासाः प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसन्ना पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः ॥ पंचवर्णा पंचवाणी पंचिका पंजरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः ॥ पराकाष्ठा परेशानी पाविनी पावकद्युतिः ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा परिच्छेदा पुष्पहासा पृथूदरी ॥ पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया ॥ पंचभक्षप्रियाचारा पूतना प्राणघातिनी ॥ ३ ॥ पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता ॥ पंचांगी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी ॥ ४ ॥ पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा ॥ पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायिनी ॥५॥ पंचमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी ॥ पुराणन्यायमीमांसा पाटलीपुष्पगंधिनी ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा ॥ प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी ॥ ७ ॥

पीतांगवाली, पीतवस्त्रवाली पीत शय्या वाली, पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीत क्रिया, पिशाचघ्नी, पाटलाक्षी, पटुक्रिया, पंचभक्ष प्रियाचारा (पंचमकारभक्षी वामियोंके आचारसे प्रसन्न) पूतना प्राणघातिनी ॥ ३ ॥ पुन्नागवनके मध्यमें स्थित, पुण्यतीर्थ निषेवित, पंचांगी, पराशक्ति, परमआह्लादकी करनेवाली ॥ ४ ॥ पुष्पकाण्डस्थिता, पूषा, पोषिताखिलविष्टपा (सब देवताओंकी रक्षक), पान प्रिया, पंचशिखा, पन्नगोंपर शयन करनेवाली ॥ ५ ॥ पंचमात्रात्मिका, पृथ्वी, पथिका पृथुदोहिनी, पुराण न्यायमीमांसारूप पाटली, पुष्प गंधवाली ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजापारदात्री,

परमागैकगोचरा, प्रवालवत् शोभावाली, पूर्णाशा, प्रणवरूपिणी, पल्लवोदरी ॥ ७ ॥ (फकारादि ७ नाम) फलिनी, फलदा, फल्गु, फूत्कारी फलकाकृति फणीन्द्रभोगपर शयन करनेवाली, फणिमंडलसे मंडित ॥ ८ ॥ (बकारादि ५० नाम) बालबाला (बालकसे भी बालक), बहुमता, बालसूर्यके समान वस्त्रवाली, बलभद्रप्रिया, वन्दनयोग्य, वडवाबुद्धिसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ९ ॥ वंदीदेवी बिलवती (छिद्रकर्मको देखने वाली) बडिशघ्नी (कपटनाशिनी) बलिप्रिया बांधवी बोधिता बुद्धिः बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालसूर्यकी प्रभाके समानआकारवाली, ब्राह्मी, ब्राह्मणोंकी देवता, बृहस्पतिसे स्तुतिको प्राप्त, वृन्दादेवीरूप वृन्दावनमें विहार करनेवाली ॥ ११ ॥ बालाकिनी (बलाकाओंके समूहवाली)

फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः ॥ फणीद्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता ॥ ८ ॥ बालबाला बहु मता बालातपनिभांशुका ॥ बलभद्रप्रिया वंद्या वडवा बुद्धिसंस्तुता ॥ ९ ॥ बंदीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया ॥ बांधवी बोधिता बुद्धिर्बंधूककुसुमप्रिया ॥११०॥ बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता ॥ बृहस्पतिस्तुता वृंदा वृंदावनविहारिणी॥११॥ बालाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका ॥ बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका ॥१२॥ बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी ॥ बिंदुनादकलातीता बिंदुनादस्वरूपिणी ॥१३॥ बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी ॥ वृंदारका बृहत्स्कंधा बृहती बाणपातिनी ॥१४॥ वृंदाध्यक्षा बहुनुता वनिता बहुविक्रमा ॥ बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता ॥ १५ ॥ बोधिद्रुमनिजा वासा बडिस्था बिंदुदर्पणा ॥ बाला बाणासनवती वडवानलवेगिनी ॥ १६ ॥

बिलाहारा (छिद्रनाशिनी) बिलवासा (गुहामें शयन करनेवाली) बहूदका, बहुनेत्रा बहुपदा, बहुतकर्णोंके भूषणवाली ॥ १२ ॥ बहुतबाहुओंसे युक्त, बीजरूपिणी, बहुरूपिणी, बिन्दुनादकी कलासे परे बिन्दुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा (गोधाके चर्मका अंगुली त्राण बाँधे) बद्रिकाश्रमनिवासिनी, वृन्दारकारूप बृहत्स्कन्धवाली, बृहती, बाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृन्दाध्यक्षा, बहुतोंसे स्तुतिकी हुई, वनिता, बहुविक्रमा, बद्धपद्मासनासीना, बिल्वपत्रके तलमें स्थित ॥ १५ ॥ बोधिद्रुम निजावासा, बडिस्था (बलिमें स्थित) बिन्दुदर्पणा अव्यक्तात्मके

दर्शनवाली बाला, बाणासनवती (धनुषधारिणी) वडवानलवेगिनी ॥ १६ ॥ ब्रह्माण्डके बाहर भीतरव्याप्त ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ब्रह्मविद्या देनेवाली (भकारादि ४० नाम) भवानी, भीषणवती, भाविनी, भयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकाली, भुजंगाक्षी, भारती, भारताशया, भैरवी, भीषणाकारा, भूतिदा, भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी, भोगनिरता, भद्रदा (कल्याणदा) भूरिविक्रमा, भूतत्रासा, भृगुलता, भार्गवी, भूसुरोंसे पूजित ॥ १९ ॥ भागीरथी, भोगवती, भवनस्था, भिषग्वरा, भामिनी, भोगिनी, भाषा, भवानी, भूरिदक्षिणा, ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका,

ब्रह्मांडबहिरंतःस्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ॥ भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया ॥ भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा ॥ भूतवासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता ॥१९॥ भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा ॥ भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥१२०॥ भर्गात्मिका भीमवती भवबंधविमोचिनी ॥ भजनीया भूतधात्री रंजिता भुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजंगवलया भीमा भेरुंडा भागधेयिनी ॥ माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना ॥ मायातीता मधुमती मधुमांसा मधुद्रवा ॥ २३ ॥ मानवी मधुसंभूता मिथिलापुरवासिनी ॥ मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥ २५ ॥ माहेंद्री मेरुतनया मंदारकुसुमार्चिता ॥ मंजुमंजीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥

भीमवती, भवबंधविमोचनी, भजनीया, भूतधात्री, भंजिता, भुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजङ्गोंके वलयवाली, भीमा, भेरुण्डा, भागधेयिनी, (मकारादि ५४ नाम) माता, माया, मधुमती, मधुजिह्वा, मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी, महाभागा, मालिनी, मीनलोचना, मायातीता, मधुमती, मधुमांसा, मधूद्रवा ॥ २३ ॥ मानवी, मधुसंभूता, मिथिलापुरवासिनी, मधुकैटभकी संहार करनेवाली, मेदिनी, मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरी, महामाया, मैथिली, मसृणप्रिया, महालक्ष्मी, महाकाली, महाकन्या, महेश्वरी ॥ २५ ॥ माहेन्द्री, मेरुतनया, मन्दारकुसुमार्चिता, मंजु, मंजीरच

रणा, मोक्षदा, मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥ मधुरद्राविणी, मुद्रा, मलया, मलयान्विता, मेधा, मरकतश्यामा, मागधी, मेनकात्मजा ॥ २७ ॥ महामारी, महावीरा, महाश्यामा, मनुस्तुता, मातृका, मिहिराभासा, मुकुन्दपदविक्रमा ॥ २८ ॥ मूलाधारमें स्थित, मुग्धा, मणिपुरनिवासिनी, मृगाक्षी, महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥ २९ ॥ (यकरादि २० नाम) योगासना, योगगम्या, यागा, यौवनकाश्रया, यौवनी, युद्धमध्यस्था, यमुना, युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी, योगयुक्ता, यक्षराजप्रसूतिनी, यात्रा, यानविधानकी ज्ञाता, यदुवंशसमुद्भवा, ॥ ३१ ॥ यकारसे

मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता ॥ मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा ॥ २७ ॥ महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता ॥ मातृका मिहिराभासा मुकुंदपदविक्रमा ॥ २८ ॥ मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी ॥ मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी ॥ २९ ॥ योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया ॥ यौवनी युद्धमध्यस्था यमुनायुगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी ॥ यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा ॥ ३१ ॥ यकारादिहकारांता याजुषी यज्ञरूपिणी ॥ यामिनी योगनिरता यातुधानभयंकरी ॥ ३२ ॥ रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः ॥ रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना ॥ राकेशी रूपसंपन्ना रत्नसिंहासनस्थिता ॥ ३४ ॥ रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगंधानुलेपना ॥ राजहंससमारूढा रंभारक्तवलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला ॥ रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका ॥ ३६ ॥

हकारपर्यन्त, याजुषी, यज्ञरूपिणी, यामिनी, योगनिरता, यातुधानोंको भयदेनेवाली ॥ ३२ ॥ (रकारादि ३७ नाम) रुक्मिणी, रमणी, रामा, रेवती, रेणुका, रति, रौद्री, रौद्रप्रियाकारा, राममाता, रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी, राज्यदा, रेवा, रमा, राजीवलोचना, राकेशी, रूपसंपन्ना, रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३४ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा, रक्तगंधका अनुलेपन लगाये, राजहंसपर चढी, रम्भा, रक्तबलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणी

यथुगाधारा राजिताखिलभूतला, रुरुका चर्म ओढनेवाली, रथिनी, रथमालिका, ॥ ३६ ॥ रोगेशी, रोगशमनी, राविणी, रोमहर्षिणी, रामचन्द्रपदाक्रान्ता, रावणकी नष्ट करनेवाली ॥३७॥ रत्न और वस्त्रोंसे परिच्छिन्न, रथमें स्थित, रुक्मभूषणवाली, (लकारादि १३ नाम) लज्जाधि देवता, लोला, ललिता, लिंगधारिणी ॥३८॥ लक्ष्मी, लोला, लुप्तविषा, लोकिनी, लोकविश्रुता, लज्जा, लम्बोदरीदेवी, ललना, लोकधारिणी, ॥ ३९ ॥ (वकारादि ३७ नाम) वरदा, वंदिता, विद्या, वैष्णवी, विमलाकृति, वाराही, विरजावर्षा, वरलक्ष्मी, विलासिनी ॥ १४० ॥

रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी ॥ रामचंद्रपदाक्रांता रावणच्छेदकारिणी ॥ ३७ ॥ रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा ॥ लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता ॥ लज्जा लंबोदरीदेवी ललना लोकधारिणी ॥ ३९ ॥ वरदा वंदिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः ॥ वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी ॥१४०॥ विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता ॥ वारुणी वेणुसंभूता वीतिहोत्रा विरूपिणी ॥४१॥ वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया ॥ विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी ॥ वेदाक्षरपरीतांगी वाजपेयफलप्रदा ॥ ४३ ॥ वासवी वामजननी वैकुंठनिलया वरा ॥ व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता ॥४४॥ शाकंभरी शिवा शांता शारदा शरणागतिः ॥ शातोदरी शुभाचारा शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती शिवा कारा शंकरार्धशरीरिणी ॥ शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरः संधानकारिणी ॥ ४६ ॥

विनता, व्योममध्यस्था, वारिजासनसंस्थिता, वारुणी, वेणुसंभूता, वीतिहोत्रा, विरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था, विष्णुरूपा, विधिक्रिया, विष्णुपत्नी, विष्णुमती, विशालाक्षी, वसुन्धरा ॥४२॥ वामदेवप्रिया, वेला, वज्रिणी, वसुदोहिनी, वेदाक्षरसे युक्त अङ्गवाली, वाजपेयका फलदेनेवाली ॥४३॥ वासवी, वामजननी, वैकुण्ठस्थानवाली, वरा, व्यासप्रिया, वर्मधरा, वाल्मीकिसे परिसेवित ॥४४॥ (शकारादि २९ नाम) शाकंभरी, शिवा, शान्ता, शारदा, शरणागति, शातोदरी, शुभाचारा, शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती, शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी, शोणा, शुभाशया,

शुभ्रा, शिरःसंधानकारिणी ॥४६॥ शरावती, शरानंदा, शरज्ज्योत्स्ना, शुभानना, शरभा, शूलिनी, शुद्धा, शबरी, शुकवाहना ॥४७॥ श्रीमती, श्रीधरानन्दा, श्रवणानन्ददायिनी, शर्वाणी, शर्वरी वंद्या, (षकारादि ५ नाम) षड्भाषा, षडृतुप्रिया, षडाधारस्थिता देवी (मूलाधारमें आदिमें स्थित देवियोंकी स्वामिनी, षण्मुखप्रियकारिणी, षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता (षडंगरूप देवताओंसे नमस्कृत) तथा असुरोंसे नमस्कृत ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ (सकारादि २७ नाम) सरस्वती सदाधारा, सर्वमंगलकारिणी, सामगानप्रिया, सूक्ष्मा, सावित्री, सामसंभवा ॥ १५० ॥ सर्ववासा, सदानन्दा. सुस्तनी, सागराम्बरा, सर्वैश्वर्यप्रिया, सिद्धि, साधुबंधु परा (पद) क्रमा, अपने भक्तोंके जो बांधव तिनमें विचरनेवाली

शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना ॥ शरभा शूलिनी शुद्धशबरी शुकवाहना ॥४७॥ श्रीमती श्रीधरानंदा श्रवणानंददायिनी ॥ शर्वाणी शर्वरीवंद्या षड्भाषा षडृतुप्रिया ॥ ४८ ॥ षडाधारस्थितादेवी षण्मुखप्रियकारिणी ॥ षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ॥ ॥ ४९ ॥ सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी ॥ सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसंभवा ॥ १५० ॥ सर्वावासा सदानंदा सुस्तनी सागरांबरा ॥ सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबंधुपराक्रमा ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलगता सोममंडलवासिनी ॥ सर्वज्ञा सांद्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ॥५२॥ सर्वोत्तुंगा संगहीना सद्गुणा सकलेष्टदा ॥ सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः ॥५३॥ हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी ॥ क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनया क्षमा ॥५४॥ गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती ॥ वेद गर्भा वरारोहा श्रीगायत्री परांबिका॥५५॥ इतिसाहस्रकं नाम्नां गयत्र्याश्चैव नारद॥ पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासंपत्तिदायकम्॥५६॥

अर्थात् अपने भक्तोंके भक्तोंमें दयावती ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलमें प्राप्त, सोममंडलवासिनी सर्वज्ञा, सान्द्रकरुणा, समानाधिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगा, संगहीना, सद्गुणा, सकलेष्टदा, सरघा[१](मधुमक्षिकारूप) सूर्यतनया, सुकेशी, सोमसंहति ॥ ५३ ॥ (हकारादि चारनाम) हिरण्यवर्णा, हरिणी, ह्रींकारी, हंसवाहिनी, (क्षकारादि तीन नाम) क्षौमवस्त्रपरीतांगी, क्षीराब्धितनया, क्षमा ॥ ५४ ॥ (गायत्री आदि आठ नाम मातृका क्रम रहित हैं) गायत्री, सावित्री, पार्वती, सरस्वती, वेदगर्भा, वरारोहा, श्रीगायत्री पराम्बिका ॥ ५५ ॥ हे नारद! यह गायत्रीके सहस्रनाम

पुण्यकारी पापनाशक महासम्पत्तिदायक हैं ॥ ५६ ॥ यह नाम गायत्रीके संतुष्ट करनेवाले हैं ब्राह्मणोंके सहित अष्टमीको पढने चाहिये ॥ ५७ ॥ जप होम पूजा और विशेषरूप ध्यान करके आराधन करे, यह गायत्री जिस किसीको न देनी चाहिये॥ ५८ ॥ सुभक्त सुशिष्य ब्राह्मणके निमित्त कहनी चाहिये भ्रष्टसाधक तथा बांधवोंको न दिखावे ॥ ५९ ॥ जिसके घरमें यह शास्त्र लिखा है उसको कुछ भय नहीं होता, चंचला लक्ष्मी उस स्थानमें स्थित होकर रहती है ॥६०॥ यह परम रहस्य गुप्तसे भी गुप्त है यह मनुष्योंको पुण्य और दारिद्रियोंको निधि देनेवाला है ॥ ६१ ॥

एवं नामानि गायत्र्यास्तोपोत्पत्तिकराणि हि ॥ अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह ॥ ५७ ॥ जपं कृत्वा होम पूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः ॥ ५८ ॥ सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै ॥ भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बांधवेभ्यो न दर्शयेत् ॥ ५९ ॥ यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित् ॥ चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥ १६० ॥ इदं रहस्यं परमं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम् ॥ ६१ ॥ मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम् ॥ रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयिनो नराः ॥ गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत् ॥६३॥ असत्प्रतिग्रहाच्चैवाऽभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः ॥ पाखंडानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते ॥ ६४ ॥ इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव ॥ ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मुमुक्षुओंको मोक्ष और कामियोंको सब कामना देनेवाला है, रोगी रोगसे बंधा हुआ बंधनसे मुक्त होजाता है ॥६२॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारे सुरापीनेवाले सुवर्णके चोर गुरुदारगामी हैं वह भी इसका जपकरके पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ६३ ॥ असत्य प्रतिग्रह और विशेषकर अभक्ष्यभक्षण करनेसे तथा पाखण्ड और असत्यके पापसे पढतेही छूटता है ॥ ६४ ॥ हे नारद ! यह निर्मल रहस्य आपसे कहा यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्यका देनेवाला है सत्य २ कहता हूं इसमें सन्देह नहीं ॥ १६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले मैंने गायत्री सहस्रनाम महापुण्यफल देनेवाला सुना जो स्तोत्र महा उन्नति करनेवाला, महाभाग्य करनेवाला है ॥ १ ॥ अब दीक्षालक्षण सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके विना देवीमंत्रमें अधिकार सिद्ध नहीं होता ॥ २ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियोंको सामान्य विधि और विस्तारसे कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले भावितात्मा शिष्योंको दीक्षाविधान कहता हूं जिससे देव अग्नि गुरु पूजाकी विधिमें जिस प्रकार अधिकार हो ॥ ४ ॥ जो दिव्य ज्ञान दे तथा पापक्षय करै विद्या विशार

श्रीनारद उवाच॥श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम् ॥ स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम्॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम् ॥ विना येन न सिध्येत देवीमन्त्रेऽधिकारिता ॥ २ ॥ ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च ॥ सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भावितात्मनाम् ॥ देवाग्निगुरुपूजादावधिकारो यथा भवेत् ॥ ४ ॥ दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या ॥ सैव दीक्षेति संप्रोक्ता वेदतंत्रविशारदैः ॥ ५ ॥ अवश्यं सा तु कर्तव्या यतो बहुफलामता ॥ गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ६ ॥ गुरुस्तु विधिवत्प्रातःकृत्यं सर्वं विधाय च ॥ स्नानसंध्यादिकं सर्वं यथाविधि विधाय च ॥ ७ ॥ कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात्॥यागमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे ॥ ८ ॥ आचम्य प्राणानायम्य गंधपुष्पविमिश्रितम् ॥ सप्तवारास्त्रमन्त्रेण जलं वारि सुसाधयेत् ॥ ९ ॥ वारिणा तेन मतिमानस्त्रमन्त्रं समुच्चरन् ॥ प्रोक्षयेद्द्वारमखिलं ततः पूजां समाचरेत् ॥ १० ॥

दोनोंने उसीका नाम दीक्षा कहा है ॥ ५ ॥ यह अवश्यकरनी चाहिये जिससे वह फल अधिक देनेवाली है इसमें गुरुशिष्योंकी शुद्धि अधिक अपेक्षित है ॥ ६ ॥ गुरु विधिपूर्वक सब प्रातःकृत्य करके संध्यास्नानादि सब यथाविधि विधानकर ॥ ७ ॥ कमंडलु हाथमें लिये मौनी हो सरित्के किनारेसे घर आजाय फिर यागमण्डपमें प्राप्त हो वर आसनमें स्थित हो ॥ ८ ॥ आचमन कर प्राणायामपूर्वक गंध पुष्पसे युक्त सातवार फट् अस्त्रमंत्रसे जलको साधन करे ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् उस जलसे अस्त्रमंत्रको उच्चारण

करता हुआ मण्डपके द्वारेको प्रोक्षण कर फिर पूजा आरंभ करै ॥ १० ॥ द्वारके ऊर्ध्वफलके प्रथम प्रान्तमें गणनाथ मध्यमें लक्ष्मी और दूसरेमें सरस्वतीकी मंत्रपूर्वक धूप दीपसे पूजा करै ॥ ११ ॥ दक्षिणद्वारकी शाखामें गंगा और विघ्नेशकी पूजा करै द्वारकी वाम शाखामें क्षेत्रपाल और यमुनाकी पूजा करै ॥१२॥ देहलीमें अस्त्रदेवताकी फट् मंत्रसे पूजा करै सब प्रकारसे यह चिन्ता करै यह दृश्य सब देवीमय है सब जगह पूजै ॥ १३ ॥ इस मंत्रके जपसे दिव्य विघ्नोंको दूर करै अस्त्रमंत्रके जपसे अन्तरिक्ष और पादाघातसे भूमिके विघ्नोंको दूर करै ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वोदुंबरके देवं गणनाथं तथा श्रियम् ॥ सरस्वतीं नाममन्त्रैः पूजयेद्गंधपुष्पकैः ॥ ११ ॥ द्वारदक्षिणशाखायां गंगां विघ्नेशमर्चयेत् ॥ द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजाम् ॥ १२ ॥ देहल्यां पूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमन्त्रतः ॥ सर्वं देवीमयं दृश्यमिति संचिंत्य सर्वतः ॥ १३ ॥ दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमन्त्रजपेन तु ॥ अंतरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तु भूमिगान् ॥ १४ ॥ वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणांघ्रिणा ॥ प्रविश्य कुंभं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ १५ ॥ तेन चार्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् ॥ वास्तुनाथं पद्मयोनिं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १६ ॥ ततः कुर्यात्पंचगव्यं तेन चार्घ्योदकेन च ॥ तोरणस्तंभपर्यंतं प्रोक्षयेन्मण्डपं गुरुः ॥ १७ ॥ सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल ॥ मूलमंत्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना ॥ १८ ॥ शरमन्त्रं समुच्चार्य ताडयेन्मण्डपक्षमाम् ॥ हुं मंत्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥ १९ ॥

वाम शाखाको स्पर्शकरता हुआ पीछे दक्षिण चरणके चौखटके उस पार प्रवेशकर मंडपमें जाय सामान्य अर्घ्यदे कुंभस्थापन करै ॥ १५ ॥ ... अर्घ्यदानके पश्चात् नैर्ऋत्य दिशामें पूजा करै वास्तोष्पति और ब्रह्मा इनकी गंध पुष्प अक्षतादिसे पूजा करै ॥ १६ ॥ फिर उस ... पंचगव्य करै तोरणस्तंभपर्यन्त गुरु मंडपका प्रोक्षण करै ॥ १७ ॥ और मनसे भावना करै कि,यह सब देवीमय है,भक्तिसे ... और अस्त्रमंत्रसे प्रोक्षण करै ॥ १८ ॥ शरमंत्र (फट्) का उच्चारण करके मण्डपकी भूमिको ताडन करै हुं

मंत्रका उच्चारण कर अभ्युक्षण (सेक) करै ॥ १९ ॥ अन्तर धूपोंसे धूपित करे विकरोंको विकारित करै, जल, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वांकुर, अक्षत यह विकिर सब विघ्नोंके नाशक हैं। कुशके पुञ्जोंसे मार्जनी बनाय मार्जन करै ॥ २० ॥ हे मुने ! उस पुञ्जको ईशान दिशामें करके मार्जनकरै और पुण्याहवाचन करके दीन और अनाथोंको सन्तुष्ट करै ॥ २१ ॥ फिर अपने गुरुको प्रणामकर मृदु आसनपर बैठे विधिपूर्वक पूर्व मुखकर ध्यानकर मंत्रके देवताका ध्यानकर ॥ २२ ॥ पूर्वोक्तप्रकारसे भूतशुद्धि आदि करके ऋषि आदिका न्यास करके मंत्र देना

धूपयेदंतरं धूपैर्विकिरान्विकिरेत्ततः ॥ मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः ॥२०॥ ईशानदिशि तत्पुंजं कृत्वा संस्थापयेन्मुने ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वा दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥२१॥ विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम् ॥ प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमंत्रस्य देवताम् ॥ २२ ॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमन्त्रस्य वै मुने ॥ २३ ॥ न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छन्दः समीरितम् ॥ देवतां हृदयांभोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः ॥ २४ ॥ शक्तिं विन्यस्य पश्चात्तु तालत्रयरवात्ततः ॥ दिग्बन्धं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः ॥ २५ ॥ प्राणायामन्ततः कृत्वा मलमंत्रमनुस्मरन् ॥ मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥ २६ ॥ ॐ अं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित् ॥ एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने ॥ २७ ॥ मूलमन्त्रं षडंगं च न्यसेदंगेषु सत्तमः ॥ अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु हृदयादिषु च क्रमात् ॥ २८ ॥ नमः स्वाहावषडचुक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः ॥ प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडंगकम् ॥ २९ ॥

चाहिये ॥ २३ ॥ मंत्रके ऋषिको शिरमें मुखको छन्दमें देवताको हृदयमें बीजको गुह्यमें शक्तिको ॥ २४ ॥ चरणोंमें न्यास करके पीछे तीन ताली वजाय, फिर तीन चुटकी वजाकर दिग्बंधन करै ॥ २५ ॥ फिर प्राणायामकर मूलमंत्रका उच्चारण करते हुए देहमें मातृकान्यास करै उसका प्रकार कहते हैं ॥ २६ ॥ ओं अंनमः कहकर शिरमें न्यास करै ओं आंनमः ओं इंनमः आदिसे हे मुने ! सब स्थानोंमें न्यास करै ॥२७॥ जो शिष्यको मंत्र दियाजाय उसका षडंगन्यास करै अंगुली और हृदयादि क्रमसे न्यास करै॥२८॥जैसे हृदयाय

नमः शिरसेस्वाहा शिखायैवषट् कवचायहुम् नेत्रत्रयायवौषट् अस्त्रायफट् इस रीतिसे करे इस प्रकार करके ॥ २९ ॥ फिर मूलमंत्रसे यथायोग्य वर्णन्यास करै उन सब स्थानोंमें करै यही न्यासकी विधि है ॥ ३० ॥ फिर अपने शरीरमें आसनकी कल्पना कर दहिनी ओर धर्म बायेंमें ज्ञानका न्यास करै ॥ ३१ ॥ बाईं ऊरुमें वैराग्य, दहिनीमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्मका न्यास करै ॥ ३२ ॥ यथा वामपार्श्वमें अधर्मायनमः नाभिमें अवैराग्यायनमः दक्षिणपार्श्वमें अज्ञानायनमः अनैश्वर्य्यायनमः यह पढै ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पीठके धर्मादि पाद हैं

वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमंत्रस्य योजयेत्॥स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः ॥३०॥ ततो निजे शरीरेऽस्मिश्चितये दासनं शुभम् ॥ दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वामांसे ज्ञानमेवच ॥३१॥ वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत्॥ऐश्वर्यं मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम् ॥३२॥वामपार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः॥ नत्रादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत् ॥३३॥पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम॥ अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुंगवैः ॥३४॥ मध्येऽनंतं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले॥ प्रपंचपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥ ३५ ॥ न्यसेत्कलायुतान्मत्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम् ॥ सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इंदोः षोडश स्मृताः ॥ ३६ ॥ दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तु तान्स्मरेत् ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषाम थोपरि ॥ ३७ ॥ आत्मानमंतरात्मानं परमात्मानमेव च ॥ ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वानित्थं पीठस्य कल्पना ॥ ३८ ॥ अमु कासनाय नम इति मंत्रेण साधकः ॥ आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्परांबिकाम् ॥ ३९ ॥

और अधर्मादि अंग मुनियोंने स्मरण किये हैं ॥ ३४ ॥ पीठ (पलंग) पर अनन्तका न्यास करे अनन्तमें प्रपंच कमलका ध्यान करै कमलमें सूर्य चन्द्र और अग्निका ध्यान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ सबको कलासहित न्यास करै उनकी कला संक्षेपसे कहते हैं सूर्यकी बारह और चन्द्रमाकी सोलह कला हैं ॥ ३६ ॥ अग्निकी दश कला हैं इनसे युक्त स्मरण करै इसके उपरान्त सत्वादि गुणोंका न्यास करै ॥ ३७ ॥ आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा इनका न्यास पूर्वादि दिशाओंमें करै, इस प्रकार पीठ (आसन) की कल्पना है ॥ ३८ ॥ अमुकासनाय

नमः इससे साधक आसनकी पूजा करै फिर पराम्बिकाका ध्यान करै ॥ ३९ ॥ जो मंत्र देना है उस देवताकी कल्पकी विधिसे मानसी पूजा करकै ॥ ४० ॥ विद्वान् कल्पमें कही आनन्ददायक मुद्रा दिखावै जिनको दिखानेसे देवी बहुत प्रसन्न होती है ॥ ४१ ॥ नारायण बोले फिर अपने वामभागमें षट्कोण करै फिर गोलाकार बनावै उसपर चौकोन चन्दनसे बनावै ॥ ४२ ॥ उसके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा दिखावै, फिर छहों कोनोंमें देनेवाले मन्त्रके षडंगोंकी फूलोंसे पूजा करै ॥४३॥ यह अग्नि आदिकोणमें षडंग पूजा करै फिर शंखके

कल्पोक्तविधिना मंत्री देवमन्त्रस्य देवताम् ॥ मानसैरुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि ॥ ४० ॥ मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदकारिकाः ॥ याभिर्विरचिताभिस्तु मोदो देव्यास्तु जायते ॥ ४१ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम् ॥ चतुरस्रयुतं सम्यङ्मध्ये मण्डलमालिखेत् ॥ ४२ ॥ मध्ये त्रिकोणं संलिख्य शंखमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ षडंगानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः ॥ ४३ ॥ अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडंगार्चनमाचरेत् ॥ आधारपात्रमादाय शंखस्य मुनिसत्तम ॥ ४४ ॥ अस्त्रमंत्रेण संप्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मंडले ॥ मं वह्निमंडलायोक्त्वा ततो दशकलात्मने ॥ ४५ ॥ अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि ॥ मंत्रोऽयमुक्तः शंखस्याप्याधारस्थापने बुधैः ॥ ४६ ॥ आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु ॥ दश वह्निकलाः पूज्या वह्निमंडलसंस्थिताः ॥ ४७ ॥ ततो वै मूलमंत्रेण प्रोक्षितं शंखमुत्तमम् ॥ स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमंत्रमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥

नीचेके आधारपात्रको लेकर हे मुनिराज ! ॥ ४४ ॥ फट् इस अस्त्र मंत्रसे उनको प्रोक्षणकर उस मंडलमें स्थापन करै मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने दुर्गा देव्यर्घ्यपात्र स्थापनाय नमः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह शंखके आधारपात्रके स्थापनका मंत्र है आधारमें पूर्वादिदिशाके क्रमसे अग्निकी दशकलाओंकी पूजा करै ॥ ४७ ॥ फिर मूलमन्त्रसे शंखको प्रोक्षण कर मूलमंत्रको स्मरण करते हुए उस आधारमें स्थापन करै ॥४८॥

अं सूर्य मंडलाय द्वादशकलात्मने दुर्गादेव्यर्घपात्रायनमः यह मंत्र उच्चारण करें ॥ ४९ ॥ फिर शं शंखायनमः यह मंत्र पढ़कर शंखपर जल छिडकै उसमें बारह कलाका पूजन करें ॥ ५० ॥ सूर्यकी जो तापिनी आदि बारह कला हैं उनको यथाक्रमसे पूजै उलटी मातृका और मूलमंत्र पढके ॥ ५१ ॥ जलसे शंखको पूर्णकर उसमें सोमकलाका न्यास करे ॐ सोममंडलाय षोडशकलात्मने दुर्गादेव्यर्थार्घामृताय हृदयायनमः इस मंत्रसे कुशमुद्रासे जलकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसमें तीर्थोंका आवाहन

अं सूर्यमंडलायोक्त्वा द्वादशांते कलात्मने ॥ अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः॥ ४९ ॥ शं शंखाय पदं प्रोच्य नम इत्येतदुच्चरेत् ॥ प्रोक्षयेत्तेन तं शंखं तस्मिन्द्वादश पूजयेत् ॥ ५० ॥ सूर्यस्य द्वादशकलास्तपिन्याद्या यथाक्रमम् ॥ विलोममातृकां प्रोच्य मूलमंत्रं विलोमकम् ॥ ५१ ॥ जलैरापूरयेच्छंखं तत्र चेंदोः कलां न्यसेत् ॥ उं सोममंडलायोक्त्वांते षोडशकलात्मने ॥५२॥ अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मंत्रांतो मनुः स्मृतः ॥ पूजयेन्मनुना तेन जलं तु सृणिमुद्रया ॥५३॥ तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्टकृत्वोजपेन्मनुम् ॥ षडंगानि जले न्यस्य हृदांसे पूजयेदपः ॥५४॥ अष्टकृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे शंखस्य प्रोक्षणीं न्यसेत् ॥५५॥ शंखांबु किंचिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः ॥ पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः ॥ ५६ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमंडलम् ॥ संलिख्य कर्णिकामध्यं पूरयेच्छालितंडुलैः ॥ ५७ ॥ आस्तीर्य दर्भास्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वंतमर्चयेत् ॥ ५८ ॥

कर आठवार देय मन्त्रको जपकर जलमें षडंग न्यासकर हृदा इस मंत्रसे जलकी पूजा करें ॥ ५४ ॥ आठवार मन्त्र जपकर मत्स्यमुद्रासे उसको आच्छादन करे फिर उसके दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी धर दे ॥५५॥ फिर शंखसे कुछ जल लेकर उससे सब ओर प्रोक्षण करे, फिर पूजाद्रव्य और अपनेको विशुद्ध भावना करे ॥ ५६ ॥ नारायण बोले फिर अपने आगे वेदीमें सर्वतोभद्र मण्डल लिखकर जडहनके चावलसे उसकी कर्णिकाको रित करे ॥ ५७ ॥ वहां कुशाओंको फैलाकर २७ कुशोंका कूर्च बनाय स्थापित करे आधारशक्तिसे आरम्भकर

मंत्रान्ततक पीठकी पूजा करे ॥ ५८ ॥ फिर छिद्ररहित सुन्दर कलश स्थापनकर फट् मन्त्र पढकर जलसे पोंछे फिर तीन भागके लाल डोरेसे उसे लपेटे ॥ ५९ ॥ नवरत्न कूर्च गन्धादि उसमें डाले डालनेके समय ॐकार मन्त्र पढै और उसपर स्थापन करे ॥ ६० ॥ कुम्भको पीठ पर धर उसकी एकत्वभावना करे और क्षकार से ले अकारपर्यन्त उलटे अक्षर पढ कर कुंभको पीठपर धर ॥ ६१ ॥ तीर्थजलसे पूरित करे और मूलमंत्र जपै अश्वत्थ पनस आमके कोमल नवीन पत्तोंसे ॥६२॥ घटका मुख ढकदे उसपर चषक फल और अक्षत रखकर बुद्धिमान् दो

निर्व्रणं कुंभमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितांतरम् ॥ तंतुना वेष्टयेत्तंतुत्रिगुणेनारुणेन च ॥ ५९ ॥ नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गंधादिपूजितम् ॥ स्थापयेत्तत्र पीठे तु तारमंत्रेण देशिकः ॥६०॥ ऐक्यं कुंभस्य पीठस्य भावयेत्पूरयेत्ततः ॥ मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने ॥ ६१ ॥ मूलमंत्रं च संजप्य पूरयेद्देवताधिया ॥ अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः ॥ ६२ ॥ छादयेत्कुंभवदनं चषकं सफलाक्षतम् ॥ संस्थापयेत मतिमान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ६३ ॥ प्राणस्थापनमंत्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् ॥ आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद् देवतां पराम् ॥६४॥ ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः ॥ स्वागतं कुशलप्रश्नं देव्या अग्रे समुच्चरेत् ॥ ६५ ॥ पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाचमनीयकम् ॥ मधुपर्कं च साभ्यंगं देव्यै स्नानं निवेदयेत् ॥६६॥ वाससी च ततो दद्याद्रक्तक्षौमे सुनिर्मले ॥ नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः ॥ ६७ ॥

वस्त्रोंसे वेष्टन करे ॥ ६३ ॥ प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रोंसे उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे आवाहनादिमुद्रा दिखाकर देवताको प्रसन्न करे ॥ ६४ ॥ और कल्पोक्त प्रकारसे उस परमेशानीका ध्यान कर देवीके आगे स्वागत कुशल प्रश्न करे ॥ ६५ ॥ पाद्य अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, अभ्यंग स्नान यह देवीके निवेदन करे ॥ ६६ ॥ फिर लाल अलसीके निर्मल वस्त्र प्रदान करे जो अनेक मणियोंसे युक्त हों परन्तु अकल्पोंकी कल्पना न

१ ह्रीं मं ह्रीं क्रीं मां ह्रीम् इत्यादि मन्त्र हैं.

करे ॥६७॥ मातृका वर्णोंसे संपुटित हुए मन्त्रसे भलीभांति पूजा करे. फिर देवीके अंगमें चन्दनादि लगावे ॥ ६८ ॥ काले अगर और कपूरकी गंध केशर चन्दन कस्तूरीके सहित हे मुने ! ॥६९॥ फिर कुन्दादिके फूल देवीको निवेदन करे अगर कपूर उशीर चन्दन शर्करा इसकी धूप ॥७०॥ मधु डालकर दे यह धूप देवीको बहुत प्रिय है फिर अनेक दीपक देकर बुद्धिमान् नैवेद्य दे ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यके पीछे प्रोक्षणीयपात्रको स्थापन करे फिर कल्पके कहे आवरणोंके अनुसार अंगपूजा करे॥७२॥भली प्रकार सांग देवीका अर्चनकर वैश्वदेव करे. वह इस प्रकार है कि दक्षिण और चौतरा

मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया विधानतः ॥ देव्या अंगेषु विन्यस्य चंदनाद्यैः समर्चयेत् ॥ ६८ ॥ गंधः कालागरुभवः कर्पूरेण समन्वितः ॥ काश्मीरं चंदनं चापि कस्तूरीसहितं मुने ॥ ६९ ॥ कुंदपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत् ॥ धूपोऽगरुपुरुत्रातो शीरचंदनशर्कराः ॥ ७० ॥ मधुमिश्राः स्मृता देव्याः प्रिया धूपात्मना सदा ॥ दीपाननेकान्दत्त्वाथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः ॥७१॥ प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा ॥ ततः कुर्यादंगपूजां कल्पोक्तावरणानि च ॥ ७२ ॥ सांगां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत् ॥ दक्षिणे स्थंडिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम् ॥ ७३ ॥ मूर्तिस्थां देवतां तत्राऽऽवाह्य संपूज्य च क्रमात् ॥ तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमंत्रेण वै ततः ॥ ७४ ॥ पंचविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा ॥ हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने ॥ ७५ ॥ गंधाद्यैरर्चयित्वा च देवी पीठे तु योजयेत् ॥ वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरेद्बलिम् ॥ ७६ ॥ देवतायाः पार्षदेभ्यो गंधपुष्पादिसंयुतान् ॥ पंचोपचारान्दत्त्वाथ तांबूलं छत्रचामरे ॥ ७७ ॥

बनाकर उसमें अग्नि स्थापन करै ॥७३॥ उसमें मूर्तिमें स्थित देवताका आवाहन कर क्रमसे पूजन करै फिर ॐकार सहित व्याहृतियोंसे मूल मन्त्र पढकर आहुती दे ॥ ७४ ॥ पायस (खीर) और घृतकी २५ आहुती दे. हे मुने ! फिर अन्य साकल्यसे व्याहृतियोंसे आहुती दे ॥ ७५ ॥ फिर गंधादिसे पूजाकर देवीको आसनपर बैठावै फिर अग्निको विसर्जन कर सब ओरसे बलि बखेर दे ॥ ७६ ॥ देवताके पार्षदोंको गंधपुष्पादि संयुक्त पंच उपचारसे पूजन कर ताम्बूल छत्र चामर देकर ॥ ७७ ॥

देवीके आगे सहस्र वार मंत्र जपै फिर ईशानी देवीको जप समर्पण कर ईशानकोणमें॥७८॥कर्करीको रख उसपर दुर्गाको आवाहनकर पूजै और रक्ष रक्ष इस प्रकार उच्चारण कर नालसे छोडे जलसे ॥७९॥ फट् मन्त्र पढकर सब भूमि सींचदे फिर वहां कर्करीको स्थापन कर अस्त्रदेवताकी पूजा करै ॥८०॥ पीछे गुरु शिष्यके साथ मौन हो भोजन करै उस रात्रिको यत्नपूर्वक उसी वेदीमें शयन करै ॥ ८१ ॥ नारायण बोले हे मुने ! अब स्थंडिल और कुंडके संस्कार कहते हैं, वह संक्षेपसे यथान्याय विधानसे कहताहूं ॥८२॥ मूलमंत्र उच्चारण कर कुंड देखै फट् मंत्रसे प्रोक्षण करै

दद्यादेव्यै ततो मंत्रं सहस्रावृत्तितो जपेत् ॥ जपं समर्प्य चैशान्यां विकिरे दिशि संस्थिते ॥ ७८ ॥ कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ॥ रक्ष रक्षेति चोच्चार्य्य नालमुक्तेन वारिणा ॥७९॥ अस्त्रमंत्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम् ॥ कर्करीं स्थापयेत्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम् ॥८०॥ पश्चाद्गुरुस्तु शिष्येण सह भुंजीत वाग्यतः॥तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥८१॥नारायण उवाच॥ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थंडिलस्य च वा मुने॥प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः ॥८२॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु ॥८३॥ अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्रस्तिस्रस्ततः परम्॥प्रागग्रा उदगग्राश्च लिखेल्लेखाः समंततः ॥ ८४ ॥ प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमंत्रावसानकम् ॥ ८५ ॥ तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ ॥ गंधाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः ॥ ८६ ॥

और उसी (हुं) कवचसे ताडन करै ॥ ८३ ॥ फिर तीन २ वार जलसे सींचकर पूर्व पश्चिमभागमें तीन तीन रेखा लिखै ॥ ८४ ॥ फिर प्रणवसे प्रोक्षण कर देवीके सिंहासनकी पूजा करै आधारशक्तिसे आरंभ कर पीठमन्त्रपर्यन्त पूजै अर्थात् आधारशक्तये नमः अमुकदेवीपीठाय नमः कहकर पूजा करै ॥ ८५ ॥ उस पीठपर शिव पार्वतीका आवाहन कर गंधादि उपचारोंसे सावधान हो पूजन करै ॥ ८६ ॥

स्नानकिये शंकरसहित देवीका ध्यान करै कि ऋतुस्नाता होकर शंकरमें सकाम मन लगाये हैं इस प्रकार कुछ काल उनकी क्रीडाको ध्यान करै ॥ ८७ ॥ फिर पात्रमें अग्नि लाकर सन्मुख धरै क्रव्याद अंशको छोडकर पूर्वोक्त सब वीक्षणादि करै ॥ ८८ ॥ अच्छी प्रकार संस्कार कर रंबीजका उच्चारण कर सातवार प्रणवका उच्चारण कर उसमें चैतन्यतासंयुक्त करै ॥ ८९ ॥ फिर गुरु धेनुमुद्रा दिखावै फट् मंत्रसे रक्षा करके हुं मन्त्रसे अवगुंठित करै ॥ ९० ॥ इस प्रकार गंधादिसे पूजा कर अग्निकुण्डपर तीनवार घुमाय कुंडके

देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शंकरेण तु ॥ कामातुरां तयोः क्रीडां किंचित्कालं विभावयेत् ॥ ८७ ॥ अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत् ॥ क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः ॥८८॥ संस्कृत्य वह्निं रंबीजमुच्चार्य तदनंतरम्॥ चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥ ८९ ॥ सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां संदर्शयेद्गुरुः ॥ शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुंठयेत् ॥ ९० ॥ आचतं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिण्येन सत्तमः ॥ कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः ॥ ९१ ॥ शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत् ॥ आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदंबिकाम् ॥ ९२ ॥ चित्पिंगलहनदहपचयुग्मं ततः परम् ॥ सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहामन्त्रोऽयं वह्निदीपने ॥ ९३ ॥ अग्निं प्रज्वलितं वंदे जातवेदं हुताशनम् ॥ सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ ॥ ९४ ॥ मन्त्रेणानेन तं वह्निं स्तुवीत परमादरात् ॥ ततो न्यसेद्वह्निमंत्रं षडंगं देशिकोत्तमः ॥ ९५ ॥ सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः ॥ धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात् ॥ ९६ ॥

निकट ओंकार जपता हुआ जाँघोंसे महीतलको स्पर्श करता हुआ ॥ ९१ ॥ शिवका वीर्य प्रकृतिमें गिरता है ऐसा समझ कर योनिरूप कुण्डमें अग्नि निक्षेप करै फिर शिवा और शिवको आचमन करावै ॥ ९२ ॥ हन २ दह २ पच २ सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा यह अग्निदीपनका मंत्र है ॥ ९३ ॥ जातवेद हुताशन प्रदीप्त अग्निको प्रणाम करता हूं जो सुवर्णके समान निर्मल सब ओर प्रदीप्त हैं ॥ ९४ ॥ इस मन्त्रसे परम आदरसे अग्निकी स्तुति करै फिर अग्निमंत्रसे षडंगन्यास करै ॥ ९५ ॥ अंग यह है सहस्रार्चिः स्वस्ति

पूर्ण उत्तिष्ठ पुरुष धूमव्यापी सप्तजिह्व धनुर्धर यह क्रमसे अंग हैं ॥ ९६ ॥ यह जातियुक्त षडंग हैं इनका पूर्वोक्त प्रकारसे न्यास करै अर्थात् जातियुक्ताय नमः स्वाहा वषट्हुं वौषट् फट् यह पद लगावै ॐसहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा इत्यादि मंत्र जानना ॥ ९७ ॥ वरमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभयमुद्रा धारक परममंगल है फिर मंत्रका ज्ञाता कुण्डमेखलापर सिंचन करै ॥ ९८ ॥ फिर परिधीमें कुशा बिछा फिर त्रिकोण षट्कोण अष्टपत्र ॥ ९९ ॥ इस प्रकार अग्नियंत्र जाने तिसके मध्यमें नीचे लिखे मंत्रसे अग्निकी पूजा

जातियुक्ताः षडंगाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ इष्टशक्तिस्वस्तिकाभी धारकं मंगलं परम् ॥ परिषिंचेत्ततः कुण्डं मेखलोपरिमन्त्रवित् ॥ ९८ ॥ दर्भैः परिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ ॥ त्रिकोणवृ त्तषट्कोणसाष्टपत्रं सभूपुरम् ॥९९॥ यंत्रं विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिपेदथ ॥ तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मंत्रेणानेन वै मुने ॥ १०० ॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चादिहावह ॥ लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय ॥ १ ॥ वह्निजायांतको मंत्रस्तेन वह्निं तु पूज येत् ॥ मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गगना तथा ॥२॥ रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपाऽतिरक्तिका ॥ पूजयेत्सप्त जिह्वास्ता केसरेष्वंगपूजनम् ॥ ३ ॥ दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिः स्वस्तिकधारिणीः ॥ जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च ॥ ४ ॥ अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥ कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ॥ ५ ॥ तारादये पदाद्याः स्युर्नत्यता वह्निमूर्तयः ॥ लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ ६ ॥

करै ॥१००॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चात् इह आवह लोहिताक्षपद सबकार्योंको साधन करो ॥ १ ॥ यह वह्निजायान्त मंत्र है इससे अग्निकी पूजाकरै छहों कोनोंके मध्यमें हिरण्या, गगना ॥२॥ रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा अतिरिक्तका इस प्रकारसे अग्निकी सात जिह्वा ओंका पूजन करके केसरोंसे अंगोंका पूजन करै ॥ ३ ॥ दलोंके मध्यमें स्वस्तिकधारिणी शक्तिका पूजन करै जातवेदा सप्तजिह्व हव्यवाहन ॥ ४ ॥ अश्वोदरजसंज्ञ वैश्वानर कौमारतेजा विश्वमुख वेदमुख ॥५॥ " ॐ अग्नयेजातवेदसेनमः " इसप्रकार इनके मंत्र जाने और सब ओर

वज्रादि आयुध लिये लोकपालोंकी पूजा करै ॥ ६ ॥ नारायण बोले फिर स्रुक् आज्यसंस्कार कर होम करै. स्रुवसे घृतलेकर होम करै ॥७॥ और घृतके दक्षिणभागमें अग्निके दक्षिण नेत्रमें हुनै ॐ अग्नयेस्वाहा इसमंत्रसे होम करै ॥८॥ सोमायस्वाहा इससे मध्यभाग घृतसे अग्नीषोमाभ्यांस्वाहा इससे मध्य नेत्रमें हुनै ॥ ९ ॥ फिर दक्षिणभागसे घृतलेकर अग्निके मुखमें अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा इससे होम करे ॥ १० ॥ फिर ॐभूर्भुवः स्वाहा इत्यादिसे आहुतीकरै फिर तीनवार पूर्वोक्त अग्निमंत्रसे आहुती दे ॥ ११ ॥ फिर प्रणवमंत्रसे आठ घीकी आहुती दे

नारायण उवाच ॥ ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च ॥ कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम् ॥ ७ ॥ दक्षिणाद् घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने ॥ जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः ॥ ८ ॥ सोमाय स्वाहेति मध्याद् घृतमादाय सत्तम ॥ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः ॥ ९ ॥ पुनर्दक्षिणभागात्तु घृतमादाय वै मुखे ॥ अग्नये स्विष्टकृत्स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः ॥१०॥ सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः ॥ जुहुयादग्निमंत्रेण त्रिवारं तु ततः परम् ॥ ११ ॥ ततस्तु प्रणवेनैवाऽप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः ॥ गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने ॥ १२ ॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं ततः ॥ जातकर्म नामकर्मात्युपनिष्क्रमणं तथा ॥ १३ ॥ अन्नाशनं तथा चूडा व्रतबंधस्तथैव च ॥ महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथौपनिषदं व्रतम् ॥ १४ ॥ गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्कारः श्रुतिचोदिताः ॥ ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ १५ ॥ जुहुयात्पंच समिधो वह्निमुद्दिश्य साधकः ॥ पश्चादावरणानां येकैकामाहुतिं हुनेत् ॥१६॥ घृतं स्रुचिसमादाय चतुर्वारं स्रुवेण च ॥ पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने ॥ १७ ॥

हे मुने ! इसप्रकार गर्भाधानादि संस्कार करनेके अर्थ हुनै ॥ १२ ॥ वे ये हैं गर्भाधान, पुँसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण ॥ १३ ॥ अन्नप्राशन, चूडाकरण व्रतबंध महानाम्न्य, औपनिषद॥१४॥ गोदान,विवाह यह श्रुतिकथित कर्म है फिर शिव पार्वतीका पूजनकर विसर्जन, करे ॥१५॥ और अग्निके उद्देशसे साधक पांच समिधा हवन करै फिर एक एक आवर्णकी आहुति दे ॥१६॥ फिर स्रुवसे चार

वार घृत लेकर अपने आसनमें स्थित हुआ आहुति दे ॥१७॥ फिर अग्निके वौषट् मंत्रपूर्वक महागणेशके मंत्रसे दश आहुति दे ॐ ॐ स्वाहा १ ॐ श्रींस्वाहा २ ॐश्रीं ह्रीं स्वाहा ३ ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा ४ ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा ५ ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गंस्वाहा ६ ॐश्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गंगणपतये स्वाहा ७ धरवरद८ सर्वजनं मे वशं९ आनय स्वाहा१०यह दश आहुति हैं॥१८॥फिर अग्निमें पीठकी पूजाकर सुनानेवाले मंत्रके देवताका ध्यान अग्निमुखमें करै और २५ मूल मंत्रसे आहुति दे ॥१९॥अग्नि और देवताका एक मुख करनेके निमित्त अपने साथ भावना करै

वौषडंतेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः ॥ महागणेशमंत्रेण जुहुयादाहुतीर्दश ॥ १८ ॥ वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य देयमंत्रस्य देवताम् ॥ वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्त्रे पंचविंशतिसंख्यया ॥ १९ ॥ मूलमंत्रेण जुहुयाद्वक्त्रैकीकरणाय च ॥ वह्निदेवतयोरैक्यं भावयन्नात्मना सह ॥ १२० ॥ एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः ॥ षडंगं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक् ॥ २१ ॥ एकादशैव जुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम ॥ एतेन नाडीसंधानं वह्निदेवतयोर्मुने ॥ २२ ॥ एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च ॥ एकैक क्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने ॥२३॥ ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथ वा तिलैः ॥ देवतामूलमंत्रेण गजांतकसहस्रकम् ॥ २४ ॥ एवं हुत्वा ततो देवीं संतुष्टां भावयेन्मुने ॥ तथैवाऽऽवृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि ॥ २५ ॥ ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसंध्यादिकक्रियम् ॥ वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम् ॥ २६ ॥

॥१२०॥ इस प्रकार जो भावना करता है वह उत्तम साधक है षडंग देवताओंकी पृथक् आहुति दे ॥ २१ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार ग्यारह आहुति दे. हे मुने ! इससे अग्नि और अभीष्ट देवताकी एकता होजाती है ॥ २२ ॥ फिर एक देवताके एक अग्निके उद्देशसे आहुति दे. हे मुने ! इस प्रकार क्रमसे आहुति दे ॥ २३ ॥ फिर कल्पमें कहे शेष साकल्य वा तिलसे आहुति दे देवीके अष्टोत्तर सहस्रनामसे हवन करे ॥ २४ ॥ इस प्रकार आहुतिसे देवी आवृत्तिदेवी और अग्नि आदि देवताओंको संतुष्ट समझे ॥ २५ ॥ फिर जब

शिष्य स्नान संध्या कर चुके तब दोवस्त्र धारण किये सुवर्णके आभूषण पहरे हो ॥ २६ ॥ उस शुद्धचित्त कमंडलु हाथमें लियेको गुरु कुंडके निकट प्राप्त करैं तब शिष्य गुरु और सभासदोंको प्रणाम कर ॥ २७ ॥ तथा कुलदेवताको प्रणाम कर विष्टरपर बैठे तब गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखै ॥२८॥ और उसके चैतन्यको अपने देहमें संगत हुआ भावना करैं फिर शिष्यके शरीरमें आगे लिखे अध्यायका शोधन करै ॥ २९ ॥ होमसे उसकी शुद्धि होती है सो करके कृपादृष्टिसे अवलोकन करै जिससे यह शुद्धात्मा होकर

कमंडलुकरं शुद्धं कुंडस्यांतिकमानयेत् ॥ नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः ॥ २७ ॥ कुलदेवं नमस्कृत्य विशेत्तत्राऽथ विष्टरे ॥ गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत् ॥ २८ ॥ तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्संगतं त्विति ॥ ततः शिष्यतनुस्थानमध्वनां परिशोधनम् ॥ २९ ॥ कुर्यात्तु होमतो विद्वन्दिव्यदृष्ट्यवलोकनात् ॥ येन जायेत शुद्धात्मा योग्यो देवाद्यनुग्रहे ॥ १३० ॥ नारायण उवाच ॥ तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु ॥ पादयोस्तु कलाध्वानमंधौ तत्त्वाध्वकं पुनः ॥३१॥ नाभौ तु भुवनाध्वानं वर्णाध्वानं तथा हृदि॥पदाध्वानं तथा भाले मंत्रध्वानं तु मूर्धनि॥३२॥शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ शोधयाम्यसुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन् ॥ ३३ ॥ ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि ॥ षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान्ब्रह्मणि भावयेत् ॥ ३४ ॥ पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः ॥ आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत् ॥ ३५ ॥

देवादिके अनुग्रह योग्य होता है ॥ १३० ॥ नारायण बोले शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः मार्ग ध्यान करै चरणोंमें कलाध्वा लिंगमें तत्वाध्वा ॥ ३१ ॥ नाभिमें भुवनाध्वा हृदयमें वर्णाध्वा मस्तकमें पदाध्वा मूर्धामें मंत्राध्वा ॥ ३२ ॥ शिष्यको कूर्चसे स्पर्शकर मंत्र पढै और विचारे कि इसके अध्वा शुद्ध हों तिल आज्यसे आहुति दे "अस्य शिष्यस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार आठ वार पढै फिर प्रत्येक अध्वाका नाम लेकर छहों अध्वा ब्रह्ममें लीन भावित करै ॥ ३४ ॥ फिर सृष्टि

मार्गसे उत्पादन करै और आत्मस्थित चैतन्य फिर शिष्यमें योजित करै ॥ ३५ ॥ फिर पूर्णाहुति कर देवताको कलशमें विसर्जन करै फिर व्याहृति होम आग्न्यंग हवन करै ॥ ३६ ॥ एक एकको आहुति देकर गुरु अपनेमें सबको विसर्जन करै फिर गुरु वस्त्रसे शिष्यके नेत्र बाँधै ॥ ३७ ॥ बाँधनेके समय वौषट् पढकर कुंडके निकटसे कलशके समीप शिष्यको ले जाय और शिष्यके हाथसे मुख्य देवीके आगे पुष्पांजलि करावै ॥ ३८ ॥ फिर शिष्यके नेत्र खोलकर कुशके विष्टरपर बैठावै पूर्वप्रकारसे शिष्यके देहमें भूतशुद्धि करै

पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत् ॥ पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरंगाहुतिस्तथा ॥ ३६ ॥ एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्देवतामात्मनि॥ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः ॥३७॥ नेत्रमंत्रेण तं शिष्यं कुंडतो मंडलं नयेत् ॥ पुष्पांजलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः ॥ ३८ ॥ नेत्रबंधं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे ॥ भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात् प्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ३९ ॥ मन्त्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः ॥ मंडले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुंभसंस्थितान् ॥ १४० ॥ पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां जपेत् ॥ कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः ॥ ४१ ॥ वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमंजसा॥ ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च ॥ ४२ ॥ कृतभस्मावलेपश्च संविशेद् गुरुसन्निधौ ॥ ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम् ॥४३॥ प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः ॥ पूजयेद्गंधपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः ॥ ४४॥ ततस्त्रिशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद्गुरुः ॥ महामंत्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसन् ॥ ४५ ॥

॥३९॥ फिर शिष्यके शरीरमें मंत्रोदित न्यास करके फिर दूसरे मंडलपर शिष्यको बैठावै जहां घट स्थापित है ॥१४०॥ मातृका पढ २ कर कुंभके पल्लव शिष्यके शिरपर धरै कलशके जलके स्नान करावै ॥४१॥ फिर वर्द्धनी जलसे सींचै, फिर शिष्य उठकर दोवस्त्र धारण करै ॥४२॥ फिर अपनी देहमें भस्म लगाकर गुरुके निकट जाय तब गुरु अपने हृदयसे निकली शिवा भगवतीको ॥ ४३ ॥ शिष्यके हृदयमें प्रवेश हुई भावना करै और गन्धादिसे पूजै देवता तथा शिष्यकी एकता जानकर ॥ ४४ ॥ अपना दक्षिण हाथ शिष्यके मस्तकपर

धरकर उसके दहिने कानमें मंत्र सुनावे इस प्रकार अपना हाथ उसके शिरपर रखता हुआ महादेवीका महामंत्र पढै ॥ ४५ ॥ हे मुने ! शिष्य भी एकसौ आठ मंत्र जपता हुआ उन देवतात्मक गुरुको भूमिमें दंडवत प्रणाम करै ॥ ४६ ॥ और उनको सर्वस्व समर्पण करके जीवनपर्यन्त अनन्यबुद्धि रक्खै ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ४७ ॥ सुवासिनी कुमारी बटुक भैरव दीन अनाथ दरिद्रियोंको वित्तकी शठता न करके दे ॥ ४८ ॥ और अपनेको कृतार्थ मानकर सदा मंत्र जपै यह आपसे उत्तम

अष्टोत्तरशतं मंत्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने ॥ दंडवत्प्रणमेद्भूमौ तं गुरुं देवतात्मकम् ॥ ४६ ॥ सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४७ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः ॥ दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ४८ ॥ कृतार्थतां स्वस्य बुद्ध्वा नित्यमाराधयेन्मनुम्॥ इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः ॥ ४९ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्याऽत्र विद्यते ॥ १५० ॥ वैदिकः स्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम् ॥ तांत्रिकस्तत्र रीत्या तु स्थितिरेषा सनातनी ॥ ५१ ॥ तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा ॥ नारायण उवाच ॥ इति सर्वं मयाख्यातं यत्पृष्टं नारद त्वया ॥५२॥ अतः परं परांबाया भज नित्यं पदांबुजम्॥नित्यमाराध्य तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः ॥ ५३ ॥

प्रकार दीक्षाविधि कही ॥ ४९ ॥ इसको भलीप्रकार विचार देवीके चरणकमलोंका ध्यान करो ब्राह्मणके निमित्त और कोई परमधर्म नहीं है ॥ १५० ॥ हे नारद ! जो वैदिक अपने गृह्योक्तक्रमसे वेदका उपदेश करै तांत्रिक तंत्ररीतिसे करै यह सनातनी श्रुति हैं ॥ ५१ ॥ वे अपने २ किये प्रयोगोंको अन्यथा न करै नारायण बोले हे नारद ! जो तुमने पूँछा सो कहा ॥ ५२ ॥ अब पराम्बाके नित्य चरणोंका भजन करो और परमशान्तिको प्राप्त होकर नित्य आराधन करो ॥ ५३ ॥

व्यास बोले हे राजन् ! इस प्रकार नारदसे सबकुछ कथन कर समाधिमें हो नेत्र मीच नारायण देवीका ध्यान करने लगे ॥५४॥ इस प्रकार भगवान् नारायण मुनिजनोंमें श्रेष्ठ परमप्रसन्न हुए और नारद भी परम नारायण गुरुको प्रणामकर ॥१५५॥ देवी दर्शनकी इच्छासे तप करने चले गये ॥ १५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजय बोले हे भगवन् ! सब धर्मोंके ज्ञाता सब शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ आपने सब द्विजातियोंको शक्तिकी उपासना कही है ॥ १ ॥ जब कि तीनों कालमें गा-त्रीकी ही परम उपासना है फिर इसको त्याग ब्राह्मण और देवता क्यों ग्रहण करते हैं, अपने ही देवताको स्मरण करना चाहिये "यो वै स्वां देवतामतियजते प्रस्वय देवतायै च्यवते न परां प्राप्नोति पापीयान्भवति" इतिश्रुतेः (तथाचगोपथब्राह्मणे गायत्र्युपनिषदि) यह ब्रह्म ही प्रतिष्ठाका

व्यास उवाच ॥ इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम् ॥ समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदाम्बुजम् ॥ ५४ ॥ नारायणस्तु भगवान्मुनिवर्यशिखामणिः ॥ नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम् ॥ जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः ॥ १५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतांवर ॥ द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता ॥ १ ॥ संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन्काले नित्यतया विभो ॥ तां विहाय द्विजाः कस्माद् गृह्णीयुश्चान्यदेवताः ॥ २ ॥

आयतन है इसको जो धारण करता है उसकी सत्यमें प्रतिष्ठा है उसीसे गायत्री है जो जपनेसे पुण्य कीर्ति आदि देती है सामविधान ब्राह्मणमें इस प्रकार अंग लिखे हैं "शिर ब्रह्मा, द्यौ ललाट, चन्द्रादित्य नेत्र, मुख अग्नि, जिह्वा सरस्वती, त्वष्टा ग्रीवा, वसुरुद्र बाहू, ऊरु वायु, पृष्ठ इन्द्र, विष्णु नाभि,प्रजापति जघन, ऊरु मरुत, वेद पाद, स्मित बिजली, उच्छ्वास वायु, अस्थी पर्वत, समुद्र शब्द, नक्षत्र अलंकार हैं" जो इस प्रकार जानता है उसका न्यूनाधिक सब पूर्ण होता है. बृहदारण्यकमें कहा है "साहैषा गयांस्तत्रे प्राणौवगयास्तत्प्राणांस्तत्रे तयद्यांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नामेति" इसी प्रकार अनेक श्रुति हैं. यदि कहो गायत्रीका सविता देवता है सविताका अर्थ यहां तदन्तर्गत जगत्कर्ता

परमात्मा ही विवक्षित है, संध्यामें सूर्यमें ब्रह्मकी ही उपासना है, यह सबकी शक्ति है इस कारण यही ध्येय है इसको छोडकर ॥ २ ॥ कोई वैष्णव कोई गाणपत्य कोई चीन देशीय मार्गमें रत हैं कोई वल्कलधारी हैं. कोई वहुतसे वेदशास्त्रसे वर्जित दिगम्बर बौद्ध चार्वाकादि दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसमें क्या कारण है सो आप कहिये जो बुद्धिमान् पंडित अनेक तर्कोंमें चतुर हैं ॥५॥ यह भी वेद श्रद्धासे रहित हैं. बुद्धिसे कोई अपना कल्याण छोडनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ६ ॥ हे वेदविदांवर ! इसमें कारण क्या है सो कहिये और आपने पहले

दृश्यंते वैष्णवाः केचिद्गाणपत्यास्तथापरे ॥ कापालिकाश्चीनमार्गरता वल्कलधारिणः ॥ ३ ॥ दिगंबरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयाः ॥ दृश्यंते वहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः ॥ ४ ॥ किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ बुद्धिमंतः पंडिताश्च नानातर्कविचक्षणाः ॥५॥ अपि संत्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवार्जिताः ॥ नहि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या हातुमिहेच्छति ॥ ६ ॥ किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदांवर ॥ मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा ॥७॥ कीदृक्तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं मह त्तरम् ॥ तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ ॥८॥ प्रसन्नास्तु वदंत्येव गुरवो गुह्यमप्युत ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान्बादरायणः ॥९॥ निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः ॥ यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ सम्यक्पृष्टं त्वया राजन्समये समयोचितम् ॥ बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे ॥ ११ ॥ पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धं तु चक्रिरे ॥ शतवर्षं महाराज महाविस्मयकारकम् ॥ १२

मणिद्वीपकी महिमा कही थी ॥ ७ ॥ वह कैसा है जहां देवीका परमस्थान है मुझ भक्त श्रद्धावालेसे[1] आप यह भी कहिये ॥ ८ ॥ प्रसन्न हुए गुरु गुह्य बात भी कहते हैं. भगवान् बादरायण यह जनमेजयके वचन सुन ॥९॥ हे मुनीश्वरो! क्रमसे सब कहने लगे जिसको सुनकर द्विजातियोंकी वेदमें श्रद्धा होती है ॥१०॥ व्यासजी बोले हे राजन्! आपने समयोचित भली बात पूँछी तुम बुद्धिमान् वेदमें श्रद्धावाले हो ॥ ११ ॥ पहले मदोद्धत हुए दैत्य देवताओंसे युद्ध करते हुए हे महाराज ! सौ वर्षतक महाविस्मयकारक युद्ध हुआ ॥ १२ ॥

---

१ तवल्कार उपनिषद्में यह कथा देखो ।

जो अनेक शस्त्रोंके प्रहार और अनेक मायासे विचित्र अर्थात् उनका जगत्क्षयकारी युद्ध हुआ ॥१३॥ उस समय पराशक्तिकी कृपासे देवता ओंने दैत्योंको जीता और वह भूर्लोकको छोडकर पातालमें चले गये॥१४॥ तब देवता प्रसन्न होकर अपना अपना पराक्रम वर्णन करने लगे और अभिमानसे बोले॥१५॥ जबकि हमने अपने पराक्रमकी महिमा दिखाई तब जय क्यों न होती सबसे बडे भी दैत्य क्यों न हों तथापि वे दैत्य पामर और निष्पराक्रमहैं॥१६॥हम तो सब यशस्वी सृष्टिकी स्थिति और लय करनेवाले हैं.हमारे आगे,पामर दैत्योंकी क्या कथा है॥१७॥वह सब पराशक्ति

नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम् ॥ जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप ॥ १३ ॥ पराशक्तिकृपावेशाद् देवैर्दैत्या जिता युधि ॥ भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालेवश्मनि ॥ १४ ॥ ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रमवर्णनम् ॥ चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमानाः समंततः ॥ १५ ॥ जयोऽस्माकं कुतो न स्यादस्माकं महिमा यतः ॥ सर्वोत्तरः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः ॥ १६ ॥ सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः ॥ अस्मदग्रे पामराणां दैत्यानां चैव का कथा ॥ १७ ॥ पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः ॥ तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जगदंबिका ॥ १८ ॥ प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चंद्रकोटिसुशीतलम् ॥१९॥ विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादिवर्जितम् ॥ अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा तेजः परमसुंदरम् ॥२०॥ सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति ॥ दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया कापि महीयसी ॥ २१ ॥ केनचिन्निर्मिता वाऽथ देवानां स्मयकारिणी ॥ संभूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥ २२ ॥

के प्रभावको न जानकर मोहको प्राप्त होगये उनके ऊपर अनुग्रह करनेको उसी समय जगदम्बा॥१८॥कृपाकर यज्ञरूपसे प्रगट हुई जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान करोड़ चन्द्रमाके समान शीतल॥१९॥कोटि विद्युत्के समान कान्तिमान् हाथ पैर आदिसे रहित वह अदृष्टपूर्व परम सुन्दर तेज देखकर सब कोई विस्मयपूर्वक बोले यह क्या यह क्या यह कोई दैत्योंकी माया वा चेष्टा वा किसी अन्यकी माया है ॥२०॥२१॥ यह किसीने

देवताओंको विस्मयकारक निर्माण की है तब सब देवता मिलकर विचार करने लगे ॥ २२ ॥ कि यक्षके समीप जाकर पूँछना चाहिये कि तुम कौन हो फिर उसका बलाबल जानकर प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥ २३ ॥ तब अग्निको बुलाकर कहा हे अग्नि ! जाओ तुम हमारा मुखस्वरूप हो ॥ २४ ॥ जाकर इस यक्षको जानो कि यह कौन है ? इन्द्रके वचन सुन अपने पराक्रमसे गर्भित ॥ २५ ॥ अग्नि बड़े वेगसे उठकर यक्षके समीप गया तब यक्षने हुताशनसे कहा तुम कौन हो ॥ २६ ॥ कितना तुममें बल है वह सब मुझसे कहो

यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि॥बलाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥२३॥ ततो वह्निं समाहूय प्रोवाचेंद्रः सुराधिपः ॥ गच्छ वह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम् ॥ २५ ॥ वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य संनिधौ ॥ तदा प्रोवाच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम् ॥२६॥ वीर्यं च त्वयि किंयत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः ॥ अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत् ॥२७॥ सर्वस्य दहने शक्तिर्मयि विश्वस्य तिष्ठति ॥ तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम् ॥ २८ ॥ दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि ॥ तदा सर्वं बलेनैवाऽकरोद्यत्नं हुताशनः ॥ २९ ॥ न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति ॥ पृष्टे देवैस्तु वृत्तांते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक् ॥ ३० ॥ वृथाऽभिमानो ह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः ॥ ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ त्वयि प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम् ॥ त्वं प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः ॥ ३२ ॥

उसने कहा मैं अग्नि जातवेदा हूं ॥२७॥ मुझमें सब विश्वके दहन करनेकी सामर्थ्य है, तब परम तेजस्वी यक्षने अग्निके आगे तृण रखकर ॥ २८ ॥ कहा [यदि विश्वदहनकी तुममें शक्ति है तो इसको जलाओ, तब हुताशनने अपने पूर्ण बलसे यत्न किया पर जला न सका ॥ २९ ॥ तब लज्जित हो देवताओंके समीप गया और देवताओंके पूंछनेपर अग्निने सब वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! सर्वेश्वर होनेका हमको वृथा अभिमान है तब इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा ॥ ३१ ॥ यह सब जगत तुममें प्राप्त है और तुम्हारी चेष्टाओंसे

चेष्टित है तुम सबके प्राणरूप और सबकी शक्तिधारण करनेवाले हो ॥ ३२ ॥ तुम्ही जाकर देखो यह यक्ष कौन है इस यक्षके जाननेमें और कोई समर्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह गुणगौरवसे गुंफित इन्द्रके वचन सुन अभिमानपूर्वक यक्षके समीप गया ॥ ३४ ॥ यक्ष वायुको देख कोमल वाणीसे बोला तुम कौन हो क्या तुम्हारी शक्ति है सो हमसे कहो ॥ ३५ ॥ यक्षके वचन सुन गर्वसे मरुत् देवताने कहा मैं वायु मातरिश्वा हूं ॥ ३६ ॥ मुझमें सबके चालन और ग्रहणका पराक्रम है मेरी चेष्टासे सब जगत् व्यापारवाला होता है ॥ ३७ ॥ वायुकी

त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुंफितम् ॥ साभिमानो जागमाऽशु यत्र यक्षं विराजते ॥ ३४ ॥ यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया ॥ कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः ॥ ३५ ॥ ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत् ॥ मातरिश्वाऽहमस्मीति वायु रस्मीति चाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेऽस्ति हि ॥ मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्यापारवद्भवेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः ॥ तृणमेतत्तवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ नो चेद्गर्वं विहायैन लज्जितो गच्छ वासवम्॥ श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह ॥ लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वं हित्वा गर्वं स चानिलः ॥ ४० ॥ वृत्तांतमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम् ॥ नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्या गर्वाभिमानिनः ॥ ४१ ॥ अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम् ॥ ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे ॥ ४२ ॥ देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः ॥ तत इंद्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत् ॥ ४३ ॥

वाणी सुनकर यक्षने कहा यह तुम्हारे आगे तृण रखता हूं इसको परिचालन करो ॥ ३८ ॥ नहीं तो गर्व छोड़ लज्जित हो इन्द्रके स्थानमें जाओ सर्वशक्तियुक्त वायु यक्षके वचन सुन ॥ ३९ ॥ पूर्ण उद्योग करके भी उसे अपने स्थानसे चलायमान न कर सका तब गर्व त्याग लज्जितहो इंद्रके समीप गया ॥ ४० ॥ और अपने गर्व दूरकरनेका सब कारण कहा कि हम मिथ्या गर्ववाले इसके जाननेको समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ यक्षका परम अलौकिक तेज विदित होता है तब सब देवता सहस्राक्षसे बोले ॥ ४२ ॥ आप देवराज हो तत्वसे इसको

जानो तव इन्द्र महागर्वसे चले ॥ ४३ ॥ तव वह यक्षरूप परात्परका तेज इंद्रके आगेसे अन्तर्धान होगया ॥ ४४ ॥ तव इन्द्र अतिशय लज्जित हुआ यक्षका संभाषणतक भी न हुआ इससे मनमें लघुता हुई ॥ ४५ ॥ और कहा अब मैं देवसभामें न जाऊंगा देवताओंके सन्मुख मैं अपना लघुत्व कैसे कहूंगा ॥ ४६ ॥ इससे देहत्याग उत्तम है कारण कि मानही महान् पुरुषोंका धन है मानके नष्ट होनेपर जीवन मृत्युकी तुल्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ इसप्रकार इंद्र वहां विचार गर्व त्याग कर जिसके यह चरित्र है

प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम् ॥ अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवाग्रतः ॥ ४४ ॥ अतीव लज्जितो जातो वासवो देव राडपि ॥ यक्षसंभाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि ॥ ४५ ॥ अतः परं न गन्तव्यं मया तु सुरसंसदि ॥ किं मया तत्र वक्तव्यं स्वलघुत्वं सुरान्प्रति ॥४६॥ देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम् ॥ माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः ॥४७॥ इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः ॥ चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः ॥ ४८ ॥ तस्मिन्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभ स्तले ॥ मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव ॥ ४९ ॥ ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम् ॥ लक्षवर्षं निराहारो ध्यान मीलितलोचनः ॥५०॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ ॥ तदेवाऽविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः ॥ ५१ ॥ तेजोमं डलमध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम् ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम् ॥ ५२ ॥ बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रांतर्व्यंजित स्तनीम् ॥ चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशांकुशाभयान् ॥ ५३ ॥

उसीकी शरण हुआ ॥ ४८ ॥ उसी समय आकाशसे वाणी हुई हे सहस्राक्ष ! तुम मायाबीजका जप करनेसे सुखी होगे ॥ ४९ ॥ तव इन्द्र परात्पर मायाबीजका जप करने लगे, लाख वर्षतक निराहार हो ध्यानमें नेत्र मूँदे रहा ॥ ५० ॥ फिर अकस्मात् चैत्रशुक्ल नवमी मध्याह्न समय उसी स्थलमें फिर वह तेज प्रगट हुआ ॥ ५१ ॥ एक नवयौवना कुमारी तेजोमण्डलके मध्यमें प्रकाशित जपाकुसुमके समान कान्तिवाली प्रभातकालीन कोटि सूर्यके समान प्रकाशित ॥ ५२ ॥ भालचन्द्र मुकुटमें धारे वस्त्रान्तरितस्तन लक्षणसे लक्षित चार

भुजाओंमें वर पाश अभयरूप अंकुश लिये ॥ ५३ ॥ वह कोमल अंगवाली रमणीयमूर्ति शिवा भक्तोंको कल्पवृक्ष अनेक भूषणोंसे भूषित ॥ ५४ ॥ तीन नेत्रवाली जूडेमें चमेलीकी माला गुंथी हुई चारों ओर मूर्तिमान् चारों वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ५५ ॥ सब ओर दांतोंकी कान्तिसे भूमिको पद्मराग मणिके समान करती हुई प्रसन्न हँसी कामुक करोडों कामके समान सुंदर ॥ ५६ ॥ लाल वस्त्रोंको धारे लालचन्दनसे चर्चित है. भगवती उमानाम्नी देवी सन्मुख स्थित हुई ॥ ५७ ॥ विना ही कारण करुणाकी मूर्त्ति सब कारणोंकी

दधानां रमणीयांगीं कोमलांगलतां शिवाम् ॥ भक्तकल्पद्रुमामंबां नानाभूषणभूषिताम् ॥ ५४ ॥ त्रिनेत्रां मल्लिकामालाकबरीजूट शोभिताम् ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम् ॥ ५५ ॥ दंतच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्ष्माम् ॥ प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकंदर्पसुन्दराम् ॥ ५६ ॥ रक्तांबरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम् ॥ ५७ ॥ निर्व्याजकरुणामूर्तिं सर्वकारणकारणाम् ॥ ददर्श वासवस्तत्र प्रेमसद्गदितांतरः ॥ ५८ ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनो रोमांचिततनुस्ततः ॥ दंडवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः ॥ ५९ ॥ तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकन्धरः ॥ उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमि त्यपि ॥ ६० ॥ प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा ॥ ६१ ॥ रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम् ॥ मायाधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षिनिरामयम् ॥ ६२ ॥ सर्वे वेदा यत्पदमामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ६३ ॥

कारण दिखाई दीं देखतेही इन्द्र प्रेमसे गद्गद होगया ॥ ५८ ॥ प्रेमाश्रुसे नेत्र पूर्ण होकर रोमांचित शरीर होगया और श्रीभुवनेश्वरीके चरणोंमें दंडके समान पतित हुआ ॥ ५९ ॥ और भक्तिसे प्रसन्न मुख होकर अनेक स्तुति की और नम्र हो पूँछा यह यक्ष कौन है ॥ ६० ॥ और कहांसे प्रादुर्भाव हुआ सो सब कहिये यह वचन सुन करुणामयी बोली ॥ ६१ ॥ वह सब कारणका कारण ब्रह्मरूप मेरा ही है जो मायाका अधिष्ठान सर्वसाक्षी निरामय है ॥ ६२ ॥ सब वेद जिसके पदका वर्णन करते सब तप जिसके गुण कहते, जिसकी

प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्य कियाजाता है संग्रहसे वह पद तुमसे कहती हूं ॥६३॥ जो एकाक्षर ॐ है वही ह्रीं है, हे सुरोत्तम ! मुख्यतासे मेरे मंत्रके दो बीज हैं ॥६४॥ यह दोनोंभागसेही मैं सबजगत प्रगट करती हूं उसीका एकभाग सच्चिदानंद नामक है ॥६५॥ प्रकृतिसंज्ञक माया दूसरा भाग है वह माया पराशक्ति और वह ईश्वरी शक्ति मैं हूं ॥ ६६ ॥ चन्द्रमासे चांदनीके समान यह सब मुझसे अभिन्न है हे सुरोत्तम ! यह मेरी माया साम्यावस्थावाली है ॥६७॥ प्रलयमें सब जगत् मुझसे अभिन्न रहता है फिर भी प्राणियोंके कर्मके परिपाक वशसे ॥ ६८ ॥ वह अव्यक्तरूप

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम् ॥ द्वे बीजे मम मन्त्रो स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम ॥ ६४ ॥ भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत् ॥ तत्रैकभागः संप्रोक्तः सच्चिदानंद नामकः ॥ ६५ ॥ मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः ॥ सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी ॥ ६६ ॥ चंद्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता ॥ साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम ॥ ६७ ॥ प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति ॥ प्राणिकर्मपरीपाकवशतः पुनरेव हि ॥ ६८ ॥ रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तीभावमुपैति च ॥ अंतर्मुखा तु याऽवस्था सा मायेत्यभिधीयते ॥ ६९ ॥ बहिर्मुखा तु या माया तमःशब्देन सोच्यते ॥ बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसम्भवः ॥ ७० ॥ रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम ॥ गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णु-महेश्वराः ॥ ७१ ॥ रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत् ॥ तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥ ७२ ॥ स्थूल-देहो भवेद्ब्रह्मा लिंगदेहो हरिः स्मृतः ॥ रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि ॥ ७३ ॥

प्रगट होते हैं और जो अन्तर्मुखा अवस्था है उसे ही माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ और बहिर्मुख माया तम शब्दसे व्यवहार की जाती है बहिर्मुख तमोरूपसे सत्वगुणका संभव है ॥७०॥ हे राजन् ! उससे रजोगुण होता है, उससे ब्रह्मा विष्णु महेश्वरी त्रिगुणात्मक देवता होते हैं ॥ ७१ ॥ रजोगुण अधिक होनेसे ब्रह्मा, सत्वगुणकी अधिकतासे विष्णु, तमोगुणकी अधिकताही सर्व कारणरूप रुद्र हैं ॥७२॥ स्थूल देहका अर्थ ब्रह्मा, लिंग देह हरि, कारणदेह रुद्र, और तुरीयारूप मैं हूं ॥ ७३ ॥

जो तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अन्तर्मुख है वही माया तुरीयारूप उपाधिवाली है वही अन्तर्यामीरूपिणी है इससे आगे परब्रह्म मेरा रूप रूपवर्जित है ॥ ७४ ॥ निर्गुण सगुण यह मेरे दो रूप हैं मायाहीन निर्गुण और मायायुक्त सगुण है ॥ ७५ ॥ सो मैं सब जगत् सृजन कर उसके अन्तरमें प्रवेश कर कर्मानुसार निरन्तर जीवकी प्रेरणा करती हूं ॥ ७६ ॥ सृष्टि स्थिति और तिरोधानमें मैं ही प्रेरणा करती हूं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन कारणात्माओंको मैं ही प्रगट करती हूं ॥ ७७ ॥ मेरे भयसे वायु चलता सूर्य उदय होता. इसी प्रकार

साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वांतर्यामिरूपिणी ॥ अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम् ॥ ७४ ॥ निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते ॥ निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम् ॥ ७५ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः संप्रविश्य च ॥ प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥ सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि ॥ ब्रह्माणं च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम् ॥ ७७ ॥ मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति ॥ इंद्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता ॥ ७८ ॥ मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा ॥ युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्तलिकोपमान् ॥ ७९ ॥ कदाचिद् देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित् ॥ स्वतंत्र स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरोधतः ॥ ८० ॥ तां मां सर्वात्मिकां यूयं विस्मृत्य निज गर्वतः अहंकारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरंतकम् ॥ ८१ ॥ अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम् ॥ निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि ॥८२॥ अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम् ॥ मामेव शरणं यात सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ८३ ॥

इन्द्र अग्नि अपना २ कार्य करते हैं. मैं सर्वोत्तमा हूँ ॥ ७८ ॥ मेरी ही कृपासे तुम सर्वथा जय पाते हो, काष्ठके पुतली समान मै तुम सबको नचाती हूं ॥ ७९ ॥ कभी देवता और कभी दैत्योंकी विजय होती, सर्व स्वतंत्र और स्वेच्छासे कर्मानुसारही अपना कर्म करते हैं ॥ ८० ॥ सो मुझ सर्वात्मिकाको तुम अपने गर्वसे भूलकर अहंकार युक्त हो तुरंत मोहसे व्याप्त हुए ॥ ८१ ॥ अनुग्रह करनेके निमित्त तुम्हारे सबके देहसे मेरा यक्षरूप तेज निर्गत हो गया था ॥ ८२ ॥ अब सब भावसे अपने देहका गर्व त्यागकर सच्चिदानन्दरूपिणी मेरी शरण

हो ॥ ८३ ॥ व्यासजी बोले महाप्रकृति ईश्वरी मूलरूप भगवती यह कह भक्तिपूर्वक देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥ ८४ ॥ तब सब देवता गर्व त्याग भगवतीके परात्पर चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ८५ ॥ तीनों कालमें सब गायत्रीजपमें तत्पर हुए और यज्ञभागादि सब नित्य देवीकी सेवा करने लगे ॥ ८६ ॥ इस प्रकार सतयुगमें सब गायत्रीजपमें तत्पर थे प्रणव और ह्लेखा मन्त्रोंके जपमें ही मन लगाये थे ॥ ८७ ॥ वेदमें जैसे " अहरहस्संध्यामुपासीत" यह सन्ध्या करनेमें गायत्रीजपके नित्य विधिवाक्य हैं ऐसे विष्णु

व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता ॥ ८४ ॥ ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पदपंकजम् ॥ सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याः परात्परम् ॥ ८५ ॥ त्रिसंध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः ॥ ॥ यज्ञ भागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे ॥ ८६ ॥ एवं सत्ययुगे सर्वे गायत्रीजपतत्पराः ॥ तारह्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः ॥ ८७ ॥ न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित् ॥ विष्णुदीक्षा नित्याऽस्ति शिवस्यापि तथैव च ॥ ८८ ॥ गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ॥ यया बिना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥ ८९ ॥ तावता कृतकृत्यत्वं नान्यपक्षा द्विजस्य हि ॥ गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९० ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम् ॥ विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणाः ॥ ९१ ॥

उपासना विष्णुदीक्षा वा शिव उपासनाके नित्य विधिवाक्य नहीं देखे जाते ॥ ८८ ॥ सर्व वेद सिद्धान्त गायत्री उपासनाही नित्य है, जिसके विना सर्वथा ब्राह्मणका अधःपतन हो जाता है ॥ ८९ ॥ ब्राह्मण गायत्रीसेही कृतकृत्य है इसको और अपेक्षा नहीं है गायत्रीमें निष्णात होकर भी ब्राह्मण मुक्तिका अधिकारी होता है ॥ ९० ॥ चाहे वह और कार्य करै वा न करै यह स्वयं मुनिने कहा है (कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते मनु०) जो ब्राह्मण अपनी परम इष्टगायत्रीको तो किंचित जप नहीं करता केवल विष्णुकी उपासना ॥ ९१ ॥

वा शिवोपासनामें ही रत है वह मोक्षको नहीं प्राप्त होता आवागमनरूप दुःखमेंही जाता है. हे राजन् ! इस आदियुगमें सब गायत्री जपमें तत्पर थे ॥९२॥और इसीसे सब देवता गायत्री देवीके चरण कमलमें प्रीति करते थे ॥९३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषा टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे विभो ! एक समय प्राणियोंके कर्मवशसे पन्द्रह वर्षतक मेघ नहीं वर्षा था ॥ १ ॥ अनावृष्टिके कारण क्षयकारक घोर दुर्भिक्ष हुआ घर घरमें शवोंकी संख्या न रहीं ॥ २ ॥ कोई क्षुधासे व्याकुल हो अश्व वराह तथा कोई निकृष्ट मृतक

शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा ॥ तस्मादाद्ययुगे राजन्गायत्रीजपतत्पराः ॥ देवीपदांबुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमाः ॥९२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदथ काले तु दशपंचसमा विभो॥प्राणिनां कर्मवशतो नववर्षशतक्रतुः ॥१॥ अनावृष्ट्याऽतिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम् ॥ गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते ॥२॥ केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयंति क्षुधार्दिताः ॥ शवानि च मनुष्याणां भक्षयंत्यपरे जनाः ॥ ३ ॥ बालकं बालजननीं स्त्रियं पुरुष एव च ॥ भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः ॥४॥ ब्राह्मणा बहवस्तत्र विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥ तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति ॥ ५ ॥ सर्वैर्मिलित्वा गंतव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६ ॥ सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः ॥ एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुंबिनः ॥ ७ ॥ सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याऽऽश्रमं ययुः ॥ पूर्वदेशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः ॥ ८ ॥

मनुष्योंके शरीर भक्षण करने लगे ॥ ३ ॥ बालकको माता स्त्रीको पुरुष यह सबही क्षुधासे व्याकुल हो खानेकी इच्छा करने लगे ॥ ४ ॥ उस समय बहुतसे ब्राह्मण यह विचार करने लगे कि तपस्वी गौतमजी हमारे खेदको दूर करेंगे ॥ ५ ॥ सब मिलकर हम गौतमके आश्रममें चलें वह गौतम गायत्री जपमें लगे हुए हैं॥ ६ ॥ वहां सुभिक्ष सुना जाता है और बहुतसे प्राणी वहां गये भी हैं, ऐसा विचार कर भूदेव अग्निहोत्री कुटुम्बी ॥ ७ ॥ गौ और दासोंको साथ ले गौतमके आश्रममें गये कोई पूर्व कोई दक्षिण देशसे आये ॥ ८ ॥

कोई पश्चिम कोई उत्तर इस प्रकार अनेक दिशाओंसे आये ब्राह्मणोंके समाजको आया देख गौतमने प्रणाम किया ॥९॥ आसनादि उपचारोंसे सबका पूजन किया और कुशल प्रश्न तथा आगमन कारण पूँछा ॥ १० ॥ उन सबने भी अपना अपना वृत्तान्त कहा उन ब्राह्मणोंको दुःखी देख मुनिने अभय दिया ॥११॥ कि यह आपका ही स्थान है मैं तुम्हारा सर्वथा दास हूं हे ब्राह्मणो ! मुझ सेवकके होते आपको क्या चिन्ता है ॥१२॥ मैं इस समय धन्य हूं जो तुम सब तपोधनोंका दर्शन पाय जिनके दर्शनसे दुष्कृत भी सुकृत हो जाते हैं ॥१३॥ वे सब चरणरजसे मेरे

पाश्चात्त्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः ॥ दृष्ट्वा समाजं विप्राणां प्रणनाम स गौतमः ॥ ९ ॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास वाडवाम् ॥ चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥ ते सर्वे स्वस्ववृत्तांतं कथयामासुरुत्स्मयाः ॥ दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रानभयं दत्तवान्मुनिः ॥ ११ ॥ युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा ॥ का चिंता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति ॥ १२ ॥ धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपोधनाः ॥ येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥ १३ ॥ ते सर्वे पादरजसा पावयंति गृहं मम ॥ को मदन्यो भवेद्धन्यो भवतां समनुग्रहात् ॥१४॥स्थेयं सर्वैः सुखेनैव संध्याजपपरायणैः ॥ व्यास उवाच॥ इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनिराट् ततः ॥१५॥ गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकंधरः ॥ नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे ॥ १६ ॥ व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपे प्रणवरूपिणी ॥ साम्यावस्थात्मिके मार्तनमो ह्रींकाररूपिणि ॥ १७ ॥ स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम् ॥ भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ १८ ॥

घरको पवित्र करेंगे जब तुम्हारा अनुग्रह हुआ तो मुझसे अधिक और कौन धन्य है ॥१४॥ आप सबको संध्याजपमें परायण हो सुखपूर्वक निवास करना चाहिये व्यासजी बोले मुनिराज गौतम इस प्रकार सबको सावधान करके ॥ १५ ॥ भक्तिसे नम्रकन्धर हो गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे हे देवि ! महाविद्ये,वेद माता, परात्परे तुमको प्रणाम है ॥१६॥ व्याहृति आदि महामंत्रके रूपवाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्थामें स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ स्वाहा स्वधास्वरूप सब अर्थकी देनेवाली तुमको प्रणाम है हे देवि ! तुम भक्तोंको कल्पवृक्ष

और तीनों अवस्थाकी साक्षी हो ॥ १८ ॥ तुरीयातीतस्वरूप सच्चिदानन्दरूपिणी सब वेदान्तसे जानने योग्य सूर्यमंडलमें निवास करनेवाली ॥ १९ ॥ प्रभातमें रक्तवर्ण बालस्वरूप मध्याह्नमें युवती सन्ध्यामें कृष्णवर्ण वृद्धारूपको नित्य प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ सब प्राणियोंकी तारनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध क्षमा करना इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त हो जगन्माताने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ २१ ॥ और गौतमजीको एक पूर्णपात्र दिया जिसमें सब संतुष्ट होजायँ और मुनिसे देवीने कहा तुम जिस २ वस्तुकी इच्छा करोगे ॥ २२ ॥

तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ सर्ववेदांतसंवेद्यां सूर्यमण्डलवासिनीम् ॥ १९ ॥ प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम् ॥ सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम् ॥ २० ॥ सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरी ॥ इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २१ ॥ पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम् ॥ उवाच मुनिमंबा सा यंयं कामं त्वमिच्छसि ॥२२॥ तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी गायत्री परमा कला ॥ २३ ॥ अन्नानां राशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः ॥ षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च ॥ २४ ॥ भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च ॥ यज्ञानां च समारंभाः पात्राणि विविधानि च ॥ २५ ॥ यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ तत्सर्वं निर्गतं तस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥ ॥ २६ ॥ तथाऽऽहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा ॥ धनं धान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुने ॥ २७ ॥ गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः ॥ निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८ ॥

उस उसकी पूर्ति इस मेरे पात्रद्वारा होगी ऐसा कह परमकला गायत्री देवी अन्तर्धान हुई ॥ २३ ॥ उस पात्रसे पर्वतके समान अन्नोंके ढेर निर्गत होने लगे. हे राजन् ! अनेक प्रकारके षड्रस और विविध तृण प्रगट हुए ॥२४॥ दिव्य भूषण, क्षौम वस्त्र, यज्ञोंके समारंभ अनेकपात्र प्रगटे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जो कुछ भी उन मुनिराजको इष्ट होता, वह सबही उस गायत्रीके पूर्णपात्रसे निर्गत होता ॥२६ ॥ तब मुनिराज गौतम सब मुनियोंको बुलाकर धनधान्य भूषणादि प्रसन्नतासे देते हुए ॥ २७ ॥ बहुत क्या उस पूर्णपात्रसे गोमहिषी आदि पशुभी निर्गत हुए यज्ञके

संभार स्रुक् स्रुव प्रभृति निर्गत हुए ॥ २८ ॥ तब वे सब मिलकर मुनिके कथनानुसार यज्ञ करने लगे वह स्थान देवयज्ञके कारण स्वर्गके समान होगया ॥ २९ ॥ त्रिलोकीमें जो कुछ सुन्दर वस्तु दीखती है उस गायत्रीके दिये पात्रसे वह सबही निष्पन्न हुई ॥ ३० ॥ स्त्रीजन भूषण धारण कर देवताओंकी स्त्रियोंके समान शोभित हुई. मुनिजन वस्त्र चन्दन भूषण धारण करनेसे देवताओंके समान शोभित हुए ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मुनिजनोंके आश्रममण्डलमें नित्य उत्सव प्रवृत्त हुआ रोग दैत्यादि किसीका कुछ भय न रहा ॥ ३२ ॥ वह मुनिका आश्रम सौ योजनतक घिर गया दूसरे प्राणी भी सब उस स्थानमें आगये ॥ ३३ ॥ वह विचारवान् उन सबको अभय देकर

[illegible] मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः ॥ स्थानं तदेव भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम् ॥२९॥ यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु सुंदरं वस्तु दृश्य[illegible] तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः ॥३०॥ देवांगनासमा दाराः शोभंते भूषणादिभिः ॥ मुनयो देवसदृशा वस्त्रचन्दनभूषणैः ॥[illegible] प्रववृते मुनेराश्रममण्डले ॥ न रोगादिभयं किंचिन्नच दैत्यभयं क्वचित् ॥ ३२ ॥ स मुनेराश्रमो जातः समंताच्छ[illegible] ॥ [illegible] प्राणिनो येऽपि तेऽपि तत्र समागताः ॥ ३३ ॥ तांश्च सर्वान्पुपोषाऽयं दत्त्वाऽभयमथात्मवान् ॥ नानावि[illegible] ॥ ३४ ॥ संतोषं परमं प्रापुर्मुनेश्चैव जगुर्यशः ॥ सभायां वृत्रहा भूयो जगौ लोकं महायशाः ॥ [illegible] कल्पपादपो मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः ॥ नोचेदकाण्डे क्व हविर्वपा वां सुदुर्लभा यत्र तु जीव[illegible] ॥ [illegible] मुनिपुंगवान् ॥ पुत्रवन्मुनिराड् गर्वगंधेन परिवर्जितः ॥ ३७ ॥

[illegible] यज्ञोंकी कल्पनासे देवता ॥ ३४ ॥ परम संतोषको प्राप्त हो मुनिका यश [illegible] स्वयं इन्द्रने यह श्लोक कहा था ॥ ३५ ॥ अहो इस समय यह गौतम [illegible] जो हमारे मनोरथ पूर्ण करता है नहीं तो इस दुर्लभ समयमें हविर्वपा कहां [illegible] होरही है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार गौतमजीने बारह वर्ष गर्वरहित हो पुत्रके समान

सबका पालन किया ॥ ३७ ॥ वहां मुनिश्रेष्ठने गायत्रीका परम स्थान बनाया जहां सब मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाका पूजन करते थे ॥ ३८ ॥ तीनों काल परमभक्तिसे पुरश्चरणादि करते थे अब भी वहां देवी प्रभातकालमें बाल स्वरूप ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमें युवती और सायंकालमें वृद्धास्वरूप दिखाई देती है एक समय वहां नारदजीका आगमन हुआ ॥ ४० ॥ जो अपनी महती नामक वीणाको बजाते उसमें गायत्रीके परम गुण गाते थे उस समय वह उन ज्ञानी मुनियोंकी सभामें स्थित हुए ॥ ४१ ॥ और गौतमादिने भी उच्च पूजा की. शान्त मन

गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनिसत्तमः ॥ यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदंबिका ॥ ३८ ॥ त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्चरणकर्मभिः ॥ अद्यापि तत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते ॥ ३९ ॥ मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते ॥ तत्रैकदा समायातो नारदो मुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ रणयन्महतीं गायन्गायत्र्याः परमान्गुणान् ॥ निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४१ ॥ गौतमादिभिरत्युच्चैः पूजितः शांतमानसः ॥ कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः ॥ जगौ बहुविधं स्वच्छं मुनिपोषणजं परम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा शचीपतेर्वाणीं त्वां द्रष्टुमहमागतः ॥ धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदंबाप्रसादतः ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं गायत्रीसदनं ययौ ॥ ददर्श जगदंबां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥ ४५ ॥ तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा मुनिपोषिताः ॥ ॥४६॥ उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वाऽसूयया खेदमागताः ॥ यथाऽस्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि ॥ ४७ ॥

नारदजीने अनेक प्रकार गौतमका यश कहा, ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! राजा इन्द्रने भी अपनी सभामें यह तुम्हारा ऋषिपोषणरूप निर्मल यश बहुत प्रकारसे वर्णन किया है ॥४३॥ इन्द्रकी वह वाणी सुन मैं तुमको देखनेको आया हूं. हे मुनि ! तुम गायत्रीके प्रसादसे धन्य हो ॥ ४४ ॥ मुनिश्रेष्ठसे यह वचन कह नारदजी गायत्रीके स्थानमें गये और प्रेमसे उत्फुल्ल लोचन हो जगदम्बाका दर्शन किया ॥ ४५ ॥ और विधिपूर्वक देवीकी स्तुति कर स्वर्गको गये उस स्थानमें जो ब्राह्मण मुनिसे पोषण हुए स्थित थे ॥ ४६ ॥ वह मुनिका उत्कर्ष सुनकर असूयासे

बडे खेदको प्राप्त हुए और विचारा कि अब वह करना चाहिये जिससे इनका यश न हो ॥ ४७ ॥ समयपर काय साधन करेंगे यह सबने निश्चय किया फिर कुछ समयमें भूमिपर वर्षा हुई ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! सब देशोंमें सुभिक्ष हुआ सुभिक्षकी बात सुन सब ब्रह्मचारी मिलकर ॥ ४९ ॥ गौतमके शाप देनेका उद्योग करने लगे. हे राजन् ! यह बडे खेदकी बात है उनके माता पिताको धन्य है जिनकी उत्पत्ति ऐसी है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! कालकी महिमा कौन कह सकता हैं उन मुनियोंने एक बडी वृद्धा मरणको प्राप्त गौमायासे निर्माण की ॥ ५१ ॥ वह मुनिके होम समय शालामें गई ज्योंही हुं हुं शब्दसे ऋषिने उसको निवारण किया कि उसी समय उसने प्राण त्याग दिया

काले समागते पश्चादिति सर्वैस्तु निश्चितम् ॥ ततः कालेन कियताऽप्यभूद्वृष्टिर्धरातले ॥४८॥ सुभिक्षमवत्सर्वं देशेषु नृपसत्तम॥ श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्ववाडवाः ॥ ४९ ॥ गोतमं शप्तुमुद्योगं हाहा राजन्प्रचक्रिरे ॥ धन्यौ तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥ ५० ॥ कालस्य महिमा राजन्वक्तुं केन हि शक्यते ॥ गौर्निर्मिता माययैका मुमूर्षुर्जरती नृप ॥ ५१ ॥ जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा ॥ हुंहुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणे ॥ ५२ ॥ गौर्हताऽनेनदुष्टेनेत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः ॥ होमं समाप्य मुनिराड्विस्मयं परमं गतः ॥ ५३ ॥ समाधिमीलिताक्षः संश्चिंतयामास कारणम् ॥ कृतं सर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः ॥ ५४ ॥ दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत् ॥ शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः ॥ ५५ ॥ वेदमातरि गायत्र्यां तद्ध्याने तन्मनोर्जपे ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५६ ॥ वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५७ ॥

॥ ५२ ॥ तब ब्राह्मण कोसने लगे अहो इस दुष्टने गौ मारडाली तब मुनिराज होम समाप्त करके परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ और समाधिमें हो नेत्रमूँद इसका कारण देखने लगे. तब यह सब इन ब्राह्मणोंका कर्तव्य है यह सब जाना ॥ ५४ ॥ तथापि प्रलयमें रुद्रकोपके समान अपने कोपको धारण कर लाल नेत्रकर सब ऋषियोंको शाप दिया ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो वेदमाता गायत्री सर्व स्वरूप है तुम उसके ध्यान और जपसे उन्मुख होंगे गायत्री त्यागी होनेसेही ब्राह्मणोंमें अधम होंगे ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! वेद

यज्ञ और उसकी वार्तासे तुम सदाही विमुख होंगे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! शिव शिवमंत्र और शिव शास्त्रसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृति श्रीदेवी उसका ध्यान और कथा इससे विमुख होकर तुम ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ५९ ॥ देवीके मंत्र स्थान और अनुष्ठानसे विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६० ॥ हे अधमो ! देवीके उत्सव देखने देवीके नाम कीर्तनसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! देवीभक्तिकी निकटता उसका अर्चन इससे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६२ ॥

शिवे शिवस्य मंत्रे च शिवशास्त्रे तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥५८॥ मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यां तद्ध्याने तत्कथासु च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणधमाः ॥५९॥देवीमंत्रं तथा देव्याः स्थानेऽनुष्टानकर्मणि ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६० ॥ देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६१ ॥ देवीभक्तस्य साान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६२॥ शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६३ ॥ रुद्राक्षबिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६४ ॥ श्रौतस्मार्तसदाचारज्ञानमार्गे तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६५॥ अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शांतिदांत्यादिसाधने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६६ ॥ नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६७ ॥

शिवका उत्सव देखनेकी इच्छा शिवभक्तका पूजन इनसे तुम सदा विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६३ ॥ हे निकृष्टो ! रुद्राक्ष बिल्वपत्र भस्म इससे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६४ ॥ श्रुति स्मृतिके सदाचार ज्ञानमार्ग इससे तुम सदा विमुख ब्राह्मणाधम होंगे ॥६५॥ अद्वैतज्ञानकी निष्ठा शांति दांतिकी निष्ठाके साधनमें तुम सदा विमुख अधम होंगे ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! नित्यकर्मके अनुष्ठान,

अग्निहोत्रके साधनमें तुम विमुख होंगे ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! वेदपाठ स्वाध्याय प्रवचनमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६८ ॥ गोदानादि दान और पितृश्राद्धमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! कृच्छ्रचान्द्रायण और प्रायश्चित्तसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम श्रीगायत्री देवीको छोडकर दूसरे देवताओंमें श्रद्धा भक्ति करके शंख चक्रादिसे अंकित हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७१ ॥ कापालिक मतमें आसक्त, बौद्धशास्त्रमें रत, पाखण्डाचारमें निरत हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम पिता माता सुत

स्वाध्यायाध्ययनैश्चैव तथा प्रवचनेन च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६८ ॥ गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६९ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥७०॥ श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ शंखचक्राद्यंकिताश्च भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७१॥ कापालिकमतासक्ता बौद्धशास्त्ररताः सदा ॥ पाखंडाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७२ ॥ पितृमातृसुताभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा ॥ भार्या विक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७३॥ वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा ॥ धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७४ ॥ पांचरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते ॥ बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७५ ॥ मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामिनस्तथा ॥ परस्त्रीलंपटाः सर्वे भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७६॥ युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा ॥ मद्दत्तशापदग्धास्ते भविष्यंति भवत्समाः॥७७॥ किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता॥७८॥

भ्राता कन्या भार्याके बेचनेवाले होंगे ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम वेद तीर्थ और धर्मके बेंचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ पंचरात्र, कामशास्त्र, कापालिकमत और बौद्धोंमें श्रद्धावाले होंगे ॥ ७५ ॥ तुम सब माता कन्या भगिनीगामी परस्त्रीलम्पट होनेसे स्त्रीलम्पट होंगे ॥ ७६ ॥ तुम्हारे वंशके स्त्री वा पुरुष मेरे शापसे दग्धहो तुम्हारीही समान होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे बहुत कहनेसे क्या है वह मूलप्रकृति ईश्वरी

परमा गायत्री तुमपर क्रुद्ध रहैगी ॥ ७८ ॥ अन्धकूपादि- कुण्डोंमें तुम्हारी स्थिति होगी व्यासजी बोले इस प्रकार गौतमजी वाग्दंड देकर जल स्पर्शकर ॥ ७९ ॥ परमउत्सुक हो गायत्रीके दर्शनोंको गये महादेवीको प्रणाम किया वह भी परात्परादेवी ॥ ८० ॥ ब्राह्मणोंकि कर्तव्यको देख बडी विस्मित हुई अबतक उनका मुख स्मयमुक्त दीखता है ॥ ८१ ॥ फिर हँसती हुई मुखकमलसे मुनिश्रेष्ठसे कहने लगी सर्पको दिया दूध विषके निमित्तही होता है ॥ ८२ ॥ हे महाभाग ! शांति करो कर्मकी ऐसेही गति है इसप्रकार देवीको प्रणाम कर गौतम अपने आश्रममें

अंधकूपादिकुंडेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः ॥ व्यास उवाच ॥ वाग्दंडमीदृशं कृत्वाप्युपस्पृश्य जलं ततः ॥ ७९ ॥ जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः ॥ प्रणनाम महादेवीं साऽपि देवी परात्परा ॥ ८० ॥ ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्मयं चित्ते चकार ह ॥ अद्यापि तस्या वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते ॥८१॥ उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखांबुजा ॥ भुजंगायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते ॥ ८२ ॥ शांतिं कुरु महाभाग कर्मणो गतिरीदृशी ॥ इति देवीं प्रणाम्याथ ततोऽगात्स्वाश्रमं प्रति ॥८३॥ ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः ॥ गायत्री विस्मृता सर्वैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ८४ ॥ ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु पश्चात्तापयुतास्तथा ॥ प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दंडवत्पतिता भुवि ॥८५॥ नोचुः किंचन वाक्यं तु लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः ॥ प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः ॥८६॥ प्रार्थयामासुरभितः परिवार्य मुनीश्वरम् ॥ करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच ह ॥ ८७ ॥ कृष्णावतारपर्यंतं कुंभीपाके भवेत्स्थितिः ॥ न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा ॥ ८८ ॥

आये ॥ ८३ ॥ तब शापदग्ध होनेके कारण ब्राह्मण वेद भूलगये तथा गायत्री भी विस्मृत हुई यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ ८४ ॥ वे सब मिलकर पश्चात्ताप करने लगे और दंडवत् पतितहो मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करने लगे ॥ ८५ ॥ और लज्जासे नीचेको मुखकर कुछ न बोले प्रसन्न हो २ ऐसा बार २ कहने लगे ॥ ८६ ॥ इसप्रकार मुनिको घेर सब ओरसे प्रार्थना करनेलगे तब करुणासे पूर्णहृदय हो मुनिने उनसे कहा ॥ ८७ ॥ कि कृष्णावतारपर्यन्त तुम्हारी कुंभीपाकमें स्थिति होगी, मेरा वाक्य असत्य नहीं होता यहतुम सर्वथा सत्य जानो ॥ ८८ ॥

फिर कलियुगमें तुम्हारा जन्म होगा मेरा कहा यह सब होगा इसमें अन्यथा नहीं ॥ ८९ ॥ मेरे शाप दूर करनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो सबको गायत्रीके चरणकमल सेवन करने चाहिये ॥ ९० ॥ व्यासजी बोले मुनिश्रेष्ठ गौतम इस प्रकार सबको बिदाकर प्रारब्ध है यह जानकर चित्तमें शान्त हुए॥९१॥हेराजन्! इस कारण कृष्णके परम धाममें जानेसे कलियुगके प्रारम्भमें वे कुम्भीपाकसे निकले "और देवताकी पूजा क्यों करते हैं, यह उसका उत्तर हुआ" ॥ ९२ ॥ वह पहले शापसे दग्ध हुए पृथिवीपर जन्मे वही तीनों कालकी संध्यासे विहीन

ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि वाम् ॥ मदुक्तं सर्वमेतत्तु भवेदेव न चान्यथा ॥ ८९ ॥ मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्य दीषणा ॥ तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपंकजम् ॥ ९० ॥ व्यास उवाच ॥ इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शांतिं जगाम ह ॥ ९१ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्गते कृष्णे तु धामनि ॥ कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुंभी- पाकात्तु निर्गताः ॥९२॥ भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये ॥ संध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिविहीनाश्च पाखंडमत गामिनः ॥ अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥ ९४ ॥ मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जानंति कर्हिचित् ॥ तप्तमुद्रांकिताः केचित्कामाचाररताः परे ॥९५॥ कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथापरे ॥ पंडिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः ॥ ९६ ॥ लंपटाः पर दारेषु दुराचारपरायणाः ॥ कुंभीपाकं पुनः सर्वे यास्यंति निजकर्मभिः ॥९७॥ तस्मा- त्सर्वात्मना राजन्संसेव्या परमेश्वरी ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥ ९८ ॥

गायत्रीकी भक्तिसे वर्जित हुए ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिसे हीन पाखंडमतगामीथे अग्निहोत्रादि सत्कर्म स्वाहा स्वधासे वर्जित हुए ॥ ९४ ॥ मूलप्रकृति अव्यक्तको वह नहीं जानते कोई तप्तमुद्रासे अंकित कोई कामाचारमें तत्पर हुए ॥ ९५ ॥ कापालिक कौलिक बौद्ध जैन इन मतोंमें पंडित होकर भी वह दुराचारमें प्रवृत्त हुए ॥ ९६ ॥ पराई स्त्रियोंमें लम्पट दुराचारमें परायण हुए यह सब अपने कर्मोंसे फिर कुम्भीपाकमें जायँगे ॥ ९७ ॥ हे राजन्! इसकारण सर्वात्मासे परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है ॥ ९८ ॥

गायत्रीरूप शक्तिकी उपासना ही नित्य है जिसके विना यह प्राणी अधःस्थानमें पतित होता है थे पापरहित जो तुमने पूँछा वह मैंने तव संक्षेपसे कहा ॥ ९९ ॥ अब इसके उपरांत सुन्दर मणिद्वीपका वर्णन सुनो जो संसारकी आदिकारण भुवनेशीका परम स्थान है ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ब्रह्मलोकसे ऊर्ध्वभागमें जो सर्वलोक श्रुत है वही मणिद्वीप है जहां देवी विराजमान है, सुबालोपनिषद्में लिखा है, "सर्वलोका आत्मनि ब्रह्मणि मणय इवोताश्च प्रोताश्चेति" ॥ १ ॥ यह सबसे अधिक

नित्या चोपासना शक्तेर्यां विना तु पतत्यधः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं त्त्वयाऽनघ ॥ ९९ ॥ अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम्॥ यत्परस्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः ॥१००॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादश-स्कंधे नवमोऽध्यायः॥९॥व्यास उवाच ॥ ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः॥मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते ॥ १ ॥ सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः ॥ पुरा परांबयैवायं कल्पितो मनसेच्छया ॥ २ ॥ सर्वादौ निजवासार्थे प्रकृत्या मूलभूतया ॥ कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः ॥ ३ ॥ गोलोकादपि सर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः ॥ न तत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरं विद्यते क्वचित् ॥ ४ ॥ छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसंतापनाशकम् ॥ छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्मांडानां तु सत्तम ॥ ५ ॥ बहुयोजनविस्तीर्णो गभीरस्तावदेव हि ॥ मणिद्वीपस्य परितो वर्तते तु सुधोदधिः ॥ ६ ॥ मरुत्संघट्टनोत्कीर्ण-तरंगशत संकुलः ॥ रत्नाच्छवालुकायुक्तो झषशंखसमाकुलः ॥ ७ ॥

है, इसीकारण इसको सर्वलोक कहते हैं, पहले श्रीभगवतीने मनकी इच्छासेही इसको कल्पितकिया है ॥ २ ॥ मूलभूत प्रकृतिने सबकी आदिमें अपने निवासके निमित्त कैलाससे अधिक वैकुण्ठसे उत्तम ॥ ३ ॥ तथा गोलोकसे भी उत्तम किया है इससे अधिक त्रिलोकीमें कोई सुन्दर लोक नहीं है ॥ ४ ॥ यह तीनों जगत्का छत्रभूत संसारका संतापनाश करनेवाला है, हे सत्तम ! यह ब्रह्माण्डोंका छायाकारक है ॥ ५ ॥ बहुत योजनोंके विस्तारमें तथा उतना ही गंभीर है मणिद्वीपके चारों ओर सुधासागर है ॥ ६ ॥ जिसमें वायुद्वारा अनेक

तरंगें उठती हैं, रत्नोंकी सुंदर वालुका झष शंखोंसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ वीचियोंके संघर्षणसे अनेक लहरीकणोंसे शीतल अनेक ध्वजा और जहाजोंसे युक्त है ॥ ८ ॥ सब ओरसे विराजमान, तीरमें रत्न समान कांति वाले वृक्ष हैं इसके उपरान्त उपधातु (लोहा) का निर्मित अतिऊंचा ॥ ९ ॥ सातयोजनका विस्तारवाला महान् परकोटा है जिसमें अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाले अनेकों युद्धमें चतुर ॥ १० ॥ प्रसन्नचित्तसे रक्षक निवास करते हैं चार जिसके द्वार और सकड़ों द्वारपालोंसे युक्त ॥ ११ ॥ तथा देवीके परमभक्त अनेक

वीचिसंघर्षसञ्जातलहरीकणशीतलः ॥ नानाध्वजसमायुक्ता नानापोतगतागतैः ॥ ८ ॥ विराजमानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान् ॥ तदुत्तरमयो धातुर्निर्मितो गगने ततः ॥ ९ ॥ सप्तयोजनविस्तीर्णः प्राकारो वर्तते महान् ॥ नानाशस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥ ॥ १० ॥ रक्षका निवसंत्यत्र मोदमानाः समंततः ॥ चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वितः ॥ ११ ॥ नानागणैः परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप ॥ दर्शनार्थं समायांति ये देवा जगदीशितुः ॥ १२ ॥ तेषां गणा वसंत्यत्र वाहनानि च तत्र हि ॥ विमानशतसंघर्षघंटास्वनसमाकुलः ॥ १३ ॥ हयहेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ गणैः किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिताः ॥ १४ ॥ सेवका देवसंगानां भ्राजंते तत्र भूमिप ॥ तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्दः केनचित्क्वचित् ॥१५॥ कस्यचिच्छ्रयतेऽत्यंतनानाध्वनिसमाकुले ॥ पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्णसरांसि च ॥ १६ ॥

गणोंसे व्याप्त है जो देवता जगदीश्वरीके दर्शनोंको आते हैं ॥ १२ ॥ उनके गण और वाहन सब वहीं निवास करते हैं. सैकडों विमानोंसे व्याप्त घंटोंके शब्दोंसे समाकीर्ण ॥ १३ ॥ घोडोंकी हिंनहिनाहट तथा खुराघातसे जहाँकी दिशायें बधिरीभूत हो रही हैं किल किल शब्दवाले वेत्रधारी गणोंसे शब्द निवारणार्थ ताडित ॥ १४ ॥ देवताओंके सेवक जहां विराजमान होते हैं. हे राजन् उस कोलाहलमें कौन किसका शब्द ॥ १५ ॥ उस महाध्वनिमें सुन सकता है. पदपदमें मीठे जलके सरोवर

हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! रत्नवृक्षोंकी अनेक वाटिका विद्यमान हैं उसके उत्तरमें महासार कांसीका बना हुआ मण्डल है ॥ १७ ॥ यह प्राकार भी गगनका स्पर्श करनेवाला महान् है और लोह प्राकारसे तेजमें यह ऊंचे शिखरवाला सौगुणा अधिक है ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारोंके सहित बहुत वृक्षोंसे समन्वित है जगत्में जितनी वृक्षोंकी जाति हैं यह वहां सब हैं ॥ १९ ॥ जिनमें फल फूल सदा लगे रहते नवपल्लव और परम गंधसे युक्त हैं ॥ २० ॥ पनस, बकुल, लोध, कर्णिकार, शिंशपा, देवदारु, कचनार, आम, सुमेरव

वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिताः ॥ तदुत्तरं महासारधातुनिर्मितमंडलः ॥ १७ ॥ सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पर्शि यच्छिरः ॥ तेजसा स्याच्छतगुणः पूर्वसालादयं परः ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारसहितो बहुवृक्षसमन्वितः ॥ या वृक्षजातयः संति सर्वास्तास्तत्र संति च ॥१९॥ निरंतरं पुष्पयुताः सदा फलसमन्विताः ॥ नवपल्लवसंयुक्ताः परसौरभसंकुलाः ॥ २० ॥ पनसा बकुला लोध्राः कर्णिकाराश्च शिंशपाः ॥ देवदारूकांचनारा आम्राश्चैव सुमेरवः ॥ २१ ॥ लिकुचा हिंगुलाश्चैला लवंगाः कट्फलास्तथा ॥ पाटला मुचुकुंदाश्च फलिन्यो जघनेफलाः ॥ २२ ॥ तालास्तमालाः सालाश्च कंकोला नागभद्रकाः ॥ पुन्नागाः पीलवः सालवका वै कर्पूरशाखिनः ॥ २३ ॥ अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः ॥ गणिका बंधुजीवाश्च जंबीराश्च कुरंडकाः ॥२४॥ चांपेया बन्धुजीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः ॥ कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चंदनपादपाः ॥२५॥ खर्जुरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः ॥ क्षीरवृक्षाश्च खदिराश्चिंचाभल्लातकास्तथा ॥ २६ ॥

॥२१॥ लिकुचा, हिंगुल, एला, लवंग, कटफल, पाटल, मुचकुन्द, फलिनी, जघनेफला ॥ २२ ॥ ताल, तमाल, साल, कंकोल, नागभद्रक, पुन्नाग, पीलव, शाल्व, कर्पूरके वृक्ष ॥ २३ ॥ अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, दाडिमी, गणिका, बंधुजीवक, जंभीरी, कुरंटक ॥२४॥ चंपेय, बंधुजीव, कनकद्रुम, कालागरुवृक्ष, चन्दन, वृक्ष, ॥ २५ ॥ खजूर, यूंथिका, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, चिंचा,

बल्लातक (भिलावा) ॥ २६ ॥ रुचक, कुटज, बेलोंके वृक्ष तुलसी और चमेलियोंके वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार वृक्षोंके वन उपवनोंसे व्याप्त, अनेक बावडियोंसे सम्पन्न है ॥ २८ ॥ कोकिलके शब्द और भौरोंकी गुंजारसे व्याप्त है जो सब वृक्ष गोंदस्रावी और सुन्दर छायावाले हैं ॥ २९ ॥ वे वृक्ष अनेक ऋतुओंमें होनेवाले अनेक पक्षियोंसे सेवित अनेक रस वहानेवाली नदियोंके तटपर शोभित हैं ॥ ३० ॥ कबूतर तोतोंके समूह और मैनाओंके पक्षोंकी पवन तथा हंसोंके पंखोंकी वायुसे जहाँके वृक्ष वहुत चलायमान रहते हैं ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राही पवनसे

रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च ॥ तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च ॥ २७ ॥ इत्यादितरुजातीनां वनान्युपव नानि च ॥ नानावापीशतैर्युक्तान्येवं संति धराधिप ॥२८॥ कोकिलारावसंयुक्ता गुंजद्भ्रमरभूषिताः ॥ निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्ध च्छायास्तरूत्तमाः ॥ २९ ॥ नानाऋतुभवा वृक्षा नानापक्षिसमाकुलाः ॥ नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः ॥ ३० ॥ पारा वतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः ॥ हंसपक्षसमुद्भूता वातव्रातैश्चलद्द्रुमम् ॥३१॥ सुगंधग्राहिपवनपूरितं तद्वनोत्तमम्॥ सहितं हरिणी यूथैर्धावमानैरितस्ततः ॥ ३२ ॥ नृत्यद्बर्हिकदंबस्य केकारावैः सुखप्रदैः ॥ नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्राविसमंततः ॥३३॥ कांस्य सालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः ॥ चतुरस्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः ॥ ३४ ॥ द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये संप्रोक्ता कल्पवा टिका ॥ येषां तरूणां पुष्पाणि कांचनाभानि भूमिप ॥ ३५ ॥ पत्राणि कांचनाभानि रत्नबीजफलानि च ॥ दशयोजनगंधो हि प्रसर्पंति समंततः ॥ ३६ ॥ तद्वनं रक्षितं राजन्वसन्तेनर्तुनानिशम् ॥ पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः ॥ ३७ ॥

वह वन पूरित होरहा है. इधर उधर हारिणियोंके यूथ धावमान होरहे हैं ॥ ३२ ॥ मोरोंके समूह नृत्य करते मोरोंकी वाणी सब ओरसे होरही. इस प्रकार सुखदायक वाणीसे वह मधुस्रावी वन व्याप्त होरहा है ॥ ३३ ॥ कांसीके प्राकारके आगे ताम्रका परकोटा है जो चौकोन और सातयोजन ऊंचा है ॥ ३४ ॥ इनदोनों परकोटोंके मध्यमें कल्पवृक्षोंके वगीचे हैं. हे राजन् ! जिन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान कांतिवाले हैं ॥ ३५ ॥ पत्र सुवर्णके समान बीजफल रत्नोंके समान हैं उनकी गंध सब ओरसे दशयोजन पर्यन्त जाती है ॥ ३६ ॥ वसन्त ऋतु

दिनरात उसकी रक्षा करता है. हे राजन् ! वह वसन्त पुष्पोंके सिंहासनपर आसीन, फूलोंके छत्रसे विराजित ॥ ३७ ॥ पुष्पोंके भूषणोंसे भूषित, पुष्पोंके आसवसे मदको प्राप्त मधुश्री माधवश्री दोभार्या ॥ ३८ ॥ स्मितमुखियोंके साथ कुसुमके गुच्छोंकी गेंदसे खेलता हुआ रहता है वह मधुस्रावी वन बहुत ही मनोहर है ॥३९॥ दशयोजनतक वायु द्वारा इसकी गंध जाती है और गंधके लोलुप अंगना साथ लिये गन्धर्वोंसे वह वनपूरित रहता है॥४०॥वह दिव्य वन मत्तवाले कोकिलाओंके नादसे शोभित है, यह वसन्त लक्ष्मीसे संयुक्त कामियोंके कामका बढानेवाला है

पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासवविघूर्णितः ॥ मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ३८ ॥ क्रीडतः स्मेरवदनैः सुमस्तबककंदुकैः ॥ अतीव रम्यं विपिनं मधुस्रावि समंततः ॥ ३९ ॥ दशयोजनपर्यंतं कुसुमामोदवायुना ॥ परितं दिव्यगंधर्वैः सांगनैर्गानलोलुपैः ॥ ४० ॥ शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तकोकिलनादितम् ॥ वसंतलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम् ॥ ४१ ॥ ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः ॥ समुच्छ्रायः स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया ॥ ४२ ॥ संतानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप ॥ दशयोजनगंधस्तु प्रसूनानां समंततः ॥ ४३ ॥ हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरंतरम् ॥ अमृतद्रवसंयुक्तफलानि मधुराणि च ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्यां वाटिकायां नृपोत्तम ॥ शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥४५॥ संतापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः ॥ नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः ॥ ४६ ॥ विलासिनीनां वृंदैस्तु चन्दनद्रवपंकिलैः ॥ पुष्पमालाभूषितैस्तु तालवृंतकरांबुजैः ॥ ४७ ॥

॥४१॥ ताम्र परकोटेके आगे सीसेका परकोटा है जो सातयोजन पर्यन्त ऊंचा है ॥४२॥ हे राजन् ! इन दोनों परकोटोंके मध्यमें सन्तानक वृक्षोंकी वाटिका है जिसके फूलोंकी दशयोजन पर्यन्त गंध जाती है ॥ ४३ ॥ हिरण्यके समान कान्तिमान् जहांके फूल नित्य खिले रहते हैं जिनके मधुर फल अमृतद्रवके समान है ॥४४॥ हे राजन् ! उस वाटिकाका ग्रीष्म ऋतु नायक है शुक्र श्री, शुचिश्री, यह दोभार्या इसकी प्रिय हैं ॥ ४५ ॥ जहाँ सन्तापसे व्याकुल हुए लोक वृक्षोंके नीचे स्थित होते हैं, अनेक सिद्ध और देवता निवास करते हैं ॥ ४६ ॥ चन्दनको अधिक

तर अङ्कमें लगाये पुष्पमाला धारे ताल पंखा हाथमें लिये जहां विलासिनियोंके समूह विचरते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! शीतल जल सेवियोंसे वह प्राकार शोभित है, शीशेके परकोटेके आगे पीतलका सुन्दर ॥ ४८ ॥ परकोटा सात योजन लम्बा विद्यमान है इन दोनोंके बीचमें हरि चंदन वृक्षकी वाटिका है ॥ ४९ ॥ इनका अधिपति मेघवाहन वर्षाऋतु है जिसके बिजलीके समान पिंगल नेत्र और मेघोंका कवच है ॥ ५० ॥ वज्रके शब्दके समान शब्दायमान इन्द्र धनुष धारे सहस्रों वारिधारा त्यागन करते गणोंसे युक्त शोभायमान है ॥ ५१ ॥ नभश्री (श्रावण)

प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलांबुनिषेविभिः ॥ सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः ॥ ४८ ॥ प्राकारो वर्तते राजन्मुनियो जनदैर्घ्यवान् ॥ हरिचन्दनवृक्षाणां वाटी मध्ये तयोः स्मृता ॥ ४९ ॥ सालयोरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मेघवाहनः ॥ विद्युत्पिंगलने त्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः ॥ ५० ॥ वज्रनिर्घोषमुखरश्चेंद्रधन्वा समंततः ॥ सहस्रशो वारिधारामुंचन्नास्ते गणाग्रतः ॥ ५१ नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्यारस्यमालिनी ॥ अंबादुलानितत्निश्चाभ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयन्ती चिपुणिका वारि धारा च संमताः ॥ वर्षतोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मदविह्वलाः ॥ ५३ ॥ नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः ॥ हरितानि तृणा न्येव वेष्टिता येर्धराऽखिला ॥ ५४ ॥ नदीनदप्रवाहाश्च प्रवहंति च वेगतः ॥ सरांसि कलुषांबूनि रागिचित्तसमानि च ॥ ५५ ॥ वसंति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः ॥ वापीकूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिताः ॥ ५६ ॥ ते गणा निवसन्त्यत्र सविला साश्च सांगनाः ॥ आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ ५७ ॥

नभस्यश्री (भादों) स्वरस्या, रस्यमालिनी अम्बादुला नितत्नि भ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयन्ती, चिपुणिका वारिधारा मदविह्वला यह वर्षाऋतुकी बारह शक्तियें कही हैं ॥ ५३ ॥ नयेपत्तेवाले वृक्ष और नवीन लतायें तथा हरित तृणोंसे वहांकी धरा वेष्टित है ॥ ५४ ॥ नदी नदोंका प्रवाह वेगसे चलायमान होता है सरोवरोंमें कलुष हुए जल रागियोंके चित्तके समान हैं ॥ ५५ ॥ वहां देवीके कर्म करनेवाले देवता सिद्ध निवास करते हैं. वापी कूप सरोवर जिन्होंने देवीके अर्पण किये हैं ॥ ५६ ॥ वह गण यहां अंगनाओंके सहित निवास करते हैं,

पीतलके आगे सातयोजनका बडा दीघ ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मक परकोटा है जिसके मध्यमें मंदारवाटिका है, जो अनेक पुष्पलताओंसे आकीर्ण अनेक पल्लवोंसे शोभित है ॥ ५८ ॥ जिसका अनामय अधिष्ठाता शरदऋतु है । इषलक्ष्मी, ऊर्जलक्ष्मी दो उसकीभार्या हैं ॥५९॥ वहां अंगना और कुटुम्बके सहित अनेक सिद्ध निवास करते , पंचलोहात्मकसे आगे सात योजन दीर्घ ॥ ६० ॥ महाशृंगोंसे दीप्यमान रौप्यपरकोटा है जहां पारिजात वृक्षोंमें गुच्छे लटक रहेहैं ॥६१॥ उसके फूलोंकी गंध दशयोजनतक फैलकर देवीके कर्मकारी भक्तोंको प्रसन्न करती है ॥६२॥

पंचलोहात्मकः सालो मध्ये मंदारवाटिका ॥ नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता ॥५८॥ अधिष्ठाताऽत्र संप्रोक्तः शरदृतुरनामयः ॥ इषलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ५९ ॥ नानासिद्धा वसंत्यत्र सांगनाः सपरिच्छदाः ॥ पंचलोहमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥६०॥ दीप्यमानो महाशृंगैर्वर्तते रौप्यसालकः ॥ पारिजाताटवीमध्ये प्रसूनस्तबकान्विता ॥ ६१ ॥ दशयोजनगंधीनि कुसुमानि समंततः॥मोदयंति गणान्सर्वान्ये देवीकर्मकारिणः ॥६२॥ तत्राधिनाथः संप्रोक्तो हेमंतर्तुर्महोज्ज्वलः ॥ सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रंजयन्नृप ॥६३॥ सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते॥वसंति तत्र सिद्धाश्च ये देवीव्रतकारिणः॥ ६४ ॥ रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ सौवर्णसालः संप्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः ॥६५॥ मध्ये कदंबवाटी तु पुष्पपल्लवशोभिता ॥ कदंबमदिराधाराः प्रवर्तंते सहस्रशः ॥६६॥ याभिर्निपीतपीताभिर्निजानंदोऽनुभूयते ॥ तत्राधिनाथः स प्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः ॥ ६७ ॥ तपःश्रीश्च तपस्यश्रीर्द्वेभार्ये तस्य संमते ॥ मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः ॥ ६८ ॥

उसका अधिपति महाउज्ज्वल हेमन्त ऋतु है जो अपने गण और आयुधोंसे सब रागियोंको प्रसन्न करता है ॥ ६३ ॥ सहश्री, सहस्यश्री, यह उसकी दो भार्या हैं देवीव्रतकरनेवाले सिद्ध वहां निवास करते हैं ॥ ६४ ॥ चांदीके परकोटेके आगे सात योजनका दीर्घ सुवर्णका परकोटा है जो तपाये सुवर्णसे बना है ॥ ६५ ॥ उसके मध्यमें पुष्प पल्लवसे शोभित कदंबवाटिका है जिनसे कदंबके मदकी धारा सहस्रों प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ जिनके यथेष्टपानसे निजानंदकी प्राप्ति होती है उसका अधिपति शिशिर ऋतु कहा है ॥६७॥ तपश्री, तपस्यश्री यह दो उसकी

भार्या हैं यह शिशिर आकृति उनके संग प्रसन्न हुआ निवास करता है ॥ ६८ ॥ अनेक विलाससे संयुक्त अनेक गणोंके सहित वहां देवीके उद्देशसे दानकरनेवाले सिद्ध निवास करते हैं ॥ ६९ ॥ वे अनेक कोटिरुद्राणी और भद्रकाली आदि माताओंसे संयुक्त अनेक भोगोंसे संयुक्त महानंदसे सम्पन्न स्त्री और परिवारके सहित निवास करते हैं ॥ ७० ॥ सुवर्णके परकोटेके आगे सात योजनके विस्तारमें पुष्पराग मणियोंका परकोटा है जो कुम २ के समान अरुण वर्ण है ॥ ७१ ॥ वहांकी सब भूमि वन उपवन पुष्परागके हैं रत्नोंके वृक्ष और पुष्परागमणिके ही थांवले हैं ॥ ७२ ॥ जिस रत्नका परकोटा उसीके वृक्ष हैं वनभू पक्षिगण सब रत्नोंके ही समान हैं ॥ ७३ ॥

नानाविलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः ॥ निवसंति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः ॥६९॥ नानाभोगसमुत्पन्नमहानंदसमन्विताः सांगनाः परिवारैस्तु संघशः परिवारिताः ॥ ७० ॥ स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ पुष्परागमयः सालः कुंकुमारुणविग्रहः ॥ ७१ ॥ पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च ॥ रत्नवृक्षालवालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः ॥ ७२ ॥ प्राकारो यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः ॥ वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्गजलानि च ॥७३॥ मंडपा मंडपस्तंभाः सरांसि कमलानि च ॥ प्राकारे तत्र यद्यत्स्यात्तत्सर्वं तत्समं भवेत् ॥ ७४ ॥ परिभाषेयमुद्दिष्टा रत्नसालादिषु प्रभो ॥ तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप ॥ ७५ ॥ दिक्पाला निवसंत्यत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः स्फूर्जद्वरायुधाः ॥७६॥ पूर्वाशायां समुत्तुंगश्रृंगा पूरमरावती ॥ नानोपवनसंयुक्ता महेंद्रस्तत्र राजते ॥ ७७ ॥

मंडप मण्डपके स्तंभ सरोवर कमल जो कुछ उस प्राकारमें है वह सब उसीके समान है ॥ ७४ ॥ हे प्रभो ! यह रत्नपरकोटेकी परिभाषा कही है हे राजन् ! दूसरे परकोटोंसे यह तेजमें लाख गुणा है ॥ ७५ ॥ वहां प्रतिब्रह्माण्डवर्ती दिक्पाल निवास करते हैं अर्थात् प्रतिब्रह्माण्डवर्ती इन्द्रादि दिक्पालोंके व्यष्टिभूत जो नायक हैं समष्टिभुत जो इन्द्रादिक जो श्री भुवनेश्वरी यंत्र भूपुरमें पूजे जाते हैं वे वहां निवास करते हैं जो वरायुध लिये शोभित होते हैं ॥७६॥ उसकी पूर्वदिशामें ऊंचे शिखरवाली अमरावती शोभित होती है, जो अनेक उपवनोंसे युक्त है

वहां महेन्द्र विराजते हैं ॥ ७७ ॥ स्वर्गकी शोभा जो स्वर्गमें है यह उससे अधिक है. समष्टि शतनेत्रसे सहस्रगुणा अधिक शोभित है ॥७८॥ वह ऐरावतपर चढा वज्र हाथमें लिये महाप्रतापी देवताओंकी सेनासे युक्त इन्द्र विराजमान होता है ॥७९॥ देवांगनाओंके सहित वहां इन्द्राणी विराजमान होती है और अग्निकोणमें अग्निपुरीके समान अग्निपुरी है॥८०॥स्वाहा स्वधाके साथ वहां अग्नि विराजमान है,अपने वाहन भूषणोंसे युक्त तथा अपने देवताओंसे शोभित है ॥ ८१ ॥ दक्षिण दिशामें यमपुरी है उसमें दंडधारी महान् अपने चित्रगुप्त आदि भटोंसे वेष्टित ॥८२॥

स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका ॥ समष्टिशतनेत्रस्य सहस्रगुणतः स्मृता ॥ ७८ ॥ ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान् ॥ देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः ॥ ७९ ॥ देवांगनागणयुता शची तत्र विराजते ॥ वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप ॥ ८० ॥ स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते ॥ निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः ॥ ८१ ॥ याम्याशायां यमपुरी तत्र दंडधरो महान् ॥ स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥ ८२ ॥ निजशक्तियुतो भास्वत्तन योऽस्ति यमो महान् ॥ नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः ॥ ८३ ॥ खड्गधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्ति युक् ॥ वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान् ॥ ८४ ॥ महाझपसमारूढो वारुणीमधुविह्वलः ॥ निजशक्ति समायुक्तो निजयादोगणान्वितः ॥ ८५ ॥ समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः ॥ वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधि तिष्ठति ॥ ८६ ॥ वायुसाधनसंसिद्ध योगिभिः परिवारितः ॥ ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः ॥ ८७ ॥

अपनी शक्ति सहित प्रकाशमान सूर्यपुत्र शोभा पाते हैं नैर्ऋत्य दिशामें राक्षसोंकी पुरी राक्षसोंसे वेष्टित है ॥ ८३ ॥ जहां निर्ऋति खड्ग लिये अपनी शक्ति सहित शोभा पाता है वरुण दिशामें पाशधारी प्रतापी, वरुण राजा है ॥ ८४ ॥ जो महामच्छपर चढे वारुणीमदसे विह्वल हुए अपनी शक्ति और जलजीवोंसे युक्त ॥ ८५ ॥ अपनी भार्यासे प्रसन्न हुए वरुणलोकमें निवास करते हैं वायुकोणमें वायुलोक है जहां वायु विराजते हैं ॥ ८६ ॥ वह वायुसाधनमें सिद्ध हुए योगियोंसे परिवारित ध्वजा हाथमें लिये विशाललोचन मृगवाहनपर स्थित है ॥ ८७ ॥

मरुद्गणोंसे व्याप्त अपनी शक्तिसे समन्वित है. हे राजन्! उत्तर दिशामें महान् यक्षलोक है ॥ ८८ ॥ वहां वृद्धि ऋद्धि आदि शक्तियोंके सहित यक्षराज निवास करते हैं वहां तुंदिल धननायक नौओं ऋद्धियोंसे सम्पन्न है ॥ ८९ ॥ मणिभद्र पूर्णभद्र मणिमान् मणि कंधर मणिभूषण, मणिमालाधारी मणिकार्मुकधारी ॥ ९० ॥ इत्यादि बड़ी यक्षसेना और अपनी शक्ति सहित विराजमान है. ईशान कोणमें महान् रुद्रलोक है ॥९१॥ जो बडे मोलके रत्नोंसे रचित रुद्रदेवतायुक्त है वह मृत्युमान दीप्तनेत्र पुष्ट तरकस बांधे ॥ ९२ ॥ बाँये हाथमें स्फुरायमान

मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः ॥ उत्तरस्यां दिशि महान्यक्षलोकोऽस्ति भूमिप ॥ ८८ ॥ यक्षाधिराजस्तत्राऽऽस्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः ॥ नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलो धननायकः ॥ ८९ ॥ मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकंधरः ॥ मणिभूषो मणिस्रग्वी मणिकार्मुकधारकः ॥ ९० ॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक् ॥ ईशानकोणे संप्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः ॥ ९१ ॥ अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतम् ॥ मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥ ९२ ॥ स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः ॥ स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः ॥ ९३ ॥ विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः ॥ दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः ॥ ९४ ॥ दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः ॥ अंतरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः स्मृताः ॥ ९५ ॥ रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः ॥ रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः ॥ ९६ ॥

धनुष ज्यारोपण किये अपने समान असंख्यात रुद्रोंसे संयुक्त जो शूल हाथमें लिये हैं ॥ ९३ ॥ विकृतमुख करालमुख कोई मुखसे अग्नि वमन करते, किन्हीके दश किन्हीके सौ किन्हीके सहस्र हाथ ॥ ९४ ॥ दशपाद, दशशिर तीननेत्र उग्र मूर्तिवाले कोई अन्तरिक्ष और कोई भूमिमें विचरनेवाले ॥ ९५ ॥ जो रुद्राध्यायमें स्मरणकिये रुद्र हैं उन सबसे संयुक्त कोटिरुद्राणी और भद्रकाली आदि माताओंसे संयुक्त ॥९६॥

अनेक शक्ति और डामरादि गणोंसे संयुक्त हे राजन् ! वीरभद्रादिके सहित वहां रुद्र विराजते हैं॥ ९७॥ मुंडमालाधारी नागोंका कंकण पहरे नागको गलेमें डाले व्याघ्र चर्मका परिधान वस्त्र और ओढनेको गजचर्म ॥ ९८ ॥ चिताभस्मको अंगमें लपेटे प्रमथादि गणोंसे सम्पन्न शब्दायमान डमरुओंसे दिशाओंको शब्दायमान करते ॥ ९९ ॥ अट्टहास और स्फोटशब्दोंसे आकाशको त्रासित करनेवाले भूत समूहोंसे युक्त भूतावास महेश्वर ॥ १०० ॥ ईशान दिशाके अधिपति होनेसे ईशान नामवालेही हैं। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां

नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः ॥ वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन्विराजते ॥ ९७ ॥ मुंडमालाधरो नागवलयो नागकंधरः ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥ ९८ ॥ चिताभस्मांगलिप्तांगः प्रथमादिगणावृतः ॥ निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ ९९ ॥ अट्टहासास्फोटशब्दैः संत्रासितनभस्तलः ॥ भूतसंघसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः ॥ १०० ॥ ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ पुष्परागमयादग्रे कुंकुमारुणविग्रहः ॥ पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी ॥ १ ॥ दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वारसंयुतः ॥ तन्मणिस्तंभसंयुक्ता मंडपाः शतशो नृप ॥ २ ॥ मध्येभुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः ॥ नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः ॥ ३ ॥ प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः ॥ समंतात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा ॥ ४ ॥ स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय ॥ ५ ॥

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले पुष्परागमय परकोटेके आगे कुंकुमके समान लालवर्ण पद्मराग मणियोंका परकोटा है वैसीही वहांकी भूमि है ॥ १ ॥ वह दशयोजन दीर्घ गोपुर द्वारसे संयुक्त है. हे राजन् ! उसी मणिके स्तम्भवाले सैकडों स्तंभ वहां हैं॥ २ ॥ मध्य भूमिमें अनेक आयुध लिये परम वीरा सुन्दरभूषण पहरे चौंसठ कला निवास करती हैं ॥ ३ ॥ उनके प्रत्येक लोकोंमें उन उनके नायक निवास करते हैं, वह चारों ओरसे पद्मरागको घेरे हुए स्थित हैं ॥ ४ ॥ अपने २ लोकके जन अपने वाहन और अस्त्रोंसे सम्पन्न हैं, हे जन

मेजय ! तुम सुनो मैं उनके नाम कहता हूं ॥ ५ ॥ पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा ॥ ६ ॥ लोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कंदमाता, अच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला, अमला, अरुणी, पुनरारुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति संहृति, ॥ ८ ॥ संध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना ॥९॥ त्रिमुखी, सप्तमुखी, अन्या, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी ॥१०॥ रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा,

पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ॥ श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या मायासंज्ञा वसुंधरा ॥ ६ ॥ त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी ॥ सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी ॥ प्रकृति विंकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ॥ ८ ॥ सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिकापरा ॥ देवमाता भगवती देवकी कमलासना ॥ ९ ॥ त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी ॥ लंबोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी ॥ १० ॥ रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा ॥ गगनवेगा पवनवेगा चैव ततः परम् ॥ ११ ॥ अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा ॥ अनंगानंगमथना तथैवानंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका ॥ क्षयंकरी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम् ॥ १३ ॥ सत्यवादिन्यथ प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता ॥ उदाराख्या च वागीशी चतुष्षष्टिमिताः स्मृताः ॥ १४ ॥ ज्वलज्जिह्वाननाः सर्वा वमंत्यो वह्निमुल्बणम् ॥ जलं पिबामः सकलं संहरामो विभावसुम् ॥ १५ ॥ पवनं स्तंभयामोऽद्य भक्षयामोऽखिलं जगत् ॥ इति वाचं संगिरंते क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ अग्रेभुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी शक्ति, अक्षोभ्या ॥ १३ ॥ सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुंचिव्रता, उदारा, वागीशी, यह ६४ शक्ति हैं ॥ १४ ॥ इनके यह सबका प्रकाशमान उज्ज्वल जिह्वा है अनेक मुखसे अग्नि निर्गत होती है हम सबजल पीजायँ, अग्निका संहार करजायँ ॥ १५ ॥ पवनको स्तंभित करदे, सब जगत्‌को

भक्षण करजायँ, क्रोधसे लालनेत्र किये सब कोई यह वचन कहती हैं ॥ १६ ॥ सब चापबाण धारण किये सदा युद्धको उत्सुक रहती हैं उनकी डाढोंके कटकट शब्दसे दिशा शब्दायमान होती हैं ॥ १७ ॥ पीले और ऊर्ध्वकेशवाली धनुष बाण धारे एक एकके निकट सौ सौ अक्षौहिणी सेना है ॥ १८ ॥ एक २ शक्तिमें लाख ब्रह्माण्ड नाश करनेकी सामर्थ्य है. हे राजन्! वैसीही सौ अक्षौहिणी वाली सेना है ॥ १९ ॥ यह इच्छा करनेसे इस जगत्में क्या नहीं कर सकती सो कौन कह सकता है? हे मुने! उस प्राकारमें

चापबाणधराः सर्वा युद्धायैवोत्सुकाः सदा ॥ दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥ १७ ॥ पिंगोर्ध्वकेश्यः संप्रोक्ताश्चापबाण कराः सदा ॥ शताक्षौहिणिका सेनाप्येकैकस्याः प्रकीर्तिता ॥ १८ ॥ एकैकशक्तेः सामर्थ्यं लक्षब्रह्मांडनाशने ॥ शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम ॥ १९ ॥ किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्न शक्यं वक्तुमेव तत् ॥ सर्वापि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थिता मुने ॥ २० ॥ रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा ॥ शस्त्राणां गणना तद्वद्गणानां गणना तथा ॥२१॥ पद्मरागमयादग्रे गोमेदमणिनिर्मितः ॥ दशयोजनदैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान् ॥ २२ ॥ भास्वज्जपप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी ॥ गोमेदक ल्पितान्येव तद्वासिसदनानि च ॥ २३ ॥ पक्षिणः स्तंभवर्याश्च वृक्षा वाप्यः सरांसि च ॥ गोमेदकल्पिता एव कुंकुमारुणविग्रहाः ॥ २४ ॥ तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः ॥ नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिताः ॥ २५ ॥ प्रत्येकलोकवासिन्यः परिवार्य समंततः ॥ गोमेदसाले सन्नद्धा पिशाचवदना नृप ॥ २६ ॥

सब युद्धकी सामग्री स्थित है ॥२०॥ रथ हाथी घोड़े शस्त्र और गणोंकी गणना कौन कर सकता है ॥ २१ ॥ पद्मराग परकोटेके आगे गोमेदका परकोटा दशयोजन महान् वर्तमान है ॥ २२ ॥ प्रकाशमान जपाके फूलके समान कान्तिमान् है मध्यकी भूमिभी वैसी ही है वहांके वासी और भवन गोमेदसे ही कल्पित हैं ॥ २३ ॥ पक्षी, श्रेष्ठस्तंभ, बावडी, सरोवर, यह कुंकुमके समान रक्तवर्ण गोमेदसेही कल्पित हैं ॥ २४ ॥ उसके मध्य महादेवीकी बत्तीसशक्ति हैं जो अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाली गोमेदजटित भूषण पहरे हैं ॥ २५ ॥ यह प्रत्येक

लोकनिवासिनी चारों ओरसे घेरकर स्थित हैं. हे राजन् ! गोमेदके परकोटेमें पिशाचमुखा ॥ २६ ॥ उस शक्तिलोकनिवासियों द्वारा वे चक्रधारिणी पूजित होती हैं क्रोधसे लालनेत्र किये छेदन भेदन करो दहन करो ॥ २७ ॥ इस प्रकार वचनको युद्धमें उत्कट हो उच्चारण करती हैं, एक एक महाशक्तिके पास दश दश अक्षौहिणी सेना है ॥ २८ ॥ उनमें एक एक शक्ति लाख २ ब्रह्माण्ड नाश कर सकती है, फिर उस महासेनाके वर्णनकी तो कथाही क्या है ॥ २९ ॥ रथ वाहनकी गणनाही नहीं है वहां देवीके सब युद्धका आरंभ विराजमान है

स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः ॥ क्रोधरक्तेक्षणा भिंधिपचच्छिंधिदहेति च ॥ २७ ॥ वदंति सततं वाचं युद्धोत्सुकहृदंतराः ॥ एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता॥२८॥सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्मांडनाशिनी ॥ तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप ॥ २९ ॥ रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च ॥ सर्वयुद्धसमारंभस्तत्र देव्या विराजते ॥ ३० ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च ॥विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा ॥ ३१ ॥ रुद्रा वीर्या प्रभा नंदा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ॥ ३२ ॥ विकृतिर्दंडिमुण्डिन्यौ सेंदुखंडा शिखंडिनी ॥ निशुंभशुंभमथिनी महिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्धशरीरिणी ॥ नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ॥ ३४ ॥ अंबिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृताः ॥ यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्मांडनाशनम् ॥ ३५ ॥ पराजयो न चैतासां कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ पापनाशक उनके नाम कहता हूं सुनो-विद्या, ह्रीं, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली कुहू ॥ ३१ ॥ रुद्रवीर्या, प्रभा, नंदा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, ॥ ३२ ॥ विकृति, दंडि, मुंडिनी, सन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुंभ शुंभमथिनी, महिषासुर मर्दिनी,॥ ३३ ॥इन्द्राणी, रुद्राणी,शंकरार्ध, शरीरिणी,नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी,पालिनी ॥ ३४ ॥ अम्बिका, ह्लादिनी यह शक्तियें हैं जो यह देवी क्रोध करैं तो ब्रह्माण्डनाश कर दें ॥ ३५ ॥ इनको कभी कहीं पराजय नहीं है. गोमेदपर कोटेके आगे हीरेका प्राकार है॥ ३६॥

यह दश योजन ऊंचा गोपुरद्वार सम्पन्न है, इसमें शृंखलाबद्ध किवाँड लगे हैं नवीन वृक्षोंसे कान्तिमान् है ॥ ३७ ॥ इस परकोटेके मध्यकी भूमि हीरेमय है घर गली बडे मार्ग ॥ ३८ ॥ वृक्ष, वेल, तरु और पक्षी भी वैसे ही रंगके हैं दीर्घिकासमूह बावडी तालाव कूप है ॥ ३९ ॥ वहां श्रीभुवनेश्वरीकी दासी निवास करती हैं. एक पारिचारिकाकी लाख २ दासी सेवा करती हैं ॥ ४० ॥ कोई तालका पंखा कोई प्याला हाथमें लिये कोई बडे गर्वसे ताम्बूलपात्र हाथमें लिये हैं ॥ ४१ ॥ कोई छत्र चामर धारे कोई अनेक वस्त्र और पुष्प कमल

दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारसंयुतः ॥ कपाटशृंखलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः॥३७॥सालस्तन्मध्यभूम्यापि सर्वं हीरमयं स्मृतम्॥ गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गांगणानि च ॥३८॥ वृक्षालवालतरवः सारंगा अपि तादृशाः ॥दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूप संयुताः ॥ ३९ ॥ तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसंति परिचारिकाः ॥ एकैकालक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः ॥ ४० ॥ तालवृन्त धराः काश्चिच्चषकाढ्यकरांबुजाः ॥ काश्चित्तांबूलपात्राणि धारयंत्योऽतिगर्विताः ॥ ४१ ॥ काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणां विधा रिकाः ॥ नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकरांबुजाः ॥ ४२ ॥ नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुंकुमलेपनम् ॥ धारयंत्यः कज्जलं च सिंदूरचषकं पराः ॥ ४३ ॥ काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रतः ॥ कांश्चितु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः ॥४४॥ पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गारकारिकाः ॥ नानाविलासचतुरा बह्वय एवंविधाः पराः ॥ ४५ ॥ निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि ॥ देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः ॥ ४६ ॥

धारे हैं ॥ ४२ ॥ कोई अनेक दर्पण लिये कोई कुंकुम लेपन लगाये कोई कज्जल सिन्दुर और पानपात्र लिये हैं ॥ ४३ ॥ कोई चित्र बनानेमें तत्पर कोई पाद संवाहनमें रत कोई गहने बनानेवाली कोई अनेक भूषण धारे ॥ ४४ ॥ कोई पुष्पोंके भूषण बनानेवाली कोई फूलोंका शृंगार करनेवाली इस प्रकार अनेक विलासोंमें चतुर अनेक हैं ॥ ४५ ॥ सब कमरकसे सब ही युवती हैं, देवीकी कृपादृष्टिके कारण तीनों

[illegible] पुष्कर [illegible] है ॥४६॥ जो [illegible] नेत्रोंकी पुत्री हैं, हे राजन् ! मैं उनके नाम कहता हूं सुनो॥४७॥अनंगरूपा, अनंगमदना, सुन्दरी, मदनातुरा ॥४८॥ भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवेदना, अनंगमेखला॥४९॥ यह बिजलीके समान अंगवाली शब्दायमान [illegible] बिजलीके समान सब इधर उधर धावमान होती शोभा [illegible] ॥५१॥ [illegible] अनेक वाहन और शस्त्र सहित इनके महल विरा

[illegible] ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥४७॥ अनंगरूपा प्रथमाप्यनंगमदना [illegible] ॥४८॥ [illegible] भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका॥स्यात्सर्वशिशिरानंगवेदनानंगमे [illegible] ॥४९॥ [illegible] रणन्मंजीरचरणा बहिरंतरितस्ततः ॥ ५० ॥ धावमानास्तु शोभंते [illegible] ॥५१॥ [illegible] प्राकाराद्बहिरेव वासभवनानि विराजंते [illegible] ॥ ५२ ॥ [illegible] गोपुरद्वारभूषितः ॥ ५२ ॥ वैदूर्य [illegible] ॥५३॥ वापीकूपतडागाश्च स्रवंतीनां तटानि च ॥ [illegible] ॥५४॥ [illegible] परितो ब्राह्म्यादीनां च मंडलम् ॥ निजैर्गुणैः परिवृतं भ्राजते [illegible] ॥ ५६ ॥ [illegible] ईरिताः ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ५७ ॥

[illegible] ॥५२॥ [illegible] आगे वैदूर्य [illegible] परकोटा है यह दश योजन ऊंचा गोपुर और द्वारसे भूषित है ॥ ५३ ॥ वहांकी सब भूमि [illegible] और महामार्ग सब वैदूर्यके निर्मित हैं ॥ ५४ ॥ बावडी कूप सरोवर नदियोंके किनारे तथा वालुका वैदूर्य [illegible] ॥ ५५ ॥ [illegible] चारों दिशाओंमें सब ओर ब्राह्मी आदिका मंडल है, हे राजन् ! यह अपने गणोंके सहित शोभित होती ॥५६॥ यह [illegible] मातायोंका समाविष्ट हैं, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ५७ ॥

[illegible]

वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, यह सात मातायें हैं आठवी महालक्ष्मी नामक माता है ॥ ५८ ॥ यह ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंके समान आकारवाली हैं यह जगत्की कल्याणकारिणी अपनी २ सेनाके सहित हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इस परकोटेके चारों द्वारमें भवानीके अलंकार धारण किये वाहन सदा शोभा पाते हैं ॥ ६० ॥ कोटिशः हाथी घोडे पालकी हंस सिंह गरुड मयूर वृषभ ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इनके सहित कोटिशः रथ पार्ष्णिग्राहसे युक्त हैं जिनकी ध्वजायें आकाश चुम्बन करती हैं ॥ ६२ ॥ अनेक चिह्नोंसे युक्त कोटिशः विमान अनेक

वाराही च तथेंद्राणी चामुंडाः सप्तमातरः ॥ अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः ॥ जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः ॥ ५९ ॥ तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः ॥ सज्जानि नृपते संति सालंकाराणि नित्यशः ॥ ६० ॥ दंतिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिविकास्तथा ॥ हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा ॥ ६१ ॥ तैर्युक्ताः स्यंदनास्तद्वत्कोटिशो नृपनंदन ॥ पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजैराकाशचुंबिनः ॥ ६२ ॥ कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च ॥ नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च ॥ ६३ ॥ वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः ॥ दशयोजनतुंगोऽसाविंद्रनीलाश्मनिर्मितः ॥ ६४ ॥ तन्मध्यभूस्तथावीथ्यो महामार्गा गृहाणि च ॥ वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः ॥ ६५ ॥ तत्र पद्मं तु संप्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम् ॥ ६६ ॥ तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च ॥ सर्वोपस्करयुक्तानि समृद्धानि वसंति हि ॥ ६७ ॥

बाजे और महाध्वजासे सम्पन्न हैं ॥ ६३ ॥ वैडूर्यप्राकारसे आगे दश योजन ऊंचा इन्द्रनीलमणिका परकोटा है ॥ ६४ ॥ उसके मध्यकी पृथ्वी छोटी बडी गली महामार्ग बावडी कूप सरोवर सब इसी मणिके बने हैं ॥ ६५ ॥ उसमें कई योजनके विस्तारमें एक कमल है जिसकी सोलह कली सुदर्शन चक्रके समान प्रकाशित हैं ॥ ६६ ॥ यहां सोलह शक्तियोंके अनेक प्रकारके स्थान हैं वह सब सामग्रीसे

युक्त वहां निवास करती है ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! उनके नाम कहता हूं सुनो कराली, विकराली, उमा, सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कांति, आर्या यह सोलह शक्ति हैं ॥ ६९ ॥ यह नीलमेघके समान वर्णवाली हाथमें तलवार लिये, समा खेटक धारिणी युद्धमें मन लगाये ॥ ७० ॥ श्रीजगदीश्वरी देवीकी यह सब सेनानायक हैं यह प्रति ब्रह्माण्डमें स्थित शक्तियोंकी अधीश्वरी हैं ॥ ७१ ॥ यह ब्रह्माण्डको क्षुभित करनेवाली देवीकी शक्तिसे सम्पन्न हैं अनेक रथोंमें आरूढ अनेक शक्ति

तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥ कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः ॥ श्रद्धा मेधा मतिः कांतिरार्याषोडशशक्तयः ॥ ६९ ॥ नीलजीमूतसंकाशाः करवालकरांबुजाः ॥ समा खेटकधारिण्यो युद्धोपक्रांतमानसाः ॥७०॥ सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मांडक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः ॥ ७२ ॥ एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः ॥ इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु बहुविस्तृतः ॥ ७३ ॥ मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलांबुजम् ॥ ७४ ॥ मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम् ॥ तत्र देवीसमाकारा देव्यायुधधराः सदा ॥ ७५ ॥ संप्रोक्ता अष्टमंत्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः ॥ देवीसमानभोगास्ता इंगितज्ञास्तु पंडिताः ॥ ७६ ॥

योंसे युक्त हैं ॥ ७२ ॥ इनका पराक्रम कहनेको शेष भी समर्थ नहीं है इन्द्रनील प्राकारके आगे बडे विस्तारमें ॥ ७३ ॥ दश योजन दीर्घ मोतियोंका परकोटा है मध्यकी भूमि भी मोतियोंकी है उसके आगे बड़ा आठदलका कमल है ॥ ७४ ॥ जो मुक्तामणिके समूहोंसे आकीर्ण बहुत केशरवाला है, वहां देवीके समान आकारवाली देवीकेसे आयुध धारे ॥ ७५ ॥ जगत्की वार्ताको प्रबोध करनेवाली आठ मंत्रकर्त्री हैं वह देवीके समान भोगवाली उसकी चेष्टाओंकी ज्ञाता पंडिता है ॥ ७६ ॥ सब कार्यमें कुशल स्वामिकार्यमें परायण हैं

वे देवीका अभिप्राय जाननेवाली चतुर अति सुन्दरी हैं ॥ ७७ ॥ प्रति ब्रह्माण्डवर्ती अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं, वह अपनी ज्ञानशक्तिसे प्राणियोंके समाचारको जानती हैं ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! सुनो मैं उनके नाम कहता हूं-अनंगकुसुमा, अनंग कुसुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदा, अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा ॥ ८० ॥ शशिरेखा, गगनरेखा, यह सब पाश अंकुश वर अभयधारे अरुणशरीर हैं ॥ ८१ ॥ प्रतिक्षण संसार संबंधिनी वार्ताको बोधन करती हैं मुक्ताप्राकारके आगे महामरकत मणिका परकोटा है॥ ८२ ॥

कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः ॥ देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः ॥ ७७ ॥ नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्मा ण्डवर्तिनाम् ॥ प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदंति च ॥ ७८ ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम ॥ अनंगकु सुमा प्रोक्ताप्यनंगकुसुमातुरा ॥७९॥ अनंगमदना तद्वदनंगमदनातुरा ॥ भुवनपाला तु सा गगनवेगा तैव ततः परम् ॥ ८० ॥ शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम्॥पाशांकुशवराभीतिधरा अरुणविग्रहाः ॥८१॥ विश्वसंबंधिनीं वार्तां बोधयंति प्रतिक्षणम् ॥ मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोऽपरः ॥ ८२ ॥ सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसम न्वितः ॥ ८३॥ मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च ॥ षट्कोणमत्र विस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु ॥८४॥ पूर्वकोणे चतु र्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः॥कुंडिकाक्षगुणाभीतिदण्डायुधधरः परः ॥८५॥ तदायुधधरा देवी गायत्रीपरदेवता॥ वेदाः सर्वे मूर्तिमंतः शास्त्राणि विविधानि च ॥ ८६ ॥ स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमंति वसंति हि ॥ ये ब्रह्मविग्रहाः संति गायत्रीविग्रहश्च ये ॥ ८७ ॥ व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र संति हि ॥ रक्षःकोणे शंखचक्रगदांबुजकरांबुजा ॥ ८८ ॥

यह परमोत्तम दशयोजन दीर्घ है अनेक सौभाग्य और भोगसे युक्त है ॥ ८३ ॥ मध्यकी भूमि और घर भी महामरकत मणिके हैं इसमें षट्कोणकी विस्तीर्ण रचना है उसके कोणमें स्थित देवता सुनो ॥ ८४ ॥ पूर्वकोणमें गायत्रीके सहित चतुर्मुख ब्रह्मा हैं जो कमंडलु अक्षमाला अक्षसूत्र अभय और दंड आयुध धारे हैं ॥ ८५ ॥ वही आयुध धारे परदेवता गायत्री है मूर्तिमान् सब वेद अनेक शास्त्र ॥ ८६ ॥ स्मृति और पुराण सब मूर्तिमान् हैं, जो ब्रह्मविग्रह, ब्रह्मावतार गायत्रीविग्रह ॥ ८७ ॥ व्याहृतियोंके विग्रह हैं,

वे सदा वहां निवास करते हैं नैर्ऋत्यकोणमें शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये ॥ ८८ ॥ सावित्री और उसी प्रकार महाविष्णु वर्तते हैं जो विष्णुके मत्स्य कूर्मादि विग्रह हैं ॥ ८९ ॥ और जो सावित्री के विग्रह हैं वे सब वहां निवास करते हैं वायुकोणमें परशु अक्षमाला अभयवरसे युक्त ॥९०॥ महारुद्र वर्तते हैं वैसेही उनके साथ सरस्वती है जो दक्षिणामूर्ति आदि रुद्रके विग्रह हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो गौरीभेद हैं वे सब वहां निवास करते हैं चौंसठ आगम तथा जो दूसरे आगम हैं ॥ ९२ ॥ वे सब मूर्तिमान् होकर वहां निवास करते हैं. अग्निकोणमें रत्नकुंड

सावित्री वर्तते तत्र महाविष्णुश्च तादृशः ॥ ये विष्णुविग्रहाः संति मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः ॥ ८९ ॥ सावित्रीविग्रहा ये च ते सर्वे तत्र संति हि ॥ वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः ॥९०॥ महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी ॥ ये ये तु रुद्रभेदाः स्युर्दक्षिणास्यादहो नृप॥९१॥गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसंति हि ॥ चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः॥९२॥ ते सर्वे मूर्तिमंतश्च तत्र वै निवसंति हि ॥ अग्निकोणे रत्नकुंभं तथा मणिकरंडकम् ॥ ९३ ॥ दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः ॥ नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ९४ ॥ देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः ॥ वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः ॥ ९५ ॥ पशांकुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते ॥ शृंगारा मूर्तिमंतस्तु तत्र सन्निहिताः सदा ॥ ९६ ॥ ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः ॥ पाशांकुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजते ॥ ९७ ॥ विभूतयो गणेशस्य या याः संति नृपोत्तम ॥ ताः सर्वा निवसंत्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः ॥ ९८ ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः ॥ एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवंते जगदीश्वरीम् ॥ ९९ ॥

तथा मणिकरंडक॥ ९३ ॥ अपने हाथमें धारण किये धननायक कुबेर अनेक वीथी और महालक्ष्मीके सहित ॥ ९४ ॥ अपने गुणोंसे युक्त देवीका निधिपति स्थित है,पश्चिमके महाकोणमें कामदेव रतिके सहित॥९५॥पाश अंकुश धनुर्बाण लिये नित्यविराजमान होता है, सब शृंगार मूर्तिमान् होकर वहां स्थित हैं ॥ ९६ ॥ ईशान कोणमें विघ्नेश नित्य पुष्टिसहित पाश अकुंश धारे वीरवेष विघ्नहर्ता विराजमान होते हैं॥९७॥ हे राजन ! जो जो गणेशकी विभूति हैं वह महा ऐश्वर्यसहित वहां निवास करती हैं॥९८॥प्रति ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादिकी समष्टि हैं वे सब

ब्रह्मादिक परमेश्वरीका सेवन करते हैं ॥ ९९ ॥ महामरकत मणिके परकोटेके आगे शतयोजनका दीर्घ कुंकुमके समान रक्तवर्ण मूंगोंका परकोटा है ॥ १०० ॥ उसके मध्यकी भूमि तथा स्थान भी मूंगोंके हैं उसके मध्यमें पांच भूतोंकी पांच स्वामिनी हैं ॥ १ ॥ हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका, महोच्छुष्मा यह पांच भूतोंके समान कांतिवाली हैं ॥ २ ॥ पाश अंकुश वर अभय धारण किये मितभूषण पहरे देवीके समान वेष धारे नव यौवनसे गर्वित वहां निवास करती हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रवाल परकोटेके आगे बहुत योजनके विस्तारमें नवरत्नका परकोटा है ॥ ४ ॥ वहां पूर्व आम्नाय पश्चिम आम्नाय दक्षिण आम्नाय उत्तर ऊर्ध्व आम्नाय देवियोंके बहुत स्थान हैं वहांके तडाग सरोवर

महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान् ॥ प्रवालशालोऽस्त्यपरः कुंकुमारुणविग्रहः ॥ १०० ॥ मध्यस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत् ॥ तन्मध्ये पंचभूतानां स्वामिन्यः पंच संति च ॥ १ ॥ हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका ॥ महोच्छुष्मा पंचमी च पंचभूतसमप्रभाः ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ॥ देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः ॥ ३ ॥ प्रवालशालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः बहुयोजनविस्तीर्णो महाशालोऽस्ति भूमिप ॥ ४ ॥ तत्र चाम्नायदेवीनां सदनानि बहून्यपि ॥ नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च ॥५॥ श्रीदेव्या येऽवताराः स्युस्ते तत्र निवसंति हि ॥ महाविद्या महाभेदाः संति तत्रैव भूमिप ॥६॥ निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनैः ॥ सर्वदेव्यो विराजंते कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ ७ ॥ सप्तकोटिमहामंत्रदेवताः संति तत्र हि ॥ नवरत्नमयादग्रे चिंतामणिगृहं महत् ॥ ८ ॥

भी नवरत्नोंकेही हैं ॥ ५ ॥ श्रीदेवीके अवतार पाशांकुशेश्वरी, भुवनेश्वरी, भैरवी, कपालभुवनेश्वरी, अंकुशभुवनेश्वरी. प्रसादभुवनेश्वरी, क्रोधभुवनेश्वरी, त्रिपुटा, अश्वारूढा, नित्यक्लिन्ना, अन्नपूर्णा, त्वरिता आदि वहां निवास करते हैं ॥ ६ ॥ कान्ती तारा षोडशी भैरवी मातंगी आदि दशो महाविद्या वहां निवास करती हैं अपने आवरणकी देवियों द्वारा अपने भूषण वाहनोंके सहित कोटिसूर्यकी कांतिवाली सब देवी विराजमान होती हैं ॥ ७ ॥ वहीं सात कोटि महा मन्त्रोंके देवता निवास करते हैं नवरत्नमय स्थानोंसे आगे चिन्तामणी निर्मित बडा घर है ॥ ८ ॥

वहांकी सम्पूर्ण वस्तु चिन्तमणिकी बनी हुई हैं सूर्यके समान कान्ति फैलानेवाले चन्द्रसमान कान्ति फैलानेवाले ॥ ९ ॥ तथा विद्युत्समान कान्ति प्रकाश करनेवाले रत्नोंके वहां सहस्रों स्तंभ हैं जिनकी कांतिसे वहांकी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले यही मध्यभागमें देवीका स्थान विराजमान है जो सहस्र स्तंभ संयुक्त हैं उसमें चार मंडप हैं ॥ १ ॥ एक शृंगारमंडप, दूसरा मुक्तिमण्डप तीसरा ज्ञानमंडप ॥ २ ॥ चौथा एकान्तमंडप है यह अनेक वितानोंसे

तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिंतामणिविनिर्मितम् ॥ सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चंद्रोद्गारोपलैस्तथा ॥९ ॥ विद्युत्प्रभोपलैः स्तंभाः कल्पितास्तु सहस्रशः ॥ येषां प्रभाभिरंतस्थं वस्तु किंचिन्न दृश्यते ॥११०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ तदेव देवीसदनं मध्यभागे विराजते ॥ सहस्रस्तंभसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मंडपाः ॥ १ ॥ शृंगारमंडपश्चैको मुक्तिमंडप एव च ॥ ज्ञानमंडपसंज्ञस्तु तृतीयः परिकीर्तितः ॥२॥ एकांतमंडपश्चैव चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ नानावितानसंयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिताः ॥ ३ ॥ कोटिसूर्यसमाः कांत्या भ्राजंते मंडपाः शुभाः ॥ तन्मंडपानां परितः काश्मीरवनिका स्मृता॥४॥ मल्लिका कुंदवनिका यत्र पुष्कलकाः स्थिताः ॥ असंख्याता मृगमदैः पूरितास्तत्स्रवा नृप ॥५॥ महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता ॥ सुधारसेन संपूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता ॥ ६ ॥ हंसकारंडवाकीर्णा गन्धपूरितदिक्तटा ॥ वनिकानां सुगंधैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम् ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपे देव्यो गायंति विविधैः स्वरैः ॥सभासदो देववशा मध्ये श्रीजगदंबिका ॥ ८ ॥

संयुक्त और अनेक धूपोंसे धूपित है ॥ ३ ॥ यह मंडप कोटिसूर्यके समान कांतिमान हैं उन मंडपोंके सब ओर केसरकी वाटी ॥ ४ ॥ मल्लिका कुन्द यह तीन वाटी लगी हैं जहां असंख्यात गन्धमृग मदसे पूरित तथा मदस्रवन करते विचरते हैं ॥ ५ ॥ आगे उनके महापद्मोंकी अटवी, रत्नसोपाननिर्मित विराजमान हैं जो सुधारससे पूर्ण हैं जिनपर मधुके लोभसे भौंरे गुंजारते हैं ॥ ६ ॥ हंस कारंडवोंसे युक्त किनारे सुगन्धसे पूर्ण हैं, उन वाटिकाओंकी गंधसे मणिद्वीप सुवासित रहता है ॥ ७ ॥ शृंगारमंडपमें देवियें सुन्दर स्वरसे गानकरती हैं उस मंडपके

मध्य देवी सिंहासनपर स्थित है पूर्वोक्त देवता सभासद हैं ॥ ८ ॥ मुक्तिमण्डपमें स्थित हो सब ब्रह्मांडके भक्तोंको मुक्त करती हैं तीसरे मंडपमें अपने भक्तोंके भक्तोंको ज्ञान उपदेश करती हैं जो निज ब्रह्मरूप विषयक ज्ञान है ॥ ९ ॥ चौथे मंडपमें स्थितहो मंत्रिणियोंके सहित जगत् रक्षाका विचार करती है ॥ १० ॥ हे राजन् ! चिन्तामणिमंदिरमें शक्तितत्त्वात्मक दशसोपानोंसे युक्त एक सिंहासन है, निवृत्ति आदि पांच कला, बिंदुकला, नादशक्ति, सदापूर्वा शिवप्रकृति इनही मूलप्रकृति भुवनेश्वरीके दशतत्वोंसे दशसोपानयुक्त मंच निर्मित है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, यह चार इस मंचके पायेस्वरूप हैं, और सदाशिव फलकस्थानी हैं ॥ १२ ॥

मुक्तिमंडपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा ॥ ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृपमंडपे ॥ ९ ॥ चतुर्थमंडपे चैव जगद्रक्षाविचिन्तनम् ॥ मन्त्रिणीसहिता नित्यं करोति जगदंबिका ॥ १० ॥ चिंतामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः ॥ सोपानैर्दशभिर्युक्तो मंचकोऽप्यधिराजते ॥११॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पंच खुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः ॥१२॥ तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते ॥ या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता बभूव ह ॥ १३ ॥ सृष्ट्यादौ तु स एवायं तदर्धांगो महेश्वरः कंदर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकंदर्पसुन्दरः ॥ १४ ॥ पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः ॥ हरिणाऽभीतिपरशून्वरं च निजबाहुभिः ॥१५॥ दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चंद्रकोटिसुशीतलः ॥ १६ ॥

इसके ऊपर भुवनेश महादेव विराजते हैं जो भुवनेश्वरी अपनी लीलाके निमित्त द्विधाभूत होती है उसका दक्षिणभाग यह भुवनेश्वर है एकही साम्यावस्थामें स्थित मायाशबलब्रह्मरूपिणी भगवती भुवनेश्वरी भुवनेश्वर रूपसे प्रादुर्भूत हुई है ॥ १३ ॥ सृष्टिकी आदिमें होकर यह महेश्वर उसका अर्धांग है कन्दर्पदर्पके नाशनेमें उद्यत कोटि कन्दर्पके समान सुन्दर ॥ १४ ॥ पंचमुख तीननेत्र मणिभुषणोंसे भूषित हरिण अभय परशुवर अपनी भुजाओंमें धारण किये ॥ १५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्थावाले वह सर्वेश्वरदेव हैं कोटि सूर्यके समान कांतिमान्,

कोटिचन्द्रके समान शीतल ॥ १६ ॥ शुद्धस्फटिक मणिके समान कांतिमान् तीननेत्र शीतल द्युति जिनके बाईं ओर श्रीभुवनेश्वरी स्थित हैं ॥ १७ ॥ नवरत्न समूहोंसे व्याप्त कांची मेखलासे विराजित तपे सुवर्णसे बने और जडे वैदूर्य अंगदकी भूपणवाली ॥ १८ ॥ सुवर्णका दीप्यमान श्रीचक्र तदाकारके जो ताटंक कर्णभूपणोंसे जिनका मुख सुंदर होरहा है और ललाटकी कांतिके ऐश्वर्यसे जिसने अर्धचन्द्रको जय करलिया ॥ १९ ॥ विम्बकांतिको तिरस्कार करनेवाले जो ओष्ठपुट तिससे विराजमान श्रेष्ठ कुंकुम कस्तूरीके तिलकसे प्रकाशमान मुखवाली

शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः ॥ वामांके सन्निषण्णाऽस्य देवी श्रीभुवनेश्वरी ॥ १७ ॥ नव रत्नगणाकीर्णकांचीदामविराजिता ॥ तप्तकांचनसन्नद्धवैदूर्यांगदभूपणा ॥ १८ ॥ कनच्छ्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा ॥ ललाटकांतिविभवविजितार्धसुधाकरा ॥ १९ ॥ बिम्बकांतितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ॥ लसत्कुंकुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥ २० ॥ दिव्यचूडामणिस्फारचंचच्चन्द्रकसूर्यका ॥ उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥ २१ ॥ चिंताकालंबितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता ॥ पाटीरपंककर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनी ॥ २२ ॥ विचित्रविविधाकल्पा कंबुसंकाशकंधरा ॥ दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजिता ॥२३॥ अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटांचितमस्तका ॥ मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजा ॥ २४ ॥ कलंककार्श्यनिर्मुक्तशरच्चंद्रनिभानना जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ दिव्य चूडामणि शिरोभूषणमें चन्द्र सूर्यनामक भूषणोंसे सम्पन्न उदित शुक्रके समान नासाभूषणसे संयुक्त ॥ २१ ॥ चिन्ता नामक कंठभूषणमें लम्बायमान स्वच्छ मोतियोंके गुच्छेसे विराजित पटीर पंक कर्पूर और कुंकुमसे अलंकृत स्तनवाली ॥ २२ ॥ विचित्र अनेक प्रकारके कल्पवाली, शंखके समान गर्दन दाडिमीफलके बीजके समान कांतिमान् दांतोंकी पंक्तिसे विराजित ॥ २३ ॥ बडे रत्नोंके मूल्यसे बने मुकुटसे जिनका मस्तक शोभित है मत्तभ्रमरमालासे जिनके मुखकी अलकावली शोभित होरही है ॥ २४ ॥ श्यामतासे निर्मुक्त

शरच्चन्द्रके कांतिके समान मुखवाली गंगाके आवर्तके समान गंभीर नाभिसे शोभित ॥ २५ ॥ माणिक्य जड़ी अँगूठीसे शोभायमान, कमलदलके समान आकारवाले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ २६ ॥ शाणपर धरे महाराग पद्मरागमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाली रत्नोंकी किंकिणी और रत्नोंके कंकणसे शोभित ॥ २७ ॥ मणि मोतियोंकी मालामें विद्यमान अमूल्य पदक पंक्तिसे शोभित और रत्नांगुलियों अर्थात् मुद्रिकाके रत्नोंकी निकली कान्तिसे जिनके कर शोभित होरहे हैं ॥ २८ ॥ कंचुकीमें गुंफित अनेक रत्नोंकी विस्तृत कांतिसे शोभित, मल्लिकाकी सुगंधिवाला जो धम्मिल्ल (केशपाश) उसमें स्थित मल्लिका मालापर भ्रमण करते हुए भ्रमरस मूहसे युक्त ॥२९॥ गोल निविड़ 'सघन' ऊँचे

माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकांगुलिभूषिता ॥ पुंडरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥ २६ ॥ कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ॥ रत्नकिंकिणिकायुक्तरत्नकंकणशोभिता ॥ २७ ॥ मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसंततिः ॥ रत्नांगुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥ ॥ २८ ॥ कंचुकीगुंफितापारनानारत्नततिद्युतिः ॥ मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९ ॥ सुवृत्तनिविडोत्तुंगकुचभारालसा शिवा ॥ वरपाशांकुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥३०॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सुकुमारांगवल्लरी ॥ सौंदर्यधारा सर्वस्वा निर्व्याज करुणामयी ॥३१॥ निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ॥ कोटिकोटिरवींदूनां कांतिं या बिभ्रती परा ॥ ३२ ॥ नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवांगनादिभिः ॥ सर्वाभिर्देवताभिस्तु समंतात्परिवेष्टिता ॥ ३३ ॥ इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियाशक्त्या समन्विता ॥ लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कांतिः क्षमा दया ॥ ३४ ॥

कुचभारसे आलसको प्राप्त शिवा भवानी वर, पाश, अंकुश, अभयसे जिनकी चारों भुजा शोभायमान हैं ॥ ३० ॥ सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सुकुमार अङ्गवाली, सौन्दर्य धाराकी सर्वस्वरूप विना हेतुकेही करुणावाली ॥ ३१ ॥ अपने संलापकी माधुरीनादसे वीणाको लज्जित करनेवाले कोटि २ चन्द्र सूर्यके कांतिको धारण करनेवाली ॥ ३२ ॥ अनेक सखी दासी देवांगना तथा सब देवताओंसे चारों ओर वेष्टित ॥ ३३ ॥ इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे युक्त लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्ति, कांति, क्षमा, दया ॥ ३४ ॥

बुद्धि, मेधा, स्मृति, लक्ष्मी यह सब मूर्तिमान् अङ्गनायें स्थित हैं. जया, विजया, अजिता, पराजिवा ॥ ३५ ॥ नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री अघोरा, मंगला, नवा यह पीठशक्तियें हैं जो परा अम्बिकाका सेवन करती हैं ॥ ३६ ॥ जिसके पार्श्वभागमें शंख और पद्मक निधियें विद्यमान हैं जिनसे नवरत्न और कांचनस्रावी नदी वहन करती हैं ॥ ३७ ॥ तथा सातधातुकी बहानेवाली नदियें निधियोंसे निर्गत होती हैं, हे राजन् ! वह सब सुधासागर पर्यन्त बहती हैं ॥ ३८ ॥ वह महेशानी देवी उनके वामअङ्गमें विराजमान

बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽगनाः स्मृताः ॥ जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता ॥३५॥ नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरामंगलानवा ॥ पीठशक्तय एतास्तु सेवंते यां परांबिकाम् ॥३६॥ यस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शंखपद्मकौ ॥ नवरत्न वहा नद्यस्तथा वै कांचनस्रवाः ॥३७॥ सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः ॥ सुधासिंध्वंतगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम॥३८॥ सा देवी भुवनेशानी तद्वामांके विराजते ॥ सर्वेशत्वं महेशस्य यत्संगादेव नान्यथा ॥३९॥ चिंतामणिगृहस्याऽस्य प्रमाणं शृणु भूमिप ॥ सहस्रयोजनायामं महांतस्तत्प्रचक्षते ॥४०॥ तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद् द्विगुणाः स्मृताः ॥ अंतरिक्षगतं त्वेतन्निरा धारं विराजते ॥ ४१ ॥ संकोचश्च विकाशश्च जायतेऽस्य निरंतरम् ॥ पटवत्कायवशतः प्रलये सर्जने तथा ॥ ४२ ॥ शालानां चैव सर्वेषां सर्वकांतिपरावधि ॥ चिंतामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी ॥ ४३ ॥ ये ये उपासकाः संति प्रतिब्रह्मांडवर्तिनः ॥ देवेषु नागलोकेषु मनुष्येष्वितरेषु च ॥ ४४ ॥

हैं इन्हींके संगसे महेशको सर्वेशत्व प्राप्त है इसमें अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस चिन्तामणिगृहका प्रमाण सुनो सहस्रयोजनके आयाम (विस्तारोंमें) है ॥ ४० ॥ उसके उत्तर महापरकोटे लम्बावमें उससे दूने हैं, यह अन्तरिक्षमें स्थित निराधारमें विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ यह निरन्तर संकुचित और विकसित हो सकता है यह कार्यवश सृष्टिकी आदिमें पटवत् फैलता और प्रलयमें संकुचित होजाता है ॥ ४२ ॥ सब परकोटाकी कांतिकी यह चिंतामणि मंदिर परम अवधि है जहां महाप्रभावा देवी निवास करती है ॥ ४३ ॥ प्रतिब्रह्माण्डके रहनेवाली

जो जो उपासक हैं देवलोक नागलोक तथा मनुष्यलोकमें हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वह सब यही श्रीदेवीके निकट प्राप्त होते हैं जो देवीके पूज नमें तत्पर देवीके क्षेत्रमें प्राणत्यागन करते हैं ॥ ४५ ॥ वह सब वहीं जाते हैं जहां देवीका महोत्सव है वहां घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मधुकी बहानेवाली हैं ॥ ४६ ॥ सब नदी अमृतकी बहानेवाली हैं कोई द्राक्षारस कोई जम्बूरस बहानेवाली हैं ॥ ४७ ॥ आम ईखके रसवाली सहस्रों नदियां हैं, मनोरथ फलनेवाले वृक्ष बावडी और कूप हैं ॥४८॥ जो यथेष्ट पान फलके देनेवाले हैं, जिनमें कुछ भी न्यूनता

श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि व्रजंत्यत्रैव भूमिप ॥ देवीक्षेत्रे ये त्यजंति प्राणान्देव्यर्चने रताः ॥४५॥ ते सर्वे यांति तत्रैव यत्र देवी महोत्सवा ॥ घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्रवाः ॥४६॥ स्यंदंति सरितः सर्वास्तथामृतवहाः पराः ॥ द्राक्षारसवहाः काश्चिज्जंबूरसवहाः पराः ॥४७॥ आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः ॥ मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च ॥४८॥ यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किंचिदस्ति हि ॥ न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन ॥ ४९ ॥ न चिंता नच मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा ॥ सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः ॥ ५० ॥ भजंति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ केचित्सलोकतापन्नाः केचित्सामीप्यतां गताः ॥५१॥ सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः ॥ या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥५२॥ समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवंते जगदीश्वरीम् ॥ सप्तकोटिमहामंत्रा मूर्तिमंत उपासते ॥ ५३ ॥ महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम् ॥ कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम् ॥ ५४ ॥

नहीं होती, रोग पलित और जरा नहीं होती ॥ ४९ ॥ चिन्ता मात्सर्य काम क्रोधादिक नहीं हैं, सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् वहांके पुरुष स्त्रीसहित सदा युवा रहते हैं ॥ ५० ॥ वह श्रीभुवनेश्वरीका नित्य भजन करते हैं. कोई सालोक्य कोई सामीप्य मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ कोई सारूप्य और कोई सार्ष्टि मुक्तिको प्राप्त हुए हैं प्रतिब्रह्माण्डवर्ती वहां जितने देवता हैं ॥ ५२ ॥ वहां उनकी समष्टि सब श्रीजगदीश्वरीकी सेवा करते हैं, वहां सातकरोड महामंत्र मूर्तिमान् होकर उपासना करते हैं ॥ ५३ ॥ और सब महाविद्या साम्यावस्थामें स्थित शिवा, कारण

ब्रह्मरूपा,मायासे शबल विग्रहवालीकी उपासना करते हैं ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! यह मैंने आपसे मणिद्वीपका महाप्रभाव कहा चन्द्र सूर्य विजली कोटियों अग्नि यह ॥ ५५ ॥ इस कान्तिके कोटि अंशके कोटि अंशमें भी नहीं है कहीं मूँगेके समान कहीं मरकतकी छवि ॥ ५६ ॥ कहीं विद्युत्सूर्यके समान कहीं मध्याह्न सूर्यके समान कहीं कोटि विद्युत्के समान महाधारासारकान्ति ॥ ५७ ॥ कहीं सिन्दूरनील इन्द्र माणिक्यके समान छवि,कहीं हीरेके समान कान्ति चारोंओर फैलतीहै और ॥ ५८ ॥ कहीं कांतिमें दावानलके समान तत्ते किये सुवर्णके समान कहीं

इत्थं राजन्मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम् ॥ न सूर्यचंद्रो नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च ॥ ५५ ॥ एतस्य भासा कोट्यंशकोट्यंशेनापि ते समाः ॥ क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि ॥ ५६ ॥ विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित् ॥ विद्युत्कोटिमहाधारासारकांतिततं क्वचित् ॥ ५७ ॥ क्वचित्सिंदूरनीलेंद्रं माणिक्यसदृशच्छवि ॥ हीरसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम् ॥ ५८ ॥ कांत्या दावानलसमं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ क्वचिच्चंद्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारे च कुत्रचित् ॥ ५९ ॥ रत्नशृंगिसमायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम् ॥ रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमंडितम् ॥ ६० ॥ नृत्यन्मयूरसंघैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम् ॥ कोकिलाकाकलीलापैः शुकलापैश्च शोभितम् ॥ ६१ ॥ सुरम्यरमणीयांबुलक्षावधिसरोवृतम् ॥ तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपंकजैः ॥ ६२ ॥ सुगंधिभिः समंताच्च वासितं शतयोजनम् ॥ मंदमारुतसंभिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम् ॥ ६३ ॥ चिंतामणिसमूहानां ज्योतिषा वितताम्बरम् ॥ रत्नप्रभाभिरभितो धगद्धगितदिक्तटम् ॥ ६४ ॥

चन्द्रकांत कहीं सूर्यकान्तमणि ॥ ५९ ॥ रत्न शिखरोंसे युक्त रत्नके प्राकार और गोपुरसे सम्पन्न रत्नपत्र और रत्न फलवाले वृक्षोंसे मंडित ॥ ६० ॥ मयूरोंके समूहोंके नृत्य और कपोतोंके शब्दोंसे शब्दायमान कोकिला काकली और तोतोंके आलापसे शोभित ॥ ६१ ॥ मनोहर रमणीय जलके लक्षों सरोवर, उनके मध्यभागमें रत्नोंके कमल खिले हुए ॥६२॥ चारों ओर सौ योजनतक सुगंधि व्याप्त हो रही मंदमारुतसे जहांके वृक्ष चलायमान हो रहे ॥ ६३ ॥ चिंतामणिके समूहोंकी ज्योति आकाशमें फैल रही उनमें रत्नोंकी कांतियोंसे सब

ओर प्रकाश हो रहा है ॥ ६४ ॥ वृक्षोंके समूहोंकी महागंधसे युक्त पवनसे पूर्ण हे राजन् ! सब स्थान धूपोंसे धूपित और मणिद्वीपोंसे संमुज्ज्वल हैं ॥ ६५ ॥ मणियोंके जालके छिद्रोंमें चञ्चल दीपोंकी कांति निकलकर गृह मध्यके दर्पणोंमें पडकर एक अपूर्व मोहजनक कांतिधारण करती है ॥ ६६ ॥ संपूर्ण ऐश्वर्य संपूर्ण शृंगार सब सर्वज्ञता संपूर्ण तेज ॥ ६७ ॥ सब पराक्रम, सर्वोत्तम गुण और संपूर्ण दयाकी यहां समाप्ति है. हे राजन् ! ॥ ६८ ॥ राजाके आनंदसे प्रारंभकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो आनंद है वे सब आनंद यहां हैं ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! यह आपसे मणिद्वीपका महत्त्व कहा यह महादेवीका परमस्थान सब लोकोंसे उत्तमोत्तम है ॥ ७० ॥ इसके स्मरणमात्रसे सब पाप नष्ट होते

वृक्षव्रातमहागंधवातव्रातसुपूरितम् ॥ धूपधूपायितं राजन्मणिद्वीपायुतोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥ मणिजालकसच्छिद्रतरलोदरकांतिभिः ॥ दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम् ॥ ६६ ॥ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शृंगारस्याखिलस्य च ॥ सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखिलस्य च ॥ ६७ ॥ पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च ॥ सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते ॥ ६८ ॥ राज्ञ आनन्दमारभ्य ब्रह्मलोकांतभूमिषु ॥ आनंदा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवांतर्भवंति हि ॥ ६९ ॥ इति ते वर्णितं राजन्मणिद्वीपं महत्तरम् ॥ महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥ ७० ॥ एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वं पापं विनश्यति ॥ प्राणोत्क्रमणसंधौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति ॥७१॥ अध्यायपंचकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः ॥ भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्नहि ॥ ७२ ॥ नवीनगृहनिर्माणे वास्तुयागे तथैव च ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते ॥७३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ व्यास उवाच ॥ इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ॥१॥

हैं प्राण प्रयाणके समय इसको स्मरण करनेसे प्राणी मणिद्वीपमें ही गमन करता है ॥ ७१ ॥ जो सावधान हो आठवें अध्यायसे बारह अध्यायतक पांच अध्याय नित्य सुनता है उसको भूत प्रेत पिशाचादि बाधा नहीं होती ॥ ७२ ॥ नवीन गृहके निर्माणमें वास्तुयोगमें प्रयत्नसे इसको पढै तो कल्याण मंगल होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जो जो आपने पूँछा सो सब तुमसे कहा जो कुछ नारायणने महात्मा नारदसे

कहा था ॥ १ ॥ इस महादेवीके परम अद्भुत पुराणको श्रवण कर यह प्राणी कृतकृत्य और देवीका प्रिय होता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! अब अपने पिताके उद्धारके निमित्त अम्बायज्ञ कीजिये जिसके विना किये पिताकी सुगति न होनेके कारण तुम खिन्न हो रहे हो ॥३॥ आप सर्वोत्तम म.दे.ीके मंत्रको ग्रहण करो जो यथाविधिविधानसे जन्मकी सफलता देता है ॥४॥ सूतजी बोले मुनिश्रेष्ठके यह वचन सुन वह नृपश्रेष्ठ मुनिराजकी प्रार्थना कर उनसेही प्रणवसंज्ञक महादेवीके मंत्रको ॥५॥ दीक्षाविधिके विधानसे राजाने ग्रहण किया फिर नवरात्रके समागममें धौम्यादि महर्षियोंको

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः ॥२॥ कुरु चांबामखं राजन्स्वपितुद्धरणाय वै ॥ खिन्नोऽसि येन राजेंद्र पितुर्ज्ञात्वा तु दुर्गतिम् ॥३॥ गृहाण त्वं महादेव्या मंत्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथाविधि विधानेन जन्मसाफल्यदायकम् ॥४॥ सूत उवाच ॥ यच्छ्रुत्वा नृपशार्दूल प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम् ॥ तस्मादेव महामंत्रं देवीप्रणवसंज्ञकम् ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिविधानेन जग्राह नृपसत्तमः ॥ तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे ॥६॥ अंबायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ब्राह्मणैः पाठयामास पुराण त्वेतदुत्तमम् ॥ ७ ॥ श्रीदेव्यग्रेऽबिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः ॥ ८ ॥ कुमारीबटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च ॥ द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान्संतोष्य वसुधाधिपः ॥९॥ समाप्य यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि ॥ तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत् ॥१०॥ रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्निशिखोपमः॥ ससंभ्रमः समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥ ११॥

बुलाये ॥ ६ ॥ वित्तशाठ्यसे वर्जित हो अम्बायज्ञ किया और यह उत्तम पुराण ब्राह्मणोंद्वारा पाठ कराया ॥ ७ ॥ श्रीदेवी अम्बिकाकी प्रीतिके निमित्त परम देवीभागवत सुनी असंख्य ब्राह्मण और सुवासिनियोंको भोजन कराया ॥ ८ ॥ कुमारी बटुक दीन अनाथ इन सबको भोजन और द्रव्यदानसे राजाने प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ यज्ञ समाप्त करके ज्योंही यज्ञमंडपमें स्थित थे कि, तबतक आकाशसे नारदजी उतरे ॥ १० ॥ प्रज्वलित अग्निके समान कांतिवाले महतीनामक अपनी वीणाको बजाते आये नारदजीको देखतेही राजा संभ्रांत हो उठ खडा

हुआ ॥ ११ ॥ और आसनादि उपचारोंसे राजाने उनकी पूजा की और कुशलप्रश्न कर आगमन कारण पूँछा ॥ १२ ॥ राजा बोले हे
महात्मन् आप कहांसे आये हो कहिये मैं आपका क्या प्रिय करूं आपके आगमनसे मैं सनाथ और कृतार्थ हुआ हूं ॥ १३ ॥
राजाके यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ बोले हे राजन् ! इस समय देवलोकमें मैंने बडा आश्चर्य देखा है ॥ १४ ॥ वह मैं विस्मित हो तुमसे निवे
दन करनेको आया। अपने कर्मकी विपरीततासे तुम्हारे पिताकी सद्गति नहीं हुई थी ॥ १५ ॥ जो इस समय वह दिव्य रूप होकर

आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ कुत आगमनं साधो
ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणात् ॥ १३ ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥
अद्याऽऽश्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम ॥ १४ ॥ तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः ॥ पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निज
कर्मविपर्ययात् ॥१५॥ स एवाय दिव्यरूपवपुर्भूत्वाऽधुनैव हि ॥ देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समंततः ॥ १६ ॥ विमान
वरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत् ॥ देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थफलेन च ॥ १७ ॥ अंबामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः ॥
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥ १८ ॥ नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण ॥ देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवात्र
विपुलाऽभवत् ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्गदितांतरः ॥ पपात पादांबुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥
॥ २० ॥ तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने ॥ किं मया प्रतिकर्तव्यं नमस्काराहते तव ॥ २१ ॥

देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो सब ओर अप्सराओंसे वेष्टित हो ॥ १६ ॥ अच्छे विमानपर चढ मणिद्वीपको गये हैं यह इस देवीभागवतके
सुननेका ही फल है ॥ १७ ॥ देवीयज्ञके कारण तुम्हारे पिताकी सद्गति हुई तुम धन्य और कृतकृत्य हो तथा तुम्हारा जीवन सफल है ॥१८॥
हे कुलभूषण ! आपने अपने पिताका दुःखसे उद्धार किया इस समय देवलोकमें तुम्हारी बडी कीर्ति हुई है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले राजा
यह नारदजीके कहे वचन सुनकर प्रेमसे गद्गद हो अद्भुतकर्मा व्यासजीके चरणोंमें पडे ॥ २० ॥ और बोले हे देव ! मैं आपके अनुग्रहसे

कृतार्थ हुआ हूं नमस्कारके सिवाय और मैं इसका प्रत्युपकार क्या कर सकता हूं ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार मेरे ऊपर सदा अनुग्रह रखना चाहिये यह राजाके वचन सुन आशीर्वादसे राजाको प्रसन्न कर ॥ २२ ॥ भगवान् व्यासजी मनोहर वचन बोले हे राजन् ! और सब त्यागनकर देवीके चरणकमलका भजन करो ॥२३॥ और नित्य सावधान होकर देवीभागवतका पाठ करो और आलस्य त्याग भक्तिपूर्वक सदा अम्बामख किया करो ॥ २४ ॥ इससे अनायास ही संसार बंधनसे छूट जाओगे और भी शिव विष्णु आदि पुराण हैं ॥ २५ ॥

अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वाप्याशीभिरभिनन्द्य च ॥ २२ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवानन्बादरायणः ॥ राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदांबुजम् ॥ २३ ॥ देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः ॥ अंबामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतंद्रितः ॥ २४ ॥ अनायासेन तेन त्वं मोक्ष्यसे भवबंधनात् ॥ सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च ॥ २५ ॥ देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः॥२६॥मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते॥ समंतेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम ॥ २७ ॥ पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः ॥ जग्मुश्चैव तथा स्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः ॥ २९ ॥

पर इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं यह पुराण और वेदोंका सार है ॥ २६ ॥ कारण कि, इसमें शबलब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृति प्रतिपादन की गई है फिर और पुराण ब्रह्मा विष्णु आदि एक एक गुणके कहनेवाले इस त्रिगुणकी साम्यावस्थावाले पुराणकी बराबरी कैसे कर सकते हैं ॥ २७ ॥ हे जनमेजय ! इसके पाठसे वेदपाठके समान पुण्य होता है इस कारण उत्तम विद्वानोंको प्रयत्नसे इसे पढना चाहिये ॥ २८ ॥ इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ राजासे विदा हुए और धौम्यादि निर्मल मुनिभी अपने स्थानोंको गये ॥ २९ ॥

और देवी भागवतकी उत्तम प्रशंसा करने लगे और राजा प्रसन्नमन होकर पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ३० ॥ और निरन्तर भागवत पढते सुनते रहे ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूतजी बोले तीसरे स्कन्धमें वटपत्रमें शयन करते विष्णुसे जो देवीने 'सर्वंखल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्' अर्थात् यह सब मैं ही हूं मेरे सिवाय कोई नित्य पदार्थ नहीं यह आधाश्लोक देवीके मुखसे निर्गत हुआ वेदसिद्धान्तका जतानेवाला वेद सिद्धान्तका बोधक है ॥ १ ॥ जो वटपत्र निवासी विष्णुको उपदेश किया, पहले ब्रह्माने इसको सौ करोड श्लोकोंमें विस्तार किया था ॥ २ ॥ उसीका व्यासजीने शुकदेवके निमित्त

देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम् ॥ राजा शशास धरणीं ततः संतुष्टमानसः ॥ ३० ॥ देवीभागवतं चैव पठञ्छृण्वन्निरंतरम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम् ॥ श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम् ॥ १ ॥ उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने ॥ शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा ॥ २ ॥ तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे ॥ अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम् ॥ ३ ॥ देवीभागवतं नाम पुराणं प्रथितं पुरा ॥ अद्यापि देवलोके तद्बहुविस्तीर्णमस्ति हि ॥ ४ ॥ नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ५ ॥ पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः ॥ व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः ॥ ६ ॥ लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाऽथवा मुने ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ७ ॥

अठारह सहस्र बारह स्कन्धमें सार कहा है ॥ ३ ॥ देवीभागवतनाम पुराण जो पहले ब्रह्माने निर्माण किया अबभी देवलोकमें वह बडे विस्तार युक्त है ॥ ४ ॥ इसके समान पुण्यदायक पवित्र तथा पापनाशक दूसरा पुराण नहीं है इसके पाठसे मनुष्य पदपदमें अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वस्त्र आभरणादिसे पौराणिककी पूजा करनी चाहिये, पुराणवक्ताको व्यासबुद्धिसे पुजै और नियमसे रहे ॥ ६ ॥ हे मुने ! अपने हाथसे वा लेखकके हाथसे लिखाकर भाद्रपद पौर्णमासीको देवीतिथिमें श्रीभागवतको देवीरूप जान, सुवर्णका सिंह बनवाय ॥ ७ ॥

पौराणिकको प्रदान करै इसपर दक्षिणामें कपिला गौ दे वह गौ दुधारी अलंकृत सवत्सा सुवर्ण पहरे हो ॥ ८ ॥ इसमें ३१० अध्याय होनेसे इतने ही ब्राह्मणोंको भोजन करावै, इतनीही सुहागन कुमारी वटुकोंको भोजन करावै ॥ ९ ॥ देवीबुद्धिसे वसन आभरणादि द्वारा उनको पूजन करै पायसादिश्रेष्ठ अन्न गंधमाला कुसुमादिसे पूजा करै ॥ १० ॥ उस पुराणदानसे भूमिदानका फल होता है इस लोकमें सुखी हो अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जो नित्य भक्तिसे देवीभागवत सुनते हैं उसको कभी कहीं किसी समय कुछ दुर्लभ नहीं होता ॥ १२ ॥ अपुत्रवाला पुत्र प्राप्त करता धनार्थीको धन मिलता है विद्यार्थी विद्याको प्राप्त होकर अपनी कीर्तिसे भूमिको मंडित करता है

दद्यात्पौराणिकायाऽथ दक्षिणां च पयस्विनीम्॥सालंकृतां सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम्॥८॥भोजयेद्ब्राह्मणानंतेऽप्यध्यायपरिसंमितान् ॥ सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीबटुकैः सह ॥ ९ ॥ देवीबुध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः ॥ पाय सान्नवरेणाऽपि गंधस्रक्कुसुमादिभिः ॥ १० ॥ पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत् ॥ इह लोके सुखी भूत्वाप्यंते देवीपुरं व्रजेत् ॥ ११ ॥ नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम् ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ १२ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमंडितभूतलः ॥१३॥ वंध्या वा काकवंध्या वा मृतवंध्या च यांगना श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः ॥१४॥ यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति ॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ १५ ॥ नेक्षंते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः ॥ ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः ॥ १६ ॥ मंडलान्ना शमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः ॥ शतावृत्त्याऽस्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ वंध्या काकवंध्या जिसके एकही वार संतान हुई हो मृतवन्ध्या (जिसकी सन्तान होकर मरजाती हो) इसके श्रवणसे हो दोषनिवृत्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ जिस घरमें यह पुस्तक पूजित होकर स्थित रहती है उस घरको लक्ष्मी और सरस्वती त्यागन नहीं करती ॥ १५ ॥ वेताल डाकिनी आदि राक्षस उस घरको देखनेको समर्थ नहीं होते मनुष्यको ज्वरयुक्त देख सावधान हो इसका पाठ करै तो ॥१६॥ दाहज्वर ग्लानिसहित नाशको प्राप्त होता है इसकी सौ आवृत्ति करनेसे क्षयरोग नाश होता है ॥ १७ ॥

सावधानहो संध्याके उपरान्त प्रतिसंध्यामें जो इसके एक एक अध्यायको भी पढता है वह मनुष्य ज्ञानवान् होकर मोक्षका अधिकारी होता है ॥ १८ ॥ कार्याकार्यमें नवमस्कन्धके कहे अनुसार शकुनोंको देखै जिसका प्रकार मैं पहले कहचुका हूं॥१९॥शरत्कालकी नवरात्रमें इसको नित्य पाठ करै अम्बिका प्रसन्न होकर उसको इच्छित फल देती है ॥ २० ॥ वैष्णव शैव गाणपत्य सौर शाक्त वैदिक इनको अपने इष्टदेवकी शक्ति अर्थात् अपने इष्ट विष्णु शिव गणेश सूर्यकी शक्ति पार्वती राधा लक्ष्मी सिद्धि बुद्धि इच्छारूपकी तुष्टिके निमित्त इस पुराणको पढना चाहिये॥२१॥ आषाढ आश्विन माघ चैत्रके शुक्लपक्षकी चारों नवरात्रमें इसको पढना चाहिये, वैदिकोंको अपनी गायत्रीकी प्रीतिके निमित्त सदा पढना चाहिये

प्रतिसंध्यं पठेद्यस्तु संध्यां कृत्वा समाहितः ॥ एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत् ॥ १८ ॥ शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि ॥ तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने ॥१९॥ नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः ॥ तस्यांबिका तु संतुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम् ॥२०॥ वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा ॥ सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥२१॥ पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये ॥ वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने ॥२२॥पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नात्र कस्यचित्॥ उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्ताऽस्ति सर्वदा ॥२३॥ तच्छक्तेरेव तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः ॥ स्त्री शूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः ॥२४॥ शृणुयाद्द्विजवक्त्रात्त नित्यमेवेति च स्थितिः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ २५ ॥

॥ २२ ॥ इसको यत्नसे पढना चाहिये कारण कि इसमें किसीका विरोध नहीं है जो कि सब देवताओंकी उपासना शक्तिसहित है और शक्तिकी अधिष्ठात्री भगवती है ॥ २३ ॥ उस शक्तिके संतोषके निमित्त द्विजोंको सदा पढनी चाहिये, स्त्री शूद्र मोहको प्राप्त हुए स्वयं इसका पारायण न करै ॥ २४ ॥ उनको सदा ब्राह्मणोंके मुखसे इसको सुनना चाहिये ऐसी मर्यादा है बहुत कहनेसे क्या है तत्त्वसे इसका सार कहता हूं ॥ २५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! यह पुराण वेदका सार परमपुण्यदायक है, इसका पाठ और श्रवण वेदपाठ और श्रवणके समान पुण्यदायक है ॥ २६ ॥ गायत्रीसे प्रतिपाद्य सच्चिदानंदरूपिणी ह्रींमयी देवीको प्रणाम करता हूं वही हमारी बुद्धिको प्रेरणा करे "ह्रींब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ २७ ॥ नैमिषारण्यवासी तपोधन इस प्रकार सूतजीके वचन सुन पौराणिकोंमें उत्तम सूतजीकी उच्चपूजा करते हुए ॥ २८ ॥ वे देवीके चरणकमलका पूजन करनेवाले सब प्रसन्न हुए और इस पुराणके प्रभावसे परम शांतिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ सूतजीको वारंवार प्रणाम कर श्रम देनेके अपराधको क्षमा कराते हुए और बोले हे तात ! इस संसार सागरके पार करनेको तुम ही हमको नौकारूप हुए ॥ ३० ॥ इस प्रकारसे वह सूतजी सब निगमोंमें गुप्त

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः ॥ वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि ॥२६॥ सच्चिदानंदरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्॥ नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २७ ॥ इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः ॥ पूजयामासुरत्युच्चैः सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ २८ ॥ प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादांबुजार्चकाः ॥ निवृत्तिं परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः ॥२९॥ नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ संसारवारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि ॥ ३० ॥ इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम् ॥ नतमथ मुनिसंघं वर्धयित्वाशिषांबाचरणकमलभृंगो निर्जगामाथ सूतः ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ स्वस्ति ॐ ॥

रामषण्नंद (९६३) संख्यातैः पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य द्वादशस्कंध ईरितः ॥१॥

इस पुराणको उन श्रेष्ठ ऋषियोंको सुनाकर मुनियोंसे प्रणामको प्राप्त हो उन्हें आशीर्वादसे बढाय, माता भगवतीके चरणकमलोंमें भृंगरूप अर्थात् देवीके अतिशय भक्त सूतजी वहांसे बिदा होकर अन्यत्र चले गये ॥ ३१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां राजमान्यकान्यकुब्जकमलदिवाकरहरिभक्तिनिरतमुरादाबादनिवासिकात्यायनगोत्रोत्पन्न—श्रीमिश्रसुखानन्दसूनुमहामहोपदेशकभारतधर्ममहामण्डल-विद्यावारिधिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां द्वादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

दोहा—जगदम्बा श्रीशारदा, ब्रह्मरूपिणी मात। तिनके पगवंदन किये, कोटि विघ्न मिटजात ॥१॥

चरणकमल सुन्दर अमल, प्रेमसहित मनलाय। देवीभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखी बनाय ॥ २ ॥

वेद अर्थ गर्भित सकल, गायत्रीको ध्यान। इहिमें अतिविस्तारसे, कह्यो व्यास भगवान ॥ ३ ॥

पढ़हिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान। अर्थ धर्म कामादि सुख, अन्त मिलहिं निर्वान ॥ ४ ॥

सब पदार्थ गूढार्थ अरु, भावतिलक सम्पन्न। वर्णी भाषा भागवत, सज्जन होहिं प्रसन्न ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज सुखदान। वसत बम्बई नगरमें, दिव्यगुणनकी खान ॥ ६ ॥

वेंकटेश्वर यंत्रपति, विदित सकल संसार। तिन हितकी श्रीभागवत, भाषामें विस्तार ॥ ७ ॥

पुत्र पौत्रकी होय नित, वृद्धि समृद्धि विशाल। जगज्जननि परमेश्वरी, सन्तत रहहिं दयाल ॥ ८ ॥

मिश्रसुखानँद सूरि सुत, गगगभसेजात। बुधज्वालाप्रसाद नित, भुवनेशी गुणगात ॥ ९ ॥

वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद। भजन करत जगदम्बको, बुध ज्वालापरसाद ॥१०॥

संवत सागर बाणग्रह, चन्द्र अषाढ सुमास। कृष्णत्रयोदशिचन्द्रदिन, पूर्णतिलक सुखरास ॥११॥

नौसे त्रेसठ श्लोकमें, यह द्वादशस्कन्ध। गायत्री महिमा कही, और वैदिक परबन्ध ॥ १२ ॥

फिरत क्यों विपिनमें, रे मतिमन्द गँवार। जगदम्बाके चरणगहि, अपनो जन्मसुधार ॥ १३ ॥

पक्षपात तज धर्म गहि, व्यासमुनिहिं शिरनाय। यथाशक्ति टीका करी, दर्पणवत दिखराय ॥ १४ ॥

तासौं दर्पण नाम यह, टीका सब सुखमूल। पढहिं सुनहिं तिनपर रहैं, सदा शिवा अनुकूल ॥१५॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन क्षेमराजेन श्रेष्ठिना
स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर"-(स्टीम्)-मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम्।

संवत् २०११, शकाब्दाः १८७६.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,	गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,	" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.	कल्याण-बम्बई.

॥इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते द्वादशस्कंधः समाप्तः॥

विदुषामभ्यर्थना ।

अत्रास्माकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य-नाटक-चम्पू-प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति, तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः ।

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः " श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-मुद्रणालयाध्यक्षः, मुंबईस्थः ।

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,-बम्बई.
